ॐ श्रीपरमात्मने नमः

कल्याण

मूल्य ₹ २२०
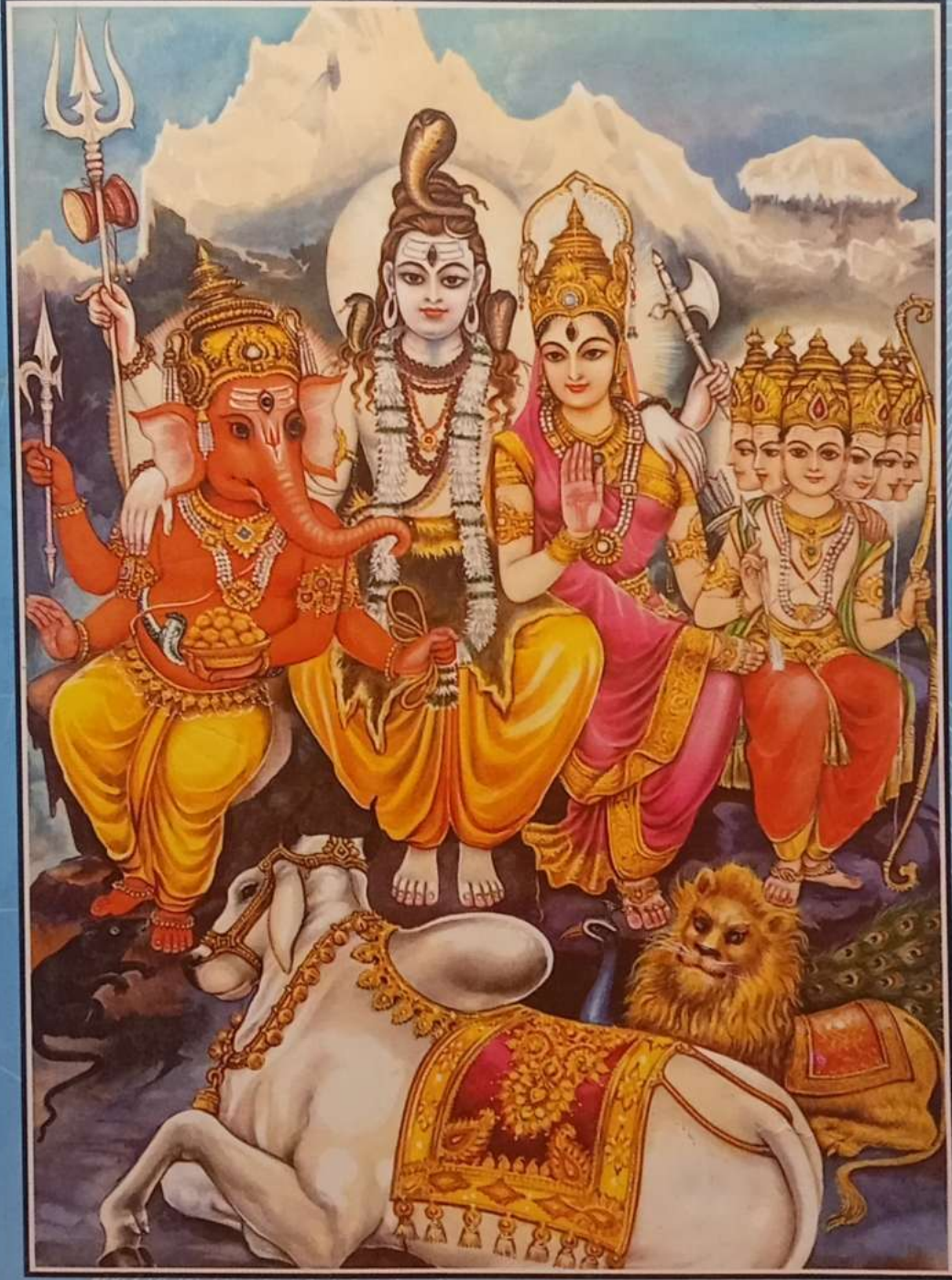
श्रीशिवमहापुराणाङ्क

[हिन्दी भाषानुवाद—पूर्वार्ध, श्लोकाङ्कसहित]

गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

श्रीशिवमहापुराणाङ्क

वर्ष ११
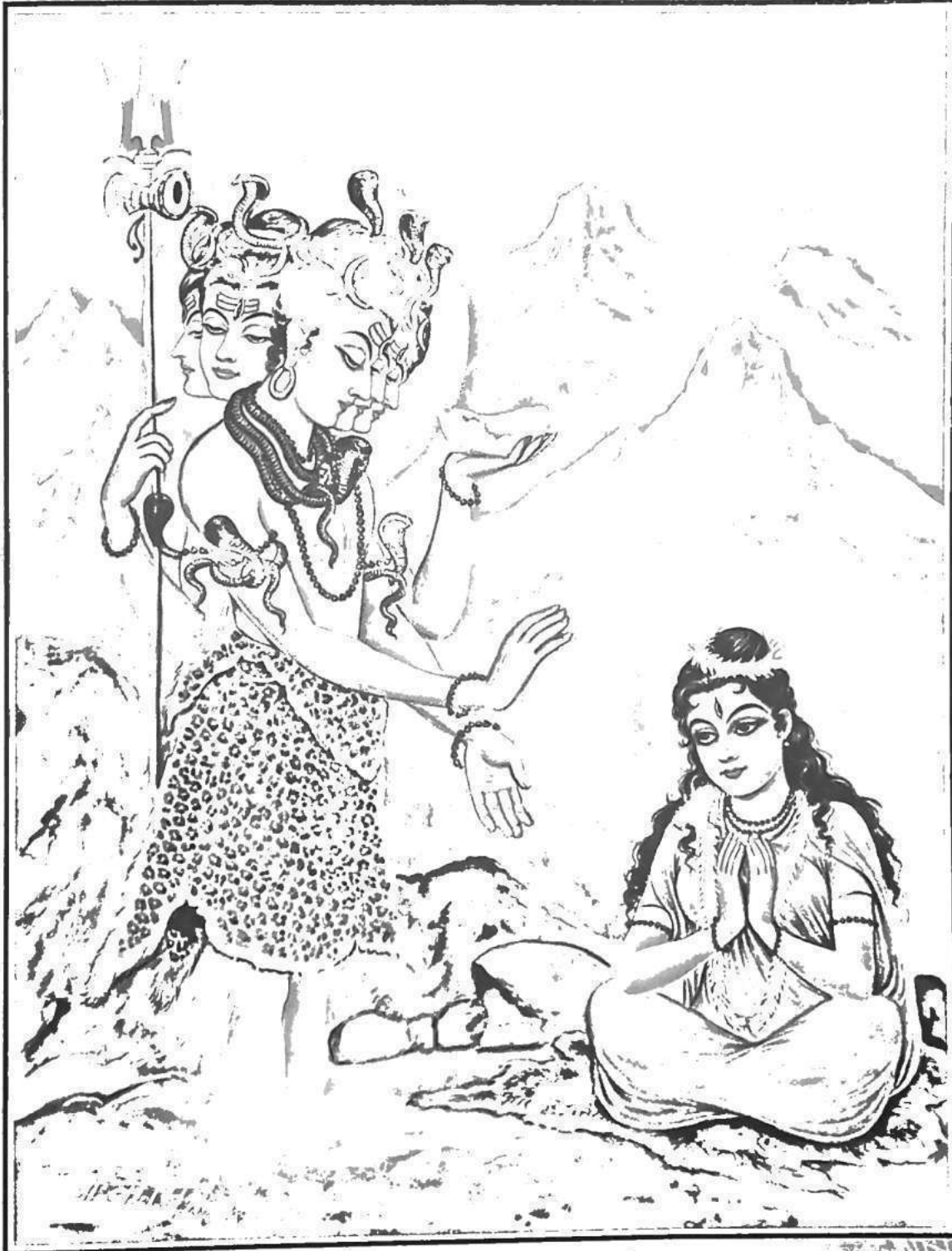
संख्या १

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,१५,०००)

शिवपुराण-श्रवणकी महिमा

ये शृण्वन्ति मुने शैवं पुराणं शास्त्रमुत्तमम्। ते मनुष्या न मन्तव्या रुद्रा एव न संशयः॥
पुराणश्रवणं शम्भोर्नामसङ्कीर्तनं तथा। कल्पद्रुमफलं सम्यङ् मनुष्याणां न संशयः॥
कलौ दुर्मेधसां पुंसां धर्माचारोज्झितात्मनाम्। हिताय विदधे शम्भुः पुराणाख्यं सुधारसम्॥
एकोऽजरामरः स्याद्वै पिबन्नेवामृतं पुमान्। शम्भोः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥
सदा सेव्या सदा सेव्या सदा सेव्या विशेषतः। एतच्छिवपुराणस्य कथा परमपावनी॥
एतच्छिवपुराणस्य कथाश्रवणमात्रतः। किं ब्रवीमि फलं तस्य शिवश्चित्तं समाश्रयेत्॥

[**श्रीसूतजी शौनकजीसे कहते हैं—**] हे मुने! जो लोग इस श्रेष्ठ शास्त्र शिवपुराणका श्रवण करते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिये; वे रुद्रस्वरूप ही हैं; इसमें सन्देह नहीं है। शिवपुराणका श्रवण और भगवान् शंकरके नामका संकीर्तन—दोनों ही मनुष्योंको कल्पवृक्षके समान सम्यक् फल देनेवाले हैं, इसमें सन्देह नहीं है। कलियुगमें धर्माचरणसे शून्य चित्तवाले दुर्बुद्धि मनुष्योंके उद्धारके लिये भगवान् शिवने अमृतरसस्वरूप शिवपुराणकी उद्भावना की है। अमृतपान करनेसे तो केवल अमृतपान करनेवाला ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवान् शिवका यह कथामृत सम्पूर्ण कुलको अजर-अमर कर देता है। इस शिवपुराणकी परम पवित्र कथाका विशेष रूपसे सदा ही सेवन करना चाहिये, करना ही चाहिये, करना ही चाहिये। इस शिवपुराणकी कथाके श्रवणका क्या फल कहूँ? इसके श्रवणमात्रसे भगवान् सदाशिव उस प्राणीके हृदयमें विराजमान हो जाते हैं। [स्कन्दपुराण]

* कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org | e-mail : kalyan@gitapress.org | 09235400242/244

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।
Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु- gitapress.org पर Online Magazine Subscription option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

देवताओं और मुनियोंद्वारा शिवस्तुति
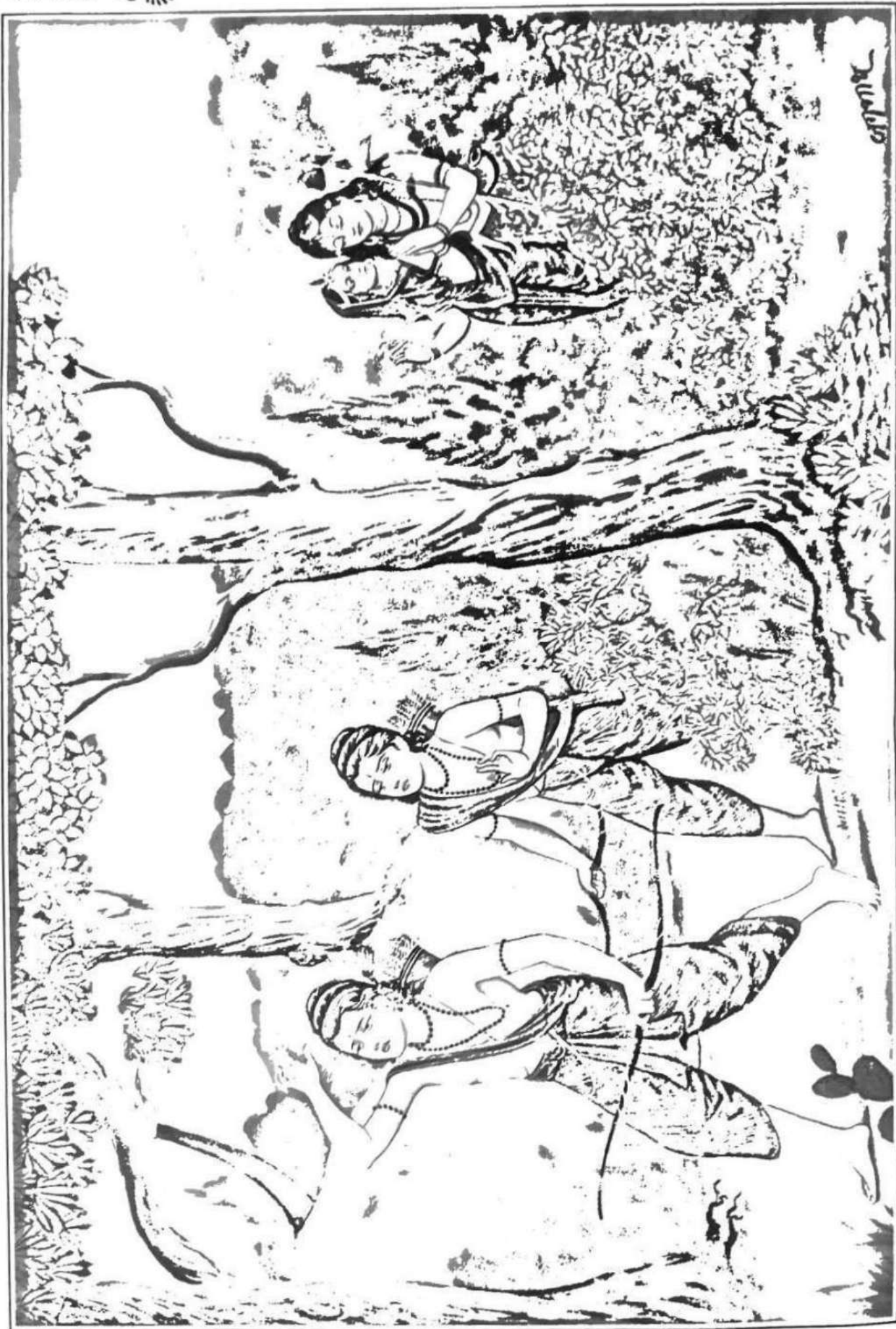
सतीजीका आश्चर्य

गुफामें गौरी-शंकर

पार्वतीजी और सप्तर्षि

श्रीशिवजीकी विकट बरात

मयूरवाहन भगवान् कार्तिकेय
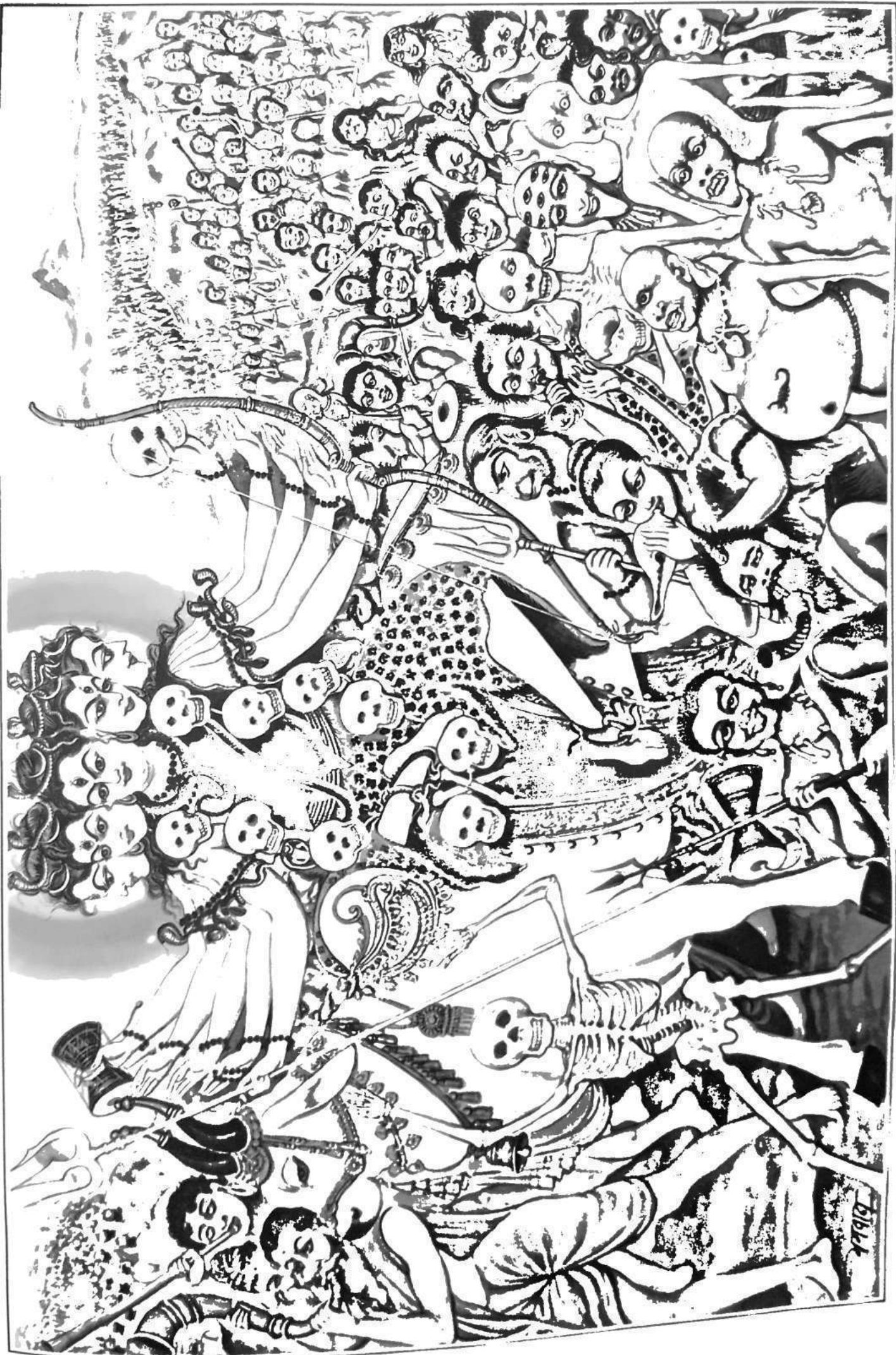
श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्राकट्य
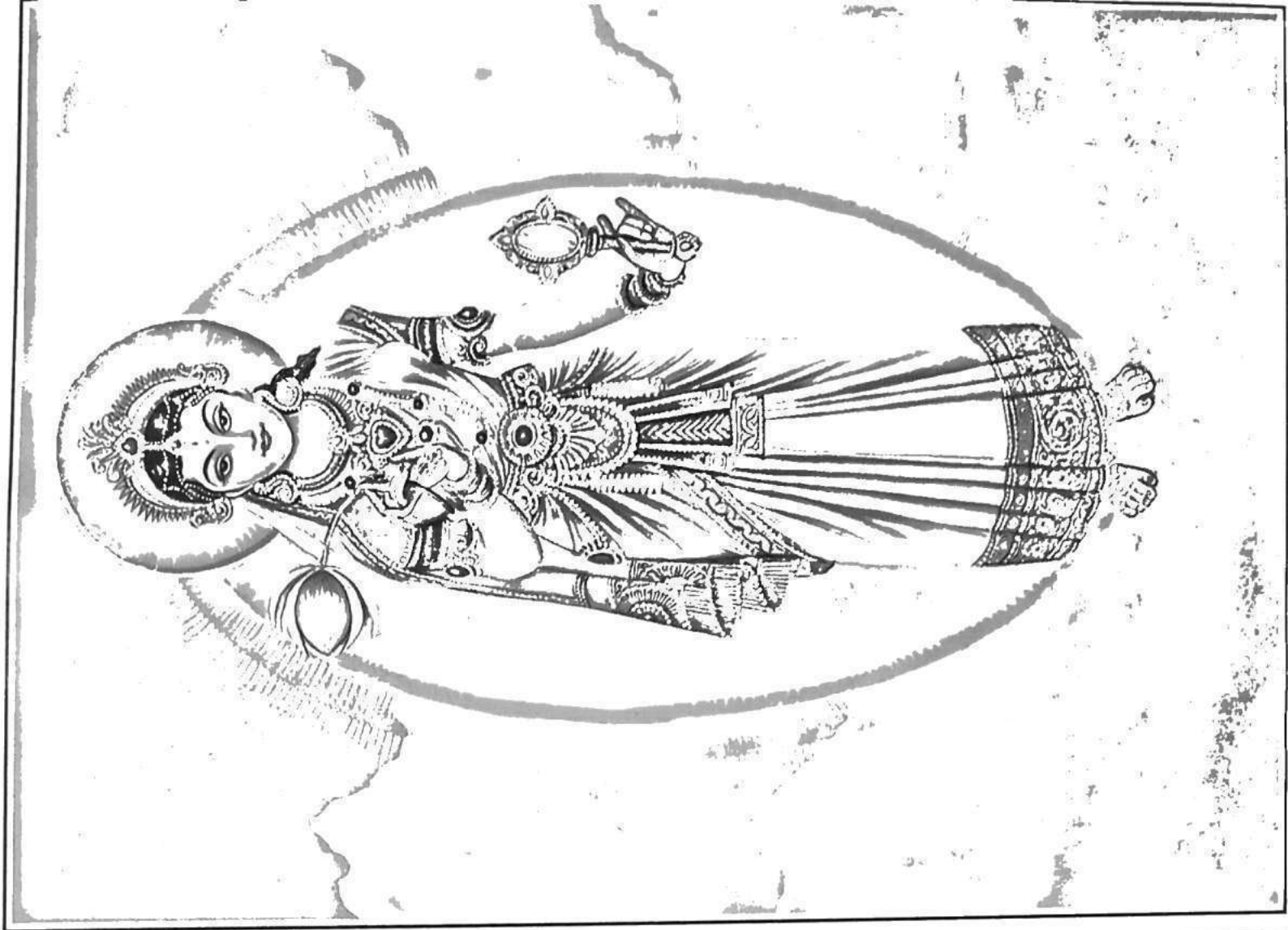
ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, जनवरी २०१७ ई०

पूर्ण संख्या १०८२

भगवान् उमामहेश्वरका मंगलमय वैवाहिक वेष

मालतीमालया युक्तं सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्। सत्कण्ठाभरणं चारुवलयाङ्गदभूषितम्॥
वह्निशौचेनातुलेन त्वतिसूक्ष्मेण चारुणा। अमूल्यवस्त्रयुग्मेन विचित्रेणातिराजितम्॥
चन्दनागरुकस्तूरीचारुकुङ्कुमभूषितम्। रत्नदर्पणहस्तं च कज्जलोज्ज्वललोचनम्॥×××
सुचारुकबरीभारां चारुपत्रकशोभिताम्। कस्तूरीबिन्दुभिस्सार्धं सिन्दूरबिन्दुशोभिताम्॥
रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षसा सुविराजिताम्। रत्नकेयूरवलयां रत्नकङ्कणमण्डिताम्॥
सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च चारुगण्डस्थलोज्ज्वलाम्। मणिरत्नप्रभामुष्टिदन्तराजिविराजिताम्॥
मधुबिम्बाधरोष्ठां च रत्नयावकसंयुताम्। रत्नदर्पणहस्तां च क्रीडापद्मविभूषिताम्॥

[भगवान् शिव] मालतीकी मालासे युक्त, उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुटसे प्रकाशित, गलेमें सुन्दर हार धारण किये हुए, सुन्दर कंगन तथा बाजूबन्दसे सुशोभित, पवित्र अग्निके समान देदीप्यमान, अनुपम, अत्यन्त सूक्ष्म, मनोहर, बहुमूल्य तथा विचित्र युग्म वस्त्र धारण किये हुए, चन्दन-अगरु-कस्तूरी तथा सुन्दर कुमकुमके लेपसे शोभित, हाथमें रत्नमय दर्पण लिये हुए और कज्जलके कारण कान्तिमान् नेत्रोंसे सुशोभित हैं।××× *[भगवती पार्वती]* सुन्दर केशपाशवाली, सुन्दर पत्र-रचनासे शोभित, कस्तूरी-बिन्दुसहित सिन्दूरबिन्दुसे शोभित, वक्षःस्थलपर श्रेष्ठ रत्नोंके हारसे सुशोभित, रत्ननिर्मित बाजूबन्द धारण करनेवाली, रत्नमय कंकणोंसे मण्डित, श्रेष्ठ रत्नोंके कुण्डलोंसे प्रकाशित, सुन्दर कपोलवाली, मणि एवं रत्नोंकी कान्तिको फीकी कर देनेवाली दन्तपंक्तिसे सुशोभित, मनोहर बिम्बफलके समान अधरोष्ठवाली, रत्नोंके यावक (महावर)-से युक्त और हाथमें रत्नमय दर्पण तथा क्रीडा-कमलसे विभूषित हैं। [**श्रीशिवमहापुराण-पार्वतीखण्ड**]

॥ श्रीहरि: ॥

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्योंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ९१वें वर्ष—सन् २०१७ का यह विशेषाङ्क—'श्रीशिवमहापुराणाङ्क'-हिन्दी भाषानुवाद, श्लोकाङ्कसहित-पूर्वार्ध आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ५८८ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और १२ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) उचित व्यवस्थाके लिये यहाँ भेज देना चाहिये अथवा उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा नोट कर लें। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है।

४-कल्याणके मासिक अङ्क सामान्य डाकसे भेजे जाते हैं। अब कल्याणके मासिक अङ्क नि:शुल्क पढ़नेके लिये **kalyan-gitapress.org** पर उपलब्ध हैं।

५-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अत: पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

'कल्याण' के उपलब्ध पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹	कोड	विशेषाङ्क	मूल्य ₹
41	शक्ति-अङ्क	१५०	574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१६०	586	शिवोपासनाङ्क	१३०
616	योगाङ्क-परिशिष्टसहित	२००	1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२४०	653	गोसेवा-अङ्क	१३०
627	संत-अङ्क	२३०	789	सं० शिवपुराण	२००	1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१४०
604	साधनाङ्क	२५०	631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२००	1044	वेद-कथाङ्क-परिशिष्टसहित	१७५
1773	गो-अङ्क	१७०	572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	२००	1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०
44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०	517	गर्ग-संहिता	१५०	1947	भक्तमाल अङ्क	१३०
539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	९०	1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	१००	1189	सं० गरुडपुराण	१६०
1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०	1362	अग्निपुराण	२००	1985	लिङ्गमहापुराण-सटीक	२००
43	नारी-अङ्क	२४०		(मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)		1592	आरोग्य-अङ्क	
659	उपनिषद्-अङ्क	२००	1432	वामनपुराण-सानुवाद	१२५		(परिवर्धित संस्करण)	२००
518	हिन्दू-संस्कृति अङ्क (शीघ्र प्रकाश्य)		557	मत्स्यमहापुराण-सानुवाद	२७०	1610	(महाभागवत) देवीपुराण	
279	सं० स्कन्दपुराण	३२५	657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०		सानुवाद	१२०
40	भक्त-चरिताङ्क	२३०	42	हनुमान-अङ्क-परिशिष्टसहित	१५०	1793	श्रीमद्देवीभागवताङ्क-पूर्वार्द्ध	१००
1183	सं० नारदपुराण	२००	1361	सं० श्रीवाराहपुराण	१००	1842	श्रीमद्देवीभागवताङ्क-उत्तरार्ध	१००
587	सत्कथा-अङ्क	२००	791	सूर्याङ्क	१३०	1875	सेवा-अङ्क	१३०
636	तीर्थाङ्क	२००	584	सं० भविष्यपुराण	१५०	2035	गङ्गा-अङ्क (कूपनवाला)	२२०

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय ₹ ३० अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

श्रीहरिः

'श्रीशिवमहापुराणाङ्क' की विषय-सूची

स्तुति-प्रार्थना

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

माहात्म्य

प्रथम विद्येश्वरसंहिता

द्वितीय रुद्रसंहिता

१-सृष्टिखण्ड

५-युद्धखण्ड

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

(सादे चित्र)

विषय	पृष्ठ-संख्या

अष्टमूर्तिस्तव

[संजीवनीविद्या प्रदान करनेवाली स्तुति]

महर्षि भृगुके वंशमें उत्पन्न श्रीशुक्राचार्य महान् शिवभक्तोंमें परिगणित हैं। इन्होंने काशीपुरीमें आकर एक शिवलिंगकी स्थापना की, जो शुक्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ। भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए इन्होंने बहुत कालतक घोर तप किया। उनकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शिव लिंगसे साक्षात् प्रकट हो गये। भगवान्‌का दर्शनकर शुक्राचार्य हर्षसे पुलकित हो उठे और उस समय उन्होंने हर्ष-गद्‌गद वाणीसे जिस स्तोत्रद्वारा भगवान् शिवका स्तवन किया, वही स्तोत्र अष्टमूर्तिस्तव अथवा मूर्त्यष्टकस्तोत्र कहलाता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान (क्षेत्रज्ञ या आत्मा), चन्द्रमा और सूर्य—इन आठोंमें अधिष्ठित शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान—ये शिवकी अष्टमूर्तियोंके नाम हैं। आठ श्लोकोंवाली इस स्तुतिके एक-एक श्लोकमें पृथक्-पृथक् रूपसे उपर्युक्त एक-एक स्वरूपकी वन्दना है। शुक्राचार्यकी इस स्तुतिसे मृत्युंजय भगवान् शिव इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने मृत व्यक्तियोंको भी जीवित करनेवाली संजीवनीविद्या उन्हें दे दी, जिसके बलपर शुक्राचार्य जिसको चाहते थे, उसे जीवित कर देते थे। भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही शुक्र ग्रहोंमें प्रतिष्ठित हुए, सभी प्रकारका शुभ फल देनेमें समर्थ हुए और भगवान् शिव-पार्वतीके प्रिय पुत्ररूपमें उनकी प्रसिद्धि हुई। श्रीशिवमहापुराणमें प्राप्त शुक्राचार्यद्वारा की गयी वह स्तुति इस प्रकार है—

त्वं भाभिराभिरभिभूय तमः समस्त-
मस्तं नयस्यभिमतानि निशाचराणाम्।
देदीप्यसे दिवमणे गगने हिताय
लोकत्रयस्य जगदीश्वर तन्नमस्ते ॥

हे जगदीश्वर! आप अपने तेजसे समस्त अन्धकारको दूरकर रातमें विचरण करनेवाले राक्षसोंके मनोरथोंको नष्ट कर देते हैं। हे दिनमणे! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये आकाशमें सूर्यरूपसे प्रकाशित हो रहे हैं, आपको नमस्कार है।

लोकेऽतिवेलमतिवेलमहामहोभि-
र्निर्भासि कौ च गगनेऽखिललोकनेत्रः।
विद्राविताखिलतमाः सुतमो हिमांशो
पीयूषपूरपरिपूरित तन्नमस्ते ॥

हे हिमांशो! आप पृथ्वी तथा आकाशमें समस्त प्राणियोंके नेत्र बनकर चन्द्ररूपसे विराजमान हैं और लोकमें व्याप्त अन्धकारका नाश करनेवाले एवं अमृतकी किरणोंसे युक्त हैं। हे अमृतमय! आपको नमस्कार है।

त्वं पावने पथि सदा गतिरप्युपास्यः
कस्त्वां विना भुवनजीवन जीवतीह।
स्तब्धप्रभंजनविवर्द्धितसर्वजंतोः
संतोषिताहिकुलसर्वग वै नमस्ते ॥

हे भुवनजीवन! आप पावनपथ—योगमार्गका आश्रय लेनेवालोंकी सदा गति तथा उपास्यदेव हैं। इस जगत्‌में आपके बिना कौन जीवित रह सकता है। आप वायुरूपसे समस्त प्राणियोंका वर्धन करनेवाले और सर्पकुलोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं। हे सर्वव्यापिन्! आपको नमस्कार है।

विश्वैकपावक नतावक पावकैक-
शक्ते ऋते मृतवतामृतदिव्यकार्यम्।
प्राणिष्यदो जगदहो जगदंतरात्मं-
स्त्वं पावकः प्रतिपदं शमदो नमस्ते ॥

हे विश्वके एकमात्र पावनकर्ता! हे शरणागतरक्षक! यदि आपकी एकमात्र पावक (पवित्र करनेवाली एवं दाहिका) शक्ति न रहे, तो मरनेवालोंको मोक्ष प्रदान कौन करे? हे जगदन्तरात्मन्! आप ही समस्त प्राणियोंके भीतर वैश्वानर नामक पावक (अग्निरूप) हैं और उन्हें पग-पगपर शान्ति प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है।

पानीयरूप परमेश जगत्पवित्र
चित्रं विचित्रसुचरित्रकरोऽसि नूनम्।

विश्वं पवित्रममलं किल विश्वनाथ
पानीयगाहनत एतदतो नतोऽस्मि॥

हे जलरूप! हे परमेश! हे जगत्पवित्र! आप निश्चय ही विचित्र उत्तम चरित्र करनेवाले हैं। हे विश्वनाथ! आपका यह अमल पानीय रूप अवगाहनमात्रसे विश्वको पवित्र करनेवाला है, अत: आपको नमस्कार करता हूँ।

आकाशरूपबहिरंतरुतावकाश-
दानाद्विकस्वरमिहेश्वर विश्वमेतत्।
त्वत्तः सदा सदय संश्वसिति स्वभावात्
संकोचमेति भवतोऽस्मि नतस्ततस्त्वाम्॥

हे आकाशरूप! हे ईश्वर! यह संसार बाहर एवं भीतरसे अवकाश देनेके ही कारण विकसित है, हे दयामय! आपसे ही यह संसार स्वभावत: सदा श्वास लेता है और आपसे ही यह संकोचको प्राप्त होता है, अत: आपको प्रणाम करता हूँ।

विश्वंभरात्मक बिभर्षि विभोऽत्र विश्वं
को विश्वनाथ भवतोऽन्यतमस्तमोऽरिः।
स त्वं विनाशय तमो मम चाहिभूष
स्तव्यात्परः परपरं प्रणतस्ततस्त्वाम्॥

हे विश्वम्भरात्मक [पृथ्वीरूप]! हे विभो! आप ही इस जगत्का भरण-पोषण करते हैं। हे विश्वनाथ! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन अन्धकारका विनाशक है। हे अहिभूषण! मेरे अज्ञानरूपी अन्धकारको आप दूर करें, आप स्तवनीय पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, अत: आप परात्परको मैं नमस्कार करता हूँ।

आत्मस्वरूप तव रूपपरंपराभि-
राभिस्ततं हर चराचररूपमेतत्।
सर्वांतरात्मनिलय प्रतिरूपरूप
नित्यं नतोऽस्मि परमात्मजनोऽष्टमूर्ते॥

हे आत्मस्वरूप! हे हर! आपकी इन रूप-परम्पराओंसे यह सारा चराचर जगत् विस्तारको प्राप्त हुआ है। सबकी अन्तरात्मामें निवास करनेवाले हे प्रतिरूप! हे अष्टमूर्ते! मैं भी आपका जन हूँ, मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ।

इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरबंधुबंधो
युक्तः करोषि खलु विश्वजनीनमूर्ते।
एतत्ततं सुविततं प्रणतप्रणीत
सर्वार्थसार्थपरमार्थ ततो नतोऽस्मि॥

हे दीनबन्धो! हे विश्वजनीनमूर्ते! हे प्रणतप्रणीत (शरणागतोंके रक्षक)! हे सर्वार्थसार्थपरमार्थ! आप इन अष्टमूर्तियोंसे युक्त हैं और यह विस्तृत जगत् आपसे व्याप्त है, अत: मैं आपको प्रणाम करता हूँ। **[रुद्रसंहिता, युद्धखण्ड]**

द्वादशज्योतिर्लिंगस्मरणमाहात्म्य

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्। उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्। वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने। सेतुबंधे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्। सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥
यं यं काममपेक्ष्यैव पठिष्यन्ति नरोत्तमाः। प्राप्स्यन्ति कामं तं तं हि परत्रेह मुनीश्वराः॥
ये निष्कामतया तानि पठिष्यन्ति शुभाशयाः। तेषां च जननीगर्भे वासो नैव भविष्यति॥

सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनीमें महाकाल, ॐकार-क्षेत्रमें परमेश्वर, हिमालयके शिखरपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, वाराणसीमें विश्वेश्वर, गौतमी नदीके तटपर त्र्यम्बकेश्वर, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकवनमें नागेश, सेतुबन्धमें रामेश्वर तथा शिवालयमें घुश्मेश्वर [नामक ज्योतिर्लिंग] हैं। जो प्रतिदिन प्रात:काल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसके सभी प्रकारके पाप छूट जाते हैं और वह सम्पूर्ण सिद्धियोंके फलको प्राप्त कर लेता है। हे मुनीश्वरो! उत्तम पुरुष जिस-जिस मनोरथकी अपेक्षा करके इन बारह नामोंका पाठ करेंगे, वे उस-उस मनोकामनाको इस लोकमें तथा परलोकमें अवश्य प्राप्त करेंगे। जो शुद्ध अन्त:करणवाले पुरुष निष्कामभावसे इन नामोंका पाठ करेंगे, उन्हें [पुनः] माताके गर्भमें निवास नहीं करना पड़ेगा। **[शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता]**

श्रीशिवमहापुराणसूक्तिसुधा

परोपकारसदृशो नास्ति धर्मोऽपरः खलु॥

परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है।

[विद्येश्वरसंहिता १। ३६]

पुण्यक्षेत्रे कृतं पुण्यं बहुधा ऋद्धिमृच्छति।
पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं महदण्वपि जायते॥

पुण्यक्षेत्रमें किया हुआ थोड़ा-सा पुण्य भी अनेक प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होता है तथा वहाँ किया हुआ छोटा-सा पाप भी महान् हो जाता है।

[विद्येश्वरसंहिता १२। ३६]

धर्मार्जितार्थभोगेन वैराग्यमुपजायते॥
विपरीतार्थभोगेन राग एव प्रजायते।

धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित धनके द्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है।

[विद्येश्वरसंहिता १३। ५१-५२]

अधर्मो हिंसिकारूपो धर्मस्तु सुखरूपकः।
अधर्माद् दुःखमाप्नोति धर्माद्वै सुखमेधते॥
विद्याद् दुर्वृत्तितो दुःखं सुखं विद्यात्सुवृत्तितः।
धर्मार्जनमतः कुर्याद्भोगमोक्षप्रसिद्धये॥

अधर्म हिंसा (दुःख)-रूप है और धर्म सुखरूप है। मनुष्य अधर्मसे दुःख पाता है और धर्मसे सुख एवं अभ्युदयका भागी होता है। दुराचारसे दुःख प्राप्त होता है और सदाचारसे सुख। अतः भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये धर्मका उपार्जन करना चाहिये।

[विद्येश्वरसंहिता १३। ५७-५८]

आत्मवित्तं त्रिधा कुर्याद्धर्मवृद्ध्यात्मभोगतः।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात्तु धर्मतः॥

अपने धनके तीन भाग करे—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग वृद्धिके लिये तथा तीसरा भाग अपने उपयोगके लिये। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीनों प्रकारके कर्म धर्मार्थ रखे हुए धनसे करे। [विद्येश्वरसंहिता १३। ७२]

न वदेत्सर्वजन्तूनां हृदि रोषकरं बुधः।

विद्वान् पुरुष ऐसी बात न कहे, जो किसी भी प्राणीके हृदयमें रोष पैदा करनेवाली हो।

[विद्येश्वरसंहिता १३। ८०]

येन केनाप्युपायेन ह्यल्पं वा यदि वा बहु।
देवतार्पणबुद्ध्या च कृतं भोगाय कल्पते॥
तपश्चर्या च दानं च कर्तव्यमुभयं सदा।

जिस किसी भी उपायसे थोड़ा हो या बहुत, देवतार्पण-बुद्धिसे जो कुछ भी दिया अथवा किया जाय, वह दान या सत्कर्म भोगोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है। तपस्या और दान—ये दो कर्म मनुष्यको सदा करने चाहिये। [विद्येश्वरसंहिता १५। ५८-५९]

पूजया शिवभक्तस्य शिवः प्रीततरो भवेत्।
शिवस्य शिवभक्तस्य भेदो नास्ति शिवो हि सः॥

शिवभक्तकी पूजासे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिव और उनके भक्तमें कोई भेद नहीं है। वह साक्षात् शिवस्वरूप ही है। [विद्येश्वरसंहिता १७। १३१]

दुःखस्य मूलं व्याधिर्हि व्याधेर्मूलं हि पातकम्॥
धर्मेणैव हि पापानामपनोदनमीरितम्।

दुःखका मूल व्याधि है और व्याधिका मूल पापमें होता है। धर्माचरणसे ही पापोंका नाश बताया गया है।

[विद्येश्वरसंहिता १८। १३८-१३९]

यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तमथापि वा।
अन्यत्समाचरेन्मर्त्यो न सङ्कल्पफलं लभेत्॥

जो मनुष्य वेदों तथा स्मृतियोंमें कहे हुए सत्कर्मोंकी अवहेलना करके दूसरे कर्मको करने लगता है, उसका मनोरथ कभी सफल नहीं होता। [विद्येश्वरसंहिता २१। ४४]

ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम्।
उद्धृतं च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते॥
शिवनामविभूतिश्च तथा रुद्राक्ष एव च।
एतत्त्रयं महापुण्यं त्रिवेणीसदृशं स्मृतम्॥
शैवं नाम यथा गङ्गा विभूतिर्यमुना मता।
रुद्राक्षं विधिना प्रोक्ता सर्वपापविनाशिनी॥

अनेकजन्मभिर्येन तपस्तप्तं मुनीश्वर।
शिवनाम्नि भवेद्भक्तिः सर्वपापापहारिणी॥
विलोक्य वेदानखिलान् शिवनामजपः परः।
संसारतरणोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितम्॥

वे ही धन्य और कृतार्थ हैं, उन्हींका शरीर धारण करना भी सफल है और उन्होंने ही अपने कुलका उद्धार कर लिया है, जो शिवकी उपासना करते हैं। शिवका नाम, विभूति (भस्म) तथा रुद्राक्ष—ये तीनों त्रिवेणीके समान परम पुण्यवाले माने गये हैं। भगवान् शिवका नाम गंगा है। विभूति यमुना मानी गयी है तथा रुद्राक्षको सरस्वती कहा गया है। इन तीनोंकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। हे मुनीश्वर! जिसने अनेक जन्मोंतक तपस्या की है, उसीकी शिवनामके प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियोंने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिवके नामका जप संसारसागरको पार करनेके लिये सर्वोत्तम उपाय है।

[विद्येश्वरसंहिता २३।५, १०, १४, ३४, ४०]

दुर्ज्ञेया शाम्भवी माया सर्वेषां प्राणिनामिह।
भक्तं विनार्पितात्मानं तया सम्मोह्यते जगत्॥

वास्तवमें इस संसारमें सभी प्राणियोंके लिये शम्भुकी मायाको जानना अत्यन्त कठिन है। जिसने अपने-आपको शिवको समर्पित कर दिया है, उस भक्तको छोड़कर शेष सम्पूर्ण जगत् उनकी मायासे मोहित हो जाता है। [रुद्रसंहिता, सृ०खं० २।२५]

शिवेच्छा यादृशी लोके भवत्येव हि सा तदा।
तदधीनं जगत्सर्वं वचस्तन्त्र्यां स्थितं यतः॥

इस लोकमें शिवकी जैसी इच्छा होती है, वैसा ही होता है। समस्त विश्व उन्हींकी इच्छाके अधीन है और उन्हींकी वाणीरूपी तन्त्रीसे बँधा हुआ है।

[रुद्रसंहिता, सृ०खं० २।४०]

भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः।
भवसंस्मरणा ये च न ते दुःखस्य भाजनाः॥

जो शिवभक्तिपरायण हैं, जो शिवमें अनुरक्त चित्तवाले हैं और जो शिवका स्मरण करते हैं, वे दुःखके पात्र नहीं होते। [रुद्रसंहिता, सृ०खं० १२।२१]

इच्छेत्परापकारं यः स तस्यैव भवेद् ध्रुवम्।
इति मत्वापकारं नो कुर्यादन्यस्य पूरुषः॥

जो दूसरेका अपकार करना चाहता है, निश्चय ही पहले उसीका अपकार हो जाता है। ऐसा समझकर कोई भी व्यक्ति किसी दूसरेका अपकार न करे।

[रुद्रसंहिता, सतीखं० १९।१६]

अनाहूताश्च ये देवि गच्छन्ति परमन्दिरम्।
अवमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं तथा॥

हे देवि! जो लोग बिना बुलाये दूसरेके घर जाते हैं, वे वहाँ अनादर ही पाते हैं, जो मृत्युसे भी बढ़कर होता है। [रुद्रसंहिता, सतीखं० २८।२६]

तथारिभिर्न व्यथते ह्यर्दितोऽपि शरैर्जनः।
स्वानां दुरुक्तिभिर्मर्मताडितः स यथा मतः॥

मनुष्य अपने शत्रुओंके बाणसे घायल होकर उतना व्यथित नहीं होता, जितना अपने सम्बन्धियोंके निन्दायुक्त वचनोंसे दुखी होता है। [रुद्रसंहिता, सतीखं० २८।२९]

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूजनीयो न पूज्यते।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दारिद्र्यं मरणं भयम्॥

जहाँ अपूज्य लोगोंकी पूजा होती है और पूजनीयकी पूजा नहीं होती, वहाँ दरिद्रता, मृत्यु एवं भय—ये तीन अवश्य होंगे। [रुद्रसंहिता, सतीखं० ३५।९]

परेषां क्लेदनं कर्म न कार्यं तत् कदाचन।
परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति॥

दूसरोंको कष्ट देनेवाला कार्य कभी नहीं करना चाहिये, जो दूसरोंसे द्वेष करता है, वह द्वेष अपने लिये ही होता है।

[रुद्रसंहिता, सतीखं० ४२।६]

दातुः परीक्षा दुर्भिक्षे रणे शूरस्य जायते।
आपत्काले तु मित्रस्याशक्तौ स्त्रीणां कुलस्य हि॥
विनये संकटे प्राप्तेऽवितथस्य परोक्षतः।
सुस्नेहस्य तथा तात नान्यथा सत्यमीरितम्॥

दुर्भिक्ष पड़नेपर दानीकी, युद्धस्थलमें शूरवीरकी,

आपत्तिकालमें मित्रकी, असमर्थ होनेपर स्त्रियोंकी तथा कुलकी, नम्रतामें तथा संकटके उपस्थित होनेपर सत्यकी और उत्तम स्नेहकी परीक्षा परोक्षकालमें होती है, यह अन्यथा नहीं है, सत्य कहा गया है। [रुद्रसंहिता, पा०खं० १७। १२-१३]

कामो हि नरकायैव तस्मात् क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति सम्मोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः॥

काम ही नरकका द्वार है, कामसे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे मोह होता है और मोहसे तप विनष्ट हो जाता है। [रुद्रसंहिता, पा०खं० २४। २७]

कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसङ्गस्तत्र चाधिकः।
उद्धरेत्सकलैर्बन्धैर्न स्त्रीसङ्गात्प्रमुच्यते॥
लोहदारुमयैः पाशैर्दृढं बद्धोऽपि मुच्यते।
स्त्र्यादिपाशसुसंबद्धो मुच्यते न कदाचन॥
वर्धन्ते विषयाः शश्वन्महाबंधनकारिणः।
विषयाक्रान्तमनसः स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः॥
सुखमिच्छति चेत्प्राज्ञो विधिवद्विषयांस्त्यजेत्।
विषवद्विषयानाहुर्विषयैर्यैर्निहन्यते ॥
जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात्।
विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तेन्द्रवारुणीम्॥

संसारमें बहुतसे कुसंग हैं, परंतु उनमें स्त्रीसंग सबसे बढ़कर है; क्योंकि मनुष्य सभी प्रकारके बन्धनोंसे छुटकारा प्राप्त कर सकता है, किंतु स्त्रीसंगसे उसका छुटकारा नहीं होता। लोहे तथा लकड़ीके पाशोंमें दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष उससे छुटकारा पा सकता है, किंतु स्त्री आदिके पाशमें बँधा हुआ कभी मुक्त नहीं होता है। [स्त्रीसंगसे] महाबन्धनकारी विषय निरन्तर बढ़ते रहते हैं, विषयोंसे आक्रान्त मनवालेको स्वप्नमें भी मोक्ष दुर्लभ है। यदि बुद्धिमान् पुरुष सुख प्राप्त करना चाहे, तो विषयोंको भलीभाँति छोड़ दे। जिन विषयोंसे प्राणी मारा जाता है, वे विषय विषके समान कहे गये हैं। मोक्षकी कामना करनेवाला पुरुष विषयी पुरुषोंके साथ वार्ता करनेमात्रसे क्षणभरमें ही पतित हो जाता है। आचार्योंने विषयवासनाको शर्करासे आलिप्त इन्द्रायन फलके समान (आपातमधुर) कहा है। [रुद्रसंहिता, पा०खं० २४। ६१—६५]

बकं साधुं वर्णयन्ति स मत्स्यानत्ति सर्वथा।
सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम्॥

बगुलेके श्वेत वर्ण शरीरको देखकर सब लोग उसे साधु कहते हैं। फिर भी क्या वह मछली नहीं खाता! साथमें रहनेवाला ही साथ रहनेवालोंका [वास्तविक] चरित्र जानता है। [रुद्रसंहिता, पा०खं० २५। ४३]

शिवेति मङ्गलं नाम मुखे यस्य निरन्तरम्।
तस्यैव दर्शनादन्ये पवित्राः सन्ति सर्वदा॥

जिसके मुखसे 'शिव' यह मंगल नाम निरन्तर निकलता है, उस पुरुषके दर्शनमात्रसे ही दूसरे प्राणी सदा पवित्र हो जाते हैं। [रुद्रसंहिता, पा०खं० २८। २०]

महागुणैर्गरिष्ठोऽपि महात्मापि गिरीन्द्रजे।
देहीति वचनात्सद्यः पुरुषो याति लाघवम्॥

हे गिरिजे! महान् गुणोंसे वरिष्ठ कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह 'दीजिये'—इस शब्दका उच्चारण करते ही लघुताको प्राप्त हो जाता है।

[रुद्रसंहिता, पा०खं० २९। २७]

परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे मता॥

परनिन्दा विनाशके लिये और आत्मनिन्दा यशके लिये कही गयी है। [रुद्रसंहिता, पा०खं० ३१। २३]

वचनं त्रिविधं शैल लौकिके वैदिकेऽपि च।
सर्वं जानाति शास्त्रज्ञो निर्मलज्ञानचक्षुषा॥
असत्यमहितं पश्चात्साम्प्रतं श्रुतिसुन्दरम्।
सुबुद्धिर्वक्ति शत्रुर्हि हितं नैव कदाचन॥
आदावप्रीतिजनकं परिणामे सुखावहम्।
दयालुर्धर्मशीलो हि बोधयत्येव बान्धवः॥
श्रुतिमात्रात्सुधातुल्यं सर्वकालसुखावहम्।
सत्यसारं हितकरं वचनं श्रेष्ठमीप्सितम्॥

हे शैल! लोक एवं वेदमें तीन प्रकारके वचन होते हैं, शास्त्रका ज्ञाता अपने निर्मल ज्ञानरूपी नेत्रसे उन सबको जानता है। जो वचन सुननेमें सुन्दर लगे, पर असत्य एवं अहितकारी हो, ऐसा वचन बुद्धिमान् शत्रु बोलते हैं। ऐसा वचन किसी प्रकार हितकारी नहीं होता। जो वचन आरम्भमें अप्रिय लगनेवाला हो, किंतु परिणाममें सुखकारी हो, ऐसा वचन दयालु तथा धर्मशील बन्धु ही कहता है। सुननेमें अमृतके समान, सभी कालमें

सुखदायक, सत्यका सारस्वरूप तथा हितकारक वचन श्रेष्ठ होता है। [रुद्रसंहिता, पा०खं० ३३। ३०—३३]

सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान्।

कोई भी किसीको सुख-दुःख देनेवाला नहीं है, पुरुष स्वयं अपने किये हुए कर्मका फल भोगता है।

[रुद्रसंहिता, पा०खं० ५१। २७]

मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूजयेत्सदा॥

माता, पिता, पुत्र, भाई तो स्त्रीको बहुत थोड़ा ही सुख देते हैं, परंतु पति तो अपरिमित सुख देता है। इसलिये स्त्रीको चाहिये कि वह पतिकी सदैव सेवा-पूजा करे। [रुद्रसंहिता, पा०खं० ५४। ५०]

सा धन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता।
धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता॥

इस लोकमें उसकी माता धन्य है और उसके पिता भी धन्य हैं तथा उसका वह पति भी धन्य है, जिसके घरमें देवीरूपा पतिव्रता स्त्रीका निवास होता है।

[रुद्रसंहिता, पा०खं० ५४। ५८]

न गङ्गया तया भेदो या नारी पतिदेवता।
उमाशिवसमौ साक्षात्तस्मात्तौ पूजयेद् बुधः॥

गंगा तथा पतिव्रता स्त्रीमें कोई भेद नहीं है। वे दोनों स्त्री-पुरुष शिव तथा पार्वतीके तुल्य हैं, अतः बुद्धिमान् पुरुषको उनका पूजन करना चाहिये।

[रुद्रसंहिता, पा०खं० ५४। ६९]

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यं फलं भवति निश्चितम्॥

माता-पिताका पूजनकर जो उनकी परिक्रमा कर लेता है, उसे पृथ्वीकी परिक्रमा करनेसे होनेवाला फल निश्चित रूपसे प्राप्त हो जाता है।

[रुद्रसंहिता, कु०खं० १९। ३९]

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
कूपे सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः॥

जिसके पास बुद्धि है, उसीके पास बल है। बुद्धिहीनको बल कहाँसे प्राप्त होगा? [बुद्धिके बलसे] किसी खरगोशने मदोन्मत्त सिंहको कुएँमें गिरा दिया था। [रुद्रसंहिता, कु०खं० १९। ५२]

संपीडनाय जगतो यदि स क्रियते तपः।
सफलं तद्गतं वेद्यं तस्मात्सुविहितं तपः॥

यदि जगत्को पीड़ा पहुँचानेके लिये तप किया जाय, तो उसका फल नष्ट समझना चाहिये। अतः उत्तम उद्देश्यके लिये किया गया तप सफल होता है।

[रुद्रसंहिता, यु०खं० १। ३९]

सर्वे तनुभृतस्तुल्या यदि बुद्ध्या विचार्यते।
इदं निश्चित्य केनापि नो हिंस्यः कोऽपि कुत्रचित्॥
धर्मो जीवदयातुल्यो न क्वापि जगतीतले।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या जीवदया नृभिः॥
एकस्मिन् रक्षिते जीवे त्रैलोक्यं रक्षितं भवेत्।
घातिते घातितं तद्वत्तस्माद्रक्षेन्न घातयेत्॥
न हिंसासदृशं पापं त्रैलोक्ये सचराचरे।
हिंसको नरकं गच्छेत्स्वर्गं गच्छेदहिंसकः॥
भीतेभ्यश्चाभयं देयं व्याधितेभ्यस्तथौषधम्।
देया विद्यार्थिनां विद्या देयमन्नं क्षुधातुरे॥

यदि बुद्धिसे विचार किया जाय, तो सभी शरीरधारी समान हैं—ऐसा निश्चय करके किसीको कभी किसी भी जीवकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। पृथ्वीतलपर जीवोंपर दया करनेके समान कोई दूसरा धर्म नहीं है, अतः ऐसा जानकर सभी प्रकारके प्रयत्नोंद्वारा मनुष्योंको जीवोंपर दया करनी चाहिये। जैसे एक जीवकी भी रक्षा करनेसे तीनों लोकोंकी रक्षा हो जाती है, उसी प्रकार एक जीवके मारनेसे त्रैलोक्यवधका पाप लगता है, इसलिये जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये, हिंसा नहीं। इस चराचर जगत्में हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। हिंसक नरकमें जाता है तथा अहिंसक स्वर्गको जाता है। भयभीत लोगोंको अभय प्रदान करना चाहिये, रोगियोंको औषधि देनी चाहिये, विद्यार्थियोंको विद्या देनी चाहिये तथा भूखोंको अन्न प्रदान करना चाहिये।

[रुद्रसंहिता, यु०खं० ५। १५—१७, २०, २३]

श्रीशिवमहापुराण [पूर्वार्ध]—एक सिंहावलोकन

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥

कल्याण एवं सुखके मूल स्रोत भगवान् सदाशिवको नमस्कार है। कल्याणका विस्तार करनेवाले तथा सुखका विस्तार करनेवाले भगवान् शिवको नमस्कार है। मंगलस्वरूप और मंगलमयताकी सीमा भगवान् शिवको नमस्कार है।

पुराणोंमें शिवमहापुराणका अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह चौथा महापुराण है। इस ग्रन्थरत्नके आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र भूतभावन भगवान् सदाशिवकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणमें परब्रह्म परमात्माकी सदाशिवरूपमें उपासनाका वर्णन है। भगवान् सदाशिवकी लीलाएँ अनन्त हैं, उनकी लीला-कथाओं तथा उनकी महिमाका वर्णन ही इस ग्रन्थका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, जिसके सम्यक् अवगाहनसे साधकों-भक्तोंका मन महादेवके पदपद्मपरागका भ्रमर बनकर मुक्तिमार्गका पथिक बन जाता है।

माहात्म्य

एक बार श्रीशौनकजीने महाज्ञानी सूतजीसे निवेदन किया—हे सूतजी! सदाचार, भगवद्भक्ति और विवेककी वृद्धि कैसे होती है तथा साधु पुरुष किस प्रकार अपने काम, क्रोध, लोभ आदि मानसिक विकारोंका निवारण करते हैं? आप हमें ऐसा कोई शाश्वत साधन बताइये, जो कल्याणकारी एवं परम मंगलकारी हो और वह साधन ऐसा हो, जिसके अनुष्ठानसे शीघ्र ही अन्तःकरणकी विशेष शुद्धि हो जाय तथा निर्मल चित्तवाले पुरुषको सदाके लिये शिवपदकी प्राप्ति हो जाय। सूतजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ शौनक! सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तसे समन्वित, भक्ति आदिको बढ़ानेवाला तथा भगवान् शिवको सन्तुष्ट करनेवाला उत्तम शिवपुराण कालरूपी सर्पसे प्राप्त महात्रासका भी विनाश करनेवाला है। हे मुने! पूर्वकालमें शिवजीने इसे कहा था, गुरुदेव व्यासजीने सनत्कुमार मुनिका उपदेश पाकर कलियुगके प्राणियोंके कल्याणके लिये बड़े आदरसे संक्षेपमें इस पुराणका प्रतिपादन किया। इसे भगवान् शिवका वाङ्मय स्वरूप समझना चाहिये तथा सब प्रकारसे इसका सेवन करना चाहिये।

इसके पठन, पाठन और श्रवणसे शिवभक्ति पाकर मनुष्य शीघ्र ही शिवपदको प्राप्त कर लेता है। इस शिवपुराणको सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा बड़े-बड़े उत्कृष्ट भोगोंका भोग करके अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है।

शिवपुराणका श्रवण और भगवान् शंकरके नामका संकीर्तन—दोनों ही मनुष्योंको कल्पवृक्षके समान सम्यक् फल देनेवाले हैं, इसमें सन्देह नहीं है—

पुराणश्रवणं शम्भोर्नामसङ्कीर्तनं तथा।
कल्पद्रुमफलं सम्यङ् मनुष्याणां न संशयः॥

यह शिवपुराण चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त है, इसमें सात संहिताएँ हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे भलीभाँति सम्पन्न हो बड़े आदरसे इसका श्रवण करे। जिस घरमें इस शिवपुराणकी कथा होती है, वह घर तीर्थरूप ही है, उसमें निवास करनेवालोंके पाप यह नष्ट कर देता है।

सूतजी शिवपुराणकी महिमाका वर्णन करते हुए पुराने इतिहासका उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। पहला उदाहरण देवराज नामके एक ब्राह्मणका है, जो वेश्यागामी एवं दुष्ट था तथा दूसरा उदाहरण चंचुला नामकी एक स्त्री एवं बिन्दुग नामके उसके पतिका है। ये दोनों ही दुरात्मा और महापापी थे, परंतु शिवपुराणकी कथाके श्रवणके प्रभावसे इन सबका उद्धार हो जाता है और इन्हें शिवपदकी प्राप्ति हो जाती है।

शिवपुराणके श्रवणकी विधि

शौनकजीके पूछनेपर सूतजी शिवपुराणके श्रवणकी

विधिका वर्णन करते हुए कहते हैं—

शिवपुराणको सुननेके प्रायः सभी अधिकारी हैं, शिव-उपासकके अतिरिक्त गणेशभक्त, शाक्त, सूर्योपासक, वैष्णव और इसके साथ ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णोंके स्त्री-पुरुष एवं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी—ये सभी सकाम भाव अथवा निष्काम भावसे कथा-श्रवण कर सकते हैं, किंतु जो लोग विष्णु और शिवमें भेददृष्टि रखते हैं, शिवभक्तिसे रहित हैं; पाखण्डी, हिंसक तथा दुष्ट हैं, नास्तिक हैं; परस्त्री, पराया धन तथा देवसम्पत्तिके हरणके लिये लुब्ध रहते हैं—वे कथा-श्रवणके अधिकारी नहीं हैं। श्रोताको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करे, पृथ्वीपर सोये, सत्य बोले, जितेन्द्रिय रहे तथा कथाकी समाप्तितक पत्तलपर भोजन करे तथा लोभ एवं हिंसा आदिसे रहित हो और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष, पाखण्ड एवं अहंकारको भी छोड़ दे। श्रोताको सदा विनयशील, सरलचित्त, पवित्र, दयालु, कम बोलनेवाला तथा उदार मनवाला होना चाहिये।

कथावाचकके लिये संयमी, शास्त्रज्ञ, शिव-आराधनामें तत्पर, दयालु, निर्लोभी, दक्ष, धैर्यशाली तथा वक्तृत्व-शक्तिसे सम्पन्न होना उत्तम माना गया है। व्यासके आसनपर बैठा हुआ कथावाचक ब्राह्मण जबतक कथा समाप्त न हो जाय, तबतक किसीको प्रणाम न करे।

इस तरह विधि-विधानका पालन करनेपर श्रीसम्पन्न शिवपुराण सम्पूर्ण फलको देनेवाला तथा भोग एवं मोक्षका दाता होता है। हे मुने! मैंने आपको शिवपुराणका यह माहात्म्य जो सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाला है, बता दिया। जो सदा भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिवके गुणोंकी स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कथा सुनते हैं, इस जीव-जगत्‌में उन्हींका जन्म लेना सफल है। वे निश्चय ही संसार-सागरसे पार हो जाते हैं।

विद्येश्वरसंहिता

व्यासजी कहते हैं—जो धर्मका महान् क्षेत्र है, जहाँ गंगा-यमुनाका संगम हुआ है, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस परम पुण्यमय प्रयागमें महात्मा मुनियोंने एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया। उस ज्ञानयज्ञका तथा मुनियोंका दर्शन करनेके लिये व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ पधारे। वहाँ उपस्थित महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक उनसे निवेदन किया—हे सूतजी! इस समय हमें एक ही बात सुननेकी इच्छा है, आपका अनुग्रह हो तो गोपनीय होनेपर भी आप उस विषयका वर्णन करें।

घोर कलियुग आनेपर मनुष्य पुण्यकर्मसे दूर रहेंगे, दुराचारमें फँस जायेंगे, सब-के-सब सत्यभाषणसे विमुख हो जायेंगे, दूसरोंकी निन्दामें तत्पर होंगे, पराये धनको हड़प लेनेकी इच्छा करेंगे, उनका मन परायी स्त्रियोंमें आसक्त होगा तथा वे दूसरे प्राणियोंकी हिंसा किया करेंगे। वे अपने शरीरको ही आत्मा समझेंगे। वे मूढ़ नास्तिक तथा पशुबुद्धि रखनेवाले होंगे। माता-पितासे विमुख होंगे तथा वे कामवश स्त्रियोंकी सेवामें लगे रहेंगे। वे अपनेको श्रेष्ठ कुलवाला मानकर चारों वर्णोंसे विपरीत व्यवहार करनेवाले, सभी वर्णोंको भ्रष्ट करनेवाले होंगे। कलियुगकी स्त्रियाँ प्रायः सदाचारसे भ्रष्ट होंगी, पतिका अपमान करनेवाली होंगी। सास-ससुरसे द्रोह करनेवाली होंगी, किसीसे भय नहीं मानेंगी।

हे सूतजी! इस तरह जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है और जिन्होंने अपने धर्मका त्याग कर दिया है, ऐसे लोगोंको इहलोक और परलोकमें उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी—इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है। सूतजी बोले—हे साधु महात्माओ! आप सबने तीनों लोकोंका हित करनेवाली अच्छी बात पूछी है, मैं इस विषयका वर्णन करता हूँ, आप लोग आदरपूर्वक सुनें।

कल्याणप्राप्तिका उत्तम साधन—शिवपुराण

सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, वह वेदान्तका सार-सर्वस्व है तथा वक्ता और श्रोताका समस्त पापोंसे उद्धार करनेवाला है। वह परलोकमें परमार्थ वस्तुको देनेवाला है, कलिकी कल्मषराशिका वह विनाशक है। उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है। हे ब्राह्मणो! धर्म,

अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले उस पुराणका प्रभाव विस्तारको प्राप्त हो रहा है।

हे विप्रवरो! उस सर्वोत्तम शिवपुराणके अध्ययन एवं श्रवणमात्रसे वे कलियुगके पापासक्त जीव श्रेष्ठतम गतिको प्राप्त हो सकेंगे। एक बार महर्षिगण परस्पर वाद-विवादमें फँस गये, तब वे सब-के-सब अपनी शंकाके समाधानके लिये सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके पास गये। मुनिगणोंने कहा—हे भगवन्! परम साध्य क्या है और उसका परम साधन क्या है तथा उसका साधक कैसा होता है?

ब्रह्माजी कहते हैं—शिवपदकी प्राप्ति ही साध्य है, उनकी सेवा ही साधन है तथा उनके प्रसादसे जो नित्य, नैमित्तिक आदि फलोंके प्रति निःस्पृह होता है, वही साधक है। भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन और मनन—ये तीनों महत्तर साधन कहे गये हैं, ये तीनों ही वेदसम्मत हैं।

सूतजी कहते हैं—हे शौनक! जो श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीनोंके अनुष्ठानमें समर्थ न हो, वह भगवान् शंकरके लिंग या मूर्तिकी स्थापनाकर नित्य उसकी पूजा करके संसार-सागरसे पार हो सकता है।

ऋषिगणोंके यह पूछनेपर कि मूर्तिमें ही सर्वत्र देवताओंकी पूजा होती है, परंतु भगवान् शिवकी पूजा सब जगह मूर्तिमें और लिंगमें क्यों की जाती है?

सूतजी कहते हैं—एकमात्र भगवान् शिव ही ब्रह्मरूप होनेके कारण निराकार कहे गये हैं। रूपवान् होनेके कारण साकार भी हैं। निराकार होनेके कारण ही उनकी पूजाका आधारभूत लिंग भी निराकार ही प्राप्त हुआ है अर्थात् शिवलिंग शिवके निराकार स्वरूपका प्रतीक है।

भगवान् शिवके ज्योतिर्लिंगका प्राकट्य

एक समय शेषशायी भगवान् विष्णु अपनी पराशक्ति तथा पार्षदोंसे घिरे हुए शयन कर रहे थे, उसी समय ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी वहाँ पधारे तथा विष्णुसे वार्ता करते हुए वाद-विवाद करने लगे। वाद-विवाद इतना बढ़ गया कि उसने भयंकर युद्धका रूप धारण कर लिया। उस भयंकर युद्धको देखकर देवतागण भयभीत होकर भगवान् शंकरके पास कैलास पहुँचे और उन्हें अवगत कराया।

निराकार भगवान् शंकर इस भयंकर युद्धको देखकर एक विशाल अग्निस्तम्भके रूपमें उन दोनोंके बीचमें प्रकट हो गये। इस अद्भुत स्तम्भको देखकर ब्रह्मा, विष्णु तथा अन्य सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। ब्रह्मा-विष्णु दोनोंने इसकी ऊँचाई तथा जड़की सीमा देखनेका विचार किया। विष्णु शूकरका रूप धारणकर इसकी जड़की खोजमें नीचेकी ओर चले। इसी प्रकार ब्रह्मा भी हंसका रूप धारणकर उसका अन्त खोजनेके लिये ऊपरकी ओर चल पड़े। पाताललोकको खोदकर बहुत दूरतक जानेपर भी विष्णुको उस अग्निस्तम्भका आधार नहीं मिला। वे थक-हारकर रणभूमिमें वापस आ गये। दूसरी ओर ब्रह्माजीने आकाशमार्गसे जाते हुए मार्गमें एक अद्भुत केतकी (केवड़े)-के पुष्पको गिरते हुए देखा। उस केतकी पुष्पने ब्रह्माजीसे कहा—इस स्तम्भके आदिका कहीं पता नहीं है, आप उसे देखनेकी आशा छोड़ दें। ब्रह्माजीने केतकी पुष्पसे निवेदन किया कि तुम मेरे साथ चलकर विष्णुके समक्ष यह कह देना कि मैंने इस स्तम्भका अन्त देख लिया है, मैं इसका साक्षी हूँ। आपत्कालमें मिथ्याभाषणका दोष नहीं है। केतकीने वैसा ही किया।

भगवान् शंकर तो अन्तर्यामी थे ही, उन्होंने विष्णुकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर देवताओंके समक्ष उन्हें अपनी समानता प्रदान की तथा ब्रह्मासे कहा—हे ब्रह्मन्! तुमने असत्यका आश्रय लिया है, इसलिये संसारमें तुम्हारा सत्कार नहीं होगा और तुम्हारे मन्दिर नहीं बनेंगे तथा पूजनोत्सव आदि भी नहीं होंगे।

भगवान् शिवने झूठी गवाही देनेवाले कपटी केतकीसे कहा—तुम दुष्ट हो, मेरी पूजामें उपस्थित तुम्हारा फूल मुझे प्रिय नहीं होगा। तदनन्तर भगवान् शंकर ब्रह्मा, विष्णु तथा केतकी पुष्पपर अनुग्रह करके सभी देवताओंसे स्तुत होकर सभामें सुशोभित हुए।

पंचाक्षरमन्त्रकी महिमा

आगेके अध्यायोंमें भगवान् सदाशिवने प्रणव एवं पंचाक्षर मन्त्रकी उत्पत्ति और महिमाका वर्णन किया है।

सबसे पहले भगवान् शिवके मुखसे ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ। यह मन्त्र शिवस्वरूप ही है। इसी प्रणवसे पंचाक्षर मन्त्रकी उत्पत्ति हुई है। प्रणवसे युक्त पंचाक्षर मन्त्र **(ॐ नमः शिवाय)**-से सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। इस मूल मन्त्रसे भोग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त होते हैं।

इसके अनन्तर सूतजी शिवलिंगकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजनकी विधि तथा शिवपदकी प्राप्ति करानेवाले सत्कर्मोंका वर्णन करते हैं। आगे मोक्षदायक काशी आदि मुक्तिक्षेत्रोंका वर्णन, विशेष कालमें विभिन्न नदियोंके जलमें स्नानके उत्तम फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी भी दी गयी है। सदाचार, शौचाचार, स्नान, भस्म-धारण, सन्ध्यावन्दन, प्रणवजप, गायत्रीजप, दान, न्यायतः धनोपार्जन तथा अग्निहोत्र आदिकी विधि एवं उसकी महिमाका वर्णन हुआ है।

सूतजी कहते हैं कि मुमुक्षु व्यक्तिको सदा ज्ञानका ही अभ्यास करना चाहिये। धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे भोग सुलभ होता है और उस भोगसे वैराग्यकी प्राप्ति होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित धनद्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। ईश्वरार्पण बुद्धिसे यज्ञ-दान आदि कर्म करके मनुष्य मोक्षफलका भागी होता है।

शिवसपर्याका अनन्त फल

भगवती उमा जगत्की माता हैं और भगवान् सदाशिव जगत्के पिता। जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्रपर इन दोनों माता-पिताकी कृपा नित्य अधिकाधिक बढ़ती रहती है। वे उसे अपना आन्तरिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, अतः आन्तरिक आनन्दकी प्राप्तिके लिये शिवलिंगको माता-पिताका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भक्तिपूर्वक की गयी शिवपूजा मनुष्योंको पुनर्जन्मसे छुटकारा दिलाती है। शिवभक्तकी पूजासे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिवभक्त साक्षात् शिवस्वरूप ही है, अतः उसकी सेवामें तत्पर रहना चाहिये।

भगवान् शिवको अपनी आत्मा मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये। भगवान् शिवकी प्रदक्षिणा, नमस्कार और षोडशोपचार पूजन अत्यन्त फलदायी होता है। इस पृथ्वीपर ऐसा कोई पाप नहीं है, जो शिव-प्रदक्षिणासे नष्ट न हो सके। इसलिये प्रदक्षिणाका आश्रय लेकर सभी पापोंका नाश कर देना चाहिये।

लिंगार्चनका माहात्म्य

इसके अनन्तर पार्थिव शिवलिंगके पूजनका माहात्म्य, पार्थिव लिंगके निर्माणकी विधि और वेदमन्त्रोंद्वारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त विधिका वर्णन किया गया है।

चारों वेदोंमें लिंगार्चनसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है। केवल शिवलिंगकी पूजा होनेपर समस्त चराचर जगत्की पूजा हो जाती है।

रुद्राक्ष-धारणसे एक चौथाई, विभूति (भस्म)-धारणसे आधा, मन्त्रजपसे तीन चौथाई और पूजासे पूर्ण फल प्राप्त होता है।

सूतजी कहते हैं—प्रिय मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने शिवकी आज्ञाके अनुसार उत्तम मुक्ति देनेवाली विद्येश्वरसंहिता आपके समक्ष पूर्णरूपसे कह दी।

रुद्रसंहिता (सृष्टिखण्ड)

व्यासजी कहते हैं—एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले शौनक आदि ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—हे सूतजी! हमने सुना है कि भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, वे महान् दयालु हैं, इसलिये वे अपने भक्तोंका कष्ट नहीं देख सकते।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता शिवके ही अंशसे उत्पन्न हुए हैं। उनके प्राकट्यकी कथा तथा उनके विशेष चरित्रोंका वर्णन कीजिये। प्रभो! आप उमाके आविर्भाव तथा विवाहकी भी कथा कहें; विशेषतः उनके गृहस्थधर्मका तथा अन्य लीलाओंका भी वर्णन करें। निष्पाप सूतजी! हमारे प्रश्नके उत्तरमें ये सब तथा दूसरी बातें भी अवश्य कहनी चाहिये। सूतजी

बोले—हे मुनीश्वरो! जैसे आप लोग पूछ रहे हैं, उसी प्रकार नारदजीने शिवरूपी भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर अपने पिता ब्रह्माजीसे पूछा था।

ऋषिगणोंने सूतजीसे पुनः पूछा कि हे प्रभो! ब्रह्मा और नारदका यह महान् सुख देनेवाला संवाद कब हुआ था, जिसमें संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाली शिवलीला वर्णित है, कृपाकर इसका वर्णन करें।

नारदमोहकी कथा

सूतजी बोले—एक समयकी बात है, नारदजीने तपस्याके लिये मनमें विचार किया तथा हिमालयकी एक सुन्दर गुफामें तपस्यामें स्थित हो गये। उसी समय उनकी तपस्या देखकर देवराज इन्द्र संतप्त होने लगे और उन्होंने कामदेवसे वहाँ जाकर नारदजीकी तपस्याको भंग करनेका आदेश दिया। कामदेवने अपनी सम्पूर्ण कलाओंसे उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेका प्रयत्न किया, परंतु वे सफल नहीं हुए। महादेवजीके अनुग्रहसे कामदेवका गर्व चूर हो गया। वास्तवमें महादेवजीकी कृपासे ही नारदमुनिपर कामदेवका कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

पहले उसी आश्रममें भगवान् शिवने उत्तम तपस्या की थी और वहीं उन्होंने कामदेवको भस्म कर डाला था। उस समय रतिकी प्रार्थना एवं देवताओंकी याचना करनेपर भगवान् शंकरने कुछ समय व्यतीत होनेके बाद कामदेवको जीवित होनेका वरदान दिया था।

नारदजीको यह गर्व हो गया कि कामदेवपर मेरी विजय हुई। भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें यथार्थ बातका ज्ञान नहीं रहा। वे तत्काल कैलास पर्वतपर गये, वहाँ रुद्रदेवको उन्होंने कामदेवपर अपनी विजयका वृत्तान्त सुनाया। यह सब सुनकर भगवान् शंकरने नारदजीकी प्रशंसा करते हुए भगवान् विष्णुके सामने इसकी चर्चा कदापि न करनेकी बात कही, परंतु नारदजीके चित्तमें मदका अंकुर जम गया था। इसलिये नारदजीने वहाँसे विष्णुलोक जाकर भगवान् विष्णुसे अपना सारा वृत्तान्त अभिमानके साथ कह सुनाया। नारदमुनिका अहंकारयुक्त वचन सुनकर भगवान् विष्णुने यथार्थ बातें पूर्ण रूपसे जान लीं।

नारदजीकी प्रशंसा करते हुए भगवान् विष्णुने कहा—आप तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं तथा सदा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त रहते हैं, फिर आपमें काम-विकार कैसे आ सकता है? विष्णुजीकी बात सुनकर नारदजी प्रसन्न होकर वहाँसे चले गये।

नारदजीके आगे जानेपर मार्गमें श्रीहरिने एक सुन्दर नगरकी रचना की, जो अत्यन्त मनोहर एवं वैकुण्ठसे अधिक रमणीय था, जिसमें शीलनिधि नामके एक राजाकी देवकन्याके समान सुन्दरी कन्या थी। नारदमुनि उस नगरको देखकर मोहित हो गये और शीलनिधिके द्वारपर गये। महाराज शीलनिधिने श्रीमती नामक अपनी सुन्दरी कन्याको वहाँ बुलाकर नारदजीके चरणोंमें प्रणाम करवाया और निवेदन किया—यह मेरी पुत्री है, अपने विवाहके निमित्त स्वयंवरमें जानेवाली है। महर्षे! आप इसका भाग्य बताइये। नारदजी उस कन्याके शुभ लक्षणोंको देखकर अत्यधिक प्रभावित हुए तथा कन्याके पिता राजासे उसके सुख-सौभाग्य तथा गुणोंकी विशेष सराहना करते हुए वहाँसे विदा हो गये।

नारदजीके मनमें यह भाव आया कि किस प्रकार इस कन्यासे मेरा विवाह हो। वे तत्काल भगवान् विष्णुके पास जा पहुँचे और एकान्तमें विष्णुसे अपनी इच्छा व्यक्त की तथा उनसे यह प्रार्थना की कि आप अपना स्वरूप मुझे दे दें, जिससे वह कन्या मेरा वरण कर ले। भगवान् विष्णु बोले—मैं पूरी तरह तुम्हारा हित-साधन करूँगा। यह कहकर भगवान् विष्णुने नारदमुनिको मुख तो वानरका दे दिया तथा शेष अंगोंमें अपना-सा स्वरूप देकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये। इस रहस्यसे अनभिज्ञ नारदजी स्वयंवरमें पहुँचे। सुलक्षणा राजकुमारी स्वयंवरके मध्य भागमें खड़ी होकर अपने मनके अनुरूप वरका अन्वेषण करने लगी। नारदका वानर-सा मुख देखकर वह कुपित हो गयी और उनकी ओरसे दृष्टि हटाकर अपने मनोवांछित वरको ढूँढ़ने लगी। उसी समय राजाका वेष धारणकर विष्णु वहाँ आ पहुँचे। तब भगवान् विष्णुके गलेमें वरमाला डालकर वह उनके साथ अन्तर्धान हो गयी।

नारदजीकी इस मुखाकृतिको स्वयंवरमें और किसीने तो नहीं देखा, शिवजीके दो पार्षद वहाँ उपस्थित थे; उन्होंने यह सब देखकर नारदजीका उपहास किया तथा उन्हें अपना प्रतिबिम्ब देखनेके लिये कहा। तब नारदजीको वास्तविकताका पता लगा तथा वे क्रोधसे व्याकुल हो गये। उन दोनों शिवगणोंको उन्होंने राक्षस होनेका शाप दिया। इसके अनन्तर विष्णुलोक जाकर मायासे मोहित नारद विष्णुको शाप देते हुए बोले—तुमने स्त्रीके लिये मुझे व्याकुल किया है, तुम भी मनुष्य हो जाओ और स्त्रीके वियोगका दुःख भोगो। तुमने जिन वानरोंके समान मेरा मुख बनाया था, वे ही उस समय तुम्हारे सहायक हों।

कुछ ही क्षणोंमें भगवान् शंकरने अपनी विश्व-मोहिनी मायाको खींच लिया। उस मायाके तिरोहित होते ही नारदजी शुद्ध बुद्धिसे युक्त हो गये और उनकी सारी व्याकुलता जाती रही। श्रीनारदजी भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े और अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगे।

भगवान् विष्णुद्वारा नारदजीको शिवोपासनाका उपदेश

भगवान् विष्णु बोले—तात! खेद न करो, भगवान् शिव तुम्हारा कल्याण करेंगे। तुमने मदसे मोहित होकर जो भगवान् शिवकी बात नहीं मानी थी, उसी अपराधका भगवान् शिवने तुम्हें ऐसा फल दिया है। सबके स्वामी परमेश्वर शंकर ही परब्रह्म परमात्मा हैं, उन्हींका सच्चिदानन्द स्वरूप है। वे ही अपनी मायाको लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन रूपोंमें प्रकट होते हैं। अपने सारे संशयोंको त्यागकर अनन्य भावसे शिवके शतनाम-स्तोत्रका पाठ करो तथा निरन्तर उन्हींकी उपासना तथा उन्हींका भजन करो। भगवान् शंकरकी उपासनासे सभी प्रकारके पातक एवं दोष समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार प्रसन्नचित्त भगवान् विष्णु नारदमुनिको उपदेश देकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

इसके अनन्तर श्रीनारदजी भी अत्यन्त आनन्दित हो शिवतीर्थोंका दर्शन करते हुए भू-मण्डलमें विचरने लगे। अन्तमें वे सबके ऊपर विराजमान शिवस्वरूपिणी काशीपुरीमें पहुँचे। काशीपुरीका दर्शन करके नारदजी कृतार्थ हो गये। उसके बाद ब्रह्मलोक पहुँचकर शिवतत्त्वका विशेष रूपसे ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे नारदजीने ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और कहा कि जगत्प्रभो! आपकी कृपासे मैंने भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्यका ज्ञान प्राप्त किया, परंतु शिवतत्त्वका ज्ञान मुझे अभीतक नहीं हुआ है। मैं भगवान् शंकरकी पूजा-विधिको भी नहीं जानता। अतः प्रभो! आप भगवान् शिवके विविध चरितोंको तथा उनके स्वरूपतत्त्व, प्राकट्य, विवाह, गृहस्थ-धर्म सब मुझे बताइये। कार्तिकेयके जन्मकी कथा भी मुझे सुनाइये।

शिवतत्त्वका निरूपण

ब्रह्माजीने नारदसे शिवतत्त्वका वर्णन करते हुए कहा—शिवतत्त्वका स्वरूप बड़ा उत्कृष्ट तथा अद्भुत है, जिस समय प्रलयकाल उपस्थित हुआ, उस समय समस्त चराचर जगत् नष्ट हो गया। सर्वत्र केवल अन्धकार ही अन्धकार था। इस प्रकार सब ओर निरन्तर सूचीभेद्य घोर अन्धकारमें उस समय **'तत्सत् ब्रह्म'**—इस श्रुतिमें जो **'सत्'** सुना जाता है, एकमात्र वही शेष था, जिसे योगीजन अपने हृदयाकाशके अन्दर निरन्तर देखते हैं। कुछ कालके बाद (सृष्टिका समय आनेपर) परमात्माको द्वितीयकी इच्छा प्रकट हुई—उसके भीतर एक-से अनेक होनेका संकल्प उदित हुआ। तब उस निराकार परमात्माने अपनी लीलाशक्तिसे अपने लिये मूर्ति (आकार)-की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य गुणोंसे सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी हुई। जो मूर्तिरहित परब्रह्म है, उसीकी मूर्ति (चिन्मय आकार) भगवान् सदाशिव हैं। सभी विद्वान् उन्हींको ईश्वर कहते हैं। उस समय स्वेच्छया विहार करनेवाले उन सदाशिवने अपने विग्रहसे एक स्वरूपभूता शक्तिकी सृष्टि की, जो उनके अपने श्रीअंगसे कभी अलग होनेवाली नहीं थी।

अविमुक्तक्षेत्र काशी

उन साम्बसदाशिव ब्रह्मने एक ही समय शक्तिके साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्रका निर्माण किया। इस क्षेत्रको ही काशी कहते हैं। यह परम निर्वाण या मोक्षका

स्थान है, जो सबके ऊपर विराजमान है।

वे प्रिया-प्रियतमरूप शक्ति और शिव जो परमानन्द स्वरूप हैं, उस मनोरम क्षेत्र काशीपुरीमें नित्य निवास करते हैं।

हे मुने! शिव और शिवाने प्रलयकालमें भी कभी उस क्षेत्रको अपने सान्निध्यसे मुक्त नहीं किया। इसी लिये विद्वान् पुरुष उसे 'अविमुक्तक्षेत्र' भी कहते हैं। यह क्षेत्र आनन्दका हेतु है, इसलिये पिनाकधारी भगवान् शिवने उसका नाम पहले 'आनन्दवन' रखा था।

सदाशिवसे नारायणका प्राकट्य

हे देवर्षे! एक समय उस आनन्दवनमें रमण करते हुए शिवा और शिवके मनमें यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुषकी भी सृष्टि करनी चाहिये। जिसपर सृष्टि-संचालनका महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशीमें रहकर इच्छानुसार विचरण करें। वही पुरुष हमारे अनुग्रहसे सदा सबकी सृष्टि करे, वही पालन करे और अन्तमें वही सबका संहार भी करे।

ऐसा निश्चय करके शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिवने अपने वाम भागके दसवें अंगपर अमृत मल दिया। वहाँ उसी समय एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दर और शान्त था। उसकी कान्ति इन्द्रनीलमणिके समान श्याम थी। उसके श्रीअंगोंपर स्वर्णसदृश कान्तिवाले दो रेशमी पीताम्बर शोभा दे रहे थे। शिवजीने 'विष्णु' नामसे उसे विख्यात किया तथा अपने श्वासमार्गसे उन्हें वेदोंका ज्ञान प्रदान किया।

इसके अनन्तर भगवान् विष्णुने दीर्घकालतक तपस्या की। तपस्याके परिश्रमसे विष्णुके अंगोंसे अनेक प्रकारकी जलधाराएँ निकलने लगीं। नार अर्थात् जलमें शयन करनेके कारण ही उनका नारायण—यह श्रुतिसम्मत नाम प्रसिद्ध हुआ।

सदाशिवके दक्षिणांगसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव

ब्रह्माजी कहते हैं—हे देवर्षे! जब नारायणदेव जलमें शयन करने लगे, उस समय उनकी नाभिसे भगवान् शंकरकी इच्छासे सहसा एक विशाल तथा उत्तम कमल प्रकट हुआ, जो बहुत बड़ा था, तत्पश्चात् परमेश्वर साम्बसदाशिवने पूर्ववत् परम प्रयत्न करके मुझे अपने दाहिने अंगसे उत्पन्न किया तथा मुझे तुरन्त ही अपनी मायासे मोहित करके नारायणदेवके नाभिकमलमें डाल दिया और लीलापूर्वक मुझे वहाँसे प्रकट किया। इस प्रकार उस कमलसे पुत्रके रूपमें मुझ हिरण्यगर्भका जन्म हुआ। मेरे चार मुख हुए और शरीरकी कान्ति लाल हुई।

हे मुने! उस समय भगवान् शिवकी इच्छासे परम मंगलमयी तथा उत्तम आकाशवाणी प्रकट हुई। उस वाणीने कहा—तप करो। उस आकाशवाणीको सुनकर अपने जन्मदाता पिताका दर्शन करनेके लिये उस समय पुनः बारह वर्षोंतक मैंने घोर तपस्या की। तब मुझपर अनुग्रह करनेके लिये ही चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित भगवान् विष्णु वहाँ सहसा प्रकट हो गये। तदनन्तर अपनी श्रेष्ठताको लेकर हम दोनोंमें विवाद होने लगा। इसे शान्त करनेके लिये हम दोनोंके सामने एक लिंग प्रकट हुआ। मैं और विष्णु दोनों उन ज्योतिर्मय शिवको प्रणामकर बार-बार कहने लगे—हे महाप्रभो! हम आपके स्वरूपको नहीं जानते; आप जो हैं, वही हैं। आपको हमारा नमस्कार है। आप शीघ्र ही हमें अपने स्वरूपका दर्शन करायें।

भगवान् शिवके शब्दमय शरीरका वर्णन

भगवान् शंकर हम दोनोंपर दयालु हो गये। उस समय वहाँ उन सुरश्रेष्ठसे 'ॐ ॐ' ऐसा शब्दरूप नाद प्रकट हुआ, जो स्पष्ट रूपसे सुनायी दे रहा था। उस परब्रह्म परमात्मा शिवका वाचक एकाक्षर प्रणव ही है। परब्रह्मको इस एकाक्षरके द्वारा ही जाना जा सकता है।

इसी बीचमें विश्वपालक भगवान् विष्णुने मेरे साथ एक और भी अद्भुत और सुन्दर रूपको देखा। हे मुने! वह रूप पाँच मुखों और दस भुजाओंसे अलंकृत था, उसकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी। उस परम उदार महापुरुषके उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त उत्कृष्ट रूपका दर्शन करके मेरे साथ श्रीहरि कृतार्थ हो गये। तत्पश्चात् भगवान् महेश प्रसन्न होकर दिव्य शब्दमय रूपको प्रकट करके खड़े हो गये।

उसी समय सम्पूर्ण धर्म तथा अर्थका साधक बुद्धिस्वरूप, अत्यन्त हितकारक गायत्री महामन्त्र लक्षित हुआ। आठ कलाओंसे युक्त पंचाक्षर मन्त्र (**नमः शिवाय**) तथा मृत्युंजय मन्त्र, चिन्तामणि मन्त्र और दक्षिणामूर्ति मन्त्रको भगवान् विष्णुने देखा। इसके बाद भगवान् विष्णुने शंकरको '**तत्त्वमसि**' वही तुम हो—यह महावाक्य कहा। इस प्रकार उक्त पंचमन्त्रोंको प्राप्त करके वे भगवान् श्रीहरि उनका जप करने लगे। तदनन्तर उन्होंने शिवकी स्तुति की।

विष्णुके द्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर प्रसन्न हुए और उमादेवीके साथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये।

भगवान् विष्णुने पूछा—हे देव! आप कैसे प्रसन्न होते हैं? आपकी पूजा किस प्रकार की जाय, हम लोगोंको क्या करना चाहिये? कौन-सा कार्य अच्छा है और कौन बुरा है?—इन सब बातोंको हम दोनोंके कल्याणहेतु आप प्रसन्न होकर बतानेकी कृपा करें।

भगवान् शिव प्रसन्न होकर हम दोनोंसे कहने लगे—मेरा लिंग सदा पूज्य है और सदा ही ध्येय है। लिंगरूपसे पूजा गया मैं प्रसन्न होकर सभी लोगोंको अनेक प्रकारके फल तो दूँगा ही साथ ही उनकी अभिलाषाएँ भी पूरी करूँगा। आगे शंकरजीने कहा—मेरी पार्थिव मूर्ति बनाकर आप दोनों अनेक प्रकारसे उसकी पूजा करें। ऐसा करनेपर आपलोगोंको सुख प्राप्त होगा।

त्रिदेवोंके एकत्वका प्रतिपादन

हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञाका पालन करते हुए जगत्की सृष्टि कीजिये और हे विष्णु! आप इस चराचर जगत्का पालन कीजिये।

आगे भगवान् शिव कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप हमारे इस शरीरसे लोकमें प्रकट होगा, जो नामसे रुद्र कहलायेगा। मेरे अंशसे प्रकट हुए रुद्रकी सामर्थ्य मुझसे कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वही यह रुद्र है। पूजाकी दृष्टिसे भी मुझमें और उसमें कोई अन्तर नहीं है। यह मेरा शिवस्वरूप है। हे महामुने! उनमें परस्पर भेद नहीं करना चाहिये।

वास्तवमें सारा विश्व ही मेरा शिवस्वरूप है। मैं, आप, ब्रह्मा तथा जो ये रुद्र प्रकट होंगे—ये सब-के-सब एक रूप हैं, इनमें भेद माननेपर अवश्य ही बन्धन होगा।

हे विष्णु! अब आप मेरी आज्ञासे जगत्में (सब लोगोंके लिये) मुक्तिदाता बनें। मेरा दर्शन होनेपर जो फल प्राप्त होता है, वही फल आपका दर्शन होनेपर भी प्राप्त होगा। मैंने आज आपको यह वर दे दिया। मेरे हृदयमें विष्णु हैं, विष्णुके हृदयमें मैं हूँ। रुद्र शिवके पूर्णावतार हैं।

हे विष्णु! जो आपकी शरणमें आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरणमें आ गया। जो मुझमें-आपमें अन्तर समझता है, वह निश्चय ही नरकमें गिरता है। इसके बाद भक्तवत्सल भगवान् शम्भु शीघ्र वहीं अन्तर्धान हो गये।

तभीसे इस लोकमें लिंगपूजाका विधान प्रचलित हुआ है। लिंगमें प्रतिष्ठित भगवान् शिव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। शिवलिंगकी वेदी महादेवीका स्वरूप है और लिंग साक्षात् महेश्वर है, इसीमें सम्पूर्ण जगत् स्थित रहता है।

आगेके अध्यायोंमें शिवपूजनकी विधि तथा उसके फलका वर्णन किया गया है। जो शिवभक्तिपरायण होकर प्रतिदिन पूजन करता है, उसे अवश्य ही पग-पगपर सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है। रोग, दुःख, शोक, उद्वेग, कुटिलता, विष तथा अन्य जो भी कष्ट उपस्थित होता है, उसे कल्याणकारी शिव अवश्य नष्ट कर देते हैं। अतः भगवान् सदाशिवकी प्रसन्नताके लिये सदैव अपने वर्णाश्रमविहित कर्म करते रहना चाहिये।

बिना ज्ञान प्राप्त किये ही जो प्रतिमाका पूजन छोड़ देता है, उसका निश्चित ही पतन हो जाता है। जबतक शरीरमें पाप रहता है, तबतक सिद्धिकी प्राप्ति नहीं होती। पापके दूर हो जानेपर उसका सब कुछ सफल हो जाता है। विज्ञानका मूल अनन्य भक्ति है और ज्ञानका मूल भी भक्ति ही कही जाती है। भक्तिका मूल सत्कर्म और अपने इष्टदेव आदिका पूजन है।

पंचदेवोपासना

जबतक मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहे तबतक प्रेमपूर्वक उसे पाँच देवताओं (गणेश, विष्णु, शिव, सूर्य एवं देवी)-की और उनमें भी सर्वश्रेष्ठ भगवान् सदाशिवकी मूर्तिका पूजन करना चाहिये। एकमात्र सदाशिव ही सबके मूल हैं। अत: सदाशिवके पूजनसे ही सब देवताओंका पूजन हो जाता है और वे प्रसन्न हो जाते हैं।

आगेके अध्यायोंमें मनुष्यकी दैनिकचर्याका वर्णन शास्त्रीय विधिसे किया गया है तथा शिवपूजन-विधि विस्तारसे बतायी गयी है। इसके अनन्तर ब्रह्माकी सृष्टिके सृजनका विस्तारसे वर्णन हुआ है।

इस प्रकार रुद्रसंहिताका सृष्टिखण्ड पूर्ण हुआ।

रुद्रसंहिता (सतीखण्ड)

ब्रह्माजीसे देवी सन्ध्या एवं कामदेवका प्राकट्य

नारदजीके जिज्ञासा करनेपर ब्रह्माजी वर्णन करते हैं कि मेरे द्वारा जब मानसपुत्रोंकी सृष्टि हो रही थी, उसी समय मेरे मनसे एक सुन्दर रूपवाली श्रेष्ठ युवती भी उत्पन्न हुई। वह सन्ध्याके नामसे प्रसिद्ध हुई। वह प्रात:-सन्ध्या तथा सायं-सन्ध्याके रूपमें अत्यन्त सुन्दरी, सुन्दर भौंहोंवाली तथा मुनियोंके मनको मोहित करनेवाली थी। उस कन्याको देखते ही मैं तथा मेरे मानसपुत्र उसका चिन्तन करने लगे। उसी समय एक अत्यन्त अद्भुत एवं मनोहर 'मानसपुत्र' उत्पन्न हुआ, जो कामदेवके नामसे विख्यात हुआ।

कामदेवने ब्रह्माजीसे पूछा कि मैं कौन-सा कार्य करूँ? मेरे लिये जो कर्म करणीय हो, उस कर्ममें मुझे नियुक्त कीजिये। ब्रह्माजीने कहा—अपने गुप्त रूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करते हुए तुम स्वयं सबके सुखके कारण बनकर सनातन सृष्टि करो।

उसी समय कामदेवने तीक्ष्ण पुष्पबाणोंसे मुझ ब्रह्मा तथा सभी मानसपुत्रोंको मोहित कर दिया। सभीके मनमें काम-विकार उत्पन्न हो गया। हम सभी देवी सन्ध्या के प्रति आकर्षित होने लगे। ब्रह्माजीके पुत्र धर्मने अपने पिता तथा भाइयोंकी ऐसी दशा देखकर धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् सदाशिवका स्मरण किया।

भगवान् सदाशिवके प्रभावसे ब्रह्माजीका काम-विकार दूर हो गया। उसी समय दक्षके शरीरसे श्वेतकण निकलकर पृथ्वीपर गिरा, उससे समस्त गुणसम्पन्न, परम मनोहर एक स्त्रीकी उत्पत्ति हुई, जिसका नाम रति था। रतिका कामदेवसे विवाह हो गया।

नारदजी कहते हैं—हे ब्रह्मन्! पितरोंकी जन्मदात्री उस ब्रह्मपुत्री सन्ध्याका क्या हुआ?

ब्रह्माजी कहते हैं—वह सन्ध्या जो पूर्वकालमें मेरे मनसे उत्पन्न हुई, वही तपस्याकर शरीर छोड़नेके बाद अरुन्धती हुई। उस बुद्धिमती तथा उत्तम व्रत करनेवाली सन्ध्याने मुनिश्रेष्ठ मेधातिथिकी कन्याके रूपमें जन्म ग्रहणकर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरके वचनोंसे महात्मा वसिष्ठका अपने पतिरूपमें वरण किया। वह पतिव्रता, वन्दनीया, पूजनीया तथा दयाकी मूर्ति थी।

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने अरुन्धतीकी तथा पूर्वजन्ममें उसकी स्वरूपभूता सन्ध्याकी बड़ी उत्तम कथा सुनायी है, अब आप भगवान् शिवके उस परम पवित्र चरित्रका वर्णन कीजिये, जो दूसरोंके पापोंका विनाश करनेवाला, उत्तम एवं मंगलदायक है।

शिवविवाहके लिये ब्रह्माजीका प्रयत्न

ब्रह्माजीने कहा—तात! पूर्वकालमें मैं जब एक बार मोहमें पड़ गया और भगवान् शंकरने मेरा उपहास किया तो मुझे बड़ा क्षोभ हुआ था। मैं भगवान् शिवके प्रति ईर्ष्या करने लगा। मैं उस स्थानपर गया, जहाँ दक्ष उपस्थित थे, वहीं रतिके साथ कामदेव भी था। उस समय मैंने दक्ष तथा दूसरे पुत्रोंको सम्बोधित करते हुए कहा—पुत्रो! तुम्हें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे महादेवजी किसी कमनीय कान्तिवाली स्त्रीका पाणिग्रहण करें। उसके बाद भगवान् शिवको मोहित करनेका भार मैंने कामदेवको सौंपा। मेरी आज्ञा मानकर कामदेवने वामदेव शिवको मोहनेकी बराबर चेष्टा की, परंतु उसे सफलता न मिली। कामदेवने कहा—प्रभो! सुन्दर स्त्री ही मेरा अस्त्र है, अत: शिवजीको मोहित करनेके लिये

किसी नारीकी सृष्टि कीजिये। यह सुनकर मैं चिन्तामें पड़ गया। मैं मनमें सोचने लगा कि निर्विकार भगवान् शंकर किसी स्त्रीको अपनी सहधर्मिणी बनाना कैसे स्वीकार करेंगे? यही सोचते-सोचते मैंने भक्तिभावसे उन श्रीहरिका स्मरण किया, जो साक्षात् शिवस्वरूप और मेरे शरीरके जन्मदाता हैं। मेरी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु प्रकट हो गये और मुझ ब्रह्मासे बोले—'लोकस्त्रष्टा ब्रह्मन्! तुमने किसलिये आज मेरा स्मरण किया है?'

तब मैंने कहा—केशव! यदि भगवान् शिव किसी तरह पत्नीको ग्रहण कर लें तो मैं सुखी हो जाऊँगा। मेरे अन्तःकरणका सारा दुःख दूर हो जायगा। इसीके लिये मैं आपकी शरण आया हूँ। मेरी यह बात सुनकर भगवान् मधुसूदन बोले—'हे विधाता! शिव ही सबके कर्ता, भर्ता (पालक) और हर्ता (संहारक) हैं। वे ही परात्पर परब्रह्म एवं परमेश्वर हैं। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ और सर्वात्मना शम्भुका भजन करो, इससे सन्तुष्ट होकर वे तुम्हारा कल्याण करेंगे।'

ब्रह्मन्! यदि तुम्हारे मनमें यह विचार हो कि शंकर पत्नीका पाणिग्रहण करें तो शिवाको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे शिवका स्मरण करते हुए उत्तम तपस्या करो। यदि वे देवेश्वरी प्रसन्न हो जायँ तो सारा कार्य सिद्ध कर देंगी।

इसके अनन्तर ब्रह्माजीने परब्रह्मस्वरूपिणी शम्भुप्रिया देवी दुर्गाकी आराधना की।

ब्रह्माजीने नारदजीसे कहा—हे मुने! मेरेद्वारा स्तुति करनेपर वे योगनिद्रा भगवती मेरे सामने प्रकट हो गयीं। भक्तिसे सिर झुकाकर मैं उन्हें प्रणामकर स्तुति करने लगा। मेरी स्तुतिसे प्रसन्न होकर कल्याण करनेवाली वे महाकाली प्रेमपूर्वक कहने लगीं—हे ब्रह्मन्! आपने मेरी स्तुति किसलिये की है? आप अपनी मनोभिलषित बात कहें, मैं उसे निश्चितरूपसे पूर्ण करूँगी।

ब्रह्माजी बोले—हे देवी! आप दक्षकी कन्या बनकर अपने रूपसे शिवजीको मोहित करनेवाली हों। हे शिवे! आप शिवपत्नी बनें।

भगवतीने कहा—हे पितामह! मैं दक्षकी पत्नीके गर्भसे सतीरूपमें जन्म लेकर अपनी लीलाके द्वारा शिवजीको प्राप्त करूँगी। यह कहकर जगदम्बा शिवा वहीं अन्तर्धान हो गयीं।

दक्षकन्याके रूपमें सतीका प्रादुर्भाव

इसके अनन्तर मेरी आज्ञा पाकर दक्षप्रजापतिने भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। दक्षकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बा प्रकट हो गयीं और दक्षको यह वरदान दिया कि मैं कुछ ही दिनोंमें आपकी कन्या बनकर शिवकी पत्नी बनूँगी। यदि आपने कभी मेरा अनादर किया तो मैं अपना शरीर त्याग दूँगी और दूसरा शरीर धारण करूँगी—यह कहकर महेश्वरी वहाँ से अन्तर्धान हो गयीं। कुछ समय बाद शुभ मुहूर्तमें भगवती शिवा दक्षके घरमें प्रकट हो गयीं। दक्षने प्रसन्न होकर विष्णु आदि देवताओंकी आज्ञासे सभी गुणोंसे सम्पन्न भगवती जगदम्बिकाका नाम 'उमा' रखा। कुछ समय व्यतीत होनेके अनन्तर युवावस्था प्राप्त होनेपर परमेश्वरी सती महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे माताकी आज्ञासे तपस्या करने लगीं। विष्णु आदि सभी देवता एवं मुनिगण सती देवीकी तपस्याका दर्शनकर आश्चर्यचकित हो गये। वे सभी सती देवीको प्रणामकर भगवान् शिवके परमधाम कैलासको चले गये। वहाँ सभी देवताओं तथा ऋषियोंने भगवान् शंकरकी स्तुति की। उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उनके आनेका कारण पूछा। सभी देवताओं और ऋषियोंने भगवान् शिवसे आग्रह किया कि विश्वहितके लिये तथा देवताओंके सुखके लिये परम सुन्दरी स्त्रीको पत्नीके रूपमें ग्रहण करें।

हे प्रभो! वे शिवा सती नामसे दक्षपुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। वे दृढ़व्रतमें स्थित होकर आपके लिये तप कर रही हैं। वे महातेजस्विनी सती आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छुक हैं। हे महेश्वर! उन सतीके ऊपर कृपाकर उन्हें वर देकर उनके साथ विवाह करनेकी कृपा करें।

भक्तवत्सल भगवान् शिवजीने 'तथास्तु' कहकर उनके निवेदनको स्वीकार कर लिया।

शिव और सतीका विवाह

सतीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रकट हो गये और भगवती सतीको पत्नीरूपमें स्वीकार करनेका वर प्रदान कर दिया। इसके अनन्तर ब्रह्माजीकी सन्निधिमें दक्षके यहाँ शिव-सतीका विवाह समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। विवाहके अनन्तर भगवती सती और भगवान् शंकर अपने स्थान कैलासपर पधार गये।

कैलास तथा हिमालय पर्वतपर शिवा और शिवके विविध विहारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेके पश्चात् ब्रह्माजीने कहा—मुने! एक दिनकी बात है, देवी सतीने भगवान् शंकरसे जीवोंके उद्धारके लिये तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। भगवान् शंकरने अपनी भार्या सतीसे उत्तम ज्ञानका प्रतिपादन करते हुए नवधाभक्तिके स्वरूपका विवेचन किया।

सतीमोहकी कथा

एक समयकी बात है, भगवान् रुद्र वृषभश्रेष्ठ नन्दीपर आरूढ़ हो भूतलपर भ्रमण कर रहे थे। घूमते-घूमते उन्होंने दण्डकारण्यमें लक्ष्मणसहित श्रीरामको देखा, जो अपनी प्यारी पत्नी सीताकी खोज करते हुए 'हा सीते!' ऐसा उच्च स्वरसे पुकारते तथा बारंबार रोते थे। उस समय भगवान् शंकरने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया और श्रीरामके सामने अपनेको प्रकट किये बिना वे दूसरी ओर चल दिये। भगवान् शिवकी मोहमें डालनेवाली ऐसी लीला देख सतीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने शंकायुक्त होकर भगवान् शंकरसे पूछा—हे देव! विरहसे व्याकुल उन दोनोंको देखकर आपने इतना विनम्र होकर उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम क्यों किया? भगवान् शिवने कहा—हे देवी! ये दोनों राजा दशरथके विद्वान् पुत्र हैं, बड़े भाई राम भगवान् विष्णुके सम्पूर्ण अंशसे प्रकट हुए हैं, छोटे भाई लक्ष्मण शेषावतार हैं। वे जगत्के कल्याणके लिये इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। भगवान् शिवकी यह बात सुनकर भी सतीके मनमें विश्वास नहीं हुआ। शिवने कहा—यदि तुम्हारे मनमें मेरे कथनपर विश्वास नहीं है तो श्रीरामकी परीक्षा कर लो, जिससे तुम्हारा भ्रम नष्ट हो जाय।

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवान् शिवकी आज्ञासे रामकी परीक्षा लेनेके लिये सती सीताका रूप धारणकर रामके पास गयीं। सतीको सीताके रूपमें सामने आया देख 'शिव-शिव' का जप करते हुए श्रीराम सब कुछ जान गये। भगवान् रामने सतीसे पूछा—भगवान् शम्भु कहाँ गये हैं? आपने अपना स्वरूप त्यागकर किसलिये यह नूतन रूप धारण किया है? श्रीरामजीकी यह बात सुनकर सती उस समय आश्चर्यचकित हो गयीं और लज्जित भी हुईं। उन्होंने कहा—हे राघव! मैंने उनकी आज्ञा लेकर आपकी परीक्षा की है, अब मुझे ज्ञात हो गया कि आप साक्षात् विष्णु हैं। आप शिवके वन्दनीय कैसे हो गये? कृपाकर आप मेरे इस संशयको दूर करें।

श्रीराम बोले—एक समय भगवान् शम्भुने अपने परमधाममें विश्वकर्माको बुलाकर एक रमणीय भवन बनवाया और उसमें एक श्रेष्ठ सिंहासनका भी निर्माण करवाया। उस मण्डपमें स्वयं भगवान् महेश्वरने श्रीहरिका अभिषेक किया और उन्हें अपना सारा ऐश्वर्य प्रदान करते हुए ब्रह्माजीसे कहा—लोकेश! आजसे मेरी आज्ञाके अनुसार ये विष्णु हरि स्वयं मेरे वन्दनीय हो गये—इस बातको सभी सुन लें। ऐसा कहकर रुद्रदेवने स्वयं ही श्रीहरिको प्रणाम किया।

इधर भगवती सती चिन्ताग्रस्त होकर शिवजीके पास आ गयीं। भगवान् शिवके पूछनेपर सतीने कहा—मैंने कोई परीक्षा नहीं ली। इसके अनन्तर भगवान् महेश्वरने ध्यान लगाकर सतीका सारा चरित्र जान लिया। शिवजी बोले—यदि मैं अब सतीसे स्नेह करूँ तो मुझ शिवकी महान् प्रतिज्ञा ही नष्ट हो जायगी—इस प्रकार विचारकर शंकरजीने हृदयसे सतीका त्याग कर दिया।

दक्षप्रजापतिका शिवसे द्वेष

पूर्वकालमें प्रयागमें मुनियों तथा महात्माओंका विधि-विधानसे बड़ा यज्ञ हुआ। इस यज्ञमें दक्षप्रजापतिके पधारनेपर समस्त देवर्षियोंने नतमस्तक हो स्तुति और प्रणामद्वारा दक्षका आदर-सत्कार किया, परंतु उस समय महेश्वरने दक्षको प्रणाम नहीं किया। महादेवजीको वहाँ मस्तक न झुकाते देख दक्षप्रजापति रुद्रपर कुपित होते हुए बोले—मैं इस रुद्रको यज्ञसे बहिष्कृत करता हूँ। यह

देवताओंके साथ यज्ञमें भाग न पाये।

सतीका योगाग्निद्वारा शरीरको भस्म करना

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! एक समय दक्षने एक बड़े यज्ञका आयोजन किया और उस यज्ञमें सभी देवताओं तथा ऋषियोंको बुलाया। देवता तथा ऋषिगण बड़े उत्साहके साथ उस यज्ञमें जा रहे थे। सतीको जब यह मालूम हुआ कि मेरे पिता दक्षने बड़े यज्ञका आयोजन किया है तो उन्होंने भगवान् शंकरसे वहाँ जानेकी अनुमति माँगी। महेश्वर बोले—देवि! तुम्हारे पिता दक्ष मेरे विशेष द्रोही हो गये हैं, जो लोग बिना बुलाये दूसरोंके घर जाते हैं, वे वहाँ अनादर ही पाते हैं, जो मृत्युसे भी बढ़कर होता है।

भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर सती अपने पितापर बहुत कुपित हुईं तथा वहाँ जानेके लिये तत्पर हो गयीं। शिवजीने अपने गणोंके साथ सजे हुए नन्दी वृषभपर सतीको विदा किया। यज्ञशालामें शिवका भाग न देखकर असह्य क्रोध प्रकट करते हुए वे विष्णु आदि सब देवताओंको फटकारने लगीं। अपने पिताके प्रति रोष व्यक्त करते हुए वे बोलीं—हे तात! आप शंकरके निन्दक हैं, आपको पश्चात्ताप करना पड़ेगा। इस लोकमें महान् दुःख भोगकर अन्तमें आपको यातना भोगनी पड़ेगी। जिनका 'शिव'—यह दो अक्षरोंका नाम एक बार उच्चरित हो जानेपर सम्पूर्ण पापराशिको शीघ्र ही नष्ट कर देता है, अहो! आप उन्हीं शिवसे विपरीत होकर उन पवित्र कीर्तिवाले सर्वेश्वर शिवसे विद्वेष करते हैं।

इस प्रकार दक्षपर कुपित हो सहसा अपने शरीरको त्यागनेकी इच्छासे सतीने योगमार्गसे शरीरके दग्ध हो जानेपर पवित्र वायुमय रूप धारण किया। तदनन्तर अपने पतिके चरण-कमलका चिन्तन करते हुए सतीने अन्य सब वस्तुओंका ध्यान भुला दिया। वहाँ उन्हें पतिके चरणोंके अतिरिक्त कुछ दिखायी नहीं दिया। हे मुनिश्रेष्ठ! यज्ञाग्निमें गिरा उनका निष्पाप शरीर अग्निसे जलकर उनके इच्छानुसार उसी समय भस्म हो गया।

उस समय देवताओं आदिने जब यह घटना देखी तो वे बड़े जोरसे हाहाकार करने लगे। सतीके प्राणत्यागको देखकर शिवजीके पार्षद शीघ्र ही अस्त्र-शस्त्र लेकर खड़े हो गये। उसी समय आकाशवाणी हुई—समस्त देवता आदि यज्ञमण्डपसे शीघ्र निकलकर अपने-अपने स्थान को चले जायँ।

दक्षयज्ञविध्वंसका वृत्तान्त

गणोंके मुखसे तथा नारदके द्वारा सतीके दग्ध होनेका समाचार प्राप्त हुआ, जिसे सुनकर भगवान् शंकर अत्यधिक कुपित हो गये। शिवने अपनी जटासे वीरभद्र और महाकालीको प्रकट करके उन्हें यज्ञको विध्वंस करनेकी तथा विरोधियोंको जला डालनेकी आज्ञा प्रदान की।

दक्ष-यज्ञ-विध्वंसके लिये वीरभद्र एवं महाकालीने प्रस्थान किया। उधर दक्षके यज्ञमण्डपमें यज्ञ-विध्वंसकी सूचना देनेवाले त्रिविध उत्पात प्रकट होने लगे। बहुत-से भयानक अपशकुन होने लगे। इसी बीच आकाशवाणी हुई—ओ दक्ष! तू महामूढ़ और पापात्मा है, भगवान् हरकी ओरसे तुझे महान् दुःख प्राप्त होगा। जो मूढ़ देवता आदि तेरे यज्ञमें स्थित हैं, उनको भी महान् दुःख होगा।

आकाशवाणीकी यह बात सुनकर और अशुभ-सूचक लक्षणोंको देखकर दक्ष तथा देवता आदिको भी अत्यन्त भय प्राप्त हुआ। दक्षने अपने यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे अत्यन्त दीन होकर प्रार्थना की। भगवान् विष्णुने भी कई प्रकारसे दक्षको समझाते हुए शिवकी महिमाका वर्णन किया।

इस बीच शिवगणोंके साथ वीरभद्रके वहाँ पहुँचनेपर घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। विष्णु और देवतागण थोड़ी देरमें वहाँसे अन्तर्धान हो गये। वीरभद्रने अपने दोनों हाथोंसे दक्षकी गर्दन मरोड़कर तोड़ डाली और सिरको अग्निकुण्डमें डाल दिया। इसके अतिरिक्त वहाँ जो भी देवगण थे, वे भी घायल हो गये।

वे वीरभद्र दक्ष और उनके यज्ञका विनाश करके कृतकार्य हो तुरन्त कैलास पर्वतपर चले गये। कार्यको पूर्ण किये हुए वीरभद्रको देखकर परमेश्वर शिवजी मन-ही-मन प्रसन्न हुए और उन्होंने वीरभद्रको गणोंका अध्यक्ष बना दिया।

शिवके अनुग्रहसे दक्षका जीवित होना और यज्ञकी पूर्णता

नारदजीने ब्रह्माजीसे पूछा—हे तात! पराक्रमी वीरभद्र जब दक्षके यज्ञका विनाश करके कैलास पर्वत चले गये तब क्या हुआ? इसके उत्तरमें ब्रह्माजीने कहा—समस्त देवताओं और मुनियोंने छिन्न-भिन्न अंगोंवाले होकर मेरे पास आकर पूर्ण रूपसे अपने क्लेशको बताया। उनकी बात सुनकर मैं व्यथित हो गया। तदनन्तर देवताओं और मुनियोंके साथ मैं विष्णुलोक गया। वहाँ मैंने भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए अपने दु:खका वर्णन किया तथा भगवान् श्रीहरिसे प्रार्थना की कि हे देव! जिस तरह भी यज्ञ पूर्ण हो, यज्ञकर्ता दक्ष जीवित हों तथा समस्त देवता और मुनि सुखी हो जायँ, आप वैसा कीजिये। देवता और मुनि लोग आपकी शरणमें आये हैं। भगवान् विष्णु बोले—हे विधे! समस्त देवता शिवके अपराधी हैं; क्योंकि इन सबने उनको यज्ञका भाग नहीं दिया। अब आप सभी लोग शुद्ध हृदयसे भगवान् शिवके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न कीजिये।

इसके अनन्तर विष्णु आदि सभी देवताओंने कैलास पर्वतपर विराजमान वटवृक्षके नीचे बैठे हुए भगवान् शिवजीका दर्शन किया तथा सभी देवताओंने भगवान् शिवके चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान् शंकरकी विशेषरूपसे प्रार्थना करते हुए देवताओंने कहा—हे करुणानिधान! आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिये। आप प्रसन्न होकर दक्षकी यज्ञशालाकी ओर चलें। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् शम्भु विष्ण्वादि देवताओंके साथ कनखलमें स्थित प्रजापति दक्षकी यज्ञशालामें गये। वहाँ वीरभद्रद्वारा किया गया यज्ञका विध्वंस रुद्रने देखा।

यज्ञकी वैसी दुरवस्था देखकर भगवान् शंकरने वीरभद्रको बुलाकर कहा—हे महाबाहो! तुमने थोड़ी ही देरमें देवताओं तथा ऋषियों आदिको बड़ा भारी दण्ड दे दिया। जिसने विलक्षण यज्ञका आयोजनकर यह द्रोहपूर्ण कार्य किया, उस दक्षको तुम शीघ्र यहाँ ले आओ। वीरभद्रने शीघ्रतापूर्वक दक्षका धड़ लाकर शम्भुके समक्ष रख दिया। भगवान् शंकरने वीरभद्रसे पूछा—दक्षका सिर कहाँ है? वीरभद्रने कहा—हे शंकर! मैंने तो उसी समय दक्षके सिरको यज्ञकुण्डमें हवन कर दिया।

तदनन्तर शम्भुके आदेशसे प्रजापति दक्षके धड़के साथ सवनीय पशु—बकरेका सिर जोड़ दिया गया। उस सिरके जुड़ जाते ही शम्भुकी कृपादृष्टि पड़नेसे प्रजापति दक्ष तत्क्षण जीवित हो गये। शिवजीके दर्शनसे तत्काल उनका अन्त:करण निर्मल हो गया। तदनन्तर लज्जित होकर वे भगवान् शंकरकी स्तुति करते हुए बोले—हे महादेव! आपको नमस्कार है, मुझपर कृपा कीजिये। आप मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। दक्षप्रजापतिकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर महादेवजी बोले—हे दक्ष! मैं प्रसन्न हूँ, यद्यपि मैं सबका ईश्वर हूँ और स्वतन्त्र हूँ, फिर भी सदा भक्तोंके अधीन रहता हूँ। केवल कर्मके वशीभूत मूढ़ मानव न वेदोंसे, न यज्ञोंसे, न दानोंसे और न तपस्यासे ही मुझे पा सकते हैं, तुम केवल कर्मके द्वारा ही संसारको पार करना चाहते थे, इसीलिये रुष्ट होकर मैंने इस यज्ञका विनाश किया है। अत: हे दक्ष! आजसे तुम बुद्धिके द्वारा मुझे परमेश्वर मानकर ज्ञानका आश्रय लेकर सावधान होकर कर्म करो। यदि कोई विष्णुभक्त मेरी निन्दा करेगा और मेरा भक्त विष्णुकी निन्दा करेगा तो आपको दिये हुए समस्त शाप उन्हीं दोनोंको प्राप्त होंगे और निश्चय ही उन्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं होगी।

हे मुने! उसके बाद भगवान् शिवकी आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नचित्त शिवभक्त दक्षने शिवजीकी कृपासे यज्ञ पूरा किया। तदनन्तर सब देवता और ऋषि सन्तुष्ट होकर अपने-अपने स्थानको चले गये।

भगवान् शंकरकी महिमा अनन्त है, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् भी जाननेमें असमर्थ हैं, किंतु भक्त लोग उनकी कृपासे बिना श्रमके ही उत्तम भक्तिके द्वारा उसे जान लेते हैं।

हे नारद! इस प्रकार मैंने आपसे सतीके परम अद्भुत चरितका वर्णन किया, जो भोग-मोक्षको देनेवाला तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

इस प्रकार रुद्रसंहिताका सतीखण्ड पूर्ण हुआ।

रुद्रसंहिता (पार्वतीखण्ड)

पार्वतीखण्डके प्रथम अध्यायमें पितरोंकी कन्या मेनाके साथ हिमालयके विवाहका वर्णन हुआ है। देवताओंके आग्रह करनेपर पितरोंने अपनी कन्या मेनाका विवाह विधिपूर्वक हिमालयके साथ कर दिया।

पितरोंकी तीन कन्याओंका वृत्तान्त

ब्रह्माजीके पुत्र दक्षको साठ कन्याएँ हुईं, उनमेंसे एक स्वधा नामकी कन्याका विवाह उन्होंने पितरोंके साथ कर दिया। स्वधाकी तीन पुत्रियाँ थीं। ये पितरोंकी मानसिक पुत्रियाँ थीं। इनका जन्म माताके गर्भसे नहीं, उनके मनसे हुआ था। ये तीनों बहनें भगवान् विष्णुके निवास-स्थान श्वेतद्वीपमें उनका दर्शन करनेके लिये गयीं। वहाँ उनका दर्शनकर वे वहीं ठहर गयीं। उसी समय ब्रह्माजीके पुत्र सनत्कुमार वहाँ पहुँच गये। वहाँ उपस्थित सभीने खड़े होकर सनत्कुमारका स्वागत किया, परंतु ये तीनों बहनें बैठी रह गयीं। इससे नाराज होकर सनत्कुमारने इन तीनोंको शाप दे दिया। बादमें तीनोंद्वारा स्तुति करनेपर सनत्कुमारने प्रसन्न होकर वरदान भी दिया और कहा कि तुम तीनोंमें ज्येष्ठ कन्या मेना हिमालयकी पत्नी बनेगी, जिससे पार्वतीका जन्म होगा। दूसरी धन्या नामवाली कन्या राजा जनककी पत्नी होगी, जिससे सीताका जन्म होगा। तीसरी कन्या कलावती वृषभानकी पत्नी होगी, जिससे 'राधा' नामकी कन्याका जन्म होगा। पार्वती भगवान् शिवकी पत्नी बनेंगी, सीता भगवान् रामकी पत्नी बनेंगी और राधा भगवान् कृष्णको प्राप्त करेंगी। इस प्रकार शापके ब्याजसे दुर्लभ वरदान देकर सनत्कुमारमुनि भाइयोंसहित अन्तर्धान हो गये।

ब्रह्माजी नारदजीसे कहते हैं—हे नारद! मेनाके साथ हिमालयका विवाह होनेके अनन्तर श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और महात्मा मुनिगण गिरिराज हिमालयके पास गये तथा हिमालयको जगदम्बा भगवती सतीके दक्ष-यज्ञमें शरीर त्यागनेकी कथा सुनायी और निवेदन किया कि यदि वे सती पुनः तुम्हारे घरमें प्रकट हो जायँ तो देवताओंका महान् लाभ हो सकता है। देवताओंकी यह बात सुनकर गिरिराज हिमालय मन-ही-मन प्रसन्न होकर बोले—प्रभो! ऐसा हो तो बड़े सौभाग्यकी बात है। तदनन्तर वे देवता उन्हें बड़े आदरसे उमाको प्रसन्न करनेकी विधि बताकर स्वयं भगवती उमाकी शरणमें गये और श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगज्जननी देवी दुर्गा उनके सामने प्रकट हो गयीं। देवताओंने निवेदन किया—भगवती शिवे! आप भूतलपर अवतीर्ण होकर पुनः रुद्रदेवकी पत्नी बनें और यथायोग्य ऐसी लीला करें, जिससे देवताओंका मनोरथ पूर्ण हो जाय। हे देवी! इससे कैलास पर्वतपर निवास करनेवाले रुद्रदेवभी सुखी होंगे। आप ऐसी कृपा करें, जिससे सब सुखी हो जायँ और सबका सारा दुःख नष्ट हो जाय। भक्तवत्सला दयामयी उमादेवी विष्णु आदि सभी देवताओंको सम्बोधित करके प्रसन्नतापूर्वक बोलीं—हे देवताओ तथा मुनियो! आप सब अपने-अपने स्थानको जायँ, मैं अवतार लेकर मेनाकी पुत्री होकर रुद्रदेवकी पत्नी बनूँगी—यह मेरा अत्यन्त गुप्त मत है। यह कहकर जगदम्बा अदृश्य हो गयीं और तुरन्त अपने लोकमें चली गयीं।

जगदम्बाका मेना एवं हिमाचलको वरदान

इधर गिरिराज हिमाचल एवं मेना—दोनों दम्पतीने भगवती जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या आरम्भ की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती उमादेवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर प्रसन्नतापूर्वक मेनासे मनोऽभिलषित वर माँगनेका आग्रह किया। मेनाने कहा—जगदम्बिके! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ तो मुझे सौ पुत्र हों, उन पुत्रोंके पश्चात् मेरे एक पुत्री हो। शिवे! आप ही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी पुत्री तथा रुद्रदेवकी पत्नी बनें और तदनुसार लीला करें। मेनाकी बात सुनकर प्रसन्नहृदया देवीने उनके मनोरथको पूर्ण करनेका वरदान दिया और कहा कि मैं स्वयं तुम्हारे यहाँ पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होकर देवताओंका समस्त कार्य सिद्ध करूँगी—ऐसा कहकर जगद्धात्री परमेश्वरी शिवा

अदृश्य हो गयीं।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे नारद! तदनन्तर मेना और हिमालय कन्या-प्राप्तिके निमित्त भगवती उमाकी उपासना करने लगे। कुछ समय बाद भगवती जगदम्बा जन्म लेकर मेनाके समक्ष अपने स्वरूपमें प्रकट हो गयीं। उसी क्षण विष्णु आदि सब देवता वहाँ आये और जगदम्बाका दर्शनकर उन्होंने उनका स्तवन किया। जब देवता लोग स्तुति करके चले गये तो देवीके उस दिव्य रूपका दर्शन करके मेनाको ज्ञान प्राप्त हो गया। मेनाने प्रार्थना की कि हे महेश्वरी! आप कृपा करें, इसी रूपमें मेरे ध्यानमें स्थित हो जायँ। साथ ही मेरी पुत्रीके अनुरूप प्रत्यक्ष दर्शनीय रूप धारण करें।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेनाके समक्ष वह कन्या लौकिक गतिका आश्रय लेकर रोने लगी। उसका मनोहर रुदन सुनकर सब लोग प्रसन्न होकर उसके पास पहुँच गये। देवी शिवा दिनों-दिन आनन्दपूर्वक बढ़ने लगीं।

देवर्षि नारदद्वारा बालिका पार्वतीके भविष्यकी बात बताना

एक समयकी बात है, नारदजी हिमाचलके घर गये। गिरिराज हिमालयने उन्हें प्रणाम करके उनकी पूजा की और अपनी पुत्रीको बुलाकर उनके चरणोंमें प्रणाम कराया तथा नारदजीसे निवेदन किया कि मेरी पुत्रीकी जन्म-कुण्डलीमें जो गुण-दोष हों, उन्हें बताइये? मेरी बेटी किसकी सौभाग्यवती प्रिय पत्नी होगी? नारदजीने शिवाकी हस्तरेखा देखकर बताया—शैलराज और मेना! यह कन्या समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त है। अपने पतिके लिये सुखदायिनी और माता-पिताकी कीर्ति बढ़ानेवाली होगी। हे गिरिराज! तुम्हारी पुत्रीके हाथमें सब उत्तम लक्षण ही विद्यमान हैं, केवल एक रेखा विलक्षण है, जिसके अनुसार इसका पति ऐसा होगा, जो योगी, नंग-धड़ंग रहनेवाला, निर्गुण और निष्काम होगा। उसके न माँ होगी न बाप। उसको मान-सम्मानका भी कोई ख्याल नहीं रहेगा और वह सदा अमंगल वेष धारण करेगा। नारदकी इन बातोंको सुनकर मेना और हिमाचल—दोनों अत्यन्त दुखित हुए, परंतु जगदम्बा शिवा नारदके वचनको सुनकर अपने भावी पतिको शिव मानकर मन-ही-मन हर्षसे खिल उठीं।

हिमवान्‌ने कहा—मुने! मैं अपनी पुत्रीको उससे बचानेके लिये क्या उपाय करूँ? नारदजीने उन्हें सब प्रकारसे सान्त्वना दी और कहा कि ये सारे लक्षण भगवान् शिवमें घटते हैं, तुम्हें यह कन्या भगवान् शंकरके सिवा दूसरे किसीको नहीं देनी चाहिये। नारदने गिरिराजको शिवकी पूर्वपत्नी सतीका आख्यान सुनाया और कहा कि सती ही फिर तुम्हारे घरमें उत्पन्न हुई हैं। तुम्हारी पुत्री साक्षात् जगदम्बा शिवा है। यह पार्वती भगवान् हरकी पत्नी होगी, इसमें संशय नहीं है।

कुछ समय व्यतीत होनेपर मेनाने हिमवान्‌से पार्वतीके लिये सुन्दर वर खोजनेका अनुरोध किया। हिमवान्‌ने मेनाको समझाया कि शिव ही पार्वतीके लिये योग्य वर हैं, परंतु उन्हें प्राप्त करनेके लिये पार्वतीको तपस्या करनेकी प्रेरणा देनी चाहिये। हिमवान्‌की बातसे सन्तुष्ट होकर मेना पार्वतीके पास गयीं, परंतु वह तपस्याकी बात पार्वतीसे कहनेमें संकोच करने लगीं। उसी समय पार्वतीने स्वयं अपने एक स्वप्नकी बात मातासे बतायी और कहा कि आज स्वप्नमें एक दयालु तपस्वी ब्राह्मणने मुझे शिवको प्राप्त करनेके लिये उत्तम तपस्या करनेका उपदेश दिया है। यह सुनकर मेनकाने वहाँ शीघ्र अपने

पतिको बुलाकर पुत्रीके देखे हुए उस स्वप्नको बताया। यह सुनकर गिरिराज बड़े प्रसन्न हुए।

हिमवान्‌द्वारा पुत्री पार्वतीको शिवकी सेवामें रखना

ब्रह्माजी बोले—हिमालयकी वह लोकपूजित पुत्री पार्वती उनके घरमें बढ़ती हुई आठ वर्षकी हो गयी। उसी समय शम्भुने अपने मनको एकाग्र करनेके लिये हिमालयके गंगावतार नामक उत्तम शिखरपर तपस्या आरम्भ की। तदनन्तर गिरिराज हर्षित होकर अपनी पुत्रीके साथ भगवान् हरके समीप गये और शम्भुसे प्रार्थना की कि मेरी पुत्री आपकी सेवा करनेके लिये बड़ी उत्सुक है, अतः आप अपनी सेवाके लिये इसे आज्ञा दीजिये।

शम्भु बोले—हे शैलराज! वेदोंके पारगामी विद्वानोंने स्त्रीको मायारूपा कहा है, उसमें भी विशेष रूपसे युवती स्त्री तो तपस्वियोंके लिये विघ्नकारिणी होती है। उनके संगसे शीघ्र ही विषयवासना उत्पन्न हो जाती है, वैराग्य नष्ट हो जाता है। अतः हे शैल! तपस्वियोंको स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिये।

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! उन शम्भुका यह स्पृहारहित निष्ठुर वचन सुनकर हिमालय विस्मयमें पड़ गये। अपने पिता गिरिराजको आश्चर्यमें पड़ा देखकर भवानीने शिवजीको प्रणामकर उनसे कहा—हे शम्भो! आप तपकी शक्तिसे सम्पन्न होकर ही महातपस्या कर रहे हैं। सभी कर्मोंको करनेवाली उस शक्तिको ही प्रकृति जानना चाहिये, उसीके द्वारा सबका सृजन, पालन और संहार होता है। हे शंकर! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं तो मेरे समीप रहनेपर भी आपको डरना नहीं चाहिये।

पार्वतीके वचनोंसे प्रभावित होकर भगवान् शंकरने हिमालयकी पुत्रीको अपने पास रहकर सेवा करनेके लिये स्वीकार कर लिया। भगवती पार्वती शिवकी सेवामें पूर्णरूपसे तत्पर हो गयीं तथा महायोगीश्वर भगवान् शिव शीघ्र ही अपने ध्यानमें निमग्न हो गये।

तारकासुरका आख्यान

उसी समय महापराक्रमी तारकासुरसे अत्यन्त पीड़ित इन्द्र आदि देवताओं तथा मुनियोंने उन रुद्रके साथ भगवती कालीका कामभावसे योग करानेके लिये ब्रह्माजीकी आज्ञासे कामदेवको आदरपूर्वक वहाँ भेजा। कामदेवने वहाँ जाकर अपने समस्त उपाय लगाये, परंतु शिव कुछ भी विक्षुब्ध नहीं हुए और उन्होंने उसे भस्म कर दिया।

आगेके अध्यायोंमें नारदजीके पूछनेपर ब्रह्माजी तारकासुरकी उत्पत्ति तथा शंकरजीद्वारा कामदेवको भस्म करने एवं अनुग्रह करनेकी कथाका विस्तारसे वर्णन करते हैं, जिसका संक्षेप इस प्रकार है—कश्यपकी सबसे बड़ी पत्नी दिति थी, उसके दो पुत्र हिरण्याक्ष एवं हिरण्यकशिपु हुए। भगवान् विष्णुने वराह एवं नरसिंहरूप धारणकर उन दोनोंका वध किया। तत्पश्चात् देवगण निर्भय एवं सुखी रहने लगे। इससे दिति दुखी हुई और वह कश्यपकी शरणमें गयी तथा उनकी सेवाकर पुनः गर्भ धारण किया। देवराज इन्द्रने अवसर पाकर उसके गर्भमें प्रविष्ट होकर उसके गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उसके गर्भसे उनचास पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी पुत्र मरुत् नामके देवता हुए और स्वर्गको चले गये। दितिने पुनः तपस्याकर गर्भ धारण किया और देवताओंके समान बलवान् वज्रांग नामके पुत्रको जन्म दिया। वह जन्मसे महाप्रतापी और बलवान् था। वरांगी इसकी पत्नी थी। इनसे एक महाप्रतापी असुरका जन्म हुआ, जिसका नाम तारकासुर रखा गया। तारकासुरने अपनी मातासे आज्ञा प्राप्तकर घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी वर देनेको प्रकट हुए। तारकासुरने ब्रह्माजीसे वर माँगते हुए कहा—हे महाप्रभु! आपके बनाये हुए इस समस्त लोकमें कोई भी पुरुष मेरे समान बलवान् न हो और शिवजीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र देवताओंका सेनापति बनकर जब मेरे ऊपर शस्त्र-प्रहार करे तब मेरी मृत्यु हो। इसके अनन्तर वह दुरात्मा असुर तीनों लोकोंको अपने अधीनकर स्वयं इन्द्र बन बैठा। उससे पीड़ित हुए समस्त इन्द्र आदि देवगण अनाथ तथा अत्यन्त व्याकुल होकर ब्रह्माके पास आये। ब्रह्माजीसे प्रार्थनाकर उन्हें अपना कष्ट सुनाया। ब्रह्माजीने कहा—हे देवताओ! मेरे वरदानसे ही वह असुर इतना बलवान् हुआ है, अब उसे मारनेका एक ही उपाय है

कि हिमवान्‌की पुत्री पार्वतीसे भगवान् शंकरका विवाह सम्पन्न हो जाय।

भगवान् शंकर तपस्यामें लीन हैं, किसी प्रकार उनकी तपस्या भंग हो जाय एवं वे सकाम होकर शिवाकी अभिलाषा करें, ऐसा उपाय करना चाहिये।

कामदहन

तारकासुरसे अत्यन्त पीड़ित हुए इन्द्रने कामदेवका स्मरण किया तथा उससे मित्रवत् निवेदन किया—हे काम! इस प्रकारका उपाय करना चाहिये, जिससे कि चित्तको वशमें रखनेवाले शिवकी अभिरुचि पार्वतीमें हो जाय। कामदेवने इन्द्रके वचनको स्वीकार करते हुए उन्हें पूरी तरह आश्वस्त किया। इसके अनन्तर वह अपनी पत्नी रति तथा मित्र वसन्तको साथ लेकर शिवजीके पास पहुँच गया। कामदेवने भगवान् शंकरपर अपने सभी अमोघ अस्त्रोंका प्रयोग किया, परंतु भगवान् शिवपर उसके अस्त्रोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उनके ललाटके मध्य भागमें स्थित तीसरे नेत्रसे क्रोधाग्नि प्रकट हुई, जिससे कामदेव जलकर भस्म हो गया। कामदेवके भस्म हो जानेपर रति अत्यन्त दुखी होकर विलाप करने लगी। रतिका दुःख देखकर देवतागण भगवान् शिवसे अत्यन्त कातर होकर उसका दुःख दूर करनेकी प्रार्थना करने लगे। देवताओंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर शिवजीने वरदान देते हुए कहा—रतिका शक्तिशाली पति तभीतक अनंग रहेगा, जबतक श्रीकृष्णका धरतीपर अवतार नहीं हो जाता।

श्रीकृष्णके द्वारा रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न नामका पुत्र होगा, वही कामके रूपमें रतिका पति बनेगा। इस प्रकार कहकर रुद्रदेव अन्तर्धान हो गये और सभी देवता भी प्रसन्न हो गये।

कामदेवको भस्म करके महादेवजीके अन्तर्धान हो जानेपर उनके विरहसे पार्वती अत्यन्त व्याकुल हो गयीं। उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी। पिताके घर जाकर जब वे अपनी मातासे मिलीं, उस समय पार्वतीने अपना नया जन्म हुआ माना।

नारदजीद्वारा पार्वतीको पंचाक्षरमन्त्रका उपदेश

एक दिन इन्द्रकी प्रेरणासे इच्छानुसार घूमते हुए नारदजी हिमालय पर्वतपर पहुँचे। हिमवान्‌ने उनका सत्कार किया और अपनी कन्याके चरित्रका पूरा वर्णन सुनाया। नारदजी गिरिराजसे 'भगवान् शिवका भजन करो'—ऐसा कहकर वहाँसे विदा हुए। वहाँसे वे भगवती कालीके पास आ गये और उन्हें सम्बोधित करके उनके लिये हितकारी वचन कहने लगे—'हे शिवे! तुम्हारे स्वामी महेश्वर विरक्त और महायोगी हैं। उन्होंने कामदेवको जलाकर तुम्हें सकुशल छोड़ दिया है। इसलिये तुम उत्तम तपस्यामें निरत हो चिरकालतक महेश्वरकी आराधना करो। तपस्याके द्वारा संस्कारयुक्त हो जानेपर रुद्रदेव तुम्हें अपनी भार्या अवश्य बनायेंगे और तुम भी कभी कल्याणकारी शम्भुका परित्याग नहीं करोगी।'

शिवाने नारदजीसे कहा—'हे मुने! रुद्रदेवकी आराधनाके लिये मुझे किसी मन्त्रका उपदेश कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! पार्वतीका यह वचन सुनकर आपने पंचाक्षर मन्त्र (**नमः शिवाय**)-का उन्हें विधिपूर्वक उपदेश देते हुए कहा—यह मन्त्रराज सब मन्त्रोंका राजा, मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला, शंकरको बहुत ही प्रिय तथा साधकको भोग और मोक्ष देनेवाला है। हे शिवे! नियमोंमें तत्पर रहकर उनके स्वरूपका चिन्तन करती हुई तुम पंचाक्षर मन्त्रका जप करो, इससे शिवजी शीघ्र ही सन्तुष्ट होंगे। अपने माता-पितासे किसी प्रकार आज्ञा प्राप्तकर भगवती पार्वती तपस्यामें संलग्न हो गयीं और पंचाक्षर मन्त्रके जपमें रत होकर तप करती हुई वे भगवान् शंकरका ध्यान करने लगीं। इस प्रकार तप और महेश्वरका चिन्तन करती हुई उन कालीने तीन हजार वर्ष उस तपोवनमें बिता दिये। उनकी कठोर तपस्यासे यह सम्पूर्ण चराचर जगत् संतप्त होने लगा। देवतागणोंने ब्रह्माजीके पास पहुँचकर निवेदन किया—हे विभो! इस समय यह सारी सृष्टि क्यों जल रही है—इसका कारण ज्ञात नहीं हो पा रहा है।

ब्रह्माजी कहते हैं—तब मैं भगवान् विष्णुसे निवेदन करनेके लिये उन सभीके साथ शीघ्र ही क्षीरसागर गया और उनसे सारी स्थितिका वर्णन किया।

विष्णुजी बोले—मैंने सारा कारण जान लिया है। आप सब लोग पार्वतीकी तपस्यासे संतप्त हो रहे हैं। अतः मैं आप लोगोंके साथ अभी परमेश्वरके पास चल रहा हूँ।

शंकरद्वारा विवाहकी स्वीकृति

इसके अनन्तर ब्रह्मा एवं विष्णुसहित सभी देवता पार्वतीके तपकी प्रशंसा करते हुए वहाँ गये, जहाँ वृषध्वज महादेव थे। उन सबोंने शिवजीको प्रणामकर उनकी स्तुति की। तब वहाँ नन्दिकेश्वरने भगवान् शिवसे कहा—हे प्रभो! देवता और मुनि संकटमें पड़कर आपकी शरणमें आये हैं। नन्दीके इस प्रकार सूचित करनेपर भगवान् शम्भुने अपने-आप समाधिसे विरत होकर विष्णु, ब्रह्मा एवं देवताओंसे आनेका कारण पूछा।

भगवान् विष्णुने कहा—शम्भो! तारकासुरने देवताओंको महान् कष्ट प्रदान किया है—यही बतानेके लिये सब देवता यहाँ आये हैं। भगवन्! आपके औरस पुत्रसे तारक दैत्य मारा जा सकेगा, और किसी प्रकारसे नहीं। आप कृपाकर गिरिराज हिमवान्‌की पुत्री गिरिजाका पाणिग्रहण करें।

श्रीविष्णुका यह वचन सुनकर भगवान् शंकरने ब्रह्मा, विष्णु, देवताओं तथा मुनियोंको निष्काम धर्मका उपदेश दिया। तदनन्तर भगवान् शम्भु पुनः ध्यानमें निमग्न हो गये। परमेश्वर शिवको ध्यानमग्न देखकर उन्होंने नन्दीकी सहमति ली। नन्दीने पुनः दीनभावसे स्तुति करनेके लिये कहा। वे सभी देवगण दीनभावसे पुनः स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णुने पुनः निवेदन किया—सुखदायक भगवान् शंकर! हम सब देवताओंको तारकासुरसे अनेक प्रकारका कष्ट प्राप्त हो रहा है। आपके लिये ही देवताओंने गिरिराज हिमालयसे शिवाकी उत्पत्ति करायी है। शिवाके गर्भसे आपके द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीसे तारकासुरकी मृत्यु होगी, दूसरे किसी उपायसे नहीं। नारदजीकी आज्ञासे पार्वती कठोर तपस्या कर रही हैं। उनके तेजसे समस्त त्रिलोकी आच्छादित हो गयी है। इसलिये परमेश्वर! शिवाको स्वीकारकर सबका दुःख मिटाइये। शंकर! मेरे तथा देवताओंके हृदयमें आपके विवाहका उत्सव देखनेके लिये बड़ा भारी उत्साह है। अतः आप यथोचित रीतिसे विवाह कीजिये।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! ऐसा कहकर उन्हें प्रणाम करके विष्णु आदि देवता और महर्षियोंने पुनः उनकी स्तुति की। भक्तोंके अधीन रहनेवाले भगवान् शंकरने विवाहका तर्क और युक्तिपूर्वक निषेध वचन कहा, परंतु साथ ही यह भी कहा कि जब-जब भक्तोंपर कहीं कोई विपत्ति आती है, तब मैं तत्काल उनके सारे कष्ट हर लेता हूँ। तारकासुरसे तुम सब लोगोंको जो दुःख प्राप्त हुआ है, उसे मैं जानता हूँ। उसका मैं निवारण करूँगा। यद्यपि मेरे मनमें विवाह करनेकी कोई रुचि नहीं है तथापि मैं पुत्रोत्पादनके लिये गिरिजाके साथ विवाह करूँगा। तुम सब देवता अब निर्भय होकर अपने-अपने घर जाओ। मैं तुम्हारा कार्य सिद्ध करूँगा।

सप्तर्षियोंद्वारा पार्वतीके तपकी परीक्षा

देवताओंके चले जानेपर पार्वतीके तपकी परीक्षाके लिये भगवान् शंकर समाधिस्थ हो गये। उन दिनों पार्वती देवी बड़ी भारी तपस्या कर रही थीं, उस तपस्यासे रुद्रदेव भी बड़े विस्मयमें पड़ गये। भक्ताधीन होनेके कारण वे समाधिसे विचलित हो गये। सृष्टिकर्ता हरने वसिष्ठादि सप्तर्षियोंका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही वे सातों ऋषि वहाँ शीघ्र ही आ पहुँचे। भगवान् शिवने प्रसन्नतापूर्वक कहा—गिरिराजकुमारी देवेश्वरी पार्वती इस समय गौरीशिखर नामक पर्वतपर तपस्या कर रही हैं, मुझे पतिरूपमें प्राप्त करना ही उनकी तपस्याका उद्देश्य है। मुनीश्वरो! तुम लोग मेरी आज्ञासे वहाँ जाओ और उनकी दृढ़ताकी परीक्षा करो। भगवान् शंकरकी यह आज्ञा पाकर वे सातों ऋषि तुरन्त ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ पार्वती तपस्या कर रही थीं। सप्तर्षियोंद्वारा तपस्याका कारण पूछनेपर पार्वतीने संकोचपूर्वक बताया कि वे भगवान् सदाशिवको पतिरूपमें चाहती हैं। नारदजीके आज्ञानुसार वे उन्हें प्राप्त करनेके लिये कठोर तप कर रही हैं।

नारदजीका नाम सुनकर वे सप्तर्षि छलपूर्वक मिथ्या वचन कहने लगे। पहले उन्होंने नारदकी निन्दा की और कई प्रकारके उदाहरण देकर कहा कि नारदने आजतक किसीका घर नहीं बसाया, वह तो घर फोड़नेवाला है। इसके अनन्तर भगवान् शिवके अमंगल वेश आदिका वर्णन करते हुए पार्वतीको उनसे विरत करनेका प्रयास किया और विष्णुकी प्रशंसा करते हुए उनसे विवाह करनेका प्रस्ताव रखा, परंतु पार्वतीने इसे स्वीकार नहीं किया। शिवकी महिमाका वर्णन करते हुए वे बोलीं—शिव परब्रह्म एवं विकाररहित हैं। वे भक्तोंके लिये ही शरीर धारण करते हैं। वे सदाशिव प्रभु निर्गुण, मायारहित एवं विराट् हैं। हे ब्राह्मणो! यदि शंकर मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे तो मैं सर्वदा अविवाहित रहूँगी। यह कहकर और उन मुनियोंको प्रणाम करके वे पार्वती मौन हो गयीं।

तदनन्तर ऋषियोंने भी पार्वतीका दृढ़ निश्चय जानकर उनकी जय-जयकार की और उन्हें उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया। इसके अनन्तर वे ऋषिगण शिवलोक पहुँचकर भगवान् सदाशिवको सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदनकर अपने-अपने लोकको चले गये।

शंकरद्वारा वृद्धब्राह्मणके रूपमें पार्वतीकी परीक्षा

उन सप्तर्षियोंके चले जानेपर प्रभु शिवने स्वयं पार्वतीके तपकी परीक्षा लेनेकी इच्छा की। वे एक बूढ़े ब्राह्मण ब्रह्मचारीका वेश धारणकर तपस्यामें रत भगवती पार्वतीके पास पहुँचे। उन्होंने पार्वतीसे पूछा—तुम कौन हो और किसकी कन्या हो? इस निर्जन वनमें रहकर इतनी कठिन तपस्या क्यों कर रही हो? पार्वतीने अपना परिचय देते हुए ब्रह्मचारीको अपना पूर्ण वृत्तान्त सुनाया तथा कहा कि बहुत समयतक कठोर तपस्या करनेके बाद भी मुझे मेरे प्राणवल्लभ सदाशिव प्राप्त नहीं हुए, इस कारण अब मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी। इस प्रकार कहकर पार्वतीजी ब्रह्मचारीद्वारा निषेध करनेपर भी अग्निमें प्रवेश कर गयीं, परंतु उसी समय अग्नि चन्दनके समान शीतल हो गयी।

ब्रह्मचारीने पार्वतीसे फिर पूछा—तुम अपनी तपस्याका कारण सत्य-सत्य बताओ? पार्वतीजीने कहा—मैंने मन, वचन और कर्मसे शंकरजीको ही पतिभावसे वरण किया है। मनकी उत्सुकतावश मैं यह कठोर तप कर रही हूँ।

उस ब्राह्मण ब्रह्मचारीने पार्वतीकी बात सुनकर भगवान् शंकरकी घोर निन्दा करनी प्रारम्भ कर दी। शंकरको अवगुणोंकी खान सिद्ध करनेका प्रयास करते हुए पार्वतीको उनसे विरत होनेका बार-बार परामर्श दिया।

उस ब्राह्मणके इस प्रकारके वचन सुनकर पार्वती कुपित मनसे शिवनिन्दक ब्राह्मणसे बोलीं—आप ब्रह्मचारीका रूप धारणकर मुझे छलना चाहते हैं, इसीलिये कुतर्कसे भरी हुई बातें मुझसे कह रहे हैं। वे सदाशिव निर्गुण ब्रह्म हैं और कारणवश सगुण हो जाते हैं। जो सात जन्मोंका दरिद्र हो तो वह भी यदि शंकरकी सेवा करे तो उसे लोकमें स्थिर रहनेवाली लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो पुरुष शिवतत्त्वको न जानकर शिवकी निन्दा करता है, उसका जीवनपर्यन्त संचित किया हुआ पुण्य भस्म हो जाता है। वे सज्जनोंके प्रिय, निर्विकारी प्रभु मेरे तो सर्वस्व हैं और मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। उन महात्मा सदाशिवकी ब्रह्मा, विष्णु भी किसी प्रकार समता नहीं कर सकते।

इस प्रकार कहती हुई वे गिरिराजपुत्री मौन हो गयीं और निर्विकार चित्तसे शिवजीका ध्यान करने लगीं।

उन शिवने जैसा पार्वती ध्यान कर रही थीं, उसी प्रकारका अत्यन्त सुन्दर रूप धारणकर उन्हें दर्शन दिया और पुनः पार्वतीसे वे शिव कहने लगे—हे दृढ़ मनवाली! मैंने तुम्हारी अनेक प्रकारसे परीक्षा की, मेरे इस अपराधके लिये क्षमा करो। मैंने तुम्हारी-जैसी पतिव्रता सती त्रिलोकमें कहीं नहीं देखी। हे शिवे! मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ, तुम अपनी कामना पूर्ण करो।

भगवान् सदाशिवका वचन सुनकर और उनके परमानन्दकारी रूपका दर्शनकर पार्वतीजी परम आनन्दित हो गयीं। इसके अनन्तर पार्वतीजी अपने घरके लिये प्रस्थान कर गयीं, वहाँ उनका पूर्ण स्वागत हुआ। माता

मेनका पार्वतीको पाकर विह्वल हो गयीं। घरमें नित्य गान और उत्सव होने लगे। इसी बीच भगवान् सदाशिव एक नटका रूप धारणकर वहाँ पधारे और अद्भुत लीलाओंका प्रदर्शन किया। मेनका नटकी लीलासे प्रसन्न होकर रत्नोंसे भरपूर उपहार उस नटके लिये लेकर आयीं। उस विलक्षण नटने इसे स्वीकार नहीं किया और इसके बदले शिवाकी याचना की। यह सुनकर मेनका अत्यधिक कुपित हो गयीं और नटको वहाँसे हटानेका प्रयास किया। नटरूपी भगवान् शंकर अपने स्थानपर आ गये।

देवताओंकी प्रेरणासे भगवान् शंकर पुनः वैष्णव-ब्राह्मणके वेशमें हिमवान्‌के यहाँ पधारे और शिवकी निन्दा करते हुए उनके दोषोंका वर्णन किया। इसे सुनकर मेनका अत्यधिक दुखित हुईं और वे पार्वतीका विवाह शिवसे करनेके लिये किसी प्रकार तैयार नहीं हुईं।

इधर भगवान् शिवको इस बातका पता लगा तो उन्होंने अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंको बुलाया तथा मेनाके पास जाकर उन्हें समझानेकी आज्ञा दी।

अरुन्धतीसहित सप्तर्षियोंने शिवकी आज्ञासे हिमवान्‌के यहाँ पहुँचकर उन्हें समझानेका प्रयास किया। हिमवान्‌ने कहा कि एक वैष्णववेशधारी ब्राह्मणने आकर मेनाके समक्ष शिवके दोषोंका वर्णन करते हुए उनकी अत्यधिक निन्दा की। इसे सुनकर मेना नाराज होकर कोपभवनमें चली गयी हैं। सप्तर्षियोंने अरुन्धतीको मेनाके पास भेजा। अरुन्धतीको देखकर मेना उठ खड़ी हुईं। अरुन्धतीने भगवान् सदाशिवकी कई प्रकारसे प्रशंसा करते हुए मेनाको समझाया। अन्ततोगत्वा मेना और हिमवान् भगवान् शिवके साथ पार्वतीका विवाह करनेको राजी हो गये।

शिव-पार्वतीके विवाहकी तैयारी

सप्तर्षियोंने भगवान् शंकरके पास जाकर उन्हें यह समाचार विस्तारपूर्वक सुनाकर अनुरोध किया कि वेदोक्त विधिसे पार्वतीका पाणिग्रहण कीजिये।

उधर हिमवान्‌ने विवाहकी तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं और विश्वकर्माके द्वारा बरातियोंके लिये कृत्रिम आवासका निर्माण एवं सजावट आदि करायी।

इधर शिवजीके पास लग्नपत्रिका भेजी गयी, जिसे पढ़कर वे अत्यन्त आनन्दित हुए और नारदजीके द्वारा सभी देवताओं, मुनियों, सिद्धोंको तथा अन्य लोगोंको विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये निमन्त्रण भेजा। तदनन्तर समस्त देवता, यक्ष, दानव, नाग, पक्षी, अप्सरा आदि विवाह-उत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये पधारे।

भगवान् विष्णुके अनुरोध करनेपर भगवान् सदाशिवने पूजन आदिका सब कार्य वेदोक्त विधिसे सम्पन्न किया। तदनन्तर सबके साथ नन्दी आदि अपने सब गणोंको साथ लेकर हिमाचलपुरीकी ओर प्रस्थान कर गये।

शिव-बरातका वर्णन

भगवान् शिवकी बरात विलक्षण थी, बरातमें वाहनोंपर विराजित खूब सजे-धजे बाजे-गाजेके साथ पताकाएँ फहराते हुए वसु आदि गन्धर्व, मणिग्रीवादि यक्ष, देवराज इन्द्र, भृगु आदि मुनीश्वर, ब्रह्मा तथा भगवान् विष्णु—सबकी टोलियाँ अलग-अलग चल रही थीं। इनमेंसे प्रत्येक दलके स्वामीको देखकर मेना पूछती थीं कि क्या ये ही शिव हैं? नारदजी कहते—ये तो शिवके सेवक हैं। मेना यह सुनकर बड़ी प्रसन्न होतीं और मनमें सोचतीं कि जब उनके सेवक ही इतने सुन्दर हैं तो इनके स्वामी शिव तो पता नहीं कितने सुन्दर होंगे! इसी क्रममें भगवान् रुद्रदेवकी परम अद्भुत सेना भी वहाँ आ पहुँची, जो भूत-प्रेत आदिसे संयुक्त तथा नाना गणोंसे सम्पन्न थी। इनमें किन्हींके मुँह टेढ़े थे तो कोई अत्यन्त कुरूप दिखायी देते थे, कोई बड़े विकराल थे, कोई लँगड़े थे तो कोई अन्धे। गणोंमेंसे कितनोंके तो मुँह नहीं थे तो बहुतोंके बहुतेरे मुख थे। इस तरह सभी गण नाना प्रकारकी वेषभूषा धारण किये थे। उन असंख्य भूत-प्रेत आदि गणोंको देखकर मेना तत्काल भयसे व्याकुल हो गयीं, उन्हींके बीचमें भगवान् शंकर भी थे। वे वृषभपर सवार थे, उनके पाँच मुख थे, प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे और सारे अंगमें विभूति लगी हुई थी। मस्तकपर जटाजूट और चन्द्रमाका मुकुट, आँखें भयानक और आकृति विकराल थी। यह कैसा विकृत दृश्य है, मैं दुराग्रहमें फँसकर मारी गयी—इस प्रकार कहकर मेना

उसी क्षण मूर्च्छित हो गयीं। थोड़ी देरमें चेत होनेपर वे क्षुब्ध होकर अत्यन्त विलाप एवं तिरस्कार करने लगीं। उसी समय भगवान् विष्णु भी वहाँ पधारे और उन्होंने अनेक प्रकारसे मेनाको समझाते हुए शिवके महत्त्वका वर्णन किया।

मेनाने शिवके महत्त्वको स्वीकार करते हुए श्रीहरिसे कहा—यदि भगवान् शिव सुन्दर शरीर धारण कर लें तो मैं उन्हें अपनी पुत्री दे सकती हूँ।

ब्रह्माजीने नारदजीसे कहा कि उसी समय तुमने भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे भगवान् शंकरके पास जाकर उन्हें स्तोत्रोंद्वारा प्रसन्न किया। तुम्हारी बात सुनकर शम्भुने प्रसन्नतापूर्वक अद्भुत, उत्तम एवं दिव्य रूप धारण कर लिया।

भगवान् शिवका मंगलमय वरवेश

भगवान् शम्भुका वह स्वरूप कामदेवसे भी अधिक सुन्दर और लावण्यका परम आश्रय था। उस स्वरूपका दर्शनकर शैलराजकी पत्नी मेना आश्चर्यचकित हो गयीं। वहाँ उपस्थित सभी पुरवासिनियाँ भगवान् शंकरका वह मनोहर रूप देखकर सम्मोहित हो गयीं। हिमाचलकी पत्नी मेना भी शम्भुकी आरती उतारनेके लिये हाथमें दीपकोंसे सजी हुई थाली लेकर सभी ऋषिपत्नियों तथा अन्य स्त्रियोंके साथ आदरपूर्वक द्वारपर आयीं। विवाहका सब कार्य विधि-विधानसे सम्पन्न हुआ।

एक ब्राह्मणपत्नीद्वारा पार्वतीको पातिव्रत्यधर्मका उपदेश

सप्तर्षियोंके आग्रह करनेपर मेना पार्वतीको विदा करनेके लिये उद्यत हुईं। उन्होंने विधिपूर्वक वैदिक एवं लौकिक कुलाचारका पालन करते हुए राजोचित शृंगारकर पार्वतीको विभूषित किया। तत्पश्चात् मेनाके मनोभावोंको जानकर एक सती साध्वी ब्राह्मणपत्नीने गिरिजाको उत्तम पातिव्रतकी शिक्षा प्रदान की। ब्राह्मणपत्नी बोली—गिरिराजकिशोरी! संसारमें पतिव्रता नारी ही धन्य है। पतिव्रता सब लोकोंको पवित्र करनेवाली और समस्त पापराशिको नष्ट कर देनेवाली है। श्रुतियों और स्मृतियोंमें पातिव्रतधर्मको महान् बताया गया है। इसको जैसा श्रेष्ठ बताया जाता है, वैसा दूसरा धर्म नहीं है। पातिव्रत धर्मकी शिक्षा यहाँ विस्तारसे दी गयी है।

इसके अनन्तर भगवती शिवाकी विदाईका मार्मिक वर्णन हुआ है। शिवाने समस्त गुरुजनोंको, माता-पिताको, पुरोहित और ब्राह्मणोंको, भौजाइयों और दूसरी स्त्रियोंको प्रणाम करके यात्रा प्रारम्भ की। सबने शिवाको आशीर्वाद प्रदान किया।

ब्रह्माजी कहते हैं—तात! इस प्रकार मैंने परम मंगलमय शिव-विवाहका वर्णन किया। यह शोकनाशक, आनन्ददायक तथा धन और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। इस प्रकार रुद्रसंहिताका पार्वतीखण्ड पूर्ण हुआ।

रुद्रसंहिता (कुमारखण्ड)

नारदजीने ब्रह्माजीसे पूछा—हे ब्रह्मन्! भगवान् शंकरने पार्वतीसे विवाह करनेके पश्चात् कैलास जाकर क्या किया? उन परमात्मा शिवको किस प्रकार पुत्र उत्पन्न हुआ? तारकासुर-वध किस प्रकार हुआ?

ब्रह्माजीने कहा—शिवजीके कैलास पहुँचते ही वहाँ महान् उत्सव होने लगा। सब देवगण प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये। इसके बाद भगवान् शम्भु पार्वतीके साथ देवताओंके वर्ष-परिमाणके अनुसार एक हजार वर्षतक विहार करते रहे।

कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा

ब्रह्माजीने कथा-प्रसंग सुनाकर कुमारके गंगासे उत्पन्न होने तथा कृत्तिकादि छः स्त्रियोंके द्वारा उनके पाले जाने, उन छहोंकी सन्तुष्टिके लिये उनके छः मुख धारण करने और कृत्तिकाओंके द्वारा पाले जानेके कारण उनका कार्तिकेय नाम होनेकी बात कही। तदनन्तर उनके शंकर-गिरिजाकी सेवामें लाये जानेकी कथा सुनायी। फिर ब्रह्माजीने कहा—भगवान् शंकरने कुमारको गोदमें बैठाकर अत्यन्त स्नेह किया। देवताओंने उन्हें नाना प्रकारके पदार्थ, विद्याएँ, शक्ति तथा अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। पार्वतीके हृदयमें प्रेम समाता नहीं था, उन्होंने हर्षपूर्वक कुमारको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान किया, साथ ही चिरंजीवी भी बना दिया।

तारकासुर-संग्राम

इसी बीच देवताओंने भगवान् शंकरसे कहा—प्रभो! तारकासुर कुमारके हाथों ही मारा जानेवाला है, इसलिये ही यह पार्वती-परिणय तथा कुमार-उत्पत्ति आदि उत्तम चरित्र घटित हुआ है। अत: हम लोगोंके हितार्थ उसका कामतमाम करनेके हेतु कुमारको आज्ञा दीजिये। हम लोग आज ही अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर तारकको मारनेके लिये रणयात्रा करेंगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! यह सुनकर भगवान् शंकरका हृदय दयार्द्र हो गया। उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके उसी समय तारकका वध करनेके लिये अपने पुत्र कुमारको देवताओंको सौंप दिया। फिर तो शिवजीकी आज्ञा मिल जानेपर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता एकत्र होकर तुरंत ही उस पर्वतसे चल दिये। उस समय श्रीहरि आदि देवताओंके मनमें पूर्ण विश्वास था कि ये तारकासुरका वध अवश्य कर डालेंगे। वे भगवान् शंकरके तेजसे भावित हो कुमारके सेनापतित्वमें तारकका संहार करनेके लिये रणक्षेत्रमें आये। उधर महाबली तारकने जब देवताओंके इस युद्धोद्योगको सुना तो वह भी एक विशाल सेनाके साथ देवोंसे युद्ध करनेके लिये तत्काल ही चल पड़ा। उसकी उस विशाल वाहिनीको आते देख देवताओंको परम विस्मय हुआ। उसी समय भगवान् विष्णु आदि सम्पूर्ण देवताओंके प्रति आकाशवाणी हुई—देवगण! तुम लोग जो कुमारके अधिनायकत्वमें युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हो, इससे तुम संग्राममें दैत्योंको जीतकर विजयी होगे।

ब्रह्माजी कहते हैं—मुने! उस आकाशवाणीको सुनकर सभी देवताओंका उत्साह बढ़ गया। उनकी युद्धकामना बलवती हो गयी और वे सब युद्धके लिये आ डटे। इधर बहुसंख्यक असुरोंसे घिरा हुआ वह तारक भी बहुत बड़ी सेनाके साथ वहाँ आ धमका। भयंकर युद्ध होने लगा।

भगवान् श्रीहरिने अपने आयुध सुदर्शन चक्र और शार्ङ्ग धनुषको लेकर युद्धस्थलमें महादैत्य तारकपर आक्रमण किया। तदनन्तर सबके देखते-देखते श्रीहरि और तारकासुरमें अत्यन्त रोमांचकारी महायुद्ध छिड़ गया। तब ब्रह्माजीने स्वामिकार्तिकसे कहा—हे पार्वतीसुत! विष्णु और तारकासुरका यह व्यर्थ युद्ध शोभा नहीं दे रहा है; क्योंकि विष्णुके हाथों इस तारककी मृत्यु नहीं होगी। यह मुझसे वरदान पाकर अत्यन्त बलवान् हो गया है। हे पार्वतीनन्दन! तुम्हारे अतिरिक्त इस पापीको दूसरा कोई नहीं मार सकता। तुम शीघ्र ही उस दैत्यका वध करनेके लिये तैयार हो जाओ। तारकका संहार करनेके निमित्त ही तुम शंकरसे उत्पन्न हुए हो।

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर कुमार कार्तिकेयने प्रसन्नतापूर्वक 'तथास्तु'—ऐसा ही होगा कहा तथा वे युद्धके लिये तत्पर हो गये।

कुमार कार्तिकेयके साथ तारकासुरका भयंकर युद्ध होने लगा। सबके देखते-देखते कुमारके आघातसे तारकासुर सहसा धराशायी हो गया और उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। महाबली दैत्यराज तारकके मारे जानेपर सभी देवता आनन्दमग्न हो गये। उस समय भगवान् शंकर भी कार्तिकेयकी विजयका समाचार पाकर पार्वतीजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहाँ पधारे। स्नेहसे युक्त पार्वतीजी परम प्रेमपूर्वक अपने पुत्र कुमारको अपनी गोदमें लेकर लाड़-प्यार करने लगीं। उस समय वहाँ एक महान् विजयोत्सव मनाया गया। देवताओंने पुष्पवर्षा की। तत्पश्चात् भगवान् रुद्र जगज्जननी भवानीके साथ अपने निवास-स्थान कैलास पर्वतको चले गये। इधर सभी देवताओंने शंकरनन्दन कुमारका स्तवन करते हुए निवेदन किया—हे कुमार! आपने असुरराज तारकको मारकर हम सबको तथा चराचर जगत्को सुखी कर दिया। अब आप अपने माता-पिता पार्वती और शंकरका दर्शन करनेके लिये शिवके निवासस्थल कैलासपर चलनेकी कृपा करें।

तदनन्तर सब देवताओंके साथ कुमार स्कन्द शिवजीके समीप कैलास पहुँच गये। वहाँ शिव-शिवाके साथ सबने बड़ा आनन्द मनाया। देवताओंने शिवजीकी स्तुति की। शिवजीने उन सबोंको वरदान तथा अभयदान देकर विदा दिया।

भगवान् गणपतिके जन्मकी कथा

नारदजी बोले—प्रजानाथ! मैंने स्वामिकार्तिकके सब वृत्तान्त तथा उनकी उत्तम कथा सुन ली, अब गणेशका उत्तम चरित्र सुनना चाहता हूँ।

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! एक समय पार्वतीके मनमें ऐसा विचार आया कि मेरा कोई एक ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ, कार्यकुशल और मेरी ही आज्ञामें तत्पर रहनेवाला हो। यों विचारकर पार्वतीदेवीने अपने शरीरके मैलसे एक ऐसे चेतन पुरुषका निर्माण किया, जो सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे संयुक्त था। देवीने कहा—तात! तुम मेरे पुत्र हो, मेरे अपने हो, अतः तुम मेरी बात सुनो। आजसे तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। मेरी आज्ञाके बिना कोई भी हठपूर्वक मेरे महलके भीतर प्रवेश न करने पाये, चाहे वह कहींसे भी आये, कोई भी हो।

ब्रह्माजी कहते हैं—यों कहकर पार्वतीने गणेशके हाथमें एक सुन्दर छड़ी दे दी और गणराजको अपने द्वारपर स्थापित कर दिया तथा सखियोंके साथ स्वयं स्नान करने लगीं। इसी समय भगवान् शिव द्वारपर आ पहुँचे। गणेश पार्वतीपतिको पहचानते तो थे नहीं, अतः बोल उठे—माताकी आज्ञाके बिना अभी भीतर मत जाओ, कारण माता स्नान करने बैठ गयी हैं। महेश्वरके गण उन्हें समझाकर हटानेका प्रयास कर रहे थे, परंतु गणेश वहाँसे हटे नहीं। शिवगणों एवं गणेशजीका युद्ध होने लगा, पर वे गणेशको पराजित न कर सके, तब स्वयं शूलपाणि महेश्वरने गणेशसे युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। घोर युद्ध हुआ अन्ततोगत्वा स्वयं शूलपाणि महेश्वरने त्रिशूलसे गणेशजीका सिर काट डाला।

जब यह समाचार पार्वतीजीको मिला, तब वे क्रुद्ध हो गयीं और बहुत सारी सखियोंको उत्पन्न करके प्रलय-जैसी स्थिति बना दीं। यह देख देवर्षियोंने भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये प्रार्थना की तो भगवती पराम्बाने कहा—यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय तो सब ठीक हो जायगा।

भगवान् शंकरके आज्ञानुसार शिवगणोंने उत्तर दिशासे एक हाथीका सिर लाकर उस धड़में जोड़ दिया। इसके अनन्तर देवताओंने वेदमन्त्रोंद्वारा जलको अभिमन्त्रितकर उस बालकके शरीरपर छिड़का, जिससे वह बालक चेतनायुक्त होकर जीवित हो गया।

अपने पुत्रको जीवित देखकर पार्वती देवी प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने हर्षातिरेकसे उसका मुख चूमा और प्रेमपूर्वक उसे वरदान देते हुए कहा—अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा।

ब्रह्माजी कहते हैं—हे मुने! तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और शंकर आदि सभी देवताओंने मिलकर पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये गणेशको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

शिवजी कहते हैं—हे गिरिजानन्दन! विघ्ननाशके कार्यमें तेरा नाम सबसे श्रेष्ठ होगा। तू सबका पूज्य है—इतना कहनेके पश्चात् महात्मा शंकर गणेशको पुनः वरदान देते हुए बोले—हे गणेश्वर! तू भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्थीको चन्द्रमाका शुभोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है, इसलिये उसी दिनसे आरम्भ करके तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये। यहाँ शिवजीने चतुर्थीव्रतकी शास्त्रोक्त विधि तथा उसकी महिमाका वर्णन प्रस्तुत किया है।

गणेशविवाहकी कथा

कुछ समय बीत जानेपर एक दिन शिव-पार्वतीके मनमें यह विचार आया कि हमारे दोनों पुत्र विवाहके योग्य हो गये हैं। उधर गणेश और कार्तिक दोनों पुत्रोंमें भी विवाह करनेकी इच्छा प्रबल होने लगी। पहले विवाह हमारा होना चाहिये—दोनोंने यह इच्छा व्यक्त की। शिव-पार्वतीने कहा—सुपुत्रो! हम लोगोंने पहलेसे एक ऐसा नियम बना रखा है कि जो सारी पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले लौट आयेगा, उसीका विवाह पहले होगा।

माता-पिताकी यह बात सुनकर महाबली कार्तिकेय अपने स्थानसे पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये चल दिये,

परंतु गणेश वहीं खड़े रह गये। वे मनमें विचार करने लगे कि परिक्रमा तो मुझसे हो नहीं सकेगी, अब मैं क्या करूँ?

गणेशजीने अपने माता-पिता शिव-पार्वतीको सुन्दर आसनपर बिठाया और विधिपूर्वक उनकी पूजाकर सात परिक्रमाएँ सम्पन्न कीं और निवेदन किया कि शास्त्रोंके अनुसार मेरी पृथ्वी-परिक्रमा पूर्ण हो गयी। अतः मेरा विवाह पहले कर देना चाहिये।

भगवान् शिवा-शिवने गणेशजीकी बात स्वीकार कर ली और सिद्धि एवं बुद्धिके साथ गिरिजानन्दन गणेशका विवाह सम्पन्न हो गया। उनकी सिद्धि

नामक पत्नीसे 'क्षेम' और बुद्धिसे 'लाभ' नामक पुत्र हुआ।

कुमार कार्तिकेयका क्रौंचपर्वतपर जाना

इधर नारदने कार्तिकेयको माता-पिताके द्वारा छल करनेकी बात कहकर उन्हें भड़काया। कुमार स्कन्द माता-पिताको प्रणामकर क्रोधाग्निसे जलते हुए शिवा-शिवके मना करनेपर भी क्रौंच पर्वतपर चले गये और तभीसे वे आज भी वहींपर हैं।

ब्रह्माजी कहते हैं—हे देवर्षे! उसी दिनसे लेकर वे शिवपुत्र कार्तिकेय कुमार ही रह गये। कृत्तिका नक्षत्रयुक्त कार्तिक पूर्णिमा तिथिमें जो व्यक्ति कुमारका दर्शन करता है, उसके पाप भस्म हो जाते हैं और उसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति हो जाती है। स्कन्दका वियोग होनेपर उन्हें सुखी करनेके लिये शिव-पार्वती स्वयं अपने अंशसे क्रौंच पर्वतपर गये। वहाँ मल्लिकार्जुन नामक ज्योतिर्लिंग है, आज भी वहाँ उनके दर्शन होते हैं। पार्वतीसहित उन शिवको आया जानकर वे कुमार विरक्त होकर वहाँसे अन्यत्र जानेको उद्यत हो गये। देवताओं और मुनियोंके बहुत प्रार्थना करनेपर भी वे कार्तिकेय उस स्थानसे तीन योजन दूर हटकर निवास करने लगे।

हे नारद! पुत्रके स्नेहसे आतुर वे दोनों शिवा-शिव कुमारके दर्शनके लिये पर्व-पर्वपर वहाँ जाते रहते हैं। अमावस्याके दिन वहाँ शिवजी स्वयं जाते हैं और पूर्णमासीके दिन पार्वतीजी निश्चित रूपसे वहाँ जाती हैं।

हे मुनीश्वर! आपने कार्तिकेय और गणेशका जो-जो वृत्तान्त पूछा, वह श्रेष्ठ वृत्तान्त मैंने वर्णित किया।

इस प्रकार रुद्रसंहिताका चतुर्थ कुमारखण्ड पूर्ण हुआ।

रुद्रसंहिता (युद्धखण्ड)

नारदजी कहते हैं—हे ब्रह्मन्! पराक्रमी भगवान् शंकरने एक ही बाणसे एक साथ दैत्योंके तीनों पुरोंको किस प्रकार जलाया? मायासे निरन्तर विहार करनेवाले भगवान् शंकरके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! पूर्वकालमें व्यासजीने महर्षि सनत्कुमारसे यही बात पूछी थी। तब सनत्कुमारजीने उस समय जो कुछ कहा था, वही बात मैं आपको सुनाता हूँ।

त्रिपुरवधकी कथा

सनत्कुमार व्यासजीसे कहते हैं—हे मुनीश्वर! शिवजीके पुत्र कार्तिकेयके द्वारा तारकासुरका वध कर दिये जानेपर उसके तीनों पुत्र—तारकाक्ष, विद्युन्माली तथा कमलाक्ष घोर तप करने लगे। उन तीनों दैत्योंने सम्पूर्ण भोगोंको त्यागकर मेरुपर्वतकी गुफामें जाकर अत्यन्त अद्भुत तप किया। इस प्रकार तप करते हुए तथा ब्रह्माजीमें मन लगाये हुए उन तारकपुत्रोंका बहुत समय

बीत गया। उनके तपसे सन्तुष्ट होकर ब्रह्माजी वहाँ प्रकट हो गये और उन असुरोंसे अभीष्ट वर माँगनेको कहा।

दैत्य बोले—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें सब प्राणियोंसे अवध्यत्व प्रदान कीजिये। हम अजर-अमर हो जायँ और तीनों लोकोंमें अन्य प्राणियोंको मार सकें। उनकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—हे असुरो! पूर्ण अमरत्व किसीको नहीं मिल सकता, अत: कोई अन्य वर माँग लो। इस भूतलपर जहाँ भी कोई प्राणी जन्मा है, वह अवश्य मरेगा।

दैत्य बोले—हे भगवन्! हम लोग यद्यपि पराक्रमशील हैं, किंतु हमारे पास कोई ऐसा स्थान नहीं है, जिसमें शत्रु प्रवेश कर न सके और वहाँ हम सुखसे निवास कर सकें। अत: आप ऐसे तीन नगरोंका—एक स्वर्णका पुर, दूसरा चाँदीका तथा तीसरा वज्रके समान लोहेका पुर निर्माण कराकर हमें प्रदान कीजिये, जो परम अद्भुत, सभी सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण और देवताओंके लिये सर्वथा अनतिक्रमणीय हों।

सनत्कुमारजीने व्यासजीसे कहा—उनका यह वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने उन्हें यह वर प्रदान कर दिया। उसके बाद उन्होंने दैत्यशिल्पी मयको आज्ञा दी—हे मय! तुम सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगरोंका निर्माण कर दो। मयको यह आज्ञा प्रदानकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये। तदनन्तर मयने बड़े प्रयत्नके साथ तीनों पुरोंका निर्माण किया। ये तीनों पुर क्रमसे स्वर्गमें, आकाशमें एवं भूलोकमें अवस्थित हुए।

इस प्रकार तीनों पुरोंको प्राप्तकर महाबली तारकासुरके पुत्र उनमें प्रविष्ट हुए और सभी प्रकारके सुखोंका भोग करने लगे। उन पुण्यकर्मा राक्षसोंको वहाँ निवास करते हुए बहुत लम्बा काल व्यतीत हो गया।

तब उनके तेजसे दग्ध हुए इन्द्रादि देवता दुखी होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उनसे अपना दु:ख प्रकट किया।

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! आप लोग उन दैत्योंसे बिलकुल मत डरिये। इन्द्रसहित सभी देवता शिवजीसे प्रार्थना करें। यदि वे सर्वाधीश प्रसन्न हो जायँ तो आप लोगोंका कार्य पूर्ण हो सकेगा।

तब ब्रह्माजीकी बात सुनकर इन्द्रसहित सभी देवता दुखी होकर शिवलोक गये और भगवान् शिवसे प्रार्थना की। भगवान् शंकरने कहा—वे दैत्य मेरी भक्ति और सेवा-शुश्रूषामें संलग्न हैं। इसलिये जबतक वे वेद-शास्त्रोक्त धर्मसे विमुख नहीं होंगे, तबतक मेरे द्वारा उनका कोई अनिष्ट करना सम्भव नहीं है। इसलिये आप देवतागण विष्णुसे बात करें। तब वे सभी देवगण भगवान् विष्णुके समक्ष प्रस्तुत हुए और पूर्ण दीनताके साथ विष्णुके समक्ष अपनी परिस्थितियोंको बताया तथा भगवान् शिवके विचारोंको भी व्यक्त किया।

भगवान् विष्णुने कहा—लिंगार्चनपरायण वे दैत्य इस लोकमें अनेक प्रकारकी सम्पत्तिका भोग कर रहे हैं, परलोकमें भी उन्हें मोक्ष प्राप्त होगा, फिर भी मैं अपनी मायासे उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न डालकर देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त क्षणभरमें त्रिपुरका संहार करूँगा। जबतक वे शंकरकी अर्चना करते हैं और पवित्र कृत्य करते हैं, तबतक उनका नाश नहीं हो सकता, इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे वहाँसे वेद-धर्म चला जाय, तब वे दैत्य लिंगार्चन त्याग देंगे—ऐसा निश्चय करके विष्णुजीने उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न करनेके लिये श्रुतिखण्डनरूप उपाय किया।

उन देवाधिदेव विष्णुजीकी मायासे सभी पुरवासियोंके अपने धर्मोंसे सर्वथा विमुख हो जानेपर अधर्मकी वृद्धि होने लगी। सभी देवताओंने भगवान् शंकरसे प्रार्थना की और कहा—हे भक्तवत्सल! उन दैत्योंने हमारे भाग्यसे सभी धर्मोंका परित्याग कर दिया है। हे शरणप्रद! इस समय हम आपकी शरणमें आये हैं, आप जैसा चाहें, वैसा करें।

त्रिपुरध्वंसके लिये दिव्य रथका निर्माण

भगवान् शंकरने कहा—मेरे पास योग्य सारथीसहित दिव्य रथ नहीं है और संग्राममें विजय दिलानेवाला धनुष-बाण आदि भी नहीं है, जिस रथपर बैठकर धनुष-बाण लेकर तथा अपना मन लगाकर उन प्रबल

दैत्योंका संग्राममें वध कर सकूँ।

तब सभी देवता प्रभुके वचन सुनकर प्रसन्न होकर बोले—हे महेश्वर! हम लोग आपके रथादि उपकरण बनकर युद्धके लिये तैयार हैं। भगवान् शंकरने कहा कि रथ, सारथी, दिव्य धनुष तथा उत्तम बाण शीघ्र उपस्थित कीजिये। तब उनकी आज्ञासे विश्वकर्माने संसारके कल्याणके लिये सर्वदेवमय दिव्य तथा अत्यन्त सुन्दर रथका निर्माण किया। शिवजीके रथपर आरूढ़ हो जानेपर वह रथ उन बलवान् दानवोंके आकाशस्थित तीनों पुरोंको उद्देश्य करके चलने लगा। रथपर आरूढ़ भगवान् शंकरने पाशुपत-व्रतकी चर्चा की और कहा—जो इस दिव्य पाशुपत व्रतका आचरण करेगा वह पशुत्वसे मुक्त हो जायगा।

सनत्कुमार बोले—उन परमात्मा महेश्वरका यह वचन सुनकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगणोंने कहा—ऐसा ही होगा। इसलिये हे वेदव्यास! देवता एवं असुर—सभी उन प्रभुके पशु हैं और पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाले रुद्र भगवान् शंकर पशुपति हैं, तभीसे उन महेश्वरका यह कल्याणप्रद 'पशुपति' नाम भी सभी लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ।

सनत्कुमारजी कहते हैं—हे व्यासजी! इसके बाद महादेव शम्भु समस्त युद्ध-सामग्रियोंसे युक्त हो उस रथपर बैठकर त्रिपुरके दैत्योंको दग्ध करनेके लिये उद्यत हुए। पर इस कार्यमें गणेशजीके द्वारा विघ्न होनेपर एक अत्यन्त मनोहर आकाशवाणी शंकरजीने सुनी—हे भगवन्! जबतक आप इन गणेशजीका पूजन नहीं करेंगे, तबतक आप त्रिपुरका नाश नहीं कर सकेंगे—यह वचन सुनकर सदाशिवने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीका पूजन किया।

जब महादेवजी गणेशका पूजनकर स्थित हो गये, उसी समय वे तीनों पुर शीघ्र ही एकमें मिल गये। उसी समय जगत्पति ब्रह्मा तथा विष्णुने कहा—हे महेश्वर! अब इन दैत्य तारकपुत्रोंके वधका समय उपस्थित हो गया है; क्योंकि इनके तीनों पुर एक स्थानमें आ गये हैं। जबतक ये तीनों पुर एक-दूसरेसे अलग नहीं होते, तबतक आप बाण छोड़िये और त्रिपुरको भस्म कर दीजिये।

शिवजीके द्वारा छोड़े गये तीव्रगामी उस विष्णुमय बाणने त्रिपुरमें रहनेवाले उन तीनों दैत्योंको दग्ध कर दिया। इसके साथ ही सैकड़ों दैत्य हाहाकार करते हुए उस बाणकी अग्निसे भस्म हो गये।

जिस प्रकार कल्पान्तमें जगत् भस्म हो जाता है, उसी प्रकार उस अग्निने केवल विश्वकर्मा मय दानवको छोड़कर सभीको भस्म कर दिया। महेश्वरके शरणागत होनेपर नाशकारक पतन नहीं होता है। इसलिये सब पुरुषोंको ध्यानपूर्वक यह यत्न करना चाहिये, जिससे भगवान् शंकरमें भक्ति बढ़े।

इसके अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवताओंने भगवान् शंकरकी स्तुति की। शिवजीने प्रसन्न होकर मनोऽभिलषित वर प्रदान किया।

भगवान् शिवद्वारा मयको वरदान

सनत्कुमारजी कहते हैं—उसी समय मय दानव प्रेमपूर्वक गद्‌गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगा। शिवजीने प्रसन्न होकर मय दानवसे वर माँगनेको कहा। मयने कहा—हे देवदेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान कीजिये। मुझमें कभी भी असुर भाव न रहे। हे नाथ! मैं आपके शुभ भजनमें मग्न रहूँ। भगवान् महेश्वर प्रसन्न होकर बोले—तुम मेरी आज्ञासे अपने परिवारसहित स्वर्गलोकसे भी मनोहर वितललोकको जाओ तथा निर्भय होकर वहाँ रहो।

मयने भगवान्‌की इस आज्ञाको स्वीकार किया और सबको प्रणामकर वह वितललोकको चला गया।

जलन्धरके वधकी कथा

व्यासजी कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैंने सुना है कि पूर्वकालमें प्रभु शंकरजीने महादैत्य जलन्धरका वध किया था, आप शंकरजीके उस चरित्रको सुनानेकी कृपा करें।

व्यासजीद्वारा इस प्रकार पूछनेपर महामुनि सनत्कुमारजीने पूरी कथा सुनायी—

एक बार बृहस्पति तथा इन्द्र शंकरजीका दर्शन

करनेके लिये कैलासको गये। भगवान् शंकर उनके ज्ञानकी परीक्षा लेनेके लिये एक भयंकर पुरुषका रूप धारण करके मार्गमें स्थित हो गये। इन्द्र उन्हें पहचान नहीं सके और उन्हें देखकर क्रोधित हुए। भगवान् शंकरने भी क्रोधित होकर उन्हें जलानेके लिये अपने नेत्रोंसे एक प्रज्वलित तेज उत्पन्न किया। बृहस्पति अपनी बुद्धिसे भगवान् शंकरको पहचानकर उनकी स्तुति करने लगे और इन्द्रको भी उनके चरणोंपर गिराया। तब प्रसन्न होकर इन्द्रकी रक्षा करते हुए उन्होंने उस अग्निको समुद्रमें फेंक दिया।

समुद्रमें फेंका हुआ वह तेज शीघ्र ही बालकरूप हो गया। वह बालक गंगासागरके संगमपर स्थित होकर बड़े ऊँचे स्वरमें रोने लगा। उसके रुदनसे सभी लोक व्याकुल हो गये तथा समस्त देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने उस बालकके विषयमें समुद्रसे पूछा। उसी समय उस बालकने ब्रह्माजीका कण्ठ पकड़ लिया। ब्रह्माजीने किसी प्रकार अपना गला छुड़ाया, परंतु उनकी आँखोंसे आँसू आ गये। समुद्रके कहनेपर उस बालकका जातकोक्त फल ब्रह्माजीने सुनाया। ब्रह्माजीने कहा—इसने मेरे नेत्रोंसे निकले हुए जलको धारण किया, इसलिये इसका नाम जलन्धर होगा। यह बालक समस्त दैत्योंका अधिपति होगा। रुद्रको छोड़कर यह सभी प्राणियोंसे अवध्य होगा। इसके अनन्तर सागरके अनुरोधपर असुर कालनेमिने अपनी पुत्री वृन्दाका विवाह जलन्धरसे कर दिया।

देवताओंद्वारा छलपूर्वक समुद्र-मन्थन एवं अमृत-पान आदिकी बातें सुनकर जलन्धर अत्यधिक क्रोधित हो गया और स्वर्ग पहुँचकर उसने इन्द्रसहित सभी देवताओंको जीत लिया और अमरावतीपुरीपर अपना अधिकार कर लिया। देवताओंको भागते हुए देखकर भगवान् हृषीकेश विष्णु गरुडपर सवार होकर जलन्धरसे भयंकर युद्ध करने लगे। उस दैत्यसे बहुत देरतक युद्ध करके विष्णु विस्मित हो गये और प्रसन्न होकर उसे वरदान देने लगे।

जलन्धर धर्मानुसार शासन करने लगा। देवतागण संत्रस्त होकर भगवान् शंकरके पास गये और अपनी रक्षाके लिये प्रार्थना करने लगे। यह निश्चय हुआ कि जलन्धरकी पत्नी वृन्दाका पातिव्रत्य जबतक नष्ट नहीं होगा, तबतक जलन्धरकी मृत्यु सम्भव नहीं है, अतः भगवान् विष्णुने पार्वतीकी प्रेरणासे वृन्दाका पातिव्रत्य नष्ट किया। वृन्दाको जब यह बात मालूम हुई तो वह अत्यन्त क्षुब्ध हो गयी और वह भगवान् विष्णुको शाप देकर अग्निमें प्रवेश कर गयी। इधर भगवान् शंकरने देवताओंके कार्यको सिद्ध करनेके लिये नारदजीको बुलाकर भेजा। नारदजी देवताओंको आश्वस्त करके जलन्धरके पास गये और उससे बोले—तुम्हारे पास सम्पूर्ण समृद्धि रहते हुए भी स्त्रीरत्न नहीं है।

जलन्धरके पूछनेपर नारदजीने बताया कि कैलास पर्वतपर विश्वमोहिनी पार्वती हैं, जो अत्यन्त सुन्दर हैं। जलन्धरने अपना एक दूत भेजा। उसकी भगवान् शिवसे वार्ता हुई। उसकी बातसे भगवान् शंकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। तत्पश्चात् भगवान् शंकरका जलन्धरसे घोर युद्ध हुआ। अन्ततोगत्वा भगवान् शंकरद्वारा धराशायी होकर वह मृत्युको प्राप्त हुआ।

सनत्कुमार कहते हैं—हे मुने! अनन्तमूर्ति सदाशिवके द्वारा उस समुद्रपुत्र जलन्धरके मारे जानेपर सभी प्रसन्न हो गये और सम्पूर्ण त्रैलोक्य शान्तिमय हो गया।

शंखचूडकी कथा

कश्यपकी पत्नियोंमें एकका नाम दनु था, उस दनुके बहुत-से महाबली पुत्र हुए, उनमें एकका नाम विप्रचित्ति था। उसका पुत्र दम्भ हुआ, जो जितेन्द्रिय, धार्मिक और विष्णुभक्त था। जब उसके कोई पुत्र नहीं हुआ, तब उसने पुष्कर जाकर पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या की। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुने उसे पुत्र होनेका वरदान दिया।

तदनन्तर समय आनेपर साध्वी दम्भपत्नीने एक तेजस्वी बालकको जन्म दिया, जिसका नाम शंखचूड रखा गया। वह बालक अत्यन्त तेजस्वी था, नित्य बालक्रीडा करके अपने माता-पिताका हर्ष बढ़ाने लगा।

इधर शंखचूड बड़ा हुआ, तब वह पुष्करमें जाकर

ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिपूर्वक तपस्या करने लगा। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने उसे देवताओंसे अजेय होनेका वरदान दिया। फिर उन्होंने शंखचूडको दिव्य श्रीकृष्णकवच प्रदान किया। तदनन्तर ब्रह्माजीने उसे आज्ञा दी कि तुम बदरीवनको जाओ, वहीं धर्मध्वजकी कन्या तुलसी सकाम भावसे तपस्या कर रही है। तुम उसके साथ विवाह कर लो।

इसके अनन्तर शंखचूड उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँ धर्मध्वजकी पुत्री तुलसी तप कर रही थी। तुलसीसे वहाँ शंखचूडकी वार्ता हुई और ब्रह्माजीकी आज्ञासे दोनोंने गान्धर्व विवाह कर लिया।

इसके अनन्तर शुक्राचार्यजीद्वारा शंखचूडका राज्याभिषेक हुआ। उसने सम्पूर्ण लोकोंको जीतकर देवताओंका सारा अधिकार छीन लिया। देवगण ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे। भगवान् विष्णुने कहा— कमलयोनि! मैं शंखचूडका सारा वृत्तान्त जानता हूँ। पूर्वजन्ममें वह गोप था। गोलोकमें मेरे ही रूप श्रीकृष्ण रहते हैं। वही गोप इस समय शम्भुकी इस लीलासे मोहित होकर शापवश अपनेको दुःख देनेवाली दानवी योनिको प्राप्त हो गया है। श्रीकृष्णने पहलेसे ही रुद्रके त्रिशूलसे इसकी मृत्यु निर्धारित कर दी है। ऐसा जानकर तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। यों कहकर ब्रह्मासहित विष्णु शिवलोकको गये तथा भगवान् शंकरकी स्तुति करते हुए बोले—'हे दीनबन्धु! हम दीनोंकी रक्षा कीजिये।'

श्रीशंकरने सबको आश्वस्त करते हुए कहा—हे देवगण! तुम लोग अपने-अपने स्थानको लौट जाओ, मैं निश्चय ही शंखचूडका वध कर डालूँगा। महेश्वरके इस वचनको सुनकर समस्त देवताओंको परम आनन्द प्राप्त हुआ। इधर उन महारुद्रने गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त)-को दूत बनाकर शंखचूडके पास भेजा। परंतु शंखचूडने कहा कि महेश्वरके साथ युद्ध किये बिना न तो मैं राज्य ही वापस दूँगा और न अधिकारोंको ही लौटाऊँगा।

शिवदूत पुष्पदन्तने लौटकर अपने स्वामी महेश्वरको शंखचूडकी सारी बात सुना दी। भगवान् रुद्रने अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान किया।

इधर शंखचूडने महलके भीतर जाकर अपनी पत्नी तुलसीसे यह सारी वार्ता सुनायी तथा युद्धमें जानेसे पूर्व उसे ढाँढस बँधाया। तदनन्तर दानवराजने कवच धारण करके अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान किया।

घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। उसी समय आकाशवाणी हुई—जबतक इस शंखचूडके हाथमें श्रीहरिका परम उग्र कवच वर्तमान रहेगा और इसकी पतिव्रता पत्नी (तुलसी)-का सतीत्व अखण्डित रहेगा, तबतक इसपर जरा और मृत्यु अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। अतः हे जगदीश्वर शंकर! ब्रह्माके इस वचनको सत्य कीजिये।

शिवजीने उस आकाशवाणीको सुनकर उसे स्वीकार कर लिया और विष्णुको इस कार्यके लिये प्रेरित किया। मायावियोंमें भी श्रेष्ठ मायावी भगवान् विष्णुने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारणकर शंखचूडसे भिक्षारूपमें कवच माँग लिया और फिर शंखचूडका रूप धारण करके तुलसीके पास पहुँचकर सबके आत्मा एवं तुलसीके नित्य स्वामी श्रीहरिने शंखचूडरूपसे उसके शीलका हरण कर लिया। तदनन्तर विष्णुभगवान्ने शम्भुसे अपनी सारी बातें कह सुनायीं। तब शिवजीने शंखचूडके वधके निमित्त अपना उद्दीप्त त्रिशूल शंखचूडके ऊपर छोड़ा, जिसने उसी क्षण उसे राखकी ढेरी बना दिया।

शिवजीके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि सभी देवता तथा मुनिगण उनकी प्रशंसा करने लगे। शंखचूड भी शिवजीकी कृपासे शाप-मुक्त हो गया और उसे अपने पूर्व (श्रीकृष्णपार्षद)-रूपकी प्राप्ति हो गयी।

शंखचूडकी हड्डियोंसे शंख जातिका प्रादुर्भाव हुआ, इस शंखका जल शंकरके अतिरिक्त समस्त देवताओंके लिये प्रशस्त माना जाता है। उस समय जगत्में चारों ओर परम शान्ति छा गयी।

तुलसी एवं शालग्रामशिलाके माहात्म्यका वर्णन

भगवान् श्रीहरिने जब तुलसीका शीलहरण किया,

तदनन्तर तुलसीने मनमें सन्देह होनेपर यह समझ लिया कि ये साक्षात् विष्णु हैं, परंतु उसका पातिव्रत नष्ट हो चुका था, इसलिये वह कुपित होकर विष्णुसे कहने लगी—हे विष्णो! चूँकि तुम पाषाण-सदृश कठोर और दयारहित हो, इसलिये अब तुम मेरे शापसे पाषाणस्वरूप ही हो जाओ। यह कहकर वह शोकार्त होकर विलाप करने लगी। इतनेमें वहाँ भक्तवत्सल भगवान् शंकर प्रकट हो गये। उन्होंने समझाकर कहा—भद्रे! तुमने जिस मनोरथको लेकर तप किया था, यह उसी तपस्याका फल है। अब तुम इस शरीरको त्यागकर दिव्य देह धारण कर लो, श्रीहरिके साथ वैकुण्ठमें विहार करती रहो। तुम्हारा यह शरीर जिसे तुम छोड़ दोगी, नदीके रूपमें परिवर्तित हो जायगा, जो भारतवर्षमें पुण्यरूपा गण्डकीके नामसे प्रसिद्ध होगा। श्रीहरि भी तुम्हारे शापवश पत्थरका रूप धारण करके भारतवर्षमें गण्डकी नदीके जलमें निवास करेंगे तथा शालग्रामशिलाके रूपमें प्रकट होंगे। विष्णुरूपी शालग्रामशिला और वृक्षस्वरूपिणी तुलसीका समागम सदा अनुकूल तथा बहुत प्रकारके पुण्योंकी वृद्धि करनेवाला होगा। हे भद्रे! जो शालग्रामशिलाके ऊपरसे तुलसीपत्रको दूर करेगा, उसे जन्मान्तरमें स्त्रीवियोगकी प्राप्ति होगी। जो पुरुष शालग्रामशिला, तुलसी और शंखको एकत्र रखकर उसकी रक्षा करता है, वह श्रीहरिका प्यारा होता है।

अन्धकासुरकी उत्पत्तिकी कथा

सनत्कुमारजी कहते हैं—हे व्यासजी! जिस प्रकार अन्धकासुरने परमात्मा शिवके गणाध्यक्ष पदको प्राप्त किया था, उस मंगलमय चरित्रका श्रवण करो।

अन्धकासुरने पहले शिवजीके साथ बड़ा घोर संग्राम किया था, परंतु पीछे बारम्बार सात्त्विक भावके उद्रेकसे शम्भुको प्रसन्न कर लिया और वह गणाध्यक्ष बन गया।

व्यासजीने पूछा—अन्धक कौन था? और वह किसका पुत्र था? उसने शम्भुकी गणाध्यक्षता कैसे प्राप्त की?

सनत्कुमारजीने कहा—मुने! किसी समय भगवान् शंकर अपने गणों तथा पार्वतीको साथ लेकर कैलाससे विहार करनेके लिये काशी आये। उन्होंने काशीको अपनी राजधानी बनाया, भैरवको उसका रक्षक नियुक्त किया।

किसी समय वे अपने गणोंके साथ मन्दराचलपर गये और वहाँपर पार्वतीके साथ विहारमें प्रवृत्त हो गये। पार्वतीने क्रीडा करते हुए सदाशिवके नेत्र अपने दोनों हाथोंसे बन्द कर दिये। नेत्रोंके बन्द हो जानेपर क्षणभरमें घोर अन्धकार छा गया।

उनके ललाटका स्पर्श करते ही उष्णतासे पार्वतीके दोनों हाथोंसे स्वेदबिन्दु टपकने लगे। तब उससे एक बालक उत्पन्न हुआ, जो भयंकर, विकराल मुखवाला, महाक्रोधी, अन्धा, कुरूप तथा विकृत स्वरूपवाला था। इस प्रकारके रूपवाले उस पुरुषको देखकर गौरीने महेश्वरसे पूछा कि यह कौन है?

महेश बोले—तुम्हारे द्वारा मेरे नेत्रोंको बन्द कर दिये जानेपर तुम्हारे हाथोंके स्वेदसे यह अन्धक नामका असुर प्रकट हुआ है। तुम्हीं इसकी जन्मदात्री हो, अतः इसकी रक्षा करो।

तदनन्तर हिरण्याक्ष नामका एक असुर पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करने लगा। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उसे अन्धकको पुत्र-रूपमें प्रदान किया। भगवान् विष्णुने वराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वध किया। इसके अनन्तर नरसिंह-रूप धारणकर हिरण्याक्षके बड़े भाई हिरण्यकशिपुका वध किया।

अन्धकने घोर तपस्याकर बलशाली होनेका वर प्राप्त कर लिया। उसने भगवती पार्वतीकी सुन्दरताकी गाथा सुनकर उन्हें प्राप्त करनेके लिये भगवान् शिवके पास एक दूत भेजा। अन्तमें उसे शिवजीसे घोर युद्ध करना पड़ा। शिवजीने अपने त्रिशूलसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया और उसके शरीरको अपने त्रिशूलपर टाँगकर आकाशमें उठा दिया। सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त, हिमखण्डोंसे खण्डित होनेपर भी उस दैत्यराजने

प्राणत्याग नहीं किया और भगवान् शंकरकी निरन्तर स्तुति करता रहा। यह देखकर परम दयालु भगवान् शंकरने उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उसे गाणपत्य पद प्रदान कर दिया।

शुक्राचार्यद्वारा काशीमें शुक्रेश्वर लिंगकी स्थापना तथा मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त करना

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! मृत्युंजय भगवान् शिवसे जिस प्रकार शुक्राचार्यने मृत्युनाशिनी विद्या प्राप्त की, उसे आप सुनें।

पूर्वकालमें भृगुपुत्र शुक्राचार्य काशीपुरीमें विश्वेश्वर प्रभुका ध्यान करते हुए दीर्घकालतक तप करते रहे। उन्होंने वहाँ परमात्मा शिवका शिवलिंग स्थापित किया तथा उग्र तपस्या करते हुए मूर्त्यष्टकके आठ श्लोकोंसे शिवजीकी स्तुति करते हुए उनको बार-बार प्रणाम किया। भगवान् शंकर उनकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न होकर कहने लगे—हे विप्रवर्य! आप इसी शरीरसे मेरी उदररूपी गुहामें प्रविष्ट हो पुन: लिंगेन्द्रिय मार्गसे निकलकर पुत्रभावको प्राप्त होंगे। मृतसंजीवनी नामक जो मेरी निर्मल विद्या है, उसका निर्माण मैंने स्वयं अपने तपोबलसे किया है। उस मन्त्ररूपा महाविद्याको मैं आपको प्रदान करता हूँ। आप जिस किसीको उद्देश्य करके इस विद्याका आवर्तन करेंगे, वह अवश्य ही जीवित हो जायगा। आपके द्वारा स्थापित किये गये इस लिंगका नाम शुक्रेश्वर होगा। जो मनुष्य इसकी अर्चना करेंगे, उनकी कार्यसिद्धि होगी।

बाणासुरकी उत्पत्तिकी कथा तथा उसके ताण्डव नृत्यसे प्रसन्न होकर भगवान् शिवका उसे गाणपत्य पद प्रदान करना

बाणासुर बलिका औरस पुत्र था। दैत्यराज बाणासुर अपने बलसे तीनों लोकोंको तथा उसके स्वामियोंको जीतकर शोणित नामक पुरमें राज्य करता था। उसकी हजार भुजाएँ थीं। बाणासुरकी पुत्रीका नाम ऊषा था, उसका विवाह भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्धके साथ हुआ। बाणासुर महान् शिवभक्त था। शिवभक्तिमें लीन होकर उसने भगवान् शिवको प्रसन्न करनेके लिये ताण्डव नृत्य किया। उसके सुन्दर नृत्यसे प्रसन्न होकर भगवान् रुद्रने वर माँगनेको कहा। बाणासुरने शिवजीकी निर्विकार भक्ति, अक्षय गाणपत्य (गणोंका अधिपति)-का भाव तथा प्राणियोंके प्रति दयाभाव आदि वर माँगते हुए प्रेमपूर्वक शिवजीकी स्तुति की। बाणासुरका यह वचन सुनकर भगवान् सदाशिव 'तुम सब कुछ प्राप्त करोगे'—इस प्रकार कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

गजासुर-वधकी कथा तथा कृत्तिवासेश्वर लिंगकी स्थापना

गजासुर महिषासुरका पुत्र था, जब उसने सुना कि देवी दुर्गाने मेरे पिताको मार दिया था, तब उसने बदला लेनेकी भावनासे घोर तप किया। उसके तपकी ज्वालासे सब जलने लगे। ब्रह्माजीसे वर पाकर वह गर्वमें भर गया और अत्याचार करने लगा, इसी क्रममें वह काशी आया और भक्तोंको सताने लगा। दुखी देवताओंने ब्रह्माजीके साथ भगवान् शंकरसे प्रार्थना की। भगवान् शंकरने घोर युद्धमें उसे हराकर त्रिशूलमें पिरो दिया। तब उसने भगवान् शंकरका स्तवन किया। गजासुरके द्वारा वर माँगनेपर भगवान् शिवने कहा—हे दानवराज! तेरा यह पावन शरीर मेरे इस मुक्तिसाधक काशीक्षेत्रमें मेरे लिंगके रूपमें स्थित हो जाय, इसका नाम कृत्तिवासेश्वर होगा। यह सम्पूर्ण लिंगोंमें शिरोमणि और मोक्षप्रद होगा। यह सुनकर विष्णु और ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंका मन हर्षसे परिपूर्ण हो गया।

ब्रह्माजी कहते हैं—हे मुनिसत्तम! मैंने तुमसे रुद्रसंहिताके अन्तर्गत इस युद्धखण्डका वर्णन कर दिया। यह खण्ड सम्पूर्ण मनोरथोंको प्रदान करनेवाला है तथा भुक्ति-मुक्तिरूपी फल देनेवाला है।

इस प्रकार रुद्रसंहिताका यह ब्रह्मा और श्रीनारदजीका कल्याणकारक संवाद पूर्ण रूपसे सम्पन्न हुआ।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

माहात्म्य

पहला अध्याय

शौनकजीके साधनविषयक प्रश्न करनेपर सूतजीका उन्हें शिवमहापुराणकी महिमा सुनाना

श्रीशौनकजी बोले—हे महाज्ञानी सूतजी! सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके ज्ञाता हे प्रभो! मुझसे पुराणोंकी कथाओंके सारतत्त्वका विशेषरूपसे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सदाचार, भगवद्भक्ति और विवेककी वृद्धि कैसे होती है तथा साधुपुरुष किस प्रकार अपने काम-क्रोध आदि मानसिक विकारोंका निवारण करते हैं?॥ २ ॥

इस घोर कलियुगमें जीव प्रायः आसुर स्वभावके हो गये हैं, उस जीवसमुदायको शुद्ध (दैवी सम्पत्तिसे युक्त) बनानेके लिये सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है?॥ ३ ॥

आप इस समय मुझे ऐसा कोई शाश्वत साधन बताइये, जो कल्याणकारी वस्तुओंमें भी सबसे उत्कृष्ट एवं परम मंगलकारी हो तथा पवित्र करनेवाले उपायोंमें भी सर्वोत्तम पवित्रकारक उपाय हो ॥ ४ ॥

तात! वह साधन ऐसा हो, जिसके अनुष्ठानसे शीघ्र ही अन्तःकरणकी विशेष शुद्धि हो जाय तथा उससे निर्मल चित्तवाले पुरुषको सदाके लिये शिवकी प्राप्ति हो जाय ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—मुनिश्रेष्ठ शौनक! आप धन्य हैं; आपके हृदयमें पुराण-कथा सुननेके प्रति विशेष प्रेम एवं लालसा है, इसलिये मैं शुद्ध बुद्धिसे विचारकर परम उत्तम शास्त्रका वर्णन करता हूँ ॥ ६ ॥

वत्स! सम्पूर्ण शास्त्रोंके सिद्धान्तसे सम्पन्न, भक्ति आदिको बढ़ानेवाले, भगवान् शिवको सन्तुष्ट करनेवाले तथा कानोंके लिये रसायनस्वरूप दिव्य पुराणका श्रवण कीजिये ॥ ७ ॥

यह उत्तम शिवपुराण कालरूपी सर्पसे प्राप्त होनेवाले महान् त्रास का विनाश करनेवाला है। हे मुने! पूर्वकालमें शिवजीने इसे कहा था। गुरुदेव व्यासजीने सनत्कुमार मुनिका उपदेश पाकर कलियुगके प्राणियोंके कल्याणके लिये बड़े आदरसे संक्षेपमें इस पुराणका प्रतिपादन किया है ॥ ८-९ ॥

हे मुने! विशेष रूपसे कलियुगके प्राणियोंकी चित्तशुद्धिके लिये इस शिवपुराणके अतिरिक्त कोई अन्य साधन नहीं है ॥ १० ॥

हे मुने! जिस बुद्धिमान् मनुष्यके पूर्वजन्मके बड़े पुण्य होते हैं, उसी महाभाग्यशाली व्यक्तिकी इस पुराणमें प्रीति होती है ॥ ११ ॥

यह शिवपुराण परम उत्तम शास्त्र है। इसे इस भूतलपर भगवान् शिवका वाङ्मय स्वरूप समझना चाहिये और सब प्रकारसे इसका सेवन करना चाहिये॥ १२॥

इसके पठन और श्रवणसे शिवभक्ति पाकर श्रेष्ठतम स्थितिमें पहुँचा हुआ मनुष्य शीघ्र ही शिवपदको प्राप्त कर लेता है। इसलिये सम्पूर्ण यत्न करके मनुष्योंने इस पुराणके अध्ययनको अभीष्ट साधन माना है और इसका प्रेमपूर्वक श्रवण भी सम्पूर्ण वांछित फलोंको देनेवाला है॥ १३-१४॥

भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा बड़े-बड़े उत्कृष्ट भोगोंका उपभोग करके [अन्तमें] शिवलोकको प्राप्त कर लेता है॥ १५॥

राजसूययज्ञ और सैकड़ों अग्निष्टोमयज्ञोंसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह भगवान् शिवकी कथाके सुननेमात्रसे प्राप्त हो जाता है॥ १६॥

हे मुने! जो लोग इस श्रेष्ठ शास्त्र शिवपुराणका श्रवण करते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं समझना चाहिये; वे रुद्रस्वरूप ही हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ १७॥

इस पुराणका श्रवण और कीर्तन करनेवालोंके चरणकमलकी धूलिको मुनिगण तीर्थ ही समझते हैं॥ १८॥

जो प्राणी परमपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सदा भक्तिपूर्वक इस निर्मल शिवपुराणका श्रवण करना चाहिये॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यदि मनुष्य सदा इसे सुननेमें समर्थ न हो, तो उसे प्रतिदिन स्थिर चित्तसे एक मुहूर्त भी इसको सुनना चाहिये। हे मुने! यदि मनुष्य प्रतिदिन सुननेमें भी अशक्त हो, तो उसे किसी पवित्र महीनेमें इस शिवपुराणका श्रवण करना चाहिये॥ २०-२१॥

जो लोग एक मुहूर्त, उसका आधा, उसका भी आधा अथवा क्षणमात्र भी इस पुराणका श्रवण करते हैं, उनकी दुर्गति नहीं होती॥ २२॥

हे मुनीश्वर! जो पुरुष इस शिवपुराणकी कथाको सुनता है, वह सुननेवाला पुरुष कर्मरूपी महावनको जलाकर संसारके पार हो जाता है॥ २३॥

हे मुने! सभी दानों और सभी यज्ञोंसे जो पुण्य मिलता है, वह फल भगवान् शिवके इस पुराणको सुननेसे निश्चल हो जाता है॥ २४॥

हे मुने! विशेषकर इस कलिकालमें तो शिवपुराणके श्रवणके अतिरिक्त मनुष्योंके लिये मुक्तिदायक कोई अन्य श्रेष्ठ साधन नहीं है॥ २५॥

शिवपुराणका श्रवण और भगवान् शंकरके नामका संकीर्तन—दोनों ही मनुष्योंको कल्पवृक्षके समान सम्यक् फल देनेवाले हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २६॥

कलियुगमें धर्माचरणसे शून्य चित्तवाले दुर्बुद्धि मनुष्योंके उद्धारके लिये भगवान् शिवने अमृतरसस्वरूप शिवपुराणकी उद्भावना की है॥ २७॥

अमृतपान करनेसे तो केवल अमृतपान करनेवाला ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवान् शिवका यह कथामृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर कर देता है॥ २८॥

इस शिवपुराणकी परम पवित्र कथाका विशेष रूपसे सदा ही सेवन करना चाहिये, करना ही चाहिये, करना ही चाहिये। इस शिवपुराणकी कथाके श्रवणका क्या फल कहूँ? इसके श्रवणमात्रसे भगवान् सदाशिव उस प्राणीके हृदयमें विराजमान हो जाते हैं॥ २९-३०॥

यह [शिवपुराण नामक] ग्रन्थ चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त है। इसमें सात संहिताएँ हैं। मनुष्यको चाहिये कि वह भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे भली-भाँति सम्पन्न हो बड़े आदरसे इसका श्रवण करे॥ ३१॥

पहली विद्येश्वरसंहिता, दूसरी रुद्रसंहिता, तीसरी शतरुद्रसंहिता, चौथी कोटिरुद्रसंहिता और पाँचवीं उमासंहिता कही गयी है; छठी कैलाससंहिता और सातवीं वायवीय-संहिता—इस प्रकार इसमें सात संहिताएँ हैं॥ ३२-३३॥

सात संहिताओंसे युक्त यह दिव्य शिवपुराण परब्रह्म परमात्माके समान विराजमान है और सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है॥ ३४॥

जो मनुष्य सात संहिताओंवाले इस शिवपुराणको आदरपूर्वक पूरा पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ ३५॥

हे मुने! जबतक इस उत्तम शिवपुराणको सुननेका

सुअवसर नहीं प्राप्त होता, तबतक अज्ञानवश प्राणी इस संसार-चक्रमें भटकता रहता है॥ ३६॥

भ्रमित कर देनेवाले अनेक शास्त्रों और पुराणोंके श्रवणसे क्या लाभ है, जबकि एक शिवपुराण ही मुक्ति प्रदान करनेके लिये गर्जन कर रहा है॥ ३७॥

जिस घरमें इस शिवपुराणकी कथा होती है, वह घर तीर्थस्वरूप ही है और उसमें निवास करनेवालोंके पाप यह नष्ट कर देता है॥ ३८॥

हजारों अश्वमेधयज्ञ और सैकड़ों वाजपेययज्ञ शिवपुराणकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते॥ ३९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! कोई अधम प्राणी जबतक भक्तिपूर्वक शिवपुराणका श्रवण नहीं करता, तभीतक उसे पापी कहा जा सकता है॥ ४०॥

गंगा आदि पवित्र नदियाँ, [मुक्तिदायिनी] सप्त पुरियाँ तथा गयादि तीर्थ इस शिवपुराणकी समता कभी नहीं कर सकते॥ ४१॥

जिसे परमगतिकी कामना हो, उसे नित्य शिवपुराणके एक श्लोक अथवा आधे श्लोकका ही स्वयं भक्तिपूर्वक पाठ करना चाहिये॥ ४२॥

जो निरन्तर अर्थानुसन्धानपूर्वक इस शिवपुराणको बाँचता है अथवा नित्य प्रेमपूर्वक इसका पाठमात्र करता है, वह पुण्यात्मा है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३॥

जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष अन्तकालमें भक्तिपूर्वक इस पुराणको सुनता है, उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् महेश्वर उसे अपना पद (धाम) प्रदान करते हैं॥ ४४॥

जो प्रतिदिन आदरपूर्वक इस शिवपुराणका पूजन करता है, वह इस संसारमें सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके पदको प्राप्त कर लेता है॥ ४५॥

जो प्रतिदिन आलस्यरहित हो रेशमी वस्त्र आदिके वेष्टनसे इस शिवपुराणका सत्कार करता है, वह सदा सुखी होता है॥ ४६॥

यह शिवपुराण निर्मल तथा शैवोंका सर्वस्व है; इहलोक और परलोकमें सुख चाहनेवालेको आदरके साथ प्रयत्नपूर्वक इसका सेवन करना चाहिये॥ ४७॥

यह निर्मल एवं उत्तम शिवपुराण धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है, अतः सदा प्रेमपूर्वक इसका श्रवण एवं विशेष रूपसे पाठ करना चाहिये॥ ४८॥

वेद, इतिहास तथा अन्य शास्त्रोंमें यह शिवपुराण विशेष कल्याणकारी है—ऐसा मुमुक्षुजनोंको समझना चाहिये॥ ४९॥

यह शिवपुराण आत्मतत्त्वज्ञोंके लिये सदा सेवनीय है, सत्पुरुषोंके लिये पूजनीय है, तीनों प्रकारके तापोंका शमन करनेवाला है, सुख प्रदान करनेवाला है तथा ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि देवताओंको प्राणोंके समान प्रिय है॥ ५०॥

ऐसे शिवपुराणको मैं प्रसन्नचित्तसे सदा वन्दन करता हूँ। भगवान् शंकर मुझपर प्रसन्न हों और अपने चरणकमलोंकी भक्ति मुझे प्रदान करें॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें उसकी महिमावर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

शिवपुराणके श्रवणसे देवराजको शिवलोककी प्राप्ति

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी! आप धन्य हैं, परमार्थतत्त्वके ज्ञाता हैं, आपने कृपा करके हमलोगोंको यह बड़ी अद्भुत एवं दिव्य कथा सुनायी है॥ १॥

हमने यह पापनाशिनी, मनको पवित्र करनेवाली और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेवाली अद्भुत कथा सुनी॥ २॥

भूतलपर इस कथाके समान कल्याणका सर्वश्रेष्ठ साधन दूसरा कोई नहीं है, यह बात हमने आज आपकी कृपासे निश्चयपूर्वक समझ ली। हे सूतजी! कलियुगमें इस कथाके द्वारा कौन-कौन-से पापी शुद्ध होते हैं? उन्हें कृपापूर्वक बताइये और इस जगत्‌को कृतार्थ कीजिये॥ ३-४॥

सूतजी बोले—हे मुने! जो मनुष्य पापी, दुराचारी, खल तथा काम-क्रोध आदिमें निरन्तर डूबे रहनेवाले हैं, वे भी इस पुराणसे अवश्य शुद्ध हो जाते हैं॥ ५॥

यह कथा वास्तवमें उत्तम ज्ञानयज्ञ है, जो सदा सांसारिक भोग और मोक्षको देनेवाला है, सभी पापोंको नष्ट करनेवाला है और भगवान् शिवको प्रसन्न करनेवाला है। जो अत्यन्त लालची, सत्यविहीन, अपने माता-पितासे द्वेष करनेवाले, पाखण्डी तथा हिंसक वृत्तिके हैं; वे भी इस ज्ञानयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं। अपने वर्णाश्रमधर्मका पालन न करनेवाले और ईर्ष्याग्रस्त लोग भी कलिकालमें इस ज्ञानयज्ञके द्वारा पवित्र हो जाते हैं॥ ६—८॥

जो लोग छल-कपट करनेवाले, क्रूर स्वभाववाले और अत्यन्त निर्दयी हैं, कलियुगमें वे भी इस ज्ञानयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं। ब्राह्मणके धनसे पलनेवाले तथा निरन्तर व्यभिचारपरायण जो लोग हैं, वे भी इस ज्ञानयज्ञसे इस कलिकालमें भी पवित्र हो जाते हैं। जो मनुष्य सदा पापकर्मोंमें लिप्त रहते हैं, शठ हैं और अत्यन्त दूषित विचारवाले हैं, वे कलियुगमें भी इस ज्ञानयज्ञसे निर्मल हो जाते हैं। दुश्चरित्र, दुर्बुद्धि, उद्विग्न चित्तवाले और देवताओंके द्रव्यका उपभोग करनेवाले पापीजन भी कलिकालमें भी इस ज्ञानयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं॥ ९—१२॥

इस पुराणके श्रवणका पुण्य बड़े-बड़े पापोंको नष्ट करता है, सांसारिक भोग तथा मोक्ष प्रदान करता है और भगवान् शंकरको प्रसन्न करता है॥ १३॥

इस सम्बन्धमें मुनिगण इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका पूर्णतया नाश हो जाता है॥ १४॥

पहलेकी बात है—किरातनगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो अज्ञानी, दरिद्र, रस बेचनेवाला तथा वैदिक धर्मसे विमुख था। वह स्नान-सन्ध्या आदि कर्मोंसे भ्रष्ट हो गया था और वैश्यवृत्तिमें तत्पर रहता था। उसका नाम था देवराज। वह अपने ऊपर विश्वास करनेवाले लोगोंको ठगा करता था। उसने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा दूसरोंको भी अनेक बहानोंसे मारकर उनका धन हड़प लिया था। बादमें उसने अधर्मसे बहुत सारा धन अर्जित कर लिया, परंतु उस पापीका थोड़ा-सा भी धन कभी धर्मके काममें नहीं लगा॥ १५—१८॥

एक दिन वह ब्राह्मण एक तालाबपर नहाने गया। वहाँ शोभावती नामकी एक वेश्याको देखकर वह अत्यन्त मोहित हो गया। वह सुन्दरी भी उस धनी ब्राह्मणको अपने वशीभूत हुआ जानकर प्रसन्न हुई। आपसमें वार्तालापसे उनमें प्रीति उत्पन्न हो गयी। उस ब्राह्मणने उस वेश्याको पत्नी बनाना तथा उस वेश्याने उसे पति बनाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार कामवश होकर वे दोनों बहुत समयतक विहार करते रहे॥ १९—२१॥

बैठने, सोने, खाने-पीने तथा क्रीड़ामें वे दोनों निरन्तर पति-पत्नीकी तरह व्यवहार करने लगे। अपने माता-पिता तथा पत्नीके बार-बार रोकनेपर भी पापकृत्यमें संलग्न वह ब्राह्मण उनकी बात नहीं मानता था॥ २२-२३॥

एक दिन रात्रिमें उस दुष्टने ईर्ष्यावश अपने सोये हुए माता-पिता और पत्नीको मार डाला और उनका सारा धन हर लिया। वेश्यामें आसक्त चित्तवाले उस कामीने अपना और पिता आदिका सारा धन उस वेश्याको दे दिया। वह पापी अभक्ष्य-भक्षण तथा मद्यपान करने लगा और वह नीच ब्राह्मण उस वेश्याके साथ एक ही पात्रमें सदा जूठा भोजन करने लगा॥ २४—२६॥

एक दिन घूमता-घामता वह दैवयोगसे प्रतिष्ठानपुर (झूँसी-प्रयाग)-में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक शिवालय देखा, जहाँ बहुतसे साधु-महात्मा एकत्र हुए थे॥ २७॥

देवराज उस शिवालयमें ठहर गया और वहाँ उस ब्राह्मणको ज्वर आ गया। उस ज्वरसे उसको बड़ी पीड़ा होने लगी। वहाँ एक ब्राह्मणदेवता शिवपुराणकी कथा सुना रहे थे। ज्वरमें पड़ा हुआ देवराज ब्राह्मणके मुखारविन्दसे निकली हुई उस शिवकथाको निरन्तर सुनता रहा॥ २८॥

एक मासके बाद वह ज्वरसे अत्यन्त पीड़ित होकर चल बसा। यमराजके दूत आये और उसे पाशोंसे बाँधकर बलपूर्वक यमपुरीमें ले गये॥ २९॥

इतनेमें ही शिवलोकसे भगवान् शिवके पार्षदगण आ गये। उनके गौर अंग कर्पूरके समान उज्ज्वल थे, हाथ

त्रिशूलसे सुशोभित हो रहे थे, उनके सम्पूर्ण अंग भस्मसे उद्भासित थे और रुद्राक्षकी मालाएँ उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रही थीं। वे सब-के-सब क्रोध करते हुए यमपुरीमें गये और यमराजके दूतोंको मार-पीटकर, बारम्बार धमकाकर उन्होंने देवराजको उनके चंगुलसे छुड़ा लिया और अत्यन्त अद्भुत विमानपर बिठाकर जब वे शिवदूत कैलास जानेको उद्यत हुए, उस समय यमपुरीमें बड़ा भारी कोलाहल मच गया॥ ३०—३२१/२॥

उस कोलाहलको सुनकर धर्मराज अपने भवनसे बाहर आये। साक्षात् दूसरे रुद्रोंके समान प्रतीत होनेवाले उन चारों दूतोंको देखकर धर्मज्ञ धर्मराजने उनका विधिपूर्वक पूजन किया॥ ३३-३४॥

यमने ज्ञानदृष्टिसे देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया, उन्होंने भयके कारण भगवान् शिवके उन महात्मा दूतोंसे कोई बात नहीं पूछी॥ ३५॥

यमराजसे पूजित तथा प्रार्थित होकर वे शिवदूत कैलासको चले गये और उन्होंने उस ब्राह्मणको दयासागर साम्ब शिवको दे दिया॥ ३६॥

शिवपुराणकी यह परम पवित्र कथा धन्य है, जिसके सुननेसे पापीजन भी मुक्तिके योग्य बन जाते हैं। भगवान् सदाशिवके परमधामको वेदज्ञ सभी लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य प्राणी; यहाँतक कि जिस पापीने धनके लोभसे अनेक लोगोंकी हत्या की तथा अपने माता-पिता और पत्नीको भी मार डाला; वह वेश्यागामी, शराबी ब्राह्मण देवराज भी इस कथाके प्रभावसे भगवान् शिवके परमधामको प्राप्तकर तत्क्षण मुक्त हो गया॥ ३७—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें देवराजमुक्तिवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

चंचुलाका पापसे भय एवं संसारसे वैराग्य

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी! आप सर्वज्ञ हैं। हे महामते! आपके कृपाप्रसादसे मैं बारम्बार कृतार्थ हुआ। इस इतिहासको सुनकर मेरा मन अत्यन्त आनन्दमें निमग्न हो रहा है। अतः अब भगवान् शिवमें प्रेम बढ़ानेवाली शिवसम्बन्धिनी दूसरी कथाको भी कहिये॥ १-२॥

अमृत पीनेवालोंको लोकमें कहीं मुक्ति नहीं प्राप्त होती है, किंतु भगवान् शंकरके कथामृतका पान तो प्रत्यक्ष ही मुक्ति देनेवाला है। सदाशिवकी जिस कथाके सुननेमात्रसे मनुष्य शिवलोक प्राप्त कर लेता है, वह कथा धन्य है, धन्य है और कथाका श्रवण करानेवाले आप भी धन्य हैं, धन्य हैं॥ ३-४॥

सूतजी बोले—हे शौनक! सुनिये, मैं आपके सामने गोपनीय कथावस्तुका भी वर्णन करूँगा; क्योंकि आप शिवभक्तोंमें अग्रगण्य तथा वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। समुद्रके निकटवर्ती प्रदेशमें एक बाष्कल नामक ग्राम है, जहाँ वैदिक धर्मसे विमुख महापापी द्विज निवास करते हैं। वे सब-के-सब बड़े दुष्ट हैं, उनका मन दूषित

विषयभोगोंमें ही लगा रहता है। वे न देवताओंपर विश्वास करते हैं न भाग्यपर; वे सभी कुटिल वृत्तिवाले हैं। किसानी करते और भाँति-भाँतिके घातक अस्त्र-शस्त्र रखते हैं। वे परस्त्रीगमन करनेवाले और खल हैं। ज्ञान, वैराग्य तथा सद्धर्मको वे बिलकुल नहीं जानते हैं। वे सभी पशुबुद्धिवाले हैं और सदा दूषित बातोंको सुननेमें संलग्न रहते हैं॥ ५—८॥

(जहाँके द्विज ऐसे हों, वहाँके अन्य वर्णोंके विषयमें क्या कहा जाय!) अन्य वर्णोंके लोग भी उन्हींकी भाँति कुत्सित विचार रखनेवाले, स्वधर्मविमुख एवं खल हैं; वे सदा कुकर्ममें लगे रहते हैं और नित्य विषयभोगोंमें ही डूबे रहते हैं॥ ९॥

वहाँकी सब स्त्रियाँ भी कुटिल स्वभावकी, स्वेच्छाचारिणी, पापासक्त, कुत्सित विचारवाली और व्यभिचारिणी हैं। वे सद्‌व्यवहार तथा सदाचारसे सर्वथा शून्य हैं॥ १०॥

कुजनोंके निवासस्थान उस बाष्कल नामक ग्राममें किसी समय एक बिन्दुग नामधारी ब्राह्मण रहता था, वह बड़ा अधम था॥ ११॥

वह दुरात्मा और महापापी था। यद्यपि उसकी स्त्री बड़ी सुन्दर थी, तो भी वह कुमार्गपर ही चलता था। कामवासनासे कलुषितचित्त वह वेश्यागामी था॥ १२॥

उसकी पत्नीका नाम चंचुला था, वह सदा उत्तम धर्मके पालनमें लगी रहती थी, तो भी उसे छोड़कर वह दुष्ट ब्राह्मण कामासक्त होकर वेश्यागामी हो गया था॥ १३॥

इस तरह कुकर्ममें लगे हुए उस बिन्दुगके बहुत वर्ष व्यतीत हो गये। उसकी स्त्री चंचुला कामसे पीड़ित होनेपर भी स्वधर्मनाशके भयसे क्लेश सहकर भी दीर्घकालतक धर्मसे भ्रष्ट नहीं हुई। परंतु दुराचारी पतिके आचरणसे प्रभावित होनेके कारण कामपीड़ित हो आगे चलकर वह स्त्री भी दुराचारिणी हो गयी॥ १४-१५॥

भ्रष्ट चरित्रवाली वह कुमार्गगामिनी अपने पतिकी दृष्टि बचाकर रात्रिमें चोरी-छिपे अन्य पापी जार पुरुषके साथ रमण करने लगी॥ १६॥

हे मुने! एक बार उस ब्राह्मणने अपनी उस दुराचारिणी पत्नी चंचुलाको कामासक्त हो परपुरुषके साथ रात्रिमें संसर्गरत देख लिया॥ १७॥

उस दुष्ट तथा दुराचारमें आसक्त मनवाली पत्नीको रातमें परपुरुषके साथ व्यभिचाररत देखकर वह क्रोधपूर्वक वेगसे दौड़ा॥ १८॥

उस दुष्ट बिन्दुगको घरमें आया जानकर वह कपटी व्यभिचारी तेजीसे भाग गया॥ १९॥

तब वह दुष्टात्मा बिन्दुग अपनी पत्नीको पकड़कर उसे डाँटता हुआ मुक्कोंसे बार-बार पीटने लगा॥ २०॥

वह व्यभिचारिणी दुष्टा नारी चंचुला पीटी जानेपर कुपित होकर निर्भयतापूर्वक अपने दुष्ट पति बिन्दुगसे कहने लगी॥ २१॥

चंचुला बोली—मुझ पतिपरायणा युवती पत्नीको छोड़कर आप कुबुद्धिवश प्रतिदिन वेश्याके साथ इच्छानुसार रमण करते हैं। आप ही बतायें कि रूपवती तथा कामासक्त चित्तवाली मुझ युवतीकी पतिसंसर्गके बिना क्या गति होती होगी? मैं अत्यन्त सुन्दर हूँ तथा नवयौवनसे उन्मत्त हूँ। आपके संसर्गके बिना व्यथितचित्तवाली मैं कामजन्य दु:खको कैसे सह सकती हूँ?॥ २२—२४॥

सूतजी बोले—उस स्त्रीके इस प्रकार कहनेपर वह मूढ़बुद्धि मूर्ख ब्राह्मणाधम स्वधर्मविमुख दुष्ट पापी बिन्दुग कहने लगा—॥ २५॥

बिन्दुग बोला—कामसे व्याकुलचित्त होकर तुमने यह सत्य ही कहा है। हे प्रिये! तुम भय त्याग दो और मैं जो तुमसे हितकी बात कहता हूँ, उसे सुनो। तुम निर्भय होकर नित्य परपुरुषोंके साथ संसर्ग करो। उन्हें सन्तुष्ट करके उनसे धन खींचो। वह सारा धन वेश्याके प्रति आसक्त मनवाले मुझको दे दिया करो। इससे तुम्हारा और मेरा दोनोंका ही स्वार्थ सिद्ध हो जायगा॥ २६—२८॥

सूतजी बोले—पतिका यह वचन सुनकर उसकी पत्नी चंचुलाने प्रसन्न होकर उसकी कही बात मान ली। उन दोनों दुराचारी पति-पत्नीने इस प्रकार समझौता कर लिया तथा वे दोनों निर्भय चित्तसे कुकर्ममें लीन हो गये॥ २९-३०॥

इस तरह दुराचारमें डूबे हुए उन मूढ़ चित्तवाले

पति-पत्नीका बहुत-सा समय व्यर्थ बीत गया॥ ३१॥

तदनन्तर शूद्रजातीय वेश्याका पति बना हुआ वह दूषित बुद्धिवाला दुष्ट ब्राह्मण बिन्दुग समयानुसार मृत्युको प्राप्त हो नरकमें जा पड़ा। बहुत दिनोंतक नरकके दुःख भोगकर वह मूढ़बुद्धि पापी विन्ध्यपर्वतपर भयंकर पिशाच हुआ॥ ३२-३३॥

इधर, उस दुराचारी पति बिन्दुगके मर जानेपर वह मूढ़हृदया चंचुला बहुत समयतक पुत्रोंके साथ अपने घरमें ही रही॥ ३४॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक कामासक्त होकर जारोंके साथ विहार करती हुई उस चंचुला नामक स्त्रीका कुछ-कुछ यौवन समयके साथ ढलने लगा॥ ३५॥

एक दिन दैवयोगसे किसी पुण्य पर्वके आनेपर वह स्त्री भाई-बन्धुओंके साथ गोकर्ण-क्षेत्रमें गयी। तीर्थयात्रियोंके संगसे उसने भी उस समय जाकर किसी तीर्थके जलमें स्नान किया। फिर वह साधारणतया (मेला देखनेकी दृष्टिसे) बन्धुजनोंके साथ यत्र-तत्र घूमने लगी। [घूमती-घामती] किसी देवमन्दिरमें उसने एक दैवज्ञ ब्राह्मणके मुखसे भगवान् शिवकी परम पवित्र एवं मंगलकारिणी उत्तम पौराणिक कथा सुनी॥ ३६—३८॥

[कथावाचक ब्राह्मण कह रहे थे कि] 'जो स्त्रियाँ परपुरुषोंके साथ व्यभिचार करती हैं, वे मरनेके बाद जब यमलोकमें जाती हैं, तब यमराजके दूत उनकी योनिमें तपे हुए लोहेका परिघ डालते हैं।' पौराणिक ब्राह्मणके मुखसे यह वैराग्य बढ़ानेवाली कथा सुनकर चंचुला भयसे व्याकुल हो वहाँ काँपने लगी॥ ३९-४०॥

जब कथा समाप्त हुई और लोग वहाँसे बाहर चले गये, तब वह भयभीत नारी एकान्तमें शिवपुराणकी कथा बाँचनेवाले उन ब्राह्मणसे कहने लगी॥ ४१॥

चंचुलाने कहा—ब्रह्मन्! मैं अपने धर्मको नहीं जानती थी। इसलिये मेरे द्वारा बड़ा दुराचार हुआ है। स्वामिन्! इसे सुनकर मेरे ऊपर अनुपम कृपा करके आप मेरा उद्धार कीजिये॥ ४२॥

हे प्रभो! मैंने मूढ़बुद्धिके कारण घोर पाप किया है। मैंने कामान्ध होकर अपनी सम्पूर्ण युवावस्था व्यभिचारमें बितायी है॥ ४३॥

आज वैराग्य-रससे ओतप्रोत आपके इस प्रवचनको सुनकर मुझे बड़ा भय लग रहा है। मैं काँप उठी हूँ और मुझे इस संसारसे वैराग्य हो गया है। मुझ मूढ़ चित्तवाली पापिनीको धिक्कार है। मैं सर्वथा निन्दाके योग्य हूँ। मैं कुत्सित विषयोंमें फँसी हुई हूँ और अपने धर्मसे विमुख हो गयी हूँ॥ ४४-४५॥

थोड़ेसे सुखके लिये अपने हितका नाश करनेवाले तथा भयंकर कष्ट देनेवाले घोर पाप मैंने अनजानेमें ही कर डाले॥ ४६॥

हाय! न जाने किस-किस घोर कष्टदायक दुर्गतिमें मुझे पड़ना पड़ेगा और वहाँ कौन बुद्धिमान् पुरुष कुमार्गमें मन लगानेवाली मुझ पापिनीका साथ देगा? मृत्युकालमें उन भयंकर यमदूतोंको मैं कैसे देखूँगी? जब वे बलपूर्वक मेरे गलेमें फंदे डालकर मुझे बाँधेंगे, तब मैं कैसे धीरज धारण कर सकूँगी? नरकमें जब मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े किये जायँगे, उस समय विशेष दुःख देनेवाली उस महायातनाको मैं वहाँ कैसे सहूँगी?॥ ४७—४९॥

दुःख और शोकसे ग्रस्त होकर मैं दिनमें सहज इन्द्रियव्यापार और रात्रिमें नींद कैसे प्राप्त कर सकूँगी? हाय! मैं मारी गयी! मैं जल गयी! मेरा हृदय विदीर्ण

हो गया और मैं सब प्रकारसे नष्ट हो गयी; क्योंकि मैं हर तरहसे पापमें ही डूबी रही हूँ॥ ५०-५१॥

हाय विधाता! मुझ पापिनीको आपने हठात् ऐसी दुर्बुद्धि क्यों दे दी, जो सभी प्रकारका सुख देनेवाले स्वधर्मसे दूर कर देती है! हे द्विज! शूलसे बिँधा हुआ व्यक्ति ऊँचे पर्वत-शिखरसे गिरनेपर जैसा घोर कष्ट पाता है, उससे भी करोड़ गुना कष्ट मुझे है। सैकड़ों अश्वमेधयज्ञ करके अथवा सैकड़ों वर्षोंतक गंगास्नान करनेपर भी मेरे घोर पापोंकी शुद्धि सम्भव नहीं दीखती। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किसका आश्रय लूँ? मुझ नरकगामिनीकी इस संसारमें कौन रक्षा करेगा?॥ ५२—५५॥

हे ब्रह्मन्! आप ही मेरे गुरु हैं, आप ही माता और आप ही पिता हैं। आपकी शरणमें आयी हुई मुझ दीन अबलाका उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये॥ ५६॥

सूतजी बोले—हे शौनक! इस प्रकार खेद और वैराग्यसे युक्त हुई चंचुला उस ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़ी। तब उन बुद्धिमान् ब्राह्मणने कृपापूर्वक उसे उठाकर इस प्रकार कहा॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें चंचुलावैराग्यवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

चंचुलाकी प्रार्थनासे ब्राह्मणका उसे पूरा शिवपुराण सुनाना और समयानुसार शरीर छोड़कर शिवलोकमें जा चंचुलाका पार्वतीजीकी सखी होना

ब्राह्मण बोले—सौभाग्यकी बात है कि भगवान् शंकरकी कृपासे शिवपुराणकी इस वैराग्ययुक्त तथा श्रेष्ठ कथाको सुनकर तुम्हें समयपर चेत हो गया है। हे ब्राह्मणपत्नी! तुम डरो मत, भगवान् शिवकी शरणमें जाओ। शिवकी कृपासे सारा पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। मैं तुमसे भगवान् शिवकी कीर्तिकथासे युक्त उस परम वस्तुका वर्णन करूँगा, जिससे तुम्हें सदा सुख देनेवाली उत्तम गति प्राप्त होगी॥ १—३॥

शिवकी उत्तम कथा सुननेसे ही तुम्हारी बुद्धि इस तरह पश्चात्तापसे युक्त एवं शुद्ध हो गयी है; साथ ही तुम्हारे मनमें विषयोंके प्रति वैराग्य हो गया है। पश्चात्ताप ही पाप करनेवाले पापियोंके लिये सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। सत्पुरुषोंने सबके लिये पश्चात्तापको ही समस्त पापोंका शोधक बताया है। पश्चात्तापसे ही पापोंकी शुद्धि होती है। जो पश्चात्ताप करता है, वही वास्तवमें पापोंका प्रायश्चित्त करता है; क्योंकि सत्पुरुषोंने समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये जैसे प्रायश्चित्तका उपदेश किया है, वह सब पश्चात्तापसे सम्पन्न हो जाता है॥ ४—६॥

जो पुरुष विधिपूर्वक प्रायश्चित्त करके निर्भय हो जाता है, पर अपने कुकर्मके लिये पश्चात्ताप नहीं करता, उसे प्रायः उत्तम गति नहीं प्राप्त होती। परंतु जिसे अपने कुकृत्यपर हार्दिक पश्चात्ताप होता है, वह अवश्य उत्तम गतिका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है। इस शिवपुराणकी कथा सुननेसे जैसी चित्तशुद्धि होती है, वैसी दूसरे उपायोंसे नहीं होती॥ ७-८॥

जैसे दर्पण साफ करनेपर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार इस शिवपुराणकी कथासे चित्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। मनुष्योंके शुद्ध चित्तमें जगदम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिव विराजमान रहते हैं। इससे वह विशुद्धात्मा पुरुष श्रीसाम्बसदाशिवके परम पदको प्राप्त होता है॥ ९-१०॥

इस प्रकार यह कथारूपी साधन सभी प्राणियोंके लिये उपकारी है और इसी कारण महादेवजीने इसको आग्रहपूर्वक प्रकट किया है। इस कथासे भगवान् उमापतिका ध्यान सिद्ध हो जाता है। उस ध्यानसे परम ज्ञान और उससे मोक्षकी प्राप्ति निश्चय ही होती है। भगवान् शंकरके ध्यानमें मग्न हुए बिना भी यदि कोई इस कथाको मात्र सुनता है, वह दूसरे जन्ममें भगवान्‌के ध्यानको सिद्धकर परमपदको पा लेता है। इस कथाके श्रवणसे भगवान् शंकरके ध्यानको प्राप्तकर पश्चात्ताप करनेवाले पापी

पुरुष सिद्धिको प्राप्त हो गये हैं॥ ११—१४॥

इस उत्तम कथाका श्रवण समस्त मनुष्योंके लिये कल्याणका बीज है। अत: यथोचित (शास्त्रोक्त) मार्गसे इसकी आराधना अथवा सेवा करनी चाहिये। यह कथा-श्रवण भव-बन्धनरूपी रोगका नाश करनेवाला है। भगवान् शिवकी कथाको सुनकर फिर अपने हृदयमें उसका मनन एवं निदिध्यासन करनेसे पूर्णतया चित्तशुद्धि हो जाती है। चित्तशुद्धि होनेसे महेश्वरकी भक्ति अपने दोनों पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य)-के साथ निश्चय ही प्रकट होती है। तत्पश्चात् महेश्वरके अनुग्रहसे दिव्य मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। जो शिवभक्तिसे वंचित है, उसे पशु समझना चाहिये; क्योंकि उसका चित्त मायाके बन्धनमें आसक्त है। वह निश्चय ही संसारबन्धनसे मुक्त नहीं हो पाता॥ १५—१८॥

हे ब्राह्मणपत्नी! इसलिये तुम विषयोंसे मनको हटा लो और भक्तिभावसे भगवान् शंकरकी इस परम पावन कथाको सुनो। परमात्मा शंकरकी इस कथाको सुननेसे तुम्हारे चित्तकी शुद्धि होगी और उससे तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। निर्मल चित्तसे भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका चिन्तन करनेवालेकी एक ही जन्ममें मुक्ति हो जाती है—यह मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ॥ १९—२१॥

सूतजी बोले—शौनक! इतना कहकर वे श्रेष्ठ शिवभक्त ब्राह्मण मौन हो गये। उनका हृदय करुणासे आर्द्र हो गया था। वे शुद्धचित्त महात्मा भगवान् शिवके ध्यानमें मग्न हो गये॥ २२॥

तदनन्तर बिन्दुगकी पत्नी चंचुला मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। ब्राह्मणका उक्त उपदेश सुनकर उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये थे। वह ब्राह्मणपत्नी चंचुला हर्षित हृदयसे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके चरणोंमें गिर पड़ी और हाथ जोड़कर बोली—'मैं कृतार्थ हो गयी'॥ २३-२४॥

तत्पश्चात् उठकर वैराग्ययुक्त तथा उत्तम बुद्धिवाली वह स्त्री, जो अपने पापोंके कारण आतंकित थी, उन महान् शिवभक्त ब्राह्मणसे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीमें कहने लगी॥ २५॥

चंचुला बोली—हे ब्रह्मन्! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे स्वामिन्! आप धन्य हैं, परमार्थदर्शी हैं और सदा परोपकारमें लगे रहते हैं, इसलिये आप श्रेष्ठ साधु पुरुषोंमें प्रशंसाके योग्य हैं। हे साधो! मैं नरकके समुद्रमें गिर रही हूँ। आप मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये। पौराणिक अर्थतत्त्वसे सम्पन्न जिस सुन्दर शिवपुराणकी कथाको सुनकर मेरे मनमें सम्पूर्ण विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न हो गया, उसी इस शिवपुराणको सुननेके लिये इस समय मेरे मनमें बड़ी श्रद्धा हो रही है॥ २६—२८॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर हाथ जोड़ उनका अनुग्रह पाकर चंचुला उस शिवपुराणकी कथाको सुननेकी इच्छा मनमें लिये उन ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तत्पर हो वहाँ रहने लगी॥ २९॥

तदनन्तर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ और शुद्ध बुद्धिवाले उन ब्राह्मणदेवताने उसी स्थानपर उस स्त्रीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनायी॥ ३०॥

इस प्रकार उस [गोकर्ण नामक] महाक्षेत्रमें उन्हीं श्रेष्ठ ब्राह्मणसे उसने शिवपुराणकी वह परम उत्तम कथा सुनी, जो भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बढ़ानेवाली तथा मुक्ति देनेवाली है। उस परम उत्तम कथाको सुनकर वह ब्राह्मणपत्नी अत्यन्त कृतार्थ हो गयी॥ ३१-३२॥

उन सद्गुरुकी कृपासे उसका चित्त शीघ्र ही शुद्ध हो गया, भगवान् शिवके अनुग्रहसे उसके हृदयमें शिवके सगुणरूपका चिन्तन होने लगा॥ ३३॥

इस प्रकार सद्गुरुका आश्रय लेकर उसने भगवान् शिवमें लगी रहनेवाली उत्तम बुद्धि पाकर शिवके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका बारंबार चिन्तन आरम्भ किया॥ ३४॥

वह प्रतिदिन तीर्थके जलमें स्नान करके जटा और वल्कल धारण करने लगी तथा समूची देहमें भस्म लगाकर रुद्राक्षके आभूषण धारण करने लगी। वह भगवान् शिवके नामजपमें लगी रहती थी, संयमित वाणी और अल्पाहार करते हुए गुरुके बताये मार्गसे वह शिवजीको प्रसन्न करने लगी। हे शौनक! इस प्रकार शम्भुका उत्तम ध्यान करते हुए उस चंचुलाका बहुत-सा समय बीत गया॥ ३५—३७॥

तत्पश्चात् समयके पूर्ण होनेपर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे युक्त हुई चंचुलाने अपने शरीरको बिना किसी

कष्टके त्याग दिया॥ ३८॥

इतनेमें ही त्रिपुरशत्रु भगवान् शिवका भेजा हुआ एक दिव्य विमान द्रुत गतिसे वहाँ पहुँचा, जो उनके अपने गणोंसे संयुक्त और भाँति-भाँतिके शोभा-साधनोंसे सम्पन्न था। चंचुला उस विमानपर आरूढ़ हुई और भगवान् शिवके श्रेष्ठ पार्षदोंने उसे तत्काल शिवपुरीमें पहुँचा दिया। उसके सारे मल धुल गये थे। वह दिव्यरूपधारिणी दिव्यांगना हो गयी थी। उसके दिव्य अवयव उसकी शोभा बढ़ाते थे। मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण किये वह गौरांगी देवी शोभाशाली दिव्य आभूषणोंसे विभूषित थी॥ ३९—४१॥

वहाँ पहुँचकर उसने त्रिनेत्रधारी महादेवजीको देखा। ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता उन सनातन शिवकी सेवा कर रहे थे। गणेश, भृंगी, नन्दीश, वीरभद्रेश्वर आदि गण उत्तम भक्तिके साथ उनकी उपासना कर रहे थे। उनकी अंगकान्ति करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित हो रही थी। कण्ठमें नील चिह्न शोभा पाता था। उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। मस्तकपर अर्धचन्द्राकार मुकुट शोभा देता था। उन्होंने अपने वामांगमें गौरी देवीको बिठा रखा था, जो विद्युत्-पुंजके समान प्रकाशित थीं। गौरीपति महादेवजीकी कान्ति कपूरके समान गौर थी। उन्होंने सभी अलंकार धारण कर रखे थे, उनका सारा शरीर श्वेत भस्मसे भासित था। शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। वे अत्यन्त उज्ज्वल वर्णके थे॥ ४२—४५॥

इस प्रकार परम उज्ज्वल भगवान् शंकरका दर्शन करके वह ब्राह्मणपत्नी चंचुला बहुत प्रसन्न हुई। अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर उसने बड़ी उतावलीके साथ भगवान्‌को बारंबार प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर वह बड़े प्रेम, आनन्द और सन्तोषसे युक्त हो विनीतभावसे खड़ी हो गयी। उसके

नेत्रोंसे आनन्दाश्रुओंकी अविरल धारा बहने लगी तथा सम्पूर्ण शरीरमें रोमांच हो गया। उस समय भगवती पार्वती और भगवान् शंकरने उसे बड़ी करुणाके साथ अपने पास बुलाया और सौम्य दृष्टिसे उसकी ओर देखा। पार्वतीजीने तो दिव्यरूपधारिणी बिन्दुगप्रिया चंचुलाको प्रेमपूर्वक अपनी सखी बना लिया। वह उस परमानन्दघन ज्योतिःस्वरूप सनातनधाममें अविचल निवास पाकर दिव्य सौख्यसे सम्पन्न हो अक्षय सुखका अनुभव करने लगी॥ ४६—५०॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें चंचुलासद्‌गतिवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

चंचुलाके प्रयत्नसे पार्वतीजीकी आज्ञा पाकर तुम्बुरुका विन्ध्यपर्वतपर शिवपुराणकी कथा सुनाकर बिन्दुगका पिशाचयोनिसे उद्धार करना तथा उन दोनों दम्पतीका शिवधाममें सुखी होना

शौनकजी बोले—हे महाभाग सूतजी! आप धन्य हैं, आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है। आपने कृपापूर्वक यह शिवभक्तिको बढ़ानेवाली अद्भुत कथा हमें सुनायी। हे महामते! सद्‌गति प्राप्त करनेके बाद वहाँ जाकर चंचुलाने क्या किया और उसके पतिका क्या हुआ; यह सब वृत्तान्त विस्तारसे हमें बताइये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे शौनक! एक दिन परमानन्दमें निमग्न हुई चंचुलाने उमादेवीके पास जाकर प्रणाम किया

और दोनों हाथ जोड़कर वह उनकी स्तुति करने लगी॥ ३॥

चंचुला बोली—हे गिरिराजनन्दिनी! हे स्कन्दमाता! मनुष्योंने सदा आपकी सेवा की है। समस्त सुखोंको देनेवाली हे शम्भुप्रिये! हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आप विष्णु और ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा सेव्य हैं। आप ही सगुणा और निर्गुणा भी हैं तथा आप ही सूक्ष्मा सच्चिदानन्दस्वरूपिणी आद्या प्रकृति हैं। आप ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली हैं। तीनों गुणोंका आश्रय भी आप ही हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीनों देवताओंका आवास-स्थान तथा उनकी उत्तम प्रतिष्ठा करनेवाली पराशक्ति आप ही हैं॥ ४—६॥

सूतजी बोले—हे शौनक! जिसे सद्‌गति प्राप्त हो चुकी थी, वह चंचुला इस प्रकार महेश्वरपत्नी उमाकी स्तुति करके सिर झुकाये चुप हो गयी। उसके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये थे॥ ७॥

तब करुणासे भरी हुई शंकरप्रिया भक्तवत्सला पार्वतीदेवी चंचुलाको सम्बोधित करके बड़े प्रेमसे इस प्रकार कहने लगीं—॥ ८॥

पार्वती बोलीं—हे सखी चंचुले! हे सुन्दरि! मैं तुम्हारी की हुई इस स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो, क्या वर माँगती हो? तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है॥ ९॥

सूतजी बोले—पार्वतीके इस प्रकार कहनेपर चंचुला उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर नतमस्तक हो प्रेमपूर्वक पूछने लगी—॥ १०॥

चंचुला बोली—हे निष्पाप गिरिराजकुमारी! मेरे पति बिन्दुग इस समय कहाँ हैं, उनकी कैसी गति हुई है—यह मैं नहीं जानती! कल्याणमयी दीनवत्सले! मैं अपने उन पतिदेवसे जिस प्रकार संयुक्त हो सकूँ, कृपा करके वैसा ही उपाय कीजिये। हे महेश्वरि! हे महादेवि! मेरे पति एक शूद्रजातीय वेश्याके प्रति आसक्त थे और पापमें ही डूबे रहते थे। उनकी मृत्यु मुझसे पहले ही हो गयी थी। वे न जाने किस गतिको प्राप्त हुए हैं॥ ११-१२॥

सूतजी बोले—चंचुलाका यह वचन सुनकर नीतिवत्सला हिमालयपुत्री देवी पार्वतीने अत्यन्त प्रेमपूर्वक यह उत्तर दिया—॥ १३॥

गिरिजा बोलीं—हे सुते! तुम्हारा बिन्दुग नामवाला पति बड़ा पापी था। उसका अन्तःकरण बड़ा ही दूषित था। वेश्याका उपभोग करनेवाला वह महामूढ़ मरनेके बाद नरकमें पड़ा; अगणित वर्षोंतक नरकमें नाना प्रकारके दुःख भोगकर वह पापात्मा अपने शेष पापको भोगनेके लिये विन्ध्यपर्वतपर पिशाच हुआ है। इस समय वह पिशाचकी अवस्थामें ही है और नाना प्रकारके क्लेश उठा रहा है। वह दुष्ट वहीं वायु पीकर रहता है और सदा सब प्रकारके कष्ट सहता है॥ १४—१६॥

सूतजी बोले—हे शौनक! गौरीदेवीकी यह बात सुनकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाली वह चंचुला उस समय पतिके महान् दुःखसे दुखी हो गयी। फिर मनको स्थिर करके उस ब्राह्मणपत्नीने व्यथित हृदयसे महेश्वरीको प्रणाम करके पुनः पूछा—॥ १७-१८॥

चंचुला बोली—हे महेश्वरि! हे महादेवि! मुझपर कृपा कीजिये और दूषित कर्म करनेवाले मेरे उस दुष्ट पतिका अब उद्धार कर दीजिये। हे देवि! कुत्सित बुद्धिवाले मेरे उस पापात्मा पतिको किस उपायसे उत्तम गति प्राप्त हो सकती है, यह शीघ्र बताइये। आपको नमस्कार है॥ १९-२०॥

सूतजी बोले—उसकी यह बात सुनकर भक्तवत्सला पार्वतीजी अपनी सखी चंचुलासे प्रसन्न होकर ऐसा कहने लगीं॥ २१॥

पार्वतीजी बोलीं—तुम्हारा पति यदि शिवपुराणकी पुण्यमयी उत्तम कथा सुने तो सारी दुर्गतिको पार करके वह उत्तम गतिका भागी हो सकता है॥ २२॥

अमृतके समान मधुर अक्षरोंसे युक्त गौरीदेवीका यह वचन आदरपूर्वक सुनकर चंचुलाने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर उन्हें बारंबार प्रणाम किया और अपने पतिके समस्त पापोंकी शुद्धि तथा उत्तम गतिकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीसे यह प्रार्थना की कि मेरे पतिको शिवपुराण सुनानेकी व्यवस्था होनी चाहिये॥ २३-२४॥

सूतजी बोले—उस ब्राह्मणपत्नीके बारंबार प्रार्थना करनेपर शिवप्रिया गौरीदेवीको बड़ी दया आयी। उन भक्तवत्सला महेश्वरी गिरिराजकुमारीने भगवान् शिवकी

उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले गन्धर्वराज तुम्बुरुको बुलाकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक इस प्रकार कहा— ॥ २५-२६ ॥

गिरिजा बोलीं—मेरे मनकी बातोंको जानकर मेरे अभीष्ट कार्योंको सिद्ध करनेवाले तथा शिवमें प्रीति रखनेवाले हे तुम्बुरो! [मैं तुमसे एक बात कहती हूँ।] तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरी इस सखीके साथ शीघ्र ही विन्ध्यपर्वतपर जाओ। वहाँ एक महाघोर और भयंकर पिशाच रहता है। उसका वृत्तान्त तुम आरम्भसे ही सुनो। मैं तुमसे प्रसन्नतापूर्वक सब कुछ बताती हूँ॥ २७-२८ ॥

पूर्वजन्ममें वह पिशाच बिन्दुग नामक ब्राह्मण था। वह मेरी इस सखी चंचुलाका पति था। परंतु वह दुष्ट वेश्यागामी हो गया। स्नान-सन्ध्या आदि नित्यकर्म छोड़कर वह अपवित्र रहने लगा। क्रोधके कारण उसकी बुद्धिपर मूढ़ता छा गयी थी। वह कर्तव्याकर्तव्यका विवेक नहीं कर पाता था। अभक्ष्यभक्षण, सज्जनोंसे द्वेष और दूषित वस्तुओंका दान लेना—यही उसका स्वाभाविक कर्म बन गया था। वह अस्त्र-शस्त्र लेकर हिंसा करता, बायें हाथसे खाता, दीनोंको सताता और क्रूरतापूर्वक पराये घरोंमें आग लगा देता था। वह चाण्डालोंसे प्रेम करता और प्रतिदिन वेश्याके सम्पर्कमें रहता था। वह बड़ा दुष्ट था। उस पापीने अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया था और वह दुष्टोंके संगमें निरत रहता था॥ २९—३२ ॥

उसने वेश्याके कुसंगसे अपने सारे पुण्य नष्ट कर लिये और धनके लोभसे अपनी पत्नीको निर्भय करके व्यभिचारिणी बना डाला॥ ३३ ॥

वह मृत्युपर्यन्त दुराचारमें ही फँसा रहा। फिर समय आनेपर उसकी मृत्यु हो गयी। वह पापियोंके भोगस्थान घोर यमपुरमें गया और वहाँ बहुत-से नरकोंको भोगकर वह दुष्टात्मा इस समय विन्ध्यपर्वतपर पिशाच बना हुआ है। वहींपर वह दुष्ट पिशाच अपने पापोंका फल भोग रहा है॥ ३४-३५ ॥

तुम उसके आगे यत्नपूर्वक शिवपुराणकी उस दिव्य कथाका प्रवचन करो, जो परम पुण्यमयी तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। उत्तम शिवपुराणकी कथाके श्रवणसे उसका हृदय शीघ्र ही समस्त पापोंसे शुद्ध हो जायगा और वह प्रेतयोनिका परित्याग कर देगा। दुर्गतिसे मुक्त होनेपर उस बिन्दुग नामक पिशाचको मेरी आज्ञासे विमानपर बिठाकर तुम भगवान् शिवके समीप ले आओ॥ ३६—३८ ॥

सूतजी बोले—[हे शौनक!] महेश्वरी उमाके इस प्रकार आदेश देनेपर गन्धर्वराज तुम्बुरु मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने भाग्यकी सराहना की। तत्पश्चात् उस पिशाचकी सती-साध्वी पत्नी चंचुलाके साथ विमानपर बैठकर नारदके प्रिय मित्र तुम्बुरु वेगपूर्वक विन्ध्याचल पर्वतपर गये, जहाँ वह पिशाच रहता था॥ ३९-४० ॥

वहाँ उन्होंने उस पिशाचको देखा। उसका शरीर विशाल था और उसकी ठोढ़ी बहुत बड़ी थी। वह कभी हँसता, कभी रोता और कभी उछलता था। उसकी आकृति बड़ी विकराल थी। भगवान् शिवकी उत्तम कीर्तिका गान करनेवाले महाबली तुम्बुरुने उस अत्यन्त भयंकर पिशाचको बलपूर्वक पाशोंद्वारा बाँध लिया॥ ४१-४२ ॥

तदनन्तर तुम्बुरुने शिवपुराणकी कथा बाँचनेका निश्चय करके महोत्सवयुक्त स्थान और मण्डप आदिकी रचना की। इतनेमें ही सम्पूर्ण लोकोंमें बड़े वेगसे यह प्रचार हो गया कि देवी पार्वतीकी आज्ञासे एक पिशाचका उद्धार करनेके उद्देश्यसे शिवपुराणकी उत्तम कथा सुनानेके लिये तुम्बुरु विन्ध्यपर्वतपर गये हैं। तब तो उस कथाको सुननेके लोभसे बहुत-से देवता और

ऋषि भी शीघ्र ही वहाँ जा पहुँचे। आदरपूर्वक शिवपुराण सुननेके लिये आये हुए लोगोंका उस पर्वतपर बड़ा अद्भुत और कल्याणकारी समाज जुट गया॥ ४३—४६॥

तत्पश्चात् तुम्बुरुने उस पिशाचको पाशोंसे बाँधकर आसनपर बिठाया और हाथमें वीणा लेकर गौरीपतिकी कथाका गान आरम्भ किया। माहात्म्यसहित पहली अर्थात् प्रथम संहितासे लेकर सातवीं संहितातक शिवपुराणकी कथाका उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया॥ ४७-४८॥

सात संहितावाले शिवपुराणका आदरपूर्वक श्रवण करके वे सभी श्रोता पूर्णतः कृतार्थ हो गये। उस परम पुण्यमय शिवपुराणको सुनकर उस पिशाचने अपने सारे पापोंको धोकर उस पैशाचिक शरीरको त्याग दिया। शीघ्र ही उसका रूप दिव्य हो गया। अंगकान्ति गौरवर्णकी हो गयी। शरीरपर श्वेत वस्त्र तथा सब प्रकारके पुरुषोचित आभूषण उसके अंगोंको उद्भासित करने लगे। वह त्रिनेत्रधारी चन्द्रशेखररूप हो गया॥ ४९—५१॥

इस प्रकार दिव्य देहधारी होकर श्रीमान् बिन्दुग अपनी भार्या चंचुलाके साथ स्वयं भी पार्वतीपति भगवान् शिवके दिव्य चरित्रका गुणगान करने लगा। उसकी स्त्रीको इस प्रकार दिव्य रूपसे सुशोभित देखकर वे सभी देवता और ऋषि बड़े विस्मित हुए; उनका चित्त परमानन्दसे परिपूर्ण हो गया। भगवान् महेश्वरका वह अद्भुत चरित्र सुनकर वे सभी श्रोता परम कृतार्थ हो प्रेमपूर्वक श्रीशिवका यशोगान करते हुए अपने-अपने धामको चले गये॥ ५२—५४॥

दिव्यरूपधारी श्रीमान् बिन्दुग भी सुन्दर विमानपर अपनी प्रियतमाके पास बैठकर सुखपूर्वक आकाशमें स्थित हो परम शोभा पाने लगा॥ ५५॥

तदनन्तर महेश्वरके सुन्दर एवं मनोहर गुणोंका गान करता हुआ वह अपनी प्रियतमा तथा तुम्बुरुके साथ शीघ्र ही शिवधाममें जा पहुँचा। वहाँ भगवान् महेश्वर तथा पार्वती देवीने प्रसन्नतापूर्वक बिन्दुगका बड़ा सत्कार किया और उसे अपना गण बना लिया। उसकी पत्नी चंचुला पार्वतीजीकी सखी हो गयी। उस घनीभूतज्योतिःस्वरूप परमानन्दमय सनातनधाममें अविचल निवास पाकर वे दोनों दम्पती परम सुखी हो गये॥ ५६—५८॥

यह उत्तम इतिहास मैंने आपको सुनाया, जो पापोंका नाश करनेवाला, उमा-महेश्वरको आनन्द देनेवाला, अत्यन्त पवित्र तथा उनमें भक्ति बढ़ानेवाला है। जो इसे भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा एकाग्रचित्त होकर इसका पाठ करता है, वह अनेक सांसारिक सुखोंको भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त करता है॥ ५९-६०॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें बिन्दुगसद्गतिवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

शिवपुराणके श्रवणकी विधि

शौनकजी बोले—हे महाप्राज्ञ! हे व्यासशिष्य! हे सूतजी! आपको नमस्कार है। आप धन्य हैं और शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ हैं। आपके महान् गुण वर्णन करनेयोग्य हैं। अब आप कल्याणमय शिवपुराणके श्रवणकी विधि बतलाइये, जिससे सभी श्रोताओंको सम्पूर्ण उत्तम फलकी प्राप्ति हो सके॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे शौनक! हे मुने! अब मैं आपको सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये शिवपुराणके

श्रवणकी विधि बता रहा हूँ॥ ३॥

[सर्वप्रथम] किसी ज्योतिषीको बुलाकर दान-मानसे सन्तुष्ट करके अपने सहयोगी लोगोंके साथ बैठकर बिना किसी विघ्न-बाधाके कथाकी समाप्ति होनेके उद्देश्यसे शुद्ध मुहूर्तका अनुसन्धान कराये। तदनन्तर प्रयत्नपूर्वक देश-देशमें—स्थान-स्थानपर यह शुभ सन्देश भेजे कि हमारे यहाँ शिवपुराणकी कथा होनेवाली है। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको [उसे सुननेके लिये] अवश्य पधारना चाहिये॥ ४-५॥

कुछ लोग भगवान् श्रीहरिकी कथासे बहुत दूर पड़ गये हैं। कितने ही स्त्री, शूद्र आदि भगवान् शंकरके कथा-कीर्तनसे वंचित रहते हैं—उन सबको भी सूचना हो जाय, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। देश-देशमें जो भगवान् शिवके भक्त हों तथा शिव-कथाके कीर्तन और श्रवणके लिये उत्सुक हों, उन सबको आदरपूर्वक बुलवाना चाहिये॥ ६-७॥

[उन्हें कहलाना चाहिये कि] यहाँ सत्पुरुषोंको आनन्द देनेवाला समाज तथा अति अद्भुत उत्सव होगा, जिसमें शिवपुराणका पारायण होगा। श्रीशिवपुराणकी रसमयी कथाका श्रवण करनेहेतु आपलोग प्रेमपूर्वक शीघ्र पधारनेकी कृपा करें। यदि समयका अभाव हो तो प्रेमपूर्वक एक दिनके लिये भी आइये। आपको निश्चय ही आना चाहिये; क्योंकि इस कथामें क्षणभरके लिये बैठनेका सौभाग्य भी दुर्लभ है। इस प्रकार विनय और प्रसन्नतापूर्वक श्रोताओंको निमन्त्रण देना चाहिये और आये हुए लोगोंका सब प्रकारसे आदर-सत्कार करना चाहिये॥ ८—११॥

शिवमन्दिरमें, तीर्थमें, वनप्रान्तमें अथवा घरमें शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करना चाहिये॥ १२॥

कथाभूमिको लीपकर शोधन करना चाहिये तथा धातु आदिसे उस स्थानको सुशोभित करना चाहिये। महोत्सवके साथ-साथ वहाँ अद्भुत तथा सुन्दर व्यवस्था कर लेनी चाहिये। कथाके लिये अनुपयोगी घरके साज-सामानको हटाकर घरके किसी एकान्त कोनेमें सुरक्षित रख देना चाहिये॥ १३-१४॥

केलेके खम्भोंसे सुशोभित एक ऊँचा कथामण्डप तैयार कराये। उसे सब ओर फल-पुष्प आदिसे तथा सुन्दर चँदोवेसे अलंकृत करे और चारों ओर ध्वजा-पताका लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजाकर सुन्दर शोभासम्पन्न बना दे। भगवान् शिवके प्रति सब प्रकारसे उत्तम भक्ति करनी चाहिये; क्योंकि वही सब तरहसे आनन्दका विधान करनेवाली है॥ १५-१६॥

परमात्मा भगवान् शंकरके लिये दिव्य आसनका निर्माण करना चाहिये तथा कथा-वाचकके लिये भी एक ऐसा दिव्य आसन बनाना चाहिये, जो उनके लिये सुखद हो सके॥ १७॥

हे मुने! [नियमपूर्वक] कथा सुननेवाले श्रोताओंके लिये भी यथायोग्य सुन्दर स्थानोंकी व्यवस्था करनी चाहिये। अन्य लोगोंके लिये भी सामान्यरूपसे स्थान बनाने चाहिये॥ १८॥

हे शौनकजी! विवाहोत्सवमें जैसी उल्लासपूर्ण मनःस्थिति होती है, वैसी ही इस कथोत्सवमें रखनी चाहिये। सब प्रकारकी दूसरी लौकिक चिन्ताओंको भूल जाना चाहिये॥ १९॥

वक्ता उत्तर दिशाकी ओर मुख करे तथा श्रोतागण पूर्व दिशाकी ओर मुख करके पालथी लगाकर बैठें। इस विषयमें भी कोई विरोध नहीं है कि पूज्य-पूजकके बीच पूर्व दिशा रहे अथवा वक्ताके सम्मुख श्रोताओंका मुख रहे—ऐसा कहा गया है॥ २०-२१॥

पौराणिक वक्ता व्यासासनपर जबतक विराजमान रहें, तबतक प्रसंग-समाप्तिके पूर्व किसीको नमस्कार नहीं करना चाहिये। पुराणका विद्वान् वक्ता चाहे बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्र अथवा दुर्बल—जैसा भी हो, पुण्य चाहनेवालोंके लिये सदा वन्दनीय और पूज्य होता है॥ २२-२३॥

जिसके मुखसे निकली हुई वाणी देहधारियोंके लिये कामधेनुके समान अभीष्ट फल देनेवाली होती है, उस पुराणवेत्ता वक्ताके प्रति तुच्छबुद्धि कभी नहीं करनी चाहिये। संसारमें जन्म तथा गुणोंके कारण बहुत-से गुरु

होते हैं, परंतु उन सबमें पुराणोंका ज्ञाता विद्वान् ही परम गुरु माना गया है॥ २४-२५॥

करोड़ों योनियोंमें जन्म ले-लेकर दुःख भोगते हुए प्राणियोंको जो मुक्ति प्रदान करता है, उस [पुराणवक्ता]-से बड़ा दूसरा कौन गुरु हो सकता है?॥ २६॥

पुराणवेत्ता पवित्र, दक्ष, शान्त, ईर्ष्यापर विजय पानेवाला, साधु और दयालु होना चाहिये। ऐसा प्रवचनकुशल विद्वान् इस पुण्यमयी कथाको कहे। सूर्योदयसे आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक उत्तम बुद्धिवाले विद्वान् पुरुषको शिवपुराणकी कथा सम्यक् रीतिसे बाँचनी चाहिये॥ २७-२८॥

जो धूर्त, दुराचारी तथा दूसरेसे विवाद करनेवाले और प्रपंची लोग हैं, उन कुटिलवृत्तिवाले लोगोंके सामने यह कथा नहीं कहनी चाहिये। दुष्टोंसे भरे तथा डाकुओंसे घिरे प्रदेशमें और धूर्त व्यक्तिके घरमें इस पवित्र कथाको नहीं कहना चाहिये॥ २९-३०॥

मध्याह्नकालमें दो घड़ीतक कथा बन्द रखनी चाहिये, जिससे कथा-कीर्तनसे अवकाश पाकर लोग शौच आदिसे निवृत्त हो सकें॥ ३१॥

कथा-प्रारम्भके दिनसे एक दिन पहले व्रत ग्रहण करनेके लिये वक्ताको क्षौर करा लेना चाहिये। जिन दिनों कथा हो रही हो, उन दिनों प्रयत्नपूर्वक प्रातःकालका सारा नित्यकर्म संक्षेपसे ही कर लेना चाहिये। वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये एक दूसरा वैसा ही विद्वान् स्थापित करना चाहिये, जो सब प्रकारके संशयोंको निवृत्त करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल हो॥ ३२-३३॥

कथामें आनेवाले विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे। कथाके स्वामी भगवान् शिवकी तथा विशेषतः शिवपुराण ग्रन्थकी भक्तिभावसे पूजा करे। तत्पश्चात् उत्तम बुद्धिवाला श्रोता विधिपूर्वक तन-मनसे शुद्ध एवं प्रसन्नचित्त हो आदरपूर्वक शिवपुराणकी कथा सुने॥ ३४-३५॥

जो वक्ता और श्रोता अनेक प्रकारके कर्मोंमें भटक रहे हों, काम आदि छः विकारोंसे युक्त हों, स्त्रीमें आसक्ति रखते हों और पाखण्डपूर्ण बातें कहते हों, वे पुण्यके भागी नहीं होते। जो लौकिक चिन्ता तथा धन, गृह एवं पुत्र आदिकी चिन्ताको छोड़कर कथामें मन लगाये रहता है, उस शुद्धबुद्धि पुरुषको उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। श्रद्धा और भक्तिसे युक्त, दूसरे कर्मोंमें मन नहीं लगानेवाले, मौन धारण करनेवाले, पवित्र एवं उद्वेगशून्य श्रोता ही पुण्यके भागी होते हैं॥ ३६—३८॥

जो नराधम भक्तिरहित होकर इस पुण्यमयी कथाको सुनते हैं, उन्हें श्रवणका कोई फल नहीं होता और वे जन्म-जन्मान्तरमें क्लेश भोगते ही रहते हैं। यथाशक्ति उपचारोंसे इस पुराणकी पूजा किये बिना जो मूढ़जन इस कथाको सुनते हैं, वे अपवित्र और दरिद्र होते हैं॥ ३९-४०॥

कथा कहे जाते समय बीचमें ही जो लोग उठकर अन्यत्र चले जाते हैं, जन्मान्तरमें उनकी स्त्री आदि सम्पत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो पुरुष सिरपर पगड़ी आदि धारण करके इस कथाका श्रवण करते हैं, उनके पापी और कुलकलंकी पुत्र उत्पन्न होते हैं॥ ४१-४२॥

जो पुरुष पान चबाते हुए इस कथाको सुनते हैं, उन्हें नरकमें यमदूत उनकी ही विष्ठा खिलाते हैं। जो लोग ऊँचे आसनपर बैठकर इस कथाका श्रवण करते हैं, वे समस्त नरकोंको भोगकर काकयोनिमें जन्म लेते हैं॥ ४३-४४॥

जो लोग वीरासन आदिसे बैठकर इस शुभ कथाको सुनते हैं, वे अनेकों नरकोंको भोगकर विषवृक्षका जन्म पाते हैं। कथा सुनानेवाले पौराणिकको अच्छी प्रकार प्रणाम किये बिना जो लोग कथा सुनते हैं, वे सभी नरकोंको भोगकर अर्जुनवृक्ष बनते हैं। रोगयुक्त न होनेपर भी जो लोग लेटकर यह कथा सुनते हैं, वे सभी नरकोंको भोगकर अन्तमें अजगर आदि योनियोंमें जन्म लेते हैं। वक्ताके समान ऊँचाईवाले आसनपर बैठकर जो इस कथाका श्रवण करते हैं, उन नारकीय लोगोंको गुरुशय्यापर शयन करने-जैसा पाप लगता है॥ ४५—४८॥

जो इस पवित्र कथा तथा वक्ताकी निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मोंतक दुःख भोगकर कुत्तेका जन्म पाते हैं। कथा

होते समय बीचमें जो गन्दी बातें बोलते हैं, वे घोर नरक भोगनेके बाद गधेका जन्म पाते हैं। जो कभी भी इस परम पवित्र कथाका श्रवण नहीं करते, वे घोर नरक भोगनेके पश्चात् जंगली सूअरका जन्म लेते हैं। जो दुष्ट कथाके बीचमें विघ्न डालते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरकयातनाओंको भोगकर गाँवके सूअरका जन्म पाते हैं॥ ४९—५२॥

इसका विचार करके शुद्ध और प्रेमपूर्ण चित्तसे बुद्धिमान् श्रोताको वक्ताके प्रति भक्तिभाव रखकर कथाश्रवणका प्रयत्न करना चाहिये॥ ५३॥

सबसे पहले कथाके विघ्नोंका नाश करनेहेतु गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। अपने नित्यकर्मको संक्षेपमें सम्पन्न करके प्रायश्चित्त करना चाहिये। नवग्रह और सर्वतोभद्र देवताओंका पूजन करके शिवपूजाकी बतायी गयी विधिसे शिवपुराणकी पुस्तकका अर्चन करना चाहिये॥ ५४-५५॥

पूजनके अन्तमें विनम्र होकर बड़ी भक्तिके साथ दोनों हाथ जोड़कर साक्षात् शिवस्वरूपिणी पुस्तककी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—श्रीशिवपुराणके रूपमें आप प्रत्यक्ष सदाशिव हैं; हमने कथा सुननेके लिये आपको अंगीकार किया है। आप हमपर प्रसन्न हों। मेरा जो मनोवांछित हो, उसे आप कृपापूर्वक सम्पन्न करें। मेरा यह कथाश्रवण निर्विघ्नरूपसे सुसम्पन्न हो। कर्मरूपी ग्राहसे ग्रस्त शरीरवाले मुझ दीनका आप संसारसागरसे उद्धार कीजिये। हे शंकर! मैं आपका दास हूँ॥ ५६—५९॥

इस प्रकार साक्षात् शिवस्वरूप इस शिवपुराणकी दीनतापूर्वक स्तुति करके वक्ताकी पूजा आरम्भ करनी चाहिये। शिवपूजाकी बतायी गयी विधिसे पुष्प, वस्त्र, अलंकार, धूप-दीपादिसे वक्ताकी पूजा करे। तदनन्तर शुद्धचित्तसे उनके सामने नियम ग्रहण करे और कथासमाप्तिपर्यन्त यथाशक्ति उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करे॥ ६०—६२॥

[तत्पश्चात् कथावाचक व्यासकी प्रार्थना करे—] हे व्यासजीके समान ज्ञानीश्रेष्ठ, शिवशास्त्रके मर्मज्ञ ब्राह्मणदेवता! आप इस कथाके प्रकाशसे मेरे अज्ञानान्धकारको दूर करें। भक्तिपूर्वक पाँच अथवा एक ब्राह्मणका वरण करे और उनके द्वारा शिवपंचाक्षर मन्त्र (**नमः शिवाय**)-का जप कराये॥ ६३-६४॥

हे मुने! इस प्रकार मैंने भक्त श्रोताओंद्वारा भक्तिपूर्वक कथाश्रवणकी उत्तम विधि आपको बता दी; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६५॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणके अन्तर्गत शिवपुराणमाहात्म्यमें श्रवणविधिवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

श्रोताओंके पालन करनेयोग्य नियमोंका वर्णन

शौनकजी बोले—हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् सूतजी! आप धन्य हैं, जो कि आपने यह अद्भुत एवं कल्याणकारिणी कथा हमें सुनायी। हे मुने! शिवपुराणकी कथा सुननेके लिये व्रत धारण करनेवाले लोगोंको किन नियमोंका पालन करना चाहिये—यह भी कृपापूर्वक सबके कल्याणकी दृष्टिसे बताइये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे शौनक! अब शिवपुराण सुननेका व्रत लेनेवाले पुरुषोंके लिये जो नियम हैं, उन्हें भक्तिपूर्वक सुनिये। नियमपूर्वक इस श्रेष्ठ कथाको सुननेसे बिना किसी विघ्न-बाधाके उत्तम फलकी प्राप्ति होती है॥ ३॥

दीक्षासे रहित लोगोंका कथाश्रवणमें अधिकार नहीं है। अतः मुने! कथा सुननेकी इच्छावाले सब लोगोंको पहले वक्तासे दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। कथाव्रतीको ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना, पत्तलमें खाना और प्रतिदिन कथा समाप्त होनेपर ही अन्न ग्रहण करना चाहिये॥ ४-५॥

जिसमें शक्ति हो, वह पुराणकी समाप्तितक उपवास करके शुद्धतापूर्वक भक्तिभावसे उत्तम शिवपुराणको सुने। घृत अथवा दुग्ध पीकर सुखपूर्वक कथाश्रवण करे अथवा फलाहार करके अथवा एक ही समय भोजन करके इसे सुनना चाहिये। इस कथाका व्रत लेनेवाले

पुरुषको प्रतिदिन एक ही बार हविष्यान्न भोजन करना चाहिये। जिस प्रकारसे कथाश्रवणका नियम सुखपूर्वक पालित हो सके, वैसे ही करना चाहिये॥ ६—८॥

कथाश्रवणमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले उपवासकी तुलनामें तो मैं कथाश्रवणमें शक्ति प्रदान करनेवाले भोजनको ही अच्छा समझता हूँ॥ ९॥

गरिष्ठ अन्न, दाल, जला अन्न, सेम, मसूर, भावदूषित तथा बासी अन्नको खाकर कथा-व्रती पुरुष कभी कथाको न सुने॥ १०॥

कथाव्रतीको बैंगन, तरबूज, चिचिंडा, मूली, कोहड़ा, प्याज, नारियलका मूल तथा अन्य कन्द-मूलका त्याग करना चाहिये॥ ११॥

जिसने कथाका व्रत ले रखा हो, वह पुरुष प्याज, लहसुन, हींग, गाजर, मादक वस्तु तथा आमिष कही जानेवाली वस्तुओंको त्याग दे। कथाका व्रत लेनेवाला जो पुरुष हो, उसे काम, क्रोध आदि छः विकारों, ब्राह्मणोंकी निन्दा तथा पतिव्रता और साधु-संतोंकी निन्दाका त्याग कर देना चाहिये॥ १२-१३॥

कथाश्रवणका व्रत धारण करनेवाला व्यक्ति रजस्वला स्त्रीको न देखे, पतित मनुष्योंको कथाकी बात न सुनाये, ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवालों और वेदबहिष्कृत मनुष्योंके साथ सम्भाषण न करे॥ १४॥

कथाव्रती पुरुष प्रतिदिन सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय तथा मनकी उदारता—इन सद्गुणोंको सदा अपनाये रहे। श्रोता निष्काम हो या सकाम, वह नियमपूर्वक कथा सुने। सकाम पुरुष अपनी अभीष्ट कामनाको प्राप्त करता है और निष्काम पुरुष मोक्ष पा लेता है। दरिद्र, क्षयका रोगी, पापी, भाग्यहीन तथा सन्तानरहित पुरुष भी इस उत्तम कथाको सुने॥ १५—१७॥

काकवन्ध्या आदि जो सात प्रकारकी दुष्टा स्त्रियाँ हैं तथा जिस स्त्रीका गर्भ गिर जाता हो—इन सभीको शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये। हे मुने! स्त्री हो या पुरुष—सबको यत्नपूर्वक विधि-विधानसे शिवपुराणकी उत्तम कथा सुननी चाहिये॥ १८-१९॥

इस शिवपुराणके कथापारायणके दिनोंको अत्यन्त उत्तम और करोड़ों यज्ञोंके समान पवित्र मानना चाहिये। इन श्रेष्ठ दिनोंमें विधिपूर्वक जो थोड़ी-सी भी वस्तु दान की जाती है, उसका अक्षय फल मिलता है॥ २०-२१॥

इस प्रकार व्रतधारण करके इस परम श्रेष्ठ कथाका श्रवण करके आनन्दपूर्वक श्रीमान् पुरुषोंको इसका उद्यापन करना चाहिये। इसके उद्यापनकी विधि शिवचतुर्दशीके उद्यापनके समान है। अतः यहाँ बताये गये फलकी आकांक्षावाले धनाढ्य लोगोंको उसी प्रकारसे उद्यापन करना चाहिये। अल्पवित्तवाले भक्तोंके लिये प्रायः उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है; वे तो कथाश्रवणमात्रसे पवित्र हो जाते हैं। शिवजीके निष्काम भक्त तो शिवस्वरूप ही होते हैं॥ २०—२४॥

हे महर्षे! इस प्रकार शिवपुराणकी कथाके पाठ एवं श्रवण-सम्बन्धी यज्ञोत्सवकी समाप्ति होनेपर श्रोताओंको भक्ति एवं प्रयत्नपूर्वक भगवान् शिवकी पूजाकी भाँति पुराण-पुस्तककी भी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक वक्ताका भी पूजन करना चाहिये। पुस्तकको आच्छादित करनेके लिये नवीन एवं सुन्दर बस्ता बनाये और उसे बाँधनेके लिये दृढ़ एवं दिव्य सूत्र लगाये; फिर उसका विधिवत् पूजन करे॥ २५—२७॥

पुराणके लिये जो लोग नया वस्त्र और सूत्र देते हैं, वे जन्म-जन्मान्तरमें भोग और ज्ञानसे सम्पन्न होते हैं। कथावाचकको अनेक प्रकारके बहुमूल्य पदार्थ देने चाहिये और उत्तम वस्त्र, आभूषण और सुन्दर पात्र आदि विशेष रूपसे देने चाहिये। पुराणके आसनरूपमें जो लोग कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, चौकी, तख्ता आदि प्रदान करते हैं, वे स्वर्ग प्राप्त करके यथेच्छ सुखोंका उपभोगकर पुनः कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें रहकर अन्तमें शिवलोक प्राप्त करते हैं॥ २८—३१॥

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार महान् उत्सवके साथ पुस्तक और वक्ताकी विधिवत् पूजा करके वक्ताकी सहायताके लिये स्थापित किये गये पण्डितका भी उसीके अनुसार उससे कुछ ही कम धन आदिके द्वारा सत्कार करे। वहाँ आये हुए ब्राह्मणोंको अन्न-धन आदिका दान करे। साथ ही गीत, वाद्य और नृत्य आदिके द्वारा महान् उत्सव करे॥ ३२—३४॥

हे मुने! यदि श्रोता विरक्त हो तो उसके लिये कथा-समाप्तिके दिन विशेषरूपसे उस गीता[१] का पाठ करना चाहिये, जिसे श्रीरामचन्द्रजीके प्रति भगवान् शिवने कहा था॥ ३५॥

यदि श्रोता गृहस्थ हो तो उस बुद्धिमान्‌को उस श्रवण-कर्मकी शान्तिके लिये शुद्ध हविष्यके द्वारा होम करना चाहिये। हे मुने! रुद्रसंहिताके प्रत्येक श्लोकद्वारा होम करे अथवा गायत्री-मन्त्रसे होम करना चाहिये; क्योंकि वास्तवमें यह पुराण गायत्रीमय ही है। अथवा शिवपंचाक्षर मूलमन्त्रसे हवन करना उचित है। होम करनेकी शक्ति न हो तो विद्वान् पुरुष यथाशक्ति हवनीय हविष्यका ब्राह्मणको दान करे॥ ३६—३८॥

न्यूनातिरिक्ततारूप दोषोंकी शान्तिके लिये भक्तिपूर्वक शिवसहस्रनामका पाठ अथवा श्रवण करे। इससे सब कुछ सफल होता है, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि तीनों लोकोंमें उससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है॥ ३९-४०॥

कथाश्रवणसम्बन्धी व्रतकी पूर्णताकी सिद्धिके लिये ग्यारह ब्राह्मणोंको मधुमिश्रित खीर भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा दे॥ ४१॥

मुने! यदि शक्ति हो तो तीन पल (बारह तोला) सोनेका एक सुन्दर सिंहासन बनवाये और उसपर उत्तम अक्षरोंमें लिखी अथवा लिखायी हुई शिवपुराणकी पुस्तक विधिपूर्वक स्थापित करे। तत्पश्चात् पुरुष आवाहन आदि विविध उपचारोंसे उसकी पूजा करके दक्षिणा चढ़ाये। तदनन्तर जितेन्द्रिय आचार्यका वस्त्र, आभूषण एवं गन्ध आदिसे पूजन करके उत्तम बुद्धिवाला श्रोता भगवान् शिवके सन्तोषके लिये दक्षिणासहित वह पुस्तक उन्हें समर्पित कर दे॥ ४२—४४॥

हे शौनक! इस पुराणके उस दानके प्रभावसे भगवान् शिवका अनुग्रह पाकर पुरुष भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। इस तरह विधि-विधानका पालन करनेपर श्रीसम्पन्न शिवपुराण सम्पूर्ण फलको देनेवाला तथा भोग और मोक्षका दाता होता है॥ ४५-४६॥

हे मुने! मैंने आपको शिवपुराणका यह सारा माहात्म्य, जो सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाला है, बता दिया। अब और क्या सुनना चाहते हैं? श्रीसम्पन्न शिवपुराण समस्त पुराणोंका तिलकस्वरूप माना गया है। यह भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय, रमणीय तथा भवरोगका निवारण करनेवाला है॥ ४७-४८॥

जो सदा भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हैं, जिनकी वाणी शिवके गुणोंकी स्तुति करती है और जिनके दोनों कान उनकी कथा सुनते हैं, इस जीव-जगत्‌में उन्हींका जन्म लेना सफल है, वे निश्चय ही संसारसागरसे पार हो जाते हैं[२]॥ ४९॥

भिन्न-भिन्न प्रकारके समस्त गुण जिनके सच्चिदानन्दमय स्वरूपका कभी स्पर्श नहीं करते, जो अपनी महिमासे जगत्‌के बाहर और भीतर वाणी एवं मनोवृत्तिरूपमें प्रकाशित होते हैं, उन अनन्त आनन्दघनरूप परम शिवकी मैं शरण लेता हूँ[३]॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीस्कन्दमहापुराणमें सनत्कुमारसंहिताके अन्तर्गत श्रीशिवपुराणके श्रवणव्रतियोंके विधि-निषेध और ग्रन्थ तथा वक्ताके पूजनका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

॥ श्रीशिवमहापुराणमाहात्म्य पूर्ण हुआ॥

१. पद्मपुराणोक्त शिवगीता।

२. ते जन्मभाजः खलु जीवलोके ये वै सदा ध्यायन्ति विश्वनाथम्। वाणी गुणान् स्तौति कथां शृणोति श्रोत्रद्वयं ते भवमुत्तरन्ति॥ (शिवपुराणमाहात्म्य ७। ४९)

३. सकलगुणविभेदैर्नित्यमस्पष्टरूपं जगति च बहिरन्तर्भासमानं महिम्ना।
मनसि च बहिरन्तर्वाङ्मनोवृत्तिरूपं परमशिवमनन्तानन्दसान्द्रं प्रपद्ये॥ (शिवपुराणमाहात्म्य ७। ५०)

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

प्रथम विद्येश्वरसंहिता

पहला अध्याय

प्रयागमें सूतजीसे मुनियोंका शीघ्र पापनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न

आद्यन्तमङ्गलमजातसमानभाव-
मार्यं तमीशमजरामरमात्मदेवम्।
पञ्चाननं प्रबलपञ्चविनोदशीलं
सम्भावये मनसि शङ्करमम्बिकेशम्॥

जो आदि और अन्तमें [तथा मध्यमें भी] नित्य मङ्गलमय हैं, जिनकी समानता अथवा तुलना कहीं भी नहीं है, जो आत्माके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले देवता (परमात्मा) हैं, जिनके पाँच मुख हैं और जो खेल-ही-खेलमें—अनायास जगत्‌की रचना, पालन, संहार, अनुग्रह एवं तिरोभावरूप—पाँच प्रबल कर्म करते रहते हैं, उन सर्वश्रेष्ठ अजर-अमर ईश्वर अम्बिकापति भगवान् शंकरका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।

व्यासजी बोले—जो धर्मका महान् क्षेत्र है, जहाँ गंगा-यमुनाका संगम हुआ है, जो ब्रह्मलोकका मार्ग है, उस परम पुण्यमय प्रयागमें सत्यव्रतमें तत्पर रहनेवाले महातेजस्वी महाभाग महात्मा मुनियोंने एक विशाल ज्ञानयज्ञका आयोजन किया॥ १-२॥

उस ज्ञानयज्ञका समाचार सुनकर पौराणिकशिरोमणि व्यासशिष्य महामुनि सूतजी वहाँ मुनियोंका दर्शन करनेके लिये आये॥ ३॥

सूतजीको आते देखकर वे सब मुनि उस समय हर्षसे खिल उठे और अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे उन्होंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया॥ ४॥

तत्पश्चात् उन प्रसन्न महात्माओंने उनकी विधिवत् स्तुति करके विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहा—॥ ५॥

हे सर्वज्ञ विद्वान् रोमहर्षणजी! आपका भाग्य बड़ा भारी है, इसीसे आपने व्यासजीसे यथार्थरूपमें सम्पूर्ण पुराण-विद्या प्राप्त की, इसलिये आप आश्चर्यस्वरूप कथाओंके भण्डार हैं—ठीक उसी तरह, जैसे रत्नाकर समुद्र बड़े-बड़े सारभूत रत्नोंका आगार है॥ ६-७॥

तीनों लोकोंमें भूत, वर्तमान और भविष्यकी जो बात है तथा अन्य भी जो कोई वस्तु है, वह आपसे अज्ञात नहीं है॥ ८॥

आप हमारे सौभाग्यसे इस यज्ञका दर्शन करनेके लिये यहाँ आ गये हैं और इसी व्याजसे हमारा कुछ कल्याण करनेवाले हैं; क्योंकि आपका आगमन निरर्थक नहीं हो सकता॥ ९॥

हमने पहले भी आपसे शुभाशुभ-तत्त्वका पूरा-पूरा वर्णन सुना है, किंतु उससे तृप्ति नहीं होती, हमें उसे सुननेकी बार-बार इच्छा होती है॥ १०॥

उत्तम बुद्धिवाले हे सूतजी! इस समय हमें एक ही बात सुननी है; यदि आपका अनुग्रह हो तो गोपनीय होनेपर भी आप उस विषयका वर्णन करें॥ ११॥

घोर कलियुग आनेपर मनुष्य पुण्यकर्मसे दूर रहेंगे, दुराचारमें फँस जायँगे, सब-के-सब सत्यभाषणसे विमुख हो जायँगे, दूसरोंकी निन्दामें तत्पर होंगे। पराये धनको हड़प लेनेकी इच्छा करेंगे, उनका मन परायी स्त्रियोंमें आसक्त होगा तथा वे दूसरे प्राणियोंकी हिंसा किया करेंगे। वे अपने शरीरको ही आत्मा समझेंगे। वे मूढ़, नास्तिक तथा

पशु-बुद्धि रखनेवाले होंगे, माता-पितासे द्वेष रखेंगे तथा वे कामवश स्त्रियोंकी सेवामें लगे रहेंगे॥ १२—१४॥

ब्राह्मण लोभरूपी ग्रहके ग्रास बन जायँगे, वेद बेचकर जीविका चलायेंगे, धनका उपार्जन करनेके लिये ही विद्याका अभ्यास करेंगे, मदसे मोहित रहेंगे, अपनी जातिके कर्म छोड़ देंगे, प्रायः दूसरोंको ठगेंगे, तीनों कालकी सन्ध्योपासनासे दूर रहेंगे और ब्रह्मज्ञानसे शून्य होंगे। दयाहीन, अपनेको पण्डित माननेवाले, अपने सदाचार-व्रतसे रहित, कृषिकार्यमें तत्पर, क्रूर स्वभाववाले एवं दूषित विचारवाले होंगे॥ १५—१७॥

समस्त क्षत्रिय भी अपने धर्मका त्याग करनेवाले, कुसंगी, पापी और व्यभिचारी होंगे॥ १८॥

उनमें शौर्यका अभाव होगा, वे युद्धसे विरत अर्थात् रणमें प्रीति न होनेसे भागनेवाले होंगे। वे कुत्सित चौर्य-कर्मसे जीविका चलायेंगे, शूद्रोंके समान बरताव करेंगे और उनका चित्त कामका किंकर बना रहेगा॥ १९॥

वे शस्त्रास्त्रविद्याको नहीं जाननेवाले, गौ और ब्राह्मणकी रक्षा न करनेवाले, शरणागतकी रक्षा न करनेवाले तथा सदा कामिनीको खोजनेमें तत्पर रहेंगे॥ २०॥

प्रजापालनरूपी सदाचारसे रहित, भोगमें तत्पर, प्रजाका संहार करनेवाले, दुष्ट और प्रसन्नतापूर्वक जीवहिंसा करनेवाले होंगे॥ २१॥

वैश्य संस्कार-भ्रष्ट, स्वधर्मत्यागी, कुमार्गी, धनोपार्जनपरायण तथा नाप-तौलमें अपनी कुत्सित वृत्तिका परिचय देनेवाले होंगे॥ २२॥

वे गुरु, देवता और द्विजातियोंके प्रति भक्तिशून्य, कुत्सित बुद्धिवाले, द्विजोंको भोजन न करानेवाले, प्रायः कृपणताके कारण मुट्ठी बाँधकर रखनेवाले, परायी स्त्रियोंके साथ कामरत, मलिन विचारवाले, लोभ और मोहसे भ्रमित चित्तवाले और वापी-कूप-तड़ाग आदिके निर्माण तथा यज्ञादि सत्कर्मोंमें धर्मका त्याग करनेवाले होंगे॥ २३-२४॥

इसी तरह कुछ शूद्र ब्राह्मणोंके आचारमें तत्पर होंगे, उनकी आकृति उज्ज्वल होगी अर्थात् वे अपना कर्म-धर्म छोड़कर उज्ज्वल वेश-भूषासे विभूषित हो व्यर्थ घूमेंगे, वे मूढ़ होंगे और स्वभावतः ही अपने धर्मका त्याग करनेवाले होंगे॥ २५॥

वे भाँति-भाँतिके तप करनेवाले होंगे, द्विजोंको अपमानित करेंगे, छोटे बच्चोंकी अल्पमृत्यु होनेके लिये आभिचारिक कर्म करेंगे, मन्त्रोंके उच्चारण करनेमें तत्पर रहेंगे, शालग्रामकी मूर्ति आदि पूजेंगे, होम करेंगे, किसी-न-किसीके प्रतिकूल विचार सदा करते रहेंगे, कुटिल स्वभाववाले होंगे और द्विजोंसे द्वेष-भाव रखनेवाले होंगे॥ २६-२७॥

वे यदि धनी हुए तो कुकर्ममें लग जायँगे, यदि विद्वान् हुए तो विवाद करनेवाले होंगे, कथा और उपासना-धर्मोंके वक्ता होंगे और धर्मका लोप करनेवाले होंगे॥ २८॥

वे सुन्दर राजाओंके समान वेष-भूषा धारण करनेवाले, दम्भी, दानमानी, अतिशय अभिमानी, विप्र आदिको अपना सेवक मानकर अपनेको स्वामी माननेवाले होंगे, वे अपने धर्मसे शून्य, मूढ़, वर्णसंकर, क्रूरबुद्धिवाले, महाभिमानी और सदा चारों वर्णोंके धर्मका लोप करनेवाले होंगे॥ २९-३०॥

वे अपनेको श्रेष्ठ कुलवाला मानकर चारों वर्णोंसे विपरीत व्यवहार करनेवाले, सभी वर्णोंको भ्रष्ट करनेवाले, मूढ़ और [अनुचित रूपसे] सत्कर्म करनेमें तत्पर होंगे॥ ३१॥

कलियुगकी स्त्रियाँ प्रायः सदाचारसे भ्रष्ट होंगी, पतिका अपमान करनेवाली होंगी, सास-ससुरसे द्रोह करेंगी। किसीसे भय नहीं मानेंगी और मलिन भोजन करेंगी॥ ३२॥

वे कुत्सित हाव-भावमें तत्पर होंगी, उनका शील-स्वभाव बहुत बुरा होगा। वे काम-विह्वल, परपतिसे रति करनेवाली और अपने पतिकी सेवासे सदा विमुख रहेंगी॥ ३३॥

सन्तानें माता-पिताके प्रति श्रद्धारहित, दुष्ट स्वभाववाली, असत् विद्या पढ़नेवाली और सदा रोगग्रस्त शरीरवाली होंगी॥ ३४॥

हे सूतजी! इस तरह जिनकी बुद्धि नष्ट हो गयी है और जिन्होंने अपने धर्मका त्याग कर दिया है, ऐसे

लोगोंको इहलोक और परलोकमें उत्तम गति कैसे प्राप्त होगी ?॥ ३५ ॥

इसी चिन्तासे हमारा मन सदा व्याकुल रहता है; परोपकारके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है, अत: जिस छोटे उपायसे इन सबके पापोंका तत्काल नाश हो जाय, उसे इस समय कृपापूर्वक बताइये; क्योंकि आप समस्त सिद्धान्तोंके ज्ञाता हैं॥ ३६-३७॥

व्यासजी बोले—उन भावितात्मा मुनियोंकी यह बात सुनकर सूतजी मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके उन मुनियोंसे इस प्रकार कहने लगे— ॥ ३८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें मुनियोंके प्रश्नका वर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

शिवपुराणका माहात्म्य एवं परिचय

सूतजी बोले—हे साधु-महात्माओ! आप सबने तीनों लोकोंका हित करनेवाली अच्छी बात पूछी है। मैं गुरुदेव व्यासजीका स्मरण करके आपलोगोंके स्नेहवश इस विषयका वर्णन करूँगा, आपलोग आदरपूर्वक सुनें॥ १॥

सबसे उत्तम जो शिवपुराण है, वह वेदान्तका सार-सर्वस्व है तथा वक्ता और श्रोताका समस्त पापराशियोंसे उद्धार करनेवाला है; [इतना ही नहीं] वह परलोकमें परमार्थ वस्तुको देनेवाला है। कलिकी कल्मषराशिका वह विनाशक है। उसमें भगवान् शिवके उत्तम यशका वर्णन है। हे ब्राह्मणो! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला वह पुराण सदा ही अपने प्रभावसे विस्तारको प्राप्त हो रहा है॥ २-३॥

हे विप्रवरो! उस सर्वोत्तम शिवपुराणके अध्ययनमात्रसे वे कलियुगके पापासक्त जीव श्रेष्ठतम गतिको प्राप्त हो जायँगे॥ ४॥

अहो! ब्रह्महत्या आदि महान् पाप तभीतक रहेंगे अर्थात् अपने फलको देनेमें समर्थ होंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा। [आशय यह है कि शिवपुराण सुननेके बाद अन्त:करण शिवभक्तिपरायण होकर अतिशय स्वच्छ हो जायगा। अत: किसी भी पापकर्ममें मानवकी प्रवृत्ति ही नहीं होगी, तब ब्रह्महत्या आदि भयंकर पाप न होनेके कारण उस पापके फल-भोगकी सम्भावना ही नहीं है]॥५॥

कलियुगके महान् उत्पात तभीतक निर्भय होकर विचरेंगे, जबतक यहाँ जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ६॥

सभी शास्त्र परस्पर तभीतक विवाद करेंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा [अर्थात् शिवपुराणके आ जानेपर किसी प्रकारका विवाद ही नहीं रह जायगा। सभी प्रकारसे भुक्ति-मुक्तिप्रदाता यही रहेगा]॥७॥

अहो! महान् व्यक्तियोंके लिये भी तभीतक शिवका स्वरूप दुर्बोध्य रहेगा, जबतक इस जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥८॥

अहो! क्रूर यमदूत तभीतक निर्भय होकर पृथ्वीपर घूमेंगे, जबतक जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ९॥

सभी पुराण पृथिवीपर गर्जन तभीतक करेंगे, जबतक शिवपुराणका जगत्में उदय नहीं होगा॥ १०॥

इस पृथिवीपर तीर्थोंका विवाद तभीतक रहेगा, जबतक इस जगत्में शिवपुराणका उदय नहीं होगा। [आशय यह है कि मुक्ति-प्राप्त्यर्थ एवं पापके नाशके लिये मानव विभिन्न तीर्थोंका सेवन करेंगे, किंतु शिवपुराणके आनेके बाद सभी लोग सभी पापोंके नाशके लिये शिवपुराणका ही सेवन करेंगे]। सभी मन्त्र पृथ्वीपर तभीतक आनन्दपूर्वक विवाद करेंगे, जबतक पृथ्वीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ ११-१२॥

सभी क्षेत्र तभीतक पृथ्वीपर विवाद करेंगे, जबतक पृथ्वीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ १३॥

सभी पीठ तभीतक पृथ्वीपर विवाद करेंगे, जबतक

पृथ्वीपर शिवपुराणका उदय नहीं होगा॥ १४॥

सभी दान पृथ्वीपर तभीतक विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथ्वीपर उदय नहीं होगा॥ १५॥

सभी देवगण तभीतक पृथ्वीपर विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथ्वीपर उदय नहीं होगा॥ १६॥

सभी सिद्धान्त तभीतक पृथ्वीपर विवाद करेंगे, जबतक शिवपुराणका पृथ्वीपर उदय नहीं होगा॥ १७॥

हे विप्रो! हे श्रेष्ठ मुनिगण! इस शिवपुराणके कीर्तन करने और सुननेसे जो-जो फल होते हैं, उन फलोंको मैं सम्पूर्ण रूपसे नहीं कह सकता हूँ, [अर्थात् शब्दोंके द्वारा इसके सभी फलोंको नहीं कहा जा सकता है]॥ १८॥

हे निष्पाप मुनिगण! तथापि शिवपुराणका कुछ माहात्म्य आप लोगोंसे कहता हूँ, जो व्यासजीने पहले मुझसे कहा था, आपलोग चित्त लगाकर ध्यानपूर्वक सुनें॥ १९॥

जो भक्तिपूर्वक इस शिवपुराणका एक श्लोक या आधा श्लोक भी पढ़ता है, वह उसी क्षण पापसे छुटकारा पा जाता है॥ २०॥

जो आलस्यरहित होकर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस शिवपुराणका यथाशक्ति पाठ करता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ २१॥

जो इस शिवपुराणकी सदा पूजा करता है, वह निःसन्देह प्रतिदिन अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ २२॥

जो व्यक्ति साधारण पदकी प्राप्तिकी इच्छासे इस शिवपुराणको मुझसे अथवा अन्य किसीसे सुनता है, वह भी पातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ २३॥

जो इस शिवपुराणको समीपसे प्रणाम करता है, वह सभी देवोंकी पूजाका फल प्राप्त करता है; इसमें संशय नहीं है॥ २४॥

जो इस शिवपुराणको स्वयं लिखकर शिवभक्तोंको दान करता है, उसके पुण्यफलको सुनें॥ २५॥

शास्त्रोंका अध्ययन करने और वेदोंका पाठ करनेसे जो दुर्लभ फल प्राप्त होता है, वह फल उसको प्राप्त होता है॥ २६॥

जो चतुर्दशी तिथिके दिन उपवास करके इस शिवपुराणका शिवभक्तोंके समाजमें पाठ करता है—वह श्रेष्ठ पुरुष है। वह व्यक्ति शिवपुराणके प्रत्येक अक्षरकी संख्याके अनुरूप गायत्रीके पुरश्चरणका फल प्राप्त करता है और इस लोकमें सभी अभीष्ट सुखोंको भोगकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है॥ २७-२८॥

जो चतुर्दशीकी रातमें उपवासपूर्वक जागरण करके शिवपुराणका पाठ करता है या इसे सुनता है, उसका पुण्य-फल मैं कहता हूँ॥ २९॥

कुरुक्षेत्र आदि सभी तीर्थोंमें, पूर्ण सूर्यग्रहणमें अपनी शक्तिके अनुसार विप्रोंको और मुख्य कथावाचकोंको धन देनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल उस व्यक्तिको प्राप्त होता है, यह सत्य है, सत्य है; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ ३०-३१॥

जो व्यक्ति इस शिवपुराणका दिन-रात गान करता है, इन्द्र आदि देवगण उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहते हैं॥ ३२॥

इस शिवपुराणका पाठ करनेवाला और सुननेवाला व्यक्ति जो-जो श्रेष्ठ कर्म करता है, वह कोटिगुना हो जाता है [अर्थात् कोटिगुना फल देता है]॥ ३३॥

जो भलीभाँति ध्यानपूर्वक उसमें भी श्रीरुद्रसंहिताका पाठ करता है, वह यदि ब्रह्मघाती भी हो तो तीन दिनोंमें पवित्रात्मा हो जाता है॥ ३४॥

जो भैरवकी मूर्तिके पास मौन धारणकर श्रीरुद्रसंहिताका प्रतिदिन तीन बार पाठ करता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३५॥

जो व्यक्ति वट और बिल्ववृक्षकी प्रदक्षिणा करते हुए उस रुद्रसंहिताका पाठ करता है, वह ब्रह्महत्याके दोषसे भी छुटकारा पा जाता है॥ ३६॥

प्रणवके अर्थको प्रकाशित करनेवाली ब्रह्मरूपिणी साक्षात् कैलाससंहिता रुद्रसंहितासे भी श्रेष्ठ कही गयी है॥ ३७॥

हे द्विजो! कैलाससंहिताका सम्पूर्ण माहात्म्य तो शंकरजी ही जानते हैं, उससे आधा माहात्म्य व्यासजी जानते हैं और उसका भी आधा मैं जानता हूँ॥ ३८॥

उसके सम्पूर्ण माहात्म्यका वर्णन तो मैं नहीं कर सकता, कुछ ही अंश कहूँगा, जिसको जानकर उसी

क्षण चित्तकी शुद्धि प्राप्त हो जायगी॥ ३९॥

हे द्विजो! लोकमें ढूँढ़नेपर भी मैंने ऐसे किसी पापको नहीं देखा, जिसे वह रुद्रसंहिता नष्ट न कर सके॥ ४०॥

उपनिषद्रूपी सागरका मन्थन करके शिवने आनन्दपूर्वक इस रुद्रसंहितारूपी अमृतको उत्पन्न किया और कुमार कार्तिकेयको समर्पित किया; जिसे पीकर मानव अमर हो जाता है॥ ४१॥

ब्रह्महत्या आदि पापोंकी निष्कृति करनेके लिये तत्पर मनुष्य महीनेभर रुद्रसंहिताका पाठ करके उन पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४२॥

दुष्प्रतिग्रह, दुर्भोज्य, दुरालापसे जो पाप होता है; वह इस रौद्रीसंहिताका एक बार कीर्तन करनेसे नष्ट हो जाता है॥ ४३॥

जो व्यक्ति शिवालयमें अथवा बेलके वनमें इस संहिताका पाठ करता है, वह उससे जो फल प्राप्त करता है, उसका वर्णन वाणीसे नहीं किया जा सकता॥ ४४॥

जो व्यक्ति श्रद्धापूर्वक इस संहिताका पाठ करते हुए श्राद्धके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसके सभी पितर शम्भुके परम पदको प्राप्त करते हैं॥ ४५॥

चतुर्दशीके दिन निराहार रहकर जो बेलके वृक्षके नीचे इस संहिताका पाठ करता है, वह साक्षात् शिव होकर सभी देवोंसे पूजित होता है॥ ४६॥

उसमें अन्य संहिताएँ सभी कामनाओंके फलको पूर्ण करनेवाली हैं, किंतु लीला और विज्ञानसे परिपूर्ण इन दोनों संहिताओंको विशिष्ट समझना चाहिये॥ ४७॥

इस शिवपुराणको वेदके तुल्य माना गया है। इस वेदकल्प पुराणका सबसे पहले भगवान् शिवने ही प्रणयन किया था॥ ४८॥

विद्येश्वरसंहिता, रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता, मातृसंहिता, एकादशरुद्रसंहिता, कैलाससंहिता, शतरुद्रसंहिता, कोटिरुद्रसंहिता, सहस्रकोटिरुद्रसंहिता, वायवीयसंहिता तथा धर्मसंहिता—इस प्रकार इस पुराणके बारह भेद हैं॥ ४९-५०॥

ये बारहों संहिताएँ अत्यन्त पुण्यमयी मानी गयी हैं। ब्राह्मणो! अब मैं उनके श्लोकोंकी संख्या बता रहा हूँ। आपलोग वह सब आदरपूर्वक सुनें। विद्येश्वरसंहितामें दस हजार श्लोक हैं। रुद्रसंहिता, विनायकसंहिता, उमासंहिता और मातृसंहिता—इनमेंसे प्रत्येकमें आठ-आठ हजार श्लोक हैं॥ ५१-५२॥

हे ब्राह्मणो! एकादशरुद्रसंहितामें तेरह हजार, कैलाससंहितामें छः हजार, शतरुद्रसंहितामें तीन हजार, कोटिरुद्रसंहितामें नौ हजार, सहस्रकोटिरुद्रसंहितामें ग्यारह हजार, वायवीयसंहितामें चार हजार तथा धर्मसंहितामें बारह हजार श्लोक हैं। इस प्रकार संख्याके अनुसार मूल शिवपुराणकी श्लोकसंख्या एक लाख है॥ ५३—५५॥

परंतु व्यासजीने उसे चौबीस हजार श्लोकोंमें संक्षिप्त कर दिया है। पुराणोंकी क्रमसंख्याके विचारसे इस शिवपुराणका स्थान चौथा है; इसमें सात संहिताएँ हैं॥ ५६॥

पूर्वकालमें भगवान् शिवने श्लोकसंख्याकी दृष्टिसे सौ करोड़ श्लोकोंका एक ही पुराणग्रन्थ बनाया था। सृष्टिके आदिमें निर्मित हुआ वह पुराणसाहित्य अत्यन्त विस्तृत था॥ ५७॥

तत्पश्चात् द्वापर आदि युगोंमें द्वैपायन व्यास आदि महर्षियोंने जब पुराणका अठारह भागोंमें विभाजन कर दिया, उस समय सम्पूर्ण पुराणोंका संक्षिप्त स्वरूप केवल चार लाख श्लोकोंका रह गया॥ ५८॥

श्लोकसंख्याके अनुसार यह शिवपुराण चौबीस हजार श्लोकोंवाला कहा गया है। यह वेदतुल्य पुराण सात संहिताओंमें विभाजित है॥ ५९॥

इसकी पहली संहिताका नाम विद्येश्वरसंहिता है, दूसरी रुद्रसंहिता समझनी चाहिये, तीसरीका नाम शतरुद्रसंहिता, चौथीका कोटिरुद्रसंहिता, पाँचवींका नाम उमासंहिता, छठीका कैलाससंहिता और सातवींका नाम वायवीयसंहिता है। इस प्रकार ये सात संहिताएँ मानी गयी हैं॥ ६०-६१॥

इन सात संहिताओंसे युक्त दिव्य शिवपुराण वेदके तुल्य प्रामाणिक तथा सबसे उत्कृष्ट गति प्रदान करनेवाला है॥ ६२॥

सात संहिताओंसे समन्वित इस सम्पूर्ण शिवपुराणको

जो आद्योपान्त आदरपूर्वक पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ ६३॥

वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास तथा सैकड़ों आगम इस शिवपुराणकी अल्प कलाके समान भी नहीं हैं॥ ६४॥

यह निर्मल शिवपुराण भगवान् शिवके द्वारा ही प्रतिपादित है। शैवशिरोमणि भगवान् व्यासने इसे संक्षेपकर संकलित किया है। यह समस्त जीवसमुदायके लिये उपकारक, त्रिविध तापोंका नाशक, तुलनारहित एवं सत्पुरुषोंको कल्याण प्रदान करनेवाला है॥ ६५॥

इसमें वेदान्त-विज्ञानमय, प्रधान तथा निष्कपट धर्मका प्रतिपादन किया गया है। यह पुराण ईर्ष्यारहित अन्तःकरणवाले विद्वानोंके लिये जाननेकी वस्तु है, इसमें श्रेष्ठ मन्त्रसमूहोंका संकलन है और यह धर्म, अर्थ तथा कामसे समन्वित है अर्थात्—इस त्रिवर्गकी प्राप्तिके साधनका भी इसमें वर्णन है॥ ६६॥

यह उत्तम शिवपुराण समस्त पुराणोंमें श्रेष्ठ है। वेद-वेदान्तमें वेद्यरूपसे विलसित परम वस्तु—परमात्माका इसमें गान किया गया है। जो बड़े आदरसे इसे पढ़ता और सुनता है, वह भगवान् शिवका प्रिय होकर परम गति प्राप्त कर लेता है॥ ६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें मुनिप्रश्नोत्तर-वर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

साध्य-साधन आदिका विचार

व्यासजी बोले—सूतजीका यह वचन सुनकर वे सब महर्षि बोले—अब आप हमें वेदान्तके सार-सर्वस्वरूप अद्भुत शिवपुराणको सुनाइये॥ १॥

मुनियोंका यह वचन सुनकर अतिशय प्रसन्न हो वे सूतजी शंकरजीका स्मरण करते हुए उन श्रेष्ठ मुनियोंसे कहने लगे॥ २॥

सूतजी बोले—आप सब महर्षिगण रोग-शोकसे रहित कल्याणमय भगवान् शिवका स्मरण करके वेदके सारतत्त्वसे प्रकट पुराणप्रवर शिवपुराणको सुनिये। जिसमें भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—इन तीनोंका प्रीतिपूर्वक गान किया गया है और वेदान्तवेद्य सद्वस्तुका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है॥ ३—५॥

हे ऋषिगण! अब आपलोग वेदके सारभूत पुराणको सुनें। बहुत कालमें पुनः-पुनः पूर्वकल्प व्यतीत होनेपर इस वर्तमान कल्पमें जब सृष्टिकर्म आरम्भ हुआ था, उन दिनों छः कुलोंके महर्षि परस्पर वाद-विवाद करते हुए कहने लगे—'अमुक वस्तु सबसे उत्कृष्ट है और अमुक नहीं है।' उनके इस विवादने अत्यन्त महान् रूप धारण कर लिया। तब वे सब-के-सब अपनी शंकाके समाधानके लिये सृष्टिकर्ता अविनाशी ब्रह्माजीके पास गये और हाथ जोड़कर विनयभरी वाणीमें बोले—[हे प्रभो!] आप सम्पूर्ण जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले हैं तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं; हम यह जानना चाहते हैं कि सम्पूर्ण तत्त्वोंसे परे परात्पर पुराणपुरुष कौन हैं?॥ ६—९$^{१}/_{२}$॥

ब्रह्माजी बोले—जहाँसे मनसहित वाणी उन्हें न पाकर लौट आती है तथा जिनसे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र आदिसे युक्त यह सम्पूर्ण जगत् समस्त भूतों एवं इन्द्रियोंके साथ पहले प्रकट हुआ है, वे ही ये देव, महादेव सर्वज्ञ एवं सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं। ये ही सबसे उत्कृष्ट हैं। उत्तम भक्तिसे ही इनका साक्षात्कार होता है, दूसरे किसी उपायसे कहीं इनका दर्शन नहीं होता। रुद्र, हरि, हर तथा अन्य देवेश्वर सदा उत्तम भक्तिभावसे उनका नित्य दर्शन करना चाहते हैं॥ १०—१३॥

अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता, भगवान् शिवमें भक्ति होनेसे मनुष्य संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। देवताओंके कृपाप्रसादसे ही उनमें भक्ति होती है और भक्तिसे देवताका कृपाप्रसाद प्राप्त होता है—ठीक उसी तरह, जैसे यहाँ अंकुरसे बीज और बीजसे अंकुर उत्पन्न

होता है। इसलिये हे द्विजो! आप लोग भगवान् शंकरका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये भूतलपर जाकर वहाँ सहस्र वर्षोंतक चलनेवाले एक विशाल यज्ञका आयोजन करें॥ १४-१५॥

इन यज्ञपति भगवान् शिवकी ही कृपासे वेदोक्त विद्याके सारभूत साध्य-साधनका ज्ञान होता है॥ १६॥

मुनिगण बोले—हे भगवन्! परम साध्य क्या है और उसका परम साधन क्या है? उसका साधक कैसा होता है? ये सभी बातें यथार्थ रूपसे कहें॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—शिवपदकी प्राप्ति ही साध्य है, उनकी सेवा ही साधन है तथा उनके प्रसादसे जो नित्य-नैमित्तिक आदि फलोंकी ओरसे निःस्पृह होता है, वही साधक है॥ १८॥

वेदोक्त कर्मका अनुष्ठान करके उसके महान् फलको भगवान् शिवके चरणोंमें समर्पित कर देना ही परमेश्वरपदकी प्राप्ति है। वही सालोक्य आदिके क्रमसे प्राप्त होनेवाली मुक्ति है॥ १९॥

उन-उन पुरुषोंकी भक्तिके अनुसार उन सबको उत्कृष्ट फलकी प्राप्ति होती है। उस भक्तिके साधन अनेक प्रकारके हैं, जिनका प्रतिपादन साक्षात् महेश्वरने ही किया है॥ २०॥

उसे संक्षिप्त करके मैं सारभूत साधनको बता रहा हूँ। कानसे भगवान्‌के नाम-गुण और लीलाओंका श्रवण, वाणीद्वारा उनका कीर्तन तथा मनके द्वारा उनका मनन—इन तीनोंको महान् साधन कहा गया है। [तात्पर्य यह कि] महेश्वरका श्रवण, कीर्तन और मनन करना चाहिये—यह श्रुतिका वाक्य हम सबके लिये प्रमाणभूत है। सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिमें लगे हुए आपलोग इसी साधनसे परम साध्यको प्राप्त हों। लोग प्रत्यक्ष वस्तुको नेत्रसे देखकर उसमें प्रवृत्त होते हैं; परंतु जिस वस्तुका कहीं भी प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता, उसे श्रवणेन्द्रियद्वारा जान-सुनकर मनुष्य उसकी प्राप्तिके लिये चेष्टा करता है॥ २१—२४॥

अतः पहला साधन श्रवण ही है। उसके द्वारा गुरुके मुखसे तत्त्वको सुनकर बुद्धिशाली विद्वान् पुरुष अन्य साधन—कीर्तन एवं मननकी सिद्धि करे॥ २५॥

क्रमशः मननपर्यन्त इस साधनकी अच्छी तरह साधना कर लेनेपर उसके द्वारा सालोक्य आदिके क्रमसे धीरे-धीरे भगवान् शिवका संयोग प्राप्त होता है॥ २६॥

पहले सारे अंगोंके रोग नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् सब प्रकारका लौकिक आनन्द भी विलीन हो जाता है। अभ्यासके ही समय यह साधन कष्टप्रद है, किंतु बादमें निरन्तर मंगल देनेवाला है॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें साध्यसाधनविचार नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीन साधनोंकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन

मुनिगण बोले—हे ब्रह्मन्! मनन कैसा होता है, श्रवणका स्वरूप कैसा है और उनका कीर्तन कैसे किया जाता है, यथार्थ रूपमें आप वर्णन करें॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—[हे मुनियो!] भगवान् शंकरकी पूजा, उनके नामोंका जप तथा उनके गुण, रूप, विलास और नामोंका युक्तिपरायण चित्तके द्वारा जो निरन्तर परिशोधन या चिन्तन होता है, उसीको मनन कहा गया है, वह महेश्वरकी कृपादृष्टिसे उपलब्ध होता है। वह समस्त श्रेष्ठ साधनोंमें प्रमुखतम है॥ २॥

शम्भुके प्रताप, गुण, रूप, विलास और नामको प्रकट करनेवाले संगीत, वेदवाक्य या भाषाके द्वारा अनुरागपूर्वक उनकी स्तुति ही मध्यम साधन है, जिसको कीर्तन शब्दसे कहा जाता है॥ ३॥

हे ज्ञानियो! स्त्रीक्रीड़ामें जैसे मनकी आसक्ति होती है, वैसे ही किसी कारणसे किसी स्थानमें शिवविषयक वाणियोंमें श्रवणेन्द्रियकी दृढ़तर आसक्ति ही जगत्‌में

श्रवणके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

सर्वप्रथम सज्जनोंकी संगतिसे श्रवण सिद्ध होता है, बादमें शिवजीका कीर्तन दृढ़ होता है और अन्तमें सभी साधनोंसे श्रेष्ठ शंकरविषयक मनन उत्पन्न होता है, किंतु यह सब उनकी कृपादृष्टिसे ही सम्भव होता है ॥ ५ ॥

सूतजी बोले—मुनीश्वरो! इस साधनका माहात्म्य बतानेके प्रसंगमें मैं आपलोगोंके लिये एक प्राचीन वृत्तान्तका वर्णन करूँगा, उसे ध्यान देकर आपलोग सुनें ॥ ६ ॥

पूर्व कालमें पराशर मुनिके पुत्र मेरे गुरु व्यासदेवजी सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर तपस्या कर रहे थे ॥ ७ ॥

एक दिन सूर्यतुल्य तेजस्वी विमानसे यात्रा करते हुए भगवान् सनत्कुमार अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मेरे गुरुदेवको वहाँ देखा ॥ ८ ॥

वे ध्यानमें मग्न थे। उससे जगनेपर उन्होंने ब्रह्माके पुत्र सनत्कुमारजीको अपने सामने उपस्थित देखा। वे बड़े वेगसे उठे और उनके चरणोंमें प्रणाम करके मुनिने उन्हें अर्घ्य प्रदान करके देवताओंके बैठनेयोग्य आसन भी अर्पित किया। तब प्रसन्न हुए भगवान् सनत्कुमार विनीत भावसे खड़े हुए व्यासजीसे गम्भीर वाणीमें कहने लगे ॥ ९-१० ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! आप सत्य सनातन भगवान् शंकरका हृदयसे ध्यान कीजिये, तब वे शिव प्रत्यक्ष होकर आपकी सहायता करेंगे; आप यहाँ तप किसलिये कर रहे हैं? ॥ ११ ॥

इस प्रकार सनत्कुमारके कहनेपर मुनि व्यासने अपना आशय कहा—मैंने आपकी कृपासे वेदसम्मत धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कथाको मानवसमाजमें अनेक प्रकारसे प्रदर्शित किया है ॥ १२ $^{१}/_{२}$ ॥

इस प्रकार सर्वथा गुरुस्वरूप होनेपर भी मुझमें मुक्तिके साधन ज्ञानका उदय नहीं हुआ है—यह आश्चर्य ही है। मुक्तिका साधन न जाननेके कारण उसके लिये मैं तपस्या कर रहा हूँ ॥ १३-१४ ॥

हे विप्रेन्द्रो! इस प्रकार जब व्यासमुनिने भगवान् सनत्कुमारसे प्रार्थना की, तब वे समर्थ सनत्कुमारजी मुक्तिका निश्चित कारण बताने लगे ॥ १५ ॥

भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन, मनन—ये तीनों महत्तर साधन कहे गये हैं। ये तीनों ही वेदसम्मत हैं ॥ १६ ॥

पूर्वकालमें मैं दूसरे-दूसरे साधनोंके सम्भ्रममें पड़कर घूमता-घामता मन्दराचलपर जा पहुँचा और वहाँ तपस्या करने लगा ॥ १७ ॥

तदनन्तर महेश्वर शिवकी आज्ञासे भगवान् नन्दिकेश्वर वहाँ आये। उनकी मुझपर बड़ी दया थी। वे सबके साक्षी तथा शिवगणोंके स्वामी भगवान् नन्दिकेश्वर मुझे स्नेहपूर्वक मुक्तिका उत्तम साधन बताते हुए बोले—'भगवान् शंकरका श्रवण, कीर्तन और मनन—ये तीनों साधन वेदसम्मत हैं और मुक्तिके साक्षात् कारण हैं; यह बात स्वयं भगवान् शिवने मुझसे कही है। अतः हे ब्रह्मन्! आप श्रवणादि तीनों साधनोंका बार-बार अनुष्ठान करें ॥ १८—२० ॥

व्यासजीसे बार-बार ऐसा कहकर अनुगामियोंसहित ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार अपने विमानसे परम सुन्दर ब्रह्मधामको चले गये। इस प्रकार पूर्वकालके इस उत्तम वृत्तान्तका मैंने संक्षेपसे वर्णन किया है ॥ २१ $^{१}/_{२}$ ॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने श्रवण आदि तीनों साधनोंको मुक्तिका उपाय बताया है। जो मनुष्य श्रवण आदि तीनों साधनोंमें असमर्थ हो, वह किस उपायका अवलम्बन करके मुक्त हो सकता है और किस साधनभूत कर्मके द्वारा बिना यत्नके ही मोक्ष मिल सकता है? ॥ २२-२३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

भगवान् शिवके लिंग एवं साकार विग्रहकी पूजाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन

सूतजी बोले—हे शौनक! जो श्रवण, कीर्तन और मनन—इन तीनों साधनोंके अनुष्ठानमें समर्थ न हो, वह भगवान् शंकरके लिंग एवं मूर्तिकी स्थापनाकर नित्य उसकी पूजा करके संसारसागरसे पार हो सकता है॥ १॥

छल न करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार धनराशि ले जाय और उसे शिवलिंग अथवा शिवमूर्तिकी सेवाके लिये अर्पित कर दे, साथ ही निरन्तर उस लिंग एवं मूर्तिकी पूजा भी करे॥ २॥

उसके लिये भक्तिभावसे मण्डप, गोपुर, तीर्थ, मठ एवं क्षेत्रकी स्थापना करे तथा उत्सव करे और वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप तथा मालपुआ आदि व्यंजनोंसे युक्त भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य अन्न नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। छत्र, ध्वजा, व्यजन, चामर तथा अन्य अंगोंसहित राजोपचारकी भाँति सब वस्तुएँ भगवान् शिवके लिंग एवं मूर्तिपर चढ़ाये। प्रदक्षिणा, नमस्कार तथा यथाशक्ति जप करे॥ ३—५॥

आवाहनसे लेकर विसर्जनतक सारा कार्य प्रतिदिन भक्तिभावसे सम्पन्न करे। इस प्रकार शिवलिंग अथवा शिवमूर्तिमें भगवान् शंकरकी पूजा करनेवाला पुरुष श्रवण आदि साधनोंका अनुष्ठान न करे तो भी भगवान् शिवकी प्रसन्नतासे सिद्धि प्राप्त कर लेता है। पहलेके बहुतसे महात्मा पुरुष लिंग तथा शिवमूर्तिकी पूजा करनेमात्रसे भवबन्धनसे मुक्त हो चुके हैं॥ ६-७॥

ऋषिगण बोले—मूर्तिमें ही सर्वत्र देवताओंकी पूजा होती है, परंतु भगवान् शिवकी पूजा सब जगह मूर्तिमें और लिंगमें भी क्यों की जाती है?॥ ८॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! आप लोगोंका यह प्रश्न तो बड़ा ही पवित्र और अत्यन्त अद्भुत है। इस विषयमें महादेवजी ही वक्ता हो सकते हैं; कोई पुरुष कभी और कहीं भी इसका यथार्थ प्रतिपादन नहीं कर सकता॥ ९॥

इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ कहा है और उसे मैंने गुरुजीके मुखसे जिस प्रकार सुना है, उसी तरह क्रमशः वर्णन करूँगा। एकमात्र भगवान् शिव ही ब्रह्मरूप होनेके कारण निष्कल (निराकार) कहे गये हैं॥ १०॥

रूपवान् होनेके कारण उन्हें 'सकल' भी कहा गया है। इसलिये वे सकल और निष्कल दोनों हैं। शिवके निष्कल—निराकार होनेके कारण ही उनकी पूजाका आधारभूत लिंग भी निराकार ही प्राप्त हुआ है अर्थात् शिवलिंग शिवके निराकार स्वरूपका प्रतीक है॥ ११॥

इसी तरह शिवके सकल या साकार होनेके कारण उनकी पूजाका आधारभूत विग्रह साकार प्राप्त होता है अर्थात् शिवका साकार विग्रह उनके साकार स्वरूपका प्रतीक होता है। सकल और अकल (समस्त अंग-आकारसहित साकार और अंग-आकारसे सर्वथा रहित निराकार)-रूप होनेसे ही वे 'ब्रह्म' शब्दसे कहे जानेवाले परमात्मा हैं॥ १२॥

यही कारण है कि सब लोग लिंग (निराकार) और मूर्ति (साकार)—दोनोंमें ही सदा भगवान् शिवकी पूजा करते हैं। शिवसे भिन्न जो देवता हैं, वे साक्षात् ब्रह्म नहीं हैं, इसलिये कहीं भी उनके लिये निराकार लिंग नहीं उपलब्ध होता॥ १३॥

अतः सुरेश्वर (इन्द्र, ब्रह्मा) आदि देवगण भी निष्कल लिंगमें पूजित नहीं होते हैं, सभी देवगण ब्रह्म न होनेसे, अपितु सगुण जीव होनेके कारण केवल मूर्तिमें ही पूजे जाते हैं। शंकरके अतिरिक्त अन्य देवोंका जीवत्व और सदाशिवका ब्रह्मत्व वेदोंके सारभूत उपनिषदोंसे सिद्ध होता है। वहाँ प्रणव (ॐकार)-के तत्त्वरूपसे भगवान् शिवका ही प्रतिपादन किया गया है॥ १४-१५१/२॥

इसी प्रकार पूर्वमें मन्दराचल पर्वतपर ज्ञानवान् ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार मुनिने नन्दिकेश्वरसे प्रश्न किया था॥ १६१/२॥

सनत्कुमार बोले—[हे भगवन्!] शिवके अतिरिक्त उनके वशमें रहनेवाले जो अन्य देवता हैं, उन सबकी पूजाके लिये सर्वत्र प्रायः वेर (मूर्ति)-मात्र ही अधिक संख्यामें देखा और सुना जाता है। केवल भगवान् शिवकी ही पूजामें लिंग और वेर दोनोंका उपयोग

देखनेमें आता है। अतः हे कल्याणमय नन्दिकेश्वर! इस विषयमें जो तत्त्वकी बात हो, उसे मुझे इस प्रकार बताइये, जिससे अच्छी तरह समझमें आ जाय॥ १७-१८१/२॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे निष्पाप ब्रह्मकुमार! हम-जैसे लोगोंके द्वारा आपके इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता; क्योंकि यह गोपनीय विषय है और लिंग साक्षात् ब्रह्मका प्रतीक है। इस विषयमें भगवान् शिवने जो कुछ बताया है, उसे मैं आप शिवभक्तके समक्ष कहता हूँ। भगवान् शिव ब्रह्मस्वरूप और निष्कल (निराकार) हैं; इसलिये उन्हींकी पूजामें निष्कल लिंगका उपयोग होता है। सम्पूर्ण वेदोंका यही मत है। वे ही सकल हैं। इस प्रकार वे निराकार तथा साकार दोनों हैं। भगवान् शंकर निष्कल-निराकार होते हुए भी कलाओंसे युक्त हैं, इसलिये उनकी साकार रूपमें प्रतिमापूजा भी लोकसम्मत है॥ १९—२११/२॥

शंकरके अतिरिक्त अन्य देवताओंमें जीवत्व तथा सगुणत्व होनेके कारण वेदके मतमें उनकी मूर्तिमात्रमें ही पूजा मान्य है। इसी प्रकार उन देवताओंके आविर्भावके समय उनका समग्र साकार रूप प्रकट होता है, जबकि भगवान् सदाशिवके दर्शनमें साकार और निराकार (ज्योतिरूप) दोनोंकी ही प्राप्ति होती है॥ २२-२३१/२॥

सनत्कुमार बोले—हे महाभाग! आपने भगवान् शिव तथा दूसरे देवताओंके पूजनमें लिंग और वेरके प्रचारका जो रहस्य विभागपूर्वक बताया है, वह यथार्थ है। इसलिये लिंग और वेरकी आदि उत्पत्तिका जो उत्तम वृत्तान्त है, उसीको मैं इस समय सुनना चाहता हूँ। हे योगीन्द्र! लिंगके प्राकट्यका रहस्य सूचित करनेवाला प्रसंग मुझे सुनाइये॥ २४-२५१/२॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे वत्स! आपके प्रति प्रीतिके कारण मैं यथार्थ रूपमें वर्णन करता हूँ, सुनिये। लोकविख्यात पूर्वकल्पके बहुत दिन व्यतीत हो जानेपर एक समय महात्मा ब्रह्मा और विष्णु परस्पर लड़ने लगे॥ २६-२७॥

उन दोनोंके अभिमानको मिटानेके लिये [त्रिगुणातीत] परमेश्वरने उनके मध्यमें निष्कल स्तम्भके रूपमें अपना स्वरूप प्रकट किया॥ २८॥

जगत्का कल्याण करनेकी इच्छासे उस स्तम्भसे निराकार परमेश्वर शिवने अपने लिंग—चिह्नके कारण लिंगका आविर्भाव किया॥ २९॥

उसी समयसे लोकमें परमेश्वर शंकरके निर्गुण लिंग और सगुण मूर्तिकी पूजा प्रचलित हुई॥ ३०॥

शिवके अतिरिक्त अन्य देवोंकी मूर्तिमात्रकी ही प्रकल्पना हुई। वे देव-प्रतिमाएँ पूजित हो नियत शुभ कल्याणको देनेवाली हुईं और शिवका लिंग तथा उनकी प्रतिमा दोनों ही भोग और मोक्षको देनेवाली हुईं॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवलिंगकी महिमाका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

ब्रह्मा और विष्णुके भयंकर युद्धको देखकर देवताओंका कैलास-शिखरपर गमन

नन्दिकेश्वर बोले—हे योगीन्द्र! प्राचीनकालमें किसी समय शेषशायी भगवान् विष्णु अपनी पराशक्ति लक्ष्मीजी तथा अन्य पार्षदोंसे घिरे हुए शयन कर रहे थे॥ १॥

उसी समय ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने अपनी इच्छासे वहाँ आकर उन परम सुन्दर कमलनेत्र विष्णुसे पूछा—तुम कौन हो, जो मुझे आया देखकर भी उद्धत पुरुषके समान सो रहे हो? हे वत्स! उठो और यहाँ अपने प्रभु—मुझे देखो। जो पुरुष अपने श्रेष्ठ गुरुजनको आया हुआ देखकर उद्धतके समान आचरण करता है, उस मूर्ख गुरुद्रोहीके लिये प्रायश्चित्तका विधान किया गया है॥ २—४॥

[ब्रह्माके] इस वचनको सुनकर क्रोधित होनेपर भी बाहरसे शान्त व्यवहार करते हुए भगवान् विष्णु बोले—हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारा स्वागत है।

आओ, इस आसनपर बैठो। तुम्हारे मुखमण्डलसे व्यग्रता प्रदर्शित हो रही है और तुम्हारे नेत्र विपरीत भाव सूचित कर रहे हैं॥ ५१/२॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! हे विष्णो! कालके प्रभावसे तुम्हें बहुत अभिमान हो गया है। हे वत्स! मैं जगत्‌का पितामह और तुम्हारा रक्षक हूँ॥ ६१/२॥

विष्णु बोले—हे वत्स! यह जगत् मुझमें ही स्थित है, तुम केवल चोरके समान दूसरेकी सम्पत्तिको व्यर्थ अपनी मानते हो! तुम मेरे नाभिकमलसे उत्पन्न हो, अतः तुम मेरे पुत्र हो, तुम तो व्यर्थ बातें कह रहे हो?॥ ७१/२॥

नन्दिकेश्वर बोले—[हे मुने!] उस समय वे अजन्मा ब्रह्मा और विष्णु मोहवश 'मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं स्वामी हूँ, तुम नहीं'—इस प्रकार बोलते-बोलते परस्पर एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये॥ ८-९॥

हंस और गरुडपर आरूढ होकर वे दोनों वीर ब्रह्मा और विष्णु युद्ध करने लगे, तब ब्रह्मा और विष्णुके गण भी परस्पर युद्ध करने लगे॥ १०॥

उस समय सभी देवगण उस परम अद्भुत युद्धको देखनेकी इच्छासे विमानपर चढ़कर वहाँ पहुँच गये। [वहाँ आकर] आकाशमें अवस्थित हो पुष्पकी वृष्टि करते हुए वे युद्ध देखने लगे। गरुडवाहन भगवान् विष्णुने क्रुद्ध होकर ब्रह्माके वक्ष:स्थलपर अनेक प्रकारके असंख्य दु:सह बाणों और अस्त्रोंसे प्रहार किया॥ ११-१२१/२॥

तब विधाता भी क्रुद्ध होकर विष्णुके हृदयपर अग्निके समान बाण और अनेक प्रकारके अस्त्रोंको छोड़ने लगे। उस समय देवगण उन दोनोंका वह अद्भुत युद्ध देखकर अतिशय व्याकुल हो गये और ब्रह्मा तथा विष्णुकी प्रशंसा करने लगे॥ १३-१४१/२॥

तत्पश्चात् युद्धमें तत्पर महाज्ञानी विष्णुने अतिशय क्रोधके साथ श्रान्त हो दीर्घ नि:श्वास लेते हुए ब्रह्माको लक्ष्यकर भयंकर माहेश्वर अस्त्रका संधान किया। ब्रह्माने भी अतिशय क्रोधमें आकर विष्णुके हृदयको लक्ष्यकर ब्रह्माण्डको कम्पित करते हुए भयंकर पाशुपत अस्त्रका प्रयोग किया। ब्रह्मा और विष्णुके सूर्यके समान हजारों मुखवाले, अत्यन्त उग्र तथा प्रचण्ड आँधीके समान भयंकर दोनों अस्त्र आकाशमें प्रकट हो गये॥ १५—१८॥

इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णुका आपसमें भयंकर युद्ध होने लगा। हे तात! उस युद्धको देखकर सभी देवगण राजविप्लवके समय ब्राह्मणोंके समान अतिशय दुखी और व्याकुल होकर परस्पर कहने लगे—जिसके द्वारा सृष्टि, स्थिति, प्रलय, तिरोभाव तथा अनुग्रह होता है और जिसकी कृपाके बिना इस भूमण्डलपर अपनी इच्छासे एक तृणका भी विनाश करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है, उन त्रिशूलधारी ब्रह्मस्वरूप महेश्वरको नमस्कार है॥ १९—२१॥

भयभीत देवतागण इस प्रकार सोचते हुए चन्द्रशेखर महेश्वर जहाँ विराजमान थे, उस शिवस्थान कैलास शिखरपर गये॥ २२॥

शिवके उस प्रणवाकार स्थानको देखकर वे देवता प्रसन्न हुए और प्रणाम करके भवनमें प्रविष्ट हुए॥ २३॥

उन्होंने वहाँ सभाके मध्यमें स्थित मण्डपमें देवी पार्वतीके साथ रत्नमय आसनपर विराजमान देवश्रेष्ठ शंकरका दर्शन किया। वे वाम चरणके ऊपर दक्षिण चरण और उसके ऊपर वाम करकमल रखे हुए थे, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थे और चारों ओर शिवगण उनकी सेवामें तत्पर थे, शिवके प्रति उत्तम भक्तिभाववाली कुशल रमणियाँ उनपर चँवर डुला रही थीं, वेद निरन्तर उनकी स्तुति कर रहे थे और वे अनुग्रहकी दृष्टिसे सबको देख रहे थे। हे वत्स! उन महेश्वर शिवको देखकर आनन्दाश्रुसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले देवताओंने दूरसे ही उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया॥ २४—२७॥

भगवान् शंकरने उन देवोंको देखकर अपने गणोंसे उन्हें समीप बुलवाया और देवशिरोमणि महादेव उन देवताओंको आनन्दित करते हुए अर्थगम्भीर, मंगलमय तथा सुमधुर वचन कहने लगे॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें देवताओंकी कैलासयात्राका वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

भगवान् शंकरका ब्रह्मा और विष्णुके युद्धमें अग्निस्तम्भरूपमें प्राकट्य, स्तम्भके आदि और अन्तकी जानकारीके लिये दोनोंका प्रस्थान

शिवजी बोले—हे पुत्रो! आपकी कुशल तो है? मेरे अनुशासनमें जगत् तथा देवश्रेष्ठ अपने-अपने कार्योंमें लगे तो हैं? हे देवताओ! ब्रह्मा और विष्णुके बीच होनेवाले युद्धका वृत्तान्त तो मुझे पहलेसे ही ज्ञात था; आपलोगोंने [यहाँ आनेका] परिश्रम करके उसे पुनः बताया है। हे सनत्कुमार! उमापति शंकरने इस प्रकार मुसकराते हुए मधुर वाणीमें उन देवगणोंको सन्तुष्ट किया॥ १—३॥

इसके बाद महादेवजीने ब्रह्मा और विष्णुकी युद्धस्थलीमें जानेके लिये अपने सैकड़ों गणोंको वहीं सभामें आज्ञा दी। तब महादेवजीके प्रयाणके लिये अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे और उनके गणाध्यक्ष भी अनेक प्रकार से सज-धजकर वाहनोंपर सवार होकर जानेके लिये तैयार हो गये॥ ४-५॥

भगवान् उमापति पाँच मण्डलोंसे सुशोभित आगेसे पीछेतक प्रणव (ॐ)-की आकृतिवाले सुन्दर रथपर आरूढ़ हो गये। इस प्रकार पुत्रों और गणोंसहित प्रस्थान किये हुए शिवजीके पीछे-पीछे इन्द्र आदि सभी देवगण भी चल पड़े। विचित्र ध्वजाएँ, पंखे, चँवर, पुष्पवृष्टि, संगीत, नृत्य और वाद्योंसे सम्मानित पशुपति भगवान् शिव भगवती उमाके साथ सेनासहित उन दोनों (ब्रह्मा और विष्णु)-की युद्धभूमिमें आ पहुँचे॥ ६-७॥

उन दोनोंका युद्ध देखकर शिवजीने गणोंका कोलाहल तथा वाद्योंकी ध्वनि बन्द करा दी तथा वे छिपकर आकाशमें स्थित हो गये। उधर शूरवीर ब्रह्मा और विष्णु एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे माहेश्वरास्त्र और पाशुपतास्त्रका परस्पर सन्धान कर रहे थे। ब्रह्मा और विष्णुके अस्त्रोंकी ज्वालासे तीनों लोक जलने लगे। निराकार भगवान् शंकर इस अकाल प्रलयको आया देखकर एक भयंकर विशाल अग्निस्तम्भके रूपमें उन दोनोंके बीच प्रकट हो गये॥ ८—११॥

संसारको नष्ट करनेमें सक्षम वे दोनों दिव्यास्त्र अपने तेजसहित उस महान् अग्निस्तम्भके प्रकट होते ही तत्क्षण शान्त हो गये। दिव्यास्त्रोंको शान्त करनेवाले इस आश्चर्यकारी तथा शुभ (अग्निस्तम्भ)-को देखकर सभी लोग परस्पर कहने लगे कि यह अद्भुत आकारवाला (स्तम्भ) क्या है?॥ १२-१३॥

यह दिव्य अग्निस्तम्भ कैसे प्रकट हो गया? इसकी ऊँचाईकी और इसकी जड़की हम दोनों जाँच करें—ऐसा एक साथ निश्चय करके वे दोनों अभिमानी वीर उसकी परीक्षा करनेको तत्पर हो गये और शीघ्रतापूर्वक चल पड़े। हम दोनोंके साथ रहनेसे यह कार्य सम्पन्न नहीं होगा—ऐसा कहकर विष्णुने सूकरका रूप धारण किया और उसकी जड़की खोजमें चले। उसी प्रकार ब्रह्मा भी हंसका रूप धारण करके उसका अन्त खोजनेके लिये चल पड़े। पाताललोकको खोदकर बहुत दूरतक जानेपर भी विष्णुको उस अग्निके समान तेजस्वी स्तम्भका आधार नहीं दीखा। तब थक-हारकर सूकराकृति विष्णु रणभूमिमें वापस आ गये॥ १४—१८॥

हे तात! आकाशमार्गसे जाते हुए आपके पिता ब्रह्माजीने मार्गमें अद्भुत केतकी (केवड़े)-के पुष्पको गिरते देखा। अनेक वर्षोंसे गिरते रहनेपर भी वह ताजा और अति सुगन्धयुक्त था। ब्रह्मा और विष्णुके इस विग्रहपूर्ण कृत्यको देखकर भगवान् परमेश्वर हँस पड़े, जिससे कम्पनके कारण उनका मस्तक हिला और वह श्रेष्ठ केतकी पुष्प उन दोनोंके ऊपर कृपा करनेके लिये गिरा॥ १९—२१ ॥

[ब्रह्माजीने उससे पूछा—] हे पुष्पराज! तुम्हें किसने धारण कर रखा था और तुम क्यों गिर रहे हो? [केतकीने उत्तर दिया—] इस पुरातन और अप्रमेय स्तम्भके बीचसे मैं बहुत समयसे गिर रहा हूँ। फिर भी इसके आदिको नहीं देख सका। अत: आप भी इस स्तम्भका अन्त देखनेकी आशा छोड़ दें॥ २२१/२ ॥

[ब्रह्माजीने कहा—] मैं तो हंसका रूप लेकर इसका अन्त देखनेके लिये यहाँ आया हूँ। अब हे मित्र! मेरा एक अभिलषित काम तुम्हें करना पड़ेगा। विष्णुके पास मेरे साथ चलकर तुम्हें इतना कहना है कि 'ब्रह्माने इस स्तम्भका अन्त देख लिया है। हे अच्युत! मैं इस बातका साक्षी हूँ।' केतकीसे ऐसा कहकर ब्रह्माने उसे बार-बार प्रणाम किया और कहा कि आपत्कालमें तो मिथ्या भाषण भी प्रशस्त माना गया है—यह शास्त्रकी आज्ञा है॥ २३—२५ ॥

वहाँ अति परिश्रमसे थके और [स्तम्भका अन्त न मिलनेसे] उदास विष्णुको देखकर ब्रह्मा प्रसन्नतासे नाच उठे और षण्ढ (नपुंसक)-के समान पूर्ण बातें बनाकर अच्युत विष्णुसे इस प्रकार कहने लगे—हे हरे! मैंने इस स्तम्भका अग्रभाग देख लिया है; इसका साक्षी यह केतकी पुष्प है। तब उस केतकीने भी झूठ ही विष्णुके समक्ष कह दिया कि ब्रह्माकी बात यथार्थ है॥ २६-२७ ॥

विष्णुने उस बातको सत्य मानकर ब्रह्माको स्वयं प्रणाम किया और उनका षोडशोपचार पूजन किया॥ २८ ॥

उसी समय कपटी ब्रह्माको दण्डित करनेके लिये उस प्रज्वलित स्तम्भ लिंगसे महेश्वर प्रकट हो गये। तब परमेश्वरको प्रकट हुआ देखकर विष्णु उठ खड़े हुए और काँपते हाथोंसे उनका चरण पकड़कर कहने लगे। हे करुणाकर! आदि और अन्तसे रहित शरीरवाले आप परमेश्वरके विषयमें मैंने मोहबुद्धिसे बहुत विचार किया; किंतु कामनाओंसे उत्पन्न वह विचार सफल नहीं हुआ। अत: आप हमपर प्रसन्न हों, हमारे पापको नष्ट करें और हमें क्षमा करें; यह सब आपकी लीलासे ही हुआ है॥ २९-३० ॥

ईश्वर बोले—हे वत्स! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ; क्योंकि श्रेष्ठताकी कामना होनेपर भी तुमने सत्य वचनका पालन किया, इसलिये लोगोंमें तुम मेरे समान ही प्रतिष्ठा और सत्कार प्राप्त करोगे। हे हरे अबसे आपकी पृथक् मूर्ति बनाकर पुण्य क्षेत्रोंमें प्रतिष्ठित की जायगी और उसका उत्सवपूर्वक पूजन होगा॥ ३१-३२ ॥

इस प्रकार परमेश्वरने विष्णुकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर देवताओंके सामने उन्हें अपनी समानता प्रदान की थी॥ ३३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें अग्निस्तम्भके प्राकट्यका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

भगवान् शंकरद्वारा ब्रह्मा और केतकी पुष्पको शाप देना और पुन: अनुग्रह प्रदान करना

नन्दिकेश्वर बोले—तदुपरान्त महादेव शिवजीने ब्रह्माके गर्वको मिटानेकी इच्छासे अपनी भृकुटीके मध्यसे भैरव नामक एक अद्भुत पुरुषको उत्पन्न किया। उस भैरवने रणभूमिमें अपने स्वामी शिवजीको प्रणाम करके पूछा कि हे प्रभो! आप शीघ्र आज्ञा दें, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?॥ १-२ ॥

शिवजी बोले—हे वत्स! ये जो ब्रह्मा हैं, वे इस सृष्टिके आदि देवता हैं, तुम वेगपूर्वक तीक्ष्ण तलवारसे

इनकी पूजा करो अर्थात् इनका वध कर दो॥ ३॥

तब भैरव एक हाथसे [ब्रह्माके] केश पकड़कर असत्य भाषण करनेवाले उनके उद्धत पाँचवें सिरको काटकर हाथोंमें तलवार भाँजते हुए उन्हें मार डालनेके लिये उद्यत हुए॥ ४॥

[हे सनत्कुमार!] तब आपके पिता अपने आभूषण, वस्त्र, माला, उत्तरीय एवं निर्मल बालोंके बिखर जानेसे आँधीमें झकझोरे हुए केलेके पेड़ और लतागुल्मोंके समान कम्पित होकर भैरवके चरणकमलोंपर गिर पड़े। हे तात! तब ब्रह्माकी रक्षा करनेकी इच्छासे कृपालु विष्णुने मेरे स्वामी भगवान् शंकरके चरणकमलोंको अपने अश्रु-जलसे भिगोते हुए हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना की, जैसे एक छोटा बालक अपने पिताके प्रति टूटी-फूटी वाणीमें करता है॥ ५-६॥

अच्युत बोले—[हे ईश!] आपने ही पहले कृपापूर्वक इन ब्रह्माको पंचाननरूप प्रदान किया था। इसलिये ये आपके अनुग्रह करनेयोग्य हैं, इनका अपराध क्षमा करें और इनपर प्रसन्न हों॥ ७॥

भगवान् अच्युतके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर शिवजीने प्रसन्न होकर देवताओंके सामने ही ब्रह्माको दण्डित करनेसे भैरवको रोक दिया। शिवजीने एक सिरसे विहीन कपटी ब्रह्मासे कहा—हे ब्रह्मन्! तुम श्रेष्ठता पानेके चक्करमें शठेशत्वको प्राप्त हो गये हो। इसलिये संसारमें तुम्हारा सत्कार नहीं होगा और तुम्हारे मन्दिर तथा पूजनोत्सव आदि नहीं होंगे॥ ८-९$^{1}/_{2}$॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाविभूतिसम्पन्न स्वामिन्! आप मुझपर प्रसन्न होइये; मैं [आपकी कृपासे] अपने सिरके कटनेको भी आज श्रेष्ठ समझता हूँ। विश्वके कारण, विश्वबन्धु, दोषोंको सह लेनेवाले और पर्वतके समान कठोर धनुष धारण करनेवाले आप भगवान् शिवको नमस्कार है॥ १०-११॥

ईश्वर बोले—हे वत्स! अनुशासनका भय नहीं रहनेसे यह सारा संसार नष्ट हो जायगा। अतः तुम दण्डनीयको दण्ड दो और इस संसारकी व्यवस्था चलाओ। तुम्हें एक परम दुर्लभ वर भी देता हूँ, जिसे ग्रहण करो। अग्निहोत्र आदि वैतानिक और गृह्य यज्ञोंमें आप ही श्रेष्ठ रहेंगे। सर्वांगपूर्ण और पुष्कल दक्षिणावाला यज्ञ भी आपके बिना निष्फल होगा॥ १२-१३$^{1}/_{2}$॥

तब भगवान् शिवने झूठी गवाही देनेवाले कपटी केतक पुष्पसे कहा—अरे शठ केतक! तुम दुष्ट हो; यहाँसे दूर चले जाओ। मेरी पूजामें उपस्थित तुम्हारा फूल मुझे प्रिय नहीं होगा। शिवजीद्वारा इस प्रकार कहते ही सभी देवताओंने केतकीको उनके पाससे हटाकर अन्यत्र भेज दिया॥ १४—१६॥

केतक बोला—हे नाथ! आपको नमस्कार है। आपकी आज्ञाके कारण मेरा तो जन्म ही निष्फल हो गया है। हे तात! मेरा अपराध क्षमा करें और मेरा जन्म सफल कर दें। जाने-अनजानेमें हुए पाप आपके स्मरणमात्रसे नष्ट हो जाते हैं, फिर ऐसे प्रभावशाली आपके साक्षात् दर्शन करनेपर भी मेरे झूठ बोलनेका दोष कैसे रह सकता है?॥ १७-१८॥

उस सभास्थलमें केतक पुष्पके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान् सदाशिवने कहा—मैं सत्य बोलनेवाला हूँ, अतः मेरे द्वारा तुझे धारण किया जाना उचित नहीं है, किंतु मेरे ही अपने (विष्णु आदि देवगण) तुम्हें धारण करेंगे और तुम्हारा जन्म सफल होगा और मण्डप आदिके बहाने तुम मेरे ऊपर भी उपस्थित रहोगे॥ १९-२०॥

इस प्रकार भगवान् शंकर ब्रह्मा, विष्णु और केतकी पुष्पपर अनुग्रह करके सभी देवताओंसे स्तुत होकर सभामें सुशोभित हुए॥ २१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवकी कृपाका वर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

महेश्वरका ब्रह्मा और विष्णुको अपने निष्कल और सकल स्वरूपका परिचय देते हुए लिंगपूजनका महत्त्व बताना

नन्दिकेश्वर बोले—वे दोनों—ब्रह्मा और विष्णु भगवान् शंकरको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर उनके दायें-बायें भागमें चुपचाप खड़े हो गये। फिर उन्होंने वहाँ [साक्षात् प्रकट] पूजनीय महादेवजीको कुटुम्बसहित श्रेष्ठ आसनपर स्थापित करके पवित्र पुरुष-वस्तुओंद्वारा उनका पूजन किया॥ १-२॥

दीर्घकालतक अविकृतभावसे सुस्थित रहनेवाली वस्तुओंको पुरुषवस्तु कहते हैं और अल्पकालतक ही टिकनेवाली वस्तुएँ प्राकृतवस्तु कहलाती हैं—इस तरह वस्तुके ये दो भेद जानने चाहिये। [किन पुरुष-वस्तुओंसे उन्होंने भगवान् शिवका पूजन किया, यह बताया जाता है—] हार, नूपुर, केयूर, किरीट, मणिमय कुण्डल, यज्ञोपवीत, उत्तरीय वस्त्र, पुष्प-माला, रेशमी वस्त्र, हार, मुद्रिका (अँगूठी), पुष्प, ताम्बूल, कपूर, चन्दन एवं अगुरुका अनुलेप, धूप, दीप, श्वेतछत्र, व्यजन, ध्वजा, चँवर तथा अन्यान्य दिव्य उपहारोंद्वारा उन दोनोंने अपने स्वामी महेश्वरका पूजन किया, जिन महेश्वरका वैभव वाणी और मनकी पहुँचसे परे था, जो केवल पशुपति परमात्माके ही योग्य थे और जिन्हें पशु (बद्ध जीव) नहीं पा सकते थे॥ ३—५१/२॥

हे सनत्कुमार! स्वामीके योग्य जो-जो उत्तम वस्तुएँ थीं, उन सभी वस्तुओंका भगवान् शंकरने भी प्रसन्नतापूर्वक यथोचित रूपसे सभासदोंके बीच वितरण कर दिया, जिससे यह श्रेष्ठ परम्परा बनी रहे कि प्राप्त पदार्थोंका वितरण आश्रितोंमें करना चाहिये। उन वस्तुओंको ग्रहण करनेवाले सभासदोंमें वहाँ कोलाहल मच गया। इस प्रकार वहाँ पहले ही ब्रह्मा तथा विष्णुसे पूजित हुए भक्तिवर्धक भगवान् शिव विनम्र उन दोनों देवताओंसे हँसकर कहने लगे॥ ६—८१/२॥

ईश्वर बोले—हे पुत्रो! आजका दिन महान् है। इसमें तुम्हारे द्वारा जो आज मेरी पूजा हुई है, इससे मैं तुमलोगोंपर बहुत प्रसन्न हूँ। इसी कारण यह दिन परम पवित्र और महान्-से-महान् होगा। आजकी यह तिथि शिवरात्रिके नामसे विख्यात होकर मेरे लिये परम प्रिय होगी॥ ९-१०॥

इस समय जो मेरे लिंग (निष्कल—अंग-आकृतिसे रहित निराकार स्वरूपके प्रतीक) और वेर (सकल—साकाररूपके प्रतीक विग्रह)-की पूजा करेगा, वह पुरुष जगत्‌की सृष्टि और पालन आदि कार्य भी कर सकता है॥ ११॥

जो शिवरात्रिको दिन-रात निराहार एवं जितेन्द्रिय रहकर अपनी शक्तिके अनुसार निष्कपट भावसे मेरी यथोचित पूजा करेगा, उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो। एक वर्षतक निरन्तर मेरी पूजा करनेपर जो फल मिलता है, वह सारा फल केवल शिवरात्रिको मेरा पूजन करनेसे मनुष्य तत्काल प्राप्त कर लेता है॥ १२-१३॥

जैसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय समुद्रकी वृद्धिका अवसर है, उसी प्रकार यह शिवरात्रि तिथि मेरे धर्मकी वृद्धिका समय है। इस तिथिमें मेरी स्थापना आदिका मंगलमय उत्सव होना चाहिये॥ १४॥

हे वत्सो! पहले मैं जब ज्योतिर्मय स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ था, उस समय मार्गशीर्षमासमें आर्द्रा नक्षत्र था। अत: जो पुरुष मार्गशीर्षमासमें आर्द्रा नक्षत्र होनेपर मुझ उमापतिका दर्शन करता है अथवा मेरी मूर्ति या लिंगकी ही झाँकीका दर्शन करता है, वह मेरे लिये कार्तिकेयसे भी अधिक प्रिय है। उस शुभ दिन मेरे दर्शनमात्रसे पूरा फल प्राप्त होता है। यदि [दर्शनके साथ-साथ] मेरा पूजन भी किया जाय तो उसका अधिक फल प्राप्त होता है, जिसका वाणीद्वारा वर्णन नहीं हो सकता॥ १५—१७॥

इस रणभूमिमें मैं लिंगरूपसे प्रकट होकर बहुत बड़ा हो गया था। अत: उस लिंगके कारण यह भूतल लिंगस्थानके नामसे प्रसिद्ध हुआ। हे पुत्रो! जगत्‌के लोग

इसका दर्शन और पूजन कर सकें, इसके लिये यह अनादि और अनन्त ज्योति:स्तम्भ अत्यन्त छोटा हो जायगा। यह लिंग सब प्रकारके भोगोंको सुलभ करानेवाला और भोग तथा मोक्षका एकमात्र साधन होगा। इसका दर्शन, स्पर्श तथा ध्यान प्राणियोंको जन्म और मृत्युसे छुटकारा दिलानेवाला होगा॥ १८—२०॥

अग्निके पहाड़-जैसा जो यह शिवलिंग यहाँ प्रकट हुआ है, इसके कारण यह स्थान अरुणाचल नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ अनेक प्रकारके बड़े-बड़े तीर्थ प्रकट होंगे। इस स्थानमें निवास करने या मरनेसे जीवोंका मोक्ष हो जायगा॥ २१-२२॥

रथोत्सवादिके आयोजनसे यहाँ सर्वत्र अनेक लोग कल्याणकारी रूपसे निवास करेंगे। इस स्थानपर किया गया दान, हवन तथा जप—यह सब करोड़गुना फल देनेवाला होगा। यह क्षेत्र मेरे सभी क्षेत्रोंमें श्रेष्ठतम होगा। यहाँ मेरा स्मरण करनेमात्रसे प्राणियोंकी मुक्ति हो जायगी। अत: यह परम रमणीय क्षेत्र अति महत्त्वपूर्ण है। यह सभी प्रकारके कल्याणोंसे पूर्ण, शुभ और सबको मुक्ति प्रदान करनेवाला होगा॥ २३—२५॥

इस लिंगमें मुझ लिंगेश्वरकी अर्चना करके मनुष्य सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सायुज्य—इन पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंका अधिकार प्राप्त कर लेगा। आपलोगोंको भी शीघ्र ही सभी मनोवांछित फल प्राप्त होंगे॥ २६-२७॥

नन्दिकेश्वर बोले—इस प्रकार विनम्र ब्रह्मा तथा विष्णुपर अनुग्रह करके भगवान् शंकरने उनके जो सैन्यदल परस्पर युद्धमें मारे गये थे, उन्हें अपनी अमृतवर्षिणी शक्तिसे जीवित कर दिया। उन दोनों ब्रह्मा और विष्णुकी मूढ़ता और [पारस्परिक] वैरको मिटानेके लिये भगवान् शंकर उन दोनोंसे कहने लगे— ॥ २८-२९॥

मेरे दो रूप हैं—'सकल' और 'निष्कल'। दूसरे किसीके ऐसे रूप नहीं हैं, अत: [मेरे अतिरिक्त] अन्य सब अनीश्वर हैं। हे पुत्रो! पहले मैं स्तम्भरूपसे प्रकट हुआ, फिर अपने साक्षात्-रूपसे। 'ब्रह्मभाव' मेरा 'निष्कल' रूप और 'महेश्वरभाव' सकल रूप है। ये दोनों मेरे ही सिद्धरूप हैं; मेरे अतिरिक्त किसी दूसरेके नहीं हैं। इस कारण तुम दोनोंका अथवा अन्य किसीका भी ईश्वरत्व कभी नहीं है॥ ३०—३२॥

अज्ञानके कारण तुम दोनोंको जो यह ईशत्वका आश्चर्यजनक अभिमान उत्पन्न हो गया था, उसे दूर करनेके लिये ही मैं इस रणभूमिमें प्रकट हुआ हूँ। उस अपने अभिमानको छोड़ दो और मुझ परमेश्वरमें [अपनी] बुद्धि स्थिर करो। मेरे अनुग्रहसे ही सभी लोकोंमें सब कुछ प्रकाशित होता है। इस गूढ़ ब्रह्मतत्त्वको तुम्हारे प्रति प्रेम होनेके कारण ही मैं बता रहा हूँ॥ ३३—३५॥

मैं ही परब्रह्म हूँ। कल (सगुण) और अकल (निर्गुण)—ये दोनों मेरे ही स्वरूप हैं। मेरा स्वरूप ब्रह्मरूप होनेके कारण मैं ईश्वर भी हूँ। जीवोंपर अनुग्रह आदि करना मेरा कार्य है। हे ब्रह्मा और केशव! सबसे बृहत् और जगत्‌की वृद्धि करनेवाला होनेके कारण मैं 'ब्रह्म' हूँ। हे पुत्रो! सर्वत्र समरूपसे स्थित और व्यापक होनेसे मैं ही सबका आत्मा हूँ॥ ३६-३७॥

अन्य सभी जीव अनात्मरूप हैं; इसमें सन्देह नहीं है। सर्गसे लेकर अनुग्रहतक (आत्मा या ईश्वरसे भिन्न) जो जगत्-सम्बन्धी पाँच कृत्य हैं, वे सदा मेरे ही हैं, मेरे अतिरिक्त दूसरे किसीके नहीं हैं; क्योंकि मैं ही सबका ईश्वर हूँ। पहले मेरी ब्रह्मरूपताका बोध करानेके लिये 'निष्कल' लिंग प्रकट हुआ था, फिर तुम दोनोंको अज्ञात ईश्वरत्वका स्पष्ट साक्षात्कार करानेके लिये मैं साक्षात् जगदीश्वर ही 'सकल' रूपमें तत्काल प्रकट हो गया। अत: मुझमें जो ईशत्व है, उसे ही मेरा सकलरूप जानना चाहिये तथा जो यह मेरा निष्कल स्तम्भ है, वह मेरे ब्रह्मस्वरूपका बोध करानेवाला है। हे पुत्रो! लिंग-लक्षणयुक्त होनेके कारण यह मेरा ही लिंग (चिह्न) है। तुम दोनोंको प्रतिदिन यहाँ रहकर इसका पूजन करना चाहिये। यह मेरा ही स्वरूप है और मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। लिंग और लिंगीमें नित्य अभेद होनेके कारण मेरे इस लिंगका महान् पुरुषोंको भी पूजन करना चाहिये॥ ३८—४३॥

हे वत्सो! जहाँ-जहाँ जिस किसीने मेरे लिंगको

स्थापित कर लिया, वहाँ मैं अप्रतिष्ठित होनेपर भी प्रतिष्ठित हो जाता हूँ॥ ४४॥

मेरे एक लिंगकी स्थापना करनेका फल मेरी समानताकी प्राप्ति बताया गया है। एकके बाद दूसरे शिवलिंगकी भी स्थापना कर दी गयी, तब फलरूपसे मेरे साथ एकत्व (सायुज्य मोक्ष)-रूप फल प्राप्त होता है॥ ४५॥

प्रधानतया शिवलिंगकी ही स्थापना करनी चाहिये। मूर्तिकी स्थापना उसकी अपेक्षा गौण है। शिवलिंगके अभावमें सब ओरसे मूर्तियुक्त होनेपर भी वह स्थान क्षेत्र नहीं कहलाता॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवके महेश्वरत्वका वर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

सृष्टि, स्थिति आदि पाँच कृत्योंका प्रतिपादन, प्रणव एवं पंचाक्षर-मन्त्रकी महत्ता, ब्रह्मा-विष्णुद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति तथा उनका अन्तर्धान होना

ब्रह्मा और विष्णु बोले—हे प्रभो! हम दोनोंको सृष्टि आदि पाँच कृत्योंका लक्षण बताइये॥ ¹/₂॥

शिवजी बोले—मेरे कृत्योंको समझना अत्यन्त गहन है, तथापि मैं कृपापूर्वक तुम दोनोंको उनके विषयमें बता रहा हूँ। हे ब्रह्मा और अच्युत! सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—ये पाँच ही मेरे जगत्-सम्बन्धी कार्य हैं, जो नित्यसिद्ध हैं। संसारकी रचनाका जो आरम्भ है, वह 'सर्ग' है। मुझसे पालित होकर सृष्टिका सुस्थिररूपसे रहना ही उसकी 'स्थिति' कहा गया है। उसका विनाश ही 'संहार' है। प्राणोंका उत्क्रमण ही 'तिरोभाव' है। इन सबसे छुटकारा मिल जाना ही मेरा 'अनुग्रह' है। इस प्रकार मेरे पाँच कृत्य हैं। इन मेरे कर्तव्योंको चुपचाप अन्य पंचभूतादि वहन करते रहते हैं, जैसे जलमें पड़नेवाले गोपुर-बिम्बमें आवागमन होता रहता है॥ १—४॥

सृष्टि आदि जो चार कृत्य हैं, वे संसारका विस्तार करनेवाले हैं। पाँचवाँ कृत्य अनुग्रह मोक्षका हेतु है। वह सदा मुझमें ही अचल भावसे स्थिर रहता है। मेरे भक्तजन इन पाँचों कृत्योंको पाँचों भूतोंमें देखते हैं। सृष्टि भूतलमें, स्थिति जलमें, संहार अग्निमें, तिरोभाव वायुमें और अनुग्रह आकाशमें स्थित है। पृथ्वीसे सबकी सृष्टि होती है, जलसे सबकी वृद्धि होती है, आग सबको जला देती है, वायु सबको एक स्थानसे दूसरे स्थानको ले जाती है और आकाश सबको अनुगृहीत करता है—यह विद्वान् पुरुषोंको जानना चाहिये॥ ५—८॥

इन पाँच कृत्योंका भार वहन करनेके लिये ही मेरे पाँच मुख हैं। चार दिशाओंमें चार मुख हैं और इनके बीचमें पाँचवाँ मुख है। हे पुत्रो! तुम दोनोंने तपस्या करके प्रसन्न हुए मुझ परमेश्वरसे भाग्यवश सृष्टि और स्थिति नामक दो कृत्य प्राप्त किये हैं। ये दोनों तुम्हें बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार मेरे विभूतिस्वरूप रुद्र और महेश्वरने दो अन्य उत्तम कृत्य—संहार और तिरोभाव मुझसे प्राप्त किये हैं, परंतु अनुग्रह नामक कृत्य कोई नहीं पा सकता॥ ९—११॥

उन सभी पहलेके कर्मोंको तुम दोनोंने समयानुसार भुला दिया। रुद्र और महेश्वर अपने कर्मोंको नहीं भूले हैं, इसलिये मैंने उन्हें अपनी समानता प्रदान की है। वे रूप, वेष, कृत्य, वाहन, आसन और आयुध आदिमें मेरे समान ही हैं॥ १२-१३॥

हे पुत्रो! मेरे ध्यानसे शून्य होनेके कारण तुम दोनोंमें मूढ़ता आ गयी है, मेरा ज्ञान रहनेपर महेशके समान अभिमान और स्वरूप नहीं रहता। इसलिये मेरे ज्ञानकी सिद्धिके लिये मेरे ओंकार नामक मन्त्रका तुम दोनों जप करो, यह अभिमानको दूर करनेवाला है॥ १४-१५॥

पूर्वकालमें मैंने अपने स्वरूपभूत मन्त्रका उपदेश किया है, जो ओंकारके रूपमें प्रसिद्ध है। वह महामंगलकारी

मन्त्र है। सबसे पहले मेरे मुखसे ओंकार (ॐ) प्रकट हुआ, जो मेरे स्वरूपका बोध करानेवाला है। ओंकार वाचक है और मैं वाच्य हूँ। यह मन्त्र मेरा स्वरूप ही है। प्रतिदिन ओंकारका निरन्तर स्मरण करनेसे मेरा ही सदा स्मरण होता रहता है॥ १६-१७॥

पहले मेरे उत्तरवर्ती मुखसे अकार, पश्चिम मुखसे उकार, दक्षिण मुखसे मकार, पूर्ववर्ती मुखसे बिन्दु तथा मध्यवर्ती मुखसे नाद उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पाँच अवयवोंसे युक्त होकर ओंकारका विस्तार हुआ है। इन सभी अवयवोंसे एकीभूत होकर वह प्रणव ॐ नामक एक अक्षर हो गया। यह नाम-रूपात्मक सारा जगत् तथा वेद-वर्णित स्त्री-पुरुषवर्गरूप दोनों कुल इस प्रणव-मन्त्रसे व्याप्त हैं। यह मन्त्र शिव और शक्ति दोनोंका बोधक है॥ १८—२०॥

इसी प्रणवसे पंचाक्षरमन्त्रकी उत्पत्ति हुई है, जो मेरे सकल रूपका बोधक है। वह अकारादि क्रमसे और नकारादि क्रमसे क्रमशः प्रकाशमें आया है। [**ॐ नमः शिवाय**] इस पंचाक्षरमन्त्रसे मातृकावर्ण प्रकट हुए हैं, जो पाँच भेदवाले हैं।* उसीसे शिरोमन्त्र तथा चार मुखोंसे त्रिपदा गायत्रीका प्राकट्य हुआ है। उस गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और उन वेदोंसे करोड़ों मन्त्र निकले हैं। उन-उन मन्त्रोंसे भिन्न-भिन्न कार्योंकी सिद्धि होती है, परंतु इस प्रणव एवं पंचाक्षरसे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है। इस मूलमन्त्रसे भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्ध होते हैं। मेरे सकल स्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी मन्त्रराज साक्षात् भोग प्रदान करनेवाले और शुभकारक हैं॥ २१—२४॥

नन्दिकेश्वर बोले—तदनन्तर जगदम्बा पार्वतीके साथ बैठे हुए गुरुवर महादेवजीने उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्रह्मा और विष्णुको परदा करनेवाले वस्त्रसे आच्छादित करके उनके मस्तकपर अपना करकमल रखकर धीरे-धीरे उच्चारण करके उन्हें उत्तम मन्त्रका उपदेश दिया॥ २५॥

यन्त्र-तन्त्रमें बतायी हुई विधिके पालन-पूर्वक तीन बार मन्त्रका उच्चारण करके भगवान् शिवने उन दोनों शिष्योंको मन्त्रकी दीक्षा दी। तत्पश्चात् उन शिष्योंने गुरुदक्षिणाके रूपमें अपने-आपको ही समर्पित कर दिया और दोनों हाथ जोड़कर उनके समीप खड़े हो उन देवश्रेष्ठ जगद्गुरुका स्तवन किया॥ २६-२७॥

ब्रह्मा और विष्णु बोले—[हे प्रभो!] आप निष्कलरूप हैं; आपको नमस्कार है। आप निष्कल तेजसे प्रकाशित होते हैं; आपको नमस्कार है। आप सबके स्वामी हैं; आपको नमस्कार है। आप सर्वात्माको नमस्कार है अथवा सकल-स्वरूप आप महेश्वरको नमस्कार है। आप प्रणवके वाच्यार्थ हैं; आपको नमस्कार है। आप प्रणवलिंग-वाले हैं; आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह करनेवाले आपको नमस्कार है। आपके पाँच मुख हैं; आपको नमस्कार है। पंचब्रह्मस्वरूप पाँच कृत्यवाले आपको नमस्कार है। आप सबके आत्मा हैं, ब्रह्म हैं, आपके गुण और आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं, आपको नमस्कार है। आपके सकल और निष्कल दो रूप हैं। आप सद्गुरु एवं शम्भु हैं, आपको नमस्कार है। इन पद्योंद्वारा अपने गुरु महेश्वरकी स्तुति करके ब्रह्मा और विष्णुने उनके चरणोंमें प्रणाम किया॥ २८—३१॥

ईश्वर बोले—हे वत्सो! मैंने तुम दोनोंसे सारा तत्त्व कहा और दिखा दिया। तुमदोनों देवीके द्वारा उपदिष्ट प्रणव (ॐ), जो मेरा ही स्वरूप है-का निरन्तर जप करो॥ ३२॥

[इसके जपसे] ज्ञान, स्थिर भाग्य—सब कुछ सदाके लिये प्राप्त हो जाता है। आर्द्रा नक्षत्रसे युक्त चतुर्दशीको प्रणवका जप किया जाय तो वह अक्षय फल देनेवाला होता है। सूर्यकी संक्रान्तिसे युक्त महा-आर्द्रा नक्षत्रमें एक बार किया हुआ प्रणवजप कोटिगुने जपका फल देता है। मृगशिरा नक्षत्रका अन्तिम भाग तथा पुनर्वसुका आदिभाग पूजा, होम और तर्पण आदिके लिये सदा आर्द्राके समान ही होता है—यह जानना चाहिये। मेरा या मेरे लिंगका दर्शन प्रभातकालमें ही प्रातः तथा संगव (मध्याह्नके पूर्व)-कालमें करना चाहिये॥ ३३—३५॥

मेरे दर्शन-पूजनके लिये चतुर्दशी तिथि निशीथव्यापिनी

* अ इ उ ऋ लृ—ये पाँच मूलभूत स्वर हैं तथा व्यंजन भी पाँच-पाँच वर्णोंसे युक्त पाँच वर्गवाले हैं।

अथवा प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये; क्योंकि परवर्तिनी (अमावास्या) तिथिसे संयुक्त चतुर्दशीकी ही प्रशंसा की जाती है। पूजा करनेवालोंके लिये मेरी मूर्ति तथा लिंग दोनों समान हैं, फिर भी मूर्तिकी अपेक्षा लिंगका स्थान श्रेष्ठ है। इसलिये मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि वे वेर (मूर्ति)-से भी श्रेष्ठ समझकर लिंगका ही पूजन करें। लिंगका ॐकारमन्त्रसे और वेरका पंचाक्षरमन्त्रसे पूजन करना चाहिये। शिवलिंगकी स्वयं ही स्थापना करके अथवा दूसरोंसे भी स्थापना करवाकर उत्तम द्रव्यमय उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये; इससे मेरा पद सुलभ हो जाता है। इस प्रकार उन दोनों शिष्योंको उपदेश देकर भगवान् शिव वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३६—३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें ओंकारोपदेशका वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

शिवलिंगकी स्थापना, उसके लक्षण और पूजनकी विधिका वर्णन तथा शिवपदकी प्राप्ति करानेवाले सत्कर्मोंका विवेचन

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] शिवलिंगकी स्थापना कैसे करनी चाहिये, उसका लक्षण क्या है तथा उसकी पूजा कैसे करनी चाहिये, किस देश-कालमें करनी चाहिये और किस द्रव्यके द्वारा उसका निर्माण होना चाहिये?॥ १॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] मैं आपलोगोंके लिये इस विषयका वर्णन करता हूँ। ध्यान देकर समझिये। अनुकूल एवं शुभ समयमें किसी पवित्र तीर्थमें अथवा नदी आदिके तटपर अपनी रुचिके अनुसार ऐसी जगह शिवलिंगकी स्थापना करनी चाहिये, जहाँ नित्य पूजन हो सके। पार्थिव द्रव्यसे, जलमय द्रव्यसे अथवा धातुमय पदार्थसे अपनी रुचिके अनुसार कल्पोक्त लक्षणोंसे युक्त शिवलिंगका निर्माण करके उसकी पूजा करनेसे उपासकको उस पूजनका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे युक्त शिवलिंग तत्काल पूजाका फल देनेवाला होता है॥ २—४॥

यदि चलप्रतिष्ठा करनी हो तो इसके लिये छोटा-सा शिवलिंग और यदि अचलप्रतिष्ठा करनी हो तो स्थूल शिवलिंग श्रेष्ठ माना जाता है। उत्तम लक्षणोंसे युक्त पीठसहित शिवलिंगकी स्थापना करनी चाहिये। शिवलिंगका पीठ मण्डलाकार (गोल), चौकोर, त्रिकोण अथवा खट्वांगके आकारका (ऊपर गोल तथा आगे लम्बा) होना चाहिये। ऐसा लिंगपीठ महान् फल देनेवाला होता है॥ ५-६॥

पहले मिट्टी, प्रस्तर आदिसे अथवा लोहे आदिसे शिवलिंगका निर्माण करना चाहिये। जिस द्रव्यसे शिवलिंगका निर्माण हो, उसीसे उसका पीठ भी बनाना चाहिये—यही स्थावर (अचल प्रतिष्ठावाले) शिवलिंगकी विशेष बात है। चर (चलप्रतिष्ठावाले) शिवलिंगमें भी लिंग और पीठका एक ही उपादान होना चाहिये, किंतु बाणलिंगके लिये यह नियम नहीं है। लिंगकी लम्बाई निर्माणकर्ताके बारह अंगुलके बराबर होनी चाहिये—ऐसा ही शिवलिंग उत्तम कहा गया है। इससे कम लम्बाई हो तो फलमें कमी आ जाती है, अधिक हो तो कोई दोष नहीं है। चर लिंगमें भी वैसा ही नियम है, उसकी लम्बाई कम-से-कम कर्ताके एक अंगुलके बराबर होनी चाहिये॥ ७—९॥

पहले शिल्पशास्त्रके अनुसार एक विमान या देवालय बनवाये, जो देवगणोंकी मूर्तियोंसे अलंकृत हो। उसका गर्भगृह बहुत ही सुन्दर, सुदृढ़ और दर्पणके समान स्वच्छ हो। उसे नौ प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया गया हो। उसमें पूर्व और पश्चिम दिशामें दो मुख्य द्वार हों। जहाँ शिवलिंगकी स्थापना करनी हो, उस स्थानके गर्तमें नीलम, लाल रत्न, वैदूर्य, श्याम रत्न, मरकत, मोती, मूँगा, गोमेद और हीरा—इन नौ रत्नोंको तथा अन्य महत्त्वपूर्ण द्रव्योंको वैदिक मन्त्रोंके साथ छोड़े। सद्योजात

आदि पाँच वैदिक मन्त्रोंद्वारा शिवलिंगका पाँच स्थानोंमें क्रमशः पूजन करके अग्निमें हविष्यकी अनेक आहुतियाँ दे और परिवारसहित मेरी पूजा करके गुरुस्वरूप आचार्यको धन तथा भाई-बन्धुओंको अभिलषित वस्तुओंसे सन्तुष्ट करे। याचकोंको जड़ (सुवर्ण, गृह एवं भू-सम्पत्ति) तथा चेतन (गौ आदि) वैभव प्रदान करे॥ १०—१४॥

स्थावर-जंगम सभी जीवोंको यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करके एक गड्ढेमें सुवर्ण तथा नौ प्रकारके रत्न भरकर सद्योजातादि* वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण करके परम कल्याणकारी महादेवजीका ध्यान करे। तत्पश्चात् नादघोषसे युक्त महामन्त्र ओंकारका उच्चारण करके उक्त गड्ढेमें शिवलिंगकी स्थापना करके उसे पीठसे संयुक्त करे। इस प्रकार पीठयुक्त लिंगकी स्थापना करके उसे नित्य लेप (दीर्घकालतक टिके रहनेवाले मसाले)-से जोड़कर स्थिर करे॥ १५—१७॥

इसी प्रकार वहाँ पंचाक्षर मन्त्रसे परम सुन्दर वेर (मूर्ति)-की भी स्थापना करनी चाहिये (सारांश यह कि भूमि-संस्कार आदिकी सारी विधि जैसी लिंगप्रतिष्ठाके लिये कही गयी है, वैसी ही वेर (मूर्ति)-प्रतिष्ठाके लिये भी समझनी चाहिये। अन्तर इतना ही है कि लिंगप्रतिष्ठाके लिये प्रणवमन्त्रके उच्चारणका विधान है, परंतु वेरकी प्रतिष्ठा पंचाक्षरमन्त्रसे करनी चाहिये)। जहाँ लिंगकी प्रतिष्ठा हुई है, वहाँ भी उत्सवके लिये और बाहर सवारी निकालने आदिके निमित्त वेर (मूर्ति)-को रखना आवश्यक है॥ १८॥

वेरको बाहरसे भी लिया जा सकता है। उसे गुरुजनोंसे ग्रहण करे। बाह्य वेर वही लेनेयोग्य है, जो साधुपुरुषोंद्वारा पूजित हो। इस प्रकार लिंगमें और वेरमें भी की हुई महादेवजीकी पूजा शिवपद प्रदान करनेवाली होती है। स्थावर और जंगमके भेदसे लिंग भी दो प्रकारका कहा गया है। वृक्ष, लता आदिको स्थावर लिंग कहते हैं और कृमि-कीट आदिको जंगम लिंग। सींचने आदिके द्वारा स्थावर लिंगकी सेवा करनी चाहिये और जंगम लिंगको आहार एवं जल आदि देकर तृप्त करना उचित है। उन स्थावर-जंगम जीवोंको सुख पहुँचानेमें अनुरक्त होना भगवान् शिवका पूजन है—ऐसा विद्वान् पुरुष मानते हैं। [इस प्रकार चराचर जीवोंको ही भगवान् शंकरके प्रतीक मानकर उनका पूजन करना चाहिये।] ॥ १९—२१ १/२ ॥

सभी पीठ पराप्रकृति जगदम्बाका स्वरूप हैं और समस्त शिवलिंग चैतन्यस्वरूप हैं। जैसे भगवान् शंकर देवी पार्वतीको गोदमें बिठाकर विराजते हैं, उसी प्रकार यह शिवलिंग सदा पीठके साथ ही विराजमान होता है॥ २२-२३॥

इस तरह महालिंगकी स्थापना करके विविध उपचारोंद्वारा उसका पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार नित्य पूजा करनी चाहिये तथा देवालयके पास ध्वजारोपण आदि करना चाहिये। इस प्रकार साक्षात् शिवका पद प्रदान करनेवाले लिंगकी स्थापना करे अथवा चर लिंगमें षोडशोपचारोंद्वारा यथोचित रीतिसे क्रमशः पूजन करे; यह पूजन भी शिवपद प्रदान करनेवाला है। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, पाद्यांग आचमन, अभ्यंगपूर्वक स्नान, वस्त्र, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल-समर्पण, नीराजन, नमस्कार और विसर्जन—ये सोलह उपचार हैं। अथवा अर्घ्यसे लेकर नैवेद्यतक विधिवत् पूजन करे। अभिषेक, नैवेद्य, नमस्कार और तर्पण—ये सब यथाशक्ति नित्य करे। इस तरह किया हुआ शिवका पूजन शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है॥ २४—२९॥

अथवा किसी मनुष्यके द्वारा स्थापित शिवलिंगमें, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगमें, देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगमें, अपने-आप प्रकट हुए स्वयम्भूलिंगमें तथा अपने द्वारा नूतन स्थापित हुए शिवलिंगमें भी उपचार-समर्पणपूर्वक जैसे-तैसे पूजन करनेसे या पूजनकी सामग्री

---

* ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः॥

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्॥

देनेसे भी मनुष्य ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह सारा फल प्राप्त कर लेता है। क्रमशः परिक्रमा और नमस्कार करनेसे भी शिवलिंग शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। यदि नियमपूर्वक शिवलिंगका दर्शनमात्र कर लिया जाय तो वह भी कल्याणप्रद होता है। मिट्टी, आटा, गायके गोबर, फूल, कनेरपुष्प, फल, गुड़, मक्खन, भस्म अथवा अन्नसे भी अपनी रुचिके अनुसार शिवलिंग बनाकर तदनुसार उसका पूजन करे॥ ३०—३३॥

कुछ लोग हाथके अँगूठे आदिपर भी पूजा करना चाहते हैं। लिंगका निर्माण कहीं भी करनेमें किसी प्रकारका निषेध नहीं है। भगवान् शिव सर्वत्र ही भक्तके प्रयत्नके अनुसार फल प्रदान कर देते हैं। अथवा श्रद्धापूर्वक शिवभक्तको शिवलिंगका दान या लिंगके मूल्यका दान करनेसे भी शिवलोककी प्राप्ति होती है॥ ३४-३५ $^{1}/_{2}$॥

अथवा प्रतिदिन दस हजार प्रणवमन्त्रका जप करे अथवा दोनों सन्ध्याओंके समय एक-एक हजार प्रणवका जप किया करे। यह क्रम भी शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला है—ऐसा जानना चाहिये। जपकालमें मकारान्त प्रणवका उच्चारण मनकी शुद्धि करनेवाला होता है। समाधिमें मानसिक जपका विधान है तथा अन्य सब समय उपांशु* जप ही करना चाहिये। नाद और बिन्दुसे युक्त ओंकारके उच्चारणको विद्वान् पुरुष समानप्रणव कहते हैं। यदि प्रतिदिन आदरपूर्वक दस हजार पंचाक्षर मन्त्रका जप किया जाय अथवा दोनों सन्ध्याओंके समय एक-एक हजारका ही जप किया जाय तो उसे शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला समझना चाहिये॥ ३६—३९॥

ब्राह्मणोंके लिये आदिमें प्रणवसे युक्त पंचाक्षरमन्त्र अच्छा बताया गया है। फलकी प्राप्तिके लिये दीक्षापूर्वक गुरुसे मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। कलशसे किया हुआ स्नान, मन्त्रकी दीक्षा, मातृकाओंका न्यास, सत्यसे पवित्र अन्तःकरणवाला ब्राह्मण तथा ज्ञानी गुरु—इन सबको उत्तम माना गया है॥ ४०-४१॥

द्विजोंके लिये **'नमः शिवाय'** के उच्चारणका विधान है। द्विजेतरोंके लिये अन्तमें नमः-पदके प्रयोगकी विधि है अर्थात् वे **'शिवाय नमः'** इस मन्त्रका उच्चारण करें। स्त्रियोंके लिये भी कहीं-कहीं विधिपूर्वक अन्तमें नमः जोड़कर उच्चारणका ही विधान है अर्थात् कोई-कोई ऋषि ब्राह्मणकी स्त्रियोंके लिये नमःपूर्वक शिवायके जपकी अनुमति देते हैं अर्थात् वे **'नमः शिवाय'** का जप करें। पंचाक्षर-मन्त्रका पाँच करोड़ जप करके मनुष्य भगवान् सदाशिवके समान हो जाता है। एक, दो, तीन अथवा चार करोड़का जप करनेसे क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा महेश्वरका पद प्राप्त होता है अथवा मन्त्रमें जितने अक्षर हैं, उनका पृथक्-पृथक् एक-एक लाख जप करे अथवा समस्त अक्षरोंका एक साथ ही जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करे। इस तरहके जपको शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला समझना चाहिये। यदि एक हजार दिनोंमें प्रतिदिन एक सहस्र जपके क्रमसे पंचाक्षर-मन्त्रका दस लाख जप पूरा कर लिया जाय और प्रतिदिन ब्राह्मण-भोजन कराया जाय तो उस मन्त्रसे अभीष्ट कार्यकी सिद्धि होती है॥ ४२—४५ $^{1}/_{2}$॥

ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रतिदिन प्रातःकाल एक हजार आठ बार गायत्रीका जप करे। ऐसा होनेपर गायत्री क्रमशः शिवका पद प्रदान करनेवाली होती है। वेदमन्त्रों और वैदिक सूक्तोंका भी नियमपूर्वक जप करना चाहिये॥ ४६-४७॥

एकाक्षर मन्त्र दस हजार, दशार्ण मन्त्र एक हजार, सौसे कम अक्षरवाले मन्त्र एक सौ और उससे अधिक अक्षरवाले मन्त्र यथाशक्ति एकसे अधिक बार जपने चाहिये॥ ४८॥

वेदोंके पारायणको भी शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला जानना चाहिये। अन्यान्य जो बहुत-से मन्त्र हैं, उनका भी जितने अक्षर हों, उतने लाख जप करना चाहिये॥ ४९॥

एकाक्षर मन्त्रोंको उसी प्रकार करोड़की संख्यामें जपना चाहिये। अधिक अक्षरवाले मन्त्र हजारकी संख्यामें भक्तिपूर्वक जपने चाहिये॥ ५०॥

इस प्रकार जो यथाशक्ति जप करता है, वह

* मन्त्राक्षरोंका इतने धीमे स्वरमें उच्चारण करे कि उसे दूसरा कोई सुन न सके, ऐसे जपको उपांशु कहते हैं।

क्रमशः शिवपद प्राप्त कर लेता है। अपनी रुचिके अनुसार किसी एक मन्त्रको अपनाकर मृत्युपर्यन्त प्रतिदिन उसका जप करना चाहिये अथवा 'ओम् (ॐ)' इस मन्त्रका प्रतिदिन एक सहस्र जप करना चाहिये। ऐसा करनेपर भगवान् शिवकी आज्ञासे सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि होती है॥ ५१ १/२ ॥

जो मनुष्य भगवान् शिवके लिये फुलवाड़ी या बगीचे आदि लगाता है तथा शिवके सेवाकार्यके लिये मन्दिरमें झाड़ने-बुहारने आदिकी व्यवस्था करता है, वह इस पुण्यकर्मको करके शिवपद प्राप्त कर लेता है। भगवान् शिवके जो [काशी आदि] क्षेत्र हैं, उनमें भक्तिपूर्वक नित्य निवास करे। वे जड, चेतन सभीको भोग और मोक्ष देनेवाले होते हैं। अतः विद्वान् पुरुषको भगवान् शिवके क्षेत्रमें मृत्युपर्यन्त निवास करना चाहिये॥ ५२—५४॥

मनुष्योंद्वारा स्थापित शिवलिंगसे चारों ओर सौ हाथतक पुण्यक्षेत्र कहा गया है तथा ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगके चारों ओर एक हजार हाथतक पुण्यक्षेत्र होता है। इसी प्रकार देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगके चारों ओर भी एक हजार हाथतक पुण्यक्षेत्र समझना चाहिये। स्वयम्भू लिंगके चारों ओर तो एक हजार धनुष (चार हजार हाथ)-तक पुण्यक्षेत्र होता है॥ ५५-५६॥

पुण्यक्षेत्रमें स्थित बावड़ी, कुआँ और पोखरे आदिको शिवगंगा समझना चाहिये—भगवान् शिवका ऐसा ही वचन है। वहाँ स्नान, दान और जप करके मनुष्य भगवान् शिवको प्राप्त कर लेता है। अतः मृत्युपर्यन्त शिवके क्षेत्रका आश्रय लेकर रहना चाहिये। जो शिवके क्षेत्रमें अपने किसी मृत-सम्बन्धीका दाह, दशाह, मासिक श्राद्ध, सपिण्डीकरण अथवा वार्षिक श्राद्ध करता है अथवा कभी भी शिवके क्षेत्रमें अपने पितरोंको पिण्ड देता है, वह तत्काल सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें शिवपद पाता है? अथवा शिवके क्षेत्रमें सात, पाँच, तीन या एक ही रात निवास कर ले। ऐसा करनेसे भी क्रमशः शिवपदकी प्राप्ति होती है॥ ५७—६० १/२ ॥

लोकमें अपने-अपने वर्णके अनुरूप सदाचारका पालन करनेसे भी मनुष्य शिवपदको प्राप्त कर लेता है। वर्णानुकूल आचरणसे तथा भक्तिभावसे वह अपने सत्कर्मका अतिशय फल पाता है, कामनापूर्वक किये हुए अपने कर्मके अभीष्ट फलको शीघ्र ही पा लेता है। निष्कामभावसे किया हुआ सारा कर्म साक्षात् शिवपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है॥ ६१—६२ १/२ ॥

दिनके तीन विभाग होते हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायाह्न। इन तीनोंमें क्रमशः एक-एक प्रकारके कर्मका सम्पादन किया जाता है। प्रातःकालको शास्त्रविहित नित्यकर्मके अनुष्ठानका समय जानना चाहिये। मध्याह्नकाल सकाम-कर्मके लिये उपयोगी है तथा सायंकाल शान्ति-कर्मके लिये उपयुक्त है—ऐसा जानना चाहिये। इसी प्रकार रात्रिमें भी समयका विभाजन किया गया है। रातके चार प्रहरोंमेंसे जो बीचके दो प्रहर हैं, उन्हें निशीथकाल कहा गया है। विशेषतः उस कालमें की हुई भगवान् शिवकी पूजा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है—ऐसा जानकर कर्म करनेवाला मनुष्य यथोक्त फलका भागी होता है। विशेषतः कलियुगमें कर्मसे ही फलकी सिद्धि होती है। अपने-अपने अधिकारके अनुसार ऊपर कहे गये किसी भी कर्मके द्वारा शिवाराधन करनेवाला पुरुष यदि सदाचारी है और पापसे डरता है तो वह उन-उन कर्मोंका पूरा-पूरा फल अवश्य प्राप्त कर लेता है॥ ६३—६७॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! अब आप हमें पुण्यक्षेत्र बताइये, जिनका आश्रय लेकर सभी स्त्री-पुरुष शिवपद प्राप्त कर लें। हे सूतजी! हे योगिवरोंमें श्रेष्ठ! शिवक्षेत्रों तथा शैवागमों (शिवविषयक शास्त्रों)-का भी वर्णन कीजिये॥ ६८ १/२ ॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सभी क्षेत्रों और आगमोंका वर्णन श्रद्धापूर्वक सुनिये॥ ६९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवलिंगकी पूजादिका वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

मोक्षदायक पुण्यक्षेत्रोंका वर्णन, कालविशेषमें विभिन्न नदियोंके जलमें स्नानके उत्तम फलका निर्देश तथा तीर्थोंमें पापसे बचे रहनेकी चेतावनी

सूतजी बोले—हे बुद्धिमान् महर्षियो! मोक्षदायक शिवक्षेत्रोंका वर्णन सुनिये। तत्पश्चात् मैं लोकरक्षाके लिये शिवसम्बन्धी आगमोंका वर्णन करूँगा। पर्वत, वन और काननोंसहित इस पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है। भगवान् शिवकी आज्ञासे पृथ्वी सम्पूर्ण जगत्को धारण करके स्थित है। भगवान् शिवने भूतलपर विभिन्न स्थानोंमें वहाँके निवासियोंको कृपापूर्वक मोक्ष देनेके लिये शिवक्षेत्रका निर्माण किया है॥ १—३॥

कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जिन्हें देवताओं तथा ऋषियोंने अपना वासस्थान बनाकर अनुगृहीत किया है। इसीलिये उनमें तीर्थत्व प्रकट हो गया है तथा अन्य बहुत-से तीर्थक्षेत्र ऐसे हैं, जो लोकोंकी रक्षाके लिये स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं। तीर्थ और क्षेत्रमें जानेपर मनुष्यको सदा स्नान, दान और जप आदि करना चाहिये; अन्यथा वह रोग, दरिद्रता तथा मूकता आदि दोषोंका भागी होता है। जो मनुष्य इस भारतवर्षके भीतर स्वयम्भू तीर्थोंमें वास करके मरता है, उसे पुनः मनुष्ययोनि ही प्राप्त होती है। हे ब्राह्मणो! पुण्यक्षेत्रमें पापकर्म किया जाय तो वह और भी दृढ़ हो जाता है। अतः पुण्यक्षेत्रमें निवास करते समय थोड़ा-सा भी पाप न करे। जिस किसी भी उपायसे मनुष्यको पुण्यक्षेत्रमें वास करना चाहिये॥ ४—७१/२॥

सिन्धु और गंगा नदीके तटपर बहुत-से पुण्यक्षेत्र हैं। सरस्वती नदी परम पवित्र और साठ मुखवाली कही गयी है अर्थात् उसकी साठ धाराएँ हैं। जो विद्वान् पुरुष सरस्वतीकी उन-उन धाराओंके तटपर निवास करता है, वह क्रमशः ब्रह्मपदको पा लेता है। हिमालय पर्वतसे निकली हुई पुण्यसलिला गंगा सौ मुखवाली नदी है, उसके तटपर काशी आदि अनेक पुण्यक्षेत्र हैं। वहाँ मकरराशिके सूर्य होनेपर गंगाकी तटभूमि पहलेसे भी अधिक प्रशस्त एवं पुण्यदायक हो जाती है। शोणभद्र नदकी दस धाराएँ हैं, वह बृहस्पतिके मकरराशिमें आनेपर अत्यन्त पवित्र तथा अभीष्ट फल देनेवाला हो जाता है। उस समय वहाँ स्नान और उपवास करनेसे विनायकपदकी प्राप्ति होती है। पुण्यसलिला महानदी नर्मदाके चौबीस मुख (स्रोत) हैं। उसमें स्नान तथा उसके तटपर निवास करनेसे मनुष्यको वैष्णवपदकी प्राप्ति होती है। तमसा नदीके बारह तथा रेवाके दस मुख हैं। परम पुण्यमयी गोदावरीके इक्कीस मुख बताये गये हैं। वह ब्रह्महत्या तथा गोवधके पापका भी नाश करनेवाली एवं रुद्रलोक देनेवाली है। कृष्णवेणी नदीका जल बड़ा पवित्र है। वह नदी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। उसके अठारह मुख बताये गये हैं तथा वह विष्णुलोक प्रदान करनेवाली है। तुंगभद्राके दस मुख हैं, वह ब्रह्मलोक देनेवाली है। पुण्यसलिला सुवर्णमुखरीके नौ मुख कहे गये हैं। ब्रह्मलोकसे लौटे हुए जीव उसीके तटपर जन्म लेते हैं। सरस्वती, पम्पा, कन्याकुमारी तथा शुभकारक श्वेत नदी—ये सभी पुण्यक्षेत्र हैं। इनके तटपर निवास करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। सह्य पर्वतसे निकली हुई महानदी कावेरी परम पुण्यमयी है। उसके सत्ताईस मुख बताये गये हैं। वह सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है। उसके तट स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले तथा ब्रह्मा और विष्णुका पद देनेवाले हैं। कावेरीके जो तट शैवक्षेत्रके अन्तर्गत हैं, वे अभीष्ट फल देनेके साथ ही शिवलोक प्रदान करनेवाले भी हैं॥ ८—१९१/२॥

नैमिषारण्य तथा बदरिकाश्रममें सूर्य और बृहस्पतिके मेषराशिमें आनेपर यदि स्नान करे तो उस समय वहाँ किये हुए स्नान-पूजन आदिको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला जानना चाहिये। सिंह और कर्कराशिमें सूर्यकी संक्रान्ति होनेपर सिन्धुनदीमें किया हुआ स्नान तथा केदारतीर्थके जलका पान एवं स्नान ज्ञानदायक माना गया है॥ २०—२११/२॥

जब बृहस्पति सिंहराशिमें स्थित हों, उस समय

सिंहकी संक्रान्तिसे युक्त भाद्रपदमासमें यदि गोदावरीके जलमें स्नान किया जाय, तो वह शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है—ऐसा पूर्वकालमें स्वयं भगवान् शिवने कहा था। जब सूर्य और बृहस्पति कन्याराशिमें स्थित हों, तब यमुना और शोणभद्रमें स्नान करे। वह स्नान धर्मराज तथा गणेशजीके लोकमें महान् भोग प्रदान करानेवाला होता है—यह महर्षियोंकी मान्यता है। जब सूर्य और बृहस्पति तुलाराशिमें स्थित हों, उस समय कावेरी नदीमें स्नान करे। वह स्नान भगवान् विष्णुके वचनकी महिमासे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला माना गया है। जब सूर्य और बृहस्पति वृश्चिक राशिपर आ जायँ, तब मार्गशीर्षके महीनेमें नर्मदामें स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। सूर्य और बृहस्पतिके धनुराशिमें स्थित होनेपर सुवर्णमुखरी नदीमें किया हुआ स्नान शिवलोक प्रदान करानेवाला होता है, यह ब्रह्माजीका वचन है। जब सूर्य और बृहस्पति मकरराशिमें स्थित हों, उस समय माघमासमें गंगाजीके जलमें स्नान करना चाहिये। ब्रह्माजीका कथन है कि वह स्नान शिवलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। शिवलोकके पश्चात् ब्रह्मा और विष्णुके स्थानोंमें सुख भोगकर अन्तमें मनुष्यको ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है॥ २२—२८॥

माघमासमें तथा सूर्यके कुम्भराशिमें स्थित होनेपर फाल्गुनमासमें गंगाजीके तटपर किया हुआ श्राद्ध, पिण्डदान अथवा तिलोदकदान पिता और नाना दोनों कुलोंके पितरोंकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार करनेवाला माना गया है। सूर्य और बृहस्पति जब मीनराशिमें स्थित हों, तब कृष्णवेणी नदीमें किये गये स्नानकी ऋषियोंने प्रशंसा की है। उन-उन महीनोंमें पूर्वोक्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला होता है। विद्वान् पुरुष गंगा अथवा कावेरी नदीका आश्रय लेकर तीर्थवास करे। ऐसा करनेसे उस समयमें किये हुए पापका निश्चय ही नाश हो जाता है॥ २९—३१$^{१}/_{२}$॥

रुद्रलोक प्रदान करनेवाले बहुत-से क्षेत्र हैं। ताम्रपर्णी और वेगवती—ये दोनों नदियाँ ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप फल देनेवाली हैं। उन दोनोंके तटपर अनेक स्वर्गदायक क्षेत्र हैं। उन दोनोंके मध्यमें बहुत-से पुण्यप्रद क्षेत्र हैं। वहाँ निवास करनेवाला विद्वान् पुरुष वैसे फलका भागी होता है। सदाचार, उत्तम वृत्ति तथा सद्भावनाके साथ मनमें दयाभाव रखते हुए विद्वान् पुरुषको तीर्थमें निवास करना चाहिये, अन्यथा उसका फल नहीं मिलता। पुण्यक्षेत्रमें किया हुआ थोड़ा-सा पुण्य भी अनेक प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होता है तथा वहाँ किया हुआ छोटा-सा पाप भी महान् हो जाता है। यदि पुण्यक्षेत्रमें रहकर ही जीवन बितानेका निश्चय हो, तो उस पुण्यसंकल्पसे उसका पहलेका सारा पाप तत्काल नष्ट हो जायगा; क्योंकि पुण्यको ऐश्वर्यदायक कहा गया है। हे ब्राह्मणो! तीर्थवासजनित पुण्य कायिक, वाचिक और मानसिक सारे पापोंका नाश कर देता है। तीर्थमें किया हुआ मानसिक पाप वज्रलेप हो जाता है। वह कई कल्पोंतक पीछा नहीं छोड़ता है॥ ३२—३८॥

वैसा पाप केवल ध्यानसे ही नष्ट होता है, अन्यथा नष्ट नहीं होता। वाचिक पाप जपसे तथा कायिक पाप शरीरको सुखाने-जैसे कठोर तपसे नष्ट होता है। धनोपार्जनमें हुए पाप दानसे नष्ट होते हैं अन्यथा करोड़ों कल्पोंमें भी उनका नाश नहीं होता। कभी-कभी अतिशय मात्रामें बढ़े पापोंसे पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं। पुण्य और पाप दोनोंका बीजांश, वृद्ध्यंश और भोगांश होता है। बीजांशका नाश ज्ञानसे, वृद्ध्यंशका ऊपर लिखे प्रकारसे तथा भोगांशका नाश भोगनेसे होता है। अन्य किसी प्रकारसे करोड़ों पुण्य करके भी पापके भोगांश नहीं मिट सकते। पाप-बीजके अंकुरित हो जानेपर उसका अंश नष्ट होनेपर भी शेष पाप भोगना ही पड़ता है। देवताओंकी पूजा, ब्राह्मणोंको दान तथा अधिक तप करनेसे समय पाकर पापभोग मनुष्योंके सहनेयोग्य हो जाते हैं। इसलिये सुख चाहनेवाले व्यक्तिको पापोंसे बचकर ही तीर्थवास करना चाहिये॥ ३९—४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें शिवक्षेत्रका वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

सदाचार, शौचाचार, स्नान, भस्मधारण, सन्ध्यावन्दन, प्रणव-जप, गायत्री-जप, दान, न्यायतः धनोपार्जन तथा अग्निहोत्र आदिकी विधि एवं उनकी महिमाका वर्णन

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] अब आप शीघ्र ही हमें वह सदाचार सुनाइये, जिससे विद्वान् पुरुष पुण्यलोकोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। स्वर्ग प्रदान करनेवाले धर्ममय आचारों तथा नरकका कष्ट देनेवाले अधर्ममय आचारोंका भी वर्णन कीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] सदाचारका पालन करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण ही वास्तवमें 'ब्राह्मण' नाम धारण करनेका अधिकारी है। जो केवल वेदोक्त आचारका पालन करनेवाला है, उस ब्राह्मणकी 'विप्र' संज्ञा होती है। सदाचार, वेदाचार तथा विद्या—इनमेंसे एक-एक गुणसे ही युक्त होनेपर उसे 'द्विज' कहते हैं। जिसमें स्वल्पमात्रामें ही आचारका पालन देखा जाता है, जिसने वेदाध्ययन भी बहुत कम किया है तथा जो राजाका सेवक (पुरोहित, मन्त्री आदि) है, उसे 'क्षत्रियब्राह्मण' कहते हैं। जो ब्राह्मण कृषि तथा वाणिज्य कर्म करनेवाला है और कुछ-कुछ ब्राह्मणोचित आचारका भी पालन करता है, वह 'वैश्यब्राह्मण' है तथा जो स्वयं ही खेत जोतता (हल चलाता) है, उसे 'शूद्रब्राह्मण' कहा गया है। जो दूसरोंके दोष देखनेवाला और परद्रोही है, उसे 'चाण्डालद्विज' कहते हैं॥ २—४॥

इसी तरह क्षत्रियोंमें भी जो पृथ्वीका पालन करता है, वह राजा है। दूसरे लोग राजत्वहीन क्षत्रिय माने गये हैं। वैश्योंमें भी जो धान्य आदि वस्तुओंका क्रय-विक्रय करता है, वह वैश्य है; दूसरोंको वणिक् कहते हैं। जो ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्योंकी सेवामें लगा रहता है, वह शूद्र कहलाता है। जो शूद्र हल जोतनेका काम करता है, उसे वृषल समझना चाहिये। शेष शूद्र दस्यु कहलाते हैं॥ ५-६॥

इन सभी वर्णोंके मनुष्योंको चाहिये कि वे उषःकालमें उठकर पूर्वाभिमुख हो सबसे पहले देवताओंका, फिर धर्मका, पुनः अर्थका, तदनन्तर उसकी प्राप्तिके लिये उठाये जानेवाले क्लेशोंका तथा आय और व्ययका भी चिन्तन करें॥ ७॥

प्रातःकाल उठकर [पूर्व, अग्निकोण, दक्षिण आदि] आठ दिशाओंकी ओर मुख करके बैठनेपर क्रमशः आयु, द्वेष, मरण, पाप, भाग्य, व्याधि, पुष्टि और शक्ति प्राप्त होती है॥ ८॥

रातके पिछले पहरको उषःकाल जानना चाहिये। उस अन्तिम पहरका जो आधा या मध्यभाग है, उसे सन्धि कहते हैं। उस सन्धिकालमें उठकर द्विजको मल-मूत्र आदिका त्याग करना चाहिये। घरसे दूर जाकर बाहरसे अपने शरीरको ढके रखकर दिनमें उत्तराभिमुख बैठकर मल-मूत्रका त्याग करे। यदि उत्तराभिमुख बैठनेमें कोई रुकावट हो तो दूसरी दिशाकी ओर मुख करके बैठे। जल, अग्नि, ब्राह्मण आदि तथा देवताओंका सामना बचाकर बैठे। बायें हाथसे उपस्थको ढँककर तथा दाहिने हाथसे मुखको ढककर मलत्याग करे और उठनेपर उस मलको न देखे। तदनन्तर जलाशयसे बाहर निकाले हुए जलसे ही गुदाकी शुद्धि करे; अथवा देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंके तीर्थोंमें उतरे बिना ही प्राप्त हुए जलसे शुद्धि करनी चाहिये। गुदामें सात, पाँच या तीन बार मिट्टीसे उसे धोकर शुद्ध करे। लिंगमें ककोड़ेके फलके बराबर मिट्टी लेकर लगाये और उसे धो दे। परंतु गुदामें लगानेके लिये एक पसर मिट्टीकी आवश्यकता होती है। लिंग और गुदाकी शुद्धिके पश्चात् उठकर अन्यत्र जाय और हाथ-पैरोंकी शुद्धि करके आठ बार कुल्ला करे॥ ९—१४॥

जिस किसी वृक्षके पत्तेसे अथवा उसके पतले काष्ठसे जलके बाहर दातुन करना चाहये। उस समय तर्जनी अँगुलीका उपयोग न करे। यह दन्तशुद्धिका विधान बताया गया है। तदनन्तर जल-सम्बन्धी देवताओंको नमस्कार करके मन्त्रपाठ करते हुए स्नान करे। यदि

कण्ठतक या कमरतक पानीमें खड़े होनेकी शक्ति न हो तो घुटनेतक जलमें खड़ा होकर अपने ऊपर जल छिड़ककर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नानकार्य सम्पन्न करे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वहाँ तीर्थजलसे देवता आदिका स्नानांग तर्पण भी करे॥ १५—१७॥

इसके बाद धौतवस्त्र लेकर पाँच कच्छ करके उसे धारण करे। साथ ही कोई उत्तरीय भी धारण कर ले; क्योंकि सन्ध्या-वन्दन आदि सभी कर्मोंमें उसकी आवश्यकता होती है। नदी आदि तीर्थोंमें स्नान करनेपर स्नान-सम्बन्धी उतारे हुए वस्त्रको वहाँ न धोये। स्नानके पश्चात् विद्वान् पुरुष उस वस्त्रको बावड़ीमें, कुएँके पास अथवा घर आदिमें ले जाय और वहाँ पत्थरपर, लकड़ी आदिपर, जलमें या स्थलमें अच्छी तरह धोकर उस वस्त्रको निचोड़े। हे द्विजो! वस्त्रको निचोड़नेसे जो जल गिरता है, वह पितरोंकी तृप्तिके लिये होता है॥ १८—२०॥

इसके बाद जाबालि-उपनिषद्‌में बताये गये [**अग्निरिति**] मन्त्रसे भस्म लेकर उसके द्वारा त्रिपुण्ड्र लगाये।* इस विधिका पालन न किया जाय, इसके पूर्व ही यदि जलमें भस्म गिर जाय तो कर्ता नरकमें जाता है। '**आपो हि ष्ठा**' इस मन्त्रसे पाप-शान्तिके लिये सिरपर जल छिड़के तथा '**यस्य क्षयाय**'—इस मन्त्रको पढ़कर पैरपर जल छिड़के; इसे सन्धिप्रोक्षण कहते हैं। '**आपो हि ष्ठा**' इत्यादि मन्त्रमें तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचामें गायत्री छन्दके तीन-तीन चरण हैं। इनमेंसे प्रथम ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः पैर, मस्तक और हृदयमें जल छिड़के; दूसरी ऋचाके तीन चरणोंको पढ़कर क्रमशः मस्तक, हृदय और पैरमें जल छिड़के तथा तीसरी ऋचाके तीन चरणोंका पाठ करते हुए क्रमशः हृदय, पैर और मस्तकका जलसे प्रोक्षण करे—इसे विद्वान् पुरुष मन्त्रस्नान मानते हैं॥ २१—२३॥

किसी अपवित्र वस्तुसे किंचित् स्पर्श हो जानेपर, अपना स्वास्थ्य ठीक न रहनेपर, राजभय या राष्ट्रभय उपस्थित होनेपर तथा यात्राकालमें जलकी उपलब्धि न होनेकी विवशता आ जानेपर मन्त्रस्नान करना चाहिये। प्रातःकाल [**सूर्यश्च मा मन्युश्च**—इस] सूर्यानुवाकसे तथा सायंकाल [**अग्निश्च मा मन्युश्च**—इस] अग्नि-सम्बन्धी अनुवाकसे जलका आचमन करके पुनः जलसे अपने अंगोंका प्रोक्षण करे। मध्याह्नकालमें भी [**आपः पुनन्तु**—इस] मन्त्रसे आचमन करके पूर्ववत् प्रोक्षण करना चाहिये॥ २४-२५॥

प्रातःकालकी सन्ध्योपासनामें गायत्रीमन्त्रका जप करके तीन बार ऊपरकी ओर सूर्यदेवको अर्घ्य देना चाहिये। हे ब्राह्मणो! मध्याह्नकालमें गायत्री-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक सूर्यको एक ही अर्घ्य देना चाहिये। फिर सायंकाल आनेपर पश्चिमकी ओर मुख करके बैठ जाय और पृथ्वीपर ही सूर्यके लिये अर्घ्य दे [ऊपरकी ओर नहीं]। प्रातःकाल और मध्याह्नकालके समय अंजलिमें अर्घ्यजल लेकर अँगुलियोंकी ओरसे सूर्यदेवके लिये अर्घ्य दे। अँगुलियोंके छिद्रसे ढलते हुए सूर्यको देखे तथा उनके लिये आत्म-प्रदक्षिणा करके शुद्ध आचमन करे॥ २६—२८॥

सायंकालमें सूर्यास्तसे दो घड़ी पहले की हुई सन्ध्या निष्फल होती है; क्योंकि वह सायं सन्ध्याका समय नहीं है। ठीक समयपर सन्ध्या करनी चाहिये—ऐसी शास्त्रकी आज्ञा है। यदि सन्ध्योपासना किये बिना

---

* जाबालि-उपनिषद्‌में भस्मधारणकी विधि इस प्रकार कही गयी है—

'ॐ अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म व्योमेति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करे।

'मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे'॥ इस मन्त्रसे उठाकर जलसे मले, तत्पश्चात्—

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

इत्यादि मन्त्रसे मस्तक, ललाट, वक्षःस्थल और कन्धोंपर त्रिपुण्ड्र करे।

'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्॥'

तथा—

'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥'

—इन दोनों मन्त्रोंको तीन-तीन बार पढ़ते हुए तीन रेखाएँ खींचे।

दिन बीत जाय तो प्रत्येक समयके लिये क्रमशः प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि एक दिन बीते तो प्रत्येक बीते हुए सन्ध्याकालके लिये नित्य-नियमके अतिरिक्त सौ गायत्री-मन्त्रका अधिक जप करे। यदि नित्यकर्मके लुप्त हुए दस दिनसे अधिक बीत जाय तो उसके प्रायश्चित्तरूपमें एक लाख गायत्रीका जप करना चाहिये। यदि एक मासतक नित्यकर्म छूट जाय तो पुनः अपना उपनयनसंस्कार कराये॥ २९-३०१/२॥

अर्थसिद्धिके लिये ईश, गौरी, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा और यमका तथा ऐसे ही अन्य देवताओंका भी शुद्ध जलसे तर्पण करे। तत्पश्चात् तर्पण कर्मको ब्रह्मार्पण करके शुद्ध आचमन करे। तीर्थके दक्षिण भागमें, प्रशस्त मठमें, मन्त्रालयमें, देवालयमें, घरमें अथवा अन्य किसी नियत स्थानमें आसनपर स्थिरतापूर्वक बैठकर विद्वान् पुरुष अपनी बुद्धिको स्थिर करे और सम्पूर्ण देवताओंको नमस्कार करके पहले प्रणवका जप करनेके पश्चात् गायत्री-मन्त्रकी आवृत्ति करे॥ ३१—३४॥

प्रणवके अ, उ, म् इन तीनों अक्षरोंसे जीव और ब्रह्मकी एकताका प्रतिपादन होता है—इस बातको जानकर प्रणवका जप करना चाहिये। जपकालमें यह भावना करनी चाहिये कि हम तीनों लोकोंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, पालन करनेवाले विष्णु तथा संहार करनेवाले रुद्रकी—जो स्वयंप्रकाश चिन्मय हैं, उपासना करते हैं। यह ब्रह्मस्वरूप ओंकार हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी वृत्तियोंको, मनकी वृत्तियोंको तथा बुद्धिवृत्तियोंको सदा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले धर्म एवं ज्ञानकी ओर प्रेरित करे। बुद्धिके द्वारा प्रणवके इस अर्थका चिन्तन करता हुआ जो इसका जप करता है, वह निश्चय ही ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है। अथवा अर्थानुसन्धानके बिना भी प्रणवका नित्य जप करना चाहिये, इससे ब्राह्मणत्वकी पूर्ति होती है। ब्राह्मणत्वकी पूर्तिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणको प्रतिदिन प्रातःकाल एक सहस्र गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये। मध्याह्नकालमें सौ बार और सायंकालमें अट्ठाईस बार जपकी विधि है। अन्य वर्णके लोगोंको अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यको तीनों सन्ध्याओंके समय यथासाध्य गायत्री-जप करना चाहिये॥ ३५—३९॥

[शरीरके भीतर मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, आज्ञा और सहस्रार—ये छः चक्र हैं।] इनमें मूलाधारसे लेकर सहस्रारतक छहों स्थानोंमें क्रमशः विद्येश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, जीवात्मा और परमेश्वर स्थित हैं। इन सबमें ब्रह्मबुद्धि करके इनकी एकताका निश्चय करे और वह ब्रह्म मैं हूँ—ऐसी भावनासे युक्त होकर जप करे। उन्हीं विद्येश्वर आदिकी ब्रह्मरन्ध्र आदिमें तथा इस शरीरसे बाहर भी भावना करे। महत्तत्त्वसे लेकर पंचभूतपर्यन्त तत्त्वोंसे बना हुआ जो शरीर है, ऐसे सहस्रों शरीरोंका एक-एक अजपा गायत्रीके जपसे एक-एकके क्रमसे अतिक्रमण करके जीवको धीरे-धीरे परमात्मासे संयुक्त करे—यह जपका तत्त्व बताया गया है। सौ अथवा अट्ठाईस मन्त्रोंके जपसे उतने ही शरीरोंका अतिक्रमण होता है। इस प्रकार जो मन्त्रोंका जप है, इसीको आदिक्रमसे वास्तविक जप जानना चाहिये॥ ४०—४३१/२॥

एक हजार बार किया हुआ जप ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला होता है—ऐसा जानना चाहिये। सौ बार किया हुआ जप इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाला माना गया है। ब्राह्मणेतर पुरुष आत्मरक्षाके लिये जो स्वल्पमात्रामें जप करता है, वह ब्राह्मणके कुलमें जन्म लेता है। इस प्रकार प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उपर्युक्तरूपसे जपका अनुष्ठान करना चाहिये॥ ४४-४५॥

बारह लाख गायत्रीका जप करनेवाला पुरुष पूर्णरूपसे ब्राह्मण कहा गया है। जिस ब्राह्मणने एक लाख गायत्रीका भी जप न किया हो, उसे वैदिक कार्यमें न लगाये। सत्तर वर्षकी अवस्थातक नियमपालनपूर्वक कार्य करे। इसके बाद गृह त्यागकर संन्यास ले ले। परिव्राजक या संन्यासी पुरुष नित्य प्रातःकाल बारह हजार प्रणवका जप करे। यदि एक दिन नियमका उल्लंघन हो जाय, तो दूसरे दिन उसके बदलेमें उतना मन्त्र और अधिक जपना चाहिये; इस प्रकार जपको चलानेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि क्रमशः एक मास उल्लंघनका व्यतीत हो गया हो तो डेढ़ लाख जप करके उसका प्रायश्चित्त करना चाहिये। इससे अधिक समयतक

नियमका उल्लंघन हो जाय तो पुनः नये सिरेसे गुरुसे नियम ग्रहण करे। ऐसा करनेसे दोषोंकी शान्ति होती है, अन्यथा रौरव नरकमें जाना पड़ता है॥ ४६—४९॥

जो सकाम भावनासे युक्त गृहस्थ ब्राह्मण है, उसीको धर्म तथा अर्थके लिये यत्न करना चाहिये। मुमुक्षु ब्राह्मणको तो सदा ज्ञानका ही अभ्यास करना चाहिये। धर्मसे अर्थकी प्राप्ति होती है, अर्थसे भोग सुलभ होता है और उस भोगसे वैराग्यकी प्राप्ति होती है। धर्मपूर्वक उपार्जित धनसे जो भोग प्राप्त होता है, उससे एक दिन अवश्य वैराग्यका उदय होता है। धर्मके विपरीत अधर्मसे उपार्जित धनके द्वारा जो भोग प्राप्त होता है, उससे भोगोंके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है॥ ५०-५१½॥

धर्म दो प्रकारका कहा गया है—द्रव्यके द्वारा सम्पादित होनेवाला और शरीरसे किया जानेवाला। द्रव्यधर्म यज्ञ आदिके रूपमें और शरीरधर्म तीर्थ-स्नान आदिके रूपमें पाये जाते हैं। मनुष्य धर्मसे धन पाता है, तपस्यासे उसे दिव्य रूपकी प्राप्ति होती है। कामनाओंका त्याग करनेवाले पुरुषके अन्तःकरणकी शुद्धि होती है; उस शुद्धिसे ज्ञानका उदय होता है; इसमें संशय नहीं है॥ ५२-५३½॥

सत्ययुग आदिमें तपको ही प्रशस्त कहा गया है, किंतु कलियुगमें द्रव्यसाध्य धर्म अच्छा माना गया है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें तपस्यासे और द्वापरमें यज्ञ करनेसे ज्ञानकी सिद्धि होती है, परंतु कलियुगमें प्रतिमा (भगवद्विग्रह)-की पूजासे ज्ञानलाभ होता है॥ ५४-५५॥

जिसका जैसा पुण्य या पाप होता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। द्रव्य, देह अथवा अंगमें न्यूनता, वृद्धि अथवा क्षय आदिके रूपमें वह फल प्रकट होता है॥ ५६॥

अधर्म हिंसा (दुःख)-रूप है और धर्म सुखरूप है। मनुष्य अधर्मसे दुःख पाता है और धर्मसे सुख एवं अभ्युदयका भागी होता है। दुराचारसे दुःख प्राप्त होता है और सदाचारसे सुख। अतः भोग और मोक्षकी सिद्धिके लिये धर्मका उपार्जन करना चाहिये॥ ५७-५८॥

जिसके घरमें कम-से-कम चार मनुष्य हैं, ऐसे कुटुम्बी ब्राह्मणको जो सौ वर्षके लिये जीविका (जीवन-निर्वाहकी सामग्री) देता है, उसके लिये वह दान ब्रह्मलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है। एक हजार चान्द्रायण व्रतका अनुष्ठान ब्रह्मलोकदायक माना गया है। जो क्षत्रिय एक हजार कुटुम्बोंको जीविका और आवास देता है, उसका वह कर्म इन्द्रलोककी प्राप्ति करानेवाला होता है और दस हजार कुटुम्बोंको दिया हुआ आश्रयदान ब्रह्मलोक प्रदान करता है। दाता पुरुष जिस देवताके उद्देश्यसे दान करता है अर्थात् वह दानके द्वारा जिस देवताको प्रसन्न करना चाहता है, उसीका लोक उसे प्राप्त होता है—ऐसा वेदवेत्ता पुरुष कहते हैं। धनहीन पुरुष सदा तपस्याका उपार्जन करे; क्योंकि तपस्या और तीर्थसेवनसे अक्षय सुख पाकर मनुष्य उसका उपभोग करता है॥ ५९—६२½॥

अब मैं न्यायतः धनके उपार्जनकी विधि बता रहा हूँ। ब्राह्मणको चाहिये कि वह सदा सावधान रहकर विशुद्ध प्रतिग्रह (दानग्रहण) तथा याजन (यज्ञ कराने) आदिसे धनका अर्जन करे। वह इसके लिये कहीं दीनता न दिखाये और न अत्यन्त क्लेशदायक कर्म ही करे। क्षत्रिय बाहुबलसे धनका उपार्जन करे और वैश्य कृषि एवं गोरक्षासे। न्यायोपार्जित धनका दान करनेसे दाताको ज्ञानकी सिद्धि होती है। ज्ञानसिद्धिद्वारा सब पुरुषोंको गुरुकृपासे मोक्षसिद्धि सुलभ होती है। मोक्षसे स्वरूपकी सिद्धि (ब्रह्मरूपसे स्थिति) प्राप्त होती है, जिससे [मुक्त पुरुष] परमानन्दका अनुभव करता है। हे द्विजो! मनुष्योंको यह सब सत्संगसे प्राप्त है॥ ६३—६६½॥

गृहस्थाश्रमीको धन-धान्य आदि सभी वस्तुओंका दान करना चाहिये। अपना हित चाहनेवाले गृहस्थको जिस कालमें जो फल अथवा धान्यादि वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये॥ ६७-६८॥

वह तृषा-निवृत्तिके लिये जल तथा क्षुधारूपी रोगकी शान्तिके लिये सदा अन्नका दान करे। खेत, धान्य, कच्चा अन्न तथा भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—ये चार प्रकारके सिद्ध अन्न दान करने चाहिये। जिसके अन्नको खाकर मनुष्य जबतक कथा-श्रवण आदि सद्धर्मका पालन करता है, उतने समयतक उसके

किये हुए पुण्यफलका आधा भाग दाताको मिल जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ६९-७० ॥

दान लेनेवाला पुरुष दानमें प्राप्त हुई वस्तुका दान तथा तपस्या करके अपने प्रतिग्रहजनित पापकी शुद्धि करे; अन्यथा उसे रौरव नरकमें गिरना पड़ता है। अपने धनके तीन भाग करे—एक भाग धर्मके लिये, दूसरा भाग वृद्धिके लिये तथा तीसरा भाग अपने उपभोगके लिये। नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये तीनों प्रकारके कर्म धर्मार्थ रखे हुए धनसे करे। साधकको चाहिये कि वह वृद्धिके लिये रखे हुए धनसे ऐसा व्यापार करे, जिससे उस धनकी वृद्धि हो तथा उपभोगके लिये रक्षित धनसे हितकारक, परिमित एवं पवित्र भोग भोगे ॥ ७१—७३ ॥

खेतीसे पैदा किये हुए धनका दसवाँ अंश दान कर दे। इससे पापकी शुद्धि होती है। शेष धनसे धर्म, वृद्धि एवं उपभोग करे, अन्यथा वह रौरव नरकमें पड़ता है अथवा उसकी बुद्धि पापसे परिपूर्ण हो जाती है या खेती ही चौपट हो जाती है। वृद्धिके लिये किये गये व्यापारमें प्राप्त हुए धनका छठा भाग दान कर दे ॥ ७४-७५ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दानमें प्राप्त हुए शुद्ध पदार्थोंका चतुर्थांश दान कर देना चाहिये। उन्हें अकस्मात् प्राप्त हुए धनका तो आधा भाग दान कर ही देना चाहिये। असत्-प्रतिग्रह (दूषित दान)-में प्राप्त सम्पूर्ण पदार्थोंको समुद्रमें फेंक देना चाहिये। अपने भोगकी समृद्धिके लिये ब्राह्मणोंको बुलाकर दान करना चाहिये। किसीके द्वारा याचना करनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सदैव ही सब कुछ देना चाहिये। यदि माँगे जानेपर [शक्ति रहते हुए] वह पदार्थ न दिया जाय तो दूसरे जन्ममें वह ऋण चुकाना पड़ता है ॥ ७६—७८ ॥

विद्वान्‌को चाहिये कि वह दूसरोंके दोषोंका वर्णन न करे। हे ब्रह्मन्! द्वेषवश दूसरोंके सुने या देखे हुए छिद्रको भी प्रकट न करे। विद्वान् पुरुष ऐसी बात न कहे, जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें रोष पैदा करनेवाली हो ॥ ७९ $^{१}/_{२}$ ॥

ऐश्वर्यकी सिद्धिके लिये दोनों सन्ध्याओंके समय अग्निहोत्र करे, यदि असमर्थ हो तो वह एक ही समय सूर्य और अग्निको विधिपूर्वक दी हुई आहुतिसे सन्तुष्ट करे। चावल, धान्य, घी, फल, कन्द तथा हविष्य—इनके द्वारा विधिपूर्वक स्थालीपाक बनाये तथा यथोचित रीतिसे सूर्य और अग्निको अर्पित करे। यदि हविष्यका अभाव हो तो प्रधान होममात्र करे। सदा सुरक्षित रहनेवाली अग्निको विद्वान् पुरुष अजस्रकी संज्ञा देते हैं। यदि असमर्थ हो तो सन्ध्याकालमें जपमात्र या सूर्यकी वन्दनामात्र कर ले ॥ ८०—८३ ॥

आत्मज्ञानकी इच्छावाले तथा धनार्थी पुरुषोंको भी इस प्रकार विधिवत् उपासना करनी चाहिये। जो सदा ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहते हैं, देवताओंकी पूजामें लगे रहते हैं, नित्य अग्निपूजा एवं गुरुपूजामें अनुरक्त होते हैं तथा ब्राह्मणोंको तृप्त किया करते हैं, वे सब लोग स्वर्गके भागी होते हैं ॥ ८४-८५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें सदाचारवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

अग्नियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ आदिका वर्णन, भगवान् शिवके द्वारा सातों वारोंका निर्माण तथा उनमें देवाराधनसे विभिन्न प्रकारके फलोंकी प्राप्तिका कथन

ऋषिगण बोले—हे प्रभो! अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजा तथा ब्रह्मतृप्तिका क्रमशः हमारे समक्ष वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! गृहस्थ पुरुष अग्निमें सायंकाल और प्रातःकाल जो चावल आदि द्रव्यकी आहुति देता है, उसीको अग्नियज्ञ कहते हैं। जो ब्रह्मचर्य आश्रममें स्थित हैं, उन ब्रह्मचारियोंके लिये समिधाका आधान ही अग्नियज्ञ है। वे समिधाका ही अग्निमें हवन करें। हे ब्राह्मणो! ब्रह्मचर्य आश्रममें निवास करनेवाले द्विजोंका जबतक विवाह न हो जाय और वे औपासनाग्निकी प्रतिष्ठा न कर लें,

तबतक उनके लिये अग्निमें समिधाकी आहुति, व्रत आदिका पालन तथा विशेष यजन आदि ही कर्तव्य है (यही उनके लिये अग्नियज्ञ है)। हे द्विजो! जिन्होंने बाह्य अग्निको विसर्जित करके अपनी आत्मामें ही अग्निका आरोप कर लिया है, ऐसे वानप्रस्थियों और संन्यासियोंके लिये यही हवन या अग्नियज्ञ है कि वे विहित समयपर हितकर, परिमित और पवित्र अन्नका भोजन कर लें॥ २—४॥

औपासनाग्निको ग्रहण करके जब कुण्ड अथवा भाण्डमें सुरक्षित कर लिया जाय, तब उसे अजस्र कहा जाता है। राजविप्लव या दुर्दैवसे अग्नित्यागका भय उपस्थित हो जानेपर जब अग्निको स्वयं आत्मामें अथवा अरणीमें स्थापित कर लिया जाता है, तब उसे समारोपित कहते हैं॥ ५-६॥

हे ब्राह्मणो! सायंकाल अग्निके लिये दी हुई आहुति सम्पत्ति प्रदान करनेवाली होती है, ऐसा जानना चाहिये और प्रातःकाल सूर्यदेवको दी हुई आहुति आयुकी वृद्धि करनेवाली होती है, यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये। दिनमें अग्निदेव सूर्यमें ही प्रविष्ट हो जाते हैं। अतः प्रातःकाल सूर्यको दी हुई आहुति भी अग्नियज्ञ ही है॥ ७॥

इन्द्र आदि समस्त देवताओंके उद्देश्यसे अग्निमें जो आहुति दी जाती है, उसे देवयज्ञ समझना चाहिये। स्थालीपाक आदि यज्ञोंको देवयज्ञ ही मानना चाहिये। लौकिक अग्निमें प्रतिष्ठित जो चूडाकरण आदि संस्कार-निमित्तक हवन-कर्म हैं, उन्हें भी देवयज्ञके ही अन्तर्गत जानना चाहिये। [अब ब्रह्मयज्ञका वर्णन सुनिये।] द्विजको चाहिये कि वह देवताओंकी तृप्तिके लिये निरन्तर ब्रह्मयज्ञ करे। वेदोंका जो नित्य अध्ययन होता है, उसीको ब्रह्मयज्ञ कहा गया है। प्रातः नित्यकर्मके अनन्तर सायंकालतक ब्रह्मयज्ञ किया जा सकता है। उसके बाद रातमें इसका विधान नहीं है॥ ८—१०१/२॥

अग्निके बिना देवयज्ञ कैसे सम्पन्न होता है, इसे आपलोग श्रद्धासे और आदरपूर्वक सुनिये। सृष्टिके आरम्भमें सर्वज्ञ, दयालु और सर्वसमर्थ महादेवजीने समस्त लोकोंके उपकारके लिये वारोंकी कल्पना की। वे भगवान् शिव संसाररूपी रोगको दूर करनेके लिये वैद्य हैं। सबके ज्ञाता तथा समस्त औषधोंके भी औषध हैं। उन भगवान्ने पहले अपने वारकी कल्पना की, जो आरोग्य प्रदान करनेवाला है। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी मायाशक्तिका वार बनाया, जो सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। जन्मकालमें दुर्गतिग्रस्त बालककी रक्षाके लिये उन्होंने कुमारके वारकी कल्पना की। तत्पश्चात् सर्वसमर्थ महादेवजीने आलस्य और पापकी निवृत्ति तथा समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे लोकरक्षक भगवान् विष्णुका वार बनाया। इसके बाद सबके स्वामी भगवान् शिवने पुष्टि और रक्षाके लिये आयुःकर्ता तथा त्रिलोकस्रष्टा परमेष्ठी ब्रह्माका आयुष्कारक वार बनाया, जिससे सम्पूर्ण जगत्के आयुष्यकी सिद्धि हो सके। इसके बाद तीनों लोकोंकी वृद्धिके लिये पहले पुण्य-पापकी रचना की; तत्पश्चात् उनके करनेवाले लोगोंको शुभाशुभ फल देनेके लिये भगवान् शिवने इन्द्र और यमके वारोंका निर्माण किया। ये दोनों वार क्रमशः भोग देनेवाले तथा लोगोंके मृत्युभयको दूर करनेवाले हैं॥ ११—१८१/२॥

इसके बाद सूर्य आदि सात ग्रहोंको, जो अपने ही स्वरूपभूत तथा प्राणियोंके लिये सुख-दुःखके सूचक हैं; भगवान् शिवने उपर्युक्त सात वारोंका स्वामी निश्चित किया। वे सब-के-सब ग्रह नक्षत्रोंके ज्योतिर्मय मण्डलमें प्रतिष्ठित हैं। [शिवके वार या दिनके स्वामी सूर्य हैं। शक्तिसम्बन्धी वारके स्वामी सोम हैं। कुमारसम्बन्धी दिनके अधिपति मंगल हैं। विष्णुवारके स्वामी बुध हैं। ब्रह्माजीके वारके अधिपति बृहस्पति हैं। इन्द्रवारके स्वामी शुक्र और यमवारके स्वामी शनैश्चर हैं।] अपने-अपने वारमें की हुई उन देवताओंकी पूजा उनके अपने-अपने फलको देनेवाली होती है॥ १९-२०॥

सूर्य आरोग्यके और चन्द्रमा सम्पत्तिके दाता हैं। मंगल व्याधियोंका निवारण करते हैं, बुध पुष्टि देते हैं, बृहस्पति आयुकी वृद्धि करते हैं, शुक्र भोग देते हैं और शनैश्चर मृत्युका निवारण करते हैं। ये सात वारोंके क्रमशः फल बताये गये हैं, जो उन-उन देवताओंकी प्रीतिसे प्राप्त होते हैं। अन्य देवताओंकी भी पूजाका फल

देनेवाले भगवान् शिव ही हैं। देवताओंकी प्रसन्नताके लिये पूजाकी पाँच प्रकारकी ही पद्धति बनायी गयी। उन-उन देवताओंके मन्त्रोंका जप यह पहला प्रकार है। उनके लिये होम करना दूसरा, दान करना तीसरा तथा तप करना चौथा प्रकार है। किसी वेदीपर, प्रतिमामें, अग्निमें अथवा ब्राह्मणके शरीरमें आराध्य देवताकी भावना करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा या आराधना करना पाँचवाँ प्रकार है॥ २१—२४॥

इनमें पूजाके उत्तरोत्तर आधार श्रेष्ठ हैं। पूर्व-पूर्वके अभावमें उत्तरोत्तर आधारका अवलम्बन करना चाहिये। दोनों नेत्रों तथा मस्तकके रोग और कुष्ठ रोगकी शान्तिके लिये भगवान् सूर्यकी पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराये। तदनन्तर एक दिन, एक मास, एक वर्ष अथवा तीन वर्षतक लगातार ऐसा साधन करना चाहिये। इससे यदि प्रबल प्रारब्धका निर्माण हो जाय तो रोग एवं जरा आदिका नाश हो जाता है। इष्टदेवके नाममन्त्रोंका जप आदि साधन वार आदिके अनुसार फल देते हैं॥ २५—२७॥

रविवारको सूर्यदेवके लिये, अन्य देवताओंके लिये तथा ब्राह्मणोंके लिये विशिष्ट वस्तु अर्पित करे। यह साधन विशिष्ट फल देनेवाला होता है तथा इसके द्वारा विशेषरूपसे पापोंकी शान्ति होती है॥ २८॥

विद्वान् पुरुष सोमवारको सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये लक्ष्मी आदिकी पूजा करे तथा सपत्नीक ब्राह्मणोंको घृतपक्व अन्नका भोजन कराये। मंगलवारको रोगोंकी शान्तिके लिये काली आदिकी पूजा करे तथा उड़द, मूँग एवं अरहरकी दाल आदिसे युक्त अन्न ब्राह्मणोंको भोजन कराये॥ २९-३०॥

विद्वान् पुरुष बुधवारको दधियुक्त अन्नसे भगवान् विष्णुका पूजन करे—ऐसा करनेसे सदा पुत्र, मित्र और स्त्री आदिकी पुष्टि होती है। जो दीर्घायु होनेकी इच्छा रखता हो, वह गुरुवारको देवताओंकी पुष्टिके लिये वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा घृतमिश्रित खीरसे यजन-पूजन करे॥ ३१-३२॥

भोगोंकी प्राप्तिके लिये शुक्रवारको एकाग्रचित्त होकर देवताओंका पूजन करे और ब्राह्मणोंकी तृप्तिके लिये षड्रसयुक्त अन्नका दान करे। इसी प्रकार स्त्रियोंकी प्रसन्नताके लिये सुन्दर वस्त्र आदिका दान करे। शनैश्चर अपमृत्युका निवारण करनेवाला है, उस दिन बुद्धिमान् पुरुष रुद्र आदिकी पूजा करे। तिलके होमसे, दानसे देवताओंको सन्तुष्ट करके ब्राह्मणोंको तिलमिश्रित अन्न भोजन कराये। जो इस तरह देवताओंकी पूजा करेगा, वह आरोग्य आदि फलका भागी होगा॥ ३३—३५॥

देवताओंके नित्य-पूजन, विशेष-पूजन, स्नान, दान, जप, होम तथा ब्राह्मण-तर्पण आदिमें एवं रवि आदि वारोंमें विशेष तिथि और नक्षत्रोंका योग प्राप्त होनेपर विभिन्न देवताओंके पूजनमें सर्वज्ञ जगदीश्वर भगवान् शिव ही उन-उन देवताओंके रूपमें पूजित होकर सब लोगोंको आरोग्य आदि फल प्रदान करते हैं। देश, काल, पात्र, द्रव्य, श्रद्धा एवं लोकके अनुसार उनके तारतम्य क्रमका ध्यान रखते हुए महादेवजी आराधना करनेवाले लोगोंको आरोग्य आदि फल देते हैं॥ ३६—३९॥

शुभ (मांगलिक कर्म)-के आरम्भमें और अशुभ (अन्त्येष्टि आदि कर्म)-के अन्तमें तथा जन्म-नक्षत्रोंके आनेपर गृहस्थ पुरुष अपने घरमें आरोग्य आदिकी समृद्धिके लिये सूर्य आदि ग्रहोंका पूजन करे। इससे सिद्ध है कि देवताओंका यजन सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। ब्राह्मणोंका देवयजन कर्म वैदिक मन्त्रके साथ होना चाहिये [यहाँ ब्राह्मण शब्द क्षत्रिय और वैश्यका भी उपलक्षण है]। शूद्र आदि दूसरोंका देवयज्ञ तान्त्रिक विधिसे होना चाहिये। शुभ फलकी इच्छा रखनेवाले मनुष्योंको सातों ही दिन अपनी शक्तिके अनुसार सदा देवपूजन करना चाहिये॥ ४०—४२॥

निर्धन मनुष्य तपस्या (व्रत आदिके कष्ट-सहन)-द्वारा और धनी धनके द्वारा देवताओंकी आराधना करे। वह बार-बार श्रद्धापूर्वक इस तरहके धर्मका अनुष्ठान करता है और बारम्बार पुण्यलोकोंमें नाना प्रकारके फल भोगकर पुनः इस पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता है। धनवान् पुरुष सदा भोगसिद्धिके लिये मार्गमें वृक्ष आदि लगाकर लोगोंके लिये छायाकी व्यवस्था करे, जलाशय (कुआँ, बावली और पोखरे) बनवाये, वेद-शास्त्रोंकी प्रतिष्ठाके

लिये पाठशालाका निर्माण करे तथा अन्यान्य प्रकारसे भी धर्मका संग्रह करता रहे। समयानुसार पुण्यकर्मोंके परिपाकसे [अन्तःकरण शुद्ध होनेपर] ज्ञानकी सिद्धि हो जाती है। द्विजो! जो इस अध्यायको सुनता, पढ़ता, अथवा दूसरोंको सुनाता है, उसे देवयज्ञका फल प्राप्त होता है॥ ४३—४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें अग्नियज्ञ आदिका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

देश, काल, पात्र और दान आदिका विचार

ऋषिगण बोले—समस्त पदार्थोंके ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ हे सूतजी! अब आप क्रमशः देश, काल आदिका वर्णन करें॥ $^{1}/_{2}$॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! देवयज्ञ आदि कर्मोंमें अपना शुद्ध गृह समान फल देनेवाला होता है अर्थात् अपने घरमें किये हुए देवयज्ञ आदि शास्त्रोक्त कर्म फलको सममात्रामें देनेवाले होते हैं। गोशालाका स्थान घरकी अपेक्षा दसगुना फल देता है। जलाशयका तट उससे भी दसगुना महत्त्व रखता है तथा जहाँ बेल, तुलसी एवं पीपलवृक्षका मूल निकट हो, वह स्थान जलाशयसे भी दस गुना अधिक फल देनेवाला होता है॥ १-२॥

देवालयको उससे भी दस गुना महत्त्वका स्थान जानना चाहिये। तीर्थभूमिका तट देवालयसे भी दस गुना महत्त्व रखता है और उससे दसगुना श्रेष्ठ है नदीका किनारा। उससे दस गुना उत्कृष्ट है तीर्थनदीका तट और उससे भी दस गुना महत्त्व रखता है सप्तगंगा नामक नदियोंका तीर्थ। गंगा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिन्धु, सरयू और नर्मदा—इन सात नदियोंको सप्तगंगा कहा गया है। समुद्रके तटका स्थान इनसे भी दस गुना अधिक पवित्र माना गया है और पर्वतके शिखरका प्रदेश समुद्रतटसे भी दस गुना पावन है। सबसे अधिक महत्त्वका वह स्थान जानना चाहिये, जहाँ मन लग जाय [यहाँतक देशका वर्णन हुआ, अब कालका तारतम्य बताया जाता है—]॥ ३—५$^{1}/_{2}$॥

सत्ययुगमें यज्ञ, दान आदि कर्म पूर्ण फल देनेवाले होते हैं—ऐसा जानना चाहिये। त्रेतायुगमें उसका तीन चौथाई फल मिलता है। द्वापरमें सदा आधे ही फलकी प्राप्ति कही गयी है। कलियुगमें एक चौथाई ही फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये और आधा कलियुग बीतनेपर उस फलमेंसे भी एक चतुर्थांश कम हो जाता है॥ ६-७॥

शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषको शुद्ध एवं पवित्र दिन सम फल देनेवाला होता है। हे विद्वान् ब्राह्मणो! सूर्य-संक्रान्तिके दिन किया हुआ सत्कर्म पूर्वोक्त शुद्ध दिनकी अपेक्षा दस गुना फल देनेवाला होता है—यह जानना चाहिये। उससे भी दस गुना अधिक महत्त्व उस कर्मका है, जो विषुव* नामक योगमें किया जाता है। दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन अर्थात् कर्ककी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका महत्त्व विषुवसे भी दस गुना अधिक माना गया है। उससे भी दसगुना अधिक मकर-संक्रान्तिमें और उससे भी दस गुना अधिक चन्द्रग्रहणमें किये हुए पुण्यका महत्त्व है। सूर्यग्रहणका समय सबसे उत्तम है। उसमें किये गये पुण्यकर्मका फल चन्द्रग्रहणसे भी अधिक और पूर्णमात्रामें होता है—इस बातको विज्ञ पुरुष जानते हैं। जगद्रूपी सूर्यका राहुरूपी विषसे संयोग होता है, इसलिये सूर्यग्रहणका समय रोग प्रदान करनेवाला है। अतः उस विषकी शान्तिके लिये उस समय स्नान, दान और

* ज्योतिषके अनुसार वह समय जबकि सूर्य विषुव रेखापर पहुँचता है और दिन तथा रात दोनों बराबर होते हैं। यह वर्षमें दो बार आता है—एक तो सौर चैत्रमासकी नवमी तिथि या अँगरेजी दिनांक २१ मार्चको और दूसरा आश्विनकी नवमी तिथि या अँगरेजी दिनांक २२ सितम्बरको।

जप करना चाहिये। वह काल विषकी शान्तिके लिये उपयोगी होनेके कारण पुण्यप्रद माना गया है॥ ८—११॥

जन्म-नक्षत्रके दिन तथा व्रतकी पूर्तिके दिनका समय सूर्यग्रहणके समान ही समझा जाता है। परंतु महापुरुषोंके संगका काल करोड़ों सूर्यग्रहणके समान पावन है—ऐसा ज्ञानी पुरुष मानते हैं॥ १२॥

तपोनिष्ठ योगी और ज्ञाननिष्ठ यति—ये पूजाके पात्र हैं; क्योंकि ये पापोंके नाशमें कारण होते हैं। जिसने चौबीस लाख गायत्रीका जप कर लिया हो, वह ब्राह्मण भी पूजाका पात्र है; उसका पूजन सम्पूर्ण फलों और भोगोंको देनेमें समर्थ है। जो पतनसे त्राण करता अर्थात् नरकमें गिरनेसे बचाता है, उसके लिये [इसी गुणके कारण शास्त्रमें] पात्र शब्दका प्रयोग होता है। वह दाताको पापसे त्राण प्रदान करनेके कारण पात्र कहलाता है॥ १३—१५॥

गायत्री अपना गान करनेवालेका अधोगतिसे त्राण करती है, इसलिये वह गायत्री कहलाती है। जैसे इस लोकमें जो धनहीन है, वह दूसरेको धन नहीं दे सकता—जो यहाँ धनवान् है, वही दूसरेको धन दे सकता है, उसी तरह जो स्वयं शुद्ध और पवित्रात्मा है, वही दूसरे मनुष्योंका त्राण या उद्धार कर सकता है। जो गायत्रीका जप करके शुद्ध हो गया है, वही शुद्ध ब्राह्मण कहा जाता है। इसलिये दान, जप, होम, पूजा—इन सभी कर्मोंके लिये वही शुद्ध पात्र है। ऐसा ब्राह्मण ही दान लेने तथा रक्षा करनेकी पात्रता रखता है॥ १६—१८½॥

स्त्री हो या पुरुष—जो भी भूखा हो, वही अन्नदानका पात्र है। श्रेष्ठ ब्राह्मणको समयपर बुलाकर उसे धन अथवा उत्तम वाणीसे सन्तुष्ट करना चाहिये, इससे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। जिसको जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वह वस्तु बिना माँगे ही दे दी जाय, तो दाताको उस दानका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है—ऐसी महर्षियोंकी मान्यता है। जो याचना करनेके बाद दिया गया हो, वह दान आधा ही फल देनेवाला बताया गया है। अपने सेवकको दिया हुआ दान एक चौथाई फल देनेवाला कहा गया है। हे विप्रवरो! जो जातिमात्रसे ब्राह्मण है और दीनतापूर्ण वृत्तिसे जीवन बिताता है, उसे दिया हुआ धनका दान दाताको इस भूतलपर दस वर्षोंतक भोग प्रदान करनेवाला होता है। वही दान यदि वेदवेत्ता ब्राह्मणको दिया जाय, तो वह स्वर्गलोकमें देवताओंके दस वर्षोंतक दिव्य भोग देनेवाला होता है॥ १९—२३॥

गायत्री-जापक ब्राह्मणको दान देनेसे सत्यलोकमें दस वर्षोंतक पुण्यभोग प्राप्त होता है और विष्णुभक्त ब्राह्मणको दिया गया दान वैकुण्ठकी प्राप्ति करानेवाला जाना जाता है। शिवभक्त विप्रको दिया हुआ दान कैलासकी प्राप्ति कराने वाला कहा गया है। इस प्रकार सबको इन लोकोंमें भोगप्राप्तिके लिये दान देना चाहिये॥ २४-२५॥

रविवारके दिन ब्राह्मणको दशांग अन्न देनेवाला मनुष्य दूसरे जन्ममें दस वर्षोंतक निरोग रहता है। बहुत सम्मानपूर्वक बुलाना, अभ्यंग (चन्दन आदि), पादसेवन, वस्त्र, गन्ध आदिसे पूजन, घीके मालपुए आदि सुन्दर भोजन, छहों रस, व्यंजन, दक्षिणासहित ताम्बूल, नमस्कार और (जाते समय) अनुगमन—ये अन्नदानके दस अंग कहे गये हैं॥ २६—२८॥

दस ब्राह्मणोंको रविवारके दिन दशांग अन्नका दान करनेवाला सौ वर्षतक निरोग रहता है। सोमवार आदि विभिन्न वारोंमें अन्नदानका फल उन-उन वारोंके अनुसार दूसरे जन्ममें इस पृथ्वीलोकमें प्राप्त होता है—ऐसा जानना चाहिये। सातों वारोंमें दस-दस ब्राह्मणोंको दशांग अन्नदान करनेसे सौ वर्षतक आरोग्यादि फल प्राप्त होते हैं। इस प्रकार रविवारके दिन ब्राह्मणोंको अन्नदान करने वाला मनुष्य हजार वर्षोंतक शिवलोकमें आरोग्यलाभ करता है। इसी प्रकार हजार ब्राह्मणोंको अन्नदान करके मनुष्य दस हजार वर्षोंतक आरोग्यभोग करता है। विद्वान्को सोमवार आदि दिनोंके विषयमें भी ऐसा ही जानना चाहिये॥ २९—३३॥

रविवारको गायत्रीजपसे पवित्र अन्त:करणवाले एक हजार ब्राह्मणोंको अन्नदान करके मनुष्य सत्यलोकमें आरोग्यादि भोगोंको प्राप्त करता है। इसी प्रकार दस

हजार ब्राह्मणोंको दान देनेसे विष्णुलोकमें ऐसी प्राप्ति होती है और एक लाख ब्राह्मणोंको अन्नदान करनेसे रुद्रलोकमें भोगादिकी प्राप्ति होती है॥ ३४-३५॥

विद्याकी कामनावाले मनुष्योंको ब्रह्मबुद्धिसे बालकोंको दशांग अन्नका दान करना चाहिये, पुत्रकी कामनावाले लोगोंको विष्णुबुद्धिसे युवकोंको दान करना चाहिये और ज्ञानप्राप्तिकी इच्छावालोंको रुद्रबुद्धिसे वृद्धजनोंको दान देना चाहिये। इसी प्रकार बुद्धिकी कामना करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्योंको सरस्वतीबुद्धिसे बालिकाओंको दशांग अन्नका दान करना चाहिये। सुखभोगकी कामनावाले श्रेष्ठजनोंको लक्ष्मीबुद्धिसे युवतियोंको दान देना चाहिये। आत्मज्ञानकी इच्छावाले लोगोंको पार्वतीबुद्धिसे वृद्धा स्त्रियोंको अन्नदान करना चाहिये॥ ३६—३८॥

ब्राह्मणके लिये शिल तथा उञ्छ* वृत्तिसे लाया हुआ और गुरुदक्षिणामें प्राप्त हुआ अन्न-धन शुद्ध द्रव्य कहलाता है; उसका दान दाताको पूर्ण फल देनेवाला बताया गया है॥ ३९॥

शुद्ध (शुक्ल) प्रतिग्रह (दान)-में मिला हुआ द्रव्य मध्यम द्रव्य कहा जाता है और खेती, व्यापार आदिसे प्राप्त धन अधम द्रव्य कहा जाता है॥ ४०॥

क्षत्रियोंका शौर्यसे कमाया हुआ, वैश्योंका व्यापारसे कमाया हुआ और शूद्रोंका सेवावृत्तिसे प्राप्त किया हुआ धन भी उत्तम द्रव्य कहलाता है। धर्मकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंको जो धन पिता एवं पतिसे मिला हुआ हो, उनके लिये वह उत्तम द्रव्य है॥ ४१½॥

गौ आदि बारह वस्तुओंका चैत्र आदि बारह महीनोंमें क्रमशः दान करना चाहिये अथवा किसी पुण्यकालमें एकत्रित करके अपनी अभीष्ट प्राप्तिके लिये इनका दान करना चाहिये। गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण, घी, वस्त्र, धान्य, गुड़, चाँदी, नमक, कोंहड़ा और कन्या—ये ही वे बारह वस्तुएँ हैं॥ ४२-४३½॥

गोदानमें दी हुई गायके उपकारी गोबरसे धन-धान्यादि ठोस पदार्थोंके आश्रयसे टिके पापोंका नाश होता है और उसके गोमूत्रसे जल-तेल आदि तरल पदार्थोंमें रहनेवाले पापोंका नाश होता है। उसके दूध-दही और घीसे कायिक, वाचिक तथा मानसिक तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। उनसे कायिक आदि पुण्यकर्मोंकी पुष्टि भी होती है—ऐसा बुद्धिमान् मनुष्यको जानना चाहिये॥ ४४—४६॥

हे ब्राह्मणो! भूमिका दान इहलोक और परलोकमें प्रतिष्ठा (आश्रय)-की प्राप्ति करानेवाला है। तिलका दान बलवर्धक एवं मृत्युका निवारक कहा गया है। सुवर्णका दान जठराग्निको बढ़ानेवाला तथा वीर्यदायक है। घीके दानको पुष्टिकारक जानना चाहिये। वस्त्रका दान आयुकी वृद्धि करानेवाला है—ऐसा जानना चाहिये। धान्यका दान अन्नकी समृद्धिमें कारण होता है। गुड़का दान मधुर भोजनकी प्राप्ति करानेवाला होता है। चाँदीके दानसे वीर्यकी वृद्धि होती है। लवणका दान षड्रस भोजनकी प्राप्ति कराता है। सब प्रकारका दान सम्पूर्ण समृद्धिकी सिद्धिके लिये होता है। विज्ञ पुरुष कूष्माण्डके दानको पुष्टिदायक मानते हैं। कन्याका दान आजीवन भोग देनेवाला कहा गया है। हे ब्राह्मणो! वह लोक और परलोकमें भी सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति करानेवाला है॥ ४७—५०½॥

कटहल-आम, कैथ आदि वृक्षोंके फल, केला आदि ओषधियोंके फल तथा जो फल लता एवं गुल्मोंसे उत्पन्न हुए हों, मुष्ट (आवरणयुक्त) फल जैसे—नारियल, बादाम आदि, उड़द, मूँग आदि दालें, शाक, मिर्च, सरसों आदि, तेल-मसाले और ऋतुओंमें तैयार होनेवाले फल समय-समयपर बुद्धिमान् व्यक्तिद्वारा दान किये जाने चाहिये॥ ५१—५३॥

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि जिन वस्तुओंसे श्रवण आदि इन्द्रियोंकी तृप्ति होती है, उनका सदा दान करे। श्रोत्र आदि दस इन्द्रियोंके जो शब्द आदि दस विषय हैं,

* किसानके द्वारा खेतमें बोये हुए अन्नको काटकर ले जानेके बाद उनसे गिरे हुए एक-एक दानेको दोनों अंगुलियोंसे चुनने (उठाने)-को 'उञ्छ' तथा उक्त खेतमें एक-एक बाल (धान्यके गुच्छों)-को चुननेको 'शिल' कहते हैं—'उञ्छो धान्यकणादानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्।' मनुस्मृतिके टीकाकार आचार्य श्रीराघवानन्दजीने बाजार आदिमें क्रय-विक्रयके अनन्तर गिरे हुए अन्नके दानोंके चुननेको 'उञ्छ' और खेत कट जानेके बाद खेतमें पड़े हुए धान्यादिकी बालोंको बीनना 'शिल' कहा है। (मनु० ४।५ की व्याख्या)

उनका दान किया जाय, तो वे भोगोंकी प्राप्ति कराते हैं तथा दिशा आदि इन्द्रिय देवताओंको* सन्तुष्ट करते हैं। वेद और शास्त्रको गुरुमुखसे ग्रहण करके गुरुके उपदेशसे अथवा स्वयं ही बोध प्राप्त करनेके पश्चात् जो बुद्धिका यह निश्चय होता है कि 'कर्मोंका फल अवश्य मिलता है', इसीको उच्चकोटिकी 'आस्तिकता' कहते हैं। भाई-बन्धु अथवा राजाके भयसे जो आस्तिकता-बुद्धि या श्रद्धा होती है, वह कनिष्ठ श्रेणीकी आस्तिकता है ॥ ५४-५५१/२ ॥

जो सर्वथा दरिद्र है, जिसके पास सभी वस्तुओंका अभाव है, वह वाणी अथवा कर्म (शरीर)-द्वारा यजन करे। मन्त्र, स्तोत्र और जप आदिको वाणीद्वारा किया गया यजन समझना चाहिये तथा तीर्थयात्रा और व्रत आदिको विद्वान् पुरुष शारीरिक यजन मानते हैं। जिस किसी भी उपायसे थोड़ा हो या बहुत, देवतार्पण-बुद्धिसे जो कुछ भी दिया अथवा किया जाय, वह दान या सत्कर्म भोगोंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है ॥ ५६—५८ ॥

तपस्या और दान—ये दो कर्म मनुष्यको सदा करने चाहिये तथा ऐसे गृहका दान करना चाहिये, जो अपने वर्ण (चमक-दमक या सफाई) और गुण (सुख-सुविधा)-से सुशोभित हो। बुद्धिमान् पुरुष देवताओंकी तृप्तिके लिये जो कुछ देते हैं, वह अतिशय मात्रामें और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाला होता है। उस दानसे विद्वान् पुरुष इहलोक और परलोकमें उत्तम जन्म और सदा सुलभ होनेवाला भोग पाता है। ईश्वरार्पण-बुद्धिसे यज्ञ, दान आदि कर्म करके मनुष्य मोक्ष-फलका भागी होता है ॥ ५९-६० ॥

जो मनुष्य इस अध्यायका सदा पाठ अथवा श्रवण करता है, उसे धार्मिक बुद्धि प्राप्त होती है तथा उसमें ज्ञानका उदय होता है ॥ ६१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें देश-काल-पात्र आदिका वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

मृत्तिका आदिसे निर्मित देवप्रतिमाओंके पूजनकी विधि, उनके लिये नैवेद्यका विचार, पूजनके विभिन्न उपचारोंका फल, विशेष मास, वार, तिथि एवं नक्षत्रोंके योगमें पूजनका विशेष फल तथा लिंगके वैज्ञानिक स्वरूपका विवेचन

ऋषिगण बोले—हे साधुशिरोमणे! अब आप पार्थिव प्रतिमाकी पूजाका वह विधान बताइये, जिस पूजा-विधानसे समस्त अभीष्ट वस्तुओंकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! तुमलोगोंने बहुत उत्तम बात पूछी है। पार्थिव प्रतिमाका पूजन सदा सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है तथा दुःखका तत्काल निवारण करनेवाला है। मैं उसका वर्णन करता हूँ, [ध्यान देकर] सुनिये ॥ २ ॥

हे द्विजो! यह पूजा अकाल मृत्युको हरनेवाली तथा काल और मृत्युका भी नाश करनेवाली है। यह शीघ्र ही स्त्री, पुत्र और धन-धान्यको प्रदान करनेवाली है। इसलिये पृथ्वी आदिकी बनी हुई देवप्रतिमाओंकी पूजा इस भूतलपर अभीष्टदायक मानी गयी है; निश्चय ही इसमें पुरुषोंका और स्त्रियोंका भी अधिकार है ॥ ३—४१/२ ॥

नदी, पोखरे अथवा कुएँमें प्रवेश करके पानीके भीतरसे मिट्टी ले आये। तत्पश्चात् गन्ध-चूर्णके द्वारा उसका संशोधन करके शुद्ध मण्डपमें रखकर उसे महीन बनाये तथा हाथसे प्रतिमा बनाये और दूधसे उसका सम्यक् संस्कार करे। उस प्रतिमामें अंग-प्रत्यंग अच्छी तरह प्रकट हुए हों तथा वह सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे

* श्रवणेन्द्रियके देवता दिशाएँ, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, रसनेन्द्रियके वरुण, त्वगिन्द्रियके वायु, वागिन्द्रियके अग्नि, लिंगके प्रजापति, गुदाके मित्र, हाथोंके इन्द्र और पैरोंके देवता विष्णु हैं।

सम्पन्न बनायी गयी हो। तदनन्तर उसे पद्मासनपर स्थापित करके आदर-पूर्वक उसका पूजन करे। गणेश, सूर्य, विष्णु, दुर्गा और शिवजीकी प्रतिमाका एवं शिवजीके शिवलिंगका द्विजको सदा पूजन करना चाहिये। पूजनजनित फलकी सिद्धिके लिये सोलह उपचारोंद्वारा पूजन करना चाहिये ॥ ५—८१/२ ॥

पुष्पसे प्रोक्षण और मन्त्रपाठपूर्वक अभिषेक करे। अगहनीके चावलसे नैवेद्य तैयार करे। सारा नैवेद्य एक कुडव (लगभग पावभर) होना चाहिये। घरमें पार्थिव-पूजनके लिये एक कुडव और बाहर किसी मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिंगके पूजनके लिये एक प्रस्थ (सेरभर) नैवेद्य तैयार करना आवश्यक है—ऐसा जानना चाहिये। देवताओंद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये तीन सेर नैवेद्य अर्पित करना उचित है और स्वयं प्रकट हुए लिंगके लिये पाँच सेर। ऐसा करनेसे पूर्ण फलकी प्राप्ति समझनी चाहिये। इससे दुगुना या तिगुना करनेपर और अधिक फल प्राप्त होता है। इस प्रकार सहस्र बार पूजन करनेसे द्विज सत्यलोकको प्राप्त कर लेता है ॥ ९—१११/२ ॥

बारह अँगुल चौड़ा, इससे दूना और एक अँगुल अधिक अर्थात् पचीस अँगुल लम्बा तथा पन्द्रह अँगुल ऊँचा जो लोहे या लकड़ीका बना हुआ पात्र होता है, उसे विद्वान् पुरुष शिव कहते हैं। उसका आठवाँ भाग प्रस्थ कहलाता है, जो चार कुडवके बराबर माना गया है। मनुष्यद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये दस प्रस्थ, ऋषियोंद्वारा स्थापित शिवलिंगके लिये सौ प्रस्थ और स्वयम्भू शिवलिंगके लिये एक सहस्र प्रस्थ नैवेद्य निवेदन किया जाय तथा जल, तैल आदि एवं गन्ध द्रव्योंकी भी यथायोग्य मात्रा रखी जाय तो यह उन शिवलिंगोंकी महापूजा बतायी जाती है ॥ १२—१५ ॥

देवताका अभिषेक करनेसे आत्मशुद्धि होती है, गन्धसे पुण्यकी प्राप्ति होती है, नैवेद्य अर्पण करनेसे आयु बढ़ती है और तृप्ति होती है, धूप निवेदन करनेसे धनकी प्राप्ति होती है, दीप दिखानेसे ज्ञानका उदय होता है और ताम्बूल समर्पण करनेसे भोगकी उपलब्धि होती है। इसलिये स्नान आदि छः उपचारोंको यत्नपूर्वक अर्पित करे ॥ १६-१७ ॥

नमस्कार और जप—ये दोनों सम्पूर्ण अभीष्ट फलको देनेवाले हैं। इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको पूजाके अन्तमें सदा ही जप और नमस्कार करना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वह सदा पहले मनसे पूजा करके फिर उन-उन उपचारोंसे पूजा करे। देवताओंकी पूजासे उन-उन देवताओंके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा उनके अवान्तर लोकमें भी यथेष्ट भोगकी वस्तुएँ उपलब्ध होती हैं ॥ १८—१९१/२ ॥

हे द्विजो! अब मैं देवपूजासे प्राप्त होनेवाले विशेष फलोंका वर्णन करता हूँ। आपलोग श्रद्धापूर्वक सुनें। विघ्नराज गणेशकी पूजासे भूलोकमें उत्तम अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। शुक्रवारको, श्रावण और भाद्रपद मासोंकी शुक्लपक्षकी चतुर्थीको और पौषमासमें शतभिषा नक्षत्रके आनेपर विधिपूर्वक गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये। सौ या सहस्र दिनोंमें सौ या सहस्र बार पूजा करे। देवता और अग्निमें श्रद्धा रखते हुए किया जानेवाला उनका नित्य पूजन मनुष्योंको पुत्र एवं अभीष्ट वस्तु प्रदान करता है। वह समस्त पापोंका शमन तथा भिन्न-भिन्न दुष्कर्मोंका विनाश करनेवाला है। विभिन्न वारोंमें की हुई शिव आदिकी पूजाको आत्मशुद्धि प्रदान करनेवाली समझना चाहिये। वार या दिन तिथि, नक्षत्र और योगोंका आधार है। वह समस्त कामनाओंको देनेवाला है। उसमें वृद्धि और क्षय नहीं होता है, इसलिये उसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूप मानना चाहिये। सूर्योदयकालसे लेकर दूसरे सूर्योदयकाल आनेतक एक वारकी स्थिति मानी गयी है, जो ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंके कर्मोंका आधार है। विहित तिथिके पूर्वभागमें की हुई देवपूजा मनुष्योंको पूर्ण भोग प्रदान करनेवाली होती है ॥ २०—२५१/२ ॥

यदि मध्याह्नके बाद तिथिका आरम्भ होता है, तो रात्रियुक्त तिथिका पूर्वभाग पितरोंके श्राद्ध आदि कर्मके लिये उत्तम बताया जाता है। ऐसी तिथिका परभाग ही दिनसे युक्त होता है, अतः वही देवकर्मके लिये प्रशस्त माना गया है। यदि मध्याह्नकालतक तिथि रहे तो उदयव्यापिनी तिथिको ही देवकार्यमें ग्रहण करना चाहिये।

इसी तरह शुभ तिथि एवं नक्षत्र आदि देवकार्यमें ग्राह्य होते हैं। वार आदिका भलीभाँति विचार करके पूजा और जप आदि करने चाहिये॥ २६—२८॥

वेदोंमें पूजा-शब्दके अर्थकी इस प्रकार योजना कही गयी है—'**पूर्जायते अनेन इति पूजा।**' यह पूजाशब्दकी व्युत्पत्ति है। पू: का अर्थ है भोग और फलकी सिद्धि—वह जिस कर्मसे सम्पन्न होती है, उसका नाम पूजा है। मनोवांछित वस्तु तथा ज्ञान—ये ही अभीष्ट वस्तुएँ हैं; सकाम भाववालेको अभीष्ट भोग अपेक्षित होता है और निष्काम भाववालेको अर्थ—पारमार्थिक ज्ञान। ये दोनों ही पूजाशब्दके अर्थ हैं; इनकी योजना करनेसे ही पूजा-शब्दकी सार्थकता है। इस प्रकार लोक और वेदमें पूजा-शब्दका अर्थ विख्यात है। नित्य और नैमित्तिक कर्म कालान्तरमें फल देते हैं, किंतु काम्य कर्मका यदि भलीभाँति अनुष्ठान हुआ हो तो वह तत्काल फलदायक होता है। प्रतिदिन एक पक्ष, एक मास और एक वर्षतक लगातार पूजन करनेसे उन-उन कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और उनसे वैसे ही पापोंका क्रमशः क्षय होता है॥ २९—३१½॥

प्रत्येक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिको की हुई महागणपतिकी पूजा एक पक्षके पापोंका नाश करनेवाली और एक पक्षतक उत्तम भोगरूपी फल देनेवाली होती है। चैत्रमासमें चतुर्थीको की हुई पूजा एक मासतक किये गये पूजनका फल देनेवाली होती है और जब सूर्य सिंह राशिपर स्थित हों, उस समय भाद्रपदमासकी चतुर्थीको की हुई गणेशजीकी पूजाको एक वर्षतक [मनोवांछित] भोग प्रदान करनेवाली जानना चाहिये॥ ३२—३३½॥

श्रावणमासके रविवारको, हस्त नक्षत्रसे युक्त सप्तमी तिथिको तथा माघशुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करना चाहिये। ज्येष्ठ तथा भाद्रपदमासोंके बुधवारको, श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशी तिथिको तथा केवल द्वादशीको भी किया गया भगवान् विष्णुका पूजन अभीष्ट सम्पत्तिको देनेवाला माना गया है। श्रावणमासमें की जानेवाली श्रीहरिकी पूजा अभीष्ट मनोरथ और आरोग्य प्रदान करनेवाली होती है। अंगों एवं उपकरणोंसहित पूर्वोक्त गौ आदि बारह वस्तुओंका दान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीको द्वादशी तिथिमें आराधनाद्वारा श्रीविष्णुकी तृप्ति करके मनुष्य प्राप्त कर लेता है। जो द्वादशी तिथिको भगवान् विष्णुके बारह नामोंद्वारा बारह ब्राह्मणोंका षोडशोपचार पूजन करता है, वह उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके विभिन्न बारह नामोंद्वारा बारह ब्राह्मणोंका किया हुआ पूजन उन-उन देवताओंको प्रसन्न करनेवाला होता है॥ ३४—३९॥

ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको कर्ककी संक्रान्तिसे युक्त श्रावणमासमें नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रके योगमें सम्पूर्ण मनोवांछित भोगों और फलोंको देनेवाली अम्बिकाका पूजन करना चाहिये। आश्विनमासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथि सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। उसी मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको यदि रविवार पड़ा हो तो उस दिनका महत्त्व विशेष बढ़ जाता है। उसके साथ ही यदि आर्द्रा और महार्द्रा (सूर्यसंक्रान्तिसे युक्त आर्द्रा)-का योग हो तो उक्त अवसरोंपर की हुई शिवपूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। माघ कृष्ण चतुर्दशीको शिवजीकी की हुई पूजा सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है। वह मनुष्योंकी आयु बढ़ाती है, मृत्युको दूर हटाती है और समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति कराती है॥ ४०—४२½॥

ज्येष्ठमासमें चतुर्दशीको यदि महार्द्राका योग हो अथवा मार्गशीर्षमासमें किसी भी तिथिको यदि आर्द्रा नक्षत्र हो तो उस अवसरपर विभिन्न वस्तुओंकी बनी हुई मूर्तिके रूपमें शिवजीकी जो सोलह उपचारोंसे पूजा करता है, उस पुण्यात्माके चरणोंका दर्शन करना चाहिये। भगवान् शिवकी पूजा मनुष्योंको भोग और मोक्ष देनेवाली है—ऐसा जानना चाहिये। कार्तिक मासमें प्रत्येक वार और तिथि आदिमें देवपूजाका विशेष महत्त्व है। कार्तिकमास आनेपर विद्वान् पुरुष दान, तप, होम, जप और नियम आदिके द्वारा समस्त देवताओंका षोडशोपचारोंसे पूजन करे। उस पूजनमें देवप्रतिमा, ब्राह्मण तथा मन्त्रोंका उपयोग आवश्यक है। ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे वह पूजन-कर्म सम्पन्न होता है। पूजकको चाहिये कि वह कामनाओंको त्यागकर पीड़ारहित

(शान्त) हो देवाराधनमें तत्पर रहे॥ ४३—४७॥

कार्तिकमासमें देवताओंका यजन-पूजन समस्त भोगोंको देनेवाला होता है; यह व्याधियोंको हर लेनेवाला और भूतों तथा ग्रहोंका विनाश भी करनेवाला है। कार्तिकमासके रविवारोंको भगवान् सूर्यकी पूजा करने और तेल तथा कपासका दान करनेसे मनुष्योंके कोढ़ आदि रोगोंका नाश होता है। हर्रे, काली मिर्च, वस्त्र तथा दूध आदिके दानसे और ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा करनेसे क्षयके रोगका नाश होता है। दीप और सरसोंके दानसे मिरगीका रोग मिट जाता है॥ ४८—५०१/२॥

कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त सोमवारोंको किया हुआ शिवजीका पूजन मनुष्योंके महान् दारिद्र्यको मिटानेवाला और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। घरकी आवश्यक सामग्रियोंके साथ गृह और क्षेत्र आदिका दान करनेसे भी उक्त फलकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त मंगलवारोंको श्रीस्कन्दका पूजन करनेसे तथा दीपक एवं घण्टा आदिका दान देनेसे मनुष्योंको शीघ्र ही वाक्सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ ५१—५३॥

कृत्तिकायुक्त बुधवारोंको किया हुआ श्रीविष्णुका यजन तथा दही-भातका दान मनुष्योंको उत्तम सन्तानकी प्राप्ति करानेवाला होता है। कृत्तिकायुक्त गुरुवारोंको धनसे ब्रह्माजीका पूजन तथा मधु, सोना और घीका दान करनेसे मनुष्योंके भोग-वैभवकी वृद्धि होती है॥ ५४-५५॥

कृत्तिकायुक्त शुक्रवारोंको गजानन गणेशजीकी पूजा करनेसे तथा गन्ध, पुष्प एवं अन्नका दान देनेसे मानवोंके सुख भोगनेयोग्य पदार्थोंकी वृद्धि होती है। उस दिन सोना, चाँदी आदिका दान करनेसे वन्ध्याको भी उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। कृत्तिकायुक्त शनिवारोंको दिक्पालोंकी वन्दना, दिग्गजों-नागों-सेतुपालोंका पूजन और त्रिनेत्रधारी रुद्र तथा पापहारी विष्णुका पूजन ज्ञानकी प्राप्ति करानेवाला है। ब्रह्मा, धन्वन्तरि एवं दोनों अश्विनीकुमारोंका पूजन करनेसे रोग तथा अपमृत्युका निवारण होता है और तात्कालिक व्याधियोंकी शान्ति हो जाती है। नमक, लोहा, तेल और उड़द आदिका; त्रिकटु (सोंठ, पीपल और गोल मिर्च), फल, गन्ध और जल आदिका तथा [घृत आदि] द्रव-पदार्थोंका और [सुवर्ण, मोती, धान्य आदि] ठोस वस्तुओंका भी दान देनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। इनमेंसे नमक आदिका मान कम-से-कम एक प्रस्थ (सेर) और सुवर्ण आदिका मान कम-से-कम एक पल होना चाहिये। धनुकी संक्रान्तिसे युक्त पौषमासमें उषःकालमें शिव आदि समस्त देवताओंका पूजन क्रमशः समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला होता है। इस पूजनमें अगहनीके चावलसे तैयार किये गये हविष्यका नैवेद्य उत्तम बताया जाता है। पौषमासमें नाना प्रकारके अन्नका नैवेद्य विशेष महत्त्व रखता है॥ ५८—६२१/२॥

मार्गशीर्षमासमें केवल अन्नका दान करनेवाले मनुष्यको सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंकी प्राप्ति हो जाती है। मार्गशीर्षमासमें अन्नका दान करनेवाले मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, वह अभीष्ट-सिद्धि, आरोग्य, धर्म, वेदका सम्यक् ज्ञान, उत्तम अनुष्ठानका फल, इहलोक और परलोकमें महान् भोग तथा अन्तमें सनातन योग (मोक्ष) तथा वेदान्तज्ञानकी सिद्धि प्राप्त कर लेता है। जो भोगकी इच्छा रखनेवाला है, वह मनुष्य मार्गशीर्षमास आनेपर कम-से-कम तीन दिन भी उषःकालमें अवश्य देवताओंका पूजन करे और पौषमासको पूजनसे खाली न जाने दे। उषःकालसे लेकर संगवकालतक ही पौषमासमें पूजनका विशेष महत्त्व बताया गया है। पौषमासमें पूरे महीनेभर जितेन्द्रिय और निराहार रहकर द्विज प्रातःकालसे मध्याह्नकालतक वेदमाता गायत्रीका जप करे। तत्पश्चात् रातको सोनेके समयतक पंचाक्षर आदि मन्त्रोंका जप करे। ऐसा करनेवाला ब्राह्मण ज्ञान पाकर शरीर छूटनेके बाद मोक्ष प्राप्त कर लेता है। द्विजेतर नर-नारियोंको त्रिकाल स्नान और पंचाक्षर मन्त्रके ही निरन्तर जपसे विशुद्ध ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इष्ट मन्त्रोंका सदा जप करनेसे बड़े-से-बड़े पापोंका भी नाश हो जाता है॥ ६३—७०॥

पौषमासमें विशेषरूपसे महानैवेद्य चढ़ाना चाहिये। यहाँ बतायी सभी वस्तुएँ बारहकी संख्यामें समझनी

चाहिये—चावल (बारह) भार[1], काली मिर्च (बारह) प्रस्थ[2], मधु और घृत (बारह) कुडव[3], मूँग (बारह) द्रोण[4], बारह प्रकारके व्यंजन, घीमें तले हुए पूए, लड्डू और चावलके मिष्टान्न (बारह) प्रस्थ, दही और दूध और बारह नारियल आदि फल, बारह सुपारी, कर्पूर, कत्था और पाँच प्रकारके सुगन्धद्रव्योंसे युक्त छत्तीस पत्ते पानसे महानैवेद्य बनता है॥ ७१—७५॥

इस महानैवेद्यको देवताओंको अर्पण करके वर्णानुसार उस देवताके भक्तोंको दे देना चाहिये। इस प्रकारके ओदन-नैवेद्यसे मनुष्य पृथ्वीपर राष्ट्रका स्वामी होता है। महानैवेद्यके दानसे स्वर्गप्राप्ति होती है। हे द्विजश्रेष्ठो! एक हजार महानैवेद्योंके दानसे सत्यलोक प्राप्त होता है और उस लोकमें पूर्णायु प्राप्त होती है एवं तीस हजार महानैवेद्योंके दानसे उसके ऊपरके लोकोंकी प्राप्ति होती है तथा पुनर्जन्म नहीं होता॥ ७६—७९॥

छत्तीस हजार महानैवेद्योंको जन्मनैवेद्य कहा गया है। उतने नैवेद्योंका दान महापूर्ण कहलाता है। महापूर्ण नैवेद्य ही जन्मनैवेद्य कहा गया है। जन्मनैवेद्यके दानसे पुनर्जन्म नहीं होता॥ ८०-८१॥

कार्तिक मासमें संक्रान्ति, व्यतीपात, जन्मनक्षत्र, पूर्णिमा आदि किसी पवित्र दिनको जन्मनैवेद्य चढ़ाना चाहिये। संवत्सरके प्रारम्भिक दिनको भी उत्तम जन्मनैवेद्यका अर्पण करना चाहिये। किसी अन्य महीनेमें भी जन्मनक्षत्रके पूर्ण योगके दिन तथा अधिक पुण्ययोगोंके मिलनेपर धीरे-धीरे छत्तीस हजार महानैवेद्य अर्पण करे। जन्मनैवेद्यके दानसे जन्मार्पणका फल प्राप्त होता है। जन्मार्पणसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर अपना सायुज्य प्रदान करते हैं। इसलिये इस जन्मनैवेद्यको शिवको ही अर्पण करना चाहिये। योनि और लिंगरूपमें विराजमान शिव जन्मको देनेवाले हैं, अतः पुनर्जन्मकी निवृत्तिके लिये जन्मनैवेद्यसे शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ८२—८६॥

सारा चराचर जगत् बिन्दु-नादस्वरूप है। बिन्दु शक्ति है और नाद शिव। इस तरह यह जगत् शिव-शक्तिस्वरूप ही है। नाद बिन्दुका और बिन्दु इस जगत्का आधार है, ये बिन्दु और नाद (शक्ति और शिव) सम्पूर्ण जगत्के आधाररूपसे स्थित हैं। बिन्दु और नादसे युक्त सब कुछ शिवस्वरूप है; क्योंकि वही सबका आधार है। आधारमें ही आधेयका समावेश अथवा लय होता है। यही सकलीकरण है। इस सकलीकरणकी स्थितिसे ही सृष्टिकालमें जगत्का प्रादुर्भाव होता है; इसमें संशय नहीं है। शिवलिंग बिन्दुनादस्वरूप है, अतः उसे जगत्का कारण बताया जाता है। बिन्दु देवी है और नाद शिव, इन दोनोंका संयुक्तरूप ही शिवलिंग कहलाता है। अतः जन्मके संकटसे छुटकारा पानेके लिये शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये। बिन्दुरूपा देवी उमा माता हैं और नादस्वरूप भगवान् शिव पिता। इन माता-पिताके पूजित होनेसे परमानन्दकी ही प्राप्ति होती है। अतः परमानन्दका लाभ लेनेके लिये शिवलिंगका विशेषरूपसे पूजन करे॥ ८७—९२॥

वे देवी उमा जगत्की माता हैं और भगवान् शिव जगत्के पिता। जो इनकी सेवा करता है, उस पुत्रपर इन दोनों माता-पिताकी कृपा नित्य अधिकाधिक बढ़ती रहती है। वे पूजकपर कृपा करके उसे अपना आन्तरिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। अतः हे मुनीश्वरो! आन्तरिक आनन्दकी प्राप्तिके लिये शिवलिंगको माता-पिताका स्वरूप मानकर उसकी पूजा करनी चाहिये। भर्ग (शिव) पुरुषरूप है और भर्गा (शिवा अथवा शक्ति) प्रकृति कहलाती है। अव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानरूप गर्भको पुरुष कहते हैं और सुव्यक्त आन्तरिक अधिष्ठानभूत गर्भको प्रकृति। पुरुष आदिगर्भ है, वह प्रकृतिरूप गर्भसे युक्त होनेके कारण गर्भवान् है; क्योंकि वही प्रकृतिका जनक है। प्रकृतिमें जो पुरुषका संयोग होता है, यही पुरुषसे उसका प्रथम जन्म कहलाता है। अव्यक्त प्रकृतिसे महत्तत्त्वादिके क्रमसे जो जगत्का व्यक्त होना है, यही उस प्रकृतिका द्वितीय जन्म कहलाता है। जीव पुरुषसे

१—४-चार धानकी एक गुंजी या एक रत्ती होती है। पाँच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक), आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक पल (ढाई छटाँकके लगभग), सौ पल (सोलह सेरके लगभग)-की एक तुला होती है, बीस तुलाका एक भार होता है, अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है। पावभरका एक कुडव होता है, चार कुडवका एक प्रस्थ अर्थात् एक सेर होता है। चार सेर (प्रस्थ)-का एक आढक और आठ आढक (३२ सेर)-का एक द्रोण होता है। तीन द्रोणकी एक खारी और आठ द्रोणका एक वाह होता है।

ही बार-बार जन्म और मृत्युको प्राप्त होता है। मायाद्वारा अन्यरूपसे प्रकट किया जाना ही उसका जन्म कहलाता है। जीवका शरीर जन्मकालसे ही जीर्ण (छः भावविकारोंसे युक्त) होने लगता है, इसीलिये उसे 'जीव' यह संज्ञा दी गयी है। जो जन्म लेता और विविध पाशोंद्वारा बन्धनमें पड़ता है, उसका नाम जीव है, जन्म और बन्धन जीव-शब्दका ही अर्थ है। अतः जन्ममृत्युरूपी बन्धनकी निवृत्तिके लिये जन्मके अधिष्ठानभूत माता-पितृस्वरूप शिवलिंगका भली-भाँति पूजन करना चाहिये॥ ९३—१००॥

शब्दादि पंचतन्मात्राओं तथा पंचेन्द्रियोंसे विषय ग्रहण करनेसे 'भ' अर्थात् वृद्धिको 'गच्छति' अर्थात् प्राप्त होती है, इसलिये 'भग' शब्दका अर्थ प्रकृति है। भोग ही भगका मुख्य शब्दार्थ है। मुख्य 'भग' प्रकृति है और 'भगवान्' शिव कहे जाते हैं॥ १०१-१०२॥

भगवान् ही भोग प्रदान करते हैं, दूसरा कोई नहीं दे सकता। भग (प्रकृति)-का स्वामी भगवान् ही विद्वानोंद्वारा भर्ग कहा जाता है। भग-प्रकृतिसे संयुक्त परमात्मलिंग और लिंगसंयुक्त भग-प्रकृति ही इस लोक और परलोकमें नित्य भोग प्रदान करते हैं, अतः भगवान् महादेवके शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये॥ १०३-१०४१/२॥

संसारको उत्पन्न करनेवाले सूर्य हैं और उत्पन्न करनेके कारण जगत् ही उनका (प्रत्यक्ष) चिह्न है। [इसलिये उनका एक नाम भग भी है।] पुरुषको लिंगमें जगत्को उत्पन्न करनेवाले लिंगीकी ही पूजा करनी चाहिये। सृष्टिके अर्थको बतानेवाले चिह्नके रूपमें ही उसे लिंग कहा जाता है॥ १०५-१०६॥

लिंग परमपुरुष शिवका बोध कराता है। इस प्रकार शिव और शक्तिके मिलनके प्रतीकको ही शिवलिंग कहा गया है। अपने चिह्नके पूजनसे प्रसन्न होकर महादेव उस चिह्नके कार्यरूप जन्मादिको समाप्त कर देते हैं तथा पूजकको पुनर्जन्मकी प्राप्ति नहीं होती। अतः सभी लोगोंको यथाप्राप्त बाह्य और मानसिक षोडशोपचारोंसे शिवलिंगका पूजन करना चाहिये॥ १०७—१०९॥

रविवारको की गयी पूजा पुनर्जन्मका निवारण कर देती है। रविवारको महालिंगकी प्रणव (ॐ)-से ही पूजा करनी चाहिये। उस दिन पंचगव्यसे किया गया अभिषेक विशेष महत्त्वका होता है। गोबर, गोमूत्र, गोदुग्ध, उसका दही और गोघृत—ये पंचगव्य कहे जाते हैं॥ ११०-१११॥

गायका दूध, गायका दही और गायका घी—इन तीनोंको पूजनके लिये शहद और शक्करके साथ पृथक-पृथक् भी रखे और इन सबको मिलाकर सम्मिलितरूपसे पंचामृत भी तैयार कर ले। (इनके द्वारा शिवलिंगका अभिषेक एवं स्नान कराये), फिर गायके दूध और अन्नके मेलसे नैवेद्य तैयार करके प्रणव मन्त्रके उच्चारणपूर्वक उसे भगवान् शिवको अर्पित करे। सम्पूर्ण प्रणवको ध्वनिलिंग कहते हैं। स्वयम्भूलिंग नादस्वरूप होनेके कारण नादलिंग कहा गया है। यन्त्र या अर्घा बिन्दुस्वरूप होनेके कारण बिन्दुलिंगके रूपमें विख्यात है। उसमें अचलरूपसे प्रतिष्ठित जो शिवलिंग है, वह मकार-स्वरूप है, इसलिये मकारलिंग कहलाता है। सवारी निकालने आदिके लिये जो चरलिंग होता है, वह उकारस्वरूप होनेसे उकारलिंग कहा गया है तथा पूजाकी दीक्षा देनेवाले जो गुरु या आचार्य हैं, उनका विग्रह अकारका प्रतीक होनेसे अकारलिंग माना गया है। इस प्रकार प्रणवमें प्रतिष्ठित अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद और ध्वनिके रूपमें लिंगके छः भेद हैं। इन छहों लिंगोंकी नित्य पूजा करनेसे साधक जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ११२—११४॥

भक्तिपूर्वक की गयी शिवपूजा मनुष्योंको पुनर्जन्मसे छुटकारा दिलाती है। रुद्राक्षधारणसे एक चौथाई, विभूति (भस्म)-धारणसे आधा, मन्त्रजपसे तीन चौथाई और पूजासे पूर्ण फल प्राप्त होता है। शिवलिंग और शिवभक्तकी पूजा करके मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। हे द्विजो! जो इस अध्यायको ध्यानपूर्वक पढ़ता-सुनता है, उसकी शिवभक्ति सुदृढ़ होकर बढ़ती रहती है॥ ११५—११७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें पार्थिव पूजा आदिका प्रकार वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

षड्लिंगस्वरूप प्रणवका माहात्म्य, उसके सूक्ष्म रूप (ॐकार) और स्थूल रूप (पंचाक्षर मन्त्र)-का विवेचन, उसके जपकी विधि एवं महिमा, कार्यब्रह्मके लोकोंसे लेकर कारणरुद्रके लोकोंतकका विवेचन करके कालातीत, पंचावरणविशिष्ट शिवलोकके अनिर्वचनीय वैभवका निरूपण तथा शिवभक्तोंके सत्कारकी महत्ता

ऋषिगण बोले—हे महामुने! हे प्रभो! आप हमारे लिये क्रमश: षड्लिंगस्वरूप प्रणवका माहात्म्य तथा शिवभक्तके पूजनकी विधि बताइये॥ १॥

सूतजीने कहा—महर्षियो! आपलोग तपस्याके धनी हैं, आपने यह बड़ा सुन्दर प्रश्न उपस्थित किया है। किंतु इसका ठीक-ठीक उत्तर महादेवजी ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं। तथापि भगवान् शिवकी कृपासे ही मैं इस विषयका वर्णन करूँगा। वे भगवान् शिव हमारी और आपलोगोंकी रक्षाका महान् भार बारम्बार स्वयं ही ग्रहण करें॥ २-३॥

'प्र' नाम है प्रकृतिसे उत्पन्न संसाररूपी महासागरका। 'प्रणव' इसे पार करनेके लिये दूसरी (नव) नाव है। इसलिये विद्वान् इस ओंकारको 'प्रणव' की संज्ञा देते हैं। [ॐकार अपने जप करनेवाले साधकोंसे कहता है—] 'प्र-प्रपंच, न—नहीं है, व:—तुमलोगोंके लिये।' अत: इस भावको लेकर भी ज्ञानी पुरुष 'ओम्' को 'प्रणव' नामसे जानते हैं। इसका दूसरा भाव यह है—'**प्र-प्रकर्षेण, न-नयेत्, व:-युष्मान् मोक्षम् इति वा प्रणव:।** अर्थात् यह तुम सब उपासकोंको बलपूर्वक मोक्षतक पहुँचा देगा।' इस अभिप्रायसे भी इसे ऋषि-मुनि 'प्रणव' कहते हैं॥ ४-५॥

अपना जप करनेवाले योगियोंके तथा अपने मन्त्रकी पूजा करनेवाले उपासकके समस्त कर्मोंका नाश करके यह दिव्य नूतन ज्ञान देता है; इसलिये भी इसका नाम प्रणव है। उन मायारहित महेश्वरको ही नव अर्थात् नूतन कहते हैं। वे परमात्मा प्रकृष्टरूपसे नव अर्थात् शुद्धस्वरूप हैं, इसलिये 'प्रणव' कहलाते हैं। प्रणव साधकको नव अर्थात नवीन (शिवस्वरूप) कर देता है। इसलिये भी विद्वान् पुरुष उसे 'प्रणव' कहते हैं। अथवा प्रकृष्टरूपसे नव—दिव्य परमात्मज्ञान प्रकट करता है, इसलिये वह प्रणव कहा गया है॥ ६—७½॥

प्रणवके दो भेद बताये गये हैं—स्थूल और सूक्ष्म। एक अक्षररूप जो 'ओम्' है, उसे सूक्ष्म प्रणव जानना चाहिये और 'नम: शिवाय' इस पाँच अक्षरवाले मन्त्रको स्थूल प्रणव समझना चाहिये। जिसमें पाँच अक्षर व्यक्त नहीं हैं, वह सूक्ष्म है और जिसमें पाँचों अक्षर सुस्पष्टरूपसे व्यक्त हैं, वह स्थूल है। जीवन्मुक्त पुरुषके लिये सूक्ष्म प्रणवके जपका विधान है। वही उसके लिये समस्त साधनोंका सार है। (यद्यपि जीवन्मुक्तके लिये किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह सिद्धरूप है, तथापि दूसरोंकी दृष्टिमें जबतक उसका शरीर रहता है, तबतक उसके द्वारा प्रणव-जपकी सहज साधना स्वत: होती रहती है।) वह अपनी देहका विलय होनेतक सूक्ष्म प्रणव मन्त्रका जप और उसके अर्थभूत परमात्म-तत्त्वका अनुसंधान करता रहता है। जब शरीर नष्ट हो जाता है, तब वह पूर्ण ब्रह्मस्वरूप शिवको प्राप्त कर लेता है—यह सुनिश्चित है॥ ८—१०½॥

जो केवल मन्त्रका जप करता है, उसे निश्चय ही योगकी प्राप्ति होती है। जिसने छत्तीस करोड़ मन्त्रका जप कर लिया हो, उसे अवश्य ही योग प्राप्त हो जाता है। सूक्ष्म प्रणवके भी ह्रस्व और दीर्घके भेदसे दो रूप जानने चाहिये। अकार, उकार, मकार, बिन्दु, नाद, शब्द, काल और कला—इनसे युक्त जो प्रणव है, उसे 'दीर्घ प्रणव' कहते हैं। वह योगियोंके ही हृदयमें स्थित होता है। मकारपर्यन्त जो ओम् है, वह अ उ म्—इन तीन तत्त्वोंसे युक्त है। इसीको 'ह्रस्व प्रणव' कहते हैं। 'अ' शिव है, 'उ' शक्ति है और मकार इन दोनोंकी एकता है; वह त्रितत्त्वरूप है, ऐसा समझकर ह्रस्व प्रणवका जप

करना चाहिये। जो अपने समस्त पापोंका क्षय करना चाहते हैं, उनके लिये इस ह्रस्व प्रणवका जप अत्यन्त आवश्यक है॥ ११—१५॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत तथा शब्द, स्पर्श आदि इनके पाँच विषय—ये सब मिलकर दस वस्तुएँ मनुष्योंकी कामनाके विषय हैं। इनकी आशा मनमें लेकर जो कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न होते हैं, वे दस प्रकारके पुरुष प्रवृत्त अथवा प्रवृत्तिमार्गी कहलाते हैं तथा जो निष्कामभावसे शास्त्रविहित कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, वे निवृत्त अथवा निवृत्तिमार्गी कहे गये हैं। प्रवृत्त पुरुषोंको ह्रस्व प्रणवका ही जप करना चाहिये और निवृत्त पुरुषोंको दीर्घ प्रणवका। व्याहृतियों तथा अन्य मन्त्रोंके आदिमें इच्छानुसार शब्द और कलासे युक्त प्रणवका उच्चारण करना चाहिये। वेदके आदिमें और दोनों संध्याओंकी उपासनाके समय भी ओंकारका उच्चारण करना चाहिये॥ १६—१७१/२॥

प्रणवका नौ करोड़ जप करनेसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। पुनः नौ करोड़का जप करनेसे वह पृथ्वीतत्त्वपर विजय पा लेता है। तत्पश्चात् पुनः नौ करोड़का जप करके वह जल-तत्त्वको जीत लेता है। पुनः नौ करोड़ जपसे वह अग्नितत्त्वपर विजय पाता है। तदनन्तर फिर नौ करोड़का जप करके वह वायु-तत्त्वपर विजयी होता है और फिर नौ करोड़के जपसे आकाशको अपने अधिकारमें कर लेता है। इसी प्रकार नौ-नौ करोड़का जप करके वह क्रमशः गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दपर विजय पाता है, इसके बाद फिर नौ करोड़का जप करके अहंकारको भी जीत लेता है॥ १८—२१॥

हे द्विजो! मनुष्य एक हजार मन्त्रोंके जप करनेसे नित्य शुद्ध होता है, इसके अनन्तर अपनी सिद्धिके लिये जप किया जाता है॥ २२॥

इस तरह एक सौ आठ करोड़ प्रणवका जप करके उत्कृष्ट बोधको प्राप्त हुआ पुरुष शुद्ध योग प्राप्त कर लेता है। शुद्ध योगसे युक्त होनेपर वह जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। सदा प्रणवका जप और प्रणवरूपी शिवका ध्यान करते-करते समाधिमें स्थित हुआ महायोगी पुरुष साक्षात् शिव ही है; इसमें संशय नहीं है। पहले अपने शरीरमें प्रणवके ऋषि, छन्द और देवता आदिका न्यास करके फिर जप आरम्भ करना चाहिये। अकारादि मातृकावर्णोंसे युक्त प्रणवका अपने अंगोंमें न्यास करके मनुष्य ऋषि हो जाता है। मन्त्रोंके दशविध*

---

* मन्त्रोंके दस संस्कार ये हैं—जनन, दीपन, बोधन, ताड़न, अभिषेचन, विमलीकरण, जीवन, तर्पण, गोपन और आप्यायन। इनकी विधि इस प्रकार है—

भोजपत्रपर गोरोचन, कुंकुम, चन्दनादिसे आत्माभिमुख त्रिकोण लिखे, फिर तीनों कोणोंमें छः-छः समान रेखाएँ खींचे। ऐसा करनेपर ४९ त्रिकोण कोष्ठ बनेंगे। उनमें ईशानकोणसे मातृकावर्ण लिखकर देवताका आवाहन-पूजन करके मन्त्रका एक-एक वर्ण उच्चारण करके अलग पत्रपर लिखे। ऐसा करनेपर 'जनन' नामका प्रथम संस्कार होगा।

हंसमन्त्रका सम्पुट करनेसे एक हजार जपद्वारा मन्त्रका दूसरा 'दीपन' संस्कार होता है। यथा—हंसः रामाय नमः सोऽहम्।

हूँ-बीज-सम्पुटित मन्त्रका पाँच हजार जप करनेसे 'बोधन' नामक तीसरा संस्कार होता है। यथा—हूँ रामाय नमः हूँ।

फट्-सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'ताड़न' नामक चतुर्थ संस्कार होता है। यथा—फट् रामाय नमः फट्।

भूर्जपत्रपर मन्त्र लिखकर 'रों हंसः ओं' इस मन्त्रसे जलको अभिमन्त्रित करे और उस अभिमन्त्रित जलसे अश्वत्थपत्रादिद्वारा मन्त्रका अभिषेक करे। ऐसा करनेपर 'अभिषेक' नामक पाँचवाँ संस्कार होता है।

'ओं त्रों वषट्' इन वर्णोंसे सम्पुटित मन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'विमलीकरण' नामक छठा संस्कार होता है यथा—ओं त्रों वषट् रामाय नमः वषट् त्रों ओं।

स्वधा-वषट्-सम्पुटित मूलमन्त्रका एक हजार जप करनेसे 'जीवन' नामक सातवाँ संस्कार होता है। यथा—स्वधा वषट् रामाय नमः वषट् स्वधा।

दुग्ध, जल एवं घृतके द्वारा मूलमन्त्रसे सौ बार तर्पण करना ही 'तर्पण' संस्कार है।

ह्रीं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'गोपन' नामक नवम संस्कार होता है। यथा—ह्रीं रामाय नमः ह्रीं।

ह्रौं-बीज-सम्पुटित एक हजार जप करनेसे 'आप्यायन' नामक दसवाँ संस्कार होता है। यथा—ह्रौं रामाय नमः ह्रौं।

इस प्रकार संस्कृत किया हुआ मन्त्र शीघ्र सिद्धिप्रद होता है।

संस्कार, मातृकान्यास तथा षडध्वशोधन[1] आदिके साथ सम्पूर्ण न्यासका फल उसे प्राप्त हो जाता है। प्रवृत्ति तथा प्रवृत्ति-निवृत्तिसे मिश्रित भाववाले पुरुषोंके लिये स्थूल प्रणवका जप ही अभीष्टका साधक होता है॥ २३—२६१/२॥

क्रिया, तप और जपके योगसे शिवयोगी तीन प्रकारके होते हैं—[वे क्रमशः क्रियायोगी, तपोयोगी और जपयोगी कहलाते हैं।] जो धन आदि वैभवोंसे पूजा-सामग्रीका संचय करके हाथ आदि अंगोंसे नमस्कारादि क्रिया करते हुए इष्टदेवकी पूजामें लगा रहता है, वह 'क्रियायोगी' कहलाता है। पूजामें संलग्न रहकर जो परिमित भोजन करता हुआ बाह्य इन्द्रियोंको जीतकर वशमें किये रहता है और मनको भी वशमें करके परद्रोह आदिसे दूर रहता है, वह 'तपोयोगी' कहलाता है। इन सभी सद्‌गुणोंसे युक्त होकर जो सदा शुद्धभावसे रहता तथा समस्त काम आदि दोषोंसे रहित हो शान्तचित्तसे निरन्तर जप किया करता है, उसे महात्मा पुरुष 'जपयोगी' मानते हैं। जो मनुष्य सोलह प्रकारके उपचारोंसे शिवयोगी महात्माओंकी पूजा करता है, वह शुद्ध होकर सालोक्य आदिके क्रमसे उत्तरोत्तर उत्कृष्ट मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ २७—३१॥

हे द्विजो! अब मैं जपयोगका वर्णन करता हूँ, आप सब लोग ध्यान देकर सुनें। तपस्या करनेवालेके लिये जपका उपदेश किया गया है; क्योंकि वह जप करते-करते अपने आपको सर्वथा शुद्ध (निष्पाप) कर लेता है। हे ब्राह्मणो! पहले 'नमः' पद हो, उसके बाद चतुर्थी विभक्तिमें 'शिव' शब्द हो, तो पंचतत्त्वात्मक 'नमः शिवाय' मन्त्र होता है। इसे 'शिव-पंचाक्षर' कहते हैं। यह स्थूल प्रणवरूप है। इस पंचाक्षरके जपसे ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है। पंचाक्षरमन्त्रके आदिमें ओंकार लगाकर ही सदा उसका जप करना चाहिये। हे द्विजो! गुरुके मुखसे पंचाक्षरमन्त्रका उपदेश पाकर जहाँ सुखपूर्वक निवास किया जा सके, ऐसी उत्तम भूमिपर महीनेके पूर्वपक्ष (शुक्ल)-में प्रतिपदासे आरम्भ करके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीतक निरन्तर जप करता रहे। माघ और भादोंके महीने अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। यह समय सब समयोंसे उत्तमोत्तम माना गया है॥ ३२—३५१/२॥

साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन एक बार परिमित भोजन करे, मौन रहे, इन्द्रियोंको वशमें रखे, अपने स्वामी एवं माता-पिताकी नित्य सेवा करे। इस नियमसे रहकर जप करनेवाला पुरुष एक हजार जपसे ही शुद्ध हो जाता है, अन्यथा वह ऋणी होता है। भगवान् शिवका निरन्तर चिन्तन करते हुए पंचाक्षर-मन्त्रका पाँच लाख जप करे। [जपकालमें इस प्रकार ध्यान करे] कल्याणदाता भगवान् शिव कमलके आसनपर विराजमान हैं, उनका मस्तक श्रीगंगाजी तथा चन्द्रमाकी कलासे सुशोभित है, उनकी बायीं जाँघपर आदिशक्ति भगवती उमा बैठी हैं, वहाँ खड़े हुए बड़े-बड़े गण भगवान् शिवकी शोभा बढ़ा रहे हैं, महादेवजी अपने चार हाथोंमें मृगमुद्रा, टंक तथा वर एवं अभयकी मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। इस प्रकार सदा सबपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् सदाशिवका बार-बार स्मरण करते हुए हृदय अथवा सूर्यमण्डलमें पहले उनकी मानसिक पूजा करके फिर पूर्वाभिमुख हो पूर्वोक्त पंचाक्षरी विद्याका जप करे। उन दिनों साधक सदा शुद्ध कर्म ही करे। जपकी समाप्तिके दिन कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको प्रातःकाल नित्यकर्म सम्पन्न करके शुद्ध एवं सुन्दर स्थानमें [शौच-संतोषादि] नियमोंसे युक्त होकर शुद्ध हृदयसे पंचाक्षर-मन्त्रका बारह हजार जप करे॥ ३६—४२॥

तत्पश्चात् सपत्नीक पाँच ब्राह्मणोंका, जो श्रेष्ठ एवं शिवभक्त हों, वरण करे। इनके अतिरिक्त एक श्रेष्ठ आचार्यका भी वरण करे और उसे साम्बसदाशिवका स्वरूप समझे। ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—इन पाँचोंके प्रतीकस्वरूप श्रेष्ठ और शिवभक्त ब्राह्मणोंका वरण करनेके पश्चात् पूजन-सामग्रीको एकत्र

१-षडध्व-शोधनका कार्य हौत्री दीक्षाके अन्तर्गत है। उसमें पहले कुण्डमें या वेदीपर अग्निस्थापन होता है। वहाँ षडध्वाका शोधन करके होमसे ही दीक्षा सम्पन्न होती है। विस्तार-भयसे अधिक विवरण नहीं दिया जा रहा है।

करके भगवान् शिवका पूजन आरम्भ करे। विधिपूर्वक शिवकी पूजा सम्पन्न करके होम आरम्भ करे। अपने गृह्यसूत्रके अनुसार मुखान्त कर्म करनेके [अर्थात् परिसमूहन, उपलेपन, उल्लेखन, मृद्-उद्धरण और अभ्युक्षण—इन पंच भू-संस्कारोंके पश्चात् वेदीपर स्वाभिमुख अग्निको स्थापित करके कुशकण्डिका करनेके अनन्तर प्रज्वलित अग्निमें आज्यभागान्त आहुति देकर] पश्चात् होमका कार्य आरम्भ करे। कपिला गायके घीसे ग्यारह, एक सौ एक अथवा एक हजार एक आहुतियाँ स्वयं ही दे अथवा विद्वान् पुरुष शिवभक्त ब्राह्मणोंसे एक सौ आठ आहुतियाँ दिलाये ॥ ४३—४७ ॥

होमकर्म समाप्त होनेपर गुरुको दक्षिणाके रूपमें एक गाय और बैल देने चाहिये। ईशान आदिके प्रतीकरूप जिन पाँच ब्राह्मणोंका वरण किया गया हो, उनको ईशान आदिका ही स्वरूप समझे तथा आचार्यको साम्बसदाशिवका स्वरूप माने। इसी भावनाके साथ उन सबके चरण धोये और उनके चरणोदकसे अपने मस्तकको सींचे। ऐसा करनेसे वह साधक छत्तीस करोड़ तीर्थोंमें स्नान करनेका फल तत्काल प्राप्त कर लेता है। उन ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक दशांग अन्न देना चाहिये। गुरुपत्नीको पराशक्ति मानकर उनका भी पूजन करे। ईशानादि-क्रमसे उन सभी ब्राह्मणोंका उत्तम अन्नसे पूजन करके अपने वैभव-विस्तारके अनुसार रुद्राक्ष, वस्त्र, बड़ा और पूआ आदि अर्पित करे। तदनन्तर दिक्पालादिको बलि देकर ब्राह्मणोंको भरपूर भोजन कराये। इसके बाद देवेश्वर शिवसे प्रार्थना करके अपना जप समाप्त करे। इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है। फिर पाँच लाख जप करनेसे उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है। तदनन्तर पुनः पाँच लाख जप करनेपर मनुष्य अतलसे लेकर सत्यलोकतकके लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है ॥ ४८—५४ ॥

यदि अनुष्ठान पूर्ण होनेके पहले बीचमें ही साधककी मृत्यु हो जाय तो वह परलोकमें उत्तम भोग भोगनेके पश्चात् पुनः पृथ्वीपर जन्म लेकर पंचाक्षर-मन्त्रके जपका अनुष्ठान करता है। [समस्त लोकोंका ऐश्वर्य पानेके पश्चात् मन्त्रको सिद्ध करनेवाला] वह पुरुष यदि पुनः पाँच लाख जप करे तो उसे ब्रह्माजीका सामीप्य प्राप्त होता है। पुनः पाँच लाख जप करनेसे उसे सारूप्य नामक ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सौ लाख जप करनेसे वह साक्षात् ब्रह्माके समान हो जाता है। इस तरह कार्य-ब्रह्म (हिरण्यगर्भ)-का सायुज्य प्राप्त करके वह उस ब्रह्माका प्रलय होनेतक उस लोकमें यथेष्ट भोग भोगता है। फिर दूसरे कल्पका आरम्भ होनेपर वह ब्रह्माजीका पुत्र होता है। उस समय फिर तपस्या करके दिव्य तेजसे प्रकाशित होकर वह क्रमशः मुक्त हो जाता है ॥ ५५—५८ ॥

पृथ्वी आदि कार्यस्वरूप भूतोंद्वारा पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त ब्रह्माजीके चौदह लोक क्रमशः निर्मित हुए हैं। सत्यलोकसे ऊपर क्षमालोकतक जो चौदह भुवन हैं, वे भगवान् विष्णुके लोक हैं। उस क्षमालोक वाले श्रेष्ठ वैकुण्ठमें महाभोगी कार्यविष्णु कार्यलक्ष्मीसहित सबकी रक्षा करते हुए विराजमान रहते हैं। क्षमालोकसे ऊपर शुचिलोकपर्यन्त अट्ठाईस भुवन स्थित हैं। शुचिलोकके अन्तर्गत कैलासमें प्राणियोंका संहार करनेवाले रुद्रदेव विराजमान हैं। शुचिलोकसे ऊपर अहिंसालोकपर्यन्त छप्पन भुवनोंकी स्थिति है। अहिंसालोकका आश्रय लेकर जो ज्ञान-कैलास नामक नगर शोभा पाता है, उसमें कार्यभूत महेश्वर सबको अदृश्य करके रहते हैं। अहिंसालोकके अन्तमें कालचक्रकी स्थिति है। तदनन्तर कालातीत स्थित है; जहाँ कालचक्रेश्वर नामक शिव माहिष धर्मका आश्रय लेकर सबको कालसे संयुक्त किये रहते हैं ॥ ५९—६४½ ॥

असत्य, अशुचि, हिंसा, निर्दयता—ये असत्य आदि चार पाद कामरूप धारण करनेवाले शिवके अंश हैं। नास्तिकतायुक्त लक्ष्मी, दुःसंग, वेदबाह्य शब्द, क्रोधका संग, कृष्ण वर्ण—ये महामहिषके रूपवाले हैं। यहाँतक महेश्वरके विराट्-स्वरूपका वर्णन किया गया। वहींतक लोकोंका तिरोधान अथवा लय होता है। उससे नीचे कर्मोंका भोग है और उससे ऊपर ज्ञानका भोग, उसके नीचे कर्ममाया है और उसके ऊपर ज्ञानमाया ॥ ६५—६८ ॥

[अब मैं कर्ममाया और ज्ञानमायाका तात्पर्य बता रहा हूँ—] 'मा' का अर्थ है लक्ष्मी; उससे कर्मभोग यात—प्राप्त होता है, इसलिये वह माया अथवा कर्ममाया कहलाती है। इसी तरह मा अर्थात् लक्ष्मीसे ज्ञानभोग यात अर्थात् प्राप्त होता है, इसलिये उसे माया या ज्ञानमाया कहा गया है। उपर्युक्त सीमासे नीचे नश्वर भोग हैं और ऊपर नित्य भोग। उससे नीचे ही तिरोधान अथवा लय है, ऊपर तिरोधान नहीं है। वहाँसे नीचे ही कर्ममय पाशोंद्वारा बन्धन होता है। ऊपर बन्धनका सदा अभाव है। उससे नीचे ही जीव सकाम कर्मोंका अनुसरण करते हुए विभिन्न लोकों और योनियोंमें चक्कर काटते हैं। उससे ऊपरके लोकोंमें निष्काम कर्मका ही भोग बताया गया है॥ ६९—७१½॥

बिन्दुपूजामें तत्पर रहनेवाले उपासक वहाँसे नीचेके लोकोंमें ही घूमते हैं। उसके ऊपर तो निष्कामभावसे शिवलिंगकी पूजा करनेवाले उपासक ही जाते हैं। उसके नीचे शिवके अतिरिक्त अन्य देवताओंकी पूजा करनेवाले घूमते रहते हैं। जो एकमात्र शिवकी ही उपासनामें तत्पर हैं, वे उससे ऊपरके लोकोंमें जाते हैं। वहाँसे नीचे जीवकोटि है और ऊपर ईश्वरकोटि॥ ७२—७४॥

नीचे संसारी जीव रहते हैं और ऊपर मुक्त लोग। प्राकृत द्रव्योंसे पूजा करनेवाले उसके नीचे रहते हैं और पौरुष द्रव्योंसे पूजा करने वाले उससे ऊपर जाते हैं। उसके नीचे शक्तिलिंग है और उसके ऊपर शिवलिंग। उसके नीचे सगुण लिंग है और उसके ऊपर निर्गुण लिंग। उसके नीचे कल्पित लिंग है और उसके ऊपर कल्पित नहीं है। उसके नीचे आधिभौतिक लिंग और उसके ऊपर आध्यात्मिक लिंग है। उसके नीचे एक सौ बारह शक्ति-लोक हैं। उसके नीचे बिन्दुरूप और उसके ऊपर नादरूप है। उसके नीचे कर्मलोक है और उसके ऊपर ज्ञानलोक॥ ७५—७९॥

इसी प्रकार उसके ऊपर मद और अहंकारका नाश करनेवाली नम्रता है, वहाँ जन्मजनित तिरोधान नहीं है। उसका निवारण किये बिना वहाँ किसीका प्रवेश सम्भव नहीं है। इस प्रकार तिरोधानका निवारण करनेसे वहाँ ज्ञानशब्दका अर्थ ही प्रकाशित होता है। आधिभौतिक पूजा करनेवाले लोग उससे नीचेके लोकोंमें ही चक्कर काटते हैं। जो आध्यात्मिक उपासना करनेवाले हैं, वे ही उससे ऊपरको जाते हैं। इस प्रकार वहाँतक महालोकरूपी आत्मलिंगमें विभागको जानना चाहिये और प्रकृति आदि (प्रकृति, महत्, अहंकार, पंच तन्मात्राएँ) आठ बन्धोंको भी जाने। इस प्रकार सब लौकिक तथा वैदिक स्वरूपको जानना चाहिये॥ ८०—८३॥

जो सत्य-अहिंसा आदि धर्मोंसे युक्त होकर भगवान् शिवके पूजनमें तत्पर रहते हैं, वे अधर्मरूप भैंसेपर आरूढ कालचक्रको पार कर जाते हैं। कालचक्रेश्वरकी सीमातक जो विराट् महेश्वरलोक बताया गया है, उससे ऊपर वृषभके आकारमें धर्मकी स्थिति है। वह ब्रह्मचर्यका मूर्तिमान् रूप हैं। उसके सत्य, शौच, अहिंसा और दया—ये चार पाद हैं। वह शिवलोकके आगे स्थित है। क्षमा उसके सींग हैं, शम कान हैं, वे वेदध्वनिरूपी शब्दसे विभूषित हैं। आस्तिकता उसके दोनों नेत्र हैं, नि:श्वास ही उसकी श्रेष्ठ बुद्धि एवं मन है। क्रिया आदि धर्मरूपी जो वृषभ हैं, वे कारण आदिमें सर्वदा स्थित हैं—ऐसा जानना चाहिये। उस क्रियारूप वृषभाकार धर्मपर कालातीत शिव आरूढ़ होते हैं॥ ८४—८७॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी जो अपनी-अपनी आयु है, उसीको दिन कहते हैं। जहाँ धर्मरूपी वृषभकी स्थिति है, उससे ऊपर न दिन है, न रात्रि और वहाँ जन्म-मरण आदि भी नहीं है। फिर कारणस्वरूप ब्रह्माके भी कारण सत्यलोकपर्यन्त चौदह लोक स्थित हैं, जो पांचभौतिक गन्ध आदिसे परे हैं। उनकी सनातन स्थिति है। सूक्ष्म गन्ध ही उनका स्वरूप है॥ ८८—८९½॥

इसके ऊपर कारणरूप विष्णुके चौदह लोक स्थित हैं। उनसे भी ऊपर फिर कारणरूपी रुद्रके अट्ठाईस लोकोंकी स्थिति मानी गयी है। फिर उनसे भी ऊपर कारणेश शिवके छप्पन लोक विद्यमान हैं। तदनन्तर शिवसम्मत ब्रह्मचर्यलोक है और वहीं पाँच आवरणोंसे युक्त ज्ञानमय कैलास है; वहाँपर पाँच मण्डलों, पाँच

ब्रह्मकलाओं और आदिशक्तिसे संयुक्त आदिलिंग प्रतिष्ठित है। उसे परमात्मा शिवका शिवालय कहा गया है। वहीं पराशक्तिसे युक्त परमेश्वर शिव निवास करते हैं। वे सृष्टि, पालन, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह—इन पाँचों कृत्योंमें प्रवीण हैं। उनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दस्वरूप है॥ ९०—९५॥

वे सदा ध्यानरूपी धर्ममें ही स्थित रहते हैं और सदा सबपर अनुग्रह किया करते हैं। वे स्वात्माराम हैं और समाधिरूपी आसनपर आसीन हो सुशोभित होते हैं। कर्म एवं ध्यान आदिका अनुष्ठान करनेसे क्रमशः साधनपथमें आगे बढ़नेपर उनका दर्शन साध्य होता है। नित्य-नैमित्तिक आदि कर्मोंद्वारा देवताओंका यजन करनेसे भगवान् शिवके समाराधन-कर्ममें मन लगता है। क्रिया आदि जो शिवसम्बन्धी कर्म हैं, उनके द्वारा शिवज्ञान सिद्ध करे। जिन्होंने शिवतत्त्वका साक्षात्कार कर लिया है अथवा जिनपर शिवकी कृपादृष्टि पड़ चुकी है, वे सब मुक्त ही हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ९६—९८॥

आत्मस्वरूपसे जो स्थिति है, वही मुक्ति है। एकमात्र अपने आत्मामें रमण या आनन्दका अनुभव करना ही मुक्तिका स्वरूप है। जो पुरुष क्रिया, तप, जप, ज्ञान और ध्यानरूपी धर्मोंमें भलीभाँति स्थित है, वह शिवका साक्षात्कार करके स्वात्मारामत्वस्वरूप मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे अशुद्धिको दूर कर देते हैं, उसी प्रकार कृपा करनेमें कुशल भगवान् शिव अपने भक्तके अज्ञानको मिटा देते हैं। अज्ञानकी निवृत्ति हो जानेपर शिवज्ञान स्वतः प्रकट हो जाता है। शिवज्ञानसे अपना विशुद्ध स्वरूप आत्मारामत्व प्राप्त होता है और आत्मारामत्वकी सम्यक् सिद्धि हो जानेपर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ ९९—१०२॥

(शिव मन्त्रका) सौ लाख जप करनेसे ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है और फिर सौ लाख जप करनेसे विष्णुपद प्राप्त होता है॥ १०३॥

पुनः सौ लाख (शिवमन्त्रका) जप करनेसे रुद्रका पद प्राप्त होता है। उसके बाद फिर सौ लाख जप करनेपर ऐश्वर्यमय पदकी प्राप्ति हो जाती है॥ १०४॥

फिर इसी प्रकार सम्यक् रूपसे जप करनेपर शिवलोकके आदिभूत अर्थात् शिवलोकके आधारभूत निर्माता कालचक्रको प्राप्त किया जा सकता है॥ १०५॥

यह कालचक्र पंचचक्रोंसे युक्त है, जो एकके पश्चात् एकमें स्थित हैं। सृष्टि और मोहसे युक्त ब्रह्मचक्र, भोग तथा मोहसे युक्त वैष्णवचक्र, कोप एवं मोहसे युक्त रौद्रचक्र, भ्रमणसे युक्त ईश्वरचक्र और ज्ञान तथा मोहसे युक्त शिवचक्र है। ऐसा इन पाँच चक्रोंके विषयमें बुद्धिमानोंका कहना है॥ १०६-१०७॥

पुनः दस करोड़ (शिवमन्त्रका) जप करनेपर कारणब्रह्मका पद प्राप्त होता है। तदनन्तर दस करोड़ जप करनेसे ऐश्वर्ययुक्त पदकी प्राप्ति होती है॥ १०८॥

इस प्रकार क्रमशः जप करता हुआ प्राणी महान् ओजस्वी विष्णुके पदको प्राप्तकर पुनः उसी क्रमसे जपता हुआ महात्माओंके उस ऐश्वर्यपदको प्राप्त करता है॥ १०९॥

बिना असावधानी किये १०५ करोड़ मन्त्रोंका जप करनेके पश्चात् वह प्राणी पाँच आवरणों (पशु, पाश, माया, शक्ति, रोध)-से बाहर स्थित शिवलोक प्राप्त करता है॥ ११०॥

वहाँ (उस शिवलोकमें) राजसमण्डप है, नन्दीश्वरका उत्तम निवास है। तपस्यारूपी वृषभ वहींपर दिखायी देता है॥ १११॥

वहींपर पाँचों आवरणोंसे बाहर सद्योजात (अर्थात् तत्काल आवरणरहित हुए भगवान् शिव)-का स्थान है। पुनः चतुर्थ आवरणमें वामदेवका स्थान है॥ ११२॥

उसके पश्चात् तृतीयावरणमें अघोर शिवका, दूसरे आवरणमें साम्बशिवका मंगलमय तथा प्रथमावरणमें ईशान शिवका निवासस्थान है। उसके पश्चात् पंचम मण्डप है, जहाँ ध्यान और धर्मका निवास रहता है॥ ११३-११४॥

तदनन्तर चतुर्थ मण्डप है, वहाँपर चन्द्रशेखरकी मूर्तिसे युक्त भगवान् बलिनाथका वासस्थान है, जो पूर्ण अमृतको प्रदान करनेवाला है॥ ११५॥

तृतीय मण्डपमें सोमस्कन्दका परम निवासस्थान है। उसके पश्चात् द्वितीय मण्डप है, आस्तिक लोग जिसे

नृत्यमण्डप कहते हैं॥ ११६॥

प्रथम मण्डपमें मूलमायाका स्थान है, वहाँपर अत्यन्त शोभा वास करती है। उसके परे गर्भगृह है, जहाँपर शिवका लिंगस्थान है॥ ११७॥

नन्दीस्थानके पश्चात् शिवके वैभवको कोई नहीं जान सकता है। नन्दीश्वर (गर्भगृहसे) बाहर रहकर शिवके पंचाक्षर मन्त्रकी उपासना करते हैं॥ ११८॥

इस प्रकार गुरुपरम्परासे नन्दीश्वर और सनत्कुमारके संवादकी जानकारी मुझे हुई है। उसके पश्चात्‌का परम रहस्य स्वसंवेद्य है, जिसका अनुभव स्वयं शिव करते हैं॥ ११९॥

आस्तिकजनोंका कहना है कि साक्षात् शिवकी कृपासे ही शिवलोकके ऐश्वर्यको लोग जान सकते हैं, अन्यथा असम्भव है॥ १२०॥

इस प्रकारसे शिवका साक्षात्कार प्राप्तकर जितेन्द्रिय ब्राह्मण मुक्त हो जाते हैं अर्थात् मोक्षको प्राप्त कर लेते हैं। अब मैं अन्य क्षत्रियादि वर्णोंके विषयमें कहूँगा। उसे आदरपूर्वक आप सब सुनें॥ १२१॥

यदि ब्राह्मणको आयु प्राप्त करनेकी इच्छा है तो उसे गुरुके द्वारा बताये गये उपदेशके अनुसार इस शिवके पंचाक्षरमन्त्रका विधिपूर्वक पाँच लाख जप करना चाहिये॥ १२२॥

यदि स्त्री स्त्रीत्व अर्थात् स्त्रीयोनिसे मुक्त होना चाहती है तो वह भी पाँच लाख पंचाक्षर मन्त्रोंका जप करे। उन मन्त्रोंके प्रभावसे पुरुषका जन्म लेकर वह क्रमशः मुक्त हो जाती है॥ १२३॥

क्षत्रिय पाँच लाख मन्त्रोंका जप करके क्षत्रियत्वको दूर कर लेता है अर्थात् क्षत्रियवर्णमें रहनेवाले गुणोंसे वह मुक्त हो जाता है। तदनन्तर पुनः पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेपर वह ब्राह्मण हो जाता है। फिर उतनेही मन्त्रोंके जपसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है और तत्पश्चात् उसी क्रमसे पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेपर वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। वैश्य पंचलक्ष मन्त्रोंका जप करनेसे अपने वैश्यत्व (गुण)-का परित्याग कर देता है। पुनः पंचलक्ष मन्त्रका जप करनेपर वह मन्त्र-क्षत्रिय कहलानेका अधिकारी हो जाता है। उसके बाद पाँच लाख मन्त्रोंका जप करनेसे क्षत्रियत्वको दूर कर देता है। तदनन्तर पुनः पंचलक्ष मन्त्रका जप करके मन्त्र-ब्राह्मण कहलानेका अधिकारी हो जाता है। इसी प्रकार शूद्र भी मन्त्रके अन्तमें नमः शब्द लगाकर यदि २५ लाख मन्त्रोंका जप करता है तो वह शूद्र मन्त्रविप्रत्वको प्राप्त द्विज (ब्राह्मण) हो जाता है। चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, ब्राह्मण हो या अन्य ही कोई वर्ण हो, पंचाक्षर मन्त्रका जप करनेसे सभी शुद्ध हो जाते हैं॥ १२४—१२८॥

जो कामनापूर्तिके लिये आतुर है, उसे चाहिये कि वह नमः को आदि-अन्तमें लगाकर शिवमन्त्रका सदैव जप करता रहे। स्त्रियों तथा शूद्रोंके लिये मन्त्रजपका जैसा स्वरूप कहा गया है, उसीके अनुसार गुरुको भी चाहिये कि वह उन्हें निर्देश दे॥ १२९॥

साधकको चाहिये कि वह पाँच लाख जप करनेके पश्चात् भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये महाभिषेक एवं नैवेद्य निवेदन करके शिवभक्तोंका पूजन करे॥ १३०॥

शिवभक्तकी पूजासे भगवान् शिव बहुत प्रसन्न होते हैं। शिव और उनके भक्तमें कोई भेद नहीं है। वह साक्षात् शिवस्वरूप ही है॥ १३१॥

शिवस्वरूप मन्त्रको धारण करके वह शिव ही हो जाता है, शिवभक्तका शरीर शिवरूप ही है। अतः उसकी सेवामें तत्पर रहना चाहिये॥ १३२॥

जो शिवके भक्त हैं, वे लोक और वेदकी सारी क्रियाओंको जानते हैं। जो क्रमशः जितना-जितना शिवमन्त्रका जप कर लेता है, उसके शरीरको उतना ही उतना शिवका सामीप्य प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। शिवभक्त स्त्रीका रूप देवी पार्वतीका ही स्वरूप है। वह जितना मन्त्र जपती है, उसे उतना ही देवीका सांनिध्य प्राप्त होता जाता है॥ १३३—१३४१/२॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको शिवका पूजन करना चाहिये, इससे वह साक्षात् मन्त्ररूप हो जाता है। साधक स्वयं शिवस्वरूप होकर पराशक्तिका पूजन करे। शक्ति, वेर (मूर्ति) तथा लिंगका चित्र बनाकर अथवा मिट्टी आदिसे इनकी आकृतिका निर्माण करके प्राणप्रतिष्ठापूर्वक निष्कपट

भावसे इनका पूजन करे॥ १३५-१३६॥

शिवलिंगको शिव मानकर अपनेको शक्तिरूप समझकर, शक्तिलिंगको देवी और अपनेको शिवरूप समझकर शिवलिंगको नादरूप तथा शक्तिको बिन्दुरूप मानकर परस्पर सटे हुए शक्तिलिंग और शिवलिंगके प्रति उपप्रधान और प्रधानकी भावना रखते हुए जो शिव और शक्तिका पूजन करता है, वह मूलरूपी भावना करनेके कारण शिवरूप ही है। शिवभक्त शिवमन्त्ररूप होनेके कारण शिवके ही स्वरूप हैं॥ १३७—१३९॥

जो सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करता है, उसे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। जो शिवलिंगोपासक शिवभक्तकी सेवा आदि करके उसे आनन्द प्रदान करता है, उस विद्वान्पर भगवान् शिव बड़े प्रसन्न होते हैं। पाँच, दस या सौ सपत्नीक शिवभक्तोंको बुलाकर भोजन आदिके द्वारा पत्नीसहित उनका सदैव समादर करे। धनमें, देहमें और मन्त्रमें शिवभावना रखते हुए उन्हें शिव और शक्तिका स्वरूप जानकर निष्कपटभावसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेवाला पुरुष शिवशक्तिस्वरूप होकर इस भूतलपर फिर जन्म नहीं लेता है॥ १४०—१४२१/२॥

शिवभक्तकी नाभिके नीचेका भाग ब्रह्मभाग तथा नाभिसे ऊपर कण्ठपर्यन्त तकका भाग विष्णुभाग और मुख शिवलिंगस्वरूप कहा गया है। मृत्युके पश्चात् (जिनका) दाहादि संस्कार हुआ हो अथवा जो दाहादि संस्कारसे रहित हों, उन पितरोंके उद्देश्यसे शिवको ही आदिपितर मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये। पुनः आदिमाता शिवकी शक्तिकी पूजाकर शिवभक्तोंका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष मरनेके पश्चात् क्रमशः पितृलोकको प्राप्त करता है। तदनन्तर उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। दस क्रियावान् पुरुषोंसे युक्त योगियोंकी अपेक्षा एक तपोयुक्त प्राणी श्रेष्ठ है॥ १४३—१४६॥

सौ तपोयुक्तों (तपस्वियों)-की अपेक्षा एक जपयुक्त जापक विशिष्ट है। सहस्र जपयुक्त जापकोंकी अपेक्षा एक शिवज्ञानीका विशेष महत्त्व है॥ १४७॥

एक लाख शिवज्ञानियोंसे शिवका ध्यान करनेवाला एक ध्यानी श्रेष्ठ है और करोड़ ध्यानियोंकी अपेक्षा शिवके लिये एक समाधिस्थ श्रेष्ठ है॥ १४८॥

इस प्रकार उत्तरोत्तर वैशिष्ट्य-क्रमसे की जानेवाली पूजासे प्राप्त फलमें भी विशिष्टता आ जाती है, जिसको जानना विद्वानोंके लिये भी कठिन है। इस कारणसे शिवभक्तकी महिमाको कौन मनुष्य जान सकता है। जो मनुष्य शिवशक्ति और शिवभक्तकी पूजा भक्तिपूर्वक करता है, वह शिवस्वरूप होकर सदैव कल्याणको प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण इस वेदसम्मत अध्यायको अर्थसहित पढ़ता है, वह शिवज्ञानी होकर शिवके साथ आनन्द प्राप्त करता है। हे मुनीश्वरो! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि यह अध्याय वह शिवभक्तोंको सुनाये॥ १४९—१५२॥

हे बुधजनो! ऐसा करनेसे भगवान् शिवकी कृपासे उनका अनुग्रह प्राप्त हो जाता है॥ १५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहितामें प्रणवयुक्त पंचाक्षर मन्त्रका माहात्म्य-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

बन्धन और मोक्षका विवेचन, शिवपूजाका उपदेश, लिंग आदिमें शिवपूजनका विधान, भस्मके स्वरूपका निरूपण और महत्त्व, शिवके भस्मधारणका रहस्य, शिव एवं गुरु शब्दकी व्युत्पत्ति तथा विघ्नशान्तिके उपाय और शिवधर्मका निरूपण

ऋषिगण बोले—हे सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ! बन्धन और मोक्षका स्वरूप क्या है? यह हमें बताइये॥ १/२॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] मैं बन्धन और मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षके उपायका वर्णन करूँगा। आपलोग आदरपूर्वक सुनें। जो प्रकृति आदि आठ बन्धनोंसे बँधा हुआ है, वह जीव बद्ध कहलाता है और

जो उन आठों बन्धनोंसे छूटा हुआ है, उसे मुक्त कहते हैं। प्रकृति आदिको वशमें कर लेना मोक्ष कहलाता है। बन्धन आगन्तुक है और मोक्ष स्वत:सिद्ध है। बद्ध जीव जब बन्धनसे मुक्त हो जाता है, तब उसे मुक्त जीव कहते हैं॥ १—३॥

प्रकृति, बुद्धि (महत्तत्त्व), त्रिगुणात्मक अहंकार और पाँच तन्मात्राएँ—इन्हें ज्ञानी पुरुष प्रकृत्याद्यष्टक मानते हैं। प्रकृति आदि आठ तत्त्वोंके समूहसे देहकी उत्पत्ति हुई है। देहसे कर्म उत्पन्न होता है और फिर कर्मसे नूतन देहकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार बार-बार जन्म और कर्म होते रहते हैं॥ ४-५॥

शरीरको स्थूल, सूक्ष्म और कारणके भेदसे तीन प्रकारका जानना चाहिये। स्थूल शरीर (जाग्रत्-अवस्थामें) व्यापार करानेवाला, सूक्ष्म शरीर (जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थाओंमें) इन्द्रिय-भोग प्रदान करनेवाला तथा कारणशरीर (सुषुप्तावस्थामें) आत्मानन्दकी अनुभूति करानेवाला कहा गया है। जीवको उसके प्रारब्ध-कर्मानुसार सुख-दु:ख प्राप्त होते हैं। वह अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप सुख और पापकर्मोंके फलस्वरूप दु:ख प्राप्त करता है। अत: कर्मपाशसे बँधा हुआ जीव अपने त्रिविध शरीरसे होनेवाले शुभाशुभ कर्मोंद्वारा सदा चक्रकी भाँति बार-बार घुमाया जाता है॥ ६—८॥

इस चक्रवत् भ्रमणकी निवृत्तिके लिये चक्रकर्ताका स्तवन एवं आराधन करना चाहिये। प्रकृति आदि जो आठ पाश बतलाये गये हैं, उनका समुदाय ही महाचक्र है और जो प्रकृतिसे परे हैं, वे परमात्मा शिव हैं। भगवान् महेश्वर ही प्रकृति आदि महाचक्रके कर्ता हैं; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे हैं। जैसे बकायन नामक वृक्षका थाला जलको पीता और उगलता है, उसी प्रकार शिव प्रकृति आदिको अपने वशमें करके उसपर शासन करते हैं। उन्होंने सबको वशमें कर लिया है, इसीलिये वे शिव कहे गये हैं। शिव ही सर्वज्ञ, परिपूर्ण तथा नि:स्पृह हैं॥ ९—११॥

सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्त शक्ति आदिसे संयुक्त होना और अपने भीतर अनन्त शक्तियोंको धारण करना—महेश्वरके इन छ: प्रकारके मानसिक ऐश्वर्योंको केवल वेद जानता है। अत: भगवान् शिवके अनुग्रहसे ही प्रकृति आदि आठों तत्त्व वशमें होते हैं। भगवान् शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये उन्हींका पूजन करना चाहिये॥ १२-१३॥

शिव तो परिपूर्ण हैं, नि:स्पृह हैं; उनकी पूजा कैसे हो सकती है? [इसका उत्तर यह है कि] भगवान् शिवके उद्देश्यसे—उनकी प्रसन्नताके लिये किया हुआ सत्कर्म उनके कृपाप्रसादको प्राप्त करानेवाला होता है। शिवलिंगमें, शिवकी प्रतिमामें तथा शिवभक्तजनोंमें शिवकी भावना करके उनकी प्रसन्नताके लिये पूजा करनी चाहिये। वह पूजन शरीरसे, मनसे, वाणीसे और धनसे भी किया जा सकता है। उस पूजासे प्रकृतिसे परे महेश्वर पूजकपर विशेष कृपा करते हैं; यह सत्य है॥ १४—१६॥

शिवकी कृपासे कर्म आदि सभी बन्धन अपने वशमें हो जाते हैं। कर्मसे लेकर प्रकृतिपर्यन्त सब कुछ जब वशमें हो जाता है, तब वह जीव मुक्त कहलाता है और स्वात्मारामरूपसे विराजमान होता है। परमेश्वर शिवकी कृपासे जब कर्मजनित शरीर अपने वशमें हो जाता है, तब भगवान् शिवके लोकमें निवास प्राप्त होता है; इसीको सालोक्यमुक्ति कहते हैं। जब तन्मात्राएँ वशमें हो जाती हैं, तब जीव जगदम्बासहित शिवका सामीप्य प्राप्त कर लेता है। यह सामीप्यमुक्ति है, उसके आयुध आदि और क्रिया आदि सब कुछ भगवान् शिवके समान हो जाते हैं। भगवान्का महाप्रसाद प्राप्त होनेपर बुद्धि भी वशमें हो जाती है। बुद्धि प्रकृतिका कार्य है। उसका वशमें होना सार्ष्टिमुक्ति कही गयी है। पुन: भगवान्का महान् अनुग्रह प्राप्त होनेपर प्रकृति वशमें हो जायगी॥ १७—२१॥

उस समय भगवान् शिवका मानसिक ऐश्वर्य बिना यत्नके ही प्राप्त हो जायगा। सर्वज्ञता आदि जो शिवके ऐश्वर्य हैं, उन्हें पाकर मुक्त पुरुष अपनी आत्मामें ही विराजमान होता है। वेद और शास्त्रोंमें विश्वास रखनेवाले विद्वान् पुरुष इसीको सायुज्यमुक्ति कहते हैं। इस प्रकार लिंग आदिमें शिवकी पूजा करनेसे क्रमश: मुक्ति स्वत:

प्राप्त हो जाती है। इसलिये शिवका कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके लिये तत्सम्बन्धी क्रिया आदिके द्वारा उन्हींका पूजन करना चाहिये। शिवक्रिया, शिवतप, शिवमन्त्र-जप, शिवज्ञान और शिवध्यानके लिये सदा उत्तरोत्तर अभ्यास बढ़ाना चाहिये। प्रतिदिन प्रात:कालसे रातको सोते समयतक और जन्मकालसे लेकर मृत्युपर्यन्त सारा समय भगवान् शिवके चिन्तनमें ही बिताना चाहिये। सद्योजातादि मन्त्रों तथा नाना प्रकारके पुष्पोंसे जो शिवकी पूजा करता है, वह शिवको ही प्राप्त होगा॥ २२—२५१/२॥

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत! अब आप लिंग आदिमें शिवजीकी पूजाका विधान बताइये॥ २६॥

सूतजी बोले—हे द्विजो! मैं लिंगोंके क्रमका यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, आप लोग सुनिये। वह प्रणव ही समस्त अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला प्रथम लिंग है। उसे सूक्ष्म प्रणवरूप समझिये। सूक्ष्मलिंग निष्कल होता है और स्थूललिंग सकल। पंचाक्षर मन्त्रको ही स्थूललिंग कहते हैं। उन दोनों प्रकारके लिंगोंका पूजन तप कहलाता है। वे दोनों ही लिंग साक्षात् मोक्ष देनेवाले हैं। पौरुषलिंग और प्रकृतिलिंगके रूपमें बहुत-से लिंग हैं। उन्हें भगवान् शिव ही विस्तारपूर्वक बता सकते हैं; दूसरा कोई नहीं जानता। पृथ्वीके विकारभूत जो-जो लिंग ज्ञात हैं, उन-उनको मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ २७—३०॥

उनमें प्रथम स्वयम्भूलिंग, दूसरा बिन्दुलिंग, तीसरा प्रतिष्ठित लिंग, चौथा चरलिंग और पाँचवाँ गुरुलिंग है। देवर्षियोंकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उनके समीप प्रकट होनेके लिये पृथ्वीके अन्तर्गत बीजरूपसे व्याप्त हुए भगवान् शिव वृक्षोंके अंकुरकी भाँति भूमिको भेदकर नादलिंग रूपमें व्याप्त हो जाते हैं। वे स्वत: व्यक्त हुए शिव ही स्वयं प्रकट होनेके कारण स्वयम्भू नाम धारण करते हैं। ज्ञानीजन उन्हें स्वयम्भूलिंगके रूपमें जानते हैं॥ ३१—३३॥

उस स्वयम्भूलिंगकी पूजासे उपासकका ज्ञान स्वयं ही बढ़ने लगता है। सोने-चाँदी आदिके पत्रपर, भूमिपर अथवा वेदीपर अपने हाथसे लिखित जो शुद्ध प्रणव मन्त्ररूप लिंग है, उसमें तथा यन्त्रलिंगका आलेखन करके उसमें भगवान् शिवकी प्रतिष्ठा और आवाहन करे। ऐसा बिन्दुनादमय लिंग स्थावर और जंगम दोनों ही प्रकारका होता है। इसमें शिवका दर्शन भावनामय ही है; इसमें सन्देह नहीं है। जिसको जहाँ भगवान् शंकरके प्रकट होनेका विश्वास हो, उसके लिये वहीं प्रकट होकर वे अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। अपने हाथसे लिखे हुए यन्त्रमें अथवा अकृत्रिम स्थावर आदिमें भगवान् शिवका आवाहन करके सोलह उपचारोंसे उनकी पूजा करे। ऐसा करनेसे साधक स्वयं ही ऐश्वर्यको प्राप्त कर लेता है और इस साधनके अभ्याससे उसको ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है॥ ३४—३८॥

देवताओं और ऋषियोंने आत्मसिद्धिके लिये अपने हाथसे वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक शुद्ध मण्डलमें शुद्ध भावनाद्वारा जिस उत्तम शिवलिंगकी स्थापना की है, उसे पौरुषलिंग कहते हैं तथा वही प्रतिष्ठित लिंग कहलाता है। उस लिंगकी पूजा करनेसे सदा पौरुष ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। महान् ब्राह्मणों और महाधनी राजाओंद्वारा किसी शिल्पीसे शिवलिंगका निर्माण कराकर मन्त्रपूर्वक जिस लिंगकी स्थापना तथा प्रतिष्ठा की गयी हो, वह प्राकृतलिंग है, वह [शिवलिंग] प्राकृत ऐश्वर्य-भोगको देनेवाला होता है। जो शक्तिशाली और नित्य होता है, उसे पौरुषलिंग कहते हैं और जो दुर्बल तथा अनित्य होता है, वह प्राकृतलिंग कहलाता है॥ ३९—४३॥

लिंग, नाभि, जिह्वा, नासिकाका अग्र भाग और शिखाके क्रमसे कटि, हृदय और मस्तक तीनों स्थानोंमें जो लिंगकी भावना की गयी है, उस आध्यात्मिक लिंगको ही चरलिंग कहते हैं। पर्वतको पौरुषलिंग बताया गया है और भूतलको विद्वान् पुरुष प्राकृतलिंग मानते हैं। वृक्ष आदिको पौरुषलिंग जानना चाहिये। गुल्म आदिको प्राकृतलिंग कहा गया है। साठी नामक धान्यको प्राकृतलिंग समझना चाहिये और शालि (अगहनी) एवं गेहूँको पौरुषलिंग। अणिमा आदि आठों सिद्धियोंको देनेवाला जो ऐश्वर्य है, उसे पौरुष ऐश्वर्य जानना चाहिये। सुन्दर स्त्री तथा धन आदि विषयोंको आस्तिक पुरुष प्राकृत ऐश्वर्य कहते हैं॥ ४४—४६१/२॥

चरलिंगोंमें सबसे प्रथम रसलिंगका वर्णन किया जाता है। रसलिंग ब्राह्मणोंको उनकी सारी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाला है। शुभकारक बाणलिंग क्षत्रियोंको महान् राज्यकी प्राप्ति करानेवाला है। सुवर्णलिंग वैश्योंको महाधनपतिका पद प्रदान करानेवाला है तथा सुन्दर शिलालिंग शूद्रोंको महाशुद्धि देनेवाला है। स्फटिकलिंग तथा बाणलिंग सब लोगोंको उनकी समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। अपना न हो तो दूसरेका स्फटिक या बाणलिंग भी पूजाके लिये निषिद्ध नहीं है। स्त्रियों, विशेषत: सधवाओंके लिये पार्थिवलिंगकी पूजाका विधान है। प्रवृत्तिमार्गमें स्थित विधवाओंके लिये स्फटिकलिंगकी पूजा बतायी गयी है। परंतु विरक्त विधवाओंके लिये रसलिंगकी पूजाको ही श्रेष्ठ कहा गया है। हे सुव्रतो! बचपनमें, युवावस्थामें और बुढ़ापेमें भी शुद्ध स्फटिकमय शिवलिंगका पूजन स्त्रियोंको समस्त भोग प्रदान करनेवाला है। गृहासक्त स्त्रियोंके लिये पीठपूजा भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाली है॥ ४७—५३॥

प्रवृत्तिमार्गमें चलनेवाला पुरुष सुपात्र गुरुके सहयोगसे ही समस्त पूजाकर्म सम्पन्न करे। इष्टदेवका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनीके चावलसे बने हुए [खीर आदि पक्वान्नोंद्वारा] नैवेद्य अर्पण करे। पूजाके अन्तमें शिवलिंगको पधराकर घरके भीतर पृथक् सम्पुटमें स्थापित करे। जो निवृत्तिमार्गी पुरुष हैं, उनके लिये हाथपर ही शिवलिंग-पूजाका विधान है। उन्हें भिक्षादिसे प्राप्त हुए अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें निवेदित करना चाहिये। निवृत्त पुरुषोंके लिये सूक्ष्मलिंग ही श्रेष्ठ बताया जाता है। वे विभूतिके द्वारा पूजन करें और विभूतिको ही नैवेद्यरूपसे निवेदित भी करें। पूजा करके उस लिंगको सदा अपने मस्तकपर धारण करें॥ ५४—५६१/२॥

विभूति तीन प्रकारकी बतायी गयी है—लोकाग्निजनित, वेदाग्निजनित और शिवाग्निजनित। लोकाग्निजनित या लौकिक भस्मको द्रव्योंकी शुद्धिके लिये लाकर रखे। मिट्टी, लकड़ी और लोहेके पात्रोंकी, धान्योंकी, तिल आदि द्रव्योंकी, वस्त्र आदिकी तथा पर्युषित वस्तुओंकी शुद्धि भस्मसे होती है। कुत्ते आदिसे दूषित हुए पात्रोंकी भी शुद्धि भस्मसे ही मानी गयी है। वस्तु-विशेषकी शुद्धिके लिये यथायोग्य सजल अथवा निर्जल भस्मका उपयोग करना चाहिये॥ ५७—६०॥

वेदाग्निजनित जो भस्म है, उसको उन-उन वैदिक कर्मोंके अन्तमें धारण करना चाहिये। मन्त्र और क्रियासे जनित जो होमकर्म है, वह अग्निमें भस्मका रूप धारण करता है। उस भस्मको धारण करनेसे वह कर्म आत्मामें आरोपित हो जाता है। अघोर-मूर्तिधारी शिवका जो अपना मन्त्र है, उसे पढ़कर बेलकी लकड़ीको जलाये। उस मन्त्रसे अभिमन्त्रित अग्निको शिवाग्नि कहा गया है। उसके द्वारा जले हुए काष्ठका जो भस्म है, वह शिवाग्निजनित है। कपिला गायके गोबर अथवा गायमात्रके गोबरको तथा शमी, पीपल, पलाश, वट, अमलतास और बिल्व—इनकी लकड़ियोंको शिवाग्निसे जलाये। वह शुद्ध भस्म शिवाग्निजनित माना गया है अथवा कुशकी अग्निमें शिवमन्त्रके उच्चारणपूर्वक काष्ठको जलाये। फिर उस भस्मको कपड़ेसे अच्छी तरह छानकर नये घड़ेमें भरकर रख दे। उसे समय-समयपर अपनी कान्ति या शोभाकी वृद्धिके लिये धारण करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सम्मानित एवं पूजित होता है॥ ६१—६५१/२॥

पूर्वकालमें भगवान् शिवने भस्म शब्दका ऐसा ही अर्थ प्रकट किया था। जैसे राजा अपने राज्यमें सारभूत करको ग्रहण करता है, जैसे मनुष्य सस्य आदिको जलाकर (पकाकर) उसका सार ग्रहण करते हैं तथा जैसे जठरानल नाना प्रकारके भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थोंको भारी मात्रामें ग्रहण करके उसे जलाकर सारतर वस्तु ग्रहण करता और उस सारतर वस्तुसे स्वदेहका पोषण करता है, उसी प्रकार प्रपंचकर्ता परमेश्वर शिवने भी अपनेमें आधेय रूपसे विद्यमान प्रपंचको जलाकर भस्मरूपसे उसके सारतत्त्वको ग्रहण किया है। प्रपंचको दग्ध करके शिवने उसके भस्मको अपने शरीरमें लगाया है। उन्होंने विभूति (भस्म) पोतनेके बहाने जगत्के सारको ही ग्रहण किया है॥ ६६—७०॥

शिवने अपने शरीरमें अपने लिये रत्नस्वरूप भस्मको इस प्रकार स्थापित किया है—आकाशके सारतत्त्वसे केश, वायुके सारतत्त्वसे मुख, अग्निके सारतत्त्वसे हृदय,

जलके सारतत्त्वसे कटिभाग और पृथ्वीके सारतत्त्वसे घुटनेको धारण किया है। इसी तरह उनके सारे अंग विभिन्न वस्तुओंके साररूप हैं॥ ७१-७२॥

महेश्वरने अपने ललाटके मध्यमें तिलकरूपसे जो त्रिपुण्ड्र धारण किया है, वह ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका सारतत्त्व है। वे इन सब वस्तुओंको जगत्के अभ्युदयका हेतु मानते हैं। इन भगवान् शिवने ही प्रपंचके सार-सर्वस्वको अपने वशमें किया है। अतः इन्हें अपने वशमें करनेवाला दूसरा कोई नहीं है, इसीलिये वे शिव कहे जाते हैं। जैसे समस्त मृगोंका हिंसक मृग (पशु) सिंह कहलाता है और उसकी हिंसा करनेवाला दूसरा कोई मृग नहीं है, अतएव उसे सिंह कहा गया है॥ ७३—७५१/२॥

शकारका अर्थ है नित्यसुख एवं आनन्द। इकारको पुरुष और वकारको अमृतस्वरूपा शक्ति कहा गया है। इन सबका सम्मिलित रूप ही शिव कहलाता है। अतः इस रूपमें भगवान् शिवको अपनी आत्मा मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये। [साधक] पहले अपने अंगोंमें भस्म लगाये, फिर ललाटमें उत्तम त्रिपुण्ड्र धारण करे। पूजाकालमें सजल भस्मका उपयोग होता है और द्रव्यशुद्धिके लिये निर्जल भस्मका॥ ७६—७८॥

दिन हो अथवा रात्रि, नारी हो या पुरुष; पूजा करनेके लिये उसे भस्म जलसहित ही त्रिपुण्ड्ररूपमें (ललाटपर) धारण करना चाहिये। जलमिश्रित भस्मको त्रिपुण्ड्ररूपमें धारणकर जो व्यक्ति शिवकी पूजा करता है, उसे सांग शिवकी पूजाका फल तुरंत प्राप्त होता है, यह सुनिश्चित है। जो (प्राणी) शिवमन्त्रके द्वारा भस्मको धारण करता है, वह सभी (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) आश्रमोंमें श्रेष्ठ होता है। उसे शिवाश्रमी कहा जाता है; क्योंकि वह एकमात्र शिवको ही परम श्रेष्ठ मानता है। शिव-व्रतमें एकमात्र शिवमें ही निष्ठा रखनेवालेको न तो अशौचका दोष लगता है और न तो सूतकका। ललाटके अग्रभागमें अपने हाथसे या गुरुके हाथसे श्वेत भस्म या मिट्टीसे तिलक लगाना चाहिये, यह शिवभक्तका लक्षण है॥ ७९—८२१/२॥

जो गुणोंका रोध करता है, वह गुरु है—यह 'गुरु' शब्दका विग्रह कहा गया है। गुणातीत परम शिव राजस आदि सविकार गुणोंका अवरोध करते हैं—दूर हटाते हैं, इसलिये वे सबके गुरुरूपका आश्रय लेकर स्थित हैं। गुरु विश्वासी शिष्योंके तीनों गुणोंको पहले दूर करके उन्हें शिवतत्त्वका बोध कराते हैं, इसीलिये गुरु कहलाते हैं॥ ८३—८५॥

अतः बुद्धिमान् शिष्यको उन गुरुके शरीरको गुरुलिंग समझना चाहिये। गुरुजीकी सेवा-शुश्रूषा ही गुरुलिंगकी पूजा होती है। शरीर, मन और वाणीसे की गयी गुरुसेवासे शास्त्रज्ञान प्राप्त होता है। अपनी शक्तिसे शक्य अथवा अशक्य जिस बातका भी आदेश गुरुने दिया हो, उसका पालन प्राण और धन लगाकर पवित्रात्मा शिष्य करता है, इसीलिये इस प्रकार अनुशासित रहनेवालेको शिष्य कहा जाता है॥ ८६—८८॥

सुशील शिष्यको शरीर-धारणके सभी साधन गुरुको अर्पित करके तथा अन्नका पहला पाक उन्हें समर्पित करके उनकी आज्ञा लेकर भोजन करना चाहिये। शिष्यको निरन्तर गुरुके सान्निध्यके कारण पुत्र कहा जाता है। जिह्वारूप लिंगसे मन्त्ररूपी शुक्रका कानरूपी योनिमें आधान करके जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे मन्त्रपुत्र कहते हैं। उसे अपने पितास्वरूप गुरुकी सेवा करनी ही चाहिये। शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता तो संसारप्रपंचमें पुत्रको डुबोता है। ज्ञान देनेवाला गुरुरूप पिता संसारसागरसे पार कर देता है। इन दोनों पिताओंके अन्तरको जानकर गुरुरूप पिताकी अपने कमाये धनसे तथा अपने शरीरसे विशेष सेवा-पूजा करनी चाहिये। पैरसे केशपर्यन्त जो गुरुके शरीरके अंग हैं, उनकी भिन्न-भिन्न प्रकारसे यथा—स्वयं अर्जित धनके द्वारा उपयोगकी सामग्री प्राप्त कराकर, अपने हाथोंसे पैर दबाकर, स्नान-अभिषेक आदि कराकर तथा नैवेद्य-भोजनादि देकर पूजा करनी चाहिये॥ ८९—९४॥

गुरुकी पूजा ही परमात्मा शिवकी पूजा है। गुरुके उपयोगसे बचा हुआ सारा पदार्थ आत्मशुद्धि करनेवाला होता है॥ ९५॥

हे द्विजो! गुरुका शेष, जल तथा अन्न आदिसे बना

हुआ शिवोच्छिष्ट शिवभक्तों और शिष्योंके लिये ग्राह्य तथा भोज्य है। गुरुकी आज्ञाके बिना उपयोगमें लाया हुआ सब कुछ वैसा ही है, जैसे चोर चोरी करके लायी हुई वस्तुका उपयोग करता है। गुरुसे भी विशेष ज्ञानवान् पुरुष मिल जाय, तो उसे भी यत्नपूर्वक गुरु बना लेना चाहिये। अज्ञानरूपी बन्धनसे छूटना ही जीवमात्रके लिये साध्य पुरुषार्थ है। अतः जो विशेष ज्ञानवान् है, वही जीवको उस बन्धनसे छुड़ा सकता है॥ ९६—९७१/२॥

कर्मकी सांगोपांग पूर्तिके लिये पहले विघ्नशान्ति करनी चाहिये। निर्विघ्नतापूर्वक तथा सांग सम्पन्न हुआ कार्य ही सफल होता है। इसलिये सभी कर्मोंके प्रारम्भमें बुद्धिमान् व्यक्तिको विघ्नविनाशक गणपतिका पूजन करना चाहिये। सभी बाधाओंको दूर करनेके लिये विद्वान् व्यक्तिको सभी देवताओंकी पूजा करनी चाहिये॥ ९८—९९१/२॥

ज्वर आदि ग्रन्थिरोग आध्यात्मिक बाधा कही जाती है। पिशाच और सियार आदिका दीखना, बाँबीका जमीनपर उठ आना, अकस्मात् छिपकली आदि जन्तुओंका गिरना, घरमें कच्छप, साँप, दुष्ट स्त्रीका दीखना, वृक्ष, नारी और गौ आदिकी प्रसूतिका दर्शन होना आगामी दुःखका संकेत होता है। अतः यह आधिभौतिक बाधा मानी जाती है। किसी अपवित्र वस्तुका गिरना, बिजली गिरना, महामारी, ज्वरमारी, हैजा, गोमारी, मसूरिका (एक प्रकारका शीतला रोग), जन्मनक्षत्रपर ग्रहण, संक्रान्ति, अपनी राशिमें अनेक ग्रहोंका योग होना तथा दुःस्वप्नदर्शन आदि आधिदैविक बाधा कही जाती है॥ १००—१०४१/२॥

शव, चाण्डाल और पतितका स्पर्श अथवा इनका घरके भीतर आना भावी दुःखका सूचक होता है। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि उस दोषकी शान्तिके लिये शान्तियज्ञ करे। किसी मन्दिर, गोशाला, यज्ञशाला अथवा घरके आँगनमें जहाँ दो हाथपर ऊँची जमीन हो, उसे अच्छी तरह साफ करके उसपर एक भार धान रखकर उसे फैला दे। उसके बीचमें कमल बनाये तथा कोणसहित आठों दिशाओंमें भी कमल बना दे। फिर प्रधान कलशमें सूत्र बाँधकर तथा गुग्गुलकी धूप दिखाकर उसे बीचमें तथा दिशाओंमें बनाये गये कमलोंपर अन्य आठ कलश स्थापित कर दे॥ १०५—१०९॥

आठ कलशोंमें कमल, आम्रपल्लव, कुशा डालकर [गन्ध आदि] पंचद्रव्योंसे युक्त मन्त्रपूत जलसे उन्हें भरे। उन समस्त कलशोंमें नीलम आदि नवरत्नोंको क्रमशः डालना चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् यजमान कर्मकाण्डको जाननेवाले सपत्नीक आचार्यका वरण करे। भगवान् विष्णुकी स्वर्णप्रतिमा तथा इन्द्रादि देवताओंकी भी प्रतिमाएँ बनाकर उन कलशोंमें छोड़े। पूर्णपात्रसे ढके मध्यकलशपर भगवान् विष्णुका आवाहन करके उनकी पूजा करे। पूर्व दिशासे प्रारम्भ करके सभी दिशाओंमें मन्त्रानुसार इन्द्रादिका क्रमशः पूजन करना चाहिये। उनके नामोंमें चतुर्थी विभक्तिसहित नमःका प्रयोग करते हुए उनका पूजन करना चाहिये॥ ११०—११३॥

आवाहनादि सारे कार्य आचार्यद्वारा सम्पन्न कराये तथा आचार्य और ऋत्विजोंसहित उन देवताओंके मन्त्रोंको सौ-सौ बार जपे। कलशोंकी पश्चिम दिशामें जपके बाद होम करना चाहिये। हे विद्वज्जनो! वह जपहोम करोड़, लाख, हजार अथवा १०८ की संख्यामें हो सकता है। इस विधिसे एक दिन, नौ दिन अथवा चालीस दिनोंमें देश-कालकी व्यवस्थाके अनुसार [शान्तियज्ञ] यथोचित रूपमें सम्पन्न करे॥ ११४—११६॥

शान्तिके लिये शमी तथा वृत्ति (रोजगार)-के लिये पलाशकी समिधासे, अन्न, घृत तथा [सुगन्धित] द्रव्योंसे उन देवताओंके नाम अथवा मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये। प्रारम्भमें जिस द्रव्यका उपयोग किया हो, अन्ततक उसीका प्रयोग करते रहना चाहिये। अन्तिम दिन पुण्याहवाचन कराकर कलशोंके जलसे प्रोक्षण करना चाहिये। तत्पश्चात् आहुतिकी संख्याके बराबर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। हे विद्वानो! आचार्य और ऋत्विजोंको हविष्यका भोजन कराना चाहिये॥ ११७—११९॥

सूर्य आदि नवग्रहोंका होमके अन्तमें पूजन करना चाहिये। ऋत्विजोंको क्रमानुसार नवरत्नोंकी दक्षिणा देनी चाहिये। तत्पश्चात् दशदान करे और उसके बाद भूयसीदान करना चाहिये। बालक, यज्ञोपवीती, गृहस्थाश्रमी

और वानप्रस्थियोंको धनका दान करना चाहिये। तत्पश्चात् कन्या, सधवा और विधवा स्त्रियोंको देनेके अनन्तर बची हुई तथा यज्ञमें बची हुई सारी सामग्री आचार्यको समर्पित कर देनी चाहिये॥ १२०—१२२॥

उत्पात, महामारी और दुःखोंके स्वामी यमराज माने जाते हैं। इसलिये यमराजकी प्रसन्नताके लिये कालप्रतिमाका दान करना चाहिये। सौ निष्क या दस निष्कके परिमाणकी पाश और अंकुश धारण की हुई पुरुषके आकारकी स्वर्णप्रतिमा बनाये। उस स्वर्णप्रतिमाका दक्षिणासहित दान करना चाहिये। उसके बाद पूर्णायु प्राप्त करनेहेतु तिलका दान करना चाहिये। रोगनिवारणके लिये घृतमें अपनी परछाईं देखकर दान करना चाहिये। हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये, धनाभावमें सौ अथवा यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ १२३—१२६½॥

भूत आदिकी शान्तिके लिये भैरवकी महापूजा करे। अन्तमें भगवान् शिवका महाभिषेक और नैवेद्य समर्पित करके ब्राह्मणोंको भूरिभोजन कराना चाहिये॥ १२७-१२८॥

इस प्रकार यज्ञ सम्पन्न करनेसे दोषोंकी शान्ति हो जाती है। इस शान्तियज्ञका प्रतिवर्ष फाल्गुनमासमें आयोजन करना चाहिये। अशुभ दर्शन होनेपर तुरंत अथवा एक महीनेके भीतर यज्ञका आयोजन करना चाहिये। महापाप हो जाय, तो भैरवकी पूजा करनी चाहिये। महाव्याधि हो जाय, तो यज्ञका पुनः संकल्प लेकर उसे सम्पन्न करना चाहिये। अकिंचन दरिद्र व्यक्ति तो केवल दीपदान कर दे। उतना भी न हो सके, तो स्नान करके कुछ दान कर दे। एक सौ आठ, एक हजार, दस हजार, एक लाख या एक करोड़ मन्त्रोंसे भगवान् सूर्यको नमस्कार करे। इस नमस्कारात्मक यज्ञसे सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं॥ १२९—१३३॥

भगवान् शिवकी इस प्रकार प्रार्थना करे—मेरी बुद्धि आपके ज्योतिर्मय पूर्णस्वरूपमें लगी है। मुझमें जो अहंता थी, वह आपके दर्शनसे नष्ट हो गयी है। मैं अपनी देहसे आपको प्रणाम करता हूँ। हे प्रभो! आप महान् हैं। आप पूर्ण हैं और मेरा स्वरूप भी आप ही हैं, तो भी इस समय मैं आपका दास हूँ। इस प्रकार यथायोग्य नमस्कारपूर्वक स्वात्मयज्ञ करना चाहिये। तत्पश्चात् भगवान् शिवको नैवेद्य देकर ताम्बूल समर्पित करना चाहिये॥ १३४—१३६॥

तब स्वयं १०८ बार शिवकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। एक हजार, दस हजार, एक लाख या करोड़ प्रदक्षिणा दूसरोंके द्वारा करायी जा सकती है। शिवकी प्रदक्षिणासे सारे पापोंका तत्क्षण नाश हो जाता है। दुःखका मूल व्याधि है और व्याधिका मूल पापमें होता है। धर्माचरणसे ही पापोंका नाश बताया गया है। भगवान् शिवके उद्देश्यसे किया गया धर्माचरण पापोंका नाश करनेमें समर्थ होता है॥ १३७—१३९॥

शिवके धर्मोंमें प्रदक्षिणाको प्रधान कहा गया है। क्रियासे जपरूप होकर प्रणव ही प्रदक्षिणा बन जाता है। जन्म और मरणका द्वन्द्व ही मायाचक्र कहा गया है। शिवका मायाचक्र ही बलिपीठ कहलाता है। बलिपीठसे आरम्भ करके प्रदक्षिणाके क्रमसे एक पैरके पीछे दूसरा पैर रखते हुए बलिपीठमें पुनः प्रवेश करना चाहिये। तत्पश्चात् नमस्कार करना चाहिये। इसे प्रदक्षिणा कहा जाता है। बलिपीठसे बाहर निकलना जन्म प्राप्त होना और नमस्कार करना ही आत्मसमर्पण है॥ १४०—१४३॥

जन्म और मरणरूप द्वन्द्व भगवान् शिवकी मायासे प्राप्त है। जो इन दोनोंको शिवकी मायाको ही अर्पित कर देता है, वह फिर शरीरके बन्धनमें नहीं पड़ता। जबतक शरीर रहता है, तबतक जो क्रियाके ही अधीन है, वह जीव बद्ध कहलाता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीरोंको वशमें कर लेनेपर जीवका मोक्ष हो जाता है, ऐसा ज्ञानी पुरुषोंका कथन है। मायाचक्रके निर्माता भगवान् शिव ही परम कारण हैं। वे अपनी मायाके दिये हुए द्वन्द्वका स्वयं ही परिमार्जन करते हैं। अतः शिवके द्वारा कल्पित हुआ द्वन्द्व उन्हींको समर्पित कर देना चाहिये॥ १४४—१४६½॥

हे विद्वानो! प्रदक्षिणा और नमस्कार शिवको अतिप्रिय हैं, ऐसा जानना चाहिये। भगवान् शिवकी प्रदक्षिणा, नमस्कार और षोडशोपचार पूजन अत्यन्त फलदायी होता है। ऐसा कोई पाप इस पृथ्वीपर नहीं

है, जो शिवप्रदक्षिणासे नष्ट न हो सके। इसलिये प्रदक्षिणाका आश्रय लेकर सभी पापोंका नाश कर लेना चाहिये॥ १४७—१४९॥

जो शिवकी पूजामें तत्पर हो, वह मौन रहे, सत्य आदि गुणोंसे संयुक्त हो तथा क्रिया, जप, तप, ज्ञान और ध्यानमेंसे एक-एकका अनुष्ठान करता रहे। ऐश्वर्य, दिव्य शरीरकी प्राप्ति, ज्ञानका उदय, अज्ञानका निवारण और भगवान् शिवके सामीप्यका लाभ—ये क्रमशः क्रिया आदिके फल हैं। निष्काम कर्म करनेसे अज्ञानका निवारण हो जानेके कारण शिवभक्त पुरुष उसके यथोक्त फलको पाता है। शिवभक्त पुरुष देश, काल, शरीर और धनके अनुसार यथायोग्य क्रिया आदिका अनुष्ठान करे॥ १५०—१५३॥

न्यायोपार्जित उत्तम धनसे निर्वाह करते हुए विद्वान् पुरुष शिवके स्थानमें निवास करे। जीवहिंसा आदिसे रहित और अत्यन्त क्लेशशून्य जीवन बिताते हुए पंचाक्षर-मन्त्रके जपसे अभिमन्त्रित अन्न और जलको सुखस्वरूप माना गया है अथवा यह भी कहते हैं कि दरिद्र पुरुषके लिये भिक्षासे प्राप्त हुआ अन्न ज्ञान देनेवाला होता है, शिवभक्तको भिक्षान्न प्राप्त हो, तो वह शिवभक्तिको बढ़ानेवाला होता है। शिवयोगी पुरुष भिक्षान्नको शम्भुसत्र कहते हैं। जिस किसी भी उपायसे जहाँ-कहीं भी भूतलपर शुद्ध अन्नका भोजन करते हुए सदा मौनभावसे रहे और अपने साधनका रहस्य किसीपर प्रकट न करे। भक्तोंके समक्ष ही शिवके माहात्म्यको प्रकाशित करे। शिवमन्त्रके रहस्यको भगवान् शिव ही जानते हैं, दूसरा कोई नहीं जान पाता॥ १५४—१५८॥

शिवभक्तको सदा शिवलिंगके आश्रित होकर वास करना चाहिये। हे ब्राह्मणो! शिवलिंगाश्रयके प्रभावसे वह भक्त भी शिवरूप ही हो जाता है। चरलिंगकी पूजा करनेसे वह क्रमशः अवश्य ही मुक्त हो जाता है। महर्षि व्यासने पूर्वकालमें जो कहा था और मैंने जैसा सुना था, उस सब साध्य और साधनका संक्षेपमें मैंने वर्णन कर दिया। आप सबका कल्याण हो और भगवान् शिवमें आपकी दृढ़ भक्ति बनी रहे। जो मनुष्य इस अध्यायका पाठ करता है अथवा जो इसे सुनता है, हे विज्ञजनो! वह भगवान् शिवकी कृपासे शिवज्ञानको प्राप्त कर लेता है॥ १५९—१६२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें शिवलिङ्गके माहात्म्यका वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

पार्थिव शिवलिंगके पूजनका माहात्म्य

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आप चिरंजीवी हों। आप धन्य हैं, जो परम शिवभक्त हैं। आपने शुभ फलको देनेवाली शिवलिंगकी महिमा सम्यक् प्रकारसे बतायी। अब आप व्यासजीद्वारा वर्णित भगवान् शिवके सर्वोत्कृष्ट पार्थिव लिंगकी महिमाका वर्णन करें॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! मैं शिवके पार्थिव लिंगकी महिमा बता रहा हूँ, आप लोग भक्ति और आदरसहित इसका श्रवण करें। हे द्विजो! अभीतक बताये हुए सभी शिवलिंगोंमें पार्थिव लिंग सर्वोत्तम है। उसकी पूजा करनेसे अनेक भक्तोंको सिद्धि प्राप्त हुई है॥ ३-४॥

हे ब्राह्मणो! ब्रह्मा, विष्णु, प्रजापति तथा अनेक ऋषियोंने पार्थिव लिंगकी पूजा करके अपना सम्पूर्ण अभीष्ट प्राप्त किया है। देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षसगण और अन्य प्राणियोंने भी उसकी पूजा करके परम सिद्धि प्राप्त की है॥ ५-६॥

सत्ययुगमें मणिलिंग, त्रेतायुगमें स्वर्णलिंग, द्वापरयुगमें पारदलिंग और कलियुगमें पार्थिवलिंगको श्रेष्ठ कहा गया है। भगवान् शिवकी सभी आठ* मूर्तियोंमें पार्थिव मूर्ति श्रेष्ठ है। किसी अन्यद्वारा न पूजी हुई (नवनिर्मित) पार्थिव मूर्तिकी पूजा करनेसे तपस्यासे भी अधिक फल

* पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—ये शिवकी आठ मूर्तियाँ हैं।

मिलता है ॥ ७-८ ॥

जैसे सभी देवताओंमें शंकर ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहे जाते हैं, उसी प्रकार सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी नदियोंमें गंगा ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कही जाती है, वैसे ही सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिव लिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी मन्त्रोंमें प्रणव (ॐ) महान् कहा गया है, उसी प्रकार शिवका यह पार्थिवलिंग श्रेष्ठ, आराध्य तथा पूजनीय होता है। जैसे सभी वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ कहा जाता है, उसी प्रकार सभी लिंगमूर्तियोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी पुरियोंमें काशीको श्रेष्ठतम कहा गया है, वैसे ही सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग श्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी व्रतोंमें शिवरात्रिका व्रत सर्वोपरि है, उसी प्रकार सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। जैसे सभी देवियोंमें शैवी शक्ति प्रधान मानी जाती है, उसी प्रकार सभी शिवलिंगोंमें पार्थिवलिंग प्रधान माना जाता है ॥ ९—१५ ॥

जो पार्थिवलिंगका निर्माण करनेके बाद किसी अन्य देवताकी पूजा करता है, उसकी वह पूजा तथा स्नान-दान आदिकी क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। पार्थिव-पूजन अत्यन्त पुण्यदायी तथा सब प्रकारसे धन्य करनेवाला, दीर्घायुष्य देनेवाला है। यह तुष्टि, पुष्टि और लक्ष्मी प्रदान करनेवाला है, अतः श्रेष्ठ साधकोंको पूजन अवश्य करना चाहिये ॥ १६-१७ ॥

उपलब्ध उपचारोंसे भक्ति-श्रद्धापूर्वक पार्थिव लिंगका पूजन करना चाहिये; यह सभी कामनाओंकी सिद्धि देनेवाला है। जो सुन्दर वेदीसहित पार्थिव लिंगका निर्माण करके उसकी पूजा करता है, वह इस लोकमें धन-धान्यसे सम्पन्न होकर अन्तमें रुद्रलोकको प्राप्त करता है। जो पार्थिवलिंगका निर्माण करके बिल्वपत्रोंसे ग्यारह वर्षतक उसका त्रिकाल पूजन करता है, उसके पुण्यफलको सुनिये। वह अपने इसी शरीरसे रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उसके दर्शन और स्पर्शसे मनुष्योंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वह जीवन्मुक्त ज्ञानी और शिवस्वरूप है; इसमें संशय नहीं है। उसके दर्शनमात्रसे भोग और मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ १८—२२ ॥

जो पार्थिव शिवलिंगका निर्माण करके जीवनपर्यन्त नित्य उसका पूजन करता है, वह शिवलोक प्राप्त करता है। वह असंख्य वर्षोंतक भगवान् शिवके सान्निध्यमें शिवलोकमें वास करता है और कोई कामना शेष रहनेपर वह भारतवर्षमें सम्राट् बनता है। जो निष्कामभावसे नित्य उत्तम पार्थिवलिंगका पूजन करता है, वह सदाके लिये शिवलोकमें वास करता है और शिवसायुज्यको प्राप्त कर लेता है ॥ २३—२५ ॥

यदि ब्राह्मण पार्थिव शिवलिंगका पूजन नहीं करता है, तो वह अत्यन्त दारुण शूलप्रोत नामक घोर नरकमें जाता है। किसी भी विधिसे सुन्दर पार्थिवलिंगका निर्माण करना चाहिये, किंतु उसमें पंचसूत्रविधान नहीं करना चाहिये ॥ २६-२७ ॥

उसे अखण्ड रूपमें बनाना चाहिये, खण्डितरूपमें नहीं। खण्डित लिंगका निर्माण करनेवाला पूजाका फल नहीं प्राप्त करता है। मणिलिंग, स्वर्णलिंग, पारदलिंग, स्फटिकलिंग, पुष्परागलिंग और पार्थिवलिंगको अखण्ड ही बनाना चाहिये ॥ २८-२९ ॥

अखण्ड लिंग चरलिंग होता है और दो खण्डवाला अचरलिंग कहा गया है। इस प्रकार चर और अचर लिंगका यह खण्ड-अखण्ड विधान कहा गया है। स्थावरलिंगमें वेदिका भगवती महाविद्याका रूप है और लिंग भगवान् महेश्वरका स्वरूप है। इसलिये स्थावर (अचर)-लिंगोंमें वेदिकायुक्त द्विखण्ड लिंग ही श्रेष्ठ माना गया है ॥ ३०-३१ ॥

द्विखण्ड (वेदिकायुक्त) स्थावर लिंगका विधानपूर्वक निर्माण करना चाहिये। शिवसिद्धान्तके जाननेवालोंने अखण्ड लिंगको जंगम (चर)-लिंग माना है। अज्ञानतावश ही कुछ लोग चरलिंगको दो खण्डोंमें (वेदिका और लिंग) बना लेते हैं, शास्त्रोंको जाननेवाले सिद्धान्तमर्मज्ञ मुनिजन ऐसा नहीं करते। जो मूढ़जन अचरलिंगको अखण्ड तथा चरलिंगको द्विखण्ड रूपमें बनाते हैं, उन्हें शिवपूजाका फल नहीं प्राप्त होता ॥ ३२—३४ ॥

इसलिये अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक शास्त्रोक्तविधिसे चरलिंगको अखण्ड तथा अचरलिंगको द्विखण्ड बनाना

चाहिये। अखण्ड चरलिंगमें की गयी पूजासे सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति होती है। द्विखण्ड चरलिंगकी पूजा महान् अनिष्टकर कही गयी है। उसी प्रकार अखण्ड अचरलिंगकी पूजासे कामना सिद्ध नहीं होती; उससे तो अनिष्ट प्राप्त होता है—ऐसा शास्त्रज्ञ विद्वानोंने कहा है॥ ३५—३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें पार्थिव शिवलिंगके पूजनका माहात्म्यवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

पार्थिव शिवलिंगके निर्माणकी रीति तथा वेद-मन्त्रोंद्वारा उसके पूजनकी विस्तृत एवं संक्षिप्त विधिका वर्णन

सूतजी बोले—हे महर्षियो! अब मैं वैदिक कर्मके प्रति श्रद्धा-भक्ति रखनेवाले लोगोंके लिये वेदोक्त मार्गसे ही पार्थिव-पूजाकी पद्धतिका वर्णन करता हूँ। यह पूजा भोग और मोक्ष दोनोंको देनेवाली है। आह्निकसूत्रोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार स्नान और सन्ध्योपासना करके पहले ब्रह्मयज्ञ करे। तत्पश्चात् देवताओं, ऋषियों, सनकादि मनुष्यों और पितरोंका तर्पण करे। मनुष्यको चाहिये कि अपनी रुचिके अनुसार सम्पूर्ण नित्यकर्मको पूर्ण करके शिवस्मरणपूर्वक भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करे। तत्पश्चात् सम्पूर्ण मनोवांछित फलकी सिद्धिके लिये ऊँची भक्तिभावनाके साथ उत्तम पार्थिव लिंगकी वेदोक्त विधिसे भलीभाँति पूजा करे॥ १—४॥

नदी या तालाबके किनारे, पर्वतपर, वनमें, शिवालयमें अथवा और किसी पवित्र स्थानमें पार्थिव-पूजा करनेका विधान है। हे ब्राह्मणो! शुद्ध स्थानसे निकाली हुई मिट्टीको यत्नपूर्वक लाकर बड़ी सावधानीके साथ शिवलिंगका निर्माण करे। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीली और शूद्रके लिये काली मिट्टीसे शिवलिंग बनानेका विधान है अथवा जहाँ जो मिट्टी मिल जाय, उसीसे शिवलिंग बनाये॥ ५—७॥

शिवलिंग बनानेके लिये प्रयत्नपूर्वक मिट्टीका संग्रह करके उस शुभ मृत्तिकाको अत्यन्त शुद्ध स्थानमें रखे। फिर उसकी शुद्धि करके जलसे सानकर पिण्ड बना ले और वेदोक्त मार्गसे धीरे-धीरे सुन्दर पार्थिव लिंगकी रचना करे। तत्पश्चात् भोग और मोक्षरूप फलकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उसका पूजन करे। उस पार्थिवलिंगके पूजनकी जो विधि है, उसे मैं विधानपूर्वक बता रहा हूँ, आप लोग सुनिये॥ ८—१०॥

'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए समस्त पूजन-सामग्रीका प्रोक्षण करे—उसपर जल छिड़के। इसके बाद **'भूरसि'**[१] इत्यादि मन्त्रसे क्षेत्रसिद्धि करे॥ ११॥

फिर **'आपो अस्मान्०'**[२] इस मन्त्रसे जलका संस्कार करे। इसके बाद **'नमस्ते रुद्र०'**[३] इस मन्त्रसे स्फाटिकाबन्ध (स्फटिक शिलाका घेरा) बनानेकी बात कही गयी है। **'नमः शम्भवाय०'**[४] इस मन्त्रसे क्षेत्रशुद्धि और पंचामृतका प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् शिवभक्त पुरुष **'नमः'** पूर्वक **'नीलग्रीवाय०'**[५] मन्त्रसे शिवलिंगकी उत्तम प्रतिष्ठा करे। इसके बाद वैदिक रीतिसे पूजन-कर्म करनेवाला उपासक भक्तिपूर्वक **'एतत्ते**

---

१. भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳ सीः।

२. आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वꣳ हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳ शग्मां परि दधे भद्रं वर्णं पुष्यन्। (यजु० ४। २)

३. नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः। (यजु० १६। १)

४. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। (यजु० १६। ४१)

५. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः। (यजु० १६। ८)

रुद्राव०'[१] इस मन्त्रसे रमणीय आसन दे। **'मा नो महान्तम्०'**[२] इस मन्त्रसे आवाहन करे, **'या ते रुद्र०'**[३] इस मन्त्रसे भगवान् शिवको आसनपर समासीन करे। **'यामिषुं०'**[४] इस मन्त्रसे शिवके अंगोंमें न्यास करे। **'अध्यवोचत्०'**[५] इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक अधिवासन करे। **'असौ यस्ताम्रो०'**[६] इस मन्त्रसे शिवलिंगमें इष्टदेवता शिवका न्यास करे। **'असौ योऽवसर्पति०'**[७] इस मन्त्रसे उपसर्पण (देवताके समीप गमन) करे। इसके बाद **'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०'**[८] इस मन्त्रसे इष्टदेवको पाद्य समर्पित करे। **'रुद्रगायत्री'**[९] से अर्घ्य दे। **'त्र्यम्बकं०'**[१०] मन्त्रसे आचमन कराये। **'पय: पृथिव्याम्०'**[११] इस मन्त्रसे दुग्धस्नान कराये। **'दधिक्राव्णो०'**[१२] इस मन्त्रसे दधिस्नान कराये। **'घृतं घृतपावा०'**[१३] इस मन्त्रसे घृतस्नान कराये। **'मधु वाता०'**[१४], **'मधु नक्तं०'**[१५], **'मधुमान्नो'**[१६]—इन तीन ऋचाओंसे मधुस्नान और शर्करा-स्नान कराये। इन दुग्ध आदि पाँच वस्तुओंको पंचामृत कहते हैं अथवा पाद्यसमर्पणके लिये कहे गये **'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०'** इत्यादि मन्त्रद्वारा पंचामृतसे स्नान कराये। तदनन्तर **'मा नस्तोके०'**[१७] इस मन्त्रसे प्रेमपूर्वक भगवान् शिवको कटिबन्ध (करधनी) अर्पित करे। **'नमो धृष्णवे०'**[१८] इस मन्त्रका उच्चारण करके आराध्य देवताको उत्तरीय धारण कराये। **'या ते हेति:०'**[१९] इत्यादि चार ऋचाओंको पढ़कर वेदज्ञ भक्त प्रेमसे विधिपूर्वक भगवान् शिवके लिये वस्त्र [एवं यज्ञोपवीत] समर्पित करे। इसके बाद **'नम: श्वभ्य०'**[२०] इत्यादि मन्त्रको पढ़कर शुद्ध बुद्धिवाला भक्त पुरुष

---

१. एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावस: कृत्तिवासा अहिꣳसन्न: शिवोऽतीहि। (यजु० ३। ६१)

२. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षितम्। मा नो वधी: पितरं मोत मातरं मा न: प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिष:। (यजु० १६। १५)

३. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि। (यजु० १६। २)

४. यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसी: पुरुषं जगत्। (यजु० १६। ३)

५. अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहीँश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराची: परा सुव। (यजु० १६। ५)

६. असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रु: सुमङ्गल:। ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिता: सहस्रशोऽवैषाꣳहेड ईमहे। (यजु० १६। ६)

७. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहित:। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य: स दृष्टो मृडयाति न:। (यजु० १६। ७)

८. यह मन्त्र पहले दिया जा चुका है।

९. तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्र: प्रचोदयात्।

१०. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुत:। (यजु० ३। ६०)

११. पय: पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धा:। पयस्वती: प्रदिश: सन्तु मह्यम्। (यजु० १८। ३६)

१२. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिन:। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूꣳषि तारिषत्। (यजु० २३। ३२)

१३. घृतं घृतपावान: पिबत वसां वसापावान: पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिश: प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्य: स्वाहा। (यजु० ६। १९)

१४. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धव:। माध्वीर्न: सन्त्वोषधी:। (यजु० १३। २७)

१५. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रज:। मधु द्यौरस्तु न: पिता। (यजु० १३। २८)

१६. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ अस्तु सूर्य:। माध्वीर्गावो भवन्तु न:। (यजु० १३। २९)

१७. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिष:। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्त: सदमित् त्वा हवामहे। (यजु० १६। १६)

१८. नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नम: स्वायुधाय च सुधन्वने च। (यजु० १६। ३६)

१९. या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनु:। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज (११)। परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वत:। अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् (१२)। अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो न: सुमना भव (१३)। नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने (१४)। (यजु० १६)

२०. नम: श्वभ्य: श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नम: शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च। (यजु० १६। २८)

भगवान्‌को प्रेमपूर्वक गन्ध (सुगन्धित चन्दन एवं रोली) चढ़ाये। '**नमस्तक्षभ्यो०**'[१] इस मन्त्रसे अक्षत अर्पित करे। '**नमः पार्याय०**'[२] इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये। '**नमः पर्णाय०**'[३] इस मन्त्रसे बिल्वपत्र समर्पण करे। '**नमः कपर्दिने च०**'[४] इत्यादि मन्त्रसे विधिपूर्वक धूप दे। '**नम आशवे०**'[५] इस ऋचासे शास्त्रोक्त विधिके अनुसार दीप निवेदित करे। तत्पश्चात् [हाथ धोकर] '**नमो ज्येष्ठाय०**'[६] इस मन्त्रसे उत्तम नैवेद्य अर्पित करे। फिर पूर्वोक्त त्र्यम्बक मन्त्रसे आचमन कराये—ऐसा कहा गया है। '**इमा रुद्राय०**'[७] इस ऋचासे फल समर्पण करे। फिर '**नमो व्रज्याय०**'[८] इस मन्त्रसे भगवान् शिवको अपना सब कुछ समर्पित कर दे। तदनन्तर '**मा नो महान्तम्०**' तथा '**मा नस्तोके०**'—इन पूर्वोक्त दो मन्त्रोंद्वारा केवल अक्षतोंसे ग्यारह रुद्रोंका पूजन करे। फिर '**हिरण्यगर्भः०**'[९] इत्यादि मन्त्रसे जो तीन ऋचाओंके रूपमें पठित है, दक्षिणा चढ़ाये। '**देवस्य त्वा०**'[१०] इस मन्त्रसे विद्वान् पुरुष आराध्यदेवका अभिषेक करे। दीपके लिये बताये हुए '**नम आशवे०**' इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शिवकी नीराजना (आरती) करे। तत्पश्चात् '**इमा रुद्राय०**' इत्यादि तीन ऋचाओंसे भक्तिपूर्वक रुद्रदेवको पुष्पांजलि अर्पित करे। '**मा नो महान्तम्०**' इस मन्त्रसे विज्ञ उपासक पूजनीय देवताकी परिक्रमा करे। फिर उत्तम बुद्धिवाला उपासक '**मा नस्तोके०**' इस मन्त्रसे भगवान्‌को साष्टांग प्रणाम करे। '**एष ते०**'[११] इस मन्त्रसे शिवमुद्राका प्रदर्शन करे। '**यतो यतः०**'[१२] इस मन्त्रसे अभय नामक मुद्राका, '**त्र्यम्बकं**' मन्त्रसे ज्ञान नामक मुद्राका तथा '**नमः सेना०**'[१३] इत्यादि मन्त्रसे महामुद्राका प्रदर्शन करे। '**नमो गोभ्य०**'[१४] इस ऋचाद्वारा धेनुमुद्रा दिखाये। इस तरह पाँच मुद्राओंका प्रदर्शन करके शिवसम्बन्धी मन्त्रोंका जप करे अथवा वेदज्ञ पुरुष '**शतरुद्रिय**'[१५] मन्त्रकी आवृत्ति करे। तत्पश्चात् वेदज्ञ पुरुष पंचांग पाठ करे। तदनन्तर '**देवा**

१. नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः। (यजु० १६। २७)

२. नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च। (यजु० १६। ४२)

३. नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः। (यजु० १६। ४६)

४. नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च। (यजु० १६। २९)

५. नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च। (यजु० १६। ३१)

६. नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च। (यजु० १६। ३२)

७. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः। यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्। (यजु० १६। ४८)

८. नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च। (यजु० १६। ४४)

९. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम। (यजु० १३। ४)

१०. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि। (यजु० २०। ३)

११. एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः॥ (यजु० ३। ५७)

१२. यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥ (यजु० ३६। २३)

१३. नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः। क्षतृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः॥ (यजु० १६। २६)

१४. नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च। नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः॥ (गोमतीविद्या)

१५. यजुर्वेदका वह अंश, जिसमें रुद्रके सौ या उससे अधिक नाम आये हैं और उनके द्वारा रुद्रदेवकी स्तुति की गयी है। (देखिये यजु० अध्याय १६)

गातु०'[१] इत्यादि मन्त्रसे भगवान् शंकरका विसर्जन करे। इस प्रकार शिवपूजाकी वैदिक विधिका विस्तारसे प्रतिपादन किया गया॥ १२—३७½॥

[हे महर्षियो!] अब संक्षेपमें पार्थिवपूजनकी वैदिक विधिको सुनें। '**सद्योजातम्०**'[२] इस ऋचासे पार्थिवलिंग बनानेके लिये मिट्टी ले आये। '**वामदेवाय०**'[३] मन्त्र पढ़कर उसमें जल डाले। [जब मिट्टी सनकर तैयार हो जाय, तब] '**अघोर०**'[४] मन्त्रसे लिंग निर्माण करे। फिर '**तत्पुरुषाय०**'[५] इस मन्त्रसे उसमें भगवान् शिवका विधिवत् आवाहन करे। तदनन्तर '**ईशान०**'[६] मन्त्रसे भगवान् शिवको वेदीपर स्थापित करे। इनके सिवाय अन्य सब विधानोंको भी शुद्ध बुद्धिवाला उपासक संक्षेपसे ही सम्पन्न करे। इसके बाद विद्वान् पुरुष पंचाक्षर मन्त्रसे अथवा गुरुके द्वारा दिये हुए अन्य किसी शिवसम्बन्धी मन्त्रसे सोलह उपचारोंद्वारा विधिवत् पूजन करे अथवा—'**भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि। उग्राय उग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने॥**'

—इस मन्त्रद्वारा विद्वान् उपासक भगवान् शंकरकी पूजा करे। वह भ्रम छोड़कर उत्तम भक्तिसे शिवकी आराधना करे; क्योंकि भगवान् शिव भक्तिसे ही [मनोवांछित] फल देते हैं॥ ३८—४४॥

हे ब्राह्मणो! यह जो वैदिक विधिसे पूजनका क्रम बताया गया है, इसका पूर्णरूपसे आदर करता हुआ मैं पूजाकी एक दूसरी विधि भी बता रहा हूँ, जो उत्तम होनेके साथ ही सर्वसाधारणके लिये उपयोगी है। हे मुनिवरो! पार्थिवलिंगकी पूजा भगवान् शिवके नामोंसे बतायी गयी है। वह पूजा सम्पूर्ण अभीष्टोंको देनेवाली है, मैं उसे बताता हूँ, सुनो! हर, महेश्वर, शम्भु, शूलपाणि, पिनाकधृक्, शिव, पशुपति और महादेव—[ये क्रमशः शिवके आठ नाम कहे गये हैं।] इनमेंसे प्रथम नामके द्वारा अर्थात् '**ॐ हराय नमः**' का उच्चारण करके पार्थिवलिंग बनानेके लिये मिट्टी लाये। दूसरे नाम अर्थात् '**ॐ महेश्वराय नमः**' का उच्चारण करके लिंगनिर्माण करे। फिर '**ॐ शम्भवे नमः**' बोलकर उस पार्थिवलिंगकी प्रतिष्ठा करे। तत्पश्चात् '**ॐ शूलपाणये नमः**' कहकर उस पार्थिवलिंगमें भगवान् शिवका आवाहन करे। '**ॐ पिनाकधृषे नमः**' कहकर उस शिवलिंगको नहलाये। '**ॐ शिवाय नमः**' बोलकर उसकी पूजा करे। फिर '**ॐ पशुपतये नमः**' कहकर क्षमा-प्रार्थना करे और अन्तमें '**ॐ महादेवाय नमः**' कहकर आराध्यदेवका विसर्जन कर दे। इस प्रकार प्रत्येक नामके आदिमें 'ॐ' कार और अन्तमें चतुर्थी विभक्तिके साथ '**नमः**' पद लगाकर बड़े आनन्द और भक्तिभावसे [पूजनसम्बन्धी] सारे कार्य करने चाहिये॥ ४५—४९॥

षडक्षरमन्त्रसे अंगन्यास और करन्यासकी विधि भलीभाँति सम्पन्न करके नीचे लिखे अनुसार ध्यान करे—

कैलास पर्वतपर एक सुन्दर सिंहासनके मध्यभागमें विराजमान, सनन्द आदि भक्तोंसे पूजित, भक्तोंके दुःखरूप दावानलको नष्ट कर देनेवाले, अप्रमेय, उमाके साथ समासीन तथा विश्वके भूषणस्वरूप भगवान् शिवका चिन्तन करना चाहिये। भगवान् महेश्वरका प्रतिदिन इस प्रकार ध्यान करे—उनकी अंगकान्ति चाँदीके पर्वतकी भाँति गौर है, वे अपने मस्तकपर मनोहर चन्द्रमाका मुकुट धारण करते हैं, रत्नोंके आभूषण धारण करनेसे उनका श्रीअंग और भी उद्भासित हो उठा है, उनके चार हाथोंमें क्रमशः परशु, मृगमुद्रा, वर एवं अभयमुद्रा सुशोभित हैं, वे सदा प्रसन्न रहते हैं। कमलके आसनपर बैठे हुए हैं, देवतालोग चारों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे हैं,

१. देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः॥ (यजु० ८। २१)

२. सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः। भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः॥

३. ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः।

४. ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः।

५. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

६. ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मेऽस्तु सदा शिवोम्॥

उन्होंने वस्त्रके रूपमें व्याघ्रचर्म धारण कर रखा है, वे इस विश्वके आदि हैं, बीज (कारण)-रूप हैं, सबका समस्त भय हर लेनेवाले हैं, उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं* ॥ ५०—५२ ॥

इस प्रकार ध्यान करके तथा उत्तम पार्थिवलिंगका पूजन करके गुरुके दिये हुए पंचाक्षरमन्त्रका विधिपूर्वक जप करे। हे विप्रवरो! विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह देवेश्वर शिवको प्रणाम करते हुए नाना प्रकारकी स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन करे तथा शतरुद्रिय (यजु० १६वें अध्यायके मन्त्रों)-का पाठ करे। तत्पश्चात् अंजलिमें अक्षत और फूल लेकर उत्तम भक्तिभावसे निम्नांकित मन्त्रोंको पढ़ते हुए प्रेम और प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करे— ॥ ५३—५५ ॥

'सबको सुख देनेवाले हे कृपानिधान! हे भूतनाथ! हे शिव! मैं आपका हूँ, आपके गुणोंमें ही मेरे प्राण बसते हैं अथवा आपके गुण ही मेरे प्राण—मेरे जीवनसर्वस्व हैं, मेरा चित्त सदा आपके ही चिन्तनमें लगा हुआ है—यह जानकर मुझपर प्रसन्न होइये, कृपा कीजिये। हे शंकर! मैंने अनजानमें अथवा जानबूझकर यदि कभी आपका जप और पूजन आदि किया हो, तो आपकी कृपासे वह सफल हो जाय। हे गौरीनाथ! मैं इस समय महान् पापी हूँ और आप सदासे ही परम महान् पतितपावन हैं—इस बातका विचार करके आप जैसा चाहें, वैसा करें। हे महादेव! हे सदाशिव! वेदों, पुराणों, नाना प्रकारके शास्त्रीय सिद्धान्तों और विभिन्न महर्षियोंने भी अबतक आपको पूर्णरूपसे नहीं जाना है, तो फिर मैं कैसे जान सकता हूँ। हे महेश्वर! मैं जैसा हूँ, वैसा ही, उसी रूपमें सम्पूर्ण भावसे आपका हूँ, आपके आश्रित हूँ, इसलिये आपसे रक्षा पानेके योग्य हूँ। हे परमेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न होइये।' हे मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके हाथमें लिये हुए अक्षत और पुष्पको भगवान् शिवके ऊपर चढ़ाकर उन शम्भुदेवको भक्तिभावसे विधिपूर्वक साष्टांग प्रणाम करे। तदनन्तर शुद्ध बुद्धिवाला उपासक शास्त्रोक्त विधिसे इष्टदेवकी परिक्रमा करे। फिर श्रद्धापूर्वक स्तुतियोंद्वारा देवेश्वर शिवकी स्तुति करे। इसके बाद गला बजाकर (गलेसे अव्यक्त शब्दका उच्चारण करके) पवित्र एवं विनीत चित्तवाला साधक भगवान्‌को प्रणाम करे। फिर आदरपूर्वक विज्ञप्ति करे और उसके बाद विसर्जन करे ॥ ५६—६३ ॥

हे मुनिवरो! इस प्रकार विधिपूर्वक पार्थिवपूजा बतायी गयी, जो भोग और मोक्ष देनेवाली तथा भगवान् शिवके प्रति भक्तिभावको बढ़ानेवाली है। जो मनुष्य इस अध्यायका शुद्धचित्तसे पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सभी कामनाओंको प्राप्त करता है। यह उत्तम कथा दीर्घायुष्य, आरोग्य, यश, स्वर्ग, पुत्र-पौत्र आदि सभी सुखोंको प्रदान करनेवाली है ॥ ६४—६६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें पार्थिव शिवलिंगके पूजनकी विधिका वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कामनाभेदसे पार्थिवलिंगके पूजनका विधान

ऋषिगण बोले—हे व्यासशिष्य सूतजी! हे महाभाग! आपको नमस्कार है। हे तात! आपने अच्छी प्रकारसे पार्थिवार्चनकी विधि बतायी। अब सकाम पूजनमें मनोवांछित पदार्थके अनुसार कितनी संख्यामें पार्थिव लिंगोंके पूजनकी विधि है, हे दीनवत्सल! इसे कृपापूर्वक बताइये ॥ १-२ ॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! आप सब लोग पार्थिव-पूजनकी विधिका श्रवण करें, जिसका अनुष्ठान

* ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥ (विद्येश्वरसंहिता २०।५२)

करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। पार्थिवलिंगके पूजनको छोड़कर जो लोग अन्य देवोंके यजनमें लगे रहते हैं, उनकी वह पूजा, तप तथा दानादि व्यर्थ हो जाता है ॥ ३-४ ॥

अब मैं कामनाके अनुसार पार्थिवलिंगोंकी संख्या बताता हूँ, हे मुनिश्रेष्ठ! अधिक संख्यामें अर्चन तो निश्चय ही फलदायी होता है। प्रथम आवाहन, तब प्रतिष्ठा, तदनन्तर सभी लिंगोंका पूजन अलग-अलग करना चाहिये। लिंगोंका आकार तो एक समान ही रखना चाहिये ॥ ५-६ ॥

विद्याप्राप्तिकी कामनासे पुरुष भक्तिपूर्वक एक हजार पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन करे। इससे निश्चय ही उस फलकी प्राप्ति हो जाती है। धन चाहनेवाले पुरुषको उसके आधे (पाँच सौ), पुत्र चाहनेवालेको डेढ़ हजार और वस्त्रोंकी आकांक्षावालेको पाँच सौ शिवलिंगोंका पूजन करना चाहिये ॥ ७-८ ॥

मोक्षकी कामनावाले व्यक्तिको एक करोड़, भूमिकी अभिलाषावालेको एक हजार, दयाप्राप्तिकी इच्छावालेको तीन हजार और तीर्थाटनकी इच्छावालेको दो हजार शिवलिंगोंकी पूजा करनी चाहिये। मित्रप्राप्तिकी इच्छावालेको तीन हजार तथा अभिचार कर्मोंमें पाँच सौसे लेकर एक हजारतक पार्थिव शिवलिंगोंके पूजनकी विधि है। (कारागार आदिके) बन्धनसे छुटकारेकी इच्छासे डेढ़ हजार तथा राजभयसे मुक्तिकी इच्छासे पाँच सौ शिवलिंगोंका पूजन बुद्धिमानोंको जानना चाहिये ॥ ९—१२ ॥

चोर आदिके संकटसे बचनेके लिये दो सौ और डाकिनी आदिके भयसे मुक्तिहेतु पाँच सौ पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन बताया गया है। दरिद्रतासे छुटकारेके लिये पाँच हजार और सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये दस हजार पार्थिव शिवलिंगोंका पूजन करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठो ! अब मैं नित्यपूजनविधि बताता हूँ, आप लोग सुनें ॥ १३-१४ ॥

एक पार्थिवलिंगका नित्य पूजन पापोंका नाश करनेवाला और दो लिंगोंका पूजन अर्थकी सिद्धि करनेवाला बताया गया है। तीन लिंगोंका पूजन सभी कामनाओंकी सिद्धिका मुख्य हेतु कहा गया है। पूर्वमें बतायी गयी संख्याविधिमें भी उत्तरोत्तर संख्या अधिक फलदायिनी होती है। अन्य मुनियोंके मतसे संख्याका जो अन्तर है, वह भी अब बताता हूँ ॥ १५-१६ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य दस हजार पार्थिव शिवलिंगोंका अर्चन करके महान् राजभयसे भी मुक्त होकर निर्भय हो जाता है। कारागार आदिसे छूटनेके लिये दस हजार लिंगोंका अर्चन करना चाहिये और डाकिनी आदिके भयसे छूटनेके लिये सात हजार लिंगार्चन कराना चाहिये ॥ १७-१८ ॥

पुत्रहीन पुरुष पचपन हजार लिंगार्चन करे, कन्या-सन्तानकी प्राप्ति दस हजार लिंगार्चनसे हो जाती है। दस हजार लिंगार्चनसे विष्णु आदि देवोंके समान ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है। दस लाख शिवलिंगार्चनसे अतुल सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है ॥ १९-२० ॥

जो मनुष्य पृथ्वीपर एक करोड़ शिवलिंगोंका अर्चन कर लेता है, वह तो शिवरूप ही हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। पार्थिवपूजा करोड़ों यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली है। इसलिये सकाम भक्तोंके लिये यह भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करती है। जिस मनुष्यका समय रोज बिना लिंगार्चनके व्यतीत होता है, उस दुराचारी तथा दुष्टात्मा व्यक्तिकी महान् हानि होती है ॥ २१—२३ ॥

एक ओर सारे दान, विविध व्रत, तीर्थ, नियम और यज्ञ हैं तथा उनके समकक्ष दूसरी ओर पार्थिव शिवलिंगका पूजन माना गया है। कलियुगमें तो जैसा श्रेष्ठ लिंगार्चन दिखायी देता है, वैसा अन्य कोई साधन नहीं है—यह समस्त शास्त्रोंका निश्चित सिद्धान्त है। शिवलिंग भोग और मोक्ष देनेवाला तथा विविध आपदाओंका निवारण करनेवाला है। इसका नित्य अर्चन करके मनुष्य शिवसायुज्य प्राप्त कर लेता है ॥ २४—२६ ॥

महर्षियोंको शिवनाममय इस लिंगकी नित्य पूजा करनी चाहिये। यह सभी लिंगोंमें श्रेष्ठ है, अतः विधानपूर्वक इसकी पूजा करनी चाहिये। हे मुनिवरो!

परिमाणके अनुसार लिंग तीन प्रकारके कहे गये हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। उसे आपलोग सुनें; मैं बताता हूँ। जो चार अँगुल ऊँचा और देखनेमें सुन्दर हो तथा वेदीसे युक्त हो, उस शिवलिंगको शास्त्रज्ञ महर्षियोंने उत्तम कहा है। उससे आधा मध्यम और उससे भी आधा अधम माना गया है। इस तरह तीन प्रकारके शिवलिंग कहे गये हैं, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं॥ २७—३०॥

जो भक्ति तथा श्रद्धासे युक्त होकर अनेक लिंगोंकी मनसे नित्य पूजा करता है, वह मनोवांछित कामनाओंकी प्राप्ति कर लेता है॥ ३१॥

चारों वेदोंमें लिंगार्चनसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है; सभी शास्त्रोंका भी यह निर्णय है॥ ३२॥

विद्वान्‌को चाहिये कि इस समस्त कर्म-प्रपंचका त्याग करके परम भक्तिके साथ एकमात्र शिवलिंगका विधिवत् पूजन करे॥ ३३॥

केवल शिवलिंगकी पूजा हो जानेपर समग्र चराचर जगत्‌की पूजा हो जाती है। संसार-सागरमें डूबे हुए लोगोंके तरनेका अन्य कोई भी साधन नहीं है॥ ३४॥

अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे हुए तथा विषय-वासनाओंमें आसक्त चित्तवाले लोगोंके लिये इस जगत्‌में [भवसागरसे पार होनेहेतु] लिंगार्चनके अतिरिक्त अन्य कोई नौका नहीं है॥ ३५॥

ब्रह्मा-विष्णु आदि देवता, मुनिगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, चारण, सिद्धजन, दैत्य, दानव, शेष आदि नाग, गरुड़ आदि पक्षी, प्रजापति, मनु, किन्नर और मानव समस्त अर्थसिद्धि प्रदान करनेवाले शिवलिंगकी महान् भक्तिके साथ पूजा करके अपने मनमें स्थित उन-उन समस्त अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त कर चुके हैं॥ ३६—३८॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा विलोम संकर—कोई भी क्यों न हो, वह अपने अधिकारके अनुसार वैदिक अथवा तान्त्रिक मन्त्रसे सदा आदरपूर्वक शिवलिंगकी पूजा करे। हे ब्राह्मणो! हे महर्षियो! अधिक कहनेसे क्या लाभ! शिवलिंगका पूजन करनेमें स्त्रियोंका तथा अन्य सब लोगोंका भी अधिकार है॥ ३९-४०॥

द्विजोंके लिये वैदिक पद्धतिसे ही शिवलिंगकी पूजा श्रेष्ठ है, परंतु अन्य लोगोंके लिये वैदिक मार्गसे पूजा करनेकी सम्मति नहीं है। वेदज्ञ द्विजोंको वैदिक मार्गसे ही पूजन करना चाहिये, अन्य मार्गसे नहीं—यह भगवान् शिवका कथन है। दधीचि, गौतम आदिके शापसे जिनका चित्त दग्ध हो गया है, उन द्विजोंकी वैदिक कर्ममें श्रद्धा नहीं होती। जो मनुष्य वेदों तथा स्मृतियोंमें कहे हुए सत्कर्मोंकी अवहेलना करके दूसरे कर्मको करने लगता है, उसका मनोरथ कभी सफल नहीं होता॥ ४१—४४॥

इस प्रकार विधिपूर्वक भगवान् शंकरका नैवेद्यान्त पूजन करके उनकी त्रिभुवनमयी आठ मूर्तियोंका भी वहीं पूजन करे। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—ये भगवान् शंकरकी आठ मूर्तियाँ कही गयी हैं। इन मूर्तियोंके साथ-साथ शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, ईश्वर, महादेव तथा पशुपति—इन नामोंकी भी अर्चना करे। तदनन्तर चन्दन, अक्षत और बिल्वपत्र लेकर वहाँ ईशान आदिके क्रमसे भगवान् शिवके परिवारका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे। ईशान, नन्दी, चण्ड, महाकाल, भृंगी, वृष, स्कन्द, कपर्दीश्वर, सोम तथा शुक्र—ये दस शिवके परिवार हैं, [जो क्रमशः ईशान आदि दसों दिशाओंमें पूजनीय हैं।] तत्पश्चात् भगवान् शिवके समक्ष वीरभद्रका और पीछे कीर्तिमुखका पूजन करके विधिपूर्वक ग्यारह रुद्रोंकी पूजा करे॥ ४५—५०॥

इसके बाद पंचाक्षर-मन्त्रका जप करके शतरुद्रियका पाठ तथा नाना प्रकारकी स्तुतियाँ करके शिवपंचांगका पाठ करे। तत्पश्चात् परिक्रमा और नमस्कार करके शिवलिंगका विसर्जन करे। इस प्रकार मैंने शिवपूजनकी सम्पूर्ण विधिका आदरपूर्वक वर्णन किया। रात्रिमें देवकार्यको सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना चाहिये। इसी प्रकार शिवपूजन भी पवित्र भावसे सदा उत्तराभिमुख होकर ही करना उचित है। जहाँ शिवलिंग स्थापित हो, उससे पूर्व दिशाका आश्रय लेकर बैठना या खड़ा नहीं होना चाहिये; क्योंकि वह दिशा भगवान् शिवके आगे या सामने पड़ती है (इष्टदेवका सामना रोकना ठीक नहीं है)। शिवलिंगसे उत्तर दिशामें भी न बैठे; क्योंकि उधर भगवान् शंकरका वामांग है, जिसमें शक्तिस्वरूपा देवी

उमा विराजमान हैं। पूजकको शिवलिंगसे पश्चिम दिशामें भी नहीं बैठना चाहिये; क्योंकि वह आराध्यदेवका पृष्ठभाग है (पीछेकी ओरसे पूजा करना उचित नहीं है) अतः अवशिष्ट दक्षिण दिशा ही ग्राह्य है, उसीका आश्रय लेना चाहिये। [तात्पर्य यह कि शिवलिंगसे दक्षिण दिशामें उत्तराभिमुख होकर बैठे और पूजा करे।] विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह बिना भस्मका त्रिपुण्ड्र लगाये, बिना रुद्राक्षकी माला धारण किये तथा बिल्वपत्रका बिना संग्रह किये भगवान् शंकरकी पूजा न करे। हे मुनिवरो! शिवपूजन आरम्भ करते समय यदि भस्म न मिले, तो मिट्टीसे ही ललाटमें त्रिपुण्ड्र अवश्य कर लेना चाहिये॥ ५१—५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें पार्थिव-पूजन-वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

शिव-नैवेद्य-भक्षणका निर्णय एवं बिल्वपत्रका माहात्म्य

ऋषिगण बोले—हे महामुने! हमने पहले सुना है कि भगवान् शिवको अर्पित किया गया नैवेद्य अग्राह्य होता है, अतएव नैवेद्यके विषयमें निर्णय और बिल्वपत्रका माहात्म्य भी कहिये॥ १॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आप सब सावधानीसे सुनें। मैं प्रेमपूर्वक सब कुछ कह रहा हूँ। आप लोग शिवव्रत धारण करनेवाले हैं, अतः आपलोग धन्य हैं॥ २॥

जो शिवका भक्त, पवित्र, शुद्ध, सद्व्रती तथा दृढ़निश्चयी है, उसे शिवनैवेद्य अवश्य ग्रहण करना चाहिये और अग्राह्य भावनाका त्याग कर देना चाहिये॥ ३॥

शिवनैवेद्यको देखनेमात्रसे ही सभी पाप दूर हो जाते हैं और शिवका नैवेद्य भक्षण करनेसे तो करोड़ों पुण्य स्वतः आ जाते हैं॥ ४॥

हजार यज्ञोंकी बात कौन कहे, अर्बुद यज्ञ करनेसे भी वह पुण्य प्राप्त नहीं हो पाता है, जो शिवनैवेद्य खानेसे प्राप्त हो जाता है। शिवका नैवेद्य खानेसे तो शिवसायुज्यकी प्राप्ति भी हो जाती है॥ ५॥

जिस घरमें शिवको नैवेद्य लगाया जाता है या अन्यत्रसे शिवको समर्पित नैवेद्य प्रसादरूपमें आ जाता है, वह घर पवित्र हो जाता है और वह अन्यको भी पवित्र करनेवाला हो जाता है॥ ६॥

आये हुए शिवनैवेद्यको प्रसन्नतापूर्वक सिर झुकाकर ग्रहण करके भगवान् शिवका स्मरण करते हुए उसे खा लेना चाहिये॥ ७॥

आये हुए शिवनैवेद्यको दूसरे समयमें ग्रहण करूँगा—ऐसी भावना करके जो मनुष्य उसे ग्रहण करनेमें विलम्ब करता है, उसे पाप लगता है॥ ८॥

जिसमें शिवनैवेद्य ग्रहण करनेकी इच्छा उत्पन्न नहीं होती, वह महान् पापी होता है और निश्चित रूपसे नरकको जाता है॥ ९॥

हृदयमें अवस्थित शिवलिंग या चन्द्रकान्तमणिसे बने हुए शिवलिंग अथवा स्वर्ण या चाँदीसे बनाये गये शिवलिंगको समर्पित किया गया नैवेद्य शिवकी दीक्षा लिये भक्तको खाना ही चाहिये—ऐसा कहा गया है॥ १०॥

इतना ही नहीं शिवदीक्षित भक्त समस्त शिवलिंगोंके लिये समर्पित महाप्रसादरूप शुभ शिवनैवेद्यको खा सकता है॥ ११॥

जिन मनुष्योंने अन्य देवोंकी दीक्षा ली है और शिवकी भक्तिमें वे अनुरक्त रहते हैं, उनके लिये शिवनैवेद्यके भक्षणके विषयमें निर्णयको प्रेमपूर्वक आप सब सुनें॥ १२॥

हे ब्राह्मणो! शालग्राममें उत्पन्न शिवलिंग, रसलिंग (पारदलिंग), पाषाणलिंग, रजतलिंग, स्वर्णलिंग, देवों और सिद्ध मुनियोंके द्वारा प्रतिष्ठित शिवलिंग, केसरके बने हुए लिंग, स्फटिकलिंग, रत्नलिंग और ज्योतिर्लिंग आदि समस्त शिवलिंगोंके लिये समर्पित नैवेद्यका भक्षण करना चान्द्रायण-व्रतके समान फल देनेवाला कहा गया है॥ १३-१४॥

यदि ब्रह्महत्या करनेवाला भी पवित्र होकर शिवका पवित्र निर्माल्य धारण करता है और उसे खाता है, उसके

सम्पूर्ण पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ १५॥

जहाँ चण्डका अधिकार हो, वहाँ शिवलिंगके लिये समर्पित नैवेद्यका भक्षण मनुष्योंको नहीं करना चाहिये; जहाँ चण्डका अधिकार न हो, वहाँ भक्तिपूर्वक भक्षण करना चाहिये॥ १६॥

बाणलिंग, लौहलिंग, सिद्धलिंग, स्वयम्भूलिंग और अन्य समस्त प्रतिमाओंमें चण्डका अधिकार नहीं होता है॥ १७॥

जो विधिपूर्वक शिवलिंगको स्नान कराकर उस स्नानजलको तीन बार पीता है, उसके समस्त पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ १८॥

[चण्डके द्वारा अधिकृत होनेके कारण] अग्राह्य शिवनैवेद्य पत्र-पुष्प-फल और जल—यह सब शालग्रामशिलाके स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ १९॥

हे मुनीश्वरो! शिवलिंगके ऊपर जो भी द्रव्य चढ़ाया जाता है, वह अग्राह्य है और जो लिंगके स्पर्शसे बाहर है, उसे अत्यन्त पवित्र जानना चाहिये॥ २०॥

हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार मैंने शिवनैवेद्यका निर्णय कह दिया। अब आप सब सावधानीसे बिल्वपत्रके माहात्म्यको आदरपूर्वक सुनें॥ २१॥

बिल्ववृक्ष तो महादेवस्वरूप है, देवोंके द्वारा भी इसकी स्तुति की गयी है, अतः जिस किसी प्रकारसे उसकी महिमाको कैसे जाना जा सकता है॥ २२॥

संसारमें जितने भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं, वे सब तीर्थ बिल्वके मूलमें निवास करते हैं॥ २३॥

जो पुण्यात्मा बिल्ववृक्षके मूलमें लिंगरूपी अव्यय भगवान् महादेवकी पूजा करता है, वह निश्चित रूपसे शिवको प्राप्त कर लेता है॥ २४॥

जो प्राणी बिल्ववृक्षके मूलमें शिवजीके मस्तकपर अभिषेक करता है, वह समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्तकर पृथ्वीपर पवित्र हो जाता है॥ २५॥

इस बिल्ववृक्षके मूलमें बने हुए उत्तम थालेको जलसे परिपूर्ण देखकर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न होते हैं॥ २६॥

जो व्यक्ति गन्ध-पुष्पादिसे बिल्ववृक्षके मूलका पूजन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता है और उसके सन्तान और सुखकी अभिवृद्धि होती है॥ २७॥

जो मनुष्य बिल्ववृक्षके मूलमें आदरपूर्वक दीपमालाका दान करता है, वह तत्त्वज्ञानसे सम्पन्न होकर महादेवके सान्निध्यको प्राप्त हो जाता है॥ २८॥

जो बिल्वशाखाको हाथसे पकड़कर उसके नवपल्लवको ग्रहण करके बिल्वकी पूजा करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २९॥

जो पुरुष भक्तिपूर्वक बिल्ववृक्षके नीचे एक शिवभक्तको भोजन कराता है, उसे करोड़ों मनुष्योंको भोजन करानेका पुण्य प्राप्त होता है॥ ३०॥

जो बिल्ववृक्षके नीचे दूध और घीसे युक्त अन्न शिव-भक्तको प्रदान करता है, वह दरिद्र नहीं रह जाता है॥ ३१॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार मैंने सांगोपांग शिवलिंगके पूजनविधानको कह दिया है। इसमें भी प्रवृत्तों और निवृत्तोंके लिये दो भेद हैं॥ ३२॥

प्रवृत्तिमार्गियोंके लिये पीठपूजा इस भूतलपर सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओंको देने वाली होती है। प्रवृत्त पुरुषको चाहिये कि सुपात्र गुरु आदिके द्वारा ही सारी पूजा सम्पन्न करे॥ ३३॥

शिवलिंगका अभिषेक करनेके पश्चात् अगहनी अन्नसे नैवेद्य लगाना चाहिये। पूजाके अन्तमें उस शिवलिंगको किसी शुद्ध पुट (डिब्बे)-में रख देना चाहिये अथवा किसी दूसरे शुद्ध घरमें स्थापित कर देना चाहिये। निवृत्तिमार्गी उपासकोंके लिये हाथपर ही शिवपूजाका विधान है। उन्हें [भिक्षा आदिसे प्राप्त] अपने भोजनको ही नैवेद्यरूपमें अर्पित करना चाहिये। निवृत्तिमार्गियोंके लिये परात्पर सूक्ष्म लिंग ही श्रेष्ठ बताया गया है। उन्हें चाहिये कि विभूतिसे ही पूजा करें और विभूतिका ही नैवेद्य शिवको प्रदान करें। पूजा करनेके पश्चात् उस विभूतिस्वरूप लिंगको सिरपर सदा धारण करना चाहिये॥ ३४—३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें शिवनैवेद्यवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

भस्म, रुद्राक्ष और शिवनामके माहात्म्यका वर्णन

ऋषिगण बोले—हे महाभाग व्यासशिष्य सूतजी! आपको नमस्कार है। अब आप परम उत्तम भस्म-माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १॥

भस्ममाहात्म्य, रुद्राक्षमाहात्म्य तथा उत्तम नाममाहात्म्य—इन तीनोंका परम प्रसन्नतापूर्वक प्रतिपादन कीजिये और हमारे हृदयको आनन्दित कीजिये॥ २॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! आप लोगोंने बहुत उत्तम बात पूछी है; यह समस्त लोकोंके लिये हितकारक विषय है। आप लोग महाधन्य, पवित्र तथा अपने कुलके भूषणस्वरूप हैं॥ ३॥

इस संसारमें कल्याणकारी परमदेवस्वरूप भगवान् शिव जिनके देवता हैं, ऐसे आप सबके लिये यह शिवकी कथा अत्यन्त प्रिय है॥ ४॥

वे ही धन्य और कृतार्थ हैं, उन्हींका शरीर धारण करना भी सफल है और उन्होंने ही अपने कुलका उद्धार कर लिया है, जो शिवकी उपासना करते हैं॥ ५॥

जिनके मुखमें भगवान् शिवका नाम है, जो अपने मुखसे सदा शिव-शिव इस नामका उच्चारण करते रहते हैं, पाप उनका उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे खदिर वृक्षके अंगारको छूनेका साहस कोई भी प्राणी नहीं कर सकता॥ ६॥

हे शिव! आपको नमस्कार है (**श्रीशिवाय नमस्तुभ्यम्**)—जिस मुखसे ऐसा उच्चारण होता है, वह मुख समस्त पापोंका विनाश करनेवाला पावन तीर्थ बन जाता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक उस मुखका दर्शन करता है, उसे निश्चय ही तीर्थसेवनजनित फल प्राप्त होता है॥ ७-८॥

हे ब्राह्मणो! शिवका नाम, विभूति (भस्म) तथा रुद्राक्ष—ये तीनों त्रिवेणीके समान परम पुण्यवाले माने गये हैं। जहाँ ये तीनों शुभतर वस्तुएँ सर्वदा रहती हैं, उसके दर्शनमात्रसे मनुष्य त्रिवेणीस्नानका फल पा लेता है॥ ९-१०॥

जिसके शरीरपर भस्म, रुद्राक्ष और मुखमें शिवनाम—ये तीनों नित्य विद्यमान रहते हैं, उसका पापविनाशक दर्शन संसारमें दुर्लभ है॥ ११॥

उस पुण्यात्माका दर्शन त्रिवेणीके समान ही है, भस्म, रुद्राक्ष तथा शिवनामका जप करनेवाले और त्रिवेणी—इन दोनोंमें रंचमात्र भी अन्तर नहीं है—ऐसा जो नहीं जानता, वह निश्चित ही पापी है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १२॥

जिसके मस्तकपर विभूति नहीं है, अंगमें रुद्राक्ष नहीं है और मुखमें शिवमयी वाणी नहीं है, उसे अधम व्यक्तिके समान त्याग देना चाहिये॥ १३॥

भगवान् शिवका नाम गंगा है। विभूति यमुना मानी गयी है तथा रुद्राक्षको सरस्वती कहा गया है। इन तीनोंकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है॥ १४॥

बहुत पहलेकी बात है, हितकारी ब्रह्माने जिसके शरीरमें उक्त ये तीनों—त्रिपुण्ड्र, रुद्राक्ष और शिवनाम संयुक्त रूपसे विद्यमान थे, उनके फलको तुलाके पलड़ेमें एक ओर रखकर, त्रिवेणीमें स्नान करनेसे उत्पन्न फलको दूसरी ओरके पलड़ेमें रखा और तुलना की, तो दोनों बराबर ही उतरे। अतएव विद्वानोंको चाहिये कि इन तीनोंको सदा अपने शरीरपर धारण करें॥ १५-१६॥

उसी दिनसे ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी दर्शनमात्रसे पापोंको नष्ट कर देनेवाले इन तीनों (रुद्राक्ष, विभूति और शिवनाम)-को धारण करने लगे॥ १७॥

ऋषिगण बोले—हे सुव्रत! [भस्म, रुद्राक्ष और शिवनाम] इन तीनोंको धारण करनेसे इस प्रकार उत्पन्न होनेवाले फलका वर्णन तो आपने कह दिया है, किंतु अब आप विशेष रूपसे उनके माहात्म्यका वर्णन करें॥ १८॥

सूतजी बोले—ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हे महाप्राज्ञ! हे शिवभक्त ऋषियो और विप्रो! आप सब सद्भक्ति तथा आदरपूर्वक उक्त भस्म, रुद्राक्ष और शिवनाम—इन

तीनोंका माहात्म्य सुनें॥ १९॥

शास्त्रों, पुराणों और श्रुतियोंमें भी इनका माहात्म्य अत्यन्त गूढ़ कहा गया है। हे विप्रो! आप सबके स्नेहवश इस समय मैं [उस रहस्यको खोलकर] प्रकाशित करने जा रहा हूँ॥ २०॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इन तीनोंकी महिमाको सदसद्विलक्षण भगवान् महेश्वरके बिना दूसरा कौन भलीभाँति जान सकता है। इस ब्रह्माण्डमें जो कुछ है, वह सब तो केवल महेश्वर ही जानते हैं॥ २१॥

हे विप्रगण! मैं अपनी श्रद्धा-भक्तिके अनुसार संक्षेपसे भगवन्नामकी महिमाका कुछ वर्णन करता हूँ। आप सबलोग प्रेमपूर्वक उसे सुनें। यह नाम-माहात्म्य समस्त पापोंको हर लेनेवाला सर्वोत्तम साधन है॥ २२॥

'शिव'-इस नामरूपी दावानलसे महान् पातकरूपी पर्वत अनायास ही भस्म हो जाता है—यह सत्य है, सत्य है; इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

हे शौनक! पापमूलक जो नाना प्रकारके दु:ख हैं, वे एकमात्र शिवनाम (भगवन्नाम)-से ही नष्ट होनेवाले हैं; दूसरे साधनोंसे सम्पूर्ण यत्न करनेपर भी पूर्णतया नष्ट नहीं होते हैं॥ २४॥

जो मनुष्य इस भूतलपर सदा भगवान् शिवके नामोंके जपमें ही लगा हुआ है, वह वेदोंका ज्ञाता है, वह पुण्यात्मा है, वह धन्यवादका पात्र है तथा वह विद्वान् माना गया है॥ २५॥

हे मुने! जिनका शिवनामजपमें विश्वास है, उनके द्वारा आचरित नाना प्रकारके धर्म तत्काल फल देनेके लिये उत्सुक हो जाते हैं॥ २६॥

हे महर्षे! भगवान् शिवके नामसे जितने पाप नष्ट होते हैं, उतने पाप मनुष्य इस भूतलपर कर ही नहीं सकता॥ २७॥

हे मुने! ब्रह्महत्या-जैसे पापोंकी समस्त अपरिमित राशियाँ शिवनाम लेनेसे शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं॥ २८॥

जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ होकर संसार-समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं॥ २९॥

हे महामुने! संसारके मूलभूत पातकरूपी वृक्षका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है॥ ३०॥

जो पापरूपी दावानलसे पीड़ित हैं, उन्हें शिवनामरूपी अमृतका पान करना चाहिये। पापोंके दावानलसे दग्ध होनेवाले लोगोंको उस शिवनामामृतके बिना शान्ति नहीं मिल सकती॥ ३१॥

जो शिवनामरूपी सुधाकी वृष्टिजनित धारामें गोते लगा रहे हैं, वे संसाररूपी दावानलके बीचमें खड़े होनेपर भी कदापि शोकके भागी नहीं होते॥ ३२॥

जिन महात्माओंके मनमें शिवनामके प्रति बड़ी भारी भक्ति है, ऐसे लोगोंकी सहसा और सर्वथा मुक्ति होती है॥ ३३॥

हे मुनीश्वर! जिसने अनेक जन्मोंतक तपस्या की है, उसीकी शिवनामके प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है॥ ३४॥

जिसके मनमें भगवान् शिवके नामके प्रति कभी खण्डित न होनेवाली असाधारण भक्ति प्रकट हुई है, उसीके लिये मोक्ष सुलभ है—यह मेरा मत है॥ ३५॥

जो अनेक पाप करके भी भगवान् शिवके नाम-जपमें आदरपूर्वक लग गया है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो ही जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ३६॥

जैसे वनमें दावानलसे दग्ध हुए वृक्ष भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिवनामरूपी दावानलसे दग्ध होकर उस समयतकके सारे पाप भस्म हो जाते हैं॥ ३७॥

हे शौनक! जिसके अंग नित्य भस्म लगानेसे पवित्र हो गये हैं तथा जो शिवनामजपका आदर करने लगा है, वह घोर संसारसागरको भी पार कर ही लेता है॥ ३८॥

ब्राह्मणोंका धनहरण और अनेक ब्राह्मणोंकी हत्या करके भी जो आदरपूर्वक शिवके नामका जप करता है, वह पापोंसे लिप्त नहीं होता है [अर्थात् उसे किसी भी प्रकारका पाप नहीं लगता है]॥ ३९॥

सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियोंने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिवके नामका जप संसारसागरको पार करनेके लिये सर्वोत्तम उपाय है॥ ४०॥

हे मुनिवरो! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं शिव-

नामके सर्वपापहारी माहात्म्यका वर्णन एक ही श्लोकमें करता हूँ॥ ४१॥

भगवान् शंकरके एक नाममें भी पापहरणकी जितनी शक्ति है, उतना पातक मनुष्य कभी कर ही नहीं सकता॥ ४२॥

हे मुने! पूर्वकालमें महापापी राजा इन्द्रद्युम्नने शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम सद्गति प्राप्त की थी॥ ४३॥

इसी तरह कोई ब्राह्मणी युवती भी जो बहुत पाप कर चुकी थी, शिवनामके प्रभावसे ही उत्तम गतिको प्राप्त हुई॥ ४४॥

हे द्विजवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे भगवन्नामके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया है। अब आप लोग भस्मका माहात्म्य सुनें, जो समस्त पावन वस्तुओंको भी पवित्र करनेवाला है॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणमें प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें शिवनाममाहात्म्यवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

भस्म-माहात्म्यका निरूपण

सूतजी बोले—हे महर्षियो! भस्म सम्पूर्ण मंगलोंको देनेवाला तथा उत्तम है, उसके दो भेद बताये गये हैं। मैं उन भेदोंका वर्णन करता हूँ, आप लोग सावधान होकर सुनिये॥ १॥

एकको 'महाभस्म' जानना चाहिये और दूसरेको 'स्वल्पभस्म'। महाभस्मके भी अनेक भेद हैं। वह तीन प्रकारका कहा गया है—श्रौत, स्मार्त और लौकिक। स्वल्पभस्मके भी बहुत-से भेदोंका वर्णन किया गया है। श्रौत और स्मार्त भस्मको केवल द्विजोंके ही उपयोगमें आनेके योग्य कहा गया है। तीसरा जो लौकिक भस्म है, वह अन्य लोगोंके भी उपयोगमें आ सकता है॥ २—४॥

श्रेष्ठ महर्षियोंने यह बताया है कि द्विजोंको वैदिक मन्त्रके उच्चारणपूर्वक भस्म धारण करना चाहिये। दूसरे लोगोंके लिये बिना मन्त्रके ही केवल धारण करनेका विधान है॥ ५॥

जले हुए गोबरसे उत्पन्न होनेवाला भस्म आग्नेय कहलाता है। हे महामुने! वह भी त्रिपुण्ड्रका द्रव्य है—ऐसा कहा गया है॥ ६॥

अग्निहोत्रसे उत्पन्न हुए भस्मका भी मनीषी पुरुषोंको संग्रह करना चाहिये। अन्य यज्ञसे प्रकट हुआ भस्म भी त्रिपुण्ड्रधारणके काममें आ सकता है॥ ७॥

जाबालोपनिषद्में आये हुए '**अग्निः**' इत्यादि सात मन्त्रोंद्वारा जलमिश्रित भस्मसे धूलन (विभिन्न अंगोंमें मर्दन या लेपन) करना चाहिये॥ ८॥

महर्षि जाबालिने सभी वर्णों और आश्रमोंके लिये मन्त्रसे या बिना मन्त्रके भी आदरपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगानेकी आवश्यकता बतायी है॥ ९॥

समस्त अंगोंमें सजल भस्मको मलना अथवा विभिन्न अंगोंमें तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना—इन कार्योंको मोक्षार्थी पुरुष प्रमादसे भी न छोड़े—ऐसा श्रुतिका आदेश है॥ १०॥

भगवान् शिव और विष्णुने भी तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण किया है। अन्य देवियोंसहित भगवती उमा और लक्ष्मीदेवीने भी वाणीद्वारा इसकी प्रशंसा की है॥ ११॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों, वर्णसंकरों तथा जातिभ्रष्ट पुरुषोंने भी उद्धूलन एवं त्रिपुण्ड्रके रूपमें भस्मको धारण किया है॥ १२॥

जो लोग श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मका उद्धूलन (लेप) तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेका आचरण नहीं करते हैं, उनमें वर्णाश्रम-समन्वित सदाचारकी कमी है॥ १३॥

जिनके द्वारा श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मलेप और त्रिपुण्ड्रधारणका आचरण नहीं किया जाता है, उनकी विनिर्मुक्ति करोड़ों जन्मोंमें भी संसारसे सम्भव नहीं है॥ १४॥

जो श्रद्धापूर्वक शरीरमें भस्मलेप और त्रिपुण्ड्र

धारणका आचारपालन नहीं करते हैं, उन्हें सौ करोड़ कल्पोंमें भी शिवका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता॥ १५॥

जो श्रद्धापूर्वक भस्मलेप तथा त्रिपुण्ड्रधारण नहीं करते हैं, वे महापातकोंसे युक्त हो जाते हैं, ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है॥ १६॥

जो श्रद्धापूर्वक भस्मोद्धूलन और त्रिपुण्ड्रधारण नहीं करते हैं, उन लोगोंका सम्पूर्ण आचरण विपरीत फल प्रदान करनेवाला हो जाता है॥ १७॥

हे मुनियो! जो महापातकोंसे युक्त और समस्त प्राणियोंसे द्वेष करनेवाले हैं, वे ही त्रिपुण्ड्रधारण तथा भस्मोद्धूलनसे अत्यधिक द्वेष करते हैं॥ १८॥

जो आत्मज्ञानी मनुष्य शिवाग्नि (अग्निहोत्र)-का कार्य करके '**त्र्यायुषं जमदग्नेः**'—इस मन्त्रसे भस्मका मात्र स्पर्श ही कर लेता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १९॥

जो मनुष्य तीनों सन्ध्याकालोंमें श्वेत भस्मके द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवसान्निध्यका आनन्द भोगता है॥ २०॥

जो व्यक्ति श्वेत भस्मसे अपने मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह अनादिभूत लोकोंको प्राप्तकर अमर हो जाता है॥ २१॥

बिना भस्मस्नान किये षडक्षर ['**ॐ नमः शिवाय**'] मन्त्रका जप नहीं करना चाहिये। विधिपूर्वक भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करके ही इसका जप करना चाहिये॥ २२॥

दयाहीन, अधम, महापापोंसे युक्त, उपपापोंसे युक्त, मूर्ख अथवा पतित व्यक्ति भी जिस देशमें नित्य भस्म धारण करते रहते हैं, वह देश सदैव सम्पूर्ण तीर्थों और यज्ञोंसे परिपूर्ण ही रहता है॥ २३-२४॥

त्रिपुण्ड्रधारण करनेवाला पापी जीव भी समस्त देवों और असुरोंके द्वारा पूज्य है। यदि पुण्यात्मा त्रिपुण्ड्रसे युक्त है, तो उसके लिये कहना ही क्या॥ २५॥

भस्म धारण करनेवाला शिवज्ञानी जिस देशमें स्वेच्छया चला जाता है, उस देशमें समस्त तीर्थ आ जाते हैं॥ २६॥

इस विषयमें और अधिक क्या कहा जाय! विद्वानोंको सदैव भस्म धारण करना चाहिये एवं लिंगार्चन करके षडक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २७॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मुनिगण और देवताओंके द्वारा भी भस्म-धारण करनेके महत्त्वका वर्णन किया जाना सम्भव नहीं है॥ २८॥

जिसने अपने वर्ण तथा आश्रमधर्मसे सम्बन्धित आचार तथा क्रियाएँ लुप्त कर दी हैं, यदि वह भी त्रिपुण्ड्र धारण करता है, तो समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २९॥

जो भस्मधारण करनेवालेको त्यागकर धार्मिक कृत्य करते हैं, उनको करोड़ों जन्म लेनेपर भी संसारसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो पाती है॥ ३०॥

जिस ब्राह्मणने भस्मसे अपने सिरपर त्रिपुण्ड्र धारण कर लिया है, उसने मानो गुरुसे सब कुछ पढ़ लिया है और सभी धार्मिक अनुष्ठान कर लिये हैं॥ ३१॥

जो मनुष्य भस्म धारण करनेवालेको देखकर उसे कष्ट देते हैं, वे निश्चित ही चाण्डालसे उत्पन्न हुए हैं—ऐसा विद्वानोंको जानना चाहिये॥ ३२॥

भक्तिपरायण ब्राह्मण और क्षत्रियको '**मा नस्तोके तनये०**'—इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्मको शास्त्रसम्मत कहे गये अंगोंपर धारण करना चाहिये॥ ३३॥

वैश्य '**त्र्यम्बकं यजामहे**'—इस मन्त्रसे और शूद्र '**शिवाय नमः**'—इस पंचाक्षरमन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रितकर धारण करे; विधवा स्त्रियोंके लिये [भस्म-धारणकी] विधि शूद्रोंके समान कही गयी है॥ ३४॥

पाँच ब्रह्मादि मन्त्रों*से [अभिमन्त्रित भस्मके द्वारा] गृहस्थ त्रिपुण्ड्र धारण करे। ब्रह्मचारी '**त्र्यम्बकं यजामहे**'—इस मन्त्रसे [भस्मको अभिमन्त्रित करके] और वानप्रस्थी '**अघोरेभ्योऽथ०**' इस मन्त्रसे भस्मको अभिमन्त्रित करके त्रिपुण्ड्र धारण करे, किंतु यति [संन्यासी] प्रणवके मन्त्रसे [भस्मको अभिमन्त्रित करके] त्रिपुण्ड्र धारण करे॥ ३५-३६॥

जो वर्णाश्रम धर्मसे परे है, वह '**शिवोऽहं**'—इस भावनासे नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करे और जो शिवयोगी

* अघोर, ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेवके मन्त्र ही पंचब्रह्मके ध्यान हैं। ये मन्त्र पृ०-सं० ९८ पर दिये गये हैं।

है, वह '**ईशानः सर्वविद्यानाम्**'—इस भावनाको करता हुआ त्रिपुण्ड्र धारण करे॥ ३७॥

सभी वर्णोंके द्वारा भस्म-धारण करनेके इस उत्तम कार्यको नहीं छोड़ना चाहिये; अन्य जीवोंको भी सदा भस्म धारण करना चाहिये—ऐसा भगवान् शिवका आदेश है॥ ३८॥

भस्म-स्नान करनेसे जितने कण शरीरमें प्रवेश करते हैं, उतने ही शिवलिंगोंको वह धारक अपने शरीरमें धारण करता है॥ ३९॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, स्त्री (सधवा), विधवा, बालक, पाखण्डी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, संन्यासी, व्रती और संन्यासिनी स्त्रियाँ—ये सभी भस्मके त्रिपुण्ड-धारणके प्रभावके द्वारा मुक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ४०-४१॥

जैसे ज्ञानवश या अज्ञानवश धारण की गयी अग्नि सबको समान रूपसे जलाती है, वैसे ही ज्ञान या अज्ञानवश धारण किया गया भस्म भी समानरूपसे सभी मनुष्योंको पवित्र करता है॥ ४२॥

भस्म तथा रुद्राक्ष-धारणके बिना जल अथवा अन्नको अंशमात्र भी नहीं खाना चाहिये। गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और वर्णसंकर जातिका व्यक्ति यदि भस्म एवं रुद्राक्षको धारण किये बिना भोजन करता है, तो वह मात्र पाप ही खाता है और नरककी ओर प्रस्थान करता है। ऐसे समयमें उक्त वर्णधर्मोंका वह व्यक्ति गायत्री मन्त्रके जपसे तथा यति (संन्यासी) मुख्य प्रणवमन्त्रके जपसे प्रायश्चित्त करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है॥ ४३॥

जो त्रिपुण्ड्रकी निन्दा करते हैं, वे साक्षात् शिवकी ही निन्दा करते हैं और जो त्रिपुण्ड्रको धारण करते हैं, वे साक्षात् उन्हीं शिवको ही धारण करते हैं॥ ४४॥

भस्मरहित भालको धिक्कार है, शिवालय (शिवमन्दिर)-रहित ग्रामको धिक्कार है, शिवार्चनसे रहित जन्मको धिक्कार है और शिवज्ञानरहित विद्याको धिक्कार है॥ ४५॥

जो लोग तीनों लोकोंके आधारस्वरूप महेश्वर भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं और त्रिपुण्ड्र धारण करनेवालेकी निन्दा करते हैं, उनको तो देखनेसे ही पाप लगता है। वे वर्णसंकर, सुअर, असुर, खर (गधा), श्वान (कुत्ता), क्रोष्टु (सियार) तथा कीड़े-मकोड़ेके समान ही उत्पन्न होते हैं और उन नरकगामी व्यक्तियोंका [यह] जन्म मात्र पाप करनेके लिये ही होता है॥ ४६॥

भगवान् शिवकी तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले उनके भक्तोंकी जो निन्दा करते हैं, उन्हें रातमें देखनेपर चन्द्रमाके दर्शनसे और दिनमें देखनेपर सूर्यके दर्शनसे शुद्धि प्राप्त होती है। [मात्र, इतना ही नहीं स्वप्नमें भी उन्हें देखनेसे पाप लगता है, अतः] स्वप्नमें जो उन्हें देखे, उसको अपनी शुद्धिके लिये श्रुतिमें कहे गये रुद्रसूक्तका आदरपूर्वक पाठ करना चाहिये, तभी उससे छुटकारा मिल सकता है। उनसे बात करनेसे नरक होता है। उस नरकसे मुक्ति प्राप्त करना असम्भव है। जो भस्म-त्रिपुण्ड्र आदि धारण करनेवाले पुरुषकी निन्दा करते हैं, वे निश्चित ही मूर्ख हैं॥ ४७॥

हे मुने! तान्त्रिक, ऊर्ध्वत्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले तथा तपाये हुए चक्र आदि चिह्नोंको धारण करनेवाले इस शिवयज्ञके अधिकारी नहीं हैं, वे इस यज्ञसे बहिष्कृत हैं॥ ४८॥

बृहज्जाबालोपनिषद्में कहे गये वे लोग ही उस यज्ञमें अधिकारी हैं। प्रयत्नपूर्वक उन्हें शिवयज्ञके कार्यमें सम्मिलित करना चाहिये। उन्हें भस्म लगाना चाहिये॥ ४९॥

विभूतिका चन्दनसे या चन्दनमें विभूतिका मिश्रणकर बनाये गये मिश्रित भस्मसे [मस्तकपर] त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। कुछ भी हो मस्तकपर विभूति धारण करना आवश्यक है। यदि बुद्धि नहीं है, तो भी यह करना सदा लोगोंके लिये आवश्यक ही है॥ ५०॥

ब्रह्मचारिणी, सधवा तथा विधवा स्त्रियों और ब्राह्मणादि द्विजोंको केशपर्यन्त भस्म धारण करना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यादि आश्रमवालोंको भी स्वच्छ विभूति धारण करना उचित है; क्योंकि विभूति मोक्ष देनेवाली और समस्त पापोंका नाश करनेवाली है॥ ५१॥

जो भस्मद्वारा विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करता है,

वह [ब्रह्महत्यादि] महापातकसमूहों और [उच्छिष्ट अन्नादिभक्षण] उपपातकोंसे मुक्त हो जाता है॥ ५२॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी और संन्यासी [ये चारों आश्रम]; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य वर्णसंकर [ये चारों वर्ण और उपवर्णके लोग]; पतित अथवा नीच मनुष्य भी विधिपूर्वक शरीरपर भस्म-उद्धूलन और त्रिपुण्ड्र धारण करके शुद्ध हो जाते हैं; [क्योंकि] सम्यक् रूपसे [धारण की गयी] भस्मसे [तत्काल ही] पापराशिसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ ५३-५४॥

भस्म धारण करनेवाला व्यक्ति विशेष रूपसे स्त्रीहत्या, गोहत्या, वीरहत्या और अश्वहत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ५५॥

दूसरेके द्रव्यका अपहरण, परायी स्त्रीका अभिमर्शन, दूसरेकी निन्दा, पराये खेतका अपहरण, दूसरेको कष्ट देना, फसल और बाग आदिका अपहरण, घर फूँकना (जलाना) आदि कर्म, नीचोंसे गाय, सोना, भैंस, तिल-कम्बल, वस्त्र, अन्न, धान्य तथा जल आदिका परिग्रह, दाश (मछुवारा), वेश्या, मतंगी, (चाण्डाली), शूद्रा, नटी, रजस्वला, कन्या और विधवा [स्त्रियों]-से मैथुन, मांस, चर्म, रस तथा नमकका विक्रय, पैशुन्य (चुगली) और अस्पष्ट बात, असत्य गवाही आदि देना—इस प्रकारसे अन्य असंख्य विभिन्न प्रकारके पाप त्रिपुण्ड्र धारण करनेके प्रभावसे तत्काल ही नष्ट हो जाते हैं॥ ५६—६०॥

भगवान् शिवके द्रव्यका अपहरण और जहाँ-कहीं शिवकी निन्दा करनेवाला तथा शिवके भक्तोंकी निन्दा करनेवाला व्यक्ति प्रायश्चित्त करनेपर भी शुद्ध नहीं होता है॥ ६१॥

जिसने शरीरपर रुद्राक्ष और मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण किया है, ऐसा मनुष्य यदि चाण्डाल भी है, तो भी वह सभी वर्णोंमें श्रेष्ठतम और सम्पूज्य है॥ ६२॥

जो मस्तकपर त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह इस संसारमें जितने भी तीर्थ हैं और गंगा आदि जितनी नदियाँ हैं, उन सबमें स्नान किये हुएके समान [पुण्यफल प्राप्त करनेवाला] होता है॥ ६३॥

पंचाक्षरमन्त्रसे लेकर सात करोड़ महामन्त्र और अन्य करोड़ों मन्त्र शिवकैवल्यको प्रदान करनेवाले होते हैं॥ ६४॥

हे मुने! [विष्णु आदि] देवताओंके [लिये प्रतिपादित] अन्य जो मन्त्र हैं, वे सभी सुखोंको देनेवाले हैं, जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसके वशमें वे सब मन्त्र स्वतः ही हो जाते हैं॥ ६५॥

त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला मनुष्य अपने वंश और गोत्रमें उत्पन्न हजारों पूर्वजोंका और भविष्यमें उत्पन्न होनेवाली हजारों सन्तानोंका उद्धार करता है॥ ६६॥

जो त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसे इस लोकमें रोगरहित दीर्घ आयु प्राप्त होती है और वह सम्पूर्ण भोगोंका उपभोग करके जीवनके अन्तिम समयमें सुखपूर्वक ही मृत्युको प्राप्त करता है। वह मृत्युके पश्चात् अणिमा, महिमा आदि आठों ऐश्वर्यों और सद्गुणोंसे युक्त दिव्य शरीरवाले शिवको प्राप्त करता है और दिव्यलोकके देवोंसे सेवित दिव्य विमानपर चढ़कर शिवलोकको जाता है॥ ६७-६८॥

वहाँपर वह सभी विद्याधरों और महापराक्रमी गन्धर्वों, इन्द्रादि लोकपालोंके लोकोंमें क्रमशः जाकर बहुत-से भोगोंका उपभोग करता हुआ प्रजापतियोंके पदों तथा ब्रह्माके पदपर आसीन होकर वहाँ [दिव्यलोककी] सैकड़ों कन्याओंके साथ आनन्दित होता है॥ ६९-७०॥

वह उस लोकमें ब्रह्माकी आयुके बराबर आयुको प्राप्तकर अनेक सुखोंका भोग करके विष्णुलोकको जाता है और ब्रह्माके सौ वर्षोंतक सुखोंका भोग प्राप्त करता है। तदनन्तर वह शिवलोकको जाकर इच्छानुकूल अक्षय कामनाओंको प्राप्तकर शिवका सान्निध्य प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ७१-७२॥

सभी उपनिषदोंके सारको बार-बार सम्यक् रूपसे देखकर यही निर्णय लिया गया है कि त्रिपुण्ड्र धारण करना ही परम श्रेष्ठ है॥ ७३॥

जो ब्राह्मण विभूतिकी निन्दा करता है, वह ब्राह्मण नहीं है, अपितु अन्य जातिका है और विभूतिनिन्दाके कारण उसे चतुर्मुख ब्रह्माकी आयुसीमातक नरक भोगना

पड़ता है ॥ ७४ ॥

श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, बलिवैश्वदेव और देवपूजनके समय जो पूतात्मा मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह मृत्युको भी जीत लेता है ॥ ७५ ॥

मलत्याग करनेपर [शुद्धिके लिये] जलस्नान किया जाता है, भस्मस्नान करनेपर सदा पवित्रता आती है, मन्त्रस्नान पापका हरण करता है और ज्ञानरूपी जलमें अवगाहन करनेपर परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ ७६ ॥

समस्त तीर्थोंमें [स्नान करनेसे] जो पुण्य और फल प्राप्त होता है, वह फल, भस्मस्नान करनेवालेको प्राप्त हो जाता है ॥ ७७ ॥

भस्मस्नान ही परम श्रेष्ठ तीर्थ है, जो प्रतिदिन गंगा (तीर्थ)-स्नानके समान है। भस्म तो भस्मरूपी साक्षात् शिव है, जो त्रैलोक्यको पवित्र करनेवाला है ॥ ७८ ॥

बिना त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए जो ब्राह्मण स्नान, ध्यान, दान और जप आदि अनुष्ठान कर्म करता है, वह न तो स्नान है, न ध्यान है, न दान है और न जप आदि अन्य अनुष्ठित कर्म ही है ॥ ७९ ॥

वानप्रस्थ, कन्या और दीक्षारहित मनुष्योंको मध्याह्नके पूर्व ही जलसे युक्त त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये, किंतु मध्याह्नके पश्चात् जलरहित भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना उचित है। इस प्रकार श्रद्धापूर्वक दृढ़ निश्चयवाला जो व्यक्ति नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करता है, उसे ही शिवभक्त जानना चाहिये। उसीको भुक्ति तथा मुक्ति भी प्राप्त होती है ॥ ८०-८१ ॥

जिसके अंगपर प्रचुर पुण्य देनेवाला एक भी रुद्राक्ष नहीं है और वह त्रिपुण्ड्रसे भी रहित है, उसका जन्म लेना व्यर्थ है ॥ ८२ ॥

[इसके पश्चात् भस्मधारण तथा त्रिपुण्ड्रकी महिमा एवं विधि बताकर सूतजीने फिर कहा—हे महर्षियो!] इस प्रकार मैंने संक्षेपसे त्रिपुण्ड्रका माहात्म्य बताया है। यह समस्त प्राणियोंके लिये गोपनीय रहस्य है। अतः आपको भी इसे गुप्त ही रखना चाहिये ॥ ८३ ॥

मुनिवरो! ललाट आदि सभी निर्दिष्ट स्थानोंमें जो भस्मसे तीन तिरछी रेखाएँ बनायी जाती हैं, उन्हींको विद्वानोंने त्रिपुण्ड्र कहा है ॥ ८४ ॥

भौहोंके मध्य भागसे लेकर जहाँतक भौहोंका अन्त है, उतना बड़ा त्रिपुण्ड्र ललाटमें धारण करना चाहिये ॥ ८५ ॥

मध्यमा और अनामिका अँगुलीसे दो रेखाएँ करके बीचमें अंगुष्ठद्वारा प्रतिलोमभावसे की गयी रेखा त्रिपुण्ड्र कहलाती है अथवा बीचकी तीन अँगुलियोंसे भस्म लेकर यत्नपूर्वक भक्तिभावसे ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। त्रिपुण्ड्र अत्यन्त उत्तम तथा भोग और मोक्षको देनेवाला है ॥ ८६-८७ ॥

त्रिपुण्ड्रकी तीनों रेखाओंमेंसे प्रत्येकके नौ-नौ देवता हैं, जो सभी अंगोंमें स्थित हैं, मैं उनका परिचय देता हूँ, सावधान होकर सुनें ॥ ८८ ॥

हे मुनिवरो! प्रणवका प्रथम अक्षर अकार, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी, धर्म, रजोगुण, ऋग्वेद, क्रियाशक्ति, प्रातःसवन तथा महादेव—ये त्रिपुण्ड्रकी प्रथम रेखाके नौ देवता हैं, यह बात शिवदीक्षापरायण पुरुषोंको अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये ॥ ८९-९० ॥

हे मुनिश्रेष्ठो! प्रणवका दूसरा अक्षर उकार, दक्षिणाग्नि, आकाश, सत्त्वगुण, यजुर्वेद, माध्यन्दिनसवन, इच्छाशक्ति, अन्तरात्मा तथा महेश्वर—ये दूसरी रेखाके नौ देवता हैं—ऐसा शिवदीक्षित लोगोंको जानना चाहिये ॥ ९१-९२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठो! प्रणवका तीसरा अक्षर मकार, आहवनीय अग्नि, परमात्मा, तमोगुण, द्युलोक, ज्ञानशक्ति, सामवेद, तृतीय सवन तथा शिव—ये तीसरी रेखाके नौ देवता हैं—ऐसा शिवदीक्षित भक्तोंको जानना चाहिये ॥ ९३-९४ ॥

इस प्रकार स्थानदेवताओंको उत्तम भक्तिभावसे नित्य नमस्कार करके स्नान आदिसे शुद्ध हुआ पुरुष यदि त्रिपुण्ड्र धारण करे, तो भोग और मोक्षको भी प्राप्त कर लेता है ॥ ९५ ॥

हे मुनीश्वरो! ये सम्पूर्ण अंगोंमें स्थान-देवता बताये गये हैं, अब उनसे सम्बन्धित स्थान बताता हूँ, भक्तिपूर्वक सुनिये ॥ ९६ ॥

बत्तीस, सोलह, आठ अथवा पाँच स्थानोंमें मनुष्य

त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तक, ललाट, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, मुख, कण्ठ, दोनों हाथ, दोनों कोहनी, दोनों कलाई, हृदय, दोनों पार्श्वभाग, नाभि, दोनों अण्डकोष, दोनों ऊरु, दोनों गुल्फ, दोनों घुटने, दोनों पिण्डली और दोनों पैर—ये बत्तीस उत्तम स्थान हैं; इनमें क्रमशः अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, दस दिक्प्रदेश, दस दिक्पाल तथा आठ वसुओंका निवास है॥ ९७—१००॥

धरा (धर), ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। इन सबका नाममात्र लेकर इनके स्थानोंमें विद्वान् पुरुष त्रिपुण्ड्र धारण करे। अथवा एकाग्रचित्त होकर सोलह स्थानोंमें ही त्रिपुण्ड्र धारण करे॥ १०१-१०२॥

मस्तक, ललाट, कण्ठ, दोनों कन्धों, दोनों भुजाओं, दोनों कोहनियों तथा दोनों कलाइयोंमें, हृदयमें, नाभिमें, दोनों पसलियोंमें तथा पृष्ठभागमें त्रिपुण्ड्र लगाकर वहाँ दोनों अश्विनीकुमारों, शिव, शक्ति, रुद्र, ईश तथा नारदका और वामा आदि नौ शक्तियोंका पूजन करे। ये सब मिलकर सोलह देवता हैं। अश्विनीकुमार युगल कहे गये हैं—नासत्य और दस्त्र॥ १०३—१०५॥

अथवा मस्तक, केश, दोनों कान, मुख, दोनों भुजा, हृदय, नाभि, दोनों ऊरु, दोनों जानु, दोनों पैर और पृष्ठभाग—इन सोलह स्थानोंमें सोलह त्रिपुण्ड्रका न्यास करे। मस्तकमें शिव, केशोंमें चन्द्रमा, दोनों कानोंमें रुद्र और ब्रह्मा, मुखमें विघ्नराज गणेश, दोनों भुजाओंमें विष्णु और लक्ष्मी, हृदयमें शम्भु, नाभिमें प्रजापति, दोनों ऊरुओंमें नाग और नागकन्याएँ, दोनों घुटनोंमें ऋषिकन्याएँ, दोनों पैरोंमें समुद्र तथा विशाल पृष्ठभागमें सम्पूर्ण तीर्थ देवतारूपसे विराजमान हैं। इस प्रकार सोलह स्थानोंका परिचय दिया गया। अब आठ स्थान बताये जा रहे हैं॥ १०६—१०९॥

गुह्य स्थान, ललाट, परम उत्तम कर्णयुगल, दोनों कन्धे, हृदय और नाभि—ये आठ स्थान हैं। इनमें ब्रह्मा तथा सप्तर्षि—ये आठ देवता बताये गये हैं। हे मुनीश्वरो! भस्मके स्थानको जाननेवाले विद्वानोंने इस तरह आठ स्थानोंका परिचय दिया है। अथवा मस्तक, दोनों भुजाएँ, हृदय और नाभि—इन पाँच स्थानोंको भस्मवेत्ता पुरुषोंने भस्म धारणके योग्य बताया है। यथासम्भव देश, काल आदिकी अपेक्षा रखते हुए उद्धूलन (भस्म)-को अभिमन्त्रित करना और जलमें मिलाना आदि कार्य करे। यदि उद्धूलनमें भी असमर्थ हो, तो त्रिपुण्ड्र आदि लगाये॥ ११०—११३॥

त्रिनेत्रधारी, तीनों गुणोंके आधार तथा तीनों देवताओंके जनक भगवान् शिवका स्मरण करते हुए '**नमः शिवाय**' कहकर ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाये। '**ईशाभ्यां नमः**'—ऐसा कहकर दोनों पार्श्वभागोंमें त्रिपुण्ड्र धारण करे। '**बीजाभ्यां नमः**'—यह बोलकर दोनों प्रकोष्ठोंमें भस्म लगाये। '**पितृभ्यां नमः**' कहकर नीचेके अंगमें, '**उमेशाभ्यां नमः**' कहकर ऊपरके अंगमें तथा '**भीमाय नमः**' कहकर पीठमें और सिरके पिछले भागमें त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये॥ ११४—११६॥

॥ इस प्रकार शिवमहापुराणके प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें भस्मधारणवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

रुद्राक्षधारणकी महिमा तथा उसके विविध भेदोंका वर्णन

सूतजी बोले—हे महाप्राज्ञ! हे महामते! शिवरूप हे शौनक ऋषे! अब मैं संक्षेपसे रुद्राक्षका माहात्म्य बता रहा हूँ, सुनिये॥ १॥

रुद्राक्ष शिवको बहुत ही प्रिय है। इसे परम पावन समझना चाहिये। रुद्राक्षके दर्शनसे, स्पर्शसे तथा उसपर जप करनेसे वह समस्त पापोंका अपहरण करनेवाला माना गया है॥ २॥

हे मुने! पूर्वकालमें परमात्मा शिवने समस्त लोकोंका

उपकार करनेके लिये देवी पार्वतीके सामने रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन किया था॥ ३॥

शिवजी बोले—हे महेश्वरि! हे शिवे! मैं आपके प्रेमवश भक्तोंके हितकी कामनासे रुद्राक्षकी महिमाका वर्णन करता हूँ, सुनिये॥ ४॥

हे महेशानि! पूर्वकालकी बात है, मैं मनको संयममें रखकर हजारों दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्यामें लगा रहा॥ ५॥

हे परमेश्वरि! मैं सम्पूर्ण लोकोंका उपकार करनेवाला स्वतन्त्र परमेश्वर हूँ। [एक दिन सहसा मेरा मन क्षुब्ध हो उठा।] अतः उस समय मैंने लीलावश ही अपने दोनों नेत्र खोले॥ ६॥

नेत्र खोलते ही मेरे मनोहर नेत्रपुटोंसे कुछ जलकी बूँदें गिरीं। आँसूकी उन बूँदोंसे वहाँ रुद्राक्ष नामक वृक्ष पैदा हो गये॥ ७॥

भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे अश्रुबिन्दु स्थावरभावको प्राप्त हो गये। वे रुद्राक्ष मैंने विष्णुभक्तोंको तथा चारों वर्णोंके लोगोंको बाँट दिये॥ ८॥

भूतलपर अपने प्रिय रुद्राक्षोंको मैंने गौड़ देशमें उत्पन्न किया। मथुरा, अयोध्या, लंका, मलयाचल, सह्यगिरि, काशी तथा अन्य देशोंमें भी उनके अंकुर उगाये। वे उत्तम रुद्राक्ष असह्य पापसमूहोंका भेदन करनेवाले तथा श्रुतियोंके भी प्रेरक हैं॥ ९-१०॥

मेरी आज्ञासे वे रुद्राक्ष ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जातिके भेदसे इस भूतलपर प्रकट हुए। रुद्राक्षोंकी ही जातिके शुभाक्ष भी हैं॥ ११॥

उन ब्राह्मणादि जातिवाले रुद्राक्षोंके वर्ण श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण जानने चाहिये। मनुष्योंको चाहिये कि वे क्रमशः वर्णके अनुसार अपनी जातिका ही रुद्राक्ष धारण करें॥ १२॥

भोग और मोक्षकी इच्छा रखनेवाले चारों वर्णोंके लोगों और विशेषतः शिवभक्तोंको शिव-पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये रुद्राक्षके फलोंको अवश्य धारण करना चाहिये॥ १३॥

आँवलेके फलके बराबर जो रुद्राक्ष हो, वह श्रेष्ठ बताया गया है। जो बेरके फलके बराबर हो, उसे मध्यम श्रेणीका कहा गया है। जो चनेके बराबर हो, उसकी गणना निम्न कोटिमें की गयी है। हे पार्वति! अब इसकी उत्तमताको परखनेकी यह दूसरी प्रक्रिया भक्तोंकी हितकामनासे बतायी जाती है। अतः आप भलीभाँति प्रेमपूर्वक इस विषयको सुनिये॥ १४-१५॥

हे महेश्वरि! जो रुद्राक्ष बेरके फलके बराबर होता है, वह उतना छोटा होनेपर भी लोकमें उत्तम फल देनेवाला तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला होता है॥ १६॥

जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके बराबर होता है, वह समस्त अरिष्टोंका विनाश करनेवाला होता है तथा जो गुंजाफलके समान बहुत छोटा होता है, वह सम्पूर्ण मनोरथों और फलोंकी सिद्धि करनेवाला होता है॥ १७॥

रुद्राक्ष जैसे-जैसे छोटा होता है, वैसे-वैसे अधिक फल देनेवाला होता है। एक छोटे रुद्राक्षको विद्वानोंने एक बड़े रुद्राक्षसे दस गुना अधिक फल देनेवाला बताया है॥ १८॥

पापोंका नाश करनेके लिये रुद्राक्षधारण आवश्यक बताया गया है। वह निश्चय ही सम्पूर्ण अभीष्ट मनोरथोंका साधक है, अतः उसे अवश्य ही धारण करना चाहिये॥ १९॥

हे परमेश्वरि! लोकमें मंगलमय रुद्राक्ष जैसा फल देनेवाला देखा जाता है, वैसी फलदायिनी दूसरी कोई माला नहीं दिखायी देती॥ २०॥

हे देवि! समान आकार-प्रकारवाले, चिकने, सुदृढ़, स्थूल, कण्टकयुक्त (उभरे हुए छोटे-छोटे दानोंवाले) और सुन्दर रुद्राक्ष अभिलषित पदार्थोंके दाता तथा सदैव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं॥ २१॥

जिसे कीड़ोंने दूषित कर दिया हो, जो खण्डित हो, फूटा हो, जिसमें उभरे हुए दाने न हों, जो व्रणयुक्त हो तथा जो पूरा-पूरा गोल न हो, इन छः प्रकारके रुद्राक्षोंको त्याग देना चाहिये॥ २२॥

जिस रुद्राक्षमें अपने आप ही डोरा पिरोनेके योग्य छिद्र हो गया हो, वही यहाँ उत्तम माना गया है। जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छेद किया गया हो, वह मध्यम

श्रेणीका होता है॥ २३॥

रुद्राक्षधारण बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला बताया गया है। ग्यारह सौ रुद्राक्षोंको धारण करनेवाला मनुष्य रुद्रस्वरूप ही हो जाता है॥ २४॥

इस जगत्में ग्यारह सौ रुद्राक्ष धारण करके मनुष्य जिस फलको पाता है, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता॥ २५॥

भक्तिमान् पुरुष भलीभाँति साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षके दानोंका सुन्दर मुकुट बनाये। तीन सौ साठ दानोंको लम्बे सूत्रमें पिरोकर एक हार बना ले। वैसे-वैसे तीन हार बनाकर भक्तिपरायण पुरुष उनका यज्ञोपवीत तैयार करे॥ २६-२७॥

हे महेश्वरि! शिवभक्त मनुष्योंको शिखामें तीन, दाहिने और बाँयें दोनों कानोंमें क्रमशः छः-छः, कण्ठमें एक सौ एक, भुजाओंमें ग्यारह-ग्यारह, दोनों कुहनियों और दोनों मणिबन्धोंमें पुनः ग्यारह-ग्यारह, यज्ञोपवीतमें तीन तथा कटिप्रदेशमें गुप्त रूपसे पाँच रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। हे परमेश्वरि! [उपर्युक्त कही गयी] इस संख्याके अनुसार जो व्यक्ति रुद्राक्ष धारण करता है, उसका स्वरूप भगवान् शंकरके समान सभी लोगोंके लिये प्रणम्य और स्तुत्य हो जाता है॥ २८—३१॥

इस प्रकार रुद्राक्षसे युक्त होकर मनुष्य जब आसन लगाकर ध्यानपूर्वक शिवका नाम जपने लगता है, तो उसको देखकर पाप स्वतः छोड़कर भाग जाते हैं॥ ३२॥

इस तरह मैंने एक हजार एक सौ रुद्राक्षोंको धारण करनेकी विधि कह दी है। इतने रुद्राक्षोंके न प्राप्त होनेपर मैं दूसरे प्रकारकी कल्याणकारी विधि कह रहा हूँ॥ ३३॥

शिखामें एक, सिरपर तीस, गलेमें पचास और दोनों भुजाओंमें सोलह-सोलह रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ ३४॥

दोनों मणिबन्धोंपर बारह, दोनों स्कन्धोंमें पाँच सौ और एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी माला बनाकर यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करना चाहिये॥ ३५॥

इस प्रकार दृढ़ निश्चय करनेवाला जो मनुष्य एक हजार रुद्राक्षोंको धारण करता है, वह रुद्र-स्वरूप है; समस्त देवगण जैसे शिवको नमस्कार करते हैं, वैसे ही उसको भी नमन करते हैं॥ ३६॥

शिखामें एक, मस्तकपर चालीस, कण्ठप्रदेशमें बत्तीस, वक्षःस्थलपर एक सौ आठ, प्रत्येक कानमें एक-एक, भुजबन्धोंमें छः-छः या सोलह-सोलह, दोनों हाथोंमें उनका दुगुना अथवा हे मुनीश्वर! प्रीतिपूर्वक जितनी इच्छा हो, उतने रुद्राक्षोंको धारण करना चाहिये। ऐसा जो करता है, वह शिवभक्त सभी लोगोंके लिये शिवके समान पूजनीय, वन्दनीय और बार-बार दर्शनके योग्य हो जाता है॥ ३७—३९॥

सिरपर ईशानमन्त्रसे, कानमें तत्पुरुषमन्त्रसे तथा गले और हृदयमें अघोरमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ ४०॥

विद्वान् पुरुष दोनों हाथोंमें अघोर बीजमन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करे और उदरपर वामदेवमन्त्रसे पन्द्रह रुद्राक्षोंद्वारा गूँथी हुई माला धारण करे॥ ४१॥

सद्योजात आदि पाँच ब्रह्ममन्त्रों तथा अंगमन्त्रोंके द्वारा रुद्राक्षकी तीन, पाँच या सात मालाएँ धारण करे अथवा मूलमन्त्र [**नमः शिवाय**]-से ही समस्त रुद्राक्षोंको धारण करे॥ ४२॥

रुद्राक्षधारी पुरुष अपने खान-पानमें मदिरा, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोड़ा, विड्वराह आदिको त्याग दे॥ ४३॥

हे गिरिराजनन्दिनी उमे! श्वेत रुद्राक्ष केवल ब्राह्मणोंको ही धारण करना चाहिये। गहरे लाल रंगका रुद्राक्ष क्षत्रियोंके लिये हितकर बताया गया है। वैश्योंके लिये प्रतिदिन बार-बार पीले रुद्राक्षको धारण करना आवश्यक है और शूद्रोंको काले रंगका रुद्राक्ष धारण करना चाहिये—यह वेदोक्त मार्ग है॥ ४४॥

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और संन्यासी—सबको नियमपूर्वक रुद्राक्ष धारण करना उचित है। इसे धारण किये बिना न रहे, यह परम रहस्य है। इसे धारण करनेका सौभाग्य बड़े पुण्यसे प्राप्त होता है। इसको त्यागनेवाला व्यक्ति नरकको जाता है॥ ४५॥

हे उमे! पहले आँवलेके बराबर और फिर उससे भी छोटे रुद्राक्ष धारण करे। जो रोगयुक्त हों, जिनमें दाने न हों, जिन्हें कीड़ोंने खा लिया हो, जिनमें पिरोनेयोग्य

छेद न हो, ऐसे रुद्राक्ष मंगलाकांक्षी पुरुषोंको नहीं धारण करना चाहिये। रुद्राक्ष मेरा मंगलमय लिंगविग्रह है। वह अन्ततः चनेके बराबर लघुतर होता है। सूक्ष्म रुद्राक्षको ही सदा प्रशस्त माना गया है॥ ४६ ॥

सभी आश्रमों, समस्त वर्णों, स्त्रियों और शूद्रोंको भी भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार सदैव रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। यतियोंके लिये प्रणवके उच्चारणपूर्वक रुद्राक्ष धारण करनेका विधान है॥ ४७ ॥

मनुष्य दिनमें [रुद्राक्ष धारण करनेसे] रात्रिमें किये गये पापोंसे और रात्रिमें [रुद्राक्ष धारण करनेसे] दिनमें किये गये पापोंसे; प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल [रुद्राक्ष धारण करनेसे] किये गये समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४८ ॥

संसारमें जितने भी त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाले हैं, जटाधारी हैं और रुद्राक्ष धारण करनेवाले हैं, वे यमलोकको नहीं जाते हैं॥ ४९ ॥

जिनके ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगा हो और सभी अंग रुद्राक्षसे विभूषित हों तथा जो पंचाक्षरमन्त्रका जप कर रहे हों, वे आप-सदृश पुरुषोंके पूज्य हैं; वे वस्तुतः साधु हैं॥ ५० ॥

[यम अपने गणोंको आदेश करते हैं कि] जिसके शरीरपर रुद्राक्ष नहीं है, मस्तकपर त्रिपुण्ड्र नहीं है और मुखमें **'ॐ नमः शिवाय'** यह पंचाक्षर मन्त्र नहीं है, उसको यमलोक लाया जाय। [भस्म एवं रुद्राक्षके] उस प्रभावको जानकर या न जानकर जो भस्म और रुद्राक्षको धारण करनेवाले हैं, वे सर्वदा हमारे लिये पूज्य हैं; उन्हें यमलोक नहीं लाना चाहिये॥ ५१-५२ ॥

कालने भी इस प्रकारसे अपने गणोंको आदेश दिया, तब 'वैसा ही होगा'—ऐसा कहकर आश्चर्यचकित सभी गण चुप हो गये॥ ५३ ॥

इसलिये हे महादेवि! रुद्राक्ष भी पापोंका नाशक है। हे पार्वति! उसको धारण करनेवाला मनुष्य पापी होनेपर भी मेरे लिये प्रिय है और शुद्ध है॥ ५४ ॥

हाथमें, भुजाओंमें और सिरपर जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह समस्त प्राणियोंसे अवध्य है और पृथ्वीपर रुद्ररूप होकर विचरण करता है॥ ५५ ॥

सभी देवों और असुरोंके लिये वह सदैव वन्दनीय एवं पूजनीय है। वह दर्शन करनेवाले प्राणीके पापोंका शिवके समान ही नाश करनेवाला है॥ ५६ ॥

ध्यान और ज्ञानसे रहित होनेपर भी जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है॥ ५७ ॥

मणि आदिकी अपेक्षा रुद्राक्षके द्वारा मन्त्रजप करनेसे करोड़ गुना पुण्य प्राप्त होता है और उसको धारण करनेसे तो दस करोड़ गुना पुण्यलाभ होता है॥ ५८ ॥

हे देवि! यह रुद्राक्ष, प्राणीके शरीरपर जबतक रहता है, तबतक स्वल्पमृत्यु उसे बाधा नहीं पहुँचाती है॥ ५९ ॥

त्रिपुण्ड्रको धारणकर तथा रुद्राक्षसे सुशोभित अंगवाला होकर मृत्युंजयका जप कर रहे उस [पुण्यवान् मनुष्य]-को देखकर ही रुद्रदर्शनका फल प्राप्त हो जाता है॥ ६० ॥

हे प्रिये! पंचदेवप्रिय [अर्थात् स्मार्त और वैष्णव] तथा सर्वदेवप्रिय सभी लोग रुद्राक्षकी मालासे समस्त मन्त्रोंका जप कर सकते हैं॥ ६१ ॥

विष्णु आदि देवताओंके भक्तोंको भी निस्सन्देह इसे धारण करना चाहिये। रुद्रभक्तोंके लिये तो विशेष रूपसे रुद्राक्ष धारण करना आवश्यक है॥ ६२ ॥

हे पार्वति! रुद्राक्ष अनेक प्रकारके बताये गये हैं। मैं उनके भेदोंका वर्णन करता हूँ। वे भेद भोग और मोक्षरूप फल देनेवाले हैं। तुम उत्तम भक्तिभावसे उनका परिचय सुनो॥ ६३ ॥

एक मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् शिवका स्वरूप है। वह भोग और मोक्षरूपी फल प्रदान करता है। उसके दर्शनमात्रसे ही ब्रह्महत्याका पाप नष्ट हो जाता है*॥ ६४ ॥

जहाँ रुद्राक्षकी पूजा होती है, वहाँसे लक्ष्मी दूर नहीं

* एकवक्त्रः शिवः साक्षाद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः। तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥
यत्र सम्पूजितस्तत्र लक्ष्मीर्दूरतरा न हि। नश्यन्त्युपद्रवाः सर्वे सर्वकामा भवन्ति हि॥
द्विवक्त्रो देवदेवेशः सर्वकामफलप्रदः। विशेषतः स रुद्राक्षो गोवधं नाशयेद् द्रुतम्॥

जातीं, उस स्थानके सारे उपद्रव नष्ट हो जाते हैं तथा वहाँ रहनेवाले लोगोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ६५ ॥

दो मुखवाला रुद्राक्ष देवदेवेश्वर कहा गया है। वह सम्पूर्ण कामनाओं और फलोंको देनेवाला है। वह विशेष रूपसे गोहत्याका पाप नष्ट करता है ॥ ६६ ॥

तीन मुखवाला रुद्राक्ष सदा साक्षात् साधनका फल देनेवाला है, उसके प्रभावसे सारी विद्याएँ प्रतिष्ठित हो जाती हैं ॥ ६७ ॥

चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्माका रूप है और ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति देनेवाला है। उसके दर्शन और स्पर्शसे शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ ६८ ॥

पाँच मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्निरुद्ररूप है। वह सब कुछ करनेमें समर्थ, सबको मुक्ति देनेवाला तथा सम्पूर्ण मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला है। वह पंचमुख रुद्राक्ष अगम्या स्त्रीके साथ गमन और पापान्न-भक्षणसे उत्पन्न समस्त पापोंको दूर कर देता है ॥ ६९-७० ॥

छ: मुखोंवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका स्वरूप है। यदि दाहिनी बाँहमें उसे धारण किया जाय, तो धारण करनेवाला मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ७१ ॥

हे महेश्वरि! सात मुखवाला रुद्राक्ष अनंग नामसे प्रसिद्ध है। हे देवेशि! उसको धारण करनेसे दरिद्र भी ऐश्वर्यशाली हो जाता है ॥ ७२ ॥

आठ मुखवाला रुद्राक्ष अष्टमूर्ति भैरवरूप है। उसको धारण करनेसे मनुष्य पूर्णायु होता है और मृत्युके पश्चात् शूलधारी शंकर हो जाता है ॥ ७३ ॥

नौ मुखवाले रुद्राक्षको भैरव तथा कपिलमुनिका प्रतीक माना गया है अथवा नौ रूप धारण करनेवाली महेश्वरी दुर्गा उसकी अधिष्ठात्री देवी मानी गयी हैं ॥ ७४ ॥

जो मनुष्य भक्तिपरायण होकर अपने बायें हाथमें नवमुख रुद्राक्ष धारण करता है, वह निश्चय ही मेरे समान सर्वेश्वर हो जाता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ७५ ॥

हे महेश्वरि! दस मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् भगवान् विष्णुका रूप है। हे देवेशि! उसको धारण करनेसे मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ॥ ७६ ॥

हे परमेश्वरि! ग्यारह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह रुद्ररूप है; उसको धारण करनेसे मनुष्य सर्वत्र विजयी होता है ॥ ७७ ॥

बारह मुखवाले रुद्राक्षको केशप्रदेशमें धारण करे। उसको धारण करनेसे मानो मस्तकपर बारहों आदित्य विराजमान हो जाते हैं ॥ ७८ ॥

तेरह मुखवाला रुद्राक्ष विश्वेदेवोंका स्वरूप है। उसको धारण करके मनुष्य सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त करता है तथा सौभाग्य और मंगललाभ करता है ॥ ७९ ॥

चौदह मुखवाला जो रुद्राक्ष है, वह परमशिवरूप

त्रिवक्त्रो यो हि रुद्राक्षः साक्षात्साधनदः सदा। तत्प्रभावाद्भवेयुर्वै विद्याः सर्वाः प्रतिष्ठिताः ॥
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति। दर्शनात् स्पर्शनात् सद्यश्चतुर्वर्गफलप्रदः ॥
पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नामतः प्रभुः। सर्वमुक्तिप्रदश्चैव सर्वकामफलप्रदः ॥
अगम्यागमनं पापमभक्ष्यस्य च भक्षणम्। इत्यादिसर्वपापानि पञ्चवक्त्रो व्यपोहति ॥
षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारणाद् दक्षिणे भुजे। ब्रह्महत्यादिकैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥
सप्तवक्त्रो महेशानि ह्यनङ्गो नाम नामतः। धारणात्तस्य देवेशि दरिद्रोऽपीश्वरो भवेत् ॥
रुद्राक्षश्चाष्टवक्त्रश्च वसुमूर्तिश्च भैरवः। धारणात्तस्य पूर्णायुर्मृतो भवति शूलभृत् ॥
भैरवो नववक्त्रश्च कपिलश्च मुनिः स्मृतः। दुर्गा वा तदधिष्ठात्री नवरूपा महेश्वरी ॥
तं धारयेद्वामहस्ते रुद्राक्षं भक्तितत्परः। सर्वेश्वरो भवेन्नूनं मम तुल्यो न संशयः ॥
दशवक्त्रो महेशानि स्वयं देवो जनार्दनः। धारणात्तस्य देवेशि सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥
एकादशमुखो यस्तु रुद्राक्षः परमेश्वरि। स रुद्रो धारणात्तस्य सर्वत्र विजयी भवेत् ॥
द्वादशास्यं तु रुद्राक्षं धारयेत् केशदेशके। आदित्याश्चैव ते सर्वे द्वादशैव स्थितास्तथा ॥
त्रयोदशमुखो विश्वेदेवस्तद्धारणान्नरः। सर्वान्कामानवाप्नोति सौभाग्यं मङ्गलं लभेत् ॥
चतुर्दशमुखो यो हि रुद्राक्षः परमः शिवः। धारयेन्मूर्ध्नि तं भक्त्या सर्वपापं प्रणश्यति ॥ (विद्येश्वरसंहिता २५। ६४-८०)

है। उसे भक्तिपूर्वक मस्तकपर धारण करे, इससे समस्त पापोंका नाश हो जाता है॥ ८०॥

हे गिरिराजकुमारी! इस प्रकार मुखोंके भेदसे रुद्राक्षके [चौदह] भेद बताये गये। अब तुम क्रमशः उन रुद्राक्षोंके धारण करनेके मन्त्रोंको प्रसन्नतापूर्वक सुनो—

१-ॐ ह्रीं नमः। २-ॐ नमः। ३-क्लीं नमः। ४-ॐ ह्रीं नमः। ५-ॐ ह्रीं नमः। ६-ॐ ह्रीं हुं नमः। ७-ॐ हुं नमः। ८-ॐ हुं नमः। ९-ॐ ह्रीं हुं नमः। १०-ॐ ह्रीं नमः। ११-ॐ ह्रीं हुं नमः। १२-ॐ क्रौं क्षौं रौं नमः। १३-ॐ ह्रीं नमः। १४-ॐ नमः [—इन चौदह मन्त्रोंद्वारा क्रमशः एकसे लेकर चौदह मुखवाले रुद्राक्षोंको धारण करनेका विधान है।] साधकको चाहिये कि वह निद्रा और आलस्यका त्याग करके श्रद्धाभक्तिसे सम्पन्न होकर सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये उक्त मन्त्रोंद्वारा उन-उन रुद्राक्षोंको धारण करे॥ ८१-८२॥

इस पृथ्वीपर जो मनुष्य मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित किये बिना ही रुद्राक्ष धारण करता है, वह क्रमशः चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त घोर नरकको जाता है॥ ८३॥

रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले पुरुषको देखकर भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा जो अन्य द्रोहकारी राक्षस आदि हैं, वे सब-के-सब दूर भाग जाते हैं। जो कृत्रिम अभिचार आदि कर्म प्रयुक्त होते हैं, वे सब रुद्राक्षधारीको देखकर सशंक हो दूर चले जाते हैं॥ ८४-८५॥

हे पार्वति! रुद्राक्षमालाधारी पुरुषको देखकर मैं शिव, भगवान् विष्णु, देवी दुर्गा, गणेश, सूर्य तथा अन्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं॥ ८६॥

हे महेश्वरि! इस प्रकार रुद्राक्षकी महिमाको जानकर धर्मकी वृद्धिके लिये भक्तिपूर्वक पूर्वोक्त मन्त्रोंद्वारा विधिवत् उसे धारण करना चाहिये॥ ८७॥

[हे मुनीश्वरो!] इस प्रकार परमात्मा शिवने भगवती पार्वतीके सामने भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करनेवाले भस्म तथा रुद्राक्षके माहात्म्यका वर्णन किया था॥ ८८॥

भस्म और रुद्राक्षको धारण करनेवाले मनुष्य भगवान् शिवको अत्यन्त प्रिय हैं। उसको धारण करनेके प्रभावसे ही भुक्ति-मुक्ति दोनों प्राप्त हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ८९॥

भस्म और रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य शिवभक्त कहा जाता है। भस्म एवं रुद्राक्षसे युक्त होकर जो मनुष्य [शिवप्रतिमाके सामने स्थित होकर] **'ॐ नमः शिवाय'**— इस पंचाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह पूर्ण भक्त कहलाता है॥ ९०॥

बिना भस्मका त्रिपुण्ड्र धारण किये और बिना रुद्राक्षमाला लिये जो महादेवकी पूजा करता है, उससे पूजित होनेपर भी महादेव अभीष्ट फल प्रदान नहीं करते हैं॥ ९१॥

हे मुनीश्वर! सभी कामनाओंको परिपूर्ण करनेवाले भस्म और रुद्राक्षके माहात्म्यको मैंने सुनाया। जो इस रुद्राक्ष और भस्मके माहात्म्यको भक्तिपूर्वक सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। वह पुत्र-पौत्र आदिके साथ इस लोकमें सभी प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है और भगवान् शिवका अतिप्रिय हो जाता है॥ ९२—९४॥

हे मुनीश्वरो! इस प्रकार मैंने शिवकी आज्ञाके अनुसार उत्तम मुक्ति देनेवाली विद्येश्वरसंहिता आपके समक्ष कही॥ ९५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके प्रथम विद्येश्वरसंहिताके साध्यसाधनखण्डमें रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

॥ प्रथम विद्येश्वरसंहिता पूर्ण हुई॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीय रुद्रसंहिता [प्रथम—सृष्टिखण्ड]

पहला अध्याय

ऋषियोंके प्रश्नके उत्तरमें श्रीसूतजीद्वारा नारद-ब्रह्म-संवादकी अवतारणा

विश्वोद्भवस्थितिलयादिषु हेतुमेकं
गौरीपतिं विदिततत्त्वमनन्तकीर्तिम्।
मायाश्रयं विगतमायमचिन्त्यरूपं
बोधस्वरूपममलं हि शिवं नमामि॥

जो विश्वकी उत्पत्ति-स्थिति और लय आदिके एकमात्र कारण हैं, गिरिराजकुमारी उमाके पति हैं, तत्त्वज्ञ हैं, जिनकी कीर्तिका कहीं अन्त नहीं है, जो मायाके आश्रय होकर भी उससे अत्यन्त दूर हैं, जिनका स्वरूप अचिन्त्य है, जो बोधस्वरूप हैं तथा निर्विकार हैं, उन भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १॥

वन्दे शिवं तं प्रकृतेरनादिं
प्रशान्तमेकं पुरुषोत्तमं हि।
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः॥

मैं स्वभावसे ही उन अनादि, शान्तस्वरूप, पुरुषोत्तम शिवकी वन्दना करता हूँ, जो अपनी मायासे इस सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करके आकाशकी भाँति इसके भीतर और बाहर भी स्थित हैं॥ २॥

वन्देऽन्तरस्थं निजगूढरूपं
शिवं स्वतः स्त्रष्टुमिदं विचष्टे।
जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति
यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवत्तम्॥

जैसे लोहा चुम्बकसे आकृष्ट होकर उसके पास ही लटका रहता है, उसी प्रकार ये सारे जगत् सदा सब ओर जिसके आस-पास ही भ्रमण करते हैं, जिन्होंने अपनेसे ही इस प्रपंचको रचनेकी विधि बतायी थी, जो सबके भीतर अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं तथा जिनका अपना स्वरूप अत्यन्त गूढ़ है, उन भगवान् शिवकी मैं सादर वन्दना करता हूँ॥ ३॥

व्यासजी बोले—जगत्के पिता भगवान् शिव, जगन्माता कल्याणमयी पार्वती तथा उनके पुत्र गणेशजीको नमस्कार करके हम इस पुराणका वर्णन करते हैं॥ ४॥

एक समयकी बात है, नैमिषारण्यमें निवास करनेवाले शौनक आदि सभी मुनियोंने उत्तम भक्तिभावके साथ सूतजीसे पूछा— ॥ ५॥

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] विद्येश्वरसंहिताकी जो साध्य-साधन-खण्ड नामवाली शुभ तथा उत्तम कथा है, उसे हमलोगोंने सुन लिया। उसका आदिभाग बहुत ही रमणीय है तथा वह शिवभक्तोंपर भगवान् शिवका वात्सल्य-स्नेह प्रकट करनेवाली है॥ ६॥

हे महाभाग! हे सूतजी ! हे तात! आप हमलोगोंको सदाशिव भगवान् शंकरकी उत्तम कथाका श्रवण करा रहे हैं, अतएव आप चिरकालतक जीवित रहें और सदा सुखी रहें। आपके मुखकमलसे निकल रहे ज्ञानामृतका पूर्ण रूपसे पान करते हुए भी हमलोग तृप्त नहीं हो पा रहे हैं, इसलिये हे अनघ (पुण्यात्मा)! हम सब पुनः कुछ पूछना चाहते हैं॥ ७-८॥

भगवान् व्यासकी कृपासे आप सर्वज्ञ एवं कृतकृत्य हैं। आपके लिये भूत-भविष्य और वर्तमानका कुछ भी अज्ञात नहीं है अर्थात् सब कुछ आपको ज्ञात है॥ ९॥

अपनी सद्भक्तिके द्वारा गुरु व्यासजीसे परमकृपाको प्राप्तकर आप विशेष रूपसे सब कुछ जान गये हैं और

अपने सम्पूर्ण जीवनको भी कृतार्थ कर लिया है॥ १०॥

हे विद्वन्! अब आप भगवान् शिवके परम उत्तम स्वरूपका वर्णन कीजिये। साथ ही शिव और पार्वतीके दिव्य चरित्रोंका पूर्णरूपसे श्रवण कराइये॥ ११॥

निर्गुण महेश्वर लोकमें सगुणरूप कैसे धारण करते हैं? हम सबलोग विचार करनेपर भी शिवके तत्त्वको नहीं समझ पाते॥ १२॥

सृष्टिके पूर्वमें भगवान् शिव किस प्रकार अपने स्वरूपसे स्थित होते हैं, पुनः सृष्टिके मध्यकालमें वे भगवान् किस तरह क्रीड़ा करते हुए सम्यक् व्यवहार करते हैं। सृष्टिकल्पका अन्त होनेपर वे महेश्वरदेव किस रूपमें स्थित रहते हैं? लोककल्याणकारी शंकर कैसे प्रसन्न होते हैं॥ १३-१४॥

प्रसन्न हुए महेश्वर अपने भक्तों तथा दूसरोंको कौन-सा उत्तम फल प्रदान करते हैं? यह सब हमसे कहिये। हमने सुना है कि भगवान् शिव शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। वे महान् दयालु हैं, इसलिये वे अपने भक्तोंका कष्ट नहीं देख सकते॥ १५-१६॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता शिवके ही अंगसे उत्पन्न हुए हैं। इनमें महेश तो पूर्णांश हैं, वे स्वयं ही दूसरे शिव हैं। आप उनके प्राकट्यकी कथा तथा उनके विशेष चरित्रोंका वर्णन कीजिये। हे प्रभो! आप उमाके आविर्भाव और उनके विवाहकी भी कथा कहिये। विशेषतः उनके गार्हस्थ्यधर्मका और अन्य लीलाओंका भी वर्णन कीजिये। हे निष्पाप सूतजी! ये सब तथा अन्य बातें भी आप बतायें॥ १७—१९॥

व्यासजी बोले—उनके ऐसा पूछनेपर सूतजी प्रसन्न हो उठे और भगवान् शंकरके चरणकमलोंका स्मरण करके मुनीश्वरोंसे कहने लगे—॥ २०॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! आपलोगोंने बड़ी उत्तम बात पूछी है। आपलोग धन्य हैं, जो कि भगवान् सदाशिवकी कथामें आपलोगोंकी आन्तरिक निष्ठा हुई है, सदाशिवसे सम्बन्धित कथा वक्ता, पूछनेवाले और सुननेवाले—इन तीनों प्रकारके पुरुषोंको गंगाजीके समान पवित्र करती है॥ २१-२२॥

हे द्विजो! पशुओंकी हिंसा करनेवाले निष्ठुर कसाईके सिवा दूसरा कौन पुरुष तीनों प्रकारके लोगोंको सदा आनन्द देनेवाले शिव-गुणानुवादको सुननेसे ऊब सकता है। जिनके मनमें कोई तृष्णा नहीं है, ऐसे महात्मा पुरुष भगवान् शिवके उन गुणोंका गान करते हैं; क्योंकि वह संसाररूपी रोगकी दवा है, मन तथा कानोंको प्रिय लगनेवाला है और सम्पूर्ण मनोरथोंको देनेवाला है॥ २३-२४॥

हे ब्राह्मणो! आपलोगोंके प्रश्नके अनुसार मैं यथाबुद्धि प्रयत्नपूर्वक शिवलीलाका वर्णन करता हूँ, आपलोग आदरपूर्वक सुनें॥ २५॥

जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी प्रकार नारदजीने शिवरूपी भगवान् विष्णुसे प्रेरित होकर अपने पिता ब्रह्माजीसे पूछा था। अपने पुत्र नारदका प्रश्न सुनकर शिवभक्त ब्रह्माजीका चित्त प्रसन्न हो गया और वे उन मुनिश्रेष्ठको हर्ष प्रदान करते हुए प्रेमपूर्वक भगवान् शिवके यशका गान करने लगे॥ २६-२७॥

व्यासजी बोले—सूतजीके द्वारा कथित उस वचनको सुनकर वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो उठे और उन लोगोंने उस विषयको उनसे पूछा—॥ २८॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महाभाग! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे महामते! आपके सुन्दर वचनको सुनकर हमारे हृदयमें कौतूहल हो रहा है॥ २९॥

ब्रह्मा और नारदका यह महान् सुख देनेवाला संवाद कब हुआ था, जिसमें संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाली शिवलीला वर्णित है॥ ३०॥

हे तात! प्रेमपूर्वक नारदके द्वारा पूछे गये उन-उन प्रश्नोंके अनुसार भगवान् शंकरके यशका गुणानुवाद करनेवाले ब्रह्मा और नारदके संवादका वर्णन करें॥ ३१॥

आत्मज्ञानी उन मुनियोंके ऐसे वचनको सुनकर प्रसन्न हुए सूतजी उस ब्रह्मा-नारद-संवादके अनुसार [कही गयी शिवकथाको] कहने लगे॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें मुनि-प्रश्न-वर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

नारद मुनिकी तपस्या, इन्द्रद्वारा तपस्यामें विघ्न उपस्थित करना, नारदका कामपर विजय पाना और अहंकारसे युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रसे अपने तपका कथन

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] एक समयकी बात है, ब्रह्माजीके पुत्र, मुनिशिरोमणि, विनीतचित्त नारदजीने तपस्याके लिये मनमें विचार किया॥ १॥

हिमालय पर्वतमें कोई एक परम शोभा-सम्पन्न गुफा थी, जिसके निकट देवनदी गंगा निरन्तर वेगपूर्वक बहती थीं॥ २॥

वहाँ एक महान् दिव्य आश्रम था, जो नाना प्रकारकी शोभासे सुशोभित था। वे दिव्यदर्शी नारदजी तपस्या करनेके लिये वहाँ गये॥ ३॥

उस गुफाको देखकर मुनिवर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और सुदीर्घकालतक वहाँ तपस्या करते रहे। उनका अन्त:करण शुद्ध था। वे दृढ़तापूर्वक आसन बाँधकर मौन हो प्राणायामपूर्वक समाधिमें स्थित हो गये॥ ४॥

हे ब्राह्मणो! उन्होंने वह समाधि लगायी, जिसमें ब्रह्मका साक्षात्कार करानेवाला **'अहं ब्रह्मास्मि'** [मैं ब्रह्म हूँ]—यह विज्ञान प्रकट होता है॥ ५॥

मुनिवर नारदजी जब इस प्रकार तपस्या करने लगे, तब देवराज इन्द्र काँप उठे और मानसिक सन्तापसे व्याकुल हो गये॥ ६॥

'वे नारद मुनि मेरा राज्य लेना चाहते हैं'—मन-ही-मन ऐसा सोचकर इन्द्रने उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये प्रयत्न करनेकी इच्छा की। उस समय देवनायक इन्द्रने मनसे कामदेवका स्मरण किया। [स्मरण करते ही] समान बुद्धिवाले कामदेव अपनी पत्नी रतिके साथ आ गये॥ ७-८॥

आये हुए कामदेवको देखकर कपटबुद्धि देवराज इन्द्र शीघ्र ही स्वार्थके लिये उनको सम्बोधित करते हुए कहने लगे— ॥ ९॥

इन्द्र बोले—मित्रोंमें श्रेष्ठ! हे महावीर! हे सर्वदा हितकारक! तुम प्रेमपूर्वक मेरे वचनोंको सुनो और मेरी सहायता करो॥ १०॥

हे मित्र! तुम्हारे बलसे मैंने बहुत लोगोंकी तपस्याका गर्व नष्ट किया है। तुम्हारी कृपासे ही मेरा यह राज्य स्थिर है॥ ११॥

पूर्णरूपसे संयमित होकर दृढ़निश्चयी देवर्षि नारद मनसे विश्वेश्वर भगवान् शंकरकी प्राप्तिका लक्ष्य बनाकर हिमालयकी गुफामें तपस्या कर रहे हैं॥ १२॥

मुझे यह शंका है कि [तपस्यासे प्रसन्न] ब्रह्मासे वे मेरा राज्य ही न माँग लें। आज ही तुम वहाँ चले जाओ और उनकी तपस्यामें विघ्न डालो॥ १३॥

इन्द्रसे ऐसी आज्ञा पाकर वे कामदेव वसन्तको साथ लेकर बड़े गर्वसे उस स्थानपर गये और अपना उपाय करने लगे॥ १४॥

उन्होंने वहाँ शीघ्र ही अपनी सारी कलाएँ रच डालीं। वसन्तने भी मदमत्त होकर अनेक प्रकारसे अपना प्रभाव प्रकट किया॥ १५॥

हे मुनिवरो! [कामदेव और वसन्तके अथक प्रयत्न करनेपर भी] नारदमुनिके चित्तमें विकार नहीं उत्पन्न हुआ। महादेवजीके अनुग्रहसे उन दोनोंका गर्व चूर्ण हो गया॥ १६॥

हे शौनक आदि महर्षियो! ऐसा होनेमें जो कारण था, उसे आदरपूर्वक सुनिये। महादेवजीकी कृपासे ही

[नारदमुनिपर] कामदेवका कोई प्रभाव नहीं पड़ा॥ १७॥

पहले उसी आश्रममें कामशत्रु भगवान् शिवने उत्तम तपस्या की थी और वहींपर उन्होंने मुनियोंकी तपस्याका नाश करनेवाले कामदेवको शीघ्र ही भस्म कर डाला था॥ १८॥

उस समय रतिने कामदेवको पुनः जीवित करनेके लिये देवताओंसे प्रार्थना की। तब देवताओंने समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरसे याचना की। इसपर वे बोले—हे देवताओ! कुछ समय व्यतीत होनेके बाद कामदेव जीवित तो हो जायँगे, परंतु यहाँ उनका कोई उपाय नहीं चल सकेगा॥ १९-२०॥

हे अमरगण! यहाँ खड़े होकर लोग चारों ओर जितनी दूरतककी भूमिको नेत्रोंसे देख पाते हैं, वहाँतक कामदेवके बाणोंका प्रभाव नहीं चल सकेगा, इसमें संशय नहीं है॥ २१॥

भगवान् शंकरकी इस उक्तिके अनुसार उस समय वहाँ नारदजीके प्रति कामदेवका अपना प्रभाव मिथ्या सिद्ध हुआ। वे शीघ्र ही स्वर्गलोकमें इन्द्रके पास लौट गये॥ २२॥

वहाँ कामदेवने अपना सारा वृत्तान्त और मुनिका प्रभाव कह दिया। तत्पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे वे वसन्तके साथ अपने स्थानको लौट गये॥ २३॥

उस समय देवराज इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने नारदजीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण वे उस पूर्ववृत्तान्तका स्मरण न कर सके॥ २४॥

वास्तवमें इस संसारमें सभी प्राणियोंके लिये शम्भुकी मायाको जानना अत्यन्त कठिन है। जिसने अपने-आपको शिवको समर्पित कर दिया है, उस भक्तको छोड़कर शेष सम्पूर्ण जगत् उनकी मायासे मोहित हो जाता है॥ २५॥

नारदजी भी भगवान् शंकरकी कृपासे वहाँ चिरकालतक तपस्यामें लगे रहे। अन्तमें अपनी तपस्याको पूर्ण हुआ जानकर वे मुनि उससे विरत हो गये॥ २६॥

कामदेवपर अपनी विजय मानकर उन मुनीश्वरको व्यर्थ ही गर्व हो गया। भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें यथार्थ बातका ज्ञान नहीं रहा॥ २७॥

हे मुनिश्रेष्ठो! भगवान् शम्भुकी महामाया धन्य है, धन्य है। ब्रह्मा, विष्णु आदि देव भी उसकी गतिको नहीं देख पाते हैं॥ २८॥

उस मायासे अत्यन्त मोहित मुनिशिरोमणि नारद गर्वयुक्त होकर अपना [कामविजय-सम्बन्धी] वृत्तान्त बतानेके लिये तुरंत ही कैलास पर्वतपर गये॥ २९॥

वहाँ रुद्रदेवको नमस्कार करके गर्वसे भरे हुए मुनिने अपने आपको महात्मा, प्रभु तथा कामजेता मानकर उनसे अपना सारा वृत्तान्त कहा॥ ३०॥

यह सुनकर भक्तवत्सल शंकरजी अपनी मायासे मोहित, वास्तविक कारणसे अनभिज्ञ तथा भ्रष्टचित्त नारदसे कहने लगे—॥ ३१॥

रुद्र बोले—हे तात! हे नारद! हे प्राज्ञ! तुम धन्य हो। मेरी बात सुनो, अबसे फिर कभी ऐसी बात कहीं भी न कहना और विशेषतः भगवान् विष्णुके सामने तो इसकी चर्चा कदापि न करना॥ ३२॥

तुमने मुझसे अपना जो वृत्तान्त बताया है, उसे पूछनेपर भी दूसरोंके सामने न कहना। यह [सिद्धि-सम्बन्धी] वृत्तान्त सर्वथा गुप्त रखनेयोग्य है, इसे कभी किसीसे प्रकट नहीं करना चाहिये॥ ३३॥

तुम मुझे विशेष प्रिय हो, इसीलिये [अधिक जोर देकर] मैं तुम्हें यह शिक्षा देता हूँ; क्योंकि तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो और उनके भक्त होते हुए मेरे अत्यन्त अनुगामी हो॥ ३४॥

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर संसारकी सृष्टि करनेवाले भगवान् रुद्रने नारदजीको शिक्षा दी, परंतु शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण नारदजीने उनकी दी हुई शिक्षाको अपने लिये हितकर नहीं माना। भावी कर्मगति अत्यन्त बलवान् होती है, उसे बुद्धिमान् लोग ही जान सकते हैं। भगवान् शिवकी इच्छाको कोई भी मनुष्य नहीं टाल सकता॥ ३५-३६॥

तदनन्तर मुनिशिरोमणि नारद ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने अपने तपोबलसे कामदेवको जीत लेनेकी बात कही॥ ३७॥

उनकी वह बात सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके और समस्त कारण जानकर अपने पुत्रको यह सब कहनेसे मना किया॥ ३८॥

नारदजी शिवकी मायासे मोहित थे, अतएव उनके

चित्तमें मदका अंकुर जम गया था। इसलिये ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ नारदजीने ब्रह्माजीकी बातको अपने लिये हितकर नहीं समझा॥ ३९॥

इस लोकमें शिवकी जैसी इच्छा होती है, वैसा ही होता है। समस्त विश्व उन्हींकी इच्छाके अधीन है और उन्हींकी वाणीरूपी तन्त्रीसे बँधा हुआ है॥ ४०॥

तब नष्ट बुद्धिवाले नारदजी अपना सारा वृत्तान्त गर्वपूर्वक भगवान् विष्णुके सामने कहनेके लिये वहाँसे शीघ्र ही विष्णुलोकमें गये॥ ४१॥

नारद मुनिको आते देखकर भगवान् विष्णु बड़े आदरसे उठकर शीघ्र ही आगे बढ़े और उन्होंने मुनिको हृदयसे लगा लिया। उन्हें मुनिके आगमनके हेतुका ज्ञान पहलेसे ही था। नारदजीको अपने आसनपर बैठाकर भगवान् शिवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके श्रीहरि उनसे यथार्थ तथा गर्वनाशक वचन कहने लगे— ॥ ४२-४३॥

विष्णु बोले—हे तात! आप कहाँसे आ रहे हैं? यहाँ किसलिये आपका आगमन हुआ है? हे मुनिश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। आपके शुभागमनसे मैं पवित्र हो गया॥ ४४॥

भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर गर्वसे भरे हुए नारद मुनिने मदसे मोहित होकर अपना सारा वृत्तान्त बड़े अभिमानके साथ बताया॥ ४५॥

नारद मुनिका वह अहंकारयुक्त वचन सुनकर मन-ही-मन शिवके चरणारविन्दोंका स्मरणकर भगवान् विष्णुने उनके कामविजयके समस्त यथार्थ कारणको पूर्णरूपसे जान लिया॥ ४६॥

उसके पश्चात् शिवके आत्मस्वरूप, परम शैव, सुबुद्ध भगवान् विष्णु भक्तिपूर्वक अपना सिर झुकाकर हाथ जोड़कर परमेश्वर कैलासपति शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ४७॥

विष्णु बोले—हे देवेश्वर! हे महादेव! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न हों। हे शिव! आप धन्य हैं और सबको विमोहित करनेवाली आपकी माया भी धन्य है॥ ४८॥

इस प्रकार परमात्मा शिवकी स्तुति करके हरि अपने नेत्रोंको बन्दकर उनके चरणकमलोंमें ध्यानस्थित होकर चुप हो गये॥ ४९॥

विश्वपालक हरि शिवके द्वारा जो होना था, उसे हृदयसे जानकर शिवके आज्ञानुसार मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे कहने लगे— ॥ ५०॥

विष्णु बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आप धन्य हैं, आप तपस्याके भण्डार हैं और आपका हृदय भी बड़ा उदार है। हे मुने! जिसके भीतर भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नहीं होते, उसीके मनमें समस्त दुःखोंको देनेवाले काम, मोह आदि विकार शीघ्र उत्पन्न होते हैं। आप तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं और सदा ज्ञान-वैराग्यसे युक्त रहते हैं, फिर आपमें कामविकार कैसे आ सकता है। आप तो जन्मसे निर्विकार तथा शुद्ध बुद्धिवाले हैं॥ ५१-५२॥

श्रीहरिकी कही हुई बहुत-सी बातें सुनकर मुनिशिरोमणि नारदजी जोर-जोरसे हँसने लगे और मन-ही-मन भगवान्‌को प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे— ॥ ५३॥

नारदजी बोले—हे स्वामिन्! यदि मुझपर आपकी कृपा है, तब कामदेवका मेरे ऊपर क्या प्रभाव हो सकता है। ऐसा कहकर भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक झुकाकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारदमुनि वहाँसे चले गये॥ ५४-५५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें नारदतपोवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

मायानिर्मित नगरमें शीलनिधिकी कन्यापर मोहित हुए नारदजीका भगवान् विष्णुसे उनका रूप माँगना, भगवान्‌का अपने रूपके साथ वानरका-सा मुँह देना, कन्याका भगवान्‌को वरण करना और कुपित हुए नारदका शिवगणोंको शाप देना

ऋषिगण बोले—हे सूत! हे सूत! हे महाभाग! हे व्यासशिष्य! आपको नमस्कार है। हे तात! कृपापूर्वक आपने हम सभीको जो कथा सुनायी है, यह निश्चित ही आश्चर्यजनक है॥ १॥

हे तात! मुनिके चले जानेके पश्चात् भगवान् विष्णुने क्या किया और नारदजी कहाँ गये? वह सब आप हमलोगोंको बतायें॥ २॥

व्यासजी बोले—उन ऋषियोंकी बात सुनकर पौराणिकोंमें श्रेष्ठ तथा बुद्धिमान् सूतजी नाना प्रकारकी सृष्टि करनेवाले शिवका स्मरण करके कहने लगे—॥ ३॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] उन नारदमुनिके इच्छानुसार वहाँसे चले जानेपर भगवान् शिवकी इच्छासे मायाविशारद श्रीहरिने तत्काल अपनी माया प्रकट की॥ ४॥

उन्होंने मुनिके मार्गमें एक विशाल, सौ योजन विस्तार-वाले, अद्भुत तथा अत्यन्त मनोहर नगरकी रचना की॥ ५॥

भगवान्‌ने उसे अपने वैकुण्ठलोकसे भी अधिक रमणीय बनाया था। नाना प्रकारकी वस्तुएँ उस नगरकी शोभा बढ़ाती थीं। वहाँ स्त्रियों और पुरुषोंके लिये बहुत-से विहारस्थल थे। वह नगर चारों वर्णोंके लोगोंसे युक्त था॥ ६॥

वहाँ शीलनिधि नामक ऐश्वर्यशाली राजा राज्य करते थे। वे अपनी पुत्रीका स्वयंवर करनेके लिये उद्यत थे। अतः उन्होंने महान् उत्सवका आयोजन किया था। उनकी कन्याका वरण करनेके लिये उत्सुक हो चारों दिशाओंसे बहुत-से राजकुमार आये थे, जो नाना प्रकारकी वेशभूषा तथा सुन्दर शोभासे प्रकाशित हो रहे थे। उन राजकुमारोंसे वह नगर भरा-पूरा दिखायी देता था॥ ७-८॥

ऐसे राजनगरको देख नारदजी मोहित हो गये। वे कौतुकी कामासक्त नारद राजा शीलनिधिके द्वारपर गये॥ ९॥

मुनिश्रेष्ठ नारदको आया देखकर राजा शीलनिधिने उन्हें श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बिठाकर उनका पूजन किया॥ १०॥

तत्पश्चात् राजाने श्रीमती नामक अपनी सुन्दरी कन्याको बुलवाकर उससे नारदजीके चरणोंमें प्रणाम करवाया॥ ११॥

उस कन्याको देखकर नारदमुनि चकित हो गये और बोले—हे राजन्! यह देवकन्याके समान सुन्दरी तथा महाभाग्यशालिनी कन्या कौन है?॥ १२॥

उनकी यह बात सुनकर राजाने हाथ जोड़कर कहा—हे मुने! यह मेरी पुत्री है, इसका नाम श्रीमती है॥ १३॥

अब इसके विवाहका समय आ गया है। यह अपने लिये सुन्दर वर चुननेके निमित्त स्वयंवरमें जानेवाली है। इसमें सब प्रकारके शुभ लक्षण लक्षित होते हैं॥ १४॥

हे महर्षे! आप जन्मस्थ जातक ग्रहोंके अनुसार इसका सम्पूर्ण भाग्य बतायें और यह मेरी पुत्री कैसा वर प्राप्त करेगी, यह भी कहें॥ १५॥

राजाके इस प्रकार पूछनेपर कामसे विह्वल हुए मुनिश्रेष्ठ नारद उस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छा मनमें लिये राजाको सम्बोधित करके यह वाक्य बोले—॥ १६॥

हे भूपाल! आपकी यह पुत्री समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, परम सौभाग्यवती, धन्य और साक्षात् लक्ष्मीकी भाँति समस्त गुणोंकी आगार है। इसका पति निश्चय ही

भगवान् शंकरके समान वैभवशाली, सर्वेश्वर, किसीसे पराजित न होनेवाला, वीर, कामविजयी तथा सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ होगा॥ १७-१८॥

ऐसा कहकर राजासे विदा लेकर इच्छानुसार विचरनेवाले नारदमुनि वहाँसे चल दिये। वे कामके वशीभूत हो गये थे। शिवकी मायाने उन्हें विशेष मोहमें डाल दिया था॥ १९॥

वे मुनि मन-ही-मन सोचने लगे कि मैं इस राजकुमारीको कैसे प्राप्त करूँ! स्वयंवरमें आये हुए नरेशोंमेंसे सबको छोड़कर यह एकमात्र मेरा ही वरण कैसे करे!॥ २०॥

समस्त नारियोंको सौन्दर्य सर्वथा प्रिय होता है। सौन्दर्यको देखकर ही वह प्रसन्नतापूर्वक मेरे अधीन हो सकती है, इसमें संशय नहीं है। ऐसा विचारकर कामसे विह्वल हुए मुनिवर नारद भगवान् विष्णुका रूप ग्रहण करनेके लिये तत्काल उनके लोकमें जा पहुँचे॥ २१-२२॥

वहाँ भगवान् विष्णुको प्रणाम करके वे यह वचन बोले—[हे भगवन्!] मैं एकान्तमें आपसे अपना सारा वृत्तान्त कहूँगा॥ २३॥

तब 'बहुत अच्छा'—यह कहकर शिव-इच्छित कर्म करनेवाले लक्ष्मीपति श्रीहरि नारदजीके साथ एकान्तमें जा बैठे और बोले—हे मुने! अब आप अपनी बात कहिये, तब केशवसे मुनि नारदजीने कहा॥ २४॥

नारदजी बोले—हे भगवन्! आपके भक्त जो राजा शीलनिधि हैं, वे सदा धर्मपालनमें तत्पर रहते हैं। उनकी एक विशाललोचना कन्या है, जो बहुत ही सुन्दरी है। उसका नाम श्रीमती है॥ २५॥

वह जगन्मोहिनीके रूपमें विख्यात है और तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी है। हे विष्णो! आज मैं शीघ्र ही उस कन्यासे विवाह करना चाहता हूँ॥ २६॥

राजा शीलनिधिने अपनी पुत्रीकी इच्छासे स्वयंवर रचाया है, इसलिये चारों दिशाओंसे वहाँ हजारों राजकुमार आये हुए हैं। यदि आप अपना रूप मुझे दे दें, तो मैं उसे निश्चित ही प्राप्त कर लूँगा। आपके रूपके बिना वह मेरे कण्ठमें जयमाला नहीं डालेगी॥ २७-२८॥

हे नाथ! मैं आपका प्रिय सेवक हूँ, अत: आप मुझे अपना स्वरूप दे दीजिये, जिससे वह राजकुमारी श्रीमती निश्चय ही मुझे वरण कर ले॥ २९॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! नारदमुनिकी ऐसी बात सुनकर भगवान् मधुसूदन हँस पड़े और शंकरके प्रभावका अनुभव करके उन दयालु प्रभुने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया॥ ३०॥

विष्णु बोले—हे मुने! आप अपने अभीष्ट स्थानको जाइये, मैं उसी तरह आपका हितसाधन करूँगा, जैसे श्रेष्ठ वैद्य [अत्यन्त] पीड़ित रोगीका हित करता है; क्योंकि आप मुझे विशेष प्रिय हैं॥ ३१॥

ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने नारदमुनिको मुख तो वानरका दे दिया और शेष अंगोंमें अपने-जैसा स्वरूप देकर वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ३२॥

भगवान्की पूर्वोक्त बात सुनकर और उनका मनोहर रूप प्राप्त हो गया—समझकर नारद मुनिको बड़ा हर्ष हुआ। वे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे, किंतु भगवान्के प्रयत्नको वे समझ न सके॥ ३३॥

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारद शीघ्र ही उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ राजा शीलनिधिने राजकुमारोंसे भरी हुई स्वयंवरसभाका आयोजन किया था॥ ३४॥

हे विप्रवरो! राजपुत्रोंसे घिरी हुई वह दिव्य स्वयंवरसभा दूसरी इन्द्रसभाके समान अत्यन्त शोभा पा रही थी॥ ३५॥

नारदजी उस राजसभामें जा बैठे और वहाँ बैठकर प्रसन्न मनसे बार-बार यही सोचने लगे। मैं भगवान् विष्णुके समान रूप धारण किये हूँ, अत: वह राजकुमारी अवश्य मेरा ही वरण करेगी, दूसरेका नहीं। मुनिश्रेष्ठ नारदको यह ज्ञात नहीं था कि मेरा मुँह कुरूप है॥ ३६-३७॥

हे विप्रो! उस सभामें बैठे हुए सभी मनुष्योंने मुनिको उनके पूर्वरूपमें ही देखा। राजकुमार आदि कोई भी उनके रूपपरिवर्तनके रहस्यको न जान सके॥ ३८॥

वहाँ नारदजीकी रक्षाके लिये भगवान् रुद्रके दो गण आये थे, जो ब्राह्मणका रूप धारण करके गूढ़भावसे वहाँ बैठे थे। वे ही नारदजीके रूपपरिवर्तनके उत्तम भेदको जानते थे। मुनिको कामावेशसे मूढ़ हुआ जानकर वे दोनों गण उनके निकट गये और आपसमें बातचीत करते हुए उनकी हँसी उड़ाने लगे॥ ३९-४०॥

देखो, नारदका रूप तो निश्चित ही भगवान्

विष्णुके समान श्रेष्ठ है, किंतु मुख वानरके समान विकट और महाभयंकर। काममोहित ये व्यर्थमें ही राजपुत्रीको प्राप्त करनेकी इच्छा कर रहे हैं। इस प्रकारकी कपटपूर्ण बातें कहकर वे नारदका उपहास करने लगे॥ ४१-४२॥

मुनि तो कामसे विह्वल थे, अतः उन्होंने उनकी यथार्थ बात भी अनसुनी कर दी। वे मोहित हो उस 'श्रीमती' को प्राप्त करनेकी इच्छासे उसके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ४३॥

इसी बीच स्त्रियोंसे घिरी हुई वह सुन्दरी राजकन्या अन्तःपुरसे वहाँ आयी। अपने हाथमें सोनेकी सुन्दर माला लिये हुए वह शुभलक्षणा राजकुमारी स्वयंवरके मध्यभागमें लक्ष्मीके समान खड़ी हुई अपूर्व शोभा पा रही थी॥ ४४-४५॥

उत्तम व्रतका पालन करनेवाली वह भूपकन्या हाथमें माला लेकर अपने मनके अनुरूप वरका अन्वेषण करती हुई सारी सभामें भ्रमण करने लगी॥ ४६॥

नारदमुनिका भगवान् विष्णुके समान शरीर और वानर-जैसा मुँह देखकर वह कुपित हो गयी और उनकी ओरसे दृष्टि हटाकर प्रसन्न मनसे दूसरी ओर चली गयी॥ ४७॥

स्वयंवरसभामें अपने मनोवांछित वरको न देखकर वह दुःखित हो गयी। राजकुमारी उस सभाके भीतर चुपचाप खड़ी रह गयी और उसने किसीके गलेमें जयमाला नहीं डाली॥ ४८॥

इतनेमें राजाके समान वेशभूषा धारण किये हुए भगवान् विष्णु वहाँ आ पहुँचे। किन्हीं दूसरे लोगोंने उनको वहाँ नहीं देखा, केवल उस कन्याने ही उन्हें देखा॥ ४९॥

भगवान्‌को देखते ही उस परमसुन्दरी राजकुमारीका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उसने तत्काल ही उनके कण्ठमें वह माला पहना दी॥ ५०॥

राजाका रूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु उस राजकुमारीको साथ लेकर तुरंत अदृश्य हो गये और अपने धाममें जा पहुँचे॥ ५१॥

इधर, सब राजकुमार श्रीमतीकी ओरसे निराश हो गये। नारदमुनि तो कामवेदनासे आतुर हो रहे थे, इसलिये वे अत्यन्त विह्वल हो उठे॥ ५२॥

तब वे दोनों विप्ररूपधारी ज्ञानविशारद रुद्रगण कामविह्वल नारदजीसे कहने लगे— ॥ ५३॥

गण बोले—हे नारद! हे मुने! आप व्यर्थ ही कामसे मोहित हो रहे हैं और [सौन्दर्यके बलसे] राजकुमारीको पाना चाहते हैं। वानरके समान अपना घृणित मुँह तो देख लीजिये॥ ५४॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! उन रुद्रगणोंका यह वचन सुनकर नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे शिवकी मायासे मोहित थे। उन्होंने दर्पणमें अपना मुँह देखा॥ ५५॥

वानरके समान अपना मुँह देखकर वे तुरंत ही कुपित हो उठे और मायासे मोहित होनेके कारण उन दोनों शिवगणोंको वहाँ यह शाप दे दिया—तुम दोनोंने मुझ ब्राह्मणका

उपहास किया है, अतः तुम दोनों ब्राह्मणके वीर्यसे उत्पन्न राक्षस हो जाओ। [ब्राह्मणकी सन्तान होनेपर भी] तुम्हारे आकार राक्षसके समान ही होंगे॥ ५६-५७॥

इस प्रकार अपने लिये शाप सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ वे दोनों शिवगण मुनिको मोहित जानकर कुछ नहीं बोले॥ ५८॥

हे ब्राह्मणो! वे सदा सब घटनाओंमें भगवान् शिवकी इच्छा मानते थे, अतः उदासीन भावसे अपने स्थानको चले गये और भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके सृष्टिखण्डमें नारदमोहवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

नारदजीका भगवान् विष्णुको क्रोधपूर्वक फटकारना और शाप देना, फिर मायाके दूर हो जानेपर पश्चात्तापपूर्वक भगवान्‌के चरणोंमें गिरना और शुद्धिका उपाय पूछना तथा भगवान् विष्णुका उन्हें समझा-बुझाकर शिवका माहात्म्य जाननेके लिये ब्रह्माजीके पास जानेका आदेश और शिवके भजनका उपदेश देना

ऋषिगण बोले—हे महाप्राज्ञ! हे सूत! आपने बड़ी अद्भुत कथाका वर्णन किया है। भगवान् शंकरकी माया धन्य है। यह चराचर जगत् उसीके अधीन है॥ १॥

भगवान् शंकरके वे दोनों गण जब अपनी इच्छासे [कहीं अन्यत्र] चले गये, तब कामविह्वल और [अपमानसे] क्रुद्ध मुनि नारदने क्या किया?॥ २॥

सूतजी बोले—शिवकी इच्छासे विमोहित [उस राजकुमारीके प्रति विशेष आसक्ति होनेके कारण अन्य अर्थ-अनर्थके ज्ञानसे रहित] मुनिने उन दोनोंको यथोचित शाप देकर जलमें अपना मुख और स्वरूप देखा॥ ३॥

शिव-इच्छाके कारण उन्हें ज्ञान नहीं हुआ और विष्णुके द्वारा किये गये छलका स्मरण करके दुःसह क्रोधमें आकर वे उसी समय विष्णुलोकमें जा पहुँचे। शिवकी इच्छासे ज्ञान-शून्य तथा समिधायुक्त जल रही अग्निके समान क्रुद्ध वे [नारद] विष्णुसे अत्यन्त अप्रिय व्यंग्य वचन कहने लगे—॥ ४-५॥

नारदजी बोले—हे हरे! तुम बड़े दुष्ट हो, कपटी हो और समस्त विश्वको मोहमें डाले रहते हो। दूसरोंका उत्साह तुमसे सहा नहीं जाता। तुम मायावी हो और तुम्हारा अन्तःकरण मलिन है॥ ६॥

पूर्वकालमें तुमने मोहिनीरूप धारण करके कपट किया, असुरोंको वारुणी मदिरा पिलायी और उन्हें अमृत नहीं पीने दिया॥ ७॥

छल-कपटमें ही रत रहनेवाले हे हरे! यदि महेश्वर रुद्र दया करके विष न पी लेते, तो तुम्हारी सारी माया उसी दिन समाप्त हो जाती॥ ८॥

हे विष्णो! कपटपूर्ण चाल तुम्हें अधिक प्रिय है। तुम्हारा स्वभाव अच्छा नहीं है, भगवान् शंकरने तुम्हें स्वतन्त्र बना दिया है॥ ९॥

परमात्मा शंकरके द्वारा ऐसा करके अच्छा नहीं किया गया और तुम उनके प्रभावबलको जानकर स्वतन्त्र होकर कार्य करते रहते हो। तुम्हारी इस चाल-ढालको समझकर अब वे (भगवान् शिव) भी पश्चात्ताप करते होंगे॥ १०१/२॥

अपनी वाणीरूप वेदकी प्रामाणिकता स्थापित करनेवाले महादेवजीने ब्राह्मणको सर्वोपरि बताया है। हे हरे! इस बातको जानकर आज मैं बलपूर्वक तुम्हें ऐसी सीख दूँगा, जिससे तुम फिर कभी कहीं भी ऐसा कर्म नहीं कर सकोगे॥ ११-१२॥

अबतक किसी तेजस्वी पुरुषसे तुम्हारा पाला नहीं पड़ा था, इसलिये आजतक तुम निडर बने हुए हो, परंतु हे विष्णो! अब तुम्हें अपने द्वारा किये गये कर्मका फल मिलेगा॥ १३॥

भगवान् विष्णुसे ऐसा कहकर मायामोहित नारद

मुनि अपने ब्रह्मतेजका प्रदर्शन करते हुए क्रोधसे खिन्न हो उठे और शाप देते हुए बोले— ॥ १४ ॥

हे विष्णो! तुमने स्त्रीके लिये मुझे व्याकुल किया है। तुम इसी तरह सबको मोहमें डालते रहते हो। यह कपटपूर्ण कार्य करते हुए तुमने जिस स्वरूपसे मुझे संयुक्त किया था, उसी स्वरूपसे हे हरे! तुम मनुष्य हो जाओ और स्त्रीके लिये दूसरोंको दुःख देनेवाले तुम भी स्त्रीके वियोगका दुःख भोगो। तुमने जिन वानरोंके समान मेरा मुँह बनाया था, वे ही उस समय तुम्हारे सहायक हों। तुम दूसरोंको [स्त्री-विरहका] दुःख देनेवाले हो, अतः स्वयं भी तुम्हें स्त्रीके वियोगका दुःख प्राप्त हो और अज्ञानसे मोहित मनुष्योंके समान तुम्हारी स्थिति हो ॥ १५—१७ ॥

अज्ञानसे मोहित हुए नारदजीने मोहवश श्रीहरिको जब इस तरह शाप दिया, तब उन विष्णुने शम्भुकी मायाकी प्रशंसा करते हुए उस शापको स्वीकार कर लिया ॥ १८ ॥

तदनन्तर महालीला करनेवाले शम्भुने अपनी उस विश्वमोहिनी मायाको, जिसके कारण ज्ञानी नारदमुनि भी मोहित हो गये थे, खींच लिया ॥ १९ ॥

उस मायाके तिरोहित होते ही नारदजी पूर्ववत् शुद्ध बुद्धिसे युक्त हो गये। उन्हें पूर्ववत् ज्ञान प्राप्त हो गया और उनकी सारी व्याकुलता जाती रही। इससे उनके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ २० ॥

वे पश्चात्ताप करके बार-बार अपनी निन्दा करने लगे। उस समय उन्होंने ज्ञानीको भी मोहमें डालनेवाली भगवान् शम्भुकी मायाकी सराहना की ॥ २१ ॥

तदनन्तर यह जानकर कि मायाके कारण ही मैं भ्रममें पड़ गया था, वैष्णवशिरोमणि नारदजी भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े ॥ २२ ॥

भगवान् श्रीहरिने उन्हें उठाकर खड़ा कर दिया। उस समय अपनी दुर्बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण वे बोले— मायासे मोहित होनेके कारण मेरी बुद्धि बिगड़ गयी थी, इसलिये मैंने आपके प्रति बहुत दुर्वचन कहे हैं। हे नाथ! मैंने आपको शाप तक दे डाला है। हे प्रभो! उस शापको आप मिथ्या कर दीजिये। हाय! मैंने बहुत बड़ा पाप किया है, अब मैं निश्चय ही नरकमें पड़ूँगा। हे हरे! मैं आपका दास हूँ। अतः बताइये, मैं क्या उपाय—कौन-सा प्रायश्चित्त करूँ, जिससे मेरा पाप-समूह नष्ट हो जाय और मुझे नरकमें न गिरना पड़े ॥ २३—२५ ॥

ऐसा कहकर शुद्ध बुद्धिवाले मुनिशिरोमणि नारदजी

पुनः भक्तिभावसे भगवान् विष्णुके चरणोंमें गिर पड़े। उस समय उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था। तब श्रीविष्णु उन्हें उठाकर मधुर वाणीमें कहने लगे— ॥ २६१/२ ॥

विष्णु बोले—हे तात! खेद मत कीजिये। आप मेरे श्रेष्ठ भक्त हैं, इसमें संशय नहीं है। मैं आपको एक बात बताता हूँ, सुनिये। उससे निश्चय ही आपका परम हित होगा, आपको नरकमें नहीं जाना पड़ेगा। भगवान् शिव आपका कल्याण करेंगे ॥ २७-२८ ॥

आपने मदसे मोहित होकर जो भगवान् शिवकी बात नहीं मानी थी—उसकी अवहेलना कर दी थी, उसी अपराधका ऐसा फल भगवान् शिवने आपको दिया है, क्योंकि वे ही कर्मफलके दाता हैं ॥ २९ ॥

आप अपने मनमें यह दृढ़ निश्चय कर लीजिये कि भगवान् शिवकी इच्छासे ही यह सब कुछ हुआ है। सबके स्वामी परमेश्वर शंकर ही गर्वको दूर करनेवाले हैं ॥ ३० ॥

वे ही परब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, उन्हींका सच्चिदानन्द-रूपसे बोध होता है, वे निर्गुण हैं, निर्विकार हैं और सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंसे परे हैं ॥ ३१ ॥

वे ही अपनी मायाको लेकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीन रूपोंमें प्रकट होते हैं। निर्गुण और सगुण

भी वे ही हैं॥ ३२॥

निर्गुण अवस्थामें उन्हींका नाम शिव है। वे ही परमात्मा, महेश्वर, परब्रह्म, अविनाशी, अनन्त और महादेव आदि नामोंसे कहे जाते हैं॥ ३३॥

उन्हींकी सेवासे ब्रह्माजी जगत्के स्रष्टा हुए हैं, मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ और वे स्वयं ही रुद्ररूपसे सदा सबका संहार करते हैं॥ ३४॥

वे शिवस्वरूपसे सबके साक्षी हैं, मायासे भिन्न और निर्गुण हैं। स्वतन्त्र होनेके कारण वे अपनी इच्छाके अनुसार चलते हैं। उनका विहार-आचार, व्यवहार उत्तम है और वे भक्तोंपर दया करनेवाले हैं॥ ३५॥

हे नारद मुने! मैं आपको एक सुन्दर उपाय बताता हूँ, जो सुखद, समस्त पापोंका नाश करनेवाला और सदा भोग एवं मोक्ष देनेवाला है, आप उसे सुनिये॥ ३६॥

अपने समस्त संशयोंको त्यागकर आप भगवान् शंकरके सुयशका गान कीजिये और सदा अनन्यभावसे शिवके शतनामस्तोत्रका पाठ कीजिये। जिसका पाठ करनेसे आपके समस्त पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे॥ ३७$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार नारदसे कहकर दयालु भगवान् विष्णुने उनसे पुनः कहा—हे मुने! आप शोक न करें। आपने तो कुछ किया ही नहीं है। यह सब तो भगवान् शंकरने अपनी इच्छासे किया है। इसमें शंका नहीं है॥ ३८-३९॥

उन्होंने ही आपकी दिव्य बुद्धिका हरण कर लिया था। उन्होंने ही आपको कामका कष्ट भी दिया और उन्हीं भगवान् शंकरने आपके मुखसे मुझे यह शाप भी दिलाया है॥ ४०॥

इस प्रकार उन्होंने संसारमें अपने चरित्रको स्वयं प्रकट किया है [इसमें अन्य किसीका दोष नहीं है]। वे मृत्युको जीतनेवाले, कालके भी काल और भक्तोंका उद्धार करनेमें तत्पर रहनेवाले हैं॥ ४१॥

मुझे शिवके समान अन्य कोई प्रिय नहीं है। वे ही मेरे स्वामी हैं, सुख और शक्ति देनेवाले हैं। वे महेश्वर ही मेरे सब कुछ हैं॥ ४२॥

हे मुने! आप उन्हींकी उपासना करें, सदैव उन्हींका भजन करें, उन्हींके यशका श्रवण और गान करें तथा नित्य उन्हींकी अर्चना करें॥ ४३॥

हे मुने! जो शरीर, मन तथा वाणीसे शंकरको प्राप्त कर लेता है, वही पण्डित है—ऐसा जानना चाहिये और वही जीवन्मुक्त कहा जाता है॥ ४४॥

शिव-नामरूपी इस दावाग्निसे महापातकरूपी पर्वत अनायास ही जलकर भस्म हो जाते हैं, यह पूर्णतया सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४५॥

संसारमें पापोंके मूलभूत जितने भी प्रकारके दुःख हैं, वे सर्वथा मात्र शिवपूजनसे ही नष्ट हो जाते हैं। अन्य उपायोंसे [उनका] नाश सम्भव नहीं है॥ ४६॥

हे मुने! वही वैदिक है, वही पुण्यात्मा है, वही धन्य है और वही बुद्धिमान् है, जो सदा शरीर, वाणी और मनसे भगवान् शंकरकी शरणमें चला जाता है॥ ४७॥

जिनके विविध प्रकारके धर्मकृत्य तत्काल फलोन्मुख (फल देनेवाले) होते हैं, उनका पूर्ण विश्वास त्रिपुरके विनाशक शिवमें होता है॥ ४८॥

महामुने! शिवकी पूजासे जितने पाप नष्ट हो जाते हैं, उतने पाप तो पृथ्वीमें हैं ही नहीं॥ ४९॥

हे मुने! ब्रह्महत्यादि पापोंकी अपरिमित राशियाँ भी शिवका स्मरण करनेसे नष्ट हो जाती हैं, यह मैं पूर्ण सत्य कह रहा हूँ॥ ५०॥

शिव-नामका कीर्तन करनेवाले लोग ही शिवनामकी नौकासे संसाररूपी सागरको पार कर जाते हैं। संसारका मूल पाप-समूह है, उसका नाश नामकीर्तनसे निश्चित ही हो जाता है॥ ५१॥

हे महामुने! शिवनामरूपी कुठारसे संसारके मूलभूत पापोंका नाश अवश्य हो जाता है॥ ५२॥

पापरूपी दावानलसे दग्ध हुए लोगोंको शिव-नामरूपी अमृत पीना चाहिये, पापकी दावाग्निसे तपे हुए लोगोंको उसके बिना शान्ति देनेका कोई अन्य उपाय नहीं मिल सकता॥ ५३॥

शिव—इस नामकी अमृतमयी वर्षाकी धारासे नहाये हुए लोग संसारके पापोंकी दावाग्निके मध्य रहते हुए भी शोक नहीं करते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ५४॥

राग-द्वेषमें निरन्तर लगे रहनेवाले लोगोंकी शिवके प्रति भक्ति नहीं होती है, किंतु इसके विपरीत अर्थात् पापोंसे विरत रहनेवाले लोगोंकी मुक्ति तो निश्चित ही

होती है ॥ ५५ ॥

जिसने अनन्त जन्मोंमें अपनी तपस्यासे शरीरको जलाया होगा, उसीकी भक्ति भवानीप्राणवल्लभ शिवके लिये सम्भव है ॥ ५६ ॥

भगवान् शिवके प्रति अनन्यतापूर्वक की गयी 'शिव-नाम-भक्ति' के अतिरिक्त अन्य साधारण भक्ति व्यर्थ ही हो जाती है ॥ ५७ ॥

भगवान् शिवके प्रति जिसकी भक्ति एकनिष्ठ तथा असाधारण होती है, उसको ही मोक्ष प्राप्त होता है। अन्यके लिये वह सुलभ नहीं है—ऐसा मेरा विश्वास है ॥ ५८ ॥

अनन्त पाप करनेके पश्चात् भी यदि प्राणी भगवान् शंकरमें भक्ति करने लगता है, तो वह सभी पापोंसे निर्मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५९ ॥

जिस प्रकार वनमें दावाग्निसे वृक्ष [जलकर] भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार शिव-भक्तोंके पाप भी [शिव-भक्तिके प्रभावसे] नष्ट हो जाते हैं ॥ ६० ॥

जो मनुष्य नित्य अपने शरीरको भस्मसे पवित्रकर शिवकी पूजामें लगा रहता है, वह महान् कष्ट देनेवाले संसाररूपी अपार सागरको निश्चित ही पार कर जाता है ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणोंका धन हरण करके और बहुतसे ब्राह्मणोंकी हत्या करके भी जो मनुष्य विरूपाक्ष भगवान् शंकरकी सेवामें लग जाता है, उसे उन पापोंसे लिप्त नहीं होना पड़ता ॥ ६२ ॥

सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती विद्वानोंने यही निश्चय किया है कि भगवान् शिवकी पूजा ही संसार-बन्धनके नाशका उपाय है ॥ ६३ ॥

[हे मुने!] आजसे यत्नपूर्वक सावधान रहकर विधि-विधानके साथ भक्तिभावसे नित्य जगदम्बा पार्वतीसहित महेश्वर सदाशिवका भजन कीजिये ॥ ६४ ॥

पैरसे लेकर सिरतक भस्मका लेपन करके सम्यक् रूपसे आदरपूर्वक सभी श्रुतियोंसे सुने गये षडक्षर शैव-मन्त्र (ॐ नमः शिवाय)-का जप कीजिये ॥ ६५ ॥

प्रयत्नपूर्वक [बताये गये नियमानुसार] भगवान् शिवके प्रिय रुद्राक्षको धारण करके अत्यन्त सद्भक्तिसे ही सविधि मन्त्रका जप करना चाहिये ॥ ६६ ॥

नित्य शिवकी ही कथा सुनिये और कहिये। अत्यन्त यत्न करके बारम्बार शिव-भक्तोंका पूजन किया कीजिये ॥ ६७ ॥

प्रमादसे रहित होकर सदा एकमात्र शिवकी शरणमें रहिये, क्योंकि शिवके पूजनसे ही निरन्तर आनन्द प्राप्त होता रहता है ॥ ६८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अपने हृदयमें भगवान् शिवके उज्ज्वल चरणारविन्दोंकी स्थापना करके पहले शिवके तीर्थोंमें विचरण कीजिये ॥ ६९ ॥

हे मुने! इस प्रकार परमात्मा शंकरके अनुपम माहात्म्यका दर्शन करते हुए अन्तमें आनन्दवन (काशी) जाइये, वह स्थान भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है ॥ ७० ॥

वहाँ विश्वनाथजीका दर्शन करके भक्तिपूर्वक उनकी पूजा कीजिये। विशेषतः उनकी स्तुति-वन्दना करके आप निर्विकल्प (संशयरहित) हो जायँगे ॥ ७१ ॥

हे मुने! इसके बाद आपको मेरी आज्ञासे भक्तिपूर्वक अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये निश्चय ही ब्रह्मलोकमें जाना चाहिये ॥ ७२ ॥

हे मुने! वहाँ अपने पिता ब्रह्माजीकी विशेषरूपसे स्तुति-वन्दना करके आपको प्रसन्नतापूर्ण हृदयसे बारम्बार शिव-महिमाके विषयमें प्रश्न करना चाहिये ॥ ७३ ॥

ब्रह्माजी शिव-भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं, वे आपको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ भगवान् शंकरका माहात्म्य और शतनाम-स्तोत्र सुनायेंगे ॥ ७४ ॥

हे मुने! आजसे आप शिवाराधनमें तत्पर रहनेवाले शिवभक्त हो जाइये और विशेषरूपसे मोक्षके भागी बनिये। भगवान् शिव आपका कल्याण करेंगे ॥ ७५ ॥

इस प्रकार प्रसन्नचित्त हुए भगवान् विष्णु नारदमुनिको प्रेमपूर्वक उपदेश देकर शिवजीका स्मरण, वन्दन और स्तवन करके वहाँसे अन्तर्धान हो गये ॥ ७६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें नारद-विष्णु-उपदेश-वर्णन नामक चतुर्थ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

नारदजीका शिवतीर्थोंमें भ्रमण, शिवगणोंको शापोद्धारकी बात बताना तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीसे शिवतत्त्वके विषयमें प्रश्न करना

सूतजी बोले—महर्षियो! भगवान् श्रीहरिके अन्तर्धान हो जानेपर मुनिश्रेष्ठ नारद शिवलिंगोंका भक्तिपूर्वक दर्शन करते हुए पृथ्वीपर विचरने लगे॥ १॥

ब्राह्मणो! भूमण्डलपर घूम-फिरकर उन्होंने भोग और मोक्ष देनेवाले बहुतसे शिवलिंगोंका प्रेमपूर्वक दर्शन किया॥ २॥

दिव्यदर्शी नारदजी भूतलके तीर्थोंमें विचर रहे हैं और इस समय उनका चित्त शुद्ध है—यह जानकर वे दोनों शिवगण उनके पास गये॥ ३॥

वे दोनों शिवगण शापसे उद्धारकी इच्छासे आदरपूर्वक मस्तक झुकाकर भलीभाँति प्रणाम करके मुनिके दोनों पैर पकड़कर आदरपूर्वक उनसे कहने लगे—॥ ४॥

शिवगण बोले—हे ब्रह्मपुत्र देवर्षे! प्रेमपूर्वक हम दोनोंकी बातोंको सुनिये। वास्तवमें हम दोनों ही आपका अपराध करनेवाले हैं, ब्राह्मण नहीं हैं॥ ५॥

हे मुने! हे विप्र! आपका अपराध करनेवाले हम दोनों शिवके गण हैं। राजकुमारी श्रीमतीके स्वयंवरमें आपका चित्त मायासे मोहित हो रहा था। उस समय परमेश्वरकी प्रेरणासे आपने हम दोनोंको शाप दे दिया। वहाँ कुसमय जानकर हमने चुप रह जाना ही अपनी जीवन-रक्षाका उपाय समझा॥ ६-७॥

इसमें किसीका दोष नहीं है। हमें अपने कर्मका ही फल प्राप्त हुआ है। प्रभो! अब आप प्रसन्न होइये और हम दोनोंपर अनुग्रह कीजिये॥ ८॥

सूतजी बोले—उन दोनों गणोंके द्वारा भक्तिपूर्वक कहे गये वचनोंको सुनकर पश्चात्ताप करते हुए देवर्षि नारद प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ ९॥

नारदजी बोले—आप दोनों महादेवके गण हैं और सत्पुरुषोंके लिये परम सम्माननीय हैं, अतः मेरे मोहरहित एवं सुखदायक यथार्थ वचनको सुनिये॥ १०॥

पहले निश्चय ही शिवेच्छावश मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी और मैं सर्वथा मोहके वशीभूत हो गया था। इसीलिये आप दोनोंको कुबुद्धिवाले मैंने शाप दे दिया॥ ११॥

हे शिवगणो! मैंने जो कुछ कहा है, वह वैसा ही होगा, फिर भी मेरी बात सुनें। मैं आपके लिये शापोद्धारकी बात बता रहा हूँ। आपलोग आज मेरे अपराधको क्षमा कर दें॥ १२॥

मुनिवर विश्रवाके वीर्यसे जन्म ग्रहण करके आप सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रसिद्ध [कुम्भकर्ण-रावण] राक्षसराजका शरीर प्राप्त करेंगे और बलवान्, वैभवसे युक्त तथा परम प्रतापी होंगे॥ १३॥

समस्त ब्रह्माण्डके राजा होकर शिवभक्त एवं जितेन्द्रिय होंगे और शिवके ही दूसरे स्वरूप श्रीविष्णुके हाथों मृत्यु पाकर फिर आप दोनों अपने पदपर प्रतिष्ठित हो जायँगे॥ १४॥

सूतजी बोले—हे महर्षियो! महात्मा नारदमुनिकी यह बात सुनकर वे दोनों शिवगण प्रसन्न होकर सानन्द अपने स्थानको लौट गये॥ १५॥

नारदजी भी अत्यन्त आनन्दित हो अनन्य भावसे भगवान् शिवका ध्यान तथा शिवतीर्थोंका दर्शन करते हुए बारम्बार भूमण्डलमें विचरने लगे॥ १६॥

अन्तमें वे सबके ऊपर विराजमान काशीपुरीमें गये, जो शिवजीकी प्रिय, शिवस्वरूपिणी एवं शिवको सुख देनेवाली है॥ १७॥

काशीपुरीका दर्शन करके नारदजी कृतार्थ हो गये। उन्होंने भगवान् काशीनाथका दर्शन किया और परम प्रीति एवं परमानन्दसे युक्त हो उनकी पूजा की॥ १८॥

काशीका सानन्द सेवन करके वे मुनिश्रेष्ठ कृतार्थताका अनुभव करने लगे और प्रेमसे विह्वल हो उसका नमन, वर्णन तथा स्मरण करते हुए ब्रह्मलोकको गये।

निरन्तर शिवका स्मरण करनेसे शुद्ध-बुद्धिको प्राप्त देवर्षि नारदने वहाँ पहुँचकर विशेषरूपसे शिवतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी

स्तुति करके उनसे शिवतत्त्वके विषयमें पूछा। उस समय नारदजीका हृदय भगवान् शंकरके प्रति भक्तिभावनासे परिपूर्ण था॥ १९—२१॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! परब्रह्म परमात्माके स्वरूपको जाननेवाले हे पितामह! हे जगत्प्रभो! आपके कृपाप्रसादसे मैंने भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्यका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त किया है॥ २२॥

भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, अत्यन्त दुस्तर तपोमार्ग, दानमार्ग तथा तीर्थमार्गका भी वर्णन सुना है, परंतु शिवतत्त्वका ज्ञान मुझे अभीतक नहीं हुआ है। मैं भगवान् शंकरकी पूजा-विधिको भी नहीं जानता। अतः हे प्रभो! आप क्रमशः इन विषयोंको तथा भगवान् शिवके विविध चरित्रोंको मुझे बतानेकी कृपा करें॥ २३-२४॥

हे तात! शिव तो निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं। यह कैसे सम्भव है। शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण मैं शिवके तत्त्वको नहीं जान पा रहा हूँ॥ २५॥

सृष्टिके पूर्व भगवान् शंकर किस स्वरूपसे अवस्थित रहते हैं और सृष्टिके मध्यमें कैसी क्रीडा करते हुए स्थित रहते हैं। सृष्टिके अन्तमें वे देव महेश्वर किस प्रकारसे रहते हैं और संसारका कल्याण करनेवाले वे सदाशिव किस प्रकार प्रसन्न रहते हैं॥ २६-२७॥

हे विधाता! वे सन्तुष्ट होकर अपने भक्तों और अन्य लोगोंको कैसा फल देते हैं, वह सब हमें बतायें। मैंने सुना है कि वे भगवान् तत्काल प्रसन्न हो जाते हैं। परमदयालु वे भक्तके कष्टको नहीं देख पाते हैं॥ २८-२९॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देव शिवके ही अंश हैं। महेश उनमें पूर्ण अंश हैं और स्वयंमें वे परात्पर शिव है॥ ३०॥

आप उन महेश्वर शिवके आविर्भाव एवं उनके चरित्रको विशेष रूपसे कहें। हे प्रभो! [इस कथाके साथ ही] उमा (पार्वती)-के आविर्भाव और उनके विवाहकी भी चर्चा करें॥ ३१॥

उनके गृहस्थ आश्रम और उस आश्रममें की गयी विशिष्ट लीलाओंका वर्णन करें। हे निष्पाप! इन सब [कथाओं]-के साथ अन्य जो कहनेयोग्य बातें हैं, उनका भी वर्णन करें॥ ३२॥

हे प्रजानाथ! उन (शिव) और शिवाके आविर्भाव एवं विवाहका प्रसंग विशेष रूपसे कहें तथा कार्तिकेयके जन्मकी कथा भी मुझे सुनायें॥ ३३॥

हे जगत्प्रभो! पहले बहुत लोगोंसे मैंने ये बातें सुनी हैं, किंतु तृप्त नहीं हो सका हूँ, इसीलिये आपकी शरणमें आया हूँ। आप मुझपर कृपा करें॥ ३४॥

अपने पुत्र नारदकी यह बात सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा वहाँ इस प्रकार कहने लगे—॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानका नारद-प्रश्न-वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

महाप्रलयकालमें केवल सद्ब्रह्मकी सत्ताका प्रतिपादन, उस निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे ईश्वरमूर्ति (सदाशिव)-का प्राकट्य, सदाशिवद्वारा स्वरूपभूत शक्ति (अम्बिका)-का प्रकटीकरण, उन दोनोंके द्वारा उत्तम क्षेत्र (काशी या आनन्दवन)-का प्रादुर्भाव, शिवके वामांगसे परम पुरुष (विष्णु)-का आविर्भाव तथा उनके सकाशसे प्राकृत तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्तिका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवशिरोमणे! आप सदा समस्त जगत्के उपकारमें ही लगे रहते हैं। आपने लोगोंके हितकी कामनासे यह बहुत उत्तम बात पूछी है॥ १॥

जिसके सुननेसे सम्पूर्ण लोकोंके समस्त पापोंका क्षय हो जाता है, उस अनामय शिव-तत्त्वका मैं आपसे वर्णन करता हूँ॥ २॥

शिवतत्त्वका स्वरूप बड़ा ही उत्कृष्ट और अद्भुत है, जिसे यथार्थरूपसे न मैं जान पाया हूँ, न विष्णु ही जान पाये और न अन्य कोई दूसरा ही जान पाया है॥ ३॥

जिस समय यह प्रलयकाल हुआ, उस समय समस्त चराचर जगत् नष्ट हो गया, सर्वत्र केवल अन्धकार-ही-अन्धकार था। न सूर्य ही दिखायी देते थे और अन्यान्य ग्रहों तथा नक्षत्रोंका भी पता नहीं था॥ ४॥

न चन्द्र था, न दिन होता था, न रात ही थी; अग्नि, पृथ्वी, वायु और जलकी भी सत्ता नहीं थी। [उस समय] प्रधान तत्त्व (अव्याकृत प्रकृति)-से रहित सूना आकाशमात्र शेष था, दूसरे किसी तेजकी उपलब्धि नहीं होती थी॥ ५॥

अदृष्ट आदिका भी अस्तित्व नहीं था, शब्द और स्पर्श भी साथ छोड़ चुके थे, गन्ध और रूपकी भी अभिव्यक्ति नहीं होती थी। रसका भी अभाव हो गया था और दिशाओंका भी भान नहीं होता था॥ ६॥

इस प्रकार सब ओर निरन्तर सूचीभेद्य घोर अन्धकार फैला हुआ था। उस समय '**तत्सद्ब्रह्म**'—इस श्रुतिमें जो 'सत्' सुना जाता है, एकमात्र वही शेष था॥ ७॥

जब 'यह', 'वह', 'ऐसा', 'जो' इत्यादि रूपसे निर्दिष्ट होनेवाला भावाभावात्मक जगत् नहीं था, उस समय एकमात्र वह 'सत्' ही शेष था, जिसे योगीजन अपने हृदयाकाशके भीतर निरन्तर देखते हैं॥ ८॥

वह सत्तत्त्व मनका विषय नहीं है। वाणीकी भी वहाँतक कभी पहुँच नहीं होती। वह नाम तथा रूप-रंगसे भी शून्य है। वह न स्थूल है, न कृश है, न ह्रस्व है, न दीर्घ है, न लघु है और न गुरु ही है। उसमें न कभी वृद्धि होती है और न ह्रास ही होता है॥ ९-१०॥

श्रुति भी उसके विषयमें चकितभावसे 'है'—इतना ही कहती है [अर्थात् उसकी सत्तामात्रका ही निरूपण कर पाती है, उसका कोई विशेष विवरण देनेमें असमर्थ हो जाती है]। वह सत्य, ज्ञानस्वरूप, अनन्त, परमानन्दमय, परम ज्योतिःस्वरूप, अप्रमेय, आधाररहित, निर्विकार, निराकार, निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, सबका एकमात्र कारण, निर्विकल्प, निरारम्भ, मायाशून्य, उपद्रवरहित, अद्वितीय, अनादि, अनन्त, संकोच-विकाससे शून्य तथा चिन्मय है॥ ११—१३॥

जिस परब्रह्मके विषयमें ज्ञान और अज्ञानसे पूर्ण उक्तियोंद्वारा इस प्रकार [ऊपर बताये अनुसार] विकल्प किये जाते हैं, उसने कुछ कालके बाद [सृष्टिका समय आनेपर] द्वितीय होनेकी इच्छा प्रकट की—उसके भीतर एकसे अनेक होनेका संकल्प उदित हुआ॥ १४॥

तब उस निराकार परमात्माने अपनी लीलाशक्तिसे अपने लिये मूर्ति (आकार)-की कल्पना की। वह मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्यगुणोंसे सम्पन्न, सर्वज्ञानमयी, शुभस्वरूपा, सर्वव्यापिनी, सर्वरूपा, सर्वदर्शिनी, सर्वकारिणी, सबकी एकमात्र वन्दनीया, सर्वाद्या, सब कुछ देनेवाली और सम्पूर्ण संस्कृतियोंका केन्द्र थी॥ १५-१६॥

उस शुद्धरूपिणी ईश्वरमूर्तिकी कल्पना करके वह अद्वितीय, अनादि, अनन्त, सर्वप्रकाशक, चिन्मय, सर्वव्यापी और अविनाशी परब्रह्म अन्तर्हित हो गया॥ १७॥

जो मूर्तिरहित परमब्रह्म है, उसीकी मूर्ति (चिन्मय आकार) भगवान् सदाशिव हैं। अर्वाचीन और प्राचीन विद्वान् उन्हींको ईश्वर कहते हैं॥ १८॥

उस समय एकाकी रहकर स्वेच्छानुसार विहार करनेवाले उन सदाशिवने अपने विग्रहसे स्वयं ही एक स्वरूपभूता शक्तिकी सृष्टि की, जो उनके अपने श्रीअंगसे कभी अलग होनेवाली नहीं थी॥ १९॥

उस पराशक्तिको प्रधान, प्रकृति, गुणवती, माया, बुद्धितत्त्वकी जननी तथा विकाररहित बताया गया है॥ २०॥

वह शक्ति अम्बिका कही गयी है। उसीको प्रकृति, सर्वेश्वरी, त्रिदेवजननी, नित्या और मूलकारण भी कहते हैं॥ २१॥

सदाशिवद्वारा प्रकट की गयी उस शक्तिकी आठ भुजाएँ हैं। उस [शुभलक्षणा देवी]-के मुखकी शोभा विचित्र है। वह अकेली ही अपने मुखमण्डलमें सदा पूर्णिमाके एक सहस्र चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती है॥ २२॥

नाना प्रकारके आभूषण उसके श्रीअंगोंकी शोभा बढ़ाते हैं। वह देवी नाना प्रकारकी गतियोंसे सम्पन्न है और अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करती है। उसके नेत्र खिले हुए कमलके समान जान पड़ते हैं॥ २३॥

वह अचिन्त्य तेजसे जगमगाती रहती है। वह सबकी योनि है और सदा उद्यमशील रहती है। एकाकिनी होनेपर भी वह माया संयोगवशात् अनेक हो जाती है॥ २४॥

वे जो सदाशिव हैं, उन्हें परमपुरुष, ईश्वर, शिव, शम्भु और अनीश्वर कहते हैं। वे अपने मस्तकपर आकाश-गंगाको धारण करते हैं। उनके भालदेशमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। उनके [पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमें] तीन नेत्र हैं॥ २५॥

[पाँच मुख होनेके कारण] वे पंचमुख कहलाते हैं। उनका चित्त सदा प्रसन्न रहता है। वे दस भुजाओंसे युक्त और त्रिशूलधारी हैं। उनके श्रीअंगोंकी प्रभा कर्पूरके समान श्वेत-गौर है। वे अपने सारे अंगोंमें भस्म रमाये रहते हैं॥ २६॥

उन कालरूपी ब्रह्मने एक ही समय शक्तिके साथ 'शिवलोक' नामक क्षेत्रका निर्माण किया था॥ २७॥

उस उत्तम क्षेत्रको ही काशी कहते हैं। वह परम निर्वाण या मोक्षका स्थान है, जो सबके ऊपर विराजमान है॥ २८॥

ये प्रिया-प्रियतमरूप शक्ति और शिव, जो परमानन्दस्वरूप हैं, उस मनोरम क्षेत्रमें नित्य निवास करते हैं। वह [काशीपुरी] परमानन्दरूपिणी है॥ २९॥

हे मुने! शिव और शिवाने प्रलयकालमें भी कभी उस क्षेत्रको अपने सांनिध्यसे मुक्त नहीं किया है। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे 'अविमुक्त क्षेत्र' भी कहते हैं॥ ३०॥

वह क्षेत्र आनन्दका हेतु है, इसलिये पिनाकधारी शिवने पहले उसका नाम 'आनन्दवन' रखा था। उसके बाद वह 'अविमुक्त' के नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३१॥

हे देवर्षे! एक समय उस आनन्दवनमें रमण करते हुए शिवा और शिवके मनमें यह इच्छा हुई कि किसी दूसरे पुरुषकी भी सृष्टि करनी चाहिये, जिसपर सृष्टि-संचालनका महान् भार रखकर हम दोनों केवल काशीमें रहकर इच्छानुसार विचरण करें और निर्वाण धारण करें॥ ३२-३३॥

वही पुरुष हमारे अनुग्रहसे सदा सबकी सृष्टि करे, वही पालन करे और अन्तमें वही सबका संहार भी करे॥ ३४॥

यह चित्त एक समुद्रके समान है। इसमें चिन्ताकी उत्ताल तरंगें उठ-उठकर इसे चंचल बनाये रहती हैं। इसमें सत्त्वगुणरूपी रत्न, तमोगुणरूपी ग्राह और रजोगुणरूपी

मूँगे भरे हुए हैं। इस विशाल चित्त-समुद्रको संकुचित करके हम दोनों उस पुरुषके प्रसादसे आनन्दकानन (काशी)-में सुखपूर्वक निवास करें, [यह आनन्दवन वह स्थान है] जहाँ हमारी मनोवृत्ति सब ओरसे सिमटकर इसीमें लगी हुई है तथा जिसके बाहरका जगत् चिन्तासे आतुर प्रतीत होता है॥ ३५-३६॥

ऐसा निश्चय करके शक्तिसहित सर्वव्यापी परमेश्वर शिवने अपने वामभागके दसवें अंगपर अमृतका सिंचन किया॥ ३७॥

वहाँ उसी समय एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दर था। वह शान्त था। उसमें सत्त्वगुणकी अधिकता थी तथा वह गम्भीरताका अथाह सागर था॥ ३८॥

मुने! क्षमा गुणसे युक्त उस पुरुषके लिये ढूँढ़नेपर भी कहीं कोई उपमा नहीं मिलती थी। उसकी कान्ति इन्द्रनील मणिके समान श्याम थी। उसके अंग-अंगसे दिव्य शोभा छिटक रही थी और नेत्र प्रफुल्ल कमलके समान शोभा पा रहे थे॥ ३९॥

उसके श्रीअंगोंपर सुवर्णसदृश कान्तिवाले दो सुन्दर रेशमी पीताम्बर शोभा दे रहे थे। किसीसे भी पराजित न होनेवाला वह वीर पुरुष अपने प्रचण्ड भुजदण्डोंसे सुशोभित हो रहा था॥ ४०॥

तदनन्तर उस पुरुषने परमेश्वर शिवको प्रणाम करके कहा—हे स्वामिन्! मेरे नाम निश्चित कीजिये और काम बताइये॥ ४१॥

उस पुरुषकी यह बात सुनकर महेश्वर भगवान् शंकर हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे कहने लगे—॥ ४२॥

शिवजी बोले—हे वत्स! व्यापक होनेके कारण तुम्हारा 'विष्णु' नाम विख्यात होगा। इसके अतिरिक्त और भी बहुतसे नाम होंगे, जो भक्तोंको सुख देनेवाले होंगे॥ ४३॥

तुम सुस्थिर होकर उत्तम तप करो, क्योंकि वही समस्त कार्योंका साधन है। ऐसा कहकर भगवान् शिवने श्वासमार्गसे श्रीविष्णुको वेदोंका ज्ञान प्रदान किया॥ ४४॥

तदनन्तर अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीहरि भगवान् शिवको प्रणाम करके बहुत बड़ी तपस्या करने लगे और शक्तिसहित परमेश्वर शिव भी पार्षदगणोंके साथ वहाँसे अदृश्य हो गये॥ ४५॥

बारह हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या करनेके पश्चात् भी विष्णु अपने अभीष्ट फलस्वरूप, सर्वस्व देनेवाले भगवान् शिवका दर्शन प्राप्त न कर सके॥ ४६॥

तब विष्णुको बड़ा सन्देह हुआ। उन्होंने हृदयमें शिवका स्मरण करते हुए सोचा कि अब मुझे क्या करना चाहिये। इसी बीच शिवकी मंगलमयी [आकाश] वाणी हुई कि सन्देह दूर करनेके लिये पुनः तपस्या करनी चाहिये॥ ४७-४८॥

[शिवकी] उस [वाणी]-को सुनकर विष्णुने ब्रह्ममें ध्यानको अवस्थितकर [पुनः] दीर्घकालतक अत्यन्त कठिन तपस्या की॥ ४९॥

तदनन्तर ब्रह्मकी ध्यानावस्थामें ही विष्णुको बोध हो आया और वे प्रसन्न होकर यह सोचने लगे कि अरे! वह महान् तत्त्व है क्या?॥ ५०॥

उस समय शिवकी इच्छासे तपस्याके परिश्रममें निरत विष्णुके अंगोंसे अनेक प्रकारकी जलधाराएँ निकलने लगीं॥ ५१॥

हे महामुने! उस जलसे सारा सूना आकाश व्याप्त हो गया। वह ब्रह्मरूप जल अपने स्पर्शमात्रसे सब पापोंका नाश करनेवाला सिद्ध हुआ॥ ५२॥

उस समय थके हुए परम पुरुष विष्णु मोहित होकर दीर्घकालतक बड़ी प्रसन्नताके साथ उसमें सोते रहे॥ ५३॥

नार अर्थात् जलमें शयन करनेके कारण ही उनका 'नारायण'—यह श्रुतिसम्मत नाम प्रसिद्ध हुआ। उस समय उन परम पुरुष नारायणके अतिरिक्त दूसरी कोई प्राकृत वस्तु नहीं थी॥ ५४॥

उसके बाद ही उन महात्मा नारायणदेवसे यथासमय सभी तत्त्व प्रकट हुए। हे महामते! हे विद्वन्! मैं उन तत्त्वोंकी उत्पत्तिका प्रकार बता रहा हूँ, सुनिये॥ ५५॥

प्रकृतिसे महत्तत्त्व प्रकट हुआ और महत्तत्त्वसे सत्त्वादि तीनों गुण। इन गुणोंके भेदसे ही त्रिविध अहंकारकी उत्पत्ति हुई। अहंकारसे पाँच तन्मात्राएँ हुईं और उन तन्मात्राओंसे पाँच भूत प्रकट हुए। उसी समय ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका भी प्रादुर्भाव हुआ॥ ५६-५७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपको तत्त्वोंकी संख्या बतायी है। इनमेंसे पुरुषको छोड़कर शेष सारे तत्त्व प्रकृतिसे प्रकट हुए हैं, इसलिये सब-के-सब जड़ हैं॥ ५८॥

तत्त्वोंकी संख्या चौबीस है। उस समय एकाकार हुए चौबीस तत्त्वोंको ग्रहण करके वे परम पुरुष नारायण भगवान् शिवकी इच्छासे ब्रह्मरूप जलमें सो गये॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानका विष्णु-उत्पत्ति-वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव, शिवेच्छासे ब्रह्माजीका उससे प्रकट होना, कमलनालके उद्गमका पता लगानेमें असमर्थ ब्रह्माका तप करना, श्रीहरिका उन्हें दर्शन देना, विवादग्रस्त ब्रह्मा-विष्णुके बीचमें अग्निस्तम्भका प्रकट होना तथा उसके ओर-छोरका पता न पाकर उन दोनोंका उसे प्रणाम करना

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! जब नारायणदेव जलमें शयन करने लगे, उस समय उनकी नाभिसे भगवान् शंकरकी इच्छासे सहसा एक विशाल तथा उत्तम कमल प्रकट हुआ॥ १॥

उसमें असंख्य नालदण्ड थे, उसकी कान्ति कनेरके फूलके समान पीले रंगकी थी तथा उसकी लम्बाई और ऊँचाई भी अनन्त योजन थी। वह कमल करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित, सुन्दर, सम्पूर्ण तत्त्वोंसे युक्त, अत्यन्त अद्भुत, परम रमणीय, दर्शनके योग्य तथा सबसे उत्तम था॥ २-३॥

तत्पश्चात् कल्याणकारी परमेश्वर साम्बसदाशिवने पूर्ववत् प्रयत्न करके मुझे अपने दाहिने अंगसे उत्पन्न किया॥ ४॥

हे मुने! उन महेश्वरने मुझे तुरंत ही अपनी मायासे मोहित करके नारायणदेवके नाभिकमलमें डाल दिया और लीलापूर्वक मुझे वहाँसे प्रकट किया॥ ५॥

इस प्रकार उस कमलसे पुत्रके रूपमें मुझ हिरण्यगर्भका जन्म हुआ। मेरे चार मुख हुए और शरीरकी कान्ति लाल हुई। मेरे मस्तक त्रिपुण्ड्रकी रेखासे अंकित थे॥ ६॥

हे तात! भगवान् शिवकी मायासे मोहित होनेके कारण मेरी ज्ञानशक्ति इतनी दुर्बल हो रही थी कि मैंने उस कमलके अतिरिक्त दूसरे किसीको अपने शरीरका जनक या पिता नहीं जाना॥ ७॥

मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, मेरा कार्य क्या है, मैं किसका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ हूँ और किसने इस समय मेरा निर्माण किया है—इस प्रकार संशयमें पड़े हुए मेरे मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ—मैं किसलिये मोहमें पड़ा हुआ हूँ? जिसने मुझे उत्पन्न किया है, उसका पता लगाना तो बहुत सरल है॥ ८-९॥

इस कमलपुष्पका जो पत्रयुक्त नाल है, उसका उद्गमस्थान इस जलके भीतर नीचेकी ओर है। जिसने मुझे उत्पन्न किया है, वह पुरुष भी वहीं होगा, इसमें संशय नहीं है॥ १०॥

ऐसा निश्चय करके मैंने अपनेको कमलसे नीचे उतारा। हे मुने! उस कमलकी एक-एक नालमें गया और सैकड़ों वर्षोंतक वहाँ भ्रमण करता रहा॥ ११॥

कहीं भी उस कमलके उद्‌गमका उत्तम स्थान मुझे नहीं मिला। तब पुनः संशयमें पड़कर मैं उस कमलपुष्पपर जानेके लिये उत्सुक हुआ और हे मुने! नालके मार्गसे उस कमलपर चढ़ने लगा। इस तरह बहुत ऊपर जानेपर भी मैं उस कमलके कोशको न पा सका। उस दशामें मैं और भी मोहित हो उठा॥ १२-१३॥

मुझे नालमार्गसे भ्रमण करते हुए पुनः सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो गये, [किंतु उसका कोई पता न चल सका] तब मैं मोहित (किंकर्तव्यविमूढ़) होकर एक क्षण वहीं रुक गया॥ १४॥

हे मुने! उस समय भगवान् शिवकी इच्छासे परम मंगलमयी तथा उत्तम आकाशवाणी प्रकट हुई, जो मेरे मोहका विध्वंस करनेवाली थी, उस वाणीने कहा—'तप' तपस्या करो॥ १५॥

उस आकाशवाणीको सुनकर मैंने अपने जन्मदाता पिताका दर्शन करनेके लिये उस समय पुनः प्रयत्नपूर्वक बारह वर्षोंतक घोर तपस्या की॥ १६॥

तब मुझपर अनुग्रह करनेके लिये ही चार भुजाओं और सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित भगवान् विष्णु वहाँ सहसा प्रकट हो गये। उन परम पुरुषने अपने हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे थे। उनके सारे अंग सजल जलधरके समान श्यामकान्तिसे सुशोभित थे। उन परम प्रभुने सुन्दर पीताम्बर पहन रखा था। उनके मस्तक आदि अंगोंमें मुकुट आदि महामूल्यवान् आभूषण शोभा पा रहे थे। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था। मैं उनकी छविपर मोहित हो रहा था। वे मुझे करोड़ों कामदेवोंके समान मनोहर दिखायी दिये॥ १७—१९॥

उन चतुर्भुज भगवान् विष्णुका वह अत्यन्त सुन्दर रूप देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे साँवली और सुनहरी आभासे उद्भासित हो रहे थे॥ २०॥

उस समय उन सदसत्स्वरूप, सर्वात्मा, महाबाहु नारायणदेवको वहाँ उस रूपमें अपने साथ देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ॥ २१॥

मैं उस समय प्रभु शम्भुकी लीलासे मोहित हो रहा था, इसलिये मैं अपने उत्पन्न करनेवालेको न जानकर अति हर्षित होकर उनसे कहने लगा—॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—मैंने उन सनातन पुरुषको हाथसे उठाकर कहा कि आप कौन हैं, उस समय हाथके तीव्र तथा सुदृढ़ प्रहारसे क्षणमात्रमें ही वे जितेन्द्रिय जाग करके शय्यासे उठकर बैठ गये। तदनन्तर अविकल रूपसे निद्रारहित होकर उन राजीवलोचन भगवान् विष्णुने मुझको वहाँपर अवस्थित देखा और हँसते हुए बार-बार मधुर वाणीमें [वे] कहने लगे—॥ २३—२५॥

विष्णुजी बोले—हे वत्स! आपका स्वागत है। हे महाद्युतिमान् पितामह! आपका स्वागत है। निर्भय होकर रहिये। मैं आपकी सभी कामनाओंको पूर्ण करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २६॥

[हे देवर्षे!] उनके मन्दहासयुक्त उस वचनको सुनकर रजोगुणके कारण शत्रुता मान बैठा देवश्रेष्ठ मैं उन जनार्दन भगवान् विष्णुसे कहने लगा—॥ २७॥

ब्रह्माजी बोले—हे निष्पाप! समस्त संहारके कारणभूत मुझे आप हँसते हुए जो हे वत्स! हे वत्स! कह रहे हैं, वह तो वैसे ही लग रहा है, जैसे कोई गुरु अपने शिष्यको हे वत्स! हे वत्स! कह रहा हो॥ २८॥

मैं ही संसारका साक्षात् कर्ता, प्रकृतिका प्रवर्तक, सनातन, अजन्मा, विष्णु, ब्रह्मा, विष्णुको उत्पन्न करनेवाला विश्वात्मा, विधाता, धाता और पुण्डरीकाक्ष हूँ। आप अज्ञानवश मुझे हे वत्स! हे वत्स! ऐसा क्यों कह रहे हैं? इसका कारण शीघ्र बताइये॥ २९-३०॥

नियमतः वेद भी मुझे स्वयम्भू, अज, विभु, पितामह, स्वराज, सर्वोत्तम और परमेष्ठी कहते हैं॥ ३१॥

मेरे इस वचनको सुनकर लक्ष्मीपति भगवान् हरि क्रुद्ध हो उठे और कहने लगे कि मैं जानता हूँ—संसार आपको जगत्‌का कर्ता मानता है॥ ३२॥

विष्णुजी बोले—आप संसारकी सृष्टि करने और पालन करनेके लिये मुझ अव्ययके अंगसे अवतीर्ण हुए हैं, फिर भी आप मुझ जगन्नाथ, नारायण, पुरुष, परमात्मा, निर्विकार, पुरुहूत, पुरुष्टुत, विष्णु, अच्युत, ईशान, संसारके उत्पत्ति-स्थानरूप, नारायण, महाबाहु

और सर्वव्यापकको भूल गये हैं। मेरे ही नाभिकमलसे आप उत्पन्न हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३३—३५॥

इस विषयमें आपका अपराध भी नहीं है, आपके ऊपर तो मेरी माया है। हे चतुर्मुख! सुनिये, यह सत्य है कि मैं ही सभी देवोंका ईश्वर हूँ॥ ३६॥

मैं ही कर्ता, हर्ता और भर्ता हूँ। मेरे समान अन्य शक्तिशाली कोई देव नहीं है। हे पितामह! मैं ही परब्रह्म तथा परम तत्त्व हूँ॥ ३७॥

मैं ही परमज्योति और वह परमात्मा विभु हूँ, इस जगत्‌में आज जो यह सब चराचर दिखायी दे रहा है और सुनायी पड़ रहा है, हे चतुर्मुख! यह जो कुछ भी है, वह मुझमें व्याप्त है—ऐसा आप जान लें। मैंने ही सृष्टिके पहले जगत्‌के चौबीस अव्यक्त तत्त्वोंकी रचना की है॥ ३८-३९॥

उन्हीं तत्त्वोंसे प्राणियोंके शरीरधारक अणुओंका निर्माण होता है और क्रोध, भय आदि षड्‌गुणोंकी सृष्टि हुई है। मेरे प्रभाव और मेरी लीलासे ही आपके अनेक अंग हैं॥ ४०॥

मैंने ही बुद्धितत्त्वकी सृष्टि की है और उसमें तीन प्रकारके अहंकार उत्पन्न किये हैं। तदनन्तर उससे रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श—इन पंचतन्मात्राओं, मन एवं चक्षु, जिह्वा, घ्राण, श्रोत्र तथा त्वचा—इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों और वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ—इन पाँच कर्मेन्द्रियों, क्षिति, जल, पावक, गगन और वायु—इन पंच महाभूतों तथा अन्य सभी भौतिक पदार्थोंकी रचना लीलासे ही की है। हे प्रजापते! हे ब्रह्मन्! ऐसा जानकर आप मेरी शरणमें आ जाइये, मैं सभी दुःखोंसे आपकी रक्षा करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ४१-४२½॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर मुझ ब्रह्माको क्रोध आ गया और मायाके वशीभूत हुआ मैं उनको डाँटते हुए पूछने लगा कि आप कौन हैं और किसलिये इतना अधिक निरर्थक बोल रहे हैं? आप न ईश्वर हैं, न परब्रह्म हैं। आपका कोई कर्ता अवश्य है॥ ४३-४४॥

महाप्रभु शंकरकी मायासे विमोहित मैं उन भगवान् विष्णुके साथ भयंकर युद्ध करने लगा॥ ४५॥

उस प्रलयकालीन महासमुद्रके मध्य रजोगुणके कारण परस्पर बढ़ी शत्रुतासे हमारा और विष्णुका रोमांचकारी युद्ध होने लगा॥ ४६॥

इसी बीच हम दोनोंके छिड़े विवादको शान्त करनेके लिये और ज्ञान प्रदान करनेके लिये हम दोनोंके सामने ही एक लिंग प्रकट हुआ॥ ४७॥

वह लिंग अग्निकी प्रचण्ड हजार ज्वालाओंसे भी अधिक ज्वालासमूहोंवाला, सैकड़ों कालाग्नियोंके समान कान्तिमान्, क्षय एवं वृद्धिसे रहित, आदि-मध्य और अन्तसे विहीन था॥ ४८॥

वह उपमारहित, अनिर्देश्य, बिना किसीके द्वारा उपस्थापित, अव्यक्त और विश्वसर्जक था। उस लिंगकी सहस्र ज्वालाओंके समूहको देखनेमात्रसे ही भगवान् विष्णु मोहित हो उठे॥ ४९॥

शिवकी मायासे मोहित मुझसे वे कहने लगे कि इस समय मुझसे तुम इतनी स्पर्धा क्यों कर रहे हो? हम दोनोंके मध्य तो एक तीसरा भी आ गया है, इसलिये युद्ध रोक दिया जाय॥ ५०॥

हम दोनों इस अग्निसे उत्पन्न लिंगकी परीक्षा करें कि यह कहाँसे प्रकट हुआ है। मैं इस अनुपम अग्निस्तम्भके नीचे जाऊँगा और हे प्रजानाथ! आप इसकी परीक्षा करनेके लिये वायुवेगसे प्रयत्नपूर्वक शीघ्र ऊपरकी ओर जायँ॥ ५१-५२॥

ब्रह्माजी बोले—तब ऐसा कहकर विश्वात्मा भगवान् विष्णुने वाराहका रूप धारण किया और हे मुने! मैंने भी शीघ्र हंसका रूप बना लिया॥ ५३॥

उसी समयसे लोग मुझे हंस-हंस और विराट् ऐसा कहने लगे। जो 'हंस-हंस' यह कहकर मेरे नामका जप करता है, वह हंसस्वरूप ही हो जाता है॥ ५४॥

अत्यन्त श्वेत, अग्निके समान, चारों ओरसे पंखोंसे युक्त और मन तथा वायुके वेगवाला होकर मैं ऊपरके भी ऊपर लिंगका पता लगाते हुए चला गया॥ ५५॥

उसी समय विश्वात्मा नारायणने भी अत्यन्त श्वेत स्वरूप धारण किया। दस योजन चौड़े, सौ योजन लम्बे मेरुपर्वतके समान शरीरवाले, श्वेत तथा अत्यन्त तेज दाढ़ोंसे युक्त, प्रलयकालीन सूर्यके समान कान्तिमान्, दीर्घ

नासिकासे सुशोभित, भयंकर [घुर्र-घुर्रकी] ध्वनि करनेवाले, छोटे-छोटे पैरोंसे युक्त, विचित्र अंगोंवाले, विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे परिपूर्ण, दृढ़ तथा अनुपम वाराहका स्वरूप धारण करके वे भगवान् विष्णु भी अत्यन्त वेगसे उसके नीचेकी ओर गये॥ ५६—५८॥

इस प्रकार रूप धारणकर भगवान् विष्णु एक हजार वर्षतक नीचेकी ओर ही चलते रहे। उसी समयसे [पृथिवी आदि] लोकोंमें श्वेतवाराह नामक कल्पका प्रादुर्भाव हुआ। हे देवर्षे! यह मनुष्योंकी कालगणनाकी अवधि है॥ ५९१/२॥

इधर [अत्यन्त तीव्र गतिसे] नीचेकी ओरसे जाते हुए महातेजस्वी विष्णु बहुत प्रकारसे भ्रमण करते रहे, किंतु महावाराहरूपधारी विष्णु उस ज्योतिर्लिंगके मूलका अल्प भाग भी न देख सके॥ ६०१/२॥

हे अरिसूदन! तबतक मैं भी उस ज्योतिर्लिंगके अन्तका पता लगानेके लिये वेगसे ऊपरकी ओर जाता रहा। यत्नपूर्वक उस ज्योतिर्लिंगके अन्तको जाननेका इच्छुक मैं अत्यन्त परिश्रमके कारण थक गया और उसका अन्त बिना देखे ही थोड़े समयमें नीचेकी ओर लौट पड़ा॥ ६१-६२॥

उसी प्रकार सर्वदेवस्वरूप, महाकाय, कमललोचन, भगवान् विष्णु भी थकानके कारण ज्योतिर्लिंगका अन्त देखे बिना ही ऊपर निकल आये॥ ६३॥

शिवकी मायासे विमोहित विष्णु आकर मेरे साथ ही भगवान् शिवको बार-बार प्रणाम करके व्याकुल चित्तसे वहाँ खड़े रहे॥ ६४॥

पृष्ठ प्रदेशकी ओरसे, पार्श्वोंकी ओर और आगेकी ओरसे परमेश्वर शिवको मेरे साथ ही प्रणाम करके विष्णु भी सोचने लगे कि यह क्या है?॥ ६५॥

वह रूप तो अनिर्देश्य, नाम तथा कर्मसे रहित, अलिंग होते हुए भी लिंगताको प्राप्त और ध्यानमार्गसे अगम्य था। तदनन्तर अपने मनको शान्त करके मैं और विष्णु दोनों शिवको बार-बार प्रणामकर कहने लगे—हे महाप्रभो! हम आपके स्वरूपको नहीं जानते। आप जो हैं, वही हैं, आपको हमारा नमस्कार है। हे महेशान! आप शीघ्र ही हमें अपने स्वरूपका दर्शन करायें॥ ६६—६८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अहंकारसे आविष्ट हुए हम दोनोंको वहाँ नमस्कार करते हुए सैकड़ों वर्ष बीत गये॥ ६९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानका विष्णु-ब्रह्मा-विवाद-वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

ब्रह्मा और विष्णुको भगवान् शिवके शब्दमय शरीरका दर्शन

ब्रह्माजी बोले—मुनिश्रेष्ठ नारद! इस प्रकार हम दोनों देवता गर्वरहित हो निरन्तर प्रणाम करते रहे। हम दोनोंके मनमें एक ही अभिलाषा थी कि इस ज्योतिर्लिंगके रूपमें प्रकट हुए परमेश्वर प्रत्यक्ष दर्शन दें॥ १॥

दीनोंके प्रतिपालक, अहंकारियोंका गर्व चूर्ण करनेवाले तथा सबके प्रभु अविनाशी शंकर हम दोनोंपर दयालु हो गये॥ २॥

उस समय वहाँ उन सुरश्रेष्ठसे ओम्-ओम् ऐसा शब्दरूप नाद प्रकट हुआ, जो स्पष्टरूपसे प्लुत स्वरमें सुनायी दे रहा था॥ ३॥

जोरसे प्रकट होनेवाले उस शब्दके विषयमें 'यह क्या है'—ऐसा सोचते हुए समस्त देवताओंके आराध्य भगवान् विष्णु मेरे साथ सन्तुष्टचित्तसे खड़े रहे। वे सर्वथा वैरभावसे रहित थे॥ ४॥

उन्होंने लिंगके दक्षिण भागमें सनातन आदिवर्ण अकारका दर्शन किया। तदनन्तर उत्तर भागमें उकारका, मध्यभागमें मकारका और अन्तमें 'ओम्' इस नादका साक्षात् दर्शन किया॥ ५१/२॥

हे ऋषिश्रेष्ठ! दक्षिण भागमें प्रकट हुए आदिवर्ण अकारको सूर्य-मण्डलके समान तेजोमय देखकर उन्होंने

उत्तर भागमें उकार वर्णको अग्निके समान देखा। हे मुनिश्रेष्ठ! इसी तरह उन्होंने मध्यभागमें मकारको चन्द्रमण्डलके समान देखा॥ ६-७॥

तदनन्तर उसके ऊपर शुद्ध स्फटिक मणिके समान निर्मल प्रभासे युक्त, तुरीयातीत, अमल, निष्कल, निरुपद्रव, निर्द्वन्द्व, अद्वितीय, शून्यमय, बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे रहित, बाह्याभ्यन्तर-भेदसे युक्त, जगत्के भीतर और बाहर स्वयं ही स्थित, आदि, मध्य और अन्तसे रहित, आनन्दके आदिकारण तथा सबके परम आश्रय, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार किया॥ ८—१०॥

[उस समय श्रीहरि यह सोचने लगे कि] यह अग्निस्तम्भ यहाँ कहाँसे प्रकट हुआ है? हम दोनों फिर इसकी परीक्षा करें। मैं इस अनुपम अग्निस्तम्भके नीचे जाऊँगा। ऐसा विचार करते हुए श्रीहरिने वेद और शब्द दोनोंके आवेशसे युक्त विश्वात्मा शिवका चिन्तन किया। तब वहाँ एक ऋषि प्रकट हुए, जो ऋषिसमूहके परम साररूप माने जाते हैं॥ ११-१२॥

उन्हीं ऋषिके द्वारा परमेश्वर श्रीविष्णुने जाना कि इस शब्दब्रह्ममय शरीरवाले परम लिंगके रूपमें साक्षात् परब्रह्मस्वरूप महादेवजी ही यहाँ प्रकट हुए हैं॥ १३॥

ये चिन्तारहित अथवा अचिन्त्य रुद्र हैं, जहाँ जाकर मनसहित वाणी उसे प्राप्त किये बिना ही लौट आती है, उस परब्रह्म परमात्मा शिवका वाचक एकाक्षर प्रणव ही है, वे इसके वाच्यार्थरूप हैं॥ १४॥

उस परम कारण, ऋत, सत्य, आनन्द एवं अमृतस्वरूप परात्पर परब्रह्मको इस एकाक्षरके द्वारा ही जाना जा सकता है॥ १५॥

प्रणवके एक अक्षर अकारसे जगत्के बीजभूत अण्डजन्मा भगवान् ब्रह्माका बोध होता है। उसके दूसरे एक अक्षर उकारसे परमकारणरूप श्रीहरिका बोध होता है और तीसरे एक अक्षर मकारसे भगवान् नीललोहित शिवका ज्ञान होता है। अकार सृष्टिकर्ता है, उकार मोहमें डालनेवाला है और मकार नित्य अनुग्रह करनेवाला है। मकार-बोध्य सर्वव्यापी शिव बीजी [बीजमात्रके स्वामी] हैं और अकारसंज्ञक मुझ ब्रह्माको बीज कहा जाता है। उकारसंज्ञक श्रीहरि योनि हैं। प्रधान और पुरुषके भी ईश्वर जो महेश्वर हैं, वे बीजी, बीज और योनि भी हैं। उन्हींको नाद कहा गया है॥ १६—१९॥

बीजी अपनी इच्छासे ही अपने बीजको अनेक रूपोंमें विभक्त करके स्थित हैं। इन बीजी भगवान् महेश्वरके लिंगसे अकाररूप बीज प्रकट हुआ॥ २०॥

जो उकाररूप योनिमें स्थापित होकर सब ओर बढ़ने लगा, वह सुवर्णमय अण्डके रूपमें ही बतानेयोग्य था। उसका अन्य कोई विशेष लक्षण नहीं लक्षित होता था॥ २१॥

वह दिव्य अण्ड अनेक वर्षोंतक जलमें ही स्थित रहा। तदनन्तर एक हजार वर्षके बाद उस अण्डके दो टुकड़े हो गये। जलमें स्थित हुआ वह अण्ड अजन्मा ब्रह्माजीकी उत्पत्तिका स्थान था और साक्षात् महेश्वरके आघातसे ही फूटकर दो भागोंमें बँट गया था। उस अवस्थामें ऊपर स्थित हुआ उसका सुवर्णमय कपाल बड़ी शोभा पाने लगा॥ २२-२३॥

वही द्युलोकके रूपमें प्रकट हुआ तथा जो उसका दूसरा नीचेवाला कपाल था, वही यह पाँच लक्षणोंसे युक्त पृथिवी है। उस अण्डसे चतुर्भुज ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनकी 'क' संज्ञा है॥ २४॥

वे समस्त लोकोंके स्रष्टा हैं। इस प्रकार वे भगवान् महेश्वर ही 'अ', 'उ' और 'म्'—इन त्रिविध रूपोंमें वर्णित हुए हैं। इसी अभिप्रायसे उन ज्योतिर्लिंगस्वरूप सदाशिवने 'ओम्', 'ओम्'—ऐसा कहा—यह बात यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्र कहते हैं॥ २५॥

यजुर्वेदके श्रेष्ठ मन्त्रोंका यह कथन सुनकर ऋचाओं और साममन्त्रोंने भी हमसे आदरपूर्वक यह कहा—हे हरे! हे ब्रह्मन्! यह बात ऐसी ही है॥ २६॥

इस तरह देवेश्वर शिवको जानकर श्रीहरिने शक्तिसम्भूत मन्त्रोंद्वारा उत्तम एवं महान् अभ्युदयसे शोभित होनेवाले उन महेश्वर देवका स्तवन किया॥ २७॥

इसी बीचमें विश्वपालक भगवान् विष्णुने मेरे साथ एक और भी अद्भुत एवं सुन्दर रूपको देखा॥ २८॥

हे मुने! वह रूप पाँच मुखों और दस भुजाओंसे अलंकृत था। उसकी कान्ति कर्पूरके समान गौर थी। वह नाना प्रकारकी छटाओंसे और भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे विभूषित था॥ २९॥

उस परम उदार, महापराक्रमी और महापुरुषके लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त उत्कृष्ट रूपका दर्शन करके मेरे साथ श्रीहरि कृतार्थ हो गये॥ ३०॥

तत्पश्चात् परमेश्वर भगवान् महेश प्रसन्न होकर अपने दिव्य शब्दमय रूपको प्रकट करके हँसते हुए खड़े हो गये॥ ३१॥

[ह्रस्व] अकार उनका मस्तक और दीर्घ अकार ललाट है। इकार दाहिना नेत्र और ईकार बायाँ नेत्र है॥ ३२॥

उकारको उनका दाहिना और ऊकारको बायाँ कान बताया जाता है। ऋकार उन परमेश्वरका दायाँ कपोल है और ॠकार उनका बायाँ कपोल है। लृ और ॡ—ये उनकी नासिकाके दोनों छिद्र हैं। एकार उन सर्वव्यापी प्रभुका ऊपरी ओष्ठ है और ऐकार अधर है॥ ३३-३४॥

ओकार तथा औकार—ये दोनों क्रमशः उनकी ऊपर और नीचेकी दो दंतपंक्तियाँ हैं। अं और अः उन देवाधिदेव शूलधारी शिवके दोनों तालु हैं॥ ३५॥

क आदि पाँच अक्षर उनके दाहिने पाँच हाथ हैं और च आदि पाँच अक्षर बायें पाँच हाथ हैं॥ ३६॥

ट आदि और त आदि पाँच-पाँच अक्षर उनके पैर हैं। पकार पेट है। फकारको दाहिना पार्श्व बताया जाता है और बकारको बायाँ पार्श्व। भकारको कंधा कहा जाता है। मकार उन योगी महादेव शम्भुका हृदय है॥ ३७-३८॥

यसे लेकर स तक [य, र, ल, व, श, ष तथा स—ये सात अक्षर] सर्वव्यापी शिवकी सात धातुएँ हैं। हकारको उनकी नाभि और क्षकारको नासिका कहा जाता है॥ ३९॥

इस प्रकार निर्गुण एवं गुण-स्वरूप परमात्माके शब्दमय रूपको भगवती उमासहित देखकर श्रीहरि मेरे साथ कृतार्थ हो गये॥ ४०॥

इस प्रकार शब्द ब्रह्ममय-शरीरधारी महेश्वर शिवका दर्शन पाकर मेरे साथ श्रीहरिने उन्हें प्रणाम करके पुनः ऊपरकी ओर देखा॥ ४१॥

उस समय उन्हें पाँच कलाओंसे युक्त, ओंकारजनित, शुद्ध स्फटिक मणिके समान सुन्दर, अड़तीस अक्षरोंवाले मन्त्रका साक्षात्कार हुआ॥ ४२॥

पुनः सम्पूर्ण धर्म तथा अर्थका साधक, बुद्धिस्वरूप, अत्यन्त हितकारक और सबको वशमें करनेवाला गायत्री नामक महान् मन्त्र लक्षित हुआ। वह चौबीस अक्षरों तथा चार कलाओंसे युक्त श्रेष्ठ मन्त्र है। पंचाक्षरमन्त्र (**नमः शिवाय**) आठ कलाओंसे युक्त है॥ ४३-४४॥

अभिचारसिद्धिके लिये प्रयोग किया जानेवाला मन्त्र तीस अक्षरोंसे सम्पन्न है, किंतु यजुर्वेदमें प्रयुक्त मन्त्र पच्चीस सुन्दर अक्षरोंका ही है॥ ४५॥

यह आठ कलाओंसे युक्त तथा सुश्वेत मन्त्र है, जिसका प्रयोग शान्तिकर्मकी सिद्धिके लिये किया जाता है। इस मन्त्रके अतिरिक्त तेरह कलाओंसे युक्त जो श्रेष्ठ मन्त्र है, वह बाल, युवा और वृद्ध आदि अवस्थाओंमें आनेवाले क्रमके अनुसार उत्पत्ति, पालन तथा संहारका कारणरूप है। इसमें इकसठ वर्ण होते हैं॥ ४६-४७॥

इसके पश्चात् विष्णुने मृत्युंजयमन्त्र, पंचाक्षरमन्त्र, चिन्तामणिमन्त्र[1] तथा दक्षिणामूर्तिमन्त्र[2] को देखा॥ ४८॥

इसके बाद भगवान् विष्णुने शंकरको 'तत्त्वमसि—वही तुम हो'—यह महावाक्य कहा। इस प्रकार उक्त पंचमन्त्रोंको प्राप्त करके वे भगवान् श्रीहरि उनका जप करने लगे॥ ४९॥

इसके पश्चात् ऋक्, यजुः, सामरूप वर्णोंकी कलाओंसे युक्त, ईशान, ईशोंके मुकुट, पुरातन, पुरुष, अघोरहृदय, मनोहर, सर्वगुह्य, सदाशिव, ताण्डव-नृत्यादि कालोंमें वामपादपर अवस्थित रहनेवाले, महादेव, महान् सर्पराजको आभूषणके रूपमें धारण करनेवाले, चारों ओर चरण और नेत्रवाले, कल्याणकारी, ब्रह्माके अधिपति, सृष्टि-स्थिति-संहारके कारणभूत, वरदायक साम्बमहेश्वरको देखकर भगवान् विष्णु प्रसन्न मनसे प्रिय वचनोंद्वारा मेरे साथ उनकी स्तुति करने लगे॥ ५०—५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें शब्दब्रह्म-तनु-वर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

---

१. 'क्ष्म्यौं'—यह चिन्तामणिमन्त्र है।

२. 'ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तये मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा।'—यह दक्षिणामूर्ति नामक मन्त्र है।

नौवाँ अध्याय

उमासहित भगवान् शिवका प्राकट्य, उनके द्वारा अपने स्वरूपका विवेचन तथा ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंकी एकताका प्रतिपादन

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] भगवान् विष्णुके द्वारा की हुई अपनी स्तुति सुनकर करुणानिधि महेश्वर प्रसन्न हुए और उमादेवीके साथ सहसा वहाँ प्रकट हो गये॥ १॥

[उस समय] उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पाते थे। भालदेशमें चन्द्रमाका मुकुट सुशोभित था। सिरपर जटा धारण किये, गौरवर्ण, विशाल नेत्रवाले शिवने अपने सम्पूर्ण अंगोंमें विभूति लगा रखी थी॥ २॥

उनकी दस भुजाएँ थीं। उनके कण्ठमें नीला चिह्न था। वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित थे। उन सर्वांगसुन्दर शिवके मस्तक भस्ममय त्रिपुण्ड्रसे अंकित थे॥ ३॥

ऐसे परमेश्वर महादेवजीको भगवती उमाके साथ उपस्थित देखकर भगवान् विष्णुने मेरे साथ पुनः प्रिय वचनोंद्वारा उनकी स्तुति की॥ ४॥

तब करुणाकर भगवान् महेश्वर शिवने प्रसन्नचित्त होकर उन श्रीविष्णुदेवको श्वासरूपसे वेदका उपदेश दिया॥ ५॥

हे मुने! उसके बाद शिवने परमात्मा श्रीहरिको गुह्य ज्ञान प्रदान किया। फिर उन परमात्माने कृपा करके मुझे भी वह ज्ञान दिया॥ ६॥

वेदका ज्ञान प्राप्तकर कृतार्थ हुए भगवान् विष्णुने मेरे साथ हाथ जोड़कर महेश्वरको नमस्कार करके पुनः उनसे पूछा॥ ७॥

विष्णुजी बोले—हे देव! आप कैसे प्रसन्न होते हैं? हे प्रभो! मैं आपकी पूजा किस प्रकार करूँ? आपका ध्यान किस प्रकारसे किया जाय और आप किस विधिसे वशमें हो जाते हैं?॥ ८॥

हे महादेव! आपकी आज्ञासे हम लोगोंको क्या करना चाहिये? हे शंकर! कौन कार्य अच्छा है और कौन बुरा है, इस विवेकके लिये हम दोनोंके ऊपर कल्याणहेतु आप प्रसन्न हों और उचित बतानेकी कृपा करें॥ ९॥

हे महाराज! हे प्रभो! हे शिव! हम दोनोंपर कृपा करके यह सब एवं अन्य जो कहनेयोग्य है, वह सब हम दोनोंको अपना अनुचर समझकर बतायें॥ १०॥

ब्रह्माजी बोले—[हे मुने!] [श्रीहरिकी] यह बात सुनकर प्रसन्न हुए कृपानिधान भगवान् शिव प्रीतिपूर्वक यह बात कहने लगे॥ ११॥

श्रीशिवजी बोले—हे सुरश्रेष्ठगण! मैं आप दोनोंकी भक्तिसे निश्चय ही बहुत प्रसन्न हूँ। आपलोग मुझ महादेवकी ओर देखते हुए सभी भयोंको छोड़ दीजिये॥ १२॥

मेरा यह लिंग सदा पूज्य है, सदा ही ध्येय है। इस समय आपलोगोंको मेरा स्वरूप जैसा दिखायी देता है, वैसे ही लिंगरूपका प्रयत्नपूर्वक पूजन-चिन्तन करना चाहिये॥ १३॥

लिंगरूपसे पूजा गया मैं प्रसन्न होकर सभी लोगोंको अनेक प्रकारके फल तो दूँगा ही, साथ ही मनकी अन्य अनेक अभिलाषाएँ भी पूरी करूँगा। हे देवश्रेष्ठ! जब भी आपलोगोंको कष्ट हो, तब मेरे लिंगकी पूजा करें, जिससे आपलोगोंके कष्टका नाश हो जायगा॥ १४-१५॥

आप दोनों महाबली देवता मेरी स्वरूपभूत प्रकृतिसे और मुझ सर्वेश्वरके दायें और बायें अंगोंसे प्रकट हुए हैं॥ १६॥

ये लोकपितामह ब्रह्मा मुझ परमात्माके दाहिने पार्श्वसे उत्पन्न हुए हैं और आप विष्णु वाम पार्श्वसे प्रकट हुए हैं॥ १७॥

मैं आप दोनोंपर भलीभाँति प्रसन्न हूँ और मनोवांछित वर दे रहा हूँ। मेरी आज्ञासे आप दोनोंकी मुझमें सुदृढ़ भक्ति हो॥ १८॥

हे विद्वानो! मेरी पार्थिव-मूर्ति बनाकर आप दोनों उसकी अनेक प्रकारसे पूजा करें। ऐसा करनेपर आपलोगोंको

सुख प्राप्त होगा॥ १९॥

हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञाका पालन करते हुए जगत्‌की सृष्टि कीजिये और हे विष्णो! आप इस चराचर जगत्‌का पालन कीजिये॥ २०॥

ब्रह्माजी बोले—हम दोनोंसे ऐसा कहकर भगवान् शंकरने हमें पूजाकी उत्तम विधि प्रदान की, जिसके अनुसार पूजित होनेपर शिव अनेक प्रकारके फल देते हैं॥ २१॥

शम्भुकी यह बात सुनकर श्रीहरि मेरे साथ महेश्वरको हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहने लगे—॥ २२॥

विष्णु बोले—[हे प्रभो!] यदि हमारे प्रति आपमें प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हमें वर देना चाहते हैं, तो हम यही वर माँगते हैं कि आपमें हम दोनोंकी सदा अविचल भक्ति बनी रहे॥ २३॥

आप निर्गुण हैं, फिर भी अपनी लीलासे आप अवतार धारण कीजिये। हे तात! आप परमेश्वर हैं, हमलोगोंकी सहायता करें॥ २४॥

हे देवदेवेश्वर! हम दोनोंका विवाद शुभदायक रहा, जिसके कारण आप हम दोनोंके विवादको शान्त करनेके लिये यहाँ प्रकट हुए॥ २५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे मुने!] श्रीहरिकी यह बात सुनकर भगवान् हरने मस्तक झुकाकर प्रणाम करके स्थित हुए उन श्रीहरिसे पुनः कहा। वे विष्णु स्वयं हाथ जोड़कर खड़े रहे॥ २६॥

श्रीमहेश बोले—मैं सृष्टि, पालन और संहारका कर्ता, सगुण, निर्गुण, निर्विकार, सच्चिदानन्दलक्षणवाला तथा परब्रह्म परमात्मा हूँ॥ २७॥

हे विष्णो! सृष्टि, रक्षा और प्रलयरूप गुणोंके भेदसे मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रका नाम धारण करके तीन स्वरूपोंमें विभक्त हुआ हूँ। हे हरे! मैं वास्तवमें सदा निष्कल हूँ॥ २८॥

हे विष्णो! आपने और ब्रह्माने मेरे अवतारके निमित्त जो मेरी स्तुति की है, उस प्रार्थनाको मैं अवश्य सत्य करूँगा; क्योंकि मैं भक्तवत्सल हूँ॥ २९॥

ब्रह्मन्! मेरा ऐसा ही परम उत्कृष्ट रूप तुम्हारे शरीरसे इस लोकमें प्रकट होगा, जो नामसे 'रुद्र' कहलायेगा॥ ३०॥

मेरे अंशसे प्रकट हुए रुद्रकी सामर्थ्य मुझसे कम नहीं होगी। जो मैं हूँ, वही ये रुद्र हैं। पूजाके विधि-विधानकी दृष्टिसे भी मुझमें और उनमें कोई अन्तर नहीं है॥ ३१॥

जैसे जल आदिके साथ ज्योतिर्मय बिम्बका (प्रतिबिम्बके रूपमें) सम्पर्क होनेपर भी बिम्बमें स्पर्शदोष नहीं लगता, उसी प्रकार मुझ निर्गुण परमात्माको भी किसीके संयोगसे बन्धन नहीं प्राप्त होता॥ ३२॥

यह मेरा शिवरूप है। जब रुद्र प्रकट होंगे, तब वे भी शिवके ही तुल्य होंगे। हे महामुने! [मुझमें और] उनमें परस्पर भेद नहीं करना चाहिये॥ ३३॥

वास्तवमें एक ही रूप सब जगत्‌में [व्यवहारनिर्वाहके लिये] दो रूपोंमें विभक्त हो गया है। अतः शिव और रुद्रमें कभी भी भेद नहीं मानना चाहिये॥ ३४॥

[शिव और रुद्रमें भेद वैसे ही नहीं है] जैसे एक सुवर्णखण्डमें समरूपसे एक ही वस्तुतत्त्व विद्यमान रहता है, किंतु उसीका आभूषण बना देनेपर नामभेद आ जाता है। वस्तुतत्त्वकी दृष्टिसे उसमें भेद नहीं होता॥ ३५॥

जिस प्रकार एक ही मिट्टीसे बने हुए नाना प्रकारके पात्रोंमें नाम और रूपका तो भेद आ जाता है, किंतु मिट्टीका भेद नहीं होता; क्योंकि कार्यमें कारणकी ही विद्यमानता दिखायी देती है। हे देवो! निर्मल ज्ञानवाले श्रेष्ठ विद्वानोंको यह जान लेना चाहिये। ऐसा समझकर आपलोग भी शिव और रुद्रमें भेदबुद्धिवाली दृष्टिसे न देखें॥ ३६-३७॥

वास्तवमें सारा दृश्य ही मेरा शिवरूप है—ऐसा मेरा मत है। मैं, आप, ब्रह्मा तथा जो ये रुद्र प्रकट होंगे, वे सब-के-सब एकरूप हैं, इनमें भेद नहीं है। भेद माननेपर अवश्य ही बन्धन होगा। तथापि मेरे शिवरूपको ही सर्वदा सनातन, मूलकारण, सत्यज्ञानमय तथा अनन्त कहा गया है—ऐसा जानकर आपलोगोंको सदा मनसे मेरे यथार्थ स्वरूपका ध्यान करना चाहिये॥ ३८—४०॥

हे ब्रह्मन्! सुनिये, मैं आपको एक गोपनीय बात बता रहा हूँ। आप दोनों प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं, किंतु ये रुद्र प्रकृतिसे उत्पन्न नहीं हैं॥ ४१॥

मैं अपनी इच्छासे स्वयं ब्रह्माजीकी भ्रुकुटिसे प्रकट हुआ हूँ। गुणोंमें भी मेरा प्राकट्य कहा गया है। जैसा कि लोगोंने कहा है कि हर तामस प्रकृतिके हैं। वास्तवमें उस रूपमें अहंकारका वर्णन हुआ है। उस अहंकारको केवल तामस ही नहीं, वैकारिक [सात्त्विक] भी समझना चाहिये; [सात्त्विक देवगण वैकारिक अहंकारकी ही सृष्टि हैं।] यह तामस और सात्त्विक आदि भेद केवल नाममात्रका है, वस्तुतः नहीं है। वास्तवमें हरको तामस नहीं कहा जा सकता॥ ४२-४३॥

हे ब्रह्मन्! इस कारणसे आपको ऐसा करना चाहिये। हे ब्रह्मन्! आप इस सृष्टिके निर्माता बनें और श्रीहरि इसका पालन करनेवाले हों॥ ४४॥

मेरे अंशसे प्रकट होनेवाले जो रुद्र हैं, वे इसका प्रलय करनेवाले होंगे। ये जो उमा नामसे विख्यात परमेश्वरी प्रकृति देवी हैं, इन्हींकी शक्तिभूता वाग्देवी ब्रह्माजीका सेवन करेंगी। पुनः इन प्रकृति देवीसे वहाँ जो दूसरी शक्ति प्रकट होंगी, वे लक्ष्मीरूपसे भगवान् विष्णुका आश्रय लेंगी। तदनन्तर पुनः काली नामसे जो तीसरी शक्ति प्रकट होंगी, वे निश्चय ही मेरे अंशभूत रुद्रदेवको प्राप्त होंगी। वे कार्यकी सिद्धिके लिये वहाँ ज्योतिरूपसे प्रकट होंगी। इस प्रकार मैंने देवीकी शुभस्वरूपा पराशक्तियोंको बता दिया॥ ४५—४८॥

उनका कार्य क्रमशः सृष्टि, पालन और संहारका सम्पादन ही है। हे सुरश्रेष्ठ! ये सब-की-सब मेरी प्रिया प्रकृति देवीकी अंशभूता हैं॥ ४९॥

हे हरे! आप लक्ष्मीका सहारा लेकर कार्य कीजिये। हे ब्रह्मन्! आप प्रकृतिकी अंशभूता वाग्देवीको प्राप्तकर मेरी आज्ञाके अनुसार मनसे सृष्टिकार्यका संचालन करें और मैं अपनी प्रियाकी अंशभूता परात्पर कालीका आश्रय लेकर रुद्ररूपसे प्रलयसम्बन्धी उत्तम कार्य करूँगा। आप सब लोग अवश्य ही सम्पूर्ण आश्रमों तथा उनसे भिन्न अन्य विविध कार्योंद्वारा चारों वर्णोंसे भरे हुए लोककी सृष्टि एवं रक्षा आदि करके सुख पायेंगे॥ ५०—५२१/२॥

[हे हरे!] आप ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न तथा सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी हैं। अतः अब आप मेरी आज्ञासे जगत्में [सब लोगोंके लिये] मुक्तिदाता बनें। मेरा दर्शन होनेपर जो फल प्राप्त होता है, वही फल आपका दर्शन होनेपर भी प्राप्त होगा। मैंने आज आपको यह वर दे दिया, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है। मेरे हृदयमें विष्णु हैं और विष्णुके हृदयमें मैं हूँ॥ ५३—५५॥

जो इन दोनोंमें अन्तर नहीं समझता, वही मेरा मन है अर्थात् वही मुझे प्रिय है। श्रीहरि मेरे बायें अंगसे प्रकट हुए हैं, ब्रह्मा दाहिने अंगसे उत्पन्न हुए हैं और महाप्रलयकारी विश्वात्मा रुद्र मेरे हृदयसे प्रादुर्भूत हुए हैं। हे विष्णो! मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और भव नामसे तीन रूपोंमें विभक्त हो गया हूँ। मैं रज आदि तीनों गुणोंके द्वारा सृष्टि, पालन तथा संहार करता हूँ॥ ५६—५७१/२॥

शिव गुणोंसे भिन्न हैं और वे साक्षात् प्रकृति तथा पुरुषसे भी परे हैं। वे अद्वितीय, नित्य, अनन्त, पूर्ण एवं निरंजन परब्रह्म हैं। तीनों लोकोंका पालन करनेवाले श्रीहरि भीतर तमोगुण और बाहर सत्त्वगुण धारण करते हैं। त्रिलोकीका संहार करनेवाले रुद्रदेव भीतर सत्त्वगुण और बाहर तमोगुण धारण करते हैं तथा त्रिभुवनकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी बाहर और भीतरसे भी रजोगुणी ही हैं। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र इन तीनों देवताओंमें गुण हैं, परंतु शिव गुणातीत माने गये हैं॥ ५८—६११/२॥

हे विष्णो! आप मेरी आज्ञासे इन सृष्टिकर्ता पितामहका प्रसन्नतापूर्वक पालन कीजिये। ऐसा करनेसे आप तीनों लोकोंमें पूजनीय होंगे॥ ६२॥

ये रुद्र आपके और ब्रह्माके सेव्य होंगे; क्योंकि त्रैलोक्यके लयकर्ता ये रुद्र शिवके पूर्णावतार हैं॥ ६३॥

पाद्मकल्पमें पितामह आपके पुत्र होंगे। उस समय आप मुझे देखेंगे और वे ब्रह्मा भी मुझे देखेंगे॥ ६४॥

ऐसा कहकर महेश, हर, सर्वेश्वर, प्रभु अतुलनीय कृपाकर पुनः प्रेमपूर्वक विष्णुसे कहने लगे—॥ ६५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डके सृष्टि-उपाख्यानमें शिवतत्त्ववर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

श्रीहरिको सृष्टिकी रक्षाका भार एवं भोग-मोक्ष-दानका अधिकार देकर भगवान् शिवका अन्तर्धान होना

परमेश्वर शिवजी बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे हरे! हे विष्णो! अब आप मेरी दूसरी आज्ञा सुनें। उसका पालन करनेसे आप सदा समस्त लोकोंमें माननीय और पूजनीय होंगे॥ १॥

ब्रह्माजीके द्वारा रचे गये लोकमें जब कोई संकट उत्पन्न हो, तब आप उन सम्पूर्ण दु:खोंका नाश करनेके लिये सदा तत्पर रहना॥ २॥

मैं सम्पूर्ण दुस्सह कार्योंमें आपकी सहायता करूँगा। आपके दुर्जेय और अत्यन्त उत्कट शत्रुओंको मैं मार गिराऊँगा॥ ३॥

हे हरे! आप नाना प्रकारके अवतार धारण करके लोकमें अपनी उत्तम कीर्तिका विस्तार कीजिये और संसारमें प्राणियोंके उद्धारके लिये तत्पर रहिये॥ ४॥

गुणरूप धारणकर मैं रुद्र निश्चित ही अपने इस शरीरसे संसारके उन कार्योंको करूँगा, जो आपसे सम्भव नहीं हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५॥

आप रुद्रके ध्येय हैं और रुद्र आपके ध्येय हैं। आप दोनोंमें और आप तथा रुद्रमें कुछ भी अन्तर नहीं है॥ ६॥

हे महाविष्णो! लीलासे भेद होनेपर भी वस्तुत: आपलोग एक ही तत्त्व हैं। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ७॥

जो मनुष्य रुद्रका भक्त होकर आपकी निन्दा करेगा, उसका सारा पुण्य तत्काल भस्म हो जायगा॥ ८॥

हे पुरुषोत्तम विष्णो! आपसे द्वेष करनेके कारण मेरी आज्ञासे उसको नरकमें गिरना पड़ेगा। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

आप इस लोकमें मनुष्योंके लिये विशेषत: भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले और भक्तोंके ध्येय तथा पूज्य होकर प्राणियोंका निग्रह और अनुग्रह कीजिये॥ १०॥

ऐसा कहकर भगवान् शिवने मेरा हाथ पकड़ लिया और श्रीविष्णुको सौंपकर उनसे कहा—आप संकटके समय सदा इनकी सहायता करते रहें॥ ११॥

सबके अध्यक्ष होकर आप सभीको भक्ति और मुक्ति प्रदान करें तथा सर्वदा समस्त कामनाओंके साधक एवं सर्वश्रेष्ठ बने रहें॥ १२॥

हे हरे! यह मेरी आज्ञा है कि आप सबके प्राणस्वरूप होइये और संकटकाल आनेपर निश्चय ही मेरे शरीररूप उस रुद्रका भजन कीजिये॥ १३॥

जो आपकी शरणमें आ गया, वह निश्चय ही मेरी शरणमें आ गया। जो मुझमें और आपमें अन्तर समझता है, वह अवश्य ही नरकमें गिरता है॥ १४॥

अब आप तीनों देवताओंके आयुबलको विशेषरूपसे सुनिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी एकतामें [किसी प्रकारका] सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १५॥

एक हजार चतुर्युगको ब्रह्माका एक दिन कहा जाता है और उतनी ही उनकी रात्रि होती है। इस प्रकार क्रमसे यह ब्रह्माके एक दिन और एक रात्रिका परिमाण है॥ १६॥

इस प्रकारके तीस दिनोंका एक मास और बारह मासोंका एक वर्ष होता है। सौ वर्षके परिमाणको ब्रह्माकी आयु कहा गया है॥ १७॥

ब्रह्माके एक वर्षके बराबर विष्णुका एक दिन कहा

जाता है। वे विष्णु भी अपने सौ वर्षके प्रमाणतक जीवित रहते हैं॥ १८॥

विष्णुके एक वर्षके बराबर रुद्रका एक दिन होता है। भगवान् रुद्र भी उस मानके अनुसार नररूपमें सौ वर्षतक स्थित रहते हैं॥ १९॥

तदनन्तर शिवके मुखसे एक श्वास निकलता है और जबतक वह निकलता रहता है, तबतक वह शक्तिको प्राप्तकर पुन: जब नि:श्वास लेते हैं, तबतक ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गन्धर्व, नाग और राक्षस आदि सभी देहधारियोंके नि:श्वास और उच्छ्वासको बाहर और भीतर ले जानेके क्रमकी संख्या हे सुरसत्तम! दिन-रातमें मिलाकर इक्कीस हजारका सौ गुना एवं छ: सौ अर्थात् इक्कीस लाख छ: सौ कही गयी है॥ २०—२२॥

छ: उच्छ्वास और छ: नि:श्वासका एक पल होता है। साठ पलोंकी एक घटी और साठ घटी-प्रमाणको एक दिन और रात्रि कहते हैं॥ २३॥

सदाशिवके नि:श्वासों और उच्छ्वासोंकी गणना नहीं की जा सकती है। अत: शिवजी सदैव प्रबुद्ध और अक्षय हैं॥ २४॥

मेरी आज्ञासे तुम्हें अपने विविध गुणोंके द्वारा सृष्टिके इस प्रकारके होनेवाले कार्योंकी रक्षा करनी चाहिये॥ २५॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! भगवान् शिवका यह वचन सुनकर सबको वशमें करनेवाले भगवान् विष्णु मेरे साथ विश्वनाथको प्रणाम करके मन्द स्वरमें उनसे कहने लगे— ॥ २६॥

विष्णुजी बोले—हे शंकर! हे करुणासिन्धो! हे जगत्पते! मेरी यह बात सुनिये। मैं आपकी आज्ञाके अधीन रहकर यह सब कुछ करूँगा॥ २७॥

आप ही मेरे सदा ध्येय होंगे, इसमें अन्यथा नहीं है। मैंने पूर्वकालमें भी आपसे समस्त सामर्थ्य प्राप्त किया था॥ २८॥

हे स्वामिन्! क्षणमात्र भी आपका श्रेष्ठ ध्यान मेरे चित्तसे कभी दूर न हो॥ २९॥

हे स्वामिन्! मेरा जो भक्त आपकी निन्दा करे, उसे आप निश्चय ही नरकवास प्रदान करें॥ ३०॥

हे नाथ! जो आपका भक्त है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। जो ऐसा जानता है, उसके लिये मोक्ष दुर्लभ नहीं है॥ ३१॥

आज आपने निश्चय ही मेरी महिमा बढ़ा दी है, यदि कभी कोई अवगुण आ जाय, तो उसे क्षमा करें॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर विष्णुके द्वारा कहे गये श्रेष्ठ वचनको सुनकर शिवजीने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक विष्णुसे कहा कि मैंने आपके अवगुणोंको क्षमा कर दिया है॥ ३३॥

विष्णुसे ऐसा कहकर उन कृपानिधि परमेश्वरने कृपापूर्वक अपने हाथोंसे हम दोनोंके सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श किया॥ ३४॥

सर्वदु:खहारी सदाशिवने नाना प्रकारके धर्मोंका उपदेशकर हम दोनोंके हितकी इच्छासे अनेक प्रकारके वर दिये॥ ३५॥

इसके बाद भक्तवत्सल भगवान् शम्भु कृपापूर्वक हमारी ओर देखकर हम दोनोंके देखते-देखते शीघ्र वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३६॥

तभीसे इस लोकमें लिंगपूजाका विधान प्रचलित हुआ है। लिंगमें प्रतिष्ठित भगवान् शिव भोग और मोक्ष देनेवाले हैं॥ ३७॥

शिवलिंगकी वेदी महादेवीका स्वरूप है और लिंग साक्षात् महेश्वर है। लयकारक होनेके कारण ही इसे लिंग कहा गया है; इसीमें सम्पूर्ण जगत् स्थित रहता है॥ ३८॥

जो शिवलिंगके समीप स्थिर होकर नित्य इस लिंगके आख्यानको पढ़ता है, वह छ: मासमें ही शिवरूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ३९॥

हे महामुने! जो शिवलिंगके समीप कोई भी कार्य करता है, उसके पुण्यफलका वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें परमशिवतत्त्ववर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

शिवपूजनकी विधि तथा उसका फल

ऋषि बोले—हे व्यासशिष्य महाभाग सूतजी! आपको नमस्कार है, आज आपने भगवान् शिवकी अद्भुत एवं परम पवित्र कथा सुनायी है॥ १॥

उसमें अद्भुत, महादिव्य तथा कल्याणकारिणी लिंगोत्पत्ति हमलोगोंने सुनी, जिसके प्रभावको सुननेसे इस लोकमें दु:खोंका नाश हो जाता है॥ २॥

हे दयानिधे! ब्रह्मा और नारदजीके संवादके अनुसार आप हमें शिवपूजनकी वह विधि बताइये, जिससे भगवान् शिव सन्तुष्ट होते हैं॥ ३॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—सभी शिवकी पूजा करते हैं। वह पूजन कैसे करना चाहिये? आपने व्यासजीके मुखसे इस विषयको जिस प्रकार सुना हो, वह बताइये॥ ४॥

महर्षियोंका वह कल्याणप्रद एवं श्रुतिसम्मत वचन सुनकर सूतजी उन मुनियोंके प्रश्नके अनुसार सब बातें प्रसन्नतापूर्वक बताने लगे॥ ५॥

सूतजी बोले—मुनीश्वरो! आपलोगोंने बहुत अच्छी बात पूछी है, परंतु वह रहस्यकी बात है। मैंने इस विषयको जैसा सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है, उसके अनुसार आज कह रहा हूँ॥ ६॥

जैसे आपलोग पूछ रहे हैं, उसी तरह पूर्वकालमें व्यासजीने सनत्कुमारजीसे पूछा था। फिर उसे उपमन्युजीने भी सुना था॥ ७॥

तब व्यासजीने शिवपूजन आदि जो भी था, उसे सुनकर लोकहितकी कामनासे मुझे पढ़ा दिया था॥ ८॥

इसी विषयको भगवान् श्रीकृष्णने महात्मा उपमन्युसे सुना था। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने नारदजीसे इस विषयमें जो कुछ कहा था, वही इस समय मैं कहूँगा॥ ९॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मैं संक्षेपमें लिंगपूजनकी विधि बता रहा हूँ, सुनिये। हे मुने! इसका वर्णन सौ वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता है। जो भगवान् शंकरका सुखमय, निर्मल एवं सनातन रूप है, सभी मनोवांछित फलोंकी प्राप्तिके लिये उसका उत्तम भक्तिभावसे पूजन करे॥ १०-११॥

दरिद्रता, रोग, दु:ख तथा शत्रुजनित पीड़ा—ये चार प्रकारके पाप-कष्ट तभीतक रहते हैं, जबतक मनुष्य भगवान् शिवका पूजन नहीं करता है॥ १२॥

भगवान् शिवकी पूजा होते ही सारे दु:ख विलीन हो जाते हैं और समस्त सुखोंकी प्राप्ति हो जाती है। तत्पश्चात् [समय आनेपर उपासककी] मुक्ति भी हो जाती है॥ १३॥

जो मानवशरीरका आश्रय लेकर मुख्यतया सन्तानसुखकी कामना करता है, उसे चाहिये कि सम्पूर्ण कार्यों और मनोरथोंके साधक महादेवजीकी पूजा करे॥ १४॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी सम्पूर्ण कामनाओं तथा प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये क्रमसे विधिके अनुसार भगवान् शंकरकी पूजा करें॥ १५॥

प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर गुरु तथा शिवका स्मरण करके पुन: तीर्थोंका चिन्तन करके भगवान् विष्णुका ध्यान करे। हे मुने! इसके बाद मेरा, देवताओंका और मुनि आदिका भी स्मरण-चिन्तन करके स्तोत्र-पाठपूर्वक शंकरजीका विधिपूर्वक नाम ले॥ १६—१७$^1/_2$॥

उसके बाद शय्यासे उठकर निवासस्थानसे दक्षिण दिशामें जाकर मलत्याग करे। हे मुने! एकान्तमें मलोत्सर्ग करना चाहिये। उससे शुद्ध होनेके लिये जो विधि मैंने सुन रखी है, आप लोगोंसे उसीको आज कहता हूँ, मनको एकाग्र करके सुनें॥ १८-१९॥

ब्राह्मण [गुदाकी] शुद्धिके लिये पाँच बार मिट्टीका लेप करे और धोये। क्षत्रिय चार बार, वैश्य तीन बार और शूद्र दो बार विधिपूर्वक गुदाकी शुद्धिके लिये उसमें मिट्टी लगाये। लिंगमें भी एक बार प्रयत्नपूर्वक मिट्टी लगानी चाहिये॥ २०-२१॥

तत्पश्चात् बायें हाथमें दस बार और दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी लगाये। हे तात! प्रत्येक पैरमें तीन-तीन बार मिट्टी लगाये, फिर दोनों हाथोंमें भी तीन बार मिट्टी लगाकर धोये॥ २२॥

स्त्रियोंको शूद्रकी भाँति अच्छी तरह मिट्टी लगानी चाहिये। हाथ-पैर धोकर पूर्ववत् शुद्ध मिट्टीका संग्रह करना चाहिये॥ २३॥

इसके बाद मनुष्यको अपने वर्णके अनुसार दातौन करना चाहिये। ब्राह्मणको बारह अँगुलकी दातौन करनी चाहिये। क्षत्रिय ग्यारह अँगुल, वैश्य दस अँगुल और शूद्र नौ अँगुलकी दातौन करे। दातौनका यह मान बताया गया है। मनुस्मृतिके अनुसार कालदोषका विचार करके ही दातौन करे या त्याग दे॥ २४—२६॥

हे तात! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावस्या, नवमी, व्रतका दिन, सूर्यास्तका समय, रविवार तथा श्राद्धदिवस—ये दन्तधावनके लिये वर्जित हैं॥ २७॥

[दन्तधावनके पश्चात्] तीर्थ आदिमें विधिपूर्वक स्नान करना चाहिये, विशेष देश-काल आनेपर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना चाहिये॥ २८॥

[स्नानके पश्चात्] पहले आचमन करके धुला हुआ वस्त्र धारण करे। फिर सुन्दर एकान्त स्थलमें बैठकर सन्ध्याविधिका अनुष्ठान करे॥ २९॥

यथायोग्य सन्ध्याविधि करके पूजाका कार्य आरम्भ करे। मनको सुस्थिर करके पूजागृहमें प्रवेशकर वहाँ पूजन-सामग्री लेकर सुन्दर आसनपर बैठे। पहले न्यास आदि करके क्रमशः महादेवजीकी पूजा करे॥ ३०-३१॥

[शिवकी पूजासे] पहले गणेशजीकी, द्वारपालोंकी और दिक्पालोंकी भलीभाँति पूजा करके बादमें देवताके लिये पीठकी स्थापना करे॥ ३२॥

अथवा अष्टदलकमल बनाकर पूजाद्रव्यके समीप बैठकर उस कमलपर ही भगवान् शिवको समासीन करे। तत्पश्चात् तीन बार आचमन करके पुनः दोनों हाथ धोकर तीन प्राणायाम करके मध्यम प्राणायाम अर्थात् कुम्भक करते समय त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवका इस प्रकार ध्यान करे—उनके पाँच मुख हैं, दस भुजाएँ हैं, शुद्ध स्फटिकके समान उनकी कान्ति है, वे सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं तथा वे व्याघ्रचर्मका उत्तरीय ओढ़े हुए हैं। उनके सारूप्यकी भावना करके मनुष्य सदाके लिये अपने पापको भस्म कर डाले। [इस प्रकारकी भावनासे युक्त होकर] वहाँपर शिवको प्रतिष्ठापितकर उन परमेश्वरकी पूजा करे॥ ३३—३६॥

शरीरशुद्धि करके मूलमन्त्रका क्रमशः न्यास करे अथवा सर्वत्र प्रणवसे ही षडंगन्यास करे॥ ३७॥

इस प्रकार हृदयादि न्यास करके पूजा आरम्भ करे। पाद्य, अर्घ्य और आचमनके लिये पात्रोंको तैयार करके रखे॥ ३८॥

बुद्धिमान् पुरुष विधिपूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकारके नौ कलश स्थापित करे। उन्हें कुशाओंसे ढककर कुशाओंसे ही जल लेकर उन सबका प्रोक्षण करे। उन-उन सभी पात्रोंमें शीतल जल डाले। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष देख-भालकर प्रणवमन्त्रके द्वारा उनमें इन द्रव्योंको डाले। खस और चन्दनको पाद्यपात्रमें रखे। चमेलीके फूल, शीतलचीनी, कपूर, बड़की जड़ तथा तमाल—इन सबको यथोचितरूपसे [कूट-पीसकर] चूर्ण बनाकर आचमनीय पात्र (पंचपात्र)-में डाले। यह सब चन्दनसहित सभी पात्रोंमें डालना चाहिये॥ ३९—४२॥

देवाधिदेव महादेवजीके पार्श्वभागमें नन्दीश्वरका पूजन करे। गन्ध, धूप, दीप आदि विविध उपचारोंसे शिवकी पूजा करे॥ ४३॥

फिर प्रसन्नतापूर्वक लिंगशुद्धि करके मनुष्य उचित रूपसे मन्त्रसमूहोंके आदिमें 'प्रणव' तथा अन्तमें 'नमः' पद जोड़कर उनके द्वारा [इष्टदेवके लिये] अथवा प्रणवका उच्चारण करके स्वस्ति, पद्म आदि आसनकी कल्पना करे। पुनः यह भावना करे कि इस कमलका पूर्वदल साक्षात् अणिमा नामक ऐश्वर्यरूप तथा अविनाशी है। दक्षिणदल लघिमा है। पश्चिमदल महिमा है। उत्तरदल प्राप्ति है। अग्निकोणका दल प्राकाम्य है। नैर्ऋत्यकोणका दल ईशित्व है। वायव्यकोणका दल वशित्व है। ईशानकोणका दल सर्वज्ञत्व है और उस कमलकी कर्णिकाको सोम कहा जाता है॥ ४४—४७॥

इस सोमके नीचे सूर्य है, सूर्यके नीचे यह अग्नि है और अग्निके भी नीचे धर्म आदिकी क्रमशः कल्पना करे। इसके पश्चात् चारों दिशाओंमें अव्यक्त आदिकी तथा सोमके नीचे तीनों गुणोंकी कल्पना करे। इसके बाद **'ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि'** इत्यादि मन्त्रसे परमेश्वर शिवका आवाहन करके **'ॐ वामदेवाय नमः'** इत्यादि वामदेवमन्त्रसे उन्हें आसनपर विराजमान करे। फिर **'ॐ तत्पुरुषाय विद्महे'** इत्यादि रुद्रगायत्रीद्वारा इष्टदेवका सान्निध्य प्राप्त करके उन्हें **'ॐ अघोरेभ्योऽथ'** इत्यादि

अघोर मन्त्रसे वहाँ निरुद्ध करे। तत्पश्चात् '**ॐ ईशानः सर्वविद्यानाम्**' इत्यादि मन्त्रसे आराध्य देवका पूजन करे। पाद्य और आचमनीय अर्पित करके अर्घ्य दे॥ ४८—५१॥

तत्पश्चात् गन्ध और चन्दनमिश्रित जलसे विधिपूर्वक रुद्रदेवको स्नान कराये। फिर पंचगव्यनिर्माणकी विधिसे पाँचों द्रव्योंको एक पात्रमें लेकर प्रणवसे ही अभिमन्त्रित करके उन मिश्रित गव्यपदार्थोंद्वारा भगवान्‌को स्नान कराये। तत्पश्चात् पृथक्-पृथक् दूध, दही, मधु, गन्नेके रस तथा घीसे नहलाकर समस्त अभीष्टोंके दाता और हितकारी पूजनीय महादेवजीका प्रणवके उच्चारणपूर्वक पवित्र द्रव्योंद्वारा अभिषेक करे॥ ५२—५४॥

साधक श्वेत वस्त्रसे उस जलको यथोचित रीतिसे छान ले और पवित्र जलपात्रोंमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल डाले॥ ५५॥

जलधारा तबतक बन्द न करे, जबतक इष्टदेवको चन्दन न चढ़ाये। तब सुन्दर अक्षतोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरजीकी पूजा करे। उनके ऊपर कुश, अपामार्ग, कपूर, चमेली, चम्पा, गुलाब, श्वेत कनेर, बेला, कमल और उत्पल आदि भाँति-भाँतिके अपूर्व पुष्पों एवं चन्दनसे उनकी पूजा करे। परमेश्वर शिवके ऊपर जलकी धारा गिरती रहे, इसकी भी व्यवस्था करे॥ ५६—५८॥

जलसे भरे भाँति-भाँतिके पात्रोंद्वारा महेश्वरको स्नान कराये। इस प्रकार मन्त्रोच्चारणपूर्वक समस्त फलोंको देनेवाली पूजा करनी चाहिये॥ ५९॥

हे तात! अब मैं आपको समस्त मनोवांछित कामनाओंकी सिद्धिके लिये उन [पूजासम्बन्धी] मन्त्रोंको भी संक्षेपमें बता रहा हूँ, सावधानीके साथ सुनिये॥ ६०॥

पावमानमन्त्रसे, '**वाङ्मे०**' इत्यादि मन्त्रसे, रुद्रमन्त्रसे, नीलरुद्रमन्त्रसे, सुन्दर एवं शुभ पुरुषसूक्तसे, श्रीसूक्तसे, सुन्दर अथर्वशीर्षके मन्त्रसे, '**आ नो भद्रा०**' इत्यादि शान्तिमन्त्रसे, शान्तिसम्बन्धी दूसरे मन्त्रोंसे, भारुण्ड मन्त्र और अरुणमन्त्रोंसे, अर्थाभीष्टसाम तथा देवव्रतसामसे, '**अभि त्वा०**' इत्यादि रथन्तरसामसे, पुरुषसूक्तसे, मृत्युंजयमन्त्रसे तथा पंचाक्षरमन्त्रसे पूजा करे॥ ६१—६४॥

एक सहस्र अथवा एक सौ एक जलधाराएँ वैदिक विधिसे शिवके नाममन्त्रसे प्रदान करे॥ ६५॥

तदनन्तर भगवान् शंकरके ऊपर चन्दन और फूल आदि चढ़ाये। प्रणवसे ताम्बूल आदि अर्पित करे॥ ६६॥

इसके बाद जो स्फटिकमणिके समान निर्मल, निष्कल, अविनाशी, सर्वलोककारण, सर्वलोकमय, परमदेव हैं, जो ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, विष्णु आदि देवताओंको भी गोचर न होनेवाले, वेदवेत्ता विद्वानोंके द्वारा वेदान्तमें [मन-वाणीसे] अगोचर बताये गये हैं, जो आदि-मध्य-अन्तसे रहित, समस्त रोगियोंके लिये औषधरूप, शिवतत्त्वके नामसे विख्यात तथा शिवलिंगके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, उन भगवान् शिवका शिवलिंगके मस्तकपर प्रणवमन्त्रसे ही पूजन करे। धूप, दीप, नैवेद्य, सुन्दर ताम्बूल, सुरम्य आरती, स्तोत्रों तथा नाना प्रकारके मन्त्रों एवं नमस्कारोंद्वारा यथोक्त विधिसे उनकी पूजा करे॥ ६७—७१॥

तत्पश्चात् अर्घ्य देकर भगवान्‌के चरणोंमें फूल बिखेरकर और साष्टांग प्रणाम करके देवेश्वर शिवकी आराधना करे॥ ७२॥

इसके बाद हाथमें फूल लेकर खड़ा हो करके दोनों हाथ जोड़कर इस मन्त्रसे सर्वेश्वर शंकरकी पुनः प्रार्थना करे—

अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानाज्जपपूजादिकं मया।
कृतं तदस्तु सफलं कृपया तव शंकर॥

हे शिव! मैंने अनजानमें अथवा जान-बूझकर जो जप-पूजा आदि सत्कर्म किये हों, वे आपकी कृपासे सफल हों॥ ७३-७४॥

इस प्रकार पढ़कर भगवान् शिवके ऊपर प्रसन्नतापूर्वक फूल चढ़ाये। तत्पश्चात् स्वस्तिवाचन[1] करके नाना प्रकारकी आशीः[2] प्रार्थना करे। फिर शिवके ऊपर मार्जन[3] करना

---

१. 'ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥' इत्यादि स्वस्तिवाचनसम्बन्धी मन्त्र हैं।

२. 'काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी शस्यशालिनी। देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥ सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥' इत्यादि आशीः प्रार्थनाएँ हैं।

३. 'ॐ आपो हि ष्ठा मयोभुवः' (यजु० ११। ५०—५२) इत्यादि तीन मार्जन-मन्त्र कहे गये हैं। इन्हें पढ़ते हुए इष्टदेवपर जल छिड़कना 'मार्जन' कहलाता है।

चाहिये। इसके बाद नमस्कार करके अपराधके लिये क्षमा-प्रार्थना[1] करते हुए पुनरागमनके लिये विसर्जन[2] करना चाहिये। इसके बाद अघोर[3] मन्त्रका उच्चारण करके नमस्कार करे। फिर सम्पूर्ण भावसे युक्त होकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्तिर्भवे भवे।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम॥

प्रत्येक जन्ममें शिवमें मेरी भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो, शिवमें भक्ति हो। आपके अतिरिक्त दूसरा कोई मुझे शरण देनेवाला नहीं है। हे महादेव! आप ही मेरे लिये शरणदाता हैं॥ ७५—७८॥

इस प्रकार प्रार्थना करके पराभक्तिके द्वारा सम्पूर्ण सिद्धियोंके दाता देवेश्वर शिवका पूजन करे। विशेषतः गलेकी ध्वनिसे भगवान्‌को सन्तुष्ट करे॥ ७९॥

तत्पश्चात् परिवारजनोंके साथ नमस्कार करके अनुपम प्रसन्नता प्राप्त करके समस्त [लौकिक] कार्य सुखपूर्वक करता रहे॥ ८०॥

जो इस प्रकार शिवभक्तिपरायण होकर प्रतिदिन पूजन करता है, उसे अवश्य ही पग-पगपर सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है॥ ८१॥

वह उत्तम वक्ता होता है तथा उसे मनोवांछित फलकी निश्चय ही प्राप्ति होती है। रोग, दुःख, शोक, दूसरोंके निमित्तसे होनेवाला उद्वेग, कुटिलता, विष तथा अन्य जो-जो कष्ट उपस्थित होता है, उसे कल्याणकारी परम शिव अवश्य नष्ट कर देते हैं॥ ८२-८३॥

उस उपासकका कल्याण होता है। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ता है, वैसे ही शंकरकी पूजासे उसमें अवश्य ही सद्‌गुणोंकी वृद्धि होती है॥ ८४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने शिवकी पूजाका विधान आपको बताया। हे नारद! अब आप और क्या पूछना तथा सुनना चाहते हैं?॥ ८५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें शिवपूजाविधिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

भगवान् शिवकी श्रेष्ठता तथा उनके पूजनकी अनिवार्य आवश्यकताका प्रतिपादन

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे प्रजापते! हे तात! आप धन्य हैं; क्योंकि आपकी बुद्धि भगवान् शिवमें लगी हुई है। हे विधे! आप पुनः इसी विषयका सम्यक् प्रकारसे विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! एक समयकी बात है; कमलसे उत्पन्न होनेवाले मैंने चारों ओरसे ऋषियों और देवताओंको बुलाकर प्रेमपूर्वक सुन्दर और मधुर वाणीमें कहा—॥ २॥

यदि आप सब नित्य सुख प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं और नित्य अपने मनोरथकी सिद्धि चाहते हैं, तो मेरे साथ क्षीरसागरके तटपर आयें॥ ३॥

इस वचनको सुनकर वे सब मेरे साथ वहाँपर गये, जहाँ सर्वकल्याणकारी भगवान् विष्णु निवास करते हैं॥ ४॥
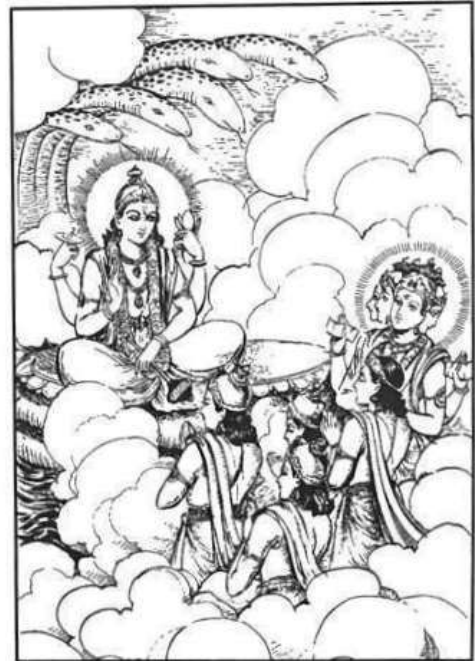
१. 'अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया। तानि सर्वाणि मे देव क्षमस्व परमेश्वर॥' इत्यादि क्षमाप्रार्थनासम्बन्धी श्लोक हैं।
२. 'यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्। अभीष्टफलदानाय पुनरागमनाय च॥' इत्यादि विसर्जनसम्बन्धी श्लोक हैं।
३. अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः। सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥

हे मुने! वहाँपर जाकर सभी देवता भगवान् जगन्नाथ देवदेवेश्वर जनार्दन विष्णुको हाथ जोड़कर प्रणाम करके खड़े हो गये। ब्रह्मा आदि उन उपस्थित देवताओंको देखकर [मनमें] शिवके चरणकमलका स्मरण करते हुए विष्णु कहने लगे— ॥ ५-६ ॥

विष्णुजी बोले—हे ब्रह्मादि देवो और ऋषियो! आपलोग यहाँ किसलिये आये हुए हैं? प्रेमपूर्वक सब कुछ कहें? इस समय कौन-सा कार्य आ पड़ा?॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णुके द्वारा ऐसा पूछनेपर मैंने उन्हें प्रणाम किया और उपस्थित उन सभी देवताओंसे कहा कि इस समय आप सबके आनेका क्या प्रयोजन है? इसका निवेदन आप सब करें॥ ८१/२ ॥

देवता बोले—[हे विष्णो!] किसकी सेवा है, जो सभी दु:खोंको दूर करनेवाली है, जिसको कि हमें नित्य करना चाहिये। देवताओंका यह वचन सुनकर भक्तवत्सल भगवान् विष्णु देवताओंसहित मेरी प्रसन्नताके लिये कृपापूर्वक यह वाक्य कहने लगे— ॥ ९-१० ॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! देवोंके साथ आपने पहले भी इस विषयमें सुना है, किंतु आज पुन: आपको और देवताओंको बता रहा हूँ॥ ११ ॥

हे ब्रह्मन्! अपने-अपने कार्योंमें संलग्न समस्त देवोंके साथ आपने जो देखा है और इस समय जो देख रहे हैं, उसके विषयमें बार-बार क्यों पूछ रहे हैं?॥ १२ ॥

सभी दु:खोंको दूर करनेवाले शंकरजीकी ही सदा सेवा करनी चाहिये। यह बात स्वयं ही उन्होंने विशेषकर मुझसे और ब्रह्मासे भी कही थी॥ १३ ॥

इस अद्भुत दृष्टान्तको आप सब लोगोंने भी देखा है। अत: सुख चाहनेवाले लोगोंको कभी भी उनका पूजन नहीं छोड़ना चाहिये॥ १४ ॥

देवदेवेश्वर भगवान् शंकरके लिंगमूर्तिरूप महेश्वरका त्याग करके अपने बन्धु-बान्धवोंसहित तारपुत्र नष्ट हो गये। [शिवकी आराधनाका परित्याग करनेके कारण] वे सब मेरे द्वारा मायासे मोहित कर दिये गये और जब वे शिवकी भक्तिसे वंचित हो गये, तब वे सब नष्ट और ध्वस्त हो गये॥ १५-१६ ॥

अत: हे देवसत्तम! लिंगमूर्ति धारण करनेवाले भगवान् शंकरकी विशेष श्रद्धाके साथ सदैव पूजा और सेवा करनी चाहिये। शिवलिंगकी पूजा करनेसे ही देवता, दैत्य, हम और आप सभी श्रेष्ठताको प्राप्त कर सके हैं, हे ब्रह्मन्! आपने उसे कैसे भुला दिया है?॥ १७-१८ ॥

इसलिये जिस किसी भी तरहसे भगवान् शिवके लिंगका पूजन नित्य करना ही चाहिये। हे ब्रह्मन्! सभी मनोकामनाओंकी पूर्तिके लिये देवताओंको भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ १९ ॥

वही [मनुष्यके जीवनकी बहुत बड़ी] हानि है, वही [उसके चरित्रका] बहुत बड़ा छिद्र है, वही उसकी अन्धता और वही महामूर्खता है, जिस मुहूर्त अथवा क्षणमें मनुष्य शिवका पूजन नहीं करता है॥ २० ॥

जो शिवभक्तिपरायण हैं, जो शिवमें अनुरक्त चित्तवाले हैं और जो शिवका स्मरण करते हैं, वे दु:खके पात्र नहीं होते। जो महाभाग मनको अच्छे लगनेवाले सुन्दर-सुन्दर भवन, सुन्दर आभूषणोंसे युक्त स्त्रियाँ, इच्छानुकूल धन, पुत्र-पौत्रादि सन्तति, निरोग शरीर, अलौकिक प्रतिष्ठा, स्वर्गलोकका सुख, अन्तकालमें मुक्तिलाभ तथा परमेश्वरकी भक्ति चाहते हैं, वे पूर्वजन्मकृत पुण्याधिक्यके कारण सदाशिवकी अर्चना किया करते हैं॥ २१—२४ ॥

जो भक्तिपरायण मनुष्य शिवलिंगकी नित्य पूजा करता है, उसीकी सिद्धि सफल होती है और वह पापोंसे लिप्त नहीं होता है॥ २५ ॥

ब्रह्माजी बोले—श्रीभगवान् विष्णुने जब देवताओंसे ऐसा कहा, तब उन्होंने साक्षात् हरिको प्रणाम करके मनुष्योंकी समस्त कामनाओंकी प्राप्तिके लिये उनसे शिवलिंग देनेकी प्रार्थना की॥ २६ ॥

उसको सुनकर भगवान् विष्णुने विश्वकर्मासे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं तो जीवोंका उद्धार करनेमें तत्पर हूँ। हे विश्वकर्मन्! मेरी आज्ञासे आप भगवान् शिवके कल्याणकारी लिंगोंका निर्माण करके उन्हें सभी देवताओंको प्रदान कीजिये॥ २७-२८ ॥

ब्रह्माजी बोले—तब विश्वकर्माने अधिकारके अनुसार शिवलिंगोंका निर्माण करके मेरी और विष्णुकी आज्ञासे उन सभी शिवलिंगोंको उन देवताओंको प्रदान किया॥ २९ ॥

हे ऋषिश्रेष्ठ! वही मैं आज आपसे कह रहा हूँ,

सुनिये। इन्द्र पद्मरागमणिसे बने शिवलिंग, विश्रवापुत्र कुबेर सुवर्णलिंग, धर्म पीतवर्ण पुखराजकी मणिसे निर्मित लिंग, वरुण श्यामवर्णकी मणियोंसे बने हुए लिंग, विष्णु इन्द्रनीलमणिसे निर्मित लिंग, ब्रह्मा सुवर्णसे बने शिवलिंग, हे मुने! सभी विश्वेदेव चाँदीसे निर्मित शिवलिंग, वसुगण पीतलके शिवलिंग, अश्विनीकुमार पार्थिव लिंग, देवी लक्ष्मी स्फटिकमणिनिर्मित लिंग, सभी आदित्य ताम्रनिर्मित लिंग, सोमराज चन्द्रमा मौक्तिक शिवलिंग, अग्निदेव वज्रमणि [हीरे]-से बने शिवलिंग, श्रेष्ठ ब्राह्मण और उनकी पत्नियाँ मृण्मय पार्थिव शिवलिंग, मयदानव चन्दनके शिवलिंग, नाग मूँगेसे बने शिवलिंगका आदरपूर्वक विधिवत् पूजन करते हैं॥ ३०—३४॥

देवी दुर्गा मक्खनसे बने हुए शिवलिंग, योगी भस्मनिर्मित शिवलिंग, यक्ष दधिनिर्मित शिवलिंग तथा छाया चावलके आटेकी पीठीसे बने हुए शिवलिंगकी विधिवत् पूजा करती हैं। ब्रह्माणी देवी रत्नमय शिवलिंगकी पूजा करती हैं। बाणासुर पारेसे बने शिवलिंग तथा दूसरे लोग मिट्टी आदिसे बनाये गये पार्थिव शिवलिंगका विधिवत् पूजन करते हैं॥ ३५-३६॥

विश्वकर्माने इसी प्रकारके शिवलिंग देवताओं और ऋषियोंको भी दिये थे, जिनकी पूजा वे सभी देवता और ऋषि सदैव करते रहते हैं॥ ३७॥

देवताओंकी हितकामनाके लिये विष्णुने उन्हें शिवलिंग प्रदान करके मुझ ब्रह्मासे शिवका पूजन-विधान भी बताया। उनके द्वारा कहे गये शिवलिंगके उस पूजनविधानको सुनकर प्रसन्नचित्त मैं ब्रह्मा देवताओंके साथ अपने स्थानपर लौट आया॥ ३८-३९॥

हे मुने! वहाँ आकरके मैंने सभी देवों और ऋषियोंको सम्पूर्ण अभीष्टकी सिद्धि करनेवाले शिवलिंगके पूजन-विधानको सम्यक् रूपसे बताया॥ ४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे सभी देवताओ और ऋषियो! सुनिये। मैं प्रसन्नतापूर्वक आप सबसे शिवपूजनकी उस विधिका वर्णन करने जा रहा हूँ, जो भोग और मोक्षको देनेवाली है॥ ४१॥

हे देवो! हे मुनीश्वरो! सभी जीव-जन्तुओंमें मनुष्यका जन्म प्राप्त करना दुर्लभ है, उसमें भी उत्तम कुलमें जन्म लेना तो अत्यन्त दुर्लभ है। उत्तम कुलमें भी सदाचारी ब्राह्मणोंके यहाँ जन्म लेना अच्छे पुण्योंसे ही सम्भव है। अत: भगवान् सदाशिवकी प्रसन्नताके लिये सदैव स्ववर्णाश्रम-विहित कर्म करते रहना चाहिये॥ ४२-४३॥

जिस जातिके लिये जो-जो सत्कर्म बताया गया है, उस-उस कर्मका उल्लंघन नहीं करना चाहिये, जितनी सम्पत्ति हो, उसके अनुसार दानकर्म करना चाहिये॥ ४४॥

कर्ममय सहस्रों यज्ञोंकी अपेक्षा तपयज्ञ श्रेष्ठ है। सहस्रों तपयज्ञोंकी अपेक्षा जपयज्ञका महत्त्व अधिक है। ध्यान-यज्ञसे बढ़कर तो कोई वस्तु है ही नहीं। ध्यान ज्ञानका साधन है; क्योंकि योगी ध्यानके द्वारा अपने इष्टदेव एकरस सदाशिवका साक्षात्कार करता है॥ ४५-४६॥

भगवान् सदाशिव सदैव ध्यानयज्ञमें तत्पर रहनेवाले उपासकके सान्निध्यमें रहते हैं। जो विज्ञानसे सम्पन्न हैं, उनकी शुद्धिके लिये किसी प्रायश्चित्त आदिकी आवश्यकता नहीं है॥ ४७॥

हे ब्रह्मन्! जो ब्रह्मविद् विशुद्ध ब्रह्मविद्याके द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार कर लेते हैं, उन्हें क्रिया, सुख-दु:ख, धर्म-अधर्म, जप, होम, ध्यान और ध्यान-विधिको जानने तथा करनेकी आवश्यकता नहीं है। वे इस विद्यासे सदा निर्विकार रहते हैं और अन्तमें अमर हो जाते हैं॥ ४८-४९॥

इस शिवलिंगको परमानन्द देनेवाला, विशुद्ध, कल्याणस्वरूप, अविनाशी, निष्कल, सर्वव्यापक तथा योगियोंके हृदयमें अवस्थित रहनेवाला जानना चाहिये॥ ५०॥

हे द्विजो! शिवलिंग दो प्रकारका बताया गया है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य लिंगको स्थूल एवं आभ्यन्तर लिंगको सूक्ष्म माना गया है॥ ५१॥

जो कर्मयज्ञमें तत्पर रहनेवाले हैं, वे स्थूल लिंगकी अर्चनामें रत रहते हैं। सूक्ष्मतया शिवके प्रति ध्यान करनेमें अशक्त अज्ञानियोंके लिये शिवके इस स्थूलविग्रहकी कल्पना की गयी है। जिसको इस आध्यात्मिक सूक्ष्मलिंगका प्रत्यक्षीकरण नहीं होता है, उसे उस स्थूल लिंगमें इस सूक्ष्म लिंगकी कल्पना करनी चाहिये, इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है॥ ५२-५३॥

ज्ञानियोंके लिये सूक्ष्मलिंगकी पूजाका विधान है, [जिसमें ध्यानकी प्रधानता होती है।] ध्यान करनेसे उस

शिवका साक्षात्कार होता है, जो सदैव निर्मल और अव्यय रहनेवाला है। जिस प्रकार अज्ञानियोंके लिये स्थूल लिंगकी उत्कृष्टता बतायी गयी है, उसी प्रकार ज्ञानियोंके लिये इस सूक्ष्मलिंगको उत्तम माना गया है॥ ५४॥

दूसरे तत्त्वार्थवादियोंके विचारसे आगे कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि निष्कल तथा कलामयरूपसे वह सबके चित्तमें रहता है। सम्पूर्ण जगत् शिवस्वरूप ही है॥ ५५॥

इस प्रकार ज्ञानके द्वारा शिवका साक्षात्कार करके विमुक्त हुए लोगोंको कोई भी पाप नहीं लगता। उनके लिये विधि-निषेध और विहित-अविहित कुछ भी नहीं है॥ ५६॥

जिस प्रकार जलके भीतर रहते हुए भी कमल जलसे लिप्त नहीं होता है, उसी प्रकार घरमें रहते हुए भी ज्ञानी पुरुषको कर्म अपने बन्धनमें बाँध नहीं पाते हैं॥ ५७॥

इस प्रकारका ज्ञान जबतक मनुष्यको प्राप्त न हो जाय, तबतक उसे कर्मविहित स्थूल या सूक्ष्म शिवलिंगका निर्माणादि करके सदाशिवकी ही आराधना करनी चाहिये॥ ५८॥

जिस प्रकार विश्वासके लिये जगत्‌में सूर्य एक ही स्थित है और एक होते हुए भी जलके आधार जलाशय आदि वस्तुओंमें [अपने प्रतिबिम्बके कारण] बहुत-से रूपोंमें दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार हे देवो! यह सत्-असत्‌रूप जो कुछ भी इस संसारमें सुनायी और दिखायी दे रहा है, उसे आपलोग शिवस्वरूप परब्रह्म ही समझें॥ ५९-६०॥

जलतत्त्वके एक होनेपर भी उनके सम्बन्धमें जो भेद प्रतीत होता है, वह संसारमें सम्यक् विचार न करनेके कारण ही है—ऐसा अन्य सभी वेदार्थतत्त्वज्ञ भी कहते हैं॥ ६१॥

संसारियोंके हृदयमें सकल लिंगस्वरूप साक्षात् परमेश्वरका वास है—ऐसा ज्ञान जिसको हो गया है, उसको प्रतिमा आदिसे क्या प्रयोजन है!॥ ६२॥

इस प्रकारके ज्ञानसे हीन प्राणीके लिये शुभ प्रतिमाकी कल्पना की गयी है; क्योंकि ऊँचे स्थानपर चढ़नेके लिये मनुष्यके लिये आलम्बन आवश्यक बताया गया है॥ ६३॥

जैसे आलम्बनके बिना ऊँचे स्थानपर चढ़ना मनुष्यके लिये अत्यन्त कठिन ही नहीं सर्वथा असम्भव है, वैसे ही निर्गुण ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये प्रतिमाका अवलम्बन आवश्यक कहा गया है॥ ६४॥

सगुणसे ही निर्गुणकी प्राप्ति होती है—ऐसा निश्चित है। इस प्रकार सभी देवताओंकी प्रतिमाएँ उन देवोंमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिये होती हैं॥ ६५॥

ये देव सभी देवताओंसे महान् हैं। इन्हींके लिये यह पूजनका विधान है। यदि प्रतिमा न हो, तो गन्ध-चन्दन, पुष्पादिकी आवश्यकता किस कार्यसिद्धिके लिये रह जायगी॥ ६६॥

प्रतिमाका पूजन तबतक करते रहना चाहिये, जबतक विज्ञान [परब्रह्म परमेश्वरका ज्ञान] प्राप्त नहीं हो जाता। बिना ज्ञान प्राप्त किये ही जो प्रतिमाका पूजन छोड़ देता है, उसका निश्चित ही पतन होता है॥ ६७॥

हे ब्राह्मणो! इस कारण आपलोग परमार्थरूपसे सुनें। अपनी जातिके अनुसार [शास्त्रोंमें] जो कर्म बताया गया है, उसे प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ६८॥

जहाँ-जहाँ जैसी भक्ति हो, वहाँ-वहाँ तदनुरूप पूजनादि कर्म करना चाहिये; क्योंकि पूजन, दान आदिके बिना पाप दूर नहीं होता॥ ६९॥

जबतक शरीरमें पाप रहता है, तबतक सिद्धिकी प्राप्ति नहीं होती है। पापके दूर हो जानेपर उसका सब कुछ सफल हो जाता है॥ ७०॥

जिस प्रकार मलिन वस्त्रमें रंग बहुत सुन्दर नहीं चढ़ता, किंतु उसे भली प्रकारसे धोकर स्वच्छ कर लेनेपर पूरा रंग अच्छी तरहसे चढ़ता है, उसी प्रकार देवताओंकी विधिवत् पूजा करनेसे जब निर्मल शरीरमें ज्ञानरूपी रंग चढ़ता है, तब जाकर उस ब्रह्मविज्ञानका प्रादुर्भाव होता है॥ ७१-७२॥

विज्ञानका मूल अनन्य भक्ति है और ज्ञानका मूल भी भक्ति ही कही जाती है॥ ७३॥

भक्तिका मूल सत्कर्म और अपने इष्टदेव आदिका पूजन है और उसका मूल सद्‌गुरु कहे गये हैं और उन सद्‌गुरुका मूल सत्संगति है॥ ७४॥

सत्संगतिसे सद्‌गुरुको प्राप्त करना चाहिये। सद्‌गुरुसे प्राप्त मन्त्रसे देवपूजन आदि सत्कर्म करने चाहिये; क्योंकि देवपूजनसे भक्ति उत्पन्न होती है और उस भक्तिसे ज्ञानका प्रादुर्भाव होता है॥ ७५॥

ज्ञानसे परब्रह्मके प्रकाशक विज्ञानका उदय होता है। जब विज्ञानका उदय हो जाता है, तब भेदबुद्धि

[स्वतः ही] नष्ट हो जाती है ॥ ७६ ॥

समस्त भेदोंके नष्ट हो जानेपर द्वन्द्व-दुःख भी नष्ट हो जाते हैं। द्वन्द्व-दुःखसे रहित हो जानेपर वह साधक शिवस्वरूप हो जाता है ॥ ७७ ॥

हे देवर्षियो! द्वन्द्वके नष्ट हो जानेपर ज्ञानीको सुख-दुःखकी अनुभूति नहीं होती और विहित-अविहितका प्रपंच भी उसके लिये नहीं रह जाता है ॥ ७८ ॥

इस संसारमें ऐसा गृहस्थाश्रमरहित प्राणी विरला ही होता है। यदि लोकमें कोई हो, तो उसके दर्शनमात्रसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं। सभी तीर्थ, देवता और मुनि भी उस प्रकारके परब्रह्ममय शिवस्वरूप परमज्ञानीकी प्रशंसा करते रहते हैं ॥ ७९-८० ॥

वैसे न तो तीर्थ हैं, न मिट्टी और पत्थरसे बने देवता ही हैं, वे तो बहुत समयके बाद पवित्र करते हैं, किंतु विज्ञानी दर्शनमात्रसे पवित्र कर देता है ॥ ८१ ॥

जबतक मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहे, तबतक प्रेमपूर्वक उसे पाँच देवताओं (गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव तथा देवी)-की और उनमें भी सर्वश्रेष्ठ भगवान् सदाशिवकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये अथवा मात्र सदाशिवकी ही पूजा करनी चाहिये; एकमात्र वे ही सबके मूल कहे गये हैं। हे देवो! जैसे मूल (जड़)-के सींचे जानेपर सभी शाखाएँ स्वतः तृप्त हो जाती हैं, वैसे ही सर्वदेवमय सदाशिवके ही पूजनसे सभी देवताओंका पूजन हो जाता है और वे प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ८२-८३ ॥

जैसे वृक्षकी शाखाओंके तृप्त होनेपर अर्थात् उन्हें सींचनेपर कभी भी मूलकी तृप्ति नहीं होती, वैसे ही हे मुनिश्रेष्ठो! सभी देवताओंके तृप्त होनेपर शिवकी भी तृप्ति नहीं होती है—ऐसा सूक्ष्म बुद्धिवाले लोगोंको जानना चाहिये। शिवके पूजित हो जानेपर सभी देवताओंका पूजन स्वतः ही हो जाता है ॥ ८४-८५ ॥

अतः सभी प्राणियोंके कल्याणमें लगे हुए मनुष्यको चाहिये कि वह सभी कामनाओंकी फलप्राप्तिके लिये संसारका कल्याण करनेवाले भगवान् सदाशिवकी पूजा करे ॥ ८६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें पूजा-विधि-वर्णन-क्रममें सारासार-विचारवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

शिवपूजनकी सर्वोत्तम विधिका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—अब मैं पूजाकी सर्वोत्तम विधि बता रहा हूँ, जो समस्त अभीष्ट सुखोंको सुलभ करानेवाली है। हे देवताओ तथा ऋषियो! आपलोग ध्यान देकर सुनें ॥ १ ॥

उपासकको चाहिये कि वह ब्राह्म मुहूर्तमें उठकर जगदम्बा पार्वतीसहित भगवान् शिवका स्मरण करे तथा हाथ जोड़ मस्तक झुकाकर भक्तिपूर्वक उनसे इस प्रकार प्रार्थना करे— ॥ २ ॥

हे देवेश्वर! उठिये, उठिये। मेरे हृदयमें शयन करनेवाले देवता! उठिये। हे उमाकान्त! उठिये और ब्रह्माण्डमें सबका मंगल कीजिये। मैं धर्मको जानता हूँ, किंतु मेरी उसमें प्रवृत्ति नहीं होती, मैं अधर्मको जानता हूँ, परंतु मैं उससे दूर नहीं हो पाता। हे महादेव! आप मेरे हृदयमें स्थित होकर मुझे जैसी प्रेरणा देते हैं, वैसा ही मैं करता हूँ ॥ ३-४ ॥

भक्तिपूर्वक यह वचन कहकर और गुरुके चरणोंका स्मरण करके गाँवसे बाहर दक्षिण दिशामें मलमूत्रका त्याग करनेके लिये जाय ॥ ५ ॥

इसके बाद मिट्टी और जलसे शरीरकी शुद्धि करके दोनों हाथों और पैरोंको धोकर दन्तधावन करे ॥ ६ ॥

सूर्योदय होनेसे पहले ही दातौन करके मुँहको सोलह बार जलकी अँजलियोंसे धोये। हे देवताओ तथा ऋषियो! षष्ठी, प्रतिपदा, अमावास्या और नवमी तिथियों तथा रविवारके दिन शिवभक्तको यत्नपूर्वक दातौनको त्याग देना चाहिये ॥ ७-८ ॥

अवकाशके अनुसार नदी आदिमें जाकर अथवा घरमें ही भलीभाँति स्नान करे। मनुष्यको देश और

कालके विरुद्ध स्नान नहीं करना चाहिये॥ ९॥

रविवार, श्राद्ध, संक्रान्ति, ग्रहण, महादान, तीर्थ, उपवासदिवस अथवा अशौच प्राप्त होनेपर मनुष्य गर्म जलसे स्नान न करे। शिवभक्तिसे युक्त मनुष्य तीर्थ आदिमें प्रवाहके सम्मुख होकर स्नान करे॥ १०-११॥

जो नहानेके पहले तेल लगाना चाहे, उसे विहित एवं निषिद्ध दिनोंका विचार करके ही तैलाभ्यंग करना चाहिये। जो प्रतिदिन नियमपूर्वक तेल लगाता हो, उसके लिये किसी भी दिन तैलाभ्यंग करना दोषपूर्ण नहीं है अथवा जो तेल इत्र आदिसे वासित हो, उसका लगाना किसी भी दिन दूषित नहीं है॥ १२॥

श्राद्ध, ग्रहण, उपवास और प्रतिपदाके दिन तेल नहीं लगाना चाहिये। सरसोंका तेल ग्रहणको छोड़कर किसी भी दिन दूषित नहीं होता॥ १३॥

इस तरह देश-कालका विचार करके ही विधिपूर्वक स्नान करे। स्नानके समय अपने मुखको उत्तर अथवा पूर्वकी ओर रखना चाहिये॥ १४॥

उच्छिष्ट वस्त्र धारण करके स्नान कभी न करे। शुद्ध वस्त्र धारण करके इष्टदेवका स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिये॥ १५॥

जिस वस्त्रको दूसरेने धारण किया हो तथा जिसे स्वयं रातमें धारण किया गया हो, उससे तभी स्नान किया जा सकता है, जब उसे धो लिया गया हो॥ १६॥

इसके पश्चात् देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको तृप्ति देनेवाला तर्पण करना चाहिये। उसके बाद धुला हुआ वस्त्र पहने और आचमन करे॥ १७॥

हे श्रेष्ठ द्विजो! तदनन्तर गोबर आदिसे लीप-पोतकर स्वच्छ किये हुए शुद्ध स्थानमें जाकर वहाँ सुन्दर आसनकी व्यवस्था करे। वह आसन विशुद्ध काष्ठका बना हुआ, पूरा फैला हुआ तथा चित्रमय होना चाहिये। ऐसा आसन सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है॥ १८-१९॥

उसके ऊपर बिछानेके लिये यथायोग्य मृगचर्म आदि ग्रहण करे। शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष उस आसनपर बैठकर भस्मसे त्रिपुण्ड्र लगाये॥ २०॥

त्रिपुण्ड्रसे जप, तप तथा दान सफल होते हैं। भस्मके अभावमें त्रिपुण्ड्रका साधन जल आदि बताया गया है॥ २१॥

इस तरह त्रिपुण्ड्र करके मनुष्य रुद्राक्ष धारण करे और अपने (सन्ध्योपासना आदि) नित्यकर्मका सम्पादन करके पुनः शिवकी आराधना करे॥ २२॥

तत्पश्चात् तीन बार मन्त्रपूर्वक आचमन करे अथवा 'गंगाबिन्दुः'—ऐसा उच्चारण करते हुए एक बार आचमन करे॥ २३॥

तत्पश्चात् वहाँ शिवकी पूजाके लिये अन्न और जल लाकर रखे। दूसरी कोई भी जो वस्तु आवश्यक हो, उसे यथाशक्ति जुटाकर अपने पास रखे॥ २४॥

इस प्रकार पूजन-सामग्रीका संग्रह करके वहाँ धैर्य धारण करके जल, गन्ध और अक्षतसे युक्त एक अर्घ्यपात्र लेकर उसे दाहिने भागमें रखे, उससे उपचारकी सिद्धि होती है। फिर गुरुका स्मरण करके उनकी आज्ञा लेकर विधिवत् सकाम संकल्प करके पराभक्तिसे सपरिवार शिवका पूजन करे॥ २५—२७॥

एक मुद्रा दिखाकर सिन्दूर आदि उपचारोंद्वारा सिद्धि-बुद्धिसहित विघ्नहारी गणेशका पूजन करे। लक्ष और लाभसे युक्त गणेशजीका पूजन करके उनके नामके आदिमें प्रणव तथा अन्तमें नमः जोड़कर नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग करते हुए नमस्कार करे। यथा—**ॐ गणपतये नमः** अथवा **ॐ लक्षलाभयुताय सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमः**॥ २८-२९॥

तदनन्तर उनसे क्षमाप्रार्थना करके पुनः भाई कार्तिकेयसहित गणेशजीका पराभक्तिसे पूजन करके उन्हें बारंबार नमस्कार करे॥ ३०॥

तत्पश्चात् सदा द्वारपर खड़े रहनेवाले महोदरका पूजन करके सती-साध्वी गिरिराजनन्दिनी उमाकी पूजा करे॥ ३१॥

चन्दन, कुंकुम तथा धूप, दीप आदि अनेक उपचारों तथा नाना प्रकारके नैवेद्योंसे शिवाका पूजन करके नमस्कार करनेके पश्चात् साधक शिवजीके समीप जाय। यथासम्भव अपने घरमें मिट्टी, सोना, चाँदी, धातु या अन्य [द्रव्य] पारे आदिकी शिवप्रतिमा बनाये और उसे नमस्कार करके भक्तिपरायण होकर पूजा करे। उसकी पूजा हो जानेपर सभी देवता पूजित हो जाते हैं॥ ३२—३४½॥

मिट्टीका शिवलिंग बनाकर विधिपूर्वक उसकी स्थापना करे। अपने घरमें रहनेवाले लोगोंको स्थापना-

सम्बन्धी सभी नियमोंका सर्वथा पालन करना चाहिये। भूतशुद्धि करके प्राणप्रतिष्ठा करे॥ ३५-३६॥

शिवालयमें दिक्पालोंकी भी स्थापना करके उनकी पूजा करे। घरमें सदा मूलमन्त्रका प्रयोग करके शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ३७॥

घरमें द्वारपालोंके पूजनका सर्वथा नियम नहीं है; क्योंकि घरमें जिस शिवलिंगकी पूजा की जाती है, उसमें सभी देवता प्रतिष्ठित रहते हैं॥ ३८॥

घरपर होनेवाली शिवकी पूजाके समय अंगोंसहित तथा सपरिवार उन सदाशिवका आवाहन करके पूजन किया जाय, ऐसा कोई नियम नहीं है॥ ३९॥

भगवान् शिवके समीप ही अपने लिये आसनकी व्यवस्था करे। उस समय उत्तराभिमुख बैठकर आचमन करे॥ ४०॥

उसके बाद दोनों हाथोंका प्रक्षालन करके प्राणायाम करे। प्राणायामकालमें मनुष्यको मूलमन्त्रकी दस आवृत्तियाँ करनी चाहिये॥ ४१॥

हाथोंसे पाँच मुद्राएँ दिखाये। यह पूजाका आवश्यक अंग है। इन मुद्राओंका प्रदर्शन करके ही मनुष्य पूजाविधिका अनुसरण करे॥ ४२॥

तदनन्तर वहाँ दीप निवेदन करके गुरुको नमस्कार करे और पद्मासन या भद्रासन बाँधकर बैठे अथवा उत्तानासन या पर्यंकासनका आश्रय लेकर सुखपूर्वक बैठे और पुनः पूजनका प्रयोग करे। पुराने समयमें तो पत्थरकी बटियाकी ही श्रद्धापूर्वक पूजा करके लोग भवसागरसे पार हो जाते थे। यदि वे शुद्ध रूपमें स्वयमेव घरमें विद्यमान हैं, तो उसके लिये कोई नियमकी आवश्यकता नहीं है॥ ४३—४५॥

तत्पश्चात् अर्घ्यपात्रसे उत्तम शिवलिंगका प्रक्षालन करे। मनको भगवान् शिवसे अन्यत्र न ले जाकर पूजा-सामग्रीको अपने पास रखकर निम्नांकित मन्त्रसमूहसे महादेवजीका आवाहन करे॥ ४६$^{१}/_{२}$॥

जो कैलासके शिखरपर निवास करते हैं, पार्वतीदेवीके पति हैं, समस्त देवताओंसे उत्तम हैं, जिनके स्वरूपका शास्त्रोंमें यथावत् वर्णन किया गया है, जो निर्गुण होते हुए भी गुणरूप हैं, जिनके पाँच मुख, दस भुजाएँ और प्रत्येक मुखमण्डलमें तीन-तीन नेत्र हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभ चिह्न अंकित है, जिनके अंगकी कान्ति कर्पूरके समान गौर है, जो दिव्यरूपधारी, चन्द्रमारूपी मुकुटसे

सुशोभित तथा सिरपर जटाजूट धारण करनेवाले हैं, जो हाथीकी खाल पहनते हैं और व्याघ्रचर्म ओढ़ते हैं, जिनका स्वरूप शुभ है, जिनके अंगोंमें वासुकि आदि नाग लिपटे रहते हैं, जो पिनाक आदि आयुध धारण करते हैं, जिनके आगे आठों सिद्धियाँ निरन्तर नृत्य करती रहती हैं, भक्तसमुदाय जय-जयकार करते हुए जिनकी सेवामें लगे रहते हैं, दुस्सह तेजके कारण जिनकी ओर देखना भी कठिन है, जो देवताओंसे सेवित हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंको शरण देनेवाले हैं, जिनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ है, वेदों और शास्त्रोंने जिनकी महिमाका यथावत् गान किया है, विष्णु और ब्रह्मा भी सदा जिनकी स्तुति करते हैं तथा जो भक्तवत्सल हैं, उन परमानन्दस्वरूप शिवका मैं आवाहन करता हूँ। इस प्रकार साम्बशिवका ध्यान करके उनके लिये आसन दे॥ ४७—५३॥

चतुर्थ्यन्त पदसे ही क्रमशः सब कुछ अर्पित करे। [यथा—**साम्बाय सदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि** इत्यादि।] तत्पश्चात् भगवान् शंकरको पाद्य और अर्घ्य दे। तदनन्तर परमात्मा शम्भुको आचमन कराकर पंचामृतसम्बन्धी द्रव्योंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शंकरको स्नान कराये॥ ५४-५५॥

वेदमन्त्रों अथवा समन्त्रक चतुर्थ्यन्त नामपदोंका

उच्चारण करके भक्तिपूर्वक यथायोग्य समस्त द्रव्य भगवान्‌को अर्पित करे। अभीष्ट द्रव्यको शंकरके ऊपर चढ़ाये। फिर भगवान् शिवको जलधारासे स्नान कराये॥ ५६-५७॥

स्नानके पश्चात् उनके श्रीअंगोंमें सुगन्धित चन्दन तथा अन्य द्रव्योंका यत्नपूर्वक लेप करे। तत्पश्चात् सुगन्धित जलसे ही उनके ऊपर जलधारा गिराकर अभिषेक करे। वेदमन्त्रों, षडंगों अथवा शिवके ग्यारह नामोंद्वारा यथावकाश जलधारा चढ़ाकर वस्त्रसे शिवलिंगको अच्छी तरह पोछे॥ ५८-५९॥

तदनन्तर आचमन प्रदान करे और वस्त्र समर्पित करे। नाना प्रकारके मन्त्रोंद्वारा भगवान् शिवको तिल, जौ, गेहूँ, मूँग और उड़द अर्पित करे। फिर पाँच मुखवाले परमात्मा शिवको पुष्प चढ़ाये॥ ६०-६१॥

प्रत्येक मुखपर ध्यानके अनुसार यथोचित अभिलाषा करके कमल, शतपत्र, शंखपुष्प, कुशपुष्प, धतूर, मन्दार, द्रोणपुष्प, तुलसीदल तथा बिल्वपत्रके द्वारा पराभक्तिके साथ भक्तवत्सल भगवान् शंकरकी विशेष पूजा करे। अन्य सब वस्तुओंका अभाव होनेपर शिवको केवल बिल्वपत्र ही अर्पित करे॥ ६२—६४॥

बिल्वपत्र समर्पित होनेसे ही शिवकी पूजा सफल होती है। तत्पश्चात् सुगन्धित चूर्ण तथा सुवासित उत्तम तैल, इत्र आदि विविध वस्तुएँ बड़े हर्षके साथ भगवान् शिवको अर्पित करे। तदनन्तर प्रसन्नतापूर्वक गुग्गुल और अगुरु आदिसे धूप निवेदित करे॥ ६५-६६॥

तदनन्तर शंकरजीको घृतपूर्ण दीपक दे। इसके बाद निम्न मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुनः अर्घ्य दे और भक्तिभावसे वस्त्रद्वारा उनके मुखका मार्जन करे—'हे शंकर! आपको नमस्कार है। आप इस अर्घ्यको स्वीकार करके मुझे रूप दीजिये, यश दीजिये, सुख दीजिये तथा भोग और मोक्षका फल प्रदान कीजिये।' इसके बाद भगवान् शिवको भाँति-भाँतिके उत्तम नैवेद्य अर्पित करे॥ ६७—६९॥

इसके पश्चात् प्रेमपूर्वक शीघ्र आचमन कराये। तदनन्तर सांगोपांग ताम्बूल बनाकर शिवको समर्पित करे। इसके अनन्तर पाँच बत्तीकी आरती बनाकर भगवान्‌को दिखाये। पैरोंमें चार बार, नाभिमण्डलके सामने दो बार, मुखके समक्ष एक बार तथा सम्पूर्ण अंगोंमें सात बार आरती दिखाये। तत्पश्चात् यथोक्त ध्यान करके मन्त्रका उच्चारण करे॥ ७०—७२॥

बुद्धिमान् मनुष्यको गुरुके द्वारा बताये गये नियमके अनुसार ही मन्त्रका जप करना चाहिये। अथवा अपने ज्ञानके अनुसार जितनी संख्यामें हो सके, उतनी संख्यामें ही मन्त्रोंका विधिवत् उच्चारण करे॥ ७३-७४॥

प्रेमपूर्वक नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे वृषभध्वज शंकरकी स्तुति करे। तत्पश्चात् धीरे-धीरे शिवकी परिक्रमा करे॥ ७५॥

इसके बाद भक्त पुरुष साष्टांग प्रणाम करे और शिवकी प्रसन्नताके लिये उन परमेश्वर शंकरको इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक पुष्पांजलि दे—हे शंकर! मैंने अज्ञानसे या जान-बूझकर जो-जो पूजन आदि किया है, वह आपकी कृपासे सफल हो। हे मृड! मैं आपका हूँ, मेरे प्राण सदा आपमें लगे हुए हैं, मेरा चित्त सदा आपका ही चिन्तन करता है—ऐसा जानकर हे गौरीनाथ! हे भूतनाथ! आप मुझपर प्रसन्न होइये। हे प्रभो! धरतीपर जिनके पैर लड़खड़ा जाते हैं, उनके लिये भूमि ही सहारा है, उसी प्रकार जिन्होंने आपके प्रति अपराध किये हैं, उनके लिये भी आप ही शरणदाता हैं॥ ७६—७९१/२॥

इस प्रकार बहुविध प्रार्थना करके उत्तम विधिसे पुष्पांजलि अर्पित करनेके पश्चात् पुनः भगवान्‌को बार-बार नमस्कार करे। [तत्पश्चात् यह बोलकर विसर्जन करना चाहिये] हे देवेश! हे प्रभो! अब आप परिवारसहित अपने स्थानको जायँ। नाथ! जब पूजाका समय हो, तब पुनः आप आदरपूर्वक पधारें॥ ८०—८११/२॥

इस प्रकार भक्तवत्सल शंकरकी बारम्बार प्रार्थना करके उनका विसर्जन करे और उस जलको अपने हृदयमें लगाये तथा मस्तकपर चढ़ाये॥ ८२१/२॥

हे ऋषियो! इस तरह मैंने शिवपूजनकी सारी विधि बता दी, जो भोग और मोक्षको देनेवाली है। अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ८३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम सृष्टिखण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें शिवपूजनवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

विभिन्न पुष्पों, अन्नों तथा जलादिकी धाराओंसे शिवजीकी पूजाका माहात्म्य

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! हे व्यासशिष्य! आप सप्रमाण हमें यह बतायें कि किन-किन पुष्पोंसे पूजन करनेपर भगवान् सदाशिव कौन-कौन-सा फल प्रदान करते हैं?॥ १॥

सूतजी बोले—हे शौनकादि ऋषियो! आप आदरपूर्वक सब सुनें। मैं बड़े प्रेमसे पुष्पार्पणकी विधि बता रहा हूँ॥ २॥

देवर्षि नारदने भी इसी विधिको विधाता ब्रह्माजीसे पूछा था। तब उन्होंने बड़े ही प्रेमसे शिव-पुष्पार्पणकी विधि बतायी थी॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! लक्ष्मीप्राप्तिकी इच्छावालेको कमल, बिल्वपत्र, शतपत्र और शंखपुष्पसे भगवान् शिवकी पूजा करनी चाहिये। हे विप्र! यदि एक लाखकी संख्यामें इन पुष्पोंद्वारा भगवान् शिवकी पूजा की जाय, तो सारे पापोंका नाश होता है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥ ४-५॥

बीस कमलोंका एक प्रस्थ बताया गया है और एक सहस्र बिल्वपत्रोंका आधा प्रस्थ कहा गया है॥ ६॥

एक सहस्र शतपत्रसे आधे प्रस्थकी परिभाषा की गयी है। सोलह पलोंका एक प्रस्थ होता है और दस टंकोंका एक पल। जब इसी मानसे [पत्र, पुष्प आदिको] तुलापर रखे, तो वह सम्पूर्ण अभीष्टको प्राप्त कर लेता है और यदि निष्कामभावनासे युक्त है, तो वह [इस पूजनसे] शिवस्वरूप हो जाता है॥ ७-८॥

हे मुनीश्वरो! जो राज्य प्राप्त करनेका इच्छुक है, उसको दस करोड़ पार्थिव शिवलिंगोंकी पूजाके द्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न करना चाहिये॥ ९॥

प्रत्येक पार्थिव-लिंगपर मन्त्रसहित पुष्प, खण्डरहित धानके अक्षत और सुगन्धित चन्दन चढ़ाकर अखण्ड जलधारासे अभिषेक करना चाहिये। तदनन्तर प्रत्येक पार्थिव लिंगपर मन्त्रसहित अच्छे-अच्छे बिल्वपत्र अथवा शतपत्र और कमलपुष्प समर्पित करना चाहिये। प्राचीन ऋषियोंने कहा है कि यदि शिवलिंगपर शंखपुष्पीके फूल चढ़ाये जायँ, तो इस लोक और परलोकमें सभी कामनाओंका दिव्य फल प्राप्त होता है॥ १०—१२॥

धूप, दीप, नैवेद्य, अर्घ्य, आरती, प्रदक्षिणा, नमस्कार, क्षमाप्रार्थना और विसर्जन करके जिसने ब्राह्मणभोजन करा दिया, उसे भगवान् शंकर अवश्य ही राज्य प्रदान करते हैं। जो मनुष्य सर्वश्रेष्ठ बननेका इच्छुक है, वह [उपर्युक्त कही गयी विधिके अनुसार] उसके आधे अर्थात् पाँच करोड़ पार्थिव शिवलिंगोंका यथाविधि पूजन करे। कारागारमें पड़े मनुष्यको एक लाख पार्थिवलिंगोंसे भगवान् शंकरकी पूजा करनी चाहिये॥ १३—१५॥

यदि रोगग्रस्त हो, तो उसे उस संख्याके आधे अर्थात् पचास हजार पार्थिव लिंगोंसे शिवका पूजन करना चाहिये। कन्या चाहनेवाले मनुष्यको उसके आधे अर्थात् पच्चीस हजार पार्थिव लिंगोंसे शिवका पूजन करना चाहिये॥ १६॥

जो विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा रखता है, उसे चाहिये कि वह उसके भी आधे पार्थिव लिंगोंसे शिवकी अर्चना करे। जो वाणीका अभिलाषी हो, उसे घीसे शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ १७॥

अभिचारादि कर्मोंमें कमलपुष्पोंसे शिवपूजनका विधान है। सामन्त राजाओंपर विजय प्राप्त करनेके लिये एक करोड़ कमलपुष्पोंसे शिवका पूजन करना प्रशस्त माना गया है। राजाओंको अपने अनुकूल करनेके लिये दस लाख कमलपुष्पोंसे पूजन करनेका विधान है॥ १८-१९॥

यश प्राप्त करनेके लिये उतनी ही संख्या कही गयी है और वाहन आदिकी प्राप्तिके लिये एक हजार पार्थिव लिंगोंकी पूजा करनी चाहिये। मोक्ष चाहनेवालेको पाँच करोड़ कमलपुष्पोंसे उत्तम भक्तिके साथ शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ २०॥

ज्ञान चाहनेवाला एक करोड़ कमलपुष्पसे लोककल्याणकारी शिवका पूजन करे और शिवका दर्शन

प्राप्त करनेका इच्छुक उसके आधे कमलपुष्पसे उनकी पूजा करे। कामनाओंकी पूर्तिके लिये महामृत्युंजय मन्त्रका जप भी करना चाहिये। पाँच लाख महामृत्युंजय मन्त्रका जप करनेपर भगवान् सदाशिव निश्चित ही प्रत्यक्ष हो जाते हैं॥ २१-२२॥

एक लाखके जपसे शरीरकी शुद्धि होती है, दूसरे लाखके जपसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होता है, तीसरे लाखके जपसे सम्पूर्ण काम्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। चौथे लाखका जप होनेपर भगवान् शिवका दर्शन होता है और जब पाँचवें लाखका जप पूरा होता है, तब भगवान् शिव जपका फल नि:सन्देह प्रदान करते हैं। इसी मन्त्रका दस लाख जप हो जाय, तो सम्पूर्ण फलकी सिद्धि होती है॥ २३-२४॥

जो मोक्षकी अभिलाषा रखता है, वह एक लाख दर्भोंद्वारा शिवका पूजन करे। मुनिश्रेष्ठ! शिवकी पूजामें सर्वत्र लाखकी ही संख्या समझनी चाहिये॥ २५॥

आयुकी इच्छावाला पुरुष एक लाख दूर्वाओंद्वारा पूजन करे। जिसे पुत्रकी अभिलाषा हो, वह धतूरेके एक लाख फूलोंसे पूजा करे॥ २६॥

लाल डंठलवाला धतूरा पूजनमें शुभदायक माना गया है। अगस्त्यके फूलोंसे पूजा करनेवाले पुरुषको महान् यशकी प्राप्ति होती है॥ २७॥

यदि तुलसीदलसे शिवकी पूजा करे, तो उपासकको भोग और मोक्षका फल प्राप्त होता है। लाल और सफेद मदार, अपामार्ग और कह्लारके फूलोंद्वारा पूजा करनेसे प्रतापकी प्राप्ति होती है॥ २८॥

अड़हुलके फूलोंसे की हुई पूजा शत्रुविनाशक कही गयी है। करवीरके एक लाख फूल यदि शिवपूजनके उपयोगमें लाये जायँ, तो वे यहाँ रोगोंका उच्चाटन करनेवाले होते हैं॥ २९॥

बन्धूक [गुलदुपहरिया]-के फूलोंद्वारा [पूजन करनेसे] आभूषणकी प्राप्ति होती है। चमेलीसे शिवकी पूजा करके मनुष्य वाहनोंको उपलब्ध करता है, इसमें संशय नहीं है। अतसीके फूलोंसे महादेवजीका पूजन करनेवाला पुरुष भगवान् विष्णुका प्रिय हो जाता है॥ ३०॥

शमीपत्रोंसे [पूजा करके] मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। बेलाके फूल चढ़ानेपर भगवान् शिव अत्यन्त शुभलक्षणा पत्नी प्रदान करते हैं॥ ३१॥

जूहीके फूलोंसे पूजा की जाय, तो घरमें कभी अन्नकी कमी नहीं होती। कनेरके फूलोंसे पूजा करनेपर मनुष्योंको वस्त्र-सम्पदाकी प्राप्ति होती है॥ ३२॥

सेंदुआरि या शेफालिकाके फूलोंसे लोकमें शिवका पूजन किया जाय, तो मन निर्मल होता है। एक लाख बिल्वपत्रोंसे पूजन करनेपर मनुष्य अपनी सारी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३३॥

हरसिंगारके फूलोंसे पूजा करनेपर सुख-सम्पत्तिकी वृद्धि होती है। ऋतुमें पैदा होनेवाले फूल [यदि शिवकी पूजामें समर्पित किये जायँ, तो वे] मोक्ष देनेवाले होते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ३४॥

राईके फूल शत्रुओंके लिये अनिष्टकारी होते हैं। इन फूलोंको एक लाखकी संख्यामें शिवके ऊपर चढ़ाया जाय, तो भगवान् शिव प्रचुर फल प्रदान करते हैं॥ ३५॥

चम्पा और केवड़ेको छोड़कर अन्य कोई ऐसा फूल नहीं है, जो भगवान् शिवको प्रिय न हो, अन्य सभी पुष्पोंको समर्पित करना चाहिये॥ ३६॥

हे सत्तम! अब इसके अनन्तर शंकरके पूजनमें धान्योंका प्रमाण तथा [उनके अर्पणका] फल—यह सब प्रेमपूर्वक सुनिये॥ ३७॥

हे विप्र! महादेवके ऊपर परम भक्तिसे अखण्डित चावल चढ़ानेसे मनुष्योंकी लक्ष्मी बढ़ती है॥ ३८॥

साढ़े छः प्रस्थ और दो पलभर चावल संख्यामें एक लाख हो जाते है। ऐसा लोगोंका कहना है॥ ३९॥

रुद्रप्रधान मन्त्रसे पूजा करके भगवान् शिवके ऊपर बहुत सुन्दर वस्त्र चढ़ाये और उसीपर चावल रखकर समर्पित करे, तो उत्तम है॥ ४०॥

तत्पश्चात् उसके ऊपर गन्ध, पुष्प आदिके साथ एक श्रीफल चढ़ाकर धूप आदि निवेदन करे, तो पूजाका पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है॥ ४१॥

प्रजापति देवतासे चिह्नांकित दो चाँदीके रुपये अथवा माषसंख्यासे उपदेष्टाको दक्षिणा देनी चाहिये अथवा यथाशक्ति जितनी दक्षिणा हो सके, उतनी दक्षिणा बतायी गयी है॥ ४२॥

वहाँ शिवके समीप बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इससे मन्त्रपूर्वक सांगोपांग लक्षपूजा सम्पन्न होती है। जहाँ सौ मन्त्र जपनेकी विधि हो, वहाँ एक सौ आठ मन्त्र जपनेका विधान बताया गया है॥ ४३१/२ ॥

एक लाख पल तिलोंका अर्पण पातकोंका नाश करनेवाला होता है। ग्यारह पल (६४ माशा)-में एक लाखकी संख्यामें तिल होते हैं। [अतः इस परिमाणके अनुसार] तिलद्वारा अपने कल्याणके लिये पूर्वकी भाँति पूर्वोक्त विधिसे शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ४४-४५ ॥

इस अवसरपर मनुष्यको ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इससे महापातकजन्य दुःख निश्चित ही दूर हो जाता है॥ ४६ ॥

इसी प्रकार एक लाख यवसे भी की गयी शिवकी पूजा उत्तम कही गयी है। साढ़े आठ प्रस्थ और दो पल (साढ़े आठ सेर तेरह माशा) यव प्राचीन परिमाणके अनुसार संख्यामें एक लाख यवके बराबर होते हैं। मुनियोंने यवके द्वारा की गयी पूजाको स्वर्गका सुख प्रदान करनेवाली बताया है॥ ४७-४८ ॥

फलप्राप्तिके इच्छुक लोगोंको (यवपूजा करनेके पश्चात्) ब्राह्मणोंके लिये प्रजापति देवताके द्रव्यभूत चाँदीके रुपये भी दक्षिणारूपमें देना चाहिये। गेहूँसे भी की गयी शिवपूजा प्रशस्त है। यदि एक लाख गेहूँसे शिवकी पूजा की जाय, तो उसकी सन्ततिकी अभिवृद्धि होती है। विधानतः आधा द्रोण (आठ सेर) परिमाणमें गेहूँकी संख्या एक लाख होती है। शेष विधान विधिपूर्वक करने चाहिये॥ ४९-५० ॥

(एक लाख) मूँगसे पूजन किये जानेपर भगवान् शिव सुख देते हैं। साढ़े सात प्रस्थ और दो पल (साढ़े सात सेर तेरह माशा भर) मूँग संख्यामें एक लाख होती है—ऐसा प्राचीन लोगोंने कहा है। इसमें ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये॥ ५१-५२ ॥

प्रियंगु (काकुन)-के द्वारा धर्माध्यक्ष परमात्मा शिवकी पूजा करनेपर धर्म, अर्थ और कामकी अभिवृद्धि होती है। वह पूजा सभी सुखोंको देनेवाली है। प्राचीन लोगोंने कहा है कि एक प्रस्थमें एक लाख प्रियंगु होते हैं। इसके अनन्तर बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना बताया गया है॥ ५३-५४ ॥

राईसे की गयी शिवपूजा शत्रुविनाशक कही गयी है। बीस पल (३० माशा) भर सरसोंके एक लाख दाने हो जाते हैं। उन एक लाख सरसोंके दानोंसे की गयी शिवकी पूजा निश्चित ही शत्रुके लिये घातक होती है—ऐसा कहा गया है। अरहरकी पत्तियोंसे शिवजीको सुशोभित करके उनका पूजन करना चाहिये॥ ५५-५६ ॥

शिवकी पूजा करनेके पश्चात् एक गौ और एक बैलका दान करना चाहिये। मरीचि (काली मिर्च)-से की गयी शिवकी पूजा शत्रुका नाश करनेवाली बतायी गयी है। अरहरकी पत्तियोंसे रँग करके शिवकी पूजा करनी चाहिये। यह पूजा नाना प्रकारके सुख एवं सभी अभीष्ट फलोंको देनेवाली है॥ ५७-५८ ॥

हे मुनिसत्तम! [शिवपूजामें] इस प्रकारसे प्रयुक्त धान्योंका परिमाण तो हमने आपलोगोंको बता दिया है। हे मुनीश्वर! अब प्रेमपूर्वक एक लाख पुष्पोंका परिमाण भी सुनें॥ ५९ ॥

सूक्ष्म मानको प्रदर्शित करनेवाले व्यासजीने एक प्रस्थमें शंखपुष्पीके पुष्पोंकी संख्या एक लाख बतायी है॥ ६० ॥

ग्यारह प्रस्थमें चमेलीके फूलोंका मान एक लाख कहा गया है। इतना ही जूहीके फूलोंका मान है और उसका आधा राईके फूलोंका मान होता है॥ ६१ ॥

मल्लिका [मालती]-के लाख फूलोंका पूर्ण मान बीस प्रस्थ है। तिलके पुष्पोंका मान मल्लिकाके मानकी अपेक्षा एक प्रस्थ कम होता है॥ ६२ ॥

कनेरके पुष्पोंका मान तिलके पुष्पोंके मानका तिगुना कहा गया है। पण्डितोंने निर्गुण्डीके पुष्पोंका भी उतना ही मान बताया है॥ ६३ ॥

केवड़ा, शिरीष तथा बन्धुजीव (दुपहरिया)-के एक लाख पुष्पोंका मान दस प्रस्थके बराबर होता है॥ ६४ ॥

इस तरह अनेक प्रकारके मानको दृष्टिमें रखकर सभी कामनाओंकी सिद्धिके लिये तथा मुक्ति प्राप्त करनेके लिये कामनारहित होकर शिवकी पूजा करनी चाहिये॥ ६५ ॥

अब मैं जलधारा-पूजाके महान् फलको कह रहा हूँ, जिसके श्रवणमात्रसे ही मनुष्योंका कल्याण हो

जाता है ॥ ६६ ॥

भक्तिपूर्वक सदाशिवकी विधिवत् पूजा करनेके पश्चात् उन्हें जलधारा समर्पित करे ॥ ६७ ॥

[सन्निपातादि] ज्वरमें होनेवाले प्रलापकी शान्तिके लिये भगवान् शिवको दी जानेवाली कल्याणकारी जलधारा शतरुद्रिय मन्त्रसे, एकादश रुद्रसे, रुद्रमन्त्रोंके जपसे, पुरुषसूक्तसे, छः ऋचावाले रुद्रसूक्तसे, महामृत्युंजयमन्त्रसे, गायत्रीमन्त्रसे अथवा शिवके शास्त्रोक्त नामोंके आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः पद जोड़कर बने हुए मन्त्रोंद्वारा अर्पित करनी चाहिये ॥ ६८—७० ॥

सुख और सन्तानकी वृद्धिके लिये जलधाराद्वारा पूजन उत्तम होता है। उत्तम भस्म धारण करके उपासकको प्रेमपूर्वक नाना प्रकारके शुभ एवं दिव्य द्रव्योंद्वारा शिवकी पूजा करनी चाहिये और शिवपर उनके सहस्रनाम मन्त्रोंसे घृतकी धारा गिरानी चाहिये। ऐसा करनेपर वंशका विस्तार होता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ७१-७२ ॥

इस प्रकार यदि दस हजार मन्त्रोंद्वारा शिवजीकी पूजा की जाय तो प्रमेह रोगकी शान्ति होती है और उपासकको मनोवांछित फलकी प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई नपुंसकताको प्राप्त हो तो वह घीसे शिवजीकी भलीभाँति पूजा करे। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराये, साथ ही उसके लिये मुनीश्वरोंने प्राजापत्यव्रतका भी विधान किया है ॥ ७३ ॥

यदि बुद्धि जड़ हो जाय, तो उस अवस्थामें पूजकको केवल शर्करामिश्रित दुग्धकी धारा चढ़ानी चाहिये। ऐसा करनेपर उसकी बृहस्पतिके समान उत्तम बुद्धि हो जाती है। जबतक दस हजार मन्त्र न हो जायँ, तबतक दुग्धधाराद्वारा भगवान् शिवका पूजन करते रहना चाहिये ॥ ७४-७५ ॥

जब शरीरमें अकारण ही उच्चाटन होने लगे—जी उचट जाय, जहाँ कहीं भी प्रेम न रहे, दुःख बढ़ जाय और अपने घरमें सदा कलह होने लगे, तब पूर्वोक्त रूपसे दूधकी धारा चढ़ानेसे सारा दुःख नष्ट हो जाता है ॥ ७६-७७ ॥

शत्रुओंको सन्तप्त करनेके लिये पूर्ण प्रयत्नके साथ भगवान् शंकरके ऊपर तेलकी धारा अर्पित करनी चाहिये। ऐसा करनेपर निश्चित ही कर्मकी सिद्धि होती है ॥ ७८ ॥

सुगन्धित तेलकी धारा अर्पित करनेपर भोगोंकी वृद्धि होती है। यदि मधुकी धारासे शिवकी पूजा की जाय, तो राजयक्ष्माका रोग दूर हो जाता है। शिवजीके ऊपर ईखके रसकी धारा चढ़ायी जाय, तो वह भी सम्पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति करानेवाली होती है ॥ ७९-८० ॥

गंगाजलकी धारा तो भोग और मोक्ष दोनों फलोंको देनेवाली है। ये सब जो-जो धाराएँ बतायी गयी हैं, इन सबको मृत्युंजय मन्त्रसे चढ़ाना चाहिये, उसमें भी उक्त मन्त्रका विधानतः दस हजार जप करना चाहिये और ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये ॥ ८१-८२ ॥

हे मुनीश्वर! जो आपने पूछा था, वह सब मैंने आपको बता दिया। संसारमें सदाशिवकी यह पूजा समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ और सफल है ॥ ८३ ॥

भक्तिपूर्वक यथाविधि स्कन्द और उमाके सहित भगवान् शम्भुकी पूजा करके भक्त जो फल प्राप्त करता है, उसे जैसा सुना है, वैसा ही कह रहा हूँ ॥ ८४ ॥

वह इस लोकमें पुत्र-पौत्र आदिके साथ समस्त सुखोंका उपभोग करके अन्तमें सभी सुखोंको देनेवाले शिवलोकको जाता है ॥ ८५ ॥

वह भक्त वहाँ करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंपर गान-वाद्ययन्त्रोंसे युक्त रुद्रकन्याओंसे घिरकर बैठे हुए शिवरूपमें प्रलयपर्यन्त क्रीड़ा करता है। तदनन्तर अविनाशी परम ज्ञानको प्राप्त करके मोक्षको पा लेता है ॥ ८६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें शिवपूजनवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

सृष्टिका वर्णन

नारदजी बोले—हे महाभाग! हे विधे! हे देवश्रेष्ठ! आप धन्य हैं। आपने आज यह शिवकी परमपावनी अद्भुत कथा सुनायी॥ १॥

इसमें सदाशिवकी लिंगोत्पत्तिकी जो कथा हमने सुनी है, वह महादिव्य, कल्याणकारी और अद्भुत है; जिसके प्रभावमात्रको ही सुनकर दुःख नष्ट हो जाते हैं॥ २॥

इस कथाके पश्चात् जो हुआ, उसका माहात्म्य और उसके चरित्रका वर्णन करें। यह सृष्टि किस प्रकारसे हुई, इसका भी आप विशेष रूपसे वर्णन करें?॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—आपने यह उचित ही पूछा है। तदनन्तर जो हुआ और मैंने जैसा पहले सुना है, वैसा ही मैं संक्षेपमें कहूँगा॥ ४॥

हे विप्रेन्द्र! जब सनातनदेव शिव अपने स्वरूपमें अन्तर्धान हो गये, तब मैंने और भगवान् विष्णुने महान् सुखकी अनुभूति की॥ ५॥

तदनन्तर हम दोनों—ब्रह्मा और विष्णुने अपने-अपने हंस और वाराहरूपका परित्याग किया। सृष्टि-संरचना और उसके पालनकी इच्छासे हमदोनों उस शिवकी मायाके दोनों प्रकारोंसे घिर गये॥ ६॥

नारदजी बोले—हे विधे! हे महाप्राज्ञ ब्रह्मन्! मेरे हृदयमें महान् सन्देह है। अतुलनीय कृपा करके शीघ्र ही उसको नष्ट करें॥ ७॥

अन्य रूपोंको छोड़कर आप दोनोंने हंस और वाराहका ही रूप क्यों धारण किया, इसका क्या कारण है? बताइये॥ ८॥

सूतजी बोले—महात्मा नारदजीका यह वचन सुनकर ब्रह्माने शिवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके आदरपूर्वक यह कहना प्रारम्भ किया॥ ९॥

ब्रह्माजी बोले—हंसकी निश्चल गति ऊपरकी ओर गमन करनेमें ही होती है। जल और दूधको पृथक्-पृथक् करनेके समान तत्त्व और अतत्त्वको भी जाननेमें वह समर्थ होता है॥ १०॥

अज्ञान एवं ज्ञानके तत्त्वका विवेचन हंस ही कर सकता है। इसलिये सृष्टिकर्ता मुझ ब्रह्माने हंसका रूप धारण किया॥ ११॥

हे नारद! प्रकाश-स्वरूप शिवतत्त्वका विवेक वह हंसरूप प्राप्त न कर सका, अतः उसे छोड़ देना पड़ा॥ १२॥

सृष्टिसंरचनाके लिये तत्पर प्रवृत्तिको ज्ञानकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? जब हंसरूपमें मैं नहीं जान सका, तो मैंने उस रूपको छोड़ दिया॥ १३॥

नीचेकी ओर जानेमें वाराहकी निश्चल गति होती है, इसलिये विष्णुने उस सदाशिवके अद्भुत लिंगके मूलभागमें पहुँचनेकी इच्छासे वाराहका ही रूप धारण किया॥ १४॥

अथवा संसारका पालन करनेवाले विष्णुने जगत्में वाराहकल्पको बनानेके लिये उस रूपको धारण किया॥ १५॥

जिस दिन भगवान्ने उस रूपको धारण किया, उसी दिनसे वह [श्वेत] वाराह-संज्ञक-कल्प प्रारम्भ हुआ था॥ १६॥

अथवा उन महेश्वरकी जब यह इच्छा हुई कि विवादमें फँसे हम दोनोंके द्वारा हंस और वाराहका रूप धारण किया जाय, उसी दिनसे उस वाराह नामके कल्पका भी प्रादुर्भाव हुआ॥ १७॥

हे नारद! सुनिये। मैंने इस प्रकारसे तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर प्रस्तुत कर दिया है। हे मुने! अब सदाशिवके चरणकमलका स्मरण करके मैं सृष्टिसृजनकी विधि बता रहा हूँ॥ १८॥

[ब्रह्माजी बोले—हे मुने!] जब महादेवजी अन्तर्धान हो गये, तब मैं उनकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ध्यानमग्न हो कर्तव्यका विचार करने लगा॥ १९॥

उस समय भगवान् शंकरको नमस्कार करके श्रीहरिसे ज्ञान पाकर, परमानन्दको प्राप्त होकर मैंने सृष्टि करनेका ही निश्चय किया। हे तात! भगवान् विष्णु भी वहाँ सदाशिवको प्रणाम करके मुझे उपदेश देकर तत्काल अदृश्य हो गये॥ २०-२१॥

वे ब्रह्माण्डसे बाहर जाकर भगवान् शिवकी कृपा प्राप्त करके वैकुण्ठधाममें पहुँचकर सदा वहीं रहने लगे॥ २२॥

मैंने सृष्टिकी इच्छासे भगवान् शिव और विष्णुका स्मरण करके पहलेके रचे हुए जलमें अपनी अंजलि डालकर जलको ऊपरकी ओर उछाला॥ २३॥

इससे वहाँ चौबीस तत्त्वोंवाला एक अण्ड प्रकट हुआ। हे विप्र! उस जलरूप अण्डको मैं देख भी न सका, इतनेमें वह विराट् आकारवाला हो गया॥ २४॥

[उसमें चेतनता न देखकर] मुझे बड़ा संशय हुआ और मैं अत्यन्त कठोर तप करने लगा। बारह वर्षोंतक मैं भगवान् विष्णुके चिन्तनमें लगा रहा॥ २५॥

हे तात! उस समयके पूर्ण होनेपर भगवान् श्रीहरि स्वयं प्रकट हुए और बड़े प्रेमसे मेरे अंगोंका स्पर्श करते हुए मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे— ॥ २६॥

विष्णु बोले—हे ब्रह्मन्! आप वर माँगिये। मैं प्रसन्न हूँ। मुझे आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। भगवान् शिवकी कृपासे मैं सब कुछ देनेमें समर्थ हूँ॥ २७॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! आपने जो मुझपर कृपा की है, वह सर्वथा उचित ही है; क्योंकि भगवान् शंकरने मुझे आपके हाथोंमें सौंप दिया था। हे विष्णो! आपको नमस्कार है, आज मैं आपसे जो कुछ माँगता हूँ, उसे दीजिये॥ २८॥

हे प्रभो! यह विराट्‌रूप तथा चौबीस तत्त्वोंसे बना हुआ अण्ड किसी तरह चेतन नहीं हो रहा है, यह जड़ीभूत दिखायी देता है॥ २९॥

हे हरे! इस समय भगवान् शिवकी कृपासे आप यहाँ प्रकट हुए हैं। अत: शंकरकी शक्तिसे सम्भूत इस अण्डमें चेतनता लाइये॥ ३०॥

मेरे ऐसा कहनेपर शिवकी आज्ञामें तत्पर रहनेवाले महाविष्णुने अनन्तरूपका आश्रय लेकर उस अण्डमें प्रवेश किया॥ ३१॥

उस समय उन परमपुरुषके सहस्रों मस्तक, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पैर थे। उन्होंने भूमिको सब ओरसे घेरकर उस अण्डको व्याप्त कर लिया॥ ३२॥

मेरे द्वारा भलीभाँति स्तुति किये जानेपर जब श्रीविष्णुने उस अण्डमें प्रवेश किया, तब वह चौबीस तत्त्वोंवाला अण्ड सचेतन हो गया॥ ३३॥

पातालसे लेकर सत्यलोकतककी अवधिवाले उस अण्डके रूपमें वहाँ विराट् श्रीहरि ही विराज रहे थे॥ ३४॥

पंचमुख महादेवने केवल अपने रहनेके लिये सुरम्य कैलास-नगरका निर्माण किया, जो सब लोकोंसे ऊपर सुशोभित होता है॥ ३५॥

हे देवर्षे! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका नाश हो जानेपर भी वैकुण्ठ और कैलास—उन दोनोंका कभी नाश नहीं होता॥ ३६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं सत्यलोकका आश्रय लेकर रहता हूँ। हे तात! महादेवजीकी आज्ञासे ही मुझमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है॥ ३७॥

हे तात! जब मैं सृष्टिकी इच्छासे चिन्तन करने लगा, उस समय पहले मुझसे पापपूर्ण तमोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे अविद्यापंचक (पंचपर्वा अविद्या) कहते हैं॥ ३८॥

उसके पश्चात् प्रसन्नचित्त मैंने स्थावरसंज्ञक मुख्य सर्ग (पहले सर्ग)-की संरचना की, जो सृष्टि-सामर्थ्यसे रहित था, पुन: शिवकी आज्ञासे मैंने ध्यान किया॥ ३९॥

उस मुख्य सर्गको वैसा देखकर अपना कार्य साधनेके लिये सृष्टि करनेके इच्छुक मैंने दु:खसे परिपूर्ण तिर्यक्स्रोत [तिरछे उड़नेवाले] सर्ग (दूसरे सर्ग)-का सृजन किया, वह भी पुरुषार्थसाधक नहीं था॥ ४०॥

उसे भी पुरुषार्थसाधनकी शक्तिसे रहित जानकर जब मैं पुन: सृष्टिका चिन्तन करने लगा, तब मुझसे शीघ्र ही (तीसरे) सात्त्विक सर्गका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे ऊर्ध्वस्रोता कहते हैं॥ ४१॥

यह देवसर्गके नामसे विख्यात हुआ। यह देवसर्ग सत्यवादी तथा अत्यन्त सुखदायक है। उसे भी पुरुषार्थसाधनसे रहित मानकर मैंने अन्य सर्गके लिये अपने स्वामी श्रीशिवका चिन्तन आरम्भ किया॥ ४२॥

तब भगवान् शंकरकी आज्ञासे एक रजोगुणी सृष्टिका प्रादुर्भाव हुआ, जिसे अर्वाक्स्रोता (चौथा सर्ग) कहा गया है, जो मनुष्य-सर्ग कहलाता है, वह सर्ग पुरुषार्थसाधनका अधिकारी हुआ॥ ४३॥

तदनन्तर महादेवजीकी आज्ञासे भूत आदिकी सृष्टि [भूतसर्ग—पाँचवाँ सर्ग] हुई। इस प्रकार मैंने पाँच प्रकारकी सृष्टि की॥ ४४॥

इनके अतिरिक्त तीन प्रकारके सर्ग मुझ ब्रह्मा और प्रकृतिके सान्निध्यसे उत्पन्न हुए। इनमें पहला महत्तत्त्वका सर्ग है, दूसरा सूक्ष्म भूतों अर्थात् तन्मात्राओंका सर्ग और तीसरा वैकारिक सर्ग कहलाता है। इस तरह ये तीन प्राकृत सर्ग हैं। प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकारके सर्गोंको मिलानेसे आठ सर्ग होते हैं॥ ४५-४६ ॥

इनके अतिरिक्त नौवाँ कौमारसर्ग है, जो प्राकृत और वैकृत भी है। इन सबके अवान्तर भेद हैं, जिनका वर्णन मैं नहीं कर सकता। उसका उपयोग बहुत थोड़ा है। अब मैं द्विजात्मक सर्गका वर्णन कह रहा हूँ। इसीका दूसरा नाम कौमारसर्ग है, जिसमें सनक-सनन्दन आदि कुमारोंकी महान् सृष्टि हुई है॥ ४७-४८ ॥

सनक आदि मेरे पाँच* मानसपुत्र हैं, जो मुझ ब्रह्माके ही समान हैं। वे महान् वैराग्यसे सम्पन्न तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हुए॥ ४९ ॥

उनका मन सदा भगवान् शिवके चिन्तनमें ही लगा रहता है। वे संसारसे विमुख एवं ज्ञानी हैं। उन्होंने मेरे आदेश देनेपर भी सृष्टिके कार्यमें मन नहीं लगाया॥ ५० ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सनकादि कुमारोंके दिये हुए नकारात्मक उत्तरको सुनकर मैंने बड़ा भयंकर क्रोध प्रकट किया। किंतु हे नारद! मुझे मोह हो गया॥ ५१ ॥

हे मुने! क्रोध और मोहसे विह्वल मुझ ब्रह्माके नेत्रोंसे क्रोधवश आँसूकी बूँदें गिरने लगीं॥ ५२ ॥

उस अवसरपर मैंने मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण किया। वे शीघ्र ही आ गये और समझाते हुए मुझसे कहने लगे— ॥ ५३ ॥

आप भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तपस्या कीजिये। हे मुनिश्रेष्ठ! श्रीहरिने जब मुझे ऐसी शिक्षा दी, तब मैं महाघोर एवं उत्कृष्ट तप करने लगा॥ ५४ ॥

सृष्टिके लिये तपस्या करते हुए मेरी दोनों भौंहों और नासिकाके मध्यभागसे जो उनका अपना ही अविमुक्त नामक स्थान है, महेश्वरकी तीन मूर्तियोंमें अन्यतम, पूर्णांश, सर्वेश्वर एवं दयासागर भगवान् शिव अर्धनारीश्वररूपमें प्रकट हुए॥ ५५-५६ ॥

जो जन्मसे रहित, तेजकी राशि, सर्वज्ञ तथा सर्वकर्ता हैं, उन नीललोहित-नामधारी भगवान् उमावल्लभको सामने देखकर बड़ी भक्तिसे मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति करके मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और उन देवदेवेश्वरसे बोला—हे प्रभो! आप विविध जीवोंकी सृष्टि करें॥ ५७-५८ ॥

मेरी यह बात सुनकर उन देवाधिदेव महेश्वर रुद्रने अपने ही समान बहुत-से रुद्रगणोंकी सृष्टि की॥ ५९ ॥

तब मैंने स्वामी महेश्वर महारुद्रसे फिर कहा—हे

* सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार तथा सनत्सुजात।

देव! आप ऐसे जीवोंकी सृष्टि करें, जो जन्म और मृत्युके भयसे युक्त हों ॥ ६० ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मेरी ऐसी बात सुनकर करुणासागर महादेवजी हँसकर मुझसे कहने लगे— ॥ ६१ ॥

महादेवजी बोले—विधे! मैं जन्म और मृत्युके भयसे युक्त अशोभन जीवोंकी सृष्टि नहीं करूँगा; क्योंकि वे कर्मोंके अधीन होकर दुःखके समुद्रमें डूबे रहेंगे ॥ ६२ ॥

मैं तो गुरुका स्वरूप धारण करके उत्तम ज्ञान प्रदानकर दुःखके सागरमें डूबे हुए उन जीवोंका उद्धारमात्र करूँगा, उन्हें पार करूँगा ॥ ६३ ॥

हे प्रजापते! दुःखमें डूबे हुए समस्त जीवोंकी सृष्टि तो आप करें। मेरी आज्ञासे इस कार्यमें प्रवृत्त होनेके कारण आपको माया नहीं बाँध सकेगी ॥ ६४ ॥

ब्रह्माजी बोले—मुझसे ऐसा कहकर श्रीमान् भगवान् नीललोहित महादेव मेरे देखते-ही-देखते अपने पार्षदोंके साथ तत्काल अन्तर्धान हो गये ॥ ६५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टिके उपक्रममें रुद्रावताराविर्भाववर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीकी सन्तानोंका वर्णन तथा सती और शिवकी महत्ताका प्रतिपादन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तदनन्तर मैंने शब्द आदि सूक्ष्मभूतोंका स्वयं ही पंचीकरण करके उनसे स्थूल आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवीकी सृष्टि की। पर्वतों, समुद्रों, वृक्षों और कलासे लेकर युगपर्यन्त कालोंकी रचना की ॥ १-२ ॥

मुने! उत्पत्ति और विनाशवाले और भी बहुतसे पदार्थोंका मैंने निर्माण किया, परंतु इससे मुझे सन्तोष नहीं हुआ। तब साम्बशिवका ध्यान करके मैंने साधनापरायण पुरुषोंकी सृष्टि की ॥ ३ ॥

अपने दोनों नेत्रोंसे मरीचिको, हृदयसे भृगुको, सिरसे अंगिराको, व्यानवायुसे मुनिश्रेष्ठ पुलहको, उदानवायुसे पुलस्त्यको, समानवायुसे वसिष्ठको, अपानसे क्रतुको, दोनों कानोंसे अत्रिको, प्राणवायुसे दक्षको, गोदसे आपको तथा छायासे कर्दम मुनिको उत्पन्न किया और संकल्पसे समस्त साधनोंके साधनरूप धर्मको उत्पन्न किया ॥ ४—६ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार महादेवजीकी कृपासे इन उत्तम साधकोंकी सृष्टि करके मैंने अपने-आपको कृतार्थ समझा ॥ ७ ॥

हे तात! तत्पश्चात् संकल्पसे उत्पन्न हुआ धर्म मेरी आज्ञासे मानवरूप धारण करके उत्तम साधकोंके द्वारा आगे प्रवर्तित हुआ ॥ ८ ॥

हे मुने! इसके बाद मैंने अपने विभिन्न अंगोंसे देवता, असुर आदि असंख्य पुत्रोंकी सृष्टि की और उन्हें भिन्न-भिन्न शरीर प्रदान किया ॥ ९ ॥

हे मुने! तदनन्तर अन्तर्यामी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त करके मैं दो रूपोंवाला हो गया ॥ १० ॥

हे नारद! आधे शरीरसे मैं स्त्री हो गया और आधेसे पुरुष। उस पुरुषने उस स्त्रीके गर्भसे सर्वसाधनसमर्थ उत्तम जोड़ेको उत्पन्न किया ॥ ११ ॥

उस जोड़ेमें जो पुरुष था, वही स्वायम्भुव मनुके

नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्वायम्भुव मनु उच्चकोटिके साधक हुए तथा जो स्त्री थी, वह शतरूपा कहलायी। वह योगिनी एवं तपस्विनी हुई॥ १२॥

हे तात! मनुने वैवाहिक विधिसे अत्यन्त सुन्दरी शतरूपाका पाणिग्रहण किया और उससे वे मैथुनजनित सृष्टि उत्पन्न करने लगे॥ १३॥

उन्होंने शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं। कन्याओंके नाम थे—आकूति, देवहूति और प्रसूति। मनुने आकूतिका विवाह प्रजापति रुचिके साथ किया, मझली पुत्री देवहूति कर्दमको ब्याह दी और उत्तानपादकी सबसे छोटी बहन प्रसूति प्रजापति दक्षको दे दी। उनमें प्रसूतिकी सन्तानोंसे समस्त चराचर जगत् व्याप्त है॥ १४—१६॥

रुचिके द्वारा आकूतिके गर्भसे यज्ञ और दक्षिणा नामक स्त्री-पुरुषका जोड़ा उत्पन्न हुआ। यज्ञसे दक्षिणाके गर्भसे बारह पुत्र हुए॥ १७॥

हे मुने! कर्दमद्वारा देवहूतिके गर्भसे बहुत-सी पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। दक्षसे चौबीस कन्याएँ हुईं॥ १८॥

दक्षने उनमेंसे श्रद्धा आदि तेरह कन्याओंका विवाह धर्मके साथ कर दिया। हे मुनीश्वर! धर्मकी उन पत्नियोंके नाम सुनिये॥ १९॥

श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वसु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति—ये सब तेरह हैं॥ २०॥

इनसे छोटी शेष ग्यारह सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याएँ ख्याति, सत्पथा, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा थीं। भृगु, भव, मरीचि, मुनि अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, मुनिश्रेष्ठ क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, वह्नि और पितरोंने क्रमशः इन ख्याति आदि कन्याओंका पाणिग्रहण किया। भृगु आदि मुनि श्रेष्ठ साधक हैं। इनकी सन्तानोंसे समस्त त्रैलोक्य भरा हुआ है॥ २१—२४॥

इस प्रकार अम्बिकापति महादेवजीकी आज्ञासे प्राणियोंके अपने पूर्वकर्मोंके अनुसार असंख्य श्रेष्ठ द्विज उत्पन्न हुए॥ २५॥

कल्पभेदसे दक्षकी साठ कन्याएँ बतायी गयी हैं। दक्षने उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको और तेरह कन्याएँ कश्यपको विधिपूर्वक प्रदान कर दी। हे नारद! उन्होंने चार कन्याओंका विवाह श्रेष्ठ रूपवाले तार्क्ष्यके साथ कर दिया। उन्होंने भृगु, अंगिरा और कृशाश्वको दो-दो कन्याएँ अर्पित कीं। उन-उन स्त्रियों तथा पुरुषोंसे बहुत-सी चराचर सृष्टि हुई॥ २६—२८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! दक्षने महात्मा कश्यपको जिन तेरह कन्याओंका विधिपूर्वक दान किया था, उनकी सन्तानोंसे सारा त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। स्थावर और जंगम कोई भी सृष्टि ऐसी नहीं, जो उनकी सन्तानोंसे शून्य हो॥ २९-३०॥

देवता, ऋषि, दैत्य, वृक्ष, पक्षी, पर्वत तथा तृण-लता आदि सभी [कश्यपपत्नियोंसे] पैदा हुए। इस प्रकार दक्ष-कन्याओंकी सन्तानोंसे सारा चराचर जगत् व्याप्त हो गया। पातालसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड निश्चय ही [उनकी सन्तानोंसे] सदा भरा रहता है, कभी रिक्त नहीं होता। इस प्रकार भगवान् शंकरकी आज्ञासे ब्रह्माजीने भलीभाँति सृष्टि की॥ ३१—३३॥

पूर्वकालमें सर्वव्यापी शम्भुने जिन्हें तपस्याके लिये प्रकट किया था, रुद्रदेवके रूपमें उन्होंने त्रिशूलके अग्रभागपर रखकर उनकी सदा रक्षा की। वे ही सती देवी लोकहितका कार्य सम्पादित करनेके लिये दक्षसे प्रकट हुईं। उन्होंने भक्तोंके उद्धारके लिये अनेक लीलाएँ कीं॥ ३४-३५॥

जिनका वामांग वैकुण्ठ विष्णु हैं, दक्षिणभाग स्वयं मैं हूँ और रुद्र जिनके हृदयसे उत्पन्न हैं, उन शिवजीको तीन प्रकारका कहा गया है॥ ३६॥

मैं ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों गुणोंसे युक्त कहे गये हैं, किंतु परब्रह्म, अव्यय शिव स्वयं सदा निर्गुण ही रहते हैं। विष्णु सत्त्वगुण, मैं रजोगुण और रुद्र तमोगुणवाले कहे गये हैं। लोकाचारमें ऐसा व्यवहार नामके कारण किया जाता है, किंतु वस्तुतत्त्व इससे सर्वथा भिन्न है॥ ३७-३८॥

विष्णु अन्तःकरणसे तमोगुण और बाहरसे सत्त्वगुणसे युक्त माने गये हैं। रुद्र अन्तःकरणसे सत्त्वगुण और बाहरसे तमोगुणवाले हैं और हे मुने! मैं सर्वथा रजोगुणवाला ही हूँ॥ ३९॥

ऐसे ही सुरादेवी रजोगुणी हैं, वे सतीदेवी सत्त्वस्वरूपा हैं और लक्ष्मी तमोमयी हैं, इस प्रकार पराम्बाको भी तीन रूपोंवाली जानना चाहिये॥ ४०॥

इस प्रकार देवी शिवा ही सती होकर भगवान् शंकरसे ब्याही गयीं, किंतु पिताके यज्ञमें पतिके अपमानके कारण उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया और फिर उसे ग्रहण नहीं किया। वे अपने परमपदको प्राप्त हो गयीं॥ ४१॥

तत्पश्चात् देवताओंकी प्रार्थनासे वे ही शिवा पार्वतीरूपसे प्रकट हुईं और बड़ी भारी तपस्या करके उन्होंने पुनः भगवान् शिवको प्राप्त कर लिया॥ ४२॥

हे मुनीश्वर! [इस जगत्में] उनके अनेक नाम प्रसिद्ध हुए। उनके कालिका, चण्डिका, भद्रा, चामुण्डा, विजया, जया, जयन्ती, भद्रकाली, दुर्गा, भगवती, कामाख्या, कामदा, अम्बा, मृडानी और सर्वमंगला आदि अनेक नाम हैं, जो भोग और मोक्ष देनेवाले हैं। ये नाम उनके गुण और कर्मोंके अनुसार हैं, इनमें भी पार्वती नाम प्रधान है॥ ४३—४५॥

इस प्रकार गुणमयी तीनों देवियों और गुणमय तीनों देवताओंने मिलकर सृष्टिके उत्तम कार्यको निष्पन्न किया। मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे सृष्टिक्रमका वर्णन किया है। ब्रह्माण्डका यह सारा भाग भगवान् शिवकी आज्ञासे मेरे द्वारा रचा गया है॥ ४६-४७॥

भगवान् शिवको परब्रह्म कहा गया है। मैं, विष्णु और रुद्र—ये तीनों देवता गुणभेदसे उन्हींके रूप हैं॥ ४८॥

निर्गुण तथा सगुणरूपवाले वे स्वतन्त्र परमात्मा मनोरम शिवलोकमें शिवाके साथ स्वच्छन्द विहार करते हैं। उनके पूर्णावतार रुद्र ही साक्षात् शिव कहे गये हैं। उन्हीं पंचमुख शिवने कैलासपर अपना रमणीक भवन बना रखा है। [प्रलयकालमें] ब्रह्माण्डका नाश होनेपर भी उसका नाश कभी नहीं होता॥ ४९-५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपक्रममें सृष्टिवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

यज्ञदत्तके पुत्र गुणनिधिका चरित्र

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर नारदजीने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम करके पुनः पूछा—॥ १॥

नारदजी बोले—भक्तवत्सल भगवान् शंकर कैलासपर्वतपर कब गये और महात्मा कुबेरके साथ उनकी मैत्री कब हुई॥ २॥

परिपूर्ण मंगलविग्रह महादेवजीने वहाँ क्या किया? यह सब मुझे बताइये। [इसे सुननेके लिये] मुझे बड़ी उत्सुकता है॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मैं चन्द्रमौलि भगवान् शंकरके चरित्रका वर्णन करता हूँ। वे जिस प्रकार कैलास पर्वतपर गये और कुबेरकी उनके साथ मैत्री हुई, यह सब सुनिये॥ ४॥

काम्पिल्यनगरमें सोमयाग करनेवाले कुलमें उत्पन्न यज्ञविद्याविशारद यज्ञदत्त नामका एक दीक्षित ब्राह्मण था। वह वेदवेदांगका ज्ञाता, प्रबुद्ध, वेदान्तादिमें दक्ष, अनेक राजाओंसे सम्मानित, परम उदार और यशस्वी था॥ ५-६॥

वह अग्निहोत्र आदि कर्मोंमें सदैव संलग्न रहनेवाला, वेदाध्ययनपरायण, सुन्दर, रमणीय अंगोंवाला तथा चन्द्रबिम्बके समान आकृतिवाला था॥ ७॥

इस दीक्षित ब्राह्मणके गुणनिधि नामक एक पुत्र था, उपनयन-संस्कार हो जानेके बाद उसने आठ विद्याओंका भलीभाँति अध्ययन किया, किंतु पिताके अनजानमें वह द्यूतकर्ममें प्रवृत्त हो गया॥ ८॥

उसने अपनी माताके पाससे बहुत-सा धन ले-लेकर जुआरियोंको सौंप दिया और उनसे मित्रता कर ली॥ ९॥

वह ब्राह्मणके लिये अपेक्षित आचार-विचारसे रहित, सन्ध्या-स्नान आदि कर्मोंसे पराङ्मुख, वेदशास्त्र आदिका निन्दक, देवताओं और ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला और स्मार्ताचार-विचारसे रहित होकर गाने-बजानेमें आनन्द लेने लगा। उसने नटों, पाखण्डियों तथा भाण्डोंसे प्रेमसम्बन्ध स्थापित कर लिया॥ १०-११॥

माताके द्वारा प्रेरित किये जानेपर भी वह पिताके समीप कभी भी नहीं गया। घरके अन्य कर्मोंमें व्यस्त

वह दीक्षित ब्राह्मण जब-जब अपनी दीक्षित पत्नीसे पूछता कि हे कल्याणि! घरमें मुझे पुत्र गुणनिधि नहीं दिखायी पड़ रहा है, वह क्या कर रहा है?॥ १२-१३॥

वह तब-तब यही कहती कि वह इस समय स्नान करके तथा देवताओंकी पूजा करके बाहर गया है। अभीतक पढ़कर वह अपने दो-तीन मित्रोंके साथ पढ़नेके लिये गया हुआ है। इस प्रकार उस गुणनिधिकी एकपुत्रा माता सदैव दीक्षितको धोखा देती रही॥ १४-१५॥

वह दीक्षित ब्राह्मण उस पुत्रके कर्म और आचरणको कुछ भी नहीं जान पाता था, सोलहवें वर्षमें उसने उसके केशान्त कर्म आदि सब संस्कार भी कर दिये॥ १६॥

इसके पश्चात् उस दीक्षित यज्ञदत्तने गृह्यसूत्रमें कहे गये विधानके अनुसार अपने उस पुत्रका पाणिग्रहण संस्कार भी कर दिया॥ १७॥

हे नारद! स्नेहसे आर्द्र हृदयवाली उसकी माता पासमें बैठाकर मृदु भाषामें उस पुत्र गुणनिधिको प्रतिदिन समझाती थी कि हे पुत्र! तुम्हारे महात्मा पिता अत्यन्त क्रोधी स्वभाववाले हैं। यदि वे तुम्हारे आचरणको जान जायँगे, तो तुमको और मुझको भी मारेंगे॥ १८-१९॥

तुम्हारे पिताके सामने मैं तुम्हारी इस बुराईको नित्य छिपा देती हूँ। तुम्हारे पिताकी समाजमें प्रतिष्ठा सदाचारसे ही है, धनसे नहीं। हे पुत्र! ब्राह्मणोंका धन तो उत्तम विद्या और सज्जनोंका संसर्ग है। तुम प्रसन्नमन होकर अपनी रुचि उनमें क्यों नहीं लगा रहे हो॥ २०-२१॥

तुम्हारे पितामह आदि पूर्वज सुयोग्य, श्रोत्रिय, वेदविद्यामें पारंगत विद्वान्, दीक्षित, सोमयाज्ञिक ब्राह्मण हैं—ऐसी लोकप्रसिद्धिको प्राप्त किये थे॥ २२॥

अतः तुम दुष्टोंकी संगति छोड़कर साधुओंकी संगतिमें तत्पर होओ, सद्विद्याओंमें मन लगाओ और ब्राह्मणोचित सदाचारका पालन करो॥ २३॥

तुम रूपसे पिताके अनुरूप ही हो। यश, कुल और शीलसे भी उनके अनुरूप बनो। इन कर्मोंसे तुम लज्जित क्यों नहीं होते हो? अपने बुरे आचरणोंको छोड़ दो॥ २४॥

तुम उन्नीस वर्षके हो गये हो और यह [तुम्हारी पत्नी] सोलह वर्षकी है। इस सदाचारिणीका वरण करो अर्थात् इससे मधुर सम्बन्ध स्थापित करो और पिताकी भक्तिमें तत्पर हो जाओ॥ २५॥

तुम्हारे श्वसुर भी अपने गुण और शीलके कारण सर्वत्र पूजे जाते हैं। हे पुत्र! [उन्हें देखकर और उनकी प्रशस्तिको सुनकर भी] तुम्हें लज्जा नहीं आती है, अपनी बुरी आदतोंको छोड़ दो॥ २६॥

हे पुत्र! तुम्हारे सभी मामा भी विद्या, शील तथा कुल आदिसे अतुलनीय हैं। तुम उनसे भी नहीं डरते। तुम तो दोनों वंशोंसे शुद्ध हो॥ २७॥

तुम इन पड़ोसी ब्राह्मणकुमारोंको देखो और अपने घरमें ही अपने पिताके इन विनयशील शिष्योंको ही देखो॥ २८॥

हे पुत्र! राजा भी जब तुम्हारे इस दुष्टाचरणको सुनेंगे, तो तुम्हारे पिताके प्रति अपनी श्रद्धा त्यागकर उनकी वृत्ति भी समाप्त कर देंगे॥ २९॥

अभी तो लोग यह कह रहे हैं कि यह लड़कपनकी दुश्चेष्टा है। इसके पश्चात् वे प्राप्त हुई प्रतिष्ठित दीक्षितकी उपाधि भी छीन लेंगे॥ ३०॥

सभी लोग तुम्हारे पिताको और मुझको भी दुष्ट वचनोंसे धिक्कारेंगे और कहेंगे कि इसकी माता दुश्चरित्रा है; क्योंकि माताके चरित्रको ही पुत्र धारण करता है॥ ३१॥

तुम्हारे पिता पापी नहीं हैं, वे तो श्रुति-स्मृतियोंके पथपर अनुगमन करनेवाले हैं। उन्हींके चरणोंमें मेरा मन लगा रहता है, जिसके साक्षी भगवान् सदाशिव हैं॥ ३२॥

मैंने ऋतुसमयमें किसी दुष्टका मुख भी नहीं देखा [जिसका तुम्हारे ऊपर प्रभाव पड़ गया हो]। अरे वह विधाता ही बलवान् है, जिसके कारण तुम्हारे-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ है॥ ३३॥

माताके द्वारा इस प्रकार हर समय समझाये जानेपर भी उस अत्यन्त दुष्ट बुद्धिवालेने अपने उस दुष्कर्मका परित्याग नहीं किया; क्योंकि व्यसन-प्राप्त प्राणी दुर्बोध होता है। मृगया (शिकार), मद्य, पैशुन्य (चुगली), असत्यभाषण, चोरी, द्यूत और वेश्यागमन आदि—इन व्यसनोंसे कौन खण्डित नहीं हो जाता है॥ ३४-३५॥

वह दुष्ट जो-जो सन्दूक, वस्त्र आदि वस्तुओंको घरमें देखता, उन-उन वस्तुओंको ले जाकर जुआरियोंको सौंप देता था। एक बार घरमें पिताके हाथकी एक रत्नजटित अँगूठी रखी थी, उसे चुरा करके उसने किसी

जुआरीके हाथमें दे दिया॥ ३६-३७॥

संयोगसे दीक्षितने किसी जुआरीके हाथमें उस अँगूठीको देख लिया और उससे पूछा कि तुम्हें यह अँगूठी कहाँसे प्राप्त हुई है?॥ ३८॥

उस दीक्षितके द्वारा बार-बार कठोरतासे पूछे जानेपर उस जुआरीने कहा—हे ब्राह्मण! आप जोर-जोरसे मुझपर क्यों आक्षेप कर रहे हैं? क्या मैंने इसे चोरीसे प्राप्त किया है? आपके पुत्रने ही मुद्रा लेकर इसको मुझे दिया है। इसके पहले भी मेरे द्वारा जुएमें जीत लिये जानेपर उसने अपनी माताकी साड़ी भी चुराकर मुझे दी है॥ ३९-४०॥

उसने मात्र मुझको ही यह अँगूठी नहीं दी है, अपितु अन्य जुआरियोंको भी उसने बहुत-सा धन दिया है॥ ४१॥

रत्नोंकी सन्दूक, रेशमी वस्त्र, सोनेकी झारी आदि वस्तुएँ, अच्छे-अच्छे काँसे और ताँबेके पात्र भी उसने दिये हैं॥ ४२॥

जुआरी लोग उसे प्रतिदिन नग्न करके बाँधते रहते हैं। इस भूमण्डलपर उसके समान कोई दूसरा जुआरी नहीं है। हे विप्र! आजतक आप जुआरियोंमें अग्रणी और अविनय तथा अनीतिमें प्रवीण अपने पुत्रको क्यों जान नहीं सके?॥ ४३-४४॥

ऐसा सुनकर लज्जाके भारसे उस ब्राह्मणका सिर झुक गया और अपने सिरको वस्त्रसे ढँककर वह अपने घर चला आया॥ ४५॥

तदनन्तर वह श्रौतकर्मपरायण दीक्षित यज्ञदत्त अपनी महान् पतिव्रता पत्नीसे कहने लगा—॥ ४६॥

यज्ञदत्त बोला—हे दीक्षितायनि! धूर्त पुत्र गुणनिधि कहाँ है, कहीं भी बैठा हो, उससे क्या लाभ है? वह मेरी सुन्दर-सी अँगूठी कहाँ है?॥ ४७॥

तुमने मेरे शरीरमें तैल, उबटन आदि लगानेके समय मेरी अँगुलीसे जिसको निकाल लिया था, उस रत्नजटित अँगूठीको लाकर शीघ्र ही मुझे दो॥ ४८॥

उसके इस वचनको सुनकर वह दीक्षितायनी भयभीत हो उठी और बोली—इस समय मैं मध्याह्नकालकी स्नान-क्रियाओंको सम्पन्न कर रही हूँ॥ ४९॥

देवपूजाके लिये अर्पित की जानेवाली सामग्रियोंको एकत्रित करनेमें मैं व्याकुल हूँ। हे अतिथिप्रिय! यह अतिथियोंका समय कहीं अतिक्रमण न कर जाय। इसलिये मैं भोजन बनानेमें व्यस्त हूँ। मैंने किसी पात्रमें अँगूठीको रख दिया है। अभी याद नहीं आ रहा है॥ ५०-५१॥

दीक्षित बोला—अरे दुष्ट पुत्रको उत्पन्न करनेवाली! हे सदा सच बोलनेवाली! मैंने जब-जब तुझसे यह पूछा कि पुत्र कहाँ गया है? तब-तब तूने यही कहा—हे नाथ! अभी पढ़कर वह अपने दो-तीन मित्रोंके साथ पुनः पढ़नेके लिये बाहर चला गया है॥ ५२-५३॥

हे पत्नि! तुम्हारी वह मंजीठी रंगकी साड़ी कहाँ है? जिसको मैंने तुम्हें दिया था, जो घरमें रोज टँगी रहती थी। सच-सच बताओ, डरो मत॥ ५४॥

मणिजटित वह सोनेकी झारी भी इस समय नहीं दिखायी दे रही है और न तो वह रेशमी-त्रिपटी (दुपट्टा) ही दिखायी दे रही है, जिसको रखनेके लिये तुम्हें मैंने दिया था॥ ५५॥

दक्षिण देशमें बननेवाला वह कांसेका पात्र और गौड़ देशमें बननेवाली वह ताँबेकी घटी कहाँ है? हाथी-दाँतसे बनी हुई वह सुख देनेवाली मचियाँ कहाँ है॥ ५६॥

पर्वतीय-क्षेत्रोंमें पायी जानेवाली, चन्द्रकान्त मणिके समान अद्भुत, हाथमें दीपक लिये वह शृंगारयुक्त शालभंजिका कहाँ है॥ ५७॥

अधिक कहनेसे लाभ ही क्या? हे कुलजे! मैं तुझपर व्यर्थ ही क्रोध कर रहा हूँ। अब तो मेरा भोजन तभी होगा, जब मैं दूसरा विवाह कर लूँगा॥ ५८॥

कुलको दूषित करनेवाले उस दुष्टके रहते हुए भी अब मैं निःसन्तान हूँ। उठो और जल लाओ। मैं उसे तिलांजलि देता हूँ॥ ५९॥

कुलको कलंकित करनेवाले कुपुत्रकी अपेक्षा मनुष्यका पुत्रहीन होना श्रेयस्कर है। कुलकी भलाईके लिये एकका परित्याग कर देना चाहिये—यह सनातन नियम है॥ ६०॥

तदनन्तर उस दीक्षित ब्राह्मणने स्नान करके, अपनी नित्य-क्रिया सम्पन्न करके उसी दिन किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणकी कन्याको प्राप्त करके उसके साथ विवाह कर लिया॥ ६१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें गुणनिधिचरित्रवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

शिवमन्दिरमें दीपदानके प्रभावसे पापमुक्त होकर गुणनिधिका दूसरे जन्ममें कलिंगदेशका राजा बनना और फिर शिवभक्तिके कारण कुबेर पदकी प्राप्ति

ब्रह्माजी बोले—उन वृत्तान्तोंको सुनकर वह दीक्षितपुत्र अपने भाग्यकी निन्दा करके किसी दिशाको देखकर अपने घरसे चल पड़ा। कुछ कालतक चलनेके पश्चात् वह यज्ञदत्तपुत्र दुष्ट गुणनिधि थक जानेके कारण उत्साहहीन होकर वहीं रुक गया॥ १-२॥

वह बहुत बड़ी चिन्तामें पड़ गया कि अब मैं कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? मैंने विद्याका अभ्यास भी नहीं किया और न तो मेरे पास अत्यधिक धन ही है॥ ३॥

दूसरे देशमें तत्काल सुख तो उसीको प्राप्त होता है, जिसके पास धन रहता है। यद्यपि धन रहनेपर चोरसे भय होता है, किंतु यह विघ्न सर्वत्र उत्पन्न हो सकता है॥ ४॥

अरे! याजकके कुलमें जन्म होनेपर भी मुझमें इतना बड़ा दुर्व्यसन कैसे आ गया! यह आश्चर्य है, किंतु भाग्य बड़ा बलवान् है, वही मनुष्यके भावी कर्मका अनुसन्धान करता है॥ ५॥

मैं भिक्षा माँगनेके लिये नहीं जाता हूँ। मेरा यहाँ कोई परिचित भी नहीं है और न मेरे पास कुछ धन ही है। मेरे लिये कोई शरण तो होनी ही चाहिये॥ ६॥

सदैव सूर्योदय होनेके पूर्व ही मेरी माता मुझे मधुर भोजन देती थीं। आज मैं यहाँ किससे माँगूँ। मेरी माता भी तो यहाँ नहीं हैं॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार बहुत-सी चिन्ता करते हुए वृक्षके नीचे बैठे-बैठे वह अत्यधिक दीन-हीन हो उठा, इतनेमें सूर्य अस्ताचलको चला गया॥ ८॥

इसी समय कोई शिवभक्त मनुष्य अनेक प्रकारकी परम दिव्य पूजा-सामग्रियाँ लेकर शिवरात्रिके दिन उपवासपूर्वक महेश्वरकी पूजा करनेके लिये अपने परिवारजनोंके साथ नगरसे बाहर निकला॥ ९-१०॥

शिवजीमें रत चित्तवाले उस भक्तने शिवालयमें प्रवेश करके सावधान मनसे यथोचित रूपसे शंकरकी पूजा की। [भगवान् शिवके लिये लगाये गये नैवेद्यके] पक्वान्नोंकी गन्धको सूँघकर पिताके द्वारा परित्यक्त, मातृहीन तथा भूखसे व्याकुल यज्ञदत्तका पुत्र वह ब्राह्मण गुणनिधि उसके पास पहुँचा॥ ११-१२॥

[उसने सोचा कि] ये सभी शिवभक्त जब रात्रिमें सो जायँगे, तब मैं शिवपर चढ़ाये गये इस विविध नैवेद्यको भाग्यवश प्राप्त करूँगा। ऐसी आशा करके वह भगवान् शंकरके द्वारपर बैठ गया और उस भक्तके द्वारा की गयी महापूजाको देखने लगा॥ १३-१४॥

भक्तलोग जिस समय [भगवान् शिवके सामने] नृत्य-गीत आदि करके सो गये, उसी समय वह नैवेद्यको लेनेके लिये भगवान् शिवके मन्दिरमें घुस गया॥ १५॥

[वहाँपर जल रहे] दीपकके प्रकाशको मन्द देखकर पक्वान्नोंको देखनेके लिये अपने उत्तरीय वस्त्रको [फाड़ करके] बत्ती बनाकर दीपकको प्रकाशितकर यज्ञदत्तके उस पुत्रने आदरपूर्वक शिवके लिये लगाये गये बहुतसे पक्वान्नोंके नैवेद्यको एकाएक सहर्ष उठा लिया॥ १६-१७॥

इसके बाद उस पक्वान्नको लेकर शीघ्र ही बाहर जाते हुए उसके पैरके आघातसे कोई सोया हुआ व्यक्ति जग उठा॥ १८॥

शीघ्रता करनेवाला यह कौन है ?, कौन है ? इसे पकड़ो—इस प्रकार भययुक्त ऊँची वाणीमें वह व्यक्ति चिल्लाने लगा॥ १९॥

भयवश वह ब्राह्मण जब भाग रहा था, उसी समय वहाँ पुररक्षकोंने पहुँचकर उसे मारा, जिससे वह अन्धा होकर तत्काल मर गया॥ २०॥

हे मुने! यज्ञदत्तके उस पुत्रने निश्चित शिवकी ही कृपासे नैवेद्यको खा लिया था, न कि अपने भावी पुण्यफलके प्रभावसे॥ २१॥

इसके पश्चात् उस मरे हुए ब्राह्मणको यमलोक ले जानेके लिये पाश, मुद्गर हाथमें लिये हुए यमके भयंकर दूत वहाँ आकर उसे बाँधने लगे॥ २२॥

इतनेमें छोटी-छोटी घण्टियोंसे युक्त आभूषण धारण किये हुए और हाथमें त्रिशूलसे युक्त हो शिवके पार्षद दिव्य विमान लेकर उसे ले जानेके लिये आ गये॥ २३॥

शिवगण बोले—हे यमराजके गणो! इस परम धार्मिक ब्राह्मणको छोड़ दो। यह ब्राह्मण दण्डके योग्य नहीं है। इसके समस्त पाप भस्म हो चुके हैं॥ २४॥

इसके अनन्तर शिवपार्षदोंके वचन सुनकर यमराजके गण आश्चर्यचकित हो गये और महादेवजीके गणोंसे कहने लगे। शम्भुके गणोंको देखकर डरे हुए तथा प्रणाम करते हुए यमराजके दूतोंने इस प्रकार कहा कि हे गणो! यह ब्राह्मण तो दुराचारी था॥ २५-२६॥

यमगण बोले—कुलकी मर्यादाका उल्लंघन करके यह माता-पिताकी आज्ञासे पराङ्मुख, सत्य-शौचसे परिभ्रष्ट और सन्ध्या तथा स्नानसे रहित था॥ २७॥

यदि इसके अन्य कर्मोंको छोड़ भी दिया जाय, तो भी इसने शिवके निर्माल्य [चढ़ाये गये नैवेद्य]-का लंघन किया है अर्थात् चोरी की है। [इसके इस हेय कर्मको] आप सब स्वयं देख लें, आप-जैसे लोगोंके लिये यह स्पर्शके योग्य भी नहीं है॥ २८॥

जो शिव-निर्माल्यको खानेवाले, शिवनिर्माल्यकी चोरी करनेवाले और शिवनिर्माल्यको देनेवाले हैं, उनका स्पर्श अवश्य ही पापकारक होता है॥ २९॥

विषको जान-बूझकर पी लेना श्रेयस्कर है और अछूतका स्पर्श कर लेना भी अति उत्तम है, किंतु कण्ठगत प्राण होनेपर भी शिवनिर्माल्यका सेवन उचित नहीं है॥ ३०॥

धर्मके विषयमें आप सब जिस प्रकार प्रमाण हैं, वैसे हमलोग नहीं हैं। हे शिवगण! सुनिये। यदि इसमें धर्मका लेशमात्र भी हो, तो हम सब उसे सुनना चाहते हैं॥ ३१॥

यमके दूतोंकी इस बातको सुनकर शिवके पार्षद भगवान् शिवके चरणकमलका स्मरण करके कहने लगे— ॥ ३२॥

शिवके सेवक बोले—हे यमकिंकरो! जो सूक्ष्म शिवधर्म हैं, जिन्हें सूक्ष्म दृष्टिवाले ही जान सकते हैं, उन्हें आपसदृश स्थूल दृष्टिवाले कैसे जान सकते हैं॥ ३३॥

हे यमदूतो! पापरहित इस यज्ञदत्तपुत्रने यहाँपर जो पुण्य कर्म किया है, उसे सावधान होकर सुनो— ॥ ३४॥

इसने शिवलिंगके शिखरपर पड़ रही दीपककी छायाको दूर किया और अपने उत्तरीय वस्त्रको फाड़कर उससे दीपककी वर्तिका बनायी और फिर उससे दीपकको पुनः जलाकर उस रात्रिमें शिवके लिये प्रकाश किया॥ ३५॥

हे किंकरो! इसने [उस कर्मके अतिरिक्त] अन्य भी पुण्यकर्म किया है। शिवपूजाके प्रसंगमें इसने शिवके नामोंका श्रवण किया और स्वयं उनके नामोंका उच्चारण भी किया है। भक्तके द्वारा विधिवत् की जा रही पूजाको इसने उपवास रखकर बड़े ही मनोयोगसे देखा है॥ ३६-३७॥

[अतः इन पुण्योंके प्रभावसे] यह आज ही हमलोगोंके साथ शिवलोकको जायगा। वहाँ शिवका अनुगामी बनकर यह कुछ समयतक उत्तम भोगोंका उपभोग करेगा॥ ३८॥

तत्पश्चात् अपने पापरूपी मैलको धोकर यह कलिंग देशका राजा बनेगा; क्योंकि यह श्रेष्ठ ब्राह्मण निश्चित ही शिवका प्रिय हो गया है॥ ३९॥

हे यमदूतो! अब इसके विषयमें कुछ कहनेकी

आवश्यकता नहीं है। तुमलोग जैसे आये हो, वैसे ही अतिप्रसन्न मनसे अपने लोकको चले जाओ॥ ४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! उनके वाक्यको सुनकर पराङ्मुख हुए समस्त यमदूत अपने लोकको लौट गये। हे मुने! गणोंने यमराजसे [गुणनिधिके उस] सम्पूर्ण वृत्तान्तका निवेदन किया और शिवदूतोंने उनसे जो कहा था, वह समाचार आरम्भसे उन्हें सुना दिया॥ ४१-४२॥

धर्मराज बोले—हे गणो! तुम सब सावधान होकर मेरे इस वाक्यको सुनो। जैसा आदेश दे रहा हूँ, वैसा ही प्रेमपूर्वक तुमलोग करो॥ ४३॥

हे गणो! इस संसारमें जो श्वेत भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, उन सभीको छोड़ देना और यहाँपर कभी मत लाना॥ ४४॥

हे गणो! जो श्वेत भस्मसे शरीरमें उद्धूलन करते हैं, उन सबको तुमलोग छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४५॥

इस संसारमें जिस किसी भी कारणसे जो शिवका वेष धारण करनेवाले हैं, उन सभी लोगोंको भी छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४६॥

इस जगत्‌में जो रुद्राक्ष धारण करनेवाले हैं या सिरपर जटा धारण करते हैं, उन सबको तुमलोग छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४७॥

जिन लोगोंने जीविकाके निमित्त ही शिवका वेष धारण किया है, उन सबको भी छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना॥ ४८॥

जिन्होंने दम्भ या छल-प्रपंचके कारण ही शिवका वेष धारण किया है, उन सबको भी तुमलोग छोड़ देना और यहाँ कभी मत लाना*॥ ४९॥

इस प्रकार उन यमराजने अपने सेवकोंको आज्ञा दी, [जिसको सुनकर उन लोगोंने कहा कि जैसी आपकी आज्ञा है] वैसा ही होगा—ऐसा कहकर वे मन्द-मन्द हँसते हुए चुप हो गये॥ ५०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार शिवपार्षदोंने यमदूतोंसे उस ब्राह्मणको छुड़ाया और वह पवित्र मनसे युक्त होकर शीघ्र ही उन शिवगणोंके साथ शिवलोकको चला गया॥ ५१॥

वहाँपर सभी सुखभोगोंका उपभोग करके तथा भगवान् सदाशिव एवं पार्वतीकी सेवा करके वह [दूसरे जन्ममें] कलिंगदेशके राजा अरिंदमका पुत्र हुआ॥ ५२॥

उस शिवसेवापरायण बालकका नाम दम हुआ। बालक होते हुए भी वह अन्य शिशुओंके साथ शिवकी भक्ति करने लगा॥ ५३॥

क्रमशः उसने युवावस्था प्राप्त की और पिताके परलोकगमनके पश्चात् उसे राज्य भी प्राप्त हुआ। उसने प्रेमपूर्वक अनेक शिवधर्मोंको प्रारम्भ किया॥ ५४॥

हे ब्रह्मन्! दुष्टोंका दमन करनेवाला वह राजा दम शिवालयोंमें दीपदानके अतिरिक्त अन्य कोई धर्म नहीं मानता था॥ ५५॥

उसने सभी ग्राम और जनपद-प्रमुखोंको बुला करके यह आदेश दिया कि तुमलोगोंको शिवालयोंमें

---

* सर्वे शृणुत मद्वाक्यं सावधानतया गणाः। तदेव प्रीत्या कुरुत मच्छासनपुरःसरम्॥
ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके विभूत्या सितया गणाः। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥
उद्धूलनकरा ये हि विभूत्या सितया गणाः। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥
शिववेशतया लोके येन केनापि हेतुना। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥
ये रुद्राक्षधरा लोके जटाधारिण एव ये। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥
उपजीवनहेतोश्च शिववेशधरा हि ये। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥
दम्भेनापि छलेनापि शिववेशधरा हि ये। ते सर्वे परिहर्तव्या नानेतव्याः कदाचन॥ (सृष्टि० ख० १८। ४३—४९)

दीप-प्रज्वालनकी व्यवस्था करनी है॥ ५६॥

यदि [किसीके क्षेत्रमें] ऐसा नहीं हुआ, तो यह सत्य है कि [उस क्षेत्रका] वह प्रधान निश्चित ही मेरे द्वारा दण्ड पायेगा। दीपदानसे भगवान् शिव सन्तुष्ट होते हैं—ऐसा श्रुतियोंमें कहा गया है॥ ५७॥

जिसके-जिसके गाँवके चारों ओर जितने भी शिवालय हों, वहाँ-वहाँ सदैव बिना कोई विचार किये ही दीपक जलाना चाहिये॥ ५८॥

अपनी आज्ञाके उल्लंघनके दोषपर मैं निश्चित ही अपराधीका सिर काट लूँगा। इस प्रकार उस राजाके भयसे प्रत्येक शिवमन्दिरमें दीपक जलाये जाने लगे॥ ५९॥

इस प्रकार जीवनपर्यन्त इसी धर्माचरणके पालनसे राजा दम धर्मकी महान् समृद्धि प्राप्त करके अन्तमें कालधर्मकी गतिको प्राप्त हुआ॥ ६०॥

अपनी इस दीपवासनाके कारण शिवालयोंमें बहुत-से दीपक प्रज्वलित करके वह राजा [दूसरे जन्ममें] रत्नमय दीपकोंकी शिखाओंको आश्रय देनेवाली अलकापुरीका राजा कुबेर हुआ॥ ६१॥

इस प्रकार भगवान् शंकरके लिये अल्पमात्र भी किया गया धार्मिक कृत्य समय आनेपर फल प्रदान करता है। यह जानकर उत्तम सुख चाहनेवाले लोगोंको शिवका भजन करना चाहिये॥ ६२॥

कहाँ सभी धर्मोंसे सदा ही दूर रहनेवाला दीक्षितका पुत्र और कहाँ दैवयोगसे धन चुरानेके लिये शिवमन्दिरमें उसका प्रवेश एवं स्वार्थवश दीपककी वर्तिकाको जलाकर शिवलिंगके मस्तकपर छाये हुए अन्धकारको दूर करनेके लिये किया गया उसका पुण्य। [जिसके प्रभावसे] उसने कलिंगदेशका राज्य प्राप्त किया और सदैव धर्ममें अनुरक्त रहने लगा। पूर्वजन्मके संस्कारके उदय होनेके कारण ही शिवालयमें सम्यक् रूपसे मात्र दीपकको जलाकर उसने यह दिक्पाल कुबेरकी महान् पदवी प्राप्त कर ली। हे मुनीश्वर! देखिये यह मनुष्यधर्मा इस समय इस लोकमें रहकर इसका भोग कर रहा है॥ ६३—६५॥

इस प्रकार यज्ञदत्तके पुत्र गुणनिधिके चरित्रका वर्णन कर दिया, जो शिवको प्रसन्न करनेवाला है और जिसको सुननेवालेकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ ६६॥

गुणनिधिने सर्वदेवमय भगवान् सदाशिवसे जिस प्रकार मित्रता प्राप्त की, अब मैं उसका वर्णन आपसे कर रहा हूँ। हे तात! एकाग्रचित्त होकर आप सुनें॥ ६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानके अन्तर्गत कैलासगमन-उपाख्यानमें गुणनिधिसद्गतिवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

कुबेरका काशीपुरीमें आकर तप करना, तपस्यासे प्रसन्न उमासहित भगवान् विश्वनाथका प्रकट हो उसे दर्शन देना और अनेक वर प्रदान करना, कुबेरद्वारा शिवमैत्री प्राप्त करना

ब्रह्माजी बोले—पहलेके पाद्मकल्पकी बात है, मुझ ब्रह्माके मानसपुत्र पुलस्त्यसे विश्रवाका जन्म हुआ और विश्रवाके पुत्र वैश्रवण कुबेर हुए॥ १॥

उन्होंने पूर्वकालमें अत्यन्त उग्र तपस्याके द्वारा त्रिनेत्रधारी महादेवकी आराधना करके विश्वकर्माकी बनायी हुई इस अलकापुरीका उपभोग किया॥ २॥

उस कल्पके व्यतीत हो जानेपर मेघवाहनकल्प आरम्भ हुआ, उस समय वह यज्ञदत्तका पुत्र [कुबेरके रूपमें] अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगा॥ ३॥

दीपदानमात्रसे मिलनेवाली शिवभक्तिके प्रभावको जानकर शिवकी चित्प्रकाशिका काशिकापुरीमें जाकर अपने चित्तरूपी रत्नमय दीपकोंसे ग्यारह रुद्रोंको उद्बोधित करके अनन्य भक्ति एवं स्नेहसे सम्पन्न हो वह तन्मयतापूर्वक शिवके ध्यानमें मग्न होकर निश्चलभावसे बैठ गया॥ ४-५॥

जो शिवसे एकताका महान् पात्र है, तपरूपी अग्निसे बढ़ा हुआ है, काम-क्रोधादि महाविघ्नरूपी पतंगोंके आघातसे शून्य है, प्राणनिरोधरूपी वायुशून्य स्थानमें निश्चलभावसे प्रकाशित है, निर्मल दृष्टिके कारण स्वरूपसे भी निर्मल है तथा सद्भावरूपी पुष्पोंसे पूजित है—ऐसे शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करके वह तबतक तपस्यामें लगा रहा, जबतक उसके शरीरमें केवल अस्थि और चर्ममात्र ही अवशिष्ट नहीं रह गये। इस प्रकार उसने दस हजार वर्षोंतक तपस्या की॥ ६—८॥

तदनन्तर विशालाक्षी पार्वतीदेवीके साथ भगवान् विश्वनाथ स्वयं प्रसन्नमनसे अलकापुरीके स्वामीको देखकर, जो शिवलिंगमें मनको एकाग्र करके ठूँठे वृक्षकी भाँति स्थिरभावसे बैठे थे, बोले—हे अलकापते! मैं वर देनेके लिये उद्यत हूँ, तुम अपने मनकी बात कहो— ॥ ९-१०॥

उन तपोनिधिने जब अपने नेत्रोंको खोलकर देखा, तो उन्हें उदित हो रहे हजार किरणोंवाले हजार सूर्योंसे भी अधिक तेजस्वी श्रीकण्ठ उमावल्लभ भगवान् चन्द्रशेखर अपने सामने दिखायी दिये। उनके तेजसे प्रतिहत हुए तेजवाले कुबेर चौंधिया गये और अपनी आँखोंको बन्द करके वे मनके लिये अगोचर देवेश्वर भगवान् शंकरसे कहने लगे कि हे नाथ! अपने चरणोंको देखनेके लिये मुझे दृष्टिसामर्थ्य प्रदान करें। हे नाथ! यही वर चाहता हूँ कि मैं आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त कर सकूँ। हे ईश! अन्य वरसे क्या लाभ है? हे शशिशेखर! आपको प्रणाम है॥ ११—१४॥

उनकी यह बात सुनकर देवाधिदेव उमापतिने अपनी हथेलीसे उनका स्पर्श करके उन्हें अपने दर्शनकी शक्ति प्रदान की॥ १५॥

देखनेकी शक्ति मिल जानेपर यज्ञदत्तके उस पुत्रने आँखें खोलकर पहले उमाकी ओर ही देखना आरम्भ किया॥ १६॥

वह मन-ही-मन सोचने लगा, भगवान् शंकरके समीप यह सर्वांगसुन्दरी स्त्री कौन है? इसने मेरे तपसे भी अधिक कौन-सा तप किया है॥ १७॥

यह रूप, यह प्रेम, यह सौभाग्य और यह असीम शोभा—सभी अद्भुत हैं, वह ब्राह्मणकुमार बार-बार यही कहने लगा॥ १८॥

बार-बार यही कहता हुआ जब वह क्रूरदृष्टिसे उनकी ओर देखने लगा, तब पार्वतीके अवलोकनसे उसकी बाँयीं आँख फूट गयी॥ १९॥

तदनन्तर देवी पार्वतीने महादेवजीसे कहा—[हे प्रभो!] यह दुष्ट तपस्वी बार-बार मेरी ओर देखकर क्या बोल रहा है? आप मेरी तपस्याके तेजको प्रकट कीजिये॥ २०॥

यह पुनः अपने दाहिने नेत्रसे बार-बार मुझे देख रहा है, निश्चित ही यह मेरे रूप, प्रेम और सौन्दर्यकी सम्पदासे ईर्ष्या करनेवाला है॥ २१॥

देवीकी यह बात सुनकर भगवान् शिवने हँसते हुए उनसे कहा—हे उमे! यह तुम्हारा पुत्र है, यह तुम्हें क्रूरदृष्टिसे नहीं देख रहा है, अपितु तुम्हारी तपःसम्पत्तिका वर्णन कर रहा है॥ २२॥

देवीसे ऐसा कहकर भगवान् शिव पुनः उस [ब्राह्मणकुमार]-से बोले—हे वत्स! मैं तुम्हारी इस तपस्यासे सन्तुष्ट होकर तुम्हें वर देता हूँ। तुम निधियोंके स्वामी और गुह्यकोंके राजा हो जाओ॥ २३-२४॥

हे सुव्रत! तुम यक्षों, किन्नरों और राजाओंके भी राजा, पुण्यजनोंके पालक और सबके लिये धनके दाता हो जाओ॥ २५॥

मेरे साथ सदा तुम्हारी मैत्री बनी रहेगी और हे मित्र! तुम्हारी प्रीति बढ़ानेके लिये मैं अलकाके पास ही रहूँगा। नित्य तुम्हारे निकट निवास करूँगा। हे महाभक्त यज्ञदत्त-कुमार! आओ, इन उमादेवीके चरणोंमें प्रसन्न मनसे प्रणाम करो, ये तुम्हारी माता हैं॥ २६-२७॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार वर देकर भगवान् शिवने देवी पार्वतीसे पुनः कहा—हे देवेश्वरि! तपस्विनि! पुत्रपर कृपा करो। यह तुम्हारा पुत्र है॥ २८॥

भगवान् शंकरका यह कथन सुनकर जगदम्बा पार्वती अति प्रसन्नचित्तसे उस यज्ञदत्तकुमारसे कहने लगीं—॥ २९॥

देवी बोलीं—हे वत्स! भगवान् शिवमें तुम्हारी सदा निर्मल भक्ति बनी रहे। तुम्हारी बायीं आँख तो फूट ही गयी। इसलिये एक ही पिंगल नेत्रसे युक्त रहो। महादेवजीने तुम्हें जो वर दिये हैं, वे सब उसी रूपमें तुम्हें सुलभ हों। हे पुत्र! मेरे रूपके प्रति ईर्ष्या करनेके कारण तुम कुबेर नामसे प्रसिद्ध होओ॥ ३०-३१॥

इस प्रकार कुबेरको वर देकर भगवान् महेश्वर पार्वती-देवीके साथ अपने वैश्वेश्वर नामक धाममें चले गये॥ ३२॥

इस तरह कुबेरने भगवान् शंकरकी मैत्री प्राप्त की और अलकापुरीके पास जो कैलास पर्वत है, वह भगवान् शंकरका निवास हो गया॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानमें कैलासगमनोपाख्यानमें कुबेरकी शिवमैत्रीका वर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवका कैलास पर्वतपर गमन तथा सृष्टिखण्डका उपसंहार

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हे मुने! कुबेरके तपोबलसे भगवान् शिवका जिस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर शुभागमन हुआ, वह प्रसंग सुनिये॥ १॥

कुबेरको वर देनेवाले विश्वेश्वर शिव जब उन्हें निधिपति होनेका वर देकर अपने उत्तम स्थानको चले गये, तब उन्होंने मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया॥ २॥

ब्रह्माजीके ललाटसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ है तथा जो प्रलयका कार्य सँभालते हैं, वे रुद्र मेरे पूर्ण स्वरूप हैं। अतः उन्हींके रूपमें मैं गुह्यकोंके निवासस्थान कैलास पर्वतपर जाऊँगा॥ ३॥

रुद्र मेरे हृदयसे ही प्रकट हुए हैं। वे पूर्णावतार निष्कल, निरंजन, ब्रह्म हैं और मुझसे अभिन्न हैं। हरि, ब्रह्मा आदि देव उनकी सेवा किया करते हैं॥ ४॥

उन्हींके रूपमें मैं कुबेरका मित्र बनकर उसी पर्वतपर विलासपूर्वक रहूँगा और महान् तपस्या करूँगा॥ ५॥

शिवकी इस इच्छाका चिन्तन करके उन रुद्रदेवने कैलास जानेके लिये उत्सुक हो उत्तम गति देनेवाले नादस्वरूप अपने डमरूको बजाया॥ ६॥

उसकी उत्साहवर्धक ध्वनि तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गयी। उसका विचित्र एवं गम्भीर शब्द आह्वानकी गतिसे युक्त था अर्थात् सुननेवालोंको अपने पास आनेके लिये प्रेरणा दे रहा था॥ ७॥

उस ध्वनिको सुनकर ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता, ऋषि, मूर्तिमान् आगम, निगम तथा सिद्ध वहाँ आ पहुँचे॥ ८॥

देवता और असुर सब लोग बड़े उत्साहमें भरकर वहाँ आये। भगवान् शिवके समस्त पार्षद जहाँ-कहीं भी थे, वहाँसे उस स्थानपर पहुँचे॥ ९॥

सर्वलोकवन्दित महाभाग समस्त गणपाल भी उस स्थानपर जानेके लिये उद्यत हो गये। उनकी मैं संख्या बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ १०॥

शङ्खकर्ण नामका गणेश्वर एक करोड़ गणोंके साथ, केकराक्ष दस करोड़ और विकृत आठ करोड़ गणोंके साथ जानेके लिये एकत्रित हुआ॥ ११॥

विशाख चौंसठ करोड़ गणोंके साथ, पारियात्रक नौ करोड़ गणोंके साथ, सर्वान्तक छः करोड़ गणोंके साथ और श्रीमान् दुन्दुभ आठ करोड़ गणोंके साथ वहाँ चलनेके लिये तैयार हो गया॥ १२॥

गणश्रेष्ठ जालंक बारह करोड़ गणोंके साथ, समद सात करोड़ गणोंके साथ और श्रीमान् विकृतानन भी उतने गणोंके साथ जानेके लिये तैयार हुए॥ १३॥

कपाली पाँच करोड़ गणोंके साथ, मंगलकारी सन्दार अपने छः करोड़ गणोंके साथ और कण्डुक तथा

कुण्डक नामके गणेश्वर भी एक-एक करोड़ गणोंके साथ गये॥ १४॥

विष्टम्भ और चन्द्रतापन नामक गणाध्यक्ष भी अपने-अपने आठ-आठ करोड़ गणोंके साथ कैलास चलनेके लिये वहाँपर आ गये॥ १५॥

एक हजार करोड़ गणोंसे घिरा हुआ महाकेश नामक गणपति भी वहाँ आ पहुँचा॥ १६॥

कुण्डी बारह करोड़ गणोंके साथ और वाह, श्रीमान् पर्वतक, काल, कालक एवं महाकाल नामके गणेश्वर सौ करोड़ गणोंके साथ वहाँ पहुँचे॥ १७॥

अग्निक सौ करोड़, अभिमुख एक करोड़, आदित्यमूर्धा तथा धनावह भी एक-एक करोड़ गणोंके साथ वहाँ आये॥ १८॥

सन्नाह तथा कुमुद सौ-सौ करोड़ गणोंके साथ और अमोघ, कोकिल एवं सुमन्त्रक एक-एक करोड़ गणोंके साथ आ गये॥ १९॥

काकपाद नामका एक दूसरा गण साठ करोड़ और सन्तानक नामका गणेश्वर भी साठ करोड़ गणोंको साथ लेकर चलनेके लिये वहाँ आया। महाबल, मधुपिंग तथा पिंगल नामक गणेश्वर नौ-नौ करोड़ गणोंके सहित वहाँ उपस्थित हुए॥ २०॥

नील एवं पूर्णभद्र नामक गणेश्वर भी नब्बे-नब्बे करोड़ गणोंके साथ वहाँ आये। महाशक्तिशाली चतुर्वक्त्र नामका गणेश्वर सात करोड़ गणोंसे घिरा हुआ कैलास जानेके लिये वहाँ आ पहुँचा॥ २१॥

एक सौ बीस हजार करोड़ गणोंसे आवृत होकर सर्वेश नामका गणेश्वर भी कैलास चलनेके लिये वहाँ आया॥ २२॥

काष्ठागूढ, सुकेश तथा वृषभ नामक गणपति चौंसठ करोड़, चैत्र और स्वामी नकुलीश स्वयं सात करोड़ गणोंके साथ कैलासगमनके लिये आये॥ २३॥

लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, प्रभु, देव, भृंगी, श्रीमान् देवदेवप्रिय, रिटि, अशनि, भानुक तथा सनातन नामके गणपति चौंसठ-चौंसठ करोड़ गणोंके साथ वहाँपर उपस्थित हुए। नन्दीश्वर नामके महाबलवान् गणाधीश सौ करोड़ गणोंके सहित कैलास चलनेके लिये वहाँ आ पहुँचे॥ २४-२५॥

इन गणाधिपोंके अतिरिक्त अन्य बहुत-से असंख्य शक्तिशाली गणेश्वर वहाँ कैलास चलनेके लिये आये। वे सब हजार भुजाओंवाले थे तथा जटा, मुकुट धारण किये हुए थे॥ २६॥

सभी गण चन्द्रमाके आभूषणसे शोभायमान थे, सभीके कण्ठ नीलवर्णके थे और वे तीन-तीन नेत्रोंसे युक्त थे। सभी हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुट आदि आभूषणोंसे अलंकृत थे॥ २७॥

ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णुके समान अणिमादि अष्ट महासिद्धियोंसे युक्त, करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान सभी गणेश्वर वहाँपर आ गये॥ २८॥

इन गणाध्यक्षोंके अतिरिक्त निर्मल प्रभामण्डलसे युक्त, महान् आत्मावाले तथा भगवान् शिवके दर्शनकी लालसासे परिपूर्ण अन्य अनेक गणाधिप अत्यन्त प्रसन्नताके साथ वहाँपर जा पहुँचे॥ २९॥

विष्णु आदि प्रमुख समस्त देवता वहाँ जाकर भगवान् सदाशिवको देखकर हाथ जोड़कर नतमस्तक होकर उनकी उत्तम स्तुति करने लगे॥ ३०॥

इस प्रकार विष्णु आदि देवताओंके साथ परमेश्वर भगवान् महेश महात्मा कुबेरके प्रेमसे वशीभूत हो कैलासको चले गये॥ ३१॥

कुबेरने भी सपरिवार भक्तिपूर्वक नाना प्रकारके उपहारोंसे वहाँ आये हुए भगवान् शम्भुकी सादर पूजा की॥ ३२॥

तत्पश्चात् उसने शिवको सन्तुष्ट करनेके लिये उनका अनुगमन करनेवाले विष्णु आदि देवताओं और अन्यान्य गणेश्वरोंका भी विधिवत् पूजन किया॥ ३३॥

[इसके बाद उसकी सेवाको देखकर] अति प्रसन्नचित्त भगवान् शम्भु कुबेरका आलिंगनकर और उसका सिर सूँघकर अलकापुरीके अति निकट ही अपने समस्त अनुगामियोंके साथ ठहर गये॥ ३४॥

तदनन्तर भगवान् शिवने विश्वकर्माको अपने तथा दूसरे देवताओंके भक्तोंके लिये उस पर्वतपर निवासहेतु

यथोचित निर्माणकार्य करनेकी आज्ञा दी॥ ३५॥

हे मुने! विश्वकर्माने शिवकी आज्ञासे वहाँ जाकर यथाशीघ्र ही नाना प्रकारकी रचना की॥ ३६॥

उस समय विष्णुकी प्रार्थनासे शिव प्रसन्न हो उठे और कुबेरपर अनुग्रह करके वे कैलासपर्वतपर चले गये। शुभ मुहूर्तमें अपने निवासस्थानमें प्रवेशकर भक्तवत्सल उन परमेश्वरने अपने प्रेमसे सबको सनाथ कर दिया। सभी प्रमुदित विष्णु आदि देवता, मुनिगण और अन्य सिद्धजनोंने मिलकर प्रेमपूर्वक सदाशिवका अभिषेक किया॥ ३७—३९॥

हाथोंमें नाना प्रकारके उपहार लेकर सबने क्रमशः उनका पूजन किया और बहुत महोत्सवके साथ [सामने खड़े होकर] उनकी आरती उतारी॥ ४०॥

हे मुने! उस समय [आकाशसे] मंगलसूचक पुष्पवृष्टि होने लगी और अत्यन्त प्रसन्न होकर गान करती हुई अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ४१॥

सब ओर जय-जयकार और नमस्कारके सुसंस्कृत शब्द गूँजने लगे। उस समय चारों ओर एक महान् उत्साह व्याप्त था, जो सबके सुखको बढ़ा रहा था॥ ४२॥

उस समय सिंहासनपर बैठकर भगवान् सदाशिव अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे और विष्णु आदि सभी लोग बार-बार उनकी यथोचित सेवा कर रहे थे॥ ४३॥

सभी देवताओंने पृथक्-पृथक् रूपमें अर्थभरी वाणी और अभीष्ट वस्तुओंसे लोकमंगलकारी भगवान् शंकरका स्तवन-वन्दन किया॥ ४४॥

प्रसन्नचित्त सर्वेश्वर स्वामी सदाशिवने उनकी स्तुतिको सुनकर प्रेमपूर्वक उन्हें मनोवांछित वर दिये॥ ४५॥

[हे मुने!] अभीष्ट कामनाओंसे परिपूर्ण, प्रसन्नचित्त वे सभी [देव, मुनि और सिद्धजन] भगवान् शिवकी आज्ञासे अपने-अपने धामको चले गये। मैं भी विष्णुके साथ प्रसन्नतापूर्वक चलनेके लिये उद्यत हुआ॥ ४६॥

तब श्रीविष्णु और मुझको आसनपर बैठाकर परमेश्वर शम्भु बड़े प्रेमसे बहुत समझाकर अनुग्रह करके कहने लगे— ॥ ४७॥

शिवजी बोले—हे हरे! हे विधे! हे तात! सदैव तीनों लोकोंका सृजन और संरक्षण करनेवाले हे सुरश्रेष्ठ! आप दोनों मुझे अत्यन्त प्रिय हैं॥ ४८॥

अब आप दोनों भी निर्भय होकर मेरी आज्ञासे अपने-अपने स्थानको जायँ। मैं सदा आप दोनोंको सुख प्रदान करनेवाला हूँ और विशेष रूपसे आप दोनोंके सुख-दुःखको देखता ही रहता हूँ॥ ४९॥

भगवान् सदाशिवके वचनको सुनकर मैं और विष्णु दोनों प्रेमपूर्वक प्रणाम करके प्रसन्नचित्त होकर उनकी आज्ञासे अपने-अपने धामको लौट आये॥ ५०॥

उसी समय प्रसन्नचित्त भगवान् शंकर निधिपति कुबेरका भी हाथ पकड़कर उन्हें अपने पास बैठाकर यह शुभ वाक्य कहने लगे— ॥ ५१॥

हे मित्र! तुम्हारे प्रेमके वशीभूत होकर मैं तुम्हारा मित्र बन गया हूँ। हे पुण्यात्मन्! भयरहित होकर तुम अपने स्थानको जाओ; मैं सदा तुम्हारा सहायक हूँ॥ ५२॥

भगवान् शम्भुके इस वचनको सुनकर प्रसन्नचित्त कुबेर उनकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक अपने धामको चले गये॥ ५३॥

योगपरायण, सब प्रकारसे स्वच्छन्द तथा सदा ध्यानमग्न रहनेवाले भगवान् शिव अपने गणोंके साथ

उस पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर निवास करने लगे॥ ५४॥

कभी वे अपने ही आत्मस्वरूप ब्रह्मका चिन्तन करते थे। कभी योगमें तल्लीन रहते थे, कभी स्वच्छन्द मनसे प्रेमपूर्वक अपने गणोंको इतिहास सुनाते थे और कभी विहार करनेमें चतुर भगवान् महेश्वर अपने गणोंके साथ कैलास पर्वतकी टेढ़ी-मेढ़ी, ऊबड़-खाबड़ गुफाओं तथा कन्दराओंमें और अनेक सुरम्य स्थानोंपर प्रसन्नचित्त होकर विचरण करते थे॥ ५५-५६॥

इस प्रकार रुद्र-स्वरूप परमेश्वर भगवान् शंकर जो नाना प्रकारके योगियोंमें भी सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्होंने अपने उस पर्वतपर अनेक लीलाएँ कीं॥ ५७॥

इस प्रकार बिना पत्नीके रहते हुए परमेश्वर सदाशिवने अपना कुछ समय व्यतीत करके बादमें दक्षपत्नीसे उत्पन्न सतीको पत्नीके रूपमें प्राप्त किया॥ ५८॥

तदनन्तर हे देवर्षे! वे महेश्वर उन दक्षपुत्री सतीके साथ विहार करने लगे। इस प्रकार [सतीके साथ पतिरूपमें] लोकाचारपरायण रहते हुए वे बहुत ही सुखी थे॥ ५९॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने आपको रुद्रके अवतारका वर्णन कर दिया है। मैंने उनके कैलास-आगमन और कुबेरके साथ उनकी मित्रताका प्रसंग भी कह दिया है। कैलासके अन्तर्गत होनेवाली उनकी ज्ञानवर्धिनी लीलाका भी वर्णन कर दिया है, जो इस लोक और परलोकमें सदैव सभी मनोवांछित फलोंको प्रदान करनेवाली है॥ ६०-६१॥

जो एकाग्रचित्त होकर इस कथाको सम्यक् रूपसे पढ़ता है अथवा सुनता है, वह इस लोकमें सुख भोगकर परलोकमें मुक्ति प्राप्त करता है॥ ६२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके प्रथम खण्डमें सृष्टि-उपाख्यानके कैलासोपाख्यानमें शिवकैलासगमन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

॥ द्वितीय रुद्रसंहिताका प्रथम सृष्टिखण्ड पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीय रुद्रसंहिता [द्वितीय—सतीखण्ड]

पहला अध्याय

सतीचरित्रवर्णन, दक्षयज्ञविध्वंसका संक्षिप्त वृत्तान्त तथा सतीका पार्वतीरूपमें हिमालयके यहाँ जन्म लेना

नारदजी बोले—हे विधे! भगवान् शंकरकी कृपासे आप सब कुछ जानते हैं। आपने शिव और पार्वतीकी बहुत ही अद्भुत तथा मंगलकारी कथाएँ कही हैं॥ १॥

आपके मुखारविन्दसे निकली हुई शम्भुकी श्रेष्ठ कथाको सुनकर मैं अतृप्त ही हूँ, हे प्रभो! मैं उसे पुनः सुनना चाहता हूँ॥ २॥

हे विधे! पहले आपने शंकरके पूर्णांश महेशान, कैलासवासी तथा जितेन्द्रिय जिन रुद्रका वर्णन किया, वे योगी जितेन्द्रिय विष्णु आदि सभी देवताओंसे सेवाके योग्य, संतोंकी परम गति, निर्विकार महाप्रभु निर्द्वन्द्व होकर सदैव क्रीड़ा करते रहते थे॥ ३-४॥

विष्णुकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर वे मंगलमयी परमतपस्विनी तथा श्रेष्ठ स्त्रीसे विवाह करके गृहस्थ बन गये॥ ५॥

सर्वप्रथम वे [शिवा] दक्षपुत्री हुईं और तत्पश्चात् पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीके रूपमें उन्होंने जन्म लिया। एक ही शरीरसे वे दोनोंकी कन्या किस प्रकारसे मानी गयीं?॥ ६॥

वे सती पुनः पार्वती होकर शिवको कैसे प्राप्त हुईं? हे ब्रह्मन्! यह सब तथा अन्य बातोंको भी आप कृपा करके बतायें॥ ७॥

सूतजी बोले—शिवभक्त देवर्षि नारदके इस वचनको सुनकर मनसे [अत्यन्त] प्रसन्न होकर ब्रह्माजी कहने लगे—॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे मुनिश्रेष्ठ! सुनिये, अब मैं शिवकी मंगलकारिणी कथा कह रहा हूँ, जिसको सुनकर जन्म सफल हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

हे तात! पुराने समयकी बात है—अपनी सन्ध्या नामक पुत्रीको देखकर पुत्रोंसहित मैं कामदेवके बाणोंसे पीड़ित होकर विकारग्रस्त हो गया॥ १०॥

हे तात! उस समय धर्मके द्वारा स्मरण किये गये महायोगी और महाप्रभु रुद्र पुत्रोंसहित मुझे धिक्कारकर अपने घर चले गये॥ ११॥

जिनकी मायासे मोहित हुआ मैं वेदवक्ता होनेपर भी मूढ़ बुद्धिवाला हो गया, उन्हीं परमेश्वर शंकरके साथ मैं अकरणीय कार्य करने लगा॥ १२॥

शिवकी मायासे मोहित हुआ मैं मूढ़ अपने पुत्रोंके सहित ईर्ष्यावश उन्हींको मोहित करनेके लिये अनेक उपाय करने लगा॥ १३॥

हे मुनीश्वर! उन परमेश्वर शिवके ऊपर किये गये मेरे तथा मेरे उन पुत्रोंके सभी उपाय निष्फल हो गये॥ १४॥

तब अपने पुत्रोंसहित उपायोंको करनेमें विफल हुए मैंने लक्ष्मीपति विष्णुका स्मरण किया। शिवभक्तिपरायण तथा श्रेष्ठ बुद्धिवाले भगवान् विष्णुने आकर मुझे समझाया॥ १५॥

शिवतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले भगवान् रमापतिके द्वारा समझाये जानेपर भी विमोहित मैं अपनी ईर्ष्या और हठको नहीं छोड़ सका॥ १६॥

तब मैंने शक्तिकी सेवाकर उन्हें प्रसन्न किया। उनकी ही कृपासे शिवको मोहित करनेके लिये अपने पुत्र दक्षसे वीरणकी कन्या असिक्नीके गर्भसे कन्याको उत्पन्न कराया॥ १७॥

अपने भक्तोंका हित करनेवाली वही उमा दक्षपुत्री नामसे प्रसिद्ध होकर दुःसह तप करके अपनी दृढ़भक्तिसे रुद्रकी पत्नी हो गयीं॥ १८॥

विकाररहित बुद्धिवाले वे प्रभु रुद्र अपने विवाहकालमें मुझे मोहितकर उमाके साथ गृहस्थ होकर उत्तम लीला करने लगे॥ १९॥

उमाके साथ विवाहकर सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छासे अपने कैलास पर्वतपर आकर स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले तथा सदा स्वतन्त्र रहनेवाले सदाशिव अत्यन्त विमोहित होकर उनके साथ रमण करने लगे॥ २०॥

हे मुने! उनके साथ विहार करते हुए निर्विकार शिवका वह सुखकारी बहुत-सा समय बीत गया। तदनन्तर किसी निजी इच्छाके कारण रुद्रकी दक्षसे स्पर्धा हो गयी। उस समय शिवकी मायासे दक्ष मोहसे ग्रस्त, महामूढ़ और अहंकारसे युक्त हो गया॥ २१-२२॥

उनके ही प्रभावसे महान् अहंकारी, मूढ़बुद्धि और अत्यन्त विमोहित हुआ वह दक्ष उन्हीं महाशान्त तथा निर्विकार भगवान् हरकी निन्दा करने लगा॥ २३॥

तदनन्तर गर्वमें भरे हुए सर्वाधिप दक्षने मुझे, विष्णुको तथा सभी देवताओंको बुलाकर, किंतु शिवजीको बिना बुलाये ही स्वयं यज्ञ कर डाला॥ २४॥

[किसी कारणवश] रुद्रपर असन्तुष्ट, क्रोधसे भरे हुए उस दक्ष प्रजापतिने उन्हें उस यज्ञमें नहीं बुलाया और दुर्भाग्यवश न तो उसने अपनी पुत्रीको ही उस यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आहूत किया॥ २५॥

जब मायासे मोहित चित्तवाले दक्ष प्रजापतिने शिवाको [यज्ञमें] आमन्त्रित नहीं किया, तो ज्ञानस्वरूपा उन महासाध्वीने अपनी लीला प्रारम्भ की। वे शिवजीकी आज्ञा प्राप्तकर गर्वयुक्त दक्षके द्वारा आमन्त्रित न होनेपर भी अपने पिता दक्षके घर पहुँच गयीं॥ २६-२७॥

उन देवीने यज्ञमें रुद्रके भागको न देखकर और अपने पितासे अपमानित होकर वहाँ [उपस्थित] सभीकी निन्दा करके [योगाग्निसे] अपने शरीरको त्याग दिया॥ २८॥

यह सुनकर देवदेवेश्वर रुद्रने दुःसह क्रोध करके अपनी महान् जटा उखाड़कर वीरभद्रको उत्पन्न किया॥ २९॥

गणोंसहित उसे उत्पन्न करके 'मैं क्या करूँ'—ऐसा कहते हुए उस वीरभद्रको शिवजीने आज्ञा दी कि [हे वीरभद्र! दक्षके यज्ञमें आये हुए] सभीका अपमान करते हुए तुम यज्ञका विध्वंस करो॥ ३०॥

शिवजीकी इस आज्ञाको पाकर महाबलवान् तथा पराक्रमी वह गणेश्वर वीरभद्र अपनी बहुत-सी सेना लेकर [यज्ञविध्वंसके लिये] वहाँ शीघ्र ही पहुँचा॥ ३१॥

उसकी आज्ञासे उन गणोंने वहाँ महान् उपद्रव प्रारम्भ किया। उस वीरभद्रने सबको दण्डित किया, [दण्ड पानेसे] कोई भी न बचा॥ ३२॥

वीरभद्रने देवताओंके साथ विष्णुको भी जीतकर दक्षका सिर काट लिया और उस सिरको अग्निमें हवन कर दिया। इस प्रकार महान् उपद्रव करते हुए उसने यज्ञको विनष्ट कर दिया। तत्पश्चात् वह कैलासपर गया और उसने शिवको प्रणाम किया॥ ३३-३४॥

इस प्रकार यज्ञका विध्वंस हो गया, देवताओंके देखते-देखते रुद्रके अनुचर वीरभद्र आदिने यज्ञको विनष्ट कर दिया॥ ३५॥

हे मुने! श्रुतियों तथा स्मृतियोंसे प्रतिपादित यह

नीति जान लेनी चाहिये कि श्रेष्ठ प्रभु रुद्रके रुष्ट हो जानेपर लोकमें सुख कैसे हो सकता है!॥ ३६ ॥

[उसके बाद सभी देवताओंने यज्ञकी पूर्णताके लिये भगवान् रुद्रकी स्तुति की] उस उत्तम स्तुतिको सुनकर रुद्र प्रसन्न हो गये। उन दीनवत्सल [भगवान् रुद्र]-ने सबकी प्रार्थनाको सफल बना दिया॥ ३७ ॥

अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले महात्मा शंकर महेशने पूर्ववत् कृपालुता की। उन्होंने दक्षप्रजापतिको जीवित कर दिया और सभी लोगोंका सत्कार किया, तदुपरान्त कृपालु शंकरने [दक्षसे] पुनः यज्ञ करवाया॥ ३८-३९ ॥

हे मुने! उस यज्ञमें विष्णु आदि सभी देवताओंने बड़े प्रसन्नमनसे भक्तिके साथ रुद्रका विशेष रूपसे पूजन किया॥ ४० ॥

सतीके शरीरसे उत्पन्न तथा सभी लोगोंको सुख देनेवाली वह ज्वाला पर्वतपर गिरी, वह लोगोंके द्वारा पूजित होनेपर सुख प्रदान करती है॥ ४१ ॥

ज्वालामुखीके नामसे प्रसिद्ध वे परमा देवी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली तथा दर्शनसे समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाली हैं। सम्पूर्ण कामनाओंके फलकी प्राप्तिहेतु लोग इस समय अनेकों विधि-विधानोंसे महोत्सवपूर्वक उनकी पूजा करते हैं॥ ४२-४३ ॥

तदनन्तर वे सती देवी हिमालयकी पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुईं। तब उनका पार्वती—यह नाम विख्यात हुआ॥ ४४ ॥

उन देवीने पुनः कठिन तपस्याके द्वारा उन्हीं परमेश्वर शिवकी आराधना करके उन्हें पतिरूपमें प्राप्त किया॥ ४५ ॥

हे मुनीश्वर! जो आपने मुझसे पूछा था, वह सब मैंने कह दिया, जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है॥ ४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीचरित्रवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

सदाशिवसे त्रिदेवोंकी उत्पत्ति, ब्रह्माजीसे देवता आदिकी सृष्टिके पश्चात् देवी सन्ध्या तथा कामदेवका प्राकट्य

सूतजी बोले—हे नैमिषारण्यनिवासी मुनियो! [ब्रह्माके] इस वचनको सुनकर नारदने पुनः पापोंको नष्ट करनेवाली कथा पूछी—॥ १ ॥

नारदजी बोले—हे विधे! हे विधे! हे महाभाग! हे महाप्रभो! आपके मुखकमलसे कही जानेवाली कल्याण-कारिणी कथाको सुनकर मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ २ ॥

हे विश्वस्रष्टा! सतीकी कीर्तिसे युक्त शिवजीके कल्याणमय तथा दिव्य उस सम्पूर्ण चरित्रको कहिये, मैं उसे सुनना चाहता हूँ। दक्षकी अनेक पत्नियोंमें से शोभामयी सती किस प्रकार उत्पन्न हुईं और हरने किस प्रकार स्त्रीसे विवाह करनेका विचार किया?॥ ३-४ ॥

पूर्वकालमें सतीने दक्षपर क्रोधसे किस प्रकार अपने शरीरका त्याग किया? पुनः किस प्रकार हिमालयकी कन्या पार्वती हुईं और किस प्रकारसे प्रकाशमें आयीं?॥ ५ ॥

पार्वतीका कठोर तप तथा उनका विवाह किस प्रकार हुआ? फिर वे कामदेवका नाश करनेवाले शिवकी अर्धांगिनी कैसे हुईं?॥ ६ ॥

हे महामते! इन सब बातोंको आप विस्तारके साथ कहिये; आपके समान संशयोंको दूर करनेवाला कोई दूसरा न तो है और न ही होगा॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शिव तथा सतीके परमपावन, दिव्य एवं गुह्यसे गुह्यतम तथा परम कल्याणकारी चरित्रको सुनिये। हे मुने! पूर्वकालमें परोपकारके लिये विष्णुद्वारा महान् भक्तिसे पूछे जानेपर शिवजीने भक्तवर विष्णुसे इसका वर्णन किया था॥ ८-९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उसके बाद मैंने भी यह कथा शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् विष्णुसे पूछी, तब उन्होंने प्रीतिपूर्वक विस्तारसे मुझसे कहा था। मैं सभी कामनाओंका

फल प्रदान करनेवाली एवं शिवके यशसे युक्त उस प्राचीन कथाको आपसे कहूँगा॥ १०-११॥

पहले भगवान् शिव निर्गुण, निर्विकल्प, रूप-हीन, शक्तिसे रहित, चिन्मात्र एवं सत्-असत्से परे थे; फिर हे विप्र! वे प्रभु सगुण, द्विरूप, शक्तिमान्, उमासहित, दिव्य आकृतिवाले, विकाररहित तथा परात्पर हो गये॥ १२-१३॥

हे मुनिसत्तम! उनके वामांगसे विष्णु, दक्षिणांगसे मैं ब्रह्मा तथा हृदयसे रुद्रकी उत्पत्ति हुई। मैं ब्रह्मा सृष्टि करनेवाला और विष्णु पालन करनेवाले तथा रुद्र स्वयं लय करनेवाले हुए। इस प्रकार सदाशिवके तीन रूप हुए॥ १४-१५॥

लोकपितामह मुझ ब्रह्माने उन्हीं सदाशिवकी आराधनाकर देव, दैत्य, मनुष्य आदि समस्त प्रजाओंकी सृष्टि की। दक्ष आदि प्रमुख प्रजापतियोंकी तथा देवश्रेष्ठोंकी रचनाकर मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ तथा अपनेको सबसे महान् समझने लगा॥ १६-१७॥

हे मुने! जिस समय मुझ ब्रह्माने मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा, क्रतु, वसिष्ठ, नारद, दक्ष एवं भृगु—इन महान् प्रभुतासम्पन्न मानस पुत्रोंकी सृष्टि की, उसी समय मेरे मनसे एक सुन्दर रूपवाली श्रेष्ठ युवती भी उत्पन्न हुई॥ १८-१९॥

वह सन्ध्याके नामसे प्रसिद्ध हुई, जो प्रातः-सन्ध्या तथा सायं-सन्ध्याके रूपमें क्रमशः दिवाक्षान्ता तथा जपन्तिका कही गयी। वह अत्यन्त सुन्दरी, सुन्दर भौंहोंवाली तथा मुनियोंके मनको मोहित करनेवाली थी॥ २०॥

सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त वैसी स्त्री देवलोक, मृत्युलोक और पाताललोकमें न उत्पन्न हुई, न है और न तो होगी। वह सम्पूर्ण गुणोंसे परिपूर्ण थी॥ २१॥

उस कन्याको देखते ही उठ करके उसे हृदयमें धारण करनेके लिये मैं मनमें सोचने लगा। दक्ष तथा मरीचि आदि लोकस्रष्टा मेरे पुत्र भी सोचने लगे। हे मुनिसत्तम! मैं ब्रह्मा अभी इस प्रकार सोच ही रहा था कि उसी समय एक अत्यन्त अद्भुत एवं मनोहर मानस पुरुष उत्पन्न हुआ॥ २२-२३॥

हे तात! वह पुरुष तप्त सुवर्णके समान कान्तिवाला, स्थूल वक्षःस्थलवाला, सुन्दर नासिकावाला, सुन्दर तथा गोल ऊरु-कमर-जंघावाला, काले तथा घुँघराले बालोंवाला, आपसमें मिली हुई भौंहोंवाला, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाला, कपाटके समान विस्तीर्ण छातीवाला, रोमराजिसे सुशोभित, बादलपर्यन्त ऊँचे गजराजके समान आकृतिवाला, महास्थूल तथा नीलवर्णका सुन्दर वस्त्र धारण किये, रक्तवर्णके हाथ, नेत्र, मुख, पैर और अँगुलियोंवाला, पतली कमरवाला, सुन्दर दाँतोंवाला, मतवाले हाथीकी-सी गन्धवाला, खिले हुए कमलके पत्रसदृश नेत्रोंवाला, अंगोंपर लगे हुए केसरसे नासिकाको तृप्त करनेवाला, शंखके समान गरदनवाला, मछलीके चिह्नसे अंकित ध्वजावाला, अत्यन्त ऊँचा, मकरके वाहनवाला, पुष्पोंके पाँच बाणोंसे युक्त, वेगवान्, पुष्पधनुषसे सुशोभित, कटाक्षपातसे अपने नेत्रोंको घुमाते हुए मनोहर प्रतीत होनेवाला, सुगन्धित श्वाससे युक्त और शृंगाररससे सेवित था॥ २४—२९॥

उस पुरुषको देखकर मेरे दक्ष आदि पुत्रोंका मन आश्चर्यसे भर गया और वे उसे जाननेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो गये॥ ३०॥

वासनासे आकुल चित्तवाले मेरे उन पुत्रोंका मन शीघ्र ही विकृत हो गया, हे तात! उन्हें थोड़ा भी धैर्य नहीं प्राप्त हुआ॥ ३१॥

वह पुरुष स्रष्टा तथा जगत्पति मुझ ब्रह्माको

देखकर विनयभावसे सिर झुकाकर प्रणाम करके मुझसे कहने लगा— ॥ ३२ ॥

पुरुष बोला—हे ब्रह्मन्! मैं कौन-सा कार्य करूँ? [मुझे जो कर्म करणीय हो,] उस कर्ममें मुझे नियुक्त कीजिये। हे विधाता! आप मेरे मान्य पुरुष हैं, मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँ, यही उचित है तथा इसीसे मेरी शोभा भी होगी॥ ३३ ॥

मेरे लिये जो अभिमानयोग्य स्थान हो तथा जो मेरी पत्नी हो, उसे मुझे बताइये। हे त्रिलोकेश! आप जगत्के पति हैं॥ ३४ ॥

ब्रह्माजी बोले—उस महात्मा पुरुषके इस वचनको सुनकर मैं ब्रह्मा अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गया और थोड़ी देरतक कुछ नहीं बोला, फिर मनको नियन्त्रितकर और आश्चर्यका परित्याग करके उस कामदेवको बताते हुए कहने लगा— ॥ ३५-३६ ॥

ब्रह्माजी बोले—तुम अपने इस स्वरूपसे और पुष्पोंके पाँच बाणोंसे सभी स्त्री तथा पुरुषोंको मोहित करते हुए सनातन सृष्टिकी रचना करो। इस चराचर त्रिलोकीमें जीव तथा देवता आदि कोई भी तुम्हारा लंघन करनेमें समर्थ नहीं होंगे॥ ३७-३८ ॥

हे पुरुषोत्तम! मैं, वासुदेव अथवा शंकर भी तुम्हारे वशमें रहेंगे, अन्य प्राणधारियोंकी तो बात ही क्या?॥ ३९ ॥

तुम गुप्त रूपसे प्राणियोंके हृदयमें प्रवेश करते हुए स्वयं सबके सुखके कारण बनकर सनातन सृष्टि करो॥ ४० ॥

समस्त प्राणियोंका विचित्र मन तुम्हारे पुष्पबाणोंका सुखपूर्वक भेदनेयोग्य लक्ष्य होगा; तुम सभीको सदा उन्मत्त करनेवाले होगे॥ ४१ ॥

मैंने सृष्टिमें प्रवृत्त करनेवाला यह तुम्हारा कर्म कह दिया। ये मेरे पुत्र तत्त्वपूर्वक तुम्हारे नामोंका वर्णन करेंगे॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे सुरश्रेष्ठ! ऐसा कहकर अपने पुत्रोंके मुखकी ओर देखकर क्षणभरके लिये मैं अपने पद्मासनपर बैठ गया॥ ४३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कामप्रादुर्भावका वर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

कामदेवको विविध नामों एवं वरोंकी प्राप्ति, कामके प्रभावसे ब्रह्मा तथा ऋषिगणोंका मुग्ध होना, धर्मद्वारा स्तुति करनेपर भगवान् शिवका प्राकट्य और ब्रह्मा तथा ऋषियोंको समझाना, ब्रह्मा तथा ऋषियोंसे अग्निष्वात्त आदि पितृगणोंकी उत्पत्ति, ब्रह्माद्वारा कामको शापकी प्राप्ति तथा निवारणका उपाय

ब्रह्माजी बोले—तब मेरे अभिप्रायको जाननेवाले मेरे पुत्र मरीचि आदि मुनियोंने उसके उचित नाम रखे॥ १ ॥

उन सृष्टिकर्ता दक्ष आदिने उसका मुख देखते ही तथा [उसकी अन्य चेष्टाओंसे] उसके समस्त चरित्रको जानकर उसे रहनेका स्थान दिया तथा पत्नी भी दे दी॥ २ ॥

मेरे पुत्र मरीचि आदि ऋषियोंने एकत्रित होकर नामोंका निश्चय करके उस पुरुषको नाम भी बता दिये॥ ३ ॥

ऋषिगण बोले—तुमने ब्रह्माजीसे उत्पन्न होते ही हमलोगोंके मनको मथ डाला है, इसलिये तुम लोकमें 'मन्मथ' नामसे प्रसिद्ध होओगे॥ ४ ॥

सभी लोकोंमें तुम सुन्दर रूपवाले हो, तुम्हारे समान कोई भी सुन्दर नहीं है, इसलिये हे मनोभव! 'काम' नामसे भी तुम विख्यात होओगे॥ ५ ॥

तुम सभीको मदोन्मत्त करनेके कारण 'मदन' कहे जाओगे। अहंकारयुक्त होकर दर्पसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये तुम 'कन्दर्प' नामसे भी संसारमें प्रसिद्ध होओगे॥ ६ ॥

तुम्हारे समान किसी भी देवताका पराक्रम नहीं होगा, अतः तुम्हारे लिये सभी स्थान होंगे और तुम सर्वव्यापी होओगे ॥ ७ ॥

ये जो आदिप्रजापति पुरुषोत्तम दक्ष हैं, वे स्वयं ही तुमको योग्य पत्नीके रूपमें सुन्दर स्त्री प्रदान करेंगे ॥ ८ ॥

ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुई यह सुन्दर रूपवाली कन्या सन्ध्या नामसे सभी लोकोंमें विख्यात होगी ॥ ९ ॥

अच्छी प्रकारसे ध्यान करते हुए ब्रह्माजीके हृदयसे उत्पन्न होनेके कारण तेज आभावाली तथा मल्लिकापुष्पके सदृश यह कन्या सन्ध्या—इस नामसे विख्यात होगी ॥ १० ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कामदेव अपने पाँच पुष्प-आयुधोंको लेकर वहींपर गुप्त रूपसे स्थित होकर विचार करने लगा— ॥ ११ ॥

हर्षण, रोचन, मोहन, शोषण तथा मारण नामक ये [मेरे] पाँच अस्त्र मुनियोंको भी मोहित करनेवाले कहे गये हैं ॥ १२ ॥

ब्रह्माजीने मुझे जिस सनातन कर्मको करनेके लिये आदेश दिया है, उसे मैं यहाँ मुनियों और ब्रह्माजीके सन्निकट ही करूँगा ॥ १३ ॥

यहाँ बहुत-से मुनिगण तथा स्वयं प्रजापति ब्रह्माजी भी उपस्थित हैं। ये लोग साक्षीरूपसे विद्यमान हैं, इसलिये मेरे कर्मकी सत्यताका आरम्भ भी हो जायगा ॥ १४ ॥

यह ब्रह्माजीके द्वारा सन्ध्या नामसे कही गयी यह कन्या भी मेरे वचनका समर्थन करेगी। मैं इसी स्थानपर अपने कर्मकी परीक्षा करके ही प्रयोगद्वारा सबको मोहित करूँगा ॥ १५ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विचार करनेके अनन्तर मनमें निश्चय करके वह अपने पुष्पके धनुषपर पुष्पके बाणोंको चढ़ाने लगा। श्रेष्ठ धनुर्धारी कामदेवने धनुष खींचनेकी मुद्रामें स्थित होकर यत्नपूर्वक धनुष चढ़ाकर उसे मण्डलाकार किया ॥ १६-१७ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जब इस प्रकारके धनुषपर कामदेवने अपना बाण चढ़ाया, तो उसी समय [मनको] आह्लादित करनेवाली सुगन्धित वायु बहने लगी ॥ १८ ॥

उस समय कामदेवने तीक्ष्ण पुष्पबाणोंसे मुझ ब्रह्माको तथा सभी मानसपुत्रोंको मोहित कर लिया ॥ १९ ॥

हे मुने! तत्पश्चात् सभी मुनिगण और मैं भी मोहित हो गया, सभीके मनमें कामविकार उत्पन्न हो गया ॥ २० ॥

विकारसे युक्त होनेके कारण सभी लोग सन्ध्याकी ओर बार-बार देखने लगे। सभीके मनमें कामका उद्रेक हो गया; क्योंकि स्त्री कामको बढ़ानेवाली होती है ॥ २१ ॥

उस कामदेवने सभीको बार-बार मोहित करके जिस किसी भी तरहसे वे कामविकारको प्राप्त हों, वैसा उन सबको कर दिया ॥ २२ ॥

उस स्त्रीको देखकर जब मैं ब्रह्मा उन्मत्त इन्द्रियोंवाला हो गया, उस समय मेरे शरीरसे उनचास भाव उत्पन्न हो गये ॥ २३ ॥

कामबाणके प्रहारसे उन सभीके द्वारा देखी जाती हुई वह सन्ध्या भी अपने कटाक्षोंके आवरणसे अनेक प्रकारके भाव प्रकट करने लगी ॥ २४ ॥

स्वभावसे सुन्दरी वह सन्ध्या मनसे उत्पन्न उन भावोंको प्रकट करती हुई छोटी-छोटी लहरोंसे युक्त गंगाकी तरह शोभित होने लगी ॥ २५ ॥

हे मुने! इस प्रकारके भावोंसे युक्त सन्ध्याको देखकर कामसे परिपूर्ण शरीरवाला मैं ब्रह्मा उसकी अभिलाषा करने लगा ॥ २६ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ! तब मरीचि, अत्रि आदि सभी मुनि तथा दक्ष प्रजापति आदि विकृत इन्द्रियोंवाले हो गये। दक्ष-मरीचि आदि ऋषियों तथा मुझे और सन्ध्याको भी

कामविकारसे युक्त देखकर कामदेवको अपने कार्यपर विश्वास हो गया॥ २७-२८॥

अब कामदेवके मनमें यह विश्वास हो गया कि ब्रह्माने मुझे जिस कार्यके लिये आदेश दिया है, मैं वह कार्य करनेमें पूर्ण रूपसे सक्षम हूँ॥ २९॥

[ब्रह्माजीके पुत्र] धर्मने अपने पिता तथा भाइयोंकी ऐसी दशा देखकर धर्मकी रक्षा करनेवाले भगवान् सदाशिवका स्मरण किया॥ ३०॥

धर्मने धर्मपालक शिवजीका मनसे स्मरणकर दीनभावनासे युक्त होकर अनेक प्रकारके वाक्योंसे उनकी इस प्रकार स्तुति की—॥ ३१॥

धर्म बोला—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे धर्मपाल! आपको नमस्कार है। हे शम्भो! सृष्टि, पालन तथा विनाश करनेवाले आप ही हैं॥ ३२॥

हे प्रभो! आपने निर्गुण होकर भी रज, सत्त्व तथा तमोगुणसे सृष्टिकार्यके लिये ब्रह्मा, पालनके लिये विष्णु तथा प्रलयके लिये रुद्रस्वरूप धारण किया है॥ ३३॥

[हे प्रभो!] आप शिव तीनों गुणोंसे रहित, प्रकृतिसे परे, तुरीयावस्थामें स्थित, निर्गुण, निर्विकार तथा अनेक प्रकारकी लीलाओंमें प्रवीण हैं॥ ३४॥

हे महादेव! इस भयंकर पापसे मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, इस समय मेरे पिता तथा मेरे भाई पापबुद्धिवाले हो गये हैं॥ ३५॥

ब्रह्माजी बोले—धर्मके द्वारा परमात्मा प्रभुकी जब इस प्रकार स्तुति की गयी, तब वे आत्मभू शिव धर्मकी रक्षा करनेके लिये वहीं प्रकट हो गये॥ ३६॥

वे शम्भु आकाशमें स्थित होकर मुझ ब्रह्मा तथा दक्ष आदिको इस प्रकारसे मोहित देखकर मन-ही-मन हँसने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! उन सबको साधुवाद देकर और बार-बार हँसकर मुझे लज्जित करते हुए वे वृषभध्वज यह कहने लगे—॥ ३७-३८॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! अपनी कन्याको देखकर आपको कामभाव कैसे उत्पन्न हो गया? वेदोंका अनुसरण करनेवालोंके लिये यह उचित नहीं है॥ ३९॥

बुद्धिमान्‌को चाहिये कि माता, भगिनी, भ्रातृपत्नी तथा कन्याको समान भावसे देखे। इन्हें कदापि कुदृष्टिसे न देखे॥ ४०॥

वेदमार्गका यह सिद्धान्त तो आपके मुखमें स्थित है। हे विधे! आपने कामके उत्पन्न होते ही उसे कैसे विस्मृत कर दिया!॥ ४१॥

हे चतुरानन! आपके मनमें धैर्य जागरूक रहना चाहिये। आश्चर्य है कि आपने इस कामके वशीभूत हो कन्यासे रमण करनेके लिये इस प्रकार अपने धैर्यको नष्ट कर दिया॥ ४२॥

एकान्त-योगी तथा सर्वदा सूर्यका दर्शन करनेवाले दक्ष, मरीचि आदि भी स्त्रीमें आसक्त चित्तवाले हो गये॥ ४३॥

देश-कालका ज्ञान न रखनेवाले, मन्दात्मा तथा अल्प बुद्धिवाले कामदेवने भी अपनी प्रबलतासे काम-बाणोंद्वारा आपलोगोंको विकारयुक्त कैसे बना दिया?॥ ४४॥

उस पुरुषको तथा उसके वेद, शास्त्र आदिके ज्ञानको धिक्कार है, जिसके मनको स्त्री हर लेती है और धैर्यसे विचलित करके मनको लोलुपतामें डुबा देती है॥ ४५॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सदाशिवके वचनको सुनकर मैं दुगुनी लज्जामें पड़ गया, उस समय मेरा शरीर पसीनेसे पानी-पानी हो उठा॥ ४६॥

हे मुने! तत्पश्चात् कामरूपिणी सन्ध्याको ग्रहण करनेकी इच्छा करते हुए भी मैंने शिवजीके भयसे इन्द्रियोंको वशमें करके कामविकारको दूर कर दिया॥ ४७॥

हे द्विजश्रेष्ठ! उस समय मेरे शरीरसे [लज्जाके कारण] जो पसीना गिरा, उसीसे अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद् नामक पितृगणोंकी उत्पत्ति हुई। अंजनके समान कृष्णवर्णवाले और विकसित कमलके समान नेत्रवाले वे पितर महायोगी, पुण्यशील तथा संसारसे विमुख रहनेवाले हैं॥ ४८-४९॥

हे मुने! चौंसठ हजार अग्निष्वात्त पितर और छियासी हजार बर्हिषद् पितर कहे गये हैं॥ ५०॥

उसी समय दक्षके शरीरसे भी स्वेद निकलकर पृथ्वीपर गिरा, उससे समस्त गुणसम्पन्न परम मनोहर एक स्त्रीकी उत्पत्ति हुई॥ ५१॥

उसका शरीर सूक्ष्म था, कटिप्रदेश सम था, शरीरकी रोमावली अत्यन्त सूक्ष्म थी, उसके अंग कोमल तथा दाँत परम सुन्दर थे और वह तपे हुए सोनेके समान कान्तिसे देदीप्यमान हो रही थी॥ ५२॥

वह अपने शरीरके समस्त अवयवोंसे बड़ी मनोहर प्रतीत हो रही थी तथा उसका मुखकमल पूर्ण चन्द्रमाके समान था। उसका नाम रति था, जो मुनियोंके भी मनको मोहित करनेवाली थी॥ ५३॥

क्रतु, वसिष्ठ, पुलस्त्य तथा अंगिराको छोड़कर मरीचि आदि छः ऋषियोंने अपनी इन्द्रियोंका निग्रह कर लिया। हे मुनिश्रेष्ठ! इन क्रतु आदि चार ऋषियोंका वीर्य पृथ्वीपर गिरा, उन्हींसे दूसरे पितृगणोंकी उत्पत्ति हुई॥ ५४-५५॥

इन पितरोंमें सोमपा, आज्यपा, सुकालिन् तथा हविष्मान् मुख्य हैं। ये सभी पुत्र कव्यको धारण करनेवाले कहे गये हैं॥ ५६॥

क्रतुके पुत्र सोमपा नामक पितर, वसिष्ठके पुत्र सुकालिन् नामक पितर, पुलस्त्यके पुत्र आज्यपा तथा अंगिराके पुत्र हविष्मान् नामक पितरके रूपमें उत्पन्न हुए॥ ५७॥

हे विप्रेन्द्र! इस प्रकार अग्निष्वात्त आदि पितरोंके उत्पन्न हो जानेपर पितरोंके मध्य वे सभी कव्यका वहन करनेवाले कव्यवाट् हुए॥ ५८॥

इस प्रकार सन्ध्या पितरोंको उत्पन्न करनेवाली बनकर उनकी उद्देश्यसिद्धिमें लगी रहती थी। यह शिवके द्वारा देख लिये जानेके कारण दोषोंसे रहित तथा धर्म-कर्ममें परायण रहती थी॥ ५९॥

इसी बीच सदाशिव समस्त महर्षियोंपर अनुग्रह करके तथा विधिपूर्वक धर्मकी रक्षाकर शीघ्र ही अन्तर्धान हो गये॥ ६०॥

उसके बाद शम्भु सदाशिवके वाक्योंसे मैं पितामह लज्जित हुआ। मैंने अपनी भ्रुकुटि चढ़ा ली और कामदेवपर बड़ा क्रुद्ध हुआ॥ ६१॥

हे मुने! मेरे मुखको देखकर और मेरा अभिप्राय समझकर रुद्रसे भयभीत उस कामदेवने अपने बाणोंको लौटा लिया॥ ६२॥

हे मुने! तब मैं पद्मयोनि ब्रह्मा कोपयुक्त होकर इस प्रकार जलने लगा, जिस प्रकार भस्म करनेकी इच्छावाली अति बलवान् अग्नि प्रज्वलित हो उठती है॥ ६३॥

[मैंने क्रोधमें भरकर उसे यह शाप दे दिया] अहंकारसे मोहित हुआ यह कन्दर्प शिवजीके प्रति दुष्कर कर्म करके उनकी नेत्राग्निसे भस्म हो जायगा॥ ६४॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मुझ ब्रह्माने पितृसमूहोंके तथा जितेन्द्रिय मुनियोंके सामने इस कामको यह अमित शाप दिया॥ ६५॥

मेरे शापको सुनकर भयभीत हुआ कामदेव उसी क्षण अपने बाणोंको त्यागकर सबके सामने प्रकट हो गया॥ ६६॥

हे मुने! उसका सारा गर्व नष्ट हो गया। तब वह दक्ष आदि मेरे पुत्रों, [अग्निष्वात्तादि] पितरों, सन्ध्या एवं मुझ ब्रह्माके सामने ही सबको सुनाते हुए यह कहने लगा— ॥ ६७॥

काम बोला—हे ब्रह्मन्! आप तो न्यायमार्गका अनुसरण करनेवाले हैं, हे लोकेश! तब मुझ निरपराधको आपने इस प्रकार दारुण शाप क्यों दे दिया?॥ ६८॥

हे ब्रह्मन्! आपने मेरे लिये जो कहा था, मैंने तो वही कार्य किया। आपको मुझे शाप देना ठीक नहीं है; क्योंकि मैंने [आपकी आज्ञाके विरुद्ध] कोई अन्य कार्य नहीं किया है॥ ६९॥

[हे ब्रह्मन्!] मैं [ब्रह्मा], विष्णु तथा शिव—ये सब भी तुम्हारे बाणोंके वशीभूत होकर रहेंगे—ऐसा जो आपने कहा था, उसीके अनुसार ही मैंने परीक्षा ली थी॥ ७०॥

अतः हे ब्रह्मन्! इसमें मेरा अपराध नहीं है। हे देव! हे जगत्पते! यदि आपने मुझ निरपराधको यह दारुण शाप दे ही दिया, तो इसका कोई समय भी निश्चित कर दीजिये॥ ७१॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तब मैं जगत्पति ब्रह्मा उसकी यह बात सुनकर चित्तको वशमें करनेवाले कामको बार-बार डाँटता हुआ इस प्रकार बोला— ॥ ७२॥

[हे काम!] यह सन्ध्या मेरी कन्या है, तुमने इसकी ओर सकाम करनेके लिये मुझे [अपने कामका]

लक्ष्य बनाया। इसलिये मैंने तुम्हें शाप दिया॥ ७३॥

हे मनोभव! अब मेरा क्रोध शान्त हो गया है, अतः मैं तुमसे कह रहा हूँ, उसे सुनो। तुम सन्देहरहित होकर सुखी हो जाओ और भय छोड़ो॥ ७४॥

हे मदन! तुम महादेवजीकी नेत्राग्निसे भस्म होकर बादमें शीघ्र ही इसीके समान शरीर प्राप्त करोगे॥ ७५॥

जब शंकरजी विवाह करेंगे, तब वे अनायास ही तुम्हें शरीर प्रदान करेंगे॥ ७६॥

[हे नारद!] कामसे इस प्रकार कहकर मैं लोकपितामह उन मानसपुत्र मुनिवरोंके देखते-देखते ही अन्तर्धान हो गया॥ ७७॥

इस प्रकार मेरे वचनको सुनकर कामदेव तथा मेरे वे सभी मानसपुत्र प्रसन्न हो गये और शीघ्रतासे अपने-अपने घरोंको चले गये॥ ७८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कामशापानुग्रहवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

कामदेवके विवाहका वर्णन

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाप्राज्ञ! हे विधे! संसारकी रचना करनेवाले हे प्रभो! आपने शिवजीकी लीलारूपी अमृतसे युक्त यह अद्भुत कथा कही॥ १॥

हे तात! इसके बाद क्या हुआ? यदि मैं शम्भुकी कथापर आश्रित उनके चरित्रको सुननेमें श्रद्धावान् होऊँ, तो उसे कहिये॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार शिवजीके अपने स्थानको चले जाने तथा मुझ ब्रह्माके अन्तर्धान हो जानेपर दक्षप्रजापति मेरी बातका स्मरण करते हुए कामदेवसे कहने लगे— ॥ ३॥

दक्ष बोले—हे काम! सुन्दर रूप एवं गुणोंसे युक्त यह कन्या मेरे शरीरसे उत्पन्न हुई है, अतः तुम अपनी पत्नी बनानेके लिये इसे ग्रहण करो, यह गुणोंमें तुम्हारे ही समान है॥ ४॥

हे महातेजस्विन्! यह कन्या सदा तुम्हारे साथ रहेगी और धर्मके अनुरूप तुम्हारी इच्छाके अनुसार तुम्हारे वशमें रहेगी॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] यह कहकर दक्षने अपने स्वेदसे उत्पन्न हुई कन्याका नाम रति रखकर और उसे अपने आगेकर कामदेवको दे दिया॥ ६॥

हे नारद! वह कामदेव मुनियोंको भी मोहित

करनेवाली उस परम सुन्दर दक्षकन्यासे विवाह करके बड़ा प्रसन्न हुआ॥ ७॥

प्रेमासक्त कामदेव भी परम कल्याणकारिणी रति नामक अपनी स्त्रीको देखकर उसके गुणोंसे आकृष्ट होकर उसपर अत्यन्त मोहित हो गया॥ ८॥

गौरवर्णवाली, हरिणाक्षी तथा चंचल नेत्रप्रान्तवाली वह रति भी कामके सदृश होनेके कारण उसे परम आह्लाद प्रदान करने लगी॥ ९॥

उसकी चपल भौंहोंको देखकर कामदेव संशयमें पड़ जाता था कि विधाताने सबको वशमें करनेवाले मेरे

धनुषको इसके नेत्रोंमें सन्निविष्ट कर दिया है क्या ?॥ १०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! उस रतिके कटाक्षोंकी शीघ्र गति तथा उसकी सुन्दरताको देखकर कामदेवको अपने अस्त्रोंकी शीघ्र गतिपर विश्वास नहीं रह गया॥ ११॥

उसके स्वाभाविक रूपसे सुगन्धित तथा मन्द श्वासवायुको सूँघकर कामदेवने मलय-पवनके प्रति अपनी श्रद्धाका त्याग कर दिया॥ १२॥

सुन्दर लक्षणोंसे युक्त तथा पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान उसके मुखमण्डलको देखकर कामदेव उसके मुख और चन्द्रमाका भेद करनेमें असमर्थ हो गया॥ १३॥

सुवर्णकमलकी कलीके समान उसका वक्ष:स्थल भ्रमरसे वेष्टित कमलकी भाँति सुशोभित हो रहा था॥ १४॥

उसका कठोर, स्थूल एवं उन्नत वक्ष:स्थलका मध्यभाग नाभिपर्यन्त लटकनेवाली, लम्बी, पतली तथा चन्द्रमाके समान स्वच्छ माला धारण किये हुए था। वह कामदेव भ्रमरकी पंक्तियोंसे घिरी अपने पुष्पधनुषकी प्रत्यंचाको भी भूल गया और उसे देखना छोड़कर बार-बार उसी रतिकी ओर एकटक देखने लगा॥ १५-१६॥

चारों ओर त्वचासे परिवेष्टित उसकी नाभिका रन्ध्र अत्यन्त गम्भीर था। उसके मुखकमलपर दोनों नेत्र लाल कमलके समान प्रतीत हो रहे थे॥ १७॥

उस कामदेवने कृश कटिप्रदेशवाले शरीरसे सुशोभित, स्वभावत: सुवर्णकी आभावाली उस रमणीको सुवर्णवेदीके समान देखा॥ १८॥

कदलीस्तम्भके सदृश विस्तृत, स्निग्ध, कोमल तथा मनोहर उसकी जंघाओंको कामदेवने अपनी शक्तिके समान देखा॥ १९॥

लाल-लाल पादाग्र तथा प्रान्तभागवाले उसके दोनों पैर रँगे हुए-से थे, इससे कामदेव अनुरक्त होकर उसका मित्र बन गया। पलाशपुष्पके समान लाल नखोंसे युक्त, सूक्ष्म अग्रभागवाले तथा गोलाकार अँगुलियोंसे युक्त उसके दोनों हाथ अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहे थे। उसकी दोनों भुजाएँ कान्तिमय, मृणालके समान लम्बी, कोमल, स्निग्ध और कान्तियुक्त लाल मूँगेके समान शोभित हो रही थीं। उसका मनोहर केशपाश काले-काले बादलोंके समान शोभा पा रहा था, इससे वह कामप्रिया चमरीके बालोंको धारण करनेवाले चँवरकी भाँति सुशोभित हो रही थी। [सौन्दर्ययुक्त] ऐसी रतिको हर्षित नेत्रोंवाले कामदेवने उसी प्रकार ग्रहण किया, जिस प्रकार हिमालयसे उत्पन्न गंगाको महादेवजीने ग्रहण किया था॥ २०—२४॥

चक्र तथा पद्मके चिह्नोंसे युक्त, मृणालखण्डके समान मनोहर हाथोंसे युक्त वह रति गंगा नदीके समान प्रतीत हो रही थी। उस रतिकी दोनों भौंहोंकी चेष्टाएँ नदीकी सूक्ष्म लहरोंके समान प्रतीत हो रही थीं॥ २५॥

उसके कटाक्षपात ही नदीकी वेगवती धारा थे और विशाल नेत्र कमलके समान प्रतीत हो रहे थे। उसकी सूक्ष्म रोमावली शैवाल थी और वह अपने मनरूपी वृक्षोंसे विलास कर रही थी॥ २६॥

उसकी गम्भीर नाभि ह्रदके समान शोभा पा रही थी। वह कृशगात्रा रति अपने सर्वांगकी रमणीयता तथा लावण्यमयी शोभासे बारह आभूषणोंसे युक्त तथा सोलह श्रृंगारोंसे शोभायमान होकर सम्पूर्ण लोकोंको मोहनेवाली और अपनी कान्तिसे दसों दिशाओंको प्रज्वलित करती हुई महालक्ष्मी-जैसी प्रतीत हो रही थी॥ २७-२८॥

इस प्रकार परम सुन्दरी रतिको देखकर कामदेवने इसे बड़ी प्रसन्नतासे ग्रहण किया, जिस प्रकार कि स्वयं रागसे उपस्थित हुई महालक्ष्मीको भगवान् नारायणने ग्रहण किया था॥ २९॥

उस समय कामदेवने आनन्द होनेके कारण विमोहित होकर ब्रह्माजीके द्वारा दिये गये दारुण शापको भूलकर दक्षसे कुछ नहीं कहा॥ ३०॥

हे तात! उस समय [सबके] सुखको बढ़ानेवाला महान् उत्सव हुआ। दक्ष प्रजापति अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और कन्या रति भी परम प्रसन्न हो गयी॥ ३१॥

अत्यधिक सुख पाकर कामका समस्त दुःख विनष्ट हो गया और इधर दक्षतनया रति भी कामको पतिरूपमें प्राप्तकर परम हर्षित हुई॥ ३२॥

रतिसे मोहित हुआ गद्गद कण्ठवाला वह मधुरभाषी काम सायंकालमें मनोहर बिजलीसे युक्त मेघके समान दक्षकन्या रतिके साथ शोभा पाने लगा॥ ३३॥

इस प्रकार रतिपति कामने अत्यन्त मोहित होकर उस रतिको इस प्रकार अपने हृदयमें ग्रहण किया, जिस प्रकार योगी ब्रह्मविद्याको ग्रहण करता है और वह रति भी श्रेष्ठ कामको प्राप्तकर इस प्रकार प्रसन्न हुई, जिस प्रकार पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली महालक्ष्मी विष्णुको पतिरूपमें प्राप्तकर प्रसन्न हुई थीं॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कामविवाहवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

ब्रह्माकी मानसपुत्री कुमारी सन्ध्याका आख्यान

सूतजी बोले—हे महर्षियो! ब्रह्माजीके इस वचनको सुनकर मुनिश्रेष्ठ [नारद] प्रसन्नचित्त होकर शंकरजीका स्मरण करके आनन्दपूर्वक कहने लगे—॥ १॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे विष्णुशिष्य! हे महाभाग! हे महामते! आपने शिवजीकी अद्भुत लीलाका वर्णन किया॥ २॥

जब कामदेव अपनी पत्नीको प्राप्तकर प्रसन्न होकर अपने घर चला गया तथा प्रजापति दक्ष भी अपने घर चले गये, सृष्टिकर्ता आप ब्रह्मा तथा आपके मानसपुत्र भी अपने-अपने घर चले गये, तब पितरोंकी जन्मदात्री वह ब्रह्मपुत्री सन्ध्या कहाँ गयी?॥ ३-४॥

उसने क्या किया और उसका विवाह किस पुरुषके साथ हुआ? इन सब बातोंको और सन्ध्याके चरित्रको विशेष रूपसे कहिये॥ ५॥

सूतजी बोले—तत्त्ववेत्ता ब्रह्मदेव परम बुद्धिमान् देवर्षि नारदके इस वचनको सुनकर भक्तिपूर्वक शंकरजीका स्मरण करके कहने लगे—॥ ६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! सन्ध्याका सम्पूर्ण शुभ चरित्र सुनिये, जिसे सुनकर हे मुने! सभी स्त्रियाँ पतिव्रता होती हैं॥ ७॥

वह सन्ध्या, जो पूर्वकालमें मेरे मनसे उत्पन्न हुई थी, वही तपस्याकर शरीर छोड़नेके बाद अरुन्धती हुई॥ ८॥

उस बुद्धिमती तथा उत्तम व्रत करनेवाली सन्ध्याने मुनिश्रेष्ठ मेधातिथिकी कन्याके रूपमें जन्म ग्रहणकर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरके वचनोंसे महात्मा वसिष्ठका अपने पतिरूपमें वरण किया। वह श्रेष्ठ पतिव्रता, वन्दनीय, पूजनीय तथा दयाकी प्रतिमूर्ति थी॥ ९-१०॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! उस सन्ध्याने क्यों, कहाँ तथा किस उद्देश्यसे तप किया, किस प्रकार वह अपना शरीर त्याग करके मेधातिथिकी कन्या हुई और उसने किस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके द्वारा बताये गये उत्तम व्रतवाले महात्मा वसिष्ठको अपना पति स्वीकार किया?॥ ११-१२॥

हे पितामह! इसे सुननेकी मेरी बड़ी उत्सुकता है, अतः सुननेकी इच्छावाले मुझसे अरुन्धतीके चरित्रका विस्तारपूर्वक ठीक-ठीक वर्णन कीजिये॥ १३॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!]पहले अपनी पुत्री सन्ध्याको देखकर मेरा मन कामसे आकृष्ट हो गया, किंतु बादमें शिवके भयसे मैंने उसे छोड़ दिया॥ १४॥

कामबाणसे घायल होकर उस सन्ध्याका तथा मनको वशमें रखनेवाले महात्मा ऋषियोंका भी चित्त चलायमान हो गया था॥ १५॥

उस समय मेरे प्रति कहे गये शिवजीके उपहासयुक्त वचनको सुनकर और ऋषियोंके प्रति अपने चित्तको मर्यादा छोड़कर चलायमान देखकर तथा बार-बार मुनियोंको मोहित करनेवाले उस प्रकारके भावको देखकर वह सन्ध्या विवाहके लिये स्वयं अत्यन्त दुःखी हुई॥ १६-१७॥

हे मुने! कामदेवको शाप देकर जब मैं अन्तर्धान हो गया एवं शिवजी अपने स्थान कैलासको चले गये, उस समय हे मुनिसत्तम! वह मेरी पुत्री सन्ध्या क्षुब्ध होकर कुछ विचार करके ध्यानमग्न हो गयी॥ १८-१९॥

वह मनस्विनी सन्ध्या कुछ देरतक अपने पूर्व वृत्तका स्मरण करती हुई उस समय यथोचित रूपसे यह

विचार करने लगी— ॥ २० ॥

सन्ध्या बोली—मेरे पिताने उत्पन्न होते ही मुझ युवतीको देखकर कामसे प्रेरित होकर अनुरागपूर्वक मुझे प्राप्त करनेकी अभिलाषा की ॥ २१ ॥

इसी प्रकार आत्मतत्त्वज्ञ ब्रह्मदेवके मानसपुत्रोंने भी मुझे देखकर अपना मन मर्यादासे रहितकर कामाभिलाषसे युक्त कर लिया ॥ २२ ॥

इस दुरात्मा कामदेवने मेरे भी चित्तको मथ डाला, जिससे सभी मुनियोंको देखकर मेरा मन बहुत चंचल हो गया ॥ २३ ॥

इस पापका फल कामदेवने स्वयं पाया कि शंकरजीके सामने कुपित होकर ब्रह्माजीने उसे शाप दे दिया ॥ २४ ॥

मैं पापिनी भी इस पापका फल पाऊँगी, अतः उस पापसे शुद्ध होनेके लिये मैं भी कोई साधन करना चाहती हूँ; क्योंकि मुझे देखकर मेरे पिता तथा सभी भाई प्रत्यक्ष रूपसे कामभावपूर्वक मेरी अभिलाषा करने लगे। अतः मुझसे बढ़कर कोई पापिनी नहीं है ॥ २५-२६ ॥

उन सबको देखकर मुझमें भी अमर्यादित रूपसे कामभाव उत्पन्न हो गया और मैं भी अपने पिता तथा सभी भाइयोंमें पतिके समान भावना करने लगी ॥ २७ ॥

अब मैं इस पापका प्रायश्चित्त करूँगी और वेदमार्गके अनुसार अपने शरीरको अग्निमें हवन कर दूँगी। मैं इस भूतलपर एक मर्यादा स्थापित करूँगी, जिससे कि शरीरधारी उत्पन्न होते ही कामभावसे युक्त न हों ॥ २८-२९ ॥

इसके लिये मैं परम कठोर तप करके उस मर्यादाको स्थापित करूँगी और बादमें अपना शरीर छोड़ूँगी ॥ ३० ॥

मेरे जिस शरीरमें मेरे पिता एवं भाइयोंने कामाभिलाष किया, उस शरीरसे अब कोई प्रयोजन नहीं है ॥ ३१ ॥

मैंने भी जिस शरीरसे अपने पिता तथा भाइयोंमें कामभाव उत्पन्न किया, अब वह शरीर पुण्यकार्यका साधन नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥

वह सन्ध्या अपने मनमें ऐसा विचारकर चन्द्रभाग नामक श्रेष्ठ पर्वतपर गयी, जहाँसे चन्द्रभागा नदी निकली हुई है ॥ ३३ ॥

इसके बाद सन्ध्याको उस श्रेष्ठ पर्वतपर तपस्याके लिये गयी हुई जानकर मैंने अपने पासमें बैठे हुए, मनको वशमें रखनेवाले, सर्वज्ञ, ज्ञानयोग तथा वेदवेदांगके पारगामी अपने पुत्र वसिष्ठसे कहा— ॥ ३४-३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र वसिष्ठ! तपस्याका विचार करके गयी हुई मनस्विनी पुत्री सन्ध्याके पास जाओ और इसे विधिपूर्वक दीक्षा प्रदान करो ॥ ३६ ॥

हे मुनिसत्तम! प्रथम यह तुमलोगोंको, मुझको तथा अपनेको कामाभिलाषसे युक्त देख रही थी, परंतु अब इसके नेत्रोंकी चपलता दूर हो गयी है ॥ ३७ ॥

यह तुमलोगोंको तथा अपने अभूतपूर्व दुष्कर्मको समझकर 'मृत्यु ही अच्छी है'—ऐसा विचारकर प्राण छोड़नेकी इच्छा करती है ॥ ३८ ॥

अब यह तपस्याके द्वारा अमर्यादित प्राणियोंमें मर्यादा स्थापित करेगी, इसलिये तपस्या करनेके लिये वह साध्वी चन्द्रभाग नामक पर्वतपर गयी है ॥ ३९ ॥

हे तात! वह तपस्याकी किसी भी क्रियाको नहीं जानती है, अतः जिस प्रकारके उपदेशसे वह अपने अभीष्टको प्राप्त करे, वैसा करो ॥ ४० ॥

हे मुने! तुम अपने इस रूपको छोड़कर दूसरा शरीर धारणकर उसके समीपमें स्थित होकर तपश्चर्याकी क्रियाओंको प्रदर्शित करो ॥ ४१ ॥

उसने यहाँपर मेरे तथा तुम्हारे रूपको पहले देख लिया है, इस रूपद्वारा वह कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं करेगी, इसलिये दूसरा रूप धारण करो ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार दयालु मुनि वसिष्ठजीने मुझसे आज्ञा प्राप्त की और तथास्तु—ऐसा कहकर वे सन्ध्याके समीप गये ॥ ४३ ॥

वसिष्ठजीने वहाँ मानससरोवरके समान गुणोंसे परिपूर्ण देवसरको तथा उसके तटपर गयी हुई उस सन्ध्याको भी देखा ॥ ४४ ॥

उज्ज्वल कमलोंसे युक्त वह देवसर तटपर स्थित सन्ध्याद्वारा इस प्रकार शोभित हो रहा था, मानो प्रदोषकालमें उदित चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंसे युक्त आकाश रात्रिमें सुशोभित हो रहा हो॥ ४५॥

कौतूहलयुक्त वसिष्ठजी सुन्दर भावोंवाली उस सन्ध्याको देखकर बृहल्लोहित नामक उस तालाबकी ओर देखने लगे॥ ४६॥

उन्होंने उसी चन्द्रभाग पर्वतके शिखरोंसे दक्षिण समुद्रकी ओर जानेवाली चन्द्रभागा नदीको देखा। वह नदी चन्द्रभाग पर्वतके विशाल पश्चिमीभागको तोड़कर समुद्रकी ओर उसी प्रकार जा रही थी, जैसे हिमालयसे गंगा समुद्रमें जाती है॥ ४७-४८॥

उस चन्द्रभाग पर्वतपर बृहल्लोहित सरोवरके तटपर स्थित सन्ध्याको देखकर वसिष्ठजी आदरपूर्वक उससे पूछने लगे— ॥ ४९॥

वसिष्ठजी बोले—हे भद्रे! इस निर्जन पर्वतपर तुम किसलिये आयी हो, तुम किसकी कन्या हो और यहाँ क्या करना चाहती हो? पूर्ण चन्द्रमाके समान तुम्हारा मुख मलिन क्यों हो गया है? यदि कोई गोपनीय बात न हो, तो बताओ, मुझे सुननेकी इच्छा है॥ ५०-५१॥

ब्रह्माजी बोले—उन महात्मा वसिष्ठकी बात सुनकर उन्हें महात्मा, प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी, ब्रह्मचारी तथा जटाधारी देखकर और आदरपूर्वक प्रणामकर सन्ध्या उन तपोधन वसिष्ठसे कहने लगी— ॥ ५२-५३॥

सन्ध्या बोली—हे विभो! मैं जिस उद्देश्यसे इस सिद्धपर्वतपर आयी हूँ, वह तो आपके दर्शनमात्रसे ही पूर्ण हो जायगा॥ ५४॥

हे ब्रह्मन्! मैं तप करनेके लिये इस निर्जन पर्वतपर आयी हूँ, मैं ब्रह्माकी पुत्री हूँ और सन्ध्या नामसे प्रसिद्ध हूँ॥ ५५॥

यदि आपको उचित जान पड़े, तो मुझे उपदेश कीजिये। मैं तपस्या करना चाहती हूँ, अन्य कुछ भी गोपनीय नहीं है॥ ५६॥

मैं तपस्याकी कोई विधि बिना जाने ही तपोवनमें आ गयी हूँ। इसी चिन्तासे मैं सूखती जा रही हूँ तथा मेरा हृदय काँप रहा है॥ ५७॥

ब्रह्माजी बोले—ब्रह्मज्ञानी वसिष्ठजीने उसकी बात सुनकर पुनः सन्ध्यासे कुछ नहीं पूछा; क्योंकि वे सभी बातें जानते थे। इसके बाद वे मनमें भक्तवत्सल शंकरजीका स्मरणकर तपस्याके लिये उद्यम करनेवाली तथा मनको वशमें रखनेवाली उस सन्ध्यासे कहने लगे— ॥ ५८-५९॥

वसिष्ठजी बोले—[हे देवि!] जो महान् तेज:स्वरूप, महान् तप तथा परम आराध्य हैं, उन शम्भुका मनमें ध्यान करो॥ ६०॥

जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके आदिकारण तथा अद्वैतस्वरूप हैं, उन्हीं संसारके एकमात्र आदिकारण पुरुषोत्तमका भजन करो॥ ६१॥

हे शुभानने! तुम इस मन्त्रसे देवेश्वर शम्भुका भजन करो, उससे तुम्हें समस्त पदार्थोंकी प्राप्ति हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६२॥

'**ॐ नमः शंकराय ॐ**' इस मन्त्रसे मौन होकर इस प्रकार तपस्याका प्रारम्भ करो, [विशेष विधि] तुमको बता रहा हूँ, सुनो॥ ६३॥

मौन होकर स्नान तथा मौन होकर सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये। प्रथम दोनों षष्ठकालोंमें जलका आहारकर तीसरे षष्ठकालमें उपवास करे। इस प्रकार षष्ठकालिक क्रिया तपस्याकी समाप्तिपर्यन्त करनी चाहिये॥ ६४-६५॥

हे देवि! इसका नाम मौन तपस्या है। इसे करनेसे यह ब्रह्मचर्यका फल प्रदान करनेवाली तथा सभी अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली है, यह सत्य है, सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६६॥

इस प्रकार चित्तमें विचार करके सदाशिवका गहन चिन्तन करो, [ऐसा करनेसे] वे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर शीघ्र ही अभीष्ट फल प्रदान करेंगे॥ ६७॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मुनि वसिष्ठ वहाँ बैठकर सन्ध्याको तपस्याकी यथोचित विधि बताकर अन्तर्धान हो गये॥ ६८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सन्ध्याचरित्रवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

सन्ध्याद्वारा तपस्या करना, प्रसन्न हो भगवान् शिवका उसे दर्शन देना, सन्ध्याद्वारा की गयी शिवस्तुति, सन्ध्याको अनेक वरोंकी प्राप्ति तथा महर्षि मेधातिथिके यज्ञमें जानेका आदेश प्राप्त होना

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्रवर! हे महाप्राज्ञ! अब सन्ध्याके द्वारा किये गये महान् तपको सुनिये। जिसके सुननेसे पापसमूह उसी क्षण निश्चय ही नष्ट हो जाता है॥ १॥

तपस्याका उपदेशकर वसिष्ठजीके अपने घर चले जानेपर सन्ध्या भी तपस्याकी विधिको जानकर अत्यन्त हर्षित हो गयी॥ २॥

वह बृहल्लोहितसरके सन्निकट प्रसन्नचित्त होकर अनुकूल वेष धारण करके तपस्या करने लगी॥ ३॥

वसिष्ठजीने तपस्याके साधनभूत जिस मन्त्रको बताया था, उस मन्त्रसे वह शंकरजीका पूजन करने लगी॥ ४॥

इस प्रकार सदाशिवमें चित्त लगाकर एकाग्र मनसे घोर तपस्या करती हुई उस सन्ध्याका एक चतुर्युग बीत गया॥ ५॥

उसके पश्चात् उस तपस्यासे सन्तुष्ट हुए शिवजी उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और बाहर-भीतर तथा आकाशमें उसे अपना विग्रह दिखाकर, वह [शिवजीके] जिस रूपका ध्यान करती थी, उसी रूपसे उसके समक्ष प्रकट हो गये॥ ६-७॥

सन्ध्या अपने मनमें चिन्तित, प्रसन्नमुख तथा शान्तस्वरूप भगवान् शिवको सामने देखकर बहुत प्रसन्न हुई॥ ८॥

मैं शिवजीसे क्या कहूँ तथा किस प्रकार इनकी स्तुति करूँ—इस प्रकार चिन्तित होकर सन्ध्याने भयपूर्वक अपने नेत्रोंको बन्द कर लिया। तब नेत्र बन्द की हुई उस सन्ध्याके हृदयमें प्रविष्ट होकर शिवजीने उसे दिव्य ज्ञान, दिव्य वाणी और दिव्य चक्षु प्रदान किये॥ ९-१०॥

इस प्रकार उसने दिव्य ज्ञान, दिव्य चक्षु, दिव्य वाणी प्राप्त की और जगत्पति दुर्गेशको प्रत्यक्ष खड़ा देखकर वह उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगी—॥ ११॥

सन्ध्या बोली—जिनका रूप निराकार, ज्ञानगम्य तथा पर है; जो न स्थूल, न सूक्ष्म, न उच्च ही है तथा जो योगियोंके द्वारा अन्तःकरणसे चिन्त्य है, ऐसे रूपवाले लोककर्ता आपको नमस्कार है॥ १२॥

जिनका रूप सर्वस्वरूप, शान्त, निर्मल, निर्विकार, ज्ञानसे परे, अपने प्रकाशमें स्थित, विकाररहित, आकाशमार्गस्वरूप एवं अन्धकारमार्गसे परे तथा प्रसन्न रहनेवाला है, ऐसे आपको नमस्कार है। जिनका रूप एक (अद्वितीय), शुद्ध, देदीप्यमान, मायारहित, चिदानन्द, सहज, विकाररहित, नित्यानन्दस्वरूप, सत्य और विभूतिसे युक्त, प्रसन्न रहनेवाला तथा समस्त श्रीको प्रदान करनेवाला है, उन आपको नमस्कार है॥ १३-१४॥

जिनका रूप महाविद्याके द्वारा ध्यान करनेयोग्य, सबसे सर्वथा भिन्न, परम सात्त्विक, ध्येयस्वरूप, आत्मस्वरूप, सारस्वरूप, संसारसागरसे पार करनेवाला है और पवित्रको भी पवित्र करनेवाला है, उन आपको नमस्कार है॥ १५॥

जिनका आकार शुद्धरूप, मनोज्ञ, रत्नके समान, स्वच्छ, कर्पूरके समान गौरवर्ण और हाथोंमें वर-अभयमुद्रा, शूल-मुण्डको धारण करनेवाला है, उन आप योगयुक्त [सदाशिव]-को नमस्कार है॥ १६॥

आकाश, पृथिवी, दिशाएँ, जल, ज्योति और काल जिनके स्वरूप हैं, ऐसे आपको नमस्कार है॥ १७॥

जिनके शरीरसे प्रधान एवं पुरुषकी उत्पत्ति हुई है, उन अव्यक्तस्वरूप आप शंकरको बार-बार नमस्कार है॥ १८॥

जो ब्रह्मारूप होकर [इस जगत्‌की] सृष्टि करते हैं, विष्णुरूप होकर पालन करते हैं तथा रुद्ररूप होकर संहार करते हैं, उन आपको बार-बार नमस्कार है॥ १९॥

कारणोंके कारण, दिव्य अमृतस्वरूप ज्ञानसम्पदा देनेवाले, समस्त लोकोंको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, प्रकाशस्वरूप तथा परात्पर [शंकर]-को बार-बार नमस्कार है॥ २०॥

जिनके अतिरिक्त यह जगत् और कुछ नहीं है। जिनके पैरसे पृथिवी, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, कामदेव तथा बहिर्मुख (अन्य देवता) और नाभिसे अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ है, उन आप शम्भुको मेरा नमस्कार है॥ २१॥

हे हर! आप सर्वश्रेष्ठ तथा परमात्मा हैं, आप विविध विद्या हैं, सद्ब्रह्म, परब्रह्म तथा ज्ञानपरायण हैं॥ २२॥

जिनका न आदि है, न मध्य है तथा न अन्त है और जिनसे यह समस्त संसार उत्पन्न हुआ है, वाणी, तथा मनसे अगोचर उन सदाशिवकी स्तुति किस प्रकार करूँ?॥ २३॥

ब्रह्मा आदि देवगण तथा तपोधन महर्षि भी जिनके रूपोंका वर्णन नहीं कर पाते हैं, उनका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकती हूँ?॥ २४॥

हे प्रभो! इन्द्रसहित समस्त देवगण तथा सभी असुर भी जब आपके रूपको नहीं जानते, तो आप-जैसे निर्गुणके गुणोंको मेरे-जैसी स्त्री किस प्रकार जान सकती है॥ २५॥

हे महेशान! आपको नमस्कार है। हे तपोमय! आपको नमस्कार है। हे शम्भो! हे देवेश! आपको बार-बार नमस्कार है, आप [मेरे ऊपर] प्रसन्न होइये॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—सन्ध्याके द्वारा स्तुत भक्तवत्सल परमेश्वर सदाशिव उसके वचनको सुनकर परम प्रसन्न हो गये॥ २७॥

वे शिव वल्कल तथा कृष्णमृगचर्मयुक्त उसके शरीरको, जटासे आच्छन्न एवं पवित्री धारण किये हुए उसके सिरको तथा तुषारपातसे मुरझाये हुए कमलके समान उसके मुखको देखकर दयामय होकर उससे इस प्रकार कहने लगे—॥ २८-२९॥

महेश्वर बोले—हे भद्रे! तुम्हारी इस उत्कृष्ट तपस्यासे तथा तुम्हारी इस स्तुतिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। हे शुभप्राज्ञे! अब तुम वर माँगो॥ ३०॥

जो भी तुम्हारा अभीष्ट हो तथा जिससे तुम्हारा कार्य पूर्ण हो, वह सब मैं करूँगा। हे भद्रे! तुम्हारी इस तपस्यासे मैं परम प्रसन्न हो गया हूँ॥ ३१॥

ब्रह्माजी बोले—महेश्वरका वचन सुनकर सन्ध्या बड़ी प्रसन्न हुई और उन्हें बार-बार प्रणामकर इस प्रकार कहने लगी—॥ ३२॥

सन्ध्या बोली—हे महेश्वर! यदि आप प्रसन्नतापूर्वक वर देना चाहते हैं, यदि मैं आपसे वर प्राप्त करनेयोग्य हूँ तथा यदि मैं उस पापसे सर्वथा विशुद्ध हो गयी हूँ और हे देव! यदि आप इस समय मेरे तपसे प्रसन्न हैं, तो पहले मैं यह वर माँगती हूँ, उसे दीजिये। हे

देवाधिदेव! इस आकाश तथा पृथिवीमें उत्पन्न होते ही कोई भी प्राणी सद्यः कामयुक्त न हो। हे प्रभो! मैं अपने आचरणसे तीनों लोकोंमें इस प्रकार प्रसिद्ध होऊँ, जैसी और कोई दूसरी स्त्री न हो, एक और वर माँगती हूँ। मेरे द्वारा उत्पन्न की गयी कोई भी सन्तति सकाम होकर पतित न हो और हे नाथ! जो मेरा पति हो, वह भी मेरा अत्यन्त सुहृद् बना रहे। [मेरे पतिके अतिरिक्त] जो कोई भी पुरुष मुझे सकाम दृष्टिसे देखे, उसका पौरुष नष्ट हो जाय और वह नपुंसक हो जाय॥ ३३—३८॥

ब्रह्माजी बोले— निष्पाप सन्ध्याके इस प्रकारके वचनोंको सुनकर तथा उससे प्रेरित होकर भक्तवत्सल भूतभावन शंकर प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ ३९॥

महेश्वर बोले— हे देवि! हे सन्ध्ये! मेरी बात सुनो। तुम्हारा पाप नष्ट हो गया, अब मेरा क्रोध तुम्हारे ऊपर नहीं है और तुम तप करनेसे शुद्ध हो चुकी हो। हे भद्रे! हे सन्ध्ये! तुमने जो-जो वरदान माँगा है, तुम्हारी श्रेष्ठ तपस्यासे परम प्रसन्न होकर मैंने वह सब तुम्हें प्रदान कर दिया॥ ४०-४१॥

अब प्राणियोंका प्रथम शैशव (बाल)-भाव, दूसरा कौमार भाव, तीसरा यौवन भाव तथा चौथा वार्धक्य भाव होगा॥ ४२॥

शरीरधारी तीसरी अवस्था आनेपर सकाम होंगे और कोई-कोई प्राणी दूसरीके अन्ततक सकाम होंगे॥ ४३॥

मैंने तुम्हारी तपस्यासे संसारमें यह मर्यादा स्थापित कर दी कि शरीरधारी उत्पन्न होते ही सकाम नहीं होंगे॥ ४४॥

तुम इस लोकमें ऐसा सतीभाव प्राप्त करोगी, जैसा तीनों लोकोंमें किसी अन्य स्त्रीका नहीं होगा॥ ४५॥

तुम्हारे पतिके अतिरिक्त जो तुमको सकाम दृष्टिसे देखेगा, वह तत्काल नपुंसक होकर दुर्बल हो जायगा॥ ४६॥

तुम्हारा पति महान् भाग्यशाली, तपस्वी तथा रूपवान् होगा। वह तुम्हारे साथ सात कल्पोंतक जीवित रहेगा॥ ४७॥

इस प्रकार तुमने जो-जो वर मुझसे माँगा, उन सभी वरोंको मैंने प्रदान किया। अब मैं तुम्हारे जन्मान्तरकी कुछ बातें कहूँगा॥ ४८॥

तुम अग्निमें अपने शरीरत्याग करनेकी प्रतिज्ञा पहले ही कर चुकी हो, अतः उसका उपाय मैं तुमको बता रहा हूँ, उसे निश्चित रूपसे करो॥ ४९॥

वह उपाय यही है कि तुम महर्षि मेधातिथिके बारह वर्षतक चलनेवाले यज्ञमें प्रचण्डरूपसे जलती हुई अग्निमें शीघ्रतासे प्रवेश करो॥ ५०॥

इस समय मेधातिथि इसी पर्वतकी तलहटीमें चन्द्रभागा नदीके तटपर तपस्वियोंके आश्रममें महान् यज्ञ कर रहे हैं॥ ५१॥

वहाँ तुम अपनी इच्छासे जाकर मेरे प्रसादसे मुनियोंसे अलक्षित रहती हुई अग्निमें प्रवेश कर जाओ, फिर तुम यज्ञाग्निसे प्रकट होकर मेधातिथिकी पुत्री बनोगी॥ ५२॥

तुम्हारे मनमें जो कोई भी श्रेष्ठ पतिके रूपमें वांछनीय हो, उसे अपने अन्तःकरणमें रखकर अग्निमें अपना शरीर छोड़ना॥ ५३॥

हे सन्ध्ये! तुम इस पर्वतपर चारयुगसे घोर तपस्या कर रही हो, कृतयुगके बीत जानेपर और त्रेताका प्रथम भाग आनेपर दक्षकी जो शीलसम्पन्न कन्याएँ उत्पन्न हुईं, वे यथायोग्य विवाहित हुईं, उनमेंसे उन्होंने सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको [विवाहविधिद्वारा] प्रदान कीं, किंतु चन्द्रमा उन सभीको छोड़कर रोहिणीमें प्रीति करने लगा॥ ५४—५६॥

इस कारण जब दक्षने क्रोधसे चन्द्रमाको शाप दे दिया, तब सभी देवता तुम्हारे पास आये थे॥ ५७॥

हे सन्ध्ये! उस समय तुम मेरा ध्यान कर रही थी, इसलिये वे देवगण जो ब्रह्माजीके साथ आये हुए थे, तुमने उनकी तरफ देखा नहीं; क्योंकि तुम आकाशकी ओर देख रही थी, अब तुमने मेरा दर्शन प्राप्त कर लिया है॥ ५८॥

तब ब्रह्माजीने चन्द्रमाके शापको दूर करनेके लिये इस चन्द्रभागा नदीका निर्माण किया है, उसी समय यहाँ मेधातिथि उपस्थित हुए थे॥ ५९॥

तपस्यामें उनके समान न तो कोई है, न कोई होनेवाला है और न कोई हुआ है। उन्होंने ही इस चन्द्रभागा नदीके तटपर विधिपूर्वक ज्योतिष्टोम यज्ञका

आरम्भ किया है॥ ६०॥

वहाँ अग्नि प्रज्वलित हो रही है, उसीमें अपने शरीरको छोड़ो। इस समय तुम अत्यन्त पवित्र हो, तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो॥ ६१॥

हे तपस्विनि! अपने कार्यकी सिद्धिके लिये मैंने यह विधि बतायी है। अतः हे महाभागे! तुम यहाँ मुनिके यज्ञमें जाओ और इसे करो। इस प्रकार वे देवेश उसका हित करके वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ६२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सन्ध्याचरित्रवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

महर्षि मेधातिथिकी यज्ञाग्निमें सन्ध्याद्वारा शरीरत्याग, पुनः अरुन्धतीके रूपमें यज्ञाग्निसे उत्पत्ति एवं वसिष्ठमुनिके साथ उसका विवाह

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार भगवान् सदाशिव जब सन्ध्याको वर प्रदानकर अन्तर्धान हो गये, तब सन्ध्या वहाँ गयी, जहाँ महर्षि मेधातिथि थे॥ १॥

वहाँपर भगवान् सदाशिवकी कृपासे उसे किसीने नहीं देखा। उसने उस समय तपस्याके विषयमें उपदेश करनेवाले उन ब्रह्मचारीका स्मरण किया॥ २॥

हे महामुने! वे ब्रह्मचारी वसिष्ठ मुनि ही थे, जो ब्रह्माजीकी आज्ञासे ब्रह्मचारीका रूप धारणकर सन्ध्याको तपस्याके सम्बन्धमें उपदेश करने आये थे॥ ३॥

तपश्चर्याका उपदेश करनेवाले उन्हीं ब्रह्मचारी ब्राह्मण [वसिष्ठ]-का पतिरूपसे स्मरण करके वह ब्रह्मपुत्री सन्ध्या प्रसन्नमनसे सदाशिवकी कृपासे मुनियोंद्वारा अलक्षित हो उस महायज्ञकी प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर गयी॥ ४-५॥

उसका समस्त शरीर पुरोडाशके समान तत्क्षण ही जलकर राख हो गया, जिससे अलक्षित रूपसे पुरोडाशका गन्ध चारों ओर फैल गया॥ ६॥

पुनः सदाशिवकी आज्ञासे अग्निने उसके शुद्ध शरीरको भस्मकर सूर्यमण्डलमें प्रविष्ट करा दिया॥ ७॥

तदनन्तर सूर्यने उसके शरीरको दो भागोंमें विभक्तकर पितरों एवं देवताओंकी प्रसन्नताके लिये अपने रथमें स्थापित कर लिया॥ ८॥

हे मुनीश्वर! उसके शरीरका जो ऊपरका भाग था, वही रात्रि तथा दिनके बीचमें होनेवाली प्रातःसन्ध्या हुई॥ ९॥

जो उसके शरीरका शेष भाग था, वही दिन तथा रात्रिके बीचमें होनेवाली सायंसन्ध्या हुई, जो सदैव ही पितरोंकी प्रसन्नताका कारण होती है॥ १०॥

सूर्योदयके पहले जब अरुणोदय होता है, तब देवताओंको प्रसन्न करनेवाली प्रातःसन्ध्याका उदय होता है॥ ११॥

जब लाल कमलके समान सूर्य अस्त हो जाता है, तब पितरोंको प्रसन्न करनेवाली सायंसन्ध्याका उदय होता है॥ १२॥

उसके मनसहित प्राणको परम दयालु शिवने शरीरधारियोंके दिव्य शरीरसे निर्मित किया था॥ १३॥

जब मेधातिथिका यज्ञ समाप्त हो रहा था, तब

उन्हें देदीप्यमान सुवर्णके समान कान्तिवाली वह कन्या यज्ञाग्निमें प्राप्त हुई॥ १४॥

हे मुने! महामुनि मेधातिथिने यज्ञसे प्राप्त हुई उस कन्याको बड़ी प्रसन्नतासे ग्रहण किया और उसे स्नान कराकर अपनी गोदमें बिठाया॥ १५॥

उन्होंने उसका नाम अरुन्धती रखा। [उस कन्याको प्राप्तकर] वे शिष्योंके साथ बड़े ही हर्षित हुए॥ १६॥

उसने किसी भी कारणके उपस्थित होनेपर अपने पातिव्रत्यधर्मका परित्याग नहीं किया, इसलिये त्रिलोकीमें उसने स्वयं यह प्रसिद्ध [अरुन्धती] नाम धारण किया॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—हे सुरर्षे! यज्ञ समाप्त करनेके उपरान्त वे मुनि कन्यारूप सम्पत्तिसे युक्त हो अपने शिष्योंसहित अत्यन्त कृतकृत्य होकर अपने उस आश्रममें उसका लालन-पालन करने लगे॥ १८॥

उसके बाद वह कन्या चन्द्रभागा नदीके तटपर श्रेष्ठ मुनिके तापसारण्य नामक आश्रममें बढ़ने लगी॥ १९॥

वह सती पाँच वर्षकी अवस्थामें अपने गुणोंसे चन्द्रभागा नदी तथा तापसारण्यको पवित्र करने लगी॥ २०॥

ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशने ब्रह्मपुत्र वसिष्ठके साथ उस अरुन्धतीका विवाह करवाया॥ २१॥

हे मुने! उसके विवाहमें सुखदायक महान् उत्सव हुआ, जिससे सभी देवता तथा मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ २२॥

[उस विवाहमें] ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरके हाथसे गिरे हुए जलसे शिप्रा आदि सात पवित्र नदियाँ उत्पन्न हुईं॥ २३॥

हे मुने! साध्वी स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ महासाध्वी वह मेधातिथिकी कन्या अरुन्धती वसिष्ठको [पतिरूपमें] प्राप्तकर अत्यन्त शोभित हुई॥ २४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उससे शक्ति आदि श्रेष्ठ तथा सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार वसिष्ठको पतिरूपमें प्राप्तकर वह शोभा पाने लगी॥ २५॥

हे मुनिसत्तम! इस प्रकार मैंने सन्ध्याका चरित्र कहा, जो अत्यन्त पवित्र, दिव्य तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल देनेवाला है॥ २६॥

जो शुभ व्रतवाला पुरुष अथवा नारी इस चरित्रको सुनता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें अरुन्धती तथा वसिष्ठके विवाहका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

कामदेवके सहचर वसन्तके आविर्भावका वर्णन

सूतजी बोले—प्रजापति ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर प्रसन्नचित्त हो नारदजी उनसे कहने लगे—॥ १॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! हे विष्णुशिष्य! हे महामते! परतत्त्वके प्रकाशक तथा शिवभक्त आप धन्य हैं॥ २॥

हे धर्मज्ञ! आपने अरुन्धतीकी तथा पूर्वजन्ममें उसकी स्वरूपभूता सन्ध्याकी बड़ी उत्तम दिव्य कथा सुनायी, जो शिवभक्तिकी वृद्धि करनेवाली है। अब आप शिवका परम चरित्र जो सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है तथा मंगलको प्रदान करनेवाला है, उसे सुनाइये॥ ३-४॥

जब कामने प्रसन्न होकर रतिको प्राप्त कर लिया और ब्रह्मा तथा उनके मानसपुत्र चले गये तथा सन्ध्या तप करने चली गयी, उसके बाद क्या हुआ?॥ ५॥

सूतजी बोले—इस प्रकार आत्मतत्त्वज्ञ देवर्षि नारदका वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो ब्रह्माजी यह बात कहने लगे—॥ ६॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हे विप्रेन्द्र! शिवलीलासे परिपूर्ण अब उस महान् कल्याणकारी शिव-चरित्रको सुनें। आप धन्य हैं; क्योंकि आप शिवजीके भक्त हैं॥ ७॥

हे तात! पहले जब मैं शिवमायासे मोहित होकर अन्तर्धान हो गया, तब शिवके वाक्यरूपी विषसे दुखी हो [अपने मनमें] विचार करने लगा॥ ८॥

शिवमायासे मोहित हुआ मैं बहुत देरतक अपने चित्तमें विचार करके उनसे जिस प्रकार ईर्ष्या करने लगा, उसे आपसे बताता हूँ, सुनिये॥ ९॥

तत्पश्चात् मैं वहाँ पहुँचा, जहाँ दक्ष आदि स्थित थे और वहाँ रतिसहित कामदेवको देखकर मैं कुछ मदमत्त हो गया॥ १०॥

हे नारद! दक्ष तथा अपने अन्य मानसपुत्रोंसे प्रीतिपूर्वक बातचीत करके शिवमायासे विमोहित मैं इस प्रकार उनसे कहने लगा— ॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—हे दक्ष! हे मरीचि आदि पुत्रो! मेरी बात सुनो और उसे सुनकर मेरे कष्टको दूर करनेका उपाय करो॥ १२॥

स्त्रीके प्रति मेरी अभिलाषा देखकर महायोगी शिवने मेरी निन्दा की और उन्होंने मुझे तथा तुमलोगोंको बहुत फटकारा॥ १३॥

उसके कारण मैं दुःखसे सन्तप्त हूँ और कहीं भी मुझे चैन नहीं मिलता, अतः जिस प्रकार वे भी स्त्रीको ग्रहण करें, वह यत्न करो॥ १४॥

जब वे स्त्रीको स्वीकार करेंगे, तभी हमारा वह दुःख दूर होगा, किंतु विचार करनेपर मैं समझता हूँ कि यह कार्य बड़ा ही कठिन है॥ १५॥

जब उन्होंने मुनियोंके समक्ष ही मेरे कान्ता-परिग्रहकी अभिलाषामात्रसे मुझे धिक्कारा, तो वे स्वयं किस प्रकार स्त्री ग्रहण करेंगे?॥ १६॥

इस त्रिलोकमें कौन-सी ऐसी स्त्री है, जो उनके मनमें विराजमान होकर, उन्हें योगमार्गसे हटाकर मोहमें डाल सकती है?॥ १७॥

कामदेव भी इन्हें मोहित करनेमें समर्थ नहीं है; क्योंकि वे परमयोगी हैं और स्त्रियोंके नामको भी सहन नहीं कर सकते हैं॥ १८॥

जो प्रसंगके द्वारा भी स्त्रीका नाम कदापि नहीं सहन कर सकता तो भला वह वाणीसे स्त्री ग्रहणकर किस प्रकार सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हो सकता है?॥ १९॥

इस पृथिवीमें बड़े-बड़े देवता भी मायाके बन्धनमें पड़े हुए हैं। जो बचे हुए हैं, वे विष्णुके बन्धनमें बँधे हैं और कुछ देवगण शम्भुके उपायोंसे आबद्ध हैं॥ २०॥

संसारसे विमुख तथा एकान्तविरागी सदाशिवके अतिरिक्त और कौन है, जो ऐसा दुष्कर कार्य कर सकता है?॥ २१॥

इस प्रकार दक्षादि पुत्रोंसे कहकर रतिसहित कामदेवको वहाँ देखकर मैं आनन्दपूर्वक उनसे कहने लगा— ॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—मेरे श्रेष्ठ पुत्र हे कामदेव! तुम सभी प्रकारसे सबको सुख देनेवाले हो। हे पितृवत्सल! तुम अपनी पत्नीसहित प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनो॥ २३॥

हे मनोभव! तुम [अपनी] इस सहचारिणी स्त्रीके साथ जिस प्रकार शोभा पा रहे हो और यह भी [वैसे ही] तुम्हें पतिरूपमें प्राप्तकर अति शोभित हो रही है॥ २४॥

जिस प्रकार महालक्ष्मीसे भगवान् विष्णु तथा विष्णुसे महालक्ष्मी एवं जिस प्रकार रात्रिसे चन्द्रमा एवं चन्द्रमासे रात्रि सुशोभित होती है, उसी प्रकार तुम दोनोंकी शोभा है और तुम्हारा दाम्पत्य भी अलंकृत है। इसलिये तुम इस जगत्को जीतनेवाले विश्वकेतु होओगे॥ २५-२६॥

हे वत्स! तुम संसारके हितके लिये महादेवको मोहित करो, जिससे प्रसन्न मनवाले शंकर शीघ्र विवाह करें॥ २७॥

निर्जन स्थानमें, उत्तम प्रदेशमें, पर्वतपर अथवा तालाबके तटपर—जहाँ भी शिवजी जायँ, वहीं तुम अपनी इस पत्नीके साथ जाकर इन जितेन्द्रिय तथा स्त्रीरहित शंकरजीको मोहित करो। [इस संसारमें] तुम्हारे अतिरिक्त और कोई दूसरा इनको मोहमें डालनेवाला नहीं है॥ २८-२९॥

हे मनोभव! शंकरजीके अनुरागयुक्त हो जानेपर तुम्हारे भी शापकी शान्ति हो जायगी, अतः तुम अपना हित करो। यदि महेश्वर सानुराग होकर स्त्रीकी अभिलाषा करेंगे, तो वे श्रेष्ठ शिव तुम्हारा भी उद्धार कर देंगे॥ ३०-३१॥

इसलिये तुम अपनी स्त्रीको साथ लेकर शंकरजीको मोहित करनेका प्रयत्न करो और महेश्वरको मोहित करके विश्वके केतु हो जाओ॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—संसारके प्रभु एवं अपने पिता मुझ ब्रह्माकी बात सुनकर वह कामदेव मुझ जगत्पतिसे कहने लगा— ॥ ३३॥

मन्मथ बोला—हे प्रभो! मैं आपके आज्ञानुसार शिवजीको मोहित करूँगा, किंतु हे भगवन्! स्त्री ही मेरा मुख्य अस्त्र है। अतः शंकरजीके योग्य स्त्रीका निर्माण कीजिये, जो मेरे द्वारा शिवजीको मोहित करनेपर उनका पुनः मोहन कर सके। हे धाता! इसका उत्तम उपाय अब कीजिये॥ ३४-३५॥

ब्रह्माजी बोले—कामदेवके इस प्रकार कहनेपर मैं प्रजापति ब्रह्मा अपने मनमें विचार करने लगा कि किस प्रकारकी स्त्रीसे शिवजीको मोहित किया जाय?॥ ३६॥

इस प्रकार चिन्तामें निमग्न हुए मुझसे जो श्वास निकला, उसीसे पुष्पसमूहोंसे विभूषित वसन्त उत्पन्न हुआ। उसके शरीरकी कान्ति लालकमलके समान थी, उसकी आँखें विकसित कमलके समान थीं, उसका मुख सन्ध्याके समय उदय हुए पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था, उसकी नासिका भी बहुत सुन्दर थी। उसके चरणोंमें सींगके समान आवर्त थे, वह काले तथा घुँघराले केशोंसे शोभायमान हो रहा था। सन्ध्याकालीन सूर्यके सदृश दो कुण्डलोंसे वह सुशोभित था, मतवाले हाथीके समान उसकी चाल थी, उसकी भुजाएँ लम्बी तथा मोटी थीं, उसका कन्धा अत्यन्त ऊँचा था। उसकी ग्रीवा शंखके समान थी, उसका वक्षःस्थल बहुत चौड़ा था, मुखमण्डल स्थूल तथा सुन्दर था, उसके सभी अंग सुन्दर थे, वह श्याम वर्णका था, सभी लक्षणोंसे युक्त वह सबको मोहित करनेवाला, कामको बढ़ानेवाला तथा अत्यन्त दर्शनीय था॥ ३७—४१॥

इस प्रकार पुष्पगुच्छोंसे सुशोभित हुए वसन्तके उत्पन्न होते ही सुगन्धित वायु चलने लगी, वृक्ष भी फूलोंसे लद गये॥ ४२॥

सैकड़ों कोयलें मधुर पंचम स्वरमें बोलने लगीं और बावलियाँ विकसित तथा स्वच्छ कमलोंसे युक्त हो गयीं। इस प्रकार उत्पन्न हुए उस श्रेष्ठ वसन्तको देखकर मैं ब्रह्मा कामदेवसे मधुर शब्दोंमें कहने लगा— ॥ ४३-४४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे पुत्र!] कामदेवतुल्य यह वसन्त अब तुम्हारे लिये अनुकूल मित्र उत्पन्न हो गया है। अब यह तुम्हारी सब प्रकारसे सहायता करेगा॥ ४५॥

जिस प्रकार पवन अग्निका मित्र बनकर सदा उसका उपकार करता रहता है, उसी प्रकार यह वसन्त भी तुम्हारा मित्र बनकर सदा तुम्हारे साथ रहेगा॥ ४६॥

रमणमें हेतु होनेके कारण यह तुम्हारे साथ निवास करेगा, इसलिये इसका नाम वसन्त होगा। लोकका अनुरंजन तथा तुम्हारा अनुगमन ही इसका कार्य होगा॥ ४७॥

वसन्तकालीन यह मलयानिल इस वसन्तका श्रृंगार बनकर इसके मित्ररूपसे बना रहेगा, जो सदा तुम्हारे अधीन रहेगा॥ ४८॥

जिस प्रकार तुम्हारे मित्र रहते हैं, उसी प्रकार ये बिब्बोक आदि हाव तथा चौंसठ कलाएँ रतिके साथ सुहृद् होकर रहेंगी॥ ४९॥

हे काम! तुम अपने इन वसन्त आदि सहचरों तथा रतिके साथ उद्यत होकर महादेवजीको मोहित करो॥ ५०॥

हे तात! अब मैं यत्नपूर्वक अच्छी तरह मनमें सोच-विचारकर उस कामिनीको प्राप्त करूँगा, जो भगवान् शंकरको मोहित कर लेगी॥ ५१॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मुझ सुरश्रेष्ठ ब्रह्माके कहनेपर उस कामदेवने पत्नीसहित मेरे चरणोंमें प्रणाम किया। पुनः दक्ष एवं मेरे मानसपुत्रोंको प्रणामकर कामदेव उस स्थानपर गया, जहाँ आत्मस्वरूप शंकरजी गये थे॥ ५२-५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें वसन्तस्वरूपवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

कामदेवद्वारा भगवान् शिवको विचलित न कर पाना, ब्रह्माजीद्वारा कामदेवके सहायक मारगणोंकी उत्पत्ति; ब्रह्माजीका उन सबको शिवके पास भेजना, उनका वहाँ विफल होना, गणोंसहित कामदेवका वापस अपने आश्रमको लौटना

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! अनुचरोंके साथ उस कामके शिवस्थानमें पहुँच जानेपर अद्भुत चरित्र हुआ, उसे सुनिये॥ १॥

सभी लोगोंको मोहित करनेवाले उस महावीर कामने वहाँ पहुँचकर अपना प्रभाव फैला दिया और सभी प्राणियोंको मोहित कर लिया॥ २॥

हे मुने! वसन्तने भी महादेवजीको अपना मोहित करनेवाला प्रभाव दिखाया, जिससे समस्त वृक्ष एक साथ ही फूलोंसे लद गये। उस समय कामने रतिके साथ [शिवको मोहित करनेके लिये] अनेक यत्न किये, जिससे सभी जीव उसके वशीभूत हो गये, किंतु गणोंसहित शिवजी उसके वशमें नहीं हुए॥ ३-४॥

हे मुने! [इस प्रकार चेष्टा करते हुए] जब वसन्तसहित उस कामके समस्त प्रयत्न निष्फल हो गये, तब वह अहंकाररहित हो गया और लौटकर अपने स्थानपर चला गया। हे मुने! मुझ ब्रह्माको प्रणामकर उदासीन तथा अभिमानरहित वह कामदेव गद्‌गद वाणीसे मुझसे कहने लगा— ॥ ५-६॥

काम बोला—हे ब्रह्मन्! शिवको मोहित नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे योगपरायण हैं। उन शिवको मोहित करनेकी शक्ति न मुझमें है और न अन्य किसीमें है॥ ७॥

हे ब्रह्मन्! मैंने मित्र वसन्त तथा रतिके साथ उन्हें मोहित करनेके अनेक उपाय किये, किंतु शिवमें वे सभी निष्फल हो गये। हे ब्रह्मन्! हमलोगोंने शिवजीको मोहित करनेके लिये जिन उपायोंको किया, उन विविध उपायोंको मैं बता रहा हूँ, हे मुने! हे तात! आप सुनिये— ॥ ८-९॥

जब शिवजी संयमित होकर समाधि लगाकर बैठे हुए थे, तब मैं मोहित करनेवाली वेगवान्, सुगन्धयुक्त तथा शीतल वायुसे त्रिनेत्र महादेव रुद्रको विचलित करने लगा॥ १०-११॥

मैं अपने धनुष तथा पाँचों पुष्पबाणोंको लेकर उनके चारों ओर छोड़ता हुआ उनके गणोंको मोहित करने लगा। [उस प्रदेशमें] मेरे प्रवेश करते ही समस्त प्राणी मोहित हो गये, किंतु गणोंसहित भगवान् शिव विकारयुक्त नहीं हुए॥ १२-१३॥

हे विधे! जब वे प्रमथाधिपति शिव हिमालयके शिखरपर गये, तब मैं भी वसन्त और रतिके साथ वहाँ पहुँच गया॥ १४॥

जब वे मेरु पर्वतपर और नागकेसर पर्वतपर गये, तो मैं वहाँ भी गया। जब वे कैलास पर्वतपर गये, तब मैं भी वहाँपर गया॥ १५॥

जब वे किसी समय समाधिसे मुक्त हो गये, तो मैंने उनके सामने दो चक्र रचे। वे दोनों चक्र स्त्रीके हाव-भावयुक्त दोनों कटाक्ष थे। मैंने दाम्पत्यभावका अनुकरण करते हुए उन नीलकण्ठ महादेवके सामने नाना प्रकारके भाव उत्पन्न किये॥ १६-१७॥

पशुओं तथा पक्षियोंने भी उनके सामने स्थित होकर गणोंसहित शिवजीको मोहित करनेके लिये मोहकारी भाव प्रदर्शित किये॥ १८॥

रसोत्सुक हुए मयूरके जोड़ेने अनेक प्रकारकी गतियोंका सहारा लेकर विविध प्रकारके भाव उनके आगे-पीछे प्रदर्शित किये, किंतु मेरे बाणोंको कभी भी अवकाश नहीं मिला, मैं यह सत्य कह रहा हूँ। हे लोकेश! शिवजीको मोहित करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है॥ १९-२०॥

इस वसन्तने भी उन्हें मोहित करनेके लिये जो-जो उचित उपाय किये हैं, हे महाभाग! उन्हें आप सुनें, मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ॥ २१॥

इस वसन्तने श्रेष्ठ चम्पक, केसर, बाल [इलायची], कटहल, गुलाब, नागकेसर, पुन्नाग, किंशुक, केतकी, मालती, मल्लिका, पर्णभार एवं कुरबक आदि

पुष्पोंको जहाँ भी शिवजी बैठते थे, वहीं विकसित कर दिया॥ २२-२३॥

इस वसन्तने शिवजीके आश्रममें तालाबके सभी फूले हुए कमलोंको मलय पवनोंसे यत्नपूर्वक अत्यन्त सुगन्धित कर दिया॥ २४॥

सभी लताएँ फूलसे युक्त और अंकुर-समूहके साथ सन्निकटके वृक्षोंमें बड़े प्रेमसे लिपट गयीं॥ २५॥

सुगन्धित पवनोंसे खिले हुए फूलोंसे युक्त उन वृक्षोंको देखकर मुनि भी कामके वशीभूत हो गये, फिर अन्यकी तो बात ही क्या!॥ २६॥

इतना होनेपर भी मैंने शंकरजीके मोहित होनेका न कोई लक्षण देखा, न तो उनमें कोई कामका भाव ही उत्पन्न हुआ। [इतना सब कुछ करनेपर भी] शंकरने मेरे ऊपर रंचमात्र भी क्रोध नहीं किया॥ २७॥

इस प्रकार सब कुछ देखकर तथा उनकी भावनाको जानकर मैं शिवजीको मोहित करनेके प्रयाससे विरत हो गया, उसका कारण आपसे निवेदन कर रहा हूँ॥ २८॥

समाधि छोड़ देनेपर हमलोग उनकी दृष्टिके सामने क्षणमात्र भी टिक नहीं सकते, उन रुद्रको कौन मोहित कर सकता है?॥ २९॥

हे ब्रह्मन्! जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित नेत्रोंवाले तथा जटा धारण करनेसे महाविकराल उन कैलासपर्वतनिवासी शिवजीको देखकर उनके सामने कौन खड़ा रह सकता है?॥ ३०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कामके वचनको सुनकर मैं चतुरानन ब्रह्मा चिन्तामग्न हो गया और बोलनेकी इच्छा करते हुए भी कुछ बोल न सका॥ ३१॥

मैं कामदेव शिवको मोहित करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे मुने! उसका यह वचन सुनकर मैं बड़े दु:खके साथ उष्ण श्वास लेने लगा॥ ३२॥

उस समय मेरे नि:श्वास अनेक रूपोंवाले, महाबलवान्, लपलपाती जीभवाले, चंचल तथा अत्यन्त भयंकर गणोंके रूपमें परिणत हो गये॥ ३३॥

उन गणोंने भेरी, मृदंग आदि अनेक प्रकारके असंख्य विकराल, महाभयंकर बाजे बजाना प्रारम्भ किया। मेरे नि:श्वाससे उत्पन्न वे महागण मुझ ब्रह्माके सामने ही मारो, काटो—ऐसा बोलने लगे॥ ३४-३५॥

मारो, काटो—ऐसा बोलनेवाले उन गणोंके शब्दोंको सुनकर वह काम मुझ ब्रह्मासे कहने लगा॥ ३६॥

हे मुने! हे ब्रह्मन्! इस प्रकार उस कामने मेरी आज्ञा लेकर उन सभी गणोंकी ओर देखकर उन्हें ऐसा करनेसे रोकते हुए गणोंके सामने ही मुझसे कहना प्रारम्भ किया—॥ ३७॥

काम बोला—हे ब्रह्मन्! हे प्रजानाथ! हे सृष्टिके प्रवर्तक! ये कौन विकराल एवं भयंकर वीर उत्पन्न हो गये?॥ ३८॥

हे विधे! ये कौन-सा कार्य करेंगे तथा कहाँ निवास करेंगे और इनका क्या नाम है? उन्हें आप मुझे बताइये तथा इनको कार्यमें नियुक्त कीजिये॥ ३९॥

हे देवेश! इनको अपने कार्यमें नियुक्तकर और इनके नाम रखकर तथा स्थानोंकी व्यवस्था करके यथोचित कृपा करके मुझे आज्ञा दीजिये॥ ४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उस कामकी बात सुनकर उनके कार्य आदिका निर्देश करते हुए लोककर्ता मैंने कामसे कहा—॥ ४१॥

हे काम! उत्पन्न होते ही इन सबने बारंबार मारय-मारय [मारो-मारो]—इस प्रकारका शब्द कहा है, इसलिये इनका नाम 'मार' होना चाहिये॥ ४२॥

हे काम! अपनी पूजाके बिना ये गण अनेक प्रकारकी कामनाओंमें रत मनवाले प्राणियोंके कार्योंमें सर्वदा विघ्न किया करेंगे॥ ४३॥

हे कामदेव! तुम्हारे अनुकूल रहना ही इनका मुख्य कार्य होगा और ये तुम्हारी सहायतामें सदा तत्पर रहेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ४४॥

जब-जब और जहाँ-जहाँ तुम अपने कार्यके लिये जाओगे, तब-तब वहाँ-वहाँ ये तुम्हारी सहायताके लिये जायँगे॥ ४५॥

ये तुम्हारे अस्त्रोंसे वशवर्ती प्राणियोंके चित्तमें सदैव भ्रान्ति उत्पन्न करेंगे और ज्ञानियोंके ज्ञानमार्गमें विघ्न डालेंगे॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम! मेरे इस वचनको सुनकर रति और वसन्तसहित वह कामदेव कुछ प्रसन्नमुख

हो गया ॥ ४७ ॥

मेरी बातको सुनकर वे सभी गण अपने-अपने स्वरूपसे मुझे तथा कामदेवको चारों ओरसे घेरकर बैठ गये। इसके बाद मुझ ब्रह्माने कामसे प्रेमपूर्वक कहा—[हे मदन!] मेरी बात मानो, तुम इन गणोंको साथ लेकर शिवको मोहित करनेके लिये पुनः जाओ ॥ ४८-४९ ॥

अब तुम इन मारगणोंके साथ मन लगाकर ऐसा प्रयत्न करो, जिससे स्त्री ग्रहण करनेके लिये शिवजीको मोह हो जाय। हे देवर्षे! मेरी बात सुनकर काम गौरवका ध्यान रखते हुए मुझे प्रणाम करके विनयपूर्वक मुझसे पुनः यह वचन कहने लगा— ॥ ५०-५१ ॥

काम बोला—हे तात! मैंने शिवको मोहित करनेके लिये भली-भाँति यत्नपूर्वक उपाय किये, किंतु उनको मोह नहीं हुआ, न आगे होगा और वर्तमानमें भी वे मोहित नहीं हैं ॥ ५२ ॥

किंतु आपकी वाणीका गौरव मानकर इन मारगणोंको देखकर आपकी आज्ञासे मैं पुनः वहाँ पत्नीसहित जाऊँगा ॥ ५३ ॥

हे ब्रह्मन्! मैंने मनमें यह निश्चय कर लिया है कि उन्हें मोह नहीं होगा और हे विधे! मुझे यह शंका है कि [इस बार] कहीं वे मेरे शरीरको भस्म न कर दें ॥ ५४ ॥

हे मुनीश्वर! ऐसा कहकर वह कामदेव वसन्त, रति तथा मारगणोंको साथ लेकर भयपूर्वक शिवजीके स्थानपर गया ॥ ५५ ॥

[वहाँ जाकर] कामदेवने पहलेके समान ही अपना प्रभाव दिखाया तथा वसन्तने भी अनेक प्रकारकी बुद्धिका प्रयोग करते हुए बहुत उपाय किये, मारगणोंने भी वहाँ बहुत उपाय किये, किंतु परमात्मा शंकरको कुछ भी मोह न हुआ ॥ ५६-५७ ॥

तब वह कामदेव लौटकर पुनः मेरे पास आया। समस्त मारगण भी अभिमानरहित तथा उदास होकर मेरे सामने खड़े हो गये ॥ ५८ ॥

हे तात! तब उदास और गर्वरहित कामदेवने मारगणों तथा वसन्तके साथ मेरे सामने खड़े होकर प्रणाम करके मुझसे कहा— ॥ ५९ ॥

हे विधे! मैंने शिवजीको मोहित करनेके लिये पहलेसे भी अधिक प्रयत्न किया, किंतु ध्यानरत चित्तवाले उन शिवको कुछ भी मोह नहीं हुआ ॥ ६० ॥

उन दयालुने मेरे शरीरको भस्म नहीं किया, इसमें मेरे पूर्वजन्मका पुण्य ही कारण है। वे प्रभु सर्वथा निर्विकार हैं। हे ब्रह्मन्! यदि आपकी ऐसी इच्छा है कि महादेवजी दारपरिग्रह करें, तो मेरे विचारसे आप गर्वरहित होकर दूसरा उपाय कीजिये ॥ ६१-६२ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर कामदेव मुझे प्रणाम करके गर्वका खण्डन करनेवाले दीनवत्सल शम्भुका स्मरण करता हुआ परिवारसहित अपने आश्रमको चला गया ॥ ६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कामप्रभाव एवं मारगणोत्पत्तिवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

ब्रह्मा और विष्णुके संवादमें शिवमाहात्म्यका वर्णन

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! आप धन्य हैं, जो आपकी बुद्धि शिवमें आसक्त है। आपने परमात्मा शंकरजीके सुन्दर चरित्रका आख्यान किया ॥ १ ॥

मारगणों तथा [अपनी स्त्री] रतिके साथ जब काम अपने स्थानपर चला गया, तब क्या हुआ और आपने क्या किया? अब उस चरित्रको कहिये ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! आप अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक महादेवजीके चरित्रको सुनिये, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य विकारसे मुक्त हो जाता है ॥ ३ ॥

कामके सपरिवार अपने आश्रममें चले जानेपर उस समय जो हुआ, उस चरित्रको मुझसे सुनिये ॥ ४ ॥

हे नारद! मेरा घमण्ड चूर-चूर हो गया और अपने मनोरथके अपूर्ण रहनेसे मुझ आनन्दरहितके हृदयमें विस्मय हुआ॥ ५॥

मैंने मनमें अनेक प्रकारसे विचार किया कि वे निर्विकार, जितात्मा तथा योगपरायण शिव स्त्रीको किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं?॥ ६॥

हे मुने! इस प्रकार अनेक तरहसे विचार करके अहंकाररहित मैंने उस समय अपने जन्मदाता शिवस्वरूप उन विष्णुका भक्तिपूर्वक स्मरण किया और दीनतापूर्ण वाक्योंसे युक्त कल्याणकारी स्तोत्रोंसे मैं उनकी स्तुति करने लगा। उसे सुनकर चतुर्भुज, कमलनयन, शंख-पद्म-गदाधारी, पीताम्बरसे सुशोभित तथा श्यामवर्णके शरीरवाले भक्तप्रिय भगवान् विष्णु शीघ्र ही मेरे सम्मुख प्रकट हो गये॥ ७—९॥

उस प्रकारके रूपवाले शरणागतवत्सल उन भगवान्‌को देखकर मैंने पुनः प्रेमसे गद्‌गद वाणीमें बार-बार उनकी स्तुति की॥ १०॥

अपने भक्तोंके दुःखको दूर करनेवाले भगवान् विष्णु उस स्तोत्रको सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो मुझ शरणागत ब्रह्मासे कहने लगे॥ ११॥

विष्णुजी बोले—हे विधे! हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! आप धन्य हैं, हे लोककर्ता! आपने आज किसलिये मेरा स्मरण किया और किसलिये आप मेरी स्तुति कर रहे हैं?॥ १२॥

आपको कौन-सा महान् दुःख हो गया है, उसे अभी बताइये। उस सम्पूर्ण दुःखका मैं नाश करूँगा, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! विष्णुके इन वचनोंको सुनकर मैंने दीर्घ श्वास लिया और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विष्णुसे यह वचन कहा— ॥ १४॥

हे देवदेव! हे रमानाथ! मेरी बात सुनिये और हे मानद! उसे सुनकर दया करके मेरा दुःख दूर कीजिये तथा मुझे सुखी कीजिये॥ १५॥

हे विष्णो! मैंने रुद्रके सम्मोहनके लिये सपरिवार मारगण तथा वसन्तके साथ कामको भेजा था॥ १६॥

उन्होंने शिवजीको मोहित करनेके लिये अनेक प्रकारके उपाय किये, परंतु वे सब निष्फल हो गये। उन समदर्शी योगीको मोह नहीं हुआ॥ १७॥

मेरा यह वचन सुनकर शिवतत्त्वके ज्ञाता, विज्ञानी तथा सब कुछ देनेवाले वे विष्णु विस्मित होकर मुझसे कहने लगे॥ १८॥

विष्णुजी बोले—हे पितामह! आपकी इस प्रकारकी बुद्धि किस कारणसे हो गयी है? हे ब्रह्मन्! अपनी सुबुद्धिसे सब विचारकर मुझसे सत्य-सत्य उसे कहें॥ १९॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! अब उस चरित्रको सुनिये। यह आपकी माया मोहनेवाली है, सुख-दुःखमय यह सारा जगत् उसीके अधीन है॥ २०॥

उसी मायाके द्वारा प्रेरित होकर मैं [इस प्रकारका] पाप करनेके लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। हे देवेश! आपकी आज्ञासे मैं कह रहा हूँ। आप उसे सुनिये॥ २१॥

सृष्टिके प्रारम्भमें मेरे दक्ष आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए और मेरी वाणीसे एक परम सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई॥ २२॥

जिसमें धर्म मेरे वक्षःस्थलसे, काम मनसे तथा अन्य पुत्र मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए, हे हरे! कन्याको देखकर मुझे मोह हो गया॥ २३॥

मैंने आपकी मायासे मोहित होकर जब उसे कुदृष्टिसे देखा, तब उसी समय महादेवजीने आकर मेरी तथा मेरे पुत्रोंकी निन्दा की॥ २४॥

हे नाथ! उन्होंने स्वयंको श्रेष्ठ तथा प्रभु मानकर ज्ञानी, योगी, जितेन्द्रिय, भोगरहित मुझ ब्रह्माको तथा मेरे पुत्रोंको धिक्कारा॥ २५॥

हे हरे! मेरे पुत्र होकर भी शिवने सबके सामने ही मेरी निन्दा की। यही मुझे महान् दुःख है, इसे मैंने आपके सामने कह दिया॥ २६॥

यदि वे पत्नी ग्रहण कर लें, तो मैं सुखी हो जाऊँगा और मेरे मनका कष्ट दूर हो जायगा। हे केशव! इसीलिये मैं आपकी शरणमें आया हूँ॥ २७॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] मुझ ब्रह्माका यह वचन सुनकर विष्णु हँसकर मुझ सृष्टिकर्ता ब्रह्माको हर्षित करते हुए शीघ्र ही कहने लगे— ॥ २८॥

विष्णुजी बोले—हे विधे! सम्पूर्ण भ्रमका निवारण

करनेवाले और वेद तथा आगमोंद्वारा अनुमोदित परमार्थयुक्त मेरे वचनको सुनें॥ २९॥

हे विधे! वेदके वक्ता तथा समस्त लोकके कर्ता होकर भी आप इस प्रकार महामूर्ख तथा दुर्बुद्धियुक्त किस प्रकार हो गये?॥ ३०॥

हे मन्दात्मन्! आप अपनी जड़ताका त्याग करें और इस प्रकारकी बुद्धि न करें। सम्पूर्ण वेद स्तुतिद्वारा क्या कहते हैं, अच्छी बुद्धिसे उसका स्मरण करें॥ ३१॥

हे दुर्बुद्धे! आप उन परेश, रुद्रको अपना पुत्र समझते हैं। हे विधे! आप वेदके वक्ता हैं, फिर भी आपका समस्त ज्ञान विस्मृत हो गया है॥ ३२॥

[ऐसा ज्ञात होता है कि] इस समय आपकी सुबुद्धि नष्ट हो गयी है और आपमें कुमति उत्पन्न हो गयी है, जो आप शंकरको सामान्य देवता समझकर उनसे द्रोह कर रहे हैं॥ ३३॥

हे ब्रह्मन्! निर्णय करके वेदोंमें वर्णित किया गया जो कल्याणकारक तत्त्वसिद्धान्त कहा गया है, उसे आप सुनिये और सद्बुद्धि रखिये॥ ३४॥

शिवजी ही समस्त सृष्टिके कर्ता, भर्ता, हर्ता परात्पर, परब्रह्म, परेश, निर्गुण, नित्य, अनिर्देश्य, निर्विकार, परमात्मा, अद्वैत, अच्युत, अनन्त, सबका अन्त करनेवाले, स्वामी, व्यापक, परमेश्वर, सृष्टि-पालन-संहारको करनेवाले, सत्त्व-रज-तम—इन तीन गुणोंसे युक्त, सर्वव्यापी, रज-सत्त्व-तमरूपसे ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर नाम धारण करनेवाले, मायासे भिन्न, इच्छारहित, मायास्वरूप, माया रचनेमें प्रवीण, सगुण, स्वतन्त्र, अपनेमें आनन्दित रहनेवाले, निर्विकल्पक, अपनेमें ही रमण करनेवाले, द्वन्द्वसे रहित, भक्तोंके अधीन रहनेवाले, उत्तम शरीरवाले, योगी, सदा योगमें निरत रहनेवाले, योगमार्ग दिखानेवाले, लोकेश्वर, गर्वको दूर करनेवाले तथा सदैव दीनोंपर दया करनेवाले हैं। जो ऐसे स्वामी हैं, उन्हें आप अपना पुत्र मानते हैं!॥ ३५—४०॥

हे ब्रह्मन्! [शिव हमारे पुत्र हैं—] इस प्रकारका अज्ञान छोड़ दीजिये। उन्हींकी शरणमें जाइये और सब प्रकारसे शिवजीका भजन कीजिये, वे प्रसन्न होकर आपका कल्याण करेंगे॥ ४१॥

यदि आपका यह विचार है कि शिवजी अवश्य दारपरिग्रह करें, तो शिवजीका स्मरण करते हुए आप शिवाको उद्देश्य करके कठोर तप कीजिये॥ ४२॥

आप अपनी इच्छाको हृदयमें धारणकर [भगवती] शिवाका ध्यान कीजिये। यदि वे देवेश्वरी प्रसन्न हो गयीं, तो आपका समस्त कार्य पूर्ण करेंगी॥ ४३॥

यदि वे शिवा सगुणरूपसे अवतार लेकर किसी मनुष्यकी कन्या बनें, तो निश्चय ही वे उन (शिव)-की पत्नी बन सकती हैं॥ ४४॥

हे ब्रह्मन्! आप [इस कार्यके लिये] दक्षको आज्ञा दीजिये कि वे स्वयं भक्तितत्पर होकर उन शिवपत्नीको उत्पन्न करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक तप करें॥ ४५॥

हे तात! आप इसे भली प्रकार समझ लें कि वे शिवा और शिव भक्तोंके अधीन हैं, परब्रह्मस्वरूप ये दोनों स्वेच्छासे सगुणभाव धारण कर लेते हैं॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने इस प्रकार कहकर तत्क्षण अपने प्रभु शिवजीका स्मरण किया और उसके बाद उनकी कृपासे ज्ञान प्राप्तकर वे मुझसे कहने लगे—॥ ४७॥

विष्णुजी बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें शिवजीकी इच्छासे उत्पन्न हुए हम दोनोंके द्वारा प्रार्थना करनेपर उन्होंने जो-जो वचन कहा था, उसका स्मरण कीजिये॥ ४८॥

आप वह सब भूल गये हैं। शिवजीकी जो पराशक्ति है, वह धन्य है, उसीने इस समस्त जगत्को मोहित कर रखा है। शिवके अतिरिक्त उसे कोई नहीं जान सकता॥ ४९॥

हे ब्रह्मन्! जब निर्गुण शिवजीने अपनी इच्छासे सगुणरूप धारण किया था, उस समय मुझे तथा आपको उत्पन्न करके अपनी शक्तिके साथ उत्तम विहार करनेवाले, सृष्टिकर्ता, अविनाशी, परमेश्वर उन शम्भुने आपको सृष्टिकार्यके लिये तथा मुझे उसके पालनके लिये आदेश दिया॥ ५०-५१॥

उसके बाद हम दोनोंने हाथ जोड़कर विनम्र होकर निवेदन किया कि आप सर्वेश्वर होकर भी सगुणरूप धारणकर अवतार लीजिये। ऐसा कहनेपर करुणामय

तथा अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेमें प्रवीण उन स्वामी शिवजीने आकाशकी ओर देखकर हँसते हुए प्रेमपूर्वक कहा— ॥ ५२-५३ ॥

हे विष्णो! मेरा ऐसा ही परम रूप ब्रह्माजीके अंगसे प्रकट होगा, जो लोकमें रुद्र नामसे प्रसिद्ध होगा। वह मेरा पूजनीय पूर्णरूप आप दोनोंके समस्त कार्यको पूरा करनेवाला, जगत्का लयकर्ता, सभी गुणोंका अधिष्ठाता, निर्विशेष तथा उत्तम योग करनेवाला होगा ॥ ५४-५५ ॥

यद्यपि त्रिदेव मेरे स्वरूप हैं, किंतु 'हर' मेरे पूर्णरूप होंगे। [इसी प्रकार] हे पुत्रो! उमाके भी तीन प्रकारके रूप होंगे। लक्ष्मी विष्णुकी पत्नी, सरस्वती ब्रह्माकी पत्नी और पूर्णरूपा सती रुद्रकी पत्नी होंगी ॥ ५६-५७ ॥

विष्णुजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] भगवान् महेश्वर ऐसा कहकर हमदोनोंपर कृपा करके अन्तर्धान हो गये, उसके बाद हम दोनों सुखी होकर अपने-अपने कार्योंमें लग गये ॥ ५८ ॥

हे ब्रह्मन्! समय पाकर हमदोनोंने स्त्री ग्रहण कर ली, किंतु शंकरजीने नहीं। वे रुद्र नामसे अवतीर्ण हुए हैं और कैलास पर्वतपर रहते हैं ॥ ५९ ॥

हे प्रजेश्वर! वे शिवा सती नामसे अवतीर्ण होंगी। अतः उन्हें उत्पन्न होनेके लिये हमदोनोंको यत्न करना चाहिये ॥ ६० ॥

परम कृपा करके वे विष्णु ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये। तब मैं [शिवजीके प्रति] ईर्ष्यारहित होकर अत्यधिक प्रसन्न हो गया ॥ ६१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें ब्रह्मा और विष्णुका संवाद नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

ब्रह्माद्वारा जगदम्बिका शिवाकी स्तुति तथा वरकी प्राप्ति

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! हे तात! [आपसे] इस प्रकार कहकर विष्णुके अन्तर्धान हो जानेपर क्या हुआ? हे विधे! आपने क्या किया? हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे श्रेष्ठ विप्रनन्दन! भगवान् विष्णुके चले जानेपर मैंने जो कार्य किया, आप उसे सावधानीपूर्वक सुनिये ॥ २ ॥

तब मैं विद्या-अविद्यास्वरूपा, शुद्ध, परब्रह्मस्वरूपिणी तथा जगत्को धारण करनेवाली शम्भुप्रिया देवी दुर्गाकी स्तुति करने लगा ॥ ३ ॥

सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली, नित्य, निराश्रय, निराकुल, त्रिदेवोंको उत्पन्न करनेवाली, स्थूलसे भी स्थूल रूप धारण करनेवाली तथा निराकार दुर्गाकी मैं वन्दना करता हूँ। आप चित्स्वरूपा, परमानन्दस्वरूपिणी तथा परमात्म-स्वरूपिणी हैं। हे देवेशि! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों और मेरा कार्य करें। आपको नमस्कार है ॥ ४-५ ॥

हे मुने! हे देवर्षे! मेरे द्वारा इस प्रकार स्तुति करनेपर वे योगनिद्रा भगवती चण्डिका मेरे सामने प्रकट हो गयीं ॥ ६ ॥

वे भगवती दुर्गा चिकने अंजनके समान शरीरकी कान्तिसे युक्त थीं, वे सुन्दर रूपसे सम्पन्न थीं, उनकी दिव्य चार भुजाएँ थीं, वे सिंहपर सवार थीं, वे हाथमें वरमुद्रा धारण किये हुए थीं, उनके केशोंमें मोती तथा मणियाँ ग्रथित थीं, वे अत्यन्त उत्कट थीं, उनका मुख शरत्कालीन पूर्णिमाके समान था, उनके मस्तकपर शुभ चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था, वे तीन नेत्रोंसे युक्त थीं, उनके समस्त शरीरके अवयव परम मनोहर थे तथा वे चरणकमलके नखकी कान्तिसे प्रकाशित हो रही थीं ॥ ७-८ ॥

इस प्रकार अपने सामने शिवकी शक्ति उन भगवती उमाको उपस्थित देखकर भक्तिसे सिर झुकाकर मैं उन्हें प्रणाम करके [इस प्रकार] स्तुति करने लगा— ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे जगत्की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-स्वरूपे! हे सर्गस्थितिरूपे! आपको नमस्कार है। आप

समस्त चराचरकी शक्ति, सनातनी तथा सबको मोहित करनेवाली हैं॥ १०॥

जो महालक्ष्मी भगवान् विष्णुको मालाकी भाँति हृदयमें धारण करनेवाली, विश्वका भरण करनेवाली तथा सभीका पोषण करनेवाली हैं, जो महेश्वरी पूर्वमें त्रिलोकीका सृजन करनेवाली हैं, उसका संहार करनेवाली हैं तथा गुणोंसे सर्वथा परे हैं॥ ११॥

जो योगियोंके लिये पूज्य हैं, मनोहर हैं—वे आप ही हैं। हे परमाणुओंकी सारस्वरूपे! आपको नमस्कार है। जो यम-नियमोंसे पवित्र हुए योगियोंके हृदयमें निवास करनेवाली तथा योगियोंके द्वारा ध्यानगम्य हैं, वे प्रकाश एवं शुद्धि आदिसे युक्त, मोहसे रहित एवं [इस जगत्को] अनेक प्रकारसे अवलम्ब देनेवाली विद्यास्वरूपा आप ही हैं। आप कूटस्थ, अव्यक्त एवं अनन्तरूपा हैं। [हे भगवति!] आप कालरूपसे इस जगत्को धारण करती हैं॥ १२-१३॥

आप गुणोंसे युक्त होकर सभी प्राणियोंमें नित्य विकाररूप बीज उत्पन्न करती हैं। हे शिवे! आप तीनों गुणोंकी कारणरूपा हैं तथा इससे परे भी हैं॥ १४॥

[हे देवि!] आप सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंके साथ ही पार्थिव विकारोंसे रहित तुरीय रूप हैं। आप इस जगत्की तथा गुणोंकी हेतुभूता हैं। आप ही ब्रह्माण्डमें स्थित रहकर इस जगत्की सृष्टि, प्रलय तथा पालन करती हैं॥ १५॥

हे सम्पूर्ण जगत्की बीजस्वरूपे! हे ज्ञान तथा ज्ञेयस्वरूपिणि! आप सर्वदा जगत्के हितसाधनमें तत्पर रहनेवाली हैं। अत: हे शिवपत्नि! आपको सदा नमस्कार है॥ १६॥

[ब्रह्माजी बोले—] मेरी स्तुतिको सुनकर लोकका कल्याण करनेवाली वे महाकाली, सामान्य मनुष्यकी भाँति मुझ जगत्स्रष्टासे प्रेमपूर्वक कहने लगीं॥ १७॥

देवी बोलीं—हे ब्रह्मन्! आपने मेरी स्तुति किसलिये की है, इसे आप ठीकसे समझ लें। आप मेरे भक्त हैं, तो उसे शीघ्र ही मेरे सामने निवेदन करें॥ १८॥

मेरे प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट हो जानेपर कार्य-सिद्धि निश्चित है। अत: आप अपनी मनोभिलषित बात कहें, मैं प्रसन्न होकर उसे निश्चित रूपसे करूँगी॥ १९॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! हे महेश्वरि! मेरे ऊपर कृपाकर मेरी बात सुनें। हे सर्वज्ञे! आपकी आज्ञासे मैं अपने मनोरथकी बात कह रहा हूँ॥ २०॥

हे देवेशि! पूर्वकालमें मेरे ललाट-प्रदेशसे उत्पन्न हुए आपके पति जो रुद्रनामसे प्रसिद्ध हैं, वे इस समय योगी होकर कैलासपर्वतपर निवास कर रहे हैं॥ २१॥

वे भूतोंके स्वामी इस समय अकेले निर्विकल्पक समाधिमें लीन होकर तप कर रहे हैं। वे निर्विकार होनेके कारण पत्नीसे रहित हैं और [आत्मामें रमण करनेके कारण] दूसरी पत्नीकी अपेक्षा नहीं करते॥ २२॥

हे सति! आप उन्हींको मोहित करें, जिससे वे [आत्माभिरमणसे उपरत होकर] दूसरी स्त्री [आप]-को देखें। आपके अतिरिक्त कोई अन्य स्त्री उनके मनको मोहित करनेवाली नहीं होगी। इसलिये आप ही दक्षकी कन्या बनकर अपने रूपसे शिवजीको मोहित करनेवाली हों। हे शिवे! आप शिवपत्नी बनें॥ २३-२४॥

जिस प्रकार आप लक्ष्मीका रूप धारणकर विष्णुको प्रसन्न करती हैं, उसी प्रकार संसारके हितके लिये आप इस कार्यको भी वैसे ही करें॥ २५॥

हे देवि! जब उन शिवने स्त्रीविषयक अभिलाषा-मात्रसे मेरी निन्दा की, तो भला वे स्वेच्छासे किस प्रकार स्त्री ग्रहण कर सकते हैं?॥ २६॥

यदि वे स्त्री ग्रहण कर भी लें, तो भी वे तो सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें सदैव विरक्त रहते हैं, अत: उनसे उत्तम सृष्टि किस प्रकार होगी?॥ २७॥

हे देवि! इस प्रकार चिन्तापरायण हुए मेरे लिये आपके अतिरिक्त और कोई शरणप्रद नहीं है, इसलिये विश्वकल्याणके निमित्त आप मेरे इस कार्यको करें॥ २८॥

शिवजीको मोहित करनेमें न विष्णु, न लक्ष्मी, न

काम और न तो मैं ही समर्थ हूँ। हे जगन्माता! आपके बिना कोई भी उन्हें मोहित करनेमें समर्थ नहीं है ॥ २९ ॥

अतः आप दिव्यरूपा दक्षपुत्रीके रूपमें जन्म लेकर मेरी भक्तिके आग्रहसे महायोगी शिवको मोहित करें और उनकी पत्नी महेश्वरी बनें ॥ ३० ॥

हे देवेशि! इस समय दक्षप्रजापति क्षीरसमुद्रके उत्तर तटपर आपको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे मनमें आपका ध्यान करते हुए दृढ़व्रती होकर तपस्या कर रहे हैं ॥ ३१ ॥

ब्रह्माजी बोले—मेरे इस वचनको सुनकर वे जगदम्बिका शिवा चिन्तित हो उठीं और विस्मित होकर अपने मनमें कहने लगीं— ॥ ३२ ॥

देवी बोलीं—वेदवक्ता और जगत्कर्ता ये विधाता महान् अज्ञानसे युक्त होकर कैसी बात कर रहे हैं—अहो! यह महान् आश्चर्य है!॥ ३३ ॥

ब्रह्माके चित्तमें ऐसा यह दुःखदायी महान् मोह कैसे उत्पन्न हो गया कि वे निर्विकार परमात्माको भी मोहित करना चाहते हैं!॥ ३४ ॥

ये ब्रह्मा मुझसे शिवजीके मोहका वर चाहते हैं, इनका कौन-सा लाभ है? वे प्रभु तो निर्विकल्प, निर्मोह हैं ॥ ३५ ॥

वे शम्भु निर्विकार, निर्गुण तथा परब्रह्म हैं और मैं तो सदा उनकी आज्ञामें रहनेवाली दासी हूँ॥ ३६ ॥

वे स्वतन्त्र परमेश्वर शिवभक्तोंके उद्धारहेतु अपने पूर्ण रूपसे रुद्र नामसे अवतीर्ण हुए हैं ॥ ३७ ॥

वे रुद्र ब्रह्मा तथा विष्णुके भी स्वामी हैं और किसी भी प्रकार शिवसे कम नहीं हैं। वे योगका आदर करनेवाले, मायासे रहित, मायापति तथा परसे भी परे हैं ॥ ३८ ॥

अज्ञानसे मोहित ये ब्रह्मा उन्हें अपना आत्मज तथा सामान्य देवता समझकर मोहित करना चाहते हैं ॥ ३९ ॥

यदि इन ब्रह्माको वरदान न दूँ, तो वेदकी नीति भ्रष्ट होती है। अब मैं क्या करूँ, जिससे प्रभु महेश्वर मेरे ऊपर क्रोधित न हों ॥ ४० ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवाने इस प्रकार विचारकर मनसे महादेवजीका स्मरण किया। तत्पश्चात् शिवकी आज्ञा पाकर वे दुर्गा मुझसे कहने लगीं— ॥ ४१ ॥

दुर्गा बोलीं—हे ब्रह्मन्! आपने जो भी कहा है, वह सब सत्य है, मुझे छोड़कर शंकरजीको मोहित करनेवाली कोई दूसरी स्त्री संसारमें नहीं है ॥ ४२ ॥

आपने जो कहा कि जबतक शंकरजी दारपरिग्रह नहीं करेंगे, तबतक सनातनी सृष्टि नहीं होगी, यह बात भी सत्य है ॥ ४३ ॥

मुझमें भी महाप्रभुको मोहित करनेकी सामर्थ्य नहीं है, किंतु अब आपके कहनेसे दुगुने उत्साहसे युक्त होकर मैं पूर्ण प्रयत्न करूँगी ॥ ४४ ॥

हे विधे! अब मैं वैसा उपाय करूँगी, जिससे शंकरजी मोहित होकर स्वयं स्त्री ग्रहण करेंगे ॥ ४५ ॥

जिस प्रकार महाभागा लक्ष्मीजी विष्णुप्रिया हैं, उसी प्रकार मैं भी सतीरूप धारणकर उनकी वशवर्तिनी [प्रिया पत्नी] बनूँगी ॥ ४६ ॥

वे भी जिस प्रकारसे मेरे वशवर्ती बने रहें, मैं भी उन्हींकी कृपासे वैसा ही यत्न करूँगी ॥ ४७ ॥

हे पितामह! मैं दक्षकी पत्नीके गर्भसे सतीरूपसे जन्म लेकर अपनी लीलाके द्वारा शिवजीको प्राप्त करूँगी ॥ ४८ ॥

जिस प्रकार संसारमें अन्य प्राणी स्त्रीके वशमें होते हैं, उसी प्रकार मेरी भक्तिसे वे महादेवजी भी स्त्रीके वशवर्ती बने रहेंगे ॥ ४९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! मुझसे इस प्रकार कहकर वे जगदम्बा शिवा मेरे देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥ ५० ॥

उनके अन्तर्धान हो जानेपर मैं लोकपितामह ब्रह्मा वहाँ गया, जहाँ मेरे पुत्र थे और मैंने उनसे सब कुछ वर्णन किया ॥ ५१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दुर्गास्तुति-ब्रह्मवरप्राप्तिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

दक्षप्रजापतिका तपस्याके प्रभावसे शक्तिका दर्शन और उनसे रुद्रमोहनकी प्रार्थना करना

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे शिवभक्त! हे प्राज्ञ! हे निष्पाप! आपने शिवा तथा शिवके कल्याणकारी चरित्रका भलीभाँति वर्णन किया और मेरे जन्मको पवित्र कर दिया॥ १॥

अब आप यह बताइये कि व्रतमें दृढ़ता रखनेवाले दक्षने तप करके देवीसे कौन-सा वर प्राप्त किया तथा वे शिवा किस प्रकार दक्षकन्याके रूपमें उत्पन्न हुईं?॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तुम इन मुनियोंके साथ शिवमें भक्ति रखनेके कारण अत्यन्त धन्य हो। उत्तम व्रतवाले दक्षने जिस प्रकार तपस्या की तथा वर प्राप्त किया, उसे सुनो॥ ३॥

मेरी आज्ञा पाकर वे बुद्धिमान् महाराज दक्षप्रजापति उस कार्यकी सिद्धिकी इच्छासे चित्तको समाहितकर देवी जगदम्बाकी उपासनाके लिये गये और क्षीरसागरके उत्तरतटपर रहनेवाली उन जगदम्बिकाको हृदयमें धारण करके उनका प्रत्यक्ष दर्शन करनेहेतु तपस्या करने लगे॥ ४-५॥

इन्द्रियोंको अपने वशमें करके दृढ़व्रती उन दक्षने देवताओंके तीन हजार वर्षपर्यन्त नियमपूर्वक तप किया॥ ६॥

उन जगन्मयी शिवाका ध्यान करते हुए दक्षने कुछ दिन पत्ते खाकर, कुछ दिन जल पीकर, कुछ दिन निराहार रहकर तथा कुछ दिन वायु पीकर उस समयको व्यतीत किया॥ ७॥

इस प्रकार वे सुव्रत दुर्गाके ध्यानमें संलग्न होकर बहुत समयतक तपस्या करते रहे और अनेक नियमोंसे देवीकी आराधना करते रहे। तब हे मुनिश्रेष्ठ! अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि यमोंसे युक्त होकर जगदम्बाकी पूजा करते हुए उन दक्षके सामने जगदम्बा शिवा प्रत्यक्ष हुईं॥ ८-९॥

तब दक्ष प्रजापतिने उन जगन्मयी जगदम्बाको अपने सामने प्रत्यक्ष देखकर अपनेको कृत्यकृत्य समझा॥ १०॥

सिंहपर सवार, कृष्णवर्णवाली, सुन्दर मुखवाली,

चार भुजाओंवाली, हाथोंमें वर-अभय-नीलकमल तथा खड्ग धारण की हुई, मनोहर, लाल नेत्रवाली, बिखरे हुए सुन्दर बालोंसे युक्त, जगत्‌की जन्मदात्री तथा सुन्दर कान्तिवाली उन कालिकाको प्रणामकर दक्ष-प्रजापतिने [अपनी] विचित्र वाणीसे उनकी स्तुति की॥ ११-१२॥

दक्ष बोले—हे जगदम्बे! हे महामाये! हे जगदीश्वरि! हे महेश्वरि! आपने कृपा करके मुझे अपने रूपका दर्शन दिया है, आपको मेरा नमस्कार है॥ १३॥

हे भगवति! हे आद्ये! मुझपर प्रसन्न हों, हे शिवरूपिणि! प्रसन्न हों, हे भक्तवरदे! प्रसन्न हों, हे जगन्माये! आपको नमस्कार है॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! संयत चित्तवाले दक्षने इस प्रकार महेश्वरीकी स्तुति की, तब उनके मनोरथको जानती हुई भी वे दक्षसे कहने लगीं—॥ १५॥

देवी बोलीं—हे दक्ष! मैं आपकी इस भक्तिसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है,

अतः अपना अभीष्ट वर माँगिये॥ १६॥

ब्रह्माजी बोले—जगन्माताके इस वचनको सुनकर दक्ष प्रजापति अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवाको बारंबार प्रणाम करते हुए कहने लगे—॥ १७॥

दक्ष बोले—हे जगदम्ब! हे महामाये! यदि आप मुझे वर देना चाहती हैं, तो मेरे वचनोंको सुनिये और प्रसन्नतासे मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये॥ १८॥

जो मेरे स्वामी शिव हैं, वे रुद्रनामसे ब्रह्माके पुत्ररूपमें अवतरित हुए हैं, वे परमात्माके पूर्णावतार हैं, परंतु अभीतक आपका अवतार नहीं हुआ है, [आपके अतिरिक्त] उनकी पत्नी कौन हो सकती है? अतः हे शिवे! आप पृथ्वीपर अवतरित होकर उन्हें मोहित करें॥ १९-२०॥

[हे देवि!] आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी उन्हें मोहित नहीं कर सकती, इसलिये आप इस समय मेरी कन्याके रूपमें जन्म लेकर शिवपत्नी बनें॥ २१॥

इस प्रकार उत्तम लीला करके आप शिवजीको मोहमें डालें, हे देवि! मेरा यही वर है, आपके सामने मैंने सत्य कह दिया॥ २२॥

इसमें केवल मेरा ही स्वार्थ नहीं है, अपितु सम्पूर्ण लोकोंका और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजीका भी स्वार्थ है। इसीलिये ऐसा करनेके लिये ब्रह्माजीने मुझे प्रेरित किया है॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—दक्षके इस वचनको सुनकर जगदम्बा मनमें उन शिवजीका स्मरण करके हँसकर कहने लगीं—॥ २४॥

देवी बोलीं—हे तात! हे प्रजापते! हे दक्ष! मेरी सत्य बात सुनिये। मैं आपकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न होकर सब कुछ प्रदान करनेवाली हूँ। हे दक्ष! मैं महेश्वरी आपकी पुत्री बनूँगी, इसमें सन्देह नहीं। मैं आपकी भक्तिके वशमें हो गयी हूँ॥ २५-२६॥

हे अनघ! मैं अत्यन्त कठोर तप करके ऐसा प्रयत्न करूँगी, जिससे शिवजीसे वरको प्राप्तकर उनकी पत्नी बन जाऊँ॥ २७॥

वे प्रभु सदाशिव ब्रह्मा तथा विष्णुके सेव्य, विकाररहित तथा पूर्ण हैं। अतः बिना तपके इस प्रकारकी कार्यसिद्धि नहीं हो सकती है॥ २८॥

मैं तो प्रत्येक जन्ममें उनकी प्रिय दासी हूँ और अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाले वे सदाशिव मेरे स्वामी हैं॥ २९॥

वे वरके प्रभावसे ब्रह्माजीकी भृकुटिसे अवतीर्ण हुए हैं और मैं भी उन्हींकी आज्ञासे ब्रह्माजीके वरदानसे इस लोकमें अवतार लूँगी॥ ३०॥

हे तात! अब आप अपने घर जाइये। मैंने अपनी दूतीको सारी बात बता दी है। मैं [कुछ ही दिनोंमें] आपकी कन्या बनकर शीघ्र ही शिवकी पत्नी बनूँगी॥ ३१॥

इस प्रकार दक्षप्रजापतिसे श्रेष्ठ वचन कहकर और मनमें शिवकी आज्ञा पाकर वे शिवजीके चरणकमलोंका ध्यान करके पुनः कहने लगीं—॥ ३२॥

देवी बोलीं—हे प्रजापते! परंतु मेरी एक प्रतिज्ञा अपने मनमें सदैव रखना। मैं उस प्रतिज्ञाको तुम्हें सुना देती हूँ, उसे सत्य समझना, असत्य नहीं॥ ३३॥

यदि आपने कभी मेरा अनादर किया तो मैं अपना शरीर त्याग दूँगी, यह सत्य है। मैं सर्वथा स्वतन्त्र हूँ, अतः दूसरा शरीर धारण करूँगी॥ ३४॥

हे प्रजापते! मैं प्रत्येक सर्गमें आपकी कन्या बनकर शिवजीकी पत्नी बनूँगी—मैंने यह वरदान आपको दिया॥ ३५॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्ष प्रजापतिसे कहकर वे महेश्वरी उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ३६॥

देवीके अन्तर्धान होनेपर दक्ष भी अपने घर चले गये और यह विचारकर आनन्दित हो गये कि देवी मेरी कन्या बनकर अवतार ग्रहण करेंगी॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दक्षवरप्राप्तिवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माकी आज्ञासे दक्षद्वारा मैथुनी सृष्टिका आरम्भ, अपने पुत्र हर्यश्वों तथा सबलाश्वोंको निवृत्तिमार्गमें भेजनेके कारण दक्षका नारदको शाप देना

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाप्राज्ञ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! दक्षप्रजापतिके घर चले जानेके बाद फिर क्या हुआ? यह सब [वृत्तान्त] प्रीतिपूर्वक कहिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] दक्षप्रजापतिने अपने आश्रममें जाकर प्रसन्नचित्त हो मेरी आज्ञासे बहुत-सी मानसी सृष्टि की, किंतु उस प्रजासृष्टिको बढ़ता हुआ न देखकर दक्ष अपने पिता मुझ ब्रह्मासे कहने लगे— ॥ २-३॥

दक्ष बोले—हे तात! हे ब्रह्मन्! हे प्रजानाथ! मेरे द्वारा बनायी गयी प्रजाएँ बढ़ नहीं रही हैं। मैंने भली प्रकारसे विचारकर देख लिया है कि मैंने जितनी भी सृष्टि की है, वह उतनी ही है॥ ४॥

हे प्रजानाथ! मैं क्या करूँ? यह मेरी प्रजा किस प्रकार बढ़ेगी? आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे प्रजाओंके सृष्टिक्रमका विस्तार करूँ॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—हे दक्ष! हे प्रजापते! हे तात! मेरी उत्तम बात सुनिये और उसे कीजिये। हे सुरश्रेष्ठ! भगवान् शंकर आपका कल्याण करेंगे॥ ६॥

हे प्रजेश! पंचजन प्रजापतिकी जो असिक्नी नामक सुन्दर पुत्री है, उसे आप पत्नीरूपसे ग्रहण कीजिये॥ ७॥

अभीतक आप पत्नीरहित होकर धर्माचरण करते रहे हैं, किंतु इस प्रकारकी पत्नीमें मैथुनधर्मसे प्रवृत्त होकर जब आप सृष्टि करेंगे, तब प्रजा बढ़ेगी॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तब दक्षप्रजापतिने मैथुनधर्मसे प्रजासृष्टि करनेके लिये मेरी आज्ञासे वीरणकी कन्याके साथ विवाह किया॥ ९॥

प्रजापति दक्षने अपनी पत्नी उस वीरिणीके गर्भसे हर्यश्व नामक दस हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ १०॥

हे मुने! वे सभी पुत्र समान धर्माचरण करनेवाले, पिताकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले और सदा वेदमार्गका अनुसरण करनेवाले थे॥ ११॥

हे तात! वे सभी दक्षपुत्र अपने पिताकी आज्ञा पाकर सृष्टिके उद्देश्यसे तपस्याहेतु पश्चिम दिशाकी ओर चले गये॥ १२॥

वहाँपर परम पवित्र नारायणसर नामक तीर्थ है, जहाँ दिव्य सिन्धु नदी तथा समुद्रका संगम हुआ है॥ १३॥

उस तीर्थके स्पर्शमात्रसे उनकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो गयी और पापके दूर होते ही वे सभी परमहंसधर्ममें स्थित हो गये॥ १४॥

तत्पश्चात् दृढ़चित्तवाले तथा श्रेष्ठ वे दक्षपुत्र पिताकी आज्ञासे बँधे होनेके कारण प्रजावृद्धिके लिये तप करने लगे॥ १५॥

हे नारद! सृष्टिसंवर्धनहेतु उन्हें घोर तप करते हुए जानकर और विष्णुका मनोगत अभिप्राय समझकर आप उनके पास गये और आदरपूर्वक आपने उनसे कहा—हे दक्षपुत्र हर्यश्वो! तुमलोग पृथिवीका विस्तार न जानकर सृष्टिकर्ममें किस प्रकार प्रवृत्त हुए हो?॥ १६-१७॥

ब्रह्माजी बोले—वे हर्यश्वगण आपकी कही हुई बात सुनकर सृष्टिके विषयमें सावधान होकर मनमें बहुत विचार करने लगे॥ १८॥

जो उत्तम शास्त्ररूपी पिताके निवृत्तिपरक वचनोंको नहीं जानता, वह मात्र गुणोंपर ही विश्वास रखनेवाली सृष्टिका उपक्रम किस प्रकार कर सकता है?॥ १९॥

वे परम बुद्धिमान् दक्षपुत्र एकाग्र बुद्धिसे ऐसा विचारकर देवर्षि नारदकी परिक्रमा करके एवं उन्हें प्रणामकर निवृत्तिमार्गमें परायण हो गये॥ २०॥

हे नारद! हे मुने! आप शिवके मन हैं और लोकमें पर्यटन करते रहते हैं तथा निर्विकार रहकर शिवकी चित्तवृत्तिके अनुसार रहते हैं॥ २१॥

बहुत काल बीतनेपर मेरे पुत्र दक्षप्रजापति नारदजीके द्वारा अपने पुत्रोंके नाशको सुनकर बहुत सन्तप्त हुए॥ २२॥

उस समय आपने शोक करते हुए दक्षसे बार-बार

कहा कि आप अच्छी सन्तानवाले थे, [जो कि आपके पुत्र श्रेष्ठ मार्गका अनुसरण करते हुए मुक्त हो गये] किंतु वे दक्ष शिवकी मायासे मोहित हो बार-बार शोक करते रहे॥ २३॥

तदनन्तर दक्षके पास आकर मैंने उन्हें शान्तिभावका उपदेशकर सान्त्वना देते हुए कहा [शोक मत करो], दैव बड़ा प्रबल होता है॥ २४॥

तब दक्षप्रजापतिने मेरे द्वारा धीरज बँधाये जानेपर पुनः पंचजनकी कन्या [असिक्नी]-के गर्भसे सबलाश्व नामक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ २५॥

दृढ़ व्रतवाले वे सबलाश्व भी पिताकी आज्ञासे सृष्टिसंवर्धनहेतु वहाँ गये, जहाँ उनसे पूर्व उनके भाई गये थे और सिद्ध हो गये थे॥ २६॥

वे भी उस तीर्थके स्पर्शमात्रसे सर्वथा निष्पाप तथा शुद्ध अन्तःकरणवाले हो गये और उत्तम व्रतमें परायण होकर ब्रह्मका जप करते हुए कठिन तप करने लगे॥ २७॥

हे नारद! आपने सृष्टि करनेके लिये उन्हें तपस्यामें उद्यत देखकर उनके पास जाकर ईश्वरकी गतिका स्मरण करते हुए वही उपदेश दिया, जो पूर्वमें उनके भाइयोंको दिया था॥ २८॥

हे मुने! आपका दर्शन निष्फल नहीं होता, इसलिये आपने उनको भी पूर्वके भाइयोंके मार्गका उपदेश किया, जिससे वे भी अपने भाइयोंके मार्गका अनुसरण करते हुए उसी मार्गपर चले गये॥ २९॥

उसी समय दक्षप्रजापतिको अनेक उत्पात दिखायी पड़ने लगे। वे अपने पुत्रोंको आया न देखकर आश्चर्यचकित होकर मनमें दुखी हो गये॥ ३०॥

उन्होंने आपके द्वारा प्रथम पुत्रोंके नाशके समान ही इन पुत्रोंके भी नाशका जब समाचार सुना, तो वे आश्चर्यमें भरकर पुत्रशोकसे मूर्च्छित हो अत्यन्त सन्तप्त हो उठे॥ ३१॥

वे दक्ष आपपर कुपित हो गये और कहने लगे कि यह नारद दुष्ट है। उसी समय दैवयोगसे उनके पुत्रोंपर अनुग्रह करनेवाले आप भी दक्षके पास आ गये॥ ३२॥

उस समय वे प्रजापति दक्ष क्रोधमें भरकर अपने ओठोंको फड़फड़ाते हुए आपके पास आये और आपको धिक्कारते हुए निन्दापूर्वक कहने लगे—॥ ३३॥

दक्ष बोले—हे अधमोंमें श्रेष्ठ! तुमने साधुका रूप धारणकर मेरे सत्पुत्रोंको यह कैसा उपदेश किया? तुमने मेरे इन पुत्रोंको इस प्रकार भिक्षुमार्गका उपदेश क्यों किया, जो उनके लिये कल्याणकारी नहीं था॥ ३४॥

तुम्हारे-जैसे निर्दयी शठने देव, ऋषि तथा पितृ-ऋणसे मुक्त हुए बिना ही मेरे पुत्रोंको ऐसा उपदेशकर उनके इस लोक तथा परलोकके कल्याणको नष्ट कर दिया, क्योंकि जो बिना तीनों ऋणों*से मुक्त हुए ही माता-पिताको छोड़कर मोक्षकी इच्छा करता हुआ निवृत्तिमार्गका अनुसरण करता है, वह नरकगामी होता है॥ ३५-३६॥

तुम निर्दयी, अत्यन्त निर्लज्ज हो, बालकोंको बहकानेवाले तथा यशको नष्ट करनेवाले हो। हे मूर्ख! तुम हरिके पार्षदोंके बीचमें व्यर्थ ही विचरण करते हो॥ ३७॥

हे अधमाधम! तुमने बार-बार मेरा अहित किया है। इसलिये लोकमें भ्रमण करते हुए तुम्हारा पैर स्थिर न रहे॥ ३८॥

---

* ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक वेद-शास्त्रोंके स्वाध्यायसे ऋषि-ऋण, यज्ञ और पूजा आदिसे देव-ऋण तथा पुत्रके उत्पादनसे पितृ-ऋणका निवारण होता है।

इस प्रकार शिवजीकी मायासे मोहित हुए दक्षने ईश्वरकी इच्छाको नहीं समझा और सज्जनोंके मान्य आपको शोकसन्तप्त होकर शाप दे दिया और हे मुने! निर्मल बुद्धिवाले आपने भी दक्ष प्रजापतिके इस शापको ग्रहण कर लिया, हे ब्रह्मसाधो! ऐसा साधु स्वयं इस प्रकारके अपकारको सहन कर लेता है॥ ३९-४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दक्षकी सृष्टि [उपाख्यान]-में नारद-शापवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

दक्षकी साठ कन्याओंका विवाह, दक्षके यहाँ देवी शिवा (सती)-का प्राकट्य, सतीकी बाललीलाका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे देवमुने! इसी समय मैं लोकपितामह ब्रह्मा भी इस चरित्रको जानकर प्रीतिपूर्वक शीघ्रतासे वहाँ पहुँचा॥ १॥

मैंने पूर्वकी भाँति दक्ष प्रजापतिको धैर्य धारण कराया, जिससे वे प्रसन्न हो आपसे पूर्ववत् स्नेह करने लगे॥ २॥

हे मुनिवर्य! मैं देवताओंके प्रिय अपने पुत्र आपको प्रेमपूर्वक बहुत धीरज देकर अपने साथ लेकर आश्रमको लौट आया॥ ३॥

तदनन्तर दक्षप्रजापतिने मेरी आज्ञासे अपनी स्त्रीमें साठ सौभाग्यवती कन्याओंको उत्पन्न किया॥ ४॥

दक्षने आलस्यरहित होकर उन कन्याओंका विवाह धर्मादिकोंके साथ जिस प्रकार किया, उसे प्रीतिपूर्वक सुनिये। हे मुनीश्वर! उसको मैं कह रहा हूँ॥ ५॥

हे मुने! दक्षने दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कश्यप मुनिको और सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको विधिपूर्वक दीं। दो-दो कन्याएँ अंगिरा तथा कृशाश्वको और अन्य कन्याएँ तार्क्ष्यको दीं। जिनकी प्रसूति-परम्परासे यह समस्त जगत् व्याप्त है, विस्तारके भयसे मैं उनका वर्णन नहीं कर रहा हूँ॥ ६—८॥

कुछ लोग शिवाको इन कन्याओंसे ज्येष्ठ कहते हैं, कोई मध्यम कहते हैं और कोई सबसे छोटी मानते हैं, किंतु कल्पभेदसे ये तीनों ही सही हैं॥ ९॥

कन्याकी उत्पत्तिके अनन्तर पत्नीसहित दक्ष प्रजापतिने अत्यन्त प्रेमसे अपने मनमें जगदम्बाका ध्यान किया॥ १०॥

उन्होंने गद्गद स्वरसे प्रेमपूर्वक विनययुक्त होकर हाथ जोड़कर बार-बार नमस्कार करके उनकी स्तुति की॥ ११॥

तब वे देवी सन्तुष्ट होकर मनमें विचार करने लगीं कि मुझे अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये वीरिणीमें अवतार लेना चाहिये। इसके बाद उन जगदम्बाने दक्षके मनमें निवास किया। हे मुनिसत्तम! उस समय वे अत्यन्त शोभित होने लगे॥ १२-१३॥

उन्होंने उत्तम शुभ मुहूर्तमें अपनी स्त्रीमें प्रसन्नतापूर्वक गर्भाधान किया। तब वे दयामयी शिवा दक्षपत्नीके हृदयमें निवास करने लगीं और दक्षकी स्त्रीमें गर्भके समस्त लक्षण प्रकट होने लगे॥ १४-१५॥

हे तात! गर्भमें शिवाके निवासके प्रभावसे वे दक्षपत्नी वीरिणी महामंगल-स्वरूपा और [पहलेकी अपेक्षा] अधिक प्रसन्नचित्त हो गयीं॥ १६॥

उस समय दक्षने अपने कुलके सम्प्रदायके अनुसार, वेदके अनुसार तथा अपने सम्मानके अनुरूप प्रसन्नतापूर्वक पुंसवनादि सभी संस्कार किये। उन पुंसवनादि कर्मोंमें महान् उत्सव हुआ। दक्ष प्रजापतिने ब्राह्मणोंको उस समय यथेष्ट धन प्रदान किया॥ १७-१८॥

उस समय विष्णु आदि सभी देवगण देवीको वीरिणीके गर्भमें आयी हुई जानकर प्रसन्न हो गये और वहाँ आकर उन सबने लोकका उपकार करनेवाली उन जगदम्बाको बार-बार प्रणाम करके उनकी स्तुति की॥ १९-२०॥

इसके बाद प्रसन्नचित्त होकर वीरिणी तथा दक्ष प्रजापतिकी बहुत ही प्रशंसाकर वे अपने-अपने घर चले गये॥ २१॥

हे नारद! हे मुने! इस प्रकार नौ मास पूर्ण हो जानेपर समस्त लौकिक क्रिया कर लेनेके बाद जब दसवाँ मास पूर्ण हो गया, तब वे शिवा चन्द्र, ग्रह, तारा [आदि]-के अनुकूल होनेपर सुखद मुहूर्तमें शीघ्र ही माताके सामने प्रकट हो गयीं॥ २२-२३॥

उनके उत्पन्न होते ही प्रजापति दक्ष बड़े प्रसन्न हुए तथा उनके प्रकृष्ट तेजको देखकर उन्होंने उन्हें वही शिवादेवी समझा॥ २४॥

हे मुनीश्वर! उन देवीके उत्पन्न होते ही उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी, मेघोंने जलकी वर्षा प्रारम्भ कर दी और सभी दिशाएँ शान्त हो गयीं। देवता आकाशमें स्थित होकर उत्तम बाजे बजाने लगे और शान्त अग्नियाँ प्रज्वलित हो उठीं। इस प्रकार [सभी दिशाओंमें] मंगल-ही-मंगल हो गया॥ २५-२६॥

वीरिणीमें उत्पन्न हुई उन जगदम्बाको देखकर दक्ष भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करके स्तुति करने लगे॥ २७॥

दक्ष बोले—हे महेशानि! हे सनातनि! हे जगदम्बे! आपको नमस्कार है, हे सत्ये! हे सत्यस्वरूपिणि! हे महादेवि! [मेरे ऊपर] दया करें॥ २८॥

वेदके ज्ञाता जिन्हें शिवा, शान्ता, महामाया, योगनिद्रा तथा जगन्मयी कहते हैं, उन आप हितकारिणी देवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २९॥

जिन्होंने पूर्वकालमें ब्रह्माजीको उत्पन्नकर इस जगत्‌की सृष्टिके कार्यमें नियुक्त किया है, उन परमा जगन्माता आप महेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३०॥

जिन्होंने सदा संसारके पालनके लिये विष्णुको नियुक्त किया है, उन परमा जगन्माता आप महेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने संसारके विनाशके लिये रुद्रको नियुक्त किया है, उन परमा जगन्माता आप महेश्वरीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३१-३२॥

सत्त्व-रज-तमरूपोंवाली, सर्वदा समस्त कार्योंको साधनेवाली तथा तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाली उन आप शिवादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३३॥

हे देवि! जो आपको विद्या-अविद्या—इन दोनों रूपोंसे स्मरण करता है, उसके हाथमें भोग तथा मोक्ष दोनों ही स्थित हो जाते हैं॥ ३४॥

हे देवि! जो परमपावनी शिवास्वरूपा आपका प्रत्यक्ष दर्शन करता है, उसे विद्या तथा अविद्याको प्रकाशित करनेवाली मुक्ति अपने-आप मिल जाती है॥ ३५॥

हे जगदम्बे! जो अम्बिका, जगन्मयी एवं दुर्गा—इन नामोंसे आप भवानीका स्तवन करते हैं, उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं॥ ३६॥

ब्रह्मा बोले—जब इस प्रकार जगन्माता शिवाकी स्तुति दक्षप्रजापतिने की, तब वे दक्षसे इस प्रकारसे कहने लगीं, जिससे कि माता वीरिणी न सुन सकें॥ ३७॥

नाना प्रकारके रूपोंको धारण करनेवाली उन परमेश्वरी शिवाने सबको मोहित करके इस प्रकार सत्य कहा कि उसे केवल दक्ष ही सुन सकें, अन्य कोई नहीं॥ ३८॥

देवी बोलीं—हे प्रजापते! आपने मुझे पुत्रीरूपसे प्राप्त करनेहेतु पहले मेरी आराधना की थी, वह आपका अभीष्ट पूरा हुआ, अब आप पुनः तपस्या कीजिये॥ ३९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दक्षसे कहकर वे देवी अपनी मायासे शिशुका रूप धारणकर माताके पास रोने लगीं॥ ४०॥

उस रोदनको सुनकर और उसे स्त्रीका शब्द जानकर स्त्रियाँ तथा समस्त दासियाँ भी आश्चर्यचकित हो प्रीतिपूर्वक वहाँ गयीं। असिक्नीकी सुताके रूपको देखकर सभी स्त्रियाँ

परम प्रसन्न हुईं। उस समय समस्त नगरवासियोंने भी जय-जयकार किया॥ ४१-४२॥

नगरमें गाने-बजानेके साथ महान् उत्सव होने लगा। पुत्रीका सुन्दर मुख देखकर असिक्नी तथा दक्ष परम प्रसन्न हुए। दक्षप्रजापतिने विधिपूर्वक वेदविहित कुलाचार किया और ब्राह्मणोंको दान दिया तथा अन्य लोगोंको भी बहुत-सा धन दिया॥ ४३-४४॥

वहाँ सभी ओर मंगलाचारपूर्वक गायन तथा नृत्य होने लगा और अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे॥ ४५॥

[शिवाके जन्मके समय] विष्णु आदि सभी देवगण अपने-अपने अनुचरों तथा मुनियोंके साथ आकर यथाविधि अनेक उत्सव करने लगे॥ ४६॥

दक्षकन्याके रूपमें [अवतरित हुई] उन परमेश्वरी जगदम्बाको देखकर देवताओंने विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अनेक प्रकारके उत्तम स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। सभी देवता प्रसन्न होकर जय-जयकार करने लगे और दक्ष तथा वीरिणीकी विशेष रूपसे प्रशंसा करने लगे॥ ४७-४८॥

दक्षने प्रसन्न होकर विष्णु आदि देवताओंकी आज्ञासे सभी गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण उस प्रशस्त अम्बिकाका उमा—यह नाम रखा। उसके बाद लोकमें उनके अन्य नाम भी पड़े, जो मंगल करनेवाले तथा लोगोंके दुःख दूर करनेवाले थे॥ ४९-५०॥

उस समय दक्षप्रजापतिने हाथ जोड़कर विष्णु, मुझ ब्रह्मा, सम्पूर्ण मुनियों तथा देवताओंकी स्तुति करके भक्तिपूर्वक सभी लोगोंका पूजन किया॥ ५१॥

तदनन्तर विष्णु आदि सभी देवगण दक्षकी प्रशंसा करके शिवा तथा शिवका स्मरण करते हुए अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ ५२॥

उसके बाद माताने भी यथोचित रूपसे उस कन्याका संस्कारकर बालकोंकी स्तनपानविधिसे उसे अपना दूध पिलाया॥ ५३॥

महात्मा प्रजापति दक्ष तथा वीरिणीने [बड़ी सावधानीके साथ] उस कन्याका लालन-पालन किया, जिससे वह शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाके समान प्रतिदिन बढ़ने लगी॥ ५४॥

हे द्विजश्रेष्ठ! उस कन्यामें बाल्यकालमें ही सभी सद्गुण प्रविष्ट हो गये; जैसे चन्द्रमामें सभी मनोहर कलाएँ अपने-आप आ जाती हैं॥ ५५॥

जब वह सखियोंके बीचमें जाकर अपने भावमें मग्न होती थी, तब प्रतिदिन शंकरजीकी प्रतिमाका बार-बार निर्माण करती थी। जब वह शिवा बालोचित गाने गाती, तो वह कामपर शासन करनेवाले हर, रुद्र तथा स्थाणुका [गानेके बहाने] स्मरण करती थी॥ ५६-५७॥

दक्ष प्रजापति तथा वीरिणीका स्नेह दिन-प्रतिदिन उस कन्यापर बढ़ता ही गया। यद्यपि वह बालिका थी, फिर भी वह अपने माता-पितामें बड़ी भक्ति रखती थी॥ ५८॥

सभी बालोचित गुणोंसे परिपूर्ण वह उमा देवी अपने घरके सभी कार्योंको निपुणतासे सम्पन्नकर प्रतिदिन अपने माता-पिताको सन्तुष्ट करने लगी॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीजन्म एवं बाललीलाका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

सतीद्वारा नन्दा-व्रतका अनुष्ठान तथा देवताओंद्वारा शिवस्तुति

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! एक समय आपके साथ जाकर मैंने त्रिलोकीकी सर्वस्वभूता उन सतीको अपने पिताके पास बैठी हुई देखा॥ १॥

पिताके द्वारा नमस्कृत तथा सत्कृत होते हुए हमदोनोंको देखकर लोकलीलाका अनुसरण करनेवाली उन सतीने प्रेमपूर्वक भक्तिके साथ आपको तथा मुझे प्रणाम किया॥ २॥

हे नारद! प्रणाम करनेके पश्चात् दक्षके द्वारा दिये गये आसनपर हम दोनों बैठ गये, इसके बाद विनम्र सतीको देखकर मैंने कहा—हे सति! जो तुम्हें चाहता

है तथा जिसे तुम चाहती हो, उन सर्वज्ञ जगदीश्वरको तुम पतिरूपमें प्राप्त करो। जिसने [तुम्हारे अतिरिक्त] दूसरी स्त्रीका पाणिग्रहण नहीं किया है, जो वर्तमानमें भी न करते हैं, न करेंगे और हे शुभे! जिनकी समता कोई और करनेवाला नहीं है, वे ही [इस समय] तुम्हारे पति हों॥ ३—५॥

हे नारद! ऐसा कहकर कुछ दिन दक्षके घर निवासकर हमदोनों उनसे विदा लेकर अपने-अपने स्थानपर चले गये॥ ६॥

मेरी बात सुनकर दक्ष परम प्रसन्न होकर चिन्तारहित हो गये और अपनी कन्याको परमेश्वरी जानकर उनका बड़ा सत्कार करने लगे॥ ७॥

अपनी इच्छासे मनुष्यशरीर धारण करनेवाली, भक्तवत्सला देवीने मनोहर कौमारोचित विहार करके अपनी कौमार्यावस्था समाप्त की॥ ८॥

अपनी तपस्याके प्रभावसे सर्वांगमनोहरा उन सतीने धीरे-धीरे बाल्यावस्था समाप्तकर युवावस्थाको प्राप्त किया॥ ९॥

लोकेश दक्षप्रजापति उस कन्याको युवावस्थाको प्राप्त हुई देखकर विचार करने लगे कि अपनी इस पुत्रीको शिवके लिये किस प्रकार प्रदान करूँ॥ १०॥

इधर, वे सती भी प्रतिदिन शिवको प्राप्त करनेकी इच्छा करने लगीं। पिताके मनोभावको जानकर वे माताके पास आयीं। विशाल बुद्धिवाली उन सती परमेश्वरीने शंकरको प्राप्त करनेकी इच्छासे तप करनेके लिये अपनी माता वीरिणीसे आज्ञा माँगी। तब दृढ़ व्रतवाली वे सती माताकी आज्ञासे महेश्वरको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये घरमें ही तपस्या करने लगीं॥ ११—१३॥

उन्होंने आश्विनमासकी प्रत्येक नन्दा तिथि—प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशीमें गुड़, भात तथा लवणसे भक्तिपूर्वक हरका पूजन किया, इस प्रकार उस मासको बिता दिया॥ १४॥

कार्तिकमासकी चतुर्दशीको खीर तथा अपूपसे शिवजीकी आराधनाकर वे उनका स्मरण करने लगीं॥ १५॥

वे मार्गशीर्षके कृष्णपक्षकी अष्टमीको यव, तिल एवं चावलसहित कीलोंसे शिवजीका पूजनकर दिन बिताने लगीं॥ १६॥

वे सती पौषमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको रात्रिमें जागरण करके प्रातःकाल खिचड़ीसे शिवका पूजन करने लगीं॥ १७॥

माघकी पूर्णिमा तिथिको रात्रिमें जागरणकर प्रातःकाल भीगे कपड़े पहनकर वे नदीके किनारे शिवका पूजन करने लगीं॥ १८॥

फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशीको रात्रिमें जागरणकर सब प्रहरोंमें बिल्वपत्र तथा बिल्वफलसे शिवकी विशेष पूजा करने लगीं॥ १९॥

चैत्र शुक्ल चतुर्दशीको वे सती पलाशपुष्प तथा दवनों [दौनों]-से शिवजीकी पूजा करती थीं और दिन-रात उनका स्मरण करती हुई समय व्यतीत करती थीं॥ २०॥

वैशाख शुक्ल तृतीयाको गव्य, तिलाहार, यव एवं चावलोंसे शिवजीका पूजनकर उस मासको व्यतीत करने लगीं॥ २१॥

ज्येष्ठकी पूर्णिमाके दिन निराहार रहकर रात्रिमें वस्त्र एवं भटकटैयाके पुष्पोंसे शिवजीका पूजन करके वे सती उस मासको व्यतीत करने लगीं॥ २२॥

वे आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीको काले वस्त्र एवं भटकटैयाके पुष्पोंसे शिवजीकी पूजा करने लगीं॥ २३॥

वे श्रावण शुक्ल अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथिको पवित्र यज्ञोपवीत तथा वस्त्रोंसे शिवका पूजन करने लगीं॥ २४॥

भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशीको अनेक प्रकारके पुष्पों तथा फलोंसे शिवका पूजन करके वे चतुर्दशी तिथिमें केवल जलका आहार करती थीं॥ २५॥

इस प्रकार वे परिमित आहार करके जप करती हुई उन-उन कालोंमें उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकारके फल, पुष्प तथा शस्योंद्वारा प्रत्येक महीने शिवार्चन करती थीं॥ २६॥

अपनी इच्छासे मानवरूप धारण करनेवाली वे सती दृढ़ व्रतसे युक्त होकर सभी महीनोंमें तथा सभी दिनोंमें शिवपूजनमें तत्पर रहने लगीं॥ २७॥

इस प्रकार नन्दाव्रतको पूर्णरूपसे समाप्त करके

भगवान् शिवमें अनन्य भाव रखनेवाली सती एकाग्रचित्त होकर बड़े प्रेमसे भगवान् शिवका ध्यान करने लगीं तथा उनके ध्यानमें ही निश्चलभावसे स्थित हो गयीं॥ २८॥

हे मुने! इसी समय सब देवता और ऋषि भगवान् विष्णुको और मुझको आगे करके सतीकी तपस्या देखनेके लिये गये॥ २९॥

वहाँ आकर देवताओंने देखा कि सती मूर्तिमती दूसरी सिद्धिके समान जान पड़ती हैं। वे उस समय भगवान् शिवके ध्यानमें निमग्न थीं और सिद्धावस्थामें पहुँच गयी थीं॥ ३०॥

विष्णु आदि समस्त देवताओं तथा मुनियोंने प्रसन्नचित्त होकर दोनों हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर प्रेमपूर्वक सतीको नमस्कार किया॥ ३१॥

इसके बाद अति प्रसन्न श्रीविष्णु आदि सब देवता और मुनिगण आश्चर्यचकित होकर सती देवीकी तपस्याकी [भूरि-भूरि] प्रशंसा करने लगे॥ ३२॥

तदनन्तर वे सभी देवता और ऋषिगण सती देवीको पुन: प्रणामकर भगवान् शिवजीके परमप्रिय श्रेष्ठ कैलास पर्वतपर शीघ्र ही चले गये॥ ३३॥

लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु और सावित्रीसहित मैं भी प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवके समीप गया॥ ३४॥

वहाँ पहुँचकर आश्चर्यचकित होकर सभी लोगोंने प्रभुका दर्शनकर उन्हें प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे वे उनकी स्तुति करने लगे॥ ३५॥

देवता बोले—परम पुरुष, महेश्वर, परमेश्वर और महान् आत्मावाले, सभी प्राणियोंके आदिबीज, चेतनस्वरूप, परात्पर, ब्रह्मस्वरूप, निर्विकार और प्रकृति तथा पुरुषसे परे उन आप भगवान्को नमस्कार है, जिनसे यह चराचर जगत् उत्पन्न हुआ है॥ ३६-३७॥

जो प्रपंचरूपसे स्वयं सृष्टिस्वरूप हैं तथा जिनकी सत्तासे समस्त संसार भासित हो रहा है, जिनके द्वारा यह जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनके अधीन यह समस्त जगत् है, जिनका यह सब कुछ है॥ ३८॥

जो इस जगत्के बाहर तथा भीतर व्याप्त हैं, जो निर्विकार और महाप्रभु हैं, जो अपनी आत्मामें ही इस समस्त विश्वको देखते हैं, उन स्वयम्भू परमेश्वरको हमलोग नमस्कार कर रहे हैं॥ ३९॥

जिनकी दृष्टि कही नहीं रुकती, जो परात्पर, सभी प्राणियोंके साक्षी, सर्वात्मा, अनेक रूपोंको धारण करनेवाले, आत्मस्वरूप, परब्रह्म तथा तप करनेवाले हैं, हमलोग उनकी शरणमें आये हैं॥ ४०॥

देवता, ऋषि तथा सिद्ध भी जिनके पदको नहीं जानते हैं तो फिर अन्य प्राणी उनको किस प्रकार जान सकते हैं? और किस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं? जिनको देखनेके लिये मुक्तसंग साधुजन ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका आचरण करते हैं, वे आप हमारी उत्तम गति हैं॥ ४१-४२॥

हे प्रभो! दु:ख देनेवाले जन्मादि कोई भी विकार आपमें नहीं होते, फिर भी आप अपनी मायासे कृपापूर्वक उन्हें ग्रहण करते हैं॥ ४३॥

आश्चर्यमय कर्म करनेवाले उन आप परमात्माको नमस्कार है। वाणीसे सर्वथा परे आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है॥ ४४॥

बिना रूपके होते हुए भी बहुत रूपोंवाले, परात्पर, अनन्तशक्तिसे समन्वित, त्रिलोकपति, सर्वसाक्षी तथा सर्वव्यापीको नमस्कार है। स्वयं प्रकाशमान, निर्वाणसुख तथा सम्पत्तिस्वरूप, ज्ञानात्मा तथा व्यापक आप ईश्वरको नमस्कार है॥ ४५-४६॥

निष्काम कर्मके द्वारा प्राप्त होनेवाले कैवल्य-पतिको नमस्कार है। परम पुरुष, परमेश्वर तथा सब कुछ देनेवाले आप प्रभुको नमस्कार है॥ ४७॥

क्षेत्रज्ञ, आत्मस्वरूप, सभी प्रत्ययोंके हेतु, सबके पति, महान् तथा मूलप्रकृतिको नमस्कार है। पुरुष, परेश तथा सब कुछ प्रदान करनेवाले आप [परमात्मा]-को नमस्कार है॥ ४८-४९॥

हे कारणरहित! त्रिनेत्र, पाँच मुखवाले तथा सर्वदा ज्योतिःस्वरूप! आपको नमस्कार है। सभी इन्द्रियों और गुणोंको देखनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है॥ ५०॥

तीनों लोकोंके कारण, मुक्तिस्वरूप, मोक्ष प्रदान करनेवाले, शीघ्र ही शरणागतको तारनेवाले, आम्नाय [वेद] तथा आगमशास्त्रके समुद्र, परमेष्ठी तथा भक्तोंके आश्रयरूप आप प्रभुको नमस्कार है॥ ५१-५२॥

हे महेश्वर! आप गुणरूपी अरणीसे आच्छन्न, चित्स्वरूप, अग्निरूप, मूर्खोंके द्वारा प्राप्त न होनेवाले, ज्ञानियोंके हृदयमें सदा निवास करनेवाले, संसारी जीवोंके बन्धनको काटनेवाले, उत्तम भक्तोंको मुक्ति प्रदान करनेवाले, स्वप्रकाशस्वरूप, नित्य, अव्यय, निरन्तर ज्ञानस्वरूप, प्रत्यक्ष द्रष्टा, अविकारी तथा परम ऐश्वर्य धारण करनेवाले हैं, आप प्रभुको नमस्कार है॥ ५३—५४१/२॥

लोग धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके लिये जिनका भजन करते हैं तथा जिनसे अपनी सद्गति चाहते हैं, ऐसे [हे प्रभो!] आप हम सभीके लिये दयारहित कैसे हो गये? हमपर प्रसन्न हों, आपको नमस्कार है॥ ५५॥

आपके अनन्य भक्त आपसे किसी अन्य अर्थकी अपेक्षा नहीं करते हैं, वे तो केवल आपके मंगलस्वरूप चरित्रको ही गाया करते हैं॥ ५६॥

अविनाशी, परब्रह्म, अव्यक्तस्वरूपवाले, व्यापक, अध्यात्म तथा योगसे जाननेयोग्य तथा परिपूर्ण आप प्रभुकी हमलोग स्तुति करते हैं॥ ५७॥

हे अखिलेश्वर! इन्द्रियोंसे परे, स्वयं आधाररहित, सबके आश्रय, हेतुरहित, अनन्त, आद्य और सूक्ष्म आप प्रभुको हम सभी प्रणाम करते हैं॥ ५८॥

आपने अपनी तुच्छ कलामात्रसे नामरूपके द्वारा विष्णु आदि सभी देवताओं तथा इस चराचर जगत्की [अलग-अलग] सृष्टि की है॥ ५९॥

जैसे अग्निकी चिनगारियाँ तथा सूर्यकी किरणें बार-बार निकलती हैं और फिर उन्हींमें लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार सृष्टिका यह प्रवाह त्रिगुणात्मक कहा जाता है॥ ६०॥

हे प्रभो! आप न देवता हैं, न असुर हैं, न मनुष्य हैं, न पक्षी हैं, न द्विज हैं, न स्त्री हैं, न पुरुष हैं, न नपुंसक हैं; यहाँतक कि सत्-असत् कुछ भी नहीं हैं। श्रुतियोंके निषेधसे जो शेष बचता है, वही निषेध-स्वरूप आप हैं। आप विश्वकी उत्पत्ति करनेवाले, विश्वके पालक, विश्वका लय करनेवाले तथा विश्वात्मा हैं, उन ईश्वरको हम सभी प्रणाम करते हैं॥ ६१-६२॥

योगसे दग्ध हुए कर्मवाले योगीलोग अपने योगासक्त चित्तमें जिन्हें देखते हैं, ऐसे आप योगेश्वरको हमलोग नमस्कार करते हैं॥ ६३॥

हे तीनों शक्तियोंसे सम्पन्न असह्य वेगवाले! हे त्रयीमय! आपको नमस्कार है। अनन्त शक्तियोंसे युक्त तथा शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ६४॥

हे दुर्गेश! दूषित इन्द्रियवालोंके लिये आप सर्वथा दुष्प्राप्य हैं; क्योंकि आपको प्राप्त करनेका मार्ग ही दूसरा है। सदा भक्तोंके उद्धारमें तत्पर रहनेवाले तथा गुप्त शक्तिसे सम्पन्न आप प्रभुको नमस्कार है। जिनकी मायाशक्तिके कारण अहंबुद्धिसे युक्त मूर्ख अपने स्वरूपको नहीं जान पाता है, उन दुरत्यय महिमावाले आप महाप्रभुको हम नमस्कार करते हैं॥ ६५-६६॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार महादेवजीकी स्तुति करके मस्तक झुकाये हुए विष्णु आदि सभी देवता उत्तम भक्तिसे युक्त हो प्रभु शिवजीके आगे चुपचाप खड़े हो गये॥ ६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें नन्दाव्रतविधि तथा शिवस्तुतिवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

ब्रह्मा और विष्णुद्वारा शिवसे विवाहके लिये प्रार्थना करना तथा उनकी इसके लिये स्वीकृति

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु आदि देवताओंद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर सबकी उत्पत्ति करनेवाले भगवान् शंकर बड़े प्रसन्न हुए और जोरसे हँसे॥ १॥

सपत्नीक ब्रह्माजी और भगवान् विष्णुको साथ आया हुआ देखकर महादेवजीने हमलोगोंसे यथोचित वार्तालाप करके हमारे आगमनका कारण पूछा॥ २॥

रुद्र बोले—हे हरे! हे विधे! हे देवताओ और महर्षियो! आपलोग आज निर्भय होकर अपने आनेका ठीक-ठीक कारण बताइये। आपलोगोंकी स्तुतिसे मैं [बहुत ही] प्रसन्न हूँ। आपलोग किसलिये यहाँ आये हैं, कौन-सा कार्य आ पड़ा है, वह सब मैं सुनना चाहता हूँ॥ ३-४॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! महादेवजीके इस प्रकार पूछनेपर सभी लोकोंका पितामह मैं ब्रह्मा भगवान् विष्णुकी आज्ञासे कहने लगा॥ ५॥

हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हम दोनों इन देवताओं और मुनियोंके साथ जिस उद्देश्यसे यहाँ आये हैं, उसे सुनिये॥ ६॥

हे वृषभध्वज! विशेष रूपसे आपके लिये ही हमलोग यहाँ आये हैं; क्योंकि हम तीनों सहायतार्थी हैं, [सृष्टिचक्रके संचालनरूप प्रयोजनकी सिद्धिके लिये एक-दूसरेके सहायक हैं] सहार्थीको सदा परस्पर यथायोग्य सहयोग करना चाहिये, अन्यथा यह जगत् टिक नहीं सकता॥ ७॥

हे महेश्वर! कुछ ऐसे असुर उत्पन्न होंगे, जो मेरे द्वारा मारे जायँगे, कुछ भगवान् विष्णुके द्वारा और कुछ आपके द्वारा वध्य होंगे। हे महाप्रभो! कुछ आपके वीर्यसे उत्पन्न पुत्रद्वारा मारे जायँगे और कुछ असुर आपकी मायाके द्वारा वधको प्राप्त होंगे॥ ८-९॥

आप भगवान् शंकरकी कृपासे ही देवताओंको सदा उत्तम सुख प्राप्त होगा। घोर असुरोंका विनाश करके आप जगत्को सदा स्वास्थ्य एवं अभय प्रदान करेंगे॥ १०॥

आप राग-द्वेषरहित, योगयुक्त एवं सर्वथा दयालु हैं, इसलिये हो सकता है कि आप असुरोंका वध न करें। हे ईश! जब ये आराधना करके वर प्राप्त कर लेंगे, तब सृष्टिकी स्थिति किस प्रकार रहेगी? इसलिये हे वृषभध्वज! उचित यही है कि आप [इस सृष्टिकी स्थितिके लिये] सदैव असुरोंका वध करते रहें॥ ११-१२॥

यदि सृष्टि, पालन तथा संहारकर्म न करने हों, तब हमारा तथा मायाका भिन्न-भिन्न शरीर धारण करना सार्थक नहीं रहेगा॥ १३॥

वास्तवमें हम तीनों एक ही स्वरूपवाले हैं, किंतु कार्यके भेदसे भिन्न-भिन्न शरीर धारण करके स्थित हैं। यदि कार्यभेद न सिद्ध हो, तब तो हमारे रूपभेदका कोई प्रयोजन नहीं है॥ १४॥

परमात्मा महेश्वर एक होते हुए भी अपनी मायाके कारण ही तीन रूपोंमें विभक्त हैं, वे प्रभु अपनी लीलासे स्वतन्त्र हैं॥ १५॥

श्रीहरि उनके वामांगसे उत्पन्न हुए हैं, मैं ब्रह्मा उनके दाहिने अंगसे उत्पन्न हुआ हूँ और आप उन सदाशिवके हृदयसे उत्पन्न हैं, अतः आप ही शिवजीके पूर्ण रूप हैं॥ १६॥

हे प्रभो! इस प्रकार भिन्न स्वरूपवाले हम तीन रूपोंमें प्रकट हैं और जो [वस्तुतः] उन शिवाशिवके पुत्र ही हैं। हे सनातन! इस यथार्थ तत्त्वको आप हृदयसे अनुभव कीजिये॥ १७॥

हे प्रभो! मैं और भगवान् विष्णु आपके आदेशसे प्रसन्नतापूर्वक लोककी सृष्टि और पालनका कार्य कर रहे हैं तथा कार्यकारणवश सपत्नीक भी हो गये हैं॥ १८॥

अतः आप भी विश्वहितके लिये तथा देवताओंके सुखके लिये एक परम सुन्दरी स्त्रीको पत्नीके रूपमें ग्रहण करें॥ १९॥

हे महेश्वर! एक और बात सुनिये। मुझे पहलेके वृत्तान्तका स्मरण हो आया है, जिसे पूर्वकालमें आपने ही शिवस्वरूपसे हमारे सामने कहा था॥ २०॥

हे ब्रह्मन्! मेरा ऐसा उत्तम रूप आपके अंगसे प्रकट होगा, जो लोकमें रुद्र नामसे प्रसिद्ध होगा॥ २१॥

आप ब्रह्मा सृष्टिकर्ता होंगे, श्रीहरि जगत्का पालन करनेवाले होंगे तथा मैं सगुण रुद्ररूप होकर संहार करनेवाला होऊँगा॥ २२॥

मैं एक स्त्रीके साथ विवाह करके लोकका उत्तम कार्य करूँगा, [हे स्वामिन्!] आप अपने द्वारा कहे गये वचनको याद करके अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण कीजिये॥ २३॥

हे स्वामिन्! आपका आदेश है कि मैं सृष्टि करूँ, श्रीहरि पालन करें और आप स्वयं संहारके हेतु बनकर प्रकट हों, सो आप साक्षात् शिव ही संहारकर्ताके रूपमें प्रकट हुए हैं। आपके बिना हम दोनों अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हैं। अतः आप लोकहितके कार्यमें तत्पर एक कामिनीको स्वीकार करें॥ २४-२५॥

हे शम्भो! जैसे लक्ष्मी भगवान् विष्णुकी और सावित्री मेरी सहधर्मिणी हैं, उसी प्रकार आप इस समय अपनी सहचरी कान्ताको ग्रहण करें॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—मेरी यह बात सुनकर मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाले वे लोकेश हर श्रीहरिके सामने मुझसे कहने लगे—॥ २७॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! आप दोनों मुझे सदा ही अत्यन्त प्रिय हैं, आप दोनोंको देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है॥ २८॥

आपलोग समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ और त्रिलोकीके स्वामी हैं। लोकहितके कार्यमें मन लगाये रहनेवाले आपदोनोंका वचन अत्यन्त गौरवपूर्ण है॥ २९॥

किंतु हे सुरश्रेष्ठगण! सदा तपस्यामें संलग्न रहकर संसारसे विरत रहनेवाले और योगीके रूपमें प्रसिद्ध मेरे लिये विवाह करना उचित नहीं है; जो निवृत्तिके सुन्दर मार्गपर स्थित, अपनी आत्मामें ही रमण करनेवाला, निरंजन, अवधूत देहवाला, ज्ञानी, आत्मदर्शी, कामनासे शून्य, विकाररहित, अभोगी, सदा अपवित्र और अमंगल वेशधारी है, उसे संसारमें कामिनीसे क्या प्रयोजन है, यह इस समय मुझे बताइये॥ ३०—३२॥

मुझे तो सदा केवल योगमें लगे रहनेपर ही आनन्द आता है, ज्ञानहीन पुरुष ही भोगको अधिक महत्त्व देता है। संसारमें विवाह करना बहुत बड़ा बन्धन समझना चाहिये। इसलिये मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि उसमें मेरी अभिरुचि नहीं है। आत्मा ही अपना उत्तम अर्थ या स्वार्थ है, उसका भलीभाँति चिन्तन करनेके कारण [लौकिक] स्वार्थमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती है, तथापि आपने जगत्के हितके लिये हितकर जो कुछ कहा है, उसे मैं करूँगा। आपके वचनको गरिष्ठ मानकर अथवा अपनी कही हुई बातको पूर्ण करनेके लिये मैं विवाह अवश्य करूँगा; क्योंकि मैं सदा अपने भक्तोंके अधीन हूँ॥ ३३—३६॥

हे हरे! हे ब्रह्मन्! परंतु मैं जैसी नारीको प्रिय पत्नीके रूपमें ग्रहण करूँगा और जिस शर्तके साथ करूँगा, उसे सुनें। मेरा वचन सर्वथा उचित है। जो नारी मेरे तेजको विभागपूर्वक ग्रहण करनेमें समर्थ हो, उस योगिनी तथा कामरूपिणी स्त्रीको मेरी पत्नी बनानेके लिये बतायें। जब मैं योगमें तत्पर रहूँ, तब उसे भी योगिनी बनकर रहना होगा और जब मैं कामासक्त होऊँ, तब उसे भी कामिनीके रूपमें रहना होगा॥ ३७—३९॥

वेदवेत्ता विद्वान् जिन्हें अविनाशी बतलाते हैं, उन ज्योतिःस्वरूप सनातन शिवतत्त्वका मैं सदा चिन्तन करता हूँ। हे ब्रह्मन्! उन सदाशिवके चिन्तनमें जब मैं न लगा होऊँ तब उस कामिनीके साथ मैं समागम कर सकता हूँ। जो मेरे शिव-चिन्तनमें विघ्न डालेगी, वह दुर्भगा स्त्री मेरी भार्या न बने॥ ४०-४१॥

आप ब्रह्मा, विष्णु और मैं तीनों ही महाभाग्यशाली ब्रह्मस्वरूप शिवजीके अंशभूत हैं, अतः हमारे लिये उनका नित्य चिन्तन करना उचित है॥ ४२॥

हे कमलासन! उनके चिन्तनके लिये मैं बिना विवाहके भी रह लूँगा, किंतु उनका चिन्तन छोड़कर विवाह नहीं करूँगा। अतः आपलोग मुझे इस प्रकारकी पत्नी बताइये, जो सदा मेरे कर्मके अनुकूल चल सके॥ ४३॥

हे ब्रह्मन्! उसमें भी मेरी एक शर्त है, उसे आप सुनें। यदि उस स्त्रीका मुझपर और मेरे वचनोंपर अविश्वास होगा, तो मैं उसे त्याग दूँगा॥ ४४॥

ब्रह्माजी बोले—उन रुद्रकी बात सुनकर मैंने और

श्रीविष्णुने मन्द मुसकानके साथ मन-ही-मन प्रसन्नताका अनुभव किया, फिर मैंने विनम्र होकर यह कहा— ॥ ४५ ॥

हे नाथ! हे महेश्वर! हे प्रभो! आपने जिस प्रकारकी स्त्रीका निर्देश किया है, वैसी ही स्त्रीके विषयमें मैं आपको प्रसन्नतापूर्वक बता रहा हूँ ॥ ४६ ॥

वे उमा जगत्की कार्यसिद्धिके लिये भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकट हुई हैं। हे प्रभो! सरस्वती और लक्ष्मी ये दो रूप धारण करके वे पहले ही प्रकट हो चुकी हैं ॥ ४७ ॥

महालक्ष्मी तो विष्णुकी कान्ता तथा सरस्वती मेरी कान्ता हुई हैं। लोकहितका कार्य करनेकी इच्छावाली वे अब हमारे लिये तीसरा रूप धारण करके प्रकट हुई हैं ॥ ४८ ॥

हे प्रभो! वे शिवा 'सती' नामसे दक्षपुत्रीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। वे ही आपकी ऐसी भार्या हो सकती हैं, जो सदा आपके लिये हितकारिणी होंगी ॥ ४९ ॥

हे देवेश! वे दृढ़व्रतमें स्थित होकर आपके लिये तप कर रही हैं। वे महातेजस्विनी सती आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छुक हैं ॥ ५० ॥

हे महेश्वर! [उन सतीके ऊपर] कृपा कीजिये, उन्हें वर प्रदान करनेके लिये जाइये और वैसा वर देकर उनके साथ विवाह कीजिये ॥ ५१ ॥

हे शंकर! भगवान् विष्णुकी, मेरी तथा सभी देवताओंकी यही इच्छा है। आप अपनी शुभ दृष्टिसे हमारी इच्छाको पूर्ण कीजिये, जिससे हम इस उत्सवको आदरपूर्वक देख सकें ॥ ५२ ॥

ऐसा होनेसे तीनों लोकोंमें सुख देनेवाला परम मंगल होगा और सबकी समस्त चिन्ताएँ मिट जायँगी, इसमें संशय नहीं है ॥ ५३ ॥

मेरी बात पूरी होनेपर अच्युत मधुसूदन लीलासे रूप धारण करनेवाले भक्तवत्सल ईशानसे कहने लगे— ॥ ५४ ॥

विष्णुजी बोले—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शम्भो! ब्रह्माजीने जो कुछ भी कहा है, उसे मेरे द्वारा कहा गया ही समझिये, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है ॥ ५५ ॥

हे महेश्वर! मेरे ऊपर कृपा करके उसे कीजिये, उन सतीसे विवाहकर इस त्रिलोकीको अपनी कृपा-दृष्टिसे सनाथ कीजिये ॥ ५६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! यह कहकर उत्तम बुद्धिवाले भगवान् विष्णु चुप हो गये, तब भक्तवत्सल भगवान् शिवजीने हँसकर 'तथास्तु' कहा ॥ ५७ ॥

तत्पश्चात् उनसे आज्ञा प्राप्तकर पत्नियोंसहित हम दोनों मुनियों तथा देवताओंके साथ अपने-अपने अभीष्ट स्थानको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ चले आये ॥ ५८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें विष्णु और ब्रह्माद्वारा शिवकी प्रार्थनाका वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवान् शिवद्वारा सतीको वर-प्राप्ति और शिवका ब्रह्माजीको दक्ष प्रजापतिके पास भेजना

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मैंने सभी देवताओंके द्वारा की गयी शिवजीकी उत्तम स्तुतिको आपसे कह दिया। हे मुने! सतीने जिस प्रकार शिवजीसे वर प्राप्त किया, उसे अब मुझसे सुनो ॥ १ ॥

सतीने आश्विनमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको उपवासकर भक्तिपूर्वक सर्वेश्वर शिवजीका पूजन किया ॥ २ ॥

इस प्रकार नन्दाव्रतके पूर्ण हो जानेपर नवमी तिथिका कुछ भाग शेष रह गया था, उस समय ध्यानमें निमग्न उन सतीके सामने शिव प्रकट हो गये ॥ ३ ॥

वे सर्वांगसुन्दर तथा गौरवर्णके थे, उनके पाँच मुख थे और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। भालदेशमें चन्द्रमा शोभा पा रहा था, उनका चित्त प्रसन्न था, उनका कण्ठ नीला था और उनकी चार भुजाएँ थीं, उन्होंने हाथोंमें त्रिशूल-ब्रह्मकपाल-वर तथा अभय मुद्राको धारण कर रखा था, भस्ममय अंगरागसे उनका शरीर उद्भासित

हो रहा था, उनके मस्तकपर गंगाजी शोभा बढ़ा रही थीं तथा उनके सभी अंग मनोहर थे, वे परम सौन्दर्यके धाम थे, उनका मुख करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान था, उनकी कान्ति करोड़ों कामदेवोंके समान थी और उनकी आकृति स्त्रियोंको प्रिय लगनेवाली थी॥ ४—६॥

इस प्रकारके प्रभु महादेवजीको प्रत्यक्ष देखकर सतीने लज्जासे नीचेकी ओर मुख करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया। तपस्याका फल प्रदान करनेवाले महादेवजी उत्तम व्रत धारण करनेवाली सतीको पत्नीरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हुए भी उनसे कहने लगे— ॥ ७-८॥

महादेवजी बोले—हे दक्षनन्दिनि! मैं तुम्हारे इस व्रतसे प्रसन्न हूँ। हे सुव्रते! जो तुम्हारा अभीष्ट वर हो, उसे माँगो, मैं उसे प्रदान करूँगा॥ ९॥

ब्रह्माजी बोले—[मुने!] जगदीश्वर महादेवने सतीकी भावनाको जानते हुए भी उनकी बात सुननेकी इच्छासे 'वर माँगो'—ऐसा कहा॥ १०॥

वे लज्जाके वशमें हो गयीं और जो उनके मनमें था, उसे कह न सकीं। उनका जो अभीष्ट था, वह लज्जासे आच्छादित हो गया था। शिवजीका प्रिय वचन सुनकर वे प्रेममें विभोर हो गयीं। इसे जानकर भक्तवत्सल शंकरजी अत्यन्त हर्षित हुए॥ ११-१२॥

सत्पुरुषोंके शरणस्वरूप तथा अन्तर्यामी वे शिवजी सतीकी भक्तिके वशीभूत होकर वर माँगो, वर माँगो—ऐसा शीघ्रतापूर्वक बार-बार कहने लगे॥ १३॥

उस समय सतीने अपनी लज्जाको रोककर शिवजीसे कहा—हे वरद! आप कभी भी न टलनेवाला यथेष्ट वर प्रदान करें॥ १४॥

शिवजीने अनुभव किया कि सती अपनी बात पूरी नहीं कर पा रही हैं, एतदर्थ उन्होंने स्वयं ही कहा—हे देवि! तुम मेरी पत्नी बनो॥ १५॥

अपने अभीष्ट फलको प्रकट करनेवाले शिवजीके वचनको सुनकर और अपना मनोगत वर प्राप्त करके सती प्रसन्न होकर चुपचाप खड़ी रहीं। वे सकाम शिवजीके सामने मन्द-मन्द मुसकराती हुई कामनाको बढ़ानेवाले अपने हाव-भाव प्रकट करने लगीं॥ १६-१७॥

सतीद्वारा अभिव्यक्त हाव-भावको स्वीकारकर शृंगाररसने उन दोनोंके चित्तमें शीघ्रतासे प्रवेश किया॥ १८॥

हे देवर्षे! शृंगाररसके प्रवेश करते ही लोकलीला करनेवाले शिवजी तथा सतीकी चित्रासे युक्त चन्द्रमाके समान विलक्षण कान्ति हो गयी॥ १९॥

काले तथा चिकने अंजनके समान कान्तिवाली सती स्फटिकमणिके सदृश कान्तियुक्त उन शिवजीको प्राप्तकर इस प्रकार शोभित हुईं, जिस प्रकार अभ्रलेखा [मेघघटा] चन्द्रमाको प्राप्तकर शोभित होती है॥ २०॥

तदनन्तर दक्षकन्या सती अत्यन्त प्रसन्न होकर दोनों हाथोंको जोड़कर भक्तवत्सल भगवान् शिवजीसे विनम्रतापूर्वक कहने लगीं— ॥ २१॥

सती बोलीं—हे देवदेव! हे महादेव! हे प्रभो! हे जगत्पते! आप मेरे पिताके समक्ष वैवाहिक विधिसे मुझे ग्रहण कीजिये॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार सतीकी बात सुनकर भक्तवत्सल महादेवजीने प्रेमपूर्वक उनकी ओर देखकर यह वचन कहा—ऐसा ही होगा॥ २३॥

तब दक्षकन्या सती भी उन शिवजीको प्रणाम करके भक्तिपूर्वक विदा माँगकर और पुनः उनकी आज्ञा प्राप्त करके मोह और आनन्दसे युक्त हो अपनी माताके पास चली गयीं। शिवजी भी हिमालयके शिखरपर अपने आश्रममें प्रवेश करके दक्षकन्या सतीके वियोगके कारण बड़ी कठिनाईसे ध्यानमें तत्पर हो सके॥ २४-२५॥

देवर्षे! मनको एकाग्र करके लौकिक गतिका आश्रय लेकर वृषध्वज शंकरने मन-ही-मन मेरा स्मरण किया॥ २६॥

तब त्रिशूलधारी महेश्वरके स्मरण करनेपर उनकी सिद्धिसे प्रेरित होकर मैं शीघ्र ही उनके समीप पहुँच गया और हे तात! हिमालयके शिखरपर जहाँ सतीके वियोगजनित दुःखका अनुभव करनेवाले महादेवजी विद्यमान थे, वहीं मैं सरस्वतीसहित उपस्थित हो गया॥ २७-२८॥

हे देवर्षे! तदनन्तर सरस्वतीसहित मुझ ब्रह्माको देखकर सतीके प्रेममें बँधे हुए शिवजी उत्सुकतापूर्वक कहने लगे— ॥ २९॥

शम्भु बोले—हे ब्रह्मन्! मैं जबसे विवाहके कार्यमें स्वार्थबुद्धि कर बैठा हूँ, तबसे अब मुझे इस

स्वार्थमें ही स्वत्व-सा प्रतीत हो रहा है॥ ३०॥

दक्षकन्या सतीने बड़े भक्तिभावसे मेरी आराधना की है और मैंने नन्दाव्रतके प्रभावसे उसे [अभीष्ट] वर दे दिया है॥ ३१॥

हे ब्रह्मन्! उस सतीने मुझसे यह वर माँगा कि आप मेरे पति हो जाइये। तब सर्वथा सन्तुष्ट होकर मैंने भी कह दिया कि तुम मेरी पत्नी हो जाओ॥ ३२॥

तदनन्तर उस सतीने मुझसे कहा—हे जगत्पते! मेरे पिताको सूचित करके [वैवाहिक विधिका पालन करते हुए] मुझे ग्रहण कीजिये। हे ब्रह्मन्! उसकी भक्तिसे सन्तुष्ट हुए मैंने उसे भी स्वीकार कर लिया। हे विधे! [इस प्रकारका वर प्राप्तकर] सती अपनी माताके पास चली गयी और मैं यहाँ चला आया॥ ३३-३४॥

इसलिये हे ब्रह्मन्! आप मेरी आज्ञासे दक्षके घर जाइये और वे दक्षप्रजापति जिस प्रकार मुझे शीघ्र अपनी कन्या प्रदान करें, उस प्रकार उनसे कहिये॥ ३५॥

जिस प्रकार मेरा सतीवियोग भंग हो, वैसा उपाय आप कीजिये। आप सभी प्रकारकी विद्याओंमें निपुण हैं, अत: [इस बातके लिये] दक्षप्रजापतिको समझाइये॥ ३६॥

ब्रह्माजी बोले—यह कहकर वे शिवजी मुझ ब्रह्माके समीप स्थित सरस्वतीको देखकर शीघ्र ही सतीके वियोगके वशीभूत हो गये॥ ३७॥

उनकी आज्ञा पाकर मैं कृतकृत्य और प्रसन्न हो गया तथा उन भक्तवत्सल जगत्पतिसे यह कहने लगा—॥ ३८॥

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! हे शम्भो! आपने जो कुछ कहा है, उसपर भलीभाँति विचार करके हमलोगोंने [पहले ही] उसे सुनिश्चित कर दिया है। हे वृषभध्वज! इसमें देवताओंका और मेरा भी मुख्य स्वार्थ है। दक्ष प्रजापति स्वयं ही आपको अपनी पुत्री प्रदान करेंगे और मैं भी उनके समक्ष आपका वचन कह दूँगा॥ ३९-४०॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] सर्वेश्वर प्रभु महादेवजीसे इस प्रकार कहकर मैं अत्यन्त वेगशाली रथसे दक्षके घर जा पहुँचा॥ ४१॥

नारदजी बोले—हे प्राज्ञ! हे महाभाग! हे विधे! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! [तपस्याके पश्चात्] घर लौटकर आयी हुई सतीके लिये दक्षने क्या किया?॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—तपस्या करके मनोऽभिलषित वर

प्राप्तकर तथा घर जाकर सतीने माता-पिताको प्रणाम किया। तत्पश्चात् सतीने अपनी सखीके द्वारा माता-पितासे वह सारा वृत्तान्त कहलवाया, जिस प्रकार उनकी भक्तिसे प्रसन्न हुए महेश्वरसे उन्हें वरकी प्राप्ति हुई थी॥ ४३-४४॥

सखीके मुँहसे सारा वृत्तान्त सुनकर माता-पिताको बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने महान् उत्सव मनाया॥ ४५॥

उदारचित्त दक्ष और महामनस्विनी वीरिणीने ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार धन दिया और अन्धों, दीनों तथा अन्य लोगोंको भी धन बाँटा॥ ४६॥

प्रीति बढ़ानेवाली अपनी उस पुत्रीको हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघकर और आनन्दविभोर होकर वीरिणीने बार-बार उसकी प्रशंसा की॥ ४७॥

कुछ समय बीतनेपर धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ दक्ष इस चिन्तामें पड़ गये कि मैं अपनी इस पुत्रीको शंकरको किस प्रकार प्रदान करूँ?॥ ४८॥

महादेवजी प्रसन्न होकर मेरी पुत्रीको वर देनेके लिये आये थे, किंतु वे तो चले गये, अब मेरी पुत्रीके लिये वे पुन: कैसे आयेंगे?॥ ४९॥

यदि मैं किसीको उनके पास शीघ्र भेजूँ, तो यह भी उचित नहीं है; क्योंकि यदि वे पुत्रीको स्वीकार न

करें, तो मेरी याचना निष्फल हो जायगी॥ ५०॥

अथवा मैं स्वयं उनका पूजन-अर्चन करूँ, जिससे कि वे मेरी पुत्रीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर स्वयं इसे ग्रहणकर इसके पति बनें॥ ५१॥

उस सतीके द्वारा श्रेष्ठ प्रयत्नसे पूजित होकर वे भी उसको पाना चाह रहे हैं; क्योंकि वे 'मेरे पति शिवजी हों'—सतीको यह वर दे चुके हैं॥ ५२॥

इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए दक्ष प्रजापतिके सामने मैं सरस्वतीके साथ एकाएक उपस्थित हुआ॥ ५३॥

मुझ अपने पिताको देखकर प्रणाम करके दक्ष विनीत भावसे खड़े हुए और उन्होंने मुझ ब्रह्माको यथोचित आसन दिया॥ ५४॥

तत्पश्चात् चिन्तासे युक्त होनेपर भी हर्षित हुए वे दक्ष शीघ्र ही सर्वलोकेश्वर मुझ ब्रह्मासे आगमनका कारण पूछने लगे—॥ ५५॥

दक्ष बोले—हे जगद्गुरो! हे सृष्टिकर्ता! यहाँ आपके आगमनका क्या कारण है, मेरे ऊपर महती कृपा करके उसे कहिये॥ ५६॥

हे लोककारक! आप मुझ पुत्रके स्नेहवश अथवा किसी कार्यवश मेरे आश्रममें पधारे हैं, आपके दर्शनसे मुझे प्रसन्नता हो रही है॥ ५७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम! अपने पुत्र दक्षद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर मैं उन प्रजापतिको प्रसन्न करता हुआ हँसकर कहने लगा॥ ५८॥

ब्रह्माजी बोले—हे दक्ष! मैं जिस उद्देश्यसे यहाँ आपके पास आया हूँ, उसको सुनिये। जिसके करनेसे तुम्हारा तथा मेरा दोनोंका अभीष्ट सिद्ध होगा॥ ५९॥

आपकी पुत्री सतीने जगत्पति महादेवजीकी आराधना करके जो वर प्राप्त किया है, उसका समय अब उपस्थित हो चुका है॥ ६०॥

शम्भुने आपकी पुत्रीको पत्नीरूपमें प्राप्त करनेके लिये ही मुझे आपके पास भेजा है। अब [आपके लिये] जो कल्याणकारी कार्य है, उसे कर डालिये॥ ६१॥

जबसे रुद्र वर प्रदान करके गये हैं, तभीसे आपकी पुत्रीके वियोगके कारण उन शंकरको शान्ति नहीं मिल रही है॥ ६२॥

कामदेव अपने समस्त पुष्पबाणोंके द्वारा अनेक उपाय करके भी छिद्र न पा सकनेके कारण जिन्हें जीत न सका, वे ही शिवजी अब कामबाणसे विद्ध होकर अपना आत्मचिन्तन त्यागकर सतीकी चिन्ता करते हुए सामान्य प्राणीकी भाँति व्याकुल हो रहे हैं॥ ६३-६४॥

वे सुनी हुई वाणीको भी भूल जाते हैं तथा सतीके वियोगवश अपने गणोंके समक्ष ही 'सती कहाँ है'—इस प्रकारकी वाणी कहते हैं और किसी काममें प्रवृत्त नहीं होते हैं। हे सुत! मैंने, आपने, कामदेवने तथा मरीचि आदि श्रेष्ठ मुनियोंने जो पूर्वमें चाहा था, वह इस समय सिद्ध हो चुका है॥ ६५-६६॥

आपकी पुत्रीने शम्भुकी आराधना की है, इससे वे भी उसकी चिन्ता करते हुए उसको प्राप्त करनेकी इच्छासे युक्त होकर हिमालय पर्वतपर स्थित हैं। जिस प्रकार सतीने अनेक प्रकारके भावों और सात्त्विकतापूर्वक व्रतके द्वारा शिवजीकी आराधना की थी, उसी प्रकार [इस समय] वे भी सतीकी आराधना कर रहे हैं॥ ६७-६८॥

इसलिये हे दक्ष! शिवके लिये ही रची गयी अपनी पुत्रीको आप अविलम्ब उन्हें प्रदान कर दीजिये, ऐसा करनेसे आप कृतकृत्य हो जायँगे॥ ६९॥

मैं नारदके साथ जाकर उन्हें आपके घर लाऊँगा और उन्हींके लिये रची हुई इस सतीको उन्हें अर्पित कर दीजिये॥ ७०॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मेरी यह बात सुनकर मेरे पुत्र दक्ष परम प्रसन्न हुए और उन्होंने अत्यन्त हर्षित होकर मुझसे कहा—ठीक है, ऐसा ही होगा॥ ७१॥

उसके बाद हे मुने! मैं अत्यन्त हर्षित हो वहाँपर गया, जहाँ लोककल्याणमें तत्पर रहनेवाले शिवजी उत्सुक होकर बैठे थे॥ ७२॥

हे नारद! मेरे चले आनेपर स्त्री और पुत्रीसहित दक्ष भी अमृतसे परिपूर्ण हुएके समान पूर्णकाम [सफल मनोरथवाले] हो गये॥ ७३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सती-वरलाभवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

देवताओं और मुनियोंसहित भगवान् शिवका दक्षके घर जाना, दक्षद्वारा सबका सत्कार एवं सती तथा शिवका विवाह

नारदजी बोले—जब आप भगवान् रुद्रके पास गये, तब क्या चरित्र हुआ, हे तात! कौन-सी बात हुई और शिवजीने स्वयं क्या किया?॥ १ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तदनन्तर मैं हिमालय पर्वतके कैलास शिखरपर रहनेवाले परमेश्वर महादेव शिवजीको लानेके लिये प्रसन्नतापूर्वक उनके समीप गया॥ २ ॥

वृषभध्वज शिवजी मुझ लोककर्ताको आते हुए देखकर अपने मनमें सतीकी प्राप्तिके विषयमें बार-बार संशय करने लगे॥ ३ ॥

तत्पश्चात् शिवजी प्रीतिपूर्वक अपनी लीलासे और सतीकी भक्तिसे लोकगतिका आश्रय लेकर सामान्य मनुष्यके समान मुझसे शीघ्र कहने लगे—॥ ४ ॥

ईश्वर बोले—हे सुरश्रेष्ठ! आपके पुत्र दक्षप्रजापतिने सतीको मुझे प्रदान करनेके विषयमें क्या किया, आप मुझसे कहिये, जिससे कामके कारण मेरा हृदय विदीर्ण न हो जाय॥ ५ ॥

हे सुरश्रेष्ठ! किसी अन्य प्राणधारिणी कामिनीको छोड़कर केवल सतीकी ओर दौड़ता हुआ यह वियोग मुझे अत्यन्त पीड़ित कर रहा है॥ ६ ॥

हे ब्रह्मन्! मैं सदा 'सती-सती' ऐसा कहता हुआ कार्योंको करता हूँ, उस सतीके पास जाकर आप मेरी व्यथाको कहें। वह सती मुझसे अभिन्न है। हे विधे! अतः उसकी प्राप्तिके लिये आप यत्न कीजिये। अथवा सतीकी प्राप्तिके निमित्त उपाय बताइये, जिसे मैं शीघ्र ही करूँ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद मुने! रुद्रके द्वारा कहे गये लोकाचारयुक्त वचनको सुनकर उन्हें सान्त्वना देते हुए मैं कहने लगा॥ ८ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे वृषभध्वज! सतीके लिये मेरे पुत्र दक्षने जो बात कही है, उसे सुनिये और जिस कार्यको आप अपने लिये असाध्य मान रहे हैं, उसे सिद्ध हुआ समझिये॥ ९ ॥

[दक्षने मुझसे कहा कि हे ब्रह्मन्!] मैं अपनी पुत्री भगवान् शिवके हाथोंमें ही दूँगा; क्योंकि उन्हींके लिये यह उत्पन्न हुई है। यह कार्य मुझे स्वयं अभीष्ट है, फिर आपके भी कहनेसे इसका महत्त्व और बढ़ गया है॥ १० ॥

मेरी पुत्रीने स्वयं इसी उद्देश्यसे भगवान् शिवकी पूजा की थी और इस समय शिवजी भी इसी विषयमें पूछ-ताछ कर रहे हैं। इसलिये मुझे अपनी कन्या शिवजीके हाथमें अवश्य देनी है॥ ११ ॥

हे विधे! वे शंकर शुभ लग्न और सुन्दर मुहूर्तमें मेरे यहाँ पधारें, जिससे मैं उन्हें भिक्षारूपमें अपनी कन्या प्रदान करूँ॥ १२ ॥

हे वृषभध्वज! दक्षने मुझसे ऐसी बात कही है, अतः आप शुभ मुहूर्तमें उनके घर चलिये और सतीको ले आइये॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! मेरी यह बात सुनकर भक्तवत्सल भगवान् रुद्र लौकिक गतिका आश्रय लेकर हँसते हुए मुझसे कहने लगे—॥ १४ ॥

रुद्र बोले—जगत्की रचना करनेवाले हे ब्रह्मन्! मैं आपके और नारदके साथ ही दक्षके घर चलूँगा, अतः आप नारदका स्मरण करें और अपने मरीचि आदि मानसपुत्रोंका भी स्मरण करें, हे विधे! मैं अपने गणोंसहित उन सबके साथ दक्षके घर चलूँगा॥ १५-१६ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] लोकाचारके निर्वाहमें लगे हुए भगवान् शिवजीके इस प्रकार आज्ञा देनेपर मैंने आप नारदका और मरीचि आदि पुत्रोंका स्मरण किया॥ १७ ॥

तब मेरे स्मरण करते ही आपके साथ मेरे सभी मानसपुत्र प्रसन्न होकर आदरपूर्वक शीघ्र ही वहाँ उपस्थित हो गये॥ १८ ॥

भगवान् रुद्रके स्मरण करनेपर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ वे विष्णु भी अपने सैनिकों तथा कमला लक्ष्मीके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो तुरंत ही वहाँ आ गये॥ १९॥

तदनन्तर चैत्र शुक्लपक्ष त्रयोदशीमें रविवारको पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रमें उन महेश्वरने [विवाहके लिये] यात्रा की॥ २०॥
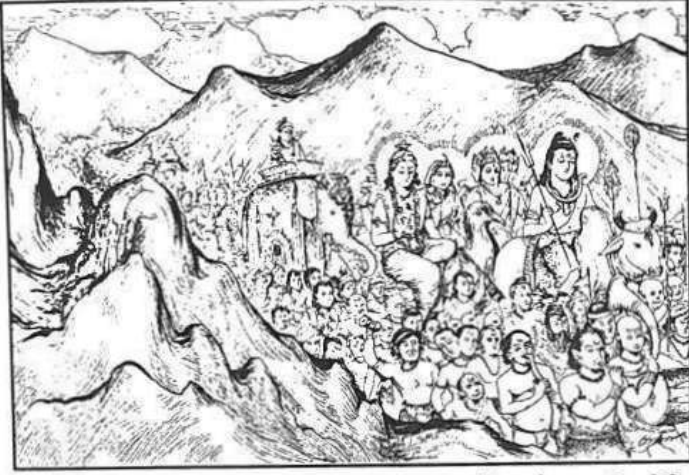
ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवताओं और ऋषियोंके साथ मार्गमें चलते हुए वे शिवजी बहुत शोभा पा रहे थे॥ २१॥

वहाँ जाते हुए देवताओं, मुनियों तथा आनन्दमग्न मनवाले प्रमथगणोंका मार्गमें महान् उत्सव हो रहा था॥ २२॥

शिवजीकी इच्छासे गज, वृषभ, व्याघ्र, सर्प, जटा और चन्द्रकला—ये सब उनके लिये यथायोग्य आभूषण बन गये॥ २३॥

तदनन्तर वेगसे चलनेवाले बलीवर्द (बैल)-पर आरूढ़ हुए महादेवजी विष्णु आदिको साथ लिये क्षणभरमें प्रसन्नतापूर्वक दक्षके घर जा पहुँचे॥ २४॥

तब हर्षके कारण रोमांचित और विनीत चित्तवाले दक्ष समस्त आत्मीय जनोंके साथ [भगवान् शिवकी अगवानीके लिये] उनके सामने आये॥ २५॥

दक्षने वहाँ समस्त देवताओंका सत्कार किया। वे सब लोग सुरश्रेष्ठ शिवजीको बिठाकर उनके पार्श्वभागमें स्वयं भी मुनियोंके साथ यथाक्रम बैठ गये॥ २६॥

इसके पश्चात् दक्ष मुनियोंसहित समस्त देवताओं तथा गणोंको साथ लेकर भगवान् शिवको घरके भीतर ले गये॥ २७॥

उस समय दक्षने प्रसन्नचित्त होकर उत्तम आसन देकर स्वयं ही विधिपूर्वक सर्वेश्वर शिवजीका पूजन किया। तत्पश्चात् उन्होंने विष्णुका, मेरा, ब्राह्मणोंका, देवताओंका और समस्त शिवगणोंका भी यथोचित विधिसे उत्तम भक्तिभावके साथ पूजन किया॥ २८-२९॥

इस तरह पूजनीय पुरुषों तथा अन्य लोगोंसहित उनका पूजन करके दक्षने मेरे मानसपुत्र [मरीचि आदि] मुनियोंके साथ मन्त्रणा की॥ ३०॥

इसके बाद मेरे पुत्र दक्षने मुझ पिताको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक कहा—विभो! आप ही वैवाहिक कार्य करायें॥ ३१॥

तब मैं प्रसन्न मनसे 'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उठ करके वह समस्त कार्य कराने लगा॥ ३२॥

तदनन्तर दक्षने ग्रहोंके बलसे युक्त शुभ लग्न और मुहूर्तमें हर्षपूर्वक शिवजीको अपनी पुत्री सती प्रदान कर दी॥ ३३॥

उन शिवजीने भी उस समय हर्षित होकर सुन्दर शरीरवाली दक्षपुत्रीका वैवाहिक विधिसे पाणिग्रहण किया॥ ३४॥

उस समय मैंने, श्रीहरि विष्णुने, आपने, अन्य मुनियोंने, देवताओंने और प्रमथगणोंने भगवान् शिवजीको प्रणाम किया और [अनेक प्रकारकी] स्तुतियोंद्वारा उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ३५॥

उस समय नाच-गानेके साथ महान् उत्सव हुआ और समस्त देवता तथा मुनिगण परम आनन्दित हुए॥ ३६॥

इस प्रकार मेरे पुत्र दक्ष [शिवजीको] पुत्री प्रदान करके कृतार्थ हो गये। शिवा और शिव प्रसन्न हुए तथा सब कुछ मंगलमय हो गया॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें कन्यादानवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

शिवका सतीके साथ विवाह, विवाहके समय शम्भुकी मायासे ब्रह्माका मोहित होना और विष्णुद्वारा शिवतत्त्वका निरूपण

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार कन्यादानकर दक्षने भगवान् शंकरको अनेक प्रकारके उपहार दिये और ब्राह्मणोंको भी बहुत-सा धन दिया॥ १॥

उसके बाद लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णु शम्भुके पास जाकर हाथ जोड़कर खड़े होकर यह कहने लगे—॥ २॥

विष्णु बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे तात! आप सम्पूर्ण जगत्के पिता हैं और ये सती अखिल संसारकी माता हैं॥ ३॥

आप दोनों सत्पुरुषोंके कल्याण तथा दुष्टोंके दमनके लिये सदा लीलापूर्वक अवतार ग्रहण करते हैं—यह सनातन श्रुति है॥ ४॥

हे हर! आप चिकने नीले अंजनके समान शोभावाली सतीके साथ उसी प्रकार शोभा पा रहे हैं, जैसे मैं उसके विपरीत लक्ष्मीके साथ शोभा पा रहा हूँ। सती नीलवर्णा और आप गौरवर्ण हैं, उसके विपरीत मैं नीलवर्ण और लक्ष्मी गौरवर्ण हैं॥ ५॥

हे शम्भो! आप इन सतीके साथ रहकर देवताओंकी और सज्जन मनुष्योंकी रक्षा कीजिये, जिससे संसारी जनोंका सदा कल्याण होता रहे॥ ६॥

हे सर्वभूतेश! हे प्रभो! इन सतीको देखकर अथवा [इनके विषयमें] सुनकर जो कामनायुक्त हो, उसका आप वध कीजिये, यह मेरी प्रार्थना है॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर सर्वज्ञ परमेश्वरने मधुसूदनसे हँसकर कहा—ऐसा ही होगा ॥ ८॥

हे मुनीश्वर! उसके बाद विष्णु अपने स्थानपर आकर स्थित हो गये। उन्होंने उत्सव कराया और उस चरित्रको गुप्त ही रखा॥ ९॥

तत्पश्चात् मैं देवी सतीके पास आकर गृह्यसूत्रमें वर्णित विधिके अनुसार सारा अग्निकार्य विधानके साथ विस्तारपूर्वक करने लगा॥ १०॥

इसके बाद शिवा और शिवने प्रसन्न होकर मुझ आचार्य और द्विजोंकी आज्ञासे विधिपूर्वक अग्निकी प्रदक्षिणा की॥ ११॥

हे द्विजसत्तम! उस समय वहाँ बड़ा अद्भुत उत्सव मनाया गया और गीत एवं नृत्यके साथ वाद्य बजाया गया, जो सबके लिये सुखद था॥ १२॥

हे तात! उस समय [सबको] आश्चर्यचकित करनेवाला एक अद्भुत चरित्र वहाँ हुआ, उसे आपसे मैं कह रहा हूँ, आप सुनिये॥ १३॥

शिवजीकी माया दुर्ज्ञेय है, उसने देव, असुर तथा मनुष्योंसहित इस चराचर जगत्को पूर्णरूपसे मोहित कर रखा है॥ १४॥

हे तात! पूर्वकालमें मैंने जिन शिवको कपटपूर्वक मोहमें डालना चाहा था, उन्हीं शिवने अपनी लीलासे मुझे मोहित कर लिया॥ १५॥

जो दूसरेका अपकार करना चाहता है, निश्चय ही पहले उसीका अपकार हो जाता है। ऐसा समझकर कोई भी व्यक्ति किसी दूसरेका अपकार न करे॥ १६॥

हे मुने! जिस समय सती अग्निकी प्रदक्षिणा कर रही थीं, उस समय उनके दोनों चरण वस्त्रसे बाहर निकल आये थे, मैंने उन्हें देख लिया॥ १७॥

हे द्विजश्रेष्ठ! शिवजीकी मायासे मोहित हुआ मैं कामसे व्याप्त चित्तवाला होकर सतीके दूसरे अंगोंको देखने लगा॥ १८॥

मैं जैसे-जैसे सतीके अंगोंको उत्सुकतापूर्वक देख रहा था, वैसे-वैसे प्रसन्न हो कामार्त हो रहा था॥ १९॥

हे मुने! इस प्रकार पतिव्रता दक्षपुत्रीको देखकर कामाविष्ट मनवाला मैं उनके मुखको देखनेका इच्छुक हो गया॥ २०॥

किंतु शिवजीके सामने लज्जाके कारण मैं प्रत्यक्ष सतीका मुख नहीं देख सका और वे भी लज्जासे

युक्त होनेके कारण अपना मुख प्रकट नहीं कर रही थीं॥ २१॥

तब सतीका मुख देखनेके लिये एक अत्यन्त सुन्दर उपाय सोचते हुए कामपीड़ित मैंने अग्निमें बहुत-सी गीली लकड़ी डालकर घोर धुआँ उत्पन्न कर दिया और उस धूमयुक्त अग्निमें घृतकी थोड़ी-थोड़ी आहुति देने लगा। तब गीली लकड़ीके संयोगसे चारों दिशाओंमें घोर धुआँ फैल गया। इस प्रकार धूमाधिक्य होनेके फलस्वरूप वेदीके चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार हो गया॥ २२—२४॥

तब अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले प्रभु महेश्वरके नेत्र भी धूमसे व्याकुल हो उठे और उन्होंने दोनों हाथोंसे अपने नेत्रोंको बन्द कर लिया॥ २५॥

तत्पश्चात् कामसे पीड़ित मैंने प्रसन्न मनसे वस्त्र हटाकर सतीके मुखको देख लिया॥ २६॥

हे पुत्र! मैं सतीके मुखको बार-बार देखने लगा, इस प्रकार अवश होकर मैं इन्द्रियविकारसे युक्त हो गया। अपनेको असंयमित देख सशंकित हो मैं आश्चर्यसे चकित होकर मौन हो गया। भगवान् शिव अपनी दिव्य दृष्टिसे इसे जानकर क्रोधित होकर कहने लगे— ॥ २७—३०॥

रुद्र बोले—हे पाप! आपने ऐसा कुत्सित कर्म क्यों किया, जो कि विवाहमें रागपूर्वक मेरी स्त्रीका मुख देखा?॥ ३१॥

आप समझते हैं कि शंकर इस कुत्सित कर्मको नहीं जान सकेंगे। हे विधे! इस त्रिलोकीमें कोई भी बात मुझसे अज्ञात नहीं रह सकती, तो यह बात कैसे छिपी रहेगी?॥ ३२॥

हे मूढ़! जिस प्रकार तिलके सभी अवयवोंमें तेल रहता है, उसी प्रकार तीनों लोकोंमें जो कुछ भी स्थावर-जंगम पदार्थ हैं, उनमें मैं रहता हूँ॥ ३३॥

ब्रह्माजी बोले—तत्पश्चात् विष्णुके लिये प्रिय शंकरजीने मुझसे यह कहकर [पूर्वमें कहे गये] विष्णुके वचनका स्मरणकर शूल लेकर मुझ ब्रह्माको मारना चाहा॥ ३४॥

हे द्विजोत्तम! मुझे मारनेके लिये शिवके द्वारा त्रिशूल उठाये जानेपर [वहाँ उपस्थित] मरीचि आदि ऋषि हाहाकार करने लगे॥ ३५॥

उस समय सभी देवता तथा मुनि भयभीत होकर क्रोधसे जलते हुए शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ३६॥

देवगण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे ईश! आप ब्रह्माकी रक्षा कीजिये। हे महेश्वर! कृपा कीजिये॥ ३७॥

हे महेश! आप इस संसारके पिता हैं तथा देवी सती जगत्की माता कही गयी हैं। हे सुरप्रभो! विष्णु, ब्रह्मा आदि सभी [देवगण] आपके दास हैं॥ ३८॥

आपकी आकृति तथा लीला अद्भुत है। हे प्रभो! आपकी माया भी अद्भुत है। हे ईश्वर! उसने आपकी भक्तिसे रहित सभीको मोहित कर लिया है॥ ३९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दुःखित देवता तथा मुनि क्रोधमें भरे हुए देवाधिदेव महादेवकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

दक्ष प्रजापतिने शंकित होकर वहाँ पहुँचकर दोनों हाथ उठाकर ऐसा मत कीजिये, ऐसा मत कीजिये—ऐसा कहते हुए शिवजीके आगे जाकर उन्हें ऐसा करनेसे रोका॥ ४१॥

तब शिवजी अपने आगे दक्षको आया हुआ देखकर भगवान् विष्णुकी प्रार्थनाका स्मरण करते हुए इस प्रकारका अप्रिय वचन कहने लगे— ॥ ४२॥

महेश्वर बोले—हे प्रजापते! मेरे महान् भक्त विष्णुने उस समय जैसा कहा था, मैंने वही करना स्वीकार भी किया था॥ ४३॥

[विष्णुने कहा था कि] हे प्रभो! जो वासनायुक्त होकर सतीको देखे, उसका वध कीजिये। अब मैं ब्रह्माका वध करके विष्णुके वचनको सत्य करता हूँ॥ ४४॥

ब्रह्माने कामनायुक्त होकर सतीको क्यों देखा? इन्होंने अत्यन्त गर्हित कर्म किया है, इसलिये अपराधी ब्रह्माका वध मैं अवश्य करूँगा॥ ४५॥

ब्रह्माजी बोले—उस समय क्रोधाविष्ट देवेश्वर महेशके ऐसा कहनेपर देवता, मुनि तथा मनुष्योंसहित सभी लोग काँपने लगे॥ ४६॥

चारों दिशाओंमें हाहाकार मच गया और चारों ओर उदासी छा गयी। उनके द्वारा विमोहित किया गया मैं उस समय अत्यन्त व्याकुल हो उठा॥ ४७॥

तब महेशके अतिप्रिय, कार्य सिद्ध करनेमें प्रवीण तथा बुद्धिमान् भगवान् विष्णुने ऐसा कहनेवाले उन शिवजीकी स्तुति की॥ ४८॥

अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे भक्तवत्सल शिवजीकी स्तुतिकर उन्हें [ब्रह्माका वध करनेसे] रोकते हुए आगे जाकर उन्होंने इस प्रकार कहा—॥ ४९॥

विष्णुजी बोले—हे भूतेश! आप जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले प्रभु इन ब्रह्माका वध न करें। ये आपकी शरणमें आये हैं और आप शरणमें आये हुए लोगोंसे स्नेह करनेवाले हैं॥ ५०॥

मैं आपका परम प्रिय हूँ, इसीलिये मुझे भक्तराज कहा गया है। मेरे इस निवेदनको हृदयमें स्वीकार करके मेरे ऊपर कृपा कीजिये॥ ५१॥

[इसके अतिरिक्त] हे नाथ! हेतुयुक्त मेरी दूसरी प्रार्थना भी सुनिये और हे महेश्वर! मेरे ऊपर कृपा करके उसे मानिये॥ ५२॥

हे शम्भो! ये चतुरानन ब्रह्मा प्रजाकी सृष्टि करनेके लिये उत्पन्न हुए हैं। इनके मारे जानेपर प्रजाकी सृष्टि करनेवाला कोई दूसरा नहीं है॥ ५३॥

हे नाथ! हे शिवस्वरूप! आपकी आज्ञासे ही हम तीनों देवता सृष्टि, स्थिति और संहारका कार्य बार-बार करेंगे॥ ५४॥

हे शम्भो! उनका वध कर देनेपर आपका कार्य कौन सम्पन्न करेगा? इसलिये हे लयकर्ता विभो! आप इन सृष्टिकर्ताका वध न करें॥ ५५॥

हे विभो! इन्होंने ही आपकी भार्या होनेके लिये शिवाको दक्षकन्या सतीके रूपमें सत्प्रयत्नसे अवतरित किया है॥ ५६॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णुके द्वारा की गयी इस प्रार्थनाको सुनकर दृढ़व्रत शंकरजी [वहाँ उपस्थित] सभी लोगोंको सुनाते हुए [भगवान् विष्णुसे] इस प्रकार कहने लगे—॥ ५७॥

महेश बोले—हे देवदेव! हे रमेश! हे विष्णो! हे मेरे प्राणप्रिय! हे तात! मुझको इसका वध करनेसे मत रोकिये; क्योंकि यह दुष्ट है॥ ५८॥

आपकी पूर्व प्रार्थनाको, जिसे मैंने स्वीकार किया था, उसे पूर्ण करूँगा। इस महापापी तथा दुष्ट चतुर्मुख ब्रह्माका वध मैं [अवश्य] करूँगा॥ ५९॥

मैं स्वयं ही सभी चराचर प्रजाओंकी सृष्टि करूँगा। अथवा अपने तेजसे किसी दूसरे सृष्टिकर्ताको उत्पन्न करूँगा। मैं अपनी की गयी प्रतिज्ञाको पूरा करते हुए इस ब्रह्माका वध करके अन्य सृष्टिकर्ताको उत्पन्न करूँगा, अतः हे लक्ष्मीपते! [इसका वध करनेसे] मुझे मत रोकिये॥ ६०-६१॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीका यह वचन सुनकर मन्द-मन्द मुसकराते हुए 'ऐसा मत कीजिये'—इस प्रकार बोलते हुए भगवान् विष्णु पुनः कहने लगे—॥ ६२॥

अच्युत बोले—हे प्रभो! प्रतिज्ञाकी पूर्ति तो दूसरे पुरुषमें की जाती है। हे विनाशके ईश! आप स्वयं विचार करें, वह अपने ऊपर नहीं की जाती॥ ६३॥

हे शम्भो! हम तीनों देवता आपकी ही आत्मा हैं, दूसरे नहीं। हमलोग एकरूप हैं, भिन्न नहीं हैं, इस बातको आप यथार्थ रूपसे विचार कीजिये॥ ६४॥

तब अपने अत्यन्त प्रिय विष्णुका वह वचन सुनकर शिवजी अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उनसे कहने लगे—॥ ६५॥

शम्भु बोले—हे विष्णो! हे सम्पूर्ण भक्तोंके ईश! ब्रह्मा किस प्रकार मेरी आत्मा हो सकते हैं; क्योंकि ये तो प्रत्यक्ष रूपसे आगे बैठे हुए मुझसे भिन्न दिखायी दे रहे हैं?॥ ६६॥

ब्रह्माजी बोले—जब सबके आगे महेश्वरने ऐसा कहा, तब उन महादेवको सन्तुष्ट करते हुए विष्णु कहने लगे—॥ ६७॥

विष्णु बोले—हे सदाशिव! न ब्रह्मा आपसे भिन्न हैं और न तो आप ही उनसे भिन्न हैं। हे परमेश्वर! न मैं ही आपसे भिन्न हूँ और न तो

आप ही मुझसे भिन्न हैं॥ ६८॥

हे सर्वज्ञ! हे परमेश! हे सदाशिव! आप सब कुछ जानते हैं, किंतु आप मेरे मुखसे सारी बात सभी लोगोंको सुनवाना चाहते हैं॥ ६९॥

हे ईश! मैं आपकी आज्ञासे शिवतत्त्वका वर्णन कर रहा हूँ, समस्त देवता, मुनिगण तथा अन्य लोग अपने मनको एकाग्र करके सुनें॥ ७०॥

हम तीनों देवता प्रधान-अप्रधान तथा भाग-अभागरूपवाले और ज्योतिर्मयस्वरूप आप परमेश्वरके ही अंश हैं॥ ७१॥

आप कौन हैं, मैं कौन हूँ और ब्रह्मा कौन हैं। आप परमात्माके ही ये तीन अंश हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेके कारण एक-दूसरेसे भिन्न प्रतीत होते हैं॥ ७२॥

आप स्वयं अपने स्वरूपका चिन्तन कीजिये। आपने अपनी लीलासे ही शरीर धारण किया है। आप एक, सगुण ब्रह्म हैं और हम [ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र]तीनों आपके अंश हैं॥ ७३॥

हे हर! जैसे मस्तक, ग्रीवा आदिके भेदसे एक ही शरीरके [भिन्न-भिन्न] अवयव होते हैं, उसी प्रकार हम तीनों उन्हीं आप परमेश्वरके अंग हैं॥ ७४॥

जो ज्योतिर्मय, आकाशस्वरूप, स्वयं ही अपना धाम, पुराण, कूटस्थ, अव्यक्त, अनन्तरूपवाला, नित्य तथा दीर्घ आदि विशेषणोंसे रहित ब्रह्म है, वह आप शिव ही हैं। आपसे ही सब कुछ प्रकट हुआ है॥ ७५॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! तत्पश्चात् उनकी यह बात सुनकर महादेवजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने मेरा वध नहीं किया॥ ७६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीविवाह और शिवलीलावर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका 'रुद्रशिर' नाम पड़नेका कारण, सती एवं शिवका विवाहोत्सव, विवाहके अनन्तर शिव और सतीका वृषभारूढ़ हो कैलासके लिये प्रस्थान

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! हे शिवभक्त! हे श्रेष्ठ प्रभो! हे विधे! आपने भगवान् शिवके परम मंगलदायक तथा अद्भुत चरित्रको सुनाया॥ १॥

हे तात! उसके बाद क्या हुआ, चन्द्रमाको सिरपर धारण करनेवाले शिवजी एवं सतीके दिव्य तथा सम्पूर्ण पापराशिका नाश करनेवाले चरित्रका वर्णन कीजिये॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले शिवजी जब मेरा वध करनेसे विरत हो गये, तब सभी लोग निर्भय, सुखी और प्रसन्न हो गये॥ ३॥

सभी लोगोंने हाथ जोड़कर नतमस्तक हो शंकरजीको प्रणाम किया, भक्तिपूर्वक स्तुति की और प्रसन्नतापूर्वक जय-जयकार किया॥ ४॥

हे मुने! उसी समय मैंने प्रसन्न तथा निर्भय होकर अनेक प्रकारके उत्तम स्तोत्रोंद्वारा शंकरकी स्तुति की॥ ५॥

हे मुने! तत्पश्चात् अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले भगवान् शिव प्रसन्नचित्त होकर सभीको सुनाते हुए मुझसे इस प्रकार कहने लगे—॥ ६॥

रुद्र बोले—हे ब्रह्मन्! हे तात! मैं प्रसन्न हूँ। अब आप निर्भय हो जाइये। आप अपने हाथसे सिरका स्पर्श करें और संशयरहित होकर मेरी आज्ञाका पालन करें॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—अनेक लीलाएँ करनेवाले भगवान् शिवजीकी इस बातको सुनकर मैंने अपने सिरका स्पर्श करते हुए उन वृषध्वजको प्रणाम किया॥ ८॥

मैंने जैसे ही अपने हाथसे अपने सिरका स्पर्श किया, उसी क्षण वहाँ उसीके रूपमें वृषवाहन स्थित दिखायी पड़े। तब लज्जायुक्त शरीरवाला मैं नीचेकी ओर मुख करके खड़ा रहा। उस समय वहाँ स्थित इन्द्र आदि देवताओंने मुझे देखा॥ ९-१०॥

उसके पश्चात् लज्जासे युक्त होकर मैं शिवजीको

प्रणाम करके तथा उनकी स्तुति करके क्षमा कीजिये-क्षमा कीजिये—ऐसा कहने लगा॥ ११॥

हे प्रभो! इस पापकी शुद्धिके लिये कोई प्रायश्चित्त और उचित दण्ड कीजिये, जिससे मेरा पाप दूर हो जाय॥ १२॥

इस प्रकार मेरे कहनेपर भक्तवत्सल सर्वेश शम्भु अत्यन्त प्रसन्न होकर मुझ विनम्र ब्रह्मासे कहने लगे॥ १३॥

शम्भु बोले—[हे ब्रह्मन्!] मुझसे अधिष्ठित इसी रूपसे आप प्रसन्नचित्त होकर आराधनामें संलग्न रहते हुए तप करें॥ १४॥

इसीसे पृथ्वीपर सर्वत्र 'रुद्रशिर' नामसे आपकी प्रसिद्धि होगी और आप तेजस्वी ब्राह्मणोंके सभी कार्योंको सिद्ध करनेवाले होंगे। आपने [कामके वशीभूत होकर] जो वीर्यपात किया है, वह कृत्य मनुष्योंका है, इसलिये आप मनुष्य होकर पृथ्वीपर विचरण करें॥ १५-१६॥

जो तुम्हें इस रूपसे देखकर यह क्या! ब्रह्माके सिरपर शिवजी कैसे हो गये—ऐसा कहता हुआ पृथ्वीपर विचरण करेगा और फिर जो कौतुकवश आपके सम्पूर्ण कृत्यको सुनेगा, वह परायी स्त्रीके निमित्त किये गये त्यागसे शीघ्र ही मुक्त हो जायगा॥ १७-१८॥

लोग जैसे-जैसे आपके इस कुकृत्यका वर्णन करेंगे, वैसे-वैसे आपके इस पापकी शुद्धि होती जायगी॥ १९॥

हे ब्रह्मन्! संसारमें मनुष्योंके द्वारा आपका उपहास करानेवाला तथा आपकी निन्दा करानेवाला यह प्रायश्चित्त मैंने आपसे कह दिया॥ २०॥

कामपीड़ित आपका जो तेज वेदीके मध्यमें गिरा तथा जिसे मैंने देख लिया, वह किसीके भी धारण करनेयोग्य नहीं होगा॥ २१॥

तुम्हारा जो तेज पृथ्वीपर गिरा, उससे आकाशमें प्रलयंकर मेघ होंगे। उसी समय वहाँ देवर्षियोंके सामने शीघ्र ही उस तेजसे हे तात! संवर्त, आवर्त, पुष्कर तथा द्रोण—नामक ये चार प्रकारके प्रलयंकारी महामेघ हो गये॥ २२—२४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ये मेघ शिवकी इच्छासे गरजते हुए, जलकी थोड़ी-सी वर्षा करते हुए तथा भयानक शब्द करते हुए आकाशमें फैल गये॥ २५॥

उस समय घोर गर्जन करते हुए उन मेघोंके द्वारा आकाशके आच्छादित हो जानेपर शीघ्र ही शंकरजी और सती देवी शान्त हो गये। हे मुने! उसके बाद मैं निर्भय हो गया और शिवजीकी आज्ञासे मैंने विवाहके शेष कृत्योंको यथाविधि पूर्ण किया॥ २६-२७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय देवताओंने प्रसन्न होकर शिवाशिवके मस्तकपर चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा की॥ २८॥

उस समय बाजे बजने लगे, गीत गाये जाने लगे। ब्राह्मणगण भक्तिसे परिपूर्ण हो वेदपाठ करने लगे॥ २९॥

रम्भा आदि अप्सराएँ प्रेमपूर्वक नृत्य करने लगीं—इस प्रकार हे नारद! देवताओंकी स्त्रियोंके बीच महान् उत्सव हुआ॥ ३०॥

तदनन्तर यज्ञकर्मका फल देनेवाले भगवान् परमेश्वर शिव प्रसन्न होकर लौकिक गतिका आश्रय ले हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक मुझ ब्रह्मासे कहने लगे— ॥ ३१॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मन्! जो भी वैवाहिक कार्य था, उसे आपने उत्तम रीतिसे सम्पन्न किया है, अब मैं आपपर प्रसन्न हूँ, आप [इस वैवाहिक कृत्यके] आचार्य हैं, मैं आपको क्या दक्षिणा दूँ?॥ ३२॥

हे सुरश्रेष्ठ! आप उसे माँगिये। वह दुर्लभ ही क्यों न हो, उसको शीघ्र कहिये। हे महाभाग! आपके लिये मेरे द्वारा कुछ भी अदेय नहीं है॥ ३३॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शंकरका यह वचन सुनकर मैंने हाथ जोड़कर विनीत भावसे उन्हें बार-बार प्रणामकर कहा— ॥ ३४॥

हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मैं वर प्राप्त करनेयोग्य हूँ, तो हे महेशान! जो मैं कह रहा हूँ, उसे आप अत्यन्त प्रसन्नताके साथ कीजिये॥ ३५॥

हे महेश्वर! आप मनुष्योंके पापकी शुद्धिके लिये इसी रूपमें इस वेदीपर सदा विराजमान रहिये॥ ३६॥

हे चन्द्रशेखर! हे शंकर! जिससे आपके सान्निध्यमें अपना आश्रम बनाकर अपने इस पापकी शुद्धिके लिये मैं तपस्या करूँ॥ ३७॥

चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिको पूर्वाफाल्गुनी

नक्षत्रमें रविवारके दिन इस भूतलपर जो मनुष्य आपका भक्तिपूर्वक दर्शन करेगा, हे हर! उसके सारे पाप नष्ट हो जायँ, विपुल पुण्यकी वृद्धि हो और उसके समस्त रोगोंका सर्वथा नाश हो जाय। जो स्त्री दुर्भगा, वन्ध्या, कानी अथवा रूपहीन हो, वह भी आपके दर्शनमात्रसे निश्चित रूपसे निर्दोष हो जाय॥ ३८—४०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार अपने तथा सम्पूर्ण लोगोंको सुख देनेवाले मुझ ब्रह्माका वचन सुनकर प्रसन्न मनसे भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कहा॥ ४१॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! आपके कथनानुसार मैं सारे संसारके हितके लिये अपनी पत्नीसहित इस वेदीपर सुस्थिरभावसे स्थित रहूँगा॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर पत्नीसहित भगवान् शिवजी अपनी अंशरूपिणी मूर्तिको प्रकटकर वेदीके मध्यभागमें विराजमान हो गये। तत्पश्चात् स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाले भगवान् सदाशिव दक्षसे विदा ले अपनी पत्नी सतीके साथ [कैलास] जानेको उद्यत हुए॥ ४३-४४॥

उस समय उत्तम बुद्धिवाले दक्षने विनयभावसे मस्तक झुकाकर हाथ जोड़ भगवान् वृषभध्वजकी प्रेम-पूर्वक स्तुति की। तत्पश्चात् विष्णु आदि समस्त देवताओं, मुनियों तथा गणोंने स्तुति और नमस्कारकर प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारसे जय-जयकार किया॥ ४५-४६॥

उसके बाद दक्षकी आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक सदाशिवने अपनी पत्नी सतीको वृषभपर बिठाकर और
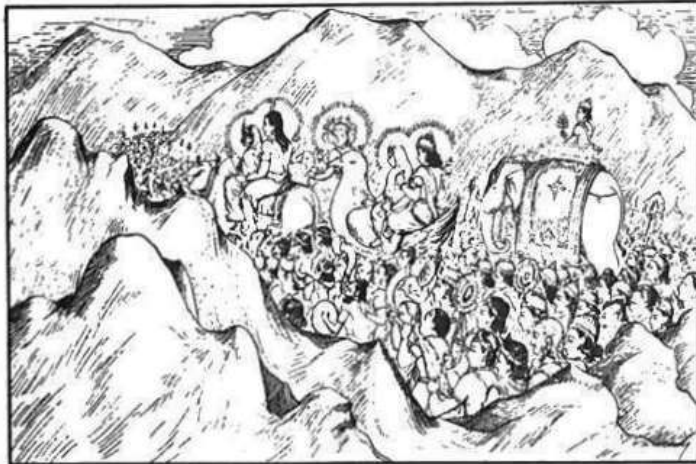
स्वयं भी वृषभपर आरूढ़ हो हिमालयके शिखरकी ओर गमन किया॥ ४७॥

मन्द-मन्द मधुर मुसकानवाली तथा सुन्दर दाँतोंवाली सती शंकरजीके साथ वृषभपर बैठी हुई चन्द्रमामें विद्यमान श्यामकान्तिकी तरह शोभायमान हो रही थीं॥ ४८॥

उस समय विष्णु आदि सम्पूर्ण देवता, मरीचि आदि समस्त ऋषि एवं दक्ष प्रजापति भी मोहित हो गये तथा अन्य सभी लोग चित्रलिखित-से प्रतीत हो रहे थे॥ ४९॥

कुछ लोग बाजे बजाते हुए तथा कुछ लोग सुन्दर स्वरमें शुद्ध तथा कल्याणकारी शिवयशका गान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका अनुगमन करने लगे॥ ५०॥

[कुछ दूर चले जानेके पश्चात्] शिवजीने आधे मार्गसे दक्षको प्रेमपूर्वक लौटा दिया, फिर सदाशिव गणोंसहित प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले आये॥ ५१॥

शिवजीने विष्णु आदि सभी देवताओंको विदा भी कर दिया, फिर भी वे लोग परम भक्ति एवं प्रेमके वशीभूत हो शिवजीके साथ-साथ कैलासपर पहुँच गये॥ ५२॥

उन सभी देवताओं, गणों तथा अपनी स्त्री सतीके साथ भगवान् शम्भु प्रसन्न होकर हिमालय पर्वतपर सुशोभित अपने धाममें पहुँच गये॥ ५३॥

वहाँ जाकर सम्पूर्ण देवताओं, मुनियों तथा अन्य लोगोंका आदरपूर्वक बहुत सम्मान करके प्रसन्नतापूर्वक शिवजीने उन्हें विदा किया॥ ५४॥

तदनन्तर शम्भुकी आज्ञासे विष्णु आदि सब देवता तथा मुनिगण नमस्कार और स्तुति करके प्रसन्नमुख होकर अपने-अपने धामको चले गये॥ ५५॥

लोकरीतिका अनुगमन करनेवाले शिवजी भी अत्यन्त आनन्दित हो हिमालयके शिखरपर अपनी पत्नी दक्षकन्याके साथ विहार करने लगे॥ ५६॥

हे मुने! इस प्रकार सृष्टि करनेवाले वे शंकर सती तथा अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक पर्वतोंमें उत्तम अपने स्थान कैलासपर चले गये॥ ५७॥

हे मुने! पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् शिवजीका विवाह जिस प्रकार हुआ, उसका वर्णन मैंने आपलोगोंसे किया॥ ५८॥

हे मुने! जो विवाहकालमें, यज्ञमें अथवा किसी भी शुभकार्यके आरम्भमें भगवान् शंकरकी पूजा करके शान्तचित्त होकर इस कथाको सुनता है, उसका सारा

वैवाहिक कर्म बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हो जाता है तथा दूसरे शुभ कर्म भी सदा निर्विघ्न पूर्ण होते हैं॥ ५९-६०॥

इस उत्तम कथाको प्रेमपूर्वक सुनकर कन्या सुख, सौभाग्य, सुशीलता, आचार तथा गुणोंसे युक्त हो पतिव्रता तथा पुत्रवती होती है॥ ६१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीविवाहवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कैलास पर्वतपर भगवान् शिव एवं सतीकी मधुर लीलाएँ

नारदजी बोले—हे तात! हे अनघ! आप सर्वज्ञकी बात ठीक है। आपके द्वारा मैंने शिवाशिवके अत्यन्त अद्भुत एवं कल्याणकारी चरित्रको सुना॥ १॥

समस्त मोहोंको दूर करनेवाले, परम ज्ञानसम्पन्न, मंगलायन तथा उत्तम विवाहकर्मका वर्णन भी अच्छी प्रकारसे सुना॥ २॥

हे महाप्राज्ञ! फिर भी शिवजी एवं सतीके अत्यन्त मनोहर एवं उत्तम चरित्रको सुननेकी प्रबल इच्छा है। अतः आप मुझपर दया करके पुनः उसका वर्णन कीजिये॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आपकी इच्छा परम दयावान् शिवजीकी लीला सुननेमें लगी हुई है। यह तो परम सौभाग्यकी बात है, हे सौम्य! जो आपने मुझे शिवजीकी लीलाका वर्णन करनेके लिये बार-बार प्रेरित किया है॥ ४॥

हे नारद! शिवजीने दक्ष प्रजापतिकी कन्या एवं जगज्जननी देवी सतीके साथ विवाहकर उन्हें अपने स्थानपर ले जाकर जो कुछ भी किया, उसे अब सुनें॥ ५॥

हे देवर्षे! दक्षसे विदा होनेके बाद महादेवजी गणोंसहित अपने आनन्ददायक स्थानपर जाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने परमप्रिय वाहन नन्दीश्वरसे उतरे॥ ६॥

हे देवर्षे! इस प्रकार सांसारिक लीला करनेमें प्रवीण सतीपति सदाशिव यथायोग्य अपने स्थानमें प्रवेशकर अत्यन्त हर्षित हुए॥ ७॥

इन महादेवजीने सतीको प्राप्त कर लेनेके उपरान्त अपने नन्दी आदि समस्त गणोंको पर्वतकी कन्दरासे बाहर भेज दिया॥ ८॥

विदा करते हुए उन नन्दीश्वर आदि समस्त गणोंसे करुणासागर शिवजी लौकिक रीतिका अनुसरण करते हुए मधुर वचनोंसे कहने लगे—॥ ९॥

महेश बोले—हे गणो! जिस समय मैं आपलोगोंका स्मरण करूँ, तब आपलोग मेरे स्मरणका आदर करते हुए शीघ्र मेरे पास चले आइये॥ १०॥

शिवजीके ऐसा कहनेपर महावेगवान् महावीर नन्दी आदि वे सभी गण अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ११॥

उन गणोंके चले जानेके अनन्तर परम कौतुकी शिवजी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक एकान्तमें सतीके साथ विहार करने लगे॥ १२॥

शिवजी कभी वनोंसे तोड़कर लाये हुए पुष्पोंकी मनोहर माला बनाकर सतीके हार-स्थान अर्थात् हृदयमें पहनाते थे॥ १३॥

कभी-कभी जब देवी सती अपना मुख दर्पणमें देख रही होती थीं, उस समय शिवजी भी सतीके पीछे जाकर अपना मुख देखने लगते थे॥ १४॥

वे कभी सतीके कुण्डलोंको बार-बार पकड़कर हिलाने लगते थे, उन्हें सतीके कानोंमें पहनाते और फिर निकालने लगते थे॥ १५॥

कभी वे भगवान् शंकर स्वभावतः लालवर्णवाले सतीके चरणोंको देदीप्यमान लाक्षारससे रँगकर अत्यधिक रागयुक्त कर देते थे॥ १६॥

सतीका मुखावलोकन करनेके उद्देश्यसे जो बात दूसरोंके समक्ष भी कही जा सकती थी, उसे सतीके कानोंमें कहते थे॥ १७॥

वे कभी घरसे दूर नहीं जाते थे, यदि दूर जाते भी तो शीघ्रतासे वापस आ जाते थे और किसी बातको सोचती हुई सतीके नेत्रोंको पीछेसे आकर अपने हाथोंसे बन्द कर लेते थे॥ १८॥

कभी वे अपनी मायासे छिपकर वहीं जाकर सतीका आलिंगन करते तो वे भयभीत होकर अत्यन्त चकित होते हुए व्याकुल हो जाती थीं॥ १९॥

वे कभी सुवर्णकमलकी कलीके समान उनके वक्षःस्थलपर कस्तूरीसे भ्रमरके आकारकी चित्रकारी करते थे और कभी उनका हार उतार लेते थे और फिर उसे वहीं स्थापित भी कर देते थे। कभी सतीके अंगसे बाजूबंद, कंकण तथा अँगूठी बार-बार निकालकर उसे पुनः उसी स्थानपर पहना दिया करते थे॥ २०—२२॥

यह तुम्हारे ही समान स्वरूपवाली तुम्हारी कालिका नामकी सखी आ रही है—शिवजीद्वारा इस प्रकारके वचनोंको सुनकर जब सती उस सखीको देखनेके लिये चलतीं, तो शिवजी उनका स्पर्श करने लगते॥ २३॥

कभी प्रमथाधिपति शिव कामके उन्मादसे व्यग्र होकर अपनी प्रियाके साथ कामकेलि-परिहास करने लगते थे॥ २४॥

कभी शंकरजी कमलपुष्पों तथा अन्य मनोहर पुष्पोंको लाकर बड़े प्रेमसे उनका आभूषण बनाकर सतीके अंगोंमें पहनाते थे॥ २५॥

इस प्रकार भक्तवत्सल महेश्वर समस्त रमणीय वनकुंजोंमें सतीके साथ विहार करने लगे॥ २६॥

देवी सतीके बिना शिवजी कहीं भी नहीं जाते थे, न बैठते थे और न ही किसी प्रकारकी चेष्टा ही करते थे। सतीके बिना उन्हें क्षणमात्र भी चैन नहीं पड़ता था॥ २७॥

इस प्रकार कैलासपर्वतके प्रत्येक वनकुंजमें बहुत समयतक विहार करनेके पश्चात् वे पुनः हिमालयके शिखरपर गये और उन्होंने अपनी इच्छासे कामदेवका स्मरण किया॥ २८॥

जिस समय काम उनके आश्रममें प्रविष्ट हुआ, उसके साथ ही वसन्तने भी शिवजीके अभिप्रायको जानकर अपना प्रभाव प्रकट किया॥ २९॥

उस पर्वतके सभी वृक्ष तथा लताएँ पुष्पसे आच्छादित हो उठीं और जल खिले कमलोंसे तथा कमल भ्रमरोंसे युक्त हो गये॥ ३०॥

उस समय उत्तम ऋतु वसन्तके प्रविष्ट होते ही सुगन्धित पुष्पोंकी गन्धसे समन्वित आनन्ददायक तथा सुगन्धिसे युक्त मलय पवन बहने लगा॥ ३१॥

सन्ध्याकालीन अरुण चन्द्रमाके सदृश पलाश शोभायमान होने लगे। सभी वृक्ष कामके अस्त्रके समान सुन्दर पुष्पोंसे अलंकृत हो गये॥ ३२॥

तड़ागोंमें कमलपुष्प खिल उठे। अनुकूल वायु संसारके मनुष्योंको मोहित करनेहेतु उद्यत दिखायी पड़ने लगी॥ ३३॥

भगवान् शंकरके समीप नागकेसरके वृक्ष अपने सुवर्णके समान पुष्पोंसे कामदेवकी ध्वजाके समान मनोहर प्रतीत होने लगे॥ ३४॥

लवंगकी लता अपनी सुरभित गन्धसे वायुको सुवासित करके कामीजनोंके चित्तको मोहित करने लगी॥ ३५॥

मँडरानेवाले तथा आम्रमंजरियोंमें गुंजार करनेवाले भौंरोंके सुन्दर समूह कामदेवके बाणोंके समान तथा कामसे व्याप्त मदनके पर्यंक जैसे प्रतीत हो रहे थे॥ ३६॥

ज्ञानरूपी प्रकाशको प्राप्तकर जिस प्रकार मुनियोंका मन प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार खिले हुए कमलपुष्पोंसे युक्त निर्मल जल शोभा पा रहे थे॥ ३७॥

सूर्यकी किरणोंके सम्पर्कके कारण बर्फ पिघलकर बहने लगी। जल ही जिनका हृदय है, ऐसे कमल जलके बीच स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ ३८॥

रात्रिवेलामें तुषाररहित रात्रियाँ चन्द्रमासे युक्त होनेके कारण प्रियतमके साथ सुशोभित होनेवाली स्त्रियों-जैसी प्रतीत हो रही थीं॥ ३९॥

ऐसे मनोहारी वसन्तकालमें महादेवजी सतीके साथ पर्वतकुंजों एवं नदियोंमें बहुत कालतक

स्वच्छन्दतासे रमण करने लगे और हे मुने! उस समय दक्षकन्या देवी सती भी महादेवजीके साथ शोभाको प्राप्त हुईं। शिवजीको सतीके बिना क्षणमात्र भी शान्ति नहीं मिलती थी। शिवजीकी प्रिया सती भी उन्हें रसका पान कराती हुई प्रतीत हो रही थीं॥ ४०—४२ ॥

शंकरजी खिले हुए नवीन पुष्पोंकी अपने हाथसे माला बनाकर सतीके अंगोंको सुशोभित करते हुए नये-नये मंगल कर रहे थे॥ ४३ ॥

आलाप, अवलोकन, हास्य और परस्पर सम्भाषण आदिके द्वारा वे शम्भु कभी उन गिरिजाको स्वयं सौतके रूपमें भी दिखा देते थे॥ ४४ ॥

उन सतीके चन्द्रमुखका अमृतपान करनेमें सन्नद्ध शरीरवाले शिव अपने शरीरकी अनेक अवस्थाएँ कभी-कभी दिखाने लगते थे॥ ४५ ॥

वे शिवजी सतीके मुखकमलकी सुगन्धि, उनकी मनोहारी सुन्दरता तथा प्रीतिपूर्ण चेष्टाओंमें इस प्रकार बँध गये थे, जैसे कोई बँधा हुआ हाथी किसी भी प्रकारकी चेष्टा करनेमें अपनेको असमर्थ पाता है॥ ४६ ॥

इस प्रकार वे महेश्वर हिमालयपर्वतके कुंजों, शिखरोंपर और गुफाओंमें सतीके साथ प्रतिदिन रमण करने लगे। हे सुरर्षे! इस प्रकार उनके विहार करते हुए देवताओंके वर्षके अनुसार पचीस वर्ष व्यतीत हो गये॥ ४७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीशिवक्रीड़ावर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१ ॥

बाईसवाँ अध्याय

सती और शिवका विहार-वर्णन

ब्रह्माजी बोले—किसी समय वर्षाऋतुमें जब श्रीमहादेवजी कैलासपर्वतके शिखरपर विराजमान थे, उस समय सती शिवजीसे कहने लगीं— ॥ १ ॥

सती बोलीं—हे देवदेव! हे महादेव! हे शम्भो! हे मेरे प्राणवल्लभ! हे नाथ! मेरे वचनको सुनिये और हे मानद! सुन करके उसे कीजिये॥ २ ॥

हे नाथ! यह परम कष्टदायक वर्षाकाल आ गया है तथा अनेक वर्णके मेघोंके गर्जनसे आकाश तथा दिशाएँ व्याप्त हो गयी हैं॥ ३ ॥

कदम्बके परागसे समन्वित, जलबिन्दुओंको लेकर बहनेवाली मनोहारिणी तथा तीव्रगतिवाली वायु प्रवाहित हो रही है॥ ४ ॥

इस वर्षाकालमें जलसमूहकी धाराओंसे वृष्टि करते हुए तथा चमकती हुई बिजलीकी पताकावाले इन मेघोंकी गर्जनाके कारण किसका मन विक्षुब्ध नहीं हो जाता॥ ५ ॥

विरहीजनोंको दुःखदायी कर देनेवाला यह वर्षाकाल महाभयानक है। इस समय आकाशके मेघाच्छन्न होनेके कारण दिनमें न तो सूर्यका दर्शन हो पा रहा है और न तो रात्रिमें चन्द्रमा ही दिखायी पड़ता है। [इस कालमें] दिन भी रात्रिके समान ही प्रतीत हो रहा है॥ ६ ॥

प्रचण्ड वायुके झोंकोंके कारण मेघ शब्द करते हुए आकाशमें कहीं भी स्थिर नहीं हो पा रहे हैं। हे शंकर! ये मेघ ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे अभी लोगोंके सिरपर गिर जायँगे॥ ७ ॥

हे शंकर! हवाके वेगसे ये बड़े-बड़े वृक्ष आकाशमें नाचते हुए-से प्रतीत हो रहे हैं। ये कामीजनोंके लिये सुख देनेवाले तथा भीरुजनोंको भयभीत करनेवाले हैं॥ ८ ॥

काले तथा चिकने बादलोंवाले आकाशके ऊपर उड़ती हुई बकपंक्ति यमुनानदीके ऊपर बहते हुए फेन-जैसी प्रतीत हो रही है॥ ९ ॥

ईश! काली रात्रिमें बादलोंमें छिपा हुआ यह चन्द्रमण्डल समुद्रमें प्रदीप्त हुई वडवाग्निके समान प्रतीत हो रहा है॥ १० ॥

हे विरूपाक्ष! इस मन्दराचल पर्वतशिखरके प्रांगणमें

भी वर्षाकालीन घासें उग आयी हैं, फिर अन्य स्थानोंकी चर्चा ही क्या करूँ?॥ ११ ॥

मन्दराचलपर आश्रय ग्रहण करनेवाले इन काले, श्वेत तथा रक्तवर्णके मेघोंसे यह विशाल हिमालय इस प्रकार प्रतीत हो रहा है, जैसे पत्तोंसे पूर्ण दुग्धका समुद्र हो॥ १२ ॥

श्री (शोभा) सभी वृक्षोंको त्यागकर केवल विषमतासे किंशुक वृक्षोंको शोभित कर रही है, जिस प्रकार महालक्ष्मी कलियुगमें सज्जनोंको त्यागकर सभी ऊँचे-नीचे पुरुषोंको प्राप्त होती हैं॥ १३ ॥

मन्दराचल पर्वतके शिखरपर वास करनेवाले बादलोंके शब्दसे हर्षित होकर मोर वनमें अपनी पीठ दिखाकर नृत्य कर रहे हैं॥ १४ ॥

मेघोंके लिये उत्सुक इन चातकोंकी मधुर ध्वनि इस वर्षाकालमें सुनायी पड़ रही है और पथिकगण तीव्र जल-वर्षाके कारण रास्तेमें होनेवाली थकानको दूर कर रहे हैं। हे शंकर! मेरी देहपर मेघोंद्वारा ओले गिराये जानेसे उत्पन्न हुई इस दुर्नीतिको देखिये, जो अपने अनुगामी मोर तथा चातकोंपर भी उपलकी वर्षाकर उन्हें ओलोंसे आच्छादित कर रहे हैं॥ १५-१६ ॥

हे गिरिश! मोर तथा सारंग भी अपने मित्र (बादल)-से पराभवको प्राप्तकर दूर होनेपर भी हर्षपूर्वक मानसरोवरको चले जा रहे हैं॥ १७ ॥

[हे सदाशिव!] इस विषम परिस्थितिमें [केवल] आपको छोड़कर कौआ और चकोर पक्षी भी अपना घोंसला बना रहे हैं। अब आप ही बताइये, घरके बिना आप किस प्रकार शान्ति प्राप्त करेंगे?॥ १८ ॥

हे पिनाकधारिन्! मुझे इन मेघोंसे बहुत बड़ा भय उत्पन्न हो गया है, इसलिये मेरे कहनेसे निवासके लिये शीघ्र ही घर बनानेका प्रयत्न कीजिये॥ १९ ॥

हे वृषभध्वज! आप कैलासपर्वतपर, हिमालयपर अथवा महाकोशीपर या पृथ्वीपर अपने योग्य निवासस्थान बनाइये॥ २० ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार दक्षकन्या सतीके द्वारा बार-बार कहे जानेपर शिवजी अपने सिरपर स्थित चन्द्रमाके प्रकाशपुंजके समान उज्ज्वल मुखसे हँसने लगे॥ २१ ॥

तदनन्तर मुसकराहटके कारण खुले ओठोंवाले वे सर्वतत्त्वज्ञाता महात्मा परमेश्वर महादेवजी सतीको प्रसन्न करते हुए कहने लगे—॥ २२ ॥

ईश्वर बोले—हे मनोहरे! हे मेरी प्रिये! तुम्हारी प्रीतिके लिये मैं तुम्हारे रहनेके योग्य निवासस्थान उस जगहपर बना दूँगा, जहाँ मेघ कभी भी नहीं जा सकेंगे॥ २३ ॥

हे मनोहरे! वर्षाकालमें भी ये मेघ हिमालय पर्वत (मध्य भाग)-के नीचे ही नीचे घूमते रहते हैं॥ २४ ॥

उसी प्रकार हे देवि! ये मेघ इस कैलासपर्वतके भी नीचे-ही-नीचे घूमते हैं, कैलास पर्वतके ऊपर नहीं जाते हैं॥ २५ ॥

पुष्कर, आवर्तक आदि मेघ भी जम्बूके मूलभागतक ही रह जाते हैं। ये जम्बूके ऊपर रहनेवाले सुमेरु पर्वतके शिखरपर नहीं जाते हैं॥ २६ ॥

हे प्रिये! इन वर्णित पर्वतोंमें जिस पर्वतपर तुम्हारी निवास करनेकी इच्छा हो, उस पर्वतको शीघ्र ही बताओ॥ २७ ॥

इस हिमालय पर्वतपर निवास करनेसे स्वच्छन्द विहार करनेवाले सुवर्णके सदृश पंखवाले ये अनिल नामक पक्षिसमूह ऊँचे-ऊँचे मधुर शब्दोंसे तुम्हारे कौतुक (केलिक्रीडा)-का गान करेंगे॥ २८ ॥

सिद्धोंकी कमनीय स्त्रियाँ मणियोंके द्वारा कूटकर बनायी गयी इस हिमालयकी भूमिपर स्वेच्छा-विहारकालमें कौतुकसे तुम्हारे बैठनेके लिये आसनका निर्माणकर स्वच्छ पृथिवीको तुम्हारे लिये अर्पण करेंगी और अनेक प्रकारके फल-मूल आदि लाकर देनेकी इच्छा करेंगी॥ २९ ॥

नागकन्याएँ, पर्वतकन्याएँ एवं तुरंगमुखी किन्नरियाँ—ये सभी मनको मोहनेवाले अपने हाव-भावसे सदैव तुम्हारी सहायता करेंगी॥ ३० ॥

तुम्हारे इस अतुलनीय रूप तथा मनोहारी मुखको देखकर वहाँकी स्त्रियाँ अपने पतिके लिये मनोहर लगनेवाले शरीर, अपने रूप तथा गुणोंको धिक्कार करेंगी तथा तुम्हारी ओर निरन्तर देखती रहेंगी॥ ३१ ॥

पर्वतराज हिमालयकी पत्नी मेनका, जो अपने रूप

तथा गुणसे त्रिलोकमें विख्यात हैं, वे भी तुम्हारे मनोऽनुकूल ऐश्वर्य, आशीर्वाद तथा प्रार्थनासे तुम्हें प्रसन्न करना चाहेंगी॥ ३२॥

गिरिराजसे वन्दनाके योग्य समस्त पुरजन तुम्हें प्रसन्न करनेका सदा प्रयत्न करेंगे और यदि अत्यन्त उदाररूपा तुमको कभी शोक हुआ तो वे लोग तुम्हें शिक्षा देंगे तथा अपने गुणोंसे प्रसन्न रखेंगे॥ ३३॥

हे प्रिये! कोकिलोंके विचित्र मधुर आलापोंसे परिपूर्ण कुंजसमूहोंसे आवृत स्थानमें जहाँ वसन्तकी उत्पत्तिका स्थान है, क्या तुम उस स्थानमें जाना चाहती हो?॥ ३४॥

जहाँ विविध प्रकारके अनेक तालाब सैकड़ों कमलिनियोंसे समन्वित शीतल जलसे परिपूर्ण हैं, जहाँ अश्व, हाथी तथा गौओंका निवास है, हे देवि! वहाँ सभी प्रकारकी कामनाओंको प्रदान करनेवाले कल्पसंज्ञक वृक्षोंसे घिरे हुए सुन्दर मनोहारी पुष्पोंको तथा हरे-भरे नवीन घासके मैदानोंको प्रफुल्लित नेत्रोंसे देखना। हे महामाये! इस प्रकारके उस हिमालयपर हिंसक जन्तुगण भी शान्तिपूर्वक निवास करते हैं, वह अनेक प्रकारके मृगगणोंसे युक्त है, वहाँपर स्थित देवालयोंमें मुनियों तथा यतियोंका निवास है॥ ३५—३७॥

उस पर्वतके शिखर स्फटिक, सुवर्ण एवं चाँदीसे व्याप्त हैं, वह मानसादि सरोवरोंसे चारों ओरसे सुशोभित है। वह सुवर्णसे बने हुए, रत्नोंके दण्डवाले अधखिले कमलोंसे व्याप्त है। शिशुमार एवं असंख्य कच्छप एवं मकरोंसे वह मानसरोवर परिव्याप्त है॥ ३८-३९॥

वह मनोहर नीलकमलों और उत्पलकमलोंसे शोभित है। हे देवेशि! वह [कमलपुष्पोंसे] गिरते हुए सुगन्धित कुंकुमोंसे व्याप्त है। गन्धोंसे समन्वित स्वच्छ जलोंसे वह मानसरोवर पूर्ण है। मानसरोवरका तट हरे-भरे, ऊँचे एवं नवीन घासवाले भूमिभागसे सुशोभित है। यहाँके शाखोटके वृक्ष इस प्रकार प्रतीत हो रहे हैं, जैसे अपनी शाखाको हिलाकर नृत्य कर रहे हों। अपनी इच्छाके अनुसार अनेक प्रकारके रूप धारण करनेवाले देवताओं, सारसों एवं मतवाले चक्रवाकोंसे मानसरोवर सुशोभित हो रहा है॥ ४०—४२॥

परम आनन्दको प्रदान करनेवाले भौंरोंके मधुर शब्दोंसे गुंजित वह मानसरोवर महान् उद्दीपन करनेवाला है॥ ४३॥

मेरुपर्वतके ऊँचे शिखरपर इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, निर्ऋति, वायु तथा ईशानकी पुरियाँ हैं, जहाँ देवताओंका निवासस्थान है। रम्भा, शची एवं मेनकादि अप्सराओंसे वह मेरुशिखर सुशोभित है॥ ४४-४५॥

[हे देवि!] क्या तुम उन समस्त पर्वतोंके राजा तथा पृथिवीके सारभूत महारम्य सुमेरु पर्वतपर विहार करना चाहती हो?॥ ४६॥

वहाँ [निवास करनेसे] सखियों एवं अप्सराओंसहित शची देवी तुम्हारी उचित सहायता करेंगी॥ ४७॥

अथवा तुम मेरे आश्रयभूत कैलासपर, जो पर्वतेन्द्रके नामसे विख्यात है, उसपर निवास करना चाहती हो, जहाँपर कुबेरकी अलकापुरी है। जहाँ गंगाकी जलधारा बह रही है, जो स्वयं पूर्णचन्द्रके समान समुज्ज्वल है और जिस कैलासकी कन्दराओं तथा शिखरोंपर ब्रह्मकन्याएँ मनोहर गान करती हैं॥ ४८-४९॥

यह कैलास अनेक प्रकारके मृगगणोंके समूहोंसे युक्त, सैकड़ों कमलोंसे परिपूर्ण एवं सुमेरुपर्वतकी अपेक्षा समस्त गुणोंसे युक्त तथा सुन्दर है॥ ५०॥

[हे देवि!] इन स्थानोंमें जहाँ कहीं भी तुम्हारी रहनेकी इच्छा हो, उस स्थानको शीघ्र मुझे बताओ। मैं वहाँपर तुम्हारे निवासस्थानका निर्माण करूँगा॥ ५१॥

ब्रह्माजी बोले—शंकरके इस प्रकार कहनेपर सतीदेवी अपने निवासभूत स्थानका लक्षण इस प्रकार कहने लगीं—॥ ५२॥

सती बोलीं—हे देव! मैं आपके साथ इस पर्वतराज हिमालयपर ही निवास करना चाहती हूँ, आप इसी पर्वतपर शीघ्रतापूर्वक निवासस्थानका निर्माण कीजिये॥ ५३॥

ब्रह्माजी बोले—सतीद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर शंकरजी अत्यधिक मोहित हो गये और सतीको साथ लेकर हिमालयपर्वतके ऊँचे शिखरपर चले गये॥ ५४॥

सिद्धांगनाओंसे युक्त, पक्षियोंसे सर्वथा अगम्य, अनेक छोटी-छोटी बावलियोंसे युक्त, विचित्र कमलोंसे चित्रित

और प्रात:कालीन सूर्यके समान सुशोभित उस शिखरपर शिवजी सती देवीके साथ चले गये ॥ ५५-५६ ॥

वह स्फटिकमणिके समान समुज्ज्वल, हरे-भरे वृक्षोंसे तथा घासोंसे परिपूर्ण, विचित्र पुष्पोंवाली बावलियोंसे युक्त था, उस शिखरके वृक्षोंकी शाखाओंका अग्रभाग विकसित पुष्पोंसे शोभित था, भौंरे गुंजार कर रहे थे, वह नील एवं अनेक वर्णके कमलोंसे परिव्याप्त था ॥ ५७-५८ ॥

चक्रवाक, कदम्ब, हंस, शुक, सारस और नीली गर्दनवाले क्रौंच पक्षियोंके शब्दोंसे वह शिखर शब्दायमान हो रहा था ॥ ५९ ॥

उस शिखरपर पुंस्कोकिल मनोहर शब्द कर रहे थे, वह अनेक प्रकारके गणों, किन्नरियों, सिद्धों, अप्सराओं तथा गुह्यकोंसे सेवित था ॥ ६० ॥

विद्याधरियाँ, देवियाँ तथा किन्नरियाँ वहाँ विहार कर रही थीं तथा पर्वतीय स्त्रियों एवं कन्याओंसे वह युक्त था ॥ ६१ ॥

वीणा, सितार, मृदंग एवं पटहके वाद्ययन्त्रोंपर नृत्य एवं कौतुक करती हुई अप्सराओंके समूहसे वह शिखर सुशोभित हो रहा था ॥ ६२ ॥

देविकाओं, दीर्घिकाओं, खिले हुए तथा सुगन्धित पुष्पों और निकुंजोंसे वह शोभायमान हो रहा था ॥ ६३ ॥

इस प्रकारकी शोभासे युक्त पर्वतराज हिमालयके शिखरपर शंकरजी सती देवीके साथ बहुत कालतक रमण करते रहे ॥ ६४ ॥

महादेवजी उस स्वर्गके समान दिव्य स्थानमें सतीके साथ देवताओंके वर्षके गणनानुसार दस हजार वर्षतक प्रसन्नतापूर्वक विहार करते रहे ॥ ६५ ॥

वे कभी उस स्थानको छोड़कर सतीके साथ किसी दूसरे स्थानपर चले जाते थे और कभी देवी-देवताओंसे व्याप्त मेरु शिखरपर चले जाते थे ॥ ६६ ॥

इस पृथ्वीतलके अनेक प्रकारके द्वीपों, उद्यानों एवं वनोंमें जाकर पुनः वहाँ आकर सतीके साथ रमण करने लगते थे ॥ ६७ ॥

शिवजीका मन यज्ञ, ब्रह्म तथा समाधिमें नहीं लगता था, वे शम्भु दिन-रात मनसे सतीमें ही प्रीति करते रहते थे ॥ ६८ ॥

इसी प्रकार सती भी निरन्तर महादेवजीके मुखका अवलोकन करती रहती थीं और शिवजी भी सतीके मुखको देखते रहते थे ॥ ६९ ॥

इस प्रकार वे शिव तथा सती परस्परके संयोगसे स्नेहरूपी जलद्वारा अनुरागरूपी वृक्षको सिंचितकर बढ़ाने लगे ॥ ७० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें शिवा-शिवविहारवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

सतीके पूछनेपर शिवद्वारा भक्तिकी महिमा तथा नवधा भक्तिका निरूपण

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार शंकरजीके साथ विहार करके वे सती कामसे सन्तुष्ट हो गयीं और उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न होने लगा ॥ १ ॥

एक दिनकी बात है, देवी सती एकान्तमें भगवान् शंकरसे मिलीं और उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणामकर दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं। भगवान् शंकरको प्रसन्नचित्त जानकर विनयभावसे दक्षकुमारी सती कहने लगीं— ॥ २-३ ॥

सती बोलीं—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे दीनोद्धारपरायण! हे महायोगिन्! मुझपर कृपा कीजिये ॥ ४ ॥

आप परमपुरुष हैं, इस जगत्के स्वामी हैं, रजोगुण-तमोगुण एवं सत्त्वगुणसे परे हैं, निर्गुण हैं, सगुण भी हैं, सबके साक्षी हैं, निर्विकार हैं और महाप्रभु हैं ॥ ५ ॥

मैं धन्य हूँ, जो आपकी कामिनी और आपके साथ सुन्दर विहार करनेवाली आपकी प्रिया हुई। हे स्वामिन्! हे हर! आप अपनी भक्तवत्सलताके कारण ही मेरे स्वामी हुए ॥ ६ ॥

हे नाथ! मैंने आपके साथ बहुत दिनोंतक विहार किया। हे महेशान! इससे मैं सन्तुष्ट हो गयी हूँ। अब मेरा मन उधरसे हट गया है॥ ७॥

हे देवेश! अब मैं परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना चाहती हूँ, जो सुख प्रदान करनेवाला है तथा हे हर! जिसको जान लेनेपर समस्त जीव संसारदुःखसे अनायास ही उद्धार प्राप्त कर लेते हैं॥ ८॥

हे नाथ! जिस कर्मका अनुष्ठान करके विषयी जीव भी परमपदको प्राप्त कर लेता है तथा पुनः संसारबन्धनमें नहीं पड़ता है, उस परमतत्त्वको आप बताइये, मुझपर कृपा कीजिये॥ ९॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार आदिशक्ति महेश्वरी सतीने केवल जीवोंके उद्धारके लिये उत्तम भक्तिभावसे भगवान् शंकरसे इस प्रकार पूछा॥ १०॥

तब इसे सुनकर स्वेच्छासे शरीर धारण करनेवाले तथा योगके द्वारा भोगसे विरक्त चित्तवाले स्वामी शिवजी अत्यन्त प्रसन्न होकर सतीसे कहने लगे—॥ ११॥

शिवजी बोले—हे देवि! हे दक्षनन्दिनि! हे महेश्वरि! सुनो, मैं उस परमतत्त्वका वर्णन करता हूँ, जिससे वासनाबद्ध जीव तत्काल मुक्त हो जाता है॥ १२॥

हे सती! तुम विज्ञानको परमतत्त्व जानो। विज्ञान वह है, जिसके उदय होनेपर 'मैं ब्रह्म हूँ', ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाता है। ब्रह्मके सिवा दूसरी किसी वस्तुका स्मरण नहीं रहता तथा उस विज्ञानी पुरुषकी बुद्धि सर्वथा शुद्ध हो जाती है॥ १३॥

हे प्रिये! वह विज्ञान दुर्लभ है, त्रिलोकीमें उसका ज्ञाता कोई विरला ही होता है। वह जो और जैसा भी है, सदा मेरा स्वरूप ही है। साक्षात् परात्पर ब्रह्म है॥ १४॥

इस प्रकारके विज्ञानकी माता केवल मेरी भक्ति है, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करती है। वह मेरी कृपासे सुलभ होती है। वह भक्ति नौ प्रकारकी कही गयी है। हे सति! भक्ति और ज्ञानमें कोई भेद नहीं है। भक्त और ज्ञानी दोनोंको ही सदा सुख प्राप्त होता है। भक्तिके विरोधीको विज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती॥ १५-१६॥

हे देवि! मैं सदा भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्तिके प्रभावसे जातिहीन नीच मनुष्योंके घरोंमें भी चला जाता हूँ, इसमें संशय नहीं है॥ १७॥

हे देवि! वह भक्ति दो प्रकारकी कही गयी है, सगुण और निर्गुण। जो वैधी अर्थात् शास्त्रविधिसे प्रेरित और स्वाभाविकी भक्ति होती है, वह श्रेष्ठ है और इससे भिन्न जो कामनामूलक भक्ति है, वह निम्नकोटिकी कही गयी है। सगुण और निर्गुण भक्ति—ये दोनों प्रकारकी भक्तियाँ नैष्ठिकी और अनैष्ठिकीके भेदसे दो प्रकारकी हो जाती हैं। नैष्ठिकी भक्ति छः प्रकारवाली जाननी चाहिये और अनैष्ठिकी एक ही प्रकारकी कही गयी है॥ १८-१९॥

विद्वान् पुरुष विहिता और अविहिता आदि भेदसे उसे अनेक प्रकारकी मानते हैं। इन द्विविध भक्तियोंके बहुतसे भेद-प्रभेद होनेके कारण इनके तत्त्वका अन्यत्र वर्णन किया गया है। हे प्रिये! मुनियोंने सगुण और निर्गुण दोनों भक्तियोंके नौ अंग बताये हैं। हे दक्षनन्दिनि! मैं उन नौ अंगोंका वर्णन करता हूँ, तुम प्रेमसे सुनो॥ २०-२१॥

हे देवि! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, सदा मेरा वन्दन, सख्य और आत्मसमर्पण—विद्वानोंने भक्तिके ये नौ अंग माने हैं। हे शिवे! इसके अतिरिक्त उस भक्तिके बहुत-से उपांग भी कहे गये हैं॥ २२-२३॥

हे देवि! अब तुम मन लगाकर मेरी भक्तिके नौ अंगोंके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो स्थिर आसनपर बैठकर तन-मन आदिसे मेरे कथा-कीर्तन आदिका नित्य सम्मान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक [अपने श्रवणपुटोंसे] उसका पान किया जाता है, उसे श्रवण कहते हैं॥ २४-२५॥

जो हृदयाकाशके द्वारा मेरे दिव्य जन्म एवं कर्मोंका चिन्तन करता हुआ प्रेमसे वाणीद्वारा उनका उच्च स्वरसे उच्चारण करता है, उसके इस भजनसाधनको कीर्तन कहा जाता है। हे देवि! मुझ नित्य महेश्वरको सदा और सर्वत्र व्यापक जानकर संसारमें निरन्तर निर्भय रहनेको स्मरण कहा गया है [यह निर्गुण स्मरण भक्ति है।]॥ २६-२७॥

अरुणोदयकालसे प्रारम्भकर शयनपर्यन्त तत्परचित्तसे निर्भय होकर भगवद्विग्रहकी सेवा करनेको स्मरण कहा जाता है [यह सगुण स्मरण भक्ति है।]॥ २८॥

हर समय सेव्यकी अनुकूलताका ध्यान रखते हुए हृदय और इन्द्रियोंसे जो निरन्तर सेवा की जाती है, वही सेवन नामक भक्ति है। अपनेको प्रभुका किंकर समझकर हृदयामृतके भोगसे स्वामीका सदा प्रिय-सम्पादन करना दास्य कहा गया है॥ २९॥

अपनेको सदा सेवक समझकर शास्त्रीय विधिसे मुझ परमात्माको सदा पाद्य आदि सोलह उपचारोंका जो समर्पण करना है, उसे अर्चन कहा जाता है॥ ३०॥

वाणीसे मन्त्रका उच्चारण करते हुए तथा मनसे ध्यान करते हुए आठों अंगोंसे भूमिका स्पर्श करते हुए जो इष्टदेवको अष्टांग प्रणाम* किया जाता है, उसे वन्दन कहा जाता है॥ ३१॥

ईश्वर मंगल-अमंगल जो कुछ भी करता है, वह सब मेरे मंगलके लिये है—ऐसा दृढ़ विश्वास रखना सख्य भक्तिका लक्षण है॥ ३२॥

देह आदि जो कुछ भी अपनी कही जानेवाली वस्तु है, वह सब भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये उन्हींको समर्पित करके अपने निर्वाहके लिये कुछ भी बचाकर न रखना अथवा निर्वाहकी चिन्तासे भी रहित हो जाना, आत्मसमर्पण कहा जाता है॥ ३३॥

मेरी भक्तिके ये नौ अंग हैं, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। इनसे ज्ञान प्रकट हो जाता है तथा ये साधन मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। मेरी भक्तिके अनेक उपांग भी कहे गये हैं। जैसे बिल्व आदिका सेवन, इनको विचारसे समझ लेना चाहिये॥ ३४-३५॥

हे प्रिये! इस प्रकार मेरी सांगोपांग भक्ति सबसे उत्तम है। यह ज्ञान-वैराग्यकी जननी है और मुक्ति इसकी दासी है। हे देवि! भक्ति सर्वदा सभी कर्मोंके फलोंको देनेवाली है, यह भक्ति मुझे सदा तुम्हारे समान ही प्रिय है। जिसके चित्तमें नित्य-निरन्तर यह भक्ति निवास करती है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है॥ ३६-३७॥

हे देवेशि! तीनों लोकों और चारों युगोंमें भक्तिके समान दूसरा कोई सुखदायक मार्ग नहीं है। कलियुगमें तो यह विशेष सुखद एवं सुविधाजनक है; क्योंकि कलियुगमें प्रायः ज्ञान और वैराग्य दोनों ही ग्राहकके अभावके कारण वृद्ध, उत्साहशून्य और जर्जर हो जाते हैं॥ ३८-३९॥

परंतु भक्ति कलियुगमें तथा अन्य सभी युगोंमें भी प्रत्यक्ष फल देनेवाली है। भक्तिके प्रभावसे मैं सदा भक्तके वशमें रहता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०॥

संसारमें जो भक्तिमान् पुरुष है, उसकी मैं सदा सहायता करता हूँ और उसके कष्टोंको दूर करता हूँ। उस भक्तका जो शत्रु होता है, वह मेरे लिये दण्डनीय है, इसमें संशय नहीं है॥ ४१॥

हे देवि! मैं अपने भक्तोंका रक्षक हूँ, भक्तकी रक्षाके लिये ही मैंने कुपित होकर अपने नेत्रजनित अग्निसे कालको भी भस्म कर डाला था॥ ४२॥

हे देवि! भक्तकी रक्षाके लिये मैं पूर्वकालमें सूर्यपर भी अत्यन्त क्रोधित हो उठा था और मैंने त्रिशूल लेकर सूर्यको भी जीत लिया था॥ ४३॥

हे देवि! मैंने भक्तके लिये सैन्यसहित रावणको भी क्रोधपूर्वक त्याग दिया और उसके प्रति कोई पक्षपात नहीं किया। हे देवि! भक्तोंके लिये ही मैंने कुमतिसे ग्रस्त व्यासको नन्दीद्वारा दण्ड दिलाकर उन्हें काशीके बाहर निकाल दिया॥ ४४-४५॥

हे देवेशि! बहुत कहनेसे क्या लाभ, मैं सदा ही भक्तके अधीन रहता हूँ और भक्ति करनेवाले पुरुषके अत्यन्त वशमें हो जाता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—[नारद!] इस प्रकार भक्तिका महत्त्व सुनकर दक्षकन्या सतीको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शिवको मन-ही-मन प्रणाम किया॥ ४७॥

हे मुने! देवी सतीने पुनः भक्तिविषयक शास्त्रके विषयमें बड़े आदरपूर्वक पूछा, जो लोकमें सुखदायक तथा जीवोंके उद्धारका साधन है॥ ४८॥

हे मुने! उन्होंने यन्त्र, मन्त्रशास्त्र, उनके माहात्म्य

---

* दोनों चरणों, दोनों हाथों, दोनों जानुओं, वक्षःस्थल, सिर, मन, वाणी तथा भक्तिभाव (मतान्तरसे दृष्टिसे)—इस प्रकार आठ अंगोंसे भूमिपर दण्डकी भाँति लेटकर जो प्रणाम किया जाता है, वह अष्टांग-प्रणाम कहलाता है—

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा। मनसा वचसा भक्त्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥ (आचारेन्दुमें नरसिंहपुराणका वचन)

तथा अन्य जीवोद्धारक धर्ममय साधनोंके विषयमें विशेष रूपसे जाननेकी इच्छा प्रकट की॥ ४९॥

सतीके इस प्रश्नको सुनकर शंकरजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने जीवोंके उद्धारके लिये सब शास्त्रोंका प्रेमपूर्वक वर्णन किया॥ ५०॥

महेश्वरने पाँचों अंगसहित तन्त्रशास्त्र, यन्त्रशास्त्र तथा भिन्न-भिन्न देवेश्वरोंकी महिमाका वर्णन किया॥ ५१॥

हे मुनीश्वर! महेश्वरने कृपा करके इतिहास—कथासहित उन देवताओंके भक्तोंकी महिमा, वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, पुत्र और स्त्रीके धर्मकी महिमा, कभी नष्ट न होनेवाले वर्णाश्रम, जीवोंको सुख देनेवाले वैद्यकशास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्र, उत्तम सामुद्रिकशास्त्र तथा अन्य भी बहुतसे शास्त्रोंका तत्त्वतः वर्णन किया॥ ५२—५४॥

इस प्रकार लोकोपकार करनेके लिये सद्गुणसम्पन्न शरीर धारण करनेवाले, तीनों लोकोंको सुख देनेवाले सर्वज्ञ परब्रह्मस्वरूप शिव और सतीने हिमालयपर्वतके कैलासशिखरपर तथा अन्यान्य स्थानोंमें अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें भक्तिके प्रभावका वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

दण्डकारण्यमें शिवको रामके प्रति मस्तक झुकाते देख सतीका मोह तथा शिवकी आज्ञासे उनके द्वारा रामकी परीक्षा

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे प्रजानाथ! हे महाप्राज्ञ! हे कृपाकर! आपने भगवान् शंकर तथा देवी सतीके मंगलकारी यशका श्रवण कराया है॥ १॥

अब इस समय पुनः प्रेमपूर्वक उनके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये। उन दम्पती शिवा-शिवने वहाँ रहकर कौन-कौन-सा चरित्र किया था?॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आप मुझसे सती और शिवके चरित्रका प्रेमपूर्वक श्रवण कीजिये। वे दोनों दम्पती वहाँ लौकिक गतिका आश्रय ले नित्य-निरन्तर क्रीडा करते थे॥ ३॥

हे मुने! तदनन्तर महादेवी सतीको अपने पति शंकरका वियोग प्राप्त हुआ—ऐसा कुछ श्रेष्ठ बुद्धिवाले विद्वानोंका कथन है॥ ४॥

परंतु हे मुने! वास्तवमें उन दोनों शक्ति और शक्तिमान्‌का परस्पर वियोग कैसे हो सकता है; क्योंकि चिन्मय वे दोनों वाणी और अर्थके समान एक-दूसरेसे सदा मिले-जुले हैं॥ ५॥

फिर भी सर्वसमर्थ सती एवं शिव लीलाप्रिय होनेके कारण लोक-व्यवहारका अनुसरण करते हुए जो कुछ भी करते हैं, वह सब समीचीन ही है॥ ६॥

दक्षकन्या सतीने जब देखा कि मेरे पतिने मुझे त्याग दिया है, तब वे अपने पिता दक्षके यज्ञमें गयीं और वहाँ भगवान् शंकरका अनादर देखकर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया॥ ७॥

वे ही सती पुनः हिमालयके घर पार्वतीके नामसे प्रकट हुईं और कठोर तपस्या करके उन्होंने विवाहके द्वारा पुनः भगवान् शिवको प्राप्त कर लिया॥ ८॥

सूतजी बोले—[हे महर्षियो!] ब्रह्माजीकी इस बातको सुनकर नारदजी ब्रह्माजीसे शिवा और शिवके महान् यशके विषयमें इस प्रकार पूछने लगे—॥ ९॥

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाभाग! हे विधे! आप मुझे शिवाशिवके लोक-आचारसे सम्बन्ध रखनेवाले उनके चरित्रको विस्तारपूर्वक बताइये॥ १०॥

हे तात! भगवान् शंकरजीने प्राणोंसे भी प्यारी अपनी धर्मपत्नी सतीका किसलिये त्याग किया? यह घटना बड़ी विचित्र जान पड़ती है, अतः इसे आप अवश्य कहिये॥ ११॥

आपके पुत्र दक्ष प्रजापतिने यज्ञमें भगवान् शंकरका अनादर क्यों किया और वहाँ अपने पिताके यज्ञमें जाकर सतीने अपने शरीरका त्याग क्यों किया?॥ १२॥

पुनः उसके बाद क्या हुआ? महेश्वरने क्या किया? ये सब बातें मुझसे कहिये। मैं इस वृत्तान्तको श्रद्धायुक्त होकर सुनना चाहता हूँ॥ १३॥

ब्रह्माजी बोले—मेरे पुत्रोंमें श्रेष्ठ हे महाप्राज्ञ! हे तात! हे नारद! आप महर्षियोंके साथ बड़े प्रेमसे भगवान् चन्द्रमौलिका चरित्र सुनिये। श्रीविष्णु आदि देवताओंसे सेवित परब्रह्म परमेश्वरको नमस्कार करके मैं उनके महान् अद्भुत चरित्रका वर्णन करता हूँ॥ १४-१५॥

हे मुने! यह सब शिवकी लीला है। वे प्रभु अनेक प्रकारकी लीला करनेवाले, स्वतन्त्र और निर्विकार हैं। देवी सती भी वैसी ही हैं। हे मुने! अन्यथा वैसा कर्म करनेमें कौन समर्थ हो सकता है। परमेश्वर शिव ही परब्रह्म परमात्मा हैं॥ १६-१७॥

जिनका भजन सदा श्रीपति विष्णु, मैं ब्रह्मा, समस्त देवतागण, महात्मा, मुनि, सिद्ध तथा सनकादि सदैव करते रहते हैं। शेषजी प्रसन्नतापूर्वक जिनके यशका निरन्तर गान करते रहते हैं, किंतु कभी भी उनका पार नहीं पाते हैं, वे ही शंकर सबके प्रभु तथा ईश्वर हैं॥ १८-१९॥

यह सब तत्त्वविभ्रम उन्हींकी लीलासे हो रहा है। इसमें किसीका दोष नहीं है; क्योंकि वे सर्वव्यापी ही प्रेरक हैं। एक समयकी बात है तीनों लोकोंमें विचरण करनेवाले, लीलाविशारद भगवान् रुद्र सतीके साथ वृषभपर आरूढ़ हो पृथ्वीपर भ्रमण कर रहे थे॥ २०-२१॥

सागर और आकाशमें घूमते-घूमते दण्डकारण्यमें आकर सत्य प्रतिज्ञावाले वे प्रभु सतीको वहाँकी शोभा दिखाने लगे। वहाँ उन्होंने लक्ष्मणसहित श्रीरामको देखा, जो रावणद्वारा बलपूर्वक हरी गयी अपनी प्रिया पत्नी सीताकी खोज कर रहे थे॥ २२-२३॥

वे 'हा सीते!' इस प्रकार उच्च स्वरसे पुकार रहे थे, जहाँ-तहाँ देख रहे थे और बार-बार रो रहे थे, उनके मनमें विरहका आवेश छा गया था॥ २४॥

वे उनकी प्राप्तिकी इच्छा कर रहे थे, मनमें उनकी दशाका विचार कर रहे थे, वृक्ष आदिसे उनके विषयमें पूछ रहे थे, उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी, वे लज्जासे रहित हो गये थे और शोकसे विह्वल थे॥ २५॥

वे सूर्यवंशमें उत्पन्न, वीर, भूपाल, दशरथनन्दन, भरताग्रज थे। आनन्दरहित होनेके कारण उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। उस समय उदारचेता पूर्णकाम भगवान् शंकरने लक्ष्मणके साथ वनमें घूमते हुए माता कैकेयीके वरोंके अधीन उन रामको बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रणाम किया और जय-जयकार करके वे दूसरी ओर चल दिये। उन भक्तवत्सल शंकरने उस वनमें श्रीरामको पुनः दर्शन नहीं दिया॥ २६—२८॥

मोहमें डालनेवाली भगवान् शिवकी ऐसी लीलाको देखकर सतीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उनकी मायासे मोहित हो उनसे इस प्रकार कहने लगीं—॥ २९॥

सती बोलीं—हे देवदेव! हे परब्रह्म! हे सर्वेश! हे परमेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु आदि सब देवता आपकी ही सेवा सदा करते रहते हैं। आप ही सबके द्वारा प्रणाम करनेयोग्य हैं। सबको आपका ही सर्वदा सेवन और ध्यान करना चाहिये। वेदान्तशास्त्रके द्वारा यत्नपूर्वक जाननेयोग्य निर्विकार तथा परमप्रभु आप ही हैं॥ ३०-३१॥

हे नाथ! ये दोनों पुरुष कौन हैं, इनकी आकृति विरह-व्यथासे व्याकुल दिखायी पड़ रही है। ये दोनों धनुर्धर वीर वनमें विचरण करते हुए दुःखके भागी और दीन हो रहे हैं। उन दोनोंमें नीलकमलके समान ज्येष्ठ पुरुषको देखकर किस कारणसे आप आनन्दविभोर हो उठे और भक्तकी भाँति अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो गये?॥ ३२-३३॥

हे स्वामिन्! हे शंकर! आप मेरे संशयको दूर कीजिये। हे प्रभो! सेव्य [स्वामी] अपने सेवकको प्रणाम करे—यह उचित नहीं जान पड़ता॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] कल्याणमयी परमेश्वरी आदिशक्ति सती देवीने शिवकी मायाके वशीभूत होकर जब भगवान् शिवसे इस प्रकार पूछा। तब सतीकी यह बात सुनकर लीला करनेमें प्रवीण परमेश्वर शंकरजी हँसकर सतीसे कहने लगे—॥ ३५-३६॥

परमेश्वर बोले—हे देवि! हे सति! सुनो, मैं प्रसन्नतापूर्वक सत्य बात कह रहा हूँ। इसमें किसी प्रकारका छल नहीं है। वरदानके प्रभावसे ही मैंने इन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया है॥ ३७॥

हे देवि! ये दोनों भाई वीरोंद्वारा सम्मानित हैं, इनके नाम श्रीराम और लक्ष्मण हैं, ये सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए

हैं, परम बुद्धिमान् हैं और राजा दशरथके पुत्र हैं॥ ३८॥

इनमें जो गौरवर्णके छोटे भाई हैं, वे शेषके अंश हैं, उनका नाम लक्ष्मण है। इनमें ज्येष्ठ भाईका नाम श्रीराम है। ये भगवान् विष्णुके पूर्ण अंश तथा उपद्रवरहित हैं। ये साधुपुरुषोंकी रक्षा और हमलोगोंके कल्याणके लिये इस पृथिवीपर अवतरित हुए हैं। इतना कहकर सृष्टि करनेवाले भगवान् शम्भु चुप हो गये॥ ३९-४०॥

इस प्रकार शिवका वचन सुनकर भी उनके मनको विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि शिवकी माया बलवती है, वही तीनों लोकोंको मोहित किये रहती है॥ ४१॥

सतीके मनमें मेरी बातपर विश्वास नहीं हुआ है, ऐसा जानकर लीलाविशारद सनातन प्रभु शम्भु यह वचन कहने लगे—॥ ४२॥

शिवजी बोले—हे देवि! मेरी बात सुनो, यदि तुम्हारे मनको [मेरे कथनपर] विश्वास नहीं होता है, तो तुम वहाँ [जाकर] अपनी ही बुद्धिसे श्रीरामकी परीक्षा स्वयं कर लो। हे सति! हे प्रिये! जिस प्रकार तुम्हारा भ्रम दूर हो, वैसा ही तुम करो। तुम वहाँ जाकर परीक्षा करो, तबतक मैं इस वटवृक्षके नीचे बैठा हूँ॥ ४३-४४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] भगवान् शिवकी आज्ञासे ईश्वरी सती वहाँ जाकर सोचने लगीं कि मैं वनचारी रामकी कैसे परीक्षा करूँ। मैं सीताका रूप धारण करके रामके पास चलूँ। यदि राम [साक्षात्] विष्णु हैं, तो सब कुछ जान लेंगे, अन्यथा वे मुझे नहीं पहचानेंगे॥ ४५-४६॥

इस प्रकार विचार करके मोहमें पड़ी हुई वे सती सीताका रूप धारणकर श्रीरामके पास उनकी परीक्षा लेनेके लिये गयीं। सतीको सीताके रूपमें देखकर शिव-नामका जप करते हुए रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम सब कुछ जानकर उन्हें प्रणाम करके हँसकर कहने लगे—॥ ४७-४८॥

श्रीराम बोले—हे सति! आपको नमस्कार है, आप प्रेमपूर्वक बताइये कि शिवजी कहाँ गये हैं, आप पतिके बिना अकेली ही इस वनमें क्यों आयी हैं?॥ ४९॥

हे सति! आपने अपना रूप त्यागकर किसलिये यह रूप धारण किया है? हे देवि! मुझपर कृपा करके इसका कारण बताइये?॥ ५०॥

ब्रह्माजी बोले—रामजीकी यह बात सुनकर सती उस समय आश्चर्यचकित हो गयीं। वे शिवजीकी कही हुई बातका स्मरण करके और उसे सत्य समझकर बहुत लज्जित हुईं। श्रीरामको साक्षात् विष्णु जानकर अपना रूप धारण करके मन-ही-मन शिवके चरणोंका चिन्तनकर प्रसन्नचित्त हुई सतीने उनसे इस प्रकार कहा—॥ ५१-५२॥

[हे रघुनन्दन!] स्वतन्त्र परमेश्वर प्रभु शिव मेरे तथा अपने पार्षदोंके साथ पृथिवीपर भ्रमण करते हुए इस वनमें आये हुए हैं॥ ५३॥

यहाँ उन्होंने सीताकी खोजमें लगे हुए, उनके विरहसे युक्त और दुखी चित्तवाले आपको लक्ष्मणसहित देखा। वे आपको प्रणाम करके चले गये और आपकी वैष्णवी महिमाकी प्रशंसा करते हुए अत्यन्त आनन्दके साथ वटवृक्षके नीचे बैठे हैं॥ ५४-५५॥

वे आपके चतुर्भुज विष्णुरूपको देखे बिना ही आनन्दविभोर हो गये। इस निर्मल रूपको देखते हुए उन्हें बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। शम्भुके वचनको सुनकर मेरे मनमें भ्रान्ति उत्पन्न हो गयी। अतः हे राघव! मैंने उनकी आज्ञा लेकर आपकी परीक्षा की है॥ ५६-५७॥

हे श्रीराम! अब मुझे ज्ञात हो गया कि आप [साक्षात्] विष्णु हैं। मैंने आपकी सम्पूर्ण प्रभुता देख ली है। अब मेरा संशय दूर हो गया है, तो भी महामते! आप मेरी बात सुनें॥ ५८॥

मेरे सामने यह सच-सच बतायें कि आप उन शिवके वन्दनीय कैसे हो गये? आप मुझे संशयरहित कीजिये और शीघ्र ही मुझे शान्ति प्रदान कीजिये॥ ५९॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उनकी यह बात सुनकर श्रीरामके नेत्र प्रफुल्लित हो उठे। उन्होंने अपने प्रभु शिवका स्मरण किया। इससे उनके हृदयमें अत्यधिक प्रेम उत्पन्न हो गया। हे मुने! शिवकी आज्ञाके बिना वे राघव सतीके साथ भगवान् शिवके समीप नहीं गये तथा [मन-ही-मन] उनकी महिमाका वर्णन करके सतीसे कहने लगे॥ ६०-६१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें रामपरीक्षा-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

श्रीशिवके द्वारा गोलोकधाममें श्रीविष्णुका गोपेशके पदपर अभिषेक, श्रीरामद्वारा सतीके मनका सन्देह दूर करना, शिवद्वारा सतीका मानसिक रूपसे परित्याग

श्रीराम बोले—देवि! प्राचीन कालमें एक समय परम स्रष्टा भगवान् शम्भुने अपने परम धाममें विश्वकर्माको बुलाकर उनके द्वारा अपनी गोशालामें एक विस्तृत तथा रमणीय भवन बनवाया और उसमें एक श्रेष्ठ सिंहासनका भी निर्माण कराया॥ १-२॥

उस सिंहासनपर भगवान् शंकरने विघ्ननिवारणार्थ विश्वकर्माद्वारा एक छत्र बनवाया, जो बहुत ही दिव्य, सदाके लिये अद्भुत और परम उत्तम था॥ ३॥

उसके बाद उन्होंने इन्द्र आदि देवगणों, सिद्धों, गन्धर्वों, नागों तथा सम्पूर्ण उपदेवोंको भी शीघ्र वहाँ बुलवाया। समस्त वेदों, आगमों, ब्रह्माजीके पुत्रों, मुनियों तथा अप्सराओंसहित अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे युक्त समस्त देवियोंको भी आमन्त्रित किया॥ ४-५॥

[इनके अतिरिक्त] देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और नागोंकी मंगलकारिणी सोलह-सोलह कन्याओंको भी बुलवाया। हे मुने! उन्होंने वीणा, मृदंग आदि नाना प्रकारके वाद्योंको बजवाकर सुन्दर गीतोंद्वारा महान् उत्सव कराया॥ ६-७॥

सम्पूर्ण औषधियोंके साथ राज्याभिषेकके योग्य द्रव्य, प्रत्यक्ष तीर्थोंके जलोंसे भरे हुए पाँच कलश तथा बहुत-सी दिव्य सामग्रियोंको भगवान् शंकरने अपने पार्षदोंद्वारा मँगवाया और वहाँ उच्च स्वरसे वेदमन्त्रोंका घोष करवाया॥ ८-९॥

हे देवि! भगवान् विष्णुकी पूर्ण भक्तिसे महेश्वरदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। इसलिये प्रसन्नचित्त होकर वैकुण्ठधामसे श्रीहरिको बुलाकर शुभ मुहूर्तमें उन्हें श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठाकर महादेवजीने स्वयं ही प्रेमपूर्वक उन्हें सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित किया॥ १०-११॥

उनके मस्तकपर मनोहर मुकुट बाँधकर और उत्सव-मंगलाचार करके महेश्वरने स्वयं ब्रह्माण्डमण्डपमें श्रीहरिका अभिषेक किया और उन्हें अपना वह सारा ऐश्वर्य प्रदान किया, जो वे दूसरोंको नहीं देते थे। तदनन्तर भक्तवत्सल स्वतन्त्र शम्भुने श्रीहरिका स्तवन किया। तत्पश्चात् अपनी पराधीनता (भक्तपरवशता)-को सर्वत्र प्रसिद्ध करते हुए लोककर्ता ब्रह्माजीसे कहा—॥ १२—१४॥

महेश्वर बोले—लोकेश! आजसे मेरी आज्ञाके अनुसार ये विष्णु हरि स्वयं मेरे वन्दनीय हो गये, इस बातको सभी सुन लें। हे तात! आप सम्पूर्ण देवता आदिके साथ इन श्रीहरिको प्रणाम कीजिये और ये वेद मेरी आज्ञासे मेरी ही तरह इन श्रीहरिका वर्णन करें॥ १५-१६॥

श्रीराम बोले—विष्णुकी भक्तिसे प्रसन्नचित्त हुए वरदायक भक्तवत्सल रुद्रदेवने ऐसा कहकर स्वयं ही गरुडध्वज श्रीहरिको प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्मा आदि देवताओं, अन्य सभी देवों, मुनियों और सिद्धों आदिने भी उस समय श्रीहरिकी वन्दना की॥ १७-१८॥

इसके बाद अत्यन्त प्रसन्न हुए भक्तवत्सल महेश्वरने देवताओंके समक्ष श्रीहरिको महान् वर प्रदान किये॥ १९॥

महेश्वर बोले—[हे हरे!] आप मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता, पालक, संहारक, धर्म-अर्थ-कामके दाता तथा अन्याय करनेवालोंको दण्ड देनेवाले होंगे। आप महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, जगत्पूज्य, जगदीश्वर होंगे और कहीं-कहीं मुझसे भी अजेय होंगे॥ २०-२१॥

आप मुझसे मेरी दी हुई तीन प्रकारकी ये शक्तियाँ ग्रहण करें—इच्छा आदिकी सिद्धि, अनेक प्रकारकी लीलाओंको प्रकट करनेकी शक्ति और तीनों लोकोंमें नित्य स्वतन्त्र रहनेकी शक्ति॥ २२॥

हे हरे! आपसे द्वेष करनेवाले निश्चय ही मेरे द्वारा प्रयत्नपूर्वक दण्डनीय होंगे। हे विष्णो! मैं आपके भक्तोंको उत्तम मोक्ष प्रदान करूँगा॥ २३॥

आप इस मायाको भी ग्रहण करें, जिसका निवारण करना देवता आदिके लिये भी कठिन है और जिससे मोहित होनेपर यह विश्व जड़रूप हो जायगा॥ २४॥

हरे! आप मेरी बायीं भुजा हैं और विधाता दाहिनी

भुजा हैं। आप इन विधाताके भी उत्पादक और पालक होंगे॥ २५॥

मेरे हृदयरूप जो रुद्र हैं, वही मैं हूँ, इसमें संशय नहीं है। वे रुद्र आपके और ब्रह्मा आदि देवताओंके भी निश्चय ही पूज्य हैं। आप यहाँ रहकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले अपने विभिन्न अवतारोंद्वारा विशेषरूपसे सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करें॥ २६-२७॥

मेरे लोकमें आपका यह परम वैभवशाली और अत्यन्त उज्ज्वल स्थान गोलोक नामसे विख्यात होगा॥ २८॥

हे हरे! भूतलपर जो आपके अवतार होंगे, वे सबके रक्षक और मेरे भक्त होंगे। मैं उनका दर्शन करूँगा। वे मेरे वरसे सदा प्रसन्न रहेंगे॥ २९॥

श्रीरामजी बोले—इस प्रकार श्रीहरिको अपना अखण्ड ऐश्वर्य प्रदानकर उमापति भगवान् हर स्वयं कैलासपर्वतपर रहते हुए अपने पार्षदोंके साथ स्वच्छन्द क्रीड़ा करने लगे। तभीसे भगवान् लक्ष्मीपतिने गोपवेश धारण कर लिया और वे गोप-गोपी तथा गौओंके अधिपति होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ रहने लगे॥ ३०-३१॥

वे विष्णु भी प्रसन्नचित्त होकर समस्त जगत्‌की रक्षा करने लगे। वे शिवजीकी आज्ञासे नाना प्रकारके अवतार धारण करके जगत्‌का पालन करने लगे॥ ३२॥

इस समय वे श्रीहरि भगवान् शंकरकी आज्ञासे चार रूपोंमें अवतीर्ण हुए हैं। उनमें एक मैं राम हूँ और भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न हैं॥ ३३॥

हे देवि! हे सति! मैं पिताकी आज्ञासे सीता और लक्ष्मणके साथ वनमें आया हूँ और भाग्यवश इस समय मैं दुखी हूँ। यहाँ किसी निशाचरने मेरी पत्नीका हरण कर लिया है और मैं विरही होकर भाईके साथ वनमें अपनी प्रियाकी खोज कर रहा हूँ॥ ३४-३५॥

हे सति! हे मातः! जब आपका दर्शन प्राप्त हो गया, तब आपकी कृपासे सर्वथा मेरा कुशल ही होगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे देवि! आपका दर्शन मेरे लिये सीता-प्राप्तिका वरस्वरूप होगा, आपकी कृपासे उस दुःख देनेवाले पापी राक्षसको मारकर मैं सीताको प्राप्त कर लूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६-३७॥

आज मेरा महान् सौभाग्य है, जो आप दोनोंने मुझपर कृपा की। जिसपर आप दोनों दयार्द्र हो जायँ, वह पुरुष धन्य और श्रेष्ठ है॥ ३८॥

इस प्रकार बहुत-सी बातें कहकर कल्याणमयी सती देवीको प्रणाम करके रघुकुलशिरोमणि श्रीराम उनकी आज्ञासे उस वनमें विचरने लगे। पवित्र हृदयवाले रामकी शिव-भक्तिपरायण तथा शिवप्रशंसापरक बात सुनकर सती मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुईं॥ ३९-४०॥

[तदनन्तर] अपने कर्मको याद करके उनके मनमें बड़ा शोक हुआ। उनकी अंगकान्ति फीकी पड़ गयी और वे उदास होकर शिवजीके पास लौट आयीं॥ ४१॥

मार्गमें जाती हुई देवी सती बारम्बार चिन्ता करने लगीं कि मैंने भगवान् शिवकी बात नहीं मानी और श्रीरामके प्रति कुत्सित बुद्धि कर ली। अब शंकरजीके पास जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगी, इस प्रकारके विचार करनेपर उन्हें बहुत पश्चात्ताप हुआ॥ ४२-४३॥

शिवजीके पास जाकर उन सतीने उन्हें हृदयसे प्रणाम किया। उनके मुखपर विषाद छा गया। वे शोकसे व्याकुल और निस्तेज हो गयी थीं॥ ४४॥

सतीको दुखी देखकर भगवान् हरने उनका कुशल-क्षेम पूछा और प्रेमपूर्वक कहा—तुमने किस प्रकार उनकी परीक्षा ली? शिवजीकी यह बात सुनकर मैंने कोई परीक्षा नहीं ली—ऐसा कहकर वे सती सिर झुकाये शोकाकुल होकर उनके पास खड़ी हो गयीं॥ ४५-४६॥

इसके बाद महायोगी तथा अनेकविध लीला करनेमें प्रवीण भगवान् महेश्वरने मनमें ध्यान लगाकर दक्षपुत्री सतीका सारा चरित्र जान लिया॥ ४७॥

उन्हें अपनी उस प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया, जिसे हरिके विशेष आग्रह करनेपर मर्यादाप्रतिपालक उन रुद्रने विवाहके लिये देवताओंके द्वारा निवेदन किये जानेपर पूर्वमें किया था। उन महाप्रभुके मनमें विषाद उत्पन्न हो गया। तब धर्मवक्ता, धर्मकर्ता तथा धर्मरक्षक प्रभुने अपने मनमें कहा—॥ ४८-४९॥

शिवजी बोले—यदि मैं सतीसे अब पूर्ववत् स्नेह करूँ, तो लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले मुझ शिवकी महान् प्रतिज्ञा ही नष्ट हो जायगी॥ ५०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मनमें अनेक तरहसे

विचारकर वेद और धर्मके प्रतिपालक शंकरजीने हृदयसे सतीका त्याग कर दिया, किंतु अपनी प्रतिज्ञाको नष्ट नहीं किया। तत्पश्चात् परमेश्वर शिवजी मनसे सतीको त्यागकर अपने कैलासपर्वतकी ओर चल दिये। उन प्रभुने अपने निश्चयको किसीके सामने प्रकट नहीं किया॥ ५१-५२॥

मार्गमें जाते हुए महेश्वरको, अन्य सबको तथा विशेषकर सतीको सुनाते हुए आकाशवाणी हुई॥ ५३॥

आकाशवाणी बोली—हे परमेश्वर! आप धन्य हैं, इस त्रिलोकीमें आपके समान कोई भी नहीं है, जिसने आजतक ऐसी प्रतिज्ञा की हो, आप महायोगी तथा महाप्रभु हैं॥ ५४॥

ब्रह्माजी बोले—यह आकाशवाणी सुनकर कान्तिसे हीन देवी सतीने शिवसे पूछा—हे नाथ! आपने कौन-सी प्रतिज्ञा की है? हे परमेश्वर! मुझे बताइये॥ ५५॥

सतीके इस प्रकार पूछनेपर भी सबका हित करनेवाले प्रभुने पहले अपने विवाहके विषयमें भगवान् विष्णुके सामने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे नहीं बताया॥ ५६॥

हे मुने! उस समय सती अपने प्राणवल्लभ पति भगवान् शिवका ध्यान करके प्रियतमके द्वारा अपने त्याग-सम्बन्धी समस्त कारणको जान गयीं॥ ५७॥

शम्भुने मेरा त्याग किया है—इस बातको जानकर दक्षकन्या सती बार-बार श्वास भरती हुईं शीघ्र ही अत्यन्त शोकमें डूब गयीं, बारम्बार सिसकने लगीं॥ ५८॥

सतीके मनोभावको जानकर प्रभु शिवने उनके लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसे गुप्त ही रखा और वे दूसरी बहुत-सी कथाएँ कहने लगे॥ ५९॥

इस प्रकार नाना प्रकारकी कथाएँ कहते हुए वे सतीके साथ कैलासपर जा पहुँचे और श्रेष्ठ आसनपर स्थित हो समाधि लगाकर अपने स्वरूपका ध्यान करने लगे। सती अत्यन्त व्याकुलचित्त होकर अपने धाममें रहने लगीं। हे मुने! शिवा और शिवके उस चरित्रको किसीने नहीं जाना। हे महामुने! इस प्रकार स्वेच्छासे शरीर धारण करके लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले उन दोनों प्रभुओंका बहुत काल व्यतीत हो गया॥ ६०—६२॥

तत्पश्चात् उत्तम लीला करनेवाले महादेवजीने ध्यान तोड़ा—यह जानकर जगदम्बा सती वहाँ आयीं और उन्होंने व्यथित हृदयसे शिवको प्रणाम किया। उदार चित्तवाले शम्भुने उन्हें अपने सामने [बैठनेके लिये] आसन दिया और वे बड़े प्रेमसे बहुत-सी मनोरम कथाएँ

कहने लगे। उन्होंने वैसी ही लीला करके सतीके शोकको तत्काल दूर कर दिया॥ ६३—६५॥

वे पूर्ववत् सुखी हो गयीं, फिर भी शिवजीने अपनी प्रतिज्ञाको नहीं तोड़ा। हे तात! परमेश्वर शिवजीके विषयमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये। हे मुने! मुनि लोग शिव और शिवाकी ऐसी ही कथा कहते हैं। कुछ मूर्ख लोग उन दोनोंमें वियोग मानते हैं, परंतु उनमें वियोग कैसे सम्भव है!॥ ६६-६७॥

शिवा और शिवके वास्तविक चरित्रको कौन जान सकता है? वे दोनों सदा अपनी इच्छासे क्रीड़ा करते और [भाँति-भाँतिकी] लीलाएँ करते हैं। सती और शिव वाणी और अर्थकी भाँति एक-दूसरेसे नित्य संयुक्त हैं। उन दोनोंमें वियोग होना असम्भव है, उनकी इच्छासे ही लीलामें वियोग हो सकता है॥ ६८-६९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीवियोगवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

सतीके उपाख्यानमें शिवके साथ दक्षका विरोधवर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! पूर्वकालमें प्रयागमें एकत्रित हुए समस्त मुनियों तथा महात्माओंका विधि-विधानसे एक बहुत बड़ा यज्ञ हुआ॥ १॥

उस यज्ञमें सिद्धगण, सनक आदि, देवर्षि, प्रजापति, देवता तथा ब्रह्मका साक्षात्कार करनेवाले ज्ञानी आये॥ २॥

मैं भी मूर्तिमान् महातेजस्वी निगमों और आगमोंसे युक्त हो सपरिवार वहाँ गया था॥ ३॥

अनेक प्रकारके उत्सवोंके साथ वहाँ उनका विचित्र समाज जुटा था। वहाँ अनेक शास्त्रोंसे सम्बन्धित ज्ञानचर्चा होने लगी॥ ४॥

हे मुने! उसी समय सती और पार्षदोंके साथ त्रिलोकहितकारी, सृष्टिकर्ता एवं सबके स्वामी भगवान् रुद्र भी वहाँ पहुँचे॥ ५॥

शिवको देखकर सम्पूर्ण देवताओं, सिद्धों, मुनियों और मैंने भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम किया और उनकी स्तुति की॥ ६॥

तत्पश्चात् शिवजीकी आज्ञा पाकर सब लोग प्रसन्नतापूर्वक यथास्थान बैठ गये। भगवान्‌के दर्शनसे सन्तुष्ट होकर सब लोग अपने भाग्यकी सराहना करने लगे॥ ७॥

उसी समय प्रजापतियोंके स्वामी महातेजस्वी प्रभु दक्षप्रजापति घूमते हुए प्रसन्नतापूर्वक वहाँ अकस्मात् आये। वे मुझे प्रणामकर मेरी आज्ञासे वहाँ बैठ गये। वे दक्ष ब्रह्माण्डके अधिपति और सबके मान्य थे, परंतु अहंकारी तथा तत्त्वज्ञानसे शून्य थे॥ ८-९॥

उस समय समस्त देवर्षियोंने नतमस्तक हो स्तुति और प्रणामद्वारा दोनों हाथ जोड़कर उत्तम तेजयुक्त दक्षका आदर-सत्कार किया॥ १०॥

किंतु नाना प्रकारके लीलाविहार करनेवाले सबके स्वामी और परम रक्षक महेश्वरने उस समय दक्षको प्रणाम नहीं किया। वे अपने आसनपर बैठे ही रह गये॥ ११॥

महादेवजीको वहाँ मस्तक न झुकाते देख मेरे पुत्र दक्ष मन-ही-मन अप्रसन्न हो गये। दक्ष प्रजापति रुद्रपर कुपित हो गये॥ १२॥

ज्ञानशून्य तथा महान् अहंकारी दक्ष महाप्रभु रुद्रको क्रूर दृष्टिसे देखकर सबको सुनाते हुए उच्च स्वरमें कहने लगे— ॥ १३॥

दक्ष बोले—ये सब देवता, असुर, श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा ऋषि मुझे विशेष रूपसे मस्तक झुकाते हैं, परंतु वह जो प्रेतों और पिशाचोंसे घिरा हुआ महामनस्वी है, वह दुष्ट मनुष्यके समान कैसे हो गया?॥ १४॥

श्मशानमें निवास करनेवाला निर्लज्ज मुझे इस समय प्रणाम क्यों नहीं करता? इसके [वेदोक्त] कर्म लुप्त हो गये हैं, यह भूतों और पिशाचोंसे सेवित हो मतवाला बना रहता है, शास्त्रीय विधिसे रहित है तथा नीतिमार्गको सदा कलंकित करता है॥ १५॥

इसके साथ रहनेवाले या इसका अनुसरण करनेवाले लोग पाखण्डी, दुष्ट, पापाचारी तथा ब्राह्मणको देखकर उद्दण्डतापूर्वक उसकी निन्दा करनेवाले होते हैं। यह स्वयं ही स्त्रीमें आसक्त रहनेवाला तथा रतिकर्ममें ही दक्ष है। अत: मैं इसे शाप देनेके लिये उद्यत हूँ॥ १६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर वे महादुष्ट दक्ष कुपित होकर रुद्रके प्रति कहने लगे। हे ब्राह्मणो एवं देवताओ! यह रुद्र मेरे तथा आप सभीके द्वारा वध्य है॥ १७॥

दक्ष बोले—मैं इस रुद्रको यज्ञसे बहिष्कृत करता हूँ। यह चारों वर्णोंसे बाहर, श्मशानमें निवास करनेवाला तथा उत्तम कुल और जन्मसे हीन है। इसलिये यह देवताओंके साथ यज्ञमें भाग न पाये॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! दक्षकी कही हुई यह बात सुनकर भृगु आदि बहुतसे महर्षि रुद्रदेवको दुष्ट मानकर देवताओंके साथ उनकी निन्दा करने लगे॥ १९॥

दक्षकी बात सुनकर गणेश्वर नन्दीको बड़ा रोष हुआ। उनके नेत्र चंचल हो उठे और वे दक्षको शाप देनेके विचारसे तुरंत इस प्रकार कहने लगे— ॥ २०॥

नन्दीश्वर बोले—हे शठ! महामूढ़! हे दुष्टबुद्धि दक्ष! तुमने मेरे स्वामी महेश्वरको यज्ञसे बहिष्कृत क्यों

कर दिया? जिनके स्मरणमात्रसे यज्ञ सफल और तीर्थ पवित्र हो जाते हैं, उन्हीं महादेवजीको तुमने शाप कैसे दे दिया?॥ २१-२२॥

हे दुर्बुद्धि दक्ष! तुमने ब्राह्मणजातिकी चपलतासे प्रेरित हो इन निर्दोष महाप्रभु रुद्रदेवको व्यर्थ ही शाप दिया और इनका उपहास किया है। हे ब्राह्मणाधम! जिन्होंने इस जगत्‌की सृष्टि की है, जो इसका पालन करते हैं और अन्तमें जिनके द्वारा इसका संहार होता है, उन्हीं महेश्वर रुद्रको तूने शाप कैसे दे दिया?॥ २३-२४॥

नन्दीके इस प्रकार फटकारनेपर प्रजापति दक्ष रुष्ट हो गये और नन्दीको शाप दे दिया॥ २५॥

दक्ष बोले—हे रुद्रगणो! तुमलोग वेदसे बहिष्कृत हो जाओ, वैदिक मार्गसे भ्रष्ट हो जाओ, महर्षियोंद्वारा परित्यक्त हो जाओ, पाखण्डवादमें लग जाओ, शिष्टाचारसे दूर रहो, सिरपर जटा और शरीरमें भस्म एवं हड्डियोंके आभूषण धारण करो और मद्यपानमें आसक्त रहो॥ २६-२७॥

ब्रह्माजी बोले—जब दक्षने शिवगणोंको इस प्रकार शाप दे दिया, तब उस शापको सुनकर शिवभक्त नन्दी अत्यन्त रोषमें भर गये॥ २८॥

शिलादके पुत्र, शिवप्रिय, तेजस्वी नन्दी गर्वसे भरे हुए महादुष्ट दक्षको तत्काल इस प्रकार उत्तर देने लगे—॥ २९॥

नन्दीश्वर बोले—हे शठ! हे दुर्बुद्धि दक्ष! ब्रह्मचापल्यके कारण शिवतत्त्वको न जानते हुए तुमने शिवके पार्षदोंको व्यर्थ ही शाप दिया है॥ ३०॥

हे अहंकारी दक्ष! दूषित चित्तवाले मूढ़ भृगु आदिने भी ब्राह्मणत्वके अभिमानमें आकर महाप्रभु महेश्वरका उपहास किया है। अतः यहाँ जो भगवान् रुद्रसे विमुख तुम-जैसे खल ब्राह्मण विद्यमान हैं, उनको मैं रुद्रतेजके प्रभावसे शाप दे रहा हूँ॥ ३१-३२॥

तुम-जैसे ब्राह्मण [कर्मफलके प्रशंसक] वेदवादमें फँसकर वेदके तत्त्वज्ञानसे शून्य हो जायँ, वे ब्राह्मण सदा भोगोंमें तन्मय रहकर स्वर्गको ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ मानते हुए स्वर्गसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है—ऐसा कहते रहें तथा क्रोध, लोभ एवं मदसे युक्त, निर्लज्ज और भिक्षुक बने रहें॥ ३३-३४॥

[कितने ही] ब्राह्मण वेदमार्गको सामने रखकर शूद्रोंका यज्ञ करानेवाले और दरिद्र होंगे। वे सदा दान लेनेमें लगे रहेंगे। दूषित दान ग्रहण करनेके कारण वे सबके सब नरकगामी होंगे। हे दक्ष! उनमेंसे कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्मराक्षस होंगे॥ ३५-३६॥

यह अजन्मा प्रजापति दक्ष, जो परमेश्वर शिवको सामान्य देवता समझकर उनसे द्रोह करता है, यह दुष्ट बुद्धिवाला तत्त्वज्ञानसे विमुख हो जायगा॥ ३७॥

यह विषयसुखकी इच्छासे कामनारूपी कपटसे युक्त धर्मवाले गृहस्थाश्रममें आसक्त रहकर कर्मकाण्डका तथा कर्मफलकी प्रशंसा करनेवाले सनातन वेदवादका ही विस्तार करता रहेगा। दक्षका आनन्ददायी मुख नष्ट हो जाय, यह आत्मज्ञानको भूलकर पशुके समान हो जाय और कर्मभ्रष्ट तथा अनीतिपरायण होकर शीघ्र ही बकरेके मुखसे युक्त हो जाय। इस प्रकार कुपित हुए नन्दीने जब ब्राह्मणोंको शाप दिया और दक्षने महादेवजीको शाप दिया, तब वहाँ महान् हाहाकार मच गया॥ ३८—४०॥

[हे नारद!] दक्षका वह शाप सुनकर वेदोंके प्रतिपादक तथा शिवतत्त्वको जाननेवाले मैंने उस दक्षकी तथा भृगु आदि ब्राह्मणोंकी बारंबार निन्दा की॥ ४१॥

सदाशिव महादेवजी भी नन्दीकी वह बात सुनकर हँसते

हुए और समझाते हुए मधुर वचन कहने लगे— ॥ ४२ ॥
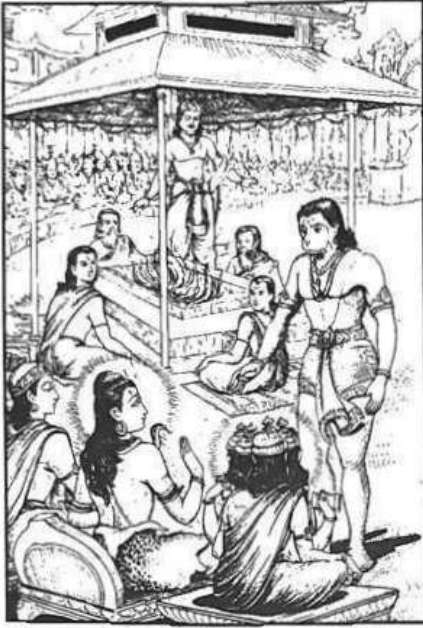
सदाशिव बोले—हे नन्दिन्! [मेरी बात] सुनो। हे महाप्राज्ञ! तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। तुमने भ्रमसे यह समझकर कि मुझे शाप दिया गया है, व्यर्थमें ही ब्राह्मणकुलको शाप दे डाला ॥ ४३ ॥

वेद मन्त्राक्षरमय और सूक्तमय हैं। [उसके प्रत्येक] सूक्तमें समस्त देहधारियोंकी आत्मा प्रतिष्ठित है। उन मन्त्रोंके ज्ञाता नित्य आत्मवेत्ता हैं, इसलिये तुम रोषवश उन्हें शाप न दो। किसी कुत्सित बुद्धिवालेको भी कभी वेदोंको शाप नहीं देना चाहिये ॥ ४४-४५ ॥

इस समय मुझे शाप नहीं मिला है, इस बातको तुम्हें ठीक-ठीक समझना चाहिये। हे महामते! तुम तो सनकादिको भी तत्त्वज्ञानका उपदेश देनेवाले हो, अतः शान्त हो जाओ। मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही यज्ञकर्म हूँ, यज्ञोंके अंग भी मैं ही हूँ, यज्ञकी आत्मा मैं ही हूँ, यज्ञपरायण यजमान मैं ही हूँ और यज्ञसे बहिष्कृत भी मैं ही हूँ ॥ ४६-४७ ॥

यज्ञ कौन है, तुम कौन हो और ये कौन हैं? वास्तवमें सब मैं ही हूँ। तुम अपनी बुद्धिसे इस बातका विचार करो। तुमने ब्राह्मणोंको व्यर्थ ही शाप दिया है। हे महामते! हे नन्दिन्! तुम तत्त्वज्ञानके द्वारा प्रपंच-रचनाको दूर करके विवेकपरायण, स्वस्थ तथा क्रोध आदिसे रहित हो जाओ ॥ ४८-४९ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार भगवान् शिवद्वारा समझाये जानेपर वे नन्दी परम ज्ञानसे युक्त और क्रोधरहित होकर शान्त हो गये। वे भगवान् शिव भी अपने प्राणप्रिय गण नन्दीको बोध प्रदान करके गणोंसहित वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये ॥ ५०-५१ ॥

इधर, रोषसे युक्त दक्ष भी चित्तमें शिवके प्रति द्रोहयुक्त होकर ब्राह्मणोंके साथ अपने स्थानको लौट गये ॥ ५२ ॥

उस समय रुद्रको शाप दिये जानेकी घटनाका स्मरण करके दक्ष सदा महान् रोषसे भरे रहते थे। मूर्ख बुद्धिवाले वे शिवके प्रति श्रद्धाको त्यागकर शिवपूजकोंकी निन्दा करने लगे। हे तात! इस प्रकार परमात्मा शम्भुके साथ [दुर्व्यवहार करके] दक्षने अपनी जिस दुष्ट बुद्धिका परिचय दिया था, वह मैंने आपको बता दिया, अब उनकी और बड़ी दुर्बुद्धिके विषयमें सुनिये, मैं बता रहा हूँ ॥ ५३-५४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीके उपाख्यानमें शिवके साथ दक्षका विरोधवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

दक्षप्रजापतिद्वारा महान् यज्ञका प्रारम्भ, यज्ञमें दक्षद्वारा शिवके न बुलाये जानेपर दधीचिद्वारा दक्षकी भर्त्सना करना, दक्षके द्वारा शिव-निन्दा करनेपर दधीचिका वहाँसे प्रस्थान

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! एक समय दक्षने एक बड़े महान् यज्ञका प्रारम्भ किया और दीक्षाप्राप्त उसने उस यज्ञमें सभी देवताओं तथा ऋषियोंको बुलाया ॥ १ ॥

शिवकी मायासे विमोहित होकर सभी महर्षि तथा देवता यज्ञको सम्पन्न करानेके लिये आये ॥ २ ॥

अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव, भृगु, दधीचि, भगवान् व्यास, भारद्वाज, गौतम, पैल, पराशर, गर्ग, भार्गव, ककुभ, सित, सुमन्तु, त्रिक, कंक और वैशम्पायन—ये सब तथा अन्य बहुत-से मुनि अपने स्त्री-पुत्रोंको साथ लेकर मेरे पुत्र दक्षके यज्ञमें हर्षपूर्वक गये ॥ ३—५ ॥

[इनके अतिरिक्त] समस्त देवगण, महान् अभ्युदयशाली लोकपालगण और सभी उपदेवता अपनी उपकारक सैन्यशक्तिके साथ वहाँ आये थे। दक्षने प्रार्थना करके पुत्र, परिवार और मूर्तिमान् वेदोंसहित मुझ विश्वस्रष्टा ब्रह्माको भी सत्यलोकसे बुलवाया था॥ ६-७॥

इसी तरह भाँति-भाँतिसे सादर प्रार्थना करके वैकुण्ठलोकसे पार्षदों और परिवारसहित भगवान् विष्णु भी उस यज्ञमें बुलाये गये थे। इसी प्रकार अन्य लोग भी विमोहित होकर दक्षके यज्ञमें आये और दुरात्मा दक्षने उन सबका बड़ा सत्कार किया। विश्वकर्माके द्वारा बनाये गये अत्यन्त दीप्तिमान्, विशाल, बहुमूल्य तथा दिव्य भवन दक्षने उन्हें [ठहरनेके लिये] दिये थे॥ ८—१०॥

उन भवनोंमें मेरे तथा विष्णुके साथ वे सभी [देव, महर्षिगण] दक्षसे यथायोग्य सम्मानित हो अपने-अपने स्थानोंपर स्थिर होकर शोभित होने लगे। उस समय कनखल नामक तीर्थमें आरम्भ हुए उस महायज्ञमें दक्षने भृगु आदि तपोधनोंको ऋत्विज बनाया॥ ११-१२॥

सम्पूर्ण मरुद्गणोंके साथ स्वयं भगवान् विष्णु [उस यज्ञके] अधिष्ठाता बने और मैं वेदत्रयीकी विधिको बतानेवाला ब्रह्मा बना था। इसी तरह सम्पूर्ण दिक्पाल अपने आयुधों और परिवारोंके साथ द्वारपाल एवं रक्षक बने थे, वे सदा कौतूहल पैदा करते थे॥ १३-१४॥

स्वयं यज्ञदेव सुन्दर रूप धारण करके उनके यज्ञमें उस समय उपस्थित थे और बड़े-बड़े श्रेष्ठ मुनिलोग स्वयं वेदोंको धारण किये हुए थे। अग्निने भी उस यज्ञमहोत्सवमें शीघ्र ही हविष्य ग्रहण करनेके लिये अपने हजारों रूप प्रकट किये थे॥ १५-१६॥

वहाँ अठासी हजार ऋत्विज एक साथ हवन करते थे। चौंसठ हजार देवर्षि उस यज्ञमें उद्गाता थे। अध्वर्यु एवं होता भी उतने ही थे। नारद आदि देवर्षि और सप्तर्षि पृथक्-पृथक् गाथा-गान कर रहे थे॥ १७-१८॥

दक्षने अपने उस महायज्ञमें गन्धर्वों, विद्याधरों, सिद्धों, सभी आदित्यों और उनके गणों, यज्ञों एवं नागलोकमें विचरण करनेवाले समस्त नागोंका भी बहुत बड़ी संख्यामें वरण किया था॥ १९॥

ब्रह्मर्षि, देवर्षि, राजर्षियोंके समुदाय और अपने मित्रों, मन्त्रियों तथा सेनाओंके साथ अनेक राजा भी वहाँ आये हुए थे। यजमान दक्षने उस यज्ञमें वसु आदि समस्त गण-देवताओंका भी वरण किया था। कौतुक और मंगलाचार करके जब दक्षने यज्ञकी दीक्षा ली तथा जब उनके लिये बारंबार स्वस्तिवाचन किया जाने लगा, तब वे अपनी पत्नीके साथ बड़ी शोभा पाने लगे॥ २०-२१॥

[इतना सब करनेपर भी] दुरात्मा दक्षने उस यज्ञमें भगवान् शम्भुको नहीं बुलाया। उनकी दृष्टिमें कपालधारी होनेके कारण वे निश्चय ही यज्ञमें भाग लेनेयोग्य नहीं थे। दोषदर्शी दक्षने कपालीकी पत्नी होनेके कारण अपनी प्रिय पुत्री सतीको भी यज्ञमें नहीं बुलाया॥ २२-२३॥

इस प्रकार दक्षके यज्ञ-महोत्सवके आरम्भ हो जानेपर यज्ञमण्डपमें आये हुए सब ऋत्विज अपने-अपने कार्यमें संलग्न हो गये। इसी बीच वहाँ भगवान् शंकरको [उपस्थित] न देखकर शिवभक्त दधीचिका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो उठा और वे कहने लगे— ॥ २४-२५॥

दधीचि बोले—हे प्रमुख देवताओ तथा महर्षियो! आप सब लोग प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनें। इस यज्ञमहोत्सवमें भगवान् शंकर क्यों नहीं आये हैं?॥ २६॥

यद्यपि ये देवेश्वर, बड़े-बड़े मुनि और लोकपाल यहाँ आये हुए हैं, तथापि उन पिनाकधारी महात्मा शंकरके बिना यह यज्ञ अधिक शोभा नहीं पा रहा है। बड़े-बड़े विद्वान् कहते हैं कि मंगलमय भगवान् शिवजीकी कृपादृष्टिसे ही समस्त मंगलकार्य सम्पन्न हो जाते हैं। जिनका ऐसा प्रभाव है, वे पुराणपुरुष, वृषभध्वज, परमेश्वर श्रीनीलकण्ठ यहाँ क्यों नहीं दिखायी दे रहे हैं? हे दक्ष! जिनके सम्पर्कमें आनेपर अथवा जिनके स्वीकार कर लेनेपर अमंगल भी मंगल हो जाते हैं तथा जिनके पन्द्रह नेत्रोंसे देखे जानेपर बड़े-से-बड़े मंगल तत्काल हो जाते हैं, उनका इस यज्ञमें पदार्पण होना अत्यन्त आवश्यक है॥ २७—२९॥

इसलिये तुम्हें स्वयं ही परमेश्वर शिवजीको यहाँ बुलाना चाहिये अथवा ब्रह्मा, प्रभावशाली भगवान् विष्णु, इन्द्र, लोकपालों, ब्राह्मणों और सिद्धोंकी सहायतासे सर्वथा प्रयत्न करके इस समय यज्ञकी पूर्तिके लिये उन

भगवान् शंकरको यहाँ ले आना चाहिये ॥ ३०-३१ ॥

आप सब लोग उस स्थानपर जायँ, जहाँ महेश्वरदेव विराजमान हैं। वहाँसे दक्षनन्दिनी सतीके साथ भगवान् शम्भुको यहाँ तुरंत ले आयें। हे देवेश्वरो! जगदम्बासहित उन परमात्मा शिवके यहाँ आ जानेसे सब कुछ पवित्र हो जायगा। जिनके स्मरणसे तथा नाम लेनेसे सारा कार्य पुण्यमय बन जाता है, अत: पूर्ण प्रयत्न करके उन भगवान् वृषभध्वजको यहाँ ले आना चाहिये ॥ ३२—३४ ॥

भगवान् शंकरके यहाँ आनेपर यह यज्ञ पवित्र हो जायगा, अन्यथा यह अपूर्ण ही रह जायगा, यह मैं सत्य कह रहा हूँ ॥ ३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] दधीचिका यह वचन सुनकर दुष्ट बुद्धिवाले मूढ़ दक्ष हँसते हुए शीघ्र ही रोषपूर्वक कहने लगे— ॥ ३६ ॥

भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके मूल हैं, जिनमें सनातनधर्म प्रतिष्ठित है। जब इन्हें मैंने सादर बुला लिया है, तब इस यज्ञकर्ममें क्या कमी हो सकती है? ॥ ३७ ॥

जिनमें वेद, यज्ञ और नाना प्रकारके कर्म प्रतिष्ठित हैं, वे भगवान् विष्णु तो यहाँ आ ही गये हैं ॥ ३८ ॥

लोकपितामह ब्रह्मा सत्यलोकसे वेदों, उपनिषदों और विविध आगमोंके साथ यहाँ आये हुए हैं ॥ ३९ ॥

देवगणोंके साथ स्वयं देवराज इन्द्र भी आये हैं तथा निष्पाप आप ऋषिगण भी यहाँ आ गये हैं। जो-जो यज्ञमें सम्मिलित होनेयोग्य शान्त, सुपात्र हैं, वेद और वेदार्थके तत्त्वको जाननेवाले और दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले हैं—वे आप सब यहाँ पदार्पण कर चुके हैं, तब हमें यहाँ रुद्रसे क्या प्रयोजन है! हे विप्र! मैंने ब्रह्माजीके कहनेसे ही अपनी कन्या रुद्रको दी थी ॥ ४०—४२ ॥

हे विप्र! हर कुलीन नहीं है, उसके माता-पिता नहीं हैं, वह भूतों-प्रेतों-पिशाचोंका स्वामी अकेला रहता है और उसका अतिक्रमण करना दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। वह आत्मप्रशंसक, मूढ़, जड़, मौनी और ईर्ष्यालु है। वह इस यज्ञकर्मके योग्य नहीं है, इसलिये मैंने उसको यहाँ नहीं बुलाया है ॥ ४३-४४ ॥

अत: [दधीचिजी!] आप ऐसा पुन: कभी न कहें, आप सभी लोग मिलकर मेरे महान् यज्ञको सफल बनायें ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी बोले—दक्षकी यह बात सुनकर दधीचि सभी देवताओं तथा मुनियोंको सुनाते हुए सारयुक्त वचन कहने लगे— ॥ ४६ ॥

दधीचि बोले—[हे दक्ष!] उन भगवान् शिवके बिना यह महान् यज्ञ भी अयज्ञ है। निश्चय ही इस यज्ञसे तुम्हारा विनाश होगा। इस प्रकार कहकर दधीचि दक्षकी यज्ञशालासे अकेले ही निकलकर अपने आश्रमको चल दिये। तदनन्तर जो मुख्य-मुख्य शिवभक्त थे तथा उनके मतका अनुसरण करनेवाले थे, वे भी दक्षको शाप देकर तुरंत वहाँसे अपने आश्रमोंको चले गये ॥ ४७—४९ ॥

मुनि दधीचि तथा दूसरे ऋषियोंके उस यज्ञमण्डपसे निकल जानेपर दुष्टबुद्धि तथा शिवद्रोही दक्ष मुसकराते हुए अन्य मुनियोंसे कहने लगे— ॥ ५० ॥

दक्ष बोले—दधीचि नामक वे शिवप्रिय ब्राह्मण चले गये और उन्हींके समान जो दूसरे थे, वे भी मेरे यज्ञसे चले गये। यह तो बड़ा अच्छा हुआ। मुझे सदा यही अभीष्ट है। हे देवेश! हे देवताओ और हे मुनियो! मैं सत्य कह रहा हूँ ॥ ५१-५२ ॥

जो नष्टबुद्धिवाले, मूर्ख, मिथ्या-भाषणमें रत, खल, वेदबहिष्कृत और दुराचारी हैं, उन लोगोंको यज्ञकर्ममें त्याग देना चाहिये। आप सभी लोग वेदवादमें परायण रहनेवाले हैं। अत: विष्णु आदि सब देवता और ब्राह्मण मेरे इस यज्ञको शीघ्र सफल बनायें ॥ ५३-५४ ॥

ब्रह्माजी बोले—उसकी यह बात सुनकर शिवकी मायासे मोहित हुए समस्त देवता तथा ऋषि उस यज्ञमें देवताओंका पूजन करने लगे ॥ ५५ ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने उस यज्ञको दधीचिद्वारा प्रदत्त शापका वर्णन कर दिया। अब यज्ञके विध्वंसकी घटना भी बता रहा हूँ, आदरपूर्वक सुनिये ॥ ५६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें यज्ञका प्रारम्भ नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

दक्षयज्ञका समाचार पाकर एवं शिवकी आज्ञा प्राप्तकर देवी सतीका शिवगणोंके साथ पिताके यज्ञमण्डपके लिये प्रस्थान

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब देवता तथा ऋषिगण बड़े उत्साहके साथ दक्षके यज्ञमें जा रहे थे, उसी समय दक्षकन्या देवी सती गन्धमादन पर्वतपर चँदोवेसे युक्त धारागृहमें सखियोंसे घिरी हुई अनेक प्रकारकी क्रीडाएँ कर रही थीं॥ १-२॥

प्रसन्नतापूर्वक क्रीडामें लगी हुई देवी सतीने उस समय चन्द्रमाके साथ दक्षयज्ञमें जाती हुई रोहिणीको देखा और शीघ्र ही उससे पुछवाया। उन्हें देखकर सतीजी अपनी हितकारिणी प्राण-प्यारी सौभाग्यशालिनी प्रिय तथा श्रेष्ठ सखी विजयासे बोलीं—॥ ३-४॥

सती बोलीं—हे सखियोंमें श्रेष्ठ! हे मेरी प्राणप्रिये! हे विजये! जल्दी जाकर पूछो कि ये चन्द्रदेव रोहिणीके साथ कहाँ जा रहे हैं?॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—सतीके इस प्रकार कहनेपर विजयाने तुरंत उनके पास जाकर यथोचित रूपसे उन चन्द्रमासे पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं?॥ ६॥

विजयाकी बात सुनकर चन्द्रदेवने अपनी यात्राका उद्देश्य आदरपूर्वक बताया और उन्होंने दक्षके यहाँ होनेवाले यज्ञमहोत्सवका सारा वृत्तान्त कहा॥ ७॥

वह सब सुनकर विजया बड़ी उतावलीके साथ देवीजीके पास आयी और चन्द्रमाने जो कहा था, वह सब सतीसे कह दिया। उसे सुनकर सती कालिका देवीको बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने-विचारनेपर भी [अपने यहाँ सूचना न मिलनेका] कारण न समझ पानेपर वे मनमें सोचने लगीं॥ ८-९॥

दक्ष मेरे पिता हैं, वीरिणी मेरी माता हैं और मैं उनकी प्रिय कन्या हूँ, परंतु उन्होंने यज्ञमें मुझे नहीं बुलाया। वे कैसे भूल गये और निमन्त्रण क्यों नहीं भेजा? मैं इसका कारण आदरपूर्वक शंकरजीसे पूछूँ—ऐसा विचारकर सतीने शंकरजीके पास जानेका निश्चय किया॥ १०-११॥

इसके अनन्तर दक्षपुत्री देवी सती अपनी प्रिय सखी विजयाको वहीं बैठाकर शिवजीके पास शीघ्र गयीं। उन्होंने शिवजीको सभाके मध्यमें अनेक गणों, नन्दी आदि महावीरों तथा प्रमुख यूथपतियोंके साथ बैठे हुए देखा। वे अपने पति सदाशिव ईशानको देखकर उस कारणको पूछनेके लिये शीघ्र उनके पास पहुँच गयीं॥ १२—१४॥

शिवजीने बड़े प्रेमसे प्रिया सतीको अपनी गोदमें बैठाया और बड़े आदरके साथ उन्हें अपने वचनोंसे प्रसन्न किया। इसके बाद महालीला करनेवाले तथा सज्जनोंको सुख देनेवाले सर्वेश्वर शंकर जो गणोंके मध्यमें विराजमान थे, सतीसे शीघ्र कहने लगे—॥ १५-१६॥

शिवजी बोले—तुम इस सभाके मध्यमें आश्चर्य-चकित होकर क्यों आयी हो? हे सुन्दर कटिप्रदेशवाली! तुम इसका कारण प्रेमपूर्वक शीघ्र बताओ॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! शिवजीने जब सतीसे इस प्रकार कहा, तो वे शिवा हाथ जोड़कर प्रणाम करके प्रभुसे कहने लगीं—॥ १८॥

सती बोलीं—[हे प्रभो!] मैंने सुना है कि मेरे पिताजीके यहाँ कोई बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा है। उसमें महान् उत्सव होगा और वहाँ देवता तथा ऋषि एकत्रित हुए हैं। हे देवदेवेश्वर! पिताजीके उस महान् यज्ञमें जाना आपको अच्छा क्यों नहीं लगा, हे प्रभो [जो भी कारण हो] वह सब बताइये॥ १९-२०॥

महादेव! सुहृदोंका यह धर्म है कि सुहृदोंके साथ अच्छी संगति करके रहें। मित्रलोग प्रेमको बढ़ानेवाली इस प्रकारकी संगतिको करते रहते हैं॥ २१॥

इसलिये हे प्रभो! हे स्वामिन्! आप मेरी प्रार्थनासे मेरे साथ पिताजीके यज्ञमण्डपमें अवश्य चलिये॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—सतीके इस वचनको सुनकर दक्षके वाग्बाणोंसे बिंधे हुए हृदयवाले देव महेश्वर मधुर वचन कहने लगे—॥ २३॥

महेश्वर बोले—हे देवि! तुम्हारे पिता दक्ष मेरे विशेष द्रोही हो गये हैं। जो प्रमुख देवता, ऋषि तथा

अन्य लोग अभिमानी, मूढ़ और ज्ञानशून्य हैं, वे ही तुम्हारे पिताके यज्ञमें गये हुए हैं॥ २४-२५॥

हे देवि! जो लोग बिना बुलाये दूसरेके घर जाते हैं, वे वहाँ अनादर ही पाते हैं, जो मृत्युसे भी बढ़कर होता है। चाहे वह इन्द्र ही क्यों न हो, बिना बुलाये दूसरेके घर जानेपर लघुता ही प्राप्त होगी और फिर दूसरेकी बात ही क्या! ऐसी यात्रा अनर्थका कारण बन जाती है॥ २६-२७॥

इसलिये तुमको और मुझको तो विशेष रूपसे दक्षके यज्ञमें नहीं जाना चाहिये; हे प्रिये! यह मैंने सत्य कहा है। मनुष्य अपने शत्रुओंके बाणसे घायल होकर उतना व्यथित नहीं होता, जितना अपने सम्बन्धियोंके निन्दायुक्त वचनोंसे दुखी होता है॥ २८-२९॥

हे प्रिये! सज्जनोंमें रहनेवाले विद्या आदि छः गुण जब दुष्ट मनुष्योंमें आ जाते हैं, तो उनकी स्मृति नष्ट हो जाती है और वे मानी होकर तेजस्वियोंकी ओर नहीं देखते हैं॥ ३०॥

ब्रह्माजी बोले—महात्मा महेश्वरके इस प्रकार कहनेपर सती वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् शंकरसे रोषपूर्वक कहने लगीं—॥ ३१॥

सती बोलीं—हे शम्भो! हे अखिलेश्वर! जिनके जानेसे यज्ञ सफल होता है, उन्हीं आपको मेरे दुष्ट पिताने आमन्त्रित नहीं किया है॥ ३२॥

हे भव! उस दुरात्मा दक्षके तथा वहाँ आये हुए सम्पूर्ण दुरात्मा देवताओं तथा ऋषियोंके मनोभावोंको मैं जानना चाहती हूँ। अतः हे प्रभो! मैं आज ही अपने पिताके यज्ञमें जा रही हूँ। हे नाथ! हे महेश्वर! आप मुझे वहाँ जानेकी आज्ञा प्रदान कीजिये॥ ३३-३४॥

ब्रह्माजी बोले—उन देवीके इस प्रकार कहनेपर सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सृष्टिकर्ता एवं कल्याणस्वरूप साक्षात् भगवान् रुद्र सतीसे कहने लगे—॥ ३५॥

शिवजी बोले—हे देवि! यदि इस प्रकार तुम्हारी रुचि वहाँ अवश्य जानेकी है, तो हे सुव्रते! मेरी आज्ञासे तुम महाराजाओंके योग्य उपचार करके, बहुतसे गुणोंसे सम्पन्न हो, इस सजे हुए नन्दी वृषभपर सवार होकर शीघ्र अपने पिताके यज्ञमें जाओ॥ ३६-३७॥

तुम इस विभूषित वृषभपर आरूढ़ होओ। तब रुद्रके इस प्रकार आदेश देनेपर सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत तथा सब साधनोंसे युक्त हो देवी सती पिताके घरकी ओर चलीं॥ ३८॥
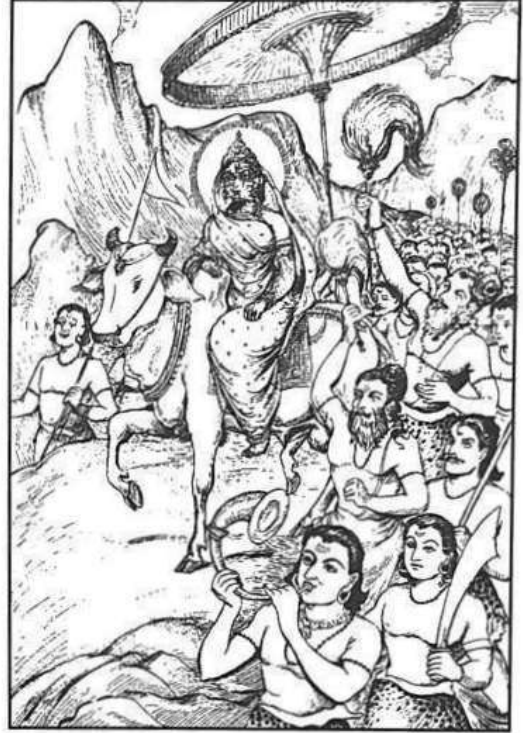
परमात्मा शिवजीने उन्हें सुन्दर वस्त्र, आभूषण, परम उज्ज्वल छत्र, चामर आदि महाराजोचित उपचार दिये। भगवान् शिवजीकी आज्ञासे साठ हजार रुद्रगण भी बड़ी प्रसन्नता और महान् उत्साहके साथ कौतूहलपूर्वक [सतीके साथ] गये॥ ३९-४०॥

उस समय वहाँ यज्ञमें सभी ओर महान् उत्सव हो रहा था। वामदेवके गणोंने शिवप्रिया सतीका भी उत्सव मनाया। महावीर तथा शिवप्रिय वे गण कौतूहलपूर्ण कार्य करने तथा सती और शिवके यशको गाने लगे और बलपूर्वक उछल-कूद करने लगे॥ ४१-४२॥

जगदम्बाके यात्राकालमें सब प्रकारसे महान् शोभा हो रही थी। उस समय जो सुखद [जय-जयकार आदि] शब्द उत्पन्न हुआ, उससे तीनों लोक गूँज उठे॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीयात्रावर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

यज्ञशालामें शिवका भाग न देखकर तथा दक्षद्वारा शिवनिन्दा सुनकर क्रुद्ध हो सतीका दक्ष तथा देवताओंको फटकारना और प्राणत्यागका निश्चय

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] दक्षकन्या सती उस स्थानपर गयीं, जहाँ देवता, असुर और मुनीन्द्र आदिके कौतूहलपूर्ण कार्यसे युक्त महान् यज्ञ हो रहा था॥ १॥

सतीने वहाँ अपने पिताके भवनको देखा, जो नाना प्रकारके आश्चर्यजनक भावोंसे युक्त, कान्तिमान्, मनोहर तथा देवताओं और ऋषियोंके समुदायसे भरा हुआ था॥ २॥

देवी सती भवनके द्वारपर जाकर खड़ी हुईं और अपने वाहन नन्दीसे उतरकर अकेली ही शीघ्रतापूर्वक यज्ञस्थलके भीतर गयीं॥ ३॥

सतीको आया देख उनकी यशस्विनी माता असिक्नी (वीरिणी) और बहनोंने उनका यथोचित सत्कार किया॥ ४॥

परंतु दक्षने उन्हें देखकर भी कुछ आदर नहीं किया तथा उनके भयसे शिवकी मायासे मोहित हुए अन्य लोगोंने भी उनका आदर नहीं किया॥ ५॥

हे मुने! सब लोगोंके द्वारा तिरस्कार प्राप्त होनेपर भी सती देवीने अत्यन्त विस्मित हो माता-पिताको प्रणाम किया॥ ६॥

उस यज्ञमें सतीने भगवान् विष्णु आदि देवताओंके भागको देखा, परंतु शिवजीका भाग कहीं भी दिखायी नहीं दिया, तब उन्होंने असह्य क्रोध प्रकट किया। अपमानित होकर भी रोषसे भरकर सब लोगोंकी ओर क्रूर दृष्टिसे देखकर दक्षको भस्म करती हुई-सी वे कहने लगीं॥ ७-८॥

सती बोलीं—आपने परम मंगलकारी शिवको [इस यज्ञमें] क्यों नहीं बुलाया, जिनके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् पवित्र होता है। जो यज्ञस्वरूप, यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, यज्ञके अंग, यज्ञकी दक्षिणा और यज्ञकर्ता हैं, उन शिवके बिना यह यज्ञ कैसे पूर्ण हो सकता है?॥ ९-१०॥

अहो! जिनके स्मरणमात्रसे सब कुछ पवित्र हो जाता है, उनके बिना किया हुआ यह सारा यज्ञ अपवित्र हो जायगा॥ ११॥

द्रव्य, मन्त्र आदि, हव्य और कव्य—ये सब जिनके स्वरूप हैं, उन शिवके बिना यज्ञका आरम्भ कैसे किया गया?॥ १२॥

क्या आपने शिवजीको सामान्य देवता समझकर उनका अनादर किया है? हे अधम पिता! अवश्य ही आपकी बुद्धि आज भ्रष्ट हो गयी है॥ १३॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता महेश्वरकी सेवा करके अपनी पदवीपर अधिष्ठित हैं। निश्चय ही आप अभीतक उन शिवको नहीं जानते हैं॥ १४॥

ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा मुनि अपने प्रभु भगवान् शिवके बिना इस यज्ञमें कैसे चले आये?॥ १५॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर शिवस्वरूपिणी परमेश्वरी विष्णु आदि सब देवताओंको अलग-अलग फटकारती हुई कहने लगीं—॥ १६॥

सती बोलीं—हे विष्णो! श्रुतियाँ जिन्हें सगुण एवं निर्गुणरूपसे प्रतिपादित करती हैं, क्या आप उन शिवजीको यथार्थ रूपसे नहीं जानते हैं?॥ १७॥

[हे विष्णो!] यद्यपि पूर्वकालमें शिवजीने शाल्वादि रूपोंके द्वारा आपके सिरपर हाथ रखकर कई बार शिक्षा दी है, फिर भी हे दुर्बुद्धे! आपके हृदयमें ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ और आपने अपने स्वामी शंकरके बिना ही इस यज्ञमें भाग ग्रहण कर लिया!॥ १८-१९॥

[हे ब्रह्मन्!] आप पूर्वकालमें जब पाँच मुखवाले होकर सदाशिवके प्रति गर्वित हो गये थे, तब उन्होंने आपको चार मुखवाला कर दिया था, आप उन्हें भूल गये—यह तो आश्चर्य है!॥ २०॥

हे इन्द्र! क्या आप शंकरके पराक्रमको नहीं जानते? कठिन कर्म करनेवाले शिवजीने ही आपके वज्रको भस्म कर दिया था॥ २१॥

हे देवताओ! क्या आपलोग महादेवका पराक्रम नहीं जानते। हे अत्रे! हे वसिष्ठ! हे मुनियो! आपलोगोंने

यह क्या कर डाला?॥ २२॥

जब शिवजी दारुवनमें भिक्षाटन कर रहे थे और आप सभी मुनियोंने उन भिक्षुक रुद्रको शाप दे दिया था, तब शापित होकर उन्होंने जो किया था, उसे आपलोग कैसे भूल गये? उनके लिंगसे चराचरसहित समस्त भुवन दग्ध होने लगा था॥ २३-२४॥

[ऐसा लग रहा है कि] ब्रह्मा, विष्णु आदि समस्त देवता तथा अन्य मुनिगण मूर्ख हो गये हैं, जो कि भगवान् शिवके बिना ही इस यज्ञमें आ गये॥ २५॥

अंगोंसहित सभी वेद, शास्त्र एवं वाणी जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन वेदान्तवेद्य भगवान् शंकरको जाननेमें कोई पार नहीं पा सकता है॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—[नारद!] इस प्रकार क्रोधसे भरी हुई जगदम्बा सतीने वहाँ व्यथितहृदयसे अनेक प्रकारकी बातें कहीं॥ २७॥

श्रीविष्णु आदि समस्त देवता और मुनि जो वहाँ उपस्थित थे, उनकी बात सुनकर चुप रह गये और भयसे व्याकुलचित्त हो गये॥ २८॥

तब दक्ष अपनी पुत्रीके उस प्रकारके वचनको सुनकर उन सतीको क्रूर दृष्टिसे देखकर क्रोधित होकर कहने लगे—॥ २९॥

दक्ष बोले—हे भद्रे! तुम्हारे बहुत कहनेसे क्या लाभ! इस समय यहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं है। तुम चली जाओ या ठहरो, तुम यहाँ किसलिये आयी हो?॥ ३०॥

सभी विद्वान् जानते हैं कि तुम्हारे पति शिव मंगलरहित, अकुलीन तथा वेदसे बहिष्कृत हैं और भूतों-प्रेतोंके स्वामी हैं। इसलिये हे पुत्रि! मुझ बुद्धिमान्ने ऐसा जानकर कुवेषधारी शिवको देवताओं और ऋषियोंकी इस सभामें नहीं बुलाया॥ ३१-३२॥

मुझ पापी दुर्बुद्धिने ब्रह्माजीके द्वारा प्रेरित किये जानेपर शास्त्रके अर्थको न जाननेवाले, उद्दण्ड तथा दुरात्मा रुद्रको तुम्हें प्रदान कर दिया था॥ ३३॥

इसलिये हे शुचिस्मिते! तुम क्रोध छोड़कर शान्त हो जाओ और यदि इस यज्ञमें तुम आ ही गयी हो तो अपना भाग ग्रहण करो॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—दक्षके इस प्रकार कहनेपर त्रिभुवनपूजिता दक्षपुत्री सती निन्दायुक्त अपने पिताकी ओर देखकर अत्यन्त क्रोधित हो गयीं॥ ३५॥

वे सोचने लगीं कि अब मैं शंकरजीके पास कैसे जाऊँ? मैं तो शंकरको देखना चाहती हूँ, किंतु उनके पूछनेपर मैं क्या उत्तर दूँगी?॥ ३६॥

तदनन्तर तीनों लोकोंकी जननी वे सती क्रोधसे युक्त हो लम्बी श्वास लेती हुई दूषित मनवाले अपने पितासे कहने लगीं—॥ ३७॥

सती बोलीं—जो महादेवजीकी निन्दा करता है अथवा जो उनकी हो रही निन्दाको सुनता है, वे दोनों तबतक नरकमें पड़े रहते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं॥ ३८॥

अत: हे तात! मैं अग्निमें प्रवेश करूँगी और [अपने] शरीरको त्याग दूँगी, अपने स्वामीका अनादर सुनकर अब मुझे जीवनसे क्या प्रयोजन?॥ ३९॥

[शिवनिन्दा सुननेवाला व्यक्ति] यदि समर्थ हो तो वह स्वयं विशेष यत्न करके शम्भुकी निन्दा करनेवालेकी जीभको बलपूर्वक काट डाले, तभी वह [शिवनिन्दा-श्रवणके पापसे] शुद्ध हो सकता है, इसमें संशय नहीं है। यदि मनुष्य [कुछ प्रतिकार कर सकनेमें] असमर्थ हो, तो बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह दोनों कान बंद करके वहाँसे चला जाय, तब वह पापसे शुद्ध हो सकता है—ऐसा श्रेष्ठ विद्वान् कहते हैं॥ ४०-४१॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार धर्मनीति कहकर वे सती पश्चात्ताप करने लगीं और उन्होंने व्यथितचित्तसे भगवान् शंकरके वचनका स्मरण किया॥ ४२॥

तदनन्तर सतीने अत्यन्त कुपित हो दक्ष तथा उन विष्णु आदि समस्त देवताओं और मुनियोंसे भी निडर होकर कहा—॥ ४३॥

सती बोलीं—हे तात! आप शंकरके निन्दक हैं, अत: आपको पश्चात्ताप करना पड़ेगा, इस लोकमें महान् दु:ख भोगकर अन्तमें आपको यातना भोगनी पड़ेगी॥ ४४॥

इस लोकमें जिन परमात्माका न कोई प्रिय है, न अप्रिय है, उन द्वेषरहित शिवके साथ आपके अतिरिक्त दूसरा कौन वैर कर सकता है?॥ ४५॥

जो दुष्ट लोग हैं, वे सदा ईर्ष्यापूर्वक यदि महापुरुषोंकी निन्दा करें तो उनके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, परंतु जो महात्माओंके चरणोंकी रजसे अपने अज्ञानान्धकारको दूर कर चुके हैं, उन्हें महापुरुषोंकी निन्दा शोभा नहीं देती॥ ४६ ॥

जिनका 'शिव' यह दो अक्षरोंका नाम कभी बातचीतके प्रसंगसे मनुष्योंकी वाणीद्वारा एक बार उच्चरित हो जाय, तो वह सम्पूर्ण पापराशिको शीघ्र ही नष्ट कर देता है, अहो, खलस्वरूप आप शिवसे विपरीत होकर उन पवित्र कीर्तिवाले, निर्मल, अलंघ्य शासनवाले सर्वेश्वर शिवसे विद्वेष करते हैं॥ ४७-४८ ॥

महापुरुषोंके मनरूपी मधुकर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके सर्वार्थदायक चरणकमलोंका निरन्तर सेवन किया करते हैं और जो शिव संसारके लोगोंपर शीघ्र ही आदरपूर्वक मनोरथोंकी वर्षा करते हैं, सबके बन्धु उन्हीं महादेवसे आप मूर्खतावश द्रोह करते हैं॥ ४९-५० ॥

जिन शिवको आप अशिव बताते हैं, उन्हें क्या आपके सिवा दूसरे विद्वान् नहीं जानते। ब्रह्मा आदि देवता, सनक आदि मुनि तथा अन्य ज्ञानी क्या उनके स्वरूपको नहीं समझते॥ ५१ ॥

उदारबुद्धि भगवान् शिव जटा फैलाये, कपाल धारण किये श्मशानमें भूतोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं तथा भस्म एवं नरमुण्डोंकी माला धारण करते हैं॥ ५२ ॥

इस बातको जानकर भी जो मुनि और देवता उनके चरणोंसे गिरे निर्माल्यको बड़े आदरके साथ अपने मस्तकपर चढ़ाते हैं, इसका क्या कारण है? यही कि वे भगवान् शिव ही साक्षात् परमेश्वर हैं॥ ५३ ॥

वेदोंमें प्रवृत्त तथा निवृत्त—ये दो प्रकारके कर्म बताये गये हैं, जिनका विद्वानोंको विवेकपूर्वक विचार करना चाहिये। ये दोनों ही कर्म परस्पर विरुद्ध गतिवाले हैं, अतः एक कर्ताके द्वारा इनका साथ-साथ अनुष्ठान नहीं किया जा सकता। भगवान् शिव तो साक्षात् परब्रह्म हैं, अतः उनमें इन दोनों ही कर्मोंकी गति नहीं है। (अतः वे इन दोनों ही कर्मोंसे परतन्त्र नहीं हैं)॥ ५४-५५ ॥

हे पितः! जो योगैश्वर्य अर्थात् अणिमा आदि सिद्धियाँ हमें सर्वदा प्राप्त हैं, वे आपको प्राप्त नहीं हैं। आपकी यज्ञशालाओंमें आयोजित होनेवाले तथा धूममार्गको प्रदान करनेवाले प्रवृत्तिमार्गीय कर्मोंका हम त्याग कर चुके हैं। हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है तथा ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके द्वारा निरन्तर सेवित है। हे तात! आप विपरीत बुद्धिवाले हैं, अतः आपको अभिमान नहीं करना चाहिये॥ ५६-५७ ॥

अधिक कहनेसे क्या लाभ? आप दुष्टहृदय हैं और आपकी बुद्धि सर्वथा दूषित हो चुकी है, अतः आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरसे भी मेरा कुछ भी प्रयोजन नहीं रहा, उस दुष्ट व्यक्तिके जन्मको धिक्कार है, जो महापुरुषोंके प्रति अपराध करनेवाला है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ऐसे सम्बन्धका विशेष रूपसे त्याग कर दे॥ ५८-५९ ॥

जिस समय भगवान् शिव आपके गोत्रका उच्चारण करते हुए मुझे दाक्षायणी कहेंगे, उस समय मेरा मन सहसा अत्यन्त दुखी हो जायगा॥ ६० ॥

इसलिये आपके अंगसे उत्पन्न हुए शवतुल्य घृणित इस शरीरको इस समय मैं अवश्य ही त्याग दूँगी और ऐसा करके सुखी हो जाऊँगी॥ ६१ ॥

हे देवताओ और मुनियो! आप सब लोग मेरी बात सुनें, दूषित मनवाले आपलोगोंका यह कर्म सर्वथा अनुचित है। आप सब लोग मूढ़ हैं; क्योंकि शिवजीकी निन्दा और कलह आपलोगोंको प्रिय है। अतः भगवान् हरसे सभीको इस कुकर्मका निश्चय ही पूरा-पूरा दण्ड मिलेगा॥ ६२-६३ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उस यज्ञमें दक्षसे तथा देवताओंसे ऐसा कहकर सती देवी चुप हो गयीं और मन-ही-मन अपने प्राणवल्लभ शम्भुका स्मरण करने लगीं॥ ६४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीका वाक्य-वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

दक्षयज्ञमें सतीका योगाग्निसे अपने शरीरको भस्म कर देना, भृगुद्वारा यज्ञकुण्डसे ऋभुओंको प्रकट करना, ऋभुओं और शंकरके गणोंका युद्ध, भयभीत गणोंका पलायित होना

नारदजी बोले—हे विधे! जब [दक्षको सम्बोधितकर] शिवप्रिया सतीने मौन धारण कर लिया, तब वहाँ क्या चरित्र हुआ, मुझसे उसे आदरपूर्वक कहिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! मौन होकर सतीदेवी अपने पतिका सादर स्मरण करके और शान्तचित्त होकर सहसा उत्तर दिशामें भूमिपर बैठ गयीं॥ २॥

उन्होंने विधिपूर्वक जलका आचमन करके वस्त्र ओढ़ लिया और पवित्रभावसे आँखें मूँदकर पतिका चिन्तन करके वे योगमार्गमें प्रविष्ट हो गयीं॥ ३॥

गौर मुखवाली शंकरकी प्राणप्रिया सती [प्राणायामद्वारा] प्राण और अपान वायुको समान करके उदान वायुको यत्नपूर्वक नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर बुद्धिपूर्वक हृदयमें स्थापित करनेके पश्चात् उस हृदयस्थित वायुको कण्ठमार्गसे भ्रुकुटियोंके बीचमें ले गयीं॥ ४-५॥

इस प्रकार दक्षपर कुपित हो सहसा अपने शरीरको त्यागनेकी इच्छासे सतीने योगमार्गसे शरीरके दग्ध हो जानेपर पवित्र वायुमय रूप धारण किया। तदनन्तर अपने पतिके चरणका चिन्तन करती हुई सतीने अन्य सब वस्तुओंका ध्यान भुला दिया। उनका चित्त योगमार्गमें स्थित हो गया था, इसलिये वहाँ उन्हें [पतिके चरणोंके अतिरिक्त] और कुछ दिखायी नहीं दिया॥ ६-७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उनका निष्पाप शरीर [यज्ञाग्निमें] गिरा और उनकी इच्छाके अनुसार अग्निसे जलकर उसी क्षण भस्म हो गया॥ ८॥

उस समय [वहाँ आये हुए] देवता आदिने जब यह घटना देखी, तब वे बड़े जोरसे हाहाकार करने लगे। उनका वह अद्भुत, विचित्र एवं भयंकर हाहाकार आकाशमें और पृथिवीतलपर सर्वत्र व्याप्त हो गया॥ ९॥

[लोग कह रहे थे] हाय! भगवान् शंकरकी परम-प्रेयसी तथा देवतास्वरूपिणी सतीदेवीने किस दुष्टके दुर्व्यवहारसे कुपित होकर अपने प्राण त्याग दिये!॥ १०॥

अहो! चराचर जिनकी प्रजा है और जो ब्रह्माजीके पुत्र हैं, ऐसे इन दक्षकी बड़ी भारी दुष्टता तो देखो!॥ ११॥

अहो, शिवप्रिया मनस्विनी सतीदेवी, जो सदा ही सज्जनोंके लिये मानयोग्य थीं, आज इतनी दुःखित हो गयीं॥ १२॥

वास्तवमें उन दक्षका हृदय बड़ा ही असहिष्णु है। वे ब्राह्मणद्रोही हैं, इसलिये सारे संसारमें उन्हें महान् अपयश प्राप्त होगा॥ १३॥

इन शम्भुद्रोही दक्षने प्राणत्याग करनेको उद्यत अपनी पुत्रीको रोकातक नहीं। इस अपराधके कारण इन्हें महान् नरक भोगना पड़ेगा॥ १४॥

सतीके प्राणत्यागको देखकर जिस समय लोग ऐसा कह रहे थे, उसी समय शिवजीके पार्षद शीघ्र ही क्रोधपूर्वक अस्त्र-शस्त्र लेकर उठ खड़े हुए॥ १५॥

[यज्ञमण्डपके] द्वारपर खड़े हुए वे भगवान् शंकरके समस्त साठ हजार महाबली पार्षद शंकरजीके प्रभावसे कुपित हो उठे थे॥ १६॥

हमें धिक्कार है, धिक्कार है—ऐसा कहते हुए शंकरके सभी वीर गणाधिप बारम्बार उच्च स्वरसे हाहाकार करने लगे॥ १७॥

शिवगणोंके महान् हाहाकारसे सभी दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। सभी देवता, मुनिगण तथा जो भी अन्य लोग वहाँ उपस्थित थे, वे भयभीत हो गये॥ १८॥

क्रुद्ध हुए उन समस्त रुद्रगणोंने आपसमें विचार-विमर्श करके वाद्योंसे प्रलय मचाते हुए [लड़नेके लिये] शस्त्रास्त्र उठा लिये॥ १९॥

हे देवर्षे! कितने ही पार्षद तो वहाँ शोकसे ऐसे व्याकुल हो गये कि वे अत्यन्त तीखे प्राणनाशक शस्त्रोंद्वारा अपने ही मस्तक और मुख आदि अंगोंपर आघात करने लगे॥ २०॥

इस प्रकार बीस हजार पार्षद उस समय दक्षकन्या सतीके साथ ही नष्ट हो गये, वह एक अद्भुत-सी

बात हुई॥ २१॥

महात्मा शंकरके जो गण नष्ट होनेसे बच गये, वे क्रोधयुक्त होकर दक्षको मारनेके लिये हथियार उठाकर खड़े हो गये॥ २२॥

हे मुने! आक्रमणकारी उन पार्षदोंका वेग देखकर भगवान् भृगुने यज्ञमें विघ्न डालनेवालोंका नाश करनेवाले **[अपहता असुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः]** इस यजुर्मन्त्रसे दक्षिणाग्निमें आहुति दी॥ २३॥

भृगुके आहुति देते ही यज्ञकुण्डसे ऋभु नामक

हजारों महान् देवता, जो बड़े प्रबल वीर थे, वहाँ प्रकट हो गये॥ २४॥

हे मुनीश्वर! हाथमें जलती हुई लकड़ियोंको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले उन सभीके साथ प्रमथगणोंका अत्यन्त विकट युद्ध हुआ, जो सुननेवालोंके भी रोंगटे खड़े कर देनेवाला था॥ २५॥

उन ब्रह्मतेजसे सम्पन्न महावीर ऋभुओंके द्वारा सभी ओरसे मारे जाते हुए प्रमथगण बिना अधिक प्रयासके ही भाग खड़े हुए। इस प्रकार उन देवताओंने उन शिवगणोंको तुरंत मार भगाया। यह अद्भुत-सी घटना भगवान् शिवकी इच्छारूपी महाशक्तिसे ही हुई थी॥ २६-२७॥

उसे देखकर ऋषि, इन्द्र आदि देवता, मरुद्गण, विश्वेदेव, दोनों अश्विनीकुमार और लोकपाल चुप ही रहे॥ २८॥

कुछ लोग सब ओरसे वहाँ भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करते थे और उद्विग्न हो बारम्बार विघ्ननिवारणके लिये आपसमें मन्त्रणा करने लगे॥ २९॥

प्रमथगणोंके नाश होने और भगाये जानेसे जो परिणाम होनेवाला था, उसका भलीभाँति विचार करके उत्तम बुद्धिवाले विष्णु आदि देवता अत्यन्त उद्विग्न हो उठे॥ ३०॥

हे मुने! दुरात्मा, शंकरद्रोही तथा ब्रह्मबन्धु (पतित ब्राह्मण) दक्षके यज्ञमें उस समय इस प्रकारका विघ्न उपस्थित हो गया॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सतीके उपाख्यानमें सतीका देहत्याग और उपद्रववर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

यज्ञमण्डपमें आकाशवाणीद्वारा दक्षको फटकारना तथा देवताओंको सावधान करना

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! इसी बीच वहाँ दक्ष तथा देवता आदिको सुनाते हुए आकाशवाणीने यथार्थ बात कही॥ १॥

आकाशवाणी बोली—हे दुराचारी तथा दम्भवृत्तिमें तत्पर दक्ष! हे महामूढ़! तुमने यह कैसा अनर्थकारी कर्म कर डाला!॥ २॥

हे मूढ़! तुमने शिवभक्तराज दधीचिके कथनको भी प्रमाण नहीं माना, जो तुम्हारे लिये सब प्रकारसे आनन्ददायक और मंगलकारी था॥ ३॥

वे ब्राह्मण तुमको दुस्सह शाप देकर चले गये, तब भी तुम मूढ़ने अपने मनमें कुछ भी नहीं समझा॥ ४॥

इसके अनन्तर तुमने अपने घरमें स्वतः आयी हुई अपनी मंगलमयी पुत्री सतीका विशेष आदर क्यों नहीं किया?॥ ५॥

हे ज्ञानदुर्बल! तुमने सती और महादेवजीकी पूजा नहीं की, यह तुमने क्या किया? मैं ब्रह्माजीका पुत्र हूँ—ऐसा समझकर विमोहमें पड़कर तुम व्यर्थ ही घमण्डमें भरे हुए हो॥ ६॥

वे सती सदा आराधना करनेके योग्य, समस्त पुण्योंका फल देनेवाली, तीनों लोकोंकी माता, कल्याण-स्वरूपा और शंकरके आधे अंगमें निवास करनेवाली हैं। वे माहेश्वरी सती देवी पूजित होनेपर सदा सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाली और अपने भक्तोंको सब प्रकारके मंगल देनेवाली हैं। वे सती देवी ही पूजित होनेपर सदा संसारका भय दूर करनेवाली, मनोवांछित फल देनेवाली हैं और समस्त उपद्रवोंको नष्ट करनेवाली हैं॥ ७—९॥

वे परमा परमेश्वरी सती ही पूजित होनेपर सदा कीर्ति, भोग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। वे सती ही इस जगत्‌को जन्म देनेवाली माता, जगत्‌की रक्षा करनेवाली, अनादि शक्ति और कल्पके अन्तमें जगत्‌का संहार करनेवाली हैं॥ १०-११॥

वे सती ही जगत्‌की माता, भगवान् विष्णुकी माता, विलासिनी तथा ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र, अग्नि एवं सूर्य आदिकी जननी मानी गयी हैं। वे सती ही तपस्या, धर्म तथा दान आदिका फल देनेवाली, शम्भुशक्ति, महादेवी, दुष्टोंका हनन करनेवाली और परात्पर शक्ति हैं॥ १२-१३॥

ऐसी सती देवी जिनकी सदा प्रिय भार्या हैं, उन शिवको दुष्ट विचारवाले मूढ़ तुमने यज्ञ-भाग नहीं दिया। भगवान् शिव ही परमेश्वर, सबके स्वामी, परात्पर, ब्रह्मा-विष्णु आदिके द्वारा सम्यक् सेव्य हैं और सबका कल्याण करनेवाले हैं॥ १४-१५॥

इन्हींके दर्शनकी इच्छावाले सिद्ध पुरुष तपस्या करते हैं और इन्हींके दर्शनकी इच्छावाले योगीजन योगसाधनामें प्रवृत्त होते हैं। अनन्त धनधान्य और यज्ञ आदिका सबसे महान् फल शंकरका दर्शन ही कहा गया है॥ १६-१७॥

शिवजी ही जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले, समस्त विद्याओंके पति, सब कुछ करनेमें समर्थ, आदि विद्याके श्रेष्ठ स्वामी और समस्त मंगलोंके मंगल हैं। हे खल! तुमने उनकी शक्तिका आज सत्कार नहीं किया, इसलिये अवश्य ही इस यज्ञका विनाश हो जायगा॥ १८-१९॥

पूजनीय व्यक्तियोंकी पूजा न करनेसे अमंगल होता है। क्या परम पूजनीया वे शिवा तुम्हारी पूजाके योग्य नहीं थीं? शेषनाग अपने हजार मस्तकोंसे प्रतिदिन जिनकी चरणरजको प्रेमपूर्वक धारण करते हैं, उन्हीं शिवकी शक्ति ये शिवा सती हैं॥ २०-२१॥

जिनके चरणकमलोंका आदरपूर्वक ध्यान और पूजनकर विष्णु विष्णुत्वको प्राप्त हो गये, उन्हीं शिवकी पत्नी सती हैं॥ २२॥

जिनके चरणकमलोंका ध्यान एवं पूजनकर ब्रह्माजी ब्रह्मत्वको प्राप्त हो गये और जिनके चरणकमलोंका आदरपूर्वक निरन्तर ध्यान एवं पूजन करके इन्द्र आदि लोकपालोंने अपने-अपने उत्तम पदको प्राप्त किया है, उन्हीं शिवकी पत्नी सती हैं॥ २३-२४॥

भगवान् शिव [सम्पूर्ण] जगत्‌के पिता हैं और शक्तिरूपा देवी सती जगन्माता कही गयी हैं। हे मूढ़! तुमने उनका सत्कार नहीं किया, तुम्हारा कल्याण कैसे होगा? तुम्हारे ऊपर दुर्भाग्यका आक्रमण हो गया है और विपत्तियाँ टूट पड़ी हैं; क्योंकि तुमने भक्तिपूर्वक उन भवानी और शंकरकी आराधना नहीं की॥ २५-२६॥

कल्याणकारी शिवजीका पूजन-अर्चन न करके मैं कल्याण प्राप्त कर लूँगा; यह कैसा गर्व है? वह तुम्हारा दुर्वार गर्व आज विनष्ट हो जायगा॥ २७॥

इन देवताओंमें कौन ऐसा है, जो सर्वेश्वर शिवसे विमुख होकर तुम्हारी सहायता करेगा, मुझे तो ऐसा कोई दिखायी नहीं दे रहा है। यदि देवता इस समय तुम्हारी सहायता करेंगे तो जलती हुई आगसे खेलनेवाले पतिंगोंके समान वे नाशको ही प्राप्त होंगे॥ २८-२९॥

आज तुम्हारा मुख जल जाय, तुम्हारे यज्ञका नाश हो जाय और जितने तुम्हारे सहायक हैं, वे भी आज शीघ्र ही भस्म हो जायँ। जो आज इस दुरात्मा दक्षकी सहायता करेंगे; उन समस्त देवताओंके लिये शपथ है कि उनका कर्म तुझ दक्षके अमंगलके लिये हो॥ ३०-३१॥

समस्त देवता आज इस यज्ञमण्डपसे निकलकर अपने-अपने स्थानको चले जायँ, अन्यथा आपलोगोंका सब प्रकारसे नाश हो जायगा। अन्य सब मुनि और नाग

आदि भी इस यज्ञसे निकल जायँ, अन्यथा आज आपलोगोंका सर्वथा नाश हो जायगा॥ ३२-३३॥

हे विष्णु! आप इस यज्ञमण्डपसे शीघ्र निकल जायँ, अन्यथा आज आपका सर्वथा नाश हो जायगा। हे विधाता! आप भी इस यज्ञमण्डपसे शीघ्र निकल जाइये, अन्यथा आज आपका सर्वथा नाश हो जायगा॥ ३४-३५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] सम्पूर्ण यज्ञशालामें बैठे हुए लोगों से ऐसा कहकर सबका कल्याण करनेवाली आकाशवाणी मौन हो गयी। हे तात! इस प्रकारकी आकाशवाणीको सुनकर विष्णु आदि सभी देवता तथा अन्य मुनि आदि सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये॥ ३६-३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सती-उपाख्यानमें आकाशवाणीका वर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

सतीके दग्ध होनेका समाचार सुनकर कुपित हुए शिवका अपनी जटासे वीरभद्र और महाकालीको प्रकट करके उन्हें यज्ञ-विध्वंस करनेकी आज्ञा देना

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] आकाशवाणीको सुनकर अज्ञानी दक्षने क्या किया तथा अन्य उपस्थित लोगोंने क्या किया और उसके बाद क्या हुआ? इसे बताइये॥ १॥

हे महामते! भृगुजीके मन्त्रबलसे पराजित होकर शिवजीके गणोंने क्या किया तथा वे कहाँ गये—यह सब आप मुझसे कहिये॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] आकाशवाणी सुनकर समस्त देवता आदि आश्चर्यचकित हो गये, वे मोहित होकर [जहाँ-तहाँ] खड़े हो गये और कुछ भी न बोल सके। भृगुजीके मन्त्रबलसे जो वीर शिवगण बच गये थे, वे भागते हुए शिवकी शरणमें गये॥ ३-४॥

वे महातेजस्वी शिवजीको आदरपूर्वक प्रणाम करके जो चरित्र हुआ था, वह सब बताने लगे॥ ५॥

गण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! शरणमें आये हुए हमलोगोंकी रक्षा कीजिये और हे नाथ! आदरपूर्वक सतीजीका चरित्र विस्तारसे सुनिये॥ ६॥

हे महेश्वर! अभिमानसे युक्त दुरात्मा दक्षने तथा देवताओंने सतीका अपमान तथा अनादर किया॥ ७॥

महाभिमानी दुष्ट दक्षने [अपने यज्ञमें] आपको भाग नहीं दिया। देवताओंको भाग दिया, किंतु [आपके विषयमें] उच्च स्वरसे दुर्वचन भी कहा॥ ८॥

हे प्रभो! उसके बाद यज्ञमें आपका भाग न देखकर सतीजी कुपित हो गयीं और उन्होंने अपने पिताकी बार-बार निन्दा करके [योगमार्गका अवलम्बनकर] अपने शरीरको भस्म कर लिया। [यह देखकर] दस हजार गण लज्जावश शस्त्रोंसे अपने अंगोंको काटकर वहीं मर गये, [बचे हुए] हमलोग दक्षपर कुपित हो उठे॥ ९-१०॥

हमलोग भयानक रूप धारणकर वेगपूर्वक यज्ञका विध्वंस करनेको उद्यत हो गये, परंतु विरोधी भृगुने अपने मन्त्रबलके प्रभावसे हमारा तिरस्कार कर दिया॥ ११॥

हे विश्वम्भर! हे प्रभो! अब हमलोग आपकी शरणमें आये हुए हैं, आप [हमारे ऊपर] दया करते हुए इस उत्पन्न भयसे हमलोगोंको निर्भय कीजिये॥ १२॥

हे महाप्रभो! दक्ष आदि सभी दुष्टोंने अत्यन्त गर्वित होकर उस यज्ञमें आपका बहुत अपमान किया है॥ १३॥

हे शंकर! इस प्रकार हमने अपना, सतीका और उन मूर्खोंका सारा वृत्तान्त आपसे कह दिया, अब आप जैसा चाहते हों, वैसा कीजिये॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] अपने गणोंका यह वचन सुनकर प्रभु शिवने उनका सम्पूर्ण चरित्र जाननेके लिये शीघ्रतापूर्वक आप नारदका स्मरण किया॥ १५॥

हे देवर्षे! [भगवान्‌के स्मरण करनेपर] दिव्य दर्शनवाले आप वहाँ शीघ्रतासे पहुँच गये और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणामकर वहाँ खड़े हो गये॥ १६॥

उसके बाद स्वामी शंकरजीने आपकी प्रशंसा करके दक्षयज्ञमें गयी हुई सतीका समाचार एवं अन्य दूसरी घटनाओंके सम्बन्धमें पूछा। हे नारद! शिवजीके पूछनेपर शिवस्वरूप आपने शीघ्र ही जो कुछ भी दक्षयज्ञमें घटित हुआ था, वह सब समाचार कह दिया॥ १७-१८॥

हे मुने! आपके मुखसे कही हुई बातको सुनकर महारौद्रपराक्रमी भगवान् शंकर शीघ्र ही अत्यन्त क्रोधित हो उठे। लोकका संहार करनेवाले रुद्रने उसी समय एक जटा उखाड़कर क्रोधसे उसे पर्वतके ऊपर पटक दिया॥ १९-२०॥

हे मुने! भगवान् शंकरद्वारा जटा पटके जानेके फलस्वरूप वह जटा दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गयी और उससे महान् प्रलयंकारी भयंकर शब्द उत्पन्न हुआ॥ २१॥

हे देवर्षे! उस जटाके पूर्वभागसे महाभयंकर, महाबली सभी गणोंमें अग्रणी वीरभद्र उत्पन्न हुए॥ २२॥

वे चारों ओरसे पृथिवीको घेरकर दस अंगुलपर्यन्त पृथिवीसे ऊपर स्थित हो गये। वे प्रलयाग्निके समान थे और एक हजार भुजाओंसे युक्त थे॥ २३॥

उन महारुद्र महेश्वरके क्रोधयुक्त निःश्वाससे सौ प्रकारके ज्वर तथा तेरह सन्निपात उत्पन्न हुए॥ २४॥

हे तात! उस जटाके दूसरे भागसे महाकाली उत्पन्न हुईं, जो बड़ी भयंकर थीं और करोड़ों भूतोंसे घिरी हुई थीं॥ २५॥

मूर्तिधारी वे सभी ज्वर क्रूर तथा संसारको भयभीत करनेवाले थे और अपने तेजसे ऐसे प्रज्वलित हो रहे थे, मानो सबको जला देंगे॥ २६॥

तदनन्तर वाक्यविशारद महावीर वीरभद्र हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणाम करके कहने लगे— ॥ २७॥

वीरभद्र बोले—हे महारुद्र! हे महारौद्र! सूर्य, सोम तथा अग्निरूप नेत्रवाले हे प्रभो! मैं कौन-सा कार्य करूँ? शीघ्र ही आज्ञा प्रदान कीजिये॥ २८॥

हे ईशान! क्या मैं आधे ही क्षणमें समुद्रोंको सुखा दूँ अथवा हे ईशान! क्या आधे ही क्षणमें पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँ अथवा हे हर! क्या मैं क्षणभरमें सारे ब्रह्माण्डको भस्म कर दूँ अथवा क्या मैं क्षणभरमें देवताओं एवं मुनीश्वरोंको भस्म कर दूँ अथवा हे शंकर! क्या मैं सभी लोगोंका श्वास रोक दूँ अथवा हे ईशान! क्या मैं सम्पूर्ण प्राणियोंका विनाश कर डालूँ?॥ २९—३१॥

हे महेश्वर! आपकी कृपासे कोई भी कार्य ऐसा नहीं है, जो मैं न कर सकूँ, पराक्रममें मेरे समान न तो कोई हुआ है और न तो होगा॥ ३२॥

हे प्रभो! आप मुझे जिस कार्यके लिये जहाँ भी भेजेंगे, मैं आपकी कृपासे उस कार्यको शीघ्र ही सिद्ध करूँगा॥ ३३॥

हे हर! आप शिवकी आज्ञासे क्षुद्रजन भी इस संसारसागरको पार कर जाते हैं, तो क्या मैं इस महान् विपत्तिरूपी समुद्रको पार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता?॥ ३४॥

हे शंकर! आपके द्वारा भेजे गये तृणसे भी क्षणमात्रमें ही बिना प्रयत्नके बहुत बड़ा कार्य किया जा सकता है, इसमें संशय नहीं है॥ ३५॥

हे शम्भो! यद्यपि सारा कार्य आपके लीलामात्रसे ही सिद्ध हो सकता है, फिर भी यदि आप मुझे भेज दें, तो यह आपकी [बहुत बड़ी] कृपा होगी॥ ३६॥

हे शम्भो! हे शंकर! आपकी कृपासे मुझमें ऐसी शक्ति है, जैसी कि आपकी कृपाके बिना अन्य किसीमें

भी नहीं हो सकती॥ ३७॥

आपकी कृपाके बिना कोई एक तृण भी हिलानेमें समर्थ नहीं है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८॥

हे शम्भो! हे महेश्वर! सभी देवता आपके नियन्त्रणमें हैं, उसी प्रकार मैं भी समस्त प्राणियोंके नियामक आपके नियन्त्रणमें ही हूँ॥ ३९॥

हे महादेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। हे हर! आज मुझे अपनी इष्टसिद्धिके लिये आप शीघ्र ही भेजिये॥ ४०॥

हे शम्भो! मेरे दाहिने अंगोंमें बार-बार स्पन्दन हो रहा है। हे प्रभो! आज मेरी विजय होगी। अतः आप मुझे भेजिये॥ ४१॥

हे शम्भो! इस समय मुझे विशेष हर्ष तथा उत्साह हो रहा है और मेरा मन आपके चरणकमलमें लगा हुआ है। अतः पग-पगपर [मेरे लिये] शुभ परिणामका विस्तार होगा॥ ४२-४३॥

हे शम्भो! उत्तम आश्रय-स्वरूप आप शिवमें जिसकी सुदृढ़ भक्ति है, उसीकी सदा विजय होती है और उसीका प्रतिदिन कल्याण होता है॥ ४४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उनके द्वारा कहे गये इस वचनको सुनकर मंगलापति [सदाशिव] अत्यन्त प्रसन्न हो गये और हे वीरभद्र! तुम्हारी जय हो, यह आशीर्वाद देकर उनसे पुनः कहने लगे—॥ ४५॥

महेश्वर बोले—हे तात! हे वीरभद्र! शान्त मनसे मेरी बात सुनो और शीघ्र ही प्रयत्नपूर्वक उस कार्यको करो, जिससे मुझे प्रसन्नता हो॥ ४६॥

इस समय ब्रह्माका पुत्र दक्ष यज्ञ करनेके लिये तत्पर है। वह महाभिमानी, दुष्ट तथा अज्ञानी विशेष रूपसे मेरा विरोध कर रहा है॥ ४७॥

हे गणश्रेष्ठ! तुम यज्ञको तथा यज्ञमें सम्मिलित सभीको भस्म करके शीघ्र ही मेरे स्थानको पुनः लौट आओ॥ ४८॥

देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा अन्य कोई भी जो वहाँ हों, उन्हें आज ही शीघ्र सहसा भस्म कर डालना॥ ४९॥

वहाँ ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम कोई भी हो, तुम उन सबको प्रयत्नपूर्वक आज ही गिरा दो॥ ५०॥

देवता, गन्धर्व, यक्ष अथवा अन्य कोई भी जो वहाँ हों, उन्हें आज ही शीघ्र सहसा भस्म कर डालना॥ ५१॥

दधीचिकी दिलायी हुई मेरी शपथका उल्लंघन करके जो भी वहाँ ठहरे हुए हैं, उन्हें निश्चय ही तुम प्रयत्नपूर्वक जला देना॥ ५२॥

यदि भ्रमवश प्रमथगण और विष्णु आदि वहाँ आ जायँ तो शीघ्र ही अनेक आकर्षण मन्त्रोंसे खींचकर उन्हें भस्म कर देना॥ ५३॥

जो मेरी शपथका उल्लंघन करके गर्वित हो वहाँ ठहरे हुए हैं, वे मेरे द्रोही हैं, अतः उन्हें अग्निकी लपटोंसे भस्म कर देना॥ ५४॥

दक्षके यज्ञस्थलमें स्थित लोगोंको उनकी पत्नियों तथा सामग्रीसहित जलाकर भस्म करके शीघ्रतासे पुनः चले आओ॥ ५५॥

तुम्हारे वहाँ जानेपर विश्वेदेव आदि देवगण भी यदि [सामने आकर] सादर स्तुति करें, तो भी तुम उन्हें शीघ्र ही आगकी ज्वालासे जला डालना॥ ५६॥

इस प्रकार जो भी मुझसे द्रोह करनेवाले देवतागण वहाँ उपस्थित हों, उन्हें शीघ्र ही अग्निकी ज्वालामें जलाकर मेरे समीप लौट आना। मन्त्रपालक समझकर उनकी उपेक्षा कदापि न करना॥ ५७॥

हे वीर! पत्नियों तथा बन्धुओंसहित वहाँ उपस्थित दक्ष आदि सभीको लीलापूर्वक भस्म करनेके बाद ही तुम जल ग्रहण करना अर्थात् कार्य पूर्ण होनेके अनन्तर ही पूर्ण विश्राम करना॥ ५८॥

ब्रह्माजी बोले—वेदमर्यादाका पालन करनेवाले, कालके भी शत्रु तथा सर्वेश्वर शिवजीने रोषसे आँखें लाल-लालकर महावीर [वीरभद्र]-से इस प्रकार कहकर मौन धारण कर लिया॥ ५९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें वीरभद्रकी उत्पत्ति और उन्हें शिवका उपदेशवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

गणोंसहित वीरभद्र और महाकालीका दक्षयज्ञ-विध्वंसके लिये प्रस्थान

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] महेश्वरके कहे गये इस वचनको आदरपूर्वक सुनकर वीरभद्र बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने महेश्वरको प्रणाम किया॥ १॥

तत्पश्चात् त्रिशूलधारी उन देवाधिदेवकी आज्ञाको शिरोधार्य करके वीरभद्र वहाँसे शीघ्र ही दक्षके यज्ञकी ओर चल पड़े। भगवान् शिवने प्रलयाग्निके समान करोड़ों महावीर गणोंको [केवल] शोभाके लिये उनके साथ भेज दिया॥ २-३॥

वे बलशाली तथा वीर गण वीरभद्रके आगे और पीछे भी चल रहे थे। कौतूहल करते हुए वीरभद्रसहित जो लाखों गण थे, वे कालके भी काल शिवके पार्षद थे, वे सब रुद्रके ही समान थे॥ ४-५॥

महात्मा वीरभद्र शिवके समान ही वेशभूषा धारण करके रथपर बैठकर उन गणोंके साथ चल पड़े। उनकी एक हजार भुजाएँ थीं, उनके शरीरमें नागराज लिपटे हुए थे। वे प्रबल और भयंकर दिखायी पड़ रहे थे॥ ६॥

उनका रथ आठ लाख हाथ विस्तारवाला था। उसमें दस हजार सिंह जुते हुए थे, जो प्रयत्नपूर्वक रथको खींच रहे थे॥ ७॥

उसी प्रकार बहुत-से प्रबल सिंह, शार्दूल, मगर, मत्स्य और हजारों हाथी उनके पार्श्वरक्षक थे॥ ८॥

इस प्रकार जब दक्षके विनाशके लिये वीरभद्रने प्रस्थान किया, उस समय कल्पवृक्षोंसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। सभी गणोंने शिवजीके कार्यके लिये चेष्टा करनेवाले वीरभद्रकी स्तुति की और उस यात्राके उत्सवमें कुतूहल करने लगे॥ ९-१०॥

उसी समय काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्रकाली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी—इन नौ दुर्गाओं तथा समस्त भूतगणोंके साथ महाकाली दक्षका विनाश करनेके लिये चल पड़ीं॥ ११-१२॥

शिवकी आज्ञाके पालक, डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक, कूष्माण्ड, पर्पट, चटक, ब्रह्मराक्षस, भैरव तथा क्षेत्रपाल आदि वीर दक्षके यज्ञका विनाश करनेके लिये तुरंत चल दिये॥ १३-१४॥

उसी प्रकार चौंसठ गणोंके साथ योगिनियोंका मण्डल भी सहसा कुपित होकर दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये निकल पड़ा॥ १५॥

हे नारद! उन सभी गणोंके धैर्यशाली तथा महाबली मुख्य गणोंका जो समूह था, उसकी संख्याको सुनिये॥ १६॥

शंकुकर्ण [नामक] गणेश्वर दस करोड़ गणोंके साथ, केकराक्ष दस करोड़ गणोंके साथ तथा विकृत आठ करोड़ गणोंके साथ चल पड़े॥ १७॥

हे तात! हे मुने! विशाख चौंसठ करोड़, पारियात्रिक नौ करोड़, सर्वांकक छः करोड़, वीर विकृतानन भी छः करोड़, गणोंमें श्रेष्ठ ज्वालकेश बारह करोड़, समदज्जीमान् सात करोड़, दुद्रभ आठ करोड़, कपालीश पाँच करोड़, सन्दारक छः करोड़, कोटि और कुण्ड एक-एक करोड़, गणोंमें उत्तम विष्टम्भ चौंसठ करोड़ वीरोंके साथ, सन्नाद, पिप्पल एक हजार करोड़, आवेशन तथा चन्द्रतापन आठ-आठ करोड़, गणाधीश महावेश हजार करोड़ गणोंके साथ, कुंडी बारह करोड़ और गणश्रेष्ठ पर्वतक भी बारह करोड़ गणोंके साथ दक्षयज्ञका विध्वंस करनेके लिये चल पड़े॥ १८—२३॥

काल, कालक और महाकाल सौ-सौ करोड़ गणोंको साथ लेकर दक्षयज्ञकी ओर चल पड़े॥ २४॥

हे तात! अग्निकृत् सौ करोड़, अग्निमुख एक करोड़, आदित्यमूर्धा तथा घनावह एक-एक करोड़, सन्नाह सौ करोड़, गण कुमुद एक करोड़, गणेश्वर अमोघ तथा कोकिल एक-एक करोड़ और गणाधीश काष्ठागूढ़, सुकेशी, वृषभ तथा सुमन्त्रक चौंसठ-चौंसठ करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ २५—२७॥

हे तात! गणोंमें श्रेष्ठ काकपादोदर साठ करोड़, गणश्रेष्ठ सन्तानक साठ करोड़, महाबल तथा पुंगव नौ-नौ करोड़, गणाधीश मधुपिंग नौ करोड़ और नील तथा पूर्णभद्र नब्बे करोड़ गणोंको साथ लेकर चल पड़े। गणराज चतुर्वक्त्र सौ करोड़ गणोंको साथ लेकर

चला ॥ २८—३१ ॥

हे मुने! गणेश्वर विरूपाक्ष, तालकेतु, षडास्य तथा गणेश्वर पंचास्य चौंसठ करोड़, संवर्तक, स्वयं प्रभु कुलीश, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक एवं शिवके परम प्रिय गण श्रीमान् भृंगी, रिटि, अशनि, भालक और सहस्रक चौंसठ करोड़ गणोंके साथ चले ॥ ३२—३४ ॥

महावीर तथा वीरेश्वर वीरभद्र भी शिवजीकी आज्ञासे बीसों, सैकड़ों तथा हजारों करोड़ गणोंसे घिरे हुए वहाँ पहुँचे ॥ ३५ ॥

वीरभद्र हजार करोड़ भूतों तथा तीन करोड़ रोमजनित श्वगणोंके साथ शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये ॥ ३६ ॥

उस समय भेरियोंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी। शंख बजने लगे। जटाहर, मुखों तथा शृंगोंसे अनेक प्रकारके शब्द होने लगे। उस महोत्सवमें चित्तको आकर्षित एवं सुखानुभूति उत्पन्न करनेवाले बाजोंके शब्द चारों ओर व्याप्त हो गये ॥ ३७-३८ ॥

हे महामुने! सेनासहित महाबली वीरभद्रकी उस यात्रामें अनेक प्रकारके सुखदायक शकुन होने लगे ॥ ३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें वीरभद्रकी यात्राका वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

दक्ष तथा देवताओंका अनेक अपशकुनों एवं उत्पातसूचक लक्षणोंको देखकर भयभीत होना

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार गणोंसहित वीरभद्रके प्रस्थान करनेपर दक्ष तथा देवताओंको अनेक प्रकारके अशुभ लक्षण दिखायी पड़ने लगे ॥ १ ॥

गणोंसहित वीरभद्रके चल देनेपर वहाँ अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे और हे देवर्षे! यज्ञविध्वंसकी सूचना देनेवाले तीनों प्रकार (आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक)-के अपशकुन होने लगे ॥ २ ॥

हे तात! दक्षकी बाँयीं आँख, बाँयीं भुजा और बाँयी जाँघ फड़कने लगी, जो अनेक प्रकारके कष्ट देनेवाली तथा सर्वथा अशुभकी सूचक थी ॥ ३ ॥

उस समय दक्षके यज्ञस्थलमें भूकम्प उत्पन्न हो गया। दक्षको दोपहरमें अनेक अद्भुत नक्षत्र दीखने लगे। दिशाएँ मलिन हो गयीं, सूर्य चितकबरा हो गया। सूर्यपर हजारों घेरे पड़ गये, जिससे वह भयंकर दिखायी पड़ने लगा ॥ ४-५ ॥

बिजली तथा अग्निके समान दीप्तिमान् तारे टूटकर गिरने लगे। नक्षत्रोंकी गति टेढ़ी और नीचेकी ओर हो गयी। हजारों गीध दक्षके सिरको छूकर उड़ने लगे और उन गीधोंके पंखोंकी छायासे यज्ञमण्डप ढँक गया ॥ ६-७ ॥

यज्ञभूमिमें सियार तथा उल्लू शब्द करने लगे। [आकाशमण्डलसे] श्वेत बिच्छुओंकी उल्कावृष्टि होने लगी। धूलिकी वर्षाके साथ तेज हवाएँ चलने लगीं और विवर्त [घूमती हुई] वायुसे कम्पित होकर टिड्डियाँ सब जगह उड़ने लगीं ॥ ८-९ ॥

दक्षने देवताओंके साथ जिस नवीन तथा अद्भुत यज्ञमण्डपका निर्माण किया था, उसे वायुने ऊपरकी ओर उड़ा दिया। दक्ष आदि सभी लोग अद्भुत प्रकारसे रक्तका वमन करने लगे और हड्डीसे समन्वित मांसखण्ड बार-बार उगलने लगे ॥ १०-११ ॥

वे सभी लोग वायुके झोंकेसे हिलते हुए दीपकके समान काँपने लगे और शस्त्रोंसे आहत हुए प्राणियोंके समान दुःखित हो गये। जिस प्रकार वनमें प्रातःकालके समय कमलपुष्पोंपर तुषार (ओस)-की वर्षा हुई हो, उसी प्रकार शब्द करते हुए वाष्पकी वर्षा होने लगी ॥ १२-१३ ॥

जिस प्रकार रात्रिमें कमल तथा दिनमें कुमुद बन्द हो जाते हैं, उसी प्रकार दक्ष आदिकी विशाल आँखें भी अचानक बन्द हो गयीं ॥ १४ ॥

आकाशसे रक्तकी वर्षा होने लगी, दिशाएँ अन्धकारसे ढँक गयीं तथा सभी प्राणियोंको सन्त्रस्त करता हुआ दिग्दाह होने लगा ॥ १५ ॥

हे मुने! जब विष्णु आदि देवताओंने इस प्रकारके

उत्पात देखे, तब वे अत्यन्त भयभीत हो उठे॥ १६॥

हाय, अब हमलोग मारे गये—इस प्रकार कहते हुए वे मूर्च्छित होकर पृथिवीपर इस प्रकार गिर पड़े, जैसे नदीके वेगसे किनारेपर वृक्ष गिर जाते हैं॥ १७॥

वे पृथिवीपर इस प्रकार गिरकर अचेत हो जाते थे जैसे काटनेके बाद विषैला सर्प अचेत हो जाता है और कभी गेंदके समान पृथिवीपर गिरकर पुनः उठ जाते थे। तदनन्तर वे तापसे व्याकुल होकर कुररी पक्षीकी भाँति विलाप करते थे एवं उक्ति तथा प्रत्युक्तिका शब्द करते हुए रो रहे थे॥ १८-१९॥

उस समय विष्णुसहित सभी लोगोंकी शक्ति कुण्ठित हो गयी और वे आपसमें एक-दूसरेके समीप कण्ठपर्यन्त कछुएके समान लोटने लगे॥ २०॥

इसी बीच वहाँ समस्त देवताओं और विशेषकर दक्षको सुनाते हुए आकाशवाणी हुई॥ २१॥

आकाशवाणी बोली—हे दक्ष! तुम्हारे जन्मको धिक्कार है। तुम महामूढ़ और पापात्मा हो। शिवजीके कारण आज तुम्हें महान् दुःख प्राप्त होगा, जिसका निवारण नहीं हो सकता॥ २२॥

यहाँ जो तुम्हारे सहायक मूर्ख देवता उपस्थित हैं, उन्हें भी महान् दुःख होगा, इसमें संशय नहीं है॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—[हे मुने!] उस आकाशवाणीको सुनकर और उन उपद्रवोंको देखकर दक्ष तथा अन्य देवता आदि भी अत्यन्त भयभीत हो उठे॥ २४॥

उस समय दक्ष मन-ही-मन अत्यन्त व्याकुल हो काँपने लगे और अपने प्रभु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी शरणमें गये॥ २५॥

भयभीत तथा बेसुध वे दक्ष उन स्वजनवत्सल देवाधिदेव विष्णुको प्रणाम करके तथा उनकी स्तुति करके कहने लगे—॥ २६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें अपशकुन-दर्शन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

दक्षद्वारा यज्ञकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णुसे प्रार्थना, भगवान्का शिवद्रोहजनित संकटको टालनेमें अपनी असमर्थता बताते हुए दक्षको समझाना तथा सेनासहित वीरभद्रका आगमन

दक्ष बोले—हे देवदेव! हे हरे! हे विष्णो! हे दीनबन्धो! हे कृपानिधे! आपको मेरी और मेरे यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये। आप ही यज्ञके रक्षक, यज्ञ करनेवाले और यज्ञस्वरूप हैं। हे प्रभो! आपको ऐसी कृपा करनी चाहिये, जिससे यज्ञका विनाश न हो॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार आदरपूर्वक प्रार्थना करके भयसे व्याकुल चित्तवाले दक्ष उनके चरणोंमें गिर पड़े। तब दुखी मनवाले दक्षको उठाकर और उन दुर्बुद्धिकी बातको सुनकर विष्णुने शिवका स्मरण किया॥ ३-४॥

अपने प्रभु एवं महान् ऐश्वर्यसे युक्त परमेश्वर शिवका स्मरण करके शिवतत्त्वके ज्ञाता श्रीहरि दक्षको सम्बोधित करते हुए कहने लगे—॥ ५॥

हरि बोले—हे दक्ष! मैं आपको यथार्थ बात बता रहा हूँ, मेरी बात सुनिये, यह आपके लिये सर्वथा हितकर तथा महामन्त्रकी तरह सुखदायक है॥ ६॥

हे दक्ष! शिवतत्त्वको न जाननेके कारण आपने सबके अधिपति परमात्मा शंकरकी अवहेलना की है॥ ७॥

ईश्वरकी अवहेलनासे सारा कार्य न केवल सर्वथा निष्फल हो जाता है, अपितु पग-पगपर विपत्ति भी आती है। जहाँ अपूज्य लोगोंकी पूजा होती है और पूजनीयकी पूजा नहीं होती, वहाँ दरिद्रता, मृत्यु एवं भय—ये तीन अवश्य होंगे॥ ८-९॥

इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नसे तुम्हें भगवान् वृषभध्वजका सम्मान करना चाहिये। महेश्वरका अपमान करनेसे ही [आपके ऊपर] महान् भय उपस्थित हुआ है॥ १०॥

हम सब लोग प्रभु होते हुए भी आज आपकी दुर्नीतिके कारण कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हैं। मैं सत्य

कह रहा हूँ॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णुका यह वचन सुनकर दक्ष चिन्तामें पड़ गये। उनका मुख तथा उनके चेहरेका रंग फीका पड़ गया और वे चुप होकर पृथिवीपर खड़े रह गये॥ १२॥

इसी समय रुद्रके भेजे हुए गणनायक वीरभद्र अपनी सेनाके साथ यज्ञस्थलमें जा पहुँचे॥ १३॥

कुछ गण भूपृष्ठपर आ गये, कुछ आकाशमें स्थित हो गये और कुछ गण दिशाओं तथा विदिशाओंको व्याप्त करके खड़े हो गये। शिवकी आज्ञासे वे रुद्रके समान पराक्रमवाले, शूर, निर्भीक तथा वीरोंमें श्रेष्ठ असंख्य गण सिंहनाद करते हुए वहाँ पहुँच गये॥ १४-१५॥

उस घोर नादसे तीनों लोक गूँज उठे। आकाश धूलसे भर गया और दिशाएँ अन्धकारसे आवृत हो गयीं। सातों द्वीपोंसे युक्त पृथिवी भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर पर्वत और वनोंसहित काँपने लगी तथा सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे॥ १६-१७॥

समस्त लोकोंका विनाश करनेवाले इस प्रकारके उस विशाल सैन्यदलको देखकर समस्त देवता आदि चकित रह गये॥ १८॥

इस सैन्य-उद्योगको देखकर मुखसे रक्तका वमन करते हुए वे दक्ष पत्नीसहित विष्णुके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े और इस प्रकार कहने लगे—॥ १९॥

दक्ष बोले—हे विष्णो! हे महाप्रभो! आपके बलसे ही मैंने इस महान् यज्ञको आरम्भ किया है, सत्कर्मकी सिद्धिके लिये आप ही प्रमाण माने गये हैं॥ २०॥

हे विष्णो! आप कर्मोंके साक्षी तथा यज्ञोंके प्रतिपालक हैं। हे महाप्रभो! आप वेदसारसर्वस्व, धर्म और ब्रह्माके रक्षक हैं। अतः हे प्रभो! आपको मेरे इस यज्ञकी रक्षा करनी चाहिये। आपके अतिरिक्त दूसरा कौन समर्थ है; क्योंकि आप सबके प्रभु हैं॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—तब दक्षकी अत्यन्त दीनतापूर्ण बात सुनकर भगवान् विष्णु शिवतत्त्वसे विमुख उन दक्षको बोध प्रदान करते हुए कहने लगे—॥ २३॥

विष्णु बोले—हे दक्ष! मुझे आपके यज्ञकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये; धर्मके परिपालनविषयक जो मेरी सत्य प्रतिज्ञा है, वह [सर्वत्र] विख्यात है॥ २४॥

आपने जो कहा है, वह सत्य है, उसका व्यतिक्रम कैसे हो सकता है। परंतु दक्ष! मैं जो कहता हूँ, उसे आप सुनिये। आप इस समय क्रूरतापूर्ण बुद्धिको त्याग दीजिये॥ २५॥

हे दक्ष! देवताओंके क्षेत्र नैमिषारण्यमें जो अद्भुत घटना घटित हुई थी, क्या उसका स्मरण आपको नहीं हो रहा है? आप कुबुद्धिके कारण उसे भूल गये?॥ २६॥

रुद्रके कोपसे आपकी रक्षा करनेमें यहाँ कौन समर्थ है? हे दक्ष! आपकी रक्षा किसको अभिमत नहीं है? परंतु जो आपकी रक्षा करनेको उद्यत होता है, वह दुर्बुद्धि है॥ २७॥

हे दुर्मते! क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इसे आप नहीं समझ पा रहे हैं। केवल कर्म ही [सब कुछ करनेमें] सर्वदा समर्थ नहीं हो सकता॥ २८॥

जिसके सहयोगसे कर्ममें कुछ करनेका सामर्थ्य आता है, उसीको आप स्वकर्म समझिये। भगवान् शिवके बिना दूसरा कोई कर्ममें कल्याण करनेकी शक्ति देनेवाला नहीं है। जो शान्त होकर ईश्वरमें मन लगाकर भक्तिपूर्वक कार्य करता है, उसीको भगवान् शिव उस कर्मका फल देते हैं॥ २९-३०॥

जो मनुष्य केवल ज्ञानका सहारा लेकर अनीश्वरवादी हो जाते हैं, वे सौ करोड़ कल्पोंतक नरकमें ही पड़े रहते हैं। केवल कर्मपरायण रहनेवाले लोग प्रत्येक जन्ममें कर्ममय पाशोंसे बँधते हैं और नरकोंकी यातना भोगते हैं॥ ३१-३२॥

ये रुद्रगणोंके स्वामी, शत्रुमर्दन तथा रुद्रकी क्रोधाग्निसे उत्पन्न वीरभद्र यज्ञभूमिमें आ गये हैं॥ ३३॥

ये हमलोगोंके विनाशके लिये आये हैं, इसमें संशय नहीं है। चाहे कुछ भी हो, वास्तवमें इनके लिये कुछ भी अशक्य नहीं है॥ ३४॥

महान् सामर्थ्यशाली ये हम सबको अवश्य जलाकर ही शान्तचित्त होंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ३५॥

मैं भ्रमसे महादेवजीकी शपथका उल्लंघन करके जो यहाँ रुक गया, उसके कारण आपके साथ मुझे भी

दुःख सहना पड़ेगा। हे दक्ष! आज मुझमें इनको रोक सकनेकी शक्ति नहीं है; क्योंकि शपथका उल्लंघन करनेसे मैं शिवद्रोही हो गया हूँ॥ ३६-३७॥

भगवान् शिवसे द्रोह करनेवालेको त्रिकालमें भी सुख नहीं मिलता है, अतः आज आपके साथ मुझे भी अवश्य दुःख प्राप्त हुआ है। मेरा सुदर्शन नामक चक्र भी इनपर प्रभाव नहीं डाल पायेगा; क्योंकि यह शैवचक्र [केवल] अशैवोंका लय करनेवाला है॥ ३८-३९॥

वीरभद्रपर इस चक्रसे प्रहार करते ही बिना उनका वध किये ही यह शैवचक्र शीघ्र ही शिवजीके पास चला जायगा। यह शैवचक्र शिवकी शपथका उल्लंघन करनेवाले मेरे पास मुझपर सहसा बिना प्रहार किये हुए ही अबतक स्थित है, यही उनकी महान् कृपा है॥ ४०-४१॥

अब यह चक्र निश्चित रूपसे मेरे पास नहीं रहेगा और अग्निकी लपटोंसे व्याप्त होकर इस समय शीघ्र ही चला जायगा। हमलोगोंके द्वारा शीघ्रतासे आदरपूर्वक पूजा किये जानेपर भी महान् क्रोधसे भरे हुए ये वीरभद्र हमारी रक्षा नहीं करेंगे॥ ४२-४३॥

हाय! यह बड़े दुःखकी बात है कि असमयमें ही हमलोगोंके लिये प्रलय आ गया है। इस समय आपका और हमारा विनाश उपस्थित हो गया है॥ ४४॥

इस समय त्रिलोकीमें हमारी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है, भला शंकरके द्रोहीको शरण देनेवाला संसारमें कौन होगा? शरीरका नाश हो जानेपर भी [शिवद्रोहके कारण] उन्हें यमकी यातनाएँ प्राप्त होती हैं। बहुत दुःख देनेवाली उन यातनाओंको सहा नहीं जा सकता॥ ४५-४६॥

शिवद्रोहीको देखकर यमराज स्वयं दाँत पीसते हुए सन्तप्त तैलपूर्ण कड़ाहोंमें डाल देते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। शपथके बाद मैं शीघ्र ही जानेको उद्यत था, किंतु दुष्टके संसर्गरूपी पापके कारण ही नहीं गया॥ ४७-४८॥

यदि इस समय हमलोग भागनेका प्रयास भी करें, तो कर्षण करनेवाले शिवभक्त वीरभद्र अपने शस्त्रोंसे हमें खींच लेंगे; क्योंकि स्वर्ग, पृथिवी, पातालमें जहाँ कहीं भी वीरभद्रके शस्त्रोंका जाना असम्भव नहीं है॥ ४९-५०॥

त्रिशूलधारी श्रीरुद्रके जितने भी गण यहाँ हैं, उन सबकी ऐसी ही शक्ति है। पूर्व समयमें काशीमें कालभैरवने अपने नखके अग्रभागसे लीलापूर्वक ब्रह्माजीके पाँचवें सिरको काट दिया था॥ ५१-५२॥

ऐसा कहकर अत्यन्त व्याकुल मुखकमलवाले विष्णु चुपचाप बैठ गये, उसी समय वीरभद्र भी यज्ञमण्डपमें आ पहुँचे। विष्णु ऐसा कह ही रहे थे कि वीरभद्रके साथ [विशाल] सैन्यसमूह भी आ गया, जिसे देवता आदिने देखा॥ ५३-५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें सती-उपाख्यानमें विष्णुका वचनवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

युद्धमें शिवगणोंसे पराजित हो देवताओंका पलायन, इन्द्र आदिके पूछनेपर बृहस्पतिका रुद्रदेवकी अजेयता बताना, वीरभद्रका देवताओंको युद्धके लिये ललकारना, श्रीविष्णु और वीरभद्रकी बातचीत

ब्रह्माजी बोले—उस समय [शिवतत्त्वरूपी] आत्मवादमें रत विष्णुपर हँसते हुए इन्द्र हाथमें गदा धारणकर देवताओंको साथ लेकर [वीरभद्रसे] युद्ध करनेके लिये तत्पर हो गये॥ १॥

उस समय इन्द्र हाथीपर सवार हो गये, अग्नि भेंड़पर सवार हो गये, यम भैंसेपर चढ़ गये और निर्ऋति प्रेतपर सवार हो गये॥ २॥

वरुण मकरपर, वायु मृगपर और कुबेर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो आलस्यरहित होकर [युद्धके लिये] तैयार हो गये। इसी प्रकार प्रतापी अन्य देवसमूह, यक्ष, चारण तथा गुह्यक भी अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ होकर तैयार हो गये॥ ३-४॥

उन देवताओंके उद्योगको देखकर रक्तसे सने हुए मुखवाले वे दक्ष अपनी पत्नीके साथ उनके पास जाकर कहने लगे— ॥ ५ ॥

दक्ष बोले—[हे देवगणो!] मैंने आपलोगोंके ही बलसे इस यज्ञको प्रारम्भ किया है; क्योंकि महातेजस्वी आपलोग ही सत्कर्मकी सिद्धिके लिये प्रमाण हैं ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी बोले—दक्षके उस वचनको सुनकर इन्द्र आदि सभी देवगण युद्ध करनेके लिये तैयार हो निकल पड़े। तदनन्तर समस्त देवगण तथा इन्द्र आदि लोकपाल शिवजीकी मायासे मोहित होकर अपनी-अपनी सेनाओंको साथ लेकर युद्ध करने लगे ॥ ७-८ ॥

उस समय देवताओं तथा शिवगणोंमें महान् युद्ध होने लगा। वे तीखे तोमर तथा बाणोंसे परस्पर युद्ध करने लगे। उस युद्धमहोत्सवमें शंख तथा भेरियाँ बजने लगीं और बड़ी-बड़ी दुन्दुभियाँ, नगाड़े तथा डिण्डिम आदि बजने लगे ॥ ९-१० ॥

उस महान् शब्दसे उत्साहमें भरे हुए समस्त देवगण लोकपालोंको साथ लेकर उन शिवगणोंको मारने लगे। हे मुनिश्रेष्ठ! इन्द्र आदि देवताओं एवं लोकपालोंने भृगुके मन्त्रबलके प्रभावसे शिवजीके गणोंको पराङ्मुख कर दिया ॥ ११-१२ ॥

उस समय याज्ञिक भृगुजीने दीक्षा ग्रहण किये हुए दक्षके तथा देवताओंके सन्तोषहेतु और यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये उन शिवगणोंका उच्चाटन कर दिया ॥ १३ ॥

इस प्रकार अपने गणोंको पराजित देखकर वीरभद्र क्रोधमें भर उठे और भूत, प्रेत तथा पिशाचोंको पीछे करके वे महाबली वीरभद्र बैलपर सवार सभी शिवगणोंको आगे करके स्वयं त्रिशूल लेकर देवताओंको गिराने लगे ॥ १४-१५ ॥

सभी शिवगणोंने भी त्रिशूलके प्रहारोंसे शीघ्रतापूर्वक देवताओं, यक्षों, साध्यगणों, गुह्यकों तथा चारणोंको मार डाला। गणोंने तलवारोंसे कुछ देवताओंके दो टुकड़े कर दिये, कुछको मुद्गरोंसे पीट डाला और कुछको घायल कर दिया ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार सभी देवता पराजित होकर भाग चले और एक-दूसरेको रणभूमिमें छोड़कर देवलोकको चले गये। उस अत्यन्त भयानक युद्धमें महाबली इन्द्र आदि लोकपाल ही धैर्य धारण करके उत्साहित होकर खड़े रहे ॥ १८-१९ ॥

उस समय इन्द्र आदि समस्त देवता एकत्र होकर विनयभावसे युक्त हो उस युद्धस्थलमें बृहस्पतिजीसे पूछने लगे— ॥ २० ॥

लोकपाल बोले—हे गुरो! हे बृहस्पते! हे तात! हे महाप्राज्ञ! हे दयानिधे! शीघ्र बताइये, हमलोग यह पूछते हैं कि हमारी विजय किस प्रकार होगी? ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले—उनकी यह बात सुनकर उपायोंको जाननेवाले बृहस्पति शम्भुका स्मरण करके ज्ञानदुर्बल महेन्द्रसे कहने लगे— ॥ २२ ॥

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र! भगवान् विष्णुने पहले जो कहा था, वह सब आज घटित हो गया, मैं उसी बातको कह रहा हूँ, सावधानीपूर्वक सुनिये ॥ २३ ॥

समस्त कर्मोंका फल देनेवाले जो कोई ईश्वर हैं, वे भी अपने कर्ता शिवका भजन करते हैं। वे अपने कर्ताके प्रभु नहीं हैं ॥ २४ ॥

न मन्त्र, न औषधियाँ, न समस्त आभिचारिक कर्म, न लौकिक पुरुष, न कर्म, न वेद, न पूर्वमीमांसा, न उत्तरमीमांसा तथा न अनेक वेदोंसे युक्त अन्यान्य शास्त्र ही ईश्वरको जाननेमें समर्थ होते हैं, ऐसा प्राचीन विद्वान् कहते हैं ॥ २५-२६ ॥

अनन्यशरण भक्तोंको छोड़कर दूसरे लोग सम्पूर्ण वेदोंका दस हजार बार स्वाध्याय करके भी महेश्वरको भलीभाँति नहीं जान सकते—यह महाश्रुति है। भगवान् सदाशिवके अनुग्रहसे ही सर्वथा शान्त, निर्विकार एवं उत्तम दृष्टिसे उनको जाना जा सकता है ॥ २७-२८ ॥

तब भी हे सुरेश्वर! उचित-अनुचित कार्यके निर्णयमें सबके कल्याणके लिये सिद्धिके उत्तम अंशका प्रतिपादन करूँगा, आप उसे सुनिये। हे इन्द्र! आप लोकपालोंके साथ नादान बनकर इस समय दक्षयज्ञमें आ गये, किंतु आप कौन-सा पराक्रम करेंगे? ॥ २९-३० ॥

भगवान् रुद्रके सहायक ये गण अत्यन्त कुपित होकर यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये आये हैं, ये अवश्य ही उसे करेंगे ॥ ३१ ॥

मैं यह सत्य-सत्य कह रहा हूँ कि इस यज्ञमें विघ्ननिवारणके लिये वस्तुतः किसीके भी पास सर्वथा कोई उपाय नहीं है॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—बृहस्पतिकी इस बातको सुनकर स्वर्गमें रहनेवाले इन्द्रसहित वे समस्त लोकपाल चिन्तामें पड़ गये। तब महावीर गणोंसे घिरे हुए वीरभद्र मन-ही-मन भगवान् शंकरका स्मरण करके उन इन्द्र आदि लोकपालोंसे कहने लगे—॥ ३३-३४॥

वीरभद्र बोले—आपलोग मूर्खताके कारण ही [इस यज्ञमें] अपना-अपना भाग लेनेके लिये आये हैं। अतः मेरे समीप आइये, मैं आपलोगोंको यज्ञका फल देता हूँ॥ ३५॥

हे शक्र! हे अग्ने! हे सूर्य! हे चन्द्र! हे कुबेर! हे यम! हे वरुण! हे वायो! हे निर्ऋते! हे शेष! हे बुद्धिमान् देव तथा राक्षसगण! आपलोग इधर आइये, मैं आपलोगोंको तृप्त करनेके लिये इसका फल प्रदान करूँगा॥ ३६-३७॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने क्रोधमें भरकर तीक्ष्ण बाणोंसे उन सभी देवताओंको शीघ्र ही घायल कर दिया। उन बाणोंसे घायल होकर इन्द्र आदि वे समस्त सुरेश्वर भागकर दसों दिशाओंमें चले गये। लोकपालोंके चले जानेपर और देवताओंके भाग जानेपर वीरभद्र गणोंके साथ यज्ञशालाके समीप पहुँचे॥ ३८-३९॥

उस समय वहाँ उपस्थित समस्त ऋषि अत्यन्त भयभीत होकर रमापति श्रीहरिसे [रक्षाकी] प्रार्थना करनेके लिये सहसा विनम्र हो शीघ्र कहने लगे—॥ ४०॥

ऋषिगण बोले—हे देवदेव! हे रमानाथ! हे सर्वेश्वर! हे महाप्रभो! दक्षके यज्ञकी रक्षा कीजिये, आप यज्ञस्वरूप हैं, इसमें संशय नहीं है। आप ही यज्ञ करनेवाले, यज्ञरूप, यज्ञके अंग और यज्ञके रक्षक हैं, अतः यज्ञकी रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये, आपके अतिरिक्त कोई दूसरा रक्षक नहीं है॥ ४१-४२॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन ऋषियोंके इस वचनको सुनकर भगवान् विष्णु वीरभद्रके साथ युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये॥ ४३॥

महाबली चतुर्भुज भगवान् विष्णु हाथोंमें चक्र आदि आयुध धारणकर सम्यक् सावधान होकर देवताओंके साथ यज्ञमण्डपसे बाहर निकले। अनेक गणोंसे समन्वित तथा हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए वीरभद्रने महाप्रभु विष्णुको युद्धके लिये तैयार देखा॥ ४४-४५॥

उन्हें देखते ही वीरभद्र टेढ़ी भौंहोंसे युक्त मुखमण्डलवाले हो गये, जैसे पापीको देखकर यमराज और हाथीको देखकर सिंह हो जाता है॥ ४६॥

उस प्रकार श्रीहरिको [युद्धके लिये उद्यत] देखकर वीरगणोंसे घिरे हुए शत्रुनाशक वीरभद्र कुपित होकर शीघ्रतासे कहने लगे—॥ ४७॥

वीरभद्र बोले—हे हरे! आपने आज शिवजीके शपथकी अवहेलना क्यों की? और आपके मनमें घमण्ड क्यों हो गया है? क्या आपमें शिवजीके शपथका उल्लंघन करनेकी शक्ति है? आप कौन हैं? तीनों लोकोंमें आपका रक्षक कौन है?॥ ४८-४९॥

यहाँ किसलिये आये हैं, इसे हम नहीं जान पा रहे हैं। आप दक्षके यज्ञरक्षक क्यों बन गये हैं, इसे बताइये। [इस यज्ञमें] सतीने जो किया, उसे क्या आपने नहीं देखा और दधीचिने जो कहा, उसे क्या आपने नहीं सुना?॥ ५०-५१॥

आप दक्षके इस यज्ञमें अवदान (यज्ञभाग) प्राप्त करनेके लिये आये हुए हैं। हे महाबाहो! मैं [शीघ्र ही] आपको अवदान देता हूँ। हे हरे! मैं त्रिशूलसे आपका वक्षःस्थल विदीर्ण करूँगा। आपका कौन रक्षक है, वह मेरे समक्ष आये॥ ५२-५३॥

मैं आपको पृथिवीपर धराशायी करूँगा, अग्निसे जला दूँगा और पुनः दग्ध हुए आपको पीस डालूँगा॥ ५४॥

हे हरे! हे दुराचारी! हे महेशविमुख! हे अधम! क्या आप शिवजीके पावन माहात्म्यको नहीं जानते?॥ ५५॥

फिर भी हे महाबाहो! आप युद्धकी कामनासे आगे स्थित हैं। यदि आप [इस युद्धभूमिमें] खड़े रह गये तो मैं आपको उस स्थानपर भेज दूँगा, जहाँसे पुनः लौटना सम्भव नहीं है॥ ५६॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन वीरभद्रकी इस बातको सुनकर बुद्धिमान् सुरेश्वर विष्णु प्रसन्नतापूर्वक

हँसते हुए कहने लगे— ॥ ५७ ॥

विष्णु बोले—हे वीरभद्र! आज आपके सामने मैं जो कह रहा हूँ, उसको सुनिये। आप मुझ शंकरके सेवकको रुद्रविमुख मत कहिये ॥ ५८ ॥

कर्ममें निष्ठा रखनेवाले अज्ञानी इन दक्षने मूर्खतावश पहले मुझसे यज्ञके लिये बार-बार प्रार्थना की थी ॥ ५९ ॥

मैं भक्तके अधीन हूँ और वे भगवान् महेश्वर भी भक्तके अधीन हैं। हे तात! दक्ष मेरे भक्त हैं, इसलिये मैं यज्ञमें आया हूँ ॥ ६० ॥

रुद्रके कोपसे उत्पन्न होनेवाले हे वीर! हे महान् प्रतापके आलय! हे प्रभो! आप रुद्रतेजस्वरूप हैं, आप मेरी प्रतिज्ञा सुनिये ॥ ६१ ॥

मैं [यज्ञकी रक्षाके लिये] आपसे युद्ध करूँगा और आप भी [इस यज्ञके विध्वंसके लिये] मुझसे युद्ध कीजिये। जो होनहार होगा, वह होगा, मैं अवश्य ही पराक्रम प्रकट करूँगा ॥ ६२ ॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णुके इस प्रकार कहनेपर महाबाहु वीरभद्रने हँसते हुए कहा—[हे विष्णो!] मैं आपको अपने प्रभु शिवका प्रिय जानकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तदनन्तर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए बड़े विनयसे भगवान् विष्णुसे कहा— ॥ ६३-६४ ॥

वीरभद्र बोले—हे महाप्रभो! मैंने आपके भावकी परीक्षाके लिये ही ऐसा वचन कहा था, अब मैं यथार्थ बात कह रहा हूँ, उसको आप सावधानीपूर्वक सुनिये ॥ ६५ ॥

हे हरे! जैसे शिव हैं, वैसे आप हैं और जैसे आप हैं, वैसे शिव हैं। शिवके आदेशसे वेद ऐसा ही कहते हैं ॥ ६६ ॥

हे रमानाथ! भगवान् शिवकी आज्ञाके अनुसार हम सब लोग उनके सेवक ही हैं, तथापि मैंने जो बात कही है, वह इस वाद-विवादके अवसरके अनुकूल ही है। आप प्रत्येक बातको आदरपूर्वक ही समझें ॥ ६७ ॥

ब्रह्माजी बोले—उन वीरभद्रका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णु हँसकर और उनके लिये हितकर यह वचन कहने लगे— ॥ ६८ ॥

विष्णु बोले—हे महावीर! आप निःशंक होकर मेरे साथ युद्ध कीजिये, आपके अस्त्रोंसे शरीरके भर जानेपर ही मैं अपने आश्रमको जाऊँगा ॥ ६९ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर वे विष्णु चुप होकर युद्धके लिये तैयार हो गये और महाबली वीरभद्र भी अपने गणोंके साथ युद्धके लिये उद्यत हो गये ॥ ७० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें विष्णुवीरभद्रसंवाद-वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३६ ॥

सैंतीसवाँ अध्याय

गणोंसहित वीरभद्रद्वारा दक्षयज्ञका विध्वंस, दक्षवध, वीरभद्रका वापस कैलास पर्वतपर जाना, प्रसन्न भगवान् शिवद्वारा उसे गणाध्यक्ष पद प्रदान करना

ब्रह्माजी बोले—सभी शत्रुओंके विनाशक, महाबलवान् वीरभद्र भगवान् विष्णुके साथ युद्धमें सभी प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले भगवान् शंकरका अपने हृदयमें ध्यान करके दिव्य रथपर आरूढ़ होकर बड़े महान् अस्त्रोंको लेकर सिंहके समान गर्जन करने लगे ॥ १-२ ॥

बलशाली विष्णु भी अपने योद्धाओंको उत्साहित करते हुए महान् शब्द करनेवाले अपने पांचजन्य नामक शंखको बजाने लगे ॥ ३ ॥

उस शंखकी ध्वनिको सुनकर जो देवता पहले युद्धभूमि छोड़कर भाग खड़े हुए थे, वे तत्क्षण लौटकर आ गये ॥ ४ ॥

तब सेनासहित समस्त इन्द्र आदि लोकपाल सिंहगर्जना करके वीरभद्रके गणोंके साथ युद्ध करने लगे ॥ ५ ॥

उस समय सिंहनाद करते हुए गणों एवं लोकपालोंके बीच भयंकर घनघोर द्वन्द्वयुद्ध छिड़ गया ॥ ६ ॥

इन्द्र नन्दीके साथ युद्ध करने लगे, अग्नि अश्माके साथ और बलशाली कुबेर कूष्माण्डपतिके साथ युद्ध करने लगे। तब इन्द्रने सौ पर्ववाले वज्रसे नन्दीपर प्रहार किया। नन्दीने भी त्रिशूलसे इन्द्रकी छातीमें प्रहार किया॥ ७—९॥

बलवान् इन्द्र और नन्दी दोनों एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे अनेक प्रकारके प्रहार करते हुए परस्पर प्रीतिपूर्वक लड़ने लगे॥ १०॥

अत्यन्त क्रोधयुक्त अग्निने अपनी शक्तिसे अश्मापर प्रहार किया तथा उसने भी अग्निपर बड़े वेगसे तीक्ष्ण धारवाले त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ११॥

गणोंमें श्रेष्ठ यूथपति महालोक प्रीतिपूर्वक शिवजीका ध्यान करते हुए यमराजके साथ घनघोर युद्ध करने लगे॥ १२॥

महान् बलशाली चण्ड आ करके निर्ऋतिको तिरस्कृत करते हुए बड़े-बड़े अस्त्रोंसे उनके साथ युद्ध करने लगे॥ १३॥

महाबलवान् मुण्ड भी त्रिलोकीको विस्मित करते हुए अपनी उत्तम शक्तिसे वरुणके साथ युद्ध करने लगे॥ १४॥

वायुने अपने परम तेजस्वी अस्त्रसे भृंगीको आहत कर दिया और प्रतापी भृंगीने भी त्रिशूलसे वायुपर प्रहार किया॥ १५॥

वीर कूष्माण्डपतिने पहुँचकर हृदयमें आदरपूर्वक शिवजीका ध्यान करके कुबेरके साथ युद्ध करना प्रारम्भ किया॥ १६॥

महान् भैरवीपति योगिनियोंके समूहको साथ लेकर समस्त देवताओंको विदीर्ण करके विचित्र रूपसे उनका रक्त पीने लगे॥ १७॥

क्षेत्रपाल श्रेष्ठ देवताओंका भक्षण करने लगे और काली भी उन देवताओंको विदीर्णकर रक्त पीने लगीं॥ १८॥

तब शत्रुओंका संहार करनेवाले भगवान् विष्णु उनके साथ युद्ध करने लगे और उन्होंने दसों दिशाओंको दग्ध करते हुए वेगपूर्वक [अपना] चक्र फेंका॥ १९॥

चक्रको वेगपूर्वक आते हुए देखकर बलवान् क्षेत्रपालने सहसा वहाँ पहुँचकर उस चक्रको ग्रसित कर लिया॥ २०॥

शत्रुओंके नगरको जीतनेवाले भगवान् विष्णुने अपने चक्रको ग्रसित हुआ देखकर उसके मुखको मसलकर उस शत्रुके मुखसे चक्रको उगलवा लिया॥ २१॥

तब संसारके एकमात्र स्वामी, महानुभाव तथा महाबलवान् भगवान् विष्णु अत्यन्त कुपित हो उठे। वे क्रोधित होकर अपने चक्र तथा अनेक प्रकारके अस्त्रोंको लेकर उन अस्त्रोंसे उन महावीर गणोंके साथ युद्ध करने लगे॥ २२॥

विष्णुने प्रचण्ड पराक्रमके साथ भयंकर महायुद्ध किया। वे अनेक प्रकारके अस्त्र चलाकर प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ युद्ध कर रहे थे॥ २३॥

वे भैरव आदि गण भी अत्यधिक क्रोधमें भरकर महान् ओजसे अनेक प्रकारके अस्त्रोंको छोड़ते हुए उनके साथ युद्ध करने लगे॥ २४॥

इस प्रकार अतुलनीय तेजवाले विष्णुके साथ होते हुए उनके युद्धको देखकर बलवान् वीरभद्र लौटकर उनके पास पहुँचकर विष्णुके साथ स्वयं युद्ध करने लगे॥ २५॥

उसके बाद महातेजस्वी माधव भगवान् विष्णु अपने चक्रको लेकर कुपित हो उन वीरभद्रके साथ युद्ध करने लगे॥ २६॥

हे मुने! [उस समय] अनेक प्रकारके अस्त्र धारण करनेवाले महावीर वीरभद्र तथा सागरपति विष्णु—उन दोनोंका रोमांचकारी घनघोर युद्ध होने लगा॥ २७॥

विष्णुके योगबलसे उनके शरीरसे शंख, चक्र और गदा हाथोंमें धारण किये हुए असंख्य वीरगण प्रकट हो गये॥ २८॥

विष्णुके समान ही बलशाली तथा नाना प्रकारके अस्त्रोंको धारण किये हुए वे वीरगण वार्तालाप करते हुए वीरभद्रके साथ युद्ध करने लगे॥ २९॥

वीरभद्रने भगवान् शंकरका स्मरण करके विष्णुके समान तेजस्वी उन सभीको अपने त्रिशूलसे मारकर भस्म कर दिया॥ ३०॥

तत्पश्चात् उन महाबली वीरभद्रने युद्धभूमिमें ही

लीलापूर्वक विष्णुकी छातीपर त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ३१॥

हे मुने! पुरुषोत्तम श्रीहरि त्रिशूलके प्रहारसे घायल होकर सहसा भूमिपर गिर पड़े और अचेत हो गये॥ ३२॥

तब प्रलयाग्निके समान तीनों लोकोंको जला देनेवाला और वीरोंको भयभीत करनेवाला अद्भुत तेज उत्पन्न हुआ॥ ३३॥

पुरुषश्रेष्ठ श्रीमान् भगवान् विष्णु पुनः उठकर क्रोधसे नेत्रोंको लाल किये हुए अपने चक्रको उठाकर [वीरभद्रको] मारनेके लिये खड़े हो गये॥ ३४॥

तब दीनतारहित चित्तवाले शिवस्वरूप वीरभद्रने प्रलयकालीन आदित्यके समान महातेजस्वी उस चक्रको स्तम्भित कर दिया॥ ३५॥

हे मुने! मायापति महाप्रभु शंकरके प्रभावसे विष्णुके हाथमें स्थित चक्र चल नहीं पाया, वह निश्चितरूपसे स्तम्भित हो गया था॥ ३६॥

तब भाषण करते हुए उन गणेश्वर वीरभद्रने विष्णुको भी स्तम्भित कर दिया और वे शिखरयुक्त पर्वतके समान खड़े रह गये॥ ३७॥

हे नारद! वीरभद्रने जब भगवान् विष्णुको स्तम्भित कर दिया, तब यह देखकर याज्ञिकोंने स्तम्भनसे मुक्त करानेवाले मन्त्रका जप करके उन्हें स्तम्भनसे मुक्त कर दिया॥ ३८॥

हे मुने! तदनन्तर स्तम्भनसे मुक्त होनेपर शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले रमापतिने कुपित होकर बाणसहित अपने धनुषको उठा लिया॥ ३९॥

हे तात! हे मुने! उन वीरभद्रने तीन बाणोंसे विष्णुके शार्ङ्ग धनुषपर प्रहार किया और वह उसी क्षण तीन टुकड़ोंमें विभक्त हो गया॥ ४०॥

तब महावाणीद्वारा बोधित हुए विष्णुने उन महागण वीरभद्रको असह्य तेजसे सम्पन्न जानकर अन्तर्धान होनेका मनमें विचार किया॥ ४१॥

सतीके द्वारा किये गये आत्मदाहके समस्त परिणामको, जो शत्रुओंके लिये असह्य था, जानकर सभी लोग सबके स्वामी स्वतन्त्र शिवजीका स्मरण करके अपने गणोंके साथ अपने-अपने लोकको चले गये॥ ४२॥

मैं भी पुत्रके शोकसे पीड़ित हो सत्यलोक चला आया और अत्यन्त दुःखसे व्याकुल होकर विचार करने लगा कि मुझे अब क्या करना चाहिये॥ ४३॥

मेरे तथा श्रीविष्णुके चले जानेपर जो भी यज्ञोपजीवी देवता थे, मुनियोंसहित उन सबको शिवगणोंने जीत लिया। उस उपद्रवको और महायज्ञको विध्वस्त हुआ देखकर यज्ञदेव अत्यन्त भयभीत हो मृगका रूप धारण करके भागने लगे॥ ४४-४५॥

मृगरूपमें आकाशकी ओर भागते हुए उन यज्ञको वीरभद्रने पकड़कर सिरविहीन कर दिया॥ ४६॥

उसके बाद महागण वीरभद्रने प्रजापति, धर्म, कश्यप, अनेक पुत्रोंवाले मुनीश्वर अरिष्टनेमि, मुनि अंगिरा, कृशाश्व तथा महामुनि दत्तके सिरपर पैरसे प्रहार किया॥ ४७-४८॥

प्रतापी वीरभद्रने सरस्वती तथा देवमाता अदितिकी नासिकाके अग्रभागको अपने नखाग्रसे विदीर्ण कर दिया। तत्पश्चात् क्रोधके कारण चढ़ी हुई आँखोंवाले उन वीरभद्रने अन्यान्य देवताओंको भी विदीर्णकर उन्हें पृथिवीपर गिरा दिया॥ ४९-५०॥

मुख्य-मुख्य देवताओं और मुनियोंको विदीर्ण कर देनेपर भी वे शान्त नहीं हुए। महान् क्रोधसे भरे हुए वे नागराजकी भाँति सुशोभित हो रहे थे॥ ५१॥

जैसे सिंह वनके हाथियोंकी ओर देखता है, उसी प्रकार शत्रुओंको मारकर भी वे वीरभद्र सभी दिशाओंमें देखने लगे, कौन शत्रु कहाँ है॥ ५२॥

उसी समय प्रतापी मणिभद्रने भृगुको पटक दिया और उनकी छातीपर पैरसे प्रहार करके उनकी दाढ़ी नोंच ली॥ ५३॥

चण्डने बड़े वेगसे पूषाके दाँत उखाड़ लिये; जो पूर्वकालमें महादेवजीको [दक्षद्वारा] शाप दिये जानेपर दाँत दिखाकर हँस रहे थे॥ ५४॥

नन्दीने भगको रोषपूर्वक पृथ्वीपर गिरा दिया और उनकी दोनों आँखें निकाल लीं; जिन्होंने [शिवको] शाप देते हुए दक्षकी ओर नेत्रसे संकेत किया था॥ ५५॥

गणेश्वरोंने स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, मन्त्र, तन्त्र तथा

अन्य जो भी वहाँ उपस्थित थे, सबको तहस-नहस कर दिया ॥ ५६ ॥

उन गणोंने क्रोधित होकर वितानाग्निमें विष्ठाकी वर्षा कर दी। इस प्रकार वीर गणोंने यज्ञकी ऐसी दुर्गति कर दी, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ॥ ५७ ॥

ब्रह्मपुत्र दक्ष उनके भयके मारे अन्तर्वेदीके भीतर छिप गये थे, वीरभद्र पता लगाकर बलपूर्वक उन्हें खींच लाये ॥ ५८ ॥

उनका गाल पकड़कर उन्होंने उनके मस्तकपर तलवारसे आघात किया, परंतु योगके प्रभावसे उनका सिर फटा नहीं, अभेद्य ही रह गया ॥ ५९ ॥

तब उनके सिरको अस्त्र-शस्त्रोंसे अभेद्य समझकर उन्होंने पैरोंसे दक्षकी छातीको दबाकर हाथसे सिरको तोड़ दिया ॥ ६० ॥

तदनन्तर गणोंमें श्रेष्ठ वीरभद्रने उन शिवद्रोही दुष्ट दक्षके उस सिरको अग्निकुण्डमें डाल दिया ॥ ६१ ॥

उस समय वीरभद्र अपने हाथमें त्रिशूल घुमाते हुए इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो युद्धभूमिमें संवर्ताग्नि सबको जलाकर क्रोधमें भरी हुई पर्वतके समान स्थित हो ॥ ६२ ॥

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि पतिंगोंको जला डालती है, उसी प्रकार वीरभद्रने क्रोधित होकर बिना परिश्रम किये ही इन सबको मारकर अग्निसे जला डाला ॥ ६३ ॥

तत्पश्चात् दक्ष आदिको जलाकर वीरोंकी शोभासे युक्त, त्रिलोकीको गुंजित करते हुए वीरभद्रने भयानक अट्टहास किया। तदनन्तर वहाँ गणोंसहित वीरभद्रके ऊपर नन्दनवनकी दिव्य पुष्पवृष्टि होने लगी ॥ ६४-६५ ॥

शीतल, सुगन्धित तथा सुखदायक हवाएँ धीरे-धीरे बहने लगीं और उसीके साथ देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥ ६६ ॥

तदनन्तर घोर अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यकी भाँति वे वीरभद्र दक्ष और उनके यज्ञका विनाश करके कृतकार्य हो तुरंत कैलासपर्वतपर चले गये ॥ ६७ ॥

कार्यको पूर्ण किये हुए वीरभद्रको देखकर परमेश्वर शिवजी मन-ही-मन प्रसन्न हुए और उन्होंने वीरभद्रको गणोंका अध्यक्ष बना दिया ॥ ६८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें यज्ञविध्वंसवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३७ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

दधीचि मुनि और राजा क्षुवके विवादका इतिहास, शुक्राचार्यद्वारा दधीचिको महामृत्युंजयमन्त्रका उपदेश, मृत्युंजयमन्त्रके अनुष्ठानसे दधीचिको अवध्यताकी प्राप्ति

सूतजी बोले—अत्यन्त बुद्धिमान् ब्रह्माका यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ नारद विस्मित होकर प्रसन्नतापूर्वक उनसे पूछने लगे ॥ १ ॥

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] भगवान् विष्णु शिवजीको छोड़कर [अन्य] देवताओंके साथ दक्षके यज्ञमें किस कारणसे गये, जहाँ उनका तिरस्कार ही हुआ, इसे बताइये। क्या वे प्रलयकारी पराक्रमवाले शंकरको नहीं जानते थे, उन्होंने अज्ञानीकी भाँति शिवगणोंके साथ युद्ध क्यों किया? ॥ २-३ ॥

हे करुणानिधे! यह मुझे बहुत बड़ा सन्देह है, आप उसे दूर कीजिये और प्रभो! मनमें उत्साह पैदा करनेवाले शिवचरित्रको भी कहिये ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे द्विजवर्य! आप प्रेमपूर्वक शिवचरित्रका श्रवण कीजिये, जो पूछनेवालों तथा कहनेवालोंके सभी सन्देहोंको दूर करता है ॥ ५ ॥

पूर्वकालमें दधीचि मुनिने राजा क्षुवकी सहायता करनेवाले श्रीहरिको शाप दे दिया था, इसलिये भ्रष्ट ज्ञानवाले वे विष्णु देवताओंके साथ दक्षके यज्ञमें

चले गये॥ ६॥

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] मुनियोंमें श्रेष्ठ दधीचिने भगवान् विष्णुको शाप क्यों दिया? क्षुवकी सहायता करनेवाले विष्णुने उनका कौन-सा अपकार किया था॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—क्षुव नामसे प्रसिद्ध एक महातेजस्वी राजा उत्पन्न हुए थे। वे महाप्रभावशाली मुनीश्वर दधीचिके मित्र थे। पूर्वकालमें लम्बे समयसे तपके प्रसंगको लेकर क्षुव और दधीचिमें महान् अनर्थकारी विवाद आरम्भ हो गया, जो तीनों लोकोंमें विख्यात हो गया॥ ९॥

उस विवादमें वेदविद् शिवभक्त दधीचिने कहा कि तीनों वर्णोंमें ब्राह्मण ही श्रेष्ठ हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ १०॥

महामुनि दधीचिकी यह बात सुनकर धनके मदसे विमोहित राजा क्षुवने इस प्रकार प्रतिवाद किया॥ ११॥

क्षुव बोले—राजा [इन्द्र आदि] आठ लोकपालोंके स्वरूपको धारण करता है तथा समस्त वर्णों और आश्रमोंका स्वामी एवं प्रभु है, इसलिये राजा ही सबसे श्रेष्ठ है। राजाकी श्रेष्ठता प्रतिपादन करनेवाली श्रुति भी कहती है कि राजा सर्वदेवमय है। इसलिये हे मुने! जो सबसे बड़ा देवता है, वह मैं ही हूँ॥ १२-१३॥

अतः हे च्यवनपुत्र! राजा ब्राह्मणसे श्रेष्ठ होता है, आप [इस सम्बन्धमें] विचार करें और मेरा अनादर न करें, मैं आपके लिये सर्वथा पूजनीय हूँ॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—उन क्षुवका श्रुतियों और स्मृतियोंके विरुद्ध यह मत सुनकर मुनिश्रेष्ठ दधीचि अत्यन्त कुपित हो उठे॥ १५॥

तब हे मुने! आत्मगौरवके कारण कुपित हुए महातेजस्वी दधीचिने क्षुवके मस्तकपर [अपनी] बायीं मुट्ठीसे प्रहार किया॥ १६॥

तत्पश्चात् [दधीचिके द्वारा] ताड़ित किये गये ब्रह्माण्डाधिपति दुष्ट क्षुव अत्यन्त कुपित हो गरज उठे और उन्होंने वज्रसे दधीचिका सिर काट डाला॥ १७॥

उस वज्रसे आहत हो दधीचि पृथिवीपर गिर पड़े। क्षुवके द्वारा काटे गये भार्गववंशधर दधीचिने [गिरते समय] शुक्राचार्यका स्मरण किया॥ १८॥

तब योगी शुक्राचार्यने आकर क्षुवके द्वारा दधीचिके काटे गये शरीरको तुरंत जोड़ दिया॥ १९॥

दधीचिकी देहको पूर्वकी भाँति ठीक करके शिवभक्तशिरोमणि तथा मृत्युंजयविद्याके प्रवर्तक शुक्राचार्य उनसे कहने लगे—॥ २०॥

शुक्र बोले—हे तात! दधीचि! मैं सर्वेश्वर प्रभु शंकरका पूजन करके श्रेष्ठ वैदिक महामृत्युंजय मन्त्र*का आपको उपदेश देता हूँ॥ २१॥

[**'त्र्यम्बकं यजामहे'**] हम त्रिलोकीके पिता, तीन नेत्रवाले, तीनों मण्डलों (सूर्य, सोम तथा अग्नि)-के पिता तथा तीनों गुणों (सत्त्व, रज तथा तम)-के स्वामी महेश्वरका पूजन करते हैं॥ २२॥

जो त्रितत्त्व (आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्व), त्रिवह्नि (आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि) तथा पृथिवी, जल, तेज—इन तीनों भूतोंके एवं जो त्रिदिव (स्वर्ग), त्रिबाहु तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों देवताओंके महान् ईश्वर महादेवजी हैं। **'सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्'** [महामृत्युंजयमन्त्रका यह द्वितीय चरण है] जैसे फूलोंमें उत्तम गन्ध होती है, उसी प्रकार वे भगवान् शिव सम्पूर्ण भूतोंमें, तीनों गुणोंमें, समस्त कृत्योंमें, इन्द्रियोंमें, अन्यान्य देवोंमें और गणोंमें उनके प्रकाशक सारभूत आत्माके रूपमें व्याप्त हैं। अतएव सुगन्धयुक्त एवं सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर हैं॥ २३—२५॥

हे द्विजोत्तम! जिन महापुरुषसे प्रकृतिकी पुष्टि होती है। हे सुव्रत! महत् तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त विकल्पके जो स्वरूप हैं। हे महामुने! जो विष्णु, पितामह, मुनिगणों एवं इन्द्रियोंसहित समस्त देवताओंकी पुष्टिका वर्धन करते हैं, इसलिये वे पुष्टिवर्धन हैं॥ २६-२७॥

वे देव रुद्र अमृतस्वरूप हैं। जो पुण्यकर्मसे, तपस्यासे, स्वाध्यायसे, योगसे अथवा ध्यानसे उनकी आराधना करता है, उसे वे प्राप्त हो जाते हैं॥ २८॥

जिस प्रकार ककड़ीका पौधा अपने फलसे स्वयं ही लताको बन्धनमें बाँधे रखता है और पक जानेपर स्वयं

* त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ (यजुर्वेद ३। ६०)

ही उसे बन्धनसे मुक्त कर देता है, ठीक उसी प्रकार बन्धमोक्षकारी प्रभु सदाशिव अपने सत्यसे जगत्के समस्त प्राणियोंको मृत्युके पाशरूप सूक्ष्म बन्धनसे छुड़ा देते हैं॥ २९॥

यह मृतसंजीवनी मन्त्र है, जो मेरे मतसे सर्वोत्तम है। हे दधीचि! आप मेरे द्वारा दिये गये इस मन्त्रका शिवध्यानपरायण होकर नियमसे जप कीजिये॥ ३०॥

जप और हवन भी इसी मन्त्रसे करें और इसी मन्त्रसे अभिमन्त्रितकर दिन और रातमें जल भी पीजिये तथा शिव-विग्रहके पास स्थित हो उन्हींका ध्यान करते रहिये, इससे कभी भी मृत्युका भय नहीं रहता॥ ३१॥

सब न्यास आदि करके विधिवत् शिवकी पूजा करके व्यग्रतारहित हो भक्तवत्सल सदाशिवका ध्यान करें॥ ३२॥

अब मैं सदाशिवके ध्यानको बता रहा हूँ, जिसके अनुसार उनका ध्यान करके मन्त्रजप करना चाहिये। इस प्रकार [जप करनेसे] बुद्धिमान् पुरुष भगवान् शिवके प्रभावसे उस मन्त्रको सिद्ध कर लेता है॥ ३३॥

[ध्यानमन्त्रका अर्थ इस प्रकार है] अपने दो करकमलोंमें स्थित दोनों कुम्भोंसे जलको निकालकर ऊपरवाले दोनों हाथोंसे सिरपर अभिषेक करते हुए, कुम्भसहित अपने अन्य दोनों हाथोंको अपनी गोदमें धारण करते हुए, शेष दो हाथोंसे अक्षमाला तथा मृगमुद्रा धारण करनेवाले, कमलके आसनपर विराजमान, सिरपर स्थित चन्द्रमासे टपकते हुए अमृतकणसे भीगे हुए शरीरवाले तथा तीन नेत्रवाले पार्वतीसहित महामृत्युंजय भगवान्का मैं ध्यान करता हूँ*॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! मुनिश्रेष्ठ दधीचिको इस प्रकार उपदेश देकर शुक्राचार्य भगवान् शंकरका स्मरण करते हुए अपने स्थानको चले गये॥ ३५॥

उनकी बात सुनकर महामुनि दधीचि बड़े प्रेमसे शिवजीका स्मरण करते हुए तपस्याके लिये वनमें गये॥ ३६॥

वहाँ जाकर वे विधिपूर्वक महामृत्युंजय नामक उस मन्त्रका जप करते हुए और प्रेमपूर्वक शिवका चिन्तन करते हुए तपस्या करने लगे॥ ३७॥

दीर्घकालतक उस महामृत्युंजय मन्त्रका जप करके तपस्याद्वारा शंकरकी आराधना करके उन्होंने शिवको प्रसन्न कर लिया॥ ३८॥

हे महामुने! तब उस जपसे प्रसन्नचित्त हुए भक्तवत्सल शिव उनके सामने प्रेमपूर्वक प्रकट हो गये॥ ३९॥

अपने प्रभु शम्भुका [साक्षात्] दर्शन करके वे मुनीश्वर आनन्दित हो गये और उन्हें विधिपूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ भक्तिभावसे स्तवन करने लगे॥ ४०॥

हे तात! हे मुने! उसके बाद मुनिके प्रेमसे आनन्दित उन शिवने अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे दधीचिसे

* हस्तांभोजयुगस्थकुंभयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सकुम्भौ करौ।
अक्षस्रङ्मृगहस्तमंबुजगतं मूर्धस्थचन्द्रस्रवत्पीयूषार्द्रतनुं भजे सगिरिजं त्र्यक्षं च मृत्युञ्जयम्॥ (रुद्र० सती० ३८। ३४)

कहा—वर माँगो। शिवका वह वचन सुनकर भक्तश्रेष्ठ दधीचि दोनों हाथ जोड़कर नतमस्तक हो भक्तवत्सल शंकरसे कहने लगे— ॥ ४१-४२ ॥

दधीचि बोले—हे देवदेव! हे महादेव! मुझे तीन वर दीजिये, मेरी हड्डी वज्र हो जाय, कोई भी मेरा वध न कर सके और मैं सर्वथा अदीन रहूँ ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले—उनके कहे हुए वचनको सुनकर प्रसन्न हुए परमेश्वरने 'तथास्तु' कहा और उन दधीचिको तीनों वर दे दिये। शिवजीसे तीन वर पाकर वेदमार्गमें प्रतिष्ठित महामुनि आनन्दमग्न हो गये और शीघ्र ही राजा क्षुवके स्थानपर गये ॥ ४४-४५ ॥

उग्र स्वभाववाले महादेवजीसे अवध्यता, अस्थिके वज्रमय होने और अदीनताका वर पाकर दधीचिने राजेन्द्र क्षुवके मस्तकपर पादमूलसे प्रहार किया ॥ ४६ ॥

तब विष्णुकी महिमासे गर्वित राजा क्षुवने भी क्रोधित होकर दधीचिकी छातीपर वज्रसे प्रहार किया ॥ ४७ ॥

वह वज्र परमेश्वर शिवके प्रभावसे महात्मा दधीचिका [कुछ भी] अनिष्ट न कर सका, इससे ब्रह्मपुत्र क्षुवको आश्चर्य हुआ। मुनीश्वर दधीचिकी अवध्यता, अदीनता तथा वज्रसे बढ़कर प्रभाव देखकर ब्रह्मकुमार क्षुवके मनमें बड़ा विस्मय हुआ ॥ ४८-४९ ॥

वे शरणागतपालक नरेश मृत्युंजयके सेवक दधीचिसे पराजित होकर शीघ्र ही वनमें जाकर इन्द्रके छोटे भाई मुकुन्द हरिकी आराधना करने लगे ॥ ५० ॥

उनकी पूजासे सन्तुष्ट होकर गरुडध्वज भगवान् मधुसूदनने उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की ॥ ५१ ॥

उस दिव्य दृष्टिसे गरुडध्वज जनार्दन देवका दर्शन करके और उन्हें प्रणाम करके क्षुवने प्रिय वचनोंके द्वारा उनकी स्तुति की ॥ ५२ ॥

इस प्रकार इन्द्र आदिसे स्तुत उन अजेय ईश्वर देवका पूजन और स्तवन करके वे [राजा क्षुव] भक्तिभावसे उनकी ओर देखकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उन जनार्दनसे कहने लगे— ॥ ५३ ॥

राजा बोले—हे भगवन्! दधीचि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण हैं, जो धर्मके ज्ञाता तथा विनम्र स्वभाववाले हैं, वे पहले मेरे मित्र थे ॥ ५४ ॥

वे निर्विकार मृत्युंजय महादेवकी आराधना करके उन्हीं शिवजीके प्रभावसे सबके द्वारा सदाके लिये अवध्य हो गये हैं ॥ ५५ ॥

[एक दिन] उन महातपस्वी दधीचिने भरी सभामें अपने बायें पैरसे मेरे मस्तकपर बड़े वेगसे अवहेलनापूर्वक प्रहार किया और बड़े गर्वसे मुझसे कहा—मैं किसीसे नहीं डरता। हे हरे! वे मृत्युंजयसे उत्तम वर पाकर अनुपम गर्वसे भर गये हैं ॥ ५६-५७ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] महात्मा दधीचिकी अवध्यताको जानकर श्रीहरिने महेश्वरके अतुलित प्रभावका स्मरण किया। इस प्रकार स्मरण करके विष्णु ब्रह्मपुत्र क्षुवसे शीघ्र बोले—राजेन्द्र! ब्राह्मणोंको कहीं भी थोड़ा-सा भी भय नहीं है ॥ ५८-५९ ॥

हे भूपते! विशेष रूपसे रुद्रभक्तोंके लिये तो भय है ही नहीं। यदि मैं आपकी ओरसे कुछ करूँ तो ब्राह्मण दधीचिको दुःख होगा और वह मुझ-जैसे देवताके लिये भी शापका कारण बन जायगा ॥ ६० ॥

हे राजेन्द्र! दधीचिके शापसे दक्षके यज्ञमें सुरेश्वर शिवके द्वारा मेरा विनाश होगा और फिर उत्थान भी होगा ॥ ६१ ॥

हे राजेन्द्र! दधीचिके शापके कारण ही सभी देवताओं, मेरे तथा ब्रह्माके उपस्थित रहनेपर भी दक्षका यज्ञ सफल नहीं होगा। हे महाराज! मैं आपके लिये दधीचिको जीतनेका प्रयास करूँगा ॥ ६२ ॥

विष्णुका यह वचन सुनकर राजा क्षुवने कहा—ऐसा ही हो। इस प्रकार कहकर वे उस कार्यके लिये मन-ही-मन उत्सुक हो प्रसन्नतापूर्वक वहीं ठहर गये ॥ ६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें क्षुव और दधीचिके विवादका वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३८ ॥

उनतालीसवाँ अध्याय

श्रीविष्णु और देवताओंसे अपराजित दधीचिद्वारा देवताओंको शाप देना तथा राजा क्षुवपर अनुग्रह करना

ब्रह्माजी बोले—[नारद!] भक्तवत्सल भगवान् विष्णु राजा क्षुवके हितसाधनके लिये ब्राह्मणका रूप धारणकर दधीचिके आश्रममें गये॥ १॥

कपटरूप धारण करके जगद्गुरु श्रीहरि शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि दधीचिको प्रणाम करके क्षुवके कार्यकी सिद्धिके लिये तत्पर हो उनसे कहने लगे—॥ २॥

विष्णु बोले—हे दधीचि! शिवकी आराधनामें तत्पर रहनेवाले हे विप्रर्षे! हे अव्यय! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके उसे आप मुझे दीजिये॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—क्षुवकी कार्यसिद्धि चाहनेवाले देवदेव विष्णुके द्वारा याचित परम शिवभक्त दधीचि विष्णुसे शीघ्र यह वचन कहने लगे—॥ ४॥

दधीचि बोले—हे विप्र! मैंने आपका अभीष्ट जान लिया है, आप भगवान् श्रीहरि क्षुवके कार्यके लिये ही यहाँ ब्राह्मणका रूप धारणकर आये हैं, आप तो मायावी हैं। हे देवेश! हे जनार्दन! शिवजीकी कृपासे मुझे भूत-भविष्य और वर्तमान—इन तीनों कालोंका ज्ञान सदा रहता है॥ ५-६॥

मैं आप श्रीहरि विष्णुको जानता हूँ। हे सुव्रत! इस ब्राह्मणवेशको छोड़िये। दुष्टबुद्धिवाले क्षुवने आपकी आराधना की है। हे भगवन्! हे हरे! मैं आपकी भक्तवत्सलताको जानता हूँ, यह छल छोड़िये, अपने रूपको ग्रहण कीजिये और भगवान् शंकरका स्मरण कीजिये॥ ७-८॥

शंकरकी आराधनामें लगे रहनेवाले मुझसे यदि किसीको भय हो, तो आप उसे यत्नपूर्वक सत्यकी शपथके साथ कहिये। शिवके स्मरणमें आसक्त बुद्धिवाला मैं कभी झूठ नहीं बोलता। मैं इस संसारमें किसी देवता या दैत्यसे भी नहीं डरता॥ ९-१०॥

विष्णु बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे दधीचि! आपका भय तो सर्वथा नष्ट ही है; क्योंकि आप शिवकी आराधनामें तत्पर रहते हैं और सर्वज्ञ हैं॥ ११॥

आपको नमस्कार है। आप मेरे कहनेसे एक बार अपने प्रतिद्वन्द्वी राजा क्षुवसे यह कह दीजिये—हे राजेन्द्र! मैं आपसे डरता हूँ॥ १२॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर भी शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ महामुनि दधीचि हँसकर निर्भय हो कहने लगे—॥ १३॥

दधीचि बोले—मैं पिनाकधारी देवाधिदेव शम्भुके प्रभावसे कहीं भी किसीसे किंचिन्मात्र भी नहीं डरता हूँ॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—उन मुनिका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णु क्रोधित हो उठे और वे मुनिश्रेष्ठ दधीचिको जलानेकी इच्छासे अपने चक्रको ऊपर उठाकर खड़े हो गये। राजा क्षुवके सामने ही ब्राह्मणपर चलाया जानेवाला उनका भयंकर चक्र शिवजीके प्रभावसे वहींपर कुण्ठित हो गया। इस प्रकार उस चक्रको कुण्ठित हुआ देखकर दधीचि हँसते हुए सत् एवं असत्की अभिव्यक्तिके कारणभूत भगवान् विष्णुसे कहने लगे—॥ १५—१७॥

दधीचि बोले—हे भगवन्! आपने पूर्व समयमें [तपस्याके] प्रयत्नसे शिवजीसे सुदर्शन नामक अत्यन्त दारुण जिस चक्रको प्राप्त किया है, शिवजीका वह शुभ चक्र मुझे नहीं मारना चाहता है। तब भगवान् श्रीहरिने क्रुद्ध होकर क्रमसे सभी अस्त्रोंको उनपर चलाया। [इसपर दधीचिने कहा—] अब आप ब्रह्मास्त्र आदि बाणोंसे तथा अन्य प्रकारके अस्त्रोंसे प्रयत्न कीजिये॥ १८-१९॥

ब्रह्माजी बोले—दधीचिके वचनको सुनकर भगवान् विष्णु उन्हें अपने सामने अत्यन्त तुच्छ मनुष्य समझकर क्रोधित हो अन्य प्रकारके अस्त्रोंका उनपर प्रयोग करने लगे। उस समय एकमात्र उस ब्राह्मणसे युद्ध करनेके लिये मूर्ख देवता भी आदरपूर्वक विष्णुकी सहायता करने लगे॥ २०-२१॥

विष्णुपक्षीय इन्द्र आदि देवगण भी दधीचिके ऊपर

बड़े वेगसे अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र शीघ्र चलाने लगे। तब वज्र हुई अस्थियोंवाले जितेन्द्रिय दधीचिने शिवजीका स्मरण करते हुए मुट्ठीभर कुशा लेकर सभी देवताओंपर प्रयोग किया॥ २२-२३॥

हे मुने! शंकरजीके प्रभावसे [मुनीश्वर दधीचिके द्वारा प्रयुक्त] वह मुट्ठीभर कुशा कालाग्निके समान दिव्य त्रिशूल बन गया॥ २४॥

चारों ओरसे जलता हुआ, प्रलयाग्निसे भी अधिक तेजवाला तथा ज्वालाओंसे युक्त वह शैव अस्त्र आयुधोंसहित समस्त देवताओंको भस्म करनेका विचार करने लगा॥ २५॥

उस समय विष्णु, इन्द्र आदि मुख्य देवताओंके द्वारा जो अस्त्र छोड़े गये थे, वे सभी उस त्रिशूलको प्रणाम करने लगे। तब नष्टपराक्रमवाले सभी स्वर्गवासी देवगण [इधर-उधर] भागने लगे। मायावियोंमें श्रेष्ठ स्वामी विष्णु ही एकमात्र भयभीत हो वहाँ स्थित रहे॥ २६-२७॥

तब पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने अपने शरीरसे अपने ही समान हजारों एवं लाखों दिव्य गणोंको उत्पन्न किया। हे देवर्षे! तदनन्तर विष्णुके वीरगण अकेले शिवस्वरूप दधीचिसे युद्ध करने लगे॥ २८-२९॥

तदनन्तर शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ महर्षि दधीचिने रणमें उन गणोंके साथ वहाँ बहुत युद्धकर सहसा उन सबको जला दिया॥ ३०॥

तब मायाविशारद भगवान् विष्णु महर्षि दधीचिको विस्मित करनेके लिये शीघ्र ही विश्वमूर्ति हो गये॥ ३१॥

ब्राह्मणश्रेष्ठ दधीचिने [उस समय] उन विष्णुके शरीरमें हजारों देवता आदिको और अन्य जीवोंको देखा। उस समय विश्वमूर्तिके शरीरमें करोड़ों भूत, करोड़ों गण तथा करोड़ों ब्रह्माण्ड विद्यमान थे॥ ३२-३३॥

इन सभीको देखकर दधीचि मुनि जगत्पति, जगत्स्तुत्य, अजन्मा तथा अविनाशी उन भगवान् विष्णुसे कहने लगे— ॥ ३४॥

दधीचि बोले—हे महाबाहो! आप मायाको त्याग दीजिये। विचार करनेसे सब प्रतिभासमात्र प्रतीत होता है। हे माधव! मैंने भी हजारों दुर्विज्ञेय वस्तुओंको जान लिया है। अब आप निरालस्य होकर मुझमें अपने सहित ब्रह्मा, रुद्र तथा सम्पूर्ण जगत्को देखिये, मैं आपको दिव्य दृष्टि देता हूँ॥ ३५-३६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर भगवान् शिवके तेजसे पूर्ण शरीरवाले दधीचि मुनिने अपने शरीरमें समस्त ब्रह्माण्डको दिखाया। तत्पश्चात् शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ बुद्धिमान् दधीचि मनमें शंकरका स्मरण करते हुए निर्भय होकर देवेश भगवान् विष्णुसे कहने लगे॥ ३७-३८॥

दधीचि बोले—हे हरे! आपकी इस मायासे अथवा मन्त्रशक्तिसे क्या हो सकता है? आप श्रेष्ठ कामना करके यत्नपूर्वक मुझसे युद्ध कीजिये॥ ३९॥

ब्रह्माजी बोले—तब उन मुनिका यह वचन सुनकर विष्णु शिवजीके तेजसे निर्भय होकर उन मुनिपर अत्यन्त कुपित हो उठे॥ ४०॥

उस समय जो देवता भाग गये थे, वे भी प्रतापी दधीचिसे युद्ध करनेकी इच्छासे उन नारायणदेवके पास आ गये॥ ४१॥

इसी बीच मुझे साथ लेकर राजा क्षुव वहाँ आ गये। मैंने देवताओं तथा विष्णुको युद्ध करनेसे मना किया और कहा कि यह ब्राह्मण [किसीसे] जीता नहीं जा सकता है। मेरी इस बातको सुनकर भगवान् विष्णुने मुनिके निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४२-४३॥

उसके बाद वे क्षुव भी अत्यन्त दीन होकर वहाँ मुनीश्वर दधीचिके पास जाकर व्याकुल हो प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे— ॥ ४४॥

क्षुव बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! प्रसन्न होइये। हे शिवभक्तशिरोमणे! प्रसन्न होइये। हे परमेशान! आप दुर्जनोंके द्वारा सदा दुर्लक्ष्य हैं॥ ४५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन राजा क्षुवकी तथा देवताओंकी यह बात सुनकर तपस्यानिधि ब्राह्मण दधीचिने उनपर अनुग्रह किया॥ ४६॥

तदनन्तर विष्णु आदिको देखकर मुनिने क्रोधसे व्याकुल होकर मनसे शिवजीका स्मरण करके विष्णु तथा देवताओंको शाप दे दिया॥ ४७॥

दधीचि बोले—देवराज इन्द्रसहित सभी देवता और मुनीश्वर तथा गणोंके साथ विष्णुदेव रुद्रकी

क्रोधाग्निसे ध्वस्त हो जायँ॥ ४८॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार देवताओंको शाप देकर पुनः क्षुवकी ओर देखकर मुनिने क्षुवसे कहा—हे राजेन्द्र! श्रेष्ठ द्विज देवताओं और राजाओंसे भी अधिक पूज्य होता है। हे राजेन्द्र! ब्राह्मण ही बली और प्रभावशाली होते हैं—ऐसा स्पष्टरूपसे कहकर वे ब्राह्मण दधीचि अपने आश्रममें प्रविष्ट हो गये॥ ४९-५०॥

तत्पश्चात् दधीचिको नमस्कार करके क्षुव अपने घर चले गये और भगवान् विष्णु भी जैसे आये थे, उसी तरह देवताओंके साथ अपने वैकुण्ठलोकको लौट गये॥ ५१॥

[इस प्रकार] वह स्थान स्थानेश्वर नामक तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। स्थानेश्वरमें पहुँचकर मनुष्य शिवका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे संक्षेपमें क्षुव और दधीचिका विवाद कह दिया और शंकरको छोड़कर ब्रह्मा और विष्णुको जो शाप प्राप्त हुआ, उसका भी वर्णन किया॥ ५२-५३॥

जो [व्यक्ति] क्षुव और दधीचिके इस विवाद-सम्बन्धी प्रसंगका नित्य पाठ करता है, वह अपमृत्युको जीतकर शरीरत्यागके पश्चात् ब्रह्मलोकको जाता है॥ ५४॥

जो इसका पाठ करके रणभूमिमें प्रवेश करेगा, उसे सर्वदा मृत्युका भय नहीं रहेगा तथा वह विजयी होगा॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें विष्णु और दधीचिके युद्धका वर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

देवताओंसहित ब्रह्माका विष्णुलोकमें जाकर अपना दुःख निवेदन करना, उन सभीको लेकर विष्णुका कैलासगमन तथा भगवान् शिवसे मिलना

नारदजी बोले—हे विधे! हे महाप्राज्ञ! हे शिवतत्त्वके प्रदर्शक! आपने अत्यन्त अद्भुत एवं रमणीय शिवलीला सुनायी है। हे तात! पराक्रमी वीरभद्र जब दक्षके यज्ञका विनाश करके कैलास पर्वतपर चले गये, तब क्या हुआ? अब उसे बताइये॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] समस्त देवता और मुनि रुद्रके सैनिकोंसे पराजित तथा छिन्न-भिन्न अंगोंवाले होकर मेरे लोकको चले गये। वहाँ मुझ स्वयम्भूको नमस्कार करके और बार-बार मेरा स्तवन करके उन्होंने अपने विशेष क्लेशको पूर्णरूपसे बताया॥ ३-४॥

तब उसे सुनकर मैं पुत्रशोकसे पीड़ित हो गया और अत्यन्त व्यग्र हो व्यथितचित्तसे विचार करने लगा॥ ५॥

इस समय मैं कौन-सा कार्य करूँ, जो देवताओंके लिये सुखकारी हो और जिससे देव दक्ष जीवित हो जायँ तथा यज्ञ भी पूरा हो जाय॥ ६॥

हे मुने! इस प्रकार बहुत विचार करनेपर जब मुझे शान्ति नहीं मिली, तब भक्तिपूर्वक विष्णुका स्मरण करते हुए मैंने उचित ज्ञान प्राप्त कर लिया॥ ७॥

तदनन्तर देवताओं और मुनियोंके साथ मैं विष्णुलोकमें गया और उन्हें नमस्कार करके तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करके अपना दुःख उनसे कहने लगा—हे देव! जिस तरह भी यज्ञ पूर्ण हो, यज्ञकर्ता [दक्ष] जीवित हों और समस्त देवता तथा मुनि सुखी हो जायँ, आप वैसा कीजिये। हे देवदेव! हे रमानाथ! हे देवसुखदायक विष्णो! हम देवता और मुनिलोग निश्चय ही आपकी शरणमें आये हैं॥ ८—१०॥

ब्रह्माजी बोले—मुझ ब्रह्माकी यह बात सुनकर शिवस्वरूप लक्ष्मीपति विष्णु शिवजीका स्मरण करके दुखीचित्त होकर इस प्रकार कहने लगे—॥ ११॥

विष्णु बोले—हे देवताओ! परम समर्थ तेजस्वी पुरुषसे कोई अपराध बन जाय, तो भी उसके बदलेमें अपराध करनेवाले मनुष्योंके लिये उनका वह अपराध मंगलकारी नहीं हो सकता। हे विधे! समस्त देवता परमेश्वर शिवके अपराधी हैं; क्योंकि इन्होंने उन

शम्भुको यज्ञका भाग नहीं दिया॥ १२-१३॥

अब आप सभी लोग शुद्ध हृदयसे शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले भगवान् शिवके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न कीजिये॥ १४॥

जिन भगवान्के कुपित होनेपर यह सारा जगत् नष्ट हो जाता है तथा जिनके शासनसे लोकपालोंसहित यज्ञका जीवन शीघ्र ही समाप्त जाता है, उन प्रियाविहीन तथा अत्यन्त दुरात्मा दक्षके दुर्वचनोंसे बिंधे हुए हृदयवाले देव शंकरसे आपलोग शीघ्र ही क्षमा माँगिये॥ १५-१६॥

हे विधे! उन शम्भुकी शान्ति तथा सन्तुष्टिके लिये केवल यही महान् उपाय है—ऐसा मैं समझता हूँ। यह मैंने सच्ची बात कही है॥ १७॥

हे विधे! न मैं, न तुम, न अन्य देवता, न मुनिगण और न दूसरे शरीरधारी ही जिनके बल तथा पराक्रमके तत्त्व तथा प्रमाणोंको जान पाते हैं, उन स्वतन्त्र परमात्मा परमेश्वरको विरुद्धकर प्रसन्न करनेका [प्रणिपात करनेके अतिरिक्त] कोई दूसरा उपाय नहीं हो सकता॥ १८-१९॥

हे ब्रह्मन्! आपलोगोंके साथ मैं भी शिवालय चलूँगा और शिवके प्रति स्वयं अपराधी होनेपर भी उनसे क्षमा करवाऊँगा॥ २०॥

ब्रह्माजी बोले—देवता आदिके साथ मुझ ब्रह्माको इस प्रकार आदेश देकर भगवान् विष्णुने देवताओंके साथ कैलासपर्वतपर जानेका विचार किया॥ २१॥

देवता, मुनि, प्रजापति आदिको साथ लेकर वे विष्णु शिवजीके स्वप्रकाशस्वरूप शुभ तथा श्रेष्ठ कैलास पर्वतपर पहुँच गये॥ २२॥

कैलास भगवान् शिवको सदा ही प्रिय है, वह मनुष्योंके अतिरिक्त किन्नरों, अप्सराओं तथा योगसिद्ध महात्माओंसे सेवित था और बहुत ऊँचा था॥ २३॥

वह चारों ओरसे अनेक मणिमय शिखरोंसे सुशोभित था, अनेक धातुओंसे विचित्र जान पड़ता था और अनेक प्रकारके वृक्ष तथा लताओंसे भरा हुआ था॥ २४॥

अनेक प्रकारके पशुओं-पक्षियों तथा अनेक प्रकारके झरनोंसे वह परिव्याप्त था। उसके शिखरपर सिद्धांगनाएँ अपने-अपने पतियोंके साथ विहार करती थीं। वह अनेक प्रकारकी कन्दराओं, शिखरों तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंकी जातियोंसे सुशोभित था। उसकी कान्ति चाँदीके समान श्वेतवर्णकी थी॥ २५-२६॥

वह पर्वत बड़े-बड़े व्याघ्र आदि जन्तुओंसे युक्त, भयानकतासे रहित, सम्पूर्ण शोभासे सम्पन्न, दिव्य तथा अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला था॥ २७॥

वह सभीको पवित्र कर देनेवाली तथा अनेक तीर्थोंका निर्माण करनेवाली विष्णुपदी सती श्रीगंगाजीसे घिरा हुआ तथा अत्यन्त निर्मल था॥ २८॥

शिवजीके परम प्रिय कैलास नामक इस प्रकारके पर्वतको देखकर मुनीश्वरोंसहित विष्णु आदि देवता आश्चर्यचकित हो गये॥ २९॥

उन देवताओंने उस कैलासके सन्निकट शिवके मित्र कुबेरकी अलका नामक परम दिव्य तथा रम्य पुरीको देखा॥ ३०॥

उन्होंने उसके पास ही सौगन्धिक नामक दिव्य वन भी देखा, जो अनेक प्रकारके दिव्य वृक्षोंसे शोभित था और जहाँ [पक्षियोंकी] अद्भुत ध्वनि हो रही थी॥ ३१॥

उससे बाहर नन्दा एवं अलकनन्दा नामक दिव्य तथा परम पावन सरिताएँ बह रही थीं, जो दर्शनमात्रसे ही [मनुष्योंके] पापोंका विनाश कर देती हैं॥ ३२॥

देवस्त्रियाँ प्रतिदिन अपने लोकसे आकर उनका जल पीतीं और स्नान करके रतिसे आकृष्ट होकर पुरुषोंके साथ विहार करती हैं॥ ३३॥

उसके बाद उस अलकापुरी तथा सौगन्धिक वनको छोड़कर आगेकी ओर जाते हुए उन देवताओंने समीपमें ही शंकरजीके वटवृक्षको देखा॥ ३४॥

वह [वटवृक्ष] उस पर्वतके चारों ओर छाया फैलाये हुए था, उसकी शाखाएँ तीन ओर फैली हुई थीं, उसका घेरा सौ योजन ऊँचा था, वह घोंसलोंसे विहीन था और तापसे रहित था। उसका दर्शन [केवल] पुण्यात्माओंको ही होता है। वह अत्यन्त रमणीय, परम पावन, शिवजीका योगस्थल, दिव्य योगियोंके निवासके

योग्य तथा अत्युत्तम था॥ ३५-३६॥

विष्णु आदि सभी देवताओंने महायोगमय तथा मुमुक्षुओंको शरण प्रदान करनेवाले उस वटवृक्षके नीचे बैठे हुए शिवजीको देखा॥ ३७॥

शान्त स्वभाववाले, अत्यन्त शान्त विग्रहवाले, शिवभक्तिमें तत्पर तथा महासिद्ध [सनक आदि] ब्रह्मपुत्र प्रसन्नताके साथ उनकी उपासना कर रहे थे॥ ३८॥

गुह्यकों एवं राक्षसोंके पति उनके मित्र कुबेर अपने गणों तथा कुटुम्बीजनोंके साथ विशेषरूपसे उनकी सेवा कर रहे थे। वे परमेश्वर शिव तपस्वीजनोंको प्रिय लगनेवाले सुन्दर रूपको धारण किये हुए थे, वात्सल्यके कारण वे सम्पूर्ण विश्वके मित्ररूप प्रतीत हो रहे थे और भस्म आदिसे उनके अंगोंकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ३९-४०॥

हे मुने! आपके पूछनेपर कुशासनपर बैठे हुए वे शिव सभी सज्जनोंको सुनाते हुए आपको ज्ञानका उपदेश दे रहे थे। वे अपना बायाँ चरण अपनी दायीं जाँघपर और बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रखे कलाईमें रुद्राक्षकी माला डाले सुन्दर तर्कमुद्रामें विराजमान थे॥ ४१-४२॥

इस प्रकारके स्वरूपवाले शिवको देखकर उस समय विष्णु आदि सभी देवताओंने शीघ्रतासे नम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। तब सज्जनोंके शरणदाता प्रभु रुद्रने मेरे साथ आये हुए विष्णुको देखकर उठ करके सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया॥ ४३-४४॥

विष्णु आदि देवताओंने जब भगवान् शिवजीके चरणोंमें प्रणाम किया, तब उन्होंने भी उसी प्रकार मुझे नमस्कार किया, जिस प्रकार लोकोंको सद्गति प्रदान करनेवाले भगवान् विष्णु कश्यपको प्रणाम करते हैं॥ ४५॥

तब शिवजीने देवताओं, सिद्धों, गणाधीशों और महर्षियोंसे नमस्कृत तथा वन्दित विष्णुसे आदरपूर्वक वार्तालाप किया॥ ४६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें शिवके दर्शनका वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

विष्णु आदि बोले—हे देवदेव! हे महादेव! लोकाचारका प्रदर्शन करनेवाले हे प्रभो! आपकी कृपासे हमलोग आप परमेश्वर शम्भुको परम ब्रह्म मानते हैं॥ १॥

हे परमेश्वर! हे तात! आप सम्पूर्ण संसारको मोहनेवाली अपनी उत्कृष्ट तथा दुर्जेय मायासे हमें क्यों मोहित कर रहे हैं?॥ २॥

आप संसारके योनि एवं बीजभूत प्रकृति तथा पुरुषसे भी परे हैं। आप परब्रह्म हैं एवं मन तथा वाणीके विषयसे परे हैं॥ ३॥

आप ही अपनी इच्छासे इस विश्वका सृजन करते हैं, पालन करते हैं तथा संहार भी करते हैं। जैसे मकड़ी अपने मुँहसे जाला बनाती है तथा उसको पुनः समेट लेती है, उसी प्रकार आप भी अपनी शक्तिके द्वारा अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते रहते हैं॥ ४॥

हे ईशान! हे विभो! आपने ही दयालु होकर वेदत्रयीकी रक्षाके लिये दक्षरूपी सूत्रके द्वारा यज्ञकी रचना की है॥ ५॥

आपने ही संसारमें उन [वैदिक] मर्यादाओंकी स्थापना की है, जिनपर वेदमार्गपरायण तथा दृढ़-व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण लोग श्रद्धा करते हैं॥ ६॥

हे विभो! आप ही मंगलोंके कर्ता हैं, आप ही अपनों और दूसरोंको सुख प्रदान करनेवाले हैं और आप ही अमंगलोंका भी हितकारी अथवा अहितकारी या

मिश्रित फल देनेवाले हैं ॥ ७ ॥

हे प्रभो! आप ही सदा सब कर्मोंका फल प्रदान करनेवाले हैं। जगत्‌के समस्त प्राणी पशु कहे गये हैं, उनकी रक्षाके कारण ही आपका नाम पशुपति है—ऐसा वेदोंमें कहा गया है ॥ ८ ॥

आपसे भिन्न बुद्धि होनेके कारण ही कर्मपर विश्वास करनेवाले, मर्मभेदी वचन बोलनेवाले, दुरात्मा, दुर्बुद्धि लोग ही ईर्ष्यावश कटुवाक्योंसे दूसरोंको कष्ट पहुँचाते हैं ॥ ९ ॥

हे विभो! दुर्दैवद्वारा मारे गये उन लोगोंका वध क्या आपके द्वारा होना चाहिये, हे भगवन्! हे परमेशान! हे परप्रभो! आप कृपा कीजिये ॥ १० ॥

परम शान्त, रुद्र ब्रह्मको नमस्कार है। परमात्मा, जटाधारी, स्वयंप्रकाश महान् महेशको हमारा नमस्कार है ॥ ११ ॥

आप ही प्रजापतियोंके स्रष्टा, धाता, प्रपितामह, त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम)-स्वरूप, निर्गुण एवं प्रकृति तथा पुरुषसे परे हैं ॥ १२ ॥

नीलकण्ठ, विधाता, परमात्मा, विश्व, विश्वके बीज और जगत्‌के आनन्दभूत आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥

[हे प्रभो!] आप ही ॐकार, वषट्कार, सभीके आदिप्रवर्तक, हन्तकार, स्वधाकार एवं हव्य-कव्यके सदा भोक्ता हैं ॥ १४ ॥

हे धर्मपरायण! आपने इस यज्ञका विध्वंस क्यों किया? हे महादेव! आप तो ब्राह्मणोंके रक्षक हैं, तब हे विभो! आप इस यज्ञके विनाशक कैसे बन गये? ॥ १५ ॥

हे प्रभो! आप ब्राह्मण, गौ तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले एवं सभी प्राणियोंको शरण प्रदान करनेवाले तथा अनन्त हैं ॥ १६ ॥

हे भगवन्! हे रुद्र! हे सूर्यके समान अमित तेजवाले! आपको प्रणाम है। रसरूप, जलरूप, जगन्मय-स्वरूप आप भव देवताको नमस्कार है ॥ १७ ॥

सुगन्धवाले पृथ्वीस्वरूप आप शर्वको नमस्कार है। अग्निस्वरूप महातेजस्वी आप रुद्रको नमस्कार है ॥ १८ ॥

आप वायुरूप, स्पर्शरूप ईश्वरको नमस्कार है, आप पशुओंके पति, यजमान एवं विधाताको नमस्कार है ॥ १९ ॥

आकाशस्वरूप शब्दवाले आप भीमको नमस्कार है। सोमस्वरूपसे कर्ममें प्रवृत्त करनेवाले आप महादेवको नमस्कार है ॥ २० ॥

आप उग्र, सूर्यरूप कर्मयोगीको नमस्कार है। हे रुद्र! कालोंके भी काल एवं क्रोधस्वरूप आपके लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥

शिव, भीम एवं कल्याण करनेवाले आप शिव-शंकरको नमस्कार है। [हे प्रभो!] आप उग्र हैं, सभी प्राणियोंके नियन्ता हैं एवं हमारा कल्याण करनेवाले हैं ॥ २२ ॥

आप मयस्कर [सुख प्रदान करनेवाले], विश्वरूप, ब्रह्म, दुःखोंका नाश करनेवाले, अम्बिकापति तथा उमापति हैं, आपको नमस्कार है ॥ २३ ॥

शर्व, सर्वरूप, पुरुषरूप, परात्मा, सत् एवं असत्‌की अभिव्यक्तिसे हीन, महत्तत्त्वके कारण, संसारमें अनेक प्रकारसे उत्पन्न होनेवाले, प्रभूतस्वरूप, नीलस्वरूप, नीलरुद्र, कद्रुद्र एवं प्रचेताको बार-बार नमस्कार है ॥ २४-२५ ॥

आप मीढुष्टम, देव तथा शिपिविष्टको नमस्कार है। देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले तथा सर्वश्रेष्ठको नमस्कार है ॥ २६ ॥

तारकमन्त्रस्वरूप, सबका उद्धार करनेवाले, तरुणरूप, परमतेजस्वी, हरिकेश, देव महेश्वरको बार-बार नमस्कार है ॥ २७ ॥

देवताओंका कल्याण करनेवाले, सभी ऐश्वर्योंसे युक्त, परमात्मा तथा परम आपको नमस्कार है। आप कालकण्ठको नमस्कार है। सुवर्णस्वरूप, परमेश, सुवर्णमय शरीरवाले, भीम, भीमरूप एवं भीमकर्ममें रत रहनेवाले आपको नमस्कार है ॥ २८-२९ ॥

भस्मसे लिप्त शरीरवाले, रुद्राक्षका आभूषण धारण करनेवाले तथा ह्रस्व-दीर्घ-वामनस्वरूपवाले आपको

बार-बार नमस्कार है॥ ३०॥

हे देव! दूर रहनेवालों तथा आगे रहनेवालोंका वध करनेवाले आपको नमस्कार है। धनुष, शूल, गदा तथा हल धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। अनेक आयुधोंको धारण करनेवाले, दैत्य-दानवोंका विनाश करनेवाले, सद्य, सद्यरूप तथा सद्योजात आपको नमस्कार है। वाम, वामरूप तथा वामनेत्र आपको नमस्कार है। अघोर, परेश एवं विकटको बार-बार नमस्कार है॥ ३१—३३॥

तत्पुरुष, नाथ, पुराणपुरुष, पुरुषार्थ प्रदान करनेवाले, व्रतधारी परमेष्ठीको नमस्कार है। ईशान, ईशस्वरूप आपको बार-बार नमस्कार है। ब्रह्म, ब्रह्मस्वरूप एवं साक्षात् परमात्मस्वरूपको नमस्कार है॥ ३४-३५॥

आप उग्र हैं, सभी दुष्टोंका नियन्त्रण एवं हम देवताओंका कल्याण करनेवाले हैं। कालकूट विषका पान करनेवाले, देवताओं आदिकी रक्षा करनेवाले, वीर, वीरभद्र, वीरोंकी रक्षा करनेवाले, त्रिशूलधारी, पशुपति, महादेव, महान् आपको नमस्कार है॥ ३६-३७॥

वीरात्मा, श्रेष्ठ विद्यावाले, श्रीकण्ठ, पिनाकी, अनन्त, सूक्ष्म, मृत्यु तथा क्रोधस्वरूपवाले आपको बार-बार नमस्कार है। पर, परमेश, परसे भी पर, परात्पर, सर्वैश्वर्य-सम्पन्न तथा विश्वमूर्ति आपको नमस्कार है॥ ३८-३९॥

विष्णुको अपना मित्र माननेवाले, विष्णुको अपना कुटुम्ब माननेवाले, भानुरूप, भैरव, सबको शरण देनेवाले, त्रिलोचन एवं [सर्वत्र] विहार करनेवाले [शिवजी]-को प्रणाम है॥ ४०॥

मृत्युंजय, शोकस्वरूप, त्रिगुण, गुणरूप, सूर्य-चन्द्र-अग्निरूप नेत्रवाले तथा समस्त कारणोंके सेतुस्वरूप आपको नमस्कार है। आपने ही अपने तेजसे सारे जगत्को व्याप्त किया है। आप परब्रह्म, विकाररहित, चिदानन्द एवं प्रकाशवान् हैं॥ ४१-४२॥

हे महेश्वर! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र आदि समस्त देव तथा अन्य मुनिगण आपसे ही उत्पन्न हुए हैं॥ ४३॥

आप ही आठ प्रकारसे अपने शरीरको विभक्तकर जगत्की रक्षा करते हैं, इस कारण आप अष्टमूर्ति हैं। आप ही ईश्वर, जगत्के आदिकारण तथा करुणामय हैं॥ ४४॥

आपके भयसे वायु सर्वदा बहता रहता है, आपके भयसे अग्नि जलती है, आपके भयसे सूर्य तपता है तथा आपके ही भयसे मृत्यु सर्वत्र दौड़ती रहती है॥ ४५॥

हे दयासिन्धो! हे महेशान! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये। हमलोग नष्ट और कर्तव्यशून्य हो गये हैं, अत: हमलोगोंकी रक्षा कीजिये॥ ४६॥

हे करुणानिधान! हे नाथ! आपने सदैव ही आपत्तियोंमें हमलोगोंकी रक्षा की है। हे शम्भो! उसी प्रकार आज भी हमलोगोंकी रक्षा कीजिये॥ ४७॥

हे नाथ! हे दुर्गेश! हे कृपा करनेवाले! आप प्रजापति दक्षके अपूर्ण यज्ञका उद्धार कीजिये॥ ४८॥

भग देवता पूर्ववत् नेत्र प्राप्त कर लें, यजमान दक्ष जीवित हो जायँ, पूषा अपने दाँतोंको पूर्ववत् प्राप्त कर लें तथा महर्षि भृगुकी दाढ़ी पूर्ववत् हो जाय॥ ४९॥

हे शंकर! शस्त्रोंसे तथा पत्थरोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले तथा आपके द्वारा अनुगृहीत देवता आदिको आरोग्य प्राप्त हो जाय॥ ५०॥

हे नाथ! इस शेष यज्ञकर्ममें आपका ही पूर्ण भाग हो। आपके उसी रुद्रभागसे ही यज्ञकी पूर्ति होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ५१॥

यह कहकर ब्रह्मासहित विष्णुदेव हाथ जोड़कर क्षमा करानेके लिये उद्यत हो दण्डके समान पृथिवीपर लेट गये॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें देवताओंद्वारा स्तुति-वर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवका देवता आदिपर अनुग्रह, दक्षयज्ञ-मण्डपमें पधारकर दक्षको जीवित करना तथा दक्ष और विष्णु आदिद्वारा शिवकी स्तुति

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] मुझ ब्रह्मा, लोकपाल, प्रजापति तथा मुनियोंसहित विष्णुके अनुनय-विनय करनेपर परमेश्वर शिव प्रसन्न हो गये। विष्णु आदि देवताओंको आश्वासन देकर उनपर परम अनुग्रह करते हुए करुणानिधान परमेश्वर शिवजी हँसकर कहने लगे—॥ १-२॥

श्रीमहादेवजी बोले—हे श्रेष्ठ देवताओ! आप दोनों सावधान होकर मेरी बात सुनें, मैं सच्ची बात कह रहा हूँ, हे तात! मैं आप दोनोंका क्रोध सर्वदा सहता रहता हूँ। बालकों अर्थात् अज्ञानियोंके द्वारा किये गये अपराधका मैं न तो वर्णन करता हूँ और न चिन्तन ही करता हूँ। इसपर भी मेरी मायासे भ्रान्त प्राणियोंके शिक्षणार्थ ही मैं दण्ड धारण करता हूँ॥ ३-४॥

दक्षके यज्ञका विध्वंस मैंने कभी नहीं किया है। दक्ष स्वयं ही दूसरोंसे द्वेष करते हैं। दूसरोंके प्रति जैसा व्यवहार किया जायगा, वह अपने लिये ही फलित होगा। अतः दूसरोंको कष्ट देनेवाला कार्य कभी नहीं करना चाहिये, जो दूसरोंसे द्वेष करता है, वह द्वेष अपने लिये ही होता है॥ ५-६॥

दक्षका मस्तक जल गया है, इसलिये इनके सिरके स्थानमें बकरेका सिर जोड़ दिया जाय। भग देवता मित्रकी आँखसे यज्ञका भाग देखें। हे तात! पूषा नामक देवता, जिनके दाँत टूट गये हैं, यजमानके दाँतोंसे भलीभाँति पिसे हुए अन्नका भक्षण करें। यह मैंने सच्ची बात बतायी है। मेरा विरोध करनेवाले भृगुकी दाढ़ीके स्थानमें बकरेकी दाढ़ी लगा दी जाय। शेष सभी देवताओंके, जिन्होंने मुझे यज्ञका उच्छिष्ट भाग दिया, सारे अंग पहलेकी भाँति ठीक हो जायँ। याज्ञिकोंमेंसे जिनकी भुजाएँ टूट गयी हैं, वे अश्विनीकुमारोंकी भुजाओंसे और जिनके हाथ नष्ट हो गये हैं, वे पूषाके हाथोंसे अपना काम चलायें। यह मैंने आपलोगोंके प्रेमवश कहा है॥ ७—१०॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार कहकर वेदका अनुसरण करनेवाले सुरसम्राट् चराचरपति दयालु परमेश्वर महादेवजी चुप हो गये। भगवान् शंकरका वह वचन सुनकर श्रीविष्णु और ब्रह्मासहित सम्पूर्ण देवता सन्तुष्ट हो गये। वे तत्काल साधुवाद देने लगे। तदनन्तर भगवान् शम्भुको आमन्त्रित करके मुझ ब्रह्मा और देवर्षियोंके साथ भगवान् विष्णु अत्यन्त हर्षित हो पुनः दक्षकी यज्ञशालाकी ओर चले॥ ११—१३॥

इस प्रकार उनकी प्रार्थनासे भगवान् शम्भु विष्णु आदि देवताओंके साथ कनखलमें स्थित प्रजापति दक्षकी यज्ञशालामें गये। उस समय रुद्रदेवने वहाँ यज्ञका और

विशेषतः देवताओं तथा ऋषियोंका विध्वंस, जो वीरभद्रके द्वारा किया गया था, उसे देखा॥ १४-१५॥

स्वाहा, स्वधा, पूषा, तुष्टि, धृति, सरस्वती, अन्य समस्त ऋषि, पितर, अग्नि तथा अन्यान्य बहुत-से यक्ष, गन्धर्व और राक्षस वहाँ पड़े थे। उनमेंसे कुछ लोगोंके अंग तोड़ डाले गये थे। कुछ लोगोंके बाल नोंच लिये गये थे और कितने ही उस समरांगणमें मरे पड़े थे॥ १६-१७॥

उस यज्ञकी वैसी दुरवस्था देखकर भगवान् शंकरने

अपने गणनायक पराक्रमी वीरभद्रको बुलाकर हँसते हुए कहा—हे महाबाहु वीरभद्र! यह तुमने कैसा काम किया? हे तात! थोड़ी ही देरमें देवता तथा ऋषि आदिको बड़ा भारी दण्ड दे दिया! हे तात! जिसने ऐसा [द्रोहपूर्ण] कार्य किया तथा इस विलक्षण यज्ञका आयोजन किया और जिसे ऐसा फल मिला, उस दक्षको तुम शीघ्र यहाँ ले आओ॥ १८—२०॥

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर वीरभद्रने शीघ्रतापूर्वक दक्षका धड़ लाकर उन शम्भुके समक्ष डाल दिया॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उसे सिररहित देख लोककल्याणकारी भगवान् शंकरने आगे खड़े हुए वीरभद्रसे हँसकर पूछा— दक्षका सिर कहाँ है? तब प्रभावशाली वीरभद्रने कहा— हे शंकर! मैंने तो उसी समय दक्षके सिरको आगमें होम कर दिया था॥ २२-२३॥

वीरभद्रकी यह बात सुनकर भगवान् शंकरने देवताओंको प्रसन्नतापूर्वक वैसी ही आज्ञा दी, जो पहलेसे दे रखी थी। भगवान् भवने उस समय जो कुछ कहा, उसकी मेरे द्वारा पूर्ति कराकर श्रीहरि आदि सब देवताओंने भृगु आदि सबको शीघ्र ही ठीक कर दिया॥ २४-२५॥

तदनन्तर शम्भुके आदेशसे प्रजापति दक्षके धड़के साथ सवनीय पशु—बकरेका सिर जोड़ दिया गया। उस

सिरके जोड़े जाते ही शम्भुकी कृपादृष्टि पड़नेसे प्रजापति दक्ष प्राण प्राप्त करके तत्क्षण सोकर जगे हुए पुरुषकी भाँति उठकर खड़े हो गये॥ २६-२७॥

उठते ही दक्षने प्रसन्नचित्त होकर प्रेमपूर्वक अपने सामने करुणानिधि भगवान् शंकरको देखा। पहले महादेवजीसे द्वेष करनेके कारण उनका अन्त:करण मलिन हो गया था, परंतु उस समय शिवजीके दर्शनसे वे तत्काल शरद् ऋतुके चन्द्रमाकी भाँति निर्मल हो गये॥ २८-२९॥

यद्यपि वे [प्रेमके वशीभूत होकर] मनमें शिवजीकी स्तुति करनेकी इच्छा कर रहे थे, किंतु उन्हें उसी समय सतीके शरीरत्यागका स्मरण हो गया, इसलिये वे उत्कण्ठासे व्याकुल होनेके कारण स्तुति नहीं कर सके॥ ३०॥

तदनन्तर लज्जित होकर दक्ष प्रजापति प्रसन्नचित्त हो विनम्रतापूर्वक लोकका कल्याण करनेवाले शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ३१॥

दक्ष बोले—वरदानी, श्रेष्ठ, महेश्वर, ज्ञाननिधि, सनातन देवको नमस्कार करता हूँ। देवाधिदेवोंके भी ईश्वर, सुखरूप एवं संसारके एकमात्र बन्धु भगवान् शंकरजीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३२॥

हे विश्वेश्वर! [आप] विश्वरूप, पुरातन, ब्रह्म तथा आत्मस्वरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं शर्वको नमस्कार करता हूँ। मैं संसारके भावोंका चिन्तन करनेवाले परात्पर शंकरको नमस्कार करता हूँ॥ ३३॥

हे देवदेव! हे महादेव! आपको नमस्कार है, मुझपर कृपा कीजिये। हे कृपानिधे! हे शम्भो! आज मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। हे शंकर! आपने दण्डके बहाने ही मुझपर अनुग्रह किया है। मैं खल और मूर्ख हूँ; हे देव! मुझे आपके तत्त्वका ज्ञान नहीं था॥ ३४-३५॥

हे प्रभो! आप विष्णु एवं ब्रह्मादि देवोंके भी सेव्य, वेदोंसे जाननेयोग्य तथा महेश्वर हैं। आज मुझे आपके तात्त्विक स्वरूपका ज्ञान हुआ है, आप सभी लोगोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। आप सत्पुरुषोंके लिये कल्पवृक्ष हैं और दुष्टोंको सदा दण्ड प्रदान करनेवाले हैं। आप सर्वथा स्वतन्त्र परमात्मा हैं एवं भक्तोंको अभीष्ट वर प्रदान करनेवाले हैं॥ ३६-३७॥

आप परमेश्वरने ही अपने मुखसे विद्या, तप तथा व्रत धारण करनेवाले इन ब्राह्मणोंको तत्त्वका साक्षात्कार

करनेके लिये उत्पन्न किया है ॥ ३८ ॥

समस्त गोरूप पशुओंकी रक्षा जिस प्रकार गोपतिद्वारा की जाती है, उसी प्रकार आप सभी विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं। आप मर्यादाके परिपालक तथा दुर्जनोंके लिये दण्ड धारण करते हैं। हे भगवन्! मैंने अनेक प्रकारके कटु वचनरूपी बाणोंसे आप परमेश्वरको बींध डाला था, फिर भी अत्यन्त क्षीण आशावाले इन देवताओंसहित मुझपर आपने दया ही की है ॥ ३९-४० ॥

इसलिये हे शम्भो! हे दीनबन्धो! हे भक्तवत्सल! आप परात्पर भगवान् मेरे द्वारा की गयी पूजासे सन्तुष्ट हो जाइये ॥ ४१ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार लोकका कल्याण करनेवाले महाप्रभु महेश्वरकी विनम्रतापूर्वक स्तुतिकर प्रजापति मौन हो गये। उसके बाद भगवान् विष्णु प्रसन्नचित्त होकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करके गद्गद वाणीसे वृषभध्वज शिवकी स्तुति करने लगे— ॥ ४२-४३ ॥

विष्णु बोले—हे महादेव! हे महेशान! लोकपर अनुग्रह करनेवाले हे दीनबन्धो! हे दयानिधे! आप परब्रह्म परमात्मा हैं। हे प्रभो! आप सर्वव्यापी स्वतन्त्र हैं, आपका यश वेदोंसे ही जाना जा सकता है। आपने हमलोगोंपर कृपा की है, उससे हमलोग कृतकृत्य हो गये ॥ ४४-४५ ॥

हे महेश्वर! इस मेरे भक्त दुष्ट दक्षने पूर्वमें आपकी जो निन्दा की है, उसे आप आज क्षमा कीजिये; क्योंकि आप निर्विकार हैं। हे शंकर! मैंने भी मूर्खतावश आपका अपराध किया है, जो दक्षके पक्षसे आपके गण वीरभद्रके साथ युद्ध किया ॥ ४६-४७ ॥

हे सदाशिव! आप मेरे स्वामी हैं, आप परब्रह्म हैं, मैं आपका दास हूँ, आप सभीके पिता हैं। इसलिये आपको हम सबका पालन करना चाहिये ॥ ४८ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! आप स्वतन्त्र, परमात्मा, परमेश्वर, अद्वय तथा अविनाशी हैं ॥ ४९ ॥

हे ईश्वर! हे देव! आपने मेरे इस पुत्रपर अनुग्रह किया है, अब आप अपना अपमान भूलकर दक्षके यज्ञका उद्धार कीजिये। हे देवेश! अब आप प्रसन्न हो जाइये और अपने सभी प्रकारके शापोंसे इसका उद्धार कीजिये; आप ज्ञानवान् ही मुझे प्रेरणा देनेवाले हैं और आप ही निवारण करनेवाले हैं ॥ ५०-५१ ॥

हे महामुने! इस प्रकार परमात्मा महेश्वरकी स्तुति करके दोनों हाथ जोड़कर मैंने अपने मस्तकको झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर इन्द्र आदि देवतागण एवं लोकपाल सावधान होकर प्रसन्न मुखकमलवाले शंकरजीकी स्तुति करने लगे ॥ ५२-५३ ॥

उसके बाद अन्य सभी देवता, सिद्ध, ऋषि एवं प्रजापतिगण भी प्रसन्नताके साथ शिवजीकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् उपदेवता, नाग, सदस्य तथा ब्राह्मणलोग भी सद्भक्तिसे प्रणामकर अलग-अलग स्तुति करने लगे ॥ ५४-५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दक्षके दुःखनिराकरणका वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवका दक्षको अपनी भक्तवत्सलता, ज्ञानी भक्तकी श्रेष्ठता तथा तीनों देवोंकी एकता बताना, दक्षका अपने यज्ञको पूर्ण करना, देवताओंका अपने-अपने लोकोंको प्रस्थान तथा सतीखण्डका उपसंहार और माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार रमापति विष्णु, मेरे, देवताओं, ऋषियों तथा अन्य लोगोंके द्वारा स्तुति करनेपर महादेवजी बड़े प्रसन्न हो गये ॥ १ ॥

तब वे शम्भु कृपादृष्टिसे सभी ऋषियों एवं देवताओंको देखकर तथा मुझ ब्रह्मा और श्रीविष्णुका समाधान करके दक्षसे इस प्रकार कहने लगे— ॥ २ ॥

महादेव बोले—हे प्रजापते! हे दक्ष! मैं [जो कुछ] कह रहा हूँ, सुनिये, मैं प्रसन्न हूँ। यद्यपि मैं

सबका ईश्वर हूँ और स्वतन्त्र हूँ, फिर भी सदा भक्तोंके अधीन रहता हूँ॥ ३॥

चार प्रकारके पुण्यात्मा मेरा भजन करते हैं। हे दक्ष! हे प्रजापते! उनमें पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं॥ ४॥

उनमें आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और चौथा ज्ञानी है। पहलेके तीन तो सामान्य [भक्त] हैं और चौथा विशिष्ट महत्त्वका है॥ ५॥

उनमें चौथा ज्ञानी ही मुझे अधिक प्रिय है और वह मेरा रूप माना गया है। उससे बढ़कर दूसरा कोई मुझे प्रिय नहीं है, मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ॥ ६॥

वेद-वेदान्तके पारगामी विद्वान् ही मुझ आत्मज्ञानीको ज्ञानके द्वारा जान सकते हैं, अल्प बुद्धिवाले ही ज्ञानके बिना मुझे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं॥ ७॥

कर्मके वशीभूत मूढ़ मानव न वेदोंसे, न यज्ञोंसे, न दानोंसे और न तपस्यासे ही मुझे पा सकते हैं॥ ८॥

आप केवल कर्मके द्वारा ही इस संसारको पार करना चाहते थे, इसीलिये रुष्ट होकर मैंने इस यज्ञका विनाश किया है। अत: हे दक्ष! आजसे आप बुद्धिके द्वारा मुझे परमेश्वर मानकर ज्ञानका आश्रय लेते हुए सावधान होकर कर्म कीजिये॥ ९-१०॥

प्रजापते! आप उत्तम बुद्धिके द्वारा मेरी दूसरी बात भी सुनिये, मैं अपने सगुण स्वरूपके विषयमें भी धर्मकी दृष्टिसे गोपनीय बात आपसे कहता हूँ॥ ११॥

जगत्का परम कारणरूप मैं ही ब्रह्मा और विष्णु हूँ। मैं सबका आत्मा, ईश्वर, साक्षी, स्वयंप्रकाश तथा निर्विशेष हूँ॥ १२॥

हे मुने! अपनी [त्रिगुणात्मिका] मायामें प्रवेश करके मैं ही जगत्का सृजन, पालन और संहार करता हुआ क्रियाओंके अनुरूप [ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र] नामोंको धारण करता हूँ॥ १३॥

उस अद्वितीय (भेदरहित), केवल (विशुद्ध) मुझ परब्रह्म परमात्मामें अज्ञानी पुरुष ही ब्रह्म, ईश्वर तथा अन्य समस्त जीवोंको भिन्न रूपसे देखता है॥ १४॥

जैसे मनुष्य अपने सिर, हाथ आदि अंगोंमें [ये मुझसे भिन्न हैं, ऐसी] परकीय बुद्धि कभी नहीं करता, उसी तरह मेरा भक्त सभी प्राणियोंमें भेदबुद्धि नहीं रखता॥ १५॥

हे दक्ष! सभी भूतोंके आत्मास्वरूप तथा एक ही भाववाले [ब्रह्मा, विष्णु और मुझ शिव]—इन तीनों देवताओंमें जो भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है॥ १६॥

जो नराधम तीनों देवताओंमें भेदबुद्धि रखता है, वह निश्चय ही जबतक चन्द्रमा और तारे रहते हैं, तबतक नरकमें निवास करता है॥ १७॥

मुझमें परायण होकर जो बुद्धिमान् मनुष्य सभी देवताओंकी पूजा करता है, उसे इस प्रकारका ज्ञान हो जाता है, जिससे उसकी शाश्वती मुक्ति हो जाती है॥ १८॥

विधाताकी भक्तिके बिना विष्णुकी भक्ति नहीं हो सकती और विष्णुकी भक्तिके बिना मेरी भक्ति कभी नहीं हो सकती है॥ १९॥

ऐसा कहकर कृपालु, सबके स्वामी परमेश्वर शिव सबको सुनाते हुए फिर यह वचन बोले—॥ २०॥

यदि कोई विष्णुभक्त मेरी निन्दा करेगा और मेरा भक्त विष्णुकी निन्दा करेगा, तो आपको दिये हुए समस्त शाप उन्हीं दोनोंको प्राप्त होंगे और निश्चय ही उन्हें तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति नहीं हो सकती॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! भगवान् महेश्वरके इस सुखकर वचनको सुनकर वहाँ [उपस्थित] सभी देवता, मुनि आदि अत्यन्त हर्षित हुए॥ २२॥

शिवको अखिलेश्वर मानकर दक्ष कुटुम्बसहित प्रसन्नतापूर्वक शिवभक्तिमें तत्पर हो गये और वे देवता आदि भी शिवभक्तिपरायण हो गये॥ २३॥

जिसने जिस प्रकारसे परमात्मा शम्भुकी स्तुति की थी, उसे उसी प्रकार सन्तुष्टचित्त हुए शम्भुने वर दिया॥ २४॥

हे मुने! उसके बाद भगवान् शिवकी आज्ञा पाकर प्रसन्नचित्त हुए शिवभक्त दक्षने शिवजीकी कृपासे यज्ञ पूरा किया॥ २५॥

उन्होंने देवताओंको यज्ञभाग दिया और शिवजीको पूर्ण भाग दिया। साथ ही उन्होंने ब्राह्मणोंको दान भी दिया। इस तरह उन्हें शम्भुका अनुग्रह प्राप्त हुआ॥ २६॥

इस प्रकार महादेवजीके उस महान् कर्मका विधिपूर्वक वर्णन किया गया। प्रजापति दक्षने ऋत्विजोंके सहयोगसे

उस यज्ञकर्मको विधिवत् समाप्त किया॥ २७॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार परब्रह्मस्वरूप शंकरकी कृपासे दक्षका यज्ञ पूरा हुआ॥ २८॥

तदनन्तर सब देवता और ऋषि सन्तुष्ट होकर भगवान् शिवके यशका वर्णन करते हुए अपने-अपने स्थानको चले गये। दूसरे लोग भी उस समय वहाँसे सुखपूर्वक चले गये॥ २९॥

मैं और भगवान् विष्णु भी अत्यन्त प्रसन्न हो भगवान् शिवके सदा सर्वमंगलदायक सुयशका निरन्तर गान करते हुए अपने-अपने स्थानको सानन्द चल दिये॥ ३०॥

सत्पुरुषोंको आश्रय देनेवाले महादेवजी भी दक्षसे प्रीतिपूर्वक सम्मानित हो प्रसन्नताके साथ गणोंसहित अपने निवासस्थान कैलास पर्वतपर चले गये॥ ३१॥

अपने पर्वतपर आकर शम्भुने अपनी प्रिया सतीका स्मरण किया और प्रधान गणोंसे वह कथा कही॥ ३२॥

विज्ञानमय भगवान् शंकरने लौकिक गतिका अवलम्बनकर अपने सकामभावको प्रकट करते हुए तथा सतीचरित्र वर्णन करते हुए बहुत समय व्यतीत किया॥ ३३॥

हे मुने! वे सज्जनोंके शरणदाता, सबके स्वामी, अनीति न करनेवाले तथा परब्रह्म हैं, उन्हें मोह, शोक अथवा अन्य विकार कहाँसे हो सकता है!॥ ३४॥

जब मैं और विष्णु भी उनके भेदको कभी नहीं जान पाये, तो अन्य देवता, मुनि, मनुष्य आदि तथा योगिजनकी बात ही क्या है!॥ ३५॥

भगवान् शंकरकी महिमा अनन्त है, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् भी जाननेमें असमर्थ हैं, किंतु भक्तलोग उनकी कृपासे बिना श्रमके ही उत्तम भक्तिके द्वारा उसे जान लेते हैं॥ ३६॥

परमात्मा शिवमें एक भी विकार नहीं है, किंतु लोकपरायण वे सगुणरूप धारणकर अपना चरित्र लोगोंको दिखाते हैं। हे मुने! जिसे पढ़कर और सुनकर सभी लोगोंमें बुद्धिमान् वह व्यक्ति इस लोकमें उत्तम सुख एवं [अन्तमें] दिव्य सद्गति प्राप्त कर लेता है॥ ३७-३८॥

इस प्रकार दक्षकन्या सती [यज्ञमें] अपने शरीरको त्यागकर फिर हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुईं, यह बात प्रसिद्ध ही है॥ ३९॥

तत्पश्चात् वहाँ तपस्या करके गौरी शिवाने भगवान् शिवका पतिरूपमें वरण किया। वे उनकी वाम-अर्धांगिनी होकर अद्भुत लीलाएँ करने लगीं॥ ४०॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आपसे सतीके परम अद्भुत चरित्रका वर्णन किया, जो भोग-मोक्षको देनेवाला, दिव्य तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है॥ ४१॥

यह आख्यान कालुष्यरहित, पवित्र, दूसरोंको पवित्र करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला और पुत्र-पौत्ररूप फल प्रदान करनेवाला है॥ ४२॥

हे तात! जो भक्तिमान् पुरुष भक्तिभावसे इसे सुनता है और अन्य मनुष्योंको सुनाता है। वह [इस लोकमें] सम्पूर्ण कर्मोंका फल पाकर परलोकमें परमगति प्राप्त करता है॥ ४३॥

जो इस शुभ आख्यानको पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, वह भी समस्त सुखोंका उपभोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके द्वितीय सतीखण्डमें दक्षयज्ञके अनुसन्धानका वर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

॥ द्वितीय रुद्रसंहिताका द्वितीय सतीखण्ड पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीय रुद्रसंहिता [तृतीय—पार्वतीखण्ड]

पहला अध्याय

पितरोंकी कन्या मेनाके साथ हिमालयके विवाहका वर्णन

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! अपने पिताके यज्ञमें शरीरका त्यागकर दक्षकन्या सती देवी जगदम्बा किस प्रकार हिमालयकी पुत्री बनीं और किस तरह अत्यन्त उग्र तपस्या करके उन्होंने शिवजीको पतिरूपमें प्राप्त किया? मैं यह आपसे पूछ रहा हूँ, आप विशेष रूपसे बताइये ॥ १-२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आप शिवाके परम पावन, दिव्य, सभी पापोंको दूर करनेवाले, कल्याणकारी तथा उत्तम चरित्रको सुनिये ॥ ३ ॥

दक्षकन्या सती देवी जब प्रसन्नचित्त होकर शिवजीके साथ हिमालय पर्वतपर लीलापूर्वक क्रीड़ा करती थीं, उस समय मातृप्रेमसे भरी हुई हिमालयकी प्रिया मेना 'सम्पूर्ण सिद्धियोंसे युक्त यह मेरी पुत्री है'—ऐसा समझकर उनकी सेवामें संलग्न रहती थीं ॥ ४-५ ॥

हे मुने! दक्षकन्या सती देवीने जब पिता दक्षके द्वारा अपमानित होकर क्रोधित हो यज्ञमें अपना शरीर त्याग दिया, उस समय हिमालयप्रिया मेना शिवलोकमें स्थित उन भगवती सतीकी आराधना करना चाह रही थीं ॥ ६-७ ॥

उन्हींके गर्भसे मैं पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होऊँ—ऐसा हृदयमें विचार करके शरीरका त्याग करनेवाली सतीने हिमालयकी पुत्री होनेके लिये मनमें निश्चय किया ॥ ८ ॥

देहत्यागके अनन्तर समय आनेपर सभी देवताओंके द्वारा स्तुत वे भगवती सती प्रसन्नतापूर्वक मेनका (मेना)-की पुत्रीके रूपमें उत्पन्न हुईं ॥ ९ ॥

उन देवीका नाम पार्वती हुआ। उन्होंने नारदके उपदेशसे अत्यन्त कठोर तपस्याकर पुनः शिवजीको पतिरूपमें प्राप्त किया ॥ १० ॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाप्राज्ञ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आप मुझसे मेनकाकी उत्पत्ति, उनके विवाह तथा चरित्रका वर्णन कीजिये ॥ ११ ॥

जिनसे भगवती सतीने पुत्रीके रूपमें जन्म लिया, वे मेनका देवी धन्य हैं। इसीलिये वे पतिव्रता मेना सभी लोगोंकी मान्य और धन्य हैं ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हे मुने! आप पार्वतीकी माताके जन्म, विवाह एवं अन्य भक्तिवर्धक पावन चरित्रको सुनिये। हे मुनिश्रेष्ठ! उत्तर दिशामें पर्वतोंका राजा हिमालय नामक महान् पर्वत है। जो महातेजस्वी और समृद्धिशाली है ॥ १३-१४ ॥

जंगम तथा स्थावरभेदसे उसके दो रूप प्रसिद्ध हैं, मैं उसके सूक्ष्म स्वरूपका संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ। वह पर्वत रमणीय एवं अनेक प्रकारके रत्नोंका आकर (खान) है, जो पूर्व तथा पश्चिम समुद्रके भीतर प्रवेश करके पृथ्वीके मानदण्डकी भाँति स्थित है ॥ १५-१६ ॥

वह नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त है, अनेक शिखरोंके कारण विचित्र शोभासे सम्पन्न है और सुखी सिंह, व्याघ्र आदि पशुओंसे सदा सेवित रहता है ॥ १७ ॥

वह हिमका भण्डार है, अत्यन्त उग्र है, अनेक आश्चर्यजनक दृश्योंके कारण विचित्र है; देवता, ऋषि, सिद्ध और मुनि उसपर रहते हैं तथा वह भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है ॥ १८ ॥

वह तप करनेका स्थान है, अत्यन्त पावन है, महात्माओंको भी पवित्र करनेवाला है, तपस्यामें अत्यन्त शीघ्र सिद्धि प्रदान करता है, अनेक प्रकारकी धातुओंकी

खान है और शुभ है। वह दिव्य रूपवाला है, सर्वांगसुन्दर है, रमणीय है, शैलराजोंका भी राजा है, विष्णुका अंश है, विकाररहित एवं सज्जन पुरुषोंका प्रिय है॥ १९-२०॥

उस पर्वतने अपनी कुलपरम्पराकी स्थितिके लिये, धर्मकी अभिवृद्धिके लिये और देवताओं तथा पितरोंका हित करनेकी अभिलाषासे अपना विवाह करनेकी इच्छा की। हे मुनीश्वर! उसी समय देवतागण अपने पूर्ण स्वार्थका विचार करके दिव्य पितरोंके पास आकर उनसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—॥ २१-२२॥

देवता बोले—हे पितरो! आप सभी प्रसन्नचित्त होकर हमारी बात सुनें और यदि आपलोगोंको देवताओंका कार्य करना अभीष्ट हो, तो शीघ्र वैसा ही करें॥ २३॥

आपलोगोंकी मेना नामक जो ज्येष्ठ पुत्री प्रसिद्ध है, वह मंगलरूपिणी है, उसका विवाह आपलोग अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक हिमालय नामक पर्वतसे कर दीजिये। ऐसा करनेपर सभी लोगोंका महान् लाभ होगा और आपलोगोंके तथा देवताओंके दुःखोंका निवारण भी पग-पगपर होता रहेगा॥ २४-२५॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओंकी यह बात सुनकर पितरोंने परस्पर विचार करके कन्याओंके शापका स्मरण करके इस बातको स्वीकार कर लिया॥ २६॥

उन लोगोंने अपनी कन्या मेनाका विवाह विधिपूर्वक हिमालयके साथ कर दिया; उस मंगलमय विवाहमें महान् उत्सव हुआ॥ २७॥

वामदेव शंकरका स्मरणकर विष्णु आदि देवता तथा समस्त मुनिगण उस विवाहमें आये॥ २८॥

उन लोगोंने अनेक प्रकारके दान देकर उत्सव करवाया, तदनन्तर वे दिव्य पितरोंकी प्रशंसा करके हिमालयकी प्रशंसा करने लगे॥ २९॥

इसके बाद परम आनन्दसे युक्त वे सभी देवता तथा मुनीश्वर शिवा एवं शिवका स्मरण करते हुए अपने-अपने निवासस्थानको चले गये॥ ३०॥

उधर, पर्वतराज हिमालय भी अनेक प्रकारके उपहार प्राप्तकर उस प्रिया मेनाके साथ विवाह करके अपने घर आये और परम प्रसन्न हुए॥ ३१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! मैंने मेनाके साथ हिमालयके सुखद पवित्र विवाहका वर्णन कर दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें हिमाचलविवाह-वर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

पितरोंकी तीन मानसी कन्याओं—मेना, धन्या और कलावतीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त तथा सनकादिद्वारा प्राप्त शाप एवं वरदानका वर्णन

नारदजी बोले—हे महाप्राज्ञ! हे विधे! अब आदरपूर्वक मेनाकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये और शापके भी विषयमें बताइये, इस प्रकार मेरे सन्देहको दूर कीजिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! हे सुतवर्य! हे महाबुध! आप इन मुनिगणोंके साथ विवेकपूर्वक मेनाकी उत्पत्तिके वृत्तान्तको अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनिये, मैं कह रहा हूँ॥ २॥

हे मुने! मैंने अपने दक्ष नामक जिन पुत्रकी चर्चा पहले की थी; उनके यहाँ सृष्टिकी कारणभूता साठ कन्याएँ उत्पन्न हुईं॥ ३॥

उन्होंने उन कन्याओंका विवाह श्रेष्ठ कश्यप आदिके साथ किया। हे नारद! यह सारा वृत्तान्त आपको विदित ही है, अब प्रस्तुत कथाका श्रवण कीजिये॥ ४॥

उन्होंने उनमेंसे स्वधा नामकी कन्या पितरोंको दी। उस स्वधासे धर्ममूर्तिरूपा सौभाग्यवती तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। हे मुनीश्वर! उन कन्याओंके पवित्र, सदा विघ्नोंका हरण करनेवाले तथा महामंगल प्रदान करनेवाले नामोंको मुझसे सुनिये॥ ५-६॥

सबसे बड़ी कन्याका नाम मेना, मझली कन्याका नाम धन्या तथा अन्तिम कन्याका नाम कलावती था—ये सभी कन्याएँ पितरोंके मनसे प्रादुर्भूत हुई थीं॥ ७॥

ये अयोनिजा कन्याएँ लोकाचारके अनुसार स्वधाकी पुत्रियाँ कही गयी हैं। इनके पवित्र नामोंका उच्चारण करके मनुष्य समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ८॥

वे जगत्‌की वन्दनीया, लोकमाता, परमानन्दको देनेवाली, योगिनीस्वरूपा, उत्कृष्ट, ज्ञानकी निधि तथा तीनों लोकोंमें विचरण करनेवाली हुईं॥ ९॥

हे मुनीश्वर! एक समयकी बात है—वे तीनों बहनें भगवान् विष्णुके निवासस्थान श्वेतद्वीपमें उनके दर्शनके लिये गयीं। भक्तिपूर्वक विष्णुको प्रणाम तथा उनकी स्तुति करके वे उनकी आज्ञासे वहीं रुक गयीं। वहाँ उस समय बहुत बड़ा समाज एकत्रित था॥ १०-११॥

हे मुने! उसी अवसरपर [मुझ] ब्रह्माके पुत्र सनकादि सिद्धगण भी वहाँ गये और श्रीहरिको प्रणामकर वहीं उनकी आज्ञासे बैठ गये। तब सभी लोग सनकादि मुनियोंको देखकर वहाँ बैठे हुए लोकवन्दित देवता आदिको प्रणाम करके शीघ्र उठ खड़े हुए॥ १२-१३॥

किंतु हे मुने! वे तीनों बहनें परात्पर शंकरकी मायासे मोहित होनेके कारण प्रारब्धसे विवश हो नहीं उठीं॥ १४॥

शिवजीकी माया अत्यन्त प्रबल है, जो सब लोकोंको मोहित करनेवाली है। समस्त संसार उसीके अधीन है, वह शिवकी इच्छा कही जाती है॥ १५॥

उसीको प्रारब्ध भी कहा जाता है, उसके अनेक नाम हैं। वह शिवकी इच्छासे ही प्रवृत्त होती है, इसमें सन्देह नहीं है। उसी [शिवमाया]-के अधीन होकर उन कन्याओंने सनक आदिको प्रणाम नहीं किया। वे केवल उन्हें देखकर विस्मित हो बैठी रह गयीं॥ १६-१७॥

ज्ञानी होते हुए भी सनकादि मुनीश्वरोंने उनके उस प्रकारके व्यवहारको देखकर अत्यधिक असह्य क्रोध किया। तब शिवजीकी इच्छासे मोहित हुए योगीश्वर सनत्कुमार क्रोधित होकर दण्डित करनेवाला शाप देते हुए उनसे कहने लगे—॥ १८-१९॥

सनत्कुमार बोले—तुम तीनों बहनें पितरोंकी कन्या हो, तथापि मूर्ख, सद्‌ज्ञानसे रहित और वेदतत्त्वके ज्ञानसे शून्य हो॥ २०॥

अभिमानमें भरी हुई तुमलोगोंने न तो हमारा अभ्युत्थान किया और न ही अभिवादन किया, तुमलोग नरभावसे मोहित हो गयी हो, अतः इस स्वर्गसे दूर चली जाओ और अज्ञानसे मोहित होनेके कारण तुम तीनों ही मनुष्योंकी स्त्रियाँ बनो। इस प्रकार तुमलोग अपने कर्मके प्रभावसे इस प्रकारका फल प्राप्त करो॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—यह सुनकर वे साध्वी कन्याएँ आश्चर्यचकित हो गयीं और उनके चरणोंमें गिरकर विनम्रतासे सिर झुकाकर कहने लगीं॥ २३॥

पितृकन्याएँ बोलीं—हे मुनिवर्य! हे दयासागर! अब हमलोगोंपर प्रसन्न हो जाइये, हमलोगोंने मूढ़ होनेके कारण आपको श्रद्धासे प्रणाम नहीं किया॥ २४॥

हे विप्र! अतः हमलोगोंने उसका फल पाया। हे महामुने! इसमें आपका दोष नहीं है। आप हमलोगोंपर दया कीजिये, जिससे हमलोगोंको पुनः स्वर्गलोककी प्राप्ति हो॥ २५॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! तब उनकी यह बात सुनकर प्रसन्नचित्त वे मुनि शिवजीकी मायासे प्रेरित हो शापसे उद्धारका उपाय कहने लगे॥ २६॥

सनत्कुमार बोले—हे पितरोंकी तीनों कन्याओ! तुमलोग प्रसन्नचित्त होकर मेरी बात सुनो, यह तुम्हारे शोकका नाश करनेवाली और सदा ही तुम्हें सुख प्रदान करनेवाली है॥ २७॥

तुममेंसे जो ज्येष्ठ है, वह विष्णुके अंशभूत हिमालय-गिरिकी पत्नी होगी और पार्वती उसकी पुत्री होंगी॥ २८॥

योगिनीस्वरूपा धन्या नामक दूसरी कन्या राजा जनककी पत्नी होगी, उसकी कन्या महालक्ष्मी होंगी, जिनका नाम सीता होगा। सबसे छोटी कन्या कलावती वैश्य वृषभानकी पत्नी होगी, जिसकी पुत्रीके रूपमें द्वापरके अन्तमें राधाजी प्रकट होंगी॥ २९-३०॥

योगिनी मेनका पार्वतीके वरदानसे अपने पतिके साथ उसी शरीरसे परम पद कैलासको जायगी तथा यह धन्या जनकवंशमें उत्पन्न जीवन्मुक्त तथा महायोगी सीरध्वजको पतिरूपमें प्राप्तकर सीताको जन्म देगी तथा वैकुण्ठधामको जायगी॥ ३१-३२॥

वृषभानके साथ विवाह होनेके कारण जीवन्मुक्त कलावती भी अपनी कन्याके साथ गोलोक जायगी, इसमें संशय नहीं है॥ ३३॥

[इस संसारमें] बिना विपत्तिके किसको कहाँ महत्त्व प्राप्त होगा। उत्तम कर्म करनेवालोंके दुःख दूर हो जानेपर उन्हें दुर्लभ सुख प्राप्त होता है॥ ३४॥

तुमलोग पितरोंकी कन्याएँ हो और स्वर्गमें विलास करनेवाली हो। अब विष्णुका दर्शन हो जानेसे तुमलोगोंके कर्मका क्षय हो गया है॥ ३५॥

यह कहकर क्रोधरहित हुए मुनीश्वरने ज्ञान, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले शिवजीका स्मरण करके पुनः कहा—[हे पितृकन्याओ!] तुमलोग प्रीतिपूर्वक मेरी दूसरी बात भी सुनो, जो अत्यन्त सुखदायक है। शिवजीमें भक्ति रखनेवाली तुमलोग सदा धन्य, मान्य और बार-बार पूजनीय हो॥ ३६-३७॥

मेनाकी कन्या जगदम्बिका पार्वती देवी परम कठोर तपकर शिवजीकी पत्नी होंगी, धन्याकी पुत्री कही गयी सीता [भगवान्] रामकी पत्नी होंगी, जो लौकिक आचारका आश्रय लेकर उनके साथ विहार करेंगी और साक्षात् गोलोकवासिनी कलावतीपुत्री राधा अपने गुप्त स्नेहसे बँधी हुई श्रीकृष्णकी पत्नी होंगी॥ ३८—४०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर सबके द्वारा स्तुत वे भगवान् सनत्कुमार मुनि अपने भाइयोंसहित वहीं अन्तर्हित हो गये॥ ४१॥

हे तात! पितरोंकी मानसी कन्याएँ वे तीनों बहनें पापरहित हो सुख पाकर तुरंत अपने धामको चली गयीं॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पूर्वगतिवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

विष्णु आदि देवताओंका हिमालयके पास जाना, उन्हें उमाराधनकी विधि बता स्वयं भी देवी जगदम्बाकी स्तुति करना

नारदजी बोले—हे विधे! हे प्राज्ञ! हे महाबुद्धिमान्! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! इसके बाद विष्णुके सद्गुरु शिवका क्या चरित्र हुआ, उसको आप मुझसे कहिये॥ १॥

आपने मेनाके पूर्वजन्मकी शुभ एवं अद्भुत कथा कही। उनके विवाहप्रसंगको भी मैंने भलीभाँति सुन लिया, अब उनके उत्तम चरित्रको कहिये॥ २॥

हिमालयने मेनाके साथ विवाह करनेके बाद क्या किया? जगदम्बा पार्वतीने उनसे किस प्रकार जन्म लिया और कठोर तपकर किस प्रकार शिवजीको पतिरूपमें प्राप्त किया? यह सब बताइये और हे ब्रह्मन्! शंकरके यशका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ ३-४॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आप शंकरके कल्याणकारी उत्तम यशको सुनिये, जिसे सुनकर ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है और सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ ५॥

हे नारद! जब मेनाके साथ विवाह करके हिमवान् घर गये, तब तीनों लोकोंमें बड़ा भारी उत्सव हुआ॥ ६॥

हिमालयने भी अत्यन्त प्रसन्न होकर परमोत्सव मनाया और सद्बुद्धिसे ब्राह्मणों, बन्धुजनों एवं अन्य श्रेष्ठ लोगोंका अर्चन किया॥ ७॥

तत्पश्चात् सभी सन्तुष्ट ब्राह्मण, बन्धुजन तथा अन्यलोग उन्हें उत्तम आशीर्वाद देकर अपने-अपने निवासस्थानको चले गये। हिमालय भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने सुखदायक घरमें, अन्य रम्य स्थानमें तथा नन्दन आदि वनोंमें भी मेनाके साथ रमण करने लगे॥ ८-९॥

हे मुने! उसी समय विष्णु आदि समस्त देवता और महात्मा मुनि गिरिराजके पास गये॥ १०॥

गिरिराजने उन देवताओंको आया हुआ देखकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया और अपने भाग्यकी सराहना करते हुए भक्तिभावसे उनका सत्कार किया॥ ११॥

हाथ जोड़कर मस्तक झुकाये हुए उन्होंने उत्तम भक्तिसे स्तुति की। हिमालयके शरीरमें महान् रोमांच हो आया और उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे॥ १२॥

हे मुने! तब हिमालय प्रसन्न मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रणाम करके और विनीतभावसे खड़े हो विष्णु

आदि देवताओंसे कहने लगे— ॥ १३ ॥

हिमाचल बोले—आज मेरा जन्म सफल हो गया, आज मेरी महान् तपस्या सफल हुई, आज मेरा ज्ञान सफल हुआ और आज मेरी क्रियाएँ सफल हो गयीं ॥ १४ ॥

आज मैं धन्य हो गया, मेरी समस्त भूमि धन्य हो गयी, मेरा कुल धन्य हो गया, मेरी स्त्री तथा मेरा सब कुछ धन्य हो गया, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि आप सभी लोग एक साथ मिलकर एक ही समय यहाँ पधारे हैं। मुझे अपना सेवक समझकर आपलोग प्रसन्नतापूर्वक उचित कार्यके लिये आज्ञा दें ॥ १५-१६ ॥

ब्रह्माजी बोले—तब हिमालयके इस वचनको सुनकर विष्णु आदि वे देवता अपने कार्यकी सिद्धिको मानकर प्रसन्न होकर कहने लगे— ॥ १७ ॥

देवता बोले—हे महाप्राज्ञ हिमालय! हमारा हितकारक वचन सुनिये, हम सब लोग जिस कामके लिये यहाँ आये हैं, उसे प्रसन्नतापूर्वक बता रहे हैं ॥ १८ ॥

हे गिरे! पहले जो जगदम्बा उमा दक्षकन्या सतीके रूपमें उत्पन्न हुई थीं और रुद्रपत्नी होकर चिरकालतक इस भूतलपर क्रीड़ा करती रहीं, वे ही जगदम्बा अपने पितासे अनादर पाकर अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण करके [यज्ञमें] शरीरका त्यागकर अपने परम धामको चली गयीं ॥ १९-२० ॥

हे हिमगिरे! यह कथा लोकमें विख्यात है और आपको भी विदित है। अब ऐसा होनेपर (आपके यहाँ उनके उत्पन्न होनेपर) सभी देवगणोंका तथा आपका भी बहुत लाभ होगा और वे सभी देवतागण भी आपके वशमें हो जायँगे ॥ २१-२२ ॥

ब्रह्माजी बोले—उन विष्णु आदि देवताओंकी यह बात सुनकर गिरिराजने उनको आदर देनेके लिये नहीं, अपितु स्वयं प्रसन्नचित्त होकर 'तथास्तु'—ऐसा कहा ॥ २३ ॥

तत्पश्चात् वे देवता [उमाको प्रसन्न करनेकी] उस विधिको हिमालयसे आदरपूर्वक कहकर स्वयं शंकरप्रिया उमाकी शरणमें गये ॥ २४ ॥

वे देवता उत्तम स्थानपर स्थित होकर मनसे जगदम्बाका स्मरण करने लगे और अनेक बार उन्हें प्रणामकर श्रद्धाके साथ उनकी स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

देवता बोले—हे देवि! हे उमे! हे जगन्मातः! शिवलोकमें निवास करनेवाली हे सदाशिवप्रिये! हे दुर्गे! हे महेश्वरि! हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ २६ ॥

हमलोग श्रीशक्ति, पावन, शान्त, पुष्टिरूपिणी, परम तथा महत् और अव्यक्तरूपिणी [आपको] भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं ॥ २७ ॥

कल्याणरूपिणी, कल्याण करनेवाली, शुद्ध, स्थूल, सूक्ष्म, सबका परम आश्रय और अन्तर्विद्या तथा सुविद्यासे प्रसन्न होनेवाली आपको हम नमस्कार करते हैं ॥ २८ ॥

आप ही श्रद्धा हैं, आप ही धृति हैं, आप ही श्री हैं, आप ही सर्वगोचरा हैं, सूर्यमें रहनेवाली प्रकाशरूपा आप ही हैं तथा आप अपने प्रपंचको प्रकाशित करनेवाली हैं ॥ २९ ॥

जो ब्रह्माण्डमें तथा समस्त जीवोंमें रहनेवाली हैं और जो ब्रह्मासे लेकर समस्त तृणपर्यन्त संसारको तृप्त करती हैं, उन्हें हम प्रणाम करते हैं ॥ ३० ॥

आप ही गायत्री हैं, आप ही वेदमाता सावित्री एवं सरस्वती हैं, आप ही समस्त जगत्की वार्ता हैं, आप ही वेदत्रयी एवं धर्मस्वरूपा हैं ॥ ३१ ॥

आप ही समस्त प्राणियोंमें निद्रा, क्षुधा, तृप्ति, तृष्णा, कान्ति, छवि तथा तुष्टिरूपसे विराजमान हैं। आप सदा सबको आनन्द देनेवाली हैं ॥ ३२ ॥

पुण्यकर्ताओंमें आप लक्ष्मीरूपा हैं, पापियोंको दण्ड देनेके लिये आप ज्येष्ठा (अलक्ष्मी) हैं। आप सम्पूर्ण जगत्की शान्ति, धात्री तथा प्राणपोषिणी माता हैं ॥ ३३ ॥

आप पाँचों भूतोंके सारतत्त्वको प्रकट करनेवाली तत्त्वस्वरूपा हैं। आप ही नीतिज्ञोंकी नीति तथा व्यवसायरूपिणी हैं ॥ ३४ ॥

आप ही सामवेदकी गीतिस्वरूपा हैं, आप ही यजुर्वेदकी ग्रन्थि हैं, आप ही ऋग्वेदकी ऋचारूप स्तुति तथा अथर्ववेदकी मात्रा हैं और आप ही मोक्षस्वरूपा हैं ॥ ३५ ॥

जो सभी देवगणोंकी शक्ति हैं, तमोमयी हैं, एकमात्र धारण-पोषण गुणोंसे देखनेमें आती हैं, रजोगुणके प्रपंचसे केवल सृष्टिरूपा हैं तथा जिन्हें हमने कल्याणकारिणी सुना है, उनकी हम स्तुति करते हैं ॥ ३६ ॥

कराल संसारसागरके महान् दुःखोंसे पार करानेवाली पालरहित नौकारूपिणी, अष्टांगयोगके पालनरूपी क्रीडामें

दक्ष और विन्ध्यपर्वतपर निवास करनेवाली उन भगवतीको हम प्रणाम करते हैं ॥ ३७ ॥

जो प्राणियोंके नासिका, नेत्र, मुख, भुजा, वक्षःस्थल एवं मनमें प्रतिष्ठित होकर सदा धैर्यपूर्वक सुख प्रदान करती हैं, जो संसारके कल्याणके लिये सुखकारी निद्रारूपमें प्रवृत्त होती हैं, वे संसारकी स्थिति तथा पालनके लिये हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ३८ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जगदम्बा महेश्वरी उमा सतीकी स्तुति करके [अपने] हृदयमें विशुद्ध प्रेमलिये वे सब देवता उनके दर्शनकी इच्छासे वहाँ खड़े रहे ॥ ३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवस्तुतिवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

चौथा अध्याय

उमादेवीका दिव्यरूपमें देवताओंको दर्शन देना और अवतार ग्रहण करनेका आश्वासन देना

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार देवताओंके द्वारा स्तुति किये जानेपर दुर्ग नामक राक्षसके द्वारा उत्पन्न संकटका नाश करनेवाली जगन्माता देवी दुर्गा देवताओंके समक्ष प्रकट हुईं ॥ १ ॥

वे रत्नोंसे जटित, दिव्य, परम अद्भुत, किंकिणीजालसे युक्त, कोमल बिछौनेवाले तथा श्रेष्ठ रथपर विराजमान थीं ॥ २ ॥

करोड़ों सूर्योंसे भी अधिक प्रभायुक्त, रम्य अंगोंसे भासित, अपनी तेजोराशिके बीच विराजमान, सुन्दर रूपवाली, अनुपम छविसे सम्पन्न, अतुलनीय, महामाया, सदाशिवके साथ विलास करनेवाली, त्रिगुणात्मिका, गुणोंसे रहित, नित्या, शिवलोकमें निवास करनेवाली, त्रिदेवजननी, चण्डी, शिवा, सभी कष्टोंका नाश करनेवाली, सबकी माता, महानिद्रा, सभी स्वजनों (भक्तों)-को मोक्ष प्रदान करनेवाली उन भगवती शिवाको तेजोराशिकी प्रभाके रूपमें देवताओंने देखा, किंतु उनके प्रत्यक्ष दर्शनकी अभिलाषा-वाले देवताओंने पुनः उनकी स्तुति की ॥ ३—६ ॥

इसके बाद [भगवतीके] दर्शनके अभिलाषी देवगण उन जगदम्बाकी कृपा प्राप्त करके ही उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर सके। [देवीके दर्शनसे] सभी देवगणोंको महान् आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने बार-बार उनको प्रणाम किया और वे विशेष रूपसे उनकी स्तुति करने लगे— ॥ ७-८ ॥

देवता बोले—हे शिवे! हे शर्वाणि! हे कल्याणि! हे जगदम्ब! हे महेश्वरि! हम सभी देवता सबके दुःखोंका नाश करनेवाली आपको सदा प्रणाम करते हैं ॥ ९ ॥

हे देवेशि! वेद एवं शास्त्र भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते हैं। हे शिवे! आपका ध्यान एवं महिमा वाणी एवं मनसे अगोचर है। श्रुति भी चकित होकर सदा अतद्-व्यावृत्तिसे (नेति-नेति कहते हुए) आपका वर्णन करती है, तो फिर दूसरोंकी बात ही क्या है! ॥ १०-११ ॥

[हे शिवे!] भक्तिसे आपकी कृपा प्राप्त करके बहुत-से भक्त आपकी महिमाको जानते हैं। आपके शरणागत भक्तोंको कहीं भी भय आदि नहीं होता ॥ १२ ॥

हे अम्बिके! हम सब आपके दास हैं, अतः अब आप प्रेमयुक्त होकर हमारी प्रार्थना सुनें। हे देवि! हमलोग

आपकी महिमाका थोड़ा-सा वर्णन करते हैं॥ १३॥

आप पहले दक्षकी पुत्री होकर शिवजीकी प्रिया बनी थीं, आपने [उस समय] ब्रह्मा तथा अन्य लोगोंके महान् दुःखको दूर किया था॥ १४॥

आपने अपने पितासे अनादर प्राप्तकर अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार अपने शरीरका त्याग किया और आप अपने धामको चली गयी थीं, जिसके कारण महादेवजीने दुःख पाया था। किंतु हे महेश्वरि! देवताओंका वह कार्य पूरा नहीं हुआ। इसीलिये हम समस्त देवता एवं मुनिगण आपकी शरणमें आये हुए हैं॥ १५-१६॥

हे महेशानि! आप देवताओंके मनोरथको पूर्ण कीजिये, जिससे हे शिवे! सनत्कुमारका [कहा हुआ] वचन सफल हो॥ १७॥

हे देवि! आप पृथ्वीपर अवतरित होकर पुनः शिवजीकी पत्नी बनें और यथायोग्य लीला करें, जिससे देवगण सुखी हो जायँ, हे देवि! कैलासपर्वतपर स्थित भगवान् शिवजी भी सुखी हो जायँ, सभी लोग सुखी हो जायँ और पूर्णरूपसे दुःखका विनाश हो जाय॥ १८-१९॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णु आदि सब देवता यह कहकर प्रेमसे मग्न हो गये और वे भक्तिपूर्वक विनम्रतासे सिर झुकाये मौन खड़े हो गये॥ २०॥

शिवा भी देवताओंकी स्तुति सुनकर प्रसन्न हो गयीं। अपनी स्तुतिके कारणका विचारकर तथा प्रभु शिवजीका स्मरणकर भक्तवत्सला तथा दयामयी उमादेवी विष्णु आदि उन देवताओंको सम्बोधित करके हँसकर कहने लगीं—॥ २१-२२॥

उमा बोलीं—हे हरे! हे विधे! हे देवताओ! हे मुनिगण! अब आप सभी लोग दुःखरहित हो जाइये और मेरी बात सुनिये। मैं [आपलोगोंपर] प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। मेरा चरित्र त्रैलोक्यको सर्वत्र सुख प्रदान करनेवाला है। दक्ष आदिको जो मोह उत्पन्न हुआ, वह सब मेरे द्वारा ही किया गया था॥ २३-२४॥

मैं पृथिवीपर पूर्ण अवतार ग्रहण करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है। इसमें बहुत-से हेतु हैं, उन्हें मैं आदरपूर्वक कह रही हूँ। हे देवताओ! पूर्व समयमें हिमाचल और मेनाने बड़े भक्तिभावसे मुझ सतीशरीरधारिणीकी माता-पिताके समान सेवा की थी॥ २५-२६॥

इस समय भी वे नित्यप्रति मेरी भक्तिपूर्वक सेवा कर रहे हैं और मेना विशेषकर अपनी पुत्रीरूपमें सेवा करती हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७॥

अतः रुद्र तथा आपलोग [अपने-अपने धामको] जायँ, मैं हिमालयके घर अवतार लूँगी, इससे सभी लोगोंका दुःख दूर हो जायगा॥ २८॥

आप सब लोग अपने-अपने घर जायँ और चिरकालतक सुखी रहें। मैं मेनाकी पुत्रीके रूपमें अवतार लेकर सभीको सुख प्रदान करूँगी॥ २९॥

यह मेरा अत्यन्त गुप्त मत है कि मैं शिवजीकी पत्नी बनूँगी। भगवान् शिवकी लीला अद्भुत है, वह ज्ञानियोंको भी मोहमें डालनेवाली है॥ ३०॥

हे देवगणो! जबसे मैंने दक्षके यज्ञमें जाकर पिताद्वारा अपने स्वामीका अनादर देखकर दक्षोत्पन्न अपने शरीरको त्याग दिया है, उसी समयसे वे कालाग्निसंज्ञक स्वामी रुद्रदेव दिगम्बर होकर मेरी चिन्तामें संलग्न हैं॥ ३१-३२॥

मेरे रोषको देखकर अपने पिताके यज्ञमें गयी हुई धर्मज्ञ सतीने [मेरी] प्रीतिके कारण अपना शरीर त्याग दिया। यही सोच करके वे घर छोड़कर अलौकिक वेष धारणकर योगी हो भटक गये। वे महेश्वर मेरे सतीरूपका वियोग सहन नहीं कर पा रहे हैं॥ ३३-३४॥

उन्होंने उसी समयसे कामजन्य उत्तम सुखका परित्याग कर दिया है और मेरे निमित्त कुवेष धारणकर वे अत्यन्त दुखी हो गये हैं॥ ३५॥

हे विष्णो! हे विधे! हे देवगणो! हे मुनिगणो! आपलोग महाप्रभु महेश्वरकी भुवनपालिनी अन्य लीला भी सुनें। ज्ञानी होते हुए भी विरहमें व्याकुल वे मेरी अस्थियोंकी माला बनाकर धारण किये रहते हैं, फिर भी उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिलती है॥ ३६-३७॥

वे प्रभु अनाथके समान इधर-उधर घूमते हुए ऊँचे स्वरमें रोते रहते हैं, उन्हें उचित तथा अनुचितका ज्ञान भी नहीं है। इस प्रकार वे प्रभु सदाशिव कामियोंकी गति दिखाते हुए लीला करते फिरते हैं और कामुककी भाँति विरहाकुल वाणी बोलते रहते हैं॥ ३८-३९॥

वे शिव वस्तुतः निर्विकार तथा दीनतासे रहित, अजित, परमेश्वर, परिपूर्ण, स्वामी, मायाधीश तथा सबके अधिपति हैं ॥ ४० ॥

वे तो लोकानुसरणकर ही लीला करते हैं; अन्यथा उन्हें मोह तथा कामसे प्रयोजन ही क्या है, वे प्रभु न तो किसी विकारसे अथवा मायासे ही लिप्त रहनेवाले हैं ॥ ४१ ॥

वे सर्वव्यापी रुद्र मेरे साथ विवाह करनेकी प्रबल इच्छा रखते हैं। अतः हे देवगणो! मैं पृथ्वीपर मेना-हिमाचलके घरमें अवतार ग्रहण करूँगी ॥ ४२ ॥

मैं रुद्रके सन्तोषके लिये लौकिक गतिका आश्रय लेकर हिमालयपत्नी मेनामें अवतार ग्रहण करूँगी ॥ ४३ ॥

कठोर तपस्या करके रुद्रकी भक्त तथा प्रिया होकर मैं देवताओंका कार्य करूँगी, यह सत्य है, सत्य है—इसमें सन्देह नहीं है। आप सभी लोग अपने घर जाइये और रुद्रका भजन कीजिये, उन्हींकी कृपासे समस्त दुःख दूर हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४-४५ ॥

उन कृपालुकी कृपासे सर्वदा मंगल ही होगा और मैं उनकी प्रिया होनेके कारण त्रिलोकमें वन्दनीय तथा पूजनीय हो जाऊँगी ॥ ४६ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इस प्रकार कहकर वे जगदम्बा देवताओंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं और शीघ्रतासे अपने लोकको चली गयीं ॥ ४७ ॥

[तदनन्तर] विष्णु आदि समस्त देवता और मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न होकर उस दिशामें प्रणामकर अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ४८ ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने दुर्गाके उत्तम चरित्रका आपसे वर्णन किया, जो सर्वदा मनुष्योंको सुख, भोग तथा मोक्ष देनेवाला है। जो एकाग्र होकर इस चरित्रको नित्य सुनता अथवा सुनाता है, पढ़ता अथवा पढ़ाता है, वह सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है ॥ ४९-५० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवसान्त्वनवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

मेनाकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवीका उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर वरदान देना, मेनासे मैनाकका जन्म

नारदजी बोले—हे तात! जब देवी दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं और देवगण अपने-अपने धामको चले गये, उसके बाद क्या हुआ? ॥ १ ॥

हे तात! मेना तथा हिमाचलने किस प्रकार कठोर तप किया और भगवती किस प्रकार मेनाके गर्भसे उत्पन्न होकर उन हिमाचलकी कन्या हुईं, उसे कहिये ॥ २ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे विप्रवर्य! हे सुतश्रेष्ठ! मैं शिवजीको भक्तिपूर्वक प्रणामकर उनके भक्तिवर्धक महान् चरित्रको कह रहा हूँ ॥ ३ ॥

उपदेश देकर विष्णु आदि देवसमुदायके चले जानेपर पर्वतराज हिमाचल तथा मेनका कठोर तप करने लगे ॥ ४ ॥

वे पति-पत्नी भक्तियुक्त चित्तसे दिन-रात शम्भु और शिवाका चिन्तन करते हुए उनकी सम्यक् रीतिसे नित्य आराधना करने लगे। गिरिप्रिया वे मेना प्रसन्नतापूर्वक शिवजीके साथ देवीका पूजन करती थीं और उन्हें प्रसन्न करनेके लिये नित्य ब्राह्मणोंको दान देती थीं ॥ ५-६ ॥

सन्तानकी कामनासे मेनाने चैत्रमाससे आरम्भ करके सत्ताईस वर्षोंतक प्रतिदिन तत्परतापूर्वक शिवाकी पूजा की ॥ ७ ॥

वे अष्टमीको उपवास करके नवमी तिथिको लड्डू, पीठी, खीर, गन्ध, पुष्प आदि अर्पण करती थीं ॥ ८ ॥

वे गंगाके औषधिप्रस्थमें उमादेवीकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर अनेक प्रकारकी वस्तुएँ समर्पितकर उनकी पूजा किया करती थीं। वे कभी निराहार रहती थीं, कभी व्रत धारण करती थीं, कभी जल पीकर ही रहतीं थीं और कभी हवा पीकर ही रह जाती थीं ॥ ९-१० ॥

इस प्रकार विशुद्ध तेजसे दीप्तिमती मेनाने प्रेमपूर्वक शिवामें चित्त लगाते हुए सत्ताईस वर्ष व्यतीत किये ॥ ११ ॥

सत्ताईसवें वर्षकी समाप्तिपर जगन्मयी जगज्जननी शंकरकामिनी उमा अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं॥ १२॥

मेनाकी उत्तम भक्तिसे सन्तुष्ट होकर परमेश्वरी देवी उनपर अनुग्रह करनेके लिये उनके सामने प्रकट हुईं॥ १३॥

तेजोराशिके बीचमें विराजमान तथा दिव्य अवयवोंसे संयुक्त उमादेवी प्रत्यक्ष होकर मेनासे हँसती हुई कहने लगीं— ॥ १४॥

देवी बोलीं—हे महासाध्वि! जो तुम्हारे मनमें हो, वह वर माँगो। हे गिरिकामिनि! मैं तुम्हारी तपस्यासे बहुत प्रसन्न हूँ॥ १५॥

हे मेने! तुमने तपस्या, व्रत और समाधिके द्वारा जो प्रार्थना की है, वह सब मैं तुम्हें प्रदान करूँगी और जब भी तुम्हारी जो इच्छा होगी, वह भी दूँगी॥ १६॥

तब उन मेनाने प्रत्यक्ष प्रकट हुई कालिका देवीको देखकर प्रणाम किया और यह वचन कहा— ॥ १७॥

मेना बोलीं—हे देवि! इस समय मुझे आपके रूपका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है, अतः मैं आपकी स्तुति करना चाहती हूँ। हे कालिके! आप प्रसन्न हों॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—[नारद!] मेनाके ऐसा कहनेपर सर्वमोहिनी कालिकाने अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर अपनी दोनों बाँहोंसे मेनाका आलिंगन किया॥ १९॥

तत्पश्चात् मेनकाको महाज्ञानकी प्राप्ति हो गयी और वे प्रिय वचनोंद्वारा भक्तिभावसे प्रत्यक्ष हुई शिवा कालिकाकी स्तुति करने लगीं— ॥ २०॥

मेना बोलीं—मैं महामाया, जगत्‌का पालन करनेवाली, चण्डिका, लोकको धारण करनेवाली तथा सम्पूर्ण मनोवांछित पदार्थोंको देनेवाली महादेवीको प्रणाम करती हूँ॥ २१॥

नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली, माया, योगनिद्रा, जगज्जननी, सिद्धस्वरूपिणी तथा सुन्दर कमलोंकी माला धारण करनेवाली देवीको सदा प्रणाम करती हूँ॥ २२॥

मातामही, नित्य आनन्द प्रदान करनेवाली, भक्तोंके शोकको सर्वदा विनष्ट करनेवाली तथा नारियों एवं प्राणियोंकी बुद्धिस्वरूपिणी देवीको मैं प्रणाम करती हूँ॥ २३॥

आप यतियोंके बन्धनके नाशकी हेतुभूत [ब्रह्मविद्या] हैं, तो मुझ-जैसी नारियाँ आपके प्रभावका क्या वर्णन कर सकती हैं। अथर्ववेदकी जो हिंसा है, वह आप ही हैं। [हे देवि!] आप मेरे अभीष्ट फलको सदा प्रदान कीजिये॥ २४॥

भावहीन तथा अदृश्य नित्यानित्य तन्मात्राओंसे आप ही पंचभूतोंके समुदायको संयुक्त करती हैं। आप उनकी शक्ति हैं और सदा नित्यरूपा हैं। आप समय-समयपर योगयुक्त एवं समर्थ नारीके रूपमें प्रकट होती हैं॥ २५॥

आप ही जगत्‌की उत्पादिका और आधारशक्ति हैं, आप ही सबसे परे नित्या प्रकृति हैं। जिसके द्वारा ब्रह्मके स्वरूपको वशमें किया जाता है, वह नित्या [विद्या] आप ही हैं। हे मातः! आज मुझपर प्रसन्न होइये॥ २६॥

आप ही अग्निके भीतर व्याप्त उग्र शक्ति हैं। आप ही सूर्यकिरणोंकी प्रकाशिका शक्ति हैं। चन्द्रमामें जो आह्लादिका शक्ति है, वह भी आप ही हैं, उन आप चण्डी देवीका मैं स्तवन और वन्दन करती हूँ॥ २७॥

आप स्त्रियोंको बहुत प्रिय हैं। ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारियोंकी नित्या ब्रह्मशक्ति भी आप ही हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌की वांछा हैं तथा श्रीहरिकी माया भी आप ही हैं॥ २८॥

जो देवी इच्छानुसार रूप धारण करके सृष्टि, स्थिति, पालन तथा संहारमयी होकर उन कार्योंका सम्पादन करती हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रके शरीरकी भी हेतुभूता हैं, वे आप ही हैं। आप मुझपर प्रसन्न हों। आपको पुनः मेरा नमस्कार है॥ २९॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] मेनाके इस प्रकार

स्तुति करनेपर दुर्गा कालिकाने पुनः मेना देवीसे कहा—तुम अपना मनोवांछित वर माँग लो॥ ३०॥

उमा बोलीं—हे हिमाचलप्रिये! तुम मुझे प्राणोंसे अधिक प्रिय हो, तुम जो भी चाहती हो, उसे मैं निश्चय ही दूँगी, तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है॥ ३१॥

महेश्वरीका अमृतके समान यह मधुर वचन सुनकर हिमगिरिकामिनी मेना अत्यधिक सन्तुष्ट होकर कहने लगीं—॥ ३२॥

मेना बोलीं—हे शिवे! आपकी जय हो, जय हो, हे प्राज्ञे! हे महेश्वरि! हे भवाम्बिके! यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ, तो आपसे पुनः श्रेष्ठ वर माँगती हूँ॥ ३३॥

हे जगदम्बिके! पहले तो मुझे सौ पुत्र हों, वे दीर्घ आयुवाले, पराक्रमसे युक्त तथा ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हों॥ ३४॥

उन पुत्रोंके पश्चात् मेरी एक पुत्री हो, जो स्वरूप और गुणोंसे युक्त, दोनों कुलोंको आनन्द देनेवाली तथा तीनों लोकोंमें पूजित हो॥ ३५॥

हे शिवे! आप ही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मेरी पुत्री हों। हे भवाम्बिके! आप रुद्रदेवकी पत्नी हों और लीला करें॥ ३६॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] मेनकाकी वह बात सुनकर प्रसन्नहृदया देवी उमा उनके मनोरथको पूर्ण करती हुई मुसकराकर यह वचन कहने लगीं—॥ ३७॥

देवी बोलीं—तुम्हें सौ बलवान् पुत्र होंगे। उनमें एक बलवान् और प्रधान होगा, जो सबसे पहले उत्पन्न होगा॥ ३८॥

तुम्हारी भक्तिसे सन्तुष्ट मैं [स्वयं] पुत्रीके रूपमें अवतीर्ण होऊँगी और समस्त देवताओंसे सेवित होकर उनका कार्य सिद्ध करूँगी॥ ३९॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर जगद्धात्री परमेश्वरी कालिका शिवा मेनकाके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ४०॥

हे तात! महेश्वरीसे अभीष्ट वर पाकर मेनकाको भी अपार हर्ष हुआ और उनका तपस्याजनित क्लेश नष्ट हो गया॥ ४१॥

अत्यन्त प्रसन्नचित्त साध्वी मेना उस दिशामें नमस्कारकर जय शब्दका उच्चारण करती हुई अपने स्थानको चली गयीं॥ ४२॥

ऐसे तो मेनाके प्रसन्न मुखमण्डलसे ही हिमवान्‌को सारी बातोंकी जानकारी हो गयी, फिर भी मेनाने अपने मुखसे वरदानकी सारी बात पुनरुक्त वचनोंके समान हिमालयसे पुनः कह दीं॥ ४३॥

मेनाका वचन सुनकर पर्वतराज [हिमालय] प्रसन्न हुए और उन्होंने शिवामें भक्ति रखनेवाली [अपनी] उन प्रियाकी प्रेमपूर्वक प्रशंसा की॥ ४४॥

हे मुने! तत्पश्चात् कालक्रमसे उन दोनोंके सहवासमें प्रवृत्त होनेपर मेनाको गर्भ रह गया और वह प्रतिदिन बढ़ने लगा॥ ४५॥

समयानुसार उन्होंने एक उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसका नाम मैनाक था। उसने समुद्रके साथ उत्तम मैत्री की। वह अद्भुत पर्वत नागवधुओंके विहारका स्थल है॥ ४६॥

हे देवर्षे! जिस समय इन्द्रने पर्वतोंपर क्रोधित होकर उनके पंख काटना प्रारम्भ किया, उस समय वज्रद्वारा कटे हुए पर्वतोंके पंखोंको देखकर वह मैनाक वेदनासे अनभिज्ञ ही रहा और पंखयुक्त ही रहा॥ ४७॥

हिमालयके सौ पुत्रोंमें मैनाक सबसे श्रेष्ठ और महाबल तथा पराक्रमसे युक्त था। अपने आप प्रकट हुए समस्त पर्वतोंमें एकमात्र मैनाक ही पर्वतराजके पदपर अधिष्ठित हुआ॥ ४८॥

उस समय हिमालयके नगरमें महान् उत्सव हुआ। दोनों पति-पत्नी अत्यधिक प्रसन्नताको प्राप्त हुए और उनका क्लेश नष्ट हो गया॥ ४९॥

उन्होंने ब्राह्मणोंको दान दिया तथा अन्य लोगोंको भी धन प्रदान किया। शिवाशिवके चरणयुगलमें उन दोनोंका अत्यधिक स्नेह हो गया॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें मेनाकी वरप्राप्तिका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

देवी उमाका हिमवान्के हृदय तथा मेनाके गर्भमें आना, गर्भस्था देवीका देवताओंद्वारा स्तवन, देवीका दिव्यरूपमें प्रादुर्भाव, माता मेनासे वार्तालाप तथा पुनः नवजात कन्याके रूपमें परिवर्तित होना

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] कुछ समय बीतनेके पश्चात् उन पति-पत्नी दोनोंने देवताओंके कार्यके लिये जन्महेतु भक्तिपूर्वक जगदम्बाका स्मरण किया॥ १॥

इधर, अपने पिताके यज्ञमें योगद्वारा शरीरत्याग करनेवाली भगवती चण्डिकाने हिमालयपत्नी मेनाके गर्भसे जन्म लेनेका विचार किया। प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली वे महेश्वरी अपने वचनको सत्य करनेके लिये पूर्ण अंशसे हिमवान्के चित्तमें प्रविष्ट हुईं॥ २-३॥

उस समय महामनस्वी वे हिमालय प्रसन्नतासे अपूर्व कान्तिसम्पन्न होकर अग्निके समान अधृष्य तथा तेजसमूहसे युक्त हो गये॥ ४॥

तत्पश्चात् समाधिसम्पन्न होनेसे गिरिराज हिमालयने सुन्दर कल्याणकारी समयमें अपनी प्रिया मेनाके उदरमें शिवाके उस परिपूर्ण अंशका ध्यान किया॥ ५॥

इस तरह हिमालयकी पत्नीने हिमवान्के हृदयमें विराजमान करुणा करनेवाली देवीकी कृपासे सुखदायक गर्भ धारण किया। सम्पूर्ण जगत्को आश्रय देनेवाली उन देवीके गर्भमें आनेसे गिरिप्रिया मेना सदा तेजोमण्डलके बीचमें स्थित होकर अधिक शोभा पाने लगी॥ ६-७॥

मेनाने अपने पतिको सुख देनेवाले तथा देवताओंके आनन्दके कारणभूत शुभ अभीष्ट गर्भलक्षणको धारण किया। शरीरके अधिक दुर्बल होनेके कारण उन्होंने सभी आभूषणोंको उतार दिया, उनका मुखमण्डल लोधके समान [श्वेत वर्ण] हो गया और वे प्रभातकालीन चन्द्रमाके प्रकाशके क्षीण हो जानेसे अल्प तारागणोंवाली रात्रिके समान दीखने लगीं॥ ८-९॥

गिरिराज मिट्टीके समान सुगन्धित उनके मुखमण्डलको एकान्तमें सूँघकर तृप्त नहीं होते थे और [गर्भवती होनेके कारण दिनानुदिन] मेनामें उनका प्रेमाधिक्य होने लगा। वे हिमालय मेनाकी सखियोंसे सदा यह पूछते रहते थे कि मेनाको किन वस्तुओंकी इच्छा है। वह लज्जाके कारण अपना कुछ भी इष्ट मुझसे नहीं बताती है॥ १०-११॥

कष्टप्रद गर्भलक्षणके प्राप्त कर लेनेपर वे मेना जिस वस्तुके लिये कहती थीं, उसे अपने सामने गिरिराजके द्वारा उपस्थित हुआ देखती थीं; क्योंकि उनकी इच्छित कोई भी वस्तु तीनों लोकोंमें दुर्लभ नहीं थी॥ १२॥

धीरे-धीरे गर्भजन्य व्यथाको पारकर पुष्ट अंगोंवाली वह मेना पत्तोंसे समन्वित बाललताके समान शोभित होने लगी। हिमालयने अपनी सगर्भा पत्नीको रत्नभण्डारको अपने भीतर छिपाये रखनेवाली पृथ्वी और अग्निको अपने भीतर छिपाये रखनेवाले शमी वृक्षके समान समझा॥ १३-१४॥

महाबुद्धिमान् हिमालयने अपनी प्रियाके प्रीतियोग्य, अपने द्वारा अर्जित द्रव्योंके अनुसार, राजसी प्रवृत्ति एवं अपने शास्त्रज्ञानके अनुरूप संस्कार किये॥ १५॥

उन्होंने प्रसवोन्मुखी अपनी प्रियाको वैद्योंके द्वारा निर्दिष्ट गर्भगृहमें मेघमण्डलसे आच्छादित आकाशके समान देखा। शुभ लक्षणोंवाली, गर्भमें जगदम्बाको धारण करनेवाली, महातेजयुक्त तथा सुन्दर अंगोंवाली प्रिया मेनाको देखकर गिरिराज हिमवान् बड़ी प्रसन्नताका अनुभव करने लगे॥ १६-१७॥

हे मुने! उस समय विष्णु आदि देवता तथा मुनिगण आकर गर्भमें स्थित शिवाकी स्तुति करने लगे॥ १८॥

देवगण बोले—हे दुर्गे! हे प्राज्ञे! हे जगदम्बे! हे महेश्वरि! हे सत्यव्रते! हे सत्यपरे! हे त्रिसत्ये! हे सत्यस्वरूपिणि! आपकी जय हो, आपकी जय हो। हे सत्यस्थे! हे सत्यसुप्रीते! हे सत्ययोने! हे सत्यवक्त्रे! हे सत्यनेत्रे! हम सभी आपकी शरणमें प्राप्त हुए हैं॥ १९-२०॥

हे शिवप्रिये! हे महेश्वरि! देवताओंके दुःखको दूर करनेवाली! आप तीनों लोकोंकी माता, शर्वाणी, सर्वव्यापिनी तथा भक्तोंसे स्नेह रखनेवाली हैं। हे त्रिलोकेशि! आप प्रकट होकर देवगणोंके कार्यको पूर्ण करें। हे महेश्वरि! हम सभी देवगण आपकी कृपासे

सनाथ हो जायँगे॥ २१-२२॥

इस संसारके सभी सुखी मनुष्य आपके द्वारा ही उत्तम सुख प्राप्त करते हैं, आपके बिना इस त्रिलोकमें कुछ भी शोभा नहीं देता॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सभी देवगण प्रसन्नचित्त होकर गर्भस्थित महेश्वरीकी बहुत स्तुति करके अपने-अपने धामको चले गये। जब नौवाँ महीना बीत गया और दसवाँ भी पूरा हो चला, तब गर्भस्थित जगदम्बा महाकालीने गर्भसे बाहर आनेकी इच्छा की॥ २४-२५॥

वह समय बड़ा सुहावना हो गया, नक्षत्र, तारे तथा ग्रह शान्त हो गये, आकाश निर्मल हो गया और सभी दिशाओंमें प्रकाश फैल गया। वन, ग्राम तथा सागरके सहित पृथ्वीपर नाना प्रकारके मंगल होने लगे। तालाब, नदियों एवं बावलियोंमें कमल खिल उठे॥ २६-२७॥

हे मुनीश्वर! अनेक प्रकारकी सुखस्पर्शी वायु बहने लगी, सभी साधुजन आनन्दित हो गये तथा दुर्जन शीघ्र ही दुखी हो गये॥ २८॥

देवता आकाशमें आकर दुन्दुभियाँ बजाने लगे, वहाँ फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा श्रेष्ठ गन्धर्व गान करने लगे। अप्सराएँ और विद्याधरोंकी स्त्रियाँ आकाशमें नाचने लगीं, इस प्रकार आकाशमण्डलमें देवताओं आदिका महान् उत्सव होने लगा॥ २९-३०॥

उसी अवसरपर आद्याशक्ति सती शिवा देवी मेनाके सामने अपने रूपमें प्रकट हुईं॥ ३१॥

वे वसन्त ऋतुके चैत्रमासमें नवमी तिथिको मृगशिरा नक्षत्रमें आधी रातके समय चन्द्रमण्डलसे गंगाकी भाँति प्रकट हुईं। वे शिवा मेनाके गर्भसे अपने स्वरूपसे इस प्रकार प्रकट हुईं, जैसे समुद्रसे महालक्ष्मीका आविर्भाव हुआ था॥ ३२-३३॥

उस समय भगवतीके प्रकट होनेपर शंकरजी प्रसन्न हो गये और अनुकूल, गम्भीर, सुगन्धित तथा शुभ वायु बहने लगी। उस समय जलकी वर्षाके साथ पुष्पवृष्टि होने लगी, [अग्निहोत्रकी] शान्त अग्नि प्रज्वलित हो उठी और बादल गरजने लगे॥ ३४-३५॥

उनके प्रकट होते ही हिमालयके नगरमें समस्त सम्पत्ति स्वतः आ गयी तथा [लोगोंका] सारा दुःख दूर हो गया॥ ३६॥

उस अवसरपर विष्णु आदि समस्त देवगण सुखी होकर वहाँ आ गये और प्रेमसे जगदम्बाका दर्शन करने लगे। वे शिवलोकमें निवास करनेवाली शिवप्रिया महाकाली दिव्यरूपधारिणी उन महामाया जगदम्बाकी स्तुति करने लगे॥ ३७-३८॥

देवता बोले—हे जगदम्ब! हे महादेवि! हे सर्वसिद्धिविधायिनि! आप देवताओंका कार्य पूर्ण करनेवाली हैं, इसलिये हम सभी आपको सदा प्रणाम करते हैं॥ ३९॥

हे भक्तवत्सले! आप हर प्रकारसे देवताओंका कल्याण करें। आपने मेनाका मनोरथ पूर्ण किया है, अब शिवका भी मनोरथ पूर्ण करें॥ ४०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि देवता शिवाकी स्तुतिकर उन्हें प्रणाम करके उनकी परम गतिकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने धामको चले गये॥ ४१॥

हे नारद! नीलकमलके दलके समान कान्तिमयी उन श्यामा भगवतीको उत्पन्न हुआ देखकर मेना परम प्रसन्न हो गयीं। उस दिव्य रूपको देखकर गिरिप्रिया मेनाको ज्ञान प्राप्त हो गया। वे उन्हें परमेश्वरी जानकर अत्यन्त हर्षित होकर उनकी स्तुति करने लगीं॥ ४२-४३॥

मेना बोलीं—हे जगदम्बे! हे महेश्वरि! हे अम्बिके! आपने बड़ी कृपा की, जो सुशोभित होती हुई मेरे सामने प्रकट हुईं। हे शिवे! आप सम्पूर्ण शक्तियोंमें आद्याशक्ति तथा तीनों लोकोंकी जननी हैं। हे देवि! आप भगवान् शिवको सदा ही प्रिय हैं तथा सम्पूर्ण देवताओंसे स्तुत पराशक्ति हैं। हे महेश्वरि! आप कृपा करें और इसी रूपसे मेरे ध्यानमें स्थित हो जायँ और अब मेरी पुत्रीके समान प्रत्यक्ष रूप धारण करें॥ ४४—४६॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] पर्वतपत्नी उन मेनाकी यह बात सुनकर शिवा देवी अत्यन्त प्रसन्न होकर उन गिरिप्रियासे कहने लगीं॥ ४७॥

देवी बोलीं—हे मेने! आपने पहले तत्पर होकर मेरी बड़ी सेवा की थी, [उस समय] आपकी भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न होकर वर देनेके लिये मैं आपके पास गयी थी। वर माँगिये—मेरी इस वाणीको सुनकर आपने वह वर माँगा था—हे महादेवि! आप मेरी पुत्री हो जायँ और

देवताओंका हित साधन करें। तब मैं आपको आदरपूर्वक वह वर देकर अपने धामको चली गयी। हे गिरिकामिनि! अब समय पाकर मैं आपकी पुत्री हुई हूँ॥ ४८—५०॥

आज मैंने जो दिव्य रूप धारण किया है, वह इसलिये कि आपको मेरा स्मरण हो जाय, अन्यथा मनुष्यरूपमें प्रकट होनेपर मेरे विषयमें आप अनजान ही बनी रहतीं॥ ५१॥

अब आप दोनों पुत्रीभावसे अथवा दिव्य भावसे स्नेहपूर्वक मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए मेरे परम पदको प्राप्त होओगे। मैं पृथ्वीपर अद्भुत लीला करके देवताओंका कार्य सिद्ध करूँगी, भगवान् शम्भुकी पत्नी होऊँगी और सज्जनोंका उद्धार करूँगी॥ ५२-५३॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर अम्बिका शिवा मौन हो गयीं और उसी क्षण माताके देखते-देखते अपनी मायासे प्रसन्नतापूर्वक [नवजात] पुत्रीरूपमें हो गयीं॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीके जन्मका वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

पार्वतीका नामकरण तथा उनकी बाललीलाएँ एवं विद्याध्ययन

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तदनन्तर मेनाके सामने महातेजस्वी कन्या होकर वे लौकिक गतिका आश्रय लेकर रोने लगीं। हे मुने! उस समय प्रसूति-गृहकी शय्याके चारों ओर फैले हुए उनके महान् तेजसे रात्रिके दीपक शीघ्र ही कान्तिहीन हो गये॥ १-२॥

उनका मनोहर रुदन सुनकर घरकी सब स्त्रियाँ प्रसन्न हो गयीं और शीघ्र ही प्रेमपूर्वक वहाँ चली आयीं॥ ३॥

तब अन्त:पुरके दूतने देवकार्य सम्पन्न करनेवाले, कल्याणकारक तथा सुख देनेवाले पार्वतीजन्मको शीघ्र ही पर्वतराजको बताया। पुत्रीजन्मका समाचार सुनानेवाले अन्त:पुरके दूतको [न्योछावररूपमें] देनेहेतु उन पर्वतराजके लिये श्वेतछत्रतक अदेय नहीं रहा। तत्पश्चात् पुरोहित और ब्राह्मणोंके साथ गिरिराज वहाँ गये और उन्होंने अपूर्व कान्तिसे सुशोभित हुई उस कन्याको देखा॥ ४—६॥

नीलकमलके समान श्यामवर्ण, सुन्दर कान्तिसे युक्त तथा अत्यन्त मनोरम उस कन्याको देखकर ही गिरिराज अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ७॥

नगरमें रहनेवाले समस्त स्त्री एवं पुरुष परम प्रसन्न हुए। इस समय नगरमें अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे और बहुत बड़ा उत्सव होने लगा। मंगलगान होने लगा और वारांगनाएँ नृत्य करने लगीं। गिरिराजने [कन्याका] जातकर्म संस्कारकर द्विजातियोंको दान दिया॥ ८-९॥

उसके बाद दरवाजेपर आकर हिमाचलने महान् उत्सव मनाया और प्रसन्नचित्त होकर भिक्षुकोंको बहुत-सा धन दिया॥ १०॥

तदनन्तर हिमवान्‌ने शुभ मुहूर्तमें मुनियोंके साथ उस कन्याके काली आदि सुखदायक नाम रखे॥ ११॥

उन्होंने उस समय ब्राह्मणोंको प्रेम तथा आदरपूर्वक बहुत-सा धन प्रदान किया और गानपूर्वक अनेक प्रकारका उत्सव कराया। इस प्रकार उत्सव मनाकर बार-बार कालीको देखते हुए सपत्नीक हिमालय अनेक पुत्रोंवाले होनेपर भी बहुत आनन्दित हुए॥ १२-१३॥

देवी शिवा गिरिराजके घरमें वर्षाके समय गंगाके समान तथा शरद् ऋतुकी चाँदनीके समान बढ़ने लगीं। इस प्रकार परम सुन्दरी तथा दिव्य दर्शनवाली कालिका देवी प्रतिदिन चन्द्रकलाके समान शोभायुक्त हो बढ़ने लगीं॥ १४-१५॥

सुशीलता आदि गुणोंसे संयुक्त तथा बन्धुजनोंकी प्रिय उस कन्याको कुटुम्बके लोग अपनी कुलपरम्पराके अनुसार 'पार्वती' इस नामसे पुकारने लगे॥ १६॥

हे मुने! माताने उन कालिकाको 'उमा' कहकर तपस्या करनेसे मना किया था, अत: बादमें वे सुमुखी लोकमें उमा नामसे विख्यात हुईं॥ १७॥

पुत्रवान् होते हुए भी पर्वतराज हिमालय

सर्वसौभाग्ययुक्त उस पार्वती नामक अपनी सन्तानको देखते हुए तृप्त नहीं होते थे, क्योंकि हे मुनीश्वर! वसन्त ऋतुमें नाना प्रकारके पुष्पोंमें रस होनेपर भी भ्रमरावली आमके बौरपर ही विशेष रूपसे आसक्त होती है॥ १८-१९॥

वे पर्वतराज हिमालय उस पार्वतीसे उसी प्रकार पवित्र तथा विभूषित हुए, जिस प्रकार संस्कारसे युक्त वाणीसे विद्वान् पवित्र तथा विभूषित होता है॥ २०॥

जिस प्रकार महान् प्रभावशाली शिखासे भवनका दीपक एवं त्रिमार्गगामिनी गंगासे सन्मार्ग शोभित होता है, उसी प्रकार पार्वतीद्वारा पर्वतराज सुशोभित हुए॥ २१॥

वे पार्वती बचपनमें अपनी सहेलियोंके साथ कन्दुक (गेंद), कृत्रिम पुत्रों [पुतला] तथा गंगाकी बालुकासे बनायी गयी वेदियोंद्वारा क्रीड़ा करती थीं॥ २२॥

उसके अनन्तर हे मुने! वे शिवा देवी उपदेशके समय एकाग्रचित्त होकर सद्गुरुसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सभी विद्याएँ पढ़ने लगीं। जिस प्रकार शरद् ऋतुमें हंसपंक्ति गंगाको तथा रात्रिमें अमृतमयी चन्द्र किरणें औषधियोंको प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार उन पार्वतीको पूर्वजन्मकी विद्याएँ स्वयं प्राप्त हो गयीं। हे मुने! इस प्रकार मैंने शिवाकी कुछ लीलाका ही आपसे वर्णन किया, अब अन्य लीलाका भी वर्णन करूँगा, आप प्रेमपूर्वक सुनें॥ २३—२५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीकी बाल्यलीलाका वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

नारद मुनिका हिमालयके समीप गमन, वहाँ पार्वतीका हाथ देखकर भावी लक्षणोंको बताना, चिन्तित हिमवान्‌को शिवमहिमा बताना तथा शिवसे विवाह करनेका परामर्श देना

ब्रह्माजी बोले— हे नारद! एक समयकी बात है, आप शिवजीसे प्रेरित होकर प्रसन्नतापूर्वक हिमालयके घर गये। आप शिवतत्त्वके ज्ञाता और शिवकी लीलाके जानकारोंमें श्रेष्ठ हैं। हे मुने! गिरिराज हिमालयने आपको देखकर प्रणाम करके आपकी पूजा की और अपनी पुत्रीको बुलाकर उनसे आपके चरणोंमें प्रणाम करवाया॥ १-२॥

हे मुनीश्वर! तत्पश्चात् स्वयं नमस्कार करके हिमाचल अपने सौभाग्यकी सराहना करके मस्तक झुकाकर हाथ जोड़कर आपसे कहने लगे—॥ ३॥

हिमालय बोले— हे मुने! हे नारद! हे ज्ञानिन्! हे ब्रह्माके पुत्रोंमें श्रेष्ठ! हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं, दयामय हैं और दूसरोंके उपकारमें लगे रहनेवाले हैं। गुण-दोषको प्रकट करनेवाले आप मेरी पुत्रीके जन्मफलका वर्णन कीजिये, मेरी सौभाग्यवती पुत्री किसकी पत्नी होगी?॥ ४-५॥

ब्रह्माजी बोले— हे मुनिश्रेष्ठ! हे तात! गिरिराज हिमालयके ऐसा कहनेपर कालिकाके हाथ और विशेष रूपसे उसके सम्पूर्ण अंगोंको देखकर कौतुकी, बोलनेमें चतुर, ज्ञानी और सभी वृत्तान्तोंको जाननेवाले आप नारद प्रसन्नचित्त होकर पर्वतराजसे कहने लगे—॥ ६-७॥

नारद बोले— हे शैलराज! हे मेने! आपकी यह पुत्री चन्द्रमाकी आदि कलाके समान बढ़ रही है, यह समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है॥ ८॥

यह अपने पतिके लिये अत्यन्त सुखदायिनी, माता-

पिताकी कीर्तिको बढानेवाली, समस्त नारियोंमें परम साध्वी और [स्वजनोंको] सदा महान् आनन्द देनेवाली होगी॥ ९॥

हे गिरे! आपकी पुत्रीके हाथमें उत्तम लक्षण विद्यमान हैं, केवल एक रेखा विलक्षण है, उसका फल यथार्थरूपसे सुनिये। इसे ऐसा पति प्राप्त होगा, जो योगी, नग्न, निर्गुण, निष्काम, माता-पितासे रहित, मानविहीन और अमंगल वेषवाला होगा॥ १०-११॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] आपकी इस बातको सुनकर और सत्य मानकर वे मेना तथा हिमालय—दोनों पति-पत्नी बहुत दुखी हुए॥ १२॥

परंतु हे मुने! जगदम्बा शिवा आपके उस प्रकारके वचनको सुनकर और इन लक्षणोंसे युक्त उन शिवको मानकर मन-ही-मन अत्यन्त हर्षित हुईं॥ १३॥

नारदजीकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती—यह सोचकर वे शिवा शिवके युगलचरणोंमें सम्पूर्ण हृदयसे अत्यन्त स्नेह करने लगीं॥ १४॥

हे नारद! उस समय मन-ही-मन दुखी हो हिमवान्ने आपसे कहा—मुने! [उस रेखाका फल सुनकर] मुझे बड़ा दुःख हुआ है, मैं क्या उपाय करूँ?॥ १५॥

हे मुने! यह सुनकर महान् कौतुक करनेवाले और वार्तालापविशारद आप मंगलकारी वचनोंद्वारा हिमाचलको हर्षित करते हुए कहने लगे—॥ १६॥

नारदजी बोले—हे गिरिराज! आप स्नेहपूर्वक सुनिये। मेरी बात सच्ची है, वह झूठ नहीं होगी। हाथकी रेखा ब्रह्माजीकी लिपि है। निश्चय ही वह मिथ्या नहीं होती है॥ १७॥

हे शैल! इसका पति वैसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है, परंतु आप इसके उपायको प्रेमपूर्वक सुनिये, जिसे करके आप सुख प्राप्त करेंगे॥ १८॥

उस प्रकारके वर तो लीलारूपधारी प्रभु शिव ही हैं, उनमें समस्त कुलक्षण सद्गुणोंके समान ही हैं॥ १९॥

समर्थ पुरुषमें दोष दुःखका कारण नहीं होता, असमर्थमें ही वह दुःखदायक होता है। इस विषयमें सूर्य, अग्नि और गंगाका दृष्टान्त जानना चाहिये॥ २०॥

इसलिये आप विवेकपूर्वक अपनी कन्या शिवाको शिवको अर्पण कीजिये। भगवान् शिव सर्वेश्वर, सबके सेव्य, निर्विकार, सामर्थ्यशाली और अविनाशी हैं। विशेषतः वे तपस्यासे वशमें हो जाते हैं। अतः यदि शिवा तप करे, तो शीघ्र ही प्रसन्न होनेवाले वे शिव उसे अवश्य ग्रहण कर लेंगे॥ २१-२२॥

सर्वेश्वर शिव सब प्रकारसे समर्थ तथा वज्र [-लेख]-का भी विनाश करनेवाले हैं। ब्रह्माजी उनके अधीन हैं तथा वे सबको सुख देनेवाले हैं॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे ब्रह्मवित्! हे मुने! ऐसा कहकर कौतुक करनेवाले आपने शुभ वचनोंसे गिरिराजको हर्षित करते हुए पुनः कहा—॥ २४॥

पार्वती भगवान् शंकरकी पत्नी होगी और वह सदा रुद्रदेवके अनुकूल रहेगी; क्योंकि यह महासाध्वी और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली है तथा माता-पिताके सुखको बढ़ानेवाली है॥ २५॥

यह तपस्विनी भगवान् शिवके मनको अपने वशमें कर लेगी और वे भी इसके सिवा किसी दूसरी स्त्रीसे विवाह नहीं करेंगे॥ २६॥

इन दोनोंका जैसा प्रेम है, वैसा प्रेम न तो किसीका हुआ है, न इस समय है और न आगे होगा॥ २७॥

हे गिरिश्रेष्ठ! इन्हें देवताओंके कार्य करने हैं, उनके जो-जो कार्य नष्टप्राय हो गये हैं, उन सबका इनके द्वारा पुनः उद्धार होगा॥ २८॥

हे गिरे! आपकी इस कन्यासे भगवान् हर अर्धनारीश्वर होंगे, इन दोनोंका पुनः हर्षपूर्वक मिलन होगा॥ २९॥

आपकी यह पुत्री तपस्याके प्रभावसे सर्वेश्वर महेश्वरको सन्तुष्ट करके उनके शरीरके आधे भागको अपने अधिकारमें कर लेगी॥ ३०॥

यह आपकी कन्या अपनी तपस्यासे उन शिवको सन्तुष्टकर विद्युत् तथा सुवर्णके समान गौरवर्णकी होगी॥ ३१॥

इसीलिये यह कन्या गौरी नामसे विख्यात होगी और ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण इसका पूजन करेंगे॥ ३२॥

हे गिरिश्रेष्ठ! आप इस कन्याको किसी दूसरेके लिये नहीं देना और इस रहस्यको देवताओंसे कभी प्रकट नहीं करना॥ ३३॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! हे नारद! हे मुने!

आपका यह वचन सुनकर वाक्यविशारद हिमालय आपसे यह वाक्य कहने लगे— ॥ ३४ ॥

हिमालय बोले—हे मुने! हे नारद! हे प्राज्ञ! मैं आपसे कुछ निवेदन कर रहा हूँ, आप उसे प्रेमपूर्वक सुनिये और आनन्दका अनुभव कीजिये ॥ ३५ ॥

सुना जाता है कि वे महादेवजी आसक्तियोंका त्याग करके अपने मनको संयममें रखते हुए नित्य तपस्या करते हैं और देवताओंकी भी दृष्टिमें नहीं आते ॥ ३६ ॥

हे देवर्षे! ध्यानमार्गमें स्थित हुए वे [भगवान् शंकर] परब्रह्ममें लगाये हुए अपने मनको किस प्रकार विचलित करेंगे, इस विषयमें मुझे महान् संशय है ॥ ३७ ॥

दीपककी लौके समान प्रकाशमान, अविनाशी, प्रकृतिसे परे, निर्विकार, निर्गुण, सगुण, निर्विशेष और निरीह जो परब्रह्म है, वही उनका अपना सदाशिव नामक स्वरूप है, अतः वे उसीका सर्वत्र साक्षात्कार करते हैं। किसी बाह्य वस्तुपर दृष्टिपात नहीं करते ॥ ३८-३९ ॥

हे मुने! यहाँ आये हुए किन्नरोंके मुखसे उनके विषयमें नित्य ऐसा सुना जाता है, क्या यह बात मिथ्या ही है ॥ ४० ॥

विशेषतः यह बात भी सुननेमें आती है कि उन भगवान् हरने पूर्व समयमें [सतीके समक्ष] प्रतिज्ञा की थी, उसे मैं कहता हूँ, आप सुनें ॥ ४१ ॥

[उन्होंने कहा था—] हे दाक्षायणि! हे सति! हे प्रिये! मैं तुम्हारे अतिरिक्त दूसरी स्त्रीका न तो वरण करूँगा और न तो उसे पत्नीरूपमें ग्रहण करूँगा, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ ॥ ४२ ॥

इस प्रकार सतीके साथ उन्होंने पहले ही प्रतिज्ञा कर ली है। अब सतीके मर जानेपर वे स्वयं दूसरी स्त्रीको कैसे ग्रहण करेंगे? ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! यह कहकर उन गिरिने आपके सामने मौन धारण कर लिया, तब इसे सुनकर आप तत्त्वपूर्वक यह बात कहने लगे— ॥ ४४ ॥

नारदजी बोले—हे गिरिराज! हे महामते! आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये, आपकी यह कन्या काली पूर्व समयमें दक्षकी पुत्री थी ॥ ४५ ॥

उस समय उसका नाम सती था, जो सदा मंगल प्रदान करनेवाला है। वह सती दक्षकन्या होकर रुद्रकी प्रिया बनी थी ॥ ४६ ॥

उस सतीने अपने पिताके यज्ञमें अनादर पाकर तथा भगवान् शंकरका भी अपमान हुआ देखकर कोप करके अपने शरीरको त्याग दिया था ॥ ४७ ॥

वे ही अम्बिका शिवा आपके घरमें उत्पन्न हुई हैं। यह पार्वती भगवान् शंकरकी पत्नी होगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥

[ब्रह्माजीने कहा—] हे मुने! उस समय आपने पार्वतीका यह सब प्रीतिवर्धक पूर्वजन्म तथा चरित्र विस्तारपूर्वक गिरिराजसे कहा था ॥ ४९ ॥

मुनिके मुखसे कालीके सम्पूर्ण पूर्व वृत्तान्तको सुनकर पुत्र-स्त्रीसहित वे गिरि सन्देहरहित हो गये ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् कालीने नारदजीके मुखसे उस कथाको सुनकर लज्जासे मुख नीचे कर लिया और उनके मुखपर मुसकान छा गयी ॥ ५१ ॥

उसके चरित्रको सुनकर, हाथसे उसका स्पर्श करके और बार-बार उसका मस्तक सूँघकर हिमालयने उसे अपने आसनके पास बैठाया ॥ ५२ ॥

तब हे मुने! आप वहाँ बैठी हुई उस कालीको देखकर पुत्रोंसहित गिरिराज एवं मेनाको प्रसन्न करते हुए कहने लगे—हे शैलराज! इस पार्वतीके बैठनेके लिये यह सिंहासन क्या है? इसका आसन तो सदा शम्भुका ऊरुदेश होगा। यह तुम्हारी तनया शिवजीके ऊरुका आसन प्राप्त करेगी, जहाँ किसीकी दृष्टि अथवा मनतक नहीं जा सकेगा ॥ ५३—५५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार आप गिरिराजसे उदार वचन कहकर वहाँसे स्वर्ग चले गये और वे गिरिराज भी चित्तमें प्रसन्न होकर सम्पूर्ण समृद्धियोंसे युक्त अपने घर चले गये ॥ ५६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें नारदहिमालयसंवादवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

नौवाँ अध्याय

पार्वतीके विवाहके सम्बन्धमें मेना और हिमालयका वार्तालाप, पार्वती और हिमालयद्वारा देखे गये अपने स्वप्नका वर्णन

नारदजी बोले—हे विधे! हे तात! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे प्राज्ञ! आपने करुणा करके [भगवान् शिवकी] यह अद्भुत कथा कही, उससे [मेरे मनमें] बहुत प्रीति बढ़ी है। हे विधे! जब दिव्य दृष्टिवाला मैं अपने स्थानको चला गया, तब हे तात! क्या हुआ? अब कृपाकर उसे मुझे बतलाइये॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आपके स्वर्ग चले जानेपर कुछ समय बीतनेपर मेनाने हिमालयके पास आकर उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् पुत्रीको प्राणोंसे भी अधिक चाहनेवाली साध्वी गिरिप्रिया मेना वहाँ बैठकर अपने पति गिरिराजसे विनयपूर्वक कहने लगीं॥ ३-४॥

मेना बोलीं—स्त्री-स्वभावके कारण मुनिकी बातको मैंने अच्छी तरह नहीं समझा, [मेरी तो यह प्रार्थना है कि] आप कन्याका विवाह किसी सुन्दर वरके साथ कर दीजिये। यह विवाह सर्वथा अपूर्व सुख देनेवाला होना चाहिये। गिरिजाका वर शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और कुलीन होना चाहिये। मेरी पुत्री मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। वह प्रिया उत्तम वर पाकर जिस प्रकार भी प्रसन्न और सुखी हो सके, वैसा कीजिये, आपको मेरा नमस्कार है॥ ५—७॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर अश्रुयुक्त मुखवाली मेना पतिके चरणोंमें गिर पड़ीं, तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ हिमवान् उन्हें उठाकर यथोचित बात कहने लगे—॥ ८॥

हिमालय बोले—हे देवि! हे मेनके! मैं यथार्थ और तत्त्वकी बात बताता हूँ, सुनिये। आप भ्रम छोड़िये। मुनिकी बात कभी झूठ नहीं हो सकती। यदि आपको पुत्रीके प्रति स्नेह है, तो उसे सादर शिक्षा दीजिये कि वह भक्तिपूर्वक सुस्थिर चित्तसे शंकरके लिये तप करे। हे मेनके! यदि शिव प्रसन्न होकर कालीका पाणिग्रहण कर लेते हैं, तो सब शुभ ही होगा और नारदजीका बताया हुआ अमंगल नष्ट हो जायगा। शिवके समीप सारे अमंगल सदा मंगलरूप हो जाते हैं, इसलिये आपको शिवकी प्राप्तिके लिये पुत्रीको तपस्या करनेकी शीघ्र शिक्षा देनी चाहिये॥ ९—१२॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] हिमवान्की यह बात सुनकर मेना परम प्रसन्न हुईं। वे तपस्यामें रुचिका उपदेश देनेके लिये पुत्रीके पास गयीं। पुत्रीके सुकुमार शरीरपर दृष्टिपात करके मेनाको बड़ी व्यथा हुई और उनके दोनों नेत्रोंमें शीघ्र ही आँसू भर आये॥ १३-१४॥

तब गिरिप्रिया मेना पुत्रीको उपदेश न दे सकीं, किंतु माताकी उस चेष्टाको वे पार्वती शीघ्र ही समझ गयीं। तदनन्तर वे सर्वज्ञ परमेश्वरी कालिका देवी माताको बार-बार आश्वासन देकर शीघ्र कहने लगीं॥ १५-१६॥

पार्वती बोलीं—हे मात:! हे महाप्राज्ञे! सुनिये, आजकी रात्रिके ब्राह्ममुहूर्तमें मैंने एक स्वप्न देखा है, उसे बताती हूँ, आप कृपा करें। हे मात:! एक दयालु एवं तपस्वी ब्राह्मणने मुझे शिवके निमित्त उत्तम तपस्या करनेका प्रसन्नतापूर्वक उपदेश दिया है॥ १७-१८॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] यह सुनकर मेनकाने वहाँ शीघ्र अपने पतिको बुलाकर पुत्रीके देखे हुए उस स्वप्नको पूर्णरूपसे बताया। तब मेनकासे पुत्रीके स्वप्नको

सुनकर गिरिराज बड़े प्रसन्न हुए और वाणीसे पत्नीको समझाते हुए कहने लगे— ॥ १९-२० ॥

गिरिराज बोले—हे प्रिये! मैंने भी रातके अन्तिम प्रहरमें एक स्वप्न देखा है, मैं आदरपूर्वक उसे बताता हूँ, आप प्रेमपूर्वक सुनें। नारदजीके द्वारा बताये गये वरके अंगों [लक्षणों]-को धारण करनेवाले एक परम तपस्वी प्रसन्नताके साथ तपस्या करनेके लिये मेरे नगरके निकट आये। तब मैं भी अति प्रसन्न होकर अपनी पुत्रीको साथ लेकर वहाँ गया। [उस समय] मुझे ज्ञात हुआ कि नारदजीके द्वारा बताये हुए वर भगवान् शम्भु ये ही हैं। मैंने उन तपस्वीकी सेवाके लिये अपनी पुत्रीको उपदेश देकर उनसे भी प्रार्थना की कि वे इसकी सेवा स्वीकार करें, परंतु उस समय उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। इतनेमें वहाँ सांख्य और वेदान्तके अनुसार बहुत बड़ा विवाद छिड़ गया। तदनन्तर उनकी आज्ञासे मेरी पुत्री वहीं रह गयी और अपने हृदयमें उन्हींकी कामना रखकर भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करने लगी। हे सुमुखि! मैंने यही स्वप्न देखा था, जिसे तुम्हें बता दिया। अतः हे मेने! हे प्रिये! कुछ समयतक इस स्वप्नके फलकी परीक्षा करनी चाहिये, इस समय यही उचित जान पड़ता है, अब आप इसीको मेरा निश्चित मत समझिये ॥ २१—२७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! यह कहकर वे गिरिराज तथा मेना शुद्धचित्त हो [कुछ कालपर्यन्त] स्वप्नफलकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ २८ ॥

इसके अनन्तर अभी कुछ ही काल बीता था कि सृष्टिकर्ता तथा सज्जनोंको गति देनेवाले परमेश्वर शिवजी सतीके विरहसे अत्यन्त व्याकुल होकर सर्वत्र घूमते हुए गणोंके साथ तप करनेके लिये प्रेमपूर्वक वहाँ आये। सतीके प्रेमविरहमें व्याकुल चित्तवाले वे वहीं अपना तप करने लगे। उस समय पार्वती अपनी दो सखियोंके साथ उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनकी सेवामें लगी रहती थीं ॥ २९—३१ ॥

[उस समय] उन आत्मस्वरूप शिवको मोहित करनेके लिये देवताओंके द्वारा भेजे गये कामदेवके बाणोंसे विद्ध होकर भी भगवान् शम्भु विचलित नहीं हुए ॥ ३२ ॥

अपनी नेत्राग्निसे कामदेवको जलाकर मेरे वचनका स्मरणकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ३३ ॥

तत्पश्चात् कुछ समय बीतनेके बाद गिरिजाके अभिमानका नाश करके पुनः उनकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न किये गये महेश्वर प्रसन्न हुए ॥ ३४ ॥

उसके बाद विष्णुके द्वारा प्रसन्न किये गये रुद्रने लोकाचारका आश्रय लेकर पार्वतीके साथ विवाह किया। उस अवसरपर बहुत मंगल हुआ ॥ ३५ ॥

पुनः ब्रह्माजी बोले—हे तात! इस प्रकार मैंने संक्षेपमें विभु शंकरका अत्यन्त दिव्य चरित्र [आपसे] कहा, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ३६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें स्वप्नवर्णनपूर्वक संक्षेपमें शिवचरित-वर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

शिवजीके ललाटसे भौमोत्पत्ति

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाभाग! हे विधे! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ! हे प्रभो! आप शिवजीकी इस लीलाको प्रीतिपूर्वक विस्तारसे मुझसे कहिये ॥ १ ॥

सतीके विरहसे युक्त होकर शिवजीने कौन-सा चरित्र किया और वे उत्तम हिमालय पर्वतपर तप करनेके लिये कब आये? ॥ २ ॥

शिवा और शिवजीका विवाद और कामदेवका विनाश किस प्रकार हुआ? पार्वतीने तपस्या करके किस प्रकार कल्याणकारी शम्भुको प्राप्त किया? ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन्! इन सब बातोंको तथा महान् आनन्द देनेवाले अन्य सुन्दर शिवचरित्रोंको मुझसे कहिये ॥ ४ ॥

सूतजी बोले—नारदजीके इस प्रश्नको सुनकर लोकाधिपतियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजी शिवजीके चरणकमलका ध्यान करके अति प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे— ॥ ५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! हे शैववर्य! मंगल करनेवाले, उत्तम भक्तिको बढ़ानेवाले पावन शिव-चरित्रको आदरपूर्वक सुनिये॥ ६॥

अपने पर्वतपर आकर प्रियाके विरहसे दुखी शम्भुने प्राणोंसे भी बढ़कर अपनी प्रिया सती देवीका हृदयसे स्मरण किया॥ ७॥

वे [अपने] गणोंको बुलाकर उन सतीके लिये शोक प्रकट करते हुए, लौकिक गति दिखाते हुए उनके प्रेमवर्धक गुणोंका अत्यन्त प्रेमपूर्वक वर्णन करने लगे॥ ८॥

लीलाविशारद वे शिवजी गृहस्थोचित उत्तम आचरणको छोड़कर दिगम्बर हो गये और पुनः सभी लोकोंमें भ्रमण करने लगे॥ ९॥

सतीके विरहसे दुखी हुए भगवान् शंकरको कहीं भी सतीका दर्शन प्राप्त नहीं हुआ, तब भक्तोंका कल्याण करनेवाले शिवजी पुनः [कैलास] पर्वतपर आ गये॥ १०॥

उसके बाद उन्होंने यत्नपूर्वक मनको एकाग्रकर दुःख दूर करनेवाली समाधि लगायी और अपने अविनाशी स्वरूपका दर्शन किया॥ ११॥

इस प्रकार मायाधीश, त्रिगुणातीत, विकाररहित परब्रह्म स्वयंप्रभु सदाशिव स्थायी होकर समाधिमें बहुत दिनोंतक लीन रहे॥ १२॥

जब [समाधि लगाये हुए उनको] बहुत वर्ष बीत गये, तब उन्होंने अपनी समाधिका त्याग किया। उस समय जो चरित्र हुआ, उसे मैं आपसे शीघ्र कह रहा हूँ॥ १३॥

प्रभुके ललाटस्थलसे जो पसीनेकी बूँदें पृथ्वीपर गिरीं, उनसे शीघ्र ही एक बालक उत्पन्न हुआ॥ १४॥

हे मुने! वह चार भुजाओंसे युक्त, अरुणवर्णवाला, अत्यन्त मनोहर रूपवाला, अलौकिक तेजसे सम्पन्न, श्रीमान्, तेजस्वी तथा शत्रुओंके लिये दुःसह था॥ १५॥

वह बालक उन लोकाचाररत परमेश्वर शिवके सामने समीप जाकर साधारण पुत्रकी भाँति रोने लगा॥ १६॥

उसी समय भगवान् शंकरसे भयभीत हुई पृथ्वी बुद्धिसे विचारकर अत्यन्त सुन्दर स्त्रीका शरीर धारण करके प्रकट हो गयी। उसने शीघ्रतासे उस सुन्दर बालकको अपनी गोदमें उठाकर रख लिया और प्रेमसे उसे अपना दूध पिलाने लगी॥ १७-१८॥

इस प्रकार वह परमेश्वरके हित-साधनके लिये सत्यभावसे बालककी माता बनी और प्रेमपूर्वक हँसते हुए बालकका मुख चूमने लगी॥ १९॥

तब कौतुकी, सृष्टिकर्ता तथा अन्तर्यामी शम्भु इस चरित्रको देखकर उसे पृथ्वी जानकर हँस करके उससे बोले— ॥ २०॥

हे धरणि! तुम धन्य हो, तुम मेरे पुत्रका प्रेमसे पालन करो। यह श्रेष्ठ [बालक] मेरे महातेजस्वी पसीनेसे तुममें उत्पन्न हुआ है॥ २१॥

हे क्षिते! यद्यपि मेरे श्रमजल (पसीने)-से उत्पन्न हुआ यह बालक मुझे बड़ा प्रिय है, फिर भी यह तुम्हारे नामसे विख्यात होगा और सदा तीनों तापोंसे रहित होगा। यह बालक भूमिदान करनेवाला, गुणोंसे सम्पन्न और तुम्हें तथा मुझको भी सुख प्रदान करनेवाला होगा, अतः तुम इसे रुचिके अनुसार ग्रहण करो॥ २२-२३॥

ब्रह्माजी बोले—विरहवेदनासे थोड़ा-सा मुक्त हुए भगवान् शिव इस प्रकार कहकर चुप हो गये। [वस्तुतः] निर्विकारी तथा सज्जनोंके प्रिय वे प्रभु शिवजी लोकाचारका अनुसरण करते हैं॥ २४॥

तब शिवजीसे आज्ञा लेकर पृथ्वी शीघ्र पुत्रसहित अपने स्थानपर चली गयी और उसे अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ॥ २५॥

वह बालक भौम नाम प्राप्त करके शीघ्र ही युवा हो उस काशीमें बहुत कालतक शिवजीकी सेवा करता रहा। इस प्रकार वह भूमिपुत्र विश्वेश्वरकी कृपासे ग्रहपद प्राप्तकर शुक्रलोकसे भी आगे दिव्य लोकमें चला गया॥ २६-२७॥

हे मुने! मैंने सतीके विरहयुक्त शिव-चरित्रको कहा, अब आप शिवजीकी तपस्याके आचरणको आदरके साथ सुनिये॥ २८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें भौमकी उत्पत्ति तथा शिवलीलाका वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् शिवका तपस्याके लिये हिमालयपर आगमन, वहाँ पर्वतराज हिमालयसे वार्तालाप

ब्रह्माजी बोले—हिमालयकी वह लोकपूजित पुत्री पार्वती उनके घरमें बढ़ती हुई जब आठ वर्षकी हो गयी, तब हे नारद! उसका जन्म [हिमालयके घरमें] जानकर सतीके विरहसे दुखी हुए शंकरजी सतीकी इस अद्भुत लीलासे मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो उठे॥ १-२॥

उसी समय लौकिक गतिका आश्रय लेकर शम्भुने अपने मनको एकाग्र करनेके लिये तप करनेका विचार किया॥ ३॥

नन्दी आदि कुछ शान्त, श्रेष्ठ पार्षदोंको साथ लेकर वे हिमालयके गंगावतार नामक उत्तम शिखरपर गये, हे मुने! जहाँ पूर्वकालमें ब्रह्मधामसे प्रवाहित होकर समस्त पापराशिका विनाश करनेके लिये परम पावनी गंगा गिरी थीं॥ ४-५॥

जितेन्द्रिय हरने वहीं रहकर तपस्या आरम्भ की, वे आलस्यका त्यागकर चेतन, ज्ञानस्वरूप, नित्य, ज्योतिर्मय, निरामय, जगन्मय, चिदानन्दस्वरूप, द्वैतहीन तथा आश्रयरहित अपने आत्मभूत परमात्माका एकाग्रभावसे चिन्तन करने लगे॥ ६-७॥

भगवान् हरके ध्यानपरायण होनेपर नन्दी, भृंगी आदि कुछ अन्य पार्षदगण भी ध्यानमें तत्पर हो गये॥ ८॥

उस समय कुछ गण परमात्मा शम्भुकी सेवा करते थे और कुछ द्वारपाल हो गये। वे सब-के-सब मौन रहते थे और कुछ नहीं बोलते थे॥ ९॥

इसी समय गिरिराज हिमालय उस औषधि-शिखरपर भगवान् शंकरका आगमन सुनकर आदरपूर्वक वहाँ गये॥ १०॥

अपने गणोंसहित गिरिराजने प्रभु रुद्रको प्रणाम किया, उनकी पूजा की और अत्यन्त प्रसन्न हो हाथ जोड़कर [वे शिवजीकी] स्तुति करने लगे॥ ११॥

हिमालय बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे कपर्दिन्! हे प्रभो! हे शंकर! आप लोकनाथने ही तीनों लोकोंका पालन किया है॥ १२॥
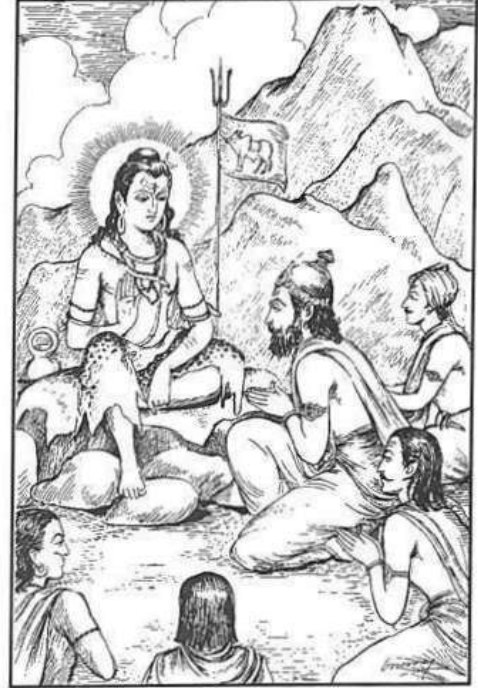
योगीरूप धारण करनेवाले हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है, निर्गुण, सगुण तथा विहार करनेवाले आपको नमस्कार है। हे शम्भो! आप कैलासवासी, सभी लोकोंमें विचरण करनेवाले, लीला करनेवाले, त्रिशूलधारी परमेश्वरको नमस्कार है। [सभी प्रकारसे] परिपूर्ण गुणोंके आकर, विकाररहित, सर्वथा इच्छारहित होते हुए भी इच्छावाले तथा धैर्यवान् आप परमात्माको नमस्कार है॥ १३—१५॥

हे जनवत्सल! हे त्रिगुणाधीश! हे मायापते! बाहरी भोगोंको ग्रहण न करनेवाले आप परब्रह्म परमात्माको नमस्कार है। हे भक्तप्रिय! आप ब्रह्मा, विष्णु आदिके द्वारा सेव्य, ब्रह्मा-विष्णुस्वरूप तथा विष्णु-ब्रह्माको सुख प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ १६-१७॥

हे तपोरत! हे तपःस्थान! आप उत्तम तपस्याका फल प्रदान करनेवाले, तपस्यासे प्रेम करनेवाले, शान्त तथा ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है॥ १८॥

व्यवहार तथा लोकाचार करनेवाले आप सगुण, परेश परमात्माको नमस्कार है॥ १९॥

हे महेश्वर! आपकी लीलाको कोई जान नहीं सकता और यह साधुओंको सुख देनेवाली है। आप

भक्तोंके अधीन स्वरूपवाले तथा भक्तोंके वशमें होकर कर्म करनेवाले हैं॥ २०॥

हे प्रभो! मेरे भाग्यके उदय होनेसे ही आप यहाँ आये हैं। आपने मुझे सनाथ कर दिया, इसीलिये आप दीनवत्सल कहे गये हैं। आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया, आज मेरा सब कुछ सफल हो गया, जो आप यहाँ पधारे हैं॥ २१-२२॥

हे महेश्वर! मुझे अपना दास समझकर नि:संकोच आज्ञा दीजिये, मैं अनन्य बुद्धि होकर बड़े प्रेमसे आपकी सेवा करूँगा॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] गिरिराजका यह वचन सुनकर महेश्वरने थोड़ी-सी आँखें खोलकर सेवकोंसहित हिमालयको देखा। सेवकोंसहित गिरिराजको [उपस्थित] देखकर ध्यानयोगमें स्थित हुए जगदीश्वर वृषभध्वज मुसकराते हुए कहने लगे—॥ २४-२५॥

महेश्वर बोले—[हे शैलराज!] मैं आपके शिखरपर एकान्तमें तपस्या करनेके लिये आया हूँ, आप ऐसा प्रबन्ध कीजिये, जिससे कोई भी मेरे निकट न आ सके॥ २६॥

आप महात्मा, तपस्याके धाम तथा मुनियों, देवताओं, राक्षसों और अन्य महात्माओंको सदा आश्रय देनेवाले हैं॥ २७॥

आप द्विज आदिके सदा निवासस्थान, गंगासे सर्वदा पवित्र, दूसरोंका उपकार करनेवाले तथा सम्पूर्ण पर्वतोंके सामर्थ्यशाली राजा हैं। हे गिरिराज! मैं चित्तको नियममें रखकर यहाँ गंगावतरणस्थलमें आपके आश्रित होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ तपस्या करूँगा॥ २८-२९॥

हे शैलराज! हे गिरिश्रेष्ठ! जिस साधनसे यहाँ मेरी तपस्या बिना किसी विघ्नके हो सके, उसे इस समय आप सर्वथा यत्नपूर्वक कीजिये॥ ३०॥

हे पर्वतप्रवर! मेरी यही सबसे बड़ी सेवा है, आप अपने घर जाइये और उसका उत्तम प्रीतिसे यत्नपूर्वक प्रबन्ध कीजिये॥ ३१॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] ऐसा कहकर सृष्टिकर्ता वे जगदीश्वर चुप हो गये, तब गिरिराजने शम्भुसे प्रेमपूर्वक यह बात कही—॥ ३२॥

हिमालय बोले—हे जगन्नाथ! हे परमेश्वर! आज मैंने आपका स्वागतपूर्वक पूजन किया है, [यही मेरे लिये महान् सौभाग्यकी बात है।] अब मैं अपने देशमें उपस्थित आपसे क्या प्रार्थना करूँ?॥ ३३॥

हे महेश्वर! बड़े-बड़े यत्नका आश्रय ले लेनेवाले देवतालोग महान् तपके द्वारा भी आपको नहीं पाते, वे आप स्वयं उपस्थित हो गये हैं॥ ३४॥

मुझसे बढ़कर कोई सौभाग्यशाली नहीं है और मुझसे बढ़कर कोई पुण्यात्मा नहीं है; जो आप मेरे पृष्ठभागपर तपस्याके लिये उपस्थित हुए हैं॥ ३५॥

हे परमेश्वर! मैं अपनेको देवराज इन्द्रसे भी बढ़कर समझता हूँ; क्योंकि गणोंसहित आपने [यहाँ] आकर मुझे अनुग्रहका भागी बना दिया॥ ३६॥

हे देवेश! आप स्वतन्त्र होकर बिना किसी विघ्नके उत्तम तपस्या कीजिये। हे प्रभो! मैं आपका दास हूँ, अत: सदा आपकी सेवा करूँगा॥ ३७॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] ऐसा कहकर वे गिरिराज तुरंत अपने घर आ गये और उन्होंने अपनी प्रियाको बड़े आदरसे वह सारा वृत्तान्त सुनाया॥ ३८॥

तत्पश्चात् शैलराज साथ जानेवाले परिजनोंको तथा अपने समस्त गणोंको बुलाकर उनसे भलीभाँति कहने लगे—॥ ३९॥

हिमालय बोले—मेरी आज्ञासे आजसे कोई भी गंगावतरण नामक मेरे शिखरपर न जाय, यह मैं सत्य कह रहा हूँ। यदि कोई व्यक्ति वहाँ जायगा तो मैं उस महादुष्टको विशेष रूपसे दण्ड दूँगा, यह मैंने सत्य कहा है॥ ४०-४१॥

हे मुने! इस प्रकार अपने समस्त गणोंको शीघ्र ही नियन्त्रित करके हिमवान्ने [विघ्ननिवारणके लिये] जो सुन्दर प्रयत्न किया, उसे आपको बता रहा हूँ, आप सुनिये॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवशैलसमागमवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

हिमवान्‌का पार्वतीको शिवकी सेवामें रखनेके लिये उनसे आज्ञा माँगना, शिवद्वारा कारण बताते हुए इस प्रस्तावको अस्वीकार कर देना

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तदनन्तर शैलराज हर्षित होकर उत्तम फल-फूलका समूह लेकर अपनी पुत्रीके साथ भगवान् हरके समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने ध्यानपरायण त्रिलोकीनाथको प्रणाम करके अपनी अद्भुत कन्या कालीको हृदयसे उन्हें अर्पित कर दिया॥ १-२॥

सब फल-फूल आदि उनके सामने रखकर और पुत्रीको आगे करके वे शैलराज शम्भुसे यह कहने लगे—॥ ३॥

हिमगिरि बोले—हे भगवन्! मेरी पुत्री आप चन्द्रशेखरकी सेवा करनेके लिये बड़ी उत्सुक है, अतः आपकी आराधनाकी इच्छासे मैं इसको लाया हूँ॥ ४॥

यह अपनी दो सखियोंके साथ सदा आप शंकरकी ही सेवा करेगी। हे नाथ! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है, तो इसे [सेवाके लिये] आज्ञा दीजिये॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—तब शंकरने यौवनकी प्रथमावस्थामें वर्तमान, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, विकसित नीलकमलके पत्रके समान आभावाली, समस्त लीलाओंकी स्थानरूप, सुन्दर वेषसे सुसज्जित, शंखके समान ग्रीवावाली, विशाल नेत्रोंवाली, सुन्दर कर्णयुगलसे शोभित, मृणालके समान चिकनी एवं लम्बी दो भुजाओंसे मनोहर प्रतीत होनेवाली, कमलकलीके समान घने, मोटे तथा दृढ़ स्तनोंको धारण करनेवाली, पतले कटिप्रदेशवाली, त्रिवलीयुक्त मध्यभागवाली, स्थलपद्मके समान चरणयुगलसे सुशोभित, अपने दर्शनसे ध्यानरूपी पिंजड़ेमें बन्द मुनियोंके मनको भी विचलित करनेमें समर्थ और स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ उस [कन्या]-को देखा॥ ६—१०॥

ध्यानियोंके भी मनका हरण करनेवाली, विग्रहसे तन्त्र-मन्त्रोंको बढ़ानेवाली तथा कामरूपिणी वैसी उस कन्याको देखकर उन महायोगीने शीघ्र दोनों नेत्र बन्द कर लिये और वे अपने उत्तम, परमतत्त्वमय, तीनों गुणोंसे परे तथा अविनाशी स्वरूपका ध्यान करने लगे॥ ११-१२॥

उस समय सर्वेश्वर, सर्वव्यापी, तप करते हुए, बन्द नेत्रोंवाले, चन्द्रकलारूप आभूषणवाले, जटा धारण करनेवाले, वेदान्तके द्वारा जाननेयोग्य तथा उत्तम आसनमें स्थित शिवको देखकर महात्मा हिमालयने उन्हें प्रणाम किया, वे पुनः संशयमें पड़ गये। इसके बाद वाक्यवेत्ताओंमें श्रेष्ठ गिरीश्वर जगत्‌के एकमात्र बन्धु शंकरसे यह वचन कहने लगे—॥ १३-१४॥

हिमालय बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे विभो! आँखें खोलकर मुझ शरणागतको देखिये॥ १५॥

हे शिव! हे शर्व! हे महेशान! हे जगत्‌को आनन्द प्रदान करनेवाले प्रभो! हे महादेव! मैं सम्पूर्ण आपत्तियोंको दूर करनेवाले आपको प्रणाम करता हूँ। हे देवेश! वेद और शास्त्र भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते हैं; क्योंकि आपकी महिमा वाणी तथा मनके मार्गसे भी सर्वथा परे है॥ १६-१७॥

सभी श्रुतियाँ भी आपकी महिमाका पार न पा सकनेके कारण चकित होकर नेति-नेति कहते हुए सदा आपका वर्णन करती हैं, फिर दूसरोंकी क्या बात कही जाय!॥ १८॥

बहुत-से भक्त ही भक्तिके द्वारा आपकी कृपा प्राप्त करके उसे जान सकते हैं; क्योंकि [आपकी] शरणमें आये हुए भक्तोंको कहीं भी भ्रम आदि नहीं होता॥ १९॥

अब आप दया करके इस समय मुझ अपने दासका निवेदन सुनें। हे देव! हे तात! मैं आपकी आज्ञासे दीन होकर उसका वर्णन कर रहा हूँ॥ २०॥

हे महादेव! हे शंकर! मैं आपकी कृपासे भाग्यशाली हो गया हूँ। हे नाथ! मुझे अपना दास समझकर मुझपर कृपा करें, आपको नमस्कार है। हे प्रभो! मैं आपके दर्शनके लिये प्रतिदिन इस कन्याके साथ आया करूँगा। हे स्वामिन्! मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—उनका यह वचन सुनकर अपने नेत्र खोलकर ध्यान त्यागकर और कुछ सोच-विचारकर देवदेव महादेव यह वचन कहने लगे—॥ २३॥

महेश्वर बोले—हे भक्त! [अपनी] कन्याको घरपर ही छोड़कर नित्य मेरे दर्शनके लिये आप आ

सकते हैं। अन्यथा मेरा दर्शन नहीं होगा॥ २४॥

ब्रह्माजी बोले—महेशके इस प्रकारके वचनको सुनकर पार्वतीके पिता हिमालय सिर झुकाकर शिवजीसे यह कहने लगे—॥ २५॥

हिमाचल बोले—[हे प्रभो!] इस कन्याके साथ [आपके दर्शनके लिये] किस कारणसे मुझे नहीं आना चाहिये, इसे बताइये। क्या यह आपकी सेवा करनेमें अयोग्य है? मैं इसका कारण नहीं समझ पा रहा हूँ॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—तत्पश्चात् वृषभध्वज शंकर विशेषत: कुयोगियोंका लोकाचार दिखाते हुए हँसकर हिमालयसे कहने लगे—॥ २७॥

शम्भु बोले—[हे शैलराज!] मनोहर नितम्बवाली, तन्वी, चन्द्रमुखी तथा सुन्दरी इस कन्याको मेरे सन्निकट मत लाइयेगा, इसके लिये मैं बार-बार मना करता हूँ॥ २८॥

वेदोंके पारगामी विद्वानोंने स्त्रीको मायारूपा कहा है, उसमें भी विशेष रूपसे युवती स्त्री तो तपस्वियोंके लिये विघ्नकारिणी होती है॥ २९॥

हे भूधर! मैं तपस्वी, योगी तथा सदा मायासे निर्लिप्त रहनेवाला हूँ। अत: मुझे युवती स्त्रीसे क्या प्रयोजन है? हे तपस्वियोंके श्रेष्ठ आश्रय! आपको पुन: ऐसा नहीं कहना चाहिये; क्योंकि आप वेदधर्ममें प्रवीण, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा विद्वान् हैं॥ ३०-३१॥

हे पर्वत! उनके संगसे शीघ्र ही विषयवासना उत्पन्न हो जाती है, वैराग्य नष्ट हो जाता है और उससे श्रेष्ठ तपस्या नष्ट हो जाती है। अत: हे शैल! तपस्वियोंको स्त्रियोंका संग नहीं करना चाहिये; वह [स्त्री] महाविषयका मूल तथा ज्ञान-वैराग्यका नाश करनेवाली होती है॥ ३२-३३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकारकी बहुत-सी बातें उन गिरिराजसे कहकर महान् योगियोंमें श्रेष्ठ महायोगी प्रभु महेश्वर चुप हो गये॥ ३४॥

हे देवर्षे! उन शम्भुका यह स्पृहारहित, निरामय तथा निष्ठुर वचन सुनकर कालीके पिता [हिमालय] विस्मयमें पड़ गये और वे कुछ-कुछ व्याकुल-से होकर चुप हो गये। उस समय तपस्वीके द्वारा कही गयी बातको सुनकर और गिरिराजको आश्चर्यमें पड़ा हुआ विचार करके शिवजीको प्रणामकर भवानी उनसे विशद वचन कहने लगीं॥ ३५-३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिव-हिमाचल-संवादवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

पार्वती और परमेश्वरका दार्शनिक संवाद, शिवका पार्वतीको अपनी सेवाके लिये आज्ञा देना, पार्वतीका महेश्वरकी सेवामें तत्पर रहना

भवानी बोलीं—हे योगिन्! आपने तपस्वी होकर भी मेरे पितासे क्या कह दिया। हे ज्ञानविशारद! उसका उत्तर मुझसे सुनिये। हे शम्भो! आप तपकी शक्तिसे सम्पन्न होकर ही महातपस्या कर रहे हैं और [उसी महाशक्तिकी ही प्रेरणासे] तपस्या करनेके लिये आप महात्माको ऐसी बुद्धि प्राप्त हुई है। सभी कर्मोंको करनेवाली उस शक्तिको ही प्रकृति जानना चाहिये, उसीके द्वारा सबकी सृष्टि, पालन और संहार होता है॥ १—३॥

अतः हे भगवन्! आप कौन हैं और सूक्ष्म प्रकृति क्या है, इसका आप विचार करें। प्रकृतिके बिना लिंगरूपी महेश्वर किस प्रकार रह सकते हैं?॥ ४॥

आप प्रकृतिके ही कारण सदा प्राणियोंके लिये अर्चनीय, वन्दनीय और चिन्तनीय हैं [इस बातको] हृदयसे विचारकर ही आप वह सब कहिये॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] पार्वतीजीके उस वचनको सुनकर महती लीला करनेमें रत रहनेवाले प्रसन्नचित्त महेश्वर हँसकर कहने लगे—॥ ६॥

महेश्वर बोले—मैं उत्तम तपस्याद्वारा ही प्रकृतिका नाश करता हूँ और वस्तुतः प्रकृतिसे रहित होकर ही शम्भुके रूपमें स्थित रहता हूँ। अतः सत्पुरुषोंको कभी भी प्रकृतिका संग्रह नहीं करना चाहिये और लोकाचारसे दूर तथा विकाररहित रहना चाहिये॥ ७-८॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! जब शम्भुने लौकिक व्यवहारके अनुसार यह बात कही, तब काली मन-ही-मन हँसकर यह मधुर वचन कहने लगीं—॥ ९॥

काली बोलीं—हे योगिन्! हे शंकर! हे प्रभो! आपने जो बात कही है, क्या वह प्रकृति नहीं है, आप उससे परे कैसे हैं? इन सबका तात्त्विक दृष्टिसे ठीक-ठीक विचार करके ही आपको बोलना चाहिये। यह सब कुछ सदा प्रकृतिसे बँधा हुआ है। इसीलिये आपको न तो बोलना चाहिये और न कुछ करना ही चाहिये; क्योंकि कहना और करना सब व्यवहार प्रकृति ही है—ऐसा अपनी बुद्धिसे समझिये॥ १०—१२॥

आप जो कुछ सुनते, खाते, देखते और करते हैं, वह सब प्रकृतिका ही कार्य है। इसे मिथ्या कह देना निरर्थक है। हे प्रभो! शम्भो! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं, तो इस समय इस हिमवान् पर्वतपर आप तपस्या किसलिये कर रहे हैं। हे हर! प्रकृतिने आपको निगल लिया है, अतः आप अपनेको नहीं जानते। हे ईश! यदि आप अपनेको जानते हैं, तो किसलिये तप करते हैं॥ १३—१५॥

हे योगिन्! मुझे आपके साथ वाद-विवाद करनेकी क्या आवश्यकता है। विद्वान् पुरुष प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध होनेपर अनुमान प्रमाणको नहीं मानते॥ १६॥

जो कुछ प्राणियोंकी इन्द्रियोंका विषय होता है, वह सब ज्ञानी पुरुषोंको बुद्धिसे विचारकर प्राकृत ही मानना चाहिये। हे योगीश! बहुत कहनेसे क्या लाभ! मेरी उत्तम बात सुनिये। मैं वह प्रकृति हूँ और आप पुरुष हैं। यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ १७-१८॥

मेरे अनुग्रहसे ही आप सगुण और साकार माने गये हैं। मेरे बिना आप निरीह हैं और कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हैं। आप जितेन्द्रिय होनेपर भी प्रकृतिके अधीन हो नाना प्रकारके कर्म करते हैं, तब आप फिर निर्विकार कैसे हैं और मुझसे लिप्त कैसे नहीं हैं? हे शंकर! यदि आप प्रकृतिसे परे हैं और यदि आपका वचन सत्य है, तो मेरे समीप रहनेपर भी आपको डरना नहीं चाहिये॥ १९—२१॥

ब्रह्माजी बोले—पार्वतीका सांख्यशास्त्रके अनुसार कहा हुआ वचन सुनकर भगवान् शिव वेदान्तमतमें स्थित हो शिवासे यह वचन कहने लगे—॥ २२॥

श्रीशिव बोले—सुन्दर भाषण करनेवाली हे गिरिजे! यदि आप सांख्यमतको धारण करके ऐसा कहती हैं, तो प्रतिदिन मेरी अनिषिद्ध सेवा कीजिये, यदि मैं ब्रह्म, मायासे निर्लिप्त, परमेश्वर, वेदान्तसे जाननेयोग्य तथा मायापति हूँ, तब आप क्या करेंगी?॥ २३-२४॥

ब्रह्माजी बोले—गिरिजासे इस प्रकार कहकर भक्तोंको प्रसन्न करनेवाले तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् शिव हिमवान्से कहने लगे—॥ २५॥

शिवजी बोले—हे गिरे! मैं यहीं आपके अत्यन्त रमणीय श्रेष्ठ शिखरकी भूमिपर उत्तम तपस्याके द्वारा आनन्दमय परमार्थ स्वरूपका विचार करता हुआ विचरण करूँगा। पर्वतराज! आप मुझे यहाँ तपस्या करनेकी अनुमति दें, आपकी आज्ञाके बिना कोई तप नहीं किया जा सकता है॥ २६-२७॥

ब्रह्माजी बोले—देवाधिदेव शूलधारी शिवकी यह बात सुनकर हिमवान्ने शम्भुको प्रणाम करके यह वचन कहा—॥ २८॥

हिमवान् बोले—हे महादेव! देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् तो आपका ही है, मैं तुच्छ होकर आपसे क्या कहूँ॥ २९॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] हिमवान्के इस प्रकार कहनेपर लोककल्याणकारी भगवान् शंकरने हँसकर

आदरपूर्वक उन गिरिराजसे कहा—अब आप जाइये॥ ३०॥

शंकरजीकी आज्ञा पाकर हिमवान् गिरिजाके साथ अपने घर लौट गये। तबसे वे गिरिजाके साथ प्रतिदिन उनका दर्शन करने लगे। काली अपने पिताके बिना भी दोनों सहेलियोंके साथ नित्य भक्तिपरायण होकर सेवाके लिये शंकरके पास जाती थीं। हे तात! महेश्वरके आदेशसे उनकी आज्ञाका पालन करनेवाले पवित्र नन्दीश्वर आदि कोई भी गण उन्हें रोकते नहीं थे॥ ३१—३३॥

विशेष विचार करनेपर परस्पर अभिन्न होते हुए भी सांख्य और वेदान्तमतवाले शिवा तथा शिवका संवाद [सभीके लिये] सदा कल्याणदायक तथा सुखकर कहा गया है। इन्द्रियातीत भगवान् शंकरने गिरिराजके कहनेसे उनका गौरव मानकर उनकी पुत्रीको अपने पास रहकर सेवा करनेके लिये स्वीकार कर लिया॥ ३४-३५॥

भगवान् शंकरने सखियोंसहित पार्वतीसे कहा कि तुम नित्य मेरी सेवा करो तथा चली जाओ अथवा निर्भय होकर यहाँ रहो। इस प्रकार कहकर निर्विकार, महायोगी तथा अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेवाले भगवान् शंकरने अपनी सेवाके लिये उन देवीको रख लिया। धैर्यशाली तथा परम तपस्वियोंका यह महान् धैर्य ही है, जो विघ्नकारक वस्तुओंको ग्रहणकर भी विघ्नोंसे विनष्ट नहीं होता है॥ ३६—३८॥

हे मुनीश्वर! तत्पश्चात् गिरिराज अपने सेवकोंके साथ अपने स्थानको चले आये और अपनी प्रियाके साथ मनमें परम आनन्दित हुए॥ ३९॥

भगवान् शंकर भी आदरपूर्वक ध्यान-योगके द्वारा निर्विघ्न मनसे परमात्माका चिन्तन करने लगे॥ ४०॥

काली भी प्रतिदिन सखियोंसहित चन्द्रशेखर महादेवकी सेवा करती हुई वहाँ जाने-आने लगीं॥ ४१॥

वे भगवान् शंकरके चरणोंको धोकर उस चरणोदकका पान करती थीं और आगसे [तपाकर] शुद्ध किये हुए वस्त्रसे उनके शरीरको पोंछा करती थीं॥ ४२॥

वे नित्यप्रति षोडशोपचारसे विधिवत् भगवान् हरकी पूजाकर बारंबार उन्हें प्रणामकर अपने पिताके घर चली जाती थीं। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार ध्यानमें तत्पर भगवान् शंकरकी सेवा करती हुई उन शिवाका बहुत समय व्यतीत हो गया। वे कभी अपनी सखियोंके साथ भगवान् शंकरके आश्रममें तालसे समन्वित प्रेमवर्धक सुन्दर गान करती थीं॥ ४३—४५॥

वे कभी कुशा, पुष्प तथा समिधाएँ स्वयं लाती थीं और सखियोंके साथ आश्रमका सम्मार्जन करती थीं॥ ४६॥

वे कभी नियमपूर्वक शंकरजीके आश्रममें रहकर सकाम भावसे शंकरजीको देखती हुई उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया करती थीं॥ ४७॥

भगवान् शिवने अपनी तपस्याके बलसे निःसंग रहनेवाली उस कालीको देखकर पंचतत्त्वके शरीरमें रहनेवाली अपनी पूर्वजन्मकी भार्या समझ लिया॥ ४८॥

फिर भी शिवजीने मुनियोंको भी मोहित कर देनेवाली तथा महासौन्दर्यकी राशिस्वरूप उन कालीको अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण नहीं किया॥ ४९॥

महादेवजी भगवतीको इस प्रकार जितेन्द्रिय होकर नित्यप्रति अपनी सेवामें संलग्न देखकर दयापूर्वक विचार करने लगे कि जब यह तपस्याका व्रत करेगी, तब अभिमान-बीजसे रहित इस कालीको ग्रहण करूँगा॥ ५०-५१॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विचार करके बड़ी-बड़ी लीलाएँ करनेवाले महायोगीश्वर भूतेश्वर भगवान् शिव शीघ्र ही ध्यानमें तत्पर हो गये॥ ५२॥

हे मुने! ध्यानमें मग्न उन परमात्मा शंकरके मनमें किसी अन्य चिन्ताका उदय नहीं हुआ॥ ५३॥

काली भी उन्हीं परमात्मा शंकरके स्वरूपका चिन्तन करती हुई भक्तिपूर्वक निरन्तर उनकी सेवा करने लगीं॥ ५४॥

भगवान् शिव ध्यानमें स्थित हो पूर्व चिन्ताओंको भूलकर सुस्थित कालीको देखा करते थे, वस्तुतः वे उन्हें देखते हुए भी नहीं देखते थे॥ ५५॥

इसी समय महापराक्रमी तारकासुरसे अत्यन्त पीड़ित इन्द्र आदि देवताओं तथा मुनियोंने उन रुद्रके साथ कालीका कामभावसे योग करानेके लिये ब्रह्माजीकी आज्ञासे कामदेवको आदरपूर्वक वहाँ भेजा॥ ५६-५७॥

कामदेवने वहाँ जाकर अपना समस्त उपाय लगाया, परंतु शिव कुछ भी विक्षुब्ध नहीं हुए और उन्होंने उसे भस्म कर दिया॥ ५८॥

हे मुने! पार्वतीका भी अभिमान नष्ट हो गया और

तत्पश्चात् नारदजीके उपदेशानुसार घोर तपस्या करके उन सतीने शिवको पतिरूपमें प्राप्त किया॥ ५९॥

इस प्रकार परमेश्वर एवं पार्वती परम प्रसन्न हो गये और परोपकारमें परायण होकर देवकार्यको पूर्ण करने लगे॥ ६०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वती और परमेश्वरका संवादवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

तारकासुरकी उत्पत्तिके प्रसंगमें दितिपुत्र वज्रांगकी कथा, उसकी तपस्या तथा वरप्राप्तिका वर्णन

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाशैव! हे विधे! आपने यह शिवा एवं शिवजीके परम पवित्र चरित्रका अच्छी तरहसे वर्णन किया॥ १॥

हे ब्रह्मन्! तारकासुर कौन था, जिसने देवताओंको दु:खित किया, वह किसका पुत्र था, शिवजीसे सम्बन्धित उस कथाको [आप मुझसे] कहिये। जितेन्द्रिय शंकरने किस प्रकार कामदेवको भस्म किया? भगवान् शंकरके इस अद्भुत चरित्रका भी प्रसन्नतापूर्वक वर्णन कीजिये॥ २-३॥

जगत्से परे आदिशक्ति पार्वतीने किस प्रकार अत्यन्त कठोर तप किया और अपने सुखके लिये उन्होंने शंकरको किस प्रकार पतिरूपमें प्राप्त किया?॥ ४॥

हे महाज्ञानी! आप मुझ श्रद्धावान् तथा शिवभक्त अपने पुत्रसे यह सम्पूर्ण चरित्र विशेष रूपसे कहिये॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्रवर्य! हे महाप्राज्ञ! हे सुरर्षे! हे प्रशंसनीय व्रतवाले! मैं शंकरका स्मरणकर उनके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन कर रहा हूँ, आप सुनें॥ ६॥

हे नारद! सबसे पहले आप तारकासुरकी उत्पत्तिको सुनें, जिसके वधके लिये देवताओंने शिवका आश्रय लेकर बड़ा यत्न किया था॥ ७॥

मेरे पुत्र जो मरीचि थे, उनके पुत्र कश्यप हुए। उनकी तेरह स्त्रियाँ थीं, जो दक्षकी कन्याएँ थीं॥ ८॥

उनकी सबसे बड़ी पत्नी दिति थी, उसके दो पुत्र हुए। उनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ तथा हिरण्याक्ष छोटा था॥ ९॥

भगवान् विष्णुने नृसिंह तथा वराहरूप धारणकर अत्यन्त दु:ख देनेवाले उन दोनोंका वध किया। तत्पश्चात् देवगण निर्भय और सुखी रहने लगे॥ १०॥

इससे दिति दुखी हुई और वह कश्यपकी शरणमें गयी। उस पतिव्रताने उनकी सेवाकर भक्तिपूर्वक पुन: गर्भ धारण किया। यह जानकर महान् परिश्रमी देवराज इन्द्रने अवसर पाकर उसके गर्भमें प्रविष्ट होकर वज्रसे उसके गर्भके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। किंतु उसके व्रतके प्रभावसे उसका गर्भ नहीं मरा और दैवयोगसे सोती हुई उसके गर्भसे उनचास पुत्र उत्पन्न हुए॥ ११—१३॥

वे सभी पुत्र मरुत् नामके देवता हुए और स्वर्गको चले गये। देवराजने उन्हें अपना लिया। तब दिति अपने कर्मसे अनुतप्त हो पुन: उनकी सेवा करने लगी और उसने महान् सेवासे उन मुनिको प्रसन्न कर लिया॥ १४-१५॥

कश्यप बोले—हे भद्रे! यदि तुम पवित्र होकर ब्रह्माके दस हजार वर्षपर्यन्त तपस्या करो, तो तुम्हारे गर्भसे पुन: महापराक्रमी पुत्रका जन्म हो सकता है॥ १६॥

हे मुने! दितिने श्रद्धाके साथ जब तपस्या पूरी की, तब अपने पतिसे गर्भ धारणकर वैसा ही पुत्र उत्पन्न किया॥ १७॥

दितिका वह पुत्र देवताओंके समान था, वह वज्रांग नामसे विख्यात हुआ। उसका शरीर नामके अनुसार ही [वज्रके समान] था। वह जन्मसे महाप्रतापी और बलवान् था॥ १८॥

उस पुत्रने अपनी माताकी आज्ञासे बलपूर्वक देवराज इन्द्र तथा देवताओंको भी पकड़कर अनेक प्रकारका दण्ड दिया। इस प्रकार इन्द्र आदिकी दुर्दशा देखकर दिति बहुत प्रसन्न हुई तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने कर्मफलके अनुसार बड़े दुखी हुए॥ १९-२०॥

तब देवताओंकी सदा भलाई करनेवाले मैंने कश्यपको साथ लेकर वहाँ पहुँचकर शान्तिकी बात कहकर देवताओंको उस वज्रांगसे छुड़ाया॥ २१॥

तत्पश्चात् शुद्धात्मा, निर्विकार वह शिवभक्त वज्रांग देवताओंको मुक्त करके प्रसन्नचित्त होकर आदरपूर्वक कहने लगा— ॥ २२ ॥

वज्रांग बोला—यह इन्द्र बड़ा स्वार्थी और दुष्ट है। इसने ही मेरी माताकी सन्तानोंको नष्ट किया है, इसको अपने कर्मका फल मिल गया, अब यह अपना राज्यपालन करे ॥ २३ ॥

हे ब्रह्मन्! यह सारा कार्य मैंने माताकी आज्ञासे किया है। मुझे किसी भुवनके भोगकी अभिलाषा नहीं है ॥ २४ ॥

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मन्! आप मुझे वेदतत्त्वका सार बताइये, जिससे मैं सदा परम सुखी, विकाररहित तथा प्रसन्नचित्त हो जाऊँ ॥ २५ ॥

हे मुने! यह सुनकर मैंने उससे कहा—जो सात्त्विक भाव है, वही तत्त्वसार है। मैंने [तुम्हारे लिये] प्रसन्नतापूर्वक एक सुन्दर स्त्रीका निर्माण किया है ॥ २६ ॥

उस वरांगी नामवाली स्त्रीको मैंने उस दितिपुत्रको प्रदानकर उसके पिताको अत्यन्त प्रसन्नकर मैं अपने घर चला गया और कश्यप भी अपने स्थानको लौट गये ॥ २७ ॥

तब वह दैत्य वज्रांग सात्त्विक भावसे युक्त हो गया और राक्षसी भावको छोड़कर वैररहित हो सुख भोगने लगा ॥ २८ ॥

किंतु वरांगीके हृदयमें सात्त्विक भावका उदय नहीं हुआ और वह सकाम होकर श्रद्धापूर्वक अपने पतिकी अनेक प्रकारसे सेवा करने लगी ॥ २९ ॥

वरांगीका पति महाप्रभु वह वज्रांग उसकी सेवासे सन्तुष्ट हो गया और उससे कहने लगा— ॥ ३० ॥

वज्रांग बोला—हे प्रिये! तुम क्या चाहती हो, तुम्हारे मनमें क्या [विचार] है? मुझे बताओ। तब उसने विनम्र होकर पतिसे अपने मनोरथको कहा— ॥ ३१ ॥

वरांगी बोली—हे सत्पते! यदि आप [मुझसे] प्रसन्न हैं, तो मुझे ऐसा पुत्र दीजिये, जो महाबली, त्रिलोकीको जीतनेवाला तथा इन्द्रको दुःख देनेवाला हो ॥ ३२ ॥

ब्रह्माजी बोले—अपनी पत्नीका यह वचन सुनकर वह व्याकुल तथा आश्चर्यचकित हो गया। वैररहित, ज्ञानी एवं सात्त्विक वह वज्रांग अपने मनमें सोचने लगा— ॥ ३३ ॥

मेरी प्रिया देवताओंसे विरोध करना चाहती है, परंतु मुझे यह अच्छा नहीं लगता। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कौन ऐसा उपाय करूँ, जिससे मेरी प्रतिज्ञा नष्ट न हो ॥ ३४ ॥

यदि प्रियाका मनोरथ पूर्ण होता है, तो तीनों लोक कष्टमें पड़ जायँगे तथा देवता और मुनि भी दुखी हो जायँगे ॥ ३५ ॥

परंतु यदि प्रियाका मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ, तो मुझे नरक भोगना पड़ेगा। दोनों ही प्रकारसे धर्मकी हानि होगी, ऐसा मैंने [धर्मशास्त्रोंसे] सुना है ॥ ३६ ॥

हे मुने! इस तरह धर्मसंकटमें पड़ा हुआ वह वज्रांग भ्रममें पड़ गया, वह अपनी बुद्धिसे दोनों बातोंके उचित-अनुचित [पक्षों]-पर विचार करने लगा ॥ ३७ ॥

हे मुने! [उस समय] उस बुद्धिमान् वज्रांगने शिवकी इच्छासे स्त्रीकी बात मान ली। उस दैत्यराजने प्रियासे कहा—ठीक है, ऐसा ही होगा ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् उसने इस निमित्त जितेन्द्रिय होकर मेरे उद्देश्यसे बहुत वर्षोंतक प्रीतिपूर्वक तप किया ॥ ३९ ॥

तब उसका महातप देखकर उसे वर प्रदान करनेके लिये मैं गया और प्रसन्नमनसे मैंने उससे कहा—वर माँगो ॥ ४० ॥

उस समय वज्रांगने प्रसन्न हुए मुझ विभुको आकाशमें स्थित देखकर प्रणाम करके नाना प्रकारकी स्तुतिकर प्रियाके लिये हितकारी वर माँगा ॥ ४१ ॥

वज्रांग बोला—हे प्रभो! आप मुझे ऐसा पुत्र दीजिये, जो अपनी माताका तथा मेरा परम हित करनेवाला, महाबली, महाप्रतापी, सर्वसमर्थ और तपोनिधि हो ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उसका यह वचन सुनकर मैंने 'तथास्तु' कहा और इस प्रकार उसे वर देकर शिवका स्मरण करते हुए उदास होकर मैं अपने स्थानको लौट आया ॥ ४३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें तारककी उत्पत्तिके प्रसंगमें वज्रांगकी उत्पत्ति और उसकी तपस्याका वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १४ ॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

वरांगीके पुत्र तारकासुरकी उत्पत्ति, तारकासुरकी तपस्या एवं ब्रह्माजीद्वारा उसे वरप्राप्ति, वरदानके प्रभावसे तीनों लोकोंपर उसका अत्याचार

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर वरांगीने आदरपूर्वक गर्भ धारण किया। वह बहुत वर्षोंतक परम तेजसे भीतर ही बढ़ता रहा। तत्पश्चात् समय पूरा होनेपर वरांगीने विशालकाय, महाबलवान् तथा अपने तेजसे दसों दिशाओंको दीप्त करनेवाले पुत्रको उत्पन्न किया॥ १-२॥

देवताओंको दुःख देनेवाले उस वरांगीपुत्रके उत्पन्न होनेपर दुःखके हेतु महान् उत्पात होने लगे। हे तात! उस समय स्वर्ग, भूमि तथा आकाशमें सभी लोकोंको भयभीत करनेवाले अनर्थसूचक तीन प्रकारके उत्पात हुए, मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ ३-४॥

[आकाशसे] महान् शब्द करते हुए भयंकर उल्कायुक्त वज्र गिरने लगे और जगत्को दुःख देनेवाले अनेक सुतीक्ष्ण केतु उदय हो गये। पर्वतसहित पृथ्वी चलायमान हो गयी, सभी दिशाएँ प्रज्वलित हो गयीं, सभी नदियाँ एवं विशेषकर समुद्र क्षुब्ध होने लगे॥ ५-६॥

भयंकर हू-हू शब्द करते हुए तीक्ष्ण स्पर्शवाली हवा बहने लगी और धूल उड़ाती एवं वृक्षोंको उखाड़ती हुई आँधी चलने लगी। हे विप्रेन्द्र! राहुसहित सूर्य और चन्द्रमाके ऊपर बार-बार मण्डल पड़ने लगे, जो महाभयके सूचक तथा सुखका नाश करनेवाले थे॥ ७-८॥

उस समय पर्वतोंकी गुफाओंसे रथकी नेमिके समान घर्घर एवं भयसूचक महान् शब्द होने लगे। सियार एवं उल्लू अपने मुखसे भयानक टंकारयुक्त शब्द करते हुए अग्नि उगलने लगे और सियारिनें गाँवोंके भीतर घुसकर अत्यन्त अमंगल तथा महाभयानक शब्द करने लगीं॥ ९-१०॥

कुत्ते जहाँ-तहाँ गर्दन उठाकर संगीतके समान और रुदनके समान अनेक प्रकारके शब्द करने लगे॥ ११॥

हे तात! गधे रेंकनेके भयानक शब्दसे मत्त होकर अपने खुरोंसे पृथिवीको खोदते हुए झुण्डके झुण्ड इधर-उधर दौड़ने लगे॥ १२॥

पक्षी घोसलोंसे उड़ने लगे। गदहे भयभीत हो गये और व्याकुलचित्त होकर भयानक शब्द करने लगे। उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी॥ १३॥

पशु ताड़ित हुएके समान अपने गोष्ठमें और अरण्यमें भयभीत होकर बारंबार मल-मूत्रका त्याग करने लगे और जहाँ-तहाँ इधरसे उधर भागने लगे। वे एक जगह ठहरते नहीं थे। गायें भयसे आक्रान्त हो उठीं, उनके स्तनोंसे रुधिर निकलने लगा, नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी और वे व्याकुल हो गयीं। बादल भी भय उत्पन्न करते हुए पीवकी वर्षा करने लगे॥ १४-१५॥

देवताओंकी प्रतिमाएँ उछलकर रोने लगीं, बिना आँधीके वृक्ष गिरने लगे और आकाशमें ग्रहोंका युद्ध होने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार अनेक उत्पात होने लगे। अज्ञानी लोग उस समय यह समझ बैठे कि विश्वप्रलय हो रहा है। तदनन्तर प्रजापति कश्यपने विचार करके उस महातेजस्वी असुरका नाम तारक रखा॥ १६—१८॥

वह महावीर सहसा अपने पौरुषको प्रकट करता हुआ वज्रतुल्य शरीरसे पर्वतराजके समान बढ़ने लगा॥ १९॥

तत्पश्चात् उस महाबली, महापराक्रमी तथा मनस्वी तारक दैत्यने तपस्या करनेके लिये मातासे आज्ञा माँगी। मायावियोंको भी मोहित करनेवाले उस महामायावी दैत्यने अपनी मातासे आज्ञा प्राप्तकर सभी देवताओंपर विजय प्राप्त करनेके लिये अपने मनमें तप करनेका विचार किया॥ २०-२१॥

गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला वह दैत्य मधुवनमें जाकर ब्रह्माजीको लक्ष्य करके विधिपूर्वक अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगा॥ २२॥

उस दृढ़व्रत दैत्यने चित्तको स्थिरकर नेत्रोंद्वारा सूर्यको देखते हुए अपनी भुजाओंको ऊपर उठाकर एक पैरपर खड़े होकर सौ वर्षपर्यन्त तपस्या की॥ २३॥

तदनन्तर पैरके अँगूठेसे भूमिको टेककर दृढ़चित्तवाले तथा ऐश्वर्यशाली महान् असुरराज तारकने उसी प्रकार सौ वर्षतक तपस्या की॥ २४॥

सौ वर्षतक जल पीकर, सौ वर्षतक वायु पीकर,

सौ वर्षतक जलमें खड़ा रहकर और सौ वर्षतक स्थण्डिलपर रहकर उसने तपस्या की॥ २५॥

सौ वर्षतक अग्निके बीचमें, सौ वर्षतक नीचेकी ओर मुख करके और सौ वर्षतक हथेलीके बल पृथ्वीपर स्थित होकर वह तपस्या करता रहा। हे मुने! वह सौ वर्षतक वृक्षकी शाखाको दोनों पैरोंसे पकड़कर नीचेकी ओर मुख करके पवित्र धूमका पान करता रहा॥ २६-२७॥

इस प्रकार उस असुरराजने अपने मनोरथको लक्ष्य करके सुननेवालोंको भी सर्वथा दु:सह जान पड़नेवाला अत्यन्त कठिन तथा कष्टकर तप किया॥ २८॥

हे मुने! इस प्रकार तप करते हुए उसके सिरसे चारों दिशाओंमें फैलनेवाला एक महान् उपद्रवकारी महातेज निकला॥ २९॥

हे मुने! उस तेजसे सभी देवलोक प्राय: जलने लगे और चारों ओर समस्त देवता तथा ऋषिगण बड़े दुखी हुए॥ ३०॥

उस समय देवराज इन्द्र अधिक भयभीत हुए कि निश्चय ही इस समय कोई तप कर रहा है, वह मेरे पदको भी छीन लेगा॥ ३१॥

वह ऐश्वर्यशाली तो असमयमें ही ब्रह्माण्डका संहार कर डालेगा—इस प्रकार सन्देहमें पड़े हुए [देवता] लोग कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रहे थे॥ ३२॥

तदनन्तर सभी देवता एवं ऋषि परस्पर विचार करके भयभीत एवं दीन होकर मेरे लोकमें पहुँचे और मेरे सामने उपस्थित हुए॥ ३३॥

व्यथित चित्तवाले उन सभीने प्रणामकर मेरी स्तुति करके हाथ जोड़कर सारा वृत्तान्त मुझसे कहा॥ ३४॥

मैं भी सद्बुद्धिसे [उनकी व्यग्रताका] समस्त कारण जानकर जिस स्थानपर असुर तप कर रहा था, उस स्थानपर उसे वर देनेके लिये गया॥ ३५॥

हे मुने! मैंने उससे कहा—[हे दैत्य!] तुमने घोर तपस्या की है, अत: वर माँगो, मुझे कोई भी वस्तु तुम्हारे लिये अदेय नहीं है। तब मेरा वचन सुनकर उस महान् असुर तारकने मुझे प्रणाम करके तथा मेरी स्तुतिकर अत्यन्त कठिन वर माँगा॥ ३६-३७॥

तारक बोला—हे पितामह! वर देनेवाले आपके प्रसन्न हो जानेपर मेरे लिये क्या असाध्य हो सकता है, अत: मैं आपसे वर माँगता हूँ, उसे मुझसे सुनिये॥ ३८॥

हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं, तो मेरे ऊपर कृपा करके मुझे दो वर दीजिये॥ ३९॥

हे महाप्रभो! आपके बनाये हुए इस समस्त लोकमें कोई भी पुरुष मेरे समान बलवान् न हो और शिवजीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र देवताओंका सेनापति बनकर जब मेरे ऊपर शस्त्र प्रहार करे, तब मेरी मृत्यु हो॥ ४०-४१॥

हे मुनीश्वर! जब उस दैत्यने मुझसे इस प्रकार कहा, तब मैं उसे उसी प्रकारका वर देकर शीघ्रतापूर्वक अपने स्थानको चला गया॥ ४२॥

वह दैत्य भी मनोवांछित उत्तम वर प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न होकर शोणित नामक पुरको चला गया॥ ४३॥

उसके बाद दैत्यगुरु शुक्राचार्यने मेरी आज्ञासे असुरोंके साथ जाकर त्रिलोकीके राज्यपर उस महान् असुरका अभिषेक किया। तब वह महादैत्य त्रैलोक्याधिपति हो गया और चराचरको पीड़ित करता हुआ अपनी आज्ञा चलाने लगा। इस प्रकार वह तारक विधिपूर्वक त्रैलोक्यका राज्य करने लगा और देवता आदिको पीड़ा पहुँचाता हुआ प्रजापालन करने लगा॥ ४४—४६॥

तदनन्तर उस तारकासुरने इन्द्र आदि लोकपालोंके रत्नोंको ग्रहण कर लिया, उन्होंने उसके भयसे [रत्न] स्वयं प्रदान किये॥ ४७॥

इन्द्रने उसके भयसे उसे ऐरावत हाथी समर्पित कर दिया और कुबेरने नौ निधियाँ दे दीं। वरुणने श्वेतवर्णके घोड़े, ऋषियोंने कामधेनु और इन्द्रने उच्चै:श्रवा नामक दिव्य घोड़ा भयके कारण उसे समर्पित कर दिया॥ ४८-४९॥

उस असुरने जहाँ-जहाँ अच्छी वस्तुएँ देखीं, उन्हें बलपूर्वक हरण कर लिया। इस प्रकार त्रिलोकी सर्वथा नि:सार हो गयी॥ ५०॥

हे मुने! समुद्रोंने भी भयसे उसे समस्त रत्न प्रदान कर दिये, बिना जोते-बोये ही पृथिवी अन्न प्रदान करने लगी और सभी प्रजाओंके मनोरथ पूर्ण हो गये॥ ५१॥

सूर्य उतना ही तपते थे, जिससे किसीको कष्ट न हो, चन्द्रमा उजाला करते रहते और वायु सबके अनुकूल ही चलता था॥ ५२॥

उस दुरात्मा असुरने देवताओं, पितरों तथा अन्यका जो भी द्रव्य था, वह सब हरण कर लिया॥ ५३॥

इस प्रकार वह तीनों लोकोंको अपने अधीनकर स्वयं इन्द्र बन बैठा। वह इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाला अद्वितीय राजा हुआ और अद्भुत प्रकारसे राज्य करने लगा॥ ५४॥

उसने समस्त देवताओंको हटाकर उनकी जगह दैत्योंको नियुक्त कर दिया और देवताओंको अपने कर्ममें नियुक्त किया। हे मुने! तदनन्तर उससे पीड़ित हुए इन्द्र आदि समस्त देवगण अनाथ तथा अत्यन्त व्याकुल होकर मेरी शरणमें आये॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें तारकासुरकी तपस्या एवं उसके राज्यका वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

तारकासुरसे उत्पीड़ित देवताओंको ब्रह्माजीद्वारा सान्त्वना प्रदान करना

ब्रह्माजी बोले—उसके बाद तारकासुरसे पीड़ित वे समस्त देवता मुझ प्रजापतिको भलीभाँति प्रणामकर परम भक्तिसे स्तुति करने लगे॥ १॥

देवताओंकी यथार्थ एवं हृदयग्राही सरस स्तुति सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर मैंने उन देवताओंसे कहा—॥ २॥

हे देवताओ! आपलोगोंका स्वागत है। आपलोगोंके अधिकार निर्विघ्न तो हैं? आप सब यहाँ किस निमित्त आये हैं, मुझसे कहिये। मेरी यह बात सुनकर तारकासुरसे पीड़ित वे सभी देवता मुझे प्रणाम करके विनयी हो दीनतापूर्वक मुझसे कहने लगे—॥ ३-४॥

देवता बोले—हे लोकेश! आपके वरदानसे अभिमानमें भरे हुए तारक असुरने हठपूर्वक हमलोगोंको अपने स्थानोंसे वंचितकर उन्हें बलपूर्वक स्वयं ग्रहण कर लिया है। हमलोगोंके समक्ष जो दुःख उपस्थित हुआ है, क्या आप उसे नहीं जानते हैं? हमलोग आपकी शरणमें आये हैं, उस दुःखका शीघ्र निवारण कीजिये॥ ५-६॥

हमलोग जहाँ कहीं भी जाते हैं, वह असुर रात-दिन हमलोगोंको पीड़ित करता है। हम जहाँ भी भागकर जाते हैं, वहाँ तारकको ही देखते हैं॥ ७॥

हे सर्वेश्वर! हमलोगोंके समक्ष तारकासुरसे जैसा भय उपस्थित हो गया है, वह दुःख सहा नहीं जा रहा है। हमलोग उसी पीड़ासे अत्यन्त व्याकुल हैं॥ ८॥

अग्नि, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु एवं अन्य समस्त दिक्पाल उसके वशमें हो गये हैं। सभी देवता अपने समस्त परिकरोंसहित मनुष्यधर्मा हो गये हैं और उसकी सेवा करते हैं। वे किसी प्रकार भी स्वतन्त्र नहीं हैं॥ ९-१०॥

इस प्रकार उससे पीड़ित होकर सभी देवता सदा उसके वशवर्ती हो गये हैं और उसकी इच्छाके अनुसार कार्य करते हैं तथा उसके अनुजीवी हो गये हैं॥ ११॥

उस महाबली तारकने जितनी भी सुन्दर स्त्रियाँ हैं तथा अप्सराएँ हैं, उन सबको ग्रहण कर लिया है॥ १२॥

अब यज्ञ-याग सम्पन्न नहीं होते, तपस्वी लोग तपस्या भी नहीं कर पाते। लोकोंमें दान, धर्म आदि कुछ भी नहीं हो रहा है। उसका सेनापति दानव क्रौंच अत्यन्त पापी है। वह पाताललोकमें जाकर प्रजाओंको निरन्तर पीड़ित करता है। हे जगद्धाता! उस निष्करुण तथा पापी तारकने हमारे सम्पूर्ण त्रिलोकको बलपूर्वक अपने वशमें कर लिया है। अब आप ही जो स्थान बतायें, वहाँ हमलोग जायँ। हे लोकनाथ! उस देवशत्रुने हमलोगोंको अपने-अपने स्थानोंसे हटा दिया है। अब आप ही हमलोगोंके शरणदाता हैं। आप ही हमारे शासक, रक्षक तथा पोषक हैं। हम सभी लोग तारक नामक अग्निमें दग्ध होकर बहुत व्याकुल हो रहे हैं॥ १३—१७॥

जिस प्रकार सन्निपात नामक विकारमें बलवान् औषधियाँ भी निष्फल हो जाती हैं, उसी प्रकार उसने हमारे सभी कठोर उपायोंको निष्फल कर दिया है॥ १८॥

भगवान् विष्णुके जिस सुदर्शन नामक चक्रसे हमलोगोंको विजयकी आशा थी, वह उसके कण्ठमें पुष्पके समान लगकर कुण्ठित हो गया है॥ १९॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! देवताओंके इस वचनको

सुनकर मैं सभी देवताओंसे समयोचित बात कहने लगा— ॥ २० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवगणो! मेरे वरदानके कारण ही वह तारक नामक दैत्य बलवान् हुआ है। अत: मेरे द्वारा उसका वध उचित नहीं है। जिसके द्वारा वह वृद्धिको प्राप्त हुआ है, उसीसे उसका वध उचित नहीं है। विषवृक्षको भी बढ़ाकर उसे स्वयं काटना अनुचित है ॥ २१-२२ ॥

शिवजी ही आपलोगोंका सारा कार्य कर सकनेयोग्य हैं, किंतु वे स्वयं कुछ नहीं करेंगे, प्रेरणा करनेपर वे इसका प्रतीकार करनेमें समर्थ हैं ॥ २३ ॥

तारकासुर स्वयं अपने पापसे नष्ट होगा। मैं जैसा उपदेश करता हूँ, वैसा आपलोग करें ॥ २४ ॥

मेरे वरके प्रभावसे न मैं, न विष्णु, न शंकर, न दूसरा कोई और न सभी देवता ही तारकका वध कर सकते हैं, यह मैं सत्य कह रहा हूँ। हे देवताओ! यदि शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो, तो वही तारक दैत्यका वध कर सकता है, दूसरा नहीं ॥ २५-२६ ॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! मैं जो उपाय बता रहा हूँ, उसे आपलोग कीजिये, वह उपाय महादेवजीकी कृपासे अवश्य सिद्ध होगा। पूर्वकालमें जिन दक्षकन्या सतीने [दक्षके यज्ञमें] अपने शरीरका त्याग किया था, वे ही [इस समय] मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं, यह बात आपलोगोंको ज्ञात ही है ॥ २७-२८ ॥

हे देवगणो! महादेवजी उनका पाणिग्रहण अवश्य करेंगे, तथापि आपलोग भी उसका उपाय करें ॥ २९ ॥

आपलोग यत्नपूर्वक ऐसा उपाय कीजिये कि मेनाकी पुत्री पार्वतीमें शिवजीके वीर्यका आधान हो ॥ ३० ॥

ऊर्ध्वरेता शंकरको च्युतवीर्य करनेमें वे ही समर्थ हैं, कोई अन्य स्त्री समर्थ नहीं है ॥ ३१ ॥

पूर्ण यौवनवाली वे गिरिराजपुत्री इस समय हिमालयपर तपस्या करते हुए शंकरकी नित्य सेवा करती हैं ॥ ३२ ॥

अपने पिता हिमवान्के कहनेसे वे काली शिवा अपनी दो सखियोंके साथ ध्यानपरायण परमेश्वर शिवकी हठपूर्वक सेवा कर रही हैं। सेवामें तत्पर उन त्रैलोक्य-सुन्दरीको सामने देखकर ध्यानमग्न महेश्वर मनसे भी विचलित नहीं होते ॥ ३३-३४ ॥

हे देवताओ! वे चन्द्रशेखर जिस प्रकार कालीको भार्यारूपमें स्वीकार करें, आपलोग शीघ्र ही वैसा प्रयत्न करें। मैं भी उस दैत्यके स्थानपर जाकर उस तारकको दुराग्रहसे रोकूँगा। हे देवताओ! अब आपलोग अपने स्थानको जाइये। देवताओंसे इस प्रकार कहकर मैं शीघ्र ही तारक नामक असुरके पास जाकर उसे प्रेमपूर्वक बुलाकर कहने लगा— ॥ ३५—३७ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे तारक!] तुम तेजोंके सारस्वरूप इस स्वर्गका राज्य कर रहे हो। जिसके लिये तुमने उत्तम तपस्या की थी, उससे भी अधिकको इच्छा रखते हो ॥ ३८ ॥

मैंने [तुम्हें] इससे छोटा ही वर दिया था, मैंने तुम्हें स्वर्गका राज्य नहीं दिया था, इसलिये तुम स्वर्गका राज्य छोड़कर पृथिवीपर राज्य करो ॥ ३९ ॥

हे असुरश्रेष्ठ! इसमें तुम किसी प्रकार विचार मत करो, वहाँ भी बहुत-से देवताओंके योग्य कार्य हैं ॥ ४० ॥

सभीका ईश्वर मैं इस प्रकार उस असुरसे कहकर और उसे समझाकर शिवासहित शिवका ध्यान करके वहीं अन्तर्धान हो गया। उसके बाद तारक भी स्वर्गको छोड़कर पृथिवीपर आ गया और वह शोणित नामक नगरमें रहकर राज्य करने लगा। सभी देवगण भी मेरा वचन सुनकर मुझे सादर प्रणाम करके समाहितचित्त हो इन्द्रके साथ इन्द्रपुरीको गये ॥ ४१—४३ ॥

वहाँ जाकर मिल करके आपसमें विचार करके उन सब देवताओंने इन्द्रसे प्रेमपूर्वक कहा— ॥ ४४ ॥

देवता बोले—हे इन्द्र! जिस प्रकार भगवान् शंकर सकाम होकर शिवाकी अभिलाषा करें, ब्रह्माजीके द्वारा बताया हुआ वह सारा प्रयत्न आपको करना चाहिये ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित करके वे देवता प्रसन्नतापूर्वक सब ओर अपने-अपने स्थानको चले गये ॥ ४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवसान्त्वनवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

इन्द्रके स्मरण करनेपर कामदेवका उपस्थित होना, शिवको तपसे विचलित करनेके लिये इन्द्रद्वारा कामदेवको भेजना

ब्रह्माजी बोले—उन देवताओंके चले जानेपर दुरात्मा तारकासुरसे अत्यन्त पीड़ित हुए इन्द्रने कामका स्मरण किया। उसी समय वसन्तको साथ लेकर रतिपति त्रैलोक्यविजयी समर्थ कामदेव रतिके साथ साभिमान वहाँ उपस्थित हुआ॥ १-२॥

हे तात! प्रणाम करके उनके समक्ष खड़ा होकर हाथ जोड़कर वह महामनस्वी काम इन्द्रसे कहने लगा— ॥ ३ ॥

काम बोला—हे देवेश! आपको कौन-सा कार्य आ पड़ा है, आपने किस कारणसे मेरा स्मरण किया है, उसे शीघ्र ही कहिये, मैं उसे करनेके लिये ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—उस कामके इस वचनको सुनकर बहुत अच्छा, बहुत अच्छा—यह कहकर देवराज प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे— ॥ ५ ॥

इन्द्र बोले—मेरा जिस प्रकारका कार्य उपस्थित हुआ है, उसको करनेमें तुम्हीं समर्थ हो, हे मकरध्वज! तुम धन्य हो, जो उसे करनेके लिये उद्यत हो॥ ६॥

मेरे प्रस्तुत वाक्यको सुनो, मैं तुम्हारे सामने कह रहा हूँ, मेरा जो कार्य है, वह तुम्हारा ही है, इसमें सन्देह नहीं है। मेरे बहुत-से महान् मित्र हैं, किंतु हे काम! तुम्हारे समान उत्तम मित्र कहीं भी नहीं है॥ ७-८॥

हे तात! विजय प्राप्त करनेके लिये मेरे पास दो ही उपाय हैं, एक वज्र और दूसरे तुम, जिसमें वज्र तो [कदाचित्] निष्फल भी हो जाता है, किंतु तुम कभी निष्फल होनेवाले नहीं हो॥ ९॥

जिससे अपना हित हो, उससे प्रिय और कौन हो सकता है? इसलिये तुम मेरे सर्वश्रेष्ठ मित्र हो, तुम अवश्य ही मेरा कार्य सम्पन्न कर सकते हो॥ १०॥

समयानुसार मेरे सामने असाध्य दुःख उत्पन्न हो गया है, तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी उसे दूर करनेमें समर्थ नहीं है॥ ११॥

दुर्भिक्ष पड़नेपर दानीकी, युद्धस्थलमें शूरवीरकी, आपत्तिकालमें मित्रकी, असमर्थ होनेपर स्त्रियोंकी तथा कुलकी, नम्रतामें तथा संकटके उपस्थित होनेपर सत्यकी और उत्तम स्नेहकी परीक्षा परोक्षकालमें होती है, यह अन्यथा नहीं है, यह सत्य कहा गया है॥ १२-१३॥

हे मित्रवर्य! दूसरेके द्वारा दूर न की जा सकनेवाली मेरी इस विपत्तिके आ पड़नेपर आज तुम्हारी परीक्षा होगी॥ १४॥

सुखकी प्राप्ति करानेवाला यह कार्य केवल मेरा ही नहीं है, अपितु यह सभी देवता आदिका कार्य है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १५॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्रके इस वचनको सुनकर कामदेव मुसकराते हुए प्रेमयुक्त वचन कहने लगा— ॥ १६ ॥

काम बोला—हे देवराज! आप इस प्रकारकी बातें क्यों कर रहे हैं? मैं आपको उत्तर नहीं दे सकता। बनावटी मित्र ही लोकमें देखे जाते हैं, वास्तविक उपकारीके विषयमें कुछ कहा नहीं जाता है॥ १७॥

जो [मित्र] संकटमें बहुत बातें करता है, वह क्या कार्य करेगा, फिर भी हे महाराज! हे प्रभो! मैं कुछ कह रहा हूँ, उसे आप सुनें॥ १८॥

हे मित्र! जो आपका पद छीननेके लिये कठोर तपस्या कर रहा है, मैं आपके उस शत्रुको तपसे सर्वथा च्युत कर दूँगा। चाहे वह देवता, ऋषि एवं दानव आदि कोई हो, उसे क्षणभरमें सुन्दर स्त्रीके कटाक्षसे भ्रष्ट कर दूँगा, फिर मनुष्योंकी तो मेरे सामने कोई गणना ही नहीं है॥ १९-२०॥

आपके वज्र और अन्य बहुत-से शस्त्र दूर ही रहें। मेरे-जैसे मित्रके रहते वे आपका क्या कार्य कर सकते हैं। मैं ब्रह्मा तथा विष्णुको भी विचलित कर सकता हूँ। [अधिक क्या कहूँ] मैं शंकरको भी भ्रष्ट कर सकता हूँ, औरोंकी तो गणना ही नहीं है॥ २१-२२॥

मेरे पास पाँच ही कोमल बाण हैं और वे भी पुष्पनिर्मित हैं, तीन प्रकारवाला मेरा धनुष भी पुष्पमय है, उसकी डोरी भ्रमरोंसे युक्त है। मेरा बल सुन्दर स्त्री है तथा वसन्त मेरा सचिव कहा गया है। हे देव! इस प्रकार मैं पंचबल [पाँच बलोंवाला] हूँ। चन्द्रमा मेरा मित्र है, शृंगार मेरा सेनापति है और हाव-भाव मेरे सैनिक हैं। हे इन्द्र! ये सभी मेरे उपकरण मृदु हैं और मैं भी उसी प्रकारका हूँ॥ २३—२५॥

जिससे जो कार्य पूर्ण हो, बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि उसको उसी कार्यमें नियुक्त करे। अत: [हे इन्द्र!] मेरे योग्य जो भी कार्य हो, उसमें आप मुझे नियुक्त करें॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार उसके वचनको सुनकर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और वाणीसे सत्कार करते हुए वे स्त्रियोंको सुख देनेवाले कामसे कहने लगे—॥ २७॥

शक्र बोले—हे तात! हे कामदेव! मैंने जो कार्य [अपने] मनमें सोचा है, उसे करनेमें केवल तुम ही समर्थ हो, वह कार्य दूसरेसे होनेवाला नहीं है॥ २८॥

हे काम! हे मित्रवर्य! हे मनोभव! जिस कार्यके लिये आज तुम्हारी आवश्यकता हुई है, उसे मैं यथार्थ रूपसे कह रहा हूँ, तुम उसे सुनो। इस समय तारक नामक महादैत्य ब्रह्मासे अद्भुत वरदान पाकर अजेय हो गया है और सभीको पीड़ा पहुँचा रहा है॥ २९-३०॥

वह सारे संसारको पीड़ा दे रहा है, [उसके कारण] सभी धर्म भी नष्ट हो गये हैं, सभी देवता तथा ऋषिगण दु:खित हैं॥ ३१॥

देवताओंने अपने बलके अनुसार उससे युद्ध भी किया, किंतु सभीके शस्त्र उसके सामने व्यर्थ हो गये॥ ३२॥

वरुणका पाश टूट गया और विष्णुके द्वारा उसके कण्ठपर प्रहार किया गया, किंतु उनका वह सुदर्शन चक्र भी कुण्ठित हो गया। ब्रह्माजीने दुरात्मा दैत्यकी मृत्युका निर्धारण महायोगीश्वर शिवके वीर्यसे उत्पन्न हुए पुत्रके द्वारा किया है। अब तुम्हें प्रयत्नपूर्वक इस कार्यको अच्छी तरह करना चाहिये। हे मित्र! इस कार्यसे देवताओंको महान् सुख होगा॥ ३३—३५॥

अत: तुम हृदयमें मित्रधर्मका स्मरण करके मेरे लिये भी हितकर तथा सभी लोकोंको सुख देनेवाले इस कार्यको इसी समय सम्पन्न करो॥ ३६॥

वे परमेश्वर प्रभु कामनासे परे हैं। वे शम्भु इस समय हिमालयपर्वतपर परम तप कर रहे हैं॥ ३७॥

मैंने ऐसा सुना है कि उनके समीप ही पार्वती अपने पितासे आज्ञा लेकर अपनी सखियोंके साथ उन्हें प्रसन्नकर अपना पति बनानेके उद्देश्यसे सेवापरायण रहती हैं॥ ३८॥

हे काम! इस प्रकारका उपाय करना चाहिये, जिससे कि चित्तको वशमें रखनेवाले शिवजीकी अभिरुचि पार्वतीमें हो जाय। ऐसा करके तुम कृतकृत्य हो जाओगे और सारा दु:ख नष्ट हो जायगा। तुम्हारी कीर्ति भी संसारमें चिरस्थायी हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३९-४०॥

ब्रह्माजी बोले—इन्द्रके इस प्रकार कहनेपर कामदेवका मुखकमल खिल उठा और उसने प्रेमपूर्वक इन्द्रसे कहा—मैं [आपका यह कार्य] नि:सन्देह करूँगा॥ ४१॥

शिवकी मायासे मोहित कामदेवने उनके वचनको 'ओम्'-ऐसा कहकर शीघ्रतापूर्वक स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् जहाँ साक्षात् योगीश्वर शंकर कठोर तप कर रहे थे, वहाँ प्रसन्नचित्त होकर अपनी पत्नी तथा वसन्तको साथ लेकर कामदेव पहुँच गया॥ ४२-४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें इन्द्रकामदेवसंवाद-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

कामदेवद्वारा असमयमें वसन्त-ऋतुका प्रभाव प्रकट करना, कुछ क्षणके लिये शिवका मोहित होना, पुनः वैराग्य-भाव धारण करना

ब्रह्माजी बोले—शिवजीकी मायासे मोहित होकर वह महाभिमानी तथा मोह उत्पन्न करनेवाला काम शिवजीके समीप जाकर वसन्त-ऋतुके गुण-धर्मको फैलाता हुआ वहाँ स्थित हो गया॥ १॥

हे मुनीश्वर! वसन्तका जो प्रभाव है, वह महेशके तपःस्थान औषधिशिखरपर सभी ओर फैल गया॥ २॥

हे महामुने! हे मुनीश्वर! वहाँ उसके प्रभावसे पादपोंके वन विशेषरूपसे पुष्पित हो उठे॥ ३॥

अशोककी वाटिकाओंमें सहकारोंके कामोद्दीपक तथा सुगन्धित पुष्प विराजने लगे। भौंरोंसे घिरे हुए कुमुदके पुष्प विशेषरूपसे कामावेशको बढ़ानेवाले हो गये॥ ४-५॥

[उस समय] कोयलोंका कलरव कामको अत्यधिक उद्दीप्त करनेवाला, सुरम्य, मनोहर और अतिप्रिय हो गया॥ ६॥

हे मुने! भौंरोंके अनेक प्रकारके शब्द होने लगे, जो सबके मनको हर लेनेवाले तथा काम-वासनाको उत्तेजित करनेवाले थे। चन्द्रमाकी मनोहर ज्योत्स्ना चारों ओर फैल गयी, वह कामियों तथा कामिनियोंकी दूतीके समान हो गयी। वह [ज्योत्स्ना] मानीजनोंको रति आदिके लिये प्रेरित तथा रतिकालको और भी उद्दीप्त करनेवाली थी। हे साधो! [उस समय] विरहीजनके लिये अप्रिय सुखकारी वायु बहने लगी॥ ७—९॥

इस प्रकार कामावेशको बढ़ानेवाला वह वसन्तका विस्तार वहाँ वनमें रहनेवाले मुनियोंके लिये भी अत्यन्त असह्य हो गया॥ १०॥

हे मुने! उस समय जड़ पदार्थोंमें भी जब कामका संचार होने लगा, तब सचेतन प्राणियोंकी कथाका किस प्रकार वर्णन किया जाय। इस प्रकार सभी प्राणियोंके लिये कामको उद्दीप्त करनेवाले उस वसन्तने अपना अत्यन्त दुस्सह प्रभाव उत्पन्न किया॥ ११-१२॥

हे तात! तब अपनी लीलाके लिये शरीर धारण करनेवाले प्रभु शंकरने असमयमें उस वसन्तके प्रभावको देखकर इसे महान् आश्चर्य समझा॥ १३॥

इसके बाद लीला करनेवाले तथा दुःखहरण करनेवाले परम संयमी प्रभु शिव परम दुष्कर तपस्या करने लगे॥ १४॥

तदनन्तर वहाँ वसन्तके फैल जानेपर रतिसहित वह काम आम्रमंजरीका बाण चढ़ाकर उनके बाँयीं ओर खड़ा हो गया और प्राणियोंको मोहित करता हुआ अपना प्रभाव फैलाने लगा। उस समय रतिसहित कामको देखकर भला कौन [प्राणी] मोहित नहीं हुआ॥ १५-१६॥

इस प्रकार उनके कामक्रीडामें प्रवृत्त हो जानेपर शृंगार भी हाव-भावसे युक्त होकर अपने गणोंके साथ शिवजीके समीप पहुँचा॥ १७॥

चित्तमें निवास करनेवाला कामदेव वहाँ बाहर प्रकट हो गया, उस समय वह शंकरमें कोई छिद्र नहीं देख पाया, जिससे वह प्रवेश कर सके॥ १८॥

जब कामदेवने उन योगिश्रेष्ठ महादेवमें छिद्र नहीं पाया, तब वह महान् भयसे विमोहित हो गया॥ १९॥

धधकती हुई ज्वालावाली अग्निके समान भालनेत्रसे युक्त ध्यानस्थ शंकरके पास जानेमें कौन समर्थ है?॥ २०॥

इसी समय पार्वती भी दो सखियोंके साथ अनेक प्रकारके पुष्प लेकर शिवकी पूजा करनेके लिये वहाँ पहुँच गयीं। लोग पृथिवीपर जिस-जिस प्रकारके महान् सौन्दर्यका वर्णन करते हैं, वह सब तथा उससे भी अधिक सौन्दर्य उन पार्वतीजीमें है॥ २१-२२॥

उन्होंने ऋतुकालीन सुन्दर पुष्पोंको धारण किया था, उनकी सुन्दरताका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी कैसे किया जा सकता है! जिस समय वे पार्वती शिवजीके समीप पहुँचीं, उस समय शिवजी क्षणभरके लिये ध्यान त्यागकर अवस्थित हो गये॥ २३-२४॥

उस छिद्रको पाकर कामने पहले [अपने] हर्षण नामक बाणसे समीपस्थ शंकरको हर्षित कर दिया॥ २५॥

हे मुने! उस समय पार्वती भी शृंगार एवं भावोंसे युक्त होकर मलयानिलके साथ [मानो] कामकी सहायता करनेके लिये शिवके सन्निकट गयी हुई थीं॥ २६॥

उसी समय कामदेवने शूलधारी शिवको [पार्वतीमें] रुचि उत्पन्न करनेके लिये अपना धनुष खींचकर शीघ्र ही बड़ी सावधानीसे उनपर पुष्प-बाण छोड़ा॥ २७॥

जिस प्रकार पार्वती नित्य निरन्तर शिवजीके पास आती थीं, उसी प्रकार आकर उन्हें प्रणाम करके उनकी पूजाकर वे उनके सामने खड़ी हो गयीं॥ २८॥

उस समय प्रभु शंकरने स्त्रीस्वभाववश लज्जाके कारण अपने अंगोंको ढकती हुई उन पार्वतीको वहाँ देखा॥ २९॥

हे मुने! पूर्व समयमें पार्वतीको ब्रह्माके द्वारा दिये गये वरदानका भलीभाँति स्मरण करके प्रभु शिव भी प्रसन्नतापूर्वक उनके अंगोंका वर्णन करने लगे॥ ३०॥

शिवजी बोले—यह मुख है या चन्द्रमा, ये नेत्र हैं अथवा दो कमल और ये दोनों भृकुटी हैं या महात्मा कामदेवके धनुष, यह अधर है अथवा बिम्बफल, यह नासिका है या तोतेकी चोंच है, यह स्वर है या कोकिलकी मनोहर कूक है और यह मध्यभाग [कमर] है या वेदी है॥ ३१-३२॥

इसकी चालका क्या वर्णन किया जाय, इसके रूपका क्या वर्णन किया जाय और इसके पुष्पों तथा वस्त्रोंका भी क्या वर्णन किया जाय!॥ ३३॥

सृष्टिमें जितनी उत्तम सुन्दरता है, वह एकत्रितकर इसमें रच दी गयी है। इसके सभी अंग सब प्रकारसे रमणीय हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३४॥

अहो! अद्भुत रूपवाली यह पार्वती धन्य है, तीनों लोकोंमें इसके समान सुन्दर रूपवाली कोई भी स्त्री नहीं है। अद्भुत अंगोंको धारण करनेवाली यह लावण्यकी निधि है। यह मुनियोंको भी मोहनेवाली और महासुखको बढ़ानेवाली है॥ ३५-३६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार बार-बार उनके अंगोंका वर्णन करके शिवजी ब्रह्माको दिये गये वरदानका स्मरणकर मौन हो गये। उस समय ज्यों ही शंकरजीने उनके वस्त्रोंका स्पर्श किया, वे पार्वती स्त्रीस्वभावके कारण लज्जित होकर कुछ दूर चली गयीं॥ ३७-३८॥

हे मुने! अपने अंगोंको छिपाती हुई तथा तीक्ष्ण कटाक्षोंसे बार-बार [शिवजीकी ओर] देखती हुई वे शिवा महामोदके कारण मुसकराने लगीं॥ ३९॥

उनकी इस चेष्टाको देखकर शंकरजी मोहमें पड़ गये और तब महान् लीला करनेवाले महेश्वरने यह वचन कहा—जब इसके दर्शनमात्रसे इतना अधिक आनन्द प्राप्त हो रहा है, तब यदि मैं इसका सामीप्य प्राप्त करूँ तो कितना सुख प्राप्त होगा। इस प्रकार क्षणभर विचारकर गिरिजाकी प्रशंसा करके वे महायोगी बोधयुक्त हुए और विरक्त हो बोले—॥ ४०—४२॥

यह कैसा विचित्र चरित्र हो गया? क्या मैं मोहको प्राप्त हो गया। प्रभु तथा ईश्वर होकर भी कामके कारण मैं विकारयुक्त हो गया। मैं ईश्वर हूँ और यदि दूसरेके अंगस्पर्शकी मेरी यह इच्छा है, तो अन्य अक्षम तथा क्षुद्र पुरुष क्या-क्या [अनर्थ] नहीं करेगा॥ ४३-४४॥

इस प्रकार वैराग्यभावको प्राप्तकर उन सर्वात्माने पर्यंक एवं आसनका परित्याग कर दिया; क्योंकि क्या परमेश्वर पतित हो सकता है!॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें कामकृतविकारवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवकी नेत्रज्वालासे कामदेवका भस्म होना और रतिका विलाप, देवताओंद्वारा रतिको सान्त्वना प्रदान करना और भगवान् शिवसे कामको जीवित करनेकी प्रार्थना करना

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! इसके अनन्तर फिर क्या हुआ? आप मुझपर दयाकर इस पापको विनष्ट करनेवाली कथाका पुनः वर्णन कीजिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इसके अनन्तर जो हुआ, उसे आप सुनें। मैं आपके स्नेहवश आनन्ददायक शिवलीलाका वर्णन करूँगा। [हे नारद!] उसके बाद महायोगी महेश्वर [अपने] धैर्यके नाशको देखकर अत्यन्त विस्मित हो मनमें इस प्रकार विचार करने लगे॥ २-३॥

शिवजी बोले—मैं तो उत्तम तपस्या कर रहा था, उसमें विघ्न कैसे आ गया! किस कुकर्मीने यहाँ मेरे चित्तमें विकार पैदा कर दिया है! मैंने दूसरेकी स्त्रीके विषयमें प्रेमपूर्वक निन्दित वर्णन किया। यह तो धर्मका विरोध हो गया और शास्त्रमर्यादाका उल्लंघन हुआ॥ ४-५॥

ब्रह्माजी बोले—तब सज्जनोंके एकमात्र रक्षक महायोगी परमेश्वर शिव इस प्रकार विचारकर शंकित हो सम्पूर्ण दिशाओंकी ओर देखने लगे। इसी समय वामभागमें बाण खींचे खड़े हुए कामपर उनकी दृष्टि पड़ी। वह मूढ़चित्त मदन अपनी शक्तिके गर्वसे चूर होकर पुनः अपना बाण छोड़ना ही चाह रहा था॥ ६-७॥

हे नारद! उस अवस्थामें कामपर दृष्टि पड़ते ही परमात्मा गिरीशको तत्काल क्रोध उत्पन्न हो गया॥ ८॥

हे मुने! इधर, आकाशमें बाणसहित धनुष लेकर खड़े हुए कामने भगवान् शंकरपर अपना दुर्निवार तथा अमोघ अस्त्र छोड़ दिया। परमात्मा शिवपर वह अमोघ अस्त्र व्यर्थ हो गया। कुपित हुए परमेश्वरके पास जाते ही वह शान्त हो गया॥ ९-१०॥

तदनन्तर भगवान् शिवपर अपने अस्त्रके व्यर्थ हो जानेपर मन्मथको बड़ा भय हुआ। भगवान् मृत्युंजयको देखकर उनके सामने खड़ा होकर वह काँप उठा। हे मुनिश्रेष्ठ! वह कामदेव अपने प्रयासके निष्फल हो जानेपर भयसे व्याकुल होकर इन्द्र आदि सभी देवताओंका स्मरण करने लगा॥ ११-१२॥

हे मुनीश्वर! कामदेवके स्मरण करनेपर वे इन्द्र आदि सब देवता आ गये और शम्भुको प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे॥ १३॥

देवता स्तुति कर ही रहे थे कि कुपित हुए भगवान् शिवके ललाटके मध्यभागमें स्थित तृतीय नेत्रसे बड़ी भारी आगकी ज्वाला तत्काल प्रकट होकर निकली। वे ज्वालाएँ ऊपरकी ओर उठ रही थीं। वह आग धू-धू करके जलने लगी। उसकी ज्योति प्रलयाग्निके समान मालूम पड़ती थी॥ १४-१५॥

वह ज्वाला तत्काल ही आकाशमें उछलकर पृथ्वीपर गिरकर फिर अपने चारों ओर चक्कर काटती हुई कामदेवपर जा गिरी। हे साधो! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये, यह बात जबतक देवताओंने कही, तबतक उस

आगने कामदेवको जलाकर राख कर दिया॥ १६-१७॥

उस वीर कामदेवके मारे जानेपर देवताओंको बड़ा दुःख हुआ। वे व्याकुल होकर, यह क्या हुआ, इस प्रकार कहकर जोर-जोरसे चीत्कार करते हुए रोने-बिलखने लगे। उस समय घबरायी हुई पार्वतीका समस्त शरीर सफेद पड़ गया और वे सखियोंको साथ लेकर अपने भवनको चली गयीं। [कामदेवके जल जानेपर] रति वहाँ क्षणभरके लिये अचेत हो गयी। पतिके मृत्युजनित दुःखसे वह मरी हुईकी भाँति पड़ी रही॥ १८—२०॥

[थोड़ी देरमें] चेतना आनेपर अत्यन्त व्याकुल होकर वह रति उस समय तरह-तरहकी बातें कहती हुई विलाप करने लगी॥ २१॥

रति बोली—मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? देवताओंने यह क्या किया, मेरे उद्धत स्वामीको बुलाकर उन्होंने नष्ट करा दिया। हाय! हाय! हे नाथ! हे स्मर! हे स्वामिन्! हे प्राणप्रिय! हे सुखप्रद! हे प्रिय! हे प्रिय! यह यहाँ क्या हो गया?॥ २२-२३॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार रोती-बिलखती और अनेक प्रकारकी बातें कहती हुई वह हाथ-पैर पटककर सिरके बालोंको नोंचने लगी॥ २४॥

हे नारद! उस समय उसका विलाप सुनकर वहाँ रहनेवाले समस्त वनवासी तथा सभी स्थावर प्राणी भी दुखी हो गये। इसी बीच इन्द्र आदि समस्त देवता महेश्वरका स्मरण करते हुए रतिको आश्वस्त करके उससे कहने लगे—॥ २५-२६॥

देवता बोले—थोड़ा-सा भस्म लेकर उसे यत्नपूर्वक रखो और भय छोड़ दो। वे स्वामी महादेवजी [कामदेवको] जीवित कर देंगे और तुम पतिको पुनः प्राप्त कर लोगी॥ २७॥

कोई न सुख देनेवाला है और न कोई दुःख ही देनेवाला है। सब लोग अपनी करनीका फल भोगते हैं। तुम देवताओंको दोष देकर व्यर्थ ही शोक करती हो॥ २८॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार रतिको समझा-बुझाकर सब देवता भगवान् शिवके समीप आये और उन्हें भक्तिसे प्रसन्न करके यह वचन कहने लगे—॥ २९॥

देवता बोले—हे भगवन्! हे प्रभो! हे महेशान! हे शरणागतवत्सल! आप कृपा करके हमारे इस शुभ वचनको सुनिये॥ ३०॥

हे शंकर! आप कामदेवके कृत्यपर भलीभाँति अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक विचार कीजिये। हे महेश्वर! कामने जो यह कार्य किया है, इसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं था॥ ३१॥

हे विभो! दुष्ट तारकासुरसे पीड़ित हुए सब देवताओंने मिलकर उससे यह कार्य कराया है। हे नाथ! हे शंकर! इसे आप अन्यथा न समझें॥ ३२॥

सब कुछ प्रदान करनेवाले हे देव! हे गिरिश! साध्वी रति अकेली अति दुखी होकर विलाप कर रही है, आप उसे सान्त्वना प्रदान कीजिये॥ ३३॥

हे शंकर! यदि इस क्रोधके द्वारा आपने कामदेवको मार डाला, तो हम यही समझेंगे कि आप देवताओंसहित समस्त प्राणियोंका अभी संहार कर डालना चाहते हैं॥ ३४॥

उस रतिका दुःख देखकर देवता नष्टप्राय हो गये हैं। इसलिये आपको रतिका शोक दूर कर देना चाहिये॥ ३५॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन सम्पूर्ण देवताओंका यह वचन सुनकर भगवान् शिव प्रसन्न हो गये और यह वचन कहने लगे—॥ ३६॥

शिवजी बोले—हे देवताओ और ऋषियो! आप सब आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये। मेरे क्रोधसे जो कुछ हो गया है, वह तो अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि रतिका शक्तिशाली पति कामदेव तभीतक अनंग रहेगा, जबतक रुक्मिणीपति श्रीकृष्णका धरतीपर अवतार नहीं हो जाता॥ ३७-३८॥

जब श्रीकृष्ण द्वारकामें रहकर पुत्रोंको उत्पन्न करेंगे, तब ये रुक्मिणीके गर्भसे कामको भी जन्म देंगे॥ ३९॥

उस कामका ही नाम [उस समय] प्रद्युम्न होगा, इसमें संशय नहीं है। उस पुत्रके जन्म लेते ही शम्बरासुर उसे हर लेगा। हरण करके दानवश्रेष्ठ मूर्ख शम्बर उसे समुद्रमें फेंककर और उसे मरा हुआ जानकर वृथा ही अपने नगरको लौट जायगा। हे रते! तुम्हें उस समयतक शम्बरासुरके नगरमें सुखपूर्वक निवास करना चाहिये, वहींपर तुम्हें अपने पति प्रद्युम्नकी प्राप्ति होगी॥ ४०—४२॥

हे देवताओ! वहाँ युद्धमें उस शम्बरासुरका वध करके कामदेव अपनी पत्नीको प्राप्त करके सुखी होगा॥ ४३॥

हे देवताओ! प्रद्युम्न नामधारी वह काम शम्बरासुरका जो भी धन होगा, उसे लेकर उस रतिके साथ [अपने] नगरमें जायगा, मेरा यह कथन सर्वथा सत्य होगा॥ ४४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] शिवजीकी यह बात सुनकर देवताओंके चित्तमें कुछ उल्लास हुआ और वे सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—॥ ४५॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे हर! आप कामदेवको शीघ्र जीवित कर दीजिये तथा रतिके प्राणोंकी रक्षा कीजिये॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओंकी यह बात सुनकर सबके स्वामी करुणासागर परमेश्वर शिव प्रसन्न होकर पुनः कहने लगे—॥ ४७॥

शिवजी बोले—हे देवताओ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, मैं कामको सबके हृदयमें जीवित कर दूँगा और वह सदा मेरा गण होकर विहार करेगा॥ ४८॥

हे देवताओ! आपलोग इस आख्यानको किसीके सामने मत कहियेगा, आपलोग अपने स्थानको जाइये, मैं सब प्रकारसे [आपलोगोंके] दुःखका नाश करूँगा॥ ४९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर रुद्रदेव देवताओंके स्तुति करते-करते ही अन्तर्धान हो गये। तब सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न तथा सन्देहरहित हो गये॥ ५०॥

हे मुने! तदनन्तर रुद्रकी बातपर भरोसा करके वे देवता रतिको आश्वासन देकर तथा उससे उनका वचन कहकर अपने-अपने धामको चले गये। हे मुनीश्वर! तब वह कामपत्नी शिवके बताये हुए नगरको चली गयी तथा रुद्रके बताये गये समयकी प्रतीक्षा करने लगी॥ ५१-५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें कामनाशवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

शिवकी क्रोधाग्निका वडवारूप-धारण और ब्रह्माद्वारा उसे समुद्रको समर्पित करना

नारदजी बोले—हे विधे! भगवान् हरके [तृतीय] नेत्रसे निकली हुई वह अग्निकी ज्वाला कहाँ गयी? आप चन्द्रशेखरके उस चरित्रको कहिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] जब भगवान् रुद्रके तीसरे नेत्रसे प्रकट हुई अग्निने कामदेवको शीघ्र ही जलाकर राख कर दिया, उसके अनन्तर वह बिना किसी प्रयोजनके ही सब ओर फैलने लगी॥ २॥

चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंमें महान् हाहाकार मच गया। हे तात! तब सम्पूर्ण देवता और ऋषि शीघ्र ही मेरी शरणमें आये॥ ३॥

उन सबने व्याकुल होकर मस्तक झुकाकर दोनों हाथ जोड़कर मुझे प्रणामकर विधिवत् मेरी स्तुति करके अपना दुःख निवेदन किया॥ ४॥

उसको सुनकर शिवका स्मरणकर और उसके हेतुका भलीभाँति विचारकर तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये मैं विनीत भावसे वहाँ पहुँचा॥ ५॥

वह अग्नि ज्वालामालासे अत्यन्त उद्दीप्त हो जगत्को जला देनेके लिये उद्यत थी, परंतु भगवान् शिवकी कृपासे प्राप्त हुए उत्तम तेजके द्वारा मैंने उसे तत्काल स्तम्भित कर दिया॥ ६॥

हे मुने! मैंने त्रिलोकीको दग्ध करनेकी इच्छा रखनेवाली उस क्रोधमय अग्निको सौम्य ज्वालामुखवाले घोड़ेके रूपमें परिवर्तित कर दिया॥ ७॥

भगवान् शिवकी इच्छासे उस वाडव-शरीरवाली अग्निको लेकर जगत्पति मैं लोकहितके लिये समुद्रके पास गया॥ ८॥

हे मुने! मुझे आया हुआ देखकर समुद्र एक दिव्य पुरुषका रूप धारण करके हाथ जोड़कर मेरे पास आया॥ ९॥

मुझ सम्पूर्ण लोकोंके पितामहकी भलीभाँति स्तुति करके वह सिन्धु मुझसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगा—॥ १०॥

सागर बोला—हे ब्रह्मन्! हे सर्वेश्वर! आप यहाँ किसलिये आये हैं? मुझे अपना सेवक समझकर आप प्रीतिपूर्वक उसे कहिये॥ ११॥

सागरकी बात सुनकर शंकरका स्मरण करके लोकहितका ध्यान रखते हुए मैं उससे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगा—॥ १२॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे महाबुद्धिमान्! सम्पूर्ण लोकोंके हितकारी! हे सिन्धो! मैं शिवकी इच्छासे प्रेरित हो हृदयसे प्रीतिपूर्वक तुमसे कह रहा हूँ, सुनो॥ १३॥

यह महेश्वरका क्रोध है, जो महान् शक्तिशाली अश्वके रूपमें यहाँ उपस्थित है। यह कामदेवको दग्ध करके शीघ्र सम्पूर्ण जगत्को जला डालनेके लिये उद्यत हो गया था॥ १४॥

हे तात! तब पीड़ित हुए देवताओंने शंकरकी इच्छासे मेरी प्रार्थना की और मैंने शीघ्र वहाँ आकर अग्निको स्तम्भित किया। फिर इसने घोड़ेका रूप धारण किया और इसे लेकर मैं यहाँ आया। हे जलाधार! [जगत्पर] दया करनेवाला मैं तुम्हें यह आदेश दे रहा हूँ॥ १५-१६॥

महेश्वरके इस क्रोधको, जो घोड़ेका रूप धारण करके मुखसे ज्वाला प्रकट करता हुआ खड़ा है, तुम प्रलयकालपर्यन्त धारण किये रहो॥ १७॥

हे सरित्पते! जब मैं यहाँ आकर निवास करूँगा, तब तुम शंकरके इस अद्भुत क्रोधको छोड़ देना॥ १८॥

तुम्हारा जल ही इसका प्रतिदिनका भोजन होगा। तुम यत्नपूर्वक इसे धारण किये रहना, जिससे यह अन्यत्र न जा सके॥ १९॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार मेरे कहनेपर समुद्रने [रुद्रके क्रोधाग्निरूप] वडवानलको धारण करना स्वीकार किया, जो दूसरेके लिये असम्भव था॥ २०॥

उसके अनन्तर वाडव शरीरवाली वह अग्नि समुद्रमें प्रविष्ट हुई और ज्वालामालाओंसे प्रदीप्त हो उस सागरकी जलराशिका दहन करने लगी॥ २१॥

हे मुने! तदनन्तर सन्तुष्टचित्त होकर मैं अपने धामको चला आया और दिव्य रूपधारी वह समुद्र मुझे प्रणाम करके अन्तर्धान हो गया। महामुने! रुद्रकी उस क्रोधाग्निके भयसे छूटकर सम्पूर्ण जगत् स्वस्थताका अनुभव करने लगा और देवता तथा मुनिगण सुखी हो गये॥ २२-२३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें वडवानलचरितवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कामदेवके भस्म हो जानेपर पार्वतीका अपने घर आगमन, हिमवान् तथा मेनाद्वारा उन्हें धैर्य प्रदान करना, नारदद्वारा पार्वतीको पंचाक्षर मन्त्रका उपदेश

नारदजी बोले—हे विधे! हे तात! हे महाप्राज्ञ! हे विष्णुशिष्य! हे त्रिलोककर्ता! आपने महात्मा शंकरकी यह विलक्षण कथा सुनायी। शिवके तृतीय नेत्रकी अग्निसे कामदेवके भस्म हो जानेपर और [पुनः] उस अग्निके समुद्रमें प्रवेश कर जानेपर फिर क्या हुआ?॥ १-२॥

तदनन्तर हिमालयपुत्री पार्वतीदेवीने क्या किया और वे अपनी दोनों सखियोंके साथ कहाँ गयीं? हे दयानिधे! अब आप इसे बताइये॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! अब आप महान् लीला करनेवाले मेरे स्वामी चन्द्रशेखरके चरित्रको आदरपूर्वक सुनिये। भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्पन्न हुई अग्निने जब कामदेवको जला दिया, तब महान् अद्भुत महाशब्द प्रकट हुआ, जिससे आकाश पूर्णरूपसे गूँज उठा॥ ४-५॥

उस महान् शब्दके साथ ही कामदेवको दग्ध हुआ देखकर भयभीत और व्याकुल हुई पार्वती अपनी दोनों सखियोंके साथ अपने घर चली गयीं॥ ६॥

उस शब्दसे परिवारसहित हिमवान् भी बड़े आश्चर्यमें पड़ गये और वहाँ गयी हुई अपनी पुत्रीका स्मरण करके उन्हें बड़ा क्लेश हुआ। [इतनेमें ही पार्वती भी आ गयीं]। वे शम्भुके विरहसे रो रही थीं। अपनी पुत्रीको अत्यन्त विह्वल देखकर शैलराज हिमवान्‌को बड़ा शोक हुआ और वे शीघ्र ही उनके पास पहुँचे। वे हाथसे उनकी दोनों आँखोंको पोंछकर बोले—हे शिवे! डरो मत, रोओ मत—ऐसा कहकर उन्हें पकड़ लिया। इसके बाद पर्वतराज हिमवान्‌ने अत्यन्त विह्वल हुई पुत्री पार्वतीको शीघ्र ही गोदमें उठा लिया और वे उन्हें सान्त्वना देते हुए अपने घर ले आये॥ ७—१०॥

कामदेवका दाह करके महादेवजीके अन्तर्धान हो जानेपर उनके विरहसे पार्वती अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और उन्हें कहीं भी शान्ति नहीं मिल रही थी॥ ११॥

पिताके घर जाकर जब वे अपनी मातासे मिलीं, उस समय पार्वतीने अपना नया जन्म हुआ माना॥ १२॥

वे अपने रूपकी निन्दा करने लगीं और कहने लगीं। हाय! मैं मारी गयी। सखियोंके समझानेपर भी वे गिरिराजकुमारी कुछ समझ नहीं पाती थीं॥ १३॥

वे सोते-जागते, खाते-पीते, नहाते-धोते, चलते-फिरते और सखियोंके बीचमें बैठते समय किंचिन्मात्र भी सुखका अनुभव नहीं करती थीं। मेरे स्वरूप, जन्म तथा कर्मको धिक्कार है—ऐसा कहती हुई वे सदा महादेवजीकी प्रत्येक चेष्टाका चिन्तन करती रहती थीं॥ १४-१५॥

इस प्रकार वे पार्वती भगवान् शिवके विरहसे मन-ही-मन अत्यन्त क्लेशका अनुभव करतीं और किंचिन्मात्र भी सुख नहीं पाती थीं, वे सदा शिव-शिव कहा करती थीं॥ १६॥

पिताके घरमें रहकर भी वे चित्तसे पिनाकपाणि

भगवान् शंकरके पास पहुँची रहती थीं। हे तात! शिवा शोकमग्न हो बारंबार मूर्च्छित हो जाती थीं॥ १७॥

शैलराज हिमवान्, उनकी पत्नी मेनका तथा उनके मैनाक आदि सभी पुत्र, जो बड़े उदारचित्त थे, उन्हें सदा सान्त्वना देते रहते थे तथापि वे भगवान् शंकरको भूल न सकीं। हे बुद्धिमान् देवर्षे! तदनन्तर [एक दिन] इन्द्रकी प्रेरणासे इच्छानुसार घूमते हुए आप हिमालयपर्वतपर पहुँचे। उस समय महात्मा हिमवान्ने आपका सत्कार किया। तब आप [उनके द्वारा दिये हुए] उत्तम आसनपर बैठकर उनसे कुशल पूछने लगे॥ १८—२०॥

उसके बाद पर्वतराज हिमवान्ने अपनी कन्याके चरित्रका आरम्भसे वर्णन किया कि किस तरह उसने महादेवजीकी सेवा की और किस तरह हरके द्वारा कामदेवका दहन हुआ॥ २१॥

हे मुने! यह सब सुनकर आपने गिरिराजसे कहा—हे शैलेश्वर! भगवान् शिवका भजन कीजिये। फिर उनसे विदा लेकर आप उठे और मन-ही-मन शिवका स्मरणकर शैलराजको छोड़कर शीघ्र ही एकान्तमें कालीके पास आ गये। हे मुने! आप लोकोपकारी, ज्ञानी तथा शिवके प्रिय भक्त हैं, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, अतः कालीके समीप जाकर उसे सम्बोधित करके उसीके हितमें स्थित हो उससे आदरपूर्वक यह वचन कहने लगे—॥ २२—२४॥

नारदजी बोले—हे कालि! तुम मेरी बात सुनो। मैं दयावश यह सत्य बात कह रहा हूँ। मेरा वचन तुम्हारे लिये सर्वथा हितकर, निर्दोष तथा उत्तम वस्तुओंको देनेवाला होगा। तुमने यहाँ महादेवजीकी सेवा अवश्य की थी, परंतु बिना तपस्याके गर्वयुक्त होकर की थी। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले शिवने तुम्हारे उसी गर्वको नष्ट किया है। हे शिवे! तुम्हारे स्वामी महेश्वर विरक्त और महायोगी हैं, उन भक्तवत्सलने कामदेवको जलाकर तुम्हें [सकुशल] छोड़ दिया है॥ २५—२७॥

इसलिये तुम उत्तम तपस्यामें निरत हो चिरकालतक महेश्वरकी आराधना करो। तपस्याके द्वारा संस्कारयुक्त हो जानेपर रुद्रदेव तुम्हें अपनी भार्या अवश्य बनायेंगे और तुम भी कभी उन कल्याणकारी शम्भुका परित्याग नहीं करोगी। हे देवि! तुम हठपूर्वक शिवजीके अतिरिक्त किसी दूसरेको पतिरूपमें स्वीकार नहीं करोगी॥ २८-२९॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! आपकी यह बात सुनकर गिरिराजकुमारी काली कुछ उच्छ्वास लेती हुई हाथ जोड़कर आपसे प्रसन्नतापूर्वक कहने लगीं—॥ ३०॥

शिवा बोलीं—हे सर्वज्ञ! जगत्का उपकार करनेवाले हे प्रभो! हे मुने! रुद्रदेवकी आराधनाके लिये मुझे किसी मन्त्रका उपदेश कीजिये; क्योंकि सद्गुरुके बिना किसीकी कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं होती—ऐसा मैंने सुन रखा है और यही सनातन श्रुति भी है॥ ३१-३२॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! पार्वतीका यह वचन सुनकर आप मुनिश्रेष्ठने पंचाक्षर मन्त्र ['नमः शिवाय'] का उन्हें विधिपूर्वक उपदेश दिया और हे मुने! मन्त्रराजमें श्रद्धा उत्पन्न करनेहेतु आपने उसका सबसे अधिक प्रभाव बताया। हे मुने! आपने उनसे यह वचन कहा—॥ ३३-३४॥

नारदजी बोले—हे देवि! इस मन्त्रके अत्यन्त अद्भुत प्रभावको सुनो, जिसके सुननेमात्रसे शंकर परम प्रसन्न हो जाते हैं। यह मन्त्रराज सब मन्त्रोंका राजा, मनोवांछित फल प्रदान करनेवाला, शंकरको बहुत ही प्रिय तथा साधकको भोग और मोक्ष देनेवाला है॥ ३५-३६॥

हे सौभाग्यशालिनि! इसका विधिपूर्वक जप करनेसे तुम्हारे द्वारा आराधित हुए भगवान् शिव अवश्य और शीघ्र ही तुम्हारी आँखोंके सामने प्रकट हो जायँगे॥ ३७॥

हे शिवे! नियमोंमें तत्पर रहकर उनके स्वरूपका चिन्तन करती हुई तुम पंचाक्षर मन्त्रका जप करो, इससे शिव शीघ्र ही सन्तुष्ट होंगे॥ ३८॥

हे साध्वि! इस प्रकार तुम तपस्या करो, क्योंकि तपस्यासे महेश्वर वशमें हो सकते हैं? तपस्यासे ही सबको मनोनुकूल फलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा नहीं॥ ३९॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! कालीसे इस प्रकार कहकर भगवान् शिवके प्रिय [भक्त], इच्छानुसार विचरण करनेवाले तथा देवताओंके हितमें तत्पर रहनेवाले आपने स्वर्गलोकको प्रस्थान किया। हे नारद! तब आपकी बातको सुनकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुईं; क्योंकि उन्हें परम उत्तम पंचाक्षर मन्त्रराजकी प्राप्ति हो गयी थी॥ ४०-४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें नारदोपदेशवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

पार्वतीकी तपस्या एवं उसके प्रभावका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! आपके चले जानेपर प्रसन्नचित्त पार्वतीने शिवजीको तपस्यासे ही साध्य माना और तपस्या करनेका मन बना लिया। तदनन्तर पार्वतीने अपनी जया एवं विजया नामक सखियोंके द्वारा अपनी माता मेना तथा पिता हिमालयसे तप करनेकी आज्ञा माँगी॥ १-२॥

उन दोनों सखियोंने सबसे पहले पर्वतराज हिमालयके पास जाकर नम्रतापूर्वक भक्तिभावसे प्रणामकर पूछा—॥ ३॥

सखियाँ बोलीं—हे हिमालय! आपकी पुत्री पार्वती, जो आपसे कुछ कहना चाह रही है, उसे सुनिये। यह आपकी पुत्री अपने शरीर, रूप तथा आपके कुलको [भगवान् शंकरकी आराधनासे] सफल बनाना चाहती है। वे शंकर तपस्यासे ही साध्य हैं, अन्य उपायसे उनका दर्शन सम्भव नहीं है॥ ४-५॥

हे गिरिराज! इसलिये आपको इसी समय आज्ञा प्रदान करनी चाहिये, जिससे गिरिजा वनमें जाकर आदरपूर्वक तपस्या करे॥ ६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! पार्वतीकी सखियोंके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर गिरिराज भलीभाँति विचारकर यह कहने लगे—॥ ७॥

हिमालय बोले—मुझे तो यह बात अच्छी लगती है, परंतु यदि पार्वतीकी माताको यह बात अच्छी लगे तो ऐसा ही होना चाहिये। यदि ऐसा हो तो इससे बढ़कर और क्या बात हो सकती है॥ ८॥

यदि पार्वतीकी माताको यह बात रुचिकर लगे, तो इसमें हम तथा हमारा कुल दोनों ही धन्य हो जायँगे। इससे बढ़कर और शुभकारक कौन-सी उत्तम बात होगी॥ ९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार दोनों सखियाँ पार्वतीके पिताके वचनको सुनकर पार्वतीकी मातासे आज्ञा लेनेके लिये उनके साथ वहाँ गयीं। हे नारद! पार्वतीकी माताके पास जाकर प्रणामकर हाथ जोड़कर आदरपूर्वक उनसे यह वचन कहने लगीं—॥ १०-११॥

सखियाँ बोलीं—हे देवि! आपको नमस्कार है। हे मात:! आप पार्वतीके वचनको सुनें और उसे सुनकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करें॥ १२॥

आपकी यह पुत्री शिवजीको प्राप्त करनेहेतु तपस्या करना चाहती है। इसे तप करनेकी आज्ञा पितासे प्राप्त हो गयी है। अब आपसे पूछ रही है॥ १३॥

हे पतिव्रते! यह [उत्तम पति प्राप्त करनेहेतु] अपने स्वरूपको सफल बनाना चाहती है, अत: यदि आपकी आज्ञा हो, तो यह तपस्या करे॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार कहकर सखियाँ चुप हो गयीं। मेना [यह बात सुनते ही] खिन्न मनवाली हो गयीं और उन्होंने इस बातको अस्वीकार कर दिया। तब वे पार्वती शिवजीके चरणकमलोंका ध्यानकर हाथ जोड़कर विनम्रचित्त होकर अपनी मातासे स्वयं कहने लगीं—॥ १५-१६॥

पार्वती बोलीं—हे मात:! मैं महेश्वरको प्राप्त करनेके लिये प्रात:काल तपस्याहेतु तपोवन जाना चाहती हूँ, अत: आप मुझे जानेके लिये आज ही आज्ञा प्रदान कीजिये॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—पुत्रीकी यह बात सुनकर मेना दुखी हो गयीं और विकल होकर पुत्रीको अपने पास बुलाकर कहने लगीं—॥ १८॥

मेना बोलीं—हे शिवे! हे पुत्रि! यदि तुम दुखी हो और तपस्या करना चाहती हो, तो घरमें ही तपस्या करो, हे पार्वति! अब बाहर मत जाओ॥ १९॥

जब मेरे घरमें ही सब देवता, तीर्थ तथा समस्त क्षेत्र विद्यमान हैं, तो तप करनेके लिये तुम अन्यत्र कहाँ जा रही हो? हे पुत्रि! तुम हठ मत करो और न तो कहीं बाहर जाओ। तुमने पहले क्या सिद्ध कर लिया और अब क्या सिद्ध करोगी? हे वत्से! तुम्हारा शरीर कोमल है और तपस्या तो बड़ा कठिन कार्य है। इसलिये तुम यहीं तपस्या करो। कहीं बाहर मत जाओ॥ २०—२२॥

मनोकामनाकी पूर्तिके लिये स्त्रियोंके वन जानेकी बात तो मैंने नहीं सुनी है, इसलिये हे पुत्रि! तपस्या करनेके लिये वनगमनका विचार मत करो॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उनकी माताने अनेक प्रकारसे पुत्रीको वन जानेके लिये मना किया, किंतु शंकरजीकी आराधनाके बिना कहीं भी उन पार्वतीको शान्ति नहीं मिली॥ २४॥

मेनाने बार-बार तपस्याके निमित्त वन जानेसे उन्हें रोका, इसी कारणसे शिवाने 'उमा' नाम प्राप्त किया॥ २५॥

हे मुने! इसके बाद तपस्याकी अनुमति न मिलनेसे उन शिवाको दुखी जानकर शैलप्रिया मेनाने पार्वतीको तप करनेके लिये आज्ञा प्रदान कर दी॥ २६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! माताकी आज्ञा पाकर उत्तम व्रतवाली पार्वतीने शंकरका स्मरण करते हुए अपने मनमें बड़े सुखका अनुभव किया॥ २७॥

तदनन्तर शिवा माता-पिताको प्रसन्नतापूर्वक प्रणामकर अपनी दोनों सखियोंको साथ लेकर शिवजीका स्मरण करके तपस्या करनेके लिये वनकी ओर चलीं॥ २८॥

उन्होंने अनेक प्रकारके विचारों, प्रिय वस्तुओं तथा नाना प्रकारके वस्त्रोंका परित्यागकर मौंजी, मेखला बाँधकर सुन्दर वल्कलको धारण कर लिया और बहुमूल्य हार उतारकर मृगचर्म धारण कर लिया। इसके बाद वे तपस्या करनेके लिये गंगावतरण नामक स्थानपर चली गयीं॥ २९-३०॥

ध्यान करते हुए शंकरने जहाँ कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया था, वही हिमालयका गंगावतरण नामवाला शिखर है। हे तात! काली हिमवत्प्रदेशके शिखरपर स्थित उसी गंगावतरण नामक स्थानपर गयीं और जगदम्बा पार्वती कालीने उसे शिवजीसे रहित देखा॥ ३१-३२॥

जहाँ स्थित रहकर शिवजीने अत्यन्त कठिन तप किया था, उस स्थानपर जाकर वे क्षणभरके लिये शिवविरहसे व्याकुल हो उठीं। उस समय वे हा शंकर! इस प्रकार कहकर रोती हुई चिन्ता तथा शोकसे युक्त होकर अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगीं॥ ३३-३४॥

इसके अनन्तर बहुत समयके बाद हिमालयपुत्री पार्वती धैर्यपूर्वक मोहका त्याग करके नियममें दीक्षित हुईं॥ ३५॥

वे उस महान् उत्तम शृंगी तीर्थमें तपस्या करने लगीं। उस स्थानमें गौरीके तपस्या करनेके कारण उसका गौरीशंकर—ऐसा नाम पड़ा॥ ३६॥

हे मुने! वहाँ पार्वतीने अपनी तपस्याकी परीक्षाके लिये अनेक प्रकारके पवित्र, सुन्दर तथा फलवान् वृक्ष लगाये। उन सुन्दरीने भूमिशुद्धि और वेदीका निर्माण करके मनके साथ समस्त इन्द्रियोंको रोककर उसी स्थानपर मुनियोंके लिये भी कठिन तपस्या आरम्भ कर दी॥ ३७—३९॥

वे ग्रीष्मकालमें दिन-रात अग्नि प्रज्वलितकर उसके बीचमें बैठकर पंचाग्नि तापती हुई पंचाक्षर महामन्त्रका जप करती थीं॥ ४०॥

वे वर्षाके समय पत्थरकी चट्टानके स्थण्डिलपर सुस्थिर आसन लगाकर बैठी हुई खुले आकाशके नीचे जलकी धारा सहन करतीं और भक्तिमें तत्पर होकर निराहार रहकर वे शीतकालकी रात्रियोंमें निरन्तर शीतल जलमें निवास करतीं॥ ४१-४२॥

इस प्रकार पंचाक्षर मन्त्रके जपमें रत होकर तप करती हुई वे सम्पूर्ण मनोवांछित फलके दाता शंकरका ध्यान करने लगीं। वे प्रतिदिन अवकाश मिलनेपर अपने द्वारा लगाये गये सुन्दर वृक्षोंको सखियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक सींचती थीं तथा अतिथिसत्कार भी करती थीं॥ ४३-४४॥

शुद्धचित्तवाली वे पार्वती आँधी, सर्दी, अनेक प्रकारकी वर्षा तथा असह्य धूप बिना कष्ट माने सहन करती थीं॥ ४५॥

हे मुने! इस प्रकार उनके ऊपर अनेक प्रकारके दुःख आये, परंतु उन्होंने उनकी कुछ भी परवाह नहीं की। वे केवल शिवमें मन लगाकर वहाँ स्थित थीं॥ ४६॥

इस प्रकार तप करती हुई देवीने पहले फलाहारसे, फिर पत्तेके आहारसे क्रमशः अनेक वर्ष बिताये॥ ४७॥

तदनन्तर हिमालयपुत्री शिवा देवी पत्ते भी छोड़कर सर्वथा निराहार रहकर तपस्यामें लीन रहने लगीं॥ ४८॥

जब उन हिमालयपुत्री शिवाने पत्ते खाना भी छोड़ दिया, तब वे शिवा देवताओंके द्वारा 'अपर्णा' कही जाने लगीं॥ ४९॥

इसके बाद पार्वती भगवान् शिवका ध्यान करके एक पैरपर खड़ी होकर पंचाक्षरमन्त्रका जप करती हुई कठोर तपस्या करने लगीं। उनके अंग चीर और वल्कलसे ढँके थे, वे सिरपर जटाजूटको धारण किये हुए थीं। इस प्रकार शिवजीके चिन्तनमें लगी हुई पार्वतीने तपस्याके द्वारा मुनियोंको भी जीत लिया॥ ५०-५१॥

इस प्रकार तप करती हुई तथा महेश्वरका चिन्तन

करती हुई उन कालीने तीन हजार वर्ष इस तपोवनमें बिता दिये। जहाँपर शंकरजीने साठ हजार वर्षतक तपस्या की थी, उस स्थानपर कुछ क्षण रुककर वे अपने मनमें विचार करने लगीं ॥ ५२-५३ ॥

हे महादेव! क्या आप तपस्यामें संलग्न हुई मुझे नहीं जानते, जो कि मुझे तपस्यामें लीन हुए इतने वर्ष बीत गये फिर भी आपने मेरी सुधि न ली। लोक एवं वेदमें मुनियोंके द्वारा सदा गान किया जाता है कि भगवान् शंकर सर्वज्ञ, सर्वात्मा तथा सर्वदर्शन हैं ॥ ५४-५५ ॥

वे देव समस्त ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाले, सब प्रकारके भावोंसे प्राप्त होनेवाले, भक्तोंके मनोरथ सदा पूर्ण करनेवाले तथा सभी प्रकारके कष्टोंको दूर करनेवाले हैं ॥ ५६ ॥

यदि मैं अपनी सारी कामनाओंका त्यागकर मात्र वृषध्वज शंकरमें अनुरक्त हूँ, तो वे शंकर मुझपर प्रसन्न हों। यदि मैंने उत्तम भक्तिके साथ विधिपूर्वक नित्य नारदतन्त्रोक्त पंचाक्षर मन्त्रका जप किया है, तो वे शिवजी मेरे ऊपर प्रसन्न हों ॥ ५७-५८ ॥

यदि मैंने विकाररहित होकर भक्तिपूर्वक सर्वेश्वर शिवका यथोक्त चिन्तन किया है, तो वे शंकर [मुझपर] परम प्रसन्न हों ॥ ५९ ॥

इस तरह नित्य अपने मनमें सोचती हुई उन्होंने नीचेकी ओर मुख किये एवं जटा-वल्कल धारणकर निर्विकार होकर दीर्घकालतक तप किया ॥ ६० ॥

इस तरह उन्होंने मुनियोंके लिये भी दुष्कर तपस्या की, जिसका स्मरणकर वहाँ सभी पुरुष परम विस्मयमें पड़ गये। उनकी तपस्या देखनेके लिये सभी लोग वहाँ उपस्थित हो गये और अपनेको धन्य मानते हुए एक स्वरसे कहने लगे ॥ ६१-६२ ॥

धर्मवृद्धोंके पास बड़े लोगोंका जाना कल्याणकारी कहा गया है। तपस्यामें कोई प्रमाण नहीं है, विद्वानोंको सदा धर्मका मान करना चाहिये ॥ ६३ ॥

इसकी तपस्याको सुनकर तथा देखकर [ऐसा ज्ञात होता है कि] अन्य लोग क्या तप कर सकते हैं। संसारमें इसके तपसे बढ़कर कोई तप न तो हुआ है और न होगा। इस प्रकार कहते हुए पार्वतीके तपकी प्रशंसाकर कठोर अंगवाले वे तपस्वी तथा अन्य जन प्रसन्न हो अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ६४-६५ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे महर्षे! अब आप जगदम्बा पार्वतीकी तपस्याके अन्य बड़े प्रभावको सुनिये, जो महान् आश्चर्यजनक चरित्र है ॥ ६६ ॥

पार्वतीके आश्रममें रहनेवाले समस्त जन्तु जो स्वभावसे ही परस्पर विरोधी थे, वे भी उनकी तपस्याके प्रभावसे वैररहित हो गये ॥ ६७ ॥
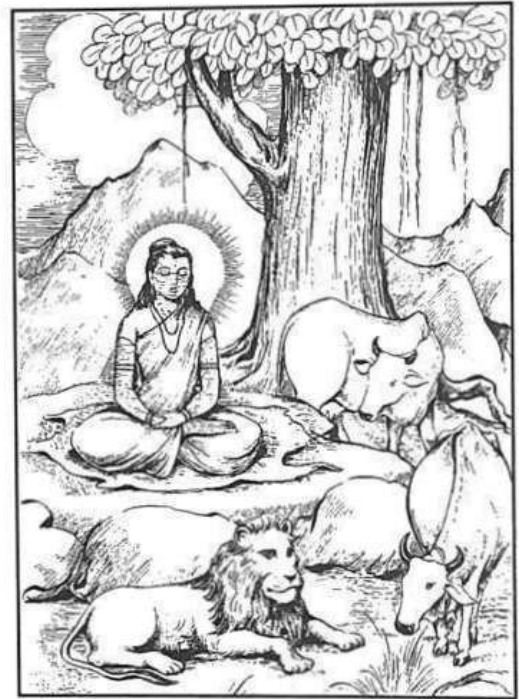
निरन्तर राग आदि दोषसे युक्त रहनेवाले वे सिंह और गौ आदि भी वहाँ उनकी तपस्याकी महिमासे परस्पर बाधा नहीं पहुँचाते थे ॥ ६८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मार्जार, मूषक आदि भी जो स्वभावसे आपसमें वैर करनेवाले हैं, वे भी [एक-दूसरेके प्रति] कभी विकारभाव नहीं रखते थे ॥ ६९ ॥

हे मुनिसत्तम! वहाँ फलयुक्त वृक्ष, विविध प्रकारके तृण और विचित्र पुष्प उत्पन्न हो गये ॥ ७० ॥

वह सम्पूर्ण वन उनकी तपस्याकी सिद्धिके रूपमें हो गया और कैलासके समान मालूम पड़ने लगा ॥ ७१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीतपस्यावर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २२ ॥

तेईसवाँ अध्याय

हिमालय आदिका तपस्यानिरत पार्वतीके पास जाना, पार्वतीका पिता हिमालय आदिको अपने तपके विषयमें दृढ़ निश्चयकी बात बताना, पार्वतीके तपके प्रभावसे त्रैलोक्यका संतप्त होना, सभी देवताओंका भगवान् शंकरके पास जाना

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! शिवजीकी प्राप्तिके लिये इस प्रकार तपस्या करती हुई पार्वतीका बहुत समय व्यतीत हो गया, तो भी शंकर प्रकट नहीं हुए॥ १॥

तब अपने संकल्पमें दृढ़ निश्चयवाली परमेश्वरी पार्वतीके समीप अपनी भार्या, पुत्र तथा मन्त्रियोंसहित आकर गिरिराज हिमालय उनसे कहने लगे—॥ २॥

हिमालय बोले—हे महाभागे! हे पार्वति! तुम इस तपसे दुखी मत होओ, हे बाले! रुद्र विरक्त हैं, इसलिये तुम्हें दर्शन नहीं दे रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

दुबली-पतली तथा सुकुमार अंगोंवाली तुम इस तपस्यासे मूर्च्छित हो जाओगी, इसमें सन्देह नहीं है, यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ॥ ४॥

इसलिये हे वरवर्णिनि! तुम उठो और अपने घर चलो। उन रुद्रसे तुम्हारा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा, जिन्होंने पहले कामदेवको ही भस्म कर दिया है?॥ ५॥

जब निर्विकार होनेके कारण वे शिव तुम्हें ग्रहण करने नहीं आयेंगे, तो हे देवेशि! तुम उनसे प्रार्थना भी क्यों करोगी? जिस प्रकार आकाशमें रहनेवाले चन्द्रमाको ग्रहण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार हे अनघे! तुम शिवजीको भी दुर्गम समझो॥ ६-७॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार मेना, सह्याद्रि, मेरु, मन्दार एवं मैनाकने भी उन सतीको बहुत समझाया, अन्य क्रौंचादि पर्वतोंने भी अनेक कारणोंको प्रदर्शित करते हुए आतुरतासे रहित उन पार्वतीको समझाया॥ ८-९॥

इस प्रकार सब लोगोंके समझा लेनेके बाद तपस्यामें संलग्न वे पवित्र मुसकानवाली तन्वी पार्वती हँसती हुई [अपने पिता] हिमालयसे कहने लगीं—॥ १०॥

पार्वती बोलीं—हे माता! हे पिता! मैंने जो बात पहले कही थी, क्या आपलोग उसे भूल गये? हे बन्धुगण! इस समय आपलोग भी मेरी प्रतिज्ञा सुनें॥ ११॥

जिन्होंने क्रोधसे कामदेवको जला दिया, वे महादेव निश्चय ही विरक्त हैं, किंतु उन भक्तवत्सल शंकरको मैं अपनी तपस्यासे सन्तुष्ट करूँगी॥ १२॥

आप सभी लोग परम प्रसन्न होकर अपने-अपने घरोंको जायँ। वे अवश्य ही प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं॥ १३॥

जिन्होंने कामदेवको भस्म कर दिया तथा जिन्होंने पर्वतके वनको भी जला दिया, उन सदाशिवको मैं केवल अपनी तपस्यासे यहाँ अवश्य बुलाऊँगी॥ १४॥

हे महाभागो! वे सदाशिव महान् तपोबलसे अवश्य प्रसन्न हो जाते हैं, यह निश्चित जानिये, मैं आपलोगोंसे सत्य कह रही हूँ॥ १५॥

ब्रह्माजी बोले—पर्वतराजकी पुत्री सुभाषिणी पार्वती अपनी माता मेनका, भाई मैनाक, मन्दर तथा पिता हिमालयसे इतना कहकर चुप हो गयीं। इस प्रकार जब शिवाने उनसे कहा, तब वे विचक्षण हिमनग आदि पर्वत बार-बार गिरिजाकी प्रशंसा करते हुए जहाँसे आये थे, वहाँ अत्यन्त विस्मित हो चले गये॥ १६-१७॥

उन सबके चले जानेपर सखियोंसहित वे पार्वती परमार्थके निश्चयसे युक्त हो और अधिक दृढ़तासे महान् तपस्या करने लगीं। हे मुनिश्रेष्ठ! उस महान् तपस्यासे देवता, असुर एवं मनुष्यसहित चराचर त्रैलोक्य सन्तप्त हो उठा॥ १८-१९॥

उस समय समस्त सुर, असुर, यक्ष, किन्नर, चारण, सिद्ध, साध्य, मुनि, विद्याधर, महान् उरग, प्रजापति एवं गुह्यक तथा अन्य प्राणी बड़े कष्टको प्राप्त हुए, किंतु वे इसका कारण न समझ सके॥ २०-२१॥

तपते हुए समस्त अंगवाले तथा व्याकुल वे सभी इन्द्र आदि परस्पर मिलकर गुरु बृहस्पतिसे परामर्श करके मुझ ब्रह्माकी शरणमें सुमेरु पर्वतपर गये। नष्ट कान्तिवाले तथा व्याकुल वे सब वहाँ पहुँचकर शीघ्र प्रणाम करके तथा स्तुति करके एक साथ मुझसे कहने लगे—॥ २२-२३॥

देवता बोले—हे विभो! इस चराचर सम्पूर्ण

जगत्का आपने ही निर्माण किया है, किंतु इस समय यह सारी सृष्टि क्यों जल रही है, इसका कारण ज्ञात नहीं हो पा रहा है॥ २४॥

हे प्रभो! हे ब्रह्मन्! इसका कारण आप बताइये; क्योंकि आप ही इसे जाननेमें समर्थ हैं। हम देवगणोंका सारा शरीर जल रहा है। दग्ध होते हुए शरीरवाले हम देवताओंका आपके अतिरिक्त कोई अन्य रक्षक नहीं है॥ २५॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार देवताओंकी बातको सुनकर मैं शिवजीका स्मरणकर हृदयमें सोचने लगा कि यह सब पार्वतीकी तपस्याका फल है॥ २६॥

सारा विश्व जल जायगा, यह जानकर मैं भगवान् विष्णुसे निवेदन करनेके लिये उन सभीके साथ आदरपूर्वक शीघ्र क्षीरसागर गया॥ २७॥

देवगणोंके साथ वहाँ जाकर मैंने देखा कि नारायण सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हैं, उस समय मैं उन्हें प्रणामकर तथा स्तुति करके हाथ जोड़कर कहने लगा— ॥ २८॥

हे महाविष्णो! तपस्यामें संलग्न पार्वतीकी परम कठोर तपस्यासे हमलोग सन्तप्त हो रहे हैं, अत: हम शरणागतोंकी आप रक्षा कीजिये॥ २९॥

हम देवताओंका यह वचन सुनकर शेषासनपर बैठे हुए रमेश्वर हमलोगोंसे कहने लगे— ॥ ३०॥

विष्णुजी बोले—मैंने सारा कारण जान लिया है। आप सब लोग पार्वतीकी तपस्यासे सन्तप्त हो रहे हैं, अत: मैं आपलोगोंके साथ अभी परमेश्वरके पास चल रहा हूँ। हे देवगणो! हमलोग सदाशिवके समीप चलकर उनसे प्रार्थना करें कि वे पार्वतीका पाणिग्रहण करें; क्योंकि शिवजीके द्वारा पार्वतीका पाणिग्रहण करनेपर ही लोकका कल्याण होगा॥ ३१-३२॥

देवाधिदेव पिनाकधारी सदाशिव पार्वतीको वर प्रदान करनेके लिये जिस प्रकार उद्यत हों, उसी प्रकारका उपाय हमलोगोंको इस समय करना चाहिये॥ ३३॥

इसलिये अब हमलोग उस स्थानपर चलेंगे, जहाँ परम मंगल महाप्रभु रुद्र इस समय उग्र तपस्यामें लीन हैं॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णुजीकी वह बात सुनकर प्रलय करनेवाले और क्रोधपूर्वक हठसे कामदेवको नष्ट करनेवाले शंकरसे भयभीत वे देवता विष्णुसे कहने लगे— ॥ ३५॥

देवतागण बोले—[हे विष्णो!] महाभयंकर, क्रोधी, कालाग्निके समान प्रभावाले तथा विरूपाक्ष महाप्रभुके पास हमलोग नहीं जायँगे; क्योंकि उन्होंने जिस प्रकार दुराधर्ष कामदेवको भस्म कर दिया, उसी प्रकार क्रोधमें भरकर वे हमलोगोंको भी भस्म कर देंगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६-३७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इन्द्रादि देवताओंकी यह बात सुनकर वे विष्णु उन सभी देवताओंको धीरज बँधाते हुए कहने लगे— ॥ ३८॥

विष्णुजी बोले—हे देवगणो! आप सभी लोग आदरपूर्वक मेरी बात सुनिये, वे सदाशिव आपलोगोंको भस्म नहीं करेंगे; क्योंकि वे देवताओंके भयको नष्ट करनेवाले हैं। इसलिये आप सभी बुद्धिमान् लोग शम्भुको कल्याणकारी मानकर मेरे साथ उन परम प्रभुके पास चलिये॥ ३९-४०॥

वे शिव ही पुराणपुरुष, सबके अधीश्वर, सबसे श्रेष्ठ, तपस्या करनेवाले, परमात्मस्वरूप और परात्पर हैं, हमलोगोंको उन्हींका आश्रय लेना चाहिये॥ ४१॥

ब्रह्माजी बोले—जब सर्वसमर्थ विष्णुने इस प्रकार देवगणोंसे कहा, तब वे सब उनके साथ पिनाकी भगवान् सदाशिवके दर्शन करनेकी इच्छासे चले। विष्णु आदि देवगण मार्गमें पड़नेके कारण सर्वप्रथम कुतूहलवश उस आश्रममें गये, जहाँ पार्वती तपस्या कर रही थीं॥ ४२-४३॥

तदनन्तर सभी देवताओंने पार्वतीका तप देखकर उनके तेजसे व्यापृत हो तेजोरूपवाली तथा तपमें अधिष्ठित उन जगदम्बाको प्रणाम किया और साक्षात् सिद्धिका शरीर धारण करनेवाली उन पार्वतीके तपकी प्रशंसा करते हुए वे देवगण वहाँ गये, जहाँ वृषध्वज थे॥ ४४-४५॥

हे मुने! वहाँ पहुँचकर उन देवताओंने [सर्वप्रथम] आपको शिवके समीप भेजा और वे स्वयं कामको नष्ट करनेवाले भगवान् शंकरको देखते हुए दूर ही स्थित रहे। उस समय हे नारद! विशेषरूपसे शिवभक्त आपने निर्भय होकर शिवजीके स्थानपर जाकर शिवजीको प्रसन्न मुद्रामें देखा। हे मुने! तदनन्तर लौटकर यत्नपूर्वक उन विष्णु आदि देवताओंको बुलाकर आप शिवजीके स्थानपर उन्हें ले गये॥ ४६—४८॥

तदनन्तर विष्णु आदि सभी देवताओंने शिवजीके स्थानमें जाकर प्रसन्न मनसे उन भक्तवत्सल भगवान् सदाशिवको सुखपूर्वक बैठे हुए देखा। वे योगासन लगाये हुए अपने गणोंसे घिरे थे। वे परमेश्वररूपी शंकर साक्षात् तपस्याके विग्रहवान् रूप थे॥ ४९-५०॥

तब विष्णु एवं मेरे साथ रहनेवाले अन्य देव, मुनि तथा सिद्धगण उन परमेश्वर शिवजीको प्रणामकर वेद एवं उपनिषदोंके सूक्तोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीसान्त्वन-शिवदेवदर्शनवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

देवताओंका भगवान् शिवसे पार्वतीके साथ विवाह करनेका अनुरोध, भगवान्का विवाहके दोष बताकर अस्वीकार करना तथा उनके पुनः प्रार्थना करनेपर स्वीकार कर लेना

देवता बोले—कामदेवको विनष्ट करनेवाले रुद्र देवताको नमस्कार है, स्तुतिके योग्य, अत्यन्त तेजस्वी तथा त्रिनेत्रको बार-बार नमस्कार है॥ १॥

शिपिविष्ट, भीम एवं भीमाक्षको बार-बार नमस्कार है। महादेव, प्रभु तथा स्वर्गपतिको नमस्कार है॥ २॥

आप सभी लोकोंके नाथ और माता-पिता हैं। आप ईश्वर, शम्भु, ईश, शंकर तथा विशेष रूपसे दयालु हैं॥ ३॥

आप ही सब जगत्को धारण करते हैं, अतएव हे प्रभो! आप हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। हे परमेश्वर! आपके अतिरिक्त और कौन दुःख दूर करनेमें समर्थ है॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] उन देवताओंका यह वचन सुनकर परम कृपासे युक्त होकर नन्दिकेश्वर शिवजीसे निवेदन करने लगे—॥ ५॥

नन्दिकेश्वर बोले—हे सुरवर्य! सिद्ध, मुनि, विष्णु आदि देवगण दैत्योंसे पराजित एवं तिरस्कृत हो आपकी शरणमें आये हैं और वे आपके दर्शनकी इच्छा करते हैं॥ ६॥

इसलिये हे सर्वेश! आप [शरणागत हुए] इन देवताओं तथा मुनियोंकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आप विशेषरूपसे दीनबन्धु और भक्तवत्सल कहे गये हैं॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जब दयालु नन्दिकेश्वरने बार-बार शिवजीसे निवेदन किया, तब उन्होंने धीरे-धीरे अपने नेत्र खोलकर समाधिका त्याग किया॥ ८॥

उसके बाद समाधिसे उपरत हुए वे महाज्ञानी परमात्मा शम्भु सभी देवताओंसे कहने लगे—॥ ९॥

शम्भु बोले—आप सभी ब्रह्मा, विष्णु आदि सुरेश्वर मेरे पास किसलिये आये हैं? उस कारणको शीघ्र कहिये॥ १०॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीके इस वचनको सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो गये और विज्ञप्तिके लिये विष्णुके मुखकी ओर देखने लगे॥ ११॥

तब शिवके परम भक्त तथा देवताओंके हितकारक विष्णु मेरे द्वारा कहे गये देवताओंके इस बहुत बड़े कार्यका निवेदन करने लगे—॥ १२॥

विष्णुजी बोले—हे शम्भो! तारकसे इन देवताओंको अत्यन्त अद्भुत दुःख प्राप्त हो रहा है, इसी कारण सभी देवता आपसे निवेदन करने यहाँ आये हुए हैं॥ १३॥

हे शम्भो! आपके द्वारा जो औरस पुत्र उत्पन्न होगा, उसीके द्वारा तारकासुरका वध होगा, यह मेरा कथन अन्यथा नहीं हो सकता॥ १४॥

हे महादेव! आपको नमस्कार है, आप इस बातका विचारकर देवताओंपर दया कीजिये। हे स्वामिन्! तारकासुरसे उत्पन्न इस महाकष्टसे देवताओंका उद्धार कीजिये॥ १५॥

इसीलिये हे देव! हे शम्भो! आपको स्वयं गिरिजाका दाहिने हाथसे पाणिग्रहण करना चाहिये; क्योंकि गिरिराज हिमालय आपको पाणिग्रहणके द्वारा ही गिरिजाको प्रदान करना चाहते हैं, अतः आप उसे स्वीकार कीजिये॥ १६॥

विष्णुके इस वचनको सुनकर योगमें तत्पर भगवान् शिव अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनकी सद्गतिके लिये उत्तम उपदेश करते हुए कहने लगे—॥ १७॥

शिवजी बोले—[हे देवताओ!] जब मैं सर्वसुन्दरी

गिरिजादेवीको स्वीकार करूँगा, तब सभी देवता, मुनि तथा ऋषि सकाम हो जायँगे। फिर तो ये परमार्थ मार्गपर चल न सकेंगे। मेरे पाणिग्रहणसे ये दुर्गा मृत कामदेवको पुनः जीवित कर देंगी॥ १८-१९॥

मैंने सबकी कार्यसिद्धिके लिये ही कामदेवको जलाया है। हे विष्णो! ब्रह्माके वचनानुसार ही मैंने यह कार्य सम्पादित किया है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

हे देवेन्द्र! आप इस कार्याकार्यकी परिस्थितिमें मनसे तत्त्वका विचार करके मेरे विवाहका हठ छोड़ दीजिये॥ २१॥

हे विष्णो! मैंने कामदेवको जलाकर देवताओंका बहुत बड़ा कार्य सिद्ध किया है। अब उचित यही होगा कि मेरे साथ समस्त देवगण सुनिश्चित रूपसे निष्काम होकर निवास करें। हे देवताओ! जिस प्रकार मैं तपस्या करता हूँ, उसी प्रकार आपलोग भी सहजरूपसे कठोर तपमें निरत हो जाइये॥ २२-२३॥

अब तो कामदेव नहीं रहा, इसलिये हे देवताओ! आपलोग निर्विघ्न समाधि लगाकर आनन्दयुक्त निर्विकार भावसे निवास कीजिये। हे विधे! हे विष्णो! हे महेन्द्र! हे मुनिगण! हे देवगण! आपलोगोंने पूर्व समयमें कामदेवके द्वारा किये गये सारे कार्यको भुला दिया है, उन सबपर विचार कीजिये॥ २४-२५॥

हे देवताओ! पहले इस महाधनुर्धर कामदेवने हठसे सभी देवताओंका ध्यान नष्ट कर दिया था॥ २६॥

काम ही नरकका द्वार है, कामसे क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोधसे मोह होता है और मोहसे तप विनष्ट हो जाता है। अतः आप सभी श्रेष्ठ देवताओंको काम एवं क्रोधका परित्याग कर देना चाहिये। आप सभीको मेरी यह बात स्वीकार करनी चाहिये; क्योंकि मेरी बात कभी असत्य नहीं सिद्ध होती॥ २७-२८॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] वृषभध्वज भगवान् महादेवजी इस प्रकार कहनेके बाद विधाता, विष्णु, मुनिगण तथा देवताओंसे उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे॥ २९॥

तब अपने गणोंसे घिरे हुए वे शम्भु चुपचाप होकर समाधिमें स्थित हो स्थाणुके समान अचल हो गये॥ ३०॥

वे शम्भु अपने अन्तःकरणमें अपने निरंजन, निराभास, निर्विकार एवं निरामय स्वरूपका ध्यान करने लगे। जो सबसे परे, नित्य, निर्मम, विग्रहरहित, शब्दातीत, निर्गुण, ज्ञानगम्य तथा परात्पर है॥ ३१-३२॥

इस प्रकार अनेक जगत्की सृष्टि करनेवाले वे अपने परम रूपका चिन्तन करते हुए ध्यानमें स्थित हो परमानन्दमें निमग्न हो गये। उस समय विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवता शंकरजीको ध्यानमें स्थित देखकर विनम्र होकर नन्दिकेश्वरसे कहने लगे—॥ ३३-३४॥

देवता बोले—[हे नन्दिकेश्वर!] शिवजी विरक्त होकर ध्यानमें मग्न हैं। अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये? आप शंकरके सखा, सर्वज्ञ एवं इनके पवित्र सेवक हैं॥ ३५॥

हे गणाधिप! शिवजी किस उपायसे हमलोगोंपर प्रसन्न होंगे, उस उपायको शीघ्र बताइये। हमलोग आपकी शरणमें आये हैं॥ ३६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! जब इन्द्रादि देवताओंने इस प्रकार नन्दीसे निवेदन किया, तब शिवजीके प्रिय गण नन्दी उन देवताओंसे कहने लगे—॥ ३७॥

नन्दीश्वर बोले—हे हरे! हे विधे! हे इन्द्र! हे देवताओ! हे मुनियो! आपलोग शिवजीको सन्तुष्ट करनेवाला मेरा वचन सुनें॥ ३८॥

यदि आपलोगोंका ऐसा ही हठ है कि शिवजी स्त्रीका पाणिग्रहण करें, तो अत्यन्त दीनभावसे आप सभी शिवजीकी उत्तम स्तुति करें॥ ३९॥

हे देवताओ! महादेव भक्तिद्वारा वशमें हो जाते हैं, अन्य साधारण उपायोंसे वशीभूत नहीं होते। वे परमेश्वर उत्तम भक्तिसे अकार्य भी कर सकते हैं॥ ४०॥

हे ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओ! आपलोग ऐसा ही कीजिये, अन्यथा जहाँसे आये हैं, वहीं शीघ्र ही चले जाइये, विलम्ब न कीजिये॥ ४१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उनकी यह बात सुनकर विष्णु आदि वे देवता उस बातको मानकर अत्यन्त प्रेमसे शंकरका स्तवन करने लगे—हे देवदेव, हे महादेव, हे करुणासागर, हे प्रभो! महान् क्लेशसे हमलोगोंका उद्धार कीजिये, हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ ४२-४३॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार बहुत ही दीन हो देवताओंने शिवजीकी स्तुति की और वे सब व्याकुलचित्त होकर उच्च स्वरसे रोने लगे॥ ४४॥

मुझे साथ लेकर विष्णुने मनसे शिवजीका स्मरण करते हुए परम भक्तिसे युक्त होकर दीन वचनोंसे शम्भुसे प्रार्थना की। इस प्रकार जब मैंने, विष्णुने तथा सभी देवताओंने शम्भुकी स्तुति की, तब भक्तवात्सल्यके कारण वे महेश्वर ध्यानसे विरत हो गये। तदनन्तर प्रसन्नचित्त होकर दुःखोंका हरण करनेवाले वे भक्तवत्सल शंकर विष्णु आदि देवगणोंको हर्षित करते हुए करुणाभरी दृष्टिसे देखकर कहने लगे— ॥ ४५—४७ ॥

शंकर बोले—हे हरे! हे विधे! हे इन्द्रादि देवताओ! आप सब एक साथ किसलिये आये हैं, मेरे सामने सच-सच बताइये ॥ ४८ ॥

विष्णु बोले—हे महेश्वर! आप सर्वज्ञ, अन्तर्यामी तथा अखिलेश्वर हैं। क्या आप हमारे मनकी बात नहीं जानते, फिर भी मैं आपके आज्ञानुसार निवेदन कर रहा हूँ। हे मृड! हम सब देवताओंको तारकासुरसे महान् दुःख प्राप्त हो रहा है, इसीलिये हम देवताओंने आपको प्रसन्न किया है। वे शिवा आपके लिये ही हिमालयकी कन्याके रूपमें उत्पन्न हुई हैं; क्योंकि आपके द्वारा पार्वतीसे उत्पन्न पुत्रके द्वारा ही तारकासुरकी मृत्यु होनेवाली है, यह बात अन्यथा नहीं है ॥ ४९—५१ ॥

ब्रह्माजीने उस तारकासुरको इसी प्रकारका वरदान दे रखा है। वह अन्य किसीके द्वारा मारा नहीं जायगा, यही कारण है कि वह सबको पीड़ित कर रहा है ॥ ५२ ॥

इस समय देवर्षि नारदके उपदेशानुसार वे पार्वती तपस्या कर रही हैं और उनके तेजसे चराचरसहित समस्त त्रैलोक्य व्याप्त हो रहा है ॥ ५३ ॥

इसलिये हे परमेश्वर! आप शिवाको वर देनेहेतु जाइये। हे स्वामिन्! ऐसा करके हम देवताओंका दुःख दूर कीजिये तथा हमलोगोंको सुखी कीजिये ॥ ५४ ॥

हे शंकर! देवताओंके और मेरे मनमें आपका विवाह देखनेके लिये महान् उत्साह है, अतः आप उसे उचित रूपसे कीजिये। हे परात्पर! आपने रतिको जो वरदान दिया है, उसका भी अवसर उपस्थित हो गया है, आप अपनी प्रतिज्ञाको सफल कीजिये ॥ ५५-५६ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर उन्हें प्रणामकर तथा अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करके विष्णु आदि देवता और महर्षि सब-के-सब उनके सामने खड़े हो गये। तब वेदकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले तथा भक्तोंके अधीन रहनेवाले शिवजी भी देवताओंके वचनको सुनकर हँस करके शीघ्र कहने लगे— ॥ ५७-५८ ॥

शंकर बोले—हे हरे! हे विधे! हे देवताओ! मैं ज्ञानसे युक्त और यथोचित बातें कहता हूँ, उसे आप सब आदरपूर्वक सुनें। विवाह करना मनुष्योंके लिये उचित विधान नहीं है; क्योंकि विवाह बेड़ीके समान अत्यन्त कठिन दृढ़बन्धन है। संसारमें बहुतसे कुसंग हैं, परंतु उनमें स्त्रीसंग सबसे बढ़कर है; क्योंकि मनुष्य सभी प्रकारके बन्धनोंसे छुटकारा प्राप्त कर सकता है, किंतु स्त्रीसंगसे उसका छुटकारा नहीं होता ॥ ५९—६१ ॥

लोहे तथा लकड़ीके पाशोंमें दृढ़तापूर्वक बँधा हुआ पुरुष उससे छुटकारा पा सकता है, किंतु स्त्री आदिके पाशमें बँधा हुआ कभी मुक्त नहीं होता है ॥ ६२ ॥

[स्त्रीसंगसे] महाबन्धनकारी विषय निरन्तर बढ़ते रहते हैं, विषयोंसे आक्रान्त मनवालेको स्वप्नमें भी मोक्ष दुर्लभ हो जाता है ॥ ६३ ॥

यदि बुद्धिमान् पुरुष सुख प्राप्त करना चाहे, तो विषयोंको भलीभाँति छोड़ दे। जिन विषयोंसे प्राणी मारा जाता है, वे विषय विषके समान कहे गये हैं ॥ ६४ ॥

मोक्षकी कामना करनेवाला पुरुष विषयी पुरुषोंके साथ वार्ता करनेमात्रसे क्षणभरमें ही पतित हो जाता है। आचार्योंने विषयवासनाको शर्करासे आलिप्त इन्द्रायनफलके समान (आपातमधुर) कहा है ॥ ६५ ॥

यद्यपि मैं समस्त ज्ञान विशेष रूपसे जानता हूँ, फिर भी मैं आपलोगोंकी प्रार्थनाको सफल करूँगा ॥ ६६ ॥

तीनों लोकोंमें मेरी प्रसिद्धि है कि मैं भक्तोंके वशमें होनेसे सभी प्रकारके उचित-अनुचित कार्य करता हूँ ॥ ६७ ॥

मैंने कामरूप देशके राजाकी प्रतिज्ञा सफल की और भव-बन्धनमें पड़े हुए राजा सुदक्षिणका प्रण मैंने पूरा किया ॥ ६८ ॥

मैंने गौतमको क्लेश दिया, मैं त्र्यम्बकात्मा सबको सुख देनेवाला हूँ और जो भक्तोंको दुःख देनेवाले हैं, उन दुष्टोंको विशेष रूपसे कष्ट तथा शाप प्रदान करता हूँ ॥ ६९ ॥

मैंने अपनी भक्तवत्सलताका भाव प्रकट करनेके

लिये ही विषपान किया था। हे देवताओ! मैंने यत्नसे सदैव ही देवताओंके कष्टोंको दूर किया है॥ ७०॥

मैंने भक्तोंके लिये बहुत बार अनेक कष्ट उठाया है। मैंने विश्वानर मुनिके घर गृहपतिके रूपमें जन्म लेकर उनके दु:खको दूर किया है। हे हरे! हे विधे! मैं अधिक क्या कहूँ। मैं सत्य कहता हूँ और मेरी जो प्रतिज्ञा है, उसे भी आपलोग अच्छी तरह जानते हैं॥ ७१-७२॥

जब-जब मेरे भक्तोंपर किसी प्रकारकी विपत्ति आती है, तब-तब मैं उन्हें शीघ्र ही सब प्रकारसे दूर कर देता हूँ॥ ७३॥

इस समय तारकासुरके द्वारा जो विपत्ति आपलोगोंपर आ पड़ी है, उसे भी मैं जानता हूँ। उस दु:खको भी मैं दूर कर दूँगा, यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ॥ ७४॥

यद्यपि मुझे विवाहमें कोई इच्छा नहीं है, तो भी [आपलोगोंके लिये] पुत्र उत्पन्न करनेहेतु गिरिजासे विवाह करूँगा। हे देवताओ! अब आपलोग निडर होकर अपने-अपने घरोंको जाइये। मैं आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगा। इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ७५-७६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! ऐसा कहकर शंकर पुन: मौन धारणकर समाधिस्थ हो गये और विष्णु आदि समस्त देवता अपने-अपने धामोंको लौट गये॥ ७७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीविवाहस्वीकार नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पच्चीसवाँ अध्याय

भगवान् शंकरकी आज्ञासे सप्तर्षियोंद्वारा पार्वतीके शिवविषयक अनुरागकी परीक्षा करना और वह वृत्तान्त भगवान् शिवको बताकर स्वर्गलोक जाना

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] उन ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं तथा सभी मुनियोंके प्रेमपूर्वक चले जानेपर फिर क्या हुआ? हे तात! शिवने क्या किया और फिर कितने समयके बाद तथा किस प्रकार वर देनेके लिये आये, उसे बताइये और प्रीति प्रदान कीजिये॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—उन ब्रह्मा आदि देवताओंके अपने-अपने आश्रमोंको चले जानेपर पार्वतीकी तपस्याकी परीक्षा करनेके लिये शिवजी समाधिस्थ हो गये॥ ३॥

उन्होंने अपने आत्मासे ही परमात्मामें परात्पर, निरवग्रह, आत्मस्थित ज्योतिको धारणकर विचार किया॥ ४॥

वस्तुत: वे शिव ही भगवान्, ईश्वर, वृषभध्वज, अविज्ञातगति, जगत्स्रष्टा, हर एवं परमेश्वर हैं॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! उसी समय पार्वतीने भी महाघोर तपस्या प्रारम्भ की, उस तपसे शंकर भी अत्यन्त विस्मित हो गये। भक्तोंके अधीन रहनेवाले वे समाधिसे विचलित हो गये। तब उन जगत्स्रष्टा हरने वसिष्ठादि सप्तर्षियोंका स्मरण किया॥ ६-७॥

वे सभी सप्तर्षि भी शिवजीके स्मरण करते ही प्रसन्नमुख होकर अपने भाग्यकी बहुत सराहना करते हुए वहाँ शीघ्र ही उपस्थित हो गये। उन महेश्वरको प्रणाम करके वे हर्षपूर्वक गद्गद वाणीसे हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर स्तुति करने लगे॥ ८-९॥

सप्तर्षि बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हमलोग धन्य हो गये, जो आपने आज हमलोगोंका स्मरण किया॥ १०॥

हे नाथ! आपने किसलिये स्मरण किया है, हमलोगोंको आज्ञा दीजिये। हे स्वामिन्! अपने दासके समान ही हमलोगोंपर कृपा कीजिये, आपको प्रणाम है॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—मुनियोंकी इस विज्ञप्तिको सुनकर विकसित कमलके समान नेत्रोंवाले वे करुणानिधि हँसते हुए प्रेमपूर्वक कहने लगे—॥ १२॥

महेश्वर बोले—हे सप्तर्षिगण! आपलोग सभी प्रकारके ज्ञानमें विचक्षण हैं तथा मेरा हित करनेवाले हैं। हे तात! मेरी बात शीघ्र सुनिये॥ १३॥

इस समय गौरीशिखर नामक पर्वतपर देवेशी पार्वती गिरिजा अत्यन्त दृढ़ चित्तसे तपस्या कर रही है॥ १४॥

हे ऋषियो! सखियोंसे सेवित उसने अपनी समस्त कामनाओंका त्यागकर बड़ी दृढ़ताके साथ मुझे अपना

पति बनानेके लिये निश्चय कर लिया है॥ १५॥

हे मुनिश्रेष्ठो! आपलोग मेरी आज्ञासे वहाँ जाइये और उसके प्रेम एवं दृढ़ताकी परीक्षा कीजिये॥ १६॥

हे सुव्रतो! मेरी आज्ञा है कि आपलोग उससे सर्वथा छलयुक्त वचन कहिये, इसमें संशय न कीजिये॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीकी आज्ञा प्राप्तकर मुनिगण उसी समय उस स्थानपर गये, जहाँ जगन्माता पार्वती तपस्या कर रही थीं। उन लोगोंने वहाँ साक्षात् दूसरी तपःसिद्धिके समान, तेजसे देदीप्यमान और परमतेजकी मूर्तिस्वरूपा पार्वतीको देखा॥ १८-१९॥

हे सुव्रतो! उन सप्तर्षियोंने हृदयसे पार्वतीको प्रणाम करके उनसे विशेष रूपसे सत्कृत हो विनम्र होकर यह वचन कहा—॥ २०॥

ऋषिगण बोले—हे शैलसुते! देवि! सुनो, तुम किस उद्देश्यसे तपस्या कर रही हो? तुम किस देवताको प्रसन्न करना चाहती हो और क्या फल चाहती हो, उसे इस समय बताओ॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] जब उन सप्तर्षियोंने इस प्रकार देवी पार्वतीसे कहा, तब वे सत्य तथा अत्यन्त गोपनीय वचन उनके सामने कहने लगीं—॥ २२॥

पार्वती बोलीं—हे मुनीश्वरो! मैंने अपनी बुद्धिसे जो विचार किया है, उसे आपके समक्ष प्रकट करती हूँ। आपलोग प्रेमपूर्वक मेरी बात सुनें॥ २३॥

हे विप्रो! आपलोग मेरी असम्भव बात सुनकर परिहास करेंगे, इसलिये उसे कहनेमें भी मुझे संकोच हो रहा है, पर मैं क्या करूँ? आपलोगोंके पूछनेपर कह रही हूँ॥ २४॥

मेरा यह मन बड़ी दृढ़तासे हठपूर्वक दूसरेके वशमें हो गया है और जलके ऊपर बहुत ऊँची दीवार उठाना चाहता है। सदाशिव ही पति हों—ऐसा मनोरथ लेकर देवर्षि नारदकी आज्ञा प्राप्त करके मैं अति कठोर व्रत कर रही हूँ। इसमें मेरे मनरूपी पक्षीको यद्यपि पंख नहीं हैं, फिर भी यह हठपूर्वक आकाशमें उड़ना चाहता है। करुणासागर स्वामी शंकर मेरी उस आशाको पूर्ण करें॥ २५—२७॥

ब्रह्माजी बोले—उनकी यह बात सुनकर वे मुनि गिरिजाका सम्मान करके हँसकर प्रेमपूर्वक मिथ्या तथा छलयुक्त वचन कहने लगे॥ २८॥

ऋषिगण बोले—हे पर्वतराजपुत्रि! बुद्धिमती होकर भी तुमने व्यर्थ ही अपनेको पण्डित माननेवाले तथा क्रूर चित्तवाले उस देवर्षि नारदका चरित्र नहीं जाना है॥ २९॥

वह नारद तो मिथ्यावादी और दूसरेके चित्तको भुलावेमें डालनेवाला है, उसकी बात सुननेसे सर्वथा हानि ही होती है। उस नारदके सम्बन्धमें एक सुन्दर इतिहास हमलोग कह रहे हैं, उसको तुम उत्तम बुद्धिसे सुनो और प्रेमपूर्वक उसे अपने हृदयमें धारण करो॥ ३०-३१॥

ब्रह्माके पुत्र दक्षने अपने पिताकी आज्ञासे अपनी पत्नीसे दस हजार प्रिय पुत्र उत्पन्न किये और उनको तपस्यामें नियुक्त किया। तपस्याके लिये प्रतिज्ञा करके वे दक्षपुत्र पश्चिम दिशामें नारायण सरोवरपर गये, नारद भी वहाँ पहुँच गये। उन नारदने उन्हें मिथ्या उपदेश देकर विरक्त कर दिया और उनकी आज्ञासे वे पुनः अपने पिताके घर लौटकर नहीं आये॥ ३२—३४॥

यह समाचार सुनकर दक्ष अत्यन्त व्याकुल हो उठे। ब्रह्मदेवने उन्हें धैर्य प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने पुनः एक हजार पुत्र उत्पन्न किये और उन पुत्रोंको भी तपकार्यमें नियुक्त किया। वे भी अपने पिताकी आज्ञासे वहीं तप करनेके लिये गये। पुनः नारद वहाँ पहुँच गये और उन्हें भी अपना उपदेश दिया॥ ३५-३६॥

[उसका उपदेश मानकर] वे भी अपने भाइयोंके मार्गपर चले गये और भिक्षावृत्तिमें संलग्न हो गये। वे

पुनः अपने पिताके घर नहीं आये। नारदका यह चरित्र है, जो जगत्में प्रसिद्ध है। हे शैलपुत्रि! मनुष्योंको विरक्त करनेवाले उनके अन्य चरित्रको भी सुनो॥ ३७-३८॥

पूर्व समयमें एक विद्याधर था, जो चित्रकेतु नामका राजा हुआ था। उसको भी इसी नारदने उपदेश देकर उसका घर सूना कर दिया। प्रह्लादको उपदेश देकर हिरण्यकशिपुसे नाना प्रकारके दुःख दिलवाये। इस प्रकार वह [उलटा उपदेश देकर] दूसरोंकी बुद्धि फेर देता है॥ ३९-४०॥

इस नारदने कानोंको प्रिय लगनेवाली अपनी विद्या जिन-जिन लोगोंको सुनायी, वे शीघ्र ही प्रायः अपना घर छोड़कर भिक्षा माँगने लगे॥ ४१॥

वे नारद यद्यपि देखनेमें बड़े सज्जन लगते हैं, किंतु उनका मन मलिन है, हमलोग उनके साथ रहनेके कारण उनका चरित्र विशेषरूपसे जानते हैं॥ ४२॥

बगुलेके श्वेत वर्ण शरीरको देखकर सब लोग उसे साधु कहते हैं। फिर भी क्या वह मछली नहीं खाता। साथमें रहनेवाला ही साथ रहनेवालोंका [वास्तविक] चरित्र जानता है॥ ४३॥

तुम तो परम बुद्धिमती हो, फिर कैसे उनके उपदेशमें फँसकर मूर्खोंकी तरह कठिन तपस्यामें लग गयी!॥ ४४॥

हे बाले! यह परम दुःखकी बात है कि तुम जिसे अपना पति बनानेके लिये इतना कठिन तप कर रही हो, वह कामदेवका शत्रु है और उदासीन तथा निर्विकार है॥ ४५॥

वह अमंगल वेष धारण करनेवाला शिव निर्लज्ज है, उसके घरका तथा कुलका आज तक किसीको पता नहीं है, वह कुवेषी, भूत एवं प्रेतादिका साथ करनेवाला, त्रिशूल धारण करनेवाला और नग्न रहनेवाला है॥ ४६॥

उस धूर्त नारदने अपनी मायासे तुम्हारे ज्ञानको नष्ट करके बड़ी युक्तिसे तुम्हें मोहित कर दिया और तुमसे तपस्या करवायी॥ ४७॥

ऐसे वरको प्राप्तकर तुम्हें क्या सुख मिलेगा? हे देवेशि! हे पार्वति! तुम्हीं विचार करो॥ ४८॥

मूढ़ शिवने सद्‌बुद्धिसे दक्षकन्या सतीसे पहले विवाह करके कुछ दिन भी उसका निर्वाह नहीं किया और सतीको ही दोष लगाकर उसका स्वयं त्याग कर दिया। वे तो अपने अकल, अशोक स्वरूपका ध्यान करते हुए सुखी होकर रमण करते रहे। वे तो अकेले, परनिर्वाण, असंग तथा अद्वैत हैं, हे देवि! उनके साथ स्त्रीका निर्वाह किस प्रकार सम्भव होगा?॥ ४९—५१॥

अब भी तुम हमारी बात मानकर घर चली जाओ और अपनी दुर्बुद्धिका त्याग कर दो। हे महाभागे! [ऐसा करनेसे] तुम्हारा कल्याण होगा॥ ५२॥

तुम्हारे योग्य वर विष्णु हैं, सभी सद्‌गुणोंसे सम्पन्न वे प्रभु वैकुण्ठमें निवास करनेवाले, लक्ष्मीके ईश और नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें कुशल हैं॥ ५३॥

हमलोग तुम्हारा विवाह उन विष्णुसे करायेंगे, वह विवाह सब प्रकारके सुखोंको देनेवाला है। हे पार्वति! तुम इस प्रकारके हठका परित्याग करो और सुखी हो जाओ॥ ५४॥

ब्रह्माजी बोले—इस वचनको सुनकर जगदम्बा पार्वती हँसकर उन ज्ञानविशारद मुनियोंसे पुनः कहने लगीं—॥ ५५॥

पार्वती बोलीं—हे मुनिगण! आपलोग यद्यपि अपने विचारसे सत्य कह रहे हैं, किंतु हे द्विजो! मेरा हठ नहीं छूटेगा॥ ५६॥

पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण मेरे इस शरीरमें काठिन्य एवं हठका होना स्वाभाविक है, ऐसा अपनी बुद्धिसे विचारकर हे ब्राह्मणो! मुझे तपस्यासे मना मत कीजिये॥ ५७॥

मेरे लिये नारदजीका वचन सर्वथा हितकर है, मैं उनका परित्याग कदापि नहीं करूँगी। वेदवेत्ता विद्वान् कहते हैं कि गुरुका वचन कल्याणकारी होता है॥ ५८॥

जिन लोगोंने बुद्धिसे यह निश्चित किया है कि गुरुके वचन सर्वदा सत्य हैं, उनको इस लोक तथा परलोकमें सदैव सुख प्राप्त होता है। उन्हें कभी दुःख होता ही नहीं॥ ५९॥

जिन लोगोंके हृदयमें यह विचार नहीं है कि गुरुओंका वचन सत्य होता है, उन्हें इस लोक एवं परलोकमें दुःख ही दुःख होता है, उन्हें सुख कभी नहीं होता॥ ६०॥

हे ब्राह्मणो! गुरुओंके वचनका किसी प्रकार त्याग नहीं करना चाहिये। चाहे घर बसे अथवा उजड़े—यह हठ मुझे सदा सुख देनेवाला है॥ ६१॥

हे मुनिसत्तमो! आपलोगोंने जो वचन कहा है, उस विषयमें मैं संक्षेपमें अपना विचार प्रकट करती हूँ॥ ६२॥

आपलोगोंने जो विष्णुको सर्वगुणसम्पन्न, वैकुण्ठमें विहार करनेवाला तथा सदाशिवको निर्गुण एवं निर्विकार कहा है, वह सत्य ही है, इसका कारण मैं आपलोगोंको बताती हूँ। शिव परब्रह्म एवं विकाररहित हैं, वे भक्तोंके लिये ही शरीर धारण करते हैं। वे प्रभु कभी भी सांसारिक प्रभुता दिखानेकी इच्छा नहीं करते। अतः परमानन्द शम्भु अवधूतस्वरूपसे परमहंसोंकी प्रिय गति धारण करते हैं॥ ६३—६५॥

मायामें लिप्त रहनेवालोंको ही भूषणादिमें अभिरुचि होती है, ब्रह्मको किसी प्रकारकी कोई अभिरुचि नहीं होती। वे सदाशिव प्रभु निर्गुण, अज, मायारहित, अलक्ष्यगति एवं विराट् हैं॥ ६६॥

हे द्विजो! धर्म, जाति आदिके द्वारा ही शम्भुका अनुग्रह नहीं होता है, मैं तो गुरुके अनुग्रहसे ही शिवको तत्त्वपूर्वक जानती हूँ। हे ब्राह्मणो! यदि शंकर मेरे साथ विवाह नहीं करेंगे, तो मैं सर्वदा अविवाहित रहूँगी, यह मैं सत्य-सत्य कहती हूँ॥ ६७-६८॥

चाहे सूर्य पश्चिम दिशामें उदय हो, सुमेरु चलायमान हो जाय, अग्नि शीतल हो जाय, पर्वतपर कमल खिलने लगें, किंतु मेरा हठ नहीं डिगेगा, यह मैं सत्य कहती हूँ॥ ६९॥

ब्रह्माजी बोले—यह कहकर और उन मुनियोंको प्रणाम करके वे पार्वती विकाररहित चित्तसे शिवजीका स्मरणकर मौन हो गयीं। तदनन्तर ऋषियोंने भी पार्वतीका यह निश्चय जानकर उनकी जय-जयकार की और उन्हें उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया। हे मुने! शिवाकी परीक्षा करनेवाले वे मुनिगण उन देवीको प्रणाम करके प्रसन्नचित्त होकर शीघ्र ही शिवस्थानको चले गये॥ ७०—७२॥

वे लोग वहाँ जाकर शिवको प्रणाम करके उस वृत्तान्तका निवेदनकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके आदरपूर्वक स्वर्गलोकको चले गये॥ ७३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें सप्तर्षिकृतपरीक्षावर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

पार्वतीकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शिवका जटाधारी ब्राह्मणका वेष धारणकर पार्वतीके समीप जाना, शिव-पार्वती-संवाद

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! उन मुनियोंके अपने-अपने लोक चले जानेपर जगत्स्रष्टा प्रभु शिवने स्वयं पार्वतीके तपकी परीक्षा लेनेकी इच्छा की॥ १॥

प्रसन्नचित्त वे शिवजी परीक्षाके बहाने उन्हें देखनेके लिये जटाधारीरूप धारणकर पार्वतीके वनमें गये॥ २॥

उन्होंने प्रसन्न मनसे बूढ़े ब्राह्मणका वेष धारण किया और अपने तेजसे देदीप्यमान हो दण्ड तथा छत्र धारण कर लिया था॥ ३॥

वहाँपर उन्होंने सखियोंसे घिरी हुई उन विशुद्ध पार्वतीको वेदीपर बैठी हुई साक्षात् चन्द्रकलाके समान देखा॥ ४॥

तब ब्रह्मचारीका रूप धारण किये हुए वे भक्तवत्सल शिव उन देवीको देखकर प्रेमपूर्वक उनके समीप गये॥ ५॥

उस अपूर्व तेजस्वी ब्राह्मणको आया हुआ देखकर शिवादेवीने सभी प्रकारकी पूजासामग्रीसे उनका पूजन किया। इस प्रकार भलीभाँति पूजा-सत्कार करनेके अनन्तर पार्वतीजी प्रसन्नताके साथ उस ब्राह्मणसे आदरपूर्वक कुशल पूछने लगीं— ॥ ६-७॥

पार्वती बोलीं—हे ब्राह्मण! ब्रह्मचारीका स्वरूप धारण किये हुए आप कौन हैं और कहाँसे आये हैं? आप इस वनको प्रकाशित कर रहे हैं। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! यह सब मुझसे कहिये॥ ८॥

ब्राह्मण बोले—मैं वृद्ध ब्राह्मणका शरीर धारण किये अपने इच्छानुसार चलनेवाला एक बुद्धिमान् तपस्वी हूँ, मैं दूसरोंको सुख देनेवाला तथा उनका उपकार करनेवाला हूँ, इसमें संशय नहीं है॥ ९॥

तुम कौन हो और किसकी कन्या हो, इस निर्जन वनमें अकेली रहकर इतनी कठिन तपस्या क्यों कर रही हो, जो मुनियोंके लिये भी दुष्कर है॥ १०॥

तुम न तो बाला हो, न ही वृद्धा, तुम तो सर्वथा तरुणी जान पड़ती हो। पतिके बिना इस वनमें इतनी कठोर तपस्या क्यों कर रही हो? हे भद्रे! क्या तुम किसी तपस्वीकी सहचारिणी हो, जो इतनी घोर तपस्यामें निमग्न हो। क्या वह तपस्वी तुम्हारा पोषण नहीं करता अथवा तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चला गया है?॥ ११-१२॥

तुम किसके कुलमें उत्पन्न हुई हो, तुम्हारे पिता कौन हैं तथा तुम्हारा क्या नाम है, यह बताओ, तुम तो सौभाग्य-शालिनी हो, तपस्यामें तुम्हारी आसक्ति तो व्यर्थ ही है॥ १३॥

क्या तुम वेदोंकी जन्मदात्री सावित्री हो या महालक्ष्मी हो अथवा सुन्दर रूप धारण किये हुए सरस्वती हो! इनमें तुम कौन हो! मैं अनुमान नहीं कर पा रहा हूँ॥ १४॥

पार्वती बोलीं—हे विप्र! न तो मैं सावित्री हूँ, न महालक्ष्मी और न ही सरस्वती ही हूँ। मैं हिमालयकी पुत्री हूँ और मेरा वर्तमान नाम पार्वती है॥ १५॥

पूर्वजन्ममें मैं दक्षकी कन्या थी, उस समय मेरा नाम सती था। मेरे पिताने मेरे पतिकी निन्दा की थी, इसलिये मैंने [योगमार्गका अवलम्बनकर] अपना शरीर त्याग दिया था। मैंने इस जन्ममें भी भाग्यवश शिवजीको ही प्राप्त किया, परंतु वे कामदेवको जलाकर मुझे छोड़कर चले गये। हे विप्र! शंकरजीके चले जानेपर मैं कष्टसे उद्विग्न हो गयी और तपके लिये दृढ़ होकर पिताके घरसे गंगाके तटपर चली आयी॥ १६—१८॥

बहुत समयतक कठोर तपस्या करनेके बाद भी मेरे प्राणवल्लभ सदाशिव मुझे प्राप्त नहीं हुए, इस कारण मैं अग्निमें प्रवेश करना चाहती थी, किंतु आपको देखकर क्षणमात्रके लिये रुक गयी॥ १९॥

अब आप जाइये। शिवजीने मुझे अंगीकार नहीं किया, इसलिये मैं अब अग्निमें प्रवेश करूँगी। मैं जहाँ-जहाँ जन्म लूँगी, वहाँ भी शिवको ही वररूपमें प्राप्त करूँगी॥ २०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर पार्वती ब्रह्मचारीद्वारा बारम्बार निषेध करनेपर भी अग्निमें प्रवेश कर गयीं। पार्वतीके अग्निमें प्रवेश करते ही उनकी तपस्याके प्रभावसे वह अग्नि उसी समय शीघ्र ही चन्दनके समान शीतल हो गयी। क्षणभर अग्निमें रहनेके बाद ज्यों ही वे द्युलोक जानेको उद्यत हुईं, तब [विप्ररूप] शिव हँसते हुए उन सुन्दरांगीसे सहसा पूछने लगे—॥ २१—२३॥

द्विज बोले—हे भद्रे! तुम्हारी यह कैसी तपस्या है? मुझे तो तुम्हारी इस तपस्याका कुछ भी फल नहीं जान पड़ता। इस अग्निने तुम्हारे शरीरको भी नहीं जलाया और तुम्हारा मनोरथ भी प्राप्त नहीं हुआ॥ २४॥

इसलिये हे देवि! सब प्रकारका आनन्द प्रदान करनेवाले मुझ विप्रवरके सामने तुम अपना मनोरथ ठीकसे कहो, हे देवि! तुम पूर्णरूपसे इस बातको यथाविधि कह दो। [परस्पर बातचीतसे] हमारी-तुम्हारी मित्रता हो गयी, अतः तुम्हें इस बातको गोपनीय नहीं रखना चाहिये॥ २५-२६॥

हे देवि! इसके पश्चात् मैं पूछना चाहता हूँ कि तुम कौन-सा वरदान चाहती हो? हे देवि! मुझे सारे वरदानका फल तुम्हींमें दिखायी पड़ रहा है॥ २७॥

यह तपस्या यदि तुमने दूसरेके लिये की है, तो वह सारा-का-सारा तुम्हारा तप व्यर्थ हो गया और तुमने हाथमें रत्नको ले करके उसे खोकर पुनः काँच धारण किया॥ २८॥

इस प्रकारकी अपनी सुन्दरता तुमने व्यर्थ क्यों कर दी? अनेक प्रकारके वस्त्र त्यागकर तुमने यह मृगचर्म क्यों धारण किया? इसलिये तुम इस तपस्याका सारा कारण सत्य-सत्य बताओ, जिससे कि उसे सुनकर ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ मैं प्रसन्नता प्राप्त करूँ॥ २९-३०॥

ब्रह्माजी बोले—जब इस प्रकार उस ब्राह्मणने पार्वतीसे पूछा, तब उन सुव्रताने अपनी सखीको प्रेरित

किया और उसके मुखसे सारा वृत्तान्त कहलवाया ॥ ३१ ॥

तदनन्तर उस पार्वतीसे प्रेरित होकर पार्वतीको प्राणोंके समान प्रिय तथा उत्तम व्रतको जाननेवाली विजया नामकी सखी उस ब्रह्मचारीसे कहने लगी— ॥ ३२ ॥

सखी बोली—हे साधो! यदि आप इस पार्वतीका श्रेष्ठ चरित्र एवं इसकी तपस्याका समस्त कारण जानना चाहते हैं, तो मैं उसे कहूँगी, आप सुनें ॥ ३३ ॥

यह मेरी सखी पर्वतराज हिमालयकी पुत्री है और पार्वती नामसे प्रसिद्ध है। इसकी माता मेनका है ॥ ३४ ॥

अभीतक इसका विवाह किसीके साथ नहीं हुआ है, यह शिवजीको छोड़कर दूसरेको अपना पति नहीं बनाना चाहती। यह तीन हजार वर्षसे तपस्या कर रही है। हे साधो! हे द्विजोत्तम! उन्हींके लिये मेरी सखीने ऐसा तप आरम्भ किया है, इसका भी कारण मैं आपसे कहती हूँ आप सुनें। यह पार्वती इन्द्रादि प्रमुख देवताओं एवं ब्रह्मा, विष्णु आदिको छोड़कर केवल पिनाकपाणि शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा करती है ॥ ३५—३७ ॥

हे द्विज! तपस्या प्रारम्भ करनेके पूर्व मेरी सखीने जिन वृक्षोंको लगाया था, उन सबमें फूल, फल आदि आ गये हैं [अतः प्रतीत होता है कि मेरी सखीके मनोरथ पूर्ण होनेका समय आ गया है।] ॥ ३८ ॥

यह मेरी सखी नारदजीके उपदेशानुसार अपने रूपको सार्थक करनेके लिये, अपने पिताके कुलको अलंकृत करनेके लिये और कामदेवपर अनुग्रह करनेके लिये महेश्वरके उद्देश्यसे कठिन तप कर रही है, हे तापस! क्या इसका मनोरथ सफल नहीं होगा?॥ ३९-४० ॥

हे द्विजश्रेष्ठ! आपने मेरी सखीके जिस मनोरथको पूछा था, उसे मैंने प्रीतिपूर्वक कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४१ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! विजयाकी इस यथार्थ बातको सुनकर वे जटाधारी रुद्र हँसते हुए यह वचन कहने लगे— ॥ ४२ ॥

जटिल बोले—सखीके द्वारा जो यह कहा गया है, वह तो परिहास मालूम पड़ता है, यदि यह यथार्थ है, तो देवी अपने मुखसे कहें ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार जब जटाधारी ब्राह्मणने कहा, तब पार्वतीदेवी अपने मुखसे ही उन ब्राह्मणसे कहने लगीं ॥ ४४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवाजटिलसंवादवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

जटाधारी ब्राह्मणद्वारा पार्वतीके समक्ष शिवजीके स्वरूपकी निन्दा करना

पार्वती बोलीं—हे द्विजेन्द्र! हे जटिल! मेरा समस्त वृत्तान्त सुनें। इस समय मेरी सखीने जो कुछ भी कहा है, वह सब सत्य है, कुछ भी झूठा नहीं है ॥ १ ॥

मैंने मन, वचन एवं कर्मसे शंकरजीका ही पतिभावसे वरण किया है, यह बात मैं सत्य कहती हूँ, असत्य नहीं। मैं जानती हूँ कि दुर्लभ वस्तु मुझे कैसे प्राप्त हो सकती है, फिर भी मनकी उत्सुकतावश मैं इस समय तप कर रही हूँ ॥ २-३ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उस ब्रह्मचारीसे कहकर गिरिजा चुप हो गयीं। तब वे ब्राह्मण पार्वतीकी बात सुनकर कहने लगे— ॥ ४ ॥

ब्राह्मण बोले—अभीतक मुझे यह बड़ी इच्छा थी कि यह देवी किस वस्तुको प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त कठिन तप कर रही है ॥ ५ ॥

हे देवि! तुम्हारे मुखकमलसे सारी बातें सुनकर और उसे जानकर अब मैं यहाँसे जाना चाहता हूँ, अब तुम जैसा चाहती हो, वैसा ही करो ॥ ६ ॥

यदि तुम मुझसे इन बातोंको न कहती, तो मित्रता व्यर्थ हो जाती। कार्य तो होनहारके अनुसार होता है, इसलिये सुखपूर्वक उसे कहना चाहिये ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार कहकर ज्यों ही उस ब्राह्मणने जानेकी इच्छा की, तभी पार्वती

देवी प्रणाम करके उन द्विजसे कहने लगीं— ॥ ८ ॥

पार्वती बोलीं—हे विप्रेन्द्र! आप क्यों जा रहे हैं, ठहरिये और मेरे हितकी बात कहिये। उनके ऐसा कहनेपर वे दण्डधारी रुककर कहने लगे— ॥ ९ ॥

ब्राह्मण बोले—हे देवि! यदि तुम सुननेकी इच्छा करती हो और भक्तिपूर्वक मुझे रोकती हो, तो मैं तुमसे वह सब तत्त्व कहता हूँ, जिससे [उनके विषयमें] तुम्हें भलीभाँति जानकारी हो जायगी। मैं गुरुप्रसादसे महादेवको अच्छी तरहसे जानता हूँ। जो बात सत्य है, उसको कह रहा हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥ १०-११ ॥

महादेव बैलकी सवारी करते हैं, भस्म पोते रहते हैं, जटा धारण किये रहते हैं, व्याघ्रचर्म धारण करते हैं और हाथीका चमड़ा ओढ़ते हैं ॥ १२ ॥

वे कपाल धारण करते हैं तथा सम्पूर्ण शरीरमें साँप लपेटे रहते हैं। वे विष पीनेवाले, अभक्ष्यका भक्षण करनेवाले, विरूपाक्ष और महाभयंकर हैं ॥ १३ ॥

उनके जन्मका किसीको पता नहीं है और वे गृहस्थोचित भोगसे सर्वथा रहित हैं। वे दिगम्बर, दशभुजावाले तथा भूत-प्रेतोंके साथ निवास करते हैं ॥ १४ ॥

हे देवि! तुम किस कारणसे उन्हें अपना पति बनाना चाहती हो, तुम्हारा ज्ञान कहाँ खो गया है, इसे विचारकर मुझसे इस समय कहो—मैंने पूर्व समयमें भी उनका भयंकर चरित्र सुना है। यदि तुम्हें उसे सुननेकी इच्छा हो, तो मैं कह रहा हूँ, उसे सुनो ॥ १५-१६ ॥

पहले दक्षकन्या साध्वी सतीने वृषभवाहन शिवका वरण किया था, उसके साथ उन्होंने जैसा व्यवहार किया, वह बात भी तुमने सुनी होगी। दक्षने स्वयं अपनी कन्याको इसीलिये नहीं बुलाया कि वह कपालीकी पत्नी है और यज्ञमें शिवजीको भाग भी नहीं दिया ॥ १७-१८ ॥

इस अपमानसे अत्यन्त क्रुद्ध हुई सतीने अपने प्रिय प्राण त्याग दिये और उसने शंकरजीको भी छोड़ दिया ॥ १९ ॥

तुम सभी स्त्रियोंमें रत्न हो और तुम्हारे पिता भी पर्वतोंके राजा हैं, फिर उग्र तपस्याके द्वारा तुम इस प्रकारके पतिको क्यों प्राप्त करना चाहती हो? ॥ २० ॥

तुम सुवर्णकी मुद्रा देकर काँच क्यों ग्रहण करना चाहती हो और सुन्दर चन्दनको छोड़कर कीचड़ लगानेकी इच्छा क्यों कर रही हो? सूर्यका तेज छोड़कर तुम जुगनूका प्रकाश क्यों चाहती हो और रेशमी वस्त्रको त्यागकर चमड़ा क्यों पहनना चाहती हो? ॥ २१-२२ ॥

घरमें रहना छोड़कर वनमें रहना चाहती हो और हे देवेशि! उत्तम खजानेको छोड़कर लोहेकी इच्छा करती हो। जो तुम इन्द्र आदि लोकपालोंको छोड़कर शिवमें अनुरक्त हुई हो, यह तो उचित नहीं है और यह लोकके सर्वथा विरुद्ध दिखायी पड़ता है ॥ २३-२४ ॥

कहाँ तुम कमलके समान विशाल नेत्रवाली हो और कहाँ वे भयंकर तीन नेत्रवाले हैं। तुम चन्द्रमाके समान मुखवाली हो तथा वे शिव पाँच मुखवाले कहे गये हैं ॥ २५ ॥

तुम्हारे सिरपर सर्पिणीके समान वेणी सुशोभित है और शिवका जटाजूट तो प्रसिद्ध ही है ॥ २६ ॥

तुम्हारे शरीरमें चन्दनका लेप और शिवके शरीरमें चिताका भस्म लगा रहता है। कहाँ तुम्हारा दुकूल और कहाँ शंकरका गजचर्म! कहाँ [तुम्हारे] दिव्य आभूषण और कहाँ शंकरके सर्प! कहाँ सभी देवता तुम्हारे सेवक तथा कहाँ भूतों तथा बलिको प्रिय समझनेवाला वह शिव! ॥ २७-२८ ॥

कहाँ [तुम्हें सुख देनेवाला] मृदंगवाद्य और कहाँ डमरू? कहाँ तुम्हारी भेरीकी ध्वनि और कहाँ उनका अशुभदायक शृंगीका शब्द! कहाँ तुम्हारा ढक्का नामक बाजेका शब्द और उनका अशुभ गलेका शब्द! तुम्हारा रूप उत्तम है और शिवका रूप नहीं है ॥ २९-३० ॥

यदि उनके पास द्रव्य होता तो वे दिगम्बर कैसे होते, उनका वाहन भी बैल है तथा उनके पास और कोई सामग्री भी नहीं है। स्त्रियोंको सुख देनेवाले जो गुण वरोंमें बताये गये हैं, उनमेंसे एक भी गुण विरूपाक्ष शिवमें नहीं कहा गया है ॥ ३१-३२ ॥

उन्होंने तुम्हारे अत्यन्त प्रिय कामदेवको भी भस्म कर दिया। उस समय तुमने अपना अनादर भी देख लिया कि वे तुम्हें छोड़कर अन्यत्र चले गये ॥ ३३ ॥

उनकी जातिका पता नहीं है, उसी प्रकार उनके ज्ञान तथा विद्याका भी पता नहीं, पिशाच ही उनके सहायक हैं और उनके गलेमें विष दिखायी पड़ता है ॥ ३४ ॥

वे विशेष रूपसे विरक्त हैं, इसलिये अकेले रहते हैं। अतः तुम शंकरके साथ अपना मन मत जोड़ो ॥ ३५ ॥

कहाँ तुम्हारा हार और कहाँ उनकी मुण्डमाला! कहाँ तुम्हारा दिव्य अंगराग और कहाँ उनके शरीरमें चिताभस्म!॥ ३६ ॥

हे देवि! तुम्हारा और शंकरका रूप आदि सब कुछ एक-दूसरेके विपरीत है, मुझे तो यह अच्छा नहीं लगता, अब तुम जैसा चाहती हो, वैसा करो॥ ३७॥

जो कुछ भी असद् वस्तु है, वह सब तुम स्वयं चाह रही हो। तुम उससे अपना मन हटा लो। अन्यथा जो चाहती हो, उसे करो॥ ३८॥

ब्रह्माजी बोले—उस ब्राह्मणके इस प्रकारके वचन सुनकर पार्वती कुपित मनसे उन शिवनिन्दक ब्राह्मणसे कहने लगीं— ॥ ३९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें ब्रह्मचारिप्रतारणवाक्यवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

पार्वतीद्वारा परमेश्वर शिवकी महत्ता प्रतिपादित करना और रोषपूर्वक जटाधारी ब्राह्मणको फटकारना, शिवका पार्वतीके समक्ष प्रकट होना

पार्वतीजी बोलीं—मैं तो यही समझती थी कि यह कोई अन्य ही आया है, किंतु अब मैंने सब कुछ जान लिया है। [क्रोध तो बहुत आ रहा है, किंतु ब्रह्मचारी होनेसे] तुम विशेषरूपसे अवध्य हो॥ १॥

हे देव! आपने जो कहा है, उसे मैंने जान लिया, वह सब मिथ्या है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। यदि आप शिवजीको जानते होते, तो ऐसी विरुद्ध बातें नहीं करते॥ २॥

महेश्वर, जो इस प्रकारका वेष धारण करते हुए देखे जाते हैं, उसका यही कारण है कि वे लीला करनेके लिये ही वैसा वेष धारण करते हैं। आप ब्रह्मचारीका रूप धारणकर मुझे छलना चाहते हैं, इसीलिये कुतर्कसे भरी हुई ऐसी बातें मुझसे कह रहे हैं॥ ३-४॥

शंकरके स्वरूपको मैं विशेष रूपसे जानती हूँ, इसलिये विचारकर यथार्थ रूपसे शिवतत्त्व कहती हूँ॥ ५॥

वस्तुतः वे निर्गुण ब्रह्म हैं और कारणवश सगुण हो जाते हैं। जो निर्गुण होकर मायासे सगुणरूप धारण करता है, उसका जन्म किस प्रकारसे सम्भव है?॥ ६॥

वे सदाशिव सभी विद्याओंके अधिष्ठान हैं, उन पूर्ण परमात्माको विद्यासे क्या प्रयोजन? कल्पके आदिमें उन्हीं सदाशिवने सर्वप्रथम विष्णुको उच्छ्वासरूपसे वेद प्रदान किये थे, उनके समान कौन परम प्रभु है?॥ ७-८॥

जो सबका आदिकारण है, उसकी अवस्थाका प्रमाण कौन कर सकता है। यह प्रकृति तो उन्हींसे उत्पन्न हुई है, फिर उनकी शक्तिका दूसरा कारण क्या हो सकता है?॥ ९॥

जो लोग प्रेमपूर्वक शक्तिके पति उन सदाशिवका भजन करते हैं, उनको शिवजी सदा ही अक्षयरूप तीनों शक्तियाँ (क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति) प्रदान करते हैं॥ १०॥

जीव उन्हींके भजनसे निर्भय होकर मृत्युको जीत लेता है, इसलिये त्रिलोकीमें उनका मृत्युंजय नाम प्रसिद्ध है॥ ११॥

उन्हींके पक्षमें रहनेसे विष्णुने विष्णुत्व प्राप्त किया है, ब्रह्माने ब्रह्मत्व तथा देवताओंने देवत्व प्राप्त किया है॥ १२॥

देवताओंमें प्रमुख इन्द्र जब भगवान् शिवके दर्शनार्थ जाते हैं, तब भगवान् शिवके जो द्वारपाल एवं भूत आदि हैं, सादर उनके दण्डोंमें घिसा गया इन्द्रका मुकुट सब प्रकारसे उज्ज्वल हो उठता है। उनके विषयमें बहुत बात करनेसे क्या? वे तो स्वयं प्रभु हैं॥ १३-१४॥

उन कल्याणस्वरूप शिवजीकी सेवा करनेसे इस लोकमें क्या नहीं सिद्ध हो जाता है। उन देवके पास किस बातकी कमी है, जो वे सदाशिव मेरी इच्छा करें॥ १५॥

जो सात जन्मोंका दरिद्र हो, वह भी यदि शंकरकी सेवा करे, तो उनकी इस सेवासे उसे लोकमें स्थिर रहनेवाली लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है॥ १६॥

जिन्हें सन्तुष्ट करनेके लिये आठों सिद्धियाँ सदा नीचेकी ओर मुख किये जिनके आगे सदा नृत्य करती हैं, उनसे हित होना कहाँसे दुर्लभ है?॥ १७॥

यद्यपि समस्त मंगल उन शिवजीकी सेवा नहीं करते अर्थात् वे मंगलवेश धारण नहीं करते, तो भी उनके स्मरणमात्रसे ही पुरुषका मंगल होता है॥ १८॥

जिनकी पूजाके प्रभावसे निरन्तर समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, उन निर्विकार शंकरमें विकार कहाँसे हो सकता है? जिसके मुखसे 'शिव' यह मंगल नाम निरन्तर निकलता है, उस पुरुषके दर्शनमात्रसे ही दूसरे प्राणी सदा पवित्र हो जाते हैं॥ १९-२०॥

[हे ब्रह्मचारिन्!] जैसा आपने कहा है कि चिताकी भस्म अपवित्र होती है, तो देवगण उनके अंगमें शोभित भस्म सिरपर नित्य क्यों धारण करते हैं?॥ २१॥

जो देव जगत्का कर्ता, भर्ता तथा हर्ता है, गुणोंसे संयुक्त है, निर्गुण तथा शिव है, उसे कोई किस प्रकार जान सकता है? ब्रह्मस्वरूप परमात्मा शिवजीका रूप सदा निर्गुण है। अतः आपके सदृश शिवद्रोही उन्हें किस प्रकार जान सकते हैं?॥ २२-२३॥

जो दुराचारी, महापापी, वेद एवं देवतासे विमुख हैं, वे निर्गुणरूपवाले शिवके तत्त्वको नहीं जान सकते॥ २४॥

जो पुरुष तत्त्वको न जानकर शिवकी निन्दा करता है, उसका जन्मपर्यन्त संचित किया गया पुण्य भस्म हो जाता है। आपने इस समय जो महातेजस्वी शिवकी निन्दा की है और मैंने जो आपकी पूजा की है, इसका पाप मुझे भी लग गया है। शिवजीकी निन्दा करनेवालेको देखकर वस्त्रोंसहित स्नान करना चाहिये और शिवद्रोहीको देखते ही प्रायश्चित्त भी करना चाहिये॥ २५—२७॥

अरे दुष्ट! तुमने जो कहा कि मैं शिवको जानता हूँ, तुम्हें तो निश्चित रूपसे सनातन शिवजीका कुछ ज्ञान नहीं है। वे रुद्र चाहे किसी भी स्वरूपवाले हों, रूपवान् हों अथवा अरूपी हों, वे सज्जनोंके प्रिय निर्विकारी प्रभु मेरे तो सर्वस्व हैं और मुझे अत्यन्त प्रिय हैं॥ २८-२९॥

उन महात्मा सदाशिवकी ब्रह्मा, विष्णु भी किसी प्रकार समता नहीं कर सकते, फिर जो सर्वदा कालके अधीन अन्य देवता आदि हैं, वे किस प्रकार उनकी समता कर सकते हैं?॥ ३०॥

इस प्रकार अपनी सत्य बुद्धिसे विचारकर मैं उन शिवकी प्राप्तिहेतु वनमें आकर घोर तपस्या कर रही हूँ॥ ३१॥

वे ही परमेश्वर, सर्वेश एवं भक्तवत्सल हैं। दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले उन्हींको प्राप्त करनेकी मेरी इच्छा है॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार वे गिरिराजपुत्री मौन हो गयीं और निर्विकार चित्तसे पुनः शिवजीका ध्यान करने लगीं। तदनन्तर वे ब्राह्मण पार्वतीके इस प्रकारके वचनको सुनकर पुनः ज्यों ही कुछ कहनेको उद्यत हुए, उसी समय शिवजीमें मन लगाये हुए और शिवजीकी निन्दासे पराङ्मुख रहनेवाली पार्वती अपनी विजया नामकी सखीसे शीघ्रतापूर्वक कहने लगीं—॥ ३३—३५॥

पार्वती बोलीं—हे सखि! बोलनेकी इच्छावाला यह द्विजाधम पुनः शिवकी निन्दा करेगा, अतः इसे प्रयत्नपूर्वक रोको; क्योंकि केवल शिवकी निन्दा करनेवालेको ही पाप नहीं लगता, अपितु जो उनकी निन्दाको सुनता है, वह भी पापका भागी होता है॥ ३६-३७॥

शिवभक्तोंको चाहिये कि वे शिवनिन्दकका वध कर दें। यदि वह ब्राह्मण है, तो उसका त्याग कर देना चाहिये और उस स्थानसे अन्यत्र चले जाना चाहिये॥ ३८॥

यह दुष्ट पुनः शिवजीकी निन्दा करेगा, ब्राह्मण होनेके कारण यह अवध्य है, अतः इसका त्यागकर अन्यत्र चलना चाहिये, जहाँ जानेपर यह पुनः दिखायी न पड़े॥ ३९॥

अब इस स्थानको छोड़कर हमलोग अविलम्ब दूसरे स्थानपर चलेंगे, जिससे इस मूर्ख ब्राह्मणसे पुनः सम्भाषण न करना पड़े॥ ४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इतना कहनेके अनन्तर ज्यों ही पार्वतीने अन्यत्र जानेके लिये अपना पैर उठाया, इतनेमें ब्रह्मचारीस्वरूप साक्षात् शिवजीने पार्वतीको पकड़ लिया। उन शिवने उस समय जैसा पार्वती ध्यान कर रही थीं, उसी प्रकारका अत्यन्त सुन्दर रूप धारणकर उन्हें दर्शन दिया और पुनः नीचेकी ओर मुख की हुई पार्वतीसे वे शिव कहने लगे—॥ ४१-४२॥

शिवजी बोले—[हे देवि!] तुम मुझे छोड़कर कहाँ जा रही हो? मैं तुम्हें नहीं छोडूँगा। मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, मेरे द्वारा तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है॥ ४३॥

आजसे मैं तुम्हारे तपोंसे तुम्हारा खरीदा हुआ दास हो गया। तुमने अपने सौन्दर्यसे मुझे मोल ले लिया है, तुम्हारे बिना एक क्षण भी युगके समान है॥ ४४॥

हे गिरिजे! तुम लज्जाका त्याग करो, तुम तो मेरी सनातन पत्नी हो। हे महेश्वरि! इसे तुम अपनी सद्बुद्धिसे स्वयं विचार करो। हे दृढ़ मनवाली! मैंने तुम्हारी अनेक प्रकारसे परीक्षा की, मुझ लोकलीलाका अनुसरण करनेवालेके इस अपराधको क्षमा करो। मैंने तुम्हारी-जैसी पतिव्रता सती त्रिलोकमें कहीं नहीं देखी। हे शिवे! मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ, तुम अपनी कामना पूर्ण करो॥ ४५—४७॥

हे प्रिये! तुम मेरे पास आओ, तुम मेरी पत्नी हो तथा मैं तुम्हारा वर हूँ, अब मैं तुम्हें अपने साथ लेकर पर्वतोंमें उत्तम अपने घर कैलासको चलूँगा॥ ४८॥

ब्रह्माजी बोले—देवदेव शंकरजीके इस प्रकार कहनेपर पार्वतीको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ और उन्हें पूर्व समयमें तपस्याके कारण जो दुःख हुआ था, वह तत्क्षण ही दूर हो गया। हे मुनिसत्तम! पार्वतीका सारा श्रम दूर हो गया; क्योंकि फलके प्राप्त हो जानेपर प्राणीका पूर्वमें किया हुआ सारा श्रम नष्ट हो जाता है॥ ४९-५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीको शिवरूपदर्शन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

शिव और पार्वतीका संवाद, विवाहविषयक पार्वतीके अनुरोधको शिवद्वारा स्वीकार करना

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे विधे! हे महाभाग! इसके बाद फिर क्या हुआ? मैं वह सब सुनना चाहता हूँ, आप शिवाके चरित्रको कहिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! सुनिये, मैं इस कथाको प्रसन्नतापूर्वक कह रहा हूँ। यह कथा पापका नाश करनेवाली तथा शिवमें भक्ति बढ़ानेवाली है॥ २॥

हे द्विज! परमात्मा हरका वचन सुनकर और उनके परमानन्दकारी रूपको देखकर पार्वतीजी परम आनन्दित हो गयीं। स्नेहके कारण उनके नेत्रकमल खिल उठे। उसके बाद वे महासाध्वी सुखी हो प्रसन्नतासे अपने समीप खड़े प्रभुसे कहने लगीं॥ ३-४॥

पार्वती बोलीं—हे देवेश! आप तो मेरे नाथ हैं, क्या आप इस बातको भूल गये कि मेरे ही निमित्त आपने दक्षके यज्ञका विनाश किया था। यद्यपि आप तो वही हैं, किंतु मैं देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये मेनासे पुनः उत्पन्न हुई हूँ। हे देवदेवेश! देवतागण तारक असुरसे इस समय अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं॥ ५-६॥

हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझपर कृपा करना चाहते हैं, तो हे महेशान! हे प्रभो! आप मेरे पति बनिये और मेरा वचन मानिये। इस समय आप मुझे पिताके घर जानेकी आज्ञा दें, अब आप अपना विशुद्ध और उत्कृष्ट यश जगत्में प्रसिद्ध करें॥ ७-८॥

हे नाथ! हे प्रभो! अनेक लीलाओंको करनेवाले आपको भिक्षु बनकर मेरे पिताके पास जाना चाहिये और उनसे मुझे माँगना चाहिये। आपको अपने यशका लोकमें विस्तार करते हुए ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे मेरे पिताका गृहस्थाश्रम सफल हो जाय। ऋषियोंने मेरे पिताको समझा दिया है, इसलिये बन्धुजनों एवं परिवारसे युक्त मेरे पिता आपकी बात निःसन्देह मान जायँगे॥ ९—११॥

पूर्व समयमें जब मैं दक्षकी कन्या थी, उस समय भी मेरे पिताने मुझे आपको ही दिया था, किंतु उस समय आपने यथोक्त विधिसे मुझसे विवाह नहीं किया था। उस समय मेरे पिता दक्षने विधिपूर्वक ग्रहोंका पूजन नहीं किया था। उन ग्रहोंके कारण ही विवाहमें विघ्न हुआ॥ १२-१३॥

अतः हे प्रभो! हे महादेव! देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये आप यथोक्त रीतिसे मेरे साथ विवाह कीजिये॥ १४॥

विवाहकी जो विधि है, उसे अवश्य करना चाहिये, जिससे हिमवान् जान लें कि कि मेरी पुत्रीने उत्तम तपस्या की है॥ १५॥

ब्रह्माजी बोले—यह वचन सुनकर सदाशिव अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे हँसते हुए प्रेमपूर्वक पार्वतीसे यह वचन कहने लगे—॥ १६॥

शिवजी बोले—हे देवि! हे महेशानि! मेरी उत्तम बात सुनो, जिससे विवाहमें किसी प्रकारकी बाधा न हो,

वैसा उचित मंगल कार्य करो। हे भामिनि! इस जगत्में ब्रह्मा आदिसे लेकर जितने स्थावर तथा जंगम पदार्थ दिखायी पड़ते हैं, उन्हें अनित्य तथा नश्वर समझो॥ १७-१८॥

यह एक निर्गुण ब्रह्म ही सगुण रूप धारणकर अनेक रूपमें परिवर्तित हो गया है, यही स्वयं अपनी सत्तासे प्रकाशित होते हुए भी पर प्रकाशसे युक्त हो गया है। हे देवि! मैं सदा स्वतन्त्र हूँ, पर तुमने मुझे परतन्त्र बना दिया है; क्योंकि सब कुछ करनेवाली महामाया प्रकृति तुम्हीं हो॥ १९-२०॥

यह सम्पूर्ण जगत् मायाके द्वारा रचित है और सर्वात्मा परमात्माने अपनी श्रेष्ठ बुद्धिके द्वारा इसे धारण कर रखा है। सभी पवित्र आत्माएँ, जो परमात्माके स्वरूपको प्राप्त कर चुकी हैं और सदा मेरे साथ अभेदभावसे रहती हैं, उनसे तथा अपने गुणोंसे यह संसार घिरा हुआ है॥ २१॥

हे देवि! इस जगत्में तुम्हें छोड़कर न तो कोई ग्रह है, न तो कोई ऋतु है। हे वरवर्णिनि! तुम शिवके लिये ग्रहोंकी बात क्यों करती हो?॥ २२॥

हम दोनों भक्तोंके लिये भक्तवत्सलतावश गुण-कार्यके भेदसे प्रकट हुए हैं। रज, सत्त्व तथा तमोमयी तुम सूक्ष्म प्रकृति हो, निरन्तर जगत्के कार्यमें दक्ष हो और सगुण तथा निर्गुण रूपवाली हो॥ २३-२४॥

हे सुमध्यमे! सभी प्राणियोंकी आत्मा मैं ही हूँ। मैं सर्वथा निर्विकार तथा निरीह होकर भी भक्तोंके लिये ही शरीर धारण करता हूँ। किंतु हे शैलपुत्रि! मैं तुम्हारे पिता हिमालयके पास नहीं जाऊँगा और न तो भिक्षुकका रूप धारणकर उनसे तुमको माँगूँगा॥ २५-२६॥

हे गिरिजे! महान् गुणोंसे वरिष्ठ कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो, वह 'दीजिये'—इस शब्दका उच्चारण करते ही लघुताको प्राप्त हो जाता है। हे कल्याणि! इस बातको जानते हुए भी तुम मुझसे इस प्रकारकी बात क्यों करती हो? हे भद्रे! यह कार्य तो तुम्हारे आज्ञानुसार ही मुझे करना है, अतः तुम जैसा चाहती हो, वैसा करो॥ २७-२८॥

ब्रह्माजी बोले—उनके द्वारा यह कहे जानेपर कमलके समान नेत्रोंवाली साध्वी महादेवी भक्तिपूर्वक शंकरजीको बार-बार प्रणामकर उनसे पुनः कहने लगीं—॥ २९॥

पार्वती बोलीं—[हे महेश्वर!] आप आत्मा हैं और मैं प्रकृति हूँ, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हम दोनों स्वतन्त्र एवं गुणरहित होकर भी भक्तके वशमें होकर सगुण रूप धारण करते रहते हैं॥ ३०॥

हे शम्भो! हे प्रभो! आपको मेरी बात प्रयत्नपूर्वक मान लेनी चाहिये। अतः हे शंकर! आप हिमालयसे याचना कीजिये, मुझे सौभाग्य प्रदान कीजिये॥ ३१॥

हे महेश्वर! आप मुझपर दया करें, मैं आपकी नित्य भक्त हूँ। हे नाथ! मैं सदा जन्म-जन्मान्तरकी आपकी पत्नी हूँ। आप ब्रह्म, परमात्मा, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, विकाररहित, इच्छारहित, स्वतन्त्र तथा परमेश्वर हैं, तथापि भक्तोंके उद्धारके लिये आप सगुण रूप धारण करते हैं। आप आत्मपरायण होकर भी विहार करनेवाले तथा नाना प्रकारकी लीलामें निपुण हैं। हे महादेव! हे महेश्वर! मैं आपको सर्वथा जानती हूँ। हे सर्वज्ञ! बहुत कहनेसे क्या प्रयोजन, आप मुझपर दया कीजिये॥ ३२—३५॥

हे नाथ! आप अद्भुत लीलाकर संसारमें अपने यशका विस्तार कीजिये, जिसका गान करके आपके भक्त इस संसाररूपी समुद्रसे अनायास ही पार हो जायँ॥ ३६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर गिरिजा शंकरजीको बारंबार हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम करके मौन हो गयीं॥ ३७॥

पार्वतीने जब इस प्रकार कहा, तब लोकविडम्बनाके निमित्त शंकरजीने हँसते हुए प्रसन्न होकर ऐसा ही होगा—यह कहकर वे वैसा करनेके लिये उद्यत हो गये॥ ३८॥

उसके बाद वे शम्भु प्रसन्न हो अन्तर्धान हो गये और कालीके विरहसे आकृष्टचित्तवाले वे कैलासको चले गये॥ ३९॥

वहाँ जाकर उन महेश्वरने परमानन्दमें निमग्न हो यह सारा वृत्तान्त नन्दीश्वरादि गणोंको बताया॥ ४०॥

इस वृत्तान्तको सुनकर वे सम्पूर्ण भैरवादि गण भी बहुत सुखी हुए और महान् उत्सव करने लगे॥ ४१॥

हे नारद! उस समय वहाँ महामंगल होने लगा, सबका दुःख दूर हो गया और रुद्रको भी परम प्रसन्नता हुई॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवा-शिवसंवादवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

पार्वतीके पिताके घरमें आनेपर महामहोत्सवका होना, महादेवजीका नटरूप धारणकर वहाँ उपस्थित होना तथा अनेक लीलाएँ दिखाना, शिवद्वारा पार्वतीकी याचना, किंतु माता-पिताके द्वारा मना करनेपर अन्तर्धान हो जाना

नारदजी बोले—हे विधे! हे तात! हे महाभाग! परमार्थके ज्ञाता आप धन्य हैं, आपकी कृपासे मैंने यह अद्भुत कथा सुनी। जब शिवजी कैलास चले गये, तब सर्वमंगला पार्वतीने क्या किया और वे पुनः कहाँ गयीं? हे महामते! मुझसे कहिये॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हरके अपने स्थान चले जानेके बाद जो कुछ हुआ, उसे प्रेमपूर्वक सुनो, मैं शिवजीका स्मरणकर उसे कह रहा हूँ॥ ३॥

पार्वती अपना रूप सार्थककर 'महादेव' शब्दका उच्चारण करती हुई पिताके घर अपनी सखियोंके साथ गयीं। पार्वतीके आगमनका समाचार सुनते ही मेना तथा हिमालय दिव्य विमानपर चढ़कर हर्षसे विह्वल हो उनकी अगवानीके लिये चले॥ ४-५॥

उस समय पुरोहित, पुरवासी, अनेक सखियाँ तथा अन्य दूसरे सब सम्बन्धी आये। मैनाक आदि सभी भाई महाप्रसन्न हो 'जय' शब्दका उच्चारण करने लगे॥ ६-७॥

चन्दन, अगरु, कस्तूरी, फल तथा वृक्षकी शाखाओंसे युक्त राजमार्गको अपूर्व सजावटसे सम्पन्नकर स्थान-स्थानपर मंगलघट स्थापित कराया गया॥ ८॥

सारा राजमार्ग पुरोहित, ब्राह्मण, ब्रह्मवेत्ता, मुनियों, नर्तकियों एवं बड़े-बड़े गजेन्द्रोंसे खचाखच भर गया॥ ९॥

जगह-जगहपर केलेके खम्भे लगाये गये और चारों ओर पति-पुत्रवती स्त्रियाँ हाथमें दीपक लिये हुए खड़ी हो गयीं। ब्राह्मणोंका समूह मंगलपाठपूर्वक वेदोंका उद्घोष कर रहा था। अनेक प्रकारके वाद्य तथा शंखकी ध्वनि हो रही थी। इसी बीच दुर्गा देवी अपने नगरके समीप आयीं और प्रवेश करते ही उन्होंने सर्वप्रथम अपने माता-पिताका पुनः दर्शन किया। उन कालीको देखकर माता-पिता हर्षसे विह्वल हो प्रसन्नतासे दौड़ पड़े। पुनः पार्वतीने भी उनको देखकर सखियोंसहित उन्हें प्रणाम किया॥ १०—१३॥

माता-पिताने आशीर्वाद देकर कालीको अपनी गोदमें ले लिया और 'हे वत्से!'— इस प्रकार उच्चारणकर स्नेहसे विह्वल हो रोने लगे॥ १४॥

तदनन्तर इनके अपने सगे-सम्बन्धियोंकी स्त्रियोंने तथा अन्य भाई आदिकी पत्नियोंने भी प्रीतिपूर्वक पार्वतीका दृढ़ आलिंगन किया और उन्होंने कहा—तुमने कुलको तारनेका कार्य भलीभाँति सम्पन्न किया। तुम्हारे इस सदाचरणसे हम सभी पवित्र हो गयीं॥ १५-१६॥

इस प्रकार गिरिजाकी प्रशंसाकर सभी लोगोंने उन्हें प्रणाम किया और चन्दन तथा उत्तम पुष्पोंके द्वारा प्रसन्नतासे उनका पूजन करने लगे॥ १७॥

उसी समय विमानोंमें बैठे हुए देवगण भी आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे और पार्वतीको नमस्कारकर स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे। उसके बाद ब्राह्मण आदि प्रसन्नतापूर्वक अनेक प्रकारकी शोभासे सुसज्जित रथमें पार्वतीको बैठाकर नगरमें ले गये और ब्राह्मण, पुरोहित, स्त्रियों तथा सखियोंने बड़े प्रेमके साथ आदरपूर्वक उनको घरमें प्रवेश कराया॥ १८—२०॥

स्त्रियाँ मंगलाचार करने लगीं और ब्राह्मण आशीर्वाद देने लगे। हे मुनीश्वर! उस समय माता मेनका तथा पिता हिमवान्‌को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने गृहस्थाश्रमको सफल माना और कहा कि कुपुत्रकी अपेक्षा पुत्री ही अच्छी होती है। तदनन्तर वे हिमालय, आप नारदको भी साधुवाद देते हुए प्रशंसा करने लगे॥ २१-२२॥

पर्वतराज हिमालयने ब्राह्मणों एवं बन्दीजनोंको बहुत-सा धन दिया और ब्राह्मणोंद्वारा मंगलपाठ कराया, बहुत बड़ा उत्सव किया॥ २३॥

हे मुने! इस प्रकार प्रसन्न हुए माता-पिता, भाई तथा सभी सम्बन्धीगण पार्वतीके साथ आँगनमें बैठे॥ २४॥

हे तात! तत्पश्चात् हिमालय परम प्रसन्न हो सभी सम्बन्धियोंका प्रेमपूर्वक सम्मानकर गंगास्नानको गये॥ २५॥

उसी समय लीला करनेमें तत्पर भक्तवत्सल भगवान् शंकर सुन्दर नाचनेवाले नटका रूप धारणकर मेनकाके समीप पहुँचे। वे बाएँ हाथमें शृंगी, दाहिने हाथमें डमरू तथा पीठपर गुदड़ी धारण करके रक्तवस्त्र पहने हुए थे। नृत्य-गानमें प्रवीण वे शिवजी मेनाके आँगनमें बड़ी प्रसन्नताके साथ अनेक प्रकारका मनोहर नृत्य एवं गान
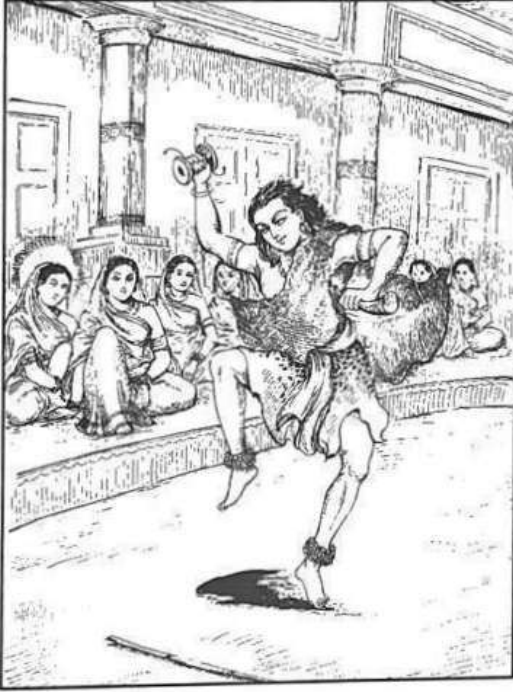
करने लगे॥ २६—२८॥

वे सुन्दर ध्वनिसे शृंगी तथा डमरू बजाने लगे और नाना प्रकारकी मनोहर लीला करने लगे॥ २९॥

उस लीलाको देखनेके लिये सभी नगर-निवासी स्त्री-पुरुष, बालक तथा वृद्ध सहसा वहाँ आ गये॥ ३०॥

हे मुने! उस मनोहर नृत्यको देखकर एवं गीतको सुनकर सभी लोग तथा मेना भी अत्यन्त मोहित हो गयीं। त्रिशूल आदि चिह्नसे युक्त एवं अत्यन्त मनोहर रूप धारण करनेवाले उस नटको देखकर पार्वती भी उन्हें हृदयसे शंकर जानकर मूर्च्छित हो गयीं॥ ३१-३२॥

विभूतिसे विभूषित होनेके कारण अत्यन्त मनोहर, अस्थिमालासे समन्वित, त्रिलोचन, देदीप्यमान मुखमण्डल-वाले, नागका यज्ञोपवीत धारण किये हुए, गौरवर्ण, दीनबन्धु, दयासागर, सर्वथा मनोहर और 'वर माँगो' इस प्रकार कहते हुए उन हृदयस्थ महेश्वरको देखकर पार्वतीने उन्हें प्रणाम किया और मनमें वर माँगा कि आप ही हमारे पति हों॥ ३३—३५॥

इस प्रकार हृदयसे पार्वतीको प्रीतिपूर्वक वर देकर शिवजी अन्तर्धान होकर पुनः भिक्षुकका रूप धारणकर नृत्य करने लगे। तब उस नृत्यसे प्रसन्न होकर मेना सोनेके पात्रमें बहुत-सारे रत्न रखकर बड़े प्रेमसे उस भिक्षुकको देनेके लिये गयीं, किंतु भिक्षुकने उन्हें स्वीकार नहीं किया और भिक्षामें शिवाको माँगा तथा पुनः नृत्य-गान करने लगे॥ ३६—३८॥

मेना भिक्षुकके वचनको सुनकर विस्मित हो क्रोधसे भर गयीं। वे भिक्षुककी भर्त्सना करने लगीं और उन्होंने उसे बाहर निकालनेकी इच्छा की। इसी समय हिमालय भी गंगाजीसे आ गये और उन्होंने नरकी आकृतिवाले भिक्षुकको आँगनमें स्थित देखा॥ ३९-४०॥

मेनाद्वारा सभी बातोंको जानकर हिमालयको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने भिक्षुकको घरसे बाहर निकालनेके लिये अपने सेवकोंको आज्ञा दी॥ ४१॥

किंतु हे मुनिसत्तम! प्रलयाग्निके समान जलते हुए तेजसे अत्यन्त दुःसह उस भिक्षुकको बाहर निकालनेमें कोई भी समर्थ नहीं हुआ॥ ४२॥

हे तात! उस समय अनेक लीलाओंमें प्रवीण उस भिक्षुकने पर्वतराज हिमालयको अपना अनन्त प्रभाव दिखाया। हिमालयने देखा कि वह भिक्षुक तत्क्षण किरीट, कुण्डल, पीताम्बर तथा चतुर्भुज रूप धारणकर विष्णुके स्वरूपमें हो गया है॥ ४३-४४॥

विष्णुपूजाके लिये उन्होंने जो-जो पुष्पादि अर्पण किये थे, वह सभी पूजोपहारकी सामग्री विष्णुरूपधारी इन भिक्षुकके सिर एवं गलेमें पड़ी हुई उन्होंने देखी॥ ४५॥

तत्पश्चात् गिरिराजने देखा कि उस भिक्षुकने रक्तवर्ण होकर वेदोंके सूक्तों उच्चारण करते हुए, चतुर्भुज, जगत्स्रष्टा ब्रह्माका रूप धारण कर लिया है॥ ४६॥

पुनः गिरीश्वरने एक क्षण बाद देखा कि वह जगच्चक्षु सूर्यके रूपमें परिवर्तित हो गया। इस प्रकार उन्होंने क्षण-क्षणमें रूप बदलकर कौतुक करते हुए उस भिक्षुकको देखा। हे तात! तत्पश्चात् हिमालयने देखा कि वह भिक्षुक अद्भुत रूप धारण किये हुए रुद्र हो गया है, जो पार्वतीसहित परम मनोहर अपने तेजसे प्रकाशित हो रहा है॥ ४७-४८॥

तदनन्तर उन्होंने निराकार, निरंजन, निरुपाधि, निरीह,

परम अद्भुत, तेजस्वरूपमें परिवर्तित होते हुए उस भिक्षुकको देखा। इस प्रकार जब हिमालयने उस भिक्षुकके अनेक विस्मयकारक रूप देखे, तब वे आनन्दयुक्त होकर आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४९-५०॥

उसके बाद पुनः भिक्षुकरूपधारी उन सृष्टिकर्ता शिवजीने हिमालयसे दुर्गाकी याचना की और कुछ नहीं माँगा, किंतु शिवमायासे मोहित होनेके कारण हिमालयने उसे स्वीकार नहीं किया, भिक्षुकने भी और कुछ ग्रहण नहीं किया और वहीं अन्तर्धान हो गया॥ ५१-५२॥

तब मेना और शैलराजको ज्ञान हुआ कि प्रभु शंकरजी हम दोनोंको वंचितकर अपने स्थानको चले गये॥ ५३॥

इस बातका विचार करके उन दोनोंको दिव्य, सर्वानन्दप्रदायिनी तथा परम मोक्ष देनेवाली परा भक्ति शिवजीमें उत्पन्न हो गयी॥ ५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पार्वतीप्रत्यागमनमहोत्सववर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

देवताओंके कहनेपर शिवका ब्राह्मण-वेषमें हिमालयके यहाँ जाना और शिवकी निन्दा करना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! इस प्रकार मेना और शैलराजकी शिवमें अनन्य भक्ति देखकर इन्द्र आदि सभी देवताओंने विचार किया॥ १॥

देवता बोले—यदि हिमालय शिवजीमें अनन्य भक्तिपूर्वक शंकरजीको अपनी कन्या देंगे तो भारतमें अवश्य ही निर्वाण पद प्राप्त कर लेंगे॥ २॥

यदि इन अनन्त रत्नोंसे पूर्ण वे हिमालय वसुन्धराको त्यागकर चले जायँगे, तो निश्चय ही इस पृथिवीका रत्नगर्भा—यह नाम व्यर्थ हो जायगा। इस स्थावररूपको छोड़कर दिव्यरूप धारणकर और अपनी कन्या शूलधारी शंकरको देकर वे अवश्य ही शिवलोक चले जायँगे॥ ३-४॥

उन्हें शिवलोकमें सारूप्य मुक्ति प्राप्त होगी, इसमें संशय नहीं। वहाँ अनेक प्रकारके श्रेष्ठ भोगोंको भोगकर वे मुक्त हो जायँगे॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—यह कहकर वे सभी देवता इस बातका विचारकर विस्मित हो परस्पर मन्त्रणा करके बृहस्पतिको हिमालयके पास भेजनेकी इच्छा करने लगे॥ ६॥

हे नारद! तब इन्द्रादि सभी देवता स्वार्थसाधनकी इच्छासे विनम्र होकर प्रीतिपूर्वक बृहस्पतिके घर गये॥ ७॥

वे देवता वहाँ जाकर बृहस्पतिको प्रणाम करके आदरपूर्वक उन गुरुसे सारा वृत्तान्त कहने लगे—॥ ८॥

देवता बोले—हे गुरो! आप हमलोगोंकी कार्यसिद्धिके लिये हिमालयके पास जाइये और वहाँ जाकर प्रयत्नपूर्वक शिवकी निन्दा कीजिये॥ ९॥

पार्वती शिवके अतिरिक्त किसी अन्यका वरण नहीं करेंगी और वे हिमालय बिना इच्छाके ही अपनी कन्या पार्वतीका विवाह शिवजीके साथ करेंगे और शीघ्र ही इसका फल प्राप्त कर लेंगे। हे गुरो! हमलोगोंकी इच्छा है कि हिमालय अभी पृथिवीपर निवास करें। अतः आप अनेक रत्नोंको धारण करनेवाले उन हिमालयको पृथ्वीपर स्थापित कीजिये॥ १०-११॥

ब्रह्माजी बोले—देवगणोंकी यह बात सुनकर बृहस्पतिने अपने कानोंपर हाथ रख लिया और शिवजीका नाम-स्मरण करते हुए उन्होंने इस बातको स्वीकार नहीं किया। उदारबुद्धिवाले बृहस्पति महादेवजीका स्मरणकर श्रेष्ठ देवताओंको बार-बार धिक्कारते हुए कहने लगे—॥ १२-१३॥

बृहस्पति बोले—हे देवताओ! तुमलोग स्वार्थसाधक और दूसरेके कार्यको विनष्ट करनेवाले हो। शंकरजीकी निन्दा करके मैं निश्चित रूपसे नरक चला जाऊँगा॥ १४॥

इसलिये आपलोगोंमेंसे कोई हिमालयके पास जाकर हिमालयको समझाकर अपना कार्य सिद्ध करे, जिससे वे अनिच्छापूर्वक अपनी कन्या शिवजीको देकर भारतमें निवास करें; क्योंकि भक्तिपूर्वक कन्या देकर वे निश्चित ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे॥ १५-१६॥

बादमें सप्तर्षि पर्वतराजको समझायेंगे कि यह पार्वती

शिवजीको छोड़कर दूसरे किसीका वरण नहीं करेगी॥ १७॥

अथवा हे देवताओ! आपलोग इन्द्रके साथ ब्रह्मलोकको जायँ और अपना सारा वृत्तान्त ब्रह्माजीको बतायें, वे ही आपलोगोंका कार्य सम्पन्न करेंगे॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—यह सुनकर और विचारकर वे सभी देवता मेरी सभामें आये और प्रणामकर आदरपूर्वक अपना सारा वृत्तान्त उन्होंने मुझसे निवेदन किया॥ १९॥

हे मुने! तब देवताओंकी उस शिव-निन्दाविषयक बातको सुनकर वेदवक्ता मैं दुखी होकर उन देवताओंसे कहने लगा—॥ २०॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्सो! मैं शिवजीकी दुःसह निन्दा नहीं कर सकता हूँ; क्योंकि शिवजीकी निन्दा सम्पत्तिका विनाश करनेवाली एवं विपत्तियोंका कारण है॥ २१॥

इसलिये हे देवताओ! आपलोग कैलासपर जायँ और शिवको सन्तुष्ट करें तथा उन्हींको हिमालयके घर भेजिये। वे ही स्वयं हिमालयके घर जाकर अपनी निन्दा करें; क्योंकि परनिन्दा विनाशके लिये और आत्मनिन्दा यशके लिये कही गयी है॥ २२-२३॥

ब्रह्माजी बोले—वे देवता मेरी बात सुनकर प्रेमसे मुझे प्रणामकर शीघ्र ही शैलराज कैलासपर्वतपर गये॥ २४॥

वहाँ जाकर शिवजीको देखकर सिर झुकाकर शिवजीको प्रणाम करके हाथ जोड़कर वे सभी देवता उन शिवजीकी स्तुति करने लगे—॥ २५॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हम सब आपकी शरणमें हैं, आपको प्रणाम है, हमलोगोंपर कृपा कीजिये॥ २६॥

हे स्वामिन्! आप भक्तवत्सल हैं, सदा भक्तोंका कार्य करनेवाले, दीनोंका उद्धार करनेवाले, कृपासिन्धु और भक्तोंकी आपत्ति दूर करनेवाले हैं॥ २७॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार इन्द्रादि देवगणोंने शिवजीकी स्तुति करके बड़े आदरके साथ अपना सारा वृत्तान्त उनसे निवेदन किया॥ २८॥

देवताओंकी उस बातको सुनकर शिवजीने उसे स्वीकार कर लिया और उन्होंने हँसकर देवताओंको आश्वासन देकर उन्हें विदा कर दिया॥ २९॥

तब सभी देवगण प्रसन्न हो गये और अपना कार्य सिद्ध जानकर शिवजीकी प्रशंसा करते हुए वे अपने स्थानको चले गये। तब वे भक्तवत्सल, मायेश, निर्विकार महेश्वर भगवान् शम्भु शैलराजके पास गये॥ ३०-३१॥

उस समय गिरिराज अपने बन्धुवर्गोंके साथ पार्वतीसहित प्रसन्न मनसे सभामें विराजमान थे॥ ३२॥

उसी समय दण्ड, छत्र एवं दिव्य वस्त्र धारण किये तथा उज्ज्वल तिलक लगाये हुए भगवान् सदाशिव उनकी सभामें आ गये॥ ३३॥

वे एक हाथमें स्फटिककी माला और गलेमें शालग्रामशिला धारण किये हुए थे। वे भली प्रकार ब्राह्मणका वेष धारणकर नारायणके नामका जप कर रहे थे॥ ३४॥

उन्हें देखकर हिमालय सभासदोंके साथ खड़े हो गये और उन्होंने भूतलपर दण्डके समान पड़कर भक्ति-भावसे उन अपूर्व अतिथिको साष्टांग प्रणाम किया॥ ३५॥

ब्राह्मणवेषधारी शिवजीको अपना प्राणेश्वर समझकर पार्वतीने प्रणाम किया और हृदयसे परम प्रसन्नतासे उनकी स्तुति की॥ ३६॥

ब्राह्मणवेष धारण करनेवाले उन सदाशिवने बड़े प्रेम-पूर्वक उन सबको आशीर्वाद दिया और विशेषकर पार्वतीको हृदयसे उनका मनोवांछित आशीर्वाद प्रदान किया॥ ३७॥

उन ब्राह्मणने शैलाधिराज हिमवान्‌के द्वारा बड़े आदरके साथ दिये गये मधुपर्क आदिको प्रेमसे ग्रहण किया॥ ३८॥

हे मुने! इस प्रकार प्रेमपूर्वक उन द्विजेन्द्रका

विधिवत् पूजन करनेके पश्चात् पर्वतश्रेष्ठ हिमालय उनका कुशल पूछने लगे। पर्वतराजने उनसे पूछा कि आप कौन हैं? तब विप्रेन्द्र गिरिराजसे आदरपूर्वक शीघ्र यह वचन कहने लगे— ॥ ३९-४० ॥

विप्रेन्द्र बोले—हे गिरिश्रेष्ठ! मैं बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वैष्णव ब्राह्मण हूँ और ज्योतिषवृत्तिका सहारा लेकर पृथिवीतलमें विचरण करता हूँ ॥ ४१ ॥

मैं अपने गुरुकी कृपासे मनके समान सर्वत्र चलनेवाला, सर्वत्र गमन करनेवाला, सर्वज्ञ, परोपकारी, शुद्ध मनवाला, दयासिन्धु तथा विकारका नाश करनेवाला हूँ ॥ ४२ ॥

मुझे ज्ञात हुआ है कि आप कमलके समान, दिव्य, उत्तम रूपवाली तथा सर्वलक्षणसम्पन्न अपनी यह कन्या आश्रयरहित, असंग, कुरूप, गुणहीन, श्मशानमें रहनेवाले, सर्पधारी, योगी, नग्न, मलिन शरीरवाले, सर्पका आभूषण धारण करनेवाले, अज्ञात कुल तथा नामवाले, कुशील, विहारमें रुचि न रखनेवाले, विभूतिसे लिप्त देहवाले, अत्यन्त क्रोधी, अज्ञानी, अज्ञात आयुवाले, सदा विकृत जटा धारण करनेवाले, सबको आश्रय देनेवाले, भ्रमणशील, नागोंका हार पहननेवाले, भिक्षुक, कुमार्गमें निरत तथा हठपूर्वक वैदिक मार्गका त्याग करनेवाले शिवको देना चाहते हैं ॥ ४३—४७ ॥

[हे हिमालय!] आपका यह अटल विचार अवश्य ही मंगलदायक नहीं है। नारायणकुलमें उत्पन्न तथा ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ [गिरिराज!] आप इसपर विचार कीजिये ॥ ४८ ॥

पार्वतीके दानकर्ममें वे आपके इस दानके अनुरूप पात्र नहीं हैं। बड़े लोग इस बातको सुनकर आपकी हँसी करेंगे। देखिये, उनका कोई बन्धु-बान्धव नहीं है और आप पर्वतराज हैं, उनके पास कुछ भी नहीं है और आप रत्नाकर हैं ॥ ४९-५० ॥

हे शैलाधिराज! आप पार्वतीको छोड़कर [इस विषयमें] बान्धवोंसे, मेनासे, पुत्रोंसे और सभी पण्डितोंसे प्रयत्नपूर्वक शीघ्रतासे पूछिये ॥ ५१ ॥

हे गिरिसत्तम! रोगीको सर्वदा औषधि अच्छी नहीं लगती, अपितु महादोषकारक कुपथ्य ही सदा बहुत अच्छा लगता है ॥ ५२ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर नाना प्रकारकी लीला करनेवाले विप्ररूप शिव प्रसन्नतापूर्वक भोजनकर शान्तचित्त हो शीघ्र अपने घर चले गये ॥ ५३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवमायावर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण-वेषधारी शिवद्वारा शिवस्वरूपकी निन्दा सुनकर मेनाका कोपभवनमें गमन, शिवद्वारा सप्तर्षियोंका स्मरण और उन्हें हिमालयके घर भेजना, हिमालयकी शोभाका वर्णन तथा हिमालयद्वारा सप्तर्षियोंका स्वागत

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] ब्राह्मणका यह वचन सुनकर [अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाली] मेना व्यथित मनसे हिमालयसे कहने लगीं— ॥ १ ॥

मेना बोलीं—हे शैलेन्द्र! परिणाममें सुख प्रदान करनेवाले मेरे वचनको सुनें, सभी श्रेष्ठ शैवोंसे पूछिये कि इस ब्राह्मणने क्या कह दिया? ॥ २ ॥

हे नगेश्वर! इस विष्णुभक्त ब्राह्मणने शिवजीकी निन्दा की है, उसे सुनकर मेरा मन अत्यन्त दुखी है ॥ ३ ॥

हे शैलेश्वर! मैं कुत्सित रूप एवं शीलवाले उस रुद्रको अपनी सुलक्षणा कन्या नहीं दूँगी ॥ ४ ॥

यदि आप मेरे वचनको नहीं मानेंगे, तो इसमें सन्देह नहीं कि मैं मर जाऊँगी, तुरंत घर छोड़ दूँगी अथवा विष खा लूँगी अथवा अम्बिकाके गलेमें रस्सी बाँधकर घोर वनमें चली जाऊँगी अथवा उसे महासागरमें डुबो दूँगी, किंतु उसको अपनी कन्या नहीं दूँगी ॥ ५-६ ॥

इस प्रकार कहकर शोकसे सन्तप्त वे मेना शीघ्र कोपभवनमें जाकर हार उतारकर रोती हुई भूमिपर लेट गयीं ॥ ७ ॥

हे तात! उसी समय [कालीके] विरहसे व्याकुल हुए शंकरजीने शीघ्र ही उन सप्तर्षियोंका स्मरण किया॥ ८॥

जब शिवजीने उन सभी ऋषियोंका स्मरण किया, तब वे दूसरे कल्पवृक्षके समान तत्काल वहाँ उपस्थित हो गये और साक्षात् सिद्धिके समान अरुन्धती भी वहाँ आ गयीं। सूर्यके समान तेजस्वी उन ऋषियोंको देखकर शिवजीने अपना जप छोड़ दिया॥ ९-१०॥

हे मुने! वे श्रेष्ठ तपस्वी ऋषि शिवजीके आगे खड़े होकर उन्हें प्रणामकर उनकी स्तुति करके अपनेको कृतार्थ समझने लगे॥ ११॥

तत्पश्चात् विस्मयमें पड़कर वे पुनः लोकनमस्कृत शिवको प्रणाम करके हाथ जोड़कर सामने खड़े होकर उनसे कहने लगे— ॥ १२॥

ऋषिगण बोले—हे सर्वोत्कृष्ट! हे देवताओंके सम्राट्! हे महाराज! हमलोग अपने सर्वोत्तम भाग्यकी सराहना किस प्रकार करें॥ १३॥

हमलोगोंने जो पूर्व समयमें [कायिक, वाचिक तथा मानसिक] तीनों प्रकारकी तपस्या की है, उत्तम वेदाध्ययन किया है, अग्निहोत्र किया है तथा नाना प्रकारके तीर्थ किये हैं और ज्ञानपूर्वक वाणी, मन तथा शरीरसे जो कुछ भी पुण्य किया है, वह सब आज आपके स्मरणरूप अनुग्रहके प्रभावसे सफल हो गया॥ १४-१५॥

जो मनुष्य आपका नित्य स्मरण करता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, तब उसके पुण्यका क्या वर्णन किया जाय, जिसका स्मरण आप करते हैं॥ १६॥

हे सदाशिव! आपके द्वारा स्मरण किये जानेसे हमलोग सर्वोत्कृष्ट हो गये हैं,आप तो किसीके मनोरथमार्गमें किसी प्रकार आते ही नहीं हैं॥ १७॥

जिस प्रकार बौनेको फल प्राप्त हो जाता है, जन्मान्धको नेत्रकी प्राप्ति होती है, गूँगेको वाणी मिल जाती है, कंगालको निधिदर्शन हो जाता है, पंगुको ऊँचे पहाड़पर चढ़नेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है तथा वन्ध्याको प्रसव सम्भव हो जाता है, उसी प्रकार हे प्रभो! हमें आपका यह दुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गया॥ १८-१९॥

आजसे अब हम मुनीश्वर आपके दर्शनसे लोकोंमें मान्य एवं पूज्य हो गये तथा ऊँची पदवीको प्राप्त हो गये॥ २०॥

हे देवेश! बहुत कहनेसे क्या? आप सर्वदेवेश्वरके दर्शनसे हम सर्वथा मान्यताको प्राप्त हो गये॥ २१॥

आप-जैसे पूर्ण परमात्माको किसीसे प्रयोजन ही क्या है? किंतु यदि हम सेवकोंपर कृपा करना ही है, तो हम सबके योग्य कार्यके लिये आज्ञा प्रदान कीजिये॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—तब उनकी इस बातको सुनकर लोकाचारका आश्रय लेकर महेश्वर शम्भु मनोहर वचन कहने लगे— ॥ २३॥

शिवजी बोले—हे महर्षियो! ऋषिजन हर तरहसे पूज्य हैं, आपलोग तो विशेष रूपसे पूज्य हैं। हे विप्रो! कुछ कारणवश मैंने आपलोगोंका स्मरण किया है॥ २४॥

आप सब जानते हैं कि मेरी स्थिति सदैव ही परोपकार करनेवाली है और विशेषकर लोकोपकारके लिये तो मुझे यह सब करना ही पड़ता है॥ २५॥

इस समय दुरात्मा तारकासुरसे देवताओंके समक्ष दुःख उत्पन्न हो गया है, क्या करूँ, ब्रह्माजीने उसे बड़ा विकट वरदान दे रखा है॥ २६॥

हे महर्षियो! मेरी जो आठ प्रकारकी मूर्तियाँ (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र तथा यजमान) कही गयी हैं, वे सब भी परोपकारके निमित्त ही हैं, स्वार्थके लिये नहीं हैं, यह बात तो स्पष्ट है॥ २७॥

[इस परोपकारके लिये ही] मैं पार्वतीके साथ विवाह करना चाहता हूँ; उसने भी महर्षियोंके कहनेसे दुष्कर कठोर तप किया है॥ २८॥

उसके इच्छानुसार उसका हितकारक फल मुझे अवश्य देना चाहिये; क्योंकि भक्तोंको आनन्द देनेवाली मेरी यह स्पष्ट प्रतिज्ञा है॥ २९॥

मैं पार्वतीके वचनानुसार भिक्षुकका रूप धारणकर हिमालयके घर गया था और मुझ लीलाप्रवीणने कालीको पवित्र किया था॥ ३०॥

वे स्त्री-पुरुष मुझे परब्रह्म जानकर वेदरीतिसे सद्भक्तिसे अपनी कन्या मुझे देनेके लिये तत्पर हो गये॥ ३१॥

उसके बाद देवताओंकी प्रेरणासे वैष्णव भिक्षुका रूप धारणकर मैं उन दोनोंसे अपनी निन्दा करने लगा। उससे मेरे प्रति उनकी भक्ति नष्ट हो गयी॥ ३२॥

उसे सुनकर वे बड़े दुखी हो गये और मेरी भक्तिसे विमुख हो गये। हे मुनिगणो! अब वे मुझे अपनी कन्या नहीं देना चाहते हैं॥ ३३॥

इसलिये! आपलोग निश्चित रूपसे हिमालयके घर जायँ और वहाँ जाकर गिरिश्रेष्ठ हिमालय और उनकी पत्नीको समझायें॥ ३४॥

आपलोग प्रयत्नपूर्वक वेदसम्मत वचन उनसे कहें और सर्वथा वही करें, जिससे यह उत्तम कार्य सिद्ध हो जाय॥ ३५॥

हे मुनिसत्तमो! मैं उनकी पुत्रीके साथ विवाह करना चाहता हूँ। मैंने [देवताओं एवं विष्णुके कहनेसे] विवाह करना स्वीकार कर लिया है और [पार्वतीको] वैसा वर भी दे दिया है॥ ३६॥

अब मैं अधिक क्या कहूँ, आपलोग हिमालय तथा मेनाको समझाइये, जिससे देवताओंका हित हो॥ ३७॥

आपलोगोंने जिस प्रकारकी विधिकी कल्पना की है, उससे भी अधिक होनी चाहिये, यह आपलोगोंका ही कार्य है और इस कार्यके भागी आपलोग ही हैं॥ ३८॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकारके वचनको सुनकर स्वच्छ अन्तःकरणवाले वे सभी महर्षि प्रभुसे अनुगृहीत हो आनन्दको प्राप्त हुए॥ ३९॥

[वे ऋषि परस्पर कहने लगे] हमलोग सर्वथा धन्य तथा कृतकृत्य हो गये और विशेष रूपसे सबके वन्दनीय एवं पूजनीय हो गये॥ ४०॥

जो ब्रह्मा तथा विष्णुके भी वन्दनीय हैं और सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाले हैं, वे हमलोगोंको अपना दूत बनाकर लोकको सुख प्रदान करनेवाले कार्यके लिये भेज रहे हैं॥ ४१॥

ये शिवजी लोकोंके स्वामी एवं पिता हैं और वे [पार्वती] जगत्की माता कही गयी हैं। [इन दोनोंका] यह उचित सम्बन्ध सर्वदा चन्द्रमाके समान बढ़ता रहे॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर वे दिव्य ऋषि शिवजीको प्रणामकर आकाशमार्गसे वहाँ गये, जहाँ हिमालयका नगर है। उस दिव्य पुरीको देखते ही ऋषिगण आश्चर्यसे चकित हो गये और अपने पुण्यका वर्णन करते हुए परस्पर कहने लगे—॥ ४३-४४॥

ऋषि बोले—हिमालयके इस नगरको देखकर हम सभी पुण्यवान् एवं धन्य हो गये; क्योंकि स्वयं शिवजीने इस प्रकारके कार्यमें हमलोगोंको नियुक्त किया है॥ ४५॥

यह [हिमालयकी] पुरी तो अलका, स्वर्ग, भोगवती तथा विशेषकर अमरावतीसे भी उत्तम दिखायी पड़ती है॥ ४६॥

इस पुरीके अत्यन्त मनोहर एवं विचित्र घर और आँगन स्फटिक तथा नाना प्रकारकी उत्तम मणियोंसे बनाये गये हैं। इस पुरीके प्रत्येक घरमें सूर्यकान्त एवं चन्द्रकान्त मणियाँ विद्यमान हैं तथा अद्भुत स्वर्गीय वृक्ष लगे हुए हैं॥ ४७-४८॥

तोरणोंकी शोभा घर-घरमें दिखायी दे रही है। इस पुरके विमानोंमें तोते तथा हंस बोल रहे हैं॥ ४९॥

विचित्र प्रकारके वितान चित्र-विचित्र कपड़ोंके बने हैं, जिनमें बन्दनवार बँधे हैं। वहाँ अनेक जलाशय तथा विविध बावलियाँ हैं॥ ५०॥

वहाँ विचित्र उद्यान हैं, जिनका लोग प्रसन्नचित्त होकर सेवन करते हैं। यहाँके सभी पुरुष देवताके सदृश तथा स्त्रियाँ अप्सराओंके सदृश हैं॥ ५१॥

हिमालयके पुरको छोड़कर स्वर्गकी कामनासे कर्मभूमिमें याज्ञिक एवं पौराणिक लोग व्यर्थ ही अनुष्ठान करते रहते हैं॥ ५२॥

हे विप्रो! मनुष्योंको स्वर्गकी तभीतक कामना रहती है, जबतक उन्होंने इस पुरीको नहीं देखा, जब इसे देख लिया, तो स्वर्गसे क्या प्रयोजन?॥ ५३॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार उस पुरीका वर्णन करते हुए वे सभी ऋषि सब प्रकारकी समृद्धिसे युक्त हिमालयके घर पहुँचे॥ ५४॥

आकाशमार्गसे आते हुए सूर्यके समान अत्यन्त

तेजस्वी उन सात ऋषियोंको दूरसे ही देखकर हिमवान् विस्मित हो [मनमें] कहने लगे॥ ५५॥

हिमवान् बोले—ये सूर्यके समान तेजस्वी सप्तर्षिगण मेरे पास आ रहे हैं, मुझे इस समय प्रयत्नपूर्वक इन मुनियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ५६॥

हम गृहस्थलोग धन्य हैं, जिनके घर सभीको सुख प्रदान करनेवाले इस प्रकारके महात्मा [स्वयं] आते हैं॥ ५७॥

ब्रह्माजी बोले—इसी बीच आकाशसे उतरकर पृथिवीपर स्थित हुए उन सबको अपने सम्मुख देखकर हिमालय सम्मानपूर्वक उनके पास गये॥ ५८॥

उन्होंने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर उन सप्तर्षियोंको प्रणाम करके पुनः बड़े सम्मानके साथ उनकी पूजा की॥ ५९॥

उस पूजाको स्वीकार करके हित करनेवाले प्रसन्नमुख सप्तर्षियोंने गिरिराज हिमालयसे कुशल-मंगल पूछा॥ ६०॥

मेरा गृहस्थाश्रम धन्य हो गया—हिमालयने ऐसा कहकर उन्हें आगे करके आसन लाकर भक्तिपूर्वक समर्पित किया। आसनोंपर उनके बैठ जानेपर पुनः उनसे आज्ञा लेकर वे हिमालय स्वयं भी बैठ गये और इसके बाद तेजस्वी ऋषियोंसे कहने लगे—॥ ६१-६२॥

हिमालय बोले—मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया, मैं लोकोंमें दर्शनीय तथा अनेक तीर्थोंके समान हो गया हूँ; क्योंकि विष्णुस्वरूप आपलोग मेरे घर पधारे हैं। कृपणोंके घरोंमें [हर प्रकारसे] परिपूर्ण आपलोगोंको कौन-सा कार्य हो सकता है? तो भी मुझ सेवकके योग्य जो कुछ कार्य हो, उसे दयापूर्वक कहिये, जिससे मेरा जन्म सफल हो जाय॥ ६३—६५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें सप्तर्षियोंका आगमनवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

वसिष्ठपत्नी अरुन्धतीद्वारा मेनाको समझाना तथा सप्तर्षियोंद्वारा हिमालयको शिवमाहात्म्य बताना

ऋषि बोले—[हे हिमालय!] शिवजी जगत्के पिता कहे गये हैं और पार्वती जगत्की माता मानी गयी हैं। इसलिये आप अपनी कन्या महात्मा शंकरको प्रदान कर दीजिये। हे हिमालय! ऐसा करनेसे आपका जन्म सफल हो जायगा और आप जगद्गुरुके भी गुरु हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! ऋषियोंके इस प्रकारके वचनको सुनकर उन्हें प्रणामकर हाथ जोड़कर गिरिराज यह कहने लगे—॥ ३॥

हिमालय बोले—हे महाभाग्यवान् सप्तर्षिगण! आपलोगोंने जैसा कहा है, उसे मैंने शिवजीकी इच्छासे पहले ही स्वीकार कर लिया था। [किंतु हे प्रभो!] इसी समय एक वैष्णवधर्मी ब्राह्मणने यहाँ आकर शिवजीको लक्ष्य करके प्रेमपूर्वक उनके विपरीत वचन कहा है॥ ४-५॥

तभी से शिवाकी माता ज्ञानसे भ्रष्ट हो गयी हैं और अपनी पुत्रीका विवाह उन योगी रुद्रसे नहीं करना चाहती हैं। हे विप्रो! वे अत्यन्त दुखी होकर मैले वस्त्र धारणकर बड़ा हठ करके कोपभवनमें चली गयी हैं और समझानेपर भी नहीं समझ रही हैं। मैं सत्य कह रहा हूँ कि मैं भी ज्ञानभ्रष्ट हो गया हूँ और अब मैं भिक्षुकरूपधारी महेश्वरको कन्या नहीं देना चाहता हूँ॥ ६—८॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शिवकी मायासे मोहित शैलराज इस प्रकार कहकर चुप हो गये और मुनियोंके बीच बैठ गये॥ ९॥

उसके बाद उन सभी सप्तर्षियोंने शिवमायाकी प्रशंसा करके उन मेनाके पास अरुन्धतीको भेजा॥ १०॥

पतिकी आज्ञा पाकर ज्ञानदात्री अरुन्धती शीघ्र ही वहाँ गयीं, जहाँ मेना और पार्वती थीं॥ ११॥

वहाँ जाकर अरुन्धतीने शोकसे मूर्च्छित होकर [पृथिवीपर] सोयी हुई मेनाको देखा। तब उन पतिव्रताने

सावधानीपूर्वक हितकर वचन कहा— ॥ १२ ॥

अरुन्धती बोली—हे साध्वि मेनके! उठिये, मैं अरुन्धती आपके घर आयी हूँ तथा कृपालु सप्तर्षिगण भी आये हुए हैं ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले—अरुन्धतीका स्वर सुनकर शीघ्रतासे उठकर महालक्ष्मीके समान तेजयुक्त अरुन्धतीको सिर झुकाकर प्रणाम करके मेनका कहने लगीं— ॥ १४ ॥

मेना बोलीं—अहो! आज हम पुण्यवानोंका यह कितना बड़ा पुण्य है, जो जगत्के विधाताकी पुत्रवधू एवं वसिष्ठकी पत्नी मेरे घर स्वयं आयी हैं ॥ १५ ॥

हे देवि! आप किसलिये आयी हैं, उसे मुझसे विशेष रूपसे कहिये। पुत्री पार्वतीसहित मैं आपकी दासीके समान हूँ, आप कृपा कीजिये ॥ १६ ॥

ब्रह्माजी बोले—जब मेनाने इस प्रकार कहा, तब साध्वी अरुन्धती उन्हें बहुत समझाकर प्रेमपूर्वक वहाँ गयीं, जहाँ सप्तर्षिगण विराजमान थे। इधर, वाक्यविशारद सभी महर्षिगण भी शिवके चरणयुगलका स्मरण करके आदरके साथ गिरिराजको समझाने लगे ॥ १७-१८ ॥

ऋषि बोले—हे शैलराज! आप हमलोगोंका शुभकारक वचन सुनें, आप पार्वतीका विवाह शिवके साथ कर दीजिये और संहारकर्ता शिवजीके श्वशुर बन जाइये। तारकासुरके वधके निमित्त ब्रह्माजीने इस विवाहको करनेके लिये उन अयाचक सर्वेश्वरसे प्रयत्नपूर्वक प्रार्थना की है। यद्यपि योगियोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण सदाशिव इस दारसंग्रह-कार्यके लिये उत्सुक नहीं हैं, किंतु ब्रह्माजीके द्वारा बहुत प्रार्थना करनेपर वे आपकी इस कन्याको ग्रहण करेंगे ॥ १९—२१ ॥

आपकी कन्याने भी [शिवजीको वररूपमें प्राप्त करनेहेतु] बड़ा तप किया है, इसीलिये उन्होंने उसे वर दिया है, इन्हीं दो कारणोंसे वे योगीन्द्र विवाह करेंगे ॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऋषियोंकी यह बात सुनकर हिमालय हँस करके फिर कुछ भयभीत होकर विनयपूर्वक इस प्रकार कहने लगे— ॥ २३ ॥

हिमालय बोले—मैं शिवके पास कोई राजोचित सामग्री नहीं देख रहा हूँ, न उनका कोई आश्रय और ऐश्वर्य ही दिखायी पड़ रहा है और न तो कोई उनका सगा-सम्बन्धी ही दिखायी पड़ता है। मैं अत्यन्त निर्लिप्त योगीको अपनी पुत्री नहीं देना चाहता हूँ। आपलोग तो ब्रह्मदेवके पुत्र हैं, आपलोग ही निश्चित बात बतायें ॥ २४-२५ ॥

यदि पिता काम, मोह, भय तथा लोभवश अपनी कन्या प्रतिकूल वरको प्रदान करता है, तो वह नष्ट होकर नरकमें जाता है ॥ २६ ॥

मैं स्वेच्छासे इस कन्याको शंकरको नहीं दूँगा, हे ऋषियो! अब जो उचित विधान हो, उसे आपलोग करें ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! हिमालयके इस प्रकारके वचनको सुनकर उन ऋषियोंमें वाक्यविशारद वसिष्ठजी उनसे कहने लगे— ॥ २८ ॥

वसिष्ठजी बोले—हे शैलेन्द्र! आप मेरी बात सुनिये, जो आपके लिये सर्वथा हितकर, धर्मके अनुकूल, सत्य और इस लोक तथा परलोकमें आनन्द प्रदान करनेवाली है। हे शैल! लोक एवं वेदमें तीन प्रकारके वचन होते हैं, शास्त्रका ज्ञाता अपने निर्मल ज्ञानरूपी नेत्रसे उन सबको जानता है ॥ २९-३० ॥

जो वचन सुननेमें सुन्दर लगे, पर असत्य एवं अहितकारी हो, ऐसा वचन बुद्धिमान् शत्रु बोलते हैं। ऐसा वचन किसी प्रकार हितकारी नहीं होता ॥ ३१ ॥

जो वचन आरम्भमें अप्रिय लगनेवाला हो, किंतु परिणाममें सुखकारी हो, ऐसा वचन दयालु तथा धर्मशील बन्धु ही कहता है। सुननेमें अमृतके समान, सभी कालमें सुखदायक, सत्यका सारस्वरूप तथा हितकारक वचन श्रेष्ठ होता है ॥ ३२-३३ ॥

हे शैल! इस प्रकार तीन तरहके वचन नीतिशास्त्रमें कहे गये हैं। अब आप ही बताइये कि इन तीन प्रकारके वचनोंमें हमलोग किस प्रकारका वचन बोलें, जो आपके अनुकूल हो। देवताओंके स्वामी शंकरजी ब्रह्मज्ञानसे सम्पन्न हैं। रजोगुणी सम्पत्तिसे विहीन हैं, उनका मन तत्त्वज्ञानके समुद्रमें सदा निमग्न रहता है ॥ ३४-३५ ॥

ऐसे ज्ञान तथा आनन्दके ईश्वर सदाशिवको रजोगुणी वस्तुओंकी इच्छा किस प्रकार हो सकती है, गृहस्थ

अपनी कन्या राजसम्पत्तिशालीको देता है ॥ ३६ ॥

पिता यदि अपनी कन्या किसी दीन-दुखीको देता है, तो वह कन्याघाती होता है अर्थात् उसे कन्याके वधका पाप लगता है। हे हिमालय! कौन कहता है कि शंकर दुखी हैं, कुबेर जिनके दास हैं ॥ ३७ ॥

वे शिवजी तो अपनी भंगिमाकी लीलामात्रसे संसारका सृजन और संहार करनेमें समर्थ हैं। वे निर्गुण, परमात्मा, परमेश्वर और प्रकृतिसे [सर्वथा] परे हैं ॥ ३८ ॥

सृष्टिकार्य करनेके लिये जिनकी तीन मूर्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वररूपसे जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करती हैं ॥ ३९ ॥

ब्रह्मा ब्रह्मलोकमें रहते हैं, विष्णु क्षीरसागरमें वास करते हैं और हर कैलासमें निवास करते हैं, ये सभी शिवजीकी विभूतियाँ हैं ॥ ४० ॥

यह सारी प्रकृति शिवजीसे ही उत्पन्न हुई है, जो तीन प्रकारकी होकर इस जगत्को धारण करती है। वह प्रकृति इस जगत्में अपनी लीलासे अंशावतारों तथा कलावतारोंके रूपोंमें अनेक प्रकारकी प्रतीत होती है ॥ ४१ ॥

उनकी वाणीरूप प्रकृति मुखसे उत्पन्न हुई हैं, जो वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। उनकी लक्ष्मीरूप प्रकृति वक्ष:स्थलसे आविर्भूत हुई हैं, जो सम्पूर्ण सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री हैं ॥ ४२ ॥

उनकी शिवा नामकी प्रकृति देवताओंके तेजसे प्रादुर्भूत हुई हैं, जो सभी दानवोंका वधकर देवताओंके लिये महालक्ष्मी प्रदान करती हैं ॥ ४३ ॥

ये ही शिवा इसके पूर्वकल्पमें दक्षकी पत्नीके उदरसे जन्म लेकर सती नामसे विख्यात हुईं। दक्षने शंकरजीको ही दिया था, किंतु उस जन्ममें पिताके द्वारा शिवजीकी निन्दा सुनकर उन्होंने अपने शरीरको योगके द्वारा त्याग दिया। वही शिवा अब इस समय आपके द्वारा मेनाके गर्भसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ४४-४५ ॥

हे शैलराज! इस प्रकार वे शिवा प्रत्येक जन्ममें शिवजीकी पत्नी रही हैं, वे प्रतिकल्पमें बुद्धिस्वरूपा तथा ज्ञानियोंकी माता हैं ॥ ४६ ॥

वही सिद्धा, सिद्धिदात्री एवं सिद्धिरूपिणीरूपसे सदा प्रादुर्भूत होती हैं। शिवजी सतीकी अस्थि तथा उनकी चिताकी भस्म उनके प्रेमके कारण स्वयं धारण करते हैं ॥ ४७ ॥

इसलिये आप अपनी इच्छासे इस कल्याणी कन्याको शंकरके निमित्त प्रदान कीजिये, अन्यथा आप नहीं देंगे तो भी वह स्वयं अपने पतिके पास चली जायगी ॥ ४८ ॥

वे देवेश प्रतिज्ञा करके और यह देखकर कि आपकी कन्याने असंख्य क्लेश प्राप्त किये, तब ब्राह्मणका रूप धारणकर उसके तप:स्थानपर गये थे और उसे आश्वस्त करके वर देकर अपने स्थानपर लौट आये। हे पर्वत! उसके प्रार्थना करनेपर ही वे शिवजी आपसे शिवाको माँग रहे हैं ॥ ४९-५० ॥

उस समय आप दोनोंने शिवभक्तिमें निरत रहनेके कारण उन्हें पार्वतीको देना स्वीकार भी कर लिया, किंतु हे गिरीश्वर! अब आप दोनोंकी ऐसी विपरीत बुद्धि क्यों हो गयी, इसे बताइये। जब सदाशिव पार्वतीकी प्रार्थनाहेतु तुम्हारे पास आये थे और तुमने उसे अस्वीकार कर दिया, तब यहाँसे लौटकर उन्होंने हम ऋषियोंको तथा अरुन्धतीको शीघ्र ही भेजा है ॥ ५१-५२ ॥

इसलिये हमलोग आपको उपदेश देते हैं कि आप इस पार्वतीको शीघ्रतासे रुद्रको प्रदान कीजिये। हे शैल! ऐसा करनेसे आपको महान् आनन्दकी प्राप्ति होगी ॥ ५३ ॥

हे शैलेन्द्र! यदि आप इस शिवाको शिवके लिये अपनी इच्छासे नहीं देंगे, तो भी भवितव्यताके बलसे यह विवाह अवश्य ही होगा ॥ ५४ ॥

हे तात! इन शंकरने तप करती हुई इस शिवाको वरदान दिया है, ईश्वरकी प्रतिज्ञा कभी निष्फल नहीं होती ॥ ५५ ॥

जब ईश्वरके उपासक महात्माओंकी प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं होती, तो फिर सारे संसारके अधिपति इन ईश्वरकी प्रतिज्ञाकी बात ही क्या! ॥ ५६ ॥

जब अकेले महेन्द्रने लीलासे ही पर्वतोंके पंख काट डाले और पार्वतीने अकेले ही मेरुका शिखर ढहा दिया, तो उन सर्वेश्वरकी प्रतिज्ञा कैसे निष्फल हो सकती है? ॥ ५७ ॥

हे शैलेन्द्र! एकके कारण सारी सम्पत्तिका नाश नहीं करना चाहिये, यह सनातनी श्रुति है कि कुलकी

रक्षाके लिये एकका त्याग कर देना चाहिये॥ ५८॥

[हे शैलेश्वर!] [पूर्व कालमें] अनरण्य नामक राजेश्वरने अपनी कन्या ब्राह्मणको देकर उसके शापके भयसे अपनी सम्पत्तिकी रक्षा की थी॥ ५९॥

ब्राह्मणके शापसे भयभीत हुए उस राजाको नीतिशास्त्रके ज्ञाता गुरुजनोंने एवं श्रेष्ठ बन्धुओंने समझाया था। हे शैलराज! इसी प्रकार आप भी अपनी इस कन्याको शिवके निमित्त देकर समस्त बन्धुवर्गोंकी रक्षा कीजिये तथा देवताओंको अपने वशमें कीजिये॥ ६०-६१॥

ब्रह्माजी बोले—वसिष्ठके इस वचनको सुनकर कुछ हँस करके व्यथित हृदयसे उन्होंने राजा अनरण्यका वृत्तान्त पूछा॥ ६२॥

हिमालय बोले—हे ब्रह्मन्! वह अनरण्य राजा किसके वंशमें उत्पन्न हुआ था और उसने अपनी कन्याको देकर किस प्रकार सम्पूर्ण सम्पत्तिकी रक्षा की थी?॥ ६३॥

ब्रह्माजी बोले—हिमालयके इस प्रकारके वचनको सुनकर वसिष्ठजी प्रसन्नचित्त होकर राजा अनरण्यका सुखदायक वृत्तान्त उनसे कहने लगे—॥ ६४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें गिरिसान्त्वन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

सप्तर्षियोंद्वारा हिमालयको राजा अनरण्यका आख्यान सुनाकर पार्वतीका विवाह शिवसे करनेकी प्रेरणा देना

वसिष्ठजी बोले—[हे गिरिश्रेष्ठ!] इन्द्रसावर्णि नामक चौदहवें मनुके वंशमें वह अनरण्य नामक राजा उत्पन्न हुआ था॥ १॥

वह राजराजेश्वर तथा सातों द्वीपोंका सम्राट् था। वह मंगलारण्यका पुत्र अनरण्य महाबलवान् एवं विशेषरूपसे शिवजीका भक्त था। उसने महर्षि भृगुको अपना पुरोहित बनाकर एक सौ यज्ञ किये और देवताओंके द्वारा इन्द्रपद दिये जानेपर भी उसने उसे स्वीकार नहीं किया॥ २-३॥

हे हिमालय! उस राजाके सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे और लक्ष्मीसदृश सुन्दर एक पद्मा नामकी कन्या उत्पन्न हुई॥ ४॥

हे नगश्रेष्ठ! उस राजाका जो प्रेम अपने सौ पुत्रोंके प्रति था, उससे भी अधिक उस कन्यापर रहा करता था॥ ५॥

उस अनरण्य राजाकी सर्वसौभाग्यशालिनी पाँच रानियाँ थीं, जो राजाको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थीं॥ ६॥

जिस समय वह कन्या पिताके घरमें युवावस्थाको प्राप्त हुई, तब राजाने उसके लिये उत्तम वर प्राप्त करनेहेतु [अपने दूतोंसे] पत्र भेजा॥ ७॥

एक समय ऋषि पिप्पलाद जब अपने आश्रम जानेके लिये तत्पर थे, तभी तपस्याके योग्य एक निर्जन स्थानमें उन्होंने कामकलामें निपुण तथा स्त्रीके साथ शृंगाररसके सागरमें निमग्न हो बड़े प्रेमसे विहार करते हुए एक गन्धर्वको देखा॥ ८-९॥

वे मुनिश्रेष्ठ उसे देखकर कामके वशीभूत हो गये और तपसे चित्त हटाकर दारसंग्रहकी चिन्तामें पड़ गये॥ १०॥

इस प्रकार कामसे व्याकुलचित्त हुए उन श्रेष्ठ मुनि पिप्पलादका कुछ समय बीत गया॥ ११॥

एक समय जब वे मुनिश्रेष्ठ पुष्पभद्रा नदीमें स्नान

करनेके लिये जा रहे थे, तब उन्होंने लक्ष्मीके समान मनोरम युवती पद्माको देखा॥ १२॥

उसके बाद मुनिने आस-पासके लोगोंसे पूछा कि यह किसकी कन्या है, तब शापके भयसे व्याकुल उन लोगोंने नमस्कार करके बताया॥ १३॥

लोग बोले—यह [राजा] अनरण्यकी पद्मा नामक कन्या है, जो साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान है, श्रेष्ठ राजागण गुणोंकी निधिस्वरूपा इस सुन्दरीको पानेकी इच्छा कर रहे हैं॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार वे मुनि उन सत्यवादी मनुष्योंकी बात सुनकर अत्यन्त व्याकुल हो उठे और मनमें उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करने लगे॥ १५॥

हे गिरे! उसके बाद मुनि स्नानकर विधिपूर्वक अपने इष्टदेव शंकरका विधिवत् पूजन करके कामके वशीभूत हो भिक्षाके लिये अनरण्यकी सभामें गये॥ १६॥

राजाने मुनिको देखते ही भयभीत होकर प्रणाम किया और मधुपर्कादि देकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की॥ १७॥

पूजा-ग्रहण करनेके अनन्तर मुनिने कन्याकी याचना की, तब राजा [इस बातको सुनकर] अवाक् हो गया और कुछ भी कहनेमें समर्थ नहीं हुआ॥ १८॥

उन मुनिने कन्याको माँगा और कहा—हे नृपेश्वर! तुम अपनी कन्या हमें दे दो, अन्यथा मैं क्षणभरमें सब कुछ भस्म कर दूँगा॥ १९॥

[उस समय] हे मुने! मुनिके तेजसे [राजाके] सब सेवक हक्के-बक्के हो गये और वृद्धावस्थासे जर्जर उस विप्रको देखकर परिकरोंसहित राजा रोने लगे॥ २०॥

सभी रानियोंको भी कुछ सूझ नहीं रहा था, वे रोने लगीं। कन्याकी माता महारानी शोकसे व्यथित होकर मूर्च्छित हो गयीं, राजाके सभी पुत्र भी शोकसे आकुल-चित्तवाले हो गये। हे शैलपति! इस प्रकार राजाके सभी सगे-सम्बन्धी शोकसे व्याकुल हो गये॥ २१-२२॥

इसी समय महापण्डित, बुद्धिमान् तथा सर्वोत्तम गुरु एवं पुरोहित ब्राह्मण—दोनों राजाके समीप आये॥ २३॥

राजाने प्रणामकर उनका पूजन करके उन दोनोंके आगे रुदन किया और अपना सारा वृत्तान्त निवेदन किया एवं पूछा कि [इस समय] जो उचित हो, उसको जल्दीसे बताइये॥ २४॥

तब राजाके नीतिशास्त्रज्ञ पण्डित गुरु तथा ब्राह्मण पुरोहित दोनोंने राजाको तथा शोकसे व्याकुल रानियों, राजपुत्रों तथा उस कन्याको सभीके हितकारक तथा नीतियुक्त वाक्योंसे आदरपूर्वक समझाया॥ २५-२६॥

गुरु तथा पुरोहित बोले—हे राजन्! हे महाप्राज्ञ! आप हमारी हितकारी बात सुनिये, आप परिवारके सहित शोक मत कीजिये और शास्त्रमें अपनी बुद्धि लगाइये॥ २७॥

हे राजन्! आज ही अथवा एक वर्षके बाद आपको अपनी कन्या किसी-न-किसी पात्रको देनी ही है, वह पात्र चाहे ब्राह्मण हो अथवा अन्य कोई हो॥ २८॥

किंतु हम इस ब्राह्मणसे बढ़कर सुन्दर पात्र इस त्रिलोकीमें अन्यको नहीं देख रहे हैं, अतः आप अपनी कन्या इन मुनिको देकर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिकी रक्षा कीजिये॥ २९॥

हे राजन्! [यदि ऐसा नहीं करेंगे तो] एकके कारण तुम्हारी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जायगी। उस एकका त्यागकर सबकी रक्षा करो। शरणागतका त्याग नहीं करना चाहिये, चाहे उसके लिये सब कुछ नष्ट हो जाय॥ ३०॥

वसिष्ठजी बोले—राजाने उन दोनों बुद्धिमानोंकी बात सुनकर बार-बार विलाप करके उस कन्याको [वस्त्र तथा आभूषणसे] अलंकृतकर मुनीन्द्रको दे दिया॥ ३१॥

हे गिरे! इस प्रकार उस कन्यासे विधानपूर्वक विवाहकर महर्षि पिप्पलाद महालक्ष्मीके समान उस पद्माको लेकर प्रसन्नतासे युक्त अपने घर चले गये॥ ३२॥

इधर, राजा उस वृद्धको अपनी कन्या प्रदान करके सभी लोगोंको छोड़कर मनमें ग्लानि रखकर तपस्याके लिये वनमें चले गये॥ ३३॥

हे गिरे! अपने प्राणनाथके वन चले जानेपर उनकी भार्याने भी पति तथा कन्याके शोकसे प्राण त्याग दिये॥ ३४॥

राजाके पूज्य लोग, पुत्र, सेवक राजाके बिना मूर्च्छित हो गये तथा अन्य सभी पुरवासी एवं दूसरे लोग यह सब जानकर उच्छ्वास लेकर शोक करने लगे॥ ३५॥

[राजा] अनरण्य वनमें जाकर कठोर तप करके भक्तिपूर्वक शंकरकी आराधनाकर शाश्वत शिवलोकको चला गया। तदनन्तर राजाका कीर्तिमान् नामक धार्मिक

ज्येष्ठ पुत्र राज्य करने लगा और पुत्रके समान प्रजाका पालन करने लगा॥ ३६-३७॥

हे शैल! मैंने अनरण्यका यह शुभ चरित्र आपसे कहा, जिस प्रकार अपनी कन्या प्रदानकर उन्होंने अपने वंशकी तथा सम्पूर्ण धनकी रक्षा की॥ ३८॥

इसी प्रकार हे शैलराज! आप भी अपनी कन्या शंकरजीको देकर अपने समस्त कुलकी रक्षा कीजिये और सभी देवताओंको भी वशमें कीजिये॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें अनरण्यचरितवर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

धर्मराजद्वारा मुनि पिप्पलादकी भार्या सती पद्माके पातिव्रत्यकी परीक्षा, पद्माद्वारा धर्मराजको शाप प्रदान करना तथा पुनः चारों युगोंमें शापकी व्यवस्था करना, पातिव्रत्यसे प्रसन्न हो धर्मराजद्वारा पद्माको अनेक वर प्रदान करना, महर्षि वसिष्ठद्वारा हिमवान्‌से पद्माके दृष्टान्तद्वारा अपनी पुत्री शिवको सौंपनेके लिये कहना

नारदजी बोले—हे तात! अनरण्यके कन्यादान-सम्बन्धी चरित्रको सुनकर गिरिश्रेष्ठने क्या किया, उसे कहिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! अनरण्यका कन्यादान-सम्बन्धी चरित्र सुनकर गिरिराजने हाथ जोड़कर वसिष्ठजीसे पुनः पूछा—॥ २॥

शैलेश बोले—हे वसिष्ठ! हे मुनिशार्दूल! हे ब्रह्मपुत्र! हे कृपानिधे! आपने अनरण्यका परम अद्भुत चरित्र कहा॥ ३॥

तदनन्तर अनरण्यकी कन्याने पिप्पलाद मुनिको पतिरूपमें प्राप्त करनेके अनन्तर क्या किया? वह सुखदायक चरित्र आप कहिये॥ ४॥

वसिष्ठजी बोले—अवस्थासे जर्जर मुनिश्रेष्ठ पिप्पलाद अनरण्यकी उस कन्याके साथ अपने आश्रममें जाकर बड़े प्रेमसे निवास करने लगे। हे गिरिराज! वे वहाँ वनमें श्रेष्ठ पर्वतपर इन्द्रियोंको वशमें करके तपस्यापरायण हो नित्य अपने धर्मका पालन करने लगे॥ ५-६॥

वह अनरण्यकन्या भी मन, वचन तथा कर्मसे भक्तिपूर्वक मुनिकी सेवा करने लगी, जिस प्रकार लक्ष्मी नारायणकी सेवा करती है। किसी समय जब वह सुस्मित-भाषिणी गंगास्नान करने जा रही थी, तब मायासे मनुष्यरूप धारण किये धर्मराजने उसे रास्तेमें देखा॥ ७-८॥

वे अनेक प्रकारके अलंकारोंसे भूषित, मनोहर रत्नोंसे जटित रथपर विराजमान थे। वे नवयौवनसे सम्पन्न एवं कामदेवके समान अत्यन्त कमनीय थे। प्रभु धर्म उस सुन्दरी पद्माको देखकर उस मुनिपत्नीके अन्तःकरणका भाव जाननेके लिये उससे कहने लगे—॥ ९-१०॥

धर्म बोले—हे सुन्दरि! हे राजयोग्ये! हे मनोहरे! हे नवीन यौवनवाली! हे कामिनि! हे नित्य युवावस्थामें रहनेवाली! तुम तो साक्षात् लक्ष्मी हो॥ ११॥

हे तन्वंगि! मैं सत्य कहता हूँ कि तुम जराग्रस्त पिप्पलाद मुनिके समीप शोभित नहीं हो रही हो॥ १२॥

तुम तपस्यामें लगे हुए, क्रोधी तथा मरणोन्मुख ब्राह्मणको त्यागकर मुझ राजेन्द्र, कामकलामें निपुण एवं कामातुरकी ओर देखो॥ १३॥

सुन्दरी स्त्री अपने पूर्वजन्ममें किये गये पुण्यके प्रभावसे ही सौन्दर्यको प्राप्त करती है। किंतु वह सब किसी रसिकके आलिंगनसे ही सफल होता है॥ १४॥

हे कान्ते! तुम इस जरा-जर्जर पतिको छोड़कर हजारों स्त्रियोंके कान्त तथा कामशास्त्रके विशारद मुझे अपना किंकर बनाओ और निर्जन मनोहर वनमें, पर्वतपर तथा नदीके तटपर मेरे साथ विहार करो तथा इस जन्मको सफल करो॥ १५-१६॥

वसिष्ठजी बोले—इस प्रकार कहकर वे ज्यों ही रथसे उतरकर उसका हाथ पकड़ना ही चाहते थे कि वह पतिव्रता कहने लगी—॥ १७॥

पद्मा बोली—हे राजन्! तुम तो बड़े पापी हो, दूर हट जाओ, दूर हट जाओ, यदि तुमने मुझे और सकाम भावसे देखा, तो शीघ्र ही नष्ट हो जाओगे॥ १८॥

मैं तपस्यासे पवित्र शरीरवाले उन मुनिश्रेष्ठ पिप्पलादको छोड़कर परस्त्रीगामी एवं स्त्रीके वशमें रहनेवाले तुमको कैसे स्वीकार कर सकती हूँ?॥ १९॥

स्त्रीके वशमें रहनेवालेके स्पर्शमात्रसे सारा पुण्य नष्ट हो जाता है। जो स्त्रीजित् तथा दूसरेकी हत्या करनेवाला पापी है, उसका दर्शन भी पाप उत्पन्न करनेवाला होता है। जो पुरुष स्त्रीके वशमें रहनेवाला है, वह सत्कर्ममें लगे रहनेपर भी सदा अपवित्र है। पितर, देवता तथा सभी मनुष्य उसकी निन्दा करते हैं॥ २०-२१॥

जिसका मन स्त्रियोंके द्वारा हर लिया गया है, उसके ज्ञान, उत्तम तप, जप, होम, पूजन, विद्या तथा दानसे क्या लाभ है! तुमने माताके समान मुझमें स्त्रीकी भावनासे जो इस प्रकारकी बात कही है, इसलिये समय आनेपर मेरे शापसे तुम्हारा नाश हो जायगा॥ २२-२३॥

वसिष्ठजी बोले—सतीके शापको सुनकर वे देवेश धर्मराज राजाका रूप त्यागकर अपना स्वरूप धारणकर काँपते हुए कहने लगे—॥ २४॥

धर्म बोले—हे मातः! हे सति! आप मुझे ज्ञानियोंके गुरुओंका भी गुरु तथा परायी स्त्रीमें सर्वदा मातृबुद्धि रखनेवाला समझें॥ २५॥

मैं आपके मनोभावकी परीक्षा लेनेके लिये आपके पास आया था और आपका अभिप्राय जान लिया, किंतु हे साध्वि! विधिसे प्रेरित होकर आपने [शाप देकर] मेरा गर्व नष्ट किया। यह तो आपने उचित ही किया, कोई विरुद्ध कार्य नहीं किया। इस प्रकारका शासन उन्मार्गगामियोंके लिये ईश्वरद्वारा निर्मित है॥ २६-२७॥

जो स्वयं सबको महान् सुख-दुःख देनेवाले हैं और सम्पत्ति तथा विपत्ति देनेमें समर्थ हैं, उन शिवके प्रति नमस्कार है। जो शत्रु, मित्र, प्रीति तथा कलहका विधान करनेमें और सृष्टिका सृजन एवं संहार करनेमें समर्थ हैं, उन शिवको नमस्कार है॥ २८-२९॥

जिन्होंने पूर्वकालमें दूधको शुक्लवर्णका बनाया, जलमें शैत्य उत्पन्न किया और अग्निको दाहकता-शक्ति प्रदान की, उन शिवको नमस्कार है। जिन्होंने प्रकृतिका, महत् आदि तत्त्वोंका एवं ब्रह्मा, विष्णु-महेश आदिका निर्माण किया है, उन शिवको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर जगद्गुरु धर्मराज उस पतिव्रताके आगे खड़े हो गये। वे उसके पातिव्रत्यसे सन्तुष्ट होकर आश्चर्यसे चकित रह गये और कुछ भी नहीं बोल सके। हे पर्वत! तब अनरण्यकी कन्या तथा पिप्पलादकी पत्नी वह साध्वी पद्मा उन्हें धर्मराज जानकर चकित होकर कहने लगी—॥ ३२-३३॥

पद्मा बोली—हे धर्म! आप ही सबके समस्त कर्मोंके साक्षी हैं, हे विभो! आपने मेरे मनका भाव जाननेके लिये कपटरूप क्यों धारण किया?॥ ३४॥

हे ब्रह्मन्! यह जो कुछ मैंने किया, उसमें मेरा अपराध नहीं है। हे धर्म! मैंने अज्ञानसे स्त्रीस्वभावके कारण आपको व्यर्थ ही शाप दे दिया॥ ३५॥

मैं इस समय यही सोच रही हूँ कि उस शापकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये, मेरे चित्तमें अब वह बुद्धि स्फुरित हो, जिससे मैं शान्ति प्राप्त करूँ॥ ३६॥

यह आकाश, सभी दिशाएँ तथा वायु भले ही नष्ट हो जायँ, किंतु पतिव्रताका शाप कभी नष्ट नहीं होता॥ ३७॥

हे देवराज! आप सत्ययुगमें अपने चारों पैरोंसे सभी समय पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान दिन-रात शोभित रहते हैं। यदि आप नष्ट हो जायँगे, तब तो सृष्टिका ही नाश हो जायगा। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर मैंने यह झूठा शाप दे दिया है॥ ३८-३९॥

हे सुरोत्तम! हे विभो! [अब आप मेरे शापकी व्यवस्था सुनिये।] त्रेतायुगमें आपका एक पाद, द्वापरमें दो पाद और कलियुगमें तीन पाद नष्ट होगा और कलिके अन्तमें आपके सभी पाद नष्ट हो जायँगे। तदनन्तर सत्ययुग आनेपर आपः पुनः पूर्ण हो जायँगे॥ ४०-४१॥

सत्ययुगमें आप सर्वव्यापक रहेंगे और अन्य युगोंमें युग-व्यवस्थानुसार आप कहीं-कहीं जैसे-तैसे घटते-बढ़ते रहेंगे। मेरा यह सत्य वचन आपके लिये सुखदायक हो। हे विभो! अब मैं अपने पतिकी सेवाके लिये जा रही हूँ और आप अपने घर जायँ॥ ४२-४३॥

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र नारद! पद्माके इस

वचनको सुनकर धर्मराज प्रसन्न हो गये और इस प्रकार कहनेवाली उस साध्वीसे कहने लगे— ॥ ४४ ॥

धर्म बोले—हे पतिव्रते! तुम धन्य हो, तुम पतिभक्त हो, तुम्हारा कल्याण हो। तुम वर स्वीकार करो। तुम्हारा स्वामी तुम्हारी रक्षा करनेके कारण युवा हो जाय। तुम्हारा पति रतिमें शूर, धार्मिक, रूपवान्, गुणवान्, वक्ता और सदा स्थिर यौवनवाला हो ॥ ४५-४६ ॥

हे शुभे! वह मार्कण्डेयसे भी बढ़कर चिरंजीवी हो, कुबेरसे भी अधिक धनवान् तथा इन्द्रसे भी अधिक ऐश्वर्यशाली रहे। वह विष्णुके समान शिवभक्त, कपिलके समान सिद्ध, बुद्धिमें बृहस्पतिके समान तथा समदर्शितामें ब्रह्मदेवके समान हो ॥ ४७-४८ ॥

तुम जीवनपर्यन्त स्वामीके सौभाग्यसे संयुक्त रहो और हे सुभगे! हे देवि! तुम्हारा भी यौवन स्थिर रहे ॥ ४९ ॥

तुम अपने पतिसे भी अधिक चिरंजीवी एवं गुणवान् दस पुत्रोंकी माता होओगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥

हे साध्वि! तुम्हारे घर नाना प्रकारकी सम्पत्तिसे पूर्ण, निरन्तर प्रकाशयुक्त तथा कुबेरके भवनसे भी श्रेष्ठ हों ॥ ५१ ॥

वसिष्ठ बोले—हे गिरिश्रेष्ठ! इस प्रकार कहकर धर्मराज चुप होकर खड़े हो गये और वह भी उनकी प्रदक्षिणाकर उन्हें प्रणाम करके अपने घर चली गयी ॥ ५२ ॥

धर्मराज भी [पद्माको] आशीर्वाद देकर अपने घर चले गये और वे प्रत्येक सभामें प्रसन्न मनसे पद्माकी प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर वह [पद्मा] अपने युवा स्वामीके साथ नित्य एकान्तमें रमण करने लगी। बादमें उसके पतिसे भी अधिक गुणवान् उत्तम पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५३-५४ ॥

स्त्री एवं पुरुषोंको सुख देनेवाली सारी सम्पत्ति उनके पास हो गयी, जो सब प्रकारके आनन्दको बढ़ानेवाली और इस लोक तथा परलोकमें कल्याणकारिणी हुई ॥ ५५ ॥

हे शैलेन्द्र! उन दोनों स्त्री-पुरुषोंका यह सारा पुरातन इतिहास मैंने आपसे वर्णन किया और आपने इसे अत्यन्त आदरपूर्वक सुना ॥ ५६ ॥

अतः आप इस चरित्रको जानकर अपनी कन्या पार्वतीको शिवजीको प्रदान कीजिये और हे शैलेन्द्र! अपनी स्त्री मेनाके सहित अपना हठ छोड़ दीजिये ॥ ५७ ॥

एक सप्ताह बीतनेपर एक दुर्लभ उत्तम शुभयोग आ रहा है। उस लग्नमें लग्नका स्वामी स्वयं अपने घरमें स्थित है और चन्द्रमा भी अपने पुत्र बुधके साथ स्थित रहेगा। चन्द्रमा रोहिणीयुक्त होगा, इसलिये चन्द्र तथा तारागणोंका योग भी उत्तम है। मार्गशीर्षका महीना है, उसमें भी सर्वदोषविवर्जित चन्द्रवारका दिन है, वह लग्न सभी उत्तम ग्रहोंसे युक्त तथा नीच ग्रहोंकी दृष्टिसे रहित है। उस शुभ लग्नमें बृहस्पति उत्तम सन्तान तथा पतिका सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं ॥ ५८—६० ॥

हे पर्वत! [ऐसे शुभ लग्नमें] अपनी कन्या मूल प्रकृतिरूपा ईश्वरी जगदम्बाको जगत्पिता शिवजीके लिये प्रदान करके आप कृतार्थ हो जायँगे ॥ ६१ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] यह कहकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ मुनिशार्दूल वसिष्ठजी अनेक लीला करनेवाले प्रभु शिवका स्मरण करके चुप हो गये ॥ ६२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पद्मापिप्पलादचरितवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

सप्तर्षियोंके समझानेपर हिमवान्‌का शिवके साथ अपनी पुत्रीके विवाहका निश्चय करना, सप्तर्षियोंद्वारा शिवके पास जाकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बताकर अपने धामको जाना

ब्रह्माजी बोले—वसिष्ठजीकी बात सुनकर अपने गणों एवं भार्यासहित विस्मित होकर गिरिराज हिमालय पर्वतोंसे कहने लगे— ॥ १ ॥

हिमालय बोले—हे गिरिराज मेरो! हे सह्य! हे गन्धमादन! हे मन्दर! हे मैनाक! हे विन्ध्य! हे पर्वतेश्वरो! आप सब लोग मेरी बात सुनें। वसिष्ठजी ऐसा कह रहे हैं। अब मुझको क्या करना चाहिये। इस सम्बन्धमें आपलोग विचार करें और मनसे सब बातोंका

निर्णय करके जैसा ठीक हो, वैसा बताइये॥ २-३॥

ब्रह्माजी बोले—उनकी बात सुनकर सुमेरु आदि वे पर्वत भलीभाँति निर्णय करके प्रेमपूर्वक हिमालयसे कहने लगे—॥ ४॥

पर्वत बोले—इस समय बहुत विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, कार्य तो हो ही गया है। हे महाभाग! यह [कन्या] देवताओंके कार्यके लिये ही उत्पन्न हुई है। इसका अवतार ही जब शिवके लिये हुआ है, तो इसे शिवजीको ही देना चाहिये। इसने रुद्रकी आराधना की है और रुद्रने इसे स्वीकृति भी दी है॥ ५-६॥

ब्रह्माजी बोले—मेरु आदि पर्वतोंकी यह बात सुनकर हिमालयको बड़ी प्रसन्नता हुई और गिरिजा भी मन-ही-मन हँसने लगीं। अरुन्धतीने [शिव-पार्वतीके विवाहके लिये] अनेक प्रकारके वचनों तथा विविध इतिहासोंसे उन मेनाको समझाया॥ ७-८॥

तब शैलपत्नी मेना सब कुछ समझ गयीं और प्रसन्नचित्त हो गयीं। उन्होंने मुनियों, अरुन्धती तथा हिमालयको भोजन कराकर स्वयं भोजन किया॥ ९॥

तदनन्तर ज्ञानी गिरिश्रेष्ठ उन मुनियोंकी सेवा करके प्रसन्नचित्त और भ्रमरहित होकर हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—॥ १०॥

हिमालय बोले—हे महाभाग्यवान् सप्तर्षिगण! आपलोग मेरी बात सुनिये, मैंने शिवा और शिवजीका सारा चरित्र सुन लिया, जिससे मेरा सारा सन्देह दूर हो गया है। मेरा यह शरीर, पत्नी मेना, पुत्री, पुत्र, ऋद्धि, सिद्धि तथा अन्य जो कुछ भी मेरे पास है, वह सब शिवका ही है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११-१२॥

ब्रह्माजी बोले—उन्होंने इस प्रकार कहकर उस पुत्रीकी ओर आदरपूर्वक देखकर उसके अंगोंको [अलंकारोंसे] सुसज्जितकर उसे ऋषियोंकी गोदमें बैठा दिया। तदनन्तर शैलराजने पुनः प्रेमसे ऋषियोंसे कहा—मुझे शंकरका यह भाग उन्हें अवश्य देना है, ऐसा मैंने निश्चय किया है॥ १३-१४॥

ऋषि बोले—हे गिरे! भगवान् शंकर ग्रहीता होनेके कारण भिक्षुक हैं, आप कन्यादान देनेके कारण दाता हैं और देवी पार्वती भिक्षा हैं, अब इससे उत्तम और क्या बात हो सकती है। हे हिमालय! जिस प्रकार सभी शिखरोंसे ऊँचे होनेके कारण आपके शिखरोंकी श्रेष्ठता है, उसी प्रकार आप भी सम्पूर्ण पर्वतोंके अधिपति होनेके कारण सबसे उत्तम हैं तथा धन्य हैं॥ १५-१६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर निर्मल मनवाले मुनियोंने हाथसे स्पर्श करके कन्याको आशीर्वाद दिया कि शिवको सुख देनेवाली बनो, तुम्हारा कल्याण हो। जिस प्रकार शुक्लपक्षका चन्द्रमा बढ़ता है, उसी प्रकार तुम्हारे गुणोंकी वृद्धि हो॥ १७-१८॥

इस प्रकार कहकर उन सभी मुनियोंने प्रसन्नतापूर्वक हिमालयको [आशीर्वाद रूपमें] फूल तथा फल अर्पित करके विश्वास उत्पन्न कराया॥ १९॥

परम पतिव्रता सुमुखी अरुन्धतीने शिवजीके गुणोंसे मेनाको प्रलोभित किया॥ २०॥

तदनन्तर हिमालयने दाढ़ीमें हरिद्रा तथा कुंकुमसे मार्जन किया और लौकिकाचारपूर्वक सारा मंगल किया॥ २१॥

तदनन्तर चौथे दिन शुभ लग्नका निश्चयकर परस्पर सन्तुष्ट हो वे [मुनिगण] शिवजीके पास गये॥ २२॥

वहाँ जाकर शिवजीको प्रणामकर अनेक सूक्तोंसे उनकी स्तुतिकर वे वसिष्ठ आदि सभी मुनि कहने लगे॥ २३॥

ऋषि बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे परमेश्वर! हे महाप्रभो! आपके सेवक हम लोगोंने जो किया है, उस बातको प्रेमसे सुनिये॥ २४॥

हे महेशान! हमलोगोंने इतिहासपूर्वक अनेक प्रकारके उत्तम वचनोंसे पर्वतराज [हिमालय] तथा मेनाको बहुत समझाया, जिससे वे समझ गये, अब उन्हें सन्देह नहीं रहा। गिरीन्द्रने वाग्दान देकर प्रतिज्ञा की है कि यह पार्वती आपकी है। अब आप अपने गणों तथा देवताओंको लेकर विवाहके लिये चलिये॥ २५-२६॥

हे महादेव! हे प्रभो! आप शीघ्र ही विवाहके लिये हिमालयके घर चलिये तथा सन्तान-उत्पादनके लिये रीतिके अनुसार पार्वतीसे विवाह कीजिये॥ २७॥

ब्रह्माजी बोले—उनकी यह बात सुनकर शिवजी प्रसन्नचित्त हो गये और लौकिकाचारमें तत्पर होकर हँसते हुए इस प्रकार कहने लगे—॥ २८॥

महेश बोले—हे महाभाग! मैंने तो विवाह न

देखा है और न सुना है, आपलोग ही जैसी विधि देखे-सुने हैं, उसे बताइये॥ २९॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीके लौकिक शुभ वचनको सुनकर वे देवाधिदेव सदाशिवसे हँसते हुए कहने लगे— ॥ ३०॥

ऋषि बोले—हे प्रभो! आप समाजसहित विष्णुको विशेष रूपसे शीघ्र बुलाकर पुत्रसहित ब्रह्माजी, इन्द्रदेव, सभी ऋषि, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरा—इन सबको तथा अन्य लोगोंको आदरपूर्वक यहाँ बुलाइये। वे सब आपका कार्य सिद्ध करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३१—३३॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर उनकी आज्ञा लेकर वे सभी सप्तर्षि शिवजीकी महिमाका वर्णन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको चले गये॥ ३४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें सप्तर्षिवचन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

हिमालयद्वारा विवाहके लिये लग्नपत्रिकाप्रेषण, विवाहकी सामग्रियोंकी तैयारी तथा अनेक पर्वतों एवं नदियोंका दिव्य रूपमें सपरिवार हिमालयके घर आगमन

नारदजी बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! हे प्रभो! अब आप कृपाकर मुझे यह बताइये कि उन सप्तर्षियोंके चले जानेके बाद हिमालयने क्या किया?॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! अरुन्धतीसहित उन सप्तर्षियोंके चले जानेपर हिमालयने जो किया, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ। उसके बाद महामनस्वी गिरिराज हिमालय प्रिय पुत्रोंसहित अपने मेरु आदि बन्धुओंको बुलाकर बड़े प्रसन्न हुए॥ २-३॥

उनसे आज्ञा लेनेके बाद हिमालयने प्रीतिपूर्वक अपने पुरोहित गर्गजीसे लग्नपत्रिका लिखवायी और उन्होंने प्रसन्न मनवाले अपने सेवकोंसे अनेक प्रकारकी सामग्रियों तथा उस लग्नपत्रिकाको बड़े प्रेमसे शिवजीके पास भिजवाया॥ ४-५॥

उन लोगोंने कैलासपर शिवजीके समीप जाकर उनको तिलक लगाकर वह पत्रिका उन्हें प्रदान की॥ ६॥

भगवान् सदाशिवने उन लोगोंका विशेष रूपसे यथोचित सम्मान किया और प्रसन्नतापूर्वक वे सभी लोग हिमालयके पास लौट आये। हिमालय भी शिवजीके द्वारा विशेष रूपसे सम्मानित हुए हर्षित लोगोंको देखकर मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ७-८॥

तत्पश्चात् उन्होंने भी अनेक देशोंमें रहनेवाले अपने सम्बन्धियोंको बड़े प्रेमके साथ सुखदायक निमन्त्रण भेजा। उसके बाद उन्होंने आदरसे उत्तम अन्न तथा विवाहके लिये अनेक प्रकारकी उपयोगी सामग्रियाँ एकत्रित कीं॥ ९-१०॥

उन्होंने चावल, चिउड़ा, गुड़, शर्करा तथा नमकका पहाड़ लगवा दिया। दूध, घी, दहीकी वापी बनवाकर उन्होंने जौ आदिका आटा, लड्डू, पूड़ी, स्वस्तिक, शर्कराका प्रभूत-संग्रह करवाया और अमृतके समान स्वादिष्ट इक्षुरसकी वापी बनवा दी तथा मक्खन, आसवोंका समूह एवं महास्वादिष्ट पक्वान्नों एवं रसोंका ढेर लगवा दिया॥ ११—१४॥

शिवजीके गणों तथा देवताओंके लिये हितकारक अनेक प्रकारके व्यंजन, वस्तुएँ तथा अग्निसे पवित्र किये गये अनेक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र, नाना प्रकारकी मणियाँ, रत्न, सुवर्ण तथा चाँदी—इन द्रव्योंको तथा अन्य वस्तुओंको विधिपूर्वक एकत्रित करके गिरिराजने मंगलदायक दिनमें मंगलाचार प्रारम्भ किया। पर्वतोंकी स्त्रियाँ पार्वतीका संस्कार करने लगीं। वे स्वयं अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित होकर प्रसन्नतापूर्वक मंगलाचार करने लगीं। नगरमें रहनेवाली द्विजस्त्रियाँ भी प्रसन्न होकर उत्सव तथा मंगलाचारके साथ अनेक प्रकारके लोकाचार करने लगीं॥ १५—१८$^{१}/_{२}$॥

हिमालय भी प्रसन्नचित्त होकर प्रेमके साथ समस्त मंगलाचारकर बन्धुवर्गोंके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

इसी बीच निमन्त्रित उनके सभी बान्धव अपनी स्त्रियों, पुत्रों तथा सेवकोंसहित प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ गये। हे देवर्षे! अब उन पर्वतोंका आगमन आदरपूर्वक सुनिये। मैं शिवजीकी प्रीति बढ़ानेके लिये संक्षेपसे इसका वर्णन कर रहा हूँ॥ १९—२१^१/२॥

सबसे पहले सर्वश्रेष्ठ तथा श्रीमान् देवालय नामक पर्वत सुन्दर वेषसे अलंकृत होकर दिव्य रूप धारणकर अनेक प्रकारके रत्नोंसे देदीप्यमान अपने समाज तथा कुटुम्बके साथ अनेक मणियों तथा बहुमूल्य रत्नोंको लेकर हिमालयके यहाँ पहुँचे। सम्पूर्ण शोभासे संयुक्त मन्दराचल अनेक प्रकारके उत्तम उपहारोंको लेकर अपनी स्त्री तथा पुत्रोंसहित हिमालयके पास गये। उदारबुद्धिवाले तथा दिव्यात्मा अस्ताचल पर्वत भी महान् शोभासे युक्त हो विविध प्रकारकी भेंटसामग्री लेकर प्रसन्नतापूर्वक हिमालयके निकट आये। उसी प्रकार हर्षोल्लाससे समन्वित उदयाचल भी सभी प्रकारके उत्तम रत्न तथा मणियोंको लेकर अत्युत्तम परिवारके साथ आये। मलयाचल भी आदरपूर्वक अत्यन्त दिव्य रचनासे युक्त हो बहुत-सी सेना तथा परिवारसहित हिमालयके यहाँ आये। हे तात! दर्दर नामक पर्वत भी प्रसन्न हो अपनी पत्नीके साथ महान् शोभासे युक्त होकर हिमालयके घर शीघ्र पहुँचे। निषद पर्वत भी प्रसन्नचित्त होकर अपने परिवारजनोंके साथ हिमालयके घर आये। इसी प्रकार महाभाग्यवान् गन्धमादन पर्वत भी पुत्र तथा स्त्रियोंके साथ प्रसन्नतासे हिमालयके घर आये। महान् ऐश्वर्यसे समन्वित होकर करवीर तथा पर्वतश्रेष्ठ महेन्द्र भी हिमालयके घर आये॥ २२—३१॥

अनेक प्रकारकी शोभासे सम्पन्न पारियात्र भी प्रसन्नचित्त होकर अनेक गणों, पुत्रों एवं स्त्रियोंको साथ लेकर मणि तथा रत्नोंकी खानसे युक्त हो हिमालयके पास गये। गिरिश्रेष्ठ पर्वतराज क्रौंच अपनी सेना तथा सेवकोंको लेकर अपने पुत्र, स्त्री तथा परिवारसहित प्रसन्न हो भेंटसामग्रीसे युक्त हो आदरपूर्वक हिमालयके घर गये॥ ३२-३३॥

पुरुषोत्तम पर्वत भी अपने समाजसहित बड़े आदरके साथ बहुत-सी भेंट-सामग्री लेकर हिमालयके पास आये। नीलपर्वत भी अपनी स्त्री तथा पुत्रके साथ बहुत-सा द्रव्य लेकर आनन्दित होकर हिमालयके घर आये॥ ३४-३५॥

त्रिकूट, चित्रकूट, वेंकट, श्रीगिरि, गोकामुख तथा नारद—ये पर्वत भी हिमालयके घर आये। पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य भी अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर अपने स्त्री-पुत्रोंसहित नाना प्रकारकी सम्पत्तिसे युक्त हो हिमालयके घर आये॥ ३६-३७॥

महाशैल कालंजर अपने अनेक गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक हिमालयके घर आये। कैलास नामक महापर्वत भी बड़ी प्रसन्नताके साथ कृपापूर्वक हिमालयके घर आये। वे सभी पर्वतोंकी अपेक्षा अधिक शोभासम्पन्न थे॥ ३८-३९॥

हे नारद! इसी प्रकार अन्य द्वीपोंमें रहनेवाले तथा भारतवर्षमें रहनेवाले जो अन्य पर्वत थे, वे सब हिमालयके घर आये। हे मुने! हिमालयने जिन पर्वतोंको पहले ही प्रेमसे आमन्त्रित किया था, वे सभी यह सोचकर कि यह शिवा-शिवका विवाह है, प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये॥ ४०-४१॥

शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर उस समय शोणभद्रादि सभी नद अनेक शोभासे युक्त होकर बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये॥ ४२॥

शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर सभी नदियाँ दिव्य रूप धारण करके नाना भाँतिके अलंकारोंसे युक्त हो प्रेमपूर्वक वहाँ आयीं। शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर गोदावरी, यमुना, ब्रह्मस्त्री तथा वेणिका हिमालयके यहाँ आयीं॥ ४३-४४॥

शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर गंगाजी भी महाप्रसन्न हो दिव्य रूप धारण करके अनेक प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित हो वहाँ आयीं॥ ४५॥

शिवा-शिवका विवाह हो रहा है—यह जानकर सरिताओंमें श्रेष्ठ, अत्यन्त आनन्द प्रदान करनेवाली, रुद्रकी कन्या नर्मदा भी बड़े प्रेमसे शीघ्र वहाँ आ गयीं॥ ४६॥

उस समय हिमालयके यहाँ आये हुए उन सभी लोगोंसे वह दिव्य तथा सभी शोभासे युक्त पुरी भर गयी। वह महोत्सवसे युक्त हो गयी, उसमें नाना प्रकारके केतु, ध्वज एवं तोरण सुशोभित होने लगे, नाना प्रकारके वितानोंसे सूर्यका प्रकाश रुक गया और वह पुरी रंग-बिरंगे रत्नोंकी छटासे पूर्ण हो गयी॥ ४७-४८॥

हिमालयने भी प्रभूत आदरके साथ अत्यन्त प्रेमपूर्वक

उन स्त्रियों तथा पुरुषोंका यथोचित सम्मान किया। उन्होंने सभी लोगोंको अलग-अलग उत्तम स्थानोंपर निवास प्रदान किया और अनेक प्रकारकी सामग्रियोंसे उन्हें पूर्णरूपसे सन्तुष्ट किया॥ ४९-५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें लग्नपत्रसम्प्रेषणसामग्रीसंग्रह-शैलागमनवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

हिमालयपुरीकी सजावट, विश्वकर्माद्वारा दिव्यमण्डप एवं देवताओंके निवासके लिये दिव्यलोकोंका निर्माण करना

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिसत्तम! इसके बाद हिमालयने प्रसन्न होकर महोत्सवसम्पन्न अपने नगरको विचित्र प्रकारसे सजाया॥ १॥

उन्होंने सभी मार्गोंपर जलका छिड़काव कराया और सभी प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धिसे नगरको अलंकृतकर प्रत्येक द्वारको केलेके खम्भे तथा मंगलद्रव्योंसे सुसज्जित किया॥ २॥

आँगनमें केलेके खम्भे लगवाये गये। रेशमी धागोंमें आमका पल्लव बाँधकर बंदनवार, जिसमें मालतीकी माला बँधी हुई थी, लटकाया गया और उस आँगनको चारों दिशाओंमें कल्याणकारी मंगलद्रव्योंसे सुशोभित किया गया। पर्वतराजने महाप्रभावशाली गर्गाचार्यके आज्ञानुसार अपनी कन्याके विवाहके निमित्त परम प्रसन्नतासे युक्त हो सारी सामग्री तथा सभी प्रकारके मंगलद्रव्य एकत्रित किये॥ ३—५॥

उन्होंने विश्वकर्माको आदरपूर्वक बुलाकर विस्तृत मण्डप तथा मनोहर वेदिका आदिका निर्माण कराया॥ ६॥

हे देवर्षे! वह [मण्डप] दस हजार योजन लम्बा, अनेक लक्षणोंसे युक्त तथा अनेक आश्चर्योंसे परिपूर्ण था। स्थावर चित्रकी रचना जंगमके सदृश ही होनेसे वह मण्डप चारों ओर अद्भुत पदार्थोंसे परिपूर्ण हो गया॥ ७-८॥

स्थावर रचनाने विशेष रूपसे जंगमको तथा जंगम रचनाने स्थावर रचनाको पराजित कर दिया था॥ ९॥

जलकी रचनासे स्थलभूमि जीत ली गयी। बड़े-बड़े विशेषज्ञोंको भी पता नहीं लगता था कि कहाँ जल है और कहाँ स्थल है॥ १०॥

कहींपर कृत्रिम सिंह तथा सारसोंकी पंक्ति बनी हुई थी तथा कहीं अत्यन्त मनोहर कृत्रिम मोर बने हुए थे॥ ११॥

कहीं पुरुषोंके साथ नाचती हुई स्त्रियोंके चित्र बनाये गये थे, वे कृत्रिम स्त्रियाँ अपनी दृष्टिसे देखते हुए पुरुषोंको मानो मोह रही थीं॥ १२॥

इसी प्रकार हाथमें धनुष धारण किये मनोहर द्वारपाल स्थावर होकर भी जंगमके सदृश प्रतीत होते थे॥ १३॥

क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई सर्वलक्षणयुक्त साक्षात् लक्ष्मीके समान अद्भुत कृत्रिम महालक्ष्मी दरवाजेपर बनायी गयी थी॥ १४॥

अलंकृत हाथी वास्तविक हाथीके समान दिखायी पड़ते थे। इसी प्रकार घुड़सवारोंसे समन्वित अश्व तथा गजारोहियोंसे युक्त गज और आश्चर्यपूर्ण रथीसे युक्त रथ समतामें किसी प्रकार जीवधारीसे कम न थे। अनेक प्रकारके वाहन तथा पैदल कृत्रिम होते हुए भी अकृत्रिम-जैसे प्रतीत होते थे॥ १५-१६॥

हे मुने! उन प्रसन्नचित्त विश्वकर्माने देवताओं और मुनियोंको मोहित करनेके लिये यह सब किया था॥ १७॥

हे मुने! महाद्वारपर शुद्ध स्फटिकके समान अत्यन्त उज्ज्वल नन्दीका चित्र बनाया गया था, वह साक्षात् नन्दीके ही समान था। उसके ऊपर महादिव्य, रत्नजटित एवं मनोहर पल्लवों तथा चामरोंसे शोभायमान पुष्पक विमान रखा हुआ था॥ १८-१९॥

द्वारके बायें भागमें शुद्ध काश्मीरी रंगके चार दाँतवाले दो हाथी बनाये गये थे, जो महाकान्तिमान् तथा साठ वर्षके थे और एक-दूसरेसे भिड़े हुए थे॥ २०॥

उसी प्रकार सूर्यके समान महाकान्तिमान् तथा दिव्य दो घोड़े भी बनाये गये थे, जो चँवरों तथा दिव्य अलंकारोंसे सुसज्जित थे॥ २१॥

विश्वकर्माने श्रेष्ठ रत्नोंसे विभूषित यथार्थ रूपवाले सभी लोकपालों तथा देवताओंको बनाया था॥ २२॥

इसी प्रकार तपोधन भृगु आदि ऋषियों, अन्य उपदेवताओं, सिद्धों तथा अन्य लोगोंके भी चित्रोंका निर्माण किया गया था। कृत्रिम विष्णु अपने गरुड़ आदि पार्षदोंके साथ इस प्रकारके बनाये गये थे कि उनको देखनेसे महान् आश्चर्य प्रतीत हो रहा था॥ २३-२४॥

हे नारद! इसी प्रकार अपने पुत्रों, वेदों एवं परिवारके साथ सूक्तपाठ करते हुए मुझ ब्रह्माके चित्रका भी निर्माण कराया गया था। विश्वकर्माने ऐरावतपर चढ़े हुए अपने दलसहित इन्द्रका निर्माण किया था, जो पूर्णचन्द्रके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ २५-२६॥

हे देवर्षे! बहुत कहनेसे क्या लाभ? विश्वकर्माने हिमालयसे प्रेरित होकर सम्पूर्ण देवसमाजकी शीघ्र ही रचना की थी। इस प्रकार दिव्य रूपसे युक्त, देवताओंको मोहित करनेवाले तथा अनेक आश्चर्योंसे परिपूर्ण उस विशाल मण्डपका निर्माण विश्वकर्माने किया॥ २७-२८॥

इसके अनन्तर महाबुद्धिमान् विश्वकर्माने हिमालयकी आज्ञा पाकर देवताओं आदिके निवासके लिये यत्नपूर्वक उनके लोकोंकी रचना की॥ २९॥

विश्वकर्माने देवताओंको सुख देनेवाले, अत्यधिक प्रभावाले, परम आश्चर्यकारक तथा दिव्य मंचोंका भी निर्माण किया॥ ३०॥

उन्होंने ब्रह्माके निवासके लिये क्षणभरमें परम दीप्तिसे युक्त अद्भुत सत्यलोककी रचना कर डाली॥ ३१॥

उसी प्रकार उन्होंने विष्णुके लिये वैकुण्ठ नामक स्थान क्षणमात्रमें बनाया, जो अति उज्ज्वल, दिव्य तथा नाना प्रकारके आश्चर्यसे युक्त था॥ ३२॥

उन विश्वकर्माने सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त, अत्यन्त अद्भुत, दिव्य तथा उत्तम इन्द्रभवनका निर्माण किया॥ ३३॥

उसी प्रकार उन्होंने लोकपालोंके लिये सुन्दर, दिव्य, अद्भुत तथा महान् गृहोंकी प्रीतिपूर्वक रचना की॥ ३४॥

उन्होंने अन्य देवताओंके लिये क्रमशः विचित्र गृहोंकी रचना की। शिवजीसे वर प्राप्त करनेके कारण महाबुद्धिमान् विश्वकर्माने क्षणभरमें शिवजीकी प्रसन्नताके लिये सारे स्थानका निर्माण किया॥ ३५-३६॥

उन्होंने शिवलोकमें रहनेवाले, परम उज्ज्वल, महान् प्रभावाले, श्रेष्ठ देवताओंसे पूजित, गिरीशके चिह्नोंसे युक्त तथा शोभासम्पन्न शिवगृहका निर्माण किया॥ ३७॥

उन विश्वकर्माने शिवजीकी प्रसन्नताके लिये इस प्रकारकी विचित्र, परम आश्चर्यसे युक्त तथा परमोज्ज्वल रचना की थी। इस प्रकार यह सारा लौकिक व्यवहार करके वे हिमालय अत्यन्त प्रेमसे शिवके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। हे देवर्षे! मैंने हिमालयका आनन्ददायक वृत्तान्त पूर्ण-रूपसे कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३८—४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें मण्डपादिरचनावर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवका नारदजीके द्वारा सब देवताओंको निमन्त्रण दिलाना, सबका आगमन तथा शिवका मंगलाचार एवं ग्रहपूजन आदि करके कैलाससे बाहर निकलना

नारदजी बोले—हे विष्णुशिष्य! हे महाप्राज्ञ! हे तात! हे विधे! आपको प्रणाम है। हे कृपानिधे! हमलोगोंने आपसे यह अद्भुत कथा सुनी। अब मैं शिवजीके वैवाहिक चरित्रको सुनना चाहता हूँ, जो परम मंगलदायक तथा सब प्रकारकी पापराशिका विनाश करनेवाला है॥ १-२॥

मंगलपत्रिका प्राप्त करनेके बाद महादेवजीने क्या किया? परमात्मा शिवजीकी वह दिव्य कथा सुनाइये॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! हे महाप्राज्ञ! महादेवजीने मंगलपत्रिका प्राप्त करनेके पश्चात् जो किया, भगवान् शंकरके उस यशको सुनिये॥ ४॥

विभु शिवजी प्रसन्नतापूर्वक मंगलपत्रिका ग्रहणकर जोरसे हँसे और उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर उन लग्नपत्रिका

लानेवालोंका बड़ा स्वागत-सम्मान किया॥ ५॥

उन्होंने उस लग्नपत्रिकाको सम्यक् पढ़कर विधि-विधानसे स्वीकार किया तथा उन लोगोंको आदरसे बहुत सम्मानितकर विदा कर दिया। उन्होंने सप्तर्षियोंसे कहा कि आपलोगोंने यह परम कल्याणकारी कार्य ठीकसे सम्पन्न किया। अब मैंने विवाह स्वीकार कर लिया है, अतः मेरे विवाहमें आपलोग [अवश्य] आइयेगा॥ ६-७॥

शिवजीके इस प्रकारके वचनको सुनकर वे परम प्रसन्न हो गये और उनको प्रणामकर तथा उनकी प्रदक्षिणा करके अपने परम भाग्यकी सराहना करते हुए अपने घर चले गये। हे मुने! तब महान् लीला करनेवाले, देवताओंके सहित देवेश्वर प्रभु शिवजीने लौकिकाचारका आश्रयण करते हुए शीघ्र आपका स्मरण किया॥ ८-९॥

उस समय आप अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये और हाथ जोड़कर सिर झुकाकर विनम्रतासे उन्हें प्रणाम करते हुए बारम्बार 'जय' शब्दका उच्चारण करके आपने उनकी स्तुति की। हे मुने! उसके बाद अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए शिवजीसे आज्ञा प्रदान करनेके लिये आपने निवेदन किया॥ १०-११॥

हे मुनिवर! तब प्रसन्नचित्त होकर लौकिकी गतिको दिखाते हुए शुभ वचनोंसे आपको प्रसन्न करते हुए शिवजी कहने लगे—॥ १२॥

शिवजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं जो कहता हूँ, उसे प्रेमपूर्वक सुनिये। आप मेरे परमप्रिय तथा भक्तराजशिरोमणि हैं, इसलिये आपसे कहता हूँ॥ १३॥

आपकी आज्ञासे पार्वतीने जिस प्रकारकी महान् तपस्या की थी, उससे सन्तुष्ट होकर मैंने उसे पति बननेके लिये वरदान दे दिया है॥ १४॥

मैं उसकी भक्तिके वशीभूत होकर अब विवाह करना चाहता हूँ। सप्तर्षियोंने सारा कार्य सम्पन्न कर दिया है और विवाहका लग्न भी निश्चित कर दिया है॥ १५॥

हे नारद! वह विवाह आजके सातवें दिन होगा। मैं लोकरीतिका आश्रय लेकर [वैवाहिक] महोत्सव करूँगा॥ १६॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इस प्रकार परमात्मा शंकरका वचन सुनकर आप परम प्रसन्न हो उन प्रभुको प्रणाम करके यह वचन कहने लगे—॥ १७॥

नारदजी बोले—आपका यह व्रत है कि आप भक्तोंके अधीन रहते हैं और ऐसा सभीका मत भी है, इसलिये आपने यह उचित ही किया; क्योंकि पार्वती यही चाहती भी थीं। हे विभो! अब मेरे योग्य जो कोई कार्य हो, आप मुझे बताइये, आपको प्रणाम है, आप मुझे अपना सेवक मानकर कृपा कीजिये॥ १८-१९॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! जब आपने शिवजीसे इस प्रकार कहा, तब भक्तवत्सल शिवजी प्रसन्नचित्त होकर आदरपूर्वक आपसे कहने लगे—॥ २०॥

शिवजी बोले—हे मुने! आप मेरी ओरसे विष्णु आदि देवों, मुनियों, सिद्धों तथा अन्य लोगोंको भी चारों ओर निमन्त्रण दीजिये। मेरी आज्ञाको मानते हुए उपर्युक्त सभी लोग उत्साह तथा शोभासे युक्त हो अपनी स्त्री, पुत्र तथा गणोंके सहित इस विवाहमें आयें॥ २१-२२॥

हे मुने! जो इस विवाहोत्सवमें सम्मिलित नहीं होंगे, उन्हें मैं अपना नहीं मानूँगा, चाहे वे देवता ही क्यों न हों॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! ईश्वरकी इस आज्ञाको स्वीकार करके शिवप्रिय आपने शीघ्रतासे उन-उनके यहाँ जाकर सबको निमन्त्रण दे दिया॥ २४॥

हे नारद! इस प्रकार शिवजीके दूतका कार्य शीघ्रतासे सम्पन्नकर शिवजीके पास आकर आप मुनिवर उनकी आज्ञासे वहीं बैठ गये। शिवजी भी उन लोगोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। उनके गण सभी जगह नृत्य-गान-पूर्वक उत्सव करने लगे॥ २५-२६॥

इसी समय अत्यन्त सुन्दर वेश-भूषासे सुसज्जित होकर भगवान् विष्णु अपने परिकरोंके साथ कैलास आये॥ २७॥

वे अपनी भार्या तथा पार्षदोंके साथ भक्तिपूर्वक प्रणामकर उनकी आज्ञा प्राप्त करके प्रसन्नचित्त हो बैठ गये। उसके बाद मैं भी अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक कैलासपर्वतपर गया और प्रभुको प्रणाम करके अपने गणोंसहित आनन्दित हो बैठ गया॥ २८-२९॥

इन्द्र आदि लोकपाल भी अपनी पत्नियों तथा सेवकोंके सहित नाना प्रकारके अलंकारोंसे अलंकृत हो उत्सव मनाते हुए वहाँ आये॥ ३०॥

इसी प्रकार निमन्त्रित मुनि, नाग, सिद्ध तथा उपदेव एवं अन्य दूसरे लोग भी वहाँ आये॥ ३१॥

उस समय महेश्वरने वहाँ आये उन सभी देवता आदिका प्रसन्नतासे पृथक्-पृथक् सत्कार किया॥ ३२॥

उस समय कैलासपर देवस्त्रियोंने यथायोग्य नृत्य आदि करना प्रारम्भ कर दिया तथा वहाँ अद्भुत एवं महान् उत्सव होने लगा॥ ३३॥

हे मुने! इसी समय जो विष्णु आदि देवगण शिवके यहाँ आये हुए थे, वे सब शिवकी वरयात्राकी तैयारी करानेके लिये प्रसन्नतासे निवास करने लगे॥ ३४॥

उस समय शिवजीकी आज्ञासे आये हुए सभी लोग शिवजीके कार्यको यह मेरा ही कार्य है—ऐसा समझकर शिवकी सेवा करने लगे॥ ३५॥

सप्तमातृकाओंने शिवजीके विवाहका दूलह वेष बड़े प्रेमसे शिवजीके अनुरूप सजाया॥ ३६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! परमेश्वर प्रभुकी इच्छासे ही उनके स्वाभाविक वेषको भूषणोंसे सजाया गया॥ ३७॥

सप्तमातृकाओंने मुकुटके स्थानपर चन्द्रमाको बाँध दिया। उनके ललाटमें रहनेवाला तीसरा नेत्र तिलकरूपसे शोभित किया गया॥ ३८॥

हे मुने! नाना रत्नोंसे देदीप्यमान दो सर्प दोनों कानोंको अलंकृत करनेवाले कुण्डलके रूपमें शोभित हुए॥ ३९॥

उनके अंगमें निवास करनेवाले अन्य सर्प अनेक रत्नोंसे युक्त आभूषणोंके समान सुशोभित हुए॥ ४०॥

उनके शरीरमें लगी हुई विभूति चन्दनादि पदार्थोंसे उत्पन्न उत्तम अंगराग हो गया। उनका परम सुन्दर गजचर्म दिव्य दुकूलके समान हो गया॥ ४१॥

उस समय शिवजीका ऐसा सुन्दर रूप हो गया, जो अवर्णनीय था। वे साक्षात् ईश्वर हैं, अतः उन्होंने सभी ऐश्वर्य धारण कर लिया था। उस समय सभी देवता, दानव, नाग, पन्नग, अप्सराएँ तथा महर्षिगण उत्सवसे युक्त होकर शिवजीके समीप जाकर प्रसन्न हो कहने लगे॥ ४२-४३॥

सभी लोग कहने लगे—हे महादेव! हे महेश्वर! हिमालयपुत्री महादेवी पार्वतीसे विवाह करनेके लिये आप हम सभीके साथ कृपापूर्वक प्रस्थान करें॥ ४४॥

तदुपरान्त शिवतत्त्वको जाननेके कारण प्रसन्न चित्तवाले विष्णुने भक्तिपूर्वक शिवजीको प्रणामकर उस प्रस्तावके अनुरूप कहना प्रारम्भ किया॥ ४५॥

विष्णु बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। अतः हे प्रभो! मेरा निवेदन सुनें॥ ४६॥

हे शम्भो! हे शंकर! आप गृह्यसूत्रकी विधिसे गिरीशसुता देवी पार्वतीके साथ अपने विवाहका कर्म कीजिये। हे हर! यदि आप गृह्यसूत्रकी विधिसे विवाहकर्म करेंगे, तो सारे लोकमें इसी प्रकारसे विवाहकी विधि प्रसिद्ध हो जायगी। हे नाथ! इस लोकमें आप अपने यशकी घोषणा करते हुए कुलधर्मके अनुसार मण्डपस्थापन तथा नान्दीमुख-कृत्य प्रसन्नतापूर्वक कीजिये॥ ४७—४९॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णुके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परमेश्वर शंकरजीने समस्त लौकिकाचार मुझ ब्रह्माके द्वारा सम्पन्न करवाया। [हे नारद!] उन्होंने सारे अभ्युदयका कार्यभार मेरे ऊपर सौंप दिया और मैंने भी मुनियोंके साथ प्रेमपूर्वक सभी कृत्योंको पूरा किया॥ ५०-५१॥

हे महामुने! कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, भागुरि, गुरु, कण्व, बृहस्पति, शक्ति, जमदग्नि, पराशर, मार्कण्डेय, शिलापाक, अरुणपाल, अकृतश्रम, अगस्त्य, च्यवन, गर्ग, शिलाद, दधीचि, उपमन्यु, भरद्वाज, अकृतव्रण, पिप्पलाद, कुशिक, कौत्स, शिष्योंके सहित व्यास—ये तथा अन्य बहुत-से ऋषिगण शिवजीके समीप आये और मेरी प्रेरणासे उन्होंने विधिवत् क्रिया सम्पन्न की॥ ५२—५५॥

वेद-वेदांगके पारगामी उन ऋषियोंने शिवजीका समस्त कौतुक-मंगलकर वेदरीतिके अनुसार उनकी रक्षाका विधान किया। उन सम्पूर्ण ऋषियोंने ऋक्, यजुः, साम एवं अन्य नाना प्रकारके रक्षोघ्नसूक्तोंसे अनेक प्रकारसे मंगलपाठ किये। उन्होंने विघ्नशान्तिके लिये मुझसे तथा श्रीशिवजीसे मण्डपस्थ देवताओं तथा समस्त ग्रहोंका पूजन करवाया॥ ५६—५८॥

इस प्रकार शिवजीने प्रसन्न होकर समस्त लौकिक कुलाचार तथा वैदिक विधिका सम्पादनकर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको प्रणाम किया। उसके बाद देवताओं और ब्राह्मणोंको आगेकर सर्वेश्वर शिवजी अपने पर्वतोत्तम कैलाससे प्रसन्नतापूर्वक चले॥ ५९-६०॥

लीला करनेमें प्रवीण वे शिवजी उन देवताओं तथा ब्राह्मणोंके साथ कैलासके बहिर्भागमें आकर प्रेमसे स्थित हो गये॥ ६१॥

देवताओंने उस समय महेशकी प्रसन्नताके लिये अनेक प्रकारके गाने-बजाने तथा नृत्य-सम्बन्धी अनेक प्रकारके उत्सव किये॥ ६२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवनिमन्त्रण, देवागमन, शिवयात्रावर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

शिवबरातकी शोभा, भगवान् शिवका बरात लेकर हिमालयपुरीकी ओर प्रस्थान

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर भगवान् शम्भुने नन्दी आदि सब गणोंको बुलाकर अपने साथ उन्हें वहाँ चलनेकी आज्ञा दी॥ १॥

शिवजी बोले—तुमलोग कुछ गणोंको यहीं रोककर महोत्सव करते हुए मेरे साथ हिमाचलपुरीको चलो॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीकी आज्ञा पाकर सभी गणेश्वर अपनी-अपनी टोली लेकर प्रसन्नतापूर्वक चलने लगे, मैं कुछ अंशमें उनका वर्णन करता हूँ—॥ ३॥

शंखकर्ण नामक गणेश्वर अपने एक करोड़ गणोंसहित शिवजीके साथ हिमालयपुरीको चलनेके लिये उद्यत हुआ। केकराक्ष नामक गणराज दस करोड़ गणोंके साथ महान् उत्सवसे चला। इसी प्रकार विकृत नामक गणराज भी आठ करोड़ गणोंके साथ चला॥ ४-५॥

गणनायक विशाख चार करोड़ गणोंके साथ तथा गणश्रेष्ठ पारिजात नौ करोड़ गणोंके साथ चले॥ ६॥

श्रीमान् सर्वान्तक तथा विकृतानन साठ-साठ करोड़ गण लेकर चले। दुन्दुभ नामक गणनायक आठ करोड़ गणोंके साथ चला। हे मुने! कपाल नाम गणेश्वर पाँच करोड़ गणोंके साथ और वीर सन्दारक छः करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ ७-८॥

कन्दुक तथा कुण्डक एक-एक करोड़ गणोंके साथ और गणेश्वर विष्टम्भ आठ करोड़ गणोंके साथ चले॥ ९॥

हे मुनिसत्तम! पिप्पल नामक गणेश्वर एक सहस्रकोटि गणोंके साथ और इतने ही गणोंके साथ वीर गणेश्वर सनादक प्रसन्नतापूर्वक चले॥ १०॥

गणेश्वर आवेशन आठ करोड़ गणोंके साथ तथा गणाधीश महाकेश सहस्र कोटि गणोंके साथ चले॥ ११॥

हे मुने! इसी प्रकार कुण्ड और पर्वतक बारह करोड़ गणोंको तथा वीर चन्द्रतापन आठ करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ १२॥

काल, कालक, महाकाल तथा अग्निक नामक गणनायक सौ-सौ करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ १३॥

इसी प्रकार अग्निमुख, आदित्यमूर्धा तथा घनावह एक-एक करोड़ गणोंको साथ लेकर चले॥ १४॥

सन्नाह, कुमुद, अमोघ और कोकिल नामक गणराज सौ-सौ करोड़ गण लेकर चले। गणाध्यक्ष सुमन्त्र करोड़ों-करोड़ों गणोंको लेकर तथा काकपादोदर एवं सन्तानक साठ करोड़ गणोंको लेकर चले॥ १५-१६॥

महाबल नौ करोड़ और मधुपिंग, कोकिल, नील तथा पूर्णभद्र नब्बे करोड़ गणोंके साथ चले॥ १७॥

चतुर्वक्त्र सात करोड़, करण बीस करोड़ तथा गणेश्वर नब्बे करोड़ गणोंके साथ चले॥ १८॥

इसी प्रकार हे नारद! यज्वाक्ष, शतमन्यु एवं मेघमन्यु—ये सभी गणेश्वर नब्बे-नब्बे करोड़ गणोंके साथ पृथक्-पृथक् चले॥ १९॥

गणनायक काष्ठांगुष्ठ, विरूपाक्ष, सुकेश, सनातन और वृषभ चौंसठ करोड़ गणोंके साथ चले॥ २०॥

हे मुने! तालकेतु, षण्मुख, चंचुमुख, सनातन, संवर्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयंप्रभु, लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, देव भृंगिरिटि, श्रीमान्, देवदेवप्रिय, अशनि, भानुक आदि चौंसठ हजार गणोंके साथ बड़े उत्साहसे शिवजीके विवाहके लिये उनके साथ चले॥ २१—२३॥

प्रमथगण सहस्रों भूतगणोंके साथ तथा तीन करोड़ अपने गणोंके साथ चले। वीरभद्र चौंसठ करोड़ गणोंके साथ

तथा तीन करोड़ रोमज प्रेतगणोंको साथ लेकर चले॥ २४॥

इसी प्रकार नन्दी आदि गणेश्वर भी एक सौ बीस हजार करोड़ गणोंसे युक्त होकर शंकरके उत्सवमें चले॥ २५॥

यह शंकरका विवाह-महोत्सव है—ऐसा जानकर क्षेत्रपाल, भैरव करोड़-करोड़ गणोंके साथ प्रीतिपूर्वक आये। ये गण तथा शिवके असंख्य गण जो अत्यन्त बलवान् थे, वे उत्साह तथा प्रीतिसे युक्त हो शिवजीके विवाहोत्सवमें वहाँ गये॥ २६-२७॥

इन सभी गणेश्वरोंके हजारों हाथ थे तथा वे सिरपर जटामुकुट धारण किये हुए थे। वे मस्तकपर चन्द्ररेखा धारण किये हुए थे, नीले कण्ठसे युक्त थे तथा तीन नेत्रोंवाले थे। वे सब आभूषणके रूपमें रुद्राक्ष धारण किये हुए थे। उत्तम भस्म लगाये हुए थे। हार, कुण्डल, केयूर तथा मुकुटसे अलंकृत थे। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्रके समान अणिमादि गुणोंसे अलंकृत कोटि सूर्यके समान देदीप्यमान वे सभी गणेश्वर शोभासे समन्वित थे॥ २८—३०॥

हे मुने! इनमें कुछ पृथिवीपर, कुछ पातालमें चलनेवाले तथा कोई आकाशगामी तथा कोई सप्तस्वर्गमें विचरण करनेवाले थे। हे देवर्षे! मैं बहुत वर्णन क्या करूँ, सभी लोकोंमें रहनेवाले वे सभी गणेश्वर शिवके विवाहका महोत्सव देखनेके लिये बड़े प्रेमसे आये॥ ३१-३२॥

इस प्रकार इन देवताओं तथा गणोंसे युक्त भगवान् सदाशिवने अपना विवाह करनेके लिये हिमालयके नगरको प्रस्थान किया। हे मुनीश्वर! जिस समय सर्वेश्वर शिवजी देवताओं एवं गणोंके साथ विवाहके लिये चले, उस समयका वृत्तान्त सुनिये॥ ३३-३४॥

शत्रुओंको भय देनेवाली चण्डी रुद्रकी भगिनी बनकर उत्सव मनाती हुई बड़े प्रेमके साथ वहाँ आयी॥ ३५॥

वह चण्डी प्रेतके आसनपर सवार थी; सर्पका आभूषण पहने हुई थी और सिरपर महादेदीप्यमान जलपूर्ण कलश धारण किये हुई थी। वह अपने परिवारसे युक्त थी। उसके मुख तथा नेत्रसे अग्निकी ज्वाला निकल रही थी। वह बलशालिनी हर्षसे युक्त होकर नाना प्रकारके कुतूहल कर रही थी॥ ३६-३७॥

हे मुने! वहाँ विकृत वेष धारण किये हुए अनेक प्रकारके करोड़ों दिव्य भूतगण शोभित हो रहे थे॥ ३८॥

इन भूतगणोंको साथ लेकर भयानक मुखवाली उपद्रवकारिणी वह चण्डी कुतूहल करती हुई प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गयी॥ ३९॥

उस चण्डीने रुद्रमें अनन्य प्रीति करनेवाले ग्यारह हजार करोड़ रुद्रगणोंको अपने पीछे कर लिया॥ ४०॥

उस समय डमरूके शब्द, भेरियोंकी गड़गड़ाहट और शंखोंके नादसे तीनों लोक गूँज रहे थे॥ ४१॥

इसी प्रकार दुन्दुभिके निर्घोषसे बहुत बड़ा कोलाहल हुआ, जो जगत्‌में मंगल करनेवाला तथा अमंगलका विनाशक था। मुने! बरातमें गणोंके पीछे होकर सभी देवता, सिद्धगण तथा लोकपाल अत्यन्त उत्कण्ठाके साथ चलने लगे॥ ४२-४३॥

हे मुने! बरातके मध्यभागमें बहुत बड़े छत्रसे शोभित गरुड़ासनपर बैठे हुए भगवान् वैकुण्ठनाथ विष्णु विविध प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होकर चल रहे थे। उनके अगल-बगल पार्षद घेरे हुए थे तथा उनके दोनों ओर चँवर डुलाये जा रहे थे॥ ४४-४५॥

विग्रहधारी वेदों, शास्त्रों, पुराणों, आगमों तथा सनक आदि महासिद्धों, प्रजापतियों, पुत्रों और परिवारके साथ मैं भी शिवजीकी सेवामें तत्पर हो मार्गमें शोभासम्पन्न होकर चल रहा था। ऐरावत हाथीपर आरूढ़ देवराज इन्द्र अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित होकर सेनाके मध्यमें चलते हुए शोभा पा रहे थे॥ ४६—४८॥

उस समय विवाह देखनेकी उत्कण्ठासे बहुत-से ऋषिगण भी मार्गमें जाते हुए शोभा पा रहे थे॥ ४९॥

इसी प्रकार शाकिनी, यातुधान, वेताल, ब्रह्मराक्षस, भूत, प्रेत, पिशाच, प्रमथ, तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू आदि श्रेष्ठ गन्धर्व एवं किन्नरगण हर्षित होकर बाजा बजाते हुए चले॥ ५०-५१॥

सम्पूर्ण जगत्‌की माताएँ, देवकन्याएँ, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी, अन्य देवस्त्रियाँ—ये सब तथा अन्य देवपत्नियाँ और जगन्माताएँ शंकरजीका विवाह हो रहा है—ऐसा जानकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गयीं॥ ५२-५३॥

शुद्ध स्फटिकके समान सर्वसुन्दर वृषभ, जिसे वेदों, शास्त्रों तथा महर्षियोंने धर्म कहा है, उसपर सवार होकर

धर्मवत्सल भगवान् शिवजी सम्पूर्ण देवगणों तथा ऋषियोंसे सेवित हो मार्गमें चलते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। इन सभी देवगणों, महर्षियों तथा गणोंके साथ अलंकृत हुए शिवजी पार्वतीसे विवाह करनेके लिये हिमाचलके घर जाते हुए मार्गमें अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे॥ ५४-५६॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने शिवजीके वरयात्रा-प्रस्थानका आपसे वर्णन किया, अब हिमालयके नगरमें जो शिवचरित्र हुआ, उस वृत्तान्तको सुनिये॥ ५७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवयात्रावर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

नारदद्वारा हिमालयगृहमें जाकर विश्वकर्माद्वारा बनाये गये विवाहमण्डपका दर्शनकर मोहित होना और वापस आकर उस विचित्र रचनाका वर्णन करना

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उसके बाद आपसमें विचार-विमर्शकर शंकरजीकी आज्ञा लेकर भगवान् विष्णुने पहले आपको हिमालयके घर भेजा। हे नारद! भगवान् श्रीहरिकी प्रेमपूर्ण प्रेरणासे सर्वेश्वर शिवको प्रणामकर आप बरातसे आगे हिमालयके नगरको चले॥ १-२॥

हे मुने! वहाँ जाकर आपने विश्वकर्माद्वारा रचित लज्जाकी मुद्रासे युक्त अपनी कृत्रिम मूर्ति देखी और उसे देखते ही आप विस्मित हो गये। हे महामुने! विश्वकर्माद्वारा बनायी गयी अपनी मूर्तिको देखकर तथा विश्वकर्माका सारा चरित्र जानकर आप श्रान्त हो गये। तत्पश्चात् आपने स्वर्णकलशोंसे एवं केलेके खम्भोंसे अत्यन्त मण्डित रत्नचित्रित हिमालयके मण्डपमें प्रवेश किया॥ ३—५॥

वह मण्डप अति अद्भुत, नाना प्रकारके चित्रोंसे अलंकृत तथा हजारों खम्भोंसे युक्त था। उसमें बनी हुई वेदी देखकर आप आश्चर्यमें पड़ गये॥ ६॥

हे मुने! हे नारद! उस विस्मयके कारण आपका ज्ञान एवं बुद्धि नष्ट हो गयी, पुनः आपने हिमालयसे पूछा—॥ ७॥

हे हिमालय! क्या इस समय विष्णु आदि सभी देवता, महर्षि, सिद्ध एवं गन्धर्व यहाँ पहुँच गये हैं? हे पर्वतराज! क्या विवाहहेतु श्वेत बैलपर सवार होकर गणेश्वरोंसे युक्त सदाशिव पधार चुके हैं? यह बात आप सत्य-सत्य कहिये॥ ८-९॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! विस्मितचित्त हुए आपके इस प्रकारके वचनको सुनकर पर्वत हिमालय आपसे तथ्ययुक्त वचन कहने लगे—॥ १०॥

हिमवान् बोले—हे नारद! हे महाप्राज्ञ! अभी पार्वतीके विवाहके लिये अपने गणों तथा बरातियोंको लेकर शिवजी नहीं आये हैं॥ ११॥

हे नारद! आप उत्तम बुद्धिसे विश्वकर्माके द्वारा रचित चित्र जानिये। हे देवर्षे! आप आश्चर्यका त्याग कीजिये, स्वस्थ हो जाइये और शिवका स्मरण कीजिये॥ १२॥

आप मुझपर कृपाकर भोजन तथा विश्राम करके मैनाक आदि पर्वतोंके साथ शंकरके समीप जाना॥ १३॥

हे महामते! जिनके चरणकमलकी अर्चना देवता तथा असुर भी किया करते हैं, उन शिवकी प्रार्थनाकर आप इन पर्वतोंको साथ लेकर देवताओं तथा महर्षियोंसहित उन्हें यहाँ शीघ्र ले आइये॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तब आपने 'तथास्तु' कहा और वहाँका सारा कृत्य अच्छी तरह सम्पन्नकर भोजन करके महामनस्वी आप हिमालयके पुत्रोंसहित बड़ी प्रसन्नतासे शीघ्र शिवजीके समीप गये॥ १५॥

वहाँ आपने देवताओंसे घिरे हुए महादेवजीको देखा। आपने तथा उन पर्वतोंने भक्तिसे उन कान्तिमान् शिवको प्रणाम किया॥ १६॥

तत्पश्चात् हे मुने! अनेक प्रकारके अलंकारोंसे युक्त मैनाक, सह्य, मेरु आदि पर्वतोंको देखकर सन्देहसे आकुल मनवाले मैंने, विष्णुने तथा इन्द्रसे युक्त देवताओं एवं रुद्रानुचरोंने विस्मित होकर आपसे पूछा—॥ १७-१८॥

देवता बोले—हे नारद! हे महाप्राज्ञ! आप तो

आश्चर्यसे चकित दिखायी पड़ते हैं, हिमालयने आपका सत्कार किया या नहीं। हमलोगोंको यह विस्तारपूर्वक बताइये। ये महाबली मैनाक, सह्य तथा मेरु आदि पर्वत अनेक अलंकार धारणकर यहाँ किस उद्देश्यसे आये हैं। हे नारद! आप यह भी बताइये कि पर्वतराज हिमालयका विचार शिवजीको कन्या देनेका है या नहीं? हे तात! इस समय हिमालयके यहाँ क्या हो रहा है, यह सब विस्तारसे कहिये॥ १९—२१॥

हे सुव्रत! हम देवताओंका मन अनेक प्रकारके सन्देहसे ग्रस्त हो रहा है, इसलिये हमलोग आपसे पूछ रहे हैं, आप हमारा सन्देह दूर करें॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उन विष्णु आदि देवताओंका वचन सुनकर विश्वकर्माकी मायासे विस्मित हुए आपने उनसे कहा—॥ २३॥

हे मुने! आप मुझ विष्णुको और सभी देवताओंके ईश्वर शचीके पति, पर्वतोंके पूर्व शत्रु तथा पर्वतोंके पक्षको काटनेवाले इन्द्रको एकान्तमें बुलाकर कहने लगे—॥ २४॥

नारदजी बोले—विश्वकर्माने हिमालयके घर जैसी कारीगरी की है, उसे देखते ही सभी देवगण मोहित हो जायँगे। वे हिमालय तो उस कारीगरीके कौशलसे सारे देवताओंको प्रेमपूर्वक युक्तिसे मोहित करना चाहते हैं॥ २५॥

हे शचीपते! आपने पूर्वकालमें विश्वकर्माको भुलावेमें डाल दिया था, क्या उसे आप भूल गये हैं? इसलिये वे आज आपको जीतनेकी इच्छासे हिमालयके घरमें विराजमान हैं। उन्होंने मेरा ऐसा चित्र बनाया है कि उसे देखकर मैं तो मोहित हो गया हूँ। इसी प्रकार उन्होंने विष्णु, ब्रह्मा तथा इन्द्र आदि देवताओंके चित्रका भी निर्माण किया है॥ २६-२७॥

हे देवेश! अधिक कहनेसे क्या! उन विश्वकर्माने सभी देवगणोंका चित्र इतनी कुशलतासे बनाया है कि वह यथार्थ देवताओंके रूपसे किंचिन्मात्र भी भिन्न नहीं जान पड़ता। उन्होंने परिहास करनेके लिये सभी देवताओंकी यह मायामयी चित्ररचना की है, जिससे देवताओंको मोह उत्पन्न हो जाय॥ २८-२९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार नारदके वचनको सुनकर भयसे व्याकुल शरीरवाले देवेन्द्रने विष्णुकी ओर देखकर शीघ्रतासे कहा—॥ ३०॥

देवेन्द्र बोले—हे देवदेव! हे रमानाथ! त्वष्टापुत्र विश्वकर्मा शोकसे व्याकुल हो मुझसे द्रोह करता है। कहीं ऐसा न हो कि वह इसी बहाने मेरा वध कर दे॥ ३१॥

ब्रह्माजी बोले—उनका यह वचन सुनकर देवाधिदेव जनार्दन उन्हें समझाते हुए कहने लगे—॥ ३२॥

विष्णुजी बोले—हे शचीपते! आपके वैरी निवातकवचादि दानवगणोंने महाविद्याके बलसे पूर्वसमयमें भी आपको मोहित किया था। हे वासव! इसी प्रकार आपने मेरी आज्ञासे पर्वतराज हिमालयके तथा अन्य दूसरे पर्वतोंके पंखका छेदन कर दिया है। इस कारण ये पर्वत भी उसी मायाको देखकर तथा सुनकर आपको जीतनेकी इच्छा करते हैं। ये सभी मूर्ख हैं और पराक्रम नहीं जानते हैं, अतः आप इनसे भयभीत न हों॥ ३३—३५॥

हे देवेन्द्र! इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि भक्तवत्सल भगवान् सदाशिव हम सभीका मंगल करेंगे॥ ३६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार व्याकुल हुए इन्द्रको देखकर विष्णुने उन्हें समझाया। तब लौकिक गतिका आश्रय लेनेवाले भगवान् शिव उनसे कहने लगे—॥ ३७॥

ईश्वर बोले—हे हरे! हे सुरपते! आपलोग आपसमें क्या विचार-विमर्श कर रहे हैं? [ब्रह्माजी बोले—] उन दोनोंसे इस प्रकार कहकर हे मुने! पुनः उन्होंने आपसे कहा—हे नारद! महाशैलने क्या कहा है, आप यथार्थ रूपसे सारा वृत्तान्त कहिये, आप उसे गुप्त न रखें॥ ३८-३९॥

आप शीघ्रतासे बताइये कि शैलराजकी कन्या देनेकी इच्छा है अथवा नहीं? हे तात! आपने वहाँ जाकर क्या देखा और क्या किया? यह सारा वृत्तान्त प्रेमपूर्वक कहिये॥ ४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! जब शिवजीने आपसे यह कहा, तब दिव्य दृष्टिवाले आपने मण्डपमें जो कुछ देखा था, वह सब एकान्तमें इस प्रकार कहा—॥ ४१॥

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! आप मेरा शुभ वचन सुनें। इस विवाहमें किसी प्रकारके विघ्न दिखायी नहीं पड़ते और न तो किसी प्रकारका भय ही है॥ ४२॥

शैलराज निश्चित रूपसे आपको ही अपनी कन्या देना चाहते हैं और ये पर्वत इसी निमित्त आपको लेनेकी इच्छासे यहाँ आये हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४३॥

हे सर्वज्ञ! परंतु एक बात यह है कि कुतूहलवश

वहाँ सभी देवताओंको मोहित करनेके लिये एक अद्भुत माया रची गयी है। इसके अतिरिक्त वहाँ और किसी प्रकारके विघ्नकी सम्भावना नहीं है ॥ ४४ ॥

हे विभो! महामाया करनेवाले विश्वकर्माने हिमालयकी आज्ञासे उनके घरमें महान् आश्चर्ययुक्त मण्डपकी रचना की है। उस मण्डपमें विश्वकर्माने सारे देवसमाजके चित्रका निर्माण किया है, उसे देखकर मैं मोहित होकर आश्चर्यमें पड़ गया हूँ ॥ ४५-४६ ॥

ब्रह्माजी बोले—नारदका वचन सुनकर लोकाचार करनेवाले प्रभु शिवजी विष्णु आदि देवताओंसे हँसते हुए कहने लगे— ॥ ४७ ॥

ईश्वर बोले—हे विष्णो! यदि पर्वत हिमालय मुझे अपनी कन्या देंगे, तो आप यथार्थ रूपसे बताइये कि मुझे मायासे क्या प्रयोजन है? ॥ ४८ ॥

हे ब्रह्मन्! हे शक्र! हे मुनिगण तथा हे देवताओ! आपलोग यथार्थ रूपसे कहिये कि हिमालय मुझे अपनी कन्या दे रहे हैं, तो मायासे मेरा क्या प्रयोजन है? ॥ ४९ ॥

न्यायशास्त्रके जानकार पण्डितोंने कहा है कि जिस किसी उपायसे अपने साध्यको प्राप्त करना चाहिये। अतः आप सभी विष्णु आदि देवगण इस कार्यसिद्धिकी इच्छासे शीघ्र ही चलें ॥ ५० ॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओंसे इस प्रकार कहनेवाले जितेन्द्रिय भगवान् सदाशिवको कामदेवने साधारण मनुष्यके समान अपने वशमें कर लिया। उसके बाद शिवजीकी आज्ञासे विष्णु आदि देवता एवं ऋषिगण भ्रान्त तथा मोहित करनेवाले हिमालय-गृहकी ओर गये ॥ ५१-५२ ॥

हे मुने! उन देवताओंने आप नारदको तथा उन पर्वतोंको आगेकर आश्चर्यचकित हो हिमालयके अपूर्व एवं परम अद्भुत मन्दिरकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५३ ॥

इस प्रकार हर्षमें भरे हुए विष्णु आदि देवताओं तथा प्रसन्नतासे युक्त अपने गणोंके साथ वे शिवजी आनन्दित होकर हिमालयके नगरके समीप आ गये ॥ ५४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें मण्डपरचनावर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४१ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

हिमालयद्वारा प्रेषित मूर्तिमान् पर्वतों और ब्राह्मणोंद्वारा बरातकी अगवानी, देवताओं और पर्वतोंके मिलापका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—गिरिराज हिमालय सर्वव्यापी शिवजीको अपने नगरके निकट आया हुआ सुनकर बड़े प्रसन्न हुए ॥ १ ॥

तदनन्तर उन्होंने सभी सामग्री एकत्रित करके परमेश्वरकी अगवानी करनेके लिये बहुत-से ब्राह्मणों तथा पर्वतोंको भेजा और प्राणोंसे प्रिय ईश्वरका दर्शन करनेके लिये भक्तिसे परिपूर्ण हृदयवाले वे हिमालय अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक स्वयं भी गये ॥ २-३ ॥

उस समय देवसेनाको देखकर हिमवान् विस्मित हो गये और मैं धन्य हूँ—ऐसा सोचते हुए वे उनके सामने गये। देवता भी हिमालयकी [विशाल] सेनाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। इस प्रकार देवताओं तथा पर्वतोंको परम आनन्द प्राप्त हुआ ॥ ४-५ ॥

हे मुने! [उस समय] देवताओं तथा पर्वतोंकी विशाल सेना मिलकर पूर्व तथा पश्चिम सागरके समान शोभित हुई। वे देवता तथा पर्वत परस्पर मिलकर बड़ी प्रसन्नतासे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे ॥ ६-७ ॥

उसके बाद हिमालयने ईश्वरको सामने देखकर उन्हें प्रणाम किया और सभी पर्वतों तथा ब्राह्मणोंने भी सदाशिवको प्रणाम किया ॥ ८ ॥

हिमालयने वृषभपर सवार, प्रसन्न मुखवाले, नानालंकारोंसे शोभित, अपने दिव्य शरीरकी शोभासे दिगन्तरोंको प्रकाशित करनेवाले, अत्यन्त सूक्ष्म तथा नवीन रेशमी वस्त्रसे शोभित विग्रहवाले, सिरपर रत्नोंसे जटित मुकुट धारण किये हुए, हँसते हुए, शुभ्र कान्तिवाले, सर्पोंके अलंकारोंसे सुशोभित अंगवाले, अंगोंकी अद्भुत

प्रभावाले, दिव्य कान्तिसे सम्पन्न, हाथोंमें चँवर धारण किये देवताओंद्वारा सेवित, बायीं ओर अच्युत, दाहिनी ओर ब्रह्मा, पृष्ठभागमें इन्द्र और पीछे तथा पार्श्वभागमें देवता आदिसे शोभायमान, अनेकविध देवता आदिके द्वारा स्तुत, संसारका कल्याण करनेवाले, अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले, ब्रह्मस्वरूप, सर्वेश्वर, वर प्रदान करनेवाले, निर्गुण तथा सगुण रूपवाले, भक्तोंके अधीन रहनेवाले, कृपा करनेवाले, प्रकृति तथा पुरुषसे भी परे और सच्चिदानन्दस्वरूप शिवको देखा॥ ९—१४॥

हिमालयने प्रभुके दक्षिण भागमें गरुड़पर सवार तथा नाना प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित अच्युत श्रीहरिको देखा॥ १५॥

हे मुने! उन्होंने प्रभुके वामभागमें चार मुखवाले, महान् शोभावाले तथा अपने परिवारसे युक्त मुझे देखा॥ १६॥

इस प्रकार शिवके परम प्रिय हम दोनों सुरेश्वरोंको देखकर गिरीशने परिवारसहित आदरसे प्रणाम किया॥ १७॥

फिर गिरीश्वरने देवाधिदेव सदाशिवके पीछे तथा पार्श्वभागमें स्थित हुए सभी देवताओंको प्रणाम किया॥ १८॥

इसके बाद शिवजीकी आज्ञासे गिरिराज हिमालय आगे होकर अपने नगरमें प्रविष्ट हुए, तदनन्तर शेष, विष्णु तथा ब्रह्मा भी देवताओंके साथ नगरमें गये॥ १९॥

हे नारद! प्रभुके साथ जाते हुए सभी मुनि, देवता आदि एवं देवगण परम प्रसन्न हो हिमालयके नगरकी प्रशंसा करने लगे। उसके बाद हिमालय सुरम्य तथा निवासके योग्य बनाये गये अपने शिखरपर देवता आदिको ठहराकर स्वयं वहाँ चले गये, जहाँ वेदी बनी थी॥ २०-२१॥

उसे चौकोर तथा तोरणोंसे विशेष रूपसे सुसज्जित कराकर स्नान-दानादि क्रियाकर उन्होंने [विधिपूर्वक] वहाँका निरीक्षण किया॥ २२॥

तदनन्तर पर्वतराज हिमालयने विष्णु आदि सम्पूर्ण वर्गसे युक्त शिवके समीप अपने पुत्रोंको भेजा॥ २३॥

वे पर्वतराज परम प्रसन्न हो अपने बन्धुगणोंके साथ महान् उत्सवपूर्वक वरका यथोचित आचार करना चाहते थे। तब उन पर्वतपुत्रोंने वहाँ जाकर अपने वर्गोंके सहित विराजमान उन शिवको प्रणाम करके शैलेश्वरकी वह प्रार्थना सुनायी॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् वे पर्वतपुत्र उनकी आज्ञासे अपने घर चले गये और प्रसन्न होकर शैलराजसे बोले कि अब लोग आ रहे हैं। हे मुने! इसपर शिवजीसहित विष्णु आदि समस्त देवता गिरिराजकी वह प्रार्थना सुनकर परम प्रसन्न और अत्यन्त आह्लादित हो गये। उसके बाद सभी देवता, मुनि, गण तथा अन्य लोग उत्तम वेशभूषा धारण करके प्रभुके साथ पर्वतराजके घर गये॥ २६—२८॥

उस अवसरपर मेनाने शिवजीको देखना चाहा और हे मुने! प्रभुको देखनेके लिये उन्होंने आप मुनिश्रेष्ठको बुलवाया। तब हे मुने! आप प्रभुसे प्रेरित होकर शिवजीके हृदयकी बात पूर्ण करनेकी इच्छासे युक्त मनसे वहाँ गये॥ २९-३०॥

हे मुने! आपको प्रणाम करके विस्मित मनवाली मेना भगवान् शंकरके मदविनाशक रूपको देखनेकी इच्छासे [आपसे] कहने लगीं॥ ३१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें देवताओं तथा पर्वतोंका मिलाप-वर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

मेनाद्वारा शिवको देखनेके लिये महलकी छतपर जाना, नारदद्वारा सबका दर्शन कराना, शिवद्वारा अद्भुत लीलाका प्रदर्शन, शिवगणों तथा शिवके भयंकर वेषको देखकर मेनाका मूर्च्छित होना

मेना बोलीं—हे मुने! मैं पहले गिरिजाके होनेवाले पतिको देखूँगी। जिनके लिये उसके द्वारा उत्तम तप किया गया है, उन शिवका रूप कैसा है?॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार अज्ञानके वशीभूत वे मेना शिवका दर्शन करनेके लिये आपके साथ शीघ्र ही चन्द्रशालापर गयीं। हे तात! उस समय प्रभु

शिवजी भी अपने प्रति उनके अहंकारको जानकर अद्भुत लीला करके मुझसे और विष्णुसे बोले— ॥ २-३ ॥

शिवजीने कहा—हे तात! आप दोनों मेरी आज्ञासे देवताओंके साथ अलग-अलग पर्वत हिमालयके दरवाजेपर चलें। हमलोग बादमें चलेंगे ॥ ४ ॥

ब्रह्माजी बोले—यह सुनकर विष्णुने सभी देवगणोंको बुलाकर वैसा करनेको कहा। उसके बाद सभी देवता शिवमें चित्त लगाये हुए उत्सुक होकर चलने लगे ॥ ५ ॥

हे मुने! उसी समय शिवजीके दर्शनकी इच्छासे मेना भी तुमको साथ लेकर महलकी अटारीपर चढ़ गयीं। तब तुम उन्हें इस प्रकार दिखाने लगे, जिससे उनका हृदय विदीर्ण हो। हे मुने! उस समय परम शुभ सेनाको देखती हुई मेना सामान्यरूपसे हर्षित हो उठीं ॥ ६-७ ॥

सबसे पहले सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए, सुभग, शुभ, नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, विविध वाहनोंसे युक्त, अनेक प्रकारके बाजे बजानेमें तत्पर और विचित्र पताकाओं तथा अप्सराओंको अपने साथ लिये हुए गन्धर्व आये। उस समय मेना गन्धर्वपति परमप्रभु वसुको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उन्होंने पूछा कि क्या ये शिवजी हैं? ॥ ८—१० ॥

हे ऋषिश्रेष्ठ! तब आपने उनसे यह कहा—ये शिवजीके गण हैं, शिवाके पति शंकरजी नहीं हैं ॥ ११ ॥

यह सुनकर मेनाने विचार किया कि जो इनसे भी अधिक श्रेष्ठ है, वह कैसा होगा ॥ १२ ॥

उसी समय जो मणिग्रीव आदि यक्ष थे, उनकी सेनाको उन्होंने देखा, जिनकी शोभा गन्धर्वोंसे दुगुनी थी ॥ १३ ॥

यक्षाधिपति मणिग्रीवको अत्यन्त शोभासे समन्वित देखकर ये शिवास्वामी रुद्र हैं—मेनाने हर्षित होकर ऐसा कहा। हे नारद! तब तुमने कहा—ये शिवास्वामी रुद्र नहीं हैं, ये तो शिवके सेवक हैं। उसी समय अग्निदेव आ गये। मणिग्रीवकी अपेक्षा उनकी दुगुनी शोभा देखकर मेनाने पूछा—क्या ये ही गिरिजाके स्वामी रुद्र हैं? तब आपने कहा—नहीं ॥ १४—१६ ॥

तत्पश्चात् उनकी भी शोभासे द्विगुणित शोभायुक्त यम आये। उन्हें देखकर प्रसन्न होकर मेनाने कहा—क्या ये रुद्र हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं, उसी समय उनसे भी द्विगुणित शोभा धारण किये हुए पुण्यजनोंके प्रभु शुभ निर्ऋति आये ॥ १७-१८ ॥

उन्हें देखकर मेनाने प्रसन्न होकर कहा—क्या ये रुद्र हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं। तभी वरुण आ गये। निर्ऋतिसे भी दुगुनी शोभा उनकी देखकर उन मेनाने कहा—ये गिरिजास्वामी रुद्र हैं? तब आपने कहा—नहीं ॥ १९-२० ॥

तदनन्तर उनसे भी दुगुनी शोभा धारण किये वायुदेव वहाँ आये। उनको देखकर मेनाने हर्षित होकर कहा—क्या ये ही रुद्र हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं। उसी समय गुह्यकपति कुबेर उनसे भी दूनी शोभा धारण किये हुए वहाँ आये ॥ २१-२२ ॥

उनको देखकर प्रसन्न हो उन मेनाने कहा—क्या ये ही रुद्र हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं। इतनेमें ईशानदेव आ गये ॥ २३ ॥

कुबेरसे भी दुगुनी उनकी शोभा देखकर मेनाने कहा—क्या ये गिरिजापति रुद्र हैं, तब आपने कहा—नहीं ॥ २४ ॥

तदनन्तर उनसे भी दुगुनी शोभासे सम्पन्न, सभी देवताओंमें श्रेष्ठ, अनेक प्रकारकी दिव्य कान्तिवाले और स्वर्गलोकके स्वामी इन्द्र आये ॥ २५ ॥

उनको देखकर वे मेना बोलीं—क्या ये ही शंकर हैं? तब आपने कहा—ये देवराज इन्द्र हैं, वे नहीं हैं ॥ २६ ॥

तब उनसे भी दुगुनी शोभा धारण करनेवाले चन्द्रमा आये। उन्हें देखकर मेना बोलीं—क्या ये ही रुद्र हैं? तब आपने कहा—नहीं। इसके बाद उनसे भी दुगुनी शोभा धारण करनेवाले सूर्य आये। उन्हें देखकर मेनाने कहा—क्या ये ही शिव हैं? आपने कहा—नहीं ॥ २७-२८ ॥

इतनेमें तेजोराशि भृगु आदि मुनीश्वर अपने शिष्योंसहित वहाँ पहुँच गये ॥ २९ ॥

उनके मध्यमें बृहस्पतिको देखकर मेना बोलीं—ये ही गिरिजापति रुद्र हैं? तब आपने कहा—नहीं ॥ ३० ॥

उसके बाद तेजोंकी महाराशि तथा साक्षात् धर्मके पुंजके समान मैं ब्रह्मा स्तुत होता हुआ ऋषियों तथा पुत्रोंके सहित उपस्थित हुआ। हे मुने! मुझे देखकर मेना बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने कहा—क्या ये ही शिव हैं? तब आपने उनसे कहा—नहीं ॥ ३१-३२ ॥

इसी बीच सम्पूर्ण शोभासे युक्त, श्रीमान्, मेघके समान

श्याम वर्णवाले, चार भुजाओंसे युक्त, करोड़ों कामदेवके समान कमनीय, पीताम्बर धारण किये हुए, अपने तेजसे प्रकाशित, कमलनयन, शान्तस्वभाव, श्रेष्ठ गरुड़पर सवार, शंख आदि लक्षणोंसे युक्त, मुकुट आदिसे विभूषित, वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न धारण किये हुए, अप्रमेय कान्तिसे सम्पन्न लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु वहाँ आये॥ ३३—३५॥

उनको देखकर उनके नेत्र चकित हो गये और उन्होंने हर्षसे भरकर कहा—ये ही साक्षात् गिरिजापति शिव हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ ३६॥

तब मेनकाका वचन सुनकर परम कौतुकी आपने कहा—वे शिवापति नहीं हैं, अपितु ये केशव विष्णु हैं॥ ३७॥

ये शंकरजीके समस्त कार्योंके अधिकारी तथा उनके प्रिय हैं, उन पार्वतीपति शिवको इनसे भी अधिक श्रेष्ठ समझना चाहिये। हे मेने! उनकी शोभाका वर्णन मैं नहीं कर सकता, वे ही समस्त ब्रह्माण्डोंके अधिपति, सर्वेश्वर तथा स्वराट् हैं॥ ३८-३९॥

ब्रह्माजी बोले—नारदके वचनको सुनकर मेनाने उसको [पार्वतीको] महाधनवती, भाग्यवती, तीनों कुलों (पितृकुल, मातृकुल तथा पतिकुल)-को सुख देनेवाली तथा कल्याणकारिणी समझा॥ ४०॥

उसके बाद प्रीतियुक्त चित्तसे प्रसन्न मुखवाली मेना बार-बार अपने भाग्यकी बड़ाई करती हुई कहने लगीं— ॥ ४१॥

मेना बोलीं—पार्वतीके जन्मसे इस समय मैं सर्वथा धन्य हो गयी, गिरीश्वर भी आज धन्य हो गये, मेरा सब कुछ धन्य हो गया। उत्तम प्रभासे युक्त जिन-जिन देवताओं एवं देवाधिपतियोंको मैंने देखा—इन सबके जो स्वामी हैं, वे ही इसके पति होंगे॥ ४२-४३॥

उसके भाग्यका क्या वर्णन किया जाय! उसके द्वारा भगवान् शिवको पतिरूपमें प्राप्त करनेके कारण सौ वर्षोंमें भी पार्वतीके सौभाग्यका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ४४॥

ब्रह्माजी बोले—प्रेमसे परिपूर्ण चित्तवाली मेना जब इस प्रकार कह रही थीं, उसी समय सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ प्रभु रुद्र अद्भुत वेष धारणकर आ गये॥ ४५॥

हे तात! उनके गण भी अद्भुत थे, जो मेनाके गर्वको दूर करनेवाले थे। उस समय प्रभु रुद्र अपनेको मायासे निर्लिप्त तथा निर्विकार दिखा रहे थे॥ ४६॥

हे नारद! हे मुने! उस समय उनको आया देखकर परम प्रेमसे आप शिवाके पति शंकरको दिखाते हुए मेनासे कहने लगे— ॥ ४७॥

नारदजी बोले—हे सुन्दरि! आप देखिये, ये ही वे साक्षात् शंकर हैं, जिनके निमित्त वनमें पार्वतीने कठिन तप किया था॥ ४८॥

ब्रह्माजी बोले—नारदके वचनको सुनकर मेना हर्षित होकर अद्भुत आकृतिवाले, अद्भुत गणोंसे युक्त तथा आश्चर्यजनक प्रभु शिवजीको देखने लगीं॥ ४९॥

उसी समय भूत-प्रेत आदिसे युक्त तथा नाना प्रकारके गणोंसे समन्वित अत्यन्त अद्भुत रुद्रसेना आ पहुँची॥ ५०॥

उनमें कोई आँधीके समान रूप धारण किये हुए थे, कोई पताकाके समान मर्मर शब्द कर रहे थे, कोई वक्रतुण्ड थे तथा कोई विकृत रूपवाले, कोई विकराल थे, कोई बड़ी दाढ़ी-मूँछवाले थे, कोई लँगड़े थे, कोई अन्धे थे, कोई हाथमें दण्ड, पाश तथा कोई मुद्गर धारण किये हुए थे, कोई विरुद्ध वाहनपर सवार थे, कोई शृंगीनाद कर रहे थे, कोई डमरू बजा रहे थे, कोई गोमुख बजा रहे थे, कोई मुखरहित थे, कोई विकट मुखवाले थे, कोई गण बहुत मुखवाले थे, कोई हाथसे रहित थे, कोई विकृत हाथवाले थे, कोई गण बहुत हाथोंवाले थे। कोई नेत्रहीन, कोई बहुत नेत्रवाले, कोई बिना सिरके, कोई विकृत सिरवाले, कोई कर्णहीन तथा कोई बहुत कानवाले थे। सभी गण नाना प्रकारके वेष धारण किये हुए थे। इसी प्रकार और भी विकृत आकारवाले अनेक प्रबल गण थे। हे तात! वे असंख्य, बड़े वीर और भयंकर थे॥ ५१—५६॥

उसके बाद हे मुने! आपने मेनाको रुद्रगणोंको अँगुलीसे दिखाते हुए कहा—हे वरानने! आप इन शंकरके गणोंको और शंकरको भी देखिये॥ ५७॥

हे मुने! भूत-प्रेत आदि असंख्य गणोंको देखकर वे मेना तत्क्षण भयसे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं॥ ५८॥

उन गणोंके मध्य निर्गुण, परम गुणी, वृषभपर सवार, पाँच मुख तथा तीन नेत्रवाले, शिवविभूतिसे विभूषित, जटाजूटसे युक्त, मस्तकमें चन्द्रकलासे शोभित,

दस भुजाओंसे युक्त, कपाल धारण किये, व्याघ्रचर्मका उत्तरीय धारण किये हुए, हाथमें श्रेष्ठ पिनाक धारण किये हुए, शूलसे युक्त, विरूप नेत्रवाले, विकृत आकारवाले, व्याकुल तथा गजचर्म ओढ़े हुए शिवको देखकर पार्वतीकी माता भयभीत हो उठीं॥ ५९—६१॥

उसके अनन्तर आश्चर्यचकित, काँपती हुई, व्याकुल तथा भ्रमित बुद्धिवाली उन मेनाको अँगुलीके संकेतसे शिवजीकी ओर दिखाते हुए आपने कहा—ये ही शिव हैं। आपके उस वचनको सुनते ही वे सती मेना दुःखित होकर वायुके झोंकेसे गिरी हुई लताके समान शीघ्र ही पृथिवीपर गिर पड़ीं। इस विकृत रूपको देखकर दुराग्रहमें फँसकर मैं ठगी गयी—ऐसा कहकर वे मेना क्षणमात्रमें मूर्च्छित हो गयीं॥ ६२—६४॥

उसके बाद सखियोंके द्वारा अनेक प्रकारके प्रयत्नोंसे उपचार करनेपर हिमालयप्रिया मेनाको धीरे-धीरे चैतन्य प्राप्त हुआ॥ ६५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवकी अद्भुत लीलाका वर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

शिवजीके रूपको देखकर मेनाका विलाप, पार्वती तथा नारद आदि सभीको फटकारना, शिवके साथ कन्याका विवाह न करनेका हठ, विष्णुद्वारा मेनाको समझाना

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] चेतना प्राप्तकर शैलप्रिया सती मेना अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप करने लगीं और सबका तिरस्कार करने लगीं। उन्होंने व्याकुल होकर सर्वप्रथम अपने पुत्रोंकी निन्दा की और इसके बाद वे अपनी पुत्रीको दुर्वचन कहने लगीं॥ १-२॥

मेना बोली—हे मुने! पहले आपने ही कहा था कि यह पार्वती शिवको वरण करेगी। तत्पश्चात् हिमवान्‌से कहकर आपने उसे तपस्याके कार्यमें लगाया॥ ३॥

उसका तो प्रतिकूल एवं अनर्थकारी परिणाम दिखायी पड़ा, यह सत्य है। हे दुष्टबुद्धिवाले मुने! आपने मुझ अधमको सर्वथा धोखा दिया॥ ४॥

हे मुने! उसने मुनियोंके द्वारा असाध्य परम दुष्कर जो तप किया, उसका यह फल प्राप्त हुआ, जो देखनेवालोंको भी दुःख देनेवाला है। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? कौन मेरे दुःखको दूर करेगा, मेरा कुल आदि नष्ट हो गया, मेरा जीवन भी नष्ट हो गया॥ ५-६॥

वे दिव्य ऋषि कहाँ गये? मैं उनकी दाढ़ी-मूँछ उखाड़ लूँ। जो वसिष्ठपत्नी तपस्विनी है, वह धूर्त यहाँ स्वयं आयी थी॥ ७॥

किनके अपराधसे मेरा सब कुछ नष्ट हो गया—ऐसा कहकर पुत्रीकी ओर देखकर वे कटु वचन कहने लगीं॥ ८॥

हे सुते! हे दुष्टे! तुमने मुझे दुःख देनेवाला कर्म क्यों किया? तुझ दुष्टने स्वयं सोना देकर काँच ले लिया!॥ ९॥

चन्दनको छोड़कर तुमने अपने शरीरमें कीचड़का लेप कर लिया! हंसको उड़ाकर तुमने पिंजड़ेमें कौआ ग्रहण कर लिया!॥ १०॥

गंगाजलको दूर छोड़कर तुमने कुएँका जल पी लिया और सूर्यको छोड़कर प्रयत्नपूर्वक जुगनू ग्रहण कर लिया!॥ ११॥

चावलोंका त्यागकर भूसी खा ली और घीको छोड़कर आदरपूर्वक कारण्डका तेल पी लिया!॥ १२॥

सिंहकी सेवा छोड़कर तुमने श्रृगालकी सेवा की और ब्रह्मविद्याका त्यागकर तुमने कुत्सित गाथा सुनी!॥ १३॥

हे पुत्रि! तुमने घरकी परम मांगलिक यज्ञविभूतिको छोड़कर अमंगल चिताभस्मको धारण किया!॥ १४॥

विष्णु आदि परमेश्वरों तथा श्रेष्ठ देवगणोंको छोड़कर तुमने कुबुद्धिसे शिवके निमित्त ऐसा तप किया!॥ १५॥

तुम्हें तथा तुम्हारी बुद्धिको धिक्कार है, तुम्हारे रूप तथा आचरणको धिक्कार है, तुम्हें उपदेश देनेवालेको धिक्कार है और तुम्हारी उन सखियोंको भी धिक्कार है! हे पुत्रि! जो तुमको जन्म देनेवाले हैं—ऐसे हम दोनोंको धिक्कार है। हे नारद! आपकी बुद्धिको धिक्कार है और कुबुद्धि देनेवाले सप्तर्षियोंको धिक्कार है!॥ १६-१७॥

कुलको धिक्कार है, तुम्हारी कार्यकुशलताको धिक्कार है, तुमने जो कुछ किया, उस सबको धिक्कार है, तुमने घरको नष्ट कर दिया, अब तो मेरा मरण ही है॥ १८॥

ये पर्वतराज मेरे निकट न आयें और स्वयं सप्तर्षिगण भी मुझे अपना मुँह न दिखायें॥ १९॥

सब लोगोंने मिलकर यह क्या किया, जिससे मेरा कुल ही नष्ट हो गया। मैं वन्ध्या क्यों न हुई, मेरा गर्भ क्यों नहीं गिर गया। मैं ही क्यों नहीं मर गयी अथवा मेरी पुत्री ही क्यों नहीं मर गयी। आकाशमें [ले जाकर] राक्षसोंने उसे क्यों नहीं खा लिया?॥ २०-२१॥

आज मैं तुम्हारा सिर काट डालूँ, अब मुझे इस शरीरसे क्या करना है, किंतु क्या करूँ, तुम्हें त्यागकर भी कहाँ जाऊँ? हाय! मेरा जीवन ही नष्ट हो गया॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर वे मेना मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़ीं। वे शोक तथा रोष आदिसे व्याकुल होनेके कारण पतिके पास न जा सकीं॥ २३॥

हे मुनीश्वर! उस समय सारे घरमें हाहाकार मच गया, फिर सब देवता बारी-बारीसे वहाँ उनके समीप आये॥ २४॥

हे देवमुने! पहले मैं स्वयं ही [उनके समीप] आया। तब हे ऋषिश्रेष्ठ! मुझे देखकर आप उनसे यह वचन कहने लगे—॥ २५॥

नारदजी बोले—[हे मेने!] तुमने शिवजीके वास्तविक सुन्दर रूपको नहीं पहचाना, शिवजीने यह रूप लीलासे धारण किया है, यह उनका यथार्थ रूप नहीं है। हे पतिव्रते! इसलिये तुम क्रोध छोड़कर स्वस्थ हो जाओ और हठ छोड़कर कार्य करो तथा पार्वतीको शंकरके निमित्त प्रदान करो॥ २६-२७॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तब आपका वचन सुनकर मेनाने आपसे यह वाक्य कहा—तुम बड़े दुष्ट एवं अधम हो, उठो और यहाँसे दूर चले जाओ। उनके इस प्रकार कहनेपर समस्त इन्द्रादि देवता तथा दिक्पाल क्रमसे आकर मेनासे यह वचन कहने लगे—॥ २८-२९॥

देवता बोले—हे मेने! हे पितृकन्ये! प्रसन्न होकर तुम हमारी बात सुनो। ये दूसरोंको सुख देनेवाले साक्षात् शिवजी हैं। भक्तवत्सल इन भगवान् शिवने तुम्हारी पुत्रीका अत्यन्त कठिन तप देखकर कृपापूर्वक उसे दर्शन देकर वर प्रदान किया॥ ३०-३१॥

ब्रह्माजी बोले—इसके बाद मेना बारंबार बहुत विलाप करके देवताओंसे बोली—भयानक रूपवाले शिवको मैं अपनी कन्या नहीं दूँगी॥ ३२॥

आप सभी देवगण किसलिये प्रपंचमें पड़े हैं और इसके श्रेष्ठ रूपको व्यर्थ करनेके लिये तत्पर हैं?॥ ३३॥

हे मुनीश्वर! उनके इस प्रकार कहनेपर सभी वसिष्ठादि सप्तर्षि वहाँ आकर उनसे यह वचन कहने लगे॥ ३४॥

सप्तर्षि बोले—हे पितृकन्ये! हे गिरिप्रिये! हम कार्य सिद्ध करनेके लिये आये हैं, जो बात ठीक है, उसे हम विपरीत कैसे मान सकते हैं? यह सबसे बड़ा लाभ है, जो आपको शंकरजीका दर्शन प्राप्त हुआ और वे दानके पात्र होकर आपके घर आये हैं॥ ३५-३६॥

ब्रह्माजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर मेनाने उन मुनियोंके वचनको झूठा समझ लिया और वे अज्ञानतावश रुष्ट होकर उन ऋषियोंसे इस प्रकार कहने लगीं—॥ ३७॥

मेना बोलीं—मैं शस्त्र आदिसे उसका वध कर डालूँगी, किंतु शंकरके निमित्त उसे नहीं दूँगी। आप सभी दूर चले जाइये और मेरे पास मत आइयेगा॥ ३८॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर वे मेना चुप हो गयीं और पुनः विलाप करके अत्यन्त व्याकुल हो

उठीं। हे मुने! उस समय इस समाचारसे बड़ा हाहाकार मच गया। तदनन्तर अत्यन्त व्याकुल होकर हिमालय मेनाको समझानेके लिये वहाँ आये और तत्त्वकी बात कहते हुए प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे॥ ३९-४०॥

हिमालय बोले—हे मेने! हे प्रिये! तुम आज व्याकुल क्यों हो गयी, मेरी बात सुनो, तुम्हारे घर कौन-कौन लोग आये हैं, तुम इनकी निन्दा क्यों करती हो?॥ ४१॥

तुम शंकरको [अच्छी तरह] नहीं जानती हो, अनेक रूप और नामवाले उन शंकरके विकट रूपको देखकर व्याकुल हो गयी हो। उन शंकरको मैं जानता हूँ। वे सबका पालन करनेवाले, पूज्योंके भी पूज्य और निग्रह तथा अनुग्रह करनेवाले हैं॥ ४२-४३॥

हे प्राणप्रिये! हे पुण्यशीले! हठ मत करो और दुःखका त्याग करो। हे सुव्रते! शीघ्रतासे उठो, कार्य करो॥ ४४॥

तुम मेरी बात मानो, ये शंकर विकट रूप धारणकर द्वारपर जो आये हैं, वे अपनी लीला ही दिखा रहे हैं॥ ४५॥

हे देवि! पहले हम दोनोंने उनका श्रेष्ठ माहात्म्य देखकर ही कन्या देना स्वीकार किया था। हे प्रिये! अब उस बातको सत्यरूपसे प्रमाणित करो॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर उन पर्वतराज हिमालयने मौन धारण कर लिया। तब यह सुनकर पार्वतीकी माता मेना हिमालयसे कहने लगीं—॥ ४७॥

मेना बोली—हे नाथ! मेरी बात सुनिये और आप वैसा ही कीजिये, इस अपनी कन्या पार्वतीको पकड़कर कण्ठमें रस्सी बाँधकर निःशंक हो नीचे गिरा दीजिये, किंतु मैं शिवको उसे नहीं दूँगी अथवा हे नाथ! हे पर्वतराज! इस कन्याको ले जाकर दयारहित होकर समुद्रमें डुबो दीजिये और इसके बाद सुखी हो जाइये। ऐसा करनेसे ही सुख मिलेगा। हे स्वामिन्! यदि आप भयंकर रूपवाले रुद्रको पुत्री देंगे, तो मैं निश्चित रूपसे शरीर त्याग दूँगी॥ ४८—५०॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! जब मेना हठपूर्वक यह बात कह रही थीं, उसी समय पार्वती स्वयं आ गयीं और मनोहर वचन कहने लगीं—॥ ५१॥

पार्वती बोलीं—हे मातः! आपकी बुद्धि विपरीत तथा अमंगलकारिणी कैसे हो गयी? धर्मका अवलम्बन करनेवाली होनेपर भी आप धर्मका त्याग क्यों कर रही हैं? ये रुद्र सबसे श्रेष्ठ, साक्षात् ईश्वर, सबको उत्पन्न करनेवाले, शम्भु, सुन्दर रूपवाले, सुख देनेवाले तथा सभी श्रुतियोंमें वर्णित हैं॥ ५२-५३॥

हे मातः! ये ही महेश कल्याण करनेवाले, सर्वदेवोंके प्रभु तथा स्वराट् हैं। नाना प्रकारके रूप एवं नामवाले और ब्रह्मा एवं विष्णु आदिसे भी सेवित हैं॥ ५४॥

वे सबके कर्ता, हर्ता, अधिष्ठान, निर्विकारी, त्रिदेवेश, अविनाशी तथा सनातन हैं। इन्हींके लिये सभी देवगण दासके समान होकर तुम्हारे द्वारपर उत्सव करते हुए आये हैं। अब इससे बढ़कर और क्या सुख होगा?॥ ५५-५६॥

अतः हे मातः! प्रयत्नपूर्वक उठिये और अपने जीवनको सफल कीजिये, आप इन शंकरजीके निमित्त मुझे प्रदान कीजिये और अपना गृहस्थाश्रम सफल बनाइये। हे जननि! आज आप मुझे परमेश्वर शंकरके निमित्त प्रदान कीजिये। हे मातः! मैं आपसे कह रही हूँ, आप मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार कीजिये॥ ५७-५८॥

यदि आपने मुझे इनको नहीं दिया, तो मैं किसी दूसरेका पतिके रूपमें वरण नहीं करूँगी। परवंचक शृगाल सिंहके भागको किस प्रकार प्राप्त कर सकता है?॥ ५९॥

हे मातः! मैंने स्वयं मन, वचन तथा कर्मसे शिवजीका वरण कर लिया है, अब आप जैसा चाहती हैं, वैसा कीजिये॥ ६०॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] पार्वतीका यह वचन सुनकर पर्वतराजकी प्रिया मेना बहुत विलापकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उनके शरीरको पकड़कर दाँतोंको कटकटाती हुई व्याकुल तथा रोषयुक्त होकर मुक्के तथा केहुनोंसे पुत्रीको मारने लगीं॥ ६१-६२॥

हे तात! हे मुने! तदनन्तर वहाँपर तुम तथा अन्य जो ऋषि थे, वे मेनाके हाथसे पार्वतीको छुड़ाकर दूर ले गये। उन सबको वैसा करते देखकर उन्हें बार-बार फटकारकर वे मेना उन्हें सुनाती हुई पुन: दुर्वचन कहने लगीं—॥ ६३-६४॥

मेना बोलीं—हाय! इस दुराग्रहशील पार्वतीका अब मैं क्या करूँ? अब निश्चय ही या तो इसे तीव्र विष दे दूँगी या कुएँमें डाल दूँगी॥ ६५॥

अथवा अस्त्र-शस्त्रोंसे काटकर इस कालीके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगी अथवा अपनी पुत्री इस पार्वतीको समुद्रमें डुबो दूँगी। अथवा मैं शीघ्र ही निश्चित स्वयं अपना शरीर त्याग दूँगी, किंतु विकट रूपधारी शिवको अपनी कन्या दुर्गा नहीं दूँगी॥ ६६—६७॥

इस दुष्टाने यह कैसा विकराल वर पाया है। ऐसा करके इसने मेरा, गिरिराजका तथा इस कुलका उपहास करा दिया॥ ६८॥

इस [शंकर]-के न माता हैं, न पिता हैं, न भाई हैं, न गोत्रमें उत्पन्न बन्धु हैं, न तो इसका सुन्दर रूप है, न तो इसमें चतुराई ही है, न इसके पास घर है, न वस्त्र है, न अलंकार है, इसका कोई सहायक भी नहीं हैं, इसका वाहन भी अच्छा नहीं है, इसकी वय भी [विवाहयोग्य] नहीं है। इसके पास धन भी नहीं है। न इसमें पवित्रता है, न विद्या है, इसका कष्टदायक कैसा शरीर है, फिर [इसका] क्या देखकर मैं इसे अपनी सुमंगली पुत्री प्रदान करूँ?॥ ६९—७१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार बहुत विलाप करके दु:ख तथा शोकसे व्याप्त होकर वे मेना जोर-जोरसे रोने लगीं। उसके बाद मैं शीघ्रतासे आकर उन मेनासे अज्ञानका हरण करनेवाले श्रेष्ठ तथा परम शिवतत्त्वका वर्णन करने लगा॥ ७२-७३॥

ब्रह्माजी बोले—हे मेने! आप प्रीतिपूर्वक मेरे शुभ वचनको सुनिये, जिसके प्रेमपूर्वक सुननेसे आपकी कुबुद्धि नष्ट हो जायगी॥ ७४॥

शंकर जगत्‌की सृष्टि करनेवाले, पालन करनेवाले तथा विनाश करनेवाले हैं। आप उनके रूपको नहीं जानती हैं और दु:ख क्यों उठा रही हैं?॥ ७५॥

ये प्रभु अनेक रूप तथा नामवाले, विविध लीला करनेवाले, सबके स्वामी, स्वतन्त्र, मायाधीश तथा विकल्पसे रहित हैं। हे मेने! ऐसा जानकर आप शिवाको शिवजीके लिये प्रदान कीजिये और सभी कार्यका नाश करनेवाले इस दुराग्रह तथा दुर्बुद्धिका त्याग कीजिये॥ ७६-७७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! मेरे ऐसा कहनेपर वे मेना बार-बार विलाप करती हुई शनै:-शनै: लज्जा त्यागकर मुझसे कहने लगीं—॥ ७८॥

मेना बोलीं—हे ब्रह्मन्! आप इसके अति श्रेष्ठ रूपको किसलिये व्यर्थ कर रहे हैं? आप इस शिवाको स्वयं मार क्यों नहीं डालते? आप ऐसा न कहिये कि इसे शिवको दे दीजिये, मैं अपनी इस प्राणप्रिया पुत्रीको शिवके निमित्त नहीं दूँगी॥ ७९-८०॥

ब्रह्माजी बोले—हे महामुने! तब उनके ऐसा कहनेपर सनक आदि सिद्ध आकर [मेनासे] प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगे—॥ ८१॥

सिद्ध बोले—ये परम सुख प्रदान करनेवाले साक्षात् परमात्मा शिव हैं। इन प्रभुने कृपा करके आपकी पुत्रीको दर्शन दिया है॥ ८२॥

ब्रह्माजी बोले—तब मेनाने बार-बार विलाप करते हुए उनसे भी कहा कि मैं भयंकर रूपवाले शंकरको इसे नहीं दूँगी॥ ८३॥

प्रपंचवाले आप सभी सिद्ध लोग इसके श्रेष्ठ रूपको व्यर्थ करनेके लिये क्यों उद्यत हुए हैं?॥ ८४॥

हे मुने! उनके ऐसा कहनेपर मैं चकित हो गया और सभी देव, सिद्ध, ऋषि तथा मनुष्य भी आश्चर्यमें पड़ गये। इसी समय उनके दृढ़ तथा महान् हठको सुनकर शिवके प्रिय विष्णुजी शीघ्र ही वहाँ आकर यह कहने लगे—॥ ८५-८६॥

विष्णुजी बोले—आप पितरोंकी प्रिय मानसी कन्या हैं, गुणोंसे युक्त हैं और साक्षात् हिमालयकी पत्नी हैं, आपका अत्यन्त पवित्र ब्रह्मकुल है। वैसे ही आपके

सहायक भी हैं, इसलिये आप लोकमें धन्य हैं, मैं विशेष क्या कहूँ। आप धर्मकी आधारभूत हैं, तो आप धर्मका त्याग क्यों कर रही हैं?॥ ८७-८८॥

भला, आप ही विचार करें कि सभी देवता, ऋषि, ब्रह्माजी तथा मैं विरुद्ध क्यों बोलेंगे? आप शिवजीको नहीं जानती हैं। वे निर्गुण, सगुण, कुरूप, सुरूप, सज्जनोंको शरण देनेवाले तथा सभीके सेव्य हैं॥ ८९-९०॥

उन्होंने ही मूल प्रकृति ईश्वरीदेवीका निर्माण किया और उस समय उनके बगलमें उन्होंने पुरुषोत्तमकी भी रचना की। तदनन्तर उन दोनोंसे मैं तथा ब्रह्मा अपने गुण तथा रूपके अनुसार उत्पन्न हुए हैं। किंतु वे रुद्र स्वयं अवतरित होकर लोकोंका हित करते हैं॥ ९१-९२॥

वेद, देवता तथा जो कुछ स्थावर-जंगमरूप जगत् दिखायी देता है, वह सब शिवजीसे ही उत्पन्न हुआ है। उनके स्वरूपका वर्णन किसने किया है और उसे कौन जान सकता है? मैं तथा ब्रह्माजी भी उनका अन्त न पा सके॥ ९३-९४॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जो कुछ जगत् दिखायी देता है, उस सबको शिव समझिये, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। अपनी लीलासे इस प्रकारके सुन्दर रूपसे अवतीर्ण हुए वे [शिव] पार्वतीके तपके प्रभावसे ही आपके द्वारपर आये हैं॥ ९५-९६॥

इसलिये हे हिमालयपत्नि! आप दुःखका त्याग कीजिये और शिवजीका भजन कीजिये, [ऐसा करनेसे] महान् आनन्द प्राप्त होगा और क्लेश नष्ट हो जायगा॥ ९७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार समझानेपर उन मेनाका विष्णुप्रबोधित मन कुछ कोमल हो गया॥ ९८॥

किंतु उस समय शिवकी मायासे विमोहित मेनाने हठका परित्याग नहीं किया और शिवको कन्या देना स्वीकार नहीं किया॥ ९९॥

पार्वतीकी माता गिरिप्रिया उन मेनाने विष्णुके मनोहर वचनको सुनकर कुछ उद्‌बुद्ध होकर विष्णुजीसे कहा—यदि वे सुन्दर शरीर धारण करें, तो मैं अपनी कन्या दे सकती हूँ, अन्यथा करोड़ों प्रयत्नोंसे भी मैं नहीं दूँगी। मैं सत्य तथा दृढ़ वचन कहती हूँ॥ १००-१०१॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] जो सबको मोहनेवाली है, उस शिवेच्छासे प्रेरित हुई धन्य तथा दृढ़ व्रतवाली वे मेना इस प्रकार कहकर चुप हो गयीं॥ १०२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें मेनाप्रबोधवर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवका अपने परम सुन्दर दिव्य रूपको प्रकट करना, मेनाकी प्रसन्नता और क्षमा-प्रार्थना तथा पुरवासिनी स्त्रियोंका शिवके रूपका दर्शन करके जन्म और जीवनको सफल मानना

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इसी समय आप विष्णुजीसे प्रेरित होकर शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये शीघ्र उनके पास गये। वहाँ जाकर देवकार्य करनेकी इच्छासे आपने अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करके रुद्रको भलीभाँति समझाया। तब सदाशिव शम्भुने आपकी बात सुनकर अपनी कृपालुता दिखायी और प्रेमपूर्वक अद्भुत दिव्य तथा उत्तम स्वरूप धारण कर लिया॥ १—३॥

कामदेवसे भी अधिक कमनीय, लावण्यके परम निधि तथा सुन्दर रूपवाले उन शिवको देखकर हे मुने! आप अत्यन्त प्रसन्न हो गये और परमानन्दसे युक्त हो अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे उनकी स्तुतिकर आप पुनः वहाँ आये, जहाँ मेना सभी लोगोंके साथ थीं॥ ४-५॥

हे मुने! वहाँ आकर अत्यन्त हर्षित तथा प्रेमयुक्त आप हिमालयकी पत्नी मेनाको हर्षित करते हुए यह वचन कहने लगे—॥ ६॥

नारदजी बोले—हे विशाल नेत्रोंवाली मेने! आप शिवजीके अत्युत्तम रूपको देखिये, उन्हीं करुणामय शंकरने यह महती कृपा की है॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—यह बात सुनकर शैलकामिनी मेना विस्मित हो परमानन्द प्रदान करनेवाले शिवरूपको देखने लगीं। वह रूप करोड़ों सूर्यके समान कान्तिमान्, सभी अंगोंसे सुन्दर, विचित्र वस्त्रसे युक्त, अनेक आभूषणोंसे अलंकृत, अत्यन्त प्रसन्न, सुन्दर हास्यसे युक्त, लावण्यमय, मनको मोहित करनेवाला, गौर आभावाला, कान्तिसम्पन्न, चन्द्ररेखासे विभूषित, विष्णु आदि सभी देवताओंसे प्रेमपूर्वक सेवित, सिरपर सूर्य तथा चन्द्रमाके द्वारा लगाये गये छत्रसे शोभायमान, अत्यन्त शोभामय तथा सभी प्रकारसे रमणीय था। आभूषणोंसे विभूषित उनके वाहनकी महा-शोभाका तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता॥ ८—१२॥

गंगा और यमुना उनपर चँवर डुला रही थीं और आठों सिद्धियाँ उनके आगे सुन्दर नृत्य कर रही थीं॥ १३॥

उस समय मेरे तथा शिवजीके साथ विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवता अपने-अपने वेष धारणकर चल रहे थे॥ १४॥

महान् मोदमें भरे हुए तथा अनेक प्रकारके रूपोंवाले गण उस समय जय-जयकार करते हुए शिवजीके आगे-आगे चल रहे थे॥ १५॥

सिद्ध, अन्य देवता, महामंगलकारी मुनिगण तथा अन्य लोग भी प्रसन्न होकर शिवजीके साथ चल रहे थे॥ १६॥

इसी प्रकार सजे हुए सभी देवता अपनी स्त्रियोंको साथ लिये कौतूहलसे युक्त हो परब्रह्म शंकरजीकी स्तुति करते हुए चल रहे थे। समस्त अप्सराओंको साथ लिये हुए विश्वावसु आदि गन्धर्व शिवजीके महान् यशका गान करते हुए उनके आगे-आगे चल रहे थे॥ १७-१८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार हिमालयके द्वारपर शंकरके जाते समय अनेक प्रकारके महोत्सव हो रहे थे॥ १९॥

हे मुनीश्वर! उस समय परमात्मा शंकरकी जैसी शोभा थी, उसका विशेष रूपसे वर्णन कौन कर सकता है?॥ २०॥

हे मुने! उस प्रकारके रूपवाले उन शिवजीको देखकर मेना क्षणभरके लिये चित्रलिखितके समान हो गयीं, इसके बाद वे प्रेमपूर्वक यह वचन कहने लगीं— ॥ २१॥

मेना बोलीं—हे महेशान! मेरी पुत्री धन्य है, जिसने कठिन तपस्या की। जिसके प्रभावसे आप यहाँ मेरे घर पधारे हैं॥ २२॥

हे शिवास्वामिन्! मैंने पहले जो घोर शिवनिन्दा की है, उसे आप क्षमा कीजिये और अब परम प्रसन्न हो जाइये॥ २३॥

ब्रह्माजी बोले—शैलप्रिया मेनाने इस प्रकार कहकर चन्द्रमौलिकी स्तुतिकर अत्यन्त लज्जित हो हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उसी समय नगरकी बहुत-सी स्त्रियाँ [अपना-अपना] सारा काम छोड़कर शिवदर्शनकी इच्छासे वहाँ पहुँच गयीं। स्नान करती हुई कोई स्त्री स्नानचूर्ण लिये-लिये कुतूहलमें भरकर गिरिजापति शंकरको देखनेके लिये पहुँच गयी॥ २४—२६॥

कोई [स्त्री] अपने स्वामीकी सेवा छोड़कर हाथमें सुन्दर चँवर लिये हुए अपनी सखीके साथ शंकरजीके दर्शनके लिये प्रेमपूर्वक पहुँच गयी। कोई स्तनपान करते हुए अपने बालकको अतृप्त ही छोड़कर शिवजीके दर्शनकी इच्छासे आदरपूर्वक [वहाँ] चली गयी॥ २७-२८॥

कोई करधनी बाँध रही थी, उसे वैसे ही लिये पहुँच गयी और कोई विपरीत वस्त्र धारण किये ही पहुँच गयी। कोई स्त्री भोजनके लिये बैठे हुए अपने पतिको छोड़कर प्रेमसे पार्वतीपतिको देखनेकी तृष्णा लिये कुतूहलमें भरकर वहाँ पहुँच गयी॥ २९-३०॥

कोई स्त्री एक ही आँखमें अंजन लगाकर एक हाथमें अंजन और दूसरे हाथमें शलाका लिये हुए हिमालयपुत्रीके पतिको देखनेके लिये चल पड़ी॥ ३१॥

कोई स्त्री पैरोंमें महावर लगा ही रही थी कि

बाजेका शब्द सुनकर वह उसे वहीं छोड़कर दर्शनके लिये दौड़ पड़ी। इस प्रकार स्त्रियाँ विविध कार्योंको तथा निवासस्थानको छोड़कर पहुँच गयीं। [उस समय] शिवका रूप देखकर वे मोहित हो गयीं। तब शिवदर्शनसे हर्षित हुईं वे प्रेमसे विभोर हो उनकी मूर्ति हृदयमें धारणकर [परस्पर] यह वचन कहने लगीं— ॥ ३२—३४ ॥

पुरवासिनियाँ बोलीं—हिमालयपुरीमें रहनेवालोंके नेत्र सफल हो गये, जिस-जिसने इस स्वरूपको देखा, आज उसका जन्म सफल हो गया। उसीका जन्म सफल है एवं उसीकी क्रियाएँ सफल हैं, जिसने सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले साक्षात् शिवका दर्शन किया ॥ ३५-३६ ॥

पार्वतीने सब कुछ सिद्ध कर लिया, जो उसने शिवके लिये तप किया। यह पार्वती शिवको पतिरूपमें प्राप्तकर धन्य तथा कृतकृत्य हो गयी ॥ ३७ ॥

यदि ब्रह्मा प्रसन्नतापूर्वक शिवा-शिवकी इस जोड़ीको न मिलाते तो, उनका सम्पूर्ण श्रम व्यर्थ हो जाता ॥ ३८ ॥

इन्होंने बहुत ठीक किया, जो यहाँ उत्तम जोड़ीका संयोग करा दिया। इससे सभीके समस्त कार्योंकी सार्थकता हो गयी। बिना तपस्याके मनुष्योंको शिवजीका दर्शन दुर्लभ है, [आज] शिवजीके दर्शनसे ही सभी लोग कृतार्थ हो गये। जिस प्रकार पूर्व समयमें लक्ष्मीने नारायणको पतिरूपमें प्राप्त किया था, उसी प्रकार ये पार्वती देवी भी शिवको प्राप्तकर सुशोभित हो गयीं ॥ ३९—४१ ॥

जिस प्रकार सरस्वतीने ब्रह्माको पतिरूपमें पाया था, वैसे ही पार्वती देवी शंकरको प्राप्तकर सुशोभित हो गयीं ॥ ४२ ॥

हम सभी स्त्रियाँ धन्य हैं तथा सभी पुरुष धन्य हैं, जो-जो गिरिजापति सर्वेश्वर शिवका दर्शन कर रहे हैं ॥ ४३ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] ऐसा कहकर उन लोगोंने चन्दन एवं अक्षतसे शिवजीका पूजन किया और आदरपूर्वक उनके ऊपर लाजाकी वर्षा की ॥ ४४ ॥

उसके अनन्तर सभी स्त्रियाँ उत्सुक होकर मेनाके साथ खड़ी रहीं और हिमालय तथा मेनाके महान् भाग्यकी सराहना करने लगीं। हे मुने! स्त्रियोंके द्वारा कही गयी उस प्रकारकी शुभ बातोंको सुनकर विष्णु आदि सभी देवताओंके साथ प्रभु अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ४५-४६ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवके सुन्दर स्वरूप और पुरवासियोंके उत्सवका वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

नगरमें बरातियोंका प्रवेश, द्वाराचार तथा पार्वतीद्वारा कुलदेवताका पूजन

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर शिवजी प्रसन्नचित्त होकर अपने गणों, देवताओं, दूतों तथा अन्य सभी लोगोंके साथ कुतूहलपूर्वक हिमालयके घर गये ॥ १ ॥

हिमालयकी श्रेष्ठ प्रिया मेना भी सभी स्त्रियोंके साथ उठकर अपने घरके अन्दर गयीं ॥ २ ॥

इसके बाद वे सती शिवजीकी आरतीके लिये हाथमें दीपक लेकर सभी ऋषियोंकी स्त्रियोंको साथ लेकर आदरपूर्वक द्वारपर आयीं ॥ ३ ॥

वहाँ मेनाने द्वारपर आये हुए, सभी देवताओंसे सेवित गिरिजापति महेश्वर शिवको बड़े प्रेमसे देखा ॥ ४ ॥

सुन्दर चम्पक पुष्पके वर्णके समान आभावाले, पाँच मुखवाले, तीन नेत्रवाले, मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतायुक्त मुखवाले, रत्न तथा सुवर्ण आदिसे शोभित, मालतीकी मालासे युक्त, उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुटसे प्रकाशित, गलेमें सुन्दर हार धारण किये हुए, सुन्दर कंगन तथा बाजूबन्दसे सुशोभित, अग्निके समान देदीप्यमान, अनुपम, अत्यन्त सूक्ष्म, मनोहर, बहुमूल्य तथा विचित्र युग्म वस्त्र धारण किये हुए, चन्दन-अगरु-कस्तूरी तथा सुन्दर कुमकुमके लेपसे शोभित, हाथमें रत्नमय दर्पण लिये हुए, कज्जलके कारण कान्तिमान् नेत्रवाले, सम्पूर्ण प्रभासे आच्छन्न, अत्यन्त मनोहर, पूर्ण यौवनवाले, रम्य, सजे हुए अंगोंसे विभूषित, स्त्रियोंको सुन्दर लगनेवाले, व्यग्रतासे रहित, करोड़ों चन्द्रमाके समान मुखकमलवाले, करोड़ों कामदेवसे भी अधिक शरीरकी छविवाले तथा

सर्वांगसुन्दर—इस प्रकारके अपने जामाता सुन्दर देव प्रभु शिवको अपने आगे स्थित देखकर मेनाने अपना शोक त्याग दिया और वे आनन्दमें भर गयीं॥ ५—११ ॥

वे अपने भाग्य, गिरिजा तथा पर्वतके कुलकी प्रशंसा करने लगीं। उन्होंने अपनेको कृतार्थ माना और वे बार-बार प्रसन्न होने लगीं॥ १२॥

तब वे सती मेना प्रसन्नमुख होकर आरती करने लगीं और आनन्दपूर्वक उन्हें देखने लगीं। वे मेना गिरिजाकी कही हुई बातका स्मरणकर विस्मित हो गयीं। उनका मुखकमल हर्षके कारण खिल उठा और वे अपने मनमें कहने लगीं—उस पार्वतीने मुझसे पूर्वमें जो कहा था, मैं तो उससे भी अधिक सौन्दर्य परमेश्वरका देख रही हूँ। इस समय महेश्वरका सौन्दर्य तो वर्णनसे परे है। इस प्रकार विस्मित हुई मेना अपने घरके भीतर गयीं॥ १३—१६॥

युवतियाँ प्रशंसा करने लगीं कि गिरिजा धन्य हैं, धन्य हैं और कुछ कन्याओंने तो यह कहा कि ये साक्षात् भगवती दुर्गा हैं॥ १७॥

कुछ कन्याएँ तो इस प्रकार कहने लगीं कि ये गिरिजा धन्य हैं, जो इन्हें मनोहर पति प्राप्त हुआ। हमलोगोंने तो इस प्रकारके मनोहर वरका दर्शन ही नहीं किया है॥ १८॥

[उस समय] श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सभी देवता शंकरजीके रूपको देखकर अत्यन्त हर्षित हो गये॥ १९॥

बाजा बजानेवाले अनेक प्रकारके कौशलसे मधुर ध्वनिमें आदरपूर्वक अनेक प्रकारके वाद्य बजाने लगे॥ २०॥

इसके बाद हिमालयने भी प्रसन्न होकर द्वाराचार किया। मेनाने भी आनन्दित होकर सभी स्त्रियोंके साथ महोत्सवपूर्वक परिछन किया। फिर वे अपने घरमें चली गयीं। इसके बाद शिवजी भी अपने गणों और देवताओंके साथ निर्दिष्ट स्थानपर चले गये॥ २१-२२॥

इसी बीच हिमालयके अन्त:पुरकी परिचारिकाएँ दुर्गाको साथ लेकर कुलदेवताकी पूजा करनेके लिये बाहर गयीं॥ २३॥

वहाँपर देवताओंने प्रेमपूर्वक अपलक दृष्टिसे नील अंजनके समान वर्णवाली, अपने अंगोंसे विभूषित, शिवजीके द्वारा आदृत, तीन नेत्रोंवाली, [शिवजीके अतिरिक्त] अन्यके ऊपरसे हटे हुए नेत्रवाली, मन्द-मन्द हासयुक्त तथा प्रसन्न मुखमण्डलवाली, कटाक्षयुक्त, मनोहर, सुन्दर केशपाशवाली, सुन्दर पत्र-रचनासे शोभित, कस्तूरी-बिन्दुसहित सिन्दूरबिन्दुसे शोभित, वक्ष:स्थलपर श्रेष्ठ रत्नोंके हारसे सुशोभित, रत्ननिर्मित बाजूबन्द धारण करनेवाली, रत्नमय कंकणोंसे मण्डित, श्रेष्ठ रत्नोंके कुण्डलोंसे प्रकाशित, सुन्दर कपोलवाली, मणि एवं रत्नोंकी कान्तिको फीकी कर देनेवाली दन्तपंक्तिसे सुशोभित, मनोहर बिम्बफलके समान अधरोष्ठवाली, रत्नोंके यावक (महावर)-से युक्त, हाथमें रत्नमय दर्पण धारण की हुई, क्रीड़ाके लिये कमलसे विभूषित, चन्दन-अगरु-कस्तूरी तथा कुमकुमके लेपसे सुशोभित, मधुर शब्द करते हुए घुँघरुओंसे युक्त चरणोंवाली तथा रक्तवर्णके पादतलसे शोभित उन देवीको देखा॥ २४—३०॥

उस समय सभी देवता आदिने जगत्की आदिस्वरूपा तथा जगत्को उत्पन्न करनेवाली देवीको देखकर भक्तियुक्त हो सिर झुकाकर मेनासहित उन्हें प्रणाम किया॥ ३१॥

त्रिनेत्र शंकरने भी उन्हें अपने नेत्रके कोणसे देखा और सतीके रूपको देखकर विरहज्वरको त्याग दिया॥ ३२॥

शिवापर टिकाये हुए नेत्रवाले शिव सब कुछ भूल गये। गौरीको देखनेसे हर्षके कारण उनके सभी अंग पुलकित हो उठे। इस प्रकार कालीने नगरके बाहर जाकर कुलदेवीका पूजनकर द्विजपत्नियोंके साथ अपने पिताके रम्य घरमें प्रवेश किया॥ ३३-३४॥

शंकरजी भी देवताओं, ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ हिमालयके द्वारा निर्दिष्ट अपने स्थानपर प्रसन्नतापूर्वक चले गये॥ ३५॥

वहाँपर सभी लोग गिरीशके द्वारा नाना प्रकारकी सम्पत्तिसे सम्मानित होकर शंकरजीकी सेवा करते हुए सुखपूर्वक ठहर गये॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें वरके आगमन आदिका वर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

पाणिग्रहणके लिये हिमालयके घर शिवके गमनोत्सवका वर्णन

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर शैलराजने प्रसन्नतापूर्वक बड़े उत्साहसे वेदमन्त्रोंके द्वारा शिवा एवं शिवजीका उपनयन-संस्कार सम्पन्न कराया। तदनन्तर विष्णु आदि देवताओं एवं मुनियोंने हिमालयके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर उनके घरके भीतर प्रवेश किया॥ १-२॥

उन लोगोंने लोक तथा वेदरीतिको यथार्थ रूपसे सम्पन्नकर शिवके द्वारा दिये गये आभूषणोंसे पार्वतीको अलंकृत किया। सखियों और ब्राह्मणोंकी पत्नियोंने पहले पार्वतीको स्नान कराकर पुनः सभी प्रकारसे सजाकर उनकी आरती उतारी। शंकरप्रिया तथा गिरिराजसुता वरवर्णिनी पार्वती उस समय दो नूतन वस्त्र धारण किये हुए अत्यन्त शोभित हो रही थीं॥ ३—५॥

हे मुने! उन देवीने अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित परम दिव्य तथा अद्भुत कंचुकी धारण की, जिससे वे अधिक शोभा पाने लगीं। तदनन्तर उन्होंने दिव्य रत्नोंसे जड़ा हुआ हार तथा शुद्ध सुवर्णके बने हुए बहुमूल्य कंकणोंको भी धारण किया॥ ६-७॥

तीनों जगत्को उत्पन्न करनेवाली तथा महाशैलकी कन्या सौभाग्यवती वे पार्वती मनमें शिवजीका ध्यान करते हुए वहींपर बैठी हुई अत्यन्त शोभित होने लगीं॥ ८॥

उस समय दोनों पक्षोंमें आनन्ददायक महान् उत्सव हुआ और [उभयपक्षसे] नाना प्रकारके अवर्णनीय दान ब्राह्मणोंको दिये गये। इसी प्रकार लोगोंको भी अनेक प्रकारके दान दिये गये और वहाँ उत्सवपूर्वक गीत, वाद्य एवं विनोद सम्पन्न हुए॥ ९-१०॥

तब मैं ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि सभी देवगण तथा सभी मुनिलोग बड़ी प्रसन्नताके साथ आनन्दपूर्वक उत्सव मनाकर भक्तिपूर्वक पार्वतीको प्रणामकर तथा शिवजीके चरणकमलोंका ध्यानकर हिमालयकी आज्ञा प्राप्त करके अपने-अपने स्थानपर बैठ गये। इसी समय वहाँ ज्योतिःशास्त्रके पारंगत विद्वान् गर्गाचार्य उन गिरिराज हिमालयसे यह वचन कहने लगे—॥ ११—१३॥

गर्ग बोले—हे हिमालय! हे धराधीश! हे स्वामिन्! हे कालीके पिता! हे प्रभो! अब आप पाणिग्रहणके निमित्त शिवजीको अपने घरपर ले आइये॥ १४॥

ब्रह्माजी बोले—तत्पश्चात् गर्गके द्वारा निर्देश किये गये कन्यादानके लिये उचित समयको जानकर हिमालय मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १५॥

हिमालयने आनन्दित होकर [उसी समय] पर्वतों, द्विजों तथा अन्य लोगोंको भी अत्यन्त प्रेमके साथ शिवजीको बुलानेकी इच्छासे भेजा। वे पर्वत तथा ब्राह्मण हाथोंमें सभी मांगलिक वस्तुएँ लेकर महान् उत्सव करते हुए प्रेमपूर्वक वहाँ गये, जहाँ भगवान् महेश्वर थे॥ १६-१७॥

उस समय गीत-नृत्यसहित वाद्यध्वनि तथा वेदध्वनिसे महान् उत्सव होने लगा॥ १८॥

वाद्योंके शब्दको सुनकर शंकरजीके सभी सेवक, देवता, ऋषि तथा गण आनन्दित होकर एक साथ ही उठ खड़े हुए और वे हर्षसे परिपूर्ण होकर परस्पर कहने लगे—शिवजीको बुलानेकी इच्छासे [गिरिराजके द्वारा भेजे गये] पर्वत यहाँ आ रहे हैं॥ १९-२०॥

निश्चय ही पाणिग्रहणका काल शीघ्र उपस्थित हो गया है, अतः सभीका महाभाग्य उपस्थित हो गया है—ऐसा हमलोग मानते हैं। हमलोग विशेष रूपसे धन्य हैं, क्योंकि हमलोग संसारके मंगलोंके स्थानस्वरूप शिवा-शिवके विवाहको अत्यन्त प्रेमसे देखेंगे॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—जब आदरपूर्वक उनका यह संवाद हो रहा था, उसी समय गिरिराजके सभी मन्त्री वहाँ आ गये। उन लोगोंने जा करके विष्णु आदि तथा शंकरसे प्रार्थना की कि कन्यादानका उचित समय उपस्थित हो गया है, अब आप लोग चलें॥ २३-२४॥

यह सुनकर वे विष्णु आदि सभी देवता मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे गिरिराज हिमालयकी जय-जयकार करने लगे॥ २५॥

इधर, शिवजी भी कालीको प्राप्त करनेकी लालसासे अत्यन्त प्रसन्न हो उठे, किंतु अद्भुत रूपवाले उन शिवने उसके लक्षणको मनमें गुप्त रखा। इसके उपरान्त लोकपर कृपा करनेवाले शूलधारीने परम प्रसन्न होकर मांगलिक द्रव्योंसे युक्त [जलसे] स्नान किया॥ २६-२७॥

सभी लोकपालोंने स्नान किये हुए तथा सुन्दर वस्त्रसे युक्त उन शिवको चारों ओरसे घेरकर उनकी सेवा की तथा उन्हें वृषभके स्कन्धपर बैठाया। इसके बाद प्रभुको आगे करके सभी लोग हिमालयके घरकी ओर चल पड़े। वे वाद्य बजाते हुए कुतूहल कर रहे थे॥ २८-२९॥

उस समय हिमालयके द्वारा भेजे गये ब्राह्मण तथा श्रेष्ठ पर्वतगण कुतूहलसे युक्त होकर शिवजीके आगे-आगे चल रहे थे। मस्तकपर विशाल छत्र लगाये हुए, चँवर डुलाये जाते एवं वितानसे युक्त वे महेश्वर अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। उस समय आगे-आगे चलते हुए मैं, विष्णु, इन्द्र तथा समस्त लोकपाल परम ऐश्वर्यसे युक्त होकर सुशोभित हो रहे थे॥ ३०—३२॥

उस महोत्सवमें शंख, भेरियाँ, नगाड़े, बड़े-बड़े ढोल तथा गोमुख आदि बाजे बार-बार बज रहे थे॥ ३३॥

सभी गायक भी मंगलगीत गा रहे थे तथा सभी नर्तकियाँ अनेक प्रकारके तालोंके साथ नाच रही थीं॥ ३४॥

उस समय इन सभीके साथ जगत्‌के एकमात्र बन्धु शिव परम तेजसे युक्त होकर समस्त हर्षित सुरेश्वरोंके द्वारा सेवित होते हुए तथा अपने ऊपर पुष्प विकीर्ण किये जाते हुए चल रहे थे॥ ३५॥

तत्पश्चात् सभी लोगोंसे भली-भाँति पूजित होकर शम्भुने यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया, उस समय सभी लोग उन परमेश्वरकी नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति कर रहे थे॥ ३६॥

श्रेष्ठ पर्वतोंने शिवजीको वृषभसे उतारा और प्रेमके साथ महोत्सवपूर्वक उन्हें घरके भीतर ले गये॥ ३७॥

हिमालयने भी देवताओं तथा गणोंसहित आये हुए ईश्वरको विधिवत् भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और उनकी आरती उतारी॥ ३८॥

[इसी प्रकार] उत्साहयुक्त होकर उन्होंने सभी देवताओं, मुनियों तथा अन्य लोगोंको प्रणामकर अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रेमपूर्वक उन सबका सम्मान किया॥ ३९॥

वे हिमालय विष्णु और प्रमुख देवसमुदायसहित ईशानको उत्तम पाद्य तथा अर्घ्य प्रदानकर उन्हें अपने घरमें ले गये और उन्होंने आँगनमें रत्नके सिंहासनपर विशेष-विशेष देवताओंको, मुझे, विष्णुको, ईशको तथा सभी विशिष्ट लोगोंको आदरपूर्वक बैठाया॥ ४०-४१॥

मेनाने भी बड़े प्रेमसे अपनी सखियों, ब्राह्मणस्त्रियों तथा अन्य पुरन्ध्रियोंके साथ मुदित होकर शिवजीकी आरती उतारी। कर्मकाण्डके ज्ञाता पुरोहितने मधुपर्क-दान आदि जो-जो कृत्य था, वह सब महात्मा शंकरके लिये सम्पन्न किया॥ ४२-४३॥

हे मुने! पुरोहितने मेरे द्वारा प्रेरित होकर प्रस्तावके अनुकूल जो मांगलिक कार्य था, उसे किया॥ ४४॥

उसके बाद अन्तर्वेदीमें बड़े प्रेमसे प्रविष्ट होकर हिमालय वेदीके ऊपर समस्त आभूषणोंसे विभूषित तन्वंगी कन्या पार्वती जहाँ विराजमान थीं, वहाँ विष्णु तथा मेरे साथ महादेवजीको ले गये। उस समय वहाँ बृहस्पति आदि देवता कन्यादानोचित लग्नकी प्रतीक्षा करते हुए अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे॥ ४५—४७॥

जहाँ घटिकायन्त्र स्थापित था, वहींपर गर्गाचार्य बैठे हुए थे। विवाहकी घड़ी आनेतक वे प्रणवका जप कर रहे थे। गर्गाचार्यने पुण्याहवाचन करते हुए अक्षतोंको पार्वतीकी अंजलिमें दिया, तब पार्वतीने प्रेमपूर्वक शिवके ऊपर अक्षतोंकी वर्षा की। इसके बाद परम उदार तथा सुन्दर मुखवाली उन पार्वतीने दही, अक्षत तथा कुशके जलसे शिवजीकी पूजा की॥ ४८—५०॥

जिनके लिये उन शिवाने पूर्वकालसे अत्यन्त कठोर तप किया था, उन शम्भुको प्रेमपूर्वक देखती हुई वे अत्यन्त शोभित हो रही थीं। हे मुने! तदनन्तर मेरे एवं गर्ग आदि मुनियोंके कहनेपर सदाशिवने लौकिक विधिका आश्रयणकर पार्वतीका पूजन किया। इस प्रकार जगन्मय पार्वती तथा परमेश्वर परस्पर एक-दूसरेका सत्कार करते हुए परम शोभाको प्राप्त हो रहे थे। लक्ष्मी आदि देवियोंने त्रैलोक्यकी शोभासे समन्वित होकर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए उन दोनोंकी विशेषरूपसे आरती उतारी॥ ५१—५४॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी स्त्रियों तथा नगरकी अन्य स्त्रियोंने उनकी आरती की। उस समय शिवा तथा शिवको उत्सुकतापूर्वक देखती हुई वे सब बहुत आनन्दित हुईं॥ ५५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें हिमालयके घर शिवके गमनोत्सवका वर्णन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

शिव-पार्वतीके विवाहका प्रारम्भ, हिमालयद्वारा शिवके गोत्रके विषयमें प्रश्न होनेपर नारदजीके द्वारा उत्तरके रूपमें शिवमाहात्म्य प्रतिपादित करना, हर्षयुक्त हिमालयद्वारा कन्यादानकर विविध उपहार प्रदान करना

ब्रह्माजी बोले—इसी समय वहाँ गर्गाचार्यसे प्रेरित हो मेनासहित हिमवान् कन्यादान करनेहेतु उद्यत हुए॥ १॥

उस समय वस्त्र तथा आभूषणोंसे शोभित महाभागा मेना सोनेका कलश लेकर पति हिमवान्‌के दाहिने भागमें बैठ गयीं। तत्पश्चात् पुरोहितके सहित हिमालयने प्रसन्न होकर पाद्य आदिसे और वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणसे उन वरका वरण किया॥ २-३॥

इसके बाद हिमालयने ब्राह्मणोंसे कहा—अब [कन्यादानका] यह समय उपस्थित हो गया है, अतः आपलोग संकल्पके लिये तिथि आदिका उच्चारण कीजिये। उनके यह कहनेपर कालके ज्ञाता श्रेष्ठ ब्राह्मण निश्चिन्त होकर प्रेमपूर्वक तिथि आदिका उच्चारण करने लगे॥ ४-५॥

तब सृष्टिकर्ता परमेश्वर शम्भुके द्वारा हृदयसे प्रेरित हुए हिमालयने हँसते हुए प्रसन्नताके साथ शिवजीसे कहा—हे शम्भो! अब आप अपने गोत्र, प्रवर, कुल, नाम, वेद तथा शाखाको कहिये, विलम्ब मत कीजिये॥ ६-७॥

ब्रह्माजी बोले—उन हिमालयकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न होते हुए भी उदास हो गये और शोकके योग्य न होते हुए भी शोकयुक्त हो गये॥ ८॥

उस समय श्रेष्ठ देवताओं, मुनियों, गन्धर्वों, यक्षों तथा सिद्धोंने जब शंकरको निरुत्तरमुख देखा, तब हे नारद! आपने सुन्दर हास्य किया। हे नारद! उस समय ब्रह्मवेत्ता तथा शिवजीमें आसक्त चित्तवाले आपने शिवजीके द्वारा मनसे प्रेरित होकर वीणा बजायी। उस समय पर्वतराज, विष्णु, मैंने, देवताओं तथा सभी मुनियोंने आप बुद्धिमान्‌को ऐसा करनेसे हठपूर्वक रोका॥ ९—११॥

किंतु जब शिवजीकी इच्छासे आप नहीं माने, तब [पुनः] हिमालयने आपसे कहा—इस समय आप वीणा मत बजाइये। हे बुद्धिमान्! हे देवर्षे! जब उन्होंने हठपूर्वक आपको मना किया, तब आप महेश्वरका स्मरण करके हिमालयसे कहने लगे—॥ १२-१३॥

नारदजी बोले—[हे पर्वतराज!] आप मूढ़तासे युक्त हैं, अतः कुछ भी नहीं जानते। महेश्वरके विषयमें कथनीय बातोंसे आप सर्वथा अनभिज्ञ हैं॥ १४॥

आपने इस समय जो इन साक्षात् महेश्वरसे गोत्र बतानेके लिये कहा है, वह वचन अत्यन्त हास्यास्पद है॥ १५॥

हे पर्वत! ब्रह्मा, विष्णु आदि भी इनका गोत्र, कुल, नाम नहीं जानते, दूसरोंकी क्या बात कही जाय!॥ १६॥

हे शैल! जिनके एक दिनमें करोड़ों ब्रह्मा लयको प्राप्त हो जाते हैं, उन शंकरका दर्शन आपने आज कालीके तपके प्रभावसे ही किया है॥ १७॥

ये प्रकृतिसे परे, परब्रह्म, अरूप, निर्गुण, निराकार, निर्विकार, मायाधीश तथा परात्पर हैं॥ १८॥

ये स्वतन्त्र, भक्तवत्सल और गोत्र, कुल तथा नामसे सर्वथा रहित हैं। ये अपनी इच्छासे ही सगुण, सुन्दर शरीरवाले तथा अनेक नामवाले हो जाते हैं॥ १९॥

ये गोत्रहीन होते हुए भी श्रेष्ठ गोत्रवाले हैं, कुलहीन होते हुए भी उत्तम कुलवाले हैं और आज पार्वतीके तपसे आपके जामाता हुए हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ २०॥

उन लीलाविहारीने चराचरसहित जगत्‌को मोहित कर रखा है। हे गिरिसत्तम! कोई महान् ज्ञानी भी इन्हें नहीं जानता। ब्रह्माजी भी लिंगकी आकृतिवाले महेशके मस्तकको नहीं देख सके। विष्णु भी पातालतक जाकर इन्हें नहीं प्राप्त कर पाये और आश्चर्यचकित हो गये॥ २१-२२॥

हे गिरिश्रेष्ठ! अधिक कहनेसे क्या लाभ, शिवजीकी माया बड़ी दुस्तर है। त्रैलोक्य और विष्णु, ब्रह्मा आदि भी उसी [माया]-के अधीन हैं॥ २३॥

इसलिये हे पार्वतीतात! प्रयत्नपूर्वक भली-भाँति विचार करके आप वरके गोत्र, कुल एवं इस प्रकारके वरके सम्बन्धमें थोड़ा भी सन्देह मत कीजिये॥ २४॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! ऐसा कहकर ज्ञानी तथा शिवकी इच्छासे कार्य करनेवाले आप पर्वतराजको [अपनी]

वाणीसे हर्षित करते हुए पुन: उनसे कहने लगे— ॥ २५ ॥

नारदजी बोले—हे तात! हे महाशैल! हे शिवाजनक! आप मेरी बात सुनिये तथा उसे सुनकर शंकरजीको अपनी कन्या प्रदान कीजिये॥ २६ ॥

[अपनी] लीलासे अनेक रूप धारण करनेवाले सगुण महेशका गोत्र तथा कुल केवल नाद ही जानिये॥ २७॥

शिव नादमय हैं और नाद भी शिवमय है, यही सत्य है। शिव तथा नाद—इन दोनोंमें भेद नहीं है॥ २८॥

सृष्टिके आरम्भमें लीलासे सगुण रूप धारण करनेवाले शिवके द्वारा सर्वप्रथम नादकी उत्पत्ति होनेके कारण वह सर्वश्रेष्ठ है॥ २९ ॥

इसलिये हे हिमालय! अपने मनमें सर्वेश्वर शिवसे प्रेरित होकर मैंने आज वीणा बजायी है॥ ३० ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! गिरीश्वर हिमालय आपका यह वचन सुनकर सन्तुष्ट हो गये और उनके मनका विस्मय जाता रहा॥ ३१ ॥

तब विष्णु आदि वे देवता एवं मुनि विस्मयरहित हो 'साधु-साधु'—ऐसा कहने लगे॥ ३२ ॥

सभी विद्वान् लोग महेश्वरके गाम्भीर्यको जानकर विस्मित होकर परम आनन्दमें निमग्न हो परस्पर कहने लगे। जिनकी आज्ञासे यह विशाल जगत् उत्पन्न हुआ है और जो परसे भी परे, निजबोधस्वरूप हैं, स्वतन्त्र गतिवाले एवं उत्कृष्ट भावसे जाननेयोग्य हैं, उन त्रिलोकपति शिवको आज हमलोगोंने भलीभाँति देखा॥ ३३-३४॥

तदनन्तर वे सुमेरु आदि सभी श्रेष्ठ पर्वत सन्देहरहित होकर एक साथ पर्वतराज हिमालयसे कहने लगे— ॥ ३५ ॥

पर्वत बोले—हे शैलराज! अब आप कन्यादान करनेके लिये समुद्यत हो जाइये। विवादसे क्या लाभ! ऐसा करनेसे [निश्चय ही] आपके कार्यमें बाधा होगी। हमलोग सत्य कहते हैं, अब आपको विचार नहीं करना चाहिये, अत: आप शिवको कन्या प्रदान कीजिये॥ ३६ ॥

ब्रह्माजी बोले—उन सुहृदोंकी वह बात सुनकर विधिसे प्रेरित होकर हिमालयने शिवको अपनी कन्याका दान कर दिया॥ ३७॥

[उन्होंने कहा—] हे परमेश्वर! मैं अपनी कन्या आपको दे रहा हूँ, हे सकलेश्वर! आप भार्याके रूपमें इसे ग्रहण कीजिये और प्रसन्न होइये[१] ॥ ३८ ॥

इस प्रकार तीनों लोकोंको उत्पन्न करनेवाली अपनी कन्या पार्वतीको हिमालयने इस मन्त्रसे उन महान् शिवको अर्पण कर दिया॥ ३९ ॥

इस प्रकार पार्वतीका हाथ शिवजीके हाथमें रखकर वे हिमालय मनमें बहुत प्रसन्न हुए, मानो उन्होंने इच्छारूपी महासागरको पार कर लिया हो॥ ४० ॥

पर्वतपर शयन करनेवाले परमेश्वरने प्रसन्न होकर अपने हाथसे वेदमन्त्रके द्वारा पार्वतीका करकमल ग्रहण किया। हे मुने! लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए पृथिवीका स्पर्शकर महादेवने भी **'कोऽदात्'**[२] इस कामसम्बन्धी मन्त्रका प्रेमपूर्वक पाठ किया॥ ४१-४२॥

उस समय सर्वत्र आनन्ददायक महान् उत्सव होने लगा और स्वर्ग, भूमि तथा अन्तरिक्षमें तीव्र जयध्वनि होने लगी। सभी लोगोंने अत्यन्त प्रसन्न होकर **'साधु'** शब्द तथा **'नम:'** शब्दका उच्चारण किया, गन्धर्वगण प्रीतिपूर्वक गान करने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ४३-४४॥

हिमालयके नगरके लोग भी अपने मनमें परम आनन्दका अनुभव करने लगे। [उस समय] महान् उत्सवके साथ परम मंगल मनाया जाने लगा॥ ४५ ॥

मैं, विष्णु, इन्द्र, देवता एवं सभी मुनिगण अत्यन्त हर्षित हुए और सभीके मुखकमल खिल उठे॥ ४६ ॥

उसके बाद उन शैलराज हिमालयने अति प्रसन्न होकर कन्यादानकी यथोचित सांगता शिवको प्रदान की॥ ४७॥

तत्पश्चात् उनके बन्धुजनोंने भक्तिपूर्वक भलीभाँति पार्वतीका पूजनकर शिवजीको विधि-विधानसे अनेक प्रकारके उत्तम द्रव्य प्रदान किये। हे मुनीश्वर! हिमालयने भी प्रसन्नचित्त होकर पार्वती तथा शिवकी प्रसन्नताके लिये अनेक प्रकारके द्रव्य दिये॥ ४८-४९॥

उन्होंने उपहारस्वरूप नाना प्रकारके रत्न एवं उत्तम रत्नोंसे जड़े हुए विविध पात्र प्रदान किये। हे मुने! उन्होंने एक लाख सुसज्जित गायें, सजे-सजाये सौ घोड़े,

१. इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर। भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर॥ (पार्वती० ४८। ३८)

२. विवाहमें कन्या-प्रतिग्रहके पश्चात् वर इस कामस्तुतिका पाठ करता है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है—'कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते।' (शु० यजुर्वेदसंहिता ७। ४८)

नाना रत्नोंसे विभूषित एक लाख अनुरागिणी दासियाँ दीं और एक करोड़ हाथी तथा सुवर्णजटित एवं उत्तम रत्नोंसे निर्मित रथ प्रदान किये। इस प्रकार परमेश्वर शिवको विधिपूर्वक अपनी पुत्री शिवा गिरिजाको प्रदान करके हिमालय कृतार्थ हो गये॥ ५०—५३॥

तत्पश्चात् पर्वतराजने हाथ जोड़कर श्रेष्ठ वाणीमें माध्यन्दिनी शाखामें कहे गये स्तोत्रसे परमेश्वरकी स्तुति की। इसके बाद वेदज्ञ हिमालयकी आज्ञा पाकर मुनियोंने अतिप्रसन्न होकर शिवाके सिरपर अभिषेक किया और देवताओंके नामका उच्चारणकर पर्युक्षण-विधि सम्पन्न की। हे मुने! उस समय परम आनन्द उत्पन्न करनेवाला महोत्सव हुआ॥ ५४—५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें कन्यादानवर्णन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

अग्निपरिक्रमा करते समय पार्वतीके पदनखको देखकर ब्रह्माका मोहग्रस्त होना, बालखिल्योंकी उत्पत्ति, शिवका कुपित होना, देवताओंद्वारा शिवस्तुति

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इसके अनन्तर मेरी आज्ञासे ईश्वरने ब्राह्मणोंद्वारा अग्निस्थापन करके पार्वतीको अपने पास बैठाकर हवन किया। शिवने ऋक्, साम तथा यजुर्वेदके मन्त्रोंसे अग्निमें आहुति दी और कालीके भाई मैनाकने लाजाकी अंजलि दी। हे तात! इसके बाद लोकाचारका विधानकर काली और शिव दोनोंने प्रसन्नताके साथ विधिवत् अग्निकी प्रदक्षिणा की। हे देवर्षे! उस समय गिरिजापति शंकरने एक अद्भुत चरित्र किया, मैं आपके स्नेहके कारण उसका वर्णन करता हूँ, आप सुनिये॥ १—४॥

उस समय शिवकी मायासे मोहित हुआ मैं पार्वतीके चरणोंमें मनोहर नखचन्द्रको देखने लगा॥ ५॥

हे देवमुने! उसके दर्शनसे मैं मोहित हो उठा और मेरा मन अत्यन्त क्षुब्ध हो गया। मोहित होकर मैं बार-बार उनके अंगोंको देखने लगा, तब उस देखनेसे मेरा तेज शीघ्र ही पृथ्वीपर गिर गया और मैं अत्यन्त लज्जित हो गया। यह देखकर महादेवजी अत्यन्त कुपित हो गये और तब उन्होंने मुझ ब्रह्माको शीघ्र मारनेकी इच्छा की॥ ६—९॥

हे नारद! वहाँ सर्वत्र बड़ा हाहाकार होने लगा, सभी लोग काँपने लगे तथा विश्वको धारण करनेवाले विष्णुको भय होने लगा॥ १०॥

हे मुने! तब विष्णु आदि देवगण कोपयुक्त, अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए और [मुझ ब्रह्माको] मारनेके लिये उद्यत उन शिवजीकी स्तुति करने लगे॥ ११॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे जगद्व्यापिन्! हे परमेश! हे सदाशिव! हे जगत्पते! हे जगन्नाथ! हे जगन्मय! आप प्रसन्न हों। आप सभी पदार्थोंकी आत्मा, सबके हेतु, ईश्वर, निर्विकार, अव्यय, नित्य, निर्विकल्प, अक्षर तथा सबसे परे हैं। आप इस जगत्के आदि, मध्य, अन्त एवं अभ्यन्तर तथा बाहर विराजमान हैं, आप अव्यय, सनातन एवं तत्पदवाच्य, सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं॥ १२—१४॥

मुक्तिकी कामनावाले दृढ़व्रत मुनिजन सब प्रकारसे संगका परित्यागकर आपके ही चरणकमलकी उपासना करते हैं। आप अमृतस्वरूप, शोकरहित, निर्गुण, श्रेष्ठ, आनन्दमात्र, व्यग्रतारहित, निर्विकार, आत्मासे रहित तथा मायासे परे पूर्णब्रह्म हैं॥ १५-१६॥

आप संसारकी उत्पत्ति, पालन तथा प्रलयके कारण हैं। इस संसारको आपकी अपेक्षा है, किंतु सर्वत्र व्यापक आप परमात्माको किसीकी अपेक्षा नहीं है॥ १७॥

आप एक होते हुए भी सत् एवं असत् हैं, द्वैत एवं अद्वैत हैं, गढ़े हुए तथा न गढ़े हुए स्वर्णमें जैसे वस्तुभेद नहीं है, वैसे ही आप भी हैं॥ १८॥

पुरुषोंने अज्ञानताके कारण आपमें विकल्पका आरोप किया है, इसलिये सोपाधिमें भ्रमका प्रतीकार

किया जाता है, किंतु निरुपाधिमें नहीं॥ १९॥

हे महेशान! हम सब आपके दर्शनमात्रसे धन्य हो गये; क्योंकि आप दृढ़ भक्तोंको आनन्द प्रदान करते हैं, अत: हे शम्भो! हमलोगोंपर दया कीजिये॥ २०॥

आप आदि हैं, आप अनादि हैं, आप प्रकृतिसे परे पुरुष हैं। आप विश्वेश्वर, जगन्नाथ, निर्विकार एवं परसे भी परे हैं। हे प्रभो! रजोगुणयुक्त ये जो विश्वमूर्ति पितामह ब्रह्मा हैं और सत्त्वगुणसे युक्त पुरुषोत्तम विष्णु हैं, वे आपकी ही कृपासे हैं। कालाग्नि रुद्र तमोगुणसे युक्त हैं, आप परमात्मा सभी गुणोंसे परे हैं, आप सदाशिव महेशान, सर्वव्यापी तथा महेश्वर हैं॥ २१—२३॥

हे विश्वमूर्ते! हे महेश्वर! व्यक्त महत्तत्त्व, पंचभूत, तन्मात्राएँ एवं इन्द्रियाँ आपसे ही अधिष्ठित हैं॥ २४॥

हे महादेव! हे परेशान! हे करुणाकर! हे शंकर! प्रसन्न होइये। हे देवदेवेश! पुरुषोत्तम! प्रसन्न हो जाइये। हे प्रभो! सातों समुद्र आपके वस्त्र, सभी दिशाएँ आपकी महाभुजाएँ, द्युलोक आपका सिर, आकाश नाभि तथा वायु नासिका है॥ २५-२६॥

हे प्रभो! रवि-सोम-अग्नि आपके नेत्र, मेघ आपके केश और नक्षत्र-तारा-ग्रह आपके आभूषण हैं॥ २७॥

हे शंकर! आप वाणी तथा मनसे सर्वथा अगोचर हैं, अत: हे देवेश! हे विभो! हे परमेश्वर! हमलोग आपकी स्तुति किस प्रकार करें॥ २८॥

पंचमुख, पचास करोड़ मूर्तिवाले, त्रिलोकेश, वरिष्ठ एवं विद्यातत्त्वस्वरूप आप रुद्रको प्रणाम है॥ २९॥

अनिर्देश्य, नित्य, विद्युज्ज्वालाके समान रूपवाले, अग्निवर्ण एवं देवाधिदेव आप शंकरको बार-बार नमस्कार है। करोड़ों विद्युत्‌के समान प्रकाशमान, अष्ट कोणवाले तथा अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करके इस लोकमें स्थित रहनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

ब्रह्माजी बोले—उन [देवताओं]-की यह बात सुनकर प्रसन्न हुए भक्तवत्सल परमेश्वरने मुझ ब्रह्माको शीघ्र ही अभय प्रदान कर दिया॥ ३२॥

हे तात! उसके बाद विष्णु आदि सभी देवता तथा मुनिगण मन्द-मन्द हँसते हुए परम आनन्दित हो उठे॥ ३३॥

हे तात! मेरे उस रेतसे अत्यन्त उज्ज्वल बहुत-से कण हो गये और अपने तेजसे प्रज्वलित उन कणोंसे बालखिल्य नामक हजारों ऋषि प्रकट हो गये॥ ३४-३५॥

हे मुने! तब वे सभी ऋषि मेरे समीप खड़े हो गये और बड़े प्रेमसे मुझे हे तात! हे तात! कहने लगे॥ ३६॥

तब ईश्वरेच्छासे प्रेरित हुए नारदजी [आप] क्रोधयुक्त चित्तसे उन बालखिल्य ऋषियोंसे कहने लगे—॥ ३७॥

नारदजी बोले—अब आपलोग एक साथ ही गन्धमादन पर्वतपर चले जाइये। आपलोग यहाँ मत रुकिये; आपलोगोंका यहाँ [कोई] प्रयोजन नहीं है॥ ३८॥

वहाँ कठोर तपस्या करके आपलोग मुनीश्वर और सूर्यके शिष्य होंगे, मैंने यह बात शिवजीकी आज्ञासे कही है॥ ३९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहे गये वे बालखिल्य शंकरजीको नमस्कार करके शीघ्र ही गन्धमादन पर्वतपर चले गये। हे मुनीश्वर! तब शिवजीके द्वारा प्रेरित विष्णु आदिने मुझे बहुत समझाया और मैं निर्भय हो गया और फिर सर्वेश शंकरको भक्तवत्सल, सम्पूर्ण कार्योंको करनेवाला तथा दुष्टोंके गर्वको नष्ट करनेवाला समझकर उनकी स्तुति करने लगा॥ ४०—४२॥

हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! आप ही सब प्रकारसे सबके कर्ता, भर्ता तथा हर्ता हैं॥ ४३॥

मैंने यह अच्छी तरह जान लिया है कि जिस प्रकार बलवान् बैल नाथनेसे वशमें हो जाता है, उसी प्रकार यह सारा चराचर जगत् आपकी इच्छासे स्थित है॥ ४४॥

इस प्रकार कहकर हाथ जोड़ मैंने शिवको प्रणाम किया और विष्णु आदि अन्य सभीने भी उन महेश्वरकी स्तुति की॥ ४५॥

तब दीनभावसे की गयी विष्णु आदि सभी देवताओंकी तथा मेरी शुद्ध स्तुति सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये॥ ४६॥

हे मुने! उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर मुझे अतिश्रेष्ठ अभयदान दिया, सभीने महान् सुख प्राप्त किया और मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई॥ ४७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें ब्रह्माके मोहका वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

शिवा-शिवके विवाहकृत्यसम्पादनके अनन्तर देवियोंका शिवसे मधुर वार्तालाप

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! तदनन्तर मैंने शिवजीकी आज्ञासे मुनियोंके साथ परमप्रीतिसे शिवा-शिवके विवाहके शेष कृत्योंका सम्पादन किया। उन दोनोंके सिरपर आदरपूर्वक मांगलिक अभिषेक हुआ और ब्राह्मणोंने आदरके साथ उन्हें ध्रुवदर्शन कराया॥ १-२॥

हे विप्रेन्द्र! उसके बाद हृदयालम्भनका कर्म तथा बड़े महोत्सवके साथ स्वस्तिवाचन हुआ॥ ३॥

ब्राह्मणोंकी आज्ञासे शम्भुने शिवाकी माँगमें सिन्दूर लगाया, उस समय गिरिजा अत्यन्त अद्भुत अवर्णनीय रूपवती हो गयीं। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी आज्ञासे दोनों एक आसनपर विराजमान हुए और भक्तोंके चित्तको आनन्द देनेवाली अपूर्व शोभासे सम्पन्न हो गये॥ ४-५॥

हे मुने! तदनन्तर अद्भुत लीला करनेवाले उन दोनोंने अपने स्थानपर आकर मेरी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक संस्रव*-प्राशन किया। इस प्रकार विवाह-यज्ञके विधिवत् सम्पन्न हो जानेपर प्रभु शिवने मुझ लोककर्ता ब्रह्माको पूर्णपात्रका दान किया। तत्पश्चात् शिवजीने आचार्यको विधिपूर्वक गोदान दिया तथा मंगल प्रदान करनेवाले जो अन्य महादान हैं, उन्हें भी बड़े प्रेमसे दिया॥ ६—८॥

उसके बाद उन्होंने बहुत-से ब्राह्मणोंको अलग-अलग सौ-सौ स्वर्णमुद्राएँ, करोड़ों रत्न तथा अनेक प्रकारके द्रव्य दिये। उस समय सभी देवगण एवं अन्य चराचर जीव हृदयसे अत्यन्त प्रसन्न हुए और जोर-जोरसे जयध्वनि होने लगी। सभी ओर मंगलध्वनिके साथ गान होने लगा और सबके आनन्दको बढ़ानेवाली रम्य वाद्य-ध्वनि होने लगी। उसके बाद मेरे साथ विष्णु, देवता, मुनिगण तथा अन्य लोग हिमालयसे आज्ञा लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने निवासस्थानको गये॥ ९—१२॥

उस समय हिमालयके नगरकी स्त्रियाँ प्रसन्न होकर शिवा एवं शिवको लेकर दिव्य कोहवर-घरमें गयीं॥ १३॥

वहाँपर वे स्त्रियाँ आदरके साथ लौकिकाचार करने लगीं। चारों ओर आनन्द प्रदान करनेवाला महान् उत्साह फैल गया। उसके बाद उन सबने लोगोंका कल्याण करनेवाले उन शिव-शिवाको महादिव्य निवासस्थानमें ले जाकर प्रसन्नतापूर्वक लौकिकाचार किया॥ १४-१५॥

तत्पश्चात् हिमालयके नगरकी स्त्रियाँ समीपमें आकर मंगलकर्म करके दम्पतीको घरमें ले गयीं॥ १६॥

वे जय-जयकारकर ग्रन्थि-बन्धन खोलने लगीं। उस समय वे कटाक्ष करती हुईं मन्द-मन्द हँस रही थीं और उनका शरीर रोमांचित हो रहा था॥ १७॥

वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ वासगृहमें प्रवेश करते ही मोहित हो गयीं और सुन्दर रूप तथा वेषवाले, सम्पूर्ण लावण्यसे युक्त, नवीन यौवनसे परिपूर्ण, कामिनियोंके चित्तको मोहित करनेवाले, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त प्रसन्न मुख-मण्डलवाले, कटाक्षयुक्त, अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र धारण किये हुए और अनेक रत्नोंसे विभूषित परमेश्वरको देखती हुईं अपने-अपने भाग्यकी प्रशंसा करने लगीं॥ १८—२०॥

उस समय सोलह दिव्य नारियाँ बड़े आदरके साथ इन दम्पतीको देखनेके लिये शीघ्र ही पहुँच गयीं। सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, जाह्नवी, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुन्धरा, शतरूपा, संज्ञा और रति—ये देवस्त्रियाँ हैं। अन्य जो-जो मनोहर देवकन्याएँ एवं मुनिकन्याएँ वहाँ स्थित थीं, उनकी गणना करनेमें कौन समर्थ है॥ २१—२४॥

उनके द्वारा दिये गये रत्नके आसनपर शिवजी प्रसन्नताके साथ बैठे। इसके बाद सब देवियाँ क्रमसे मन्द-मन्द हँसती हुईं उनसे मधुर वचन कहने लगीं॥ २५॥

सरस्वती बोलीं—हे महादेव! अब प्राणोंसे भी अधिक प्यारी सतीदेवी आपको प्राप्त हो गयी हैं। हे कामुक! इनके चन्द्रमाके समान आभावाले प्रिय मुखको प्रसन्नतापूर्वक देखकर आप सन्तापको त्याग दीजिये॥ २६॥

---

* अग्निमें घीकी आहुति देकर स्रुवामें अवशिष्ट घृतको जलयुक्त प्रोक्षणीपात्रमें डालनेकी विधि है। प्रत्येक आहुतिमें ऐसा किया जाता है। प्रोक्षणीपात्रमें डाले हुए घीको ही 'संस्रव' कहते हैं। अन्तमें यजमान उसे पीता है। इसीको 'संस्रवप्राशन' कहा गया है।

हे कालेश! आप इस सतीका आलिंगन करते हुए अपना समय व्यतीत कीजिये। सभी समय आपके आश्रित रहनेवाली इस सखीसे आपका वियोग नहीं होगा॥ २७॥

लक्ष्मी बोलीं—हे देवेश! अब लज्जाका त्यागकर सतीको अपने वक्षःस्थलमें स्थित कीजिये, जिसके बिना आपके प्राण निकल रहे थे, उसके प्रति कौन-सी लज्जा!॥ २८॥

सावित्री बोलीं—हे शम्भो! सतीको भोजन कराकर आप भी शीघ्र भोजन कीजिये, किसी बातका खेद मत कीजिये और आचमन करके सतीको आदरसे कपूरमिश्रित ताम्बूल दीजिये॥ २९॥

जाह्नवी बोलीं—अब इस सुवर्णकान्तिवाली पार्वतीके केशोंको पकड़कर सँवारिये; क्योंकि कामिनी स्त्रियोंका इससे बढ़कर और कोई पतिसे प्राप्त होनेवाला सौभाग्यसुख नहीं होता॥ ३०॥

अदिति बोलीं—हे शिवे! आप भोजनके पश्चात् मुख शुद्ध करनेके लिये शम्भुको अति प्रेमसे जल प्रदान कीजिये; क्योंकि दम्पतीका परस्पर प्रेम [सर्वथा] दुर्लभ है॥ ३१॥

शची बोलीं—जिसके लिये आप मोहवश विलाप करते-करते [दर-दर] भटक रहे थे, उस शिवाको वक्षःस्थलपर धारण कीजिये, उस प्रियाके प्रति आपको लज्जा क्यों?॥ ३२॥

लोपामुद्रा बोलीं—हे शंकर! भोजन करके आप वासगृहमें जाइये, यह स्त्रियोंका व्यवहार है। आप शिवाको ताम्बूल देकर शयन कीजिये॥ ३३॥

अरुन्धती बोलीं—हे शिव! मेना आपके निमित्त पार्वतीको देना नहीं चाहती थीं, किंतु मेरे बहुत समझानेपर उन्होंने पार्वतीको देना स्वीकार किया, अब आप इनसे अधिक प्रेम कीजिये॥ ३४॥

अहल्या बोलीं—अब आप वृद्धावस्थाको छोड़कर पूर्ण युवा हो जाइये, जिससे कन्या देनेवाली इस मेनाको पुत्रीदानसे सन्तुष्टि प्राप्त हो जाय॥ ३५॥

तुलसी बोलीं—हे प्रभो! आपने पूर्वकालमें सतीका त्याग किया, उसके बाद कामदेवको जलाया, अब आपने [पार्वतीको प्राप्त करनेके लिये] हिमालयके घर वसिष्ठको कैसे भेजा?॥ ३६॥

स्वाहा बोलीं—हे महादेव! अब आप स्त्रियोंके वचनमें स्थिर हो जाइये; क्योंकि विवाहमें स्त्रियोंकी प्रगल्भता एक व्यवहार होता है॥ ३७॥

रोहिणी बोलीं—हे कामशास्त्रविशारद! अब आप पार्वतीकी कामना पूर्ण कीजिये, आप स्वयं कामी हैं, अतः कामिनीके कामसागरको पार कीजिये॥ ३८॥

वसुन्धरा बोलीं—हे भावज्ञ! आप कामार्त स्त्रियोंके भावको जानते हैं। हे शम्भो! स्त्री अपने स्वामीकी ईश्वरभावसे निरन्तर सेवा करती है, वह पतिके अतिरिक्त अपनी किसी भी वस्तुकी रक्षा करना नहीं चाहती॥ ३९॥

शतरूपा बोलीं—भूखसे तड़पता हुआ व्यक्ति दिव्य सुखका भोग किये बिना सन्तुष्ट नहीं होता। अतः हे शम्भो! जिससे स्त्रीको सन्तुष्टि हो, आपको वही करना उचित है॥ ४०॥

संज्ञा बोलीं—[हे सखि!] रत्नदीपक जलाकर एकान्तमें पलंग बिछाकर और उसपर ताम्बूल रखकर परम प्रीतिसे शीघ्रतापूर्वक शिवाके साथ शिवको स्थापित करो॥ ४१॥

ब्रह्माजी बोले—स्त्रियोंके वे वचन सुनकर निर्विकार एवं महान् योगियोंके गुरुके भी गुरु भगवान् शंकरजी उनसे स्वयं कहने लगे—॥ ४२॥

शंकरजी बोले—हे देवियो! मेरे समीप इस प्रकारके वचनको आपलोग न बोलें, आप सब पतिव्रताएँ एवं जगत्की माताएँ हैं, फिर पुत्रके विषयमें इस प्रकारकी चपलता क्यों?॥ ४३॥

ब्रह्माजी बोले—शंकरकी यह बात सुनकर सभी देवस्त्रियाँ लज्जित हो गयीं और सम्भ्रमके कारण चित्रलिखित पुतलियोंकी भाँति चुप हो गयीं॥ ४४॥

तदनन्तर मिष्टान्न ग्रहणकर आचमनकर प्रसन्नचित्त महेशने पार्वतीके साथ कर्पूरयुक्त पानका सेवन किया॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें परिहासवर्णन नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

रतिके अनुरोधपर श्रीशंकरका कामदेवको जीवित करना, देवताओंद्वारा शिवस्तुति

ब्रह्माजी बोले—उस अवसरपर अनुकूल समय जानकर प्रसन्नतासे पूर्ण रति दीनवत्सल शंकरसे कहने लगी— ॥ १ ॥

रति बोली—[हे भगवन्!] पार्वतीको ग्रहण करके आपने परम दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त किया, किंतु मेरे प्राणनाथको आपने व्यर्थ ही भस्म क्यों कर दिया? ॥ २ ॥

अपने मनमें विचार करके मेरे पतिको जीवित कर दीजिये और समानरूपसे वियोगके हेतुभूत सन्तापको दूर कीजिये ॥ ३ ॥

हे महेश्वर! इस विवाहोत्सवमें सभी लोग सुखी हैं, केवल मैं ही अपने पतिके बिना दुखी हूँ ॥ ४ ॥

हे देव! मुझे सनाथ कीजिये। हे शंकर! अब आप प्रसन्न होइये। हे दीनबन्धो! हे परप्रभो! अपने वचनको आप सत्य कीजिये ॥ ५ ॥

इस चराचर त्रिलोकीमें आपके बिना कौन मेरा दुःख दूर करनेमें समर्थ है, ऐसा जानकर मुझपर दया कीजिये ॥ ६ ॥

हे नाथ! हे दीनोंपर कृपा करनेवाले! सभीको आनन्द देनेवाले उत्सवपूर्ण अपने इस विवाहमें मुझे भी आनन्दित कीजिये ॥ ७ ॥

मेरे पतिके जीवित होनेपर ही प्रिया पार्वतीके साथ आपका विहार पूर्ण होगा, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८ ॥

आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, क्योंकि आप परमेश्वर हैं। हे सर्वेश! बहुत क्या कहूँ, आप मेरे पतिको शीघ्र जीवित कीजिये ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर रतिने अपने गाँठमें बँधी हुई कामकी भस्म उन्हें दे दी और हे नाथ! हे नाथ! ऐसा कहकर उनके सामने विलाप करने लगी ॥ १० ॥

रतिके रुदनको सुनकर [वहाँ उपस्थित] सरस्वती आदि सभी स्त्रियाँ रोने लगीं और अत्यन्त दीन वचन कहने लगीं ॥ ११ ॥

देवियाँ बोलीं—[हे प्रभो!] आप भक्तवत्सल नामवाले, दीनबन्धु और दयानिधि हैं, आप कामको जीवित कर दीजिये तथा रतिको प्रसन्न कीजिये, आपको नमस्कार है ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—उनके इस वचनको सुनकर महेश्वर प्रसन्न हो गये। उन करुणासागर प्रभुने शीघ्र ही [उनपर] कृपादृष्टि की ॥ १३ ॥

शूलधारी शिवजीकी अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही भस्मसे उसी रूप-वेष-चिह्नको धारण किये हुए, सुन्दर तथा अद्भुत शरीरवाले कामदेव प्रकट हो गये ॥ १४ ॥

उसी रूप तथा उसी आकारवाले, हास्ययुक्त एवं धनुष-बाणयुक्त [अपने] पतिको देखकर रतिने उन्हें तथा महेश्वरको प्रणाम किया ॥ १५ ॥

वह कृतार्थ हो गयी और हाथ जोड़कर [अपने] जीवित पतिके साथ प्राणनाथ [कामदेव]-को प्रदान करनेवाले देव शंकरकी स्तुति करने लगी ॥ १६ ॥

पत्नीसहित कामकी स्तुति सुनकर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और करुणासे आर्द्र होकर कहने लगे— ॥ १७ ॥

शंकरजी बोले—हे काम! स्त्रीसहित तुम्हारी स्तुतिसे मैं प्रसन्न हूँ। हे स्वयम्भव! अब तुम अभीष्ट वर माँगो, मैं उसे तुम्हें देता हूँ ॥ १८ ॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीका ऐसा वचन सुनकर कामदेव अत्यन्त प्रसन्न हो गये और विनम्र होकर हाथ जोड़कर गद्‌गद वाणीमें बोले— ॥ १९ ॥

कामदेव बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर! हे प्रभो! हे सर्वेश! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे आनन्द प्रदान कीजिये ॥ २० ॥

हे प्रभो! मैंने पूर्व समयमें जो अपराध किया है, उसे क्षमा कीजिये। स्वजनोंमें परम प्रीति और अपने चरणोंमें भक्ति दीजिये ॥ २१ ॥

ब्रह्माजी बोले—कामदेवकी यह बात सुनकर करुणासागर परमेश्वर प्रसन्न हो 'तथास्तु'—ऐसा कहकर हँसते हुए उनसे पुनः कहने लगे— ॥ २२ ॥

ईश्वर बोले—हे काम! हे महामते! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम भयका त्याग करो और विष्णुके समीप जाओ तथा बाहर स्थित हो जाओ ॥ २३ ॥

ब्रह्माजी बोले—यह सुनकर वह कामदेव सिर झुकाकर प्रभुको प्रणाम करके परिक्रमाकर उनकी स्तुति करते हुए बाहर जाकर विष्णु एवं अन्य देवताओंको प्रणामकर उनकी उपासना करने लगा ॥ २४ ॥

देवताओंने कामदेवसे सम्भाषणकर कल्याणकारी आशीष प्रदान किया, इसके बाद प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका हृदयमें स्मरण करके वे विष्णु आदि उनसे कहने लगे— ॥ २५ ॥

देवता बोले—हे काम! तुम धन्य हो, जो शिवजीके द्वारा दग्ध हो जानेके बाद भी उनके अनुग्रह-पात्र बने और अखिलेश्वरने सात्त्विक कृपादृष्टिसे तुम्हें जीवित कर दिया ॥ २६ ॥

कोई भी किसीको सुख-दुःख देनेवाला नहीं है, पुरुष स्वयं अपने किये हुए कर्मका फल भोगता है। समयके आनेपर रक्षा, विवाह तथा जन्म होता है, उसे कौन रोक सकता है? ॥ २७ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर उनका सत्कार करके सफल मनोरथवाले वे सभी विष्णु आदि देवगण सुखपूर्वक वहीं स्थित हो गये ॥ २८ ॥

कामदेवने भी प्रमुदित होकर शिवजीकी आज्ञासे वहीं निवास किया। उस समय जय शब्द, नमःशब्द और साधु शब्द होने लगा ॥ २९ ॥

उसके बाद शिवजीने अपने निवासगृहमें पार्वतीको बायीं ओर बैठाकर उन्हें मिष्टान्नका भोजन कराया और उन्होंने भी परम प्रसन्न होकर उन शिवजीको भोजन कराया ॥ ३० ॥

इस प्रकार लोकाचारमें लगे हुए वे शम्भु वहाँका कृत्य करके मेना तथा हिमालयसे आज्ञा लेकर जनवासमें चले गये ॥ ३१ ॥

हे मुने! उस समय महोत्सव होने लगा, वेदध्वनि होने लगी तथा लोग चारों प्रकारके बाजे* बजाने लगे ॥ ३२ ॥

शिवजीने अपने स्थानपर आकर मुनियोंको, मुझे तथा विष्णुको प्रणाम किया। देवता आदिने लोकाचारके कारण उनको भी प्रणाम किया ॥ ३३ ॥

उस समय जय शब्द और नमः शब्दका उच्चारण होने लगा और सभी प्रकारके विघ्नोंको दूर करनेवाली मंगलदायिनी वेदध्वनि होने लगी ॥ ३४ ॥

विष्णु, मैं, इन्द्र, सभी देवगण, ऋषि, सिद्ध, उपदेव एवं नाग अलग-अलग शिवजीकी स्तुति करने लगे— ॥ ३५ ॥

देवता बोले—हे शंकर! हे सर्वाधार! आपकी जय हो। हे महेश्वर! आपकी जय हो। हे रुद्र! हे महादेव! हे विश्वम्भर! हे प्रभो! आपकी जय हो। हे कालीपते! हे स्वामिन्! हे आनन्दप्रवर्धक! आपकी जय हो। हे त्र्यम्बक! हे सर्वेश! आपकी जय हो। हे मायापते! हे विभो! आपकी जय हो ॥ ३६-३७ ॥

हे निर्गुण! हे निष्काम! हे कारणातीत! हे सर्वग! आपकी जय हो। हे सम्पूर्ण लीलाओंके आधार! आपकी जय हो। हे अवतार धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है ॥ ३८ ॥

---

* अमरकोशमें जो चार प्रकारके बाजे बताये गये हैं, संसारके सभी प्राचीन अथवा अर्वाचीन वाद्य उन्हींके अन्तर्गत हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—तत, आनद्ध, सुषिर और घन। 'तत' वह बाजा है, जिसमें तारका विस्तार हो—जैसे वीणा, सितार आदि। जिसे चमड़ेसे मढ़ाकर कसा गया हो, वह 'आनद्ध' कहलाता है—जैसे ढोल, मृदंग, नगारा आदि। जिसमें छेद हो और उसमें हवा भरकर स्वर निकाला जाता हो, उसे 'सुषिर' कहते हैं—जैसे वंशी, शंख, विगुल, हारमोनियम आदि। काँसेके झाँझ आदिको 'घन' कहते हैं।

अपने भक्तोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाले हे ईश! हे करुणासागर! आपकी जय हो। हे आनन्दमय! हे सुन्दररूपवाले! आपकी जय हो। हे मायासे सगुण रूप धारण करनेवाले! आपकी जय हो॥ ३९॥

हे उग्र! हे मृड! हे सर्वात्मन्! हे दीनबन्धो! हे दयानिधे! आपकी जय हो। हे अविकार! हे मायेश! हे वाणी तथा मनसे अतीत स्वरूपवाले! आपकी जय हो॥ ४०॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार गिरिजापति महेश्वर प्रभुकी स्तुतिकर वे विष्णु आदि देवगण परम प्रीतिसे शिवजीकी यथोचित सेवा करने लगे॥ ४१॥

हे नारद! तब लीलासे शरीर धारण करनेवाले महेश्वर भगवान् शम्भुने उन सबको श्रेष्ठ सम्मान प्रदान किया॥ ४२॥

हे तात! इसके बाद वे विष्णु आदि सभी लोग महेश्वरकी आज्ञा प्राप्त करके अत्यन्त हर्षित, प्रसन्नमुख तथा सम्मानित होकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें कामसंजीवनवर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ अध्याय

हिमालयद्वारा सभी बरातियोंको भोजन कराना, शिवका विश्वकर्माद्वारा निर्मित वासगृहमें शयन करके प्रातःकाल जनवासेमें आगमन

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इसके बाद भाग्यवान् एवं बुद्धिमान् पर्वतश्रेष्ठ हिमालयने सबको भोजन करानेके लिये आँगनको सजाया॥ १॥

उन्होंने अच्छी प्रकारसे उसका मार्जन तथा लेपन कराया और अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओंसे आदरपूर्वक उसे अलंकृत कराया॥ २॥

तदनन्तर अपने पुत्रों तथा अन्य पर्वतोंद्वारा शंकरजी-सहित सभी देवगणों तथा अन्य लोगोंको भोजनके लिये बुलवाया॥ ३॥

हे मुने! हिमालयके आमन्त्रणको सुनकर विष्णु तथा सभी देवता आदिके साथ वे प्रभु प्रसन्नताके साथ भोजनके लिये वहाँ गये॥ ४॥

हिमालयने प्रभु तथा उन सभी देवगणोंका यथोचित सत्कार करके घरके भीतर उत्तम आसनोंपर प्रसन्नताके साथ बैठाया और उन्हें अनेक प्रकारकी सुभोज्य वस्तुओंको परोसकर नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर भोजनके लिये प्रार्थना की॥ ५-६॥

उसके बाद विष्णु आदि सभी देवता [हिमालयसे] इस प्रकार सम्मानित होकर सदाशिवको आगेकर भोजन करने लगे॥ ७॥

उस समय सभी देवगण मिलकर एक साथ पंक्तिबद्ध होकर [परस्पर] हास्य करते हुए अलग-अलग भोजन करने लगे॥ ८॥

महाभाग नन्दी, भृंगी, वीरभद्र तथा वीरभद्रके गण पृथक् होकर कौतूहलमें भरकर भोजन करने लगे॥ ९॥

अनेक प्रकारकी शोभासे सम्पन्न महाभाग इन्द्र आदि लोकपाल तथा देवगण अनेक प्रकारके हास-परिहासके साथ भोजन करने लगे॥ १०॥

सभी मुनि, ब्राह्मण तथा भृगु आदि ऋषिगण आनन्दके साथ पृथक् पंक्तिमें बैठकर भोजन करने लगे॥ ११॥

इसी प्रकार चण्डीके सभी गणोंने भी भोजन किया। वे भोजन करनेके बाद प्रसन्नतापूर्वक कौतूहल करते हुए अनेक प्रकारके हास-परिहास कर रहे थे॥ १२॥

इस तरह विष्णु आदि उन सभी देवताओंने आनन्दके साथ भोजन किया, फिर आचमन करके विश्रामके लिये वे प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने निवासस्थानको चले गये॥ १३॥

इधर, मेनाकी आज्ञासे सभी पतिव्रता स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक शिवसे प्रार्थनाकर वास नामक परमानन्ददायक निवासगृहमें ले गयीं॥ १४॥

वहाँपर मेनाके द्वारा दिये गये मनोहर रत्नके सिंहासनपर बैठकर प्रसन्नतापूर्वक शिवजी वासगृहको देखने लगे॥ १५॥

वह गृह सैकड़ों जलते हुए रत्नदीपकोंसे प्रकाशित तथा शोभासम्पन्न था, वहाँ अनेक प्रकारके रत्नोंके पात्र विराज रहे थे, उसमें स्थान-स्थानपर मोती तथा मणियाँ लगी हुई थीं। वह रत्नोंके दर्पणकी शोभासे युक्त था, वह श्वेत वर्णके चँवरोंसे मण्डित था, उसमें मोतियों और मणियोंकी मालाएँ लगी हुई थीं। वह परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न, अनुपम, महादिव्य, विचित्र, अत्यन्त मनोहर तथा चित्तको प्रसन्न करनेवाला था और उसके प्रत्येक स्थलमें नाना प्रकारकी कारीगरी की गयी थी॥ १६—१८॥

वह गृह शिवके द्वारा दिये गये वरका अतुलनीय प्रभाव प्रकट कर रहा था और शोभासे सम्पन्न होनेके कारण उस गृहका शिवलोक नामकरण किया गया था॥ १९॥

वह अनेक प्रकारके सुगन्धित उत्तम द्रव्योंसे सुवासित, उत्तम प्रकाशसे युक्त, चन्दन-अगरुयुक्त तथा पुष्पकी शय्यासे समन्वित था॥ २०॥

वह गृह विश्वकर्माके द्वारा रचित नाना प्रकारके चित्रोंकी विचित्रतासे युक्त था, उसमें सभी उत्तम रत्नोंके सारोंसे रचित श्रेष्ठ हारोंके ढेर लगे हुए थे॥ २१॥

कहीं देवताओंके लिये अत्यन्त मनोहर वैकुण्ठ बना हुआ था, कहीं ब्रह्मलोक बना हुआ था, कहीं लोकपालोंका पुर बना हुआ था, कहीं मनोहर कैलास बना हुआ था, कहीं इन्द्रका मन्दिर बना हुआ था और कहीं सबके ऊपर शिवलोक सुशोभित हो रहा था॥ २२-२३॥

आश्चर्यचकित करनेवाले ऐसे घरको देखकर शिवजी गिरिराज हिमालयकी प्रशंसा करते हुए परम प्रसन्न हो गये॥ २४॥

उसके बाद शिवजीने परम रमणीय तथा उत्तम रत्न-पर्यंकपर प्रसन्न हो लीलापूर्वक शयन किया॥ २५॥

हिमालयने अपने सभी भाइयोंको तथा अन्य लोगोंको बड़े प्रेमसे भोजन कराया तथा शेष कृत्य पूर्ण किया॥ २६॥

इस प्रकार हिमालयको सब कार्य पूर्ण करते हुए एवं ईश्वर शिवजीके शयन करते हुए सारी रात बीत गयी और प्रभातकाल उपस्थित हो गया॥ २७॥

तब प्रात:काल होनेपर धैर्य एवं उत्साहसे भरे हुए लोग अनेक प्रकारके बाजे बजाने लगे॥ २८॥

विष्णु आदि सभी देवगण उठ गये और अपने इष्टदेव शंकरका स्मरणकर प्रसन्नताके साथ शीघ्रतासे सज्जित होकर तैयार हो गये। अपने-अपने वाहनोंको सजाकर कैलास जानेके लिये उत्सुक उन लोगोंने शिवजीके समीप धर्मको भेजा। तत्पश्चात् नारायणकी आज्ञासे निवासगृहमें आकर योगी धर्म योगीश्वर शंकरसे समयोचित वचन कहने लगे— ॥ २९—३१॥

धर्म बोले—हे भव! उठिये, उठिये, आपका कल्याण हो। हे प्रमथाधिप! जनवासेमें चलिये और वहाँ उन सभीको कृतार्थ कीजिये॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] धर्मराजके इस वचनको सुनकर शिवजी हँसे। उन्होंने कृपादृष्टिसे धर्मकी ओर देखा और शय्याका परित्याग किया। वे हँसते हुए धर्मसे कहने लगे—तुम आगे चलो, मैं भी वहाँ शीघ्र ही आऊँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३३-३४॥

ब्रह्माजी बोले—शंकरजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर धर्मराज जनवासेमें गये और बादमें स्वयं प्रभु शंकरजी भी वहाँ जानेका विचार करने लगे॥ ३५॥

इसे जानकर स्त्रियाँ आनन्दमें भरकर वहाँ पहुँच गयीं और शिवके दोनों चरणोंको देखती हुई मंगलगान करने लगीं। इसके बाद वे शिवजी लोकाचार प्रदर्शित करते हुए प्रात:कृत्य करके मेना एवं पर्वतराजसे आज्ञा लेकर जनवासेमें गये॥ ३६-३७॥

हे मुने! उस समय महोत्सव होने लगा, वेदध्वनि होने लगी और लोग चारों प्रकारके बाजे बजाने लगे॥ ३८॥

शिवजीने अपने स्थानपर आकर मुनियोंको, मुझे तथा विष्णुको प्रणाम किया तथा देवता आदिने भी लौकिक आचारवश उनकी वन्दना की॥ ३९॥

[उस समय चारों ओर] जय शब्द, नम: शब्द और मंगलदायक वेदध्वनि होने लगी, इस प्रकार वहाँ महान् कोलाहल व्याप्त हो गया॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें वरवर्गका भोजन और शिवशयन-वर्णन नामक बावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

चतुर्थीकर्म, बरातका कई दिनोंतक ठहरना, सप्तर्षियोंके समझानेसे हिमालयका बरातको विदा करनेके लिये राजी होना, मेनाका शिवको अपनी कन्या सौंपना तथा बरातका पुरीके बाहर जाकर ठहरना

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] तदनन्तर विष्णु आदि सभी देवगण एवं तपोधन मुनिगण आवश्यक कर्म करके हिमालयसे प्रस्थान करनेका उपक्रम करने लगे॥ १॥

हिमालय भी स्नानकर अपने इष्टदेवकी यत्नपूर्वक पूजा करके नगरवासियों एवं बन्धुवर्गोंको बुलाकर प्रसन्नतापूर्वक जनवासेमें गये। उन्होंने शंकरजीका विधिवत् पूजन करके आनन्दपूर्वक प्रार्थना की—आप इन सभीके साथ कुछ दिनतक मेरे घरपर निवास कीजिये॥ २-३॥

हे शम्भो! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ तथा धन्य हो गया हूँ, इसमें संशय नहीं है, जो कि आप देवताओंके साथ मेरे घर आये हैं॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—शैलराजने इस प्रकार बहुत कहकर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करके विष्णु आदि देवगणोंके साथ प्रभुको आमन्त्रित किया। तत्पश्चात् आदरके साथ मनमें शिवजीका ध्यानकर विष्णुके सहित देवता तथा मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक हिमालयसे कहने लगे—॥ ५-६॥

देवता बोले—हे गिरिराज! आप धन्य हैं और आपकी कीर्ति महान् है, तीनों लोकोंमें आपके समान पुण्यात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसके द्वारपर सज्जनोंको गति देनेवाले, भक्तवत्सल एवं परब्रह्म महेश्वर अपने सेवकोंके साथ कृपा करके पधारे॥ ७-८॥

आपने [हमें ठहरनेके लिये] मनोहर जनवासा दिया एवं विविध सम्मान किया। हे गिरीश्वर! आपने ऐसे उत्तम भोजन दिये, जो अवर्णनीय हैं॥ ९॥

वहाँ कोई आश्चर्य नहीं, जहाँ [साक्षात्] अम्बिका शिवादेवी हैं। सब कुछ सर्वथा परिपूर्ण है, कुछ भी शेष नहीं रहा, हमलोग धन्य हैं, जो यहाँपर आ गये॥ १०॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार वहाँ परस्पर एक-दूसरेकी उत्तम प्रशंसा हुई। उस समय वैदिक मन्त्रों, साधु तथा जय शब्दकी ध्वनि होने लगी और नाना प्रकारके उत्सव होने लगे॥ ११॥

मंगलगान होने लगा, अप्सराएँ नाचने लगीं, मागध स्तुति करने लगे और द्रव्योंका पर्याप्त दान हुआ॥ १२॥

तत्पश्चात् देवेशका आमन्त्रणकर हिमालय अपने घर गये और अनेक विधि-विधानोंसे भोजनोत्सवकी तैयारी करने लगे॥ १३॥

वे कुतूहलपूर्वक परिवारसहित प्रभु शंकरको भोजन करानेके लिये प्रेमके साथ ले आये॥ १४॥

परम आदरसे शिवजीके, विष्णुके, मेरे, सभी देवताओंके, मुनियोंके तथा अन्य गये हुए लोगोंके चरणोंको धोकर बन्धु-बान्धवोंसहित गिरिराजने बड़े प्रेमसे उन सबको मण्डपके भीतर [आसन देकर] बैठाया॥ १५-१६॥

विष्णु, सदाशिव एवं मुझ ब्रह्मासहित समस्त लोग भोजन करने लगे। [इस प्रकार] गिरिराजने रसीले विविध अन्नोंसे उन सबको तृप्त किया। उस समय नगरकी नारियाँ हँसती हुई एवं उन सभीकी ओर यत्नसे देखती हुई मधुर वाणीमें गालियाँ देने लगीं॥ १७-१८॥

हे नारद! इस प्रकार सब लोग विधिवत् भोजन करके आचमनकर गिरिराजसे आज्ञा लेकर प्रसन्नता एवं तृप्तिसे युक्त हो अपने-अपने स्थानको चले गये॥ १९॥

हे मुने! इसी प्रकार तीसरे दिन भी गिरिराजने विधिवत् दान, सम्मान एवं आदर आदिके द्वारा उनका सत्कार किया। चौथा दिन प्राप्त होनेपर बड़ी शुद्धताके साथ चतुर्थी कर्म विधिवत् सम्पन्न हुआ, जिसके बिना वह उत्सव अधूरा ही रह जाता। उस समय अनेक प्रकारका उत्सव, जय-जयकार तथा साधु शब्दोंका उच्चारण, नाना प्रकारका दान, गान एवं नृत्य होने लगा॥ २०—२२॥

पाँचवाँ दिन प्राप्त होनेपर प्रसन्न हुए सभी देवताओंने बड़े प्रेमके साथ गिरिराजसे विदाईके लिये निवेदन किया। यह सुनकर हिमालयने हाथ जोड़कर देवताओंसे कहा—हे देवताओ! अभी आपलोग कुछ दिन और रहें तथा मेरे ऊपर कृपा करें॥ २३-२४॥

ऐसा कहकर उन्होंने बड़े स्नेहसे शंकर, विष्णु, मुझ ब्रह्मा तथा अन्य देवताओंको बहुत दिनोंतक बड़े आदरके साथ ठहराया ॥ २५ ॥

इस प्रकार निवास करते हुए जब बहुत दिन बीत गये, तब देवताओंने हिमालयके पास सप्तर्षियोंको भेजा ॥ २६ ॥

उन्होंने गिरिराज तथा मेनाको समयोचित बातें कहकर समझाया और प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक श्रेष्ठ शिवतत्त्वको विधिवत् प्रतिपादित किया ॥ २७ ॥

हे मुने! उनके समझानेसे हिमालयने उसे स्वीकार कर लिया। तब शिवजी विदा होनेके लिये देवताओंसहित हिमालयके घर गये ॥ २८ ॥

जब देवेश शिव देवताओंसहित अपने कैलासपर्वतके लिये यात्रा करने लगे, तब मेना ऊँचे स्वरसे रोने लगीं और कृपासागर शंकरजीसे कहने लगीं— ॥ २९ ॥

मेना बोलीं—कृपानिधे! आप कृपा करके भलीभाँति शिवाका पालन कीजियेगा, आप आशुतोष हैं, अत: पार्वतीके हजारों दोषोंको क्षमा कीजियेगा ॥ ३० ॥

हे प्रभो! यह मेरी कन्या जन्म-जन्मान्तरसे आपके चरणकमलकी भक्त है, आप महादेव प्रभुको छोड़कर इसे सोते अथवा जागते समय भी किसीका स्मरण नहीं रहता। हे मृत्युंजय! आपकी भक्तिके सुननेमात्रसे ही यह हर्षके आँसू गिराती हुई पुलकित हो जाती है और आपकी निन्दासे यह मौन हो मृतकके समान हो जाती है ॥ ३१-३२ ॥

ब्रह्माजी बोले—तब ऐसा कहकर मेना उन्हें अपनी पुत्रीको समर्पितकर जोर-जोरसे रुदन करके उन दोनोंके सामने मूर्च्छित हो गयीं। तदनन्तर शंकरने मेनाको समझा करके और उनसे तथा हिमालयसे आज्ञा लेकर देवगणोंके साथ महोत्सवपूर्वक यात्रा की ॥ ३३-३४ ॥

तदनन्तर सभी देवताओंने हिमालयके कल्याणकी कामना करते हुए प्रभु तथा अपने गणोंके साथ मौन हो प्रस्थान किया ॥ ३५ ॥

[कुछ दूर जाकर] हर्षित देवता हिमालयकी पुरीके बाहर बगीचेमें शिवजीसहित आनन्दपूर्वक ठहर गये और शिवाके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे ॥ ३६ ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार देवगणोंके सहित शिवकी उत्तम यात्राका वृत्तान्त मैंने आपसे कह दिया। अब उत्सव तथा [विदाईके अनन्तर होनेवाले] विरहसे युक्त शिवाकी यात्रा सुनिये ॥ ३७ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवयात्रावर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ अध्याय

मेनाकी इच्छाके अनुसार एक ब्राह्मणपत्नीका पार्वतीको पातिव्रतधर्मका उपदेश देना

ब्रह्माजी बोले—उसके बाद सप्तर्षियोंने हिमालयसे कहा—आज गिरिजाकी विदाईके लिये उत्तम मुहूर्त है, अत: आप अपनी पुत्री पार्वतीकी विदाई कर दीजिये ॥ १ ॥

हे मुनीश्वर! यह बात सुनकर वे हिमालय पार्वतीवियोगजन्य दु:खका स्मरणकर कुछ देरके लिये व्याकुल हो गये ॥ २ ॥

फिर कुछ कालके अनन्तर चेतना प्राप्त होनेपर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर उन्होंने मेनाको सन्देश भेजा ॥ ३ ॥

हे मुने! शैलका सन्देश सुनकर मेना हर्ष तथा शोकसे युक्त हो गयीं और गिरिजाको विदा करानेके लिये उद्यत हो गयीं ॥ ४ ॥

हे मुने! हिमाचलप्रिया उन मेनाने प्रथम वेद तथा अपने कुलकी रीति सम्पन्न की, फिर पार्वतीकी यात्राके निमित्त वे नाना प्रकारके मंगलविधान करने लगीं ॥ ५ ॥

उन्होंने पार्वतीको अनेक रत्नों तथा श्रेष्ठ वस्त्रोंसे और राजकुलोचित शृंगारों तथा उत्तमोत्तम द्वादश आभरणोंसे अलंकृत किया। तदनन्तर मेनाके मनकी बात जानकर एक पतिव्रता ब्राह्मणपत्नी गिरिजाको श्रेष्ठ पातिव्रत-धर्मका उपदेश देने लगी— ॥ ६-७ ॥

ब्राह्मणपत्नी बोली—हे गिरिजे! तुम प्रेमपूर्वक मेरा यह वचन सुनो। मेरे ये वचन स्त्रियोंको इस लोक तथा परलोकमें सुख देनेवाले हैं तथा इनके सुननेसे भी

स्त्रियोंका कल्याण हो जाता है॥ ८॥

इस जगत्में पतिव्रता नारी ही धन्य है, इसके अतिरिक्त और कोई नारी पूजाके योग्य नहीं है। वह सब लोगोंको पवित्र करनेवाली तथा समस्त पापोंको दूर करनेवाली है॥ ९॥

हे शिवे! जो स्त्री अपने स्वामीकी परमेश्वरके समान सेवा करती है, वह यहाँ अनेक भोगोंको भोगकर अन्तमें पतिके साथ उत्तम गतिको प्राप्त होती है॥ १०॥

सावित्री, लोपामुद्रा, अरुन्धती, शाण्डिल्या, शतरूपा, अनसूया, लक्ष्मी, स्वधा, सती, संज्ञा, सुमति, श्रद्धा, मेना और स्वाहा आदि बहुत-सी पतिव्रताएँ हैं, जिन्हें विस्तारके भयसे यहाँ नहीं कह रही हूँ॥ ११-१२॥

ये सभी पातिव्रत्यधर्मके प्रभावसे ही जगत्में मान्य तथा पूज्य हुईं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर एवं अन्य मुनीश्वरोंने भी इनका सम्मान किया है॥ १३॥

इसलिये तुम्हें अपने पति शंकरकी विशेष रूपसे सेवा करनी चाहिये; क्योंकि ये दीनोंपर अनुग्रह करनेवाले एवं पूज्य होनेके कारण सबके सेव्य हैं और सज्जनोंके गतिदाता हैं॥ १४॥

पतिव्रताओंका धर्म महान् है, जिसका वर्णन श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें भरा हुआ है। निश्चय ही पातिव्रत्यधर्म जितना श्रेष्ठ है, उतना अन्य धर्म श्रेष्ठ नहीं है॥ १५॥

स्त्रीको चाहिये कि जब अपना प्रिय पति भोजन कर ले, तब स्वयं पतिभक्तिमें परायण होकर भोजन करे। हे शिव! जब पति खड़ा हो, तब साध्वी स्त्रीको भी खड़ा ही रहना चाहिये॥ १६॥

पतिके सो जानेपर स्वयं शयन करे और उसके उठनेसे पहले स्वयं जाग जाय, पतिका सर्वदा छलरहित हो हित करे। हे शिवे! कभी अलंकारसे रहित हो अपने स्वामीके सम्मुख न जाय। जब स्वामी कार्यवश परदेश चला जाय, तो कभी शरीरका संस्कार एवं शृंगार न करे॥ १७-१८॥

पतिव्रता स्त्रीको चाहिये कि वह पतिका नाम कभी न ले, पतिके द्वारा क्रुद्ध होकर कठोर वचन कहनेपर भी उसे बुरा वचन न कहे और पतिके शासित करनेपर भी प्रसन्न रहे। उस समय भी यही कहे कि स्वामिन्! और अधिक दण्ड देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिये॥ १९॥

पतिके बुलानेपर घरका सारा कामकाज छोड़कर उनके समीप जाय और शीघ्रतासे प्रणामकर हाथ जोड़कर उनसे प्रेमपूर्वक कहे। हे स्वामिन्! आपने किसलिये बुलाया है, कृपाकर आज्ञा दीजिये, इसके बाद उस आज्ञाको प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न करना चाहिये॥ २०-२१॥

दरवाजेपर खड़ी होकर बहुत कालतक इधर-उधर न देखे और न तो दूसरेके घर जाय। किसीका भेद लेकर किसी अन्यके सामने उसको प्रकाशित न करे॥ २२॥

बिना कहे ही पतिके लिये पूजनकी सामग्री प्रस्तुत करे और पतिके हितके लिये निरन्तर अवसरकी प्रतीक्षा करती रहे। पतिकी आज्ञाके बिना कभी भी तीर्थयात्राके लिये न जाय और किसी समाज तथा उत्सवको देखनेके लिये भी न जाय। जिस स्त्रीको तीर्थयात्राकी इच्छा हो, वह अपने स्वामीका चरणामृत लेकर सन्तुष्ट हो जाय; क्योंकि पतिके चरणोदकमें सभी तीर्थ एवं क्षेत्र निवास करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३—२५॥

पतिके भोजन करनेके पश्चात् उसका उच्छिष्ट जो भी इष्ट अन्नादि हो, उसे पतिप्रदत्त महाप्रसाद समझकर पतिव्रता स्त्री भोजन करे। देवता, पितर, अतिथि, सेवक, गौ एवं भिक्षुकको बिना दिये अन्नका भोजन न करे॥ २६-२७॥

घरकी समग्र सामग्री ठीक तरहसे रखे, नित्य उत्साहयुक्त तथा सावधान रहे और अधिक व्यय न करे, इस प्रकार सर्वदा पातिव्रत्यधर्मका पालन करे॥ २८॥

पतिकी आज्ञाके बिना कोई उपवास तथा व्रत न करे, अन्यथा उसका फल नहीं होता और उसे नरककी प्राप्ति होती है। सुखपूर्वक आनन्दसे बैठे हुए तथा अपनी इच्छासे रमण करते हुए पतिको आवश्यक कार्य आ पड़नेपर भी न उठाये। पति क्लीब, दुर्गतिमें पड़ा हुआ, वृद्ध, रोगी, सुखी अथवा दुखी चाहे जैसा ही क्यों न हो, उसका अपमान न करे॥ २९—३१॥

मासिक धर्म प्राप्त हो जानेपर आरम्भसे तीन रात्रिपर्यन्त अपना मुख पतिको न दिखाये और जबतक चौथे दिन स्नानसे शुद्ध न हो, अपना शब्द भी न सुनाये॥ ३२॥

ऋतुस्नान करनेके पश्चात् पतिका ही मुख देखे, कभी अन्यका मुख न देखे अथवा पतिके न होनेपर पतिका ध्यानकर सूर्यका दर्शन करे॥ ३३॥

पतिके आयुष्यकी इच्छा करनेवाली पतिव्रता स्त्रीको हरिद्रा, कुंकुम, सिन्दूर, काजल, कूर्पासक, ताम्बूल, मांगलिक आभूषण, केशोंका संस्कार, केशपाश बनाना, हाथमें कंगन एवं कानोंमें कर्णफूल नित्य धारण करना चाहिये, इसका परित्याग कभी किसी भी अवस्थामें न करे॥ ३४-३५॥

धोबिन, वन्ध्या, व्यभिचारिणी, संन्यासिनी अथवा दुर्भाग्ययुक्त स्त्रीसे कभी मित्रता न करे। जो स्त्री अपने पतिसे द्वेष करती हो, उससे बातचीत न करे, कभी अकेली न रहे और न नग्न होकर कभी स्नान करे॥ ३६-३७॥

ओखली, मूसल, बुहारी (झाड़ू), सिल, लोढ़ा तथा देहलीपर सती स्त्री कभी न बैठे॥ ३८॥

सहवासके अतिरिक्त और किसी समय पतिसे धृष्टता न करे। अपना पति जिससे प्रेम करे, उसीसे प्रेम करे॥ ३९॥

पतिके प्रसन्न होनेपर प्रसन्न रहे, पतिके दुखी होनेपर दुखी रहे तथा पतिके प्रियमें ही अपना प्रिय समझे। इस प्रकार पतिव्रता स्त्री सदैव पतिके हितकी इच्छा करे॥ ४०॥

पतिव्रता स्त्री सदैव सम्पत्ति तथा विपत्ति दोनों अवस्थाओंमें एकरूप रहे। विकार उपस्थित होनेपर कभी विकृत न हो और सदैव धैर्य धारण करे॥ ४१॥

घी, नमक, तेल आदिके न होनेपर भी पतिव्रता स्त्री पतिसे 'नहीं है'—ऐसा न कहे और पतिको किसी असाध्य कार्यमें नियुक्त न करे। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवसे भी अधिक पतिका महत्त्व है। अतः हे देवेशि! पतिव्रता अपने पतिको साक्षात् शिवस्वरूप ही समझे॥ ४२-४३॥

पतिकी आज्ञाका उल्लंघन करके जो स्त्री व्रत, उपवास तथा नियमादिका आचरण करती है, वह अपने पतिकी आयुका हरण करती है और मरनेपर नरक प्राप्त करती है। जो स्त्री क्रुद्ध होकर पतिके कुछ कहनेपर उसका प्रत्युत्तर करती है, वह ग्रामकी कुतिया अथवा निर्जन वनमें शृगाली होती है॥ ४४-४५॥

स्त्रीको चाहिये कि वह पतिसे ऊँचे स्थानपर न बैठे, दुष्टोंके समीप न जाय और कभी भी पतिसे कातर वाक्य न कहे। किसीकी निन्दा या आक्षेपयुक्त बात न कहे, दूरसे ही कलहका परित्याग करे, गुरुजनोंके समीप कभी जोरसे न बोले और न जोरसे हँसे॥ ४६-४७॥

पतिको बाहरसे आया हुआ देखकर शीघ्रतासे अन्न, जल, भोजन, ताम्बूल, वस्त्र, पादसंवाहन, खेद दूर करनेवाले मीठे वचनके द्वारा जो स्त्री अपने स्वामीको प्रसन्न रखती है, मानो उसने त्रैलोक्यको प्रसन्न कर लिया॥ ४८-४९॥

माता, पिता, पुत्र, भाई तो स्त्रीको बहुत थोड़ा ही सुख देते हैं, परंतु पति तो अपरिमित सुख देता है। इसलिये स्त्रीको चाहिये कि वह पतिका सदैव पूजन करे॥ ५०॥

पति ही देवता, गुरु, भर्ता, धर्म, तीर्थ एवं व्रतादि सब कुछ है। इसलिये सब कुछ छोड़कर एकमात्र पतिका ही पूजन करे। जो दुष्ट स्त्री अपने पतिको छोड़कर एकान्तमें दूसरेके पास जाती है, वह वृक्षके कोटरमें रहनेवाली उलूकी होती है॥ ५१-५२॥

जो स्वामीके द्वारा ताड़न करनेपर स्वयं भी ताड़न करना चाहती है, वह वृषभभक्षिणी व्याघ्री होती है। जो अपने पतिको छोड़कर अन्यसे कटाक्ष करती है, वह केकराक्षी होती है। जो अपने पतिको बिना दिये मिष्टान्न खा लेती है, वह ग्रामसूकरी अथवा अपनी विष्ठा खानेवाली वल्गु (बकरी) होती है॥ ५३-५४॥

जो अपने पतिको 'तू' कहकर बोलती है, वह जन्मान्तरमें गूँगी होती है और जो अपनी सपत्नी (सौत)-से डाह करती है, वह बारंबार विधवा होती है॥ ५५॥

जो अपने स्वामीकी दृष्टि बचाकर किसी अन्य पुरुषको देखती है, वह काणी, कुमुखी तथा कुरूपा होती है॥ ५६॥

जैसे जीवके बिना देह क्षणमात्रमें अशुचि हो जाता

है, उसी प्रकार अपने स्वामीके बिना स्त्री अच्छी तरह स्नान करनेपर भी अपवित्र ही रहती है ॥ ५७ ॥

इस लोकमें उसकी माता धन्य है और उसके पिता भी धन्य हैं तथा उसका वह पति भी धन्य है, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्रीका निवास होता है ॥ ५८ ॥

पतिव्रता स्त्रीके पुण्यसे उसके पितृवंश, मातृवंश तथा पतिवंशके तीन-तीन पूर्वज स्वर्गमें सुख भोगते हैं ॥ ५९ ॥

दुराचारिणी स्त्रियाँ अपने दुराचरणके द्वारा माता-पिता तथा पति—इन तीनों कुलोंको नरकमें गिराती हैं और वे इस लोक तथा परलोकमें सदैव दुखी रहती हैं ॥ ६० ॥

पतिव्रताके चरण जहाँ-जहाँ पड़ते हैं, वहाँ-वहाँकी पृथिवी सदा पापका हरण करनेवाली तथा अत्यन्त पवित्र हो जाती है। सर्वव्यापक सूर्य, चन्द्रमा तथा वायु भी अपनी पवित्रताके लिये ही पतिव्रताका स्पर्श करते हैं, अन्य किसी कारणसे नहीं ॥ ६१-६२ ॥

जल तो सदैव पतिव्रताका स्पर्श चाहते हैं, वे कहते हैं कि आज इस पतिव्रताके स्पर्शसे हमारी जड़ता नष्ट हो गयी और हमें दूसरेको पवित्र करनेकी योग्यता प्राप्त हुई। भार्या गृहस्थका मूल है, भार्या ही सुखका मूल है, धर्मफलकी प्राप्ति एवं सन्तानवृद्धिके लिये भार्याकी अत्यन्त आवश्यकता है। क्या अपने रूप, लावण्यका गर्व करनेवाली स्त्रियाँ प्रत्येक घरोंमें नहीं हैं, किंतु विश्वेश्वरमें भक्ति करनेसे ही पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है ॥ ६३—६५ ॥

भार्याके द्वारा ही इस लोक तथा परलोक—दोनों लोकोंपर विजय प्राप्त की जा सकती है। देवकर्म, पितृकर्म, अतिथिकर्म तथा यज्ञकर्म बिना भार्याके फलवान् नहीं होता। गृहस्थ उसीको कहते हैं, जिसके घरमें पतिव्रता स्त्रीका निवास है, अन्य स्त्रियाँ तो प्रतिदिन जरा राक्षसीके समान पुरुषको ग्रसती रहती हैं ॥ ६६-६७ ॥

जिस प्रकार गंगास्नानसे शरीर पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रीके दर्शनमात्रसे सब कुछ पवित्र हो जाता है ॥ ६८ ॥

गंगा तथा पतिव्रता स्त्रीमें कोई भेद नहीं है। वे दोनों स्त्री-पुरुष शिव तथा पार्वतीके तुल्य हैं, अतः बुद्धिमान् पुरुषको उनका पूजन करना चाहिये ॥ ६९ ॥

पति ॐकार है, तो स्त्री श्रुति वेद है, पति तप है, तो स्त्री क्षमा है, स्त्री सत्क्रिया है, तो पति उसका फल है। हे शिवे! इस प्रकारके दम्पती धन्य हैं ॥ ७० ॥

हे पार्वति! इस प्रकारसे मैंने तुमसे पातिव्रत्यधर्मका निरूपण किया। अब उन पतिव्रताओंके भेद सावधानीके साथ प्रेमपूर्वक सुनो ॥ ७१ ॥

उत्तम आदिके भेदसे पतिव्रता स्त्रियाँ चार प्रकारकी कही गयी हैं। जिनके स्मरणसे पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ ७२ ॥

उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तथा अतिनिकृष्ट—[ये चार भेद पतिव्रताओंके होते हैं।] अब मैं उनका लक्षण कह रहा हूँ, सावधान होकर उसका श्रवण करो ॥ ७३ ॥

जिसका मन स्वप्नमें भी अपने पतिको ही देखता है और कभी परपतिमें नहीं जाता; हे भद्रे! वह उत्तम पतिव्रता कही गयी है। जो दूसरोंके पतियोंको पिता, भ्राता तथा पुत्रके समान सद्बुद्धिसे देखती है, हे पार्वति! वह मध्यम पतिव्रता कही गयी है ॥ ७४-७५ ॥

हे पार्वति! जो स्त्री मनमें अपना धर्म समझकर व्यभिचार नहीं करती, वह सुन्दर चरित्रवाली स्त्री निकृष्ट पतिव्रता (अधमा) कही गयी है ॥ ७६ ॥

जो मनमें इच्छा रहते हुए भी पति एवं कुलके भयसे व्यभिचार नहीं करती, उसको पुरातन लोगोंने अति-निकृष्ट पतिव्रता कहा है ॥ ७७ ॥

हे शिवे! ये चारों प्रकारकी पतिव्रताएँ पापहरण करनेवाली हैं, सम्पूर्ण लोकोंको पवित्र करनेवाली हैं और इस लोक एवं परलोकमें आनन्द प्रदान करनेवाली हैं ॥ ७८ ॥

पातिव्रत्यके प्रभावसे ही अत्रिप्रिया अनसूयाने तीनों देवताओंकी प्रार्थनापर वाराहके शापसे मरे हुए ब्राह्मणको जीवनदान दिया था ॥ ७९ ॥

हे शिवे! ऐसा जानकर तुमको नित्य प्रेमपूर्वक अपने पतिकी सेवा करनी चाहिये; क्योंकि हे शैलपुत्रि! ऐसा करनेसे तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे ॥ ८० ॥

तुम तो साक्षात् जगत्की माता तथा महेश्वरी हो और जगत्पिता महेश्वर तुम्हारे साक्षात् पति हैं। तुम्हारे नामके स्मरणमात्रसे स्त्रियाँ पतिव्रता होंगी ॥ ८१ ॥

हे देवि! तुम्हारे आगे इस कथनसे क्या प्रयोजन! फिर भी हे शिवे! संसारके आचरणके अनुसार मैंने तुम्हें यह सब कहा है ॥ ८२ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहकर वह द्विजपत्नी भगवतीको प्रणामकर मौन हो गयी और उस उपदेशके श्रवणसे शंकरप्रिया शिवा अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो गयीं॥ ८३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें पतिव्रताधर्मवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ अध्याय

शिव-पार्वती तथा बरातकी विदाई, भगवान् शिवका समस्त देवताओंको विदा करके कैलासपर रहना और शिव-विवाहोपाख्यानके श्रवणकी महिमा

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार ब्राह्मणीने देवी पार्वतीको पातिव्रत्यधर्मका उपदेश देकर मेनाको बुलाकर कहा—अब इनकी यात्राकी तैयारी कीजिये॥ १॥

मेनाने भी 'तथास्तु' कहा और वे प्रेमसे विभोर हो गयीं। तदनन्तर धैर्य धारणकर कालीको बुलाकर उसके विरहसे व्याकुल हो उठीं, उस समय वे मेना पार्वतीको बारंबार गले लगाकर ऊँचे स्वरमें रोने लगीं और पार्वती भी दीनवचन कहती हुई ऊँचे स्वरसे रोने लगीं॥ २-३॥

शोकव्यथित होकर शैलप्रिया मेना और पार्वती मूर्च्छित हो गयीं। पार्वतीके रोनेके शब्दसे सभी देवपत्नियाँ भी अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उस समय सभी देवस्त्रियाँ रोने लगीं तथा अचेत हो गयीं। विदा होते हुए स्वयं योगीश्वर भी रो पड़े, तब दूसरोंकी क्या बात!॥ ४-५॥

इसी समय बड़ी शीघ्रताके साथ हिमालय भी अपने सभी पुत्रों, मन्त्रियों तथा अन्य ब्राह्मणोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। उस समय हिमालय भी पार्वतीको गोदमें लेकर मोहवश रोने लगे। हे वत्से! इस घरको शून्यकर तुम कहाँ जा रही हो? इस प्रकार कह करके वे बारंबार रोने लगे॥ ६-७॥

तब ब्राह्मणोंके साथ उनके ज्ञानी तथा श्रेष्ठ पुरोहितने उनपर कृपाकर अध्यात्मविद्याका उपदेश देकर उन्हें समझाया। महामाया पार्वतीने [विदाईके समय] माता-पिता तथा गुरुजनोंको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और वे लोकाचारवश जोर-जोरसे रोने लगीं॥ ८-९॥

पार्वतीके रोनेसे वहाँ उपस्थित सभी स्त्रियाँ, माता मेना, सगे-सम्बन्धी तथा अन्य भी रोने लगे॥ १०॥

इस प्रकार पार्वतीकी माता, सगे-सम्बन्धी तथा अन्य स्त्रियाँ, भाई, पिता तथा सखियाँ अत्यन्त प्रेमवश बार-बार रोते रहे। उस समय ब्राह्मणोंने आकर सबको आदरपूर्वक समझाया और कहा कि यात्राके लिये सुखदायी लग्नवेला आ गयी है। तब हिमालयने मेनाको धीरज बँधाया और स्वयं विवेकयुक्त होकर पार्वतीके चढ़नेके लिये शिविका मँगवायी। तदनन्तर ब्राह्मणस्त्रियोंने पार्वतीको पालकीमें चढ़ाया और माता-पिता, ब्राह्मण आदि सबने आशीर्वाद प्रदान किया॥ ११—१४॥

मेना और हिमालयने महारानियोंके योग्य उपचार पार्वतीको प्रदान किये और अन्योंके लिये सर्वथा दुर्लभ द्रव्यसमूह दिये। हे मुने! पार्वतीने अपने माता-पिता, गुरुजन, ब्राह्मण, पुरोहित, सम्बन्धी एवं स्त्रियोंको प्रणाम करके प्रस्थान किया॥ १५-१६॥

परम बुद्धिमान् हिमालय भी अपने पुत्रोंके साथ प्रेमसे विभोर होकर पालकीके साथ चले और वहाँ पहुँचे, जहाँ सभी देवता ठहरे हुए थे॥ १७॥

तत्पश्चात् सभी लोगोंने भक्तिसे सदाशिवको प्रणाम किया और प्रशंसा करते हुए अपने नगरको चले आये। तब पार्वतीके कैलास पहुँचते ही सभी लोगोंने बहुत बड़ा उत्सव किया। [शिवजीने पार्वतीके साथ अपने स्थानपर पहुँचकर कहा—] हे देवेशि! मैं तुम्हें पूर्वजन्मका स्मरण करा रहा हूँ और यदि तुम अपनी लीलासे उसे स्मरण करती हो, तो बताओ तुम तो आजसे नहीं, जन्म-जन्मान्तरसे मेरी प्राणप्रिया हो॥ १८-१९॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार अपने स्वामी महेशका वचन सुनकर हँसती हुई शिवप्रिया पार्वती कहने लगीं—॥ २०॥

पार्वती बोलीं—हे प्राणेश्वर! मुझे सभी बातोंका

स्मरण है, किंतु हे भव! इस समय आप चुप रहिये और आज जो कार्य उपस्थित है, उसीको शीघ्र कीजिये, आपको नमस्कार है॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार प्रिया पार्वतीके सैकड़ों सुधाधाराओंके समान वचनको सुनकर विश्वेश्वर प्रसन्न हो गये और लौकिकाचारमें संलग्न हो गये॥ २२॥

शिवजीने अनेक प्रकारकी भोजन-सामग्री एकत्रितकर नारायण आदि सभी देवगणोंको नानाविध मनोहर भोज्य-वस्तुओंका भोजन कराया। उन्होंने अपने विवाहमें आये हुए सभी लोगोंको यथायोग्य विधिवत् उत्तम रससे सम्पन्न भोजन कराया। तब भोजन करके नाना रत्नोंसे विभूषित सभी देवताओंने अपनी स्त्रियों तथा गणोंके साथ चन्द्रशेखरको प्रणाम किया॥ २३—२५॥

तदनन्तर उन्होंने प्रिय वचनोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक शिवजीकी स्तुति करते हुए उनकी परिक्रमा की तथा विवाहकी प्रशंसा करते हुए वे सभी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। हे मुने! शिवजीने मुझे तथा विष्णुजीको उसी प्रकार प्रणाम किया, जैसे लोकाचारसे विष्णुजी कश्यपको प्रणाम करते हैं॥ २६-२७॥

मैंने उन्हें गले लगाकर उनको आशीर्वाद दिया, फिर शंकरको परब्रह्म जानकर उनके आगे खड़े होकर मैंने उनकी स्तुति की। इसके पश्चात् मैं तथा विष्णु शिवा एवं शिवजीको हाथ जोड़कर प्रणामकर विवाहकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ २८-२९॥

इधर, शिवजी भी पार्वतीके साथ आनन्द-विहार करते हुए अपने निवासभूत कैलासमें रहने लगे और उनके सभी गण आनन्दपूर्वक प्रेमसे शिवा-शिवकी आराधना करने लगे। हे तात! इस प्रकार मैंने शिवा एवं शिवके विवाहका आपसे वर्णन किया, यह विवाह परम मंगलदायक, शोकनाशक, आनन्ददायक तथा धन एवं आयुकी वृद्धि करनेवाला है॥ ३०-३१॥

जो पवित्र होकर शिवजीमें मन लगाकर नित्य इस विवाहचरित्रको नियमपूर्वक सुनता है अथवा दूसरोंको सुनाता है, वह अवश्य ही शिवलोकको प्राप्त कर लेता है। मेरा कहा हुआ यह आख्यान अद्भुत, मंगलका धाम, सभी विघ्नोंका नाश करनेवाला, समस्त व्याधियोंको दूर करनेवाला, यश देनेवाला, स्वर्ग देनेवाला, आयु प्रदान करनेवाला, पुत्र-पौत्रोंको बढ़ानेवाला, सभी कामनाओंको सिद्ध करनेवाला, भोग और मोक्ष देनेवाला, अपमृत्युको दूर करनेवाला, महाशान्ति प्रदान करनेवाला, कल्याणकारक, समस्त दुःस्वप्नोंको शान्त करनेवाला और बुद्धि-ज्ञान आदिकी वृद्धि करनेवाला है॥ ३२—३५॥

अपने शुभकी इच्छा रखनेवाले लोगोंको सभी कल्याण-कारक उत्सवोंमें प्रयत्नपूर्वक प्रेमके साथ शिवको सन्तुष्ट करनेवाले इस आख्यानका पाठ करना चाहिये॥ ३६॥

विशेष रूपसे देवता आदिकी प्रतिष्ठाके समय और शिवके सभी कार्योंके प्रारम्भमें प्रेमसे इस आख्यानका पाठ करना चाहिये। जो पवित्र होकर शिवा-शिवके इस चरित्रको सुनता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ३७-३८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके ब्रह्मा-नारद-संवादके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके तृतीय पार्वतीखण्डमें शिवकैलासगमनवर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५५॥

॥ द्वितीय रुद्रसंहिताका तृतीय पार्वतीखण्ड पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीय रुद्रसंहिता [चतुर्थ—कुमारखण्ड]

पहला अध्याय

कैलासपर भगवान् शिव एवं पार्वतीका विहार

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं
पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं
विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शंकरम्॥

वन्दना करनेसे जिनका मन प्रसन्न हो जाता है, जिन्हें प्रेम अत्यन्त प्रिय है, जो सबको प्रेम प्रदान करनेवाले हैं, स्वयं पूर्ण हैं, दूसरोंकी अभिलाषाको भी पूर्ण करते हैं, सम्पूर्ण संसिद्ध ऐश्वर्यके एकमात्र स्थान हैं, स्वयं सत्यस्वरूप हैं, सत्यमय हैं, जिनका सत्तात्मक ऐश्वर्य त्रिकालाबाधित है, जो सत्यप्रिय एवं सबको सत्य प्रदान करनेवाले हैं, ब्रह्मा-विष्णु जिनकी वन्दना करते हैं और जो अपनी कृपासे ही विग्रह धारण करते हैं—ऐसे नित्य शिवकी हम वन्दना करते हैं॥ १॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! लोककल्याणकारी शंकरने पार्वतीसे विवाह करनेके पश्चात् कैलास जाकर क्या किया, उस वृत्तान्तको हमें सुनाइये॥ २॥

जिस पुत्रके निमित्त आत्माराम होते हुए भी उन्होंने पार्वतीसे विवाह किया, उन परमात्मा शिवको किस प्रकार पुत्र उत्पन्न हुआ? देवताओंका कल्याण करनेवाले हे ब्रह्मन्! तारकासुरका वध किस प्रकार हुआ? मेरे ऊपर कृपाकर यह सारी बात विस्तारसे कहिये॥ ३-४॥

सूतजी बोले—नारदके इस प्रकारके वचनको सुनकर प्रजापति ब्रह्माजीने शिवजीका स्मरणकर प्रसन्न मनसे कहा— ॥ ५॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! चन्द्रशेखर भगवान् शिवजीके चरित्रको बताता हूँ, आप सुनें, मैं कार्तिकेयकी उत्पत्तिकी दिव्य कथा तथा उनके द्वारा किये गये तारकासुरके वधका वृत्तान्त भी कहता हूँ॥ ६॥

मैं जिस कथाको कह रहा हूँ, उसे सुनिये, वह कथा समस्त पापोंको विनष्ट करनेवाली है, जिसे सुनकर निश्चय ही मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ७॥

यह आख्यान पापरहित, गोपनीय, परम अद्भुत, पाप-सन्तापको दूर करनेवाला तथा सभी प्रकारके विघ्नोंको विनष्ट करनेवाला है। यह सभी प्रकारके मंगलोंका दाता, पुराणोंका सारभूत अंश तथा सबके कानोंको सुख प्रदान करनेवाला, आनन्दको बढ़ानेवाला, मोक्षका बीज और कर्ममूलका विनाश करनेवाला है॥ ८-९॥

शिवजी शिवासे विवाहकर कैलासपर आकर अत्यन्त शोभित हुए और देवगणोंके कार्यसाधनका विचार करने लगे। उन्होंने तारकासुरके द्वारा दी गयी अपने भक्तजनोंकी पीड़ाके विषयमें भी विचार किया॥ १०॥

इधर शिवजी जब कैलासपर पहुँचे, तब उनके गण प्रसन्न होकर उनको नानाविध सुख प्रदान करने लगे॥ ११॥

शिवजीके कैलास पहुँचते ही महान् उत्सव होने लगा। सब देवगण प्रसन्नमन होकर अपने-अपने स्थानको चले गये। इसके बाद महादेव सदाशिव गिरिकन्या शिवाको साथ लेकर महादिव्य, मनोहर एवं निर्जन स्थानमें चले गये। वहाँ उन्होंने रतिको बढ़ानेवाली शय्याका निर्माणकर उसे पुष्प तथा चन्दनसे सुशोभित किया। उस अद्भुत मनोहर शय्याके समीप नाना प्रकारकी

भोगसामग्री भी स्थापित कर दी॥ १२—१४॥

उसी शय्यापर मान देनेवाले भगवान् शम्भु पार्वतीके साथ देवताओंके वर्षपरिमाणके अनुसार एक हजार वर्षतक विहार करते रहे। भगवती पार्वतीके अंगके स्पर्शमात्रसे भगवान् सदाशिव लीलापूर्वक मूर्च्छित हो गये। भगवती पार्वती भी भगवान् शिवके स्पर्शसे मूर्च्छित हो गयीं। इस प्रकार उन्हें दिन-रातका ज्ञान नहीं रहा॥ १५-१६॥

हे अनघ! लोकधर्मका प्रवर्तन करनेवाले शिवजीके भोगमें प्रवृत्त होनेपर उन दोनोंका लम्बा समय भी क्षणमात्रके समान बीत गया॥ १७॥

हे तात! तब एक समय इन्द्रादि सब देवता मेरु पर्वतपर एकत्र होकर विचार करने लगे॥ १८॥

देवता बोले—यद्यपि शिव योगीश्वर निर्विकार आत्माराम तथा मायारहित हैं, फिर भी हमलोगोंके कल्याणके लिये भगवान् शंकरने विवाह किया है॥ १९॥

किंतु अबतक इनको कोई पुत्र नहीं हुआ, इसका कारण ज्ञात नहीं हो रहा है। वे भगवान् देवेश्वर विलम्ब क्यों कर रहे हैं?॥ २०॥

ब्रह्माजी बोले—इसी बीच देवदर्शन नारदसे देवताओंने शिवा और शिवके परिमित भोगकालको जाना॥ २१॥

तब उनके भोगकालको दीर्घकालीन जानकर देवता बड़े चिन्तित हुए, फिर मुझ ब्रह्माको आगे करके वे विष्णुके समीप गये॥ २२॥

मैंने नारायणको प्रणामकर सारा अभीष्ट वृत्तान्त उनसे निवेदित किया। देवतालोग तो चित्रलिखित पुत्तलिकाके समान खड़े रहे॥ २३॥

[हे नारायण!] योगीश्वर शंकरजी देवताओंके वर्षके परिमाणके अनुसार एक हजार वर्षपर्यन्त विहारपरायण हैं॥ २४॥

भगवान् विष्णु बोले—हे जगत्‌के विधाता! चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। सब कुछ कल्याणकारी ही होगा। हे देवेश! आप महाप्रभु शंकरकी शरणमें जाइये॥ २५॥

जो मनुष्य प्रसन्न मनसे शंकरकी शरणमें जाते हैं; हे प्रजापते! शंकरके उन अनन्य भक्तोंको कहींसे कोई भय नहीं होता। हे विधे! उनके शृंगारका रसभंग समयसे होगा, अभी नहीं। जो कार्य ठीक समयमें किया जाता है, वही सफल होता है, अन्यथा नहीं॥ २६-२७॥

भगवान् शंकरके अभीष्टको भग्न करनेमें कौन समर्थ है? हजार वर्ष पूर्ण होनेपर वे स्वयं निवृत्त हो जायँगे॥ २८॥

जो रतिको भंग करता है, उसे जन्म-जन्मान्तरमें स्त्री तथा पुत्रसे वियोग प्राप्त होता है। उस भेदकर्ता पुरुषका ज्ञान नष्ट हो जाता है, कीर्ति नष्ट हो जाती है और वह दरिद्र हो जाता है। अन्तमें वह एक लाख वर्षतक कालसूत्र नामक नरकमें रहता है॥ २९-३०॥

इसी कारण महामुनीन्द्र दुर्वासाको स्त्रीसे वियोग हुआ। फिर उन्होंने दूसरी मंगलमय करकमलोंवाली स्त्रीको प्राप्त करके वियोगजन्य दुःखको दूर किया। घृताचीपर आसक्त कामदेवको बृहस्पतिके द्वारा मना करने पर बृहस्पतिको पत्नी-हरणका दुःख मिला। फिर उन्होंने शिवजीकी आराधनाकर ताराको प्राप्त किया, जिससे उनकी विरहव्यथा दूर हुई॥ ३१—३४॥

महर्षि गौतमने मोहिनीमें आसक्त चन्द्रमाको वियुक्त किया, इस कारण उनका स्त्रीसे वियोग हुआ। हालिकको वृषलीमें कामासक्त देखकर हरिश्चन्द्रद्वारा निषेध किये जानेपर उन्हें विश्वामित्रका कोपभाजन बनना पड़ा और वे स्त्री-पुत्र तथा राज्यसे भी च्युत हो गये। फिर उन्होंने शिवाराधनकर इस कष्टसे छुटकारा प्राप्त किया॥ ३५—३७॥

वृषलीमें आसक्त हुए द्विजश्रेष्ठ अजामिलको तथा उस वृषलीको भयके कारण किसी देवताने भी मना नहीं किया। निषेक (वीर्यसिंचन)-से सब कुछ साध्य है। हे विधे! निषेक बलवान् है, निषेक ही फल देनेवाला है, उस निषेकका कौन निवारण कर सकता है?॥ ३८-३९॥

शंकरजीके भोगका वह काल देवताओंके वर्षसे हजार वर्षपर्यन्तका था। हे देवगणो! एक हजार दिव्य वर्ष पूर्ण हो जानेपर आपलोग वहाँ जाकर इस प्रकारका उपाय करें, जिससे उनका तेज पृथ्वीपर गिरे। उसी तेजसे प्रभु

शंकरका स्कन्द नामक पुत्र उत्पन्न होगा॥ ४०-४१॥

अतः हे ब्रह्मन्! इस समय आप इन देवताओंको साथ लेकर अपने स्थानको लौट जायँ और शिवजी एकान्तमें पार्वतीके साथ आनन्दविहार करें॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार कहकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु शीघ्र ही अपने अन्तःपुरमें चले गये और मेरे साथ सभी देवता अपने-अपने स्थानपर चले गये। इस प्रकार बहुत दिनोंतक शक्ति एवं शक्तिमान्के विहारसे भाराक्रान्त यह पृथ्वी शेष एवं कच्छपके धारण करनेपर भी काँप उठी॥ ४३-४४॥

तब कच्छपके भारसे आक्रान्त सबका आधारभूत पवन स्तम्भित हो गया, जिससे सम्पूर्ण त्रैलोक्य भयसे व्याकुल हो उठा। फिर सभी देवता मेरे साथ भगवान् विष्णुकी शरणमें गये और दुखी मनवाले उन्होंने उस वृत्तान्तको भगवान् विष्णुसे निवेदित किया॥ ४५-४६॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे रमानाथ! हे सर्वरक्षक प्रभो! हमलोग भयसे व्याकुलचित्त हो आपकी शरणमें आये हुए हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये॥ ४७॥

पता नहीं, किस कारणसे तीनों लोकोंके प्राणभूत वायुदेव स्तम्भित हो गये हैं तथा मुनि एवं देव-गणोंके सहित सारा चराचर त्रैलोक्य व्याकुल हो गया है!॥ ४८॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! मेरे साथ गये हुए समस्त देवगण ऐसा कहकर मौन, दुखी तथा दीन होकर भगवान् विष्णुजीके आगे खड़े हो गये॥ ४९॥

इस बातको सुनकर हमें तथा सभी देवताओंको अपने साथ लेकर भगवान् विष्णु बड़ी शीघ्रतासे शिवके प्रिय कैलास पर्वतपर गये॥ ५०॥

सुरवल्लभ भगवान् विष्णु मुझ ब्रह्मा तथा उन देवताओंके साथ कैलास पहुँचकर भगवान् शिवके दर्शन करनेकी इच्छासे शिवजीके श्रेष्ठ स्थानपर गये॥ ५१॥

किंतु वहाँ शिवजीको न देखकर देवताओंसहित भगवान् विष्णु आश्चर्यमें पड़ गये। फिर उन्होंने वहाँपर स्थित महेश्वरके गणोंसे विनयपूर्वक पूछा॥ ५२॥

विष्णु बोले—हे शंकरके गणो! आप सब बड़े दयालु हैं। आपलोग हम दुखीजनोंको कृपापूर्वक बताइये कि सर्वप्रभु शंकर इस समय कहाँपर हैं?॥ ५३॥

ब्रह्माजी बोले—देवताओंके सहित भगवान् विष्णुकी बात सुनकर शंकरजीके उन गणोंने प्रीतिपूर्वक लक्ष्मीपति विष्णुसे कहा—॥ ५४॥

शिवगण बोले—हे हरे! जो सम्पूर्ण वृत्तान्त है, ब्रह्मा और देवताओंके साथ उसे आप सुनिये, भगवान् शिवमें प्रेमके कारण हम यथार्थ रूपमें कहते हैं॥ ५५॥

विविध प्रकारकी लीलाओंमें पारंगत देवाधिदेव महादेव शिव हमलोगोंको यहाँ स्थापित करके अत्यन्त स्नेहपूर्वक भगवती पार्वतीके आवास-स्थानपर गये॥ ५६॥

हे लक्ष्मीपति! उस गुहाके भीतर उन्हें बहुत वर्ष व्यतीत हो गये हैं, वहाँ महेश्वर शम्भु क्या कर रहे हैं, इस बातको हम नहीं जानते हैं॥ ५७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उनकी बातोंको सुनकर मेरे तथा देवगणोंके साथ विष्णु आश्चर्यचकित हो गये और शिवजीके द्वारपर गये॥ ५८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वहाँ देवताओं एवं मुझ ब्रह्माके साथ जाकर देवताओंके प्रिय भगवान् श्रीहरिने ऊँचे स्वरमें आर्तवाणीसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक वहाँ स्थित सर्वलोकेश्वर भगवान् शिवकी स्तुति की॥ ५९-६०॥

विष्णु बोले—हे महादेव! हे परमेश्वर! आप गुहाके भीतर क्या कर रहे हैं? तारकासुरसे पीड़ित, आपकी शरणमें आये हुए हम सभी देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ६१॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मुझ ब्रह्मा तथा देवताओंके सहित विष्णुने शिवकी अनेक प्रकारसे स्तुति की। उस समय तारकासुरसे पीड़ित देवताओंसहित श्रीहरि अत्यन्त विलाप करके रोने लगे॥ ६२॥

हे मुनीश्वर! तारकासुरसे पीड़ित हुए देवताओंके आर्तनाद और शिवजीकी स्तुतिके मिश्रित होनेसे उस समय दुःखभरा महान् कोलाहल हुआ॥ ६३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें शिवविहारवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

भगवान् शिवके तेजसे स्कन्दका प्रादुर्भाव और सर्वत्र महान् आनन्दोत्सवका होना

ब्रह्माजी बोले—देवताओं एवं विष्णुकी स्तुति सुनकर योगज्ञानविशारद भगवान् शंकर यद्यपि निष्काम हैं तथापि उन्होंने भोगका परित्याग नहीं किया। फिर वे भक्तवत्सल शंकर दैत्यसे पीड़ित हुए देवताओंके समीप घरके दरवाजेपर आये॥ १-२॥

उस समय मुझ ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ देवगण भक्तवत्सल प्रभु शिवका दर्शनकर अत्यन्त सुखी हुए॥ ३॥

उन देवताओंका पूर्वोक्त वचन सुनकर दुखी आत्मा-वाले भगवान् शंकरने उद्विग्नमन होकर उत्तर दिया॥ ४॥

देवताओंने सिर झुकाकर परम स्नेहपूर्वक शंकरको प्रणाम किया और हे मुने! मुझ ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ सभी देवताओंने शंकरकी स्तुति की॥ ५॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे करुणासागर प्रभो! आप सबके अन्तर्यामी हैं, हे शंकर! आप सब कुछ जानते हैं। हे विभो! हम देवताओंका कार्य कीजिये। हे महेश्वर! देवताओंकी रक्षा कीजिये तथा हे महाप्रभो! कृपा करके तारकादि असुरोंका विनाश कीजिये॥ ६-७॥

शिव बोले—हे विष्णो! हे विधाता! हे देवो! मैं आप सबके मनका अभिप्राय जान रहा हूँ, किंतु जो होना है, वह होता ही है, भावीका निवारण करनेवाला कोई नहीं है॥ ८॥

हे देवो! जो होना था, वह तो हो गया, अब जो उपस्थित है, उसके विषयमें सुनिये। मुझ शिवके स्खलित इस तेजको इस समय कौन धारण करेगा?॥ ९॥

'जिसे धारण करना हो, वह धारण करे'—इस प्रकार कहकर शंकरजी मौन हो गये। तब देवताओंसे प्रेरणा-प्राप्त अग्निने कपोत होकर अपनी चोंचसे शंकरके पृथ्वीपर गिरे समस्त तेजको ग्रहण कर लिया। हे नारद! इसी समय शिवके आगमनमें विलम्ब देखकर वहाँपर भगवती गिरिजा आकर उपस्थित हो गयीं। उन्होंने देवताओंको देखा। वहाँका वह सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर पार्वती महाक्रोधित हो गयीं। तब उन्होंने विष्णुप्रभृति सभी देवताओंसे क्रोधमें भरकर कहा—॥ १०—१३॥

देवी बोलीं—हे देवगणो! तुमलोग बड़े दुष्ट हो, तुम हमेशा अपने स्वार्थसाधनमें लगे रहते हो और अपने स्वार्थसाधनके निमित्त दूसरोंको कष्ट देते हो॥ १४॥

तुमलोगोंने अपने स्वार्थके लिये परमप्रभु शिवकी स्तुतिकर मेरा विहार भंग किया, हे देवो! इसी कारण मैं वन्ध्या हो गयी। हे देवताओ! मेरा विरोध करनेसे तुम देवताओंको कभी सुख प्राप्त नहीं होगा और तुम दुष्ट देवताओंको इसी प्रकार महादुःख प्राप्त होगा॥ १५-१६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार क्रोधसे जलती हुई शैलपुत्री पार्वतीने विष्णुप्रभृति सभी देवगणोंको शाप दिया॥ १७॥

पार्वती बोलीं—आजसे सब देवताओंकी स्त्रियाँ वन्ध्या हो जायँ और मेरा विरोध करनेवाले सभी देवगण सर्वदा दुःख प्राप्त करें॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार सर्वेश्वरी भगवती पार्वतीने विष्णुप्रभृति देवगणोंको शाप देकर क्रोधपूर्ण हो शिवके तेजका भक्षण करनेवाले अग्निसे कहा—॥ १९॥

पार्वती बोलीं—हे अग्ने! आजसे तुम सर्वभक्षी होकर सदैव दुःख प्राप्त करोगे। तुम्हें शिवतत्त्वका ज्ञान नहीं है। तुम देवगणोंका कार्य करनेवाले मूर्ख हो॥ २०॥

हे शठ! हे दुष्टोंमें महादुष्ट! तुम बड़े दुर्बुद्धि हो, तुमने जो शिवके तेजका भक्षण किया है, यह अच्छा नहीं किया॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार अग्निको शाप देकर असन्तुष्ट होकर भगवती पार्वती भगवान् महेश्वरके साथ शीघ्रतापूर्वक अपने आवासमें चली गयीं॥ २२॥

हे मुनीश्वर! वहाँ जाकर पार्वतीने प्रयत्नपूर्वक भलीभाँति शंकरजीको समझाया, फिर उनके सर्वश्रेष्ठ गणेश नामक पुत्र उत्पन्न हुए। हे मुने! इन गणेशजीका सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं आगे कहूँगा। इस समय आप प्रेमपूर्वक कार्तिकेयकी उत्पत्तिका वृत्तान्त सुनिये, मैं कह रहा हूँ॥ २३-२४॥

देवतालोग अग्निके मुखसे ही भोजन करते हैं—ऐसा वेदका वचन है, अतः अग्निके गर्भधारण करनेसे सभी देवता गर्भयुक्त हो गये॥ २५॥

शिवके तेजको सहन न करते हुए वे देवता पीड़ित

हो गये। यही दशा विष्णु आदि देवताओंकी भी हो गयी; क्योंकि देवी पार्वतीकी आज्ञासे उनकी बुद्धि नष्ट हो गयी थी॥ २६॥

इसके बाद विष्णुप्रभृति सभी देवता मोहित होकर [शिवके वीर्यरूप अग्निसे] जलते हुए शीघ्र ही पार्वतीपति भगवान् शंकरकी शरणमें गये। वे लोग शिवजीके गृहद्वारपर जाकर नम्रतासे हाथ जोड़ अत्यन्त प्रीतिपूर्वक पार्वतीसहित भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ २७-२८॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे गिरिजेश! हे महाप्रभो! हे नाथ! यह क्या हो गया? निश्चय ही आपकी मायाको समझना बड़ा कठिन है॥ २९॥

हमलोग गर्भयुक्त होकर आपकी असह्य वीर्यज्वालासे जल रहे हैं, हे शम्भो! कृपा कीजिये और हमलोगोंकी दुरवस्थाका निवारण कीजिये॥ ३०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! देवताओंकी इस प्रकारकी स्तुति सुनकर उमापति परमेश्वर शिव गृहद्वारपर जहाँ देवता स्थित थे, वहाँ शीघ्र आये॥ ३१॥

द्वारपर आये हुए सदाशिवको देखते ही विष्णुसमेत सभी देवगण विनम्र होकर प्रणामकर उन भक्तवत्सलकी प्रेमपूर्वक स्तुति करने लगे॥ ३२॥

देवता बोले—हे शम्भो! हे शिव! हे महादेव! आपको विशेष रूपसे प्रणाम करते हैं। आपके तेजसे जलते हुए हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ ३३॥

हे हर! इस दुःखका हरण कीजिये, अन्यथा हमलोग निश्चित ही मर जायँगे। इस समय देवताओंके दुःखका निवारण करनेमें आपके बिना कौन समर्थ है?॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—भक्तवत्सल, सुरेश्वर भगवान् शिवने ऐसी दीनवाणीको सुनकर हँसते हुए देवताओंको उत्तर दिया॥ ३५॥

शिव बोले—हे हरे! हे ब्रह्मन्! हे देवो! आप सभी मेरी बात सुनें। आपलोग आज ही सुखी हो जायँगे, सावधान हो जायँ। सभी देवगण मेरे तेजका शीघ्र ही वमन कर दें। मुझ सुप्रभुकी आज्ञा माननेसे आपलोगोंको विशेष सुख होगा॥ ३६-३७॥

ब्रह्माजी बोले—विष्णु आदि सभी देवताओंने इस आज्ञाको शिरोधार्य करके अव्यय भगवान् शिवका स्मरण करते हुए शीघ्र ही तेजका वमन कर दिया॥ ३८॥

शम्भुका स्वर्णिम आभावाला, अद्भुत तथा सुन्दर कान्तिवाला वह तेज भूमिपर गिरकर पर्वताकार हो गया और अन्तरिक्षका स्पर्श करने लगा॥ ३९॥

श्रीहरिसहित सभी देवगण सुखी हो गये और भक्तवत्सल परमेश्वर शिवकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

हे मुनीश्वर! किंतु अग्निदेव वहाँ प्रसन्न नहीं हुए। तब परमेश्वर श्रेष्ठ शंकरने उन्हें आज्ञा दी॥ ४१॥

हे मुने! तदनन्तर वे अग्निदेव मनमें सुख न मानकर विकल हो हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक शिवकी स्तुति करते हुए इस प्रकार बोले—॥ ४२॥

अग्नि बोले—देवाधिदेव महेश्वर! मैं मूर्ख हूँ तथापि आपका सेवक हूँ, मेरे अपराधको क्षमा करें और मेरे दाहका निवारण करें। हे स्वामिन्! आप दीनवत्सल परमेश्वर सदाशिव हैं। इस प्रकारसे प्रसन्नात्मा अग्निदेवने दीनवत्सल शिवसे कहा॥ ४३-४४॥

ब्रह्माजी बोले—अग्निकी यह बात सुनकर दीनवत्सल उन परमेशान सदाशिवने प्रसन्न होकर अग्निसे इस प्रकार कहा—॥ ४५॥

शिव बोले—[हे अग्नि!] पापकी अधिकताके कारण ही तुमने यह अनुचित कार्य किया कि मेरे तेजका भक्षण कर लिया, अब मेरी आज्ञासे तुम्हारे दाहका निवारण हो गया। हे अग्ने! अब तुम मेरी शरणमें आ गये हो, इससे मैं प्रसन्न हुआ। अब तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जायगा और तुम सुखी हो जाओगे॥ ४६-४७॥

अब तुम किसी सुलक्षणा स्त्रीमें मेरे रेतको प्रयत्नपूर्वक स्थापित करो। इससे तुम दाहमुक्त होकर विशेष रूपसे सुखी हो जाओगे॥ ४८॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् शंकरकी बातको सुनकर अग्नि हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर प्रीतिपूर्वक भक्तोंके कल्याण करनेवाले भगवान् शंकरसे धीरे-धीरे बोले—॥ ४९॥

हे महेश्वर! हे नाथ! आपका यह तेज असह्य है। शक्तिस्वरूपा भगवतीके अतिरिक्त तीनों लोकोंमें इसे धारण करनेमें कोई समर्थ नहीं है॥ ५०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अग्निने जब ऐसा कहा, तब हृदयसे अग्निका उपकार चाहनेवाले आपने भगवान् शंकरकी

प्रेरणासे इस प्रकार कहा— ॥ ५१ ॥

नारदजी बोले—हे अग्ने! तुम्हारे दाहका निवारण करनेवाला, कल्याणकारी, परम आनन्ददायक, रमणीय तथा सभी कष्टोंका निवारण करनेवाला मेरा वचन सुनो ॥ ५२ ॥

हे वह्ने! मेरे द्वारा बतलाये जानेवाले इस उपायको करके दाहरहित होकर सुखी हो जाओ। हे तात! भगवान् शिवकी इच्छासे ही मैंने आदरपूर्वक भलीभाँति कहा है ॥ ५३ ॥

हे शुचे! माघमासमें प्रात:काल जो स्त्रियाँ स्नान करती हों, इस महान् तेजको तुम उनके शरीरमें स्थापित कर दो ॥ ५४ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उसी अवसरपर माघमासमें प्रात:काल नियमपूर्वक स्नान करनेकी इच्छासे सप्तर्षियोंकी स्त्रियाँ वहाँ आयीं ॥ ५५ ॥

हे मुने! स्नान करके वे स्त्रियाँ अत्यन्त ठण्ढसे पीड़ित हो गयीं और उनमेंसे छ: स्त्रियाँ अग्निज्वालाके समीप जानेकी इच्छासे वहाँसे चल पड़ीं ॥ ५६ ॥

उन्हें मोहित देखकर सुचरित्रा, ज्ञानवती देवी अरुन्धतीने शिवकी आज्ञासे उन्हें जानेसे विशेषरूपसे रोका ॥ ५७ ॥

हे मुने! भगवान् शिवकी मायासे मोहित वे छ: ऋषिपत्नियाँ अपने शीतका निवारण करनेके लिये हठपूर्वक वहाँ जा पहुँचीं ॥ ५८ ॥

हे मुने! [अग्निके द्वारा गृहीत] उस रेतके सभी कण रोमकूपोंके द्वारा शीघ्र ही उन ऋषिपत्नियोंके देहोंमें प्रविष्ट हो गये और वे अग्नि दाहसे मुक्त हो गये ॥ ५९ ॥

अग्नि अन्तर्धान होकर ज्वालारूपसे शीघ्र ही उन भगवान् शंकर और आपका मनसे स्मरण करते हुए सुखपूर्वक अपने लोकको चले गये ॥ ६० ॥

हे साधो! वे स्त्रियाँ अग्निके द्वारा दाहसे पीड़ित और गर्भवती हो गयीं। हे तात! अरुन्धती दुखी होकर अपने आश्रमको चली गयीं ॥ ६१ ॥

हे तात! अपनी स्त्रियोंकी गर्भावस्था देखकर उनके पति तुरंत क्रोधसे व्याकुल हो गये और परस्पर भलीभाँति विचार-विमर्श करके उन्होंने अपनी पत्नियोंका त्याग कर दिया ॥ ६२ ॥

हे तात! वे छहों ऋषिपत्नियाँ अपनी गर्भावस्थाका विचार करके अत्यन्त दु:खित और व्याकुल चित्तवाली हो गयीं ॥ ६३ ॥

उन मुनिपत्नियोंने शिवके उस गर्भरूप तेजको हिमशिखरपर त्याग दिया और वे दाहरहित हो गयीं ॥ ६४ ॥

भगवान् शिवके उस असहनीय तेजको धारण करनेमें असमर्थ होनेके कारण हिमालय प्रकम्पित हो उठे और दाहसे पीड़ित होकर उन्होंने शीघ्र ही उस तेजको गंगामें विसर्जित कर दिया ॥ ६५ ॥

हे मुनीश्वर! गंगाने भी परमात्माके उस दु:सह तेजको अपनी तरंगोंके द्वारा सरकण्डोंके समूहमें स्थापित कर दिया ॥ ६६ ॥

वहाँ गिरा हुआ वह तेज शीघ्र ही एक सुन्दर, सौभाग्यशाली, शोभायुक्त, तेजस्वी और प्रीतिको बढ़ानेवाले बालकके रूपमें परिणत हो गया ॥ ६७ ॥

हे मुनीश्वर! मार्गशीर्ष (अगहन) मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको उस शिवपुत्रका पृथ्वीपर प्रादुर्भाव हुआ ॥ ६८ ॥

हे ब्रह्मन्! इस अवसरपर अपने कैलास पर्वतपर हिमालयपुत्री पार्वती तथा भगवान् शंकर भी अकस्मात् आनन्दित हो उठे ॥ ६९ ॥

हे मुने! भगवती पार्वतीके स्तनोंसे आनन्दातिरेकके कारण दुग्धस्राव होने लगा। वहाँ जाकर सबको अत्यन्त प्रसन्नता हुई ॥ ७० ॥

हे तात! त्रिलोकीमें सभी सज्जनोंके यहाँ अत्यन्त सुख देनेवाला मांगलिक वातावरण हो गया। दुष्ट दैत्योंके यहाँ विशेष रूपसे विघ्न होने लगे ॥ ७१ ॥

हे नारद! अकस्मात् अन्तरिक्षमें महान् दुन्दुभिनाद होने लगा और उस बालकपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ॥ ७२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! विष्णु आदि सभी देवताओंको अकस्मात् परम आनन्द हुआ और महान् उत्सव भी होने लगा ॥ ७३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें शिवपुत्रजननवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

महर्षि विश्वामित्रद्वारा बालक स्कन्दका संस्कार सम्पन्न करना, बालक स्कन्दद्वारा क्रौंच-पर्वतका भेदन, इन्द्रद्वारा बालकपर वज्रप्रहार, शाख-विशाख आदिका उत्पन्न होना, कार्तिकेयका षण्मुख होकर छः कृत्तिकाओंका दुग्धपान करना

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे प्रजानाथ! हे ब्रह्मन्! हे सृष्टिकर्ता प्रभो! इसके बाद वहाँ क्या हुआ, इसे आप कृपाकर बताइये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! इसी समय विधाताके द्वारा प्रेरित होकर महाप्रतापी विश्वामित्र स्वेच्छासे घूमते-घूमते वहाँ जा पहुँचे। इस तेजस्वी बालकके अलौकिक तेजको देखकर वे कृतार्थ हो गये और उन्होंने प्रसन्न होकर उस बालकको नमस्कार किया॥ २-३॥

उस बालकके प्रभावको जाननेवाले महर्षि विश्वामित्रने प्रसन्नचित्त हो विधिप्रेरित वाणीसे उस बालककी स्तुति की। महान् लीला करनेवाला वह बालक अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अद्भुत हास्य करता हुआ विश्वामित्रसे बोला—॥ ४-५॥

शिवपुत्र बोले—हे महाज्ञानिन्! आप अचानक शिवेच्छासे यहाँ आ पहुँचे हैं। अतः हे तात! वेदोक्त रीतिसे मेरा यथाविधि संस्कार सम्पन्न कीजिये। आजसे आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे पुरोहित हो जायँ, इससे आप सदा सबके पूज्य होंगे। इसमें संशय नहीं है॥ ६-७॥

ब्रह्माजी बोले—बालककी यह बात सुनकर गाधिपुत्र विश्वामित्रजी अत्यन्त प्रसन्न हो गये और आश्चर्यचकित होकर मन्द स्वरसे उस बालकसे उन्होंने कहा—॥ ८॥

विश्वामित्र बोले—हे तात! सुनो, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, किंतु गाधिसुत क्षत्रियकुमार हूँ। मेरा नाम विश्वामित्र है, मैं तो ब्राह्मणसेवक क्षत्रिय हूँ॥ ९॥

हे श्रेष्ठ बालक! मैंने तुमसे अपना सारा चरित निवेदन कर दिया, तुम कौन हो? अपना सम्पूर्ण चरित्र मुझसे कहो। मैं आश्चर्यान्वित हो रहा हूँ॥ १०॥

ब्रह्माजी बोले—विश्वामित्रजीके इस वचनको सुनकर महान् लीला करनेवाले बालकने प्रसन्न हो उन गाधिपुत्र विश्वामित्रजीसे अपना सारा चरित्र कहा॥ ११॥

शिवसुत बोले—हे विश्वामित्रजी! आप मेरे वरदानसे ब्रह्मर्षि हैं, इसमें संशयकी बात नहीं है। वसिष्ठादि ऋषिगण भी आदरपूर्वक आपकी प्रशंसा करेंगे। इस कारण आप मेरी आज्ञासे मेरा संस्कार करें, यह सब रहस्य आपको गुप्त ही रखना चाहिये, कहीं नहीं कहना चाहिये॥ १२-१३॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवर्षे! तदनन्तर विश्वामित्रजीने परम प्रेमपूर्वक वेदोक्तरीतिसे भगवान् शिवके उस बालकके सम्पूर्ण संस्कार सम्पन्न किये॥ १४॥

महान् लीला करनेवाले प्रभु शिवपुत्रने भी बड़े प्रेमसे महर्षि विश्वामित्रजीको दिव्य ज्ञान प्रदान किया॥ १५॥

नाना प्रकारकी लीलामें पारंगत अग्निपुत्रने विश्वामित्रजीको अपना पुरोहित बना लिया। उसी समयसे वे विश्वामित्र द्विजश्रेष्ठके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये॥ १६॥

हे मुने! उस बालकने इस प्रकार जो लीला की है, वह मैंने आपको बता दी। हे तात! उस बालककी दूसरी लीला मैं बता रहा हूँ, प्रेमपूर्वक सुनो॥ १७॥

उसी समय श्वेतने उस दिव्य तेजसम्पन्न परम पावन बालकको देखकर अपना पुत्र मान लिया। तदनन्तर अग्निदेवने उस स्थानपर जाकर बालकको गले लगाकर उसका चुम्बन किया और उन्होंने उस बालकको 'पुत्र' शब्दसे पुकारते हुए अपनी शक्ति तथा अस्त्र उसे प्रदान किया॥ १८-१९॥

गुह कार्तिकेय उस शक्तिको लेकर क्रौंच पर्वतके शिखरपर चढ़ गये और उस शक्तिसे शिखरपर ऐसा प्रहार किया कि वह शिखर पृथिवीपर गिर पड़ा॥ २०॥

उस बालकका वध करनेके लिये सबसे पहले दस पद्म वीर राक्षस वहाँ आये, किंतु कुमारके प्रहारसे वे सभी शीघ्र ही विनष्ट हो गये॥ २१॥

उस समय सभी जगह महान् हाहाकार मच गया, पर्वतोंके सहित सारी पृथ्वी और त्रैलोक्य काँपने लगा। उसी समय देवगणोंके साथ देवराज इन्द्र वहाँ आ पहुँचे॥ २२॥

इन्द्रने अपने वज्रसे कार्तिकेयके दक्षिण पार्श्वमें प्रहार किया। वज्रके लगते ही उससे शाख नामक एक महान् बलवान् पुरुष प्रकट हो गया। पुनः इन्द्रने उसके

वाम पार्श्वमें शीघ्र ही वज्रसे प्रहार किया, उस वज्रके लगते ही उससे एक और विशाख नामक बलवान् पुरुष उत्पन्न हो गया। फिर इन्द्रने वज्रसे उसके हृदयमें प्रहार किया, जिससे उसीके समान बलवान् नैगम नामक एक पुरुष प्रकट हो गया॥ २३—२५॥

तब स्कन्द, शाख, विशाख तथा नैगम—ये चारों महाबलसम्पन्न महावीर इन्द्रको मारनेके लिये बड़ी शीघ्रतासे दौड़ पड़े। यह देखकर वे इन्द्र उनकी शरणमें गये॥ २६॥

हे मुने! देवगणोंके सहित इन्द्र उनसे भयभीत हो उठे और वे विस्मित हो उस स्थानसे अपने लोक चले गये, किंतु उन्हें भी पराक्रमके रहस्यका ज्ञान नहीं हुआ॥ २७॥

हे तात! विविध प्रकारकी लीलाओंको करनेवाला वह बालक आनन्दपूर्वक निर्भय हो वहींपर स्थित हो गया। उसी समय कृत्तिका नामवाली छः स्त्रियाँ वहाँ स्नानके लिये आयीं और उन्होंने प्रभावशाली उस बालकको देखा। हे मुने! उन सभी कृत्तिकाओंने उस बालकको ग्रहण करना चाहा, उसी समय ग्रहण करनेकी इच्छासे उनमें परस्पर विवाद होने लगा॥ २८—३०॥

हे मुने! उनके विवादका शमन करनेके लिये उस बालकने छः मुख बना लिये और उन सबका स्तनपान किया, जिससे वे परम प्रसन्न हो उठीं। हे मुने! फिर उस बालकके मनकी गति जानकर वे सभी कृत्तिकाएँ प्रसन्नतासे उसे लेकर अपने लोक चली गयीं॥ ३१-३२॥

उन्होंने सूर्यसे भी अधिक तेजस्वी तथा स्तनपानकी इच्छा करनेवाले उस कुमार नामवाले बालक शिवपुत्रको अपना दूध पिलाकर बड़ा किया। वे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय उस बालकको कभी आँखोंकी ओट न करतीं, जो पोषण करता है, उसीका वह पुत्र होता है॥ ३३-३४॥

जो-जो वस्त्र एवं आभूषण इस त्रैलोक्यमें दुर्लभ हैं, उन सभी वस्त्रों एवं श्रेष्ठ भूषणोंको प्रेमसे वे उस बालकको प्रदान करतीं। इसी प्रकार वे अत्यन्त प्रशंसाके योग्य, दुर्लभ एवं स्वादिष्ट अन्नोंको प्रतिदिन खिला-खिलाकर उस बालकको पुष्ट करने लगीं॥ ३५-३६॥

हे तात! इसके बाद एक दिन कृत्तिकाओंके उस पुत्रने दिव्य देवसभामें जाकर बड़ा सुन्दर चरित्र किया और महान् लीला करनेवाला वह बालक सम्पूर्ण देवताओंसहित विष्णुको अपना महान् अद्भुत ऐश्वर्य दिखाने लगा॥ ३७-३८॥

उसकी इस महिमाको देखकर विष्णुसहित अन्य देवगण तथा ऋषि अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और उस बालकसे पूछने लगे कि हे बालक! तुम कौन हो? उनकी बात सुनकर उस बालकने कुछ भी नहीं कहा और वह शीघ्र ही अपने घर चला गया और पूर्ववत् गुप्तरूपसे रहने लगा॥ ३९-४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें कार्तिकेयकी लीलाका वर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

पार्वतीके कहनेपर शिवद्वारा देवताओं तथा कर्मसाक्षी धर्मादिकोंसे कार्तिकेयके विषयमें जिज्ञासा करना और अपने गणोंको कृत्तिकाओंके पास भेजना, नन्दिकेश्वर तथा कार्तिकेयका वार्तालाप, कार्तिकेयका कैलासके लिये प्रस्थान

नारदजी बोले—हे देवाधिदेव! हे प्रजानाथ! हे विधे! इसके अनन्तर फिर क्या हुआ, आप इस समय कृपा करके शिवजीकी लीलासे युक्त इस चरित्रको कहिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार शिवपुत्रको ग्रहणकर उन्हें अपना पुत्र मानते हुए कृत्तिकाओंका कुछ काल व्यतीत हो गया, पर पार्वतीको यह समाचार ज्ञात न हुआ। उस समय पार्वतीने मन्द मुसकानयुक्त हँसते हुए अपने मुखकमलसे देवदेवेश्वर स्वामी श्रीसदाशिवसे कहा—॥ २-३॥

पार्वतीजी बोलीं—हे देवाधिदेव! हे महादेव! आप मेरे शुभ वचनको सुनिये। मेरे पूर्वजन्मके अत्यन्त पुण्यप्रभावसे आप ईश्वर मुझे पतिरूपसे प्राप्त हुए हैं॥ ४॥

हे भव! योगियोंमें श्रेष्ठ आप मेरे साथ विहारमें प्रवृत्त हुए थे, उस समय देवताओंके साथ आपने मेरी रतिको भंग कर दिया था। हे विभो! आपका वह तेज मेरे उदरमें न जाकर पृथ्वीपर गिरा। हे देव! फिर वह तेज कहाँ गया? उसे किस देवताने छिपा लिया?॥ ५-६॥

हे महेश्वर! मेरे स्वामी! आपका वह तेज तो अमोघ है, कैसे व्यर्थ हो गया अथवा उससे कोई बालक कहीं प्रकट हुआ?॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! पार्वतीजीकी यह बात सुनकर महेश्वर हँसने लगे और पुनः उन्होंने मुनियों और देवताओंको बुलाकर कहा— ॥ ८॥

महेश्वर बोले—देवगणो! आपने पार्वतीके द्वारा कहे हुए वचनको सुना, अब मेरी बात सुनिये। कभी न निष्फल होनेवाला मेरा तेज कहाँ गया और किसने छिपा लिया? जो शीघ्र ही बता देगा, उसे कोई भय नहीं है और वह दण्डनीय नहीं होगा। शक्ति होनेपर जो राजा अच्छी प्रकारसे शासन नहीं करता, वह प्रजाका बाधक है और रक्षक न होकर भक्षक ही कहलाता है॥ ९-१०॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीकी बात सुनकर देवगण भयभीत हो गये और परस्पर विचारकर शिवजीके आगे क्रमशः कहने लगे॥ ११॥

विष्णुजी बोले—[हे सदाशिव!] जिन्होंने आपके तेजको छिपाया है, वे मिथ्यावादी हों और भारतमें जन्म लेकर गुरुपत्नीगमन तथा गुरुनिन्दाके पापके निरन्तर भागी बनें॥ १२॥

ब्रह्माजी बोले—जिसने आपके तेजको छिपाया है, वह पुण्यक्षेत्र इस भारतमें आपकी सेवा तथा पूजाका अधिकारी न हो॥ १३॥

लोकपालोंने कहा—जिस पापीने पतित होनेके भ्रमसे आपके तेजको छिपाया है, वह चोरीके पापका भाजन बने और अपने कर्मसे सदैव दुःखको प्राप्त करता रहे॥ १४॥

देवता बोले—जो मूर्ख प्रतिज्ञा करके अपनी प्रतिज्ञाका परिपालन नहीं करता, वह उस प्रतिज्ञाभंगके पापका भाजन बनता है, वही पाप उसे लगे, जिसने आपके तेजको छिपाया है॥ १५॥

देवपत्नियाँ बोलीं—जो स्त्री अपने स्वामीकी निन्दा करती है और परपुरुषके साथ सम्बन्ध बनाती है, वह अपने माता-पिता तथा बन्धुओंसे विहीन होकर उस पापको प्राप्त करे, जिसने आपके तेजको छिपाया है॥ १६॥

ब्रह्माजी बोले—देवाधिदेव महेश्वरने देवताओंके वचन सुनकर कर्मके साक्षीभूत धर्मादि देवगणोंको भयभीत करते हुए कहा— ॥ १७॥

श्रीशिवजी बोले—[हे धर्मादि देवगणो!] यदि मेरे तेजको देवगणोंने नहीं छिपाया है, तो बताओ कि मेरे तेजको किसने छिपाया है? मुझ प्रभु महेश्वरका वह तेज तो अमोघ है। आपलोग तो संसारमें सभीके कर्मके सतत साक्षी हैं, आपलोगोंसे कोई बात छिपी नहीं रह सकती, आप उसे जानने तथा कहनेमें समर्थ हैं॥ १८-१९॥

ब्रह्माजी बोले—उस देवसभामें सदाशिवकी बात सुनते ही वे धर्म आदि काँप उठे और परस्पर एक-दूसरेकी ओर देखते हुए उन लोगोंने शंकरजीसे कहा— ॥ २०॥

भगवान् शंकरका रतिकालमें भी स्थित रहनेवाला तेज कोपके कारण पृथ्वीपर गिरा, वह अमोघ है, यह मुझे अच्छी तरह ज्ञात है॥ २१॥

पृथ्वी बोली—मैंने उस असहनीय तेजको धारण करनेमें अपनेको असमर्थ पाकर अग्निको सौंप दिया। अतः हे ब्रह्मन्! आप इसके लिये मुझ अबलाको क्षमा करें॥ २२॥

अग्नि बोले—हे शंकर! मैं कपोतरूपसे आपका तेज धारण करनेमें असमर्थ था, इसलिये मैंने उस दुस्सह तेजको कैलास पर्वतपर त्याग दिया॥ २३॥

पर्वत [हिमालय] बोले—हे लोकरक्षक परमेश्वर शंकर! आपके उस असह्य तेजको धारण करनेमें असमर्थ होनेके कारण मैंने उसे शीघ्र गंगाजीमें फेंक दिया॥ २४॥

गंगाजी बोलीं—हे लोकपालक शंकर! मैं भी आपका तेज सहन करनेमें असमर्थ हो गयी, तब हे नाथ! व्याकुल होकर मैंने उसे सरपतके वनमें छोड़ दिया॥ २५॥

वायु बोले—हे शम्भो! गंगाके पावन तटपर सरपतके वनमें गिरा हुआ वह तेज तत्काल अत्यन्त सुन्दर बालक हो गया॥ २६॥

सूर्य बोले—हे प्रभो! रोते हुए उस बालकको देखकर कालचक्रसे प्रेरित हुआ मैं वहाँ ठहरनेमें असमर्थ

होनेके कारण अस्ताचलको चला गया॥ २७॥

चन्द्रमा बोले—हे शंकर! रोते हुए बालकको देखकर बदरिकाश्रमकी ओर जाती हुई कृत्तिकाएँ उसे अपने घर ले गयीं॥ २८॥

जल बोला—हे प्रभो! सूर्यके समान प्रभावाले अत्यन्त तेजस्वी आपके रोते हुए बालकको कृत्तिकाओंने अपना स्तनपान कराकर बड़ा किया है॥ २९॥

सन्ध्या बोली—उन कृत्तिकाओंने आपके पुत्रका पालन-पोषण करके कौतुकके साथ बड़े प्रेमसे उसका नाम कार्तिक रखा॥ ३०॥

रात्रि बोली—वे कृत्तिकाएँ प्राणोंसे भी अधिक प्रिय उस बालकको अपने नेत्रोंसे कभी ओझल नहीं करती हैं, जो पोषण करनेवाला होता है, उसीका वह (पोष्य) पुत्र होता है॥ ३१॥

दिन बोला—पृथ्वीपर प्रशंसाके योग्य जितने श्रेष्ठ वस्त्र एवं आभूषण हैं, उन्हें वे पहनाती हैं और स्वादिष्ट भोजन कराती हैं॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—उन सबोंकी बातोंको सुनकर त्रिपुरसूदन शिवजी परम प्रसन्न हो गये और उन्होंने आनन्दित होकर प्रेमपूर्वक ब्राह्मणोंको बहुत-सी दक्षिणा दी॥ ३३॥

पुत्रका समाचार सुनकर पार्वती अत्यधिक प्रसन्न हुईं और उन्होंने ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न तथा बहुत-सा धन दक्षिणाके रूपमें दिया। लक्ष्मी, सरस्वती, मेना, सावित्री आदि सभी स्त्रियोंने तथा विष्णु आदि सभी देवताओंने ब्राह्मणोंको बहुत धन प्रदान किया॥ ३४-३५॥

देवताओं, मुनियों एवं पर्वतोंसे प्रेरित होकर उन भगवान् शिवने अपने गणों तथा दूतोंको वहाँ भेजा, जहाँ उनका पुत्र था॥ ३६॥

हे नारद! उन्होंने वीरभद्र, विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कराक्रम, नन्दीश्वर, महाकाल, वज्रदंष्ट्र, महोन्मद, गोकर्णास्य, अग्निके समान प्रज्वलित मुखवाले दधिमुख, लक्षसंख्यक क्षेत्रपाल तथा तीन लाख भूतों, शिवजीके समान पराक्रमवाले रुद्रों और भैरवों तथा अन्य असंख्य विकृत आकारवाले गणोंको वहाँ भेजा॥ ३७—३९॥

नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित उद्धत उन सभी शिवगणोंने कृत्तिकाओंके भवनको घेर लिया॥ ४०॥

उन गणोंको देखकर कृत्तिकाएँ भयके मारे व्याकुल हो उठीं। तब उन्होंने ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान कार्तिकसे कहा—॥ ४१॥

कृत्तिकाएँ बोलीं—हे वत्स! असंख्य सेनाओंने हमारे घरको घेर लिया है। क्या करना चाहिये? कहाँ जाना चाहिये? महाभय उपस्थित हो गया है॥ ४२॥

कार्तिकेय बोले—हे कल्याणकारिणी माताओ! आपलोग भयभीत न हों। मेरे रहते भय करनेका कोई कारण नहीं है। हे माताओ! मैं यद्यपि अभी बालक हूँ, पर अजेय हूँ। इस जगत्में मुझे जीतनेवाला कौन है?॥ ४३॥

ब्रह्माजी बोले—उसी समय सेनापति नन्दिकेश्वर कार्तिकेयजीके सामने जाकर बैठ गये और बोले—॥ ४४॥

नन्दीश्वर बोले—हे भाई! हे माताओ! जिस कारणसे हम यहाँ आये हैं, वह मंगलमय वृत्तान्त मुझसे सुनें, जगत्के संहार करनेवाले महेश्वरसे प्रेरित होकर मैं आपके पास आया हूँ। हे तात! कैलास पर्वतमें महान् मंगलदायी उत्सवमें सभामें ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सभी देवता विद्यमान थे। उस समय सभामें भगवती पार्वतीने लोककल्याणकारी भगवान् शंकरको सम्बोधित करते हुए उनसे तुम्हारा पता लगानेके लिये कहा॥ ४५—४७॥

शंकरने उन सभी देवताओंसे क्रमशः तुम्हारी प्राप्तिका उपाय पूछा। उनमेंसे प्रत्येकने यथोचित उत्तर दिया॥ ४८॥

उसके बाद धर्म एवं अधर्मके तथा कर्मके साक्षीभूत सभी धर्मादि देवताओंने भगवान् शंकरको कृत्तिकाओंके घरमें तुम्हारा विराजमान होना बताया॥ ४९॥

पूर्वकालमें शिव एवं पार्वतीका एकान्त स्थानमें विहार होता रहा। फिर देवताओंके द्वारा अवलोकन करनेपर उन शिवजीका तेज पृथ्वीपर गिर गया॥ ५०॥

भूमिने उसे अग्निमें, अग्निने गिरिराज हिमालयमें और हिमालयने उसे गंगामें फेंक दिया। उसके बाद गंगाने अपनी तरंगोंसे उसे शीघ्रतापूर्वक सरपतके वनमें फेंक दिया। उस तेजसे देवताओंका कार्य करनेके लिये समर्थ तुम उत्पन्न हुए हो। कृत्तिकाओंने तुम्हें वहाँ प्राप्त किया। अतः इस समय तुम पृथ्वीपर चलो॥ ५१-५२॥

भगवान् शंकर देवगणोंके सहित तुम्हारा अभिषेक करेंगे, तुम सम्पूर्ण शस्त्रास्त्र प्राप्त करोगे और तारक

नामक असुरका वध करोगे॥ ५३॥

तुम विश्वके संहर्ता शिवजीके पुत्र हो। ये कृत्तिकाएँ आपको (पुत्रके रूपमें) प्राप्त करनेमें उसी प्रकार असमर्थ हैं, जैसे सूखा हुआ वृक्ष अपने कोटरमें अग्निको छिपानेमें समर्थ नहीं होता॥ ५४॥

तुम सारे संसारमें प्रकाशित हो, इन कृत्तिकाओंके घरमें रहनेसे तुम्हारी शोभा उसी प्रकार नहीं है, जैसे द्विजराज चन्द्रमा कूपके अन्दर रहकर प्रकाशित नहीं होता॥ ५५॥

जैसे मनुष्यके तेजसे सूर्यके तेजको छिपाया नहीं जा सकता है, उसी प्रकार जैसे तुम प्रकाश कर रहे हो, उसे हमलोगोंका तेज छिपा नहीं सकता॥ ५६॥

हे शम्भुपुत्र! तुम अन्य कोई उत्पन्न नहीं हुए हो, सारे संसारको व्याप्तकर स्थित रखनेवाले विष्णु ही हो। जैसे आकाश व्यापक है, किसीका व्याप्य नहीं है, इसी प्रकार तुम भी किसीके व्याप्य नहीं हो, अपितु व्यापक हो॥ ५७॥

जैसे कर्मयोगियोंका आत्मा उन कर्मोंसे निर्लिप्त रहता है, इसी प्रकार तुम भी परिपोषणके भागी होनेपर भी योगीन्द्र होनेके कारण निर्लिप्त हो॥ ५८॥

तुम इस विश्वसृष्टिके कर्ता तथा ईश्वर हो, परंतु इनमें तुम्हारी स्थिति उसी प्रकार नहीं रहती, जिस प्रकार योगीकी आत्मामें गुण और तेजकी राशि स्थित नहीं रहती॥ ५९॥

हे भाई! कमलोंका आदर न करनेवाले सहवासी मेढकोंकी भाँति वे मनुष्य हतबुद्धि हैं, जो आपको तत्त्वतः नहीं जानते॥ ६०॥

कार्तिकेय बोले—हे भाई! जो त्रैकालिक ज्ञान है, वह सब कुछ आप जानते हैं; आप मृत्युंजय भगवान् सदाशिवके सेवक हैं, इसलिये आपकी प्रशंसा जितनी भी की जाय, थोड़ी है। हे भ्रातः! कर्मवश जिन लोगोंका जिन-जिन योनियोंमें जन्म होता है, उन-उन योनियोंके भोगोंमें उनको सुख प्राप्त होता है। ये सभी कृत्तिकाएँ ज्ञानवती हैं, योगिनी हैं और प्रकृतिकी कलाएँ हैं। इन्होंने अपना दूध पिलाकर मुझे बड़ा बनाया है। इसलिये मेरे ऊपर निरन्तर इनका महान् उपकार है॥ ६१—६३॥

मैं इनका पोष्य पुत्र हूँ, ये स्त्रियाँ मुझसे सम्बद्ध हैं, मैं जिस प्रकृतिके स्वामीके तेजसे उत्पन्न हुआ हूँ, ये उसी प्रकृतिकी कलाएँ हैं॥ ६४॥

हे नन्दिकेश्वर! शैलेन्द्रकन्या पार्वतीसे मेरा जन्म नहीं हुआ है, वे उसी प्रकार मेरी धर्ममाता हैं, जिस प्रकार कृत्तिकाएँ सर्वसम्मतिसे मेरी माता हैं॥ ६५॥

आप महान् हैं, शिवजीके पुत्रके समान हैं और मुझे लानेके लिये उन्होंने आपको भेजा है। इसलिये मैं भी आपके साथ चलूँगा और देवताओंका दर्शन करूँगा॥ ६६॥

इस प्रकार कहकर कृत्तिकाओंसे आज्ञा लेकर वे कार्तिकेय शंकरके उन गणोंके साथ शीघ्र चल पड़े॥ ६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें कार्तिकेयका अन्वेषण तथा नन्दिसंवादवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

पार्वतीके द्वारा प्रेषित रथपर आरूढ़ हो कार्तिकेयका कैलासगमन, कैलासपर महान् उत्सव होना, कार्तिकेयका महाभिषेक तथा देवताओंद्वारा विविध अस्त्र-शस्त्र तथा रत्नाभूषण प्रदान करना, कार्तिकेयका ब्रह्माण्डका अधिपतित्व प्राप्त करना

ब्रह्माजी बोले—उसी समय विश्वकर्माद्वारा विरचित अत्यन्त अद्भुत तथा शाश्वत शोभासे समन्वित एक रथ दिखायी पड़ा। उस रथमें सौ पहिये थे, वह बड़ा विस्तीर्ण और सुन्दर था, उसकी गति मनके समान वेगवाली थी, वह श्रेष्ठ रथ शिवजीके पार्षदोंसे घिरा हुआ था। पार्वतीजीने उसे भेजा था॥ १-२॥

परम ज्ञानी, अनन्त तथा शिवजीके तेजसे उत्पन्न कार्तिकेय दुखी मनसे उस रथपर सवार हो गये॥ ३॥

उसी समय बिखरे केशोंवाली कृत्तिकाओंने शोकसे व्याकुल हो कार्तिकेयके पास जाकर शोकोन्मादसे कहना प्रारम्भ किया— ॥ ४॥

कृत्तिकाएँ बोलीं—हे कृपासिन्धो! आप हम

सबको छोड़कर इस प्रकार निर्दयी होकर जा रहे हैं। पुत्रका धर्म यह नहीं है कि जिन माताओंने पालन-पोषण किया, उनका परित्यागकर वह चला जाय॥ ५॥

हमलोगोंने बड़े स्नेहसे तुम्हें बड़ा बनाया, तुम हमारे धर्मपुत्र हो, अब तुम्हीं बताओ कि हम क्या करें, कैसे रहें और कहाँ जायँ? इस प्रकार कहकर वे सभी कृत्तिकाएँ कार्तिकेयको अपने वक्षसे लगाकर पुत्रकी वियोगजन्य व्यथासे मूर्च्छित हो गयीं। तब कुमारने आध्यात्मिक वचनोंसे उन्हें समझाया। हे मुने! फिर वे उनके तथा पार्षदोंके साथ रथपर आरूढ़ हो गये॥ ६—८॥

अत्यधिक सुखदायी मंगलोंको देख तथा सुनकर कुमार कार्तिकेय पार्षदोंके साथ अपने पिताके घर गये॥ ९॥

अपने दाहिनी ओर नन्दिकेश्वरसे युक्त कुमार कार्तिकेय मनके समान वेगवाले रथसे कैलासपर्वतपर अक्षयवटवृक्षके समीप पहुँचे। विविध लीलाविशारद शंकरपुत्र कुमार कार्तिकेय उन कृत्तिकाओं तथा पार्षदोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहीं रुके। उसके बाद सभी देवता, ऋषिगण, सिद्ध, चारणोंने ब्रह्मा तथा विष्णुके साथ [शिवजीसे] कार्तिकेयके आनेका समाचार कहा॥ १०—१२॥

उस समय शिवजी गंगापुत्र (कार्तिकेय)-को आया हुआ देखकर विष्णु, ब्रह्मा, अन्य देवताओं तथा सुरर्षियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक उनके पास गये॥ १३॥

उस समय शंख, भेरी आदि अनेक बाजे बजने लगे और आनन्दित हुए देवताओंके यहाँ महान् उत्सव होने लगा। उस समय वीरभद्र आदि सभी शिवगण अनेक तालपर गाना गाते तथा क्रीड़ा करते हुए शिवजीके पीछे-पीछे चले। स्तुतिपाठक स्तुतिपूर्वक गुणकीर्तन करने लगे और प्रसन्नमन होकर जय-जयकार तथा नमस्कार करने लगे और सरपतवनमें उत्पन्न हुए उस शिवजीके पुत्रको देखनेके लिये चले॥ १४—१७॥

पार्वतीने राजमार्गको अनेक मांगलिक द्रव्योंसे अत्यन्त मनोहर बना दिया और पद्मराग आदि मणियोंसे पुरको चारों ओरसे अलंकृत किया। वे पति-पुत्रवाली, सुहागिन स्त्रियोंके साथ तथा लक्ष्मी आदि तीस देवियोंको आगेकर कार्तिकेयको लेने चल पड़ीं॥ १८-१९॥

शिवजीकी आज्ञासे रम्भा आदि दिव्य अप्सराएँ सुन्दर वेश-भूषासे सुसज्जित होकर मन्द-मन्द हासपूर्वक नृत्य एवं गान करने लगीं। जिन लोगोंने भगवान् शंकरके साथ गंगापुत्र कार्तिकेयको देखा, उन लोगोंको लगा कि सारे जगत्में एक बहुत बड़ा तेज व्याप्त हो रहा है॥ २०-२१॥

उस तेजसे आवृत, प्रतप्त सुवर्णके समान देदीप्यमान तथा सूर्यके समान तेजस्वी उस बालक कार्तिकेयकी सबने वन्दना की। उस बालकके सामने सभी लोग 'नमः' शब्दका उच्चारण करते हुए अपना सिर झुकाकर हर्षोल्लाससे भर गये और बायीं तथा दाहिनी ओर उन्हें घेरकर स्थित हो गये॥ २२-२३॥

[हे नारद!] मैंने, विष्णु एवं इन्द्रादि सभी देवताओंने कुमारको चारों ओरसे घेरकर दण्डवत् प्रणाम किया॥ २४॥

हे मुने! उसी समय भगवान् शंकर तथा आनन्दसे परिपूर्ण देवी पार्वतीने प्रसन्नतापूर्वक उस महोत्सवमें आकर अपने पुत्रको देखा॥ २५॥

जगत्के एकमात्र रक्षक, सर्पराजका भूषण धारण किये हुए तथा अपने प्रमथगणोंसे युक्त हो साक्षात् सर्वेश्वर सदाशिव पराम्बा भवानीके साथ बड़े स्नेहसे उस पुत्रको देखकर गद्गद हो प्रसन्नताको प्राप्त हुए॥ २६॥

उस समय शक्तिको धारण किये हुए कुमार स्कन्दने पार्वती एवं शिवको देखकर शीघ्रतापूर्वक रथसे उतरकर सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया॥ २७॥

परमेश्वर भगवान् शिवने प्रसन्नतापूर्वक कुमारका आलिंगन करके प्रेमपूर्वक उनके सिरको सूँघा॥ २८॥

पार्वतीजीने भी आश्चर्यमें पड़कर उस पुत्रको गले लगाया तथा स्नेहाधिक्यके कारण बहते हुए स्तनका दूध उसे पिलाने लगीं। प्रसन्न हो देवताओंने अपनी स्त्रियोंके साथ कुमारकी आरती उतारी, उस समय जय-जयकारकी महान् ध्वनिसे सारा आकाशमण्डल गूँज उठा॥ २९-३०॥

अनेक ऋषियोंने वेदोंके उद्घोषसे, गायकोंने गीतसे तथा वाद्ययन्त्रोंके बजानेवालोंने वाद्योंसे कुमारका स्वागत किया। कान्तिसे देदीप्यमान अपने उस पुत्रको गोदमें धारणकर पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ भवानीपति शंकर साक्षात् शोभासे सम्पन्न हुए॥ ३१-३२॥

इस प्रकार महान् उत्साहसम्पन्न देवताओं तथा अपने गणोंके साथ परम आनन्दित कुमार कार्तिकेय

भगवान् शिवकी आज्ञासे शिवजीके भवनमें पधारे॥ ३३॥

उस समय श्रेष्ठ देवताओं एवं ऋषियोंसे वन्दित तथा उनसे घिरे हुए वे दोनों शिवा-शिव एक साथमें परम शोभित हुए॥ ३४॥

इधर कुमार भी प्रेमसे शिवजीकी गोदमें बैठकर खेलने लगे और उन्होंने उनके कण्ठमें लिपटे हुए वासुकि नागको अपने दोनों हाथोंसे दबाकर पकड़ लिया॥ ३५॥

लीलासे युक्त कुमार कार्तिकेयको कृपादृष्टिसे देखकर कृपालु भगवान् शंकरने हँसते हुए पार्वतीसे उनकी प्रशंसा की। सर्वव्यापक, जगत्के एकमात्र पालनकर्ता तथा जगत्के एकमात्र स्वामी भगवान् महेश गिरिजाके सहित हर्षित होकर मन्द-मन्द हँसते हुए आनन्दसे विभोर हो गये, प्रेमवश गला रुँध गया और वे कुछ भी कह न सके॥ ३६-३७॥

उसके बाद लोकवृत्तान्तको जाननेवाले जगत्पति भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर रत्नोंसे जड़े हुए रमणीय सिंहासनपर कुमार कार्तिकेयको बैठाया॥ ३८॥

फिर वेदमन्त्रोंके द्वारा पवित्र किये गये समस्त तीर्थोंके जलसे पूर्ण रत्नजटित सौ कलशोंसे उनको प्रसन्नतापूर्वक स्नान कराया। भगवान् विष्णुने उत्तम प्रकारके रत्नोंसे निर्मित किरीट, मुकुट, बाजूबन्द, अपनी वैजयन्ती माला एवं सुदर्शन चक्र उन्हें प्रदान किया। सदाशिवने अपना त्रिशूल, पिनाक धनुष, परशु, शक्ति, पाशुपतास्त्र, बाण, संहारास्त्र एवं परम विद्या कुमारको प्रदान की॥ ३९—४१॥

मुझ ब्रह्माने यज्ञोपवीत, वेद, वेदमाता गायत्री, कमण्डलु, ब्रह्मास्त्र तथा शत्रुनाशिनी विद्या उन्हें प्रदान की॥ ४२॥

देवराज इन्द्रने अपना ऐरावत नामक गजेन्द्र तथा वज्र प्रदान किया। जलके स्वामी वरुणदेवने श्वेतच्छत्र, पाश तथा रत्नमाला उन्हें दी॥ ४३॥

सूर्यने मनकी गतिसे चलनेवाला उत्तम रथ और महातेजस्वी कवच दिया। यमराजने यमदण्ड तथा चन्द्रमाने अमृतपूर्ण घट प्रदान किया। अग्निने प्रसन्न होकर अपने पुत्रको महाशक्ति प्रदान की। निर्ऋतिने अपना शस्त्र तथा वायुने वायव्यास्त्र प्रदान किया॥ ४४-४५॥

कुबेरने गदा तथा ईश्वरने प्रसन्नतासे अपना त्रिशूल दिया। इसी प्रकार सभी देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक अनेक शस्त्र तथा अनेक प्रकारके उपहार अर्पित किये॥ ४६॥

कामदेवने प्रसन्न होकर अपना कामास्त्र, गदा तथा अपनी आकर्षण एवं वशीकरण विद्याएँ परम प्रसन्नतासे उन्हें प्रदान कीं। क्षीरसागरने अमूल्य रत्न तथा विशिष्ट प्रकारका रत्नजटित नूपुर और हिमालयने दिव्य भूषण एवं वस्त्र प्रदान किये। गरुड़ने चित्रबर्हण (मयूर) नामका अपना पुत्र तथा ज्येष्ठ भ्राता अरुणने चरणोंसे युद्ध करनेवाला महाबलवान् ताम्रचूड (मुर्गा) दिया॥ ४७—४९॥

मन्द मुसकानवाली पार्वतीने अत्यन्त प्रसन्नताके साथ अपने पुत्रको परमैश्वर्य एवं चिरंजीवी होनेका वर प्रदान किया। लक्ष्मीने दिव्य सम्पत्ति तथा मनोहर श्रेष्ठ हार प्रदान किया और सावित्रीने बड़े प्रेमसे समस्त सिद्धविद्याएँ प्रदान कीं। हे मुने! इसी प्रकार अन्य जो भी देवियाँ वहाँ आयी थीं, उन्होंने अपनी-अपनी प्रिय वस्तुएँ तथा बच्चेका पालना प्रदान किया॥ ५०—५२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय वहाँ बहुत बड़ा महोत्सव हुआ और सब प्रसन्न हो गये। विशेषकर शिव-पार्वती तो अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे मुने! उसी समय महाप्रतापी ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् रुद्रने हँसते हुए प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मादि देवताओंसे कहा— ॥ ५३-५४॥

शिवजी बोले—हे हरे! हे ब्रह्मन्! हे देवगणो! आप सब मेरी बात सुनें। मैं आपलोगोंपर अत्यधिक प्रसन्न हूँ। आपलोग अपने अभीष्ट वर मुझसे माँगिये॥ ५५॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शिवजीके इस वचनको सुनकर विष्णु आदि सभी देवताओंने प्रसन्नमुख होकर महादेव भगवान् पशुपतिसे कहा— ॥ ५६॥

हे प्रभो! यह तारकासुर कुमारके द्वारा मारा जाय, इसके लिये ही यह सारा उत्तम चरित्र हुआ है॥ ५७॥

इसलिये हमलोग उसे मारनेके लिये आज ही प्रस्थान करेंगे। आप हमलोगोंके सुखके लिये इन कुमारको तारकासुरके वधकी आज्ञा प्रदान कीजिये॥ ५८॥

देवगणोंके वचनको सुनकर सर्वव्यापी शंकरजीने कृपासे अभिभूत होकर देवगणोंके कल्याणके लिये 'तथास्तु' कहकर अपना पुत्र समर्पित कर दिया॥ ५९॥

शिवजीकी आज्ञासे ब्रह्मा, विष्णु जिनमें प्रमुख हैं, ऐसे देवगण मिलकर कार्तिकेयको आगेकर तारकासुरका वध करनेके लिये उसी समय पर्वतसे चल पड़े॥ ६०॥

कैलाससे बाहर निकलकर विष्णुजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने पर्वतके निकट ही अत्यन्त सुन्दर नगरकी रचना की॥ ६१॥

उस नगरमें विश्वकर्माने अत्यन्त मनोहर, परम अद्भुत तथा अत्यन्त निर्मल गृह कुमारके लिये निर्मित किया तथा उस गृहमें उत्तम सिंहासनका भी निर्माण किया॥ ६२॥

तब परम बुद्धिमान् विष्णुने उस गृहमें नाना प्रकारके मांगलिक कृत्य करवाये और देवताओंके साथ सभी तीर्थोंके जलसे उस सिंहासनपर कार्तिकेयका अभिषेक किया॥ ६३॥

फिर कार्तिकेयको सुसज्जितकर [उनको प्रसन्न रखनेकी] समस्त सामग्री वहाँ एकत्रित कर दी तथा उस उपलक्ष्यमें अनेक विधि-विधान तथा उत्सव किये॥ ६४॥

हरिने प्रेमसे उनको ब्रह्माण्डका अधिपतित्व प्रदान किया, फिर स्वयं तिलक लगाकर देवगणोंके साथ उनकी पूजा-अर्चना की। उन्होंने सभी देवताओं तथा ऋषियोंके साथ प्रीतिसे कार्तिकेयको प्रणाम किया और सनातन शिवस्वरूप उन कुमारकी विविध स्तोत्रोंसे स्तुति की॥ ६५-६६॥

ब्रह्माण्डके पालक कार्तिकेय इस प्रकार उत्तम सिंहासनपर बैठकर स्वामित्वको प्राप्तकर अत्यन्त शोभित हुए॥ ६७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें कुमारका अभिषेकवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

कुमार कार्तिकेयकी ऐश्वर्यमयी बाललीला

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! वहाँपर रहकर कार्तिकेयने अपनी भक्ति देनेवाली जो बाललीला की, उस लीलाको आप प्रेमपूर्वक सुनिये। उस समय नारद नामक एक ब्राह्मण, जो यज्ञ कर रहा था, कार्तिकेयकी शरणमें आया॥ १-२॥

वह प्रसन्नमन ब्राह्मण कार्तिकेयके पास आकर उन्हें प्रणाम करके और सुन्दर स्तोत्रोंसे स्तुतिकर अपना अभिप्राय निवेदन करने लगा॥ ३॥

ब्राह्मण बोला—हे स्वामिन्! आप समस्त ब्रह्माण्डके अधिपति हैं, अतः मैं आपकी शरणमें आया हूँ; आप मेरा वचन सुनिये और आज मेरा कष्ट दूर कीजिये॥ ४॥

मैंने अजमेधयज्ञ करना प्रारम्भ किया था, किंतु वह अज अपना बन्धन तोड़कर मेरे घरसे भाग गया॥ ५॥

वह न जाने कहाँ चला गया, मैंने उसे बहुत खोजा, किंतु वह प्राप्त न हो सका। वह बड़ा बलवान् है। अतः अब तो मेरा यज्ञ भंग हो जायगा॥ ६॥

हे विभो! आप-जैसे स्वामीके रहते मेरे यज्ञका विनाश किस प्रकार हो सकता है, इसलिये हे अखिलेश्वर! इस प्रकारसे विचारकर मेरी कामना पूर्ण कीजिये॥ ७॥

हे प्रभो! हे शिवपुत्र! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके स्वामी और समस्त देवताओंसे सेवित होनेवाले आपको छोड़कर अब मैं किसकी शरणमें जाऊँ॥ ८॥

आप दीनबन्धु, दयासागर, भक्तवत्सल तथा सब प्रकारसे सेवाके योग्य हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त देवगण आप परमेश्वरकी स्तुति करते हैं॥ ९॥

आप पार्वतीको आनन्दित करनेवाले, स्कन्द नामवाले, परम, अद्वितीय, परंतप, परमात्मा, आत्मज्ञान देनेवाले तथा शरणकी इच्छा रखनेवाले सज्जनोंके स्वामी हैं॥ १०॥

हे दीनानाथ! हे महेश! हे शंकरसुत! हे त्रैलोक्यनाथ! हे प्रभो! हे मायाधीश! हे ब्राह्मणप्रिय! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। आप सबके स्वामी हैं। ब्रह्मादि सभी देवता आपको प्रणामकर आपकी स्तुति करते हैं। आप मायासे शरीर धारण करनेवाले, अपने भक्तोंको सुख देनेवाले, सबकी रक्षा करनेवाले तथा मायाको वशमें रखनेवाले हैं॥ ११॥

आप भक्तोंके प्राण, गुणोंके आगार, तीनों गुणोंसे भिन्न, शिवप्रिय, शिवस्वरूप, शिवके पुत्र, प्रसन्न, सुखदायक, सच्चित्स्वरूप, महान्, सर्वज्ञ, त्रिपुरका विनाश करनेवाले, श्रीशिवजीके पुत्र, सदा सत्प्रेमके वशमें रहनेवाले, छः मुखवाले, साधुओंके प्रिय, प्रणतजनपालक, सर्वेश्वर तथा सबके कल्याणकारी हैं। आप साधुओंसे द्रोह करनेवालोंके

विनाशक, शिवको गुरु माननेवाले, ब्रह्माण्डके अधिपति, सर्वसमर्थ और सभी देवताओंसे सेवित चरणवाले हैं। हे सेवाप्रिय! मेरी रक्षा कीजिये। हे वैरियोंके लिये भयंकर तथा भक्तोंका कल्याण करनेवाले! लोगोंके शरणस्वरूप तथा सुखकारी आपके चरणकमलमें मैं प्रणाम करता हूँ। हे स्कन्द! मेरी प्रार्थनाको सुनिये और मेरे चित्तमें अपनी भक्ति प्रदान कीजिये॥ १२-१३॥

जिसके पक्षमें होकर आप उभय पार्श्वमें रक्षा करते हैं, उसका अत्यन्त बलवान् तथा दक्ष शत्रु भी क्या कर सकता है! दक्षलोगोंसे माननीय आप जिसके रक्षक हैं, उसका तक्षक अथवा आमिषभक्षक क्या कर सकता है!॥ १४॥

देवगुरु बृहस्पति भी आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, फिर आप ही बतलाइये कि अत्यन्त मन्दबुद्धि मैं आप परम पूज्यकी किस प्रकार स्तुति-प्रशंसा एवं पूजा करूँ। हे स्कन्द! मैं पवित्र, अपवित्र, अनार्य चाहे कुछ भी हूँ, आपके चरणकमलोंके परागके लिये प्रार्थना करता हूँ॥ १५॥

हे सर्वेश्वर! हे भक्तवत्सल! हे कृपासिन्धो! मैं आपका सेवक हूँ, हे सत्प्रभो! आप गणोंके पति हैं, अत: अपने सेवकके अपराधपर ध्यान न दें। हे विभो! मैंने कभी भी आपकी थोड़ी भी भक्ति नहीं की है, यह आप जानते हैं। हे भगवन्! आपसे बढ़कर कोई अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाला नहीं है और मुझसे बढ़कर कोई पामर जन नहीं है॥ १६॥

आप कल्याण करनेवाले, कलिके पापको नष्ट करनेवाले, कुबेरके बन्धु, करुणार्द्र चित्तवाले, अठारह नेत्र तथा छः मुखवाले हैं। हे गुह! आप मेरे यज्ञको पूर्ण कीजिये॥ १७॥

आप त्रिलोकीके रक्षक, शरणागतोंसे प्रेम करनेवाले, यज्ञके कर्ता, यज्ञके पालक और विघ्नकारियोंका वध करनेवाले हैं। साधुजनोंके विघ्नको दूर करनेवाले और सब प्रकारसे सृष्टि करनेवाले हे महेश्वरपुत्र! मेरे यज्ञको पूर्ण कीजिये; आपको नमस्कार है॥ १८-१९॥

हे स्कन्द! आप सबके रक्षक तथा सब कुछ जाननेवाले हैं। आप सर्वेश्वर, सबके शासक, सबके एकमात्र स्थान और सबका पालन करनेवाले हैं॥ २०॥

आप संगीतज्ञ, वेदवेत्ता, परमेश्वर, सबको स्थिति प्रदान करनेवाले, विधाता, देवदेव तथा सज्जनोंकी एकमात्र गति हैं। आप भवानीनन्दन, शम्भुपुत्र, ज्ञानके स्वरूप, स्वराट्, ध्याता, ध्येय, पितरोंके पिता तथा महात्माओंके मूल कारण हैं॥ २१-२२॥

ब्रह्माजी बोले—शिवजीके पुत्र देवसम्राट् कार्तिकेयने उस ब्राह्मणका वचन सुनकर वीरबाहु नामक अपने गणको उसे (यज्ञके बकरेको) खोजनेके लिये भेजा॥ २३॥

उनकी आज्ञासे महावीर वीरबाहु भक्तिपूर्वक अपने स्वामीको प्रणामकर उसे खोजनेके लिये शीघ्र ही चल पड़ा। उसने सारे ब्रह्माण्डमें उस बकरेकी खोज की, परंतु उसे कहीं नहीं पाया, केवल लोगोंसे उसके उपद्रवका समाचार सुना। तब वह वैकुण्ठमें गया और वहाँ उस महाबलवान् अजको उसने देखा, जो अपने गलेमें यज्ञके यूपको बाँधे हुए उपद्रव कर रहा था॥ २४—२६॥

वीरबाहु बड़े वेगके साथ उसकी दोनों सींगें पकड़कर एवं पटककर ऊँचे स्वरसे चिल्लाते हुए उस अजको अपने स्वामीके पास ले लाया॥ २७॥

उसको देखते ही सृष्टिकर्ता प्रभु कार्तिकेय समस्त ब्रह्माण्डका भार धारणकर उसके ऊपर आरूढ़ हो गये॥ २८॥

हे मुने! वह अज बिना विश्राम किये ही क्षणमात्रमें सारा ब्रह्माण्ड घूमकर फिर वहीं आ गया॥ २९॥

तब कार्तिकेय उससे उतरकर अपने आसनपर बैठ गये और वह अज वहीं खड़ा रहा। तब वह नारद [ब्राह्मण] कार्तिकेयसे कहने लगा—॥ ३०॥

नारद बोला—हे देवदेवेश! आपको प्रणाम है। हे कृपानिधे! अब आप मेरे इस अजको मुझे प्रदान कीजिये, जिससे मैं आनन्दपूर्वक यज्ञ करूँ; आप मुझसे मित्रभाव रखिये॥ ३१॥

कार्तिकेय बोले—हे ब्राह्मण! यह अज वधके योग्य नहीं है। हे नारद! अब आप अपने घर जाइये, आपका सम्पूर्ण यज्ञ मेरी कृपासे पूर्ण हो गया॥ ३२॥

ब्रह्माजी बोले—कार्तिकेयके इस वचनको सुनकर प्रसन्नचित्त वह ब्राह्मण कार्तिकेयको उत्तम आशीर्वाद देकर अपने घर चला गया॥ ३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें कुमारके अद्भुतचरितका वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

तारकासुरसे सम्बद्ध देवासुर-संग्राम

ब्रह्माजी बोले—विभु कार्तिकेयके इस चरित्रको देखकर विष्णु आदि देवताओंके मनमें विश्वास हो गया और वे परम प्रसन्न हो गये। शिवजीके तेजसे प्रभावित होकर वे उछलते तथा सिंहनाद करते हुए कुमारको आगेकर तारकासुरका वध करनेहेतु चल पड़े॥ १-२॥

महाबली तारकासुरने भी देवताओंके उद्योगको सुनकर बड़ी सेनाके साथ देवताओंसे युद्ध करनेके लिये शीघ्र प्रस्थान किया। देवगणोंने तारकासुरकी बहुत बड़ी सेना देखकर अत्यन्त बलपूर्वक सिंहनाद करते हुए उसे आश्चर्यचकित कर दिया। उसी समय ऊपरसे बड़ी शीघ्रताके साथ शिवजीद्वारा प्रेरित आकाशवाणीने समस्त विष्णु आदि देवताओंसे शीघ्र कहा— ॥ ३—५॥

आकाशवाणी बोली—हे देवगण! आपलोग जो कुमारको आगे करके युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हैं, इससे आपलोग संग्राममें दैत्योंको जीतकर विजयी होंगे॥ ६॥

ब्रह्माजी बोले—आकाशवाणीको सुनकर सभी देवताओंमें अत्यन्त उत्साह भर गया और वे वीरोंकी भाँति गर्जना करते हुए उस समय निर्भय हो गये॥ ७॥

इस प्रकार भयसे रहित एवं युद्धकी इच्छावाले वे सभी देवता कुमारको आगे करके महीसागर-संगमपर गये। बहुत-से असुरोंसे घिरा वह तारक भी जहाँ देवता थे, वहाँपर अपनी बहुत बड़ी सेनाके साथ शीघ्र ही आ गया॥ ८-९॥

उसके आनेपर प्रलयकालीन बादलके समान शब्द करनेवाली रणदुन्दुभियाँ तथा अन्य कर्कश बाजे बजने लगे। उस समय तारकासुरके साथ रहनेवाले समस्त असुर कूदते-फाँदते हुए पादप्रहारोंसे पृथ्वीको कँपाने लगे और गर्जना करने लगे। उस उग्र ध्वनिको सुनकर सभी देवगण अत्यन्त निर्भय हो एक साथ ही तारकासुरसे युद्ध करनेकी इच्छासे उठ खड़े हुए। स्वयं इन्द्रदेव कुमारको हाथीपर चढ़ाकर देवताओंकी बहुत बड़ी सेनाके साथ लोकपालोंसे युक्त हो आगे-आगे चलने लगे॥ १०—१३॥

उस समय अनेक प्रकारकी दुन्दुभि, भेरी, तुरही, वीणा, वेणु और मृदंग बजने लगे तथा गन्धर्व गान करने लगे॥ १४॥

कुमार इन्द्रको हाथी देकर अनेक आश्चर्योंसे युक्त तथा विविध रत्नोंसे जटित दूसरे यानपर सवार हो गये॥ १५॥

उस समय सर्वगुणसम्पन्न महायशस्वी शंकरपुत्र कुमार कार्तिकेय विमानके ऊपर चढ़कर महाकान्तिमान् चामरोंसे वीज्यमान होते हुए अत्यन्त शोभित हो रहे थे॥ १६॥

उस समय प्रचेताके द्वारा दिया गया छत्र, जो अनेक रत्नोंसे जटित होनेके कारण महाकान्तिमान् था तथा जिससे चन्द्रकिरणोंके समान आभा निकल रही थी, वह कुमारके द्वारा मस्तकपर धारण किया गया था॥ १७॥

उस समय युद्धकी इच्छावाले महाबलवान् इन्द्रादि समस्त देवता अपनी-अपनी सेनाके साथ सम्मिलित हुए॥ १८॥

इस प्रकार देवता एवं दानव व्यूहकी रचनाकर बहुत बड़ी सेनाके साथ युद्धकी इच्छासे रणभूमिमें आ डटे॥ १९॥

उस समय एक-दूसरेको मारनेकी इच्छावाली देवताओं तथा दैत्योंकी वे दोनों सेनाएँ चारणोंके द्वारा स्तुति की जाती हुई अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं॥ २०॥

कायरोंके लिये भयंकर तथा वीरोंके लिये सुखद समुद्रतुल्य उनकी दोनों सेनाएँ गरजने लगीं॥ २१॥

इसी बीच बलसे उन्मत्त महावीर दैत्य एवं देवता क्रोधसे अधीर हो परस्पर युद्ध करने लगे॥ २२॥

उस समय देवों एवं दानवोंमें महाभयंकर युद्ध आरम्भ हो गया और क्षणमात्रमें पृथ्वी रुण्ड-मुण्डोंसे व्याप्त हो गयी॥ २३॥

सैकड़ों तथा हजारों वीरसम्मत योद्धा महाशस्त्रोंके प्रहारसे छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिरने लगे। युद्धमें अत्यन्त कठोर खड्गके प्रहारसे किसीकी भुजा छिन्न-भिन्न हो गयी और किन्हीं मानी वीरोंकी जाँघें कट गयीं। गदाओं तथा मुद्गरोंसे कुछ वीरोंके सभी अंग विदीर्ण हो गये। भालोंसे कुछ वीरोंकी छाती छिद गयी और कुछ पाशोंसे बाँध दिये गये। कुछ वीर पीठपर भाला, ऋष्टि एवं अंकुशके प्रहारसे घायल हो गये। किन्हींके सिर कटकर पृथ्वीपर गिर गये॥ २४—२७॥

वहाँ बहुत-से कबन्ध (सिर कटे हुए धड़) नाच रहे थे तथा कुछ लोग अपने हाथोंमें शस्त्र लिये हुए एक दूसरेको ललकार रहे थे॥ २८॥

वहाँ रक्तकी सैकड़ों नदियाँ बह चलीं और सैकड़ोंकी संख्यामें भूत-प्रेत वहाँ आ गये॥ २९॥

वहाँपर सियार-सियारिनें मांस खाने लगीं। गृध्रवट, श्येन तथा कौवे एवं अनेक मांसभक्षी जानवर युद्धमें गिरे हुए योद्धाओंके मांसका भक्षण करने लगे॥ ३०॥

इसी बीच महाबली तारकासुर बहुत बड़ी सेनाके साथ देवताओंसे युद्ध करनेके लिये वहाँ शीघ्र आ पहुँचा॥ ३१॥

युद्धमें दुर्मद तारकासुरको युद्ध करनेके लिये आता हुआ देखकर इन्द्र आदि देवता भी शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये। उस समय दोनों सेनाओंमें घोर गर्जना होने लगी॥ ३२॥

उस समय देवता तथा दैत्योंका विनाशकारी द्वन्द्व-युद्ध होने लगा, जिसे देखकर वीर हर्षित होते थे तथा कायर भयभीत हो जाते थे॥ ३३॥

रणमें दितिपुत्र बलवान् तारक इन्द्रके साथ, संह्लाद अग्निके साथ, यमराज जम्भके साथ, महाप्रभु निर्ऋतिके साथ, वरुण बलके साथ, सुवीर वायुके साथ तथा गुह्यराट् पवमानके साथ युद्ध करने लगा। रणकुशल शम्भु ईशानके साथ युद्ध करने लगा। शुम्भका शेषके साथ और दानव कुम्भका चन्द्रमाके साथ युद्ध होने लगा। उस युद्धमें महाबली, पराक्रमी तथा अनेक युद्धोंमें प्रवीण कुंजर मिहिरके साथ परम अस्त्रोंसे युद्ध करने लगा॥ ३४—३७॥

इस प्रकार देवता तथा राक्षस अपनी-अपनी सेना लेकर महान् द्वन्द्वयुद्धके द्वारा रणभूमिमें विजयकी आशासे परस्पर युद्ध करने लगे। हे मुने! महाबली वे दैत्य तथा देवता उस देवासुरसंग्राममें परस्पर स्पर्धा करते हुए एक-दूसरेके लिये दुर्जेय हो गये॥ ३८-३९॥

विजयकी इच्छा रखनेवाले उन देवगणों तथा दानवोंका घनघोर युद्ध छिड़ गया, जो मनस्वी वीरोंके लिये सुखदायक तथा कायरोंके लिये भयदायक था॥ ४०॥

युद्धमें घायल हुए अनेक देवता तथा दानवोंके गिरनेसे वह रणभूमि अत्यन्त भयानक हो उठी। उस समय वह कायरोंके लिये अगम्य एवं भयंकर हो गयी और मनस्वियोंको प्रसन्न करनेवाली हुई॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें युद्धप्रारम्भवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

देवराज इन्द्र, विष्णु तथा वीरक आदिके साथ तारकासुरका युद्ध

ब्रह्माजी बोले—हे तात! हे नारद! इस प्रकार मैंने देव-दानव-सेनाओंके भयंकर युद्धका वर्णन किया, अब दोनों सेनाओंके सेनापतियों—कार्तिकेय और तारकासुरके युद्धका वर्णन सुनिये। इस प्रकार देव-दानवके लिये विनाशकारी घोर संग्राममें तारकासुरने परम शक्ति अस्त्रद्वारा इन्द्रपर प्रहार किया, जिससे घायल होकर वे उसी क्षण हाथीसे गिर पड़े तथा मूर्च्छित हो गये। वज्र धारण करनेवाले इन्द्रको उस समय बहुत कष्ट हुआ। हे तात! उसी प्रकार अति बलवान् तथा महारणमें प्रवीण असुरोंने सभी लोकपालोंको भी पराजित कर दिया॥ १—४॥

युद्ध करते हुए दूसरे देवगण भी दैत्योंसे पराजित हो गये और उनके तेजको न सह सकनेके कारण इधर-उधर भागने लगे॥ ५॥

इस प्रकार सफल उद्योगवाले विजयी असुर गर्जना करने लगे तथा सिंहनाद करते हुए कोलाहल करने लगे। इसी समय क्रोधित हो उठे वीरभद्र अपनेको वीर माननेवाले तारकासुरकी ओर पराक्रमी गणोंके साथ आये। शिवजीके कोपसे उत्पन्न बलवान् वीरभद्र देवगणोंको अपने पीछे करके स्वयं सभी गणोंके आगे होकर युद्धकी इच्छासे तारकासुरके सामने आ गये। उस समय वे सभी प्रमथगण एवं दैत्य उत्साहित होकर उस रणस्थलमें एक-दूसरेपर प्रहारकर युद्ध करने लगे॥ ६—९॥

रणमें कुशल वे एक-दूसरेपर त्रिशूल, ऋष्टि, पाश, खड्ग, परशु एवं पट्टिशसे प्रहार करने लगे॥ १०॥

वीरभद्रने उस तारकको त्रिशूलसे अत्यधिक आहत कर दिया और वह क्षणभरमें मूर्च्छित होकर भूमिपर सहसा गिर पड़ा। इसके बाद उस दैत्यश्रेष्ठ तारकने मूर्च्छा त्यागकर बड़ी शीघ्रतासे उठकर वीरभद्रपर शक्तिसे बलपूर्वक प्रहार किया॥ ११-१२॥

पराक्रमी तथा महातेजस्वी वीरभद्रने भी अपने घोर त्रिशूलसे शीघ्र ही उस तारकासुरपर प्रहार किया॥ १३॥

तत्पश्चात् दैत्योंके अधीश्वर तथा वीरोंमें मान्य महाबली तारकने भी रणभूमिमें वीरभद्रपर शक्तिसे प्रहार किया। इस प्रकार युद्धविद्यामें कुशल युद्ध करते हुए वे दोनों ही अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे॥ १४-१५॥

उस समय उन दोनों वीरोंमें सबके देखते-देखते ही अत्यन्त रोमांचकारी भयंकर द्वन्द्व-युद्ध होने लगा॥ १६॥

तब भेरी, मृदंग, पटह, आनक तथा गोमुख बाजे बजने लगे, जिसे सुनकर वीर प्रसन्न तथा कायर व्याकुल हो गये। एक-दूसरेके प्रहारोंसे जर्जर कर दिये गये वे दोनों बड़ी सावधानीके साथ बुध तथा मंगलके समान बड़े वेगसे परस्पर युद्ध कर रहे थे। तब तारकासुरके साथ वीरभद्रका ऐसा युद्ध देखकर वहाँ वीरभद्रके पास जाकर शिवजीके प्रिय आप कहने लगे— ॥ १७—१९॥

नारदजी बोले—हे वीरभद्र! हे महावीर! आप गणोंमें श्रेष्ठ हैं, आप इस युद्धसे हट जाइये; क्योंकि आपके द्वारा इसका वध उचित नहीं है॥ २०॥

आपके इस वचनको सुनकर गणोंमें अग्रणी कुपित वीरभद्र हाथ जोड़कर आपसे कहने लगे— ॥ २१॥

वीरभद्र बोले—हे महाप्राज्ञ! हे मुनिवर्य! आप मेरे श्रेष्ठ वचनको सुनिये। मैं तारकका वध [अवश्य] करूँगा; आज मेरा पराक्रम आप देखें॥ २२॥

जो वीर अपने स्वामीको युद्धभूमिमें ले आते हैं, वे पापी तथा महानपुंसक होते हैं और रणक्षेत्रमें नष्ट हो जाते हैं। वे अशुभ गति प्राप्त करते हैं तथा उनको नरक अवश्य प्राप्त होता है। [हे मुने!] आप मुझे वीरभद्र जानिये, आप पुनः ऐसा कभी मत कहियेगा॥ २३-२४॥

अस्त्र-शस्त्रोंसे छिन्न-भिन्न अंगोंवाले जो निर्भय होकर युद्ध करते हैं, वे इस लोकमें तथा परलोकमें प्रशंसाके पात्र होते हैं तथा अद्भुत सुख प्राप्त करते हैं॥ २५॥

विष्णु आदि सभी देवगण मेरे वचन सुन लें। आज मैं इस पृथ्वीको तारकासुरसे रहित कर दूँगा॥ २६॥

ऐसा कहकर त्रिशूल धारण किये हुए वीरभद्र प्रमथगणोंको साथ लेकर मनमें शिवजीका स्मरणकर तारकासुरके साथ युद्ध करने लगे॥ २७॥

वृषभपर बैठे हुए, उत्तम त्रिशूल धारण किये हुए तथा तीन नेत्रोंवाले अनेक महावीरोंके साथ रणमें विद्यमान वे [वीरभद्र] सुशोभित हो रहे थे॥ २८॥

सैकड़ों गण कोलाहल करते हुए वीरभद्रको आगे करके निर्भय हो दानवोंके साथ युद्ध करने लगे॥ २९॥

इसी प्रकार तारकासुरके अधीन रहनेवाले बलोन्मत्त महावीर राक्षस भी क्रोधमें भरकर गणोंका मर्दन करते हुए युद्ध करने लगे। इस प्रकार उन दैत्योंके साथ गणोंका बहुत बड़ा विकट संग्राम बारंबार होने लगा, उस समय अस्त्र चलानेमें कुशल गण एक-दूसरेको प्रहर्षित करते हुए विजयी हो गये॥ ३०-३१॥

तब प्रबल गणोंसे पराजित हुए दैत्य रणभूमिसे विमुख हो दुखी एवं व्याकुलचित्त होकर भागने लगे॥ ३२॥

इस प्रकार अपनी सेनाको व्यथित तथा पराङ्मुख देखकर तारकासुर क्रोधित होकर देवताओंको मारनेके लिये चला॥ ३३॥

वह दस हजार भुजा धारणकर सिंहपर आरूढ़ हो बड़े वेगसे देवताओं तथा गणोंको युद्धमें गिराने लगा॥ ३४॥

तब गणोंके मुखिया महाबली वीरभद्रने उसके इस कर्मको देखकर उसके वधके लिये अत्यधिक क्रोध किया। उन्होंने शिवजीके चरण-कमलोंका स्मरण करके श्रेष्ठ त्रिशूल ग्रहण किया, उसके तेजसे सभी दिशाएँ तथा आकाश जलने लगे। इसी अवसरपर महान् कौतुक दिखानेवाले स्वामी कार्तिकेयने उन्हें तथा वीरबाहु आदि गणोंको युद्धभूमिसे हटा दिया॥ ३५—३७॥

उनकी आज्ञासे वीरभद्र रणभूमिसे विरत हो गये। तब असुरनायक तारकासुरने महाक्रोध किया॥ ३८॥

अनेक अस्त्रोंको चलाने तथा युद्धमें कुशल वह तारकासुर शीघ्र ही देवताओंको पीड़ित करके उनके ऊपर बाणवृष्टि करने लगा॥ ३९॥

इस प्रकार असुरोंका पालन करनेवाला एवं बलवानोंमें श्रेष्ठ वह तारक ऐसा [युद्धरूप] महान् कर्म करके देवताओंसे अजेय हो गया। इस प्रकार [असुरोंके द्वारा] मारे जाते हुए तथा भयभीत उन देवताओंको देखकर विष्णु क्रोध करके युद्धके लिये शीघ्र उद्यत हो गये॥ ४०-४१॥

भगवान् विष्णु सुदर्शनचक्र, शार्ङ्गधनुष तथा अन्य अस्त्र धारणकर रणहेतु महादैत्य तारकके सम्मुख पहुँच गये॥ ४२॥

तदनन्तर हे मुने! सबके देखते-देखते तारकासुर तथा विष्णुका रोमांचकारी, अति भयंकर तथा घोर युद्ध होने लगा। विष्णुने बड़े वेगके साथ गदा उठाकर असुर तारकपर प्रहार किया। महाबली तारकने भी त्रिशिखसे उस गदाके दो टुकड़े कर दिये॥ ४३-४४॥

तब देवताओंको अभय देनेवाले भगवान् विष्णु अत्यन्त क्रोधित हो गये और उन्होंने शार्ङ्गधनुषसे छोड़े गये बाणोंसे उस असुरनायकपर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। शत्रुवीरोंका हनन करनेवाले उस महावीर तारकासुरने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उनके समस्त बाणोंको शीघ्रतासे काट दिया। इसके बाद तारकासुरने अपनी शक्तिसे विष्णुपर शीघ्रतापूर्वक प्रहार किया। उसके प्रहारसे मूर्च्छित होकर वे विष्णु पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ४५—४७॥

तब क्षणभरके बाद चेतना प्राप्तकर वे उठ गये और उन्होंने महान् सिंहनाद करके क्रोधके साथ जलती हुई अग्निके समान तेजस्वी चक्रको धारण किया॥ ४८॥

विष्णुने उस चक्रसे दैत्यराजपर प्रहार किया और उस तीव्र प्रहारसे आहत होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४९॥

बलशाली उस असुरनायक दैत्यराज तारकने पुनः उठकर बड़ी तेजीके साथ अपनी शक्तिसे सुदर्शनचक्रको काट दिया और उसी महाशक्तिसे देवताओंके प्रिय अच्युतपर प्रहार किया। तब महावीर विष्णुने भी नन्दक नामक खड्गसे उसपर प्रहार किया। हे मुने! इस प्रकार अक्षीण बलवाले बलवान् विष्णु तथा तारकासुर दोनों ही रणमें एक-दूसरेसे घोर संग्राम करते रहे॥ ५०—५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें देवों और दैत्योंका सामान्ययुद्धवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका कार्तिकेयको तारकके वधके लिये प्रेरित करना, तारकासुरद्वारा विष्णु तथा इन्द्रकी भर्त्सना, पुनः इन्द्रादिके साथ तारकासुरका युद्ध

ब्रह्माजी बोले—हे देवदेव! हे गुह! हे स्वामिन्! हे शंकरपुत्र! हे पार्वतीसुत! विष्णु तथा तारकासुरका यह व्यर्थ संग्राम शोभा नहीं देता। यह अति बलवान् तारक विष्णुसे नहीं मरेगा; क्योंकि मैंने उसको वरदान दिया है। यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। हे पार्वतीसुत! आपके बिना इस पापीको मारनेवाला अन्य कोई नहीं है, इसलिये हे महाप्रभो! आप मेरा यह वचन स्वीकार कीजिये॥ १—३॥

हे परन्तप! अब आप शीघ्र ही इस दैत्यके वधके लिये तत्पर हो जाइये। हे शिवापुत्र! इसको मारनेके लिये ही आप शंकरजीसे उत्पन्न हुए हैं। हे महावीर! आप रणभूमिमें इन पीड़ित देवगणोंकी रक्षा कीजिये, आप न तो बालक हैं, न युवा हैं, किंतु सर्वेश्वर प्रभु हैं॥ ४-५॥

आप इस समय व्याकुल इन्द्र, विष्णु, अन्य देवताओं एवं गणोंको देखिये और इस महादैत्यका वध कीजिये तथा त्रैलोक्यको सुख प्रदान कीजिये॥ ६॥

इसने पूर्वकालमें लोकपालोंसहित इन्द्रपर विजय प्राप्त की है और अपनी तपस्याके बलसे महावीर विष्णुको भी अपमानित किया है। इस दुरात्मा दैत्यने सम्पूर्ण त्रैलोक्यको जीत लिया और इस समय आपके सान्निध्यके कारण उन देवताओंसे पुनः युद्ध किया॥ ७-८॥

इस कारण आप इस दुरात्मा पापी तारकासुरका वध कीजिये। हे शंकरात्मज! यह मेरे वरदानके कारण आपके सिवा किसी अन्यसे नहीं मारा जा सकता॥ ९॥

[ब्रह्माजीने कहा—] मेरी यह बात सुनकर शंकरपुत्र कार्तिकेय प्रसन्नचित्त होकर हँसने लगे और 'ऐसा ही होगा'—यह वचन बोले॥ १०॥

तब वे महाप्रभु शंकरपुत्र असुरके वधका निश्चयकर विमानसे उतरकर पैदल हो गये॥ ११ ॥

उस युद्धभूमिमें अपने हाथमें महोल्काके समान महाप्रभायुक्त देदीप्यमान शक्ति नामक अस्त्रको धारण

किये हुए वे शिवपुत्र कार्तिकेय पैदल दौड़ते हुए अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। अत्यन्त प्रचण्ड, महाधैर्यशाली और अप्रमेय कार्तिकेयको अपने सम्मुख आता देखकर उस तारकासुरने देवगणोंसे कहा—क्या शत्रुओंका वध करनेवाले कुमार ये ही हैं?॥ १२-१३ ॥

मैं अकेले ही इस कुमार एवं अन्य वीरोंके साथ युद्ध करूँगा और लोकपालोंसहित समस्त गणों एवं विष्णु आदि देवताओंका वध करूँगा॥ १४ ॥

ऐसा कहकर वह महाबली तारक कुमारको उद्देश्य करके युद्ध करनेके लिये चला। उसने हाथमें अत्यन्त अद्भुत शक्ति ले ली और वह श्रेष्ठ देवताओंसे कहने लगा— ॥ १५ ॥

तारक बोला—हे देवगणो! तुमलोगोंने इस बालक कुमारको मेरे आगे कैसे कर दिया? तुम सब बड़े निर्लज्ज हो, इन्द्र और विष्णु तो विशेष रूपसे लज्जाहीन हैं॥ १६ ॥

पूर्व समयमें भी इन दोनोंने वेदविरुद्ध कर्म किये हैं। मैं विशेषरूपसे उनका वर्णन कर रहा हूँ, तुमलोग सुनो॥ १७ ॥

इन दोनोंमें विशेषरूपसे विष्णु तो छली, दोषी तथा अविवेकी है, जिसने पूर्वकालमें पापपूर्वक छल करके बलिको बाँधा था॥ १८ ॥

उसीने यत्नपूर्वक वेदमार्गका त्यागकर धूर्ततासे मधु तथा कैटभ नामक राक्षसोंका सिर काट लिया था॥ १९ ॥

उसके बाद देवता एवं दैत्योंके अमृत-पानके समय उसीने मोहिनीरूप धारणकर पंक्ति-भेद किया और वेदमार्गको दूषित किया॥ २० ॥

उसने रामावतार लेकर ताड़का स्त्रीका वध किया, बालिको [छिपकर] मारा तथा विश्रवाके पुत्र विप्र रावणका वध किया, इस प्रकार उसने वेदनीतिका विनाश किया॥ २१ ॥

पापपरायण इसने बिना अपराधके ही अपनी स्त्रीका परित्याग कर दिया। इस प्रकार अपने स्वार्थके लिये इसने वेदमार्गको ध्वस्त किया॥ २२ ॥

छठे परशुरामावतारमें इस दुष्टने अपनी माताका सिर काट दिया और [गणेशको युद्धमें हराकर] गुरुपुत्रका अपमान किया॥ २३ ॥

कृष्णावतारमें इसने कुलधर्मके विरुद्ध वेदमार्गको छोड़कर बहुत-से विवाह किये और अनेक नारियोंको दूषित किया॥ २४ ॥

इसके बाद नौवें बुद्धावतारमें इसने वेदमार्गकी निन्दा की और वेदमार्गका विरोध करनेवाले नास्तिक मतका स्थापन किया॥ २५ ॥

इस प्रकार जिसने वेदमार्गको छोड़कर पाप किया है, वह युद्धमें कैसे विजयी हो सकता है और कैसे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हो सकता है?॥ २६ ॥

इसी प्रकार इसका ज्येष्ठ भ्राता इन्द्र भी महापापी कहा गया है; उसने भी अपने स्वार्थके लिये नाना प्रकारके पाप किये हैं॥ २७ ॥

उसने अपने स्वार्थके लिये दितिके गर्भमें प्रवेशकर गर्भस्थ बालकके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, गौतमकी स्त्रीसे व्यभिचार किया और ब्राह्मणकुमार वृत्रका वध किया॥ २८ ॥

विश्वरूप ब्राह्मणका, जो असुरोंका भागिनेय तथा इन्द्रका गुरु भी था, उसका सिर काटकर इसने वेदमार्गको विनष्ट किया॥ २९ ॥

इस प्रकार विष्णु एवं इन्द्र वे दोनों बार-बार अनेक पाप करके तेजसे रहित तथा विनष्ट पराक्रमवाले हो गये हैं॥ ३० ॥

[हे देवगण!] इन दोनोंके बलसे तुमलोग संग्राममें विजय नहीं प्राप्त कर सकोगे। फिर मूर्खता करके तुमलोग अपना प्राण त्याग करनेके लिये यहाँ क्यों आये हो? ॥ ३१ ॥

ये दोनों बड़े लम्पट एवं स्वार्थी हैं, इन्हें धर्मका ज्ञान नहीं है। हे देवताओ! धर्मके बिना किया गया सारा कृत्य व्यर्थ होता है ॥ ३२ ॥

ये दोनों बड़े धृष्ट हैं। इन दोनोंने इस बालकको मेरे सामने खड़ा कर दिया है। यदि मैं बालकका वध करूँगा, तो यह पाप भी इन्हीं दोनोंको लगेगा ॥ ३३ ॥

किंतु यह बालक अपने प्राणकी रक्षाके लिये यहाँसे दूर चला जाय। विष्णु तथा इन्द्रके विषयमें इस प्रकार कहकर उसने वीरभद्रसे कहा— ॥ ३४ ॥

तुमने भी पहले दक्षप्रजापतिके यज्ञमें अनेक ब्राह्मणोंका वध किया था। हे अनघ! मैं आज तुम्हें उस कर्मका फल चखाऊँगा ॥ ३५ ॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार युद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ तारकासुरने विष्णु तथा इन्द्रके निन्दाकर्मसे अपना समस्त पुण्य नष्ट करके अत्यन्त अद्भुत शक्ति ग्रहण की ॥ ३६ ॥

तब बड़े वेगसे बालकके समीप आते हुए उस तारकासुरको देखकर इन्द्रने कुमारके आगे होकर अपने वज्रसे उसपर प्रहार किया ॥ ३७ ॥

उस वज्रके प्रहारसे देवताओंकी निन्दासे नष्ट बलवाला तारकासुर जर्जर हो गया और क्षणमात्रमें पृथ्वीपर सहसा गिर पड़ा ॥ ३८ ॥

तब गिरनेपर भी उठकर उसने बड़े वेगसे इन्द्रपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया और हाथीपर चढ़े इन्द्रको पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ३९ ॥

इस प्रकार इन्द्रके गिरनेपर महान् हाहाकार होने लगा, यह देखकर देवताओंकी सेनामें शोक छा गया ॥ ४० ॥

[हे नारद!] उस समय तारकने भी धर्मविरुद्ध एवं दु:खदायक जो कर्म अपने नाशके लिये किया, उसे आप मुझसे सुनें ॥ ४१ ॥

उसने गिरे हुए इन्द्रको अपने पैरोंसे रौंदकर उनके हाथसे वज्र छीनकर उसी वज्रसे उनपर प्रहार किया ॥ ४२ ॥

इस प्रकार इन्द्रको तिरस्कृत होता हुआ देखकर प्रतापशाली भगवान् विष्णुने चक्र उठाकर तारकासुरपर प्रहार किया ॥ ४३ ॥

उस चक्रके प्रहारसे आहत होकर वह तारकासुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। पुन: उठकर उस दैत्यराजने शक्ति नामक अस्त्रसे विष्णुपर प्रहार किया ॥ ४४ ॥

उस शक्तिके प्रहारसे विष्णु पृथ्वीपर गिर पड़े। इससे बड़ा हाहाकार मच गया और देवता लोग जोर-जोरसे चिल्लाने लगे ॥ ४५ ॥

एक निमेषमात्रमें पुन: अभी विष्णु उठ ही रहे थे, तभी उसी समय वीरभद्र उस असुरके समीप आ गये ॥ ४६ ॥

प्रतापी एवं बलवान् वीरभद्रने अपना त्रिशूल लेकर बड़े वेगसे उस दैत्यपति तारकासुरपर बलपूर्वक प्रहार किया। तब उस त्रिशूलके लगते ही वह महातेजस्वी तारक पृथ्वीपर गिर पड़ा और गिरनेपर भी क्षणमात्रमें उठ गया। तब समस्त असुरोंके सेनापति उस महावीरने क्रोध करके अपनी परम शक्तिद्वारा वीरभद्रकी छातीपर प्रहार किया ॥ ४७—४९ ॥

क्रोधसे चलाये गये उस प्रचण्ड शक्ति नामक अस्त्रके छातीपर लगते ही वीरभद्र भी क्षणमात्रमें मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५० ॥

तब गणोंसहित देवता, गन्धर्व, उरग तथा राक्षस बड़ा हाहाकार करते हुए बार-बार चिल्लाने लगे ॥ ५१ ॥

क्षणभरके पश्चात् शत्रुनाशक महातेजस्वी वीरभद्र जलती हुई अग्निके समान प्रभावाले एवं विद्युत्के समान देदीप्यमान त्रिशूल लेकर [युद्धस्थलमें] शोभित होने लगे। वह त्रिशूल अपनी कान्तिसे दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था। वह सूर्य एवं चन्द्रके बिम्ब तथा अग्निके समान मण्डलवाला, महाप्रभासे युक्त, वीरोंको भय उत्पन्न करनेवाला, कालके समान सबका अन्त करनेवाला तथा महोज्ज्वल था ॥ ५२-५३ ॥

महाबली वीरभद्र जैसे ही उस त्रिशूलसे असुरको मारनेके लिये उद्यत हुए, तभी कुमारने उन्हें रोक दिया ॥ ५४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें तारकवाक्यशक्रविष्णुवीरभद्रयुद्धवर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ९ ॥

दसवाँ अध्याय

कुमार कार्तिकेय और तारकासुरका भीषण संग्राम, कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध, देवताओंद्वारा दैत्यसेनापर विजय प्राप्त करना, सर्वत्र विजयोल्लास, देवताओंद्वारा शिवा-शिव तथा कुमारकी स्तुति

ब्रह्माजी बोले—शत्रुपक्षके वीरोंका नाश करनेवाले कुमार कार्तिकेयने इस प्रकार वीरभद्रको [तारकासुरके वधसे] रोककर शिवजीके चरणकमलोंका ध्यानकर स्वयं तारकासुरके वधकी इच्छा की। विशाल सेनासे घिरे हुए महातेजस्वी एवं महाबली कार्तिकेय गरजने लगे और क्रुद्ध होकर तारकासुरके वधके लिये उद्यत हो गये॥ १-२॥

उस समय देवताओं, गणों एवं ऋषियोंने कार्तिकेयका जय-जयकार किया और उत्तम वाणीसे उनकी स्तुति की। उसके बाद तारकासुर तथा कुमारका अत्यन्त दुःसह, समस्त प्राणियोंको भय देनेवाला एवं महाघोर संग्राम होने लगा। हे मुने! दोनों वीर हाथमें शक्ति नामक अस्त्र लेकर परस्पर युद्ध करने लगे, उस समय सभी देखनेवालोंको महान् आश्चर्य हो रहा था॥ ३—५॥

शक्ति-अस्त्रसे छिन्न-भिन्न अंगोंवाले तथा महान् साधनोंसे युक्त वे दोनों महाबली एक-दूसरेकी वंचना करते हुए दो सिंहोंके समान आपसमें प्रहार कर रहे थे। दोनों वैतालिक, खेचर तथा प्रापत नामक युद्ध-विधियोंका आश्रय लेकर शक्तिसे शक्तिपर प्रहार करने लगे॥ ६-७॥

महावीर, महाबली एवं पराक्रमी वे दोनों ही एक-दूसरेको जीतनेकी इच्छासे इन युद्धकलाओंसे अद्भुत युद्ध कर रहे थे। रणविद्यामें प्रवीण, वे एक-दूसरेके वधकी इच्छासे अपना पराक्रम प्रदर्शित करते हुए शक्तिकी धाराओंसे युद्ध करने लगे। वे दोनों परस्पर एक-दूसरेके सिर, कण्ठ, ऊरु, जानु, कटिप्रदेश, वक्षःस्थल, हृदयदेश तथा पृष्ठपर आघात कर रहे थे॥ ८—१०॥

उस समय अनेक युद्धोंमें कुशल एवं महाबली वे दोनों एक-दूसरेको मारनेकी इच्छासे वीरध्वनिसे ललकारते हुए युद्ध कर रहे थे। उस समय सभी देवता, गन्धर्व, किन्नर उस युद्धको देखने लगे और परस्पर कहने लगे—इस युद्धमें कौन जीतेगा?॥ ११-१२॥

तब देवताओंको सान्त्वना देते हुए आकाशवाणी हुई कि इस युद्धमें यह कुमार तारकासुरका वध करेगा। हे देवगणो! आपलोग चिन्ता न करें, सुखपूर्वक रहें, आपलोगोंके लिये शिवजी पुत्ररूपसे स्थित हुए हैं॥ १३-१४॥

उस समय आकाशमार्गसे आयी हुई उस शुभ वाणीको सुनकर प्रमथगणोंसे घिरे हुए कुमार अत्यन्त प्रसन्न हुए और दैत्यराज तारकासुरको मारनेहेतु तत्पर हुए॥ १५॥

उसके बाद उन महाबाहुने क्रोधित होकर तारकासुरकी छातीमें उस शक्ति नामक अस्त्रसे बलपूर्वक आघात किया। तब दैत्यश्रेष्ठ उस तारकासुरने भी उस शक्तिका तिरस्कारकर अत्यन्त कुपित होकर कुमारपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया॥ १६-१७॥

उस शक्तिके प्रहारसे कार्तिकेय मूर्च्छित हो गये, पुनः थोड़ी देरके पश्चात् चेतनायुक्त हो गये और महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे॥ १८॥

मदोन्मत्त सिंहकी भाँति उन प्रतापी कुमारने तारकासुरका वध करनेकी इच्छासे शक्तिसे उसपर प्रहार किया॥ १९॥

इस प्रकार शक्तियुद्धमें निपुण कुमार तथा तारकासुर क्रोधमें भरकर युद्ध करने लगे। [युद्धमें] परम अभ्यस्त वे दोनों ही एक-दूसरेपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे पैदल ही पैंतरा देकर बड़ी तेजीसे युद्ध कर रहे थे॥ २०-२१॥

दोनों ही अनेक प्रकारके घातोंसे एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे, एक-दूसरेका छिद्र देख रहे थे, वे दोनों ही पराक्रमी गर्जना कर रहे थे। सभी देवता, गन्धर्व तथा किन्नर युद्ध देख रहे थे, सभी आश्चर्यसे चकित थे और कोई भी किसीसे कुछ भी नहीं कह रहा था॥ २२-२३॥

उस समय पवनका चलना भी बन्द हो गया, सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गयी और पर्वत एवं वन-काननोंसहित सारी पृथ्वी काँप उठी॥ २४॥

इसी बीच हिमालय आदि सभी प्रमुख पर्वत स्नेहाभिभूत होकर कुमारकी रक्षाके लिये वहाँ पहुँचे॥ २५॥

तब शंकर एवं पार्वतीके पुत्र कार्तिकेयने उन सभी

पर्वतोंको भयभीत देखकर समझाते हुए कहा— ॥ २६ ॥

कुमार बोले—हे महाभाग पर्वतो! आपलोग खेद मत करें और चिन्ता मत करें। मैं आप सभीके देखते-देखते इस पापीका वध करूँगा ॥ २७ ॥

इस प्रकार उन्होंने पर्वतों, गणों तथा देवताओंको ढाँढस देकर गिरिजा एवं शम्भुको प्रणाम करके अत्यन्त देदीप्यमान शक्तिको हाथमें लिया। उस तारकको मारनेकी इच्छावाले शम्भुपुत्र महावीर महाप्रभु कुमार हाथमें शक्ति लिये हुए उस समय अद्भुत शोभा पा रहे थे ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार शंकरजीके तेजसे सम्पन्न कुमार कार्तिकेयने लोकको क्लेश देनेवाले उस तारकासुरपर उस शक्तिसे प्रहार किया। तब सभी असुरगणोंका अधिपति महावीर तारक नामक असुर सहसा छिन्न-भिन्न अंगोंवाला होकर उसी क्षण पृथ्वीपर गिर पड़ा। हे मुने! कार्तिकेयने इस प्रकार उस असुरका वध किया और वह भी सबके देखते-देखते वहींपर लयको प्राप्त हो गया ॥ ३०—३२ ॥

महाबलवान् तारकको रणभूमिमें गिरा हुआ देखकर वीर कार्तिकेयने पुन: उस प्राणविहीनपर प्रहार नहीं किया। तब उस तारक नामक महाबली महादैत्यकी मृत्यु हो जानेपर देवगणोंने असुरोंको विनष्ट कर दिया ॥ ३३-३४ ॥

कुछ युद्धमें भयभीत होकर हाथ जोड़ने लगे, कुछ छिन्न-भिन्न अंगोंवाले हुए और हजारों दैत्य मृत्युको प्राप्त हो गये। शरणकी इच्छावाले कुछ दैत्य हाथ जोड़कर 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा कहते हुए कुमारकी शरणमें चले गये ॥ ३५-३६ ॥

कुछ मारे गये, कुछ भाग खड़े हुए और कुछ भागते समय देवताओंके द्वारा मारे जानेसे पीड़ित हो गये ॥ ३७ ॥

जीनेकी इच्छावाले हजारों दैत्य पाताललोकमें प्रविष्ट हो गये और कुछ दीनतापूर्वक निराश होकर भाग गये ॥ ३८ ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार सम्पूर्ण दैत्यसेना विनष्ट हो गयी। उस समय देवताओं तथा गणोंके भयसे कोई भी असुर वहाँ रुक न सका ॥ ३९ ॥

उस दुरात्माके मारे जानेपर सभी लोग निष्कण्टक हो गये और इन्द्रादि वे सभी देवता आनन्दमग्न हो गये ॥ ४० ॥

इस प्रकार विजयको प्राप्त करनेवाले कुमार कार्तिकेयको देखकर सभी देवता एक साथ प्रसन्न हो उठे एवं सारा त्रैलोक्य महासुखी हो गया ॥ ४१ ॥

उस समय [भगवान्] शंकर भी कार्तिकेयकी विजयका समाचार सुनकर अपने गणों तथा पार्वतीके साथ प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आ पहुँचे ॥ ४२ ॥

स्नेहसे भरी हुई पार्वतीजी सूर्यके समान तेजस्वी अपने पुत्र कुमारको अपनी गोदीमें लेकर अत्यन्त प्रीतिपूर्वक लाड़-प्यार करने लगीं ॥ ४३ ॥

उसी समय अपने बन्धुओं, अनुचरों और पुत्रोंसहित हिमालय भी वहाँ आकर शंकर, पार्वती तथा कुमारकी स्तुति करने लगे ॥ ४४ ॥

तदनन्तर सभी देवता, मुनि, सिद्ध एवं चारण शिव, शिवा एवं कुमारकी स्तुति करने लगे ॥ ४५ ॥

देवादिकोंने [आकाशमण्डलसे] पुष्पोंकी वर्षा की, गन्धर्वपति गान करने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ ४६ ॥

उस समय विशेष रूपसे बाजे बजने लगे और ऊँचे स्वरसे जयशब्द तथा नम:शब्दका उच्चारण बारंबार होने लगा। तब मेरे साथ भगवान् विष्णु विशेष रूपसे प्रसन्न हुए और उन्होंने आदरपूर्वक शिव, शिवा एवं कुमारकी स्तुति की। इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवता, मुनि तथा अन्यलोग कुमारको आगेकर प्रेमपूर्वक उनकी आरती उतारने लगे ॥ ४७—४९ ॥

उस समय गीत-बाजेके शब्दसे तथा वेदध्वनिके उद्घोषसे महान् उत्सव होने लगा और विशेष रूपसे स्थान-स्थानपर कीर्तन होने लगा ॥ ५० ॥

हे मुने! उस समय प्रसन्न समस्त देवगणोंने हाथ जोड़कर गीत-वाद्योंसे भगवान् शंकरकी स्तुति की ॥ ५१ ॥

उसके बाद सबके द्वारा स्तुत तथा अपने गणोंसे घिरे हुए भगवान् रुद्र जगज्जननी भवानीके साथ अपने [निवासस्थान] कैलासपर्वतपर चले गये ॥ ५२ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें तारकासुरवध तथा देवताओंका उत्सववर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

कार्तिकेयद्वारा बाण तथा प्रलम्ब आदि असुरोंका वध, कार्तिकेयचरितके श्रवणका माहात्म्य

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इसी बीच बाण नामके राक्षससे पीड़ित होकर क्रौंच नामका एक पर्वत कुमार कार्तिकेयकी शरणमें वहाँपर आया। वह बाण नामक राक्षस तारक-संग्रामके समय कुमारका ऐश्वर्यशाली तेज सहन न कर पानेके फलस्वरूप दस हजार सैनिकोंके साथ भाग गया था, वही क्रौंचको अतिशय दुःख देने लगा॥ १-२॥

वह क्रौंच पर्वत भक्तिपूर्वक कुमारके चरणकमलोंमें प्रणाम करके प्रेममयी वाणीसे आदरपूर्वक कार्तिकेयकी स्तुति करने लगा॥ ३॥

क्रौंच बोला—हे कुमार! हे स्कन्द! हे देवेश! हे तारकासुरका नाश करनेवाले! बाण नामक दैत्यसे पीड़ित मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये॥ ४॥

हे महासेन! वह बाण [तारकासुरके संग्राममें] आपसे भयभीत होकर भाग गया था। हे नाथ! हे करुणाकर! वह आकर अब मुझे पीड़ित कर रहा है॥ ५॥

हे देवेश! उसी बाणसे पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखित मैं भागता हुआ आपकी शरणमें आया हूँ। हे शरजन्मन्! दया कीजिये। हे विभो! उस बाण नामक राक्षसका नाश कीजिये और मुझे सुखी कीजिये; आप विशेष रूपसे दैत्योंको मारनेवाले, देवरक्षक तथा स्वराट् हैं॥ ६-७॥

ब्रह्माजी बोले—जब क्रौंचने इस प्रकार कुमारकी स्तुति की, तब भक्तपालक वे कार्तिकेय प्रसन्न हुए और उन्होंने हाथमें अपनी अनुपम शक्ति लेकर मनमें शिवजीका स्मरण किया। इसके बाद उन शिवपुत्रने बाणको लक्ष्य करके उसे छोड़ दिया। उससे महान् शब्द हुआ और आकाश एवं दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं॥ ८-९॥

हे मुने! क्षणमात्रमें ही सेनासहित उस असुरको जलाकर वह परम शक्ति पुनः कुमारके पास लौट आयी। उसके बाद प्रभु कार्तिकेयने उस क्रौंच नामक पर्वतश्रेष्ठसे कहा—अब तुम निडर होकर अपने घर जाओ, सेनासहित उस असुरका अब नाश हो गया॥ १०-११॥

तब स्वामी कार्तिकेयका वह वचन सुनकर पर्वतराज प्रसन्न हो गया और कुमारकी स्तुतिकर अपने स्थानको चला गया। हे मुने! उसके बाद कार्तिकेयने प्रसन्न होकर उस स्थानपर महेश्वरके पापनाशक तीन लिंग विधिपूर्वक आदरके साथ स्थापित किये, उन तीनों लिंगोंमें प्रथमका नाम प्रतिज्ञेश्वर, दूसरेका नाम कपालेश्वर और तीसरेका नाम कुमारेश्वर है—ये तीनों सभी सिद्धियाँ देनेवाले हैं। इसके बाद उन सर्वेश्वरने वहींपर जय-स्तम्भके सन्निकट स्तम्भेश्वर नामक लिंगको प्रसन्नतापूर्वक स्थापित किया॥ १२—१५॥

इसके बाद वहींपर विष्णु आदि सभी देवगणोंने भी प्रसन्नतापूर्वक देवाधिदेव शिवके लिंगकी स्थापना की॥ १६॥

[वहाँपर स्थापित] उन सभी लिंगोंकी बड़ी विचित्र महिमा है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली तथा भक्ति करनेवालोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली है॥ १७॥

तब प्रसन्नचित्तवाले विष्णु आदि समस्त देवगण कार्तिकेयको आगेकर कैलास पर्वतपर जानेका विचार करने लगे। उसी समय शेषका कुमुद नामक पुत्र दैत्योंसे पीड़ित होकर कुमारकी शरणमें आया॥ १८-१९॥

प्रलम्ब नामक प्रबल असुर, जो इसी युद्धसे भाग गया था, वह तारकासुरका अनुगामी वहाँ उपद्रव करने लगा। नागराज शेषका वह कुमुद नामक पुत्र अत्यन्त महान् था, जो कुमारकी शरणमें प्राप्त होकर उन गिरिजापतिपुत्रकी स्तुति करने लगा॥ २०-२१॥

कुमुद बोला—हे देवदेव! हे महादेवके श्रेष्ठ पुत्र! हे तात! हे महाप्रभो! मैं प्रलम्बासुरसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आया हूँ। हे कुमार! हे स्कन्द! हे देवेश! हे तारकशत्रो! हे महाप्रभो! आप प्रलम्बासुरसे पीड़ित हुए मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। आप दीनबन्धु, करुणासागर, भक्तवत्सल, दुष्टोंको दण्डित करनेवाले, शरणदाता तथा सज्जनोंकी गति हैं॥ २२—२४॥

जब कुमुदने इस प्रकार स्तुति की तथा दैत्यके वधके लिये निवेदन किया, तब उन्होंने शंकरके

चरणकमलोंका ध्यानकर अपनी शक्ति हाथमें ली॥ २५॥

गिरिजापुत्रने प्रलम्बको लक्ष्य करके शक्ति छोड़ी। उस समय महान् शब्द हुआ और सभी दिशाएँ तथा आकाश जलने लगे। अद्भुत कर्म करनेवाली वह शक्ति दस हजार सेनाओंसहित उस प्रलम्बको शीघ्र जलाकर कार्तिकेयके पास सहसा आ गयी। तदनन्तर कुमारने शेषपुत्र कुमुदसे कहा—वह असुर अपने अनुचरोंके सहित मार डाला गया, अब तुम निडर होकर अपने घर जाओ॥ २६—२८॥

तब नागराजका पुत्र कुमुद कुमारका वह वचन सुनकर उनकी स्तुतिकर उन्हें प्रणाम करके प्रसन्न होकर पातालको चला गया॥ २९॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने आपसे कुमारकी विजय, उनके चरित्र तथा परमाश्चर्यकारक तारकवधका वर्णन कर दिया। यह [आख्यान] सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाला दिव्य तथा मनुष्योंकी समस्त कामनाको पूर्ण करनेवाला, धन्य, यशस्वी बनानेवाला, आयुको बढ़ानेवाला और सज्जनोंको भोग तथा मुक्ति प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य कुमारके इस दिव्य चरित्रका कीर्तन करते हैं, वे महान् यशवाले तथा महाभाग्यसे युक्त होते हैं और [अन्तमें] शिवलोकको जाते हैं। जो मनुष्य श्रद्धा और भक्तिके साथ उनकी इस कीर्तिको सुनेंगे, वे इस लोकमें परम सुख भोगकर अन्तमें दिव्य मुक्ति प्राप्त करेंगे॥ ३०—३३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें बाणप्रलम्बवध तथा कुमारविजयवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

विष्णु आदि देवताओं तथा पर्वतोंद्वारा कार्तिकेयकी स्तुति और वरप्राप्ति, देवताओंके साथ कुमारका कैलासगमन, कुमारको देखकर शिव-पार्वतीका आनन्दित होना, देवोंद्वारा शिवस्तुति

ब्रह्माजी बोले—तारकको मृत देखकर विष्णु आदि देवता तथा अन्य सभी लोग प्रसन्नमुख होकर भक्तिपूर्वक कुमारकी स्तुति करने लगे॥ १॥

देवता बोले—कल्याणरूप आपको नमस्कार है। हे विश्वमंगल! आपको नमस्कार है। हे विश्वबन्धो! हे विश्वभावन! आपको नमस्कार है॥ २॥

बड़े-बड़े दैत्योंका वध करनेवाले, बाणासुरके प्राणका हरण करनेवाले तथा प्रलम्बासुरका वध करनेवाले हे देव! आपको नमस्कार है। हे शंकरपुत्र! आप पवित्ररूपको बार-बार नमस्कार है। हे अग्निदेवके पुत्र! आप ही इस जगत्के कर्ता, भर्ता तथा हर्ता हैं। आप [हमलोगोंपर] प्रसन्न हों। यह लोकबिम्ब आपका ही प्रपंच है, हे शम्भुपुत्र! हे दीनबन्धो! आप प्रसन्न होइये॥ ३-४॥

हे देवरक्षक! हे स्वामिन्! हे प्रभो! हमलोगोंकी सर्वदा रक्षा कीजिये। हे देवताओंके प्राणकी रक्षा करनेवाले! हे करुणाकर! प्रसन्न होइये॥ ५॥

हे विभो! हे परमेश्वर! आपने परिवारयुक्त तारकासुरका वधकर सभी देवताओंको विपदाओंसे मुक्त कर दिया॥ ६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! इस प्रकार विष्णु आदि देवताओंने उन कुमारकी स्तुति की, तब उन्होंने सभी देवताओंको क्रमशः नवीन-नवीन वर दिये। इसके बाद उन शिवपुत्रने स्तुति करते हुए पर्वतोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हुए कहा—॥ ७-८॥

स्कन्द बोले—तुम सभी पर्वत तपस्वियों, कर्मकाण्ड करनेवालों तथा ज्ञानियोंसे सदा पूजित तथा सेवित रहोगे। हे पर्वतो! मेरे वचनसे तुमलोग शिवके विशिष्टरूप तथा उनके लिंगरूपसे प्रतिष्ठित रहोगे, इसमें सन्देह नहीं है। ये पर्वतोत्तम महाभाग, जो मेरे नाना हिमालय हैं, वे तपस्वियोंको फल देनेवाले होंगे॥ ९—११॥

देवता बोले—इस प्रकार आपने असुराधिपति तारकका वधकर तथा वर देकर चराचरसहित हम सभीको सुखी किया है। अब आप अपने माता-पिता पार्वती तथा शिवका दर्शन करनेके लिये प्रेमपूर्वक शिवजीके घर कैलासके लिये प्रस्थान कीजिये॥ १२-१३॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर विष्णु आदि सभी देवता कार्तिकेयकी आज्ञासे बहुत बड़ा महोत्सवकर

कुमारको लेकर कैलासकी ओर चले॥ १४॥

सर्वव्यापक कार्तिकेयके कैलासकी ओर प्रस्थान करनेपर महामंगल दिखायी पड़ने लगा और जय-जयकारका शब्द होने लगा॥ १५॥

वे कुमार सम्पूर्ण ऋद्धियोंसे युक्त, सभी ओरसे अलंकृत, मनोहर तथा सर्वोपरि विराजमान विमानपर चढ़े॥ १६॥

हे मुने! अति प्रसन्न मैं और विष्णु बड़ी सावधानीसे प्रेमपूर्वक उनके ऊपर चामर डुलाने लगे और इन्द्रादि सभी देवता चारों ओरसे प्रीतिपूर्वक कुमारकी यथायोग्य सेवा करते हुए चलने लगे॥ १७-१८॥

इस प्रकार वे सभी शिवजीके लिये जय-जयकार शब्दका उच्चारण करते हुए मंगलध्वनिपूर्वक बड़े आनन्दके साथ कैलासपर्वतपर पहुँचे॥ १९॥

विष्णु आदि सभी लोग वहाँ शिवा-शिवका दर्शनकर शीघ्रतासे उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणामकर हाथ जोड़कर उनके सम्मुख सिर झुकाये हुए खड़े हो गये॥ २०॥

विनीतात्मा कुमारने भी विमानसे उतरकर सिंहासनपर विराजमान पार्वतीजीको तथा शिवजीको प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया। हे नारद! तब अपने प्राणप्रिय उस पुत्र कुमारको देखकर वे दोनों दम्पती शिव-पार्वती बहुत ही प्रसन्न हुए॥ २१-२२॥

महाप्रभुने उन्हें उठाकर गोदमें बैठाया, उनका प्रसन्नतापूर्वक सिर सूँघा और स्नेहपूर्वक हाथसे उनका स्पर्श किया। शिवजीने अत्यधिक आनन्दविभोर हो तारकासुरके शत्रु उन महाप्रभु कुमारका मुख चूमा॥ २३-२४॥

इसी प्रकार पार्वतीने भी उनको उठाकर गोदमें ले लिया और उनका माथा सूँघकर मुखमण्डल चूमा॥ २५॥

हे तात नारद! इस समय लौकिक आचार करते हुए उन पति-पत्नी शिव-पार्वतीको महान् आनन्द हुआ॥ २६॥

उस समय शिवजीके घरमें अनेक प्रकारके महान् उत्सव होने लगे और चारों ओर जय-जयकार एवं नमः शब्द होने लगा। उसके बाद हे मुने! वे विष्णु आदि सभी देवता एवं मुनिगण प्रसन्नतापूर्वक शिवजीको प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे॥ २७-२८॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले प्रभो! आपको नमस्कार है, हे महेश्वर! आप हमलोगोंपर कृपा कीजिये। हे महादेव! हे शंकर! हे दीनबन्धो! हे महाप्रभो! आपकी लीला अद्भुत है तथा सभी सज्जनोंको सुख देनेवाली है॥ २९-३०॥

हे प्रभो! हम मूर्खबुद्धि तथा अज्ञानी लोग पूजनमें आपके सनातन आवाहनको तथा आपकी अद्भुत गतिको नहीं जानते हैं। गंगाजलको धारण करनेवाले, सबके आधार, गुणस्वरूप, आप देवेश्वरको नमस्कार है। आप शंकरको बारंबार नमस्कार है। आप वृषभध्वज, महेश्वर, गणाधिपतिको नमस्कार है। आप सर्वेश्वर एवं त्रिलोकपति देवको नमस्कार है। हे नाथ! हे देवेश! सभी लोकोंका संहार करनेवाले, सृष्टिकर्ता, पोषण करनेवाले, त्रिगुणेश तथा शाश्वत आपको नमस्कार है॥ ३१—३४॥

निःसंग, परमेश्वर, शिव, परमात्मा, निष्प्रपंच, शुद्ध, परम, अव्यय, हाथमें दण्ड धारण करनेवाले, कालस्वरूप, हाथमें पाश धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। वेदमन्त्रोंमें प्रधान तथा सैकड़ों जीभवाले आपको नमस्कार है॥ ३५-३६॥

हे परमेश्वर! भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों काल तथा स्थावर-जंगमात्मक जो भी है, वह सर्वथा आपके विग्रहसे उत्पन्न हुआ है। हे स्वामिन्! हे भगवन्! हे प्रभो! हमलोगोंपर प्रसन्न होइये और सर्वदा हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। हे परमेश्वर! हमलोग सभी प्रकारसे आपके शरणागत हैं॥ ३७-३८॥

शितिकण्ठ, रुद्र एवं स्वाहाकाररूपवाले आपको

नमस्कार है। निराकार, साकार एवं विश्वरूपवाले आपको नमस्कार है। शिव, नीलकण्ठ, अंगमें सदा चिताकी भस्म धारण करनेवाले, नीलशिखण्ड एवं श्रीकण्ठ आपको बार-बार नमस्कार है॥ ३९-४०॥

सबके द्वारा प्रणम्य देहवाले, संयम धारण करनेवालों-पर कृपा करनेवाले, महादेव, सबके संहारकारक तथा सभीके द्वारा पूजित चरणवाले आपको नमस्कार है॥ ४१॥

आप सभी देवगणोंमें ब्रह्मा हैं, रुद्रोंमें नीललोहित हैं तथा सभी जीवधारियोंमें आत्मा हैं। सांख्यमतावलम्बी आपको पुरुष कहते हैं। आप पर्वतोंमें सुमेरु, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, ऋषियोंमें वसिष्ठ तथा देवोंमें इन्द्र हैं॥ ४२-४३॥

आप सभी वेदोंमें ॐकारस्वरूप हैं। हे महेश्वर! हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। आप लोकहितके लिये प्राणियोंका पालन करते हैं। हे महेश्वर! हे महाभाग! हे शुभाशुभको देखनेवाले! हे देवेश! आपकी आज्ञा पालन करनेवाले हम देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ४४-४५॥

हमलोग आपके सहस्रकोटि तथा शतकोटिस्वरूपका अन्त पानेमें समर्थ नहीं हैं। हे देवदेव! आपको नमस्कार है॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार विष्णु आदि समस्त देवता स्तुति करके बारंबार शिवजीको प्रणामकर उनके सम्मुख खड़े हो गये॥ ४७॥

देवगणोंकी स्तुति सुनकर सर्वेश्वर स्वराट् दयालु शिव प्रसन्न हो गये और हँसने लगे॥ ४८॥

इसके बाद प्रसन्न होकर वे दीनबन्धु, परमेश्वर, सत्पुरुषोंको गति देनेवाले भगवान् शंकर विष्णु आदि देवताओंसे कहने लगे—॥ ४९॥

शिवजी बोले—हे हरे! हे विधे! हे देवगणो! आपलोग आदरपूर्वक मेरा वचन सुनें, मैं सब प्रकारसे सज्जनोंका रक्षक, आप देवगणोंके लिये दयानिधि, दुष्टोंका संहार करनेवाला, त्रिलोकेश, सबका कल्याण करनेवाला, भक्तवत्सल, सबका कर्ता-भर्ता-हर्ता एवं विकाररहित हूँ। देवसत्तमो! जब-जब आपलोगोंपर विपत्ति आये, तब-तब सुखप्राप्तिके लिये आपलोग मेरा भजन किया करें॥ ५०—५२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! उसके बाद मुनीश्वरोंसहित विष्णु आदि देवता शिवजीकी आज्ञा लेकर पार्वती, परमेश्वर एवं कुमारको प्रणामकर प्रसन्न होकर पार्वती-शिव एवं कुमारके रम्य यशका वर्णन करते हुए परम आनन्द प्राप्तकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ५३-५४॥

हे मुने! शिवजी भी अपने गणों, कुमार कार्तिकेय एवं पार्वतीके साथ प्रीतिपूर्वक आनन्दित होकर उस पर्वतपर निवास करने लगे। हे मुने! इस प्रकार मैंने कुमार कार्तिकेयका तथा शिवजीका सम्पूर्ण चरित, जो सुख प्रदान करनेवाला तथा दिव्य है, आपलोगोंसे कह दिया, अब और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें स्वामिकार्तिकचरित-गर्भितशिवाशिवचरितवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

गणेशोत्पत्तिका आख्यान, पार्वतीका अपने पुत्र गणेशको अपने द्वारपर नियुक्त करना, शिव और गणेशका वार्तालाप

सूतजी बोले—तारकके शत्रु कुमारके अद्भुत तथा उत्तम चरित्रको सुनकर प्रसन्न हुए नारदजीने ब्रह्माजीसे प्रीतिपूर्वक पूछा॥ १॥

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे प्रजानाथ! हे शिवज्ञाननिधे! मैंने आपसे कार्तिकेयका अमृतसे भी उत्तम चरित्र सुना। अब मैं गणेशजीका उत्तम चरित्र सुनना चाहता हूँ। उनका जन्म एवं चरित्र [अत्यन्त] दिव्य तथा सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाला है॥ २-३॥

सूतजी बोले—उन महामुनि नारदका यह वचन सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्नचित्त हो गये और शिवजीका स्मरण करते हुए कहने लगे—॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—कल्पके भेदसे गणेशजीका जन्म

ब्रह्माजीसे भी पहले कहा गया है। एक समय शनिकी दृष्टि पड़नेसे उनका सिर कट गया और उसपर हाथीका सिर जोड़ दिया गया। अब मैं श्वेतकल्पमें जिस प्रकार गणेशजीका जन्म हुआ था, उसे कह रहा हूँ, जिसमें कृपालु शंकरजीके द्वारा उनका शिरश्छेदन किया गया था॥ ५-६॥

हे मुने! शंकरजी सृष्टिकर्ता हैं, इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। वे सबके स्वामी हैं, वे शिव सगुण होते हुए भी निर्गुण हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! उनकी लीलासे ही इस विश्वका सृजन, पालन तथा संहार होता है। अब आदरपूर्वक प्रस्तुत चरित्र सुनिये॥ ७-८॥

शिवजीके विवाहके उपरान्त कैलास चले जानेपर कुछ समयके बाद गणेशजीका जन्म हुआ॥ ९॥

किसी समय पार्वतीकी सखियाँ जया तथा विजया पार्वतीके साथ मिलकर विचार करने लगीं॥ १०॥

शिवजीकी आज्ञामें रहनेवाले नन्दी, भृंगी आदि अनेक और असंख्य प्रमथगण हैं। यद्यपि वे हमारे भी गण हैं, फिर भी शंकरकी आज्ञाका पालन करनेवाले वे सभी द्वारपर स्थित रहते हैं, स्वतन्त्ररूपसे हमारा कोई भी गण नहीं है। यद्यपि वे सब हमारे भी हैं, किंतु हमारा मन उनसे नहीं मिलता है, इसलिये हे अनघे! हमारा भी कोई स्वतन्त्र गण होना चाहिये, अतः आप ऐसे एक गणकी रचना कीजिये॥ ११—१३॥

ब्रह्माजी बोले—जब सखियोंने यह उत्तम वचन पार्वतीसे कहा, तब उन्होंने उसमें अपना हित मान लिया और वे वैसा करनेका प्रयत्न करने लगीं॥ १४॥

इसके बाद किसी समय जब पार्वतीजी स्नान कर रही थीं, उसी समय [द्वारपर बैठे] नन्दीको डाँटकर शंकरजी भीतर चले आये॥ १५॥

शिवजीको असमयमें आता हुआ देखकर स्नान करती हुई वे सुन्दरी जगदम्बा लज्जित होकर उठ गयीं॥ १६॥

उस समय अत्यन्त कौतुकसे युक्त पार्वतीको सखियोंके द्वारा कहा गया वह वचन अत्यन्त हितकारी तथा सुखदायक प्रतीत हुआ। इसके बाद कुछ समय बीतनेपर परमाया परमेश्वरी पार्वतीने मनमें विचार किया कि मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिये, जो श्रेष्ठ हो तथा योग्य हो और मेरी आज्ञाके बिना रेखामात्र भी इधर-से-उधर विचलित न हो॥ १७—१९॥

इस प्रकार विचारकर उन देवीने अपने शरीरके मैलसे सर्वलक्षणसम्पन्न, शरीरके सभी अवयवोंसे सर्वथा निर्दोष, समस्त सुन्दर अंगोंवाले, विशाल, सर्वशोभा-सम्पन्न एवं महाबली तथा पराक्रमी पुरुषका निर्माण किया॥ २०-२१॥

पार्वतीने उसे नाना प्रकारके वस्त्र, अनेक प्रकारके अलंकार तथा अनेक उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—तुम मेरे पुत्र हो, तुम्हीं मेरे हो और यहाँ कोई दूसरा मेरा नहीं है। इस प्रकार कहे जानेपर उस पुरुषने पार्वतीको नमस्कारकर कहा—॥ २२-२३॥

गणेशजी बोले—आपका क्या कार्य है? मैं आपके द्वारा आदिष्ट कार्यको पूरा करूँगा। तब उनके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर पार्वतीने पुत्रसे कहा—॥ २४॥

शिवा बोलीं—हे तात! मेरे वचनको सुनो। तुम आज मेरे द्वारपाल बनो, तुम मेरे पुत्र हो, केवल तुम्हीं मेरे हो, तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ मेरा कोई नहीं है॥ २५॥

हे सत्पुत्र! मेरी आज्ञाके बिना कोई भी मेरे घरके भीतर किसी प्रकार हठसे भी न जाने पाये। हे तात! यह मैंने तुमसे सत्य कह दिया॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! पार्वतीने इस प्रकार कहकर एक अत्यन्त दृढ़ लाठी उसे दी और उस बालकके सुन्दर रूपको देखकर वे हर्षित हो गयीं॥ २७॥

उन्होंने प्रेमसे उस पुत्रका मुख चूमकर उसका

आलिंगन करके हाथमें लाठी लिये हुए उन गणेशको अपने द्वारपर नियुक्त कर दिया। हे तात! इस प्रकार वह महावीर देवीपुत्र गण पार्वती माताकी रक्षाके लिये हाथमें लाठी लिये हुए द्वारपर पहरा देने लगा॥ २८-२९॥

एक समय अपने पुत्र उन गणेश्वरको द्वारपर नियुक्तकर वे पार्वती सखियोंके साथ स्नान करने लगीं। हे मुनिश्रेष्ठ! इसी समय परम कौतुकी तथा अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेमें प्रवीण वे शिवजी भी द्वारपर आ पहुँचे॥ ३०-३१॥

तब गणेशने उन शिवजीको बिना पहचाने कहा—हे देव! इस समय माताकी आज्ञाके बिना आप भीतर नहीं जा सकते। माताजी स्नान कर रही हैं, कहाँ चले जा रहे हैं? इस समय यहाँसे चले जाइये—इस प्रकार कहकर गणेशने उन्हें रोकनेके लिये अपनी लाठी उठा ली॥ ३२-३३॥

उसे देखकर शिवजी बोले—हे मूर्ख! तुम किसे मना कर रहे हो, हे दुर्बुद्धे! तुम मुझे नहीं जानते, मैं शिव हूँ, कोई दूसरा नहीं। इसपर गणेशने लाठीसे शिवजीपर प्रहार किया, तब बहुत लीला करनेवाले शिवजीने कुपित होकर पुत्रसे कहा—॥ ३४-३५॥

शिवजी बोले—हे बालक! तुम मूर्ख हो, तुम मुझे नहीं जानते हो। मैं पार्वतीका पति शिव हूँ, हे बालक! मैं तो अपने ही घर जा रहा हूँ, तुम मुझे मना क्यों करते हो?॥ ३६॥

ब्रह्माजी बोले—हे विप्र! ऐसा कह घरमें प्रवेश करते हुए उन शंकरजीपर गणनायक गणेशने क्रोध करते हुए पुनः डण्डेसे प्रहार किया। तब अत्यन्त कुपित हुए शिवजीने अपने गणोंको आज्ञा दी—हे गणो! देखो, यह कौन है और यहाँ क्या कर रहा है?॥ ३७-३८॥

ऐसा कहकर लोकाचारमें तत्पर रहनेवाले तथा अनेक अद्भुत लीलाएँ करनेवाले शिवजी महाक्रोधमें भरकर घरके बाहर ही स्थित रहे॥ ३९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशोत्पत्तिवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

द्वाररक्षक गणेश तथा शिवगणोंका परस्पर विवाद

ब्रह्माजी बोले—तब उन गणोंने क्रुद्ध हो शिवजीकी आज्ञासे वहाँ जाकर उन द्वारपाल गिरिजापुत्रसे पूछा॥ १॥

शिवगण बोले—तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और यहाँ क्या करना चाहते हो? यदि जीना चाहते हो तो यहाँसे शीघ्र ही दूर चले जाओ॥ २॥

ब्रह्माजी बोले—उनका वह वचन सुनकर हाथमें लाठी लिये हुए गिरिजापुत्रने निडर होकर उन द्वाररक्षक गणोंसे कहा—॥ ३॥

गणेशजी बोले—आपलोग कौन हैं और कहाँसे आये हैं? आपलोग तो बहुत ही सुन्दर हैं, शीघ्र ही यहाँसे दूर हो जाइये, विरोध करनेके लिये यहाँ क्यों स्थित हैं?॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार उनके वचनको सुनकर शिवजीके सभी महावीर गणोंने आश्चर्यचकित होकर परस्पर हास्य करके कहा॥ ५॥

शिवजीके उन पार्षदोंने आपसमें बातें करके कुपितमन होकर उन द्वारपाल गणेशजीसे कहा—॥ ६॥

शिवगण बोले—सुनिये, हम सब शिवजीके श्रेष्ठ गण ही यहाँके द्वारपाल हैं। हम उन विभु शंकरकी आज्ञासे तुम्हें यहाँसे हटानेके लिये आये हैं॥ ७॥

तुमको भी एक गण समझकर हम तुम्हारा वध नहीं करते। अन्यथा तुम मार दिये गये होते। तुम स्वयं यहाँसे हट जाओ, क्यों मरना चाहते हो?॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार कहे जानेके बाद भी गिरिजापुत्र निर्भय गणेश शंकरगणोंको बहुत फटकारकर द्वारसे नहीं हटे। तब वहाँके उन सम्पूर्ण शिवगणोंने भी गणेशजीका वचन सुनकर शिवजीके पास जाकर उस वृत्तान्तको निवेदित किया। हे मुने! तब अद्भुत लीला करनेवाले महेश्वर उस वचनको सुनकर अपने गणोंको डाँटकर लौकिक गतिका आश्रय लेकर कहने लगे—॥ ९—११॥

महेश्वर बोले—हे गणो! यह कौन है? जो

शत्रुके समान इतना उच्छृंखल होकर बातें करता है, यह असद्बुद्धि क्या करेगा, निश्चय ही यह अपनी मृत्यु चाहता है॥ १२॥

इस नवीन द्वारपालको शीघ्र ही यहाँसे दूर करो, तुमलोग कायरोंकी भाँति खड़े होकर उसका समाचार मुझसे क्यों कह रहे हो? अद्भुत लीला करनेवाले शंकरके ऐसा कहनेपर उन गणोंने पुनः वहींपर आकर उन द्वारपाल गणेशसे कहा—॥ १३-१४॥

शिवगण बोले—हे द्वारपाल! तुम कौन हो और किसके द्वारा नियुक्त होकर यहाँ स्थित हो, तुमको हमलोगोंकी कोई परवाह नहीं है, यहाँ रहकर कैसे जीना चाहते हो?॥ १५॥

द्वारपाल तो हमलोग हैं, तुम किस प्रकार अपनेको द्वारपाल कहते हो, शेरके आसनपर बैठकर सियार किस प्रकार अपने कल्याणकी इच्छा कर सकता है?॥ १६॥

हे मूर्ख! तुम तभीतक गर्जना कर रहे हो, जबतक तुम शिवगणोंके पराक्रमका अनुभव नहीं कर लेते हो। अभी जब तुम अनुभव कर लोगे, तब धराशायी हो जाओगे॥ १७॥

तब उनके द्वारा कहे गये इस वचनको सुनकर गणेशजी दोनों हाथमें लाठी लेकर ऐसा बोलनेवाले उन गणोंको मारने लगे। तदनन्तर शिवापुत्र गणेशने निडर होकर शंकरके महावीर गणोंको घुड़ककर कहा—॥ १८-१९॥

पार्वतीपुत्र बोले—जाओ, जाओ, यहाँसे दूर चले जाओ, अन्यथा मैं तुमलोगोंको प्रचण्ड पराक्रम दिखाऊँगा, जिससे तुमलोग उपहासास्पद हो जाओगे॥ २०॥

तब उन गिरिजापुत्रकी यह बात सुनकर शंकरके वे गण आपसमें कहने लगे॥ २१॥

शिवगण बोले—अब हमें क्या करना चाहिये, कहाँ जाना चाहिये। कहनेपर भी यह हमारी बात नहीं मानता। हमलोग तो मर्यादाकी रक्षा करते हैं, इसने ऐसी बात किस प्रकार कही॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—तब शिवके सभी गणोंने कैलाससे एक कोसकी दूरीपर स्थित शंकरजीसे जाकर वह सब कहा—तब हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए उग्रबुद्धि परमेश्वर शिवजीने हँसकर वीरमानी अपने उन गणोंसे कहा—॥ २३-२४॥

शिवजी बोले—हे गणो! तुमलोग कायर हो, वीरमानी वीर नहीं, मेरे सामने तुमलोग ऐसा कहनेके योग्य नहीं हो, डाँटे जानेपर वह पुनः क्या कह सकता है॥ २५॥

तुमलोग जाओ, उसपर प्रहार करो, चाहे वह कोई क्यों न हो, मैं तुमलोगोंसे अधिक क्या कहूँ, चाहे जैसे भी हो, उसे वहाँसे हटाओ॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! जब महेश्वरने अपने श्रेष्ठ गणोंको इस प्रकार फटकारा, तब वे गण पुनः वहाँ गये और बोले—॥ २७॥

शिवगण बोले—अरे बालक! सुनो। तुम हठपूर्वक क्यों व्यर्थ बकवास करते हो, अब तुम यहाँसे दूर चले जाओ, अन्यथा तुम्हारी मृत्यु हो जायगी॥ २८॥

ब्रह्माजी बोले—शिवके आज्ञाकारी उन गणोंका निश्चयपूर्वक वचन सुनकर 'मैं क्या करूँ'—यह सोचकर पार्वतीपुत्र गणेशजी बहुत दुखी हुए॥ २९॥

इसी बीच द्वारपर गणोंका तथा गणेशका कलह सुनकर देवी पार्वतीने अपनी सखीसे कहा—देखो, द्वारपर किस प्रकारका कलह हो रहा है? सखीने वहाँ आकर सारा वृत्तान्त जान लिया और क्षणमात्रमें सब कुछ देखकर प्रसन्न होकर वह पार्वतीके पास गयी। हे मुने! जो कुछ भी घटित हुआ था, वहाँ जाकर उस सखीने वह सब यथार्थ रूपसे पार्वतीके आगे वर्णन किया॥ ३०—३२॥

सखी बोली—हे महेश्वरि! हमारा गण जो द्वारपर स्थित है, उसको शिवजीके वीर गण निश्चित रूपसे धमका रहे हैं। शिव तथा उनके वे सभी गण बिना अवसरके घरमें जबरदस्ती कैसे प्रवेश कर सकते हैं, यह तो आपके लिये शुभतर नहीं है॥ ३३-३४॥

इस बालकने बहुत अच्छा किया, जो इस कार्यके लिये दुःख तथा तिरस्कार आदिका अनुभव करके भी इसने किसीको घरमें आने नहीं दिया। इसके बाद इन लोगोंमें परस्पर विवाद चल रहा है, वाद-विवाद किये जानेपर वे सुखपूर्वक घरमें प्रवेश नहीं कर पायेंगे॥ ३५-३६॥

हे प्रिये! यदि वाद-विवाद किया गया, तो मेरे गणको जीतकर विजय प्राप्त करनेके बाद ही वे घरमें प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। हमारे गणको धमकी देनेसे इन गणोंने हमलोगोंको ही धमकी दी है, इसलिये

हे देवि! हे भद्रे! आपको अपने श्रेष्ठ मानका त्याग नहीं करना चाहिये। हे सति! शिवजी तो बन्दरके समान सदा आपके अधीन हैं, वे अहंकार क्या करेंगे; अवश्य ही वे आपके अनुकूल हो जायँगे॥ ३७—३९॥

ब्रह्माजी बोले—आश्चर्य है कि वे सती पार्वती शिवेच्छासे क्षणभर वहाँ रुक गयीं और वे मानिनी होकर अपने मनमें कहने लगीं॥ ४०-४१॥

शिवा बोलीं—अहो, यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि शिवके गण क्षणमात्र भी रुक नहीं सके। इस प्रकार प्रवेशका हठ उन लोगोंने कैसे ठान लिया! अब इस निमित्त उनसे विनय अथवा अन्य उपाय करना उचित प्रतीत नहीं हो रहा है। जो होना होगा, वही होगा, मैंने जो कर दिया है, उसे अन्यथा कैसे कर सकती हूँ। ऐसा कहकर प्रिया पार्वतीने अपनी सखीको वहाँ भेजा॥ ४२-४३॥

वह सखी आकर पार्वतीपुत्र गणेशसे प्रिया पार्वतीद्वारा कही गयी बात कहने लगी—॥ ४४॥

सखी बोली—हे भद्र! तुमने बहुत अच्छा किया, ये लोग अब हठपूर्वक घरमें प्रवेश न करें। तुम्हारे सामने ये गण क्या हैं? जो कि तुम्हारे-जैसे गणको जीत लें॥ ४५॥

करनेयोग्य अथवा न करनेयोग्य जो भी कर्तव्य हो, तुम उसे अवश्य करना। जो एक बार जीत लिया जायगा, वह फिर वैर नहीं करेगा॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—उस सखीके द्वारा कहे गये माताके वचनको सुनकर गणेश्वरको परम आनन्द, बल तथा महान् उत्साह प्राप्त हुआ॥ ४७॥

उन्होंने अच्छी तरहसे कमर कस ली और पगड़ी बाँधकर ऊरु तथा जंघापर ताल ठोकते हुए निडर होकर उन सभी गणोंसे प्रसन्नतापूर्वक यह वचन कहा—॥ ४८॥

गणेशजी बोले—मैं पार्वतीका पुत्र हूँ, तुमलोग शिवके गण हो, दोनों ही समान हैं, [हम सभी] अपने-अपने कर्तव्यका पालन करें॥ ४९॥

क्या आप लोग ही द्वारपाल रह सकते हैं, मैं द्वारपाल नहीं रह सकता? यदि आपलोग शिवके द्वारपर स्थित हैं, तो मैं भी यहाँ निश्चित रूपसे स्थित हूँ॥ ५०॥

जब आपलोग यहाँ स्थित रहियेगा, तब आपलोग शिवकी आज्ञाका पालन कीजियेगा। इस समय तो यहाँ मैं पार्वतीकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ। हे वीरो! यह सत्य है; मैंने उचित निर्णय लिया है॥ ५१-५२॥

इसलिये हे शिवगणो! आपलोग मेरा वचन आदरपूर्वक सुन लें, हठसे अथवा विनयसे आपलोगोंको घरके भीतर नहीं जाना चाहिये॥ ५३॥

ब्रह्माजी बोले—गणेश्वरके द्वारा इस प्रकार कहे गये वे सभी शिवगण लज्जित होकर शिवके पास गये और उन्हें प्रणामकर उनके आगे खड़े हो गये॥ ५४॥

खड़े होकर उनलोगोंने वह सारा अद्भुत वृत्तान्त शिवजीसे निवेदन किया। इसके बाद फिर हाथ जोड़कर सिर झुकाये हुए वे शिवजीकी स्तुतिकर उनके आगे खड़े हो गये। तब अपने गणोंके द्वारा कहे गये उस समाचारको सुनकर शिवजी लौकिक व्यवहारका आश्रय लेकर यह वचन कहने लगे—॥ ५५-५६॥

शंकर बोले—हे समस्त गणो! सुनो, युद्ध करना भी उचित नहीं है, क्योंकि तुमलोग हमारे गण हो और वह बालक पार्वतीका गण है। हे गणो! यदि नम्रता प्रदर्शित की जाय, तो संसारमें मेरी यह निन्दनीय प्रसिद्धि होगी कि शिवजी सदा स्त्रीके वशमें रहते हैं और शिवके गण निर्बल हैं। जो जैसा करे, उसके साथ वैसा ही बर्ताव करना चाहिये—यही नीति सर्वश्रेष्ठ है। वह अकेला बालक गण क्या पराक्रम करेगा?॥ ५७—५९॥

तुम सब मेरे गण हो और युद्धमें अत्यन्त कुशल हो, अतः युद्ध छोड़कर तुमलोग लघुताको कैसे प्राप्त होओगे, विशेषरूपसे पतिके आगे स्त्रीको हठ कैसे करना चाहिये। हठ करके वह पार्वती उसका फल अवश्य प्राप्त करेगी। इसलिये हे वीरो! तुम सब मेरी बात आदरपूर्वक सुनो, तुम लोग अवश्य युद्ध करो, जो होनहार है, वह तो होकर ही रहेगा॥ ६०—६२॥

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे मुनिश्रेष्ठ! अनेक प्रकारकी लीलाएँ करनेमें प्रवीण शंकरजी ऐसा कहकर लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए चुप हो गये॥ ६३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणविवादवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

गणेश तथा शिवगणोंका भयंकर युद्ध, पार्वतीद्वारा दो शक्तियोंका प्राकट्य, शक्तियोंका अद्भुत पराक्रम और शिवका कुपित होना

ब्रह्माजी बोले—जब सर्वव्यापक शिवजीने अपने गणोंसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने युद्धका निश्चय कर लिया और कवच आदि धारणकर वे शिवजीके भवनके समीप गये। आये हुए उन श्रेष्ठ गणोंको देखकर युद्धकी तैयारी करके गणेशजी भी वहाँ स्थित गणोंसे यह कहने लगे— ॥ १-२ ॥

गणेशजी बोले—शिवकी आज्ञाका पालन करनेवाले आप सब गण आयें, मैं अकेला बालक होते हुए भी [अपनी माता] पार्वतीकी आज्ञाका पालन करूँगा। तथापि आज देवी पार्वती अपने पुत्रका बल देखें और शंकर अपने गणोंका बल देखें॥ ३-४॥

भवानीके पक्षसे इस बालकका तथा शिवके पक्षसे बलवान् गणोंके बीच आज युद्ध होगा। युद्धमें विशारद आप सभी गण पूर्वकालमें अनेक युद्ध कर चुके हैं, मैं तो अभी बालक हूँ, मैंने कभी युद्ध नहीं किया है, किंतु आज युद्ध करूँगा। फिर भी शिव-पार्वतीके इस युद्धमें हार जानेपर आप सभीको ही लज्जित होना पड़ेगा, बालक होनेके कारण मुझे हार या जीतकी लाज नहीं है, इस युद्धका फल भी मेरे विपरीत ही होगा। मेरी तथा आपलोगोंकी लाज भवानी तथा शंकरकी लाज है॥ ५—७॥

हे गणेश्वरो! ऐसा समझकर ही युद्ध कीजिये। आपलोग अपने स्वामीकी ओर देखकर तथा मैं अपनी माताकी ओर देखकर यह युद्ध करूँगा॥ ८॥

यह युद्ध कैसा होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती, इसे रोकनेमें इस त्रिलोकीमें कोई भी समर्थ नहीं होगा। जो होनहार है, वह भी होकर ही रहेगा॥ ९॥

ब्रह्माजी बोले—जब गणेशने शिवजीके गणोंको इस प्रकार फटकारा, तब वे शिवगण भी हाथोंमें दण्ड तथा अन्य आयुध लेकर आ गये। दाँत कटकटाते हुए हुंकार करते हुए और 'देखो-देखो' ऐसा बारंबार बोलते हुए वे गण आ गये॥ १०-११॥

सर्वप्रथम नन्दीने आकर गणेशका एक पैर खींचा, उसके बाद दौड़ते हुए भृंगी आकर उसका दूसरा पैर पकड़कर खींचने लगा। जबतक वे दोनों उसके पैर घसीट रहे थे, तबतक उस गणेशने अपने हाथोंसे प्रहारकर अपने पैर छुड़ा लिये॥ १२-१३॥

इसके बाद देवीपुत्र गणेश्वरने एक बड़ा परिघ लेकर द्वारपर स्थित हो सभी गणोंको मारना आरम्भ किया। इससे किन्हींके हाथ टूट गये, किन्हींकी पीठ फट गयी, किन्हींके सिर फूट गये और किन्हींके मस्तक कट गये। कुछ गणोंके जानु तथा कुछके कन्धे टूटकर अलग हो गये। जो लोग सामने आये, उन लोगोंके हृदयपर प्रहार किया गया। कुछ पृथ्वीपर गिरे, कुछ ऊर्ध्व दिशाओंमें जा गिरे, कुछके पैर टूट गये और कुछ शिवजीके समीप जा गिरे॥ १४—१७॥

उनमें कोई भी ऐसा गण नहीं था, जो संग्राममें गणेशके सामने दिखायी पड़े। जैसे सिंहको देखकर मृग दसों दिशाओंमें भाग जाते हैं, उसी प्रकार वे हजारों गण भाग गये और वे गणेश पुनः लौटकर द्वारपर स्थित हो गये। जिस प्रकार कल्पान्तके समय काल भयंकर दिखायी पड़ता है, उसी प्रकार उन सभीने गणेशको [कालके समान] प्रलयंकारी देखा॥ १८—२०॥

इसी बीच नारदजीसे प्रेरित होकर विष्णु, इन्द्रसहित सभी देवता वहाँ पहुँच गये॥ २१॥

तब शिवजीकी हितकामनासे उन लोगोंने शिवको नमस्कारकर उनके आगे खड़े होकर कहा—हे प्रभो! हमें आज्ञा दीजिये। आप परब्रह्म सर्वेश हैं और हम सब आपके सेवक हैं, आप सृष्टिके कर्ता, भर्ता और संहर्ता परमेश्वर हैं। आप स्वयं निर्गुण होते हुए भी अपनी लीलासे सत्त्व, रज तथा तमरूप हैं। हे प्रभो! आपने इस समय कौन-सी लीला प्रारम्भ की है, उसे हमें बताइये॥ २२—२४॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उनका यह वचन सुनकर महेश्वरने [अपने] घायल गणोंकी ओर देखकर उनसे सब कुछ कहा। इसके बाद हे मुनिसत्तम! पार्वतीपति सर्वेश्वर

शंकर हँसकर मुझ ब्रह्मासे कहने लगे— ॥ २५-२६ ॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! सुनिये, मेरे द्वारपर एक महाबली बालक हाथमें लाठी लिये हुए खड़ा है, वह सबको घरमें जानेसे रोकता है। वह भयंकर प्रहार करनेवाला है, उसने मेरे पार्षदोंको मार गिराया है और मेरे गणोंको बलपूर्वक पराजित कर दिया है ॥ २७-२८ ॥

हे ब्रह्मन्! आप ही वहाँ जायँ और इस महाबलीको प्रसन्न करें। हे ब्रह्मन्! हे विधे! जैसी नीति हो, वैसा व्यवहार करें ॥ २९ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! शिवजीके इस वचनको सुनकर विशेष बातको न जानकर अज्ञानसे मोहित हुआ मैं सभी ऋषियोंके साथ उसके पास गया ॥ ३० ॥

वह महाबली गणेश मुझे आते हुए देखकर क्रोध करके मेरे सन्निकट आकर मेरी दाढ़ी उखाड़ने लगा ॥ ३१ ॥

हे देव! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये, मैं यहाँ युद्धके लिये नहीं आया हूँ। मैं तो ब्राह्मण हूँ, मुझपर कृपा कीजिये, मैं उपद्रवरहित हूँ तथा शान्ति करनेवाला हूँ ॥ ३२ ॥

अभी मैं ऐसा कह ही रहा था, तभी हे नारद! युवाके समान पराक्रमी महावीर उस बालक गणेशने हाथमें परिघ ले लिया ॥ ३३ ॥

तब उस महाबली गणेशको परिघ धारण किये हुए देखकर मैं शीघ्रतासे भाग गया। मेरे साथके लोग कहने लगे—यहाँसे भागो, भागो, इतनेमें ही उसने उन्हें परिघसे मारना प्रारम्भ कर दिया, जिससे कुछ तो स्वयं गिर गये और कुछको उसने मार गिराया। कुछ लोग उसी क्षण शिवजीके समीप जाकर पूर्णरूपसे उस वृत्तान्तको शिवजीसे कहने लगे ॥ ३४—३६ ॥

उन्हें वैसा देखकर और उस घटनाको सुनकर लीलाविशारद शिवजीको अपार क्रोध उत्पन्न हुआ ॥ ३७ ॥

तब उन्होंने इन्द्रादि देवगणों, कार्तिकेय आदि प्रमुख गणों, भूतों, प्रेतों एवं पिशाचोंको आज्ञा दी ॥ ३८ ॥

शिवजीके द्वारा आदिष्ट वे लोग यथायोग्य हाथोंमें आयुध लिये हुए उस गणको मारनेकी इच्छासे सभी दिशाओंमें गये और जिस-जिसका जो विशेष अस्त्र था, उन-उन अस्त्रोंसे बलपूर्वक बालक गणेशपर प्रहार करने लगे ॥ ३९-४० ॥

उस समय चराचरसहित त्रिलोकीमें हाहाकार मच गया और तीनों लोकोंमें रहनेवाले सभी लोग अत्यन्त संशयमें पड़ गये ॥ ४१ ॥

[वे आश्चर्यचकित हो कहने लगे कि] अभी ब्रह्माकी आयु समाप्त नहीं हुई है, तब इस ब्रह्माण्डका नाश कैसे हो रहा है? निश्चय ही यह शिवकी इच्छा है, जो अकालमें ही ऐसा हो रहा है। उस समय कार्तिकेय आदि जितने भी देवता थे, वे सभी वहाँ आये और उन सभीके शस्त्र व्यर्थ हो गये, जिसके कारण वे आश्चर्यचकित हो उठे ॥ ४२-४३ ॥

इसी बीच ज्ञानदायिनी देवी जगदम्बा उस सम्पूर्ण घटनाको जानकर अपार क्रोधमें भर गयीं ॥ ४४ ॥

हे मुनीश्वर! उस समय वहाँपर उन देवीने अपने गणकी सब प्रकारकी सहायताके लिये दो शक्तियोंका निर्माण किया। हे महामुने! जिसमें एक प्रचण्ड रूप धारणकर काले पहाड़की गुफाके समान मुख फैलाकर खड़ी हो गयी और दूसरी बिजलीके समान रूप धारण करनेवाली, बहुत हाथोंवाली तथा दुष्टोंको दण्ड देनेवाली भयंकर महादेवी थी ॥ ४५—४७ ॥

उन दोनों शक्तियोंने देवताओंके द्वारा छोड़े गये समस्त आयुध पकड़कर बड़ी शीघ्रतासे अपने मुखमें डाल लिये। उस समय किसी देवताका एक भी शस्त्र वहाँ नहीं दिखायी दे रहा था, केवल चारों ओर गणेशका परिघ ही दिखायी पड़ा। इस प्रकार उन दोनोंने वहाँ अत्यन्त अद्भुत चरित्र किया ॥ ४८-४९ ॥

पूर्व समयमें जिस प्रकार गिरिश्रेष्ठ मन्दराचलने क्षीरसागरका मन्थन किया था, उसी प्रकार अकेले उस बालकने समस्त दुस्तर देवसेनाको मथ डाला ॥ ५० ॥

तब अकेले गणेशके द्वारा मारे-पीटे गये इन्द्रादि देवगण तथा शिवगण व्याकुल हो गये। इसके बाद गणेशके प्रहारसे व्याकुल हुए वे सभी एकत्रित होकर बारंबार श्वास छोड़ते हुए आपसमें कहने लगे— ॥ ५१-५२ ॥

देवगण बोले—अब क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये? दसों दिशाओंका ज्ञान ही नहीं हो रहा है। यह बालक तो दायें-बायें परिघ घुमा रहा है ॥ ५३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! उसी समय पुष्प,

चन्दन हाथमें लिये हुए अप्सराएँ तथा नारदादि ऋषि जो इस महान् युद्धको देखनेकी लालसावाले थे, वे सभी युद्ध देखनेके लिये वहाँ आये। हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय उनके द्वारा आकाशमार्ग भर गया॥ ५४-५५॥

वे अप्सराएँ तथा ऋषिगण उस युद्धको देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और कहने लगे—इस प्रकारका युद्ध तो कभी भी देखनेमें नहीं आया॥ ५६॥

उस समय समुद्रसहित सारी पृथ्वी काँपने लगी तथा पर्वत गिरने लगे, वे संग्रामकी सूचना दे रहे थे॥ ५७॥

आकाश, ग्रह एवं नक्षत्रमण्डल घूमने लगे, जिससे सभी व्याकुल हो उठे। सभी देवता तथा गण भाग गये। केवल पराक्रमी तथा महावीर कार्तिकेय ही नहीं भागे और सबको रोककर गणेशके सामने डटे रहे॥ ५८-५९॥

उन दोनों शक्तियोंने उस युद्धमें सभीको असफल कर दिया और देवताओंके द्वारा चलाये गये सभी शस्त्रोंको काट दिया। जो लोग शेष बच गये थे, वे सब शिवजीके समीप आ गये, सभी देवता तथा शिवगण तो भाग ही चुके थे॥ ६०-६१॥

उन सभीने मिलकर शिवको बारंबार नमस्कारकर बड़ी शीघ्रतासे पूछा—हे प्रभो! यह श्रेष्ठ गण कौन है?॥ ६२॥

हमलोगोंने पहले भी युद्धका वर्णन सुना था, इस समय भी बहुत-से युद्ध देख रहे हैं, किंतु इस प्रकारका युद्ध न तो कभी देखा गया और न सुना ही गया!॥ ६३॥

हे देव! अब कुछ विचार कीजिये, अन्यथा जय नहीं हो सकती है। हे स्वामिन्! आप ही इस ब्रह्माण्डके रक्षक हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ६४॥

ब्रह्माजी बोले—उनका यह वचन सुनकर परम-क्रोधी रुद्र कोप करके अपने गणोंसहित वहाँ गये॥ ६५॥

तब देवगणोंकी सेना भी चक्रधारी विष्णुके साथ महान् उत्सव करके शिवजीके पीछे-पीछे गयी॥ ६६॥

हे नारद! इसी बीच आपने देवदेव महेश्वरको भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर नमस्कार करके कहा—॥ ६७॥

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे विभो! मेरा वचन सुनिये, आप सर्वत्र व्याप्त हैं, सबके स्वामी हैं तथा नानाविध लीलाओंको करनेमें प्रवीण हैं॥ ६८॥

आपने महालीला करके गणोंके गर्वको दूर कर दिया। हे शंकर! आपने इनको बल देकर देवताओंके गर्वको भी नष्ट कर दिया। हे नाथ! हे शम्भो! स्वतन्त्र तथा सभीके गर्वको चूर करनेवाले आपने इस भुवनमें अपना अद्भुत बल दिखाया। हे भक्तवत्सल! अब आप उस लीलाको मत कीजिये और अपने इन गणोंका तथा देवताओंका सम्मान करके इनकी रक्षा कीजिये। हे ब्रह्मपददायक! अब इन्हें अधिक मत खेलाइये और इन गणेशका वध कीजिये। हे नारद! इस प्रकार कहकर आप वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ६९—७२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशयुद्धवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

विष्णु तथा गणेशका युद्ध, शिवद्वारा त्रिशूलसे गणेशका सिर काटा जाना

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! यह सुनकर भक्तोंके ऊपर कृपा करनेवाले महेश्वरने आपके कहनेसे उस बालकके साथ युद्ध करनेकी इच्छा की॥ १॥

भगवान् त्रिलोचन विष्णुको बुलाकर उनसे मन्त्रणाकर एक बहुत बड़ी सेनासे युक्त होकर देवताओंके सहित उस गणेशके सम्मुख उपस्थित हुए॥ २॥

उस समय सर्वप्रथम शिवकी शुभ दृष्टिसे देखे गये महाबलवान् देवता महान् उत्साहवाले शिवजीके चरण-कमलोंका ध्यान करके उसके साथ युद्धमें प्रवृत्त हुए॥ ३॥

महाबलवान् एवं अत्यन्त पराक्रमशील भगवान् विष्णु उस बालकसे युद्ध करने लगे। तब महादेवीके द्वारा दिये गये आयुधसे युक्त वह शिवस्वरूप वीर बालक गणेश भी श्रेष्ठ देवताओंको लाठीसे मारने लगा, शक्तिके द्वारा प्रदत्त महान् बलवाला वह सहसा विष्णुपर भी प्रहार करने लगा॥ ४-५॥

हे मुने! उसकी लाठीके प्रहारसे विष्णुसहित समस्त

देवताओंके बल कुण्ठित हो गये और वे युद्धसे पराङ्मुख हो गये॥ ६॥

हे मुने! शिवजी भी अपनी सेनाके सहित बहुत कालतक युद्धकर उस बालकको महाभयंकर देखकर आश्चर्यचकित हो गये॥ ७॥

'इसे छलसे ही मारा जा सकता है, अन्यथा नहीं मारा जा सकता है'—ऐसा विचारकर शिवजी सेनाओंके बीचमें स्थित हो गये॥ ८॥

उस समय निर्गुण एवं सगुण रूपवाले भगवान् शंकरको तथा विष्णुको युद्धभूमिमें उपस्थित देखकर सभी देवता तथा शिवगण अत्यधिक हर्षित हुए और वे सब आपसमें मिलकर प्रेमपूर्वक उत्सव मनाने लगे॥ ९-१०॥

तब महाशक्तिके पुत्र वीर गणेशने बड़ी बहादुरीके साथ सर्वप्रथम अपनी लाठीसे सबको सुख देनेवाले विष्णुकी पूजा की अर्थात् उनपर प्रहार किया॥ ११॥

विष्णुने शिवजीसे कहा—'यह बालक बड़ा तामसी है और युद्धमें दुराधर्ष है, बिना छलके इसे नहीं मारा जा सकता, अत: हे विभो! मैं इसे मोहित करता हूँ और आप इसका वध कीजिये' इस प्रकारकी बुद्धि करके तथा शिवसे मन्त्रणा करके और शिवकी आज्ञा प्राप्तकर विष्णुजी [गणेशको] मोहपरायण करनेमें संलग्न हो गये॥ १२-१३॥

हे मुने! विष्णुको वैसा देखकर वे दोनों शक्तियाँ गणेशको अपनी-अपनी शक्ति समर्पितकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब उन दोनों शक्तियोंके लीन हो जानेपर महाबलवान् गणेशने, जहाँ विष्णु स्वयं स्थित थे, वहींपर अपना परिघ फेंका॥ १४-१५॥

विष्णुने अपने प्रभु भक्तवत्सल महेश्वरका स्मरणकर यत्न करके उस परिघकी गतिको विफल कर दिया॥ १६॥

तब एक ओरसे उसके मुखको देखकर अत्यन्त कुपित हुए शिवजी भी अपना त्रिशूल लेकर युद्धकी इच्छासे वहाँ आ गये॥ १७॥

तब वीर तथा महाबली शिवापुत्रने हाथमें त्रिशूल लेकर मारनेकी इच्छासे आये हुए महेश्वर शिवको देखा॥ १८॥

तब अपनी माताके चरणकमलोंका स्मरण करके शिवाकी शक्तिसे प्रवर्धित होकर उस महावीर गणेशने शक्तिसे उनके हाथपर प्रहार किया॥ १९॥

तब परमात्मा शिवके हाथसे त्रिशूल गिर पड़ा, यह देखकर उत्तम लीला करनेवाले शिवने अपना पिनाक नामक धनुष उठा लिया॥ २०॥

गणेश्वरने अपने परिघसे उस धनुषको भूमिपर गिरा दिया और परिघके पाँच प्रहारोंसे उनके पाँच हाथोंको घायल कर दिया। तब शंकरने त्रिशूल ग्रहण किया और लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए वे अपने मनमें कहने लगे—अहो! इस समय जब मुझे महान् क्लेश प्राप्त हुआ, तब गणोंकी क्या दशा हुई होगी?॥ २१-२२॥

इसी बीच शक्तिके द्वारा दिये गये बलसे युक्त वीर गणेशने गणोंसहित देवताओंको परिघसे मारा। तब परिघके प्रहारसे आहत गणसहित सभी देवता दसों दिशाओंमें भाग गये और अद्भुत प्रहार करनेवाले उस बालकके सामने कोई भी ठहर न सका॥ २३-२४॥

विष्णु भी उस गणको देखकर बोले—यह धन्य, महाबलवान्, महावीर, महाशूर तथा रणप्रिय योद्धा है। मैंने बहुत-से देवता, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व एवं राक्षसोंको देखा है, किंतु सम्पूर्ण त्रिलोकीमें तेज, रूप, गुण एवं शौर्यादिमें इसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता॥ २५—२७॥

विष्णु इस प्रकार कह ही रहे थे कि शिवापुत्र गणेशने अपना परिघ घुमाते हुए विष्णुपर फेंका॥ २८॥

तब विष्णुने भी चक्र लेकर शिवजीके चरणकमलका ध्यान करके उस चक्रसे परिघके टुकड़े-टुकड़े कर दिये॥ २९॥

गणेश्वरने उस परिघके टुकड़ेको लेकर विष्णुपर प्रहार किया। तब गरुड़ पक्षीने उसे पकड़कर विफल बना दिया॥ ३०॥

इस प्रकार बहुत समयतक विष्णु एवं गणेश्वर दोनों ही वीर परस्पर युद्ध करते रहे॥ ३१॥

पुन: वीरोंमें श्रेष्ठ बलवान् शक्तिपुत्रने शिवका स्मरणकर अनुपम लाठी लेकर उससे विष्णुपर प्रहार किया॥ ३२॥

विष्णु उस प्रहारको सहन करनेमें असमर्थ होकर

पृथ्वीपर गिर पड़े और पुनः शीघ्रतासे उठकर उस शिवा-पुत्रसे संग्राम करने लगे॥ ३३॥

इसी बीच अवसर पाकर पीछेसे आकर शूलपाणि शंकरने त्रिशूलसे उसका सिर काट लिया॥ ३४॥

हे नारद! तब उस गणेशका सिर कट जानेपर गणोंकी सेना तथा देवगणोंकी सेना निश्चिन्त हो गयी॥ ३५॥

उसके बाद आप नारदने जाकर देवीसे सब कुछ निवेदन किया और यह भी कहा—हे मानिनि! सुनिये, आप इस समय अपना मान मत छोड़ना॥ ३६॥

हे नारद! इस प्रकार कहकर कलहप्रिय आप अन्तर्धान हो गये; आप विकाररहित हैं तथा शिवजीकी इच्छाके अनुसार चलनेवाले मुनि हैं॥ ३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशयुद्धगणेशशिरश्छेदनवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

पुत्रके वधसे कुपित जगदम्बाका अनेक शक्तियोंको उत्पन्न करना और उनके द्वारा प्रलय मचाया जाना, देवताओं और ऋषियोंका स्तवनद्वारा पार्वतीको प्रसन्न करना, शिवजीके आज्ञानुसार हाथीका सिर लाया जाना और उसे गणेशके धड़से जोड़कर उन्हें जीवित करना

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे महाप्राज्ञ! अब आप मुझे बताइये कि सम्पूर्ण समाचार सुन लेनेपर महादेवीने क्या किया? उसे ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उसके बाद जगदम्बाका जो चरित्र हुआ, उसे अब मैं सम्पूर्ण रूपसे कह रहा हूँ, सुनिये॥ २॥

गणाधिप उस गणेशके मार दिये जानेपर शिवजीके गणोंने मृदंग एवं पटह बजाये तथा महान् उत्सव किया॥ ३॥

हे मुनीश्वर! शिवजी भी गणेशजीका शिरश्छेदनकर ज्यों ही दुखी हुए, उसी समय गिरिजादेवी अत्यन्त क्रोधित हो गयीं॥ ४॥

उन्होंने कहा—हाय, मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मुझे बहुत बड़ा दुःख उत्पन्न हो गया है। इसके मरनेसे तो मुझे बड़ा क्लेश हुआ, वह दुःख किस प्रकारसे दूर हो सकता है!॥ ५॥

सभी देवताओं तथा गणोंने मेरे पुत्रको मार डाला है। अतः मैं उनका नाश कर दूँगी अथवा प्रलय कर दूँगी॥ ६॥

इस प्रकार दुखी हुई उन सर्वलोकमहेश्वरीने उसी क्षण कुपित होकर करोड़ों शक्तियोंको उत्पन्न किया॥ ७॥

तेजसे जाज्वल्यमान उन उत्पन्न हुई शक्तियोंने जगदम्बा पार्वतीको नमस्कारकर कहा—हे मातः! आज्ञा दीजिये॥ ८॥

हे मुनीश्वर! यह सुनकर शम्भुकी शक्ति महामाया प्रकृतिने क्रोधमें भरकर उन सभी शक्तियोंसे कहा— ॥ ९॥

देवी बोलीं—हे शक्तियो! हे देवियो! तुम सब मेरी आज्ञासे प्रलय कर डालो; इसमें आप सभीको विचार नहीं करना चाहिये॥ १०॥

हे सखियो! तुमलोग देवता, ऋषि, यक्ष, राक्षस और अपने तथा दूसरे सबको हठपूर्वक खा डालो॥ ११॥

ब्रह्माजी बोले—तब पार्वतीकी आज्ञा पाते ही वे सभी शक्तियाँ क्रोधमें भरकर देवता आदि सभीका संहार करनेके लिये उद्यत हो गयीं॥ १२॥

जिस प्रकार अग्नि तृणोंका संहार कर देती है, उसी

प्रकार वे समस्त शक्तियाँ भी संहार करने लगीं॥ १३॥

[शिवके] गणाधिप, विष्णु, ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, यक्षराज, स्कन्द अथवा सूर्य आदिका वे निरन्तर संहार करने लगीं। जहाँ-जहाँ दृष्टि जाती, वहाँ-वहाँ केवल शक्तियाँ ही दिखायी पड़ती थीं॥ १४-१५॥

उस समय कराली, कुब्जका, खंजा, लम्बशीर्षा आदि अनेक शक्तियाँ देवताओंको हाथसे पकड़कर मुखमें डालने लगीं॥ १६॥

उस संहारको देखकर हर, ब्रह्मा, हरि तथा इन्द्रादि सभी देवतागण एवं ऋषि इस सन्देहमें पड़ गये कि क्या देवी अकालमें ही प्रलय कर देंगी? इस प्रकार उनमें जीवनकी आशा समाप्त-सी हो गयी॥ १७-१८॥

सभी लोगोंने मिलकर कहा कि अब हमें क्या करना चाहिये—सब लोग इसपर विचार करें। इस प्रकार परस्पर विचार करते हुए वे कहने लगे—॥ १९॥

यदि गिरिजादेवी प्रसन्न हो जायँ तो शान्ति हो सकती है अन्यथा करोड़ों उपायोंसे भी शान्ति सम्भव नहीं है॥ २०॥

अनेक प्रकारकी लीलाओंको करनेमें प्रवीण शिवजी भी सबको मोहित करते हुए लौकिक गतिका आश्रय लेकर दु:खमें पड़ गये॥ २१॥

किंतु सभी देवताओंकी कमर उस समय टूट गयी, जब पार्वतीके पास जानेका प्रश्न उठा। उन्होंने सोचा कि पार्वती साक्षात् क्रोधकी मूर्ति हैं, कोई भी उनके सामने जानेका साहस नहीं कर सकता है॥ २२॥

हे मुने! उस समय देवता, दानवगण, दिक्पाल, यक्ष, किन्नर, मुनि, विष्णु, ब्रह्मा एवं महाप्रभु शंकर आदि तथा अपना-पराया कोई भी गिरिजाके सामने खड़ा होनेमें समर्थ नहीं हुआ॥ २३-२४॥

सभी ओरसे पार्वतीके जलते हुए उस दाहक तेजको देखकर सभी लोग दूर खड़े हो गये॥ २५॥

हे मुने! उसी समय दिव्य दर्शनवाले आप नारद देवगणोंको सुखी करने वहाँ पहुँच गये। पास आकर मुझ ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरको प्रणामकर सबके साथ मिलकर आप कहने लगे कि सोच-विचारकर ही कोई काम करना चाहिये॥ २६-२७॥

उसके बाद सभी देवताओंने आप महात्माके साथ मन्त्रणा की कि इस दु:खकी शान्ति किस प्रकार होगी; इसके बाद उन्होंने कहा—जबतक गिरिजादेवी कृपा नहीं करेंगी, तबतक दु:खकी शान्ति सम्भव नहीं है, इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिये॥ २८-२९॥

उसके बाद सभी ऋषि आपको साथ लेकर पार्वतीके पास गये और क्रोध शान्त करनेके लिये शिवाको प्रसन्न करने लगे॥ ३०॥

सभीने बारम्बार प्रणाम किया और अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति करके उन्हें प्रसन्न करते हुए देवगणोंकी आज्ञासे प्रेमपूर्वक कहा—॥ ३१॥

देवर्षि बोले—हे जगदम्ब! आपको नमस्कार है, आप शिवाको नमस्कार है, आप चण्डिकाको नमस्कार है, आप कल्याणीको नमस्कार है॥ ३२॥

हे अम्ब! आप ही आदिशक्ति हैं, आप ही सर्वदा सृष्टि करनेवाली, पालन करनेवाली तथा प्रलय करनेवाली शक्ति हैं॥ ३३॥

हे देवेशि! आप प्रसन्न हों, शान्ति कीजिये। आपको नमस्कार है, हे देवि! आपके क्रोधसे सारा त्रैलोक्य विकल हो रहा है॥ ३४॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार आप सभी ऋषियोंने मिलकर पराम्बाकी स्तुति की, तब भी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे उनकी ओर देखती हुई उन शिवाने कुछ भी नहीं कहा॥ ३५॥

पुनः सभी ऋषियोंने उनके चरणकमलको नमस्कारकर परम भक्तिसे हाथ जोड़कर धीरेसे शिवासे कहा—॥ ३६॥

ऋषिगण बोले—हे देवि! क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये। इस समय प्रलय होना चाहता है। हे अम्बिके! आपके स्वामी यहींपर स्थित हैं, देखिये, देखिये॥ ३७॥

हम कौन हैं? ये ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कौन हैं? वस्तुतः हम सब आपकी प्रजाएँ हैं और हाथ जोड़कर खड़े हैं॥ ३८॥

हे परमेश्वरि! हम सभीका अपराध क्षमा कीजिये। हे शिवे! सभी लोग व्याकुल हैं, अतः इनकी शान्ति कीजिये॥ ३९॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर सभी ऋषिगण अत्यन्त दीनतासे व्याकुल हो अम्बिकाके सामने हाथ

जोड़े हुए खड़े रहे ॥ ४० ॥

इस प्रकार उनका वचन सुनकर चण्डिका प्रसन्न हो गयीं और करुणार्द्रचित्त हो ऋषियोंसे कहने लगीं— ॥ ४१ ॥

देवी बोलीं—यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और तुमलोगोंके बीच प्रथम पूज्य हो, तो यह संहार नहीं होगा। यह आजसे सबका अध्यक्ष हो जाय और यदि तुमलोग उसे ऐसा कर दो तो लोकमें शान्ति हो सकती है अन्यथा तुमलोगोंको सुखकी प्राप्ति नहीं होगी ॥ ४२-४३ ॥

ब्रह्माजी बोले—[भगवतीके द्वारा] इस प्रकार कहे जानेपर आप सभी ऋषियोंने आ करके देवगणोंके समीप जाकर उन देवताओंसे सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ ४४ ॥

तब यह सुनकर दुःखित इन्द्रादि सभी देवगणोंने हाथ जोड़कर प्रणाम करके [इस वृत्तान्तको] शंकरसे निवेदित किया ॥ ४५ ॥

यह सुनकर शिवजीने भी देवताओंसे कहा—हमलोगोंको भी वही करना चाहिये, जिससे सारे संसारका कल्याण हो ॥ ४६ ॥

अतः आपलोग उत्तर दिशाकी ओर जाइये और सर्वप्रथम जो मिले, उसका सिर लाकर इसके धड़में जोड़ दीजिये ॥ ४७ ॥

ब्रह्माजी बोले—तदनन्तर शिवकी आज्ञा पालन करनेवाले देवताओंने ऐसा ही किया। गणेशजीका शरीर लाकर विधिपूर्वक उसका प्रक्षालन करके उसकी पूजाकर वे उत्तर दिशाकी ओर चल दिये, वहींपर उन्हें सर्वप्रथम एक दाँतवाला हाथी मिला ॥ ४८-४९ ॥

तब उसीका सिर लेकर उन्होंने गणेशके शरीरमें जोड़ दिया। सिर जोड़कर सभी देवताओंने ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरको प्रणाम करके यह वचन कहा—आपने जैसा कहा था, वैसा हमने किया, अब इसके बाद जो कार्य शेष हो, उसे आपको करना चाहिये ॥ ५०-५१ ॥

इसके बाद शिवके गण तथा देवता सुखपूर्वक सुशोभित हुए। पुनः शिवजीने जैसा कहा, वैसा ही उन लोगोंने पालन किया ॥ ५२ ॥

तब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगण अपने प्रभु निर्गुण ब्रह्म ईश्वर शिवको प्रणाम करके उनसे बोले—जिस प्रकार हम महात्मालोग आपके तेजसे उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार आपका तेज वेदमन्त्रोंके प्रभावसे इस शरीरमें भी प्रकट हो जाय ॥ ५३-५४ ॥

इस प्रकार उन लोगोंने शिवजीका स्मरण करके मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित उत्तम जलको गणेशके शरीरपर छिड़का ॥ ५५ ॥

उस जलके स्पर्शमात्रसे ही वह बालक शिवजीकी इच्छासे चेतनायुक्त हो जीवित हो गया और सोये हुएकी भाँति उठ बैठा ॥ ५६ ॥

वह सुभग, अत्यन्त सुन्दर, हाथीके मुखवाला, लाल वर्णवाला, प्रसन्न मुखमण्डलवाला, अत्यन्त तेजस्वी तथा मनोहर आकृतिवाला था ॥ ५७ ॥

हे मुनीश्वर! उस बालक पार्वतीपुत्रको जीवित देखकर सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हो गये और सबका दुःख नष्ट हो गया ॥ ५८ ॥

इसके बाद हर्षसे युक्त सभी लोगोंने देवीको उसे दिखाया और अपने पुत्रको जीवित देखकर देवी अत्यन्त प्रसन्न हुईं ॥ ५९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशजीवनवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

पार्वतीद्वारा गणेशको वरदान, देवोंद्वारा उन्हें अग्रपूज्य माना जाना, शिवजीद्वारा गणेशको सर्वाध्यक्षपद प्रदान करना, गणेशचतुर्थीव्रतविधान तथा उसका माहात्म्य, देवताओंका स्वलोक-गमन

नारदजी बोले—हे प्रजेश्वर! जब गिरिजाने अपने पुत्रको जीवित देख लिया, तब क्या हुआ? कृपापूर्वक उसको आप कहिये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनीश्वर! जब देवीने देख लिया कि मेरा पुत्र जीवित हो गया, उसके बाद जो हुआ, उसे आप सुनिये, मैं उस महान् उत्सवको कह रहा हूँ॥ २॥

हे मुने! जब व्याकुलतासे रहित तथा विशेष आकृतिवाले शिवापुत्र गजानन जीवित हो गये, तब देवताओंने उन्हें गणाध्यक्षके पदपर अभिषिक्त किया॥ ३॥

भगवती पार्वती अपने पुत्रको [अभिषिक्त] देखकर अत्यन्त हर्षित हो गयीं और अपनी दोनों भुजाओंसे बालकको गोदमें लेकर प्रेमपूर्वक उसका आलिंगन करने लगीं॥ ४॥

जगदम्बाने उस अपने पुत्रको बड़े प्रेमसे नाना प्रकारके वस्त्र तथा अलंकार प्रदान किये॥ ५॥

उन देवीने अनेक प्रकारकी सिद्धियोंसे उस बालकका पूजन करके सभी दुःखोंको दूर करनेवाले अपने कल्याणकारी हाथसे उसका स्पर्श किया। पूजन करनेके उपरान्त देवीने उसका मुख चूमा और प्रेमसे उसे अनेक वरदान दिये और कहा—पुत्र! तुमने इस समय बड़ा कष्ट उठाया॥ ६-७॥

हे पुत्र! तुम धन्य हो और कृतकृत्य हो, तुम सभी देवताओंके पहले पूजे जाओगे और सदा दुःखरहित रहोगे। चूँकि इस समय तुम्हारे मुखमण्डलपर सिन्दूर दिखायी देता है, इसलिये लोगोंके द्वारा तुम सदा सिन्दूरसे पूजित होओगे। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुगन्धित द्रव्य, उत्तम नैवेद्य, विधिपूर्वक आरती, ताम्बूल, दान, परिक्रमा तथा नमस्कारविधानसे तुम्हारी पूजा करेगा, उसे सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त होगी, इसमें सन्देह नहीं। इतना ही नहीं तुम्हारे पूजनसे समस्त विघ्न भी निःसन्देह विनष्ट हो जायँगे॥ ८—१२॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर उन महेश्वरी देवीने नाना प्रकारके उत्कृष्ट पदार्थोंसे पुनः अपने उस पुत्रका पूजन किया। हे विप्र! तब गिरिजाकी कृपासे क्षणमात्रमें देवताओंको तथा विशेषकर शिवगणोंको शान्ति प्राप्त हुई॥ १३-१४॥

उसी समय इन्द्रादि देवता प्रसन्नतासे शिवकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्नकर भक्तियुक्त होकर पार्वतीके पास ले गये। शिवको ले जानेके अनन्तर उन देवताओंने तीनों लोकके सुखके लिये महेश्वरीके उस पुत्रको शिवकी गोदमें बैठा दिया। शिवजीने भी उस बालकके सिरपर अपना करकमल रखकर देवगणोंसे यह वचन कहा—यह मेरा दूसरा पुत्र है॥ १५—१७॥

तब गणेशने भी उठकर शिवको, पार्वतीको, मुझे, विष्णुको प्रणाम करके सबके सामने खड़े होकर नारदादि सभी ऋषियोंसे कहा—आपलोग मेरे अपराधको क्षमा करें, मनुष्योंमें मान ऐसा ही होता है॥ १८-१९॥

तब मैं [ब्रह्मा], विष्णु तथा शंकर—इन तीनों देवताओंने एक साथ ही उस बालकको प्रेमपूर्वक उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—जिस प्रकार हम तीनों श्रेष्ठ देवता तीनों लोकोंमें पूज्य हैं, उसी प्रकार ये गणेश भी सभीके द्वारा पूजे जायँ। हमलोग प्राकृत (मौलिक) देवता हैं, उसी प्रकार ये भी प्राकृत हैं। गणेश विघ्नोंका हरण करनेवाले तथा सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले हैं। पहले इनकी पूजा करके बादमें मनुष्य हमलोगोंकी पूजा करें, यदि हमलोगोंकी पूजा की गयी और इनकी पूजा नहीं की गयी और हे देवताओ! यदि कोई इनकी पूजा किये बिना अन्य देवताओंकी पूजा करेगा तो उसे पूजाका फल प्राप्त नहीं होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २०—२४॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर शिवजीने अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे गणेशकी पूजा की, उसके बाद विष्णुके द्वारा भी वे पूजित हुए। तदनन्तर मैंने एवं पार्वतीने उनकी पूजा की और देवगणोंने भी बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया। उसी स्थानपर ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवने एक साथ मिलकर पार्वतीकी प्रसन्नताहेतु उन गणेशको

सर्वाध्यक्ष शब्दसे सम्बोधित किया॥ २५—२७॥

इसके बाद शिवने प्रसन्न मनसे उन गणेशको लोकमें सदा सुख देनेवाले अनेक वर दिये॥ २८॥

शिवजी बोले—हे पार्वतीपुत्र! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ, इसमें सन्देह नहीं है, मेरे सन्तुष्ट रहनेपर जगत् सन्तुष्ट हो जाता है, कोई भी विरुद्ध नहीं हो सकता॥ २९॥

तुम बालकरूपसे हो और शक्तिके महापराक्रमी एवं परम तेजस्वी पुत्र हो। इसलिये सर्वदा सुखी रहो॥ ३०॥

हे बालक! विघ्नोंके नष्ट करनेमें तुम्हारा नाम सर्वश्रेष्ठ होगा। आजसे तुम मेरे सम्पूर्ण गणोंके अध्यक्ष एवं सबके पूजनीय होओगे। इस प्रकार कहकर शंकरने गणेशको उनकी अनेक पूजाविधि बतलाकर उसी क्षण उन्हें अनेक आशीर्वाद प्रदान किये॥ ३१-३२॥

उसके बाद देवताओं एवं अप्सराओंने प्रसन्न होकर [अनेक प्रकारके] गीत, वाद्य तथा नृत्य किये॥ ३३॥

इसके बाद कल्याणकारी महात्मा शंकरने प्रसन्न होकर उन गणेशको पुनः वर प्रदान किया॥ ३४॥

हे गणेश्वर! तुम भाद्रपदमासमें कृष्णपक्षकी चतुर्थीको शुभ चन्द्रोदयकालमें उत्पन्न हुए हो और रात्रिके प्रथम प्रहरमें गिरिजाके चित्तसे तुम्हारा रूप आविर्भूत हुआ है, इसलिये उसी दिन तुम्हारा उत्तम व्रत होगा॥ ३५-३६॥

उसी दिनसे आरम्भकर उसी तिथिको सभी सिद्धियोंके लिये मनुष्यको प्रसन्नतापूर्वक इस सुन्दर व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। एक वर्षमें जब भाद्रमासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथि पुनः आये, तबतक वर्षपर्यन्त तुम्हारे व्रतको मेरी आज्ञासे करना चाहिये। जो लोग इस संसारमें अनेक प्रकारके अतुल सुख चाहते हैं, वे प्रत्येक चतुर्थीके दिन विधिपूर्वक तुम्हारी पूजा करें॥ ३७—३९॥

मार्गशीर्षके महीनेमें रमा नामक जो चतुर्थी होती है, उस दिन प्रातःकाल स्नानकर व्रतके लिये ब्राह्मणोंसे निवेदन करे। दूर्वासे पूजन करे तथा उपवास करे, रात्रिका प्रथम प्रहर उपस्थित होनेपर स्नान करके मनुष्यको [गणेशका] पूजन करना चाहिये॥ ४०-४१॥

धातुसे, मूँगेसे, श्वेत अर्कसे अथवा मिट्टीसे गणेशकी मूर्तिका निर्माण करके उसकी प्रतिष्ठाकर मनुष्य सावधान होकर नाना प्रकारके दिव्य गन्ध, चन्दन तथा पुष्पोंसे उनकी पूजा करे॥ ४२-४३॥

गणेशजीकी पूजाके लिये जो दूर्वा हो, वह एक वित्ते (बारह अंगुल लम्बी)-की हो और तीन गाँठसे युक्त तथा मूलरहित होनी चाहिये। इस प्रकारकी एक सौ एक दूर्वाओं अथवा इक्कीस दूर्वाओंके द्वारा स्थापित प्रतिमाका पूजन करे। धूप, दीप तथा नाना प्रकारके नैवेद्य, ताम्बूल, अर्घ्य आदि उत्तम द्रव्योंसे और प्रणाम तथा स्तुतिके द्वारा गणेशजीकी पूजा करे। इस प्रकार तुम्हारा पूजनकर बालचन्द्रमाकी पूजा करे॥ ४४—४६॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंकी पूजा करके प्रसन्नतापूर्वक मधुर पदार्थोंका भोजन कराना चाहिये, इसके बाद स्वयं भी लवणरहित मधुर भोजन करना चाहिये॥ ४७॥

तत्पश्चात् अपना सारा नियम विसर्जित करे और गणेशजीका स्मरण करे। इस प्रकारका अनुष्ठान करनेसे यह शुभ व्रत सम्पूर्ण होता है॥ ४८॥

इस प्रकार व्रत करते हुए एक वर्ष बीत जाय, तब उस व्रतकी सम्पूर्णताके लिये उद्यापन करना चाहिये। मेरी आज्ञासे उसमें बारह ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा एक कलशकी स्थापना करके तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करे॥ ४९-५०॥

वेदीपर अष्टदल कमल बनाकर मनुष्योंको धनकी कृपणतासे रहित होकर वेदविधिसे होम करना चाहिये॥ ५१॥

इसके बाद मूर्तिके आगे दो स्त्रियों एवं दो वटुकोंकी विधिपूर्वक पूजाकर आदरसे उन्हें भोजन

कराये। रात्रिमें जागरण करे, प्रात:काल पुन: पूजन करे। इसके बाद गणेशजीसे पुन: आनेके लिये प्रार्थनाकर उनका विसर्जन करे॥ ५२-५३॥

तत्पश्चात् बालक वटुओंसे आशीर्वाद ग्रहण करे तथा स्वस्तिवाचन भी कराये और व्रतकी सम्पूर्णताके लिये पुष्पांजलि समर्पित करे। उसके बाद नमस्कारकर अन्य कार्य सम्पन्न करे। जो इस प्रकार व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है॥ ५४-५५॥

हे गणेश्वर! जो श्रद्धाके साथ नित्य अपनी शक्तिके अनुसार सभी कामनाओंका फल प्राप्त करनेके लिये सिन्दूर, चन्दन, तण्डुल, केतकीके फूल तथा अनेक प्रकारके उपचारोंसे तुझ गणेशकी पूजा करेगा और इस प्रकार जो भी लोग भक्तिपूर्वक अनेक उपचारोंसे तुम्हारी पूजा करेंगे, उनको सदा सिद्धि प्राप्त होगी तथा उनके विघ्नोंका नाश हो जायगा॥ ५६—५८॥

सभी वर्णों, विशेषकर स्त्रीजनोंको गणेशजीका पूजन अवश्य करना चाहिये। अपने अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंको विशेष रूपसे पूजन करना चाहिये॥ ५९॥

[हे गणेश!] मनुष्य जो-जो कामनाएँ करता है, तुम्हारी पूजासे उसे निश्चित रूपसे प्राप्त करता है, इसलिये कामना करनेवाले उस मनुष्यको सदैव तुम्हारा पूजन करना चाहिये॥ ६०॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! जब महात्मा शिवजीने गणेशजीसे इस प्रकार कहा, तभी सभी देवगणों, ऋषिवरों तथा समस्त शिवप्रिय गणोंने 'तथास्तु' कहकर विधिपूर्वक गणपतिका पूजन किया॥ ६१-६२॥

उसके बाद सभी गणोंने भी गणेशको प्रणाम किया और आदरपूर्वक अनेक प्रकारकी वस्तुओंसे विशेषरूपसे उनकी पूजा की। हे मुनीश्वर! उस समय भगवती गिरिजाको जो हर्ष उत्पन्न हुआ, उस अवर्णनीय हर्षको मैं अपने चारों मुखोंसे भी कैसे कहूँ॥ ६३-६४॥

देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, अप्सराएँ नाचने लगीं, बड़े-बड़े गन्धर्व गान करने लगे और [आकाश-मण्डलसे] पुष्पवृष्टि होने लगी। इस प्रकार गणपतिकी प्रतिष्ठा होनेपर सारा जगत् सुखी हो गया, महोत्सव होने लगा एवं सारा दु:ख नष्ट हो गया॥ ६५-६६॥

हे नारद! उस समय विशेष रूपसे पार्वती तथा शिव प्रसन्न हुए। सर्वत्र सुखदायक महामंगल होने लगा॥ ६७॥

उस समय समस्त देवता एवं ऋषिगण जो सभी वहाँ आये हुए थे, वे शिवजीकी आज्ञासे भगवती पार्वती तथा गणेशकी बारंबार प्रशंसा करते हुए, शिवकी स्तुति करते हुए तथा वह युद्ध कैसा था, उसका वर्णन करते हुए चले गये॥ ६८-६९॥

जब भगवती पार्वतीका क्रोध शान्त हो गया, तब शिवजी भी पूर्ववत् पार्वतीके समीप आकर लोकहितकी कामनासे नाना प्रकारके सुखद कार्य करने लगे। यद्यपि वे स्वात्माराम हैं, फिर भी भक्तोंके कार्यके लिये सदैव उद्यत रहते हैं। विष्णु तथा मैं ब्रह्मा उन पार्वती एवं शंकरकी भक्तिपूर्वक सेवाकर तथा शिवसे आज्ञा लेकर अपने स्थानको आ गये। हे नारद! हे भगवन्! हे मुनीश्वर! आप भी शिवा-शिवके यशका गान करके उनसे पूछकर अपने भवनको चले आये। हे नारद! आपके द्वारा पूछे जानेपर मैंने आपसे विघ्नेश्वर गणेशजीके यशसे मिश्रित भगवान् शिव तथा भगवती शिवाके यशका आदरपूर्वक पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया॥ ७०—७४॥

जो संयत होकर इस मंगलदायक आख्यानको सुनता है, वह सभी मंगलोंसे युक्त होकर मंगलोंका आलय हो जाता है, पुत्रहीनको पुत्र, निर्धनको धन, स्त्रीकी इच्छावालेको स्त्री एवं प्रजा चाहनेवालेको प्रजाकी प्राप्ति होती है, रोगीको आरोग्य, भाग्यहीनको सौभाग्य, नष्ट पुत्रवालेको पुत्र, नष्ट धनवालोंको धन एवं जिस स्त्रीका पति विदेश गया हो, उसको पतिकी प्राप्ति होती है और शोकयुक्त पुरुष शोकसे रहित हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। गणेशसे सम्बन्धित यह आख्यान जिसके घरमें नित्य रहता है, वह सर्वदा मंगलसे युक्त होता है; इसमें संशय नहीं है। यात्राकालमें तथा पवित्र पर्वपर जो कोई सावधान होकर इसे सुनता है, वह गणेशकी कृपासे सम्पूर्ण मनोरथ प्राप्त कर लेता है॥ ७५—७९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशको गणाधिपकी पदवीप्राप्तिका वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

स्वामिकार्तिकेय और गणेशकी बाल-लीला, विवाहके विषयमें दोनोंका परस्पर विवाद, शिवजीद्वारा पृथ्वी-परिक्रमाका आदेश, कार्तिकेयका प्रस्थान, बुद्धिमान् गणेशजीका पृथ्वीरूप माता-पिताकी परिक्रमा और प्रसन्न शिवा-शिवद्वारा गणेशके प्रथम विवाहकी स्वीकृति

नारदजी बोले—हे तात! मैंने गणेशजीके श्रेष्ठ जन्मके आख्यानको सुन लिया तथा अत्यन्त पराक्रमसे युक्त उनका दिव्य चरित्र भी सुना। हे तात! हे सुरेश्वर! उसके बाद क्या हुआ? उसे भलीभाँति कहिये। यह आख्यान शिवा और शिवके यशसे परिपूर्ण तथा महान् आनन्द देनेवाला है॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! करुणार्द्र चित्तवाले आपने ठीक ही पूछा। हे ऋषिसत्तम! अब मैं [आगेकी कथा] कह रहा हूँ, उसे ध्यानसे सुनिये॥ ३॥

हे विप्रेन्द्र! शिवा एवं शिव अपने उन दोनों पुत्रोंकी उत्तम लीला बारंबार देखकर अत्यन्त प्रसन्न होने लगे॥ ४॥

माता-पिताके दुलारसे उनका सुख दिन-रात बढ़ने लगा और वे दोनों बड़ी प्रसन्नतासे आनन्दपूर्वक क्रीड़ा करते थे। हे मुनीश्वर! वे दोनों पुत्र महान् भक्तिसे युक्त होकर माता-पिताकी सेवा करते थे। षण्मुख कार्तिकेय तथा गणेशके प्रति माता-पिताका अधिक स्नेह शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान सदा बढ़ने लगा॥ ५—७॥

हे देवर्षे! एक समय शिवा एवं शिव—वे दोनों प्रेमयुक्त होकर एकान्तमें बैठे हुए कुछ विचार कर रहे थे॥ ८॥

शिवा-शिव बोले—अब हमारे ये पुत्र विवाहके योग्य हो गये हैं। अतः इन दोनोंका शुभ विवाह कैसे किया जाय? जिस प्रकार षण्मुख प्रिय हैं, उसी प्रकार गणेश भी प्रिय हैं। इस प्रकारकी चिन्तामें पड़े हुए वे दोनों लीलाका आनन्द लेने लगे॥ ९-१०॥

हे मुने! अपने माता-पिताका यह विचार जानकर वे दोनों पुत्र उनकी इच्छासे विवाहके लिये लालायित हो उठे। 'मैं [पहले] विवाह करूँगा'—इस प्रकार बारंबार कहते हुए दोनों आपसमें विवाद करने लगे॥ ११-१२॥

जगत्के अधिपति वे दोनों शिवा और शिव उनके वचनको सुनकर लोकाचारकी रीतिका आश्रय लेकर महान् आश्चर्यमें पड़ गये। अब क्या करना चाहिये और किस प्रकार इनके विवाहकी विधि सम्पन्न की जाय—ऐसा निश्चय करके उन दोनोंने एक अद्भुत युक्ति रची। किसी समय बैठकर माता-पिताने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर कहा—॥ १३—१५॥

शिवा-शिव बोले—हमने तुम दोनोंके लिये एक सुखदायी नियम बनाया है। हे उत्तम पुत्रो! उसे प्रीतिसे सुनो, हमलोग यथार्थ रूपसे कह रहे हैं॥ १६॥

तुम दोनों ही पुत्र समानभावसे हमें प्रिय हो, इसमें कोई विशेष नहीं है। अतः हमलोगोंने तुमदोनों पुत्रोंके लिये एक कल्याणप्रद शर्त रखी है। तुम दोनोंमें जो कोई भी सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमाकर पहले चला आयेगा, उसीका शुभ लक्षणसम्पन्न विवाह पहले किया जायगा॥ १७-१८॥

ब्रह्माजी बोले—उन दोनोंका वचन सुनकर महाबली कार्तिकेय पृथ्वीकी परिक्रमा करनेके लिये बड़ी शीघ्रतासे घरसे चल पड़े। किंतु बुद्धिमान् गणेशजी अपनी सद्बुद्धिसे चित्तमें बारंबार विचार करके वहीं स्थित रहे कि मुझे क्या करना चाहिये और कहाँ जाना चाहिये, मैं तो लाँघ भी नहीं सकता हूँ, कोसभर चलनेके बाद मैं पुनः चल नहीं सकता, फिर इस पृथ्वीकी परिक्रमा करके मैं कौन-सा सुख प्राप्त कर सकूँगा? ऐसा विचारकर गणेशजीने जो किया, उसे आप सुनिये। विधिपूर्वक स्नान करके स्वयं घर आकर वे माता-पितासे कहने लगे—॥ १९—२३॥

गणेशजी बोले—हे तात! आप दोनोंकी पूजाके लिये मेरे द्वारा स्थापित इस आसनपर आप लोग बैठ जाइये और मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिये॥ २४॥

ब्रह्माजी बोले—उनकी बात सुनकर पार्वती और परमेश्वर पूजा ग्रहण करनेके लिये आसनपर बैठ गये॥ २५॥

गणेशजीने उन दोनोंका पूजन किया और बारंबार उनकी परिक्रमा की, इस प्रकार सात परिक्रमा की तथा

सात बार प्रणाम किया॥ २६॥

हे तात! बुद्धिसागर गणेशजीने बारंबार उनकी स्तुतिकर हाथ जोड़कर प्रेमविह्वल अपने माता-पितासे कहा— ॥ २७॥

गणेशजी बोले—हे माता एवं हे पिता! आप मेरी श्रेष्ठ बात सुनिये, अब शीघ्र ही मेरा सुन्दर विवाह कर दीजिये॥ २८॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार महात्मा गणेशजीका यह वचन सुनकर माता-पिताने महाबुद्धिनिधि गणेशजीसे कहा— ॥ २९॥

शिवा-शिव बोले—तुम भी वनसहित पृथ्वीकी ठीक-ठीक परिक्रमा करो, कुमार गया हुआ है, वहाँ तुम भी जाओ और पहले चले आओ॥ ३०॥

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार माता-पिताके इस वचनको सुनकर गणेशजी संयत तथा कुपित होकर कहने लगे— ॥ ३१॥

गणेशजी बोले—हे माता एवं हे पिता! आप दोनों धर्मरूप और अत्यन्त विद्वान् माने गये हैं, अत: हे श्रेष्ठ [माता-पिता]! मेरी धर्मसम्मत बातको ठीक-ठीक सुनिये। मैंने तो सात बार पृथ्वीकी परिक्रमा की है, तब हे माता-पिता! आप दोनों ऐसा क्यों कह रहे हैं?॥ ३२-३३॥

ब्रह्माजी बोले—उसके बाद गणेशजीका वचन सुनकर महालीला करनेवाले उन दोनों शिवा-शिवने लौकिक रीतिका आश्रय लेते हुए कहा— ॥ ३४॥

माता-पिता बोले—हे पुत्र! तुमने अति विशाल, सात द्वीपवाली, समुद्रपर्यन्त फैली हुई तथा घोर जंगलोंसे परिव्याप्त पृथ्वीकी परिक्रमा कब की?॥ ३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! शिवा-शिवके इस वचनको सुनकर महाबुद्धिके निधान पुत्र गणेशजी यह वचन कहने लगे— ॥ ३६॥

गणेशजी बोले—मैंने आप दोनों माता-पिता शिवा और शिवका पूजन करके अपनी बुद्धिसे समुद्रपर्यन्त पृथ्वीकी परिक्रमा कर ली। इस प्रकारका वचन वेदों, शास्त्रों तथा धर्मशास्त्रोंमें विद्यमान है, क्या यह वचन सत्य है अथवा सत्य नहीं है?॥ ३७-३८॥

माता-पिताका पूजनकर जो उनकी परिक्रमा कर लेता है, उसे पृथ्वीकी परिक्रमा करनेसे होनेवाला फल निश्चित रूपसे प्राप्त हो जाता है॥ ३९॥

जो माता-पिताको घरमें छोड़कर तीर्थस्थानमें जाता है, उसके लिये वह वैसा ही पाप कहा गया है, जो उन दोनोंके वध करनेसे लगता है॥ ४०॥

माता-पिताका चरणकमल ही पुत्रके लिये महान् तीर्थ है, अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होता है॥ ४१॥

यह तीर्थ सन्निकट रहनेवाला, [सभी प्रकारसे] सुलभ और धर्मोंका साधन है। पुत्रके लिये माता-पिता तथा स्त्रीके लिये पति ही घरमें सर्वोत्तम तीर्थ है॥ ४२॥

वेद और धर्मशास्त्र निरन्तर ऐसा कहते हैं, आपलोगोंको भी यही करना चाहिये, अन्यथा ये असत्य हो जायँगे। ऐसी स्थितिमें आपका स्वरूप ही असत्य हो जायगा और तब वेद भी असत्य हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है। अत: अब मेरा शुभ विवाह शीघ्रतासे कीजिये, अथवा वेदों और शास्त्रोंको मिथ्या कहिये॥ ४३—४५॥

हे धर्मस्वरूप माता-पिता! इन दोनोंमें जो श्रेष्ठतम हो, उसीको ठीक-ठीक विचारकर प्रयत्नपूर्वक कीजिये॥ ४६॥

ब्रह्माजी बोले—तब ऐसा कहकर बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ उत्कृष्ट बुद्धिवाले पार्वतीपुत्र गणेशजी मौन हो गये॥ ४७॥

इसके बाद विश्वके स्वामी दम्पती पार्वती-परमेश्वर उनका यह वचन सुनकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये। तदनन्तर उन शिवा-शिवने बुद्धिविचक्षण तथा

यथार्थ बात कहनेवाले पुत्रकी प्रशंसा करते हुए यथार्थ बोलनेवाले उनसे प्रेमपूर्वक कहा— ॥ ४८-४९ ॥

शिवा-शिव बोले—हे पुत्र! तुझ महात्मामें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है, तुमने जो बात कही है, वह सत्य ही है, इसमें सन्देह नहीं है। संकट उपस्थित होनेपर भी जिसकी बुद्धिमें विशेषता बनी रहती है, उसका दुःख उसी प्रकार दूर हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकार दूर हो जाता है। जिसके पास बुद्धि है, उसीके पास बल है। बुद्धिहीनको बल कहाँसे प्राप्त होगा, [बुद्धिके बलसे] किसी खरगोशने मदोन्मत्त सिंहको कुएँमें गिरा दिया था। वेद-शास्त्रों तथा पुराणोंमें बालकके लिये जो धर्मपालन बताया गया है, तुमने वह सब धर्मपालन किया है। तुमने जो सम्यक् कार्य किया, उसे कोई नहीं कर सकता। हम दोनोंने तुम्हारी बात मान ली, अब उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता है ॥ ५०—५४ ॥

ब्रह्माजी बोले—ऐसा कहकर वे दोनों बुद्धिसागर गणेशको आश्वस्तकर उनका विवाह करनेके लिये उत्तम विचार करने लगे ॥ ५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशविवाहोपक्रम नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

प्रजापति विश्वरूपकी सिद्धि तथा बुद्धि नामक दो कन्याओंके साथ गणेशजीका विवाह तथा उनसे 'क्षेम' तथा 'लाभ' नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति, कुमार कार्तिकेयका पृथ्वीकी परिक्रमाकर लौटना और क्षुब्ध होकर क्रौंचपर्वतपर चले जाना, कुमारखण्डके श्रवणकी महिमा

ब्रह्माजी बोले—इसी बीच विश्वरूप नामक प्रजापति शिवा-शिवके इस निश्चयको जानकर प्रसन्नचित्त हुए ॥ १ ॥

उन विश्वरूप प्रजापतिकी सिद्धि-बुद्धि नामक दो कन्याएँ थीं, जो सर्वांगसुन्दरी एवं दिव्य रूपवाली थीं ॥ २ ॥

गिरिजा एवं महेश्वरने आनन्दपूर्वक उन दोनोंके

साथ गणेशजीका महोत्सवपूर्वक विवाह सम्पन्न कराया। सभी देवता प्रसन्न होकर उस विवाहमें आये। जैसा पार्वती एवं शंकरका मनोरथ था, वैसे ही विश्वकर्माने [बड़ी प्रसन्नताके साथ] गणेशका विवाह किया। देवता तथा ऋषिगण अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ ३—५ ॥

हे मुने! उस समय गणेशको भी उन दोनोंसे अति दुर्लभ सुख प्राप्त हुआ, उस सुखका वर्णन नहीं किया जा सकता है। कुछ समय बीतनेके बाद महात्मा गणेशजीको उन दोनों भार्याओंसे दो दिव्य पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६-७ ॥

गणेशजीकी सिद्धि नामक पत्नीसे 'क्षेम' नामक पुत्र हुआ तथा बुद्धिसे 'लाभ' नामक परम सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार गणेशजी अचिन्त्य सुखका उपभोग करने लगे, इसके बाद शिवजीके दूसरे पुत्र [कार्तिकेय] पृथ्वीकी परिक्रमाकर वहाँ आ गये ॥ ८-९ ॥

उसी समय महात्मा नारद उनके घर पहुँच गये और उन्होंने कहा—[हे कार्तिकेय!] मैं यथार्थ कह रहा हूँ, असत्य नहीं, न छलसे अथवा न मत्सरसे कह रहा हूँ ॥ १० ॥

तुम्हारे माता-पिता शिवा-शिवने जो कार्य किया है, उसे इस लोकमें कोई नहीं कर सकता। यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। उन लोगोंने पृथ्वीकी परिक्रमाका

बहाना बनाकर तुम्हें घरके बाहर निकालकर गणेशजीका उत्तम तथा अत्यन्त शोभन विवाह कर दिया॥ ११-१२॥

इस समय गणेशजीका विवाह हो गया है, उन्हें विश्वरूप प्रजापतिकी अत्यन्त मनोहर रत्नरूपा दो कन्याएँ स्त्रीके रूपमें प्राप्त हुई हैं। शुभ अंगोंवाली उन दोनों पत्नियोंसे उन्होंने दो पुत्र भी उत्पन्न किये हैं, सिद्धिसे क्षेम तथा बुद्धिसे लाभ नामक सर्वसुखप्रद पुत्र प्राप्त किये हैं॥ १३-१४॥

इस प्रकार वे गणेश अपनी दोनों पत्नियोंसे दो पुत्र प्राप्तकर माता-पिताके मतमें रहकर निरन्तर सुखोपभोग कर रहे हैं। छलपूर्वक दी गयी माता-पिताकी आज्ञासे तुमने समुद्र-वनसहित पृथ्वीकी परिक्रमा कर डाली। हे तात! उसका यह फल तुम्हें प्राप्त हुआ॥ १५-१६॥

हे तात! तुम्हारे माता-पिताने जो छल किया है, उसपर तुम विचार करो। जब अपने स्वामी ऐसा कर सकते हैं, तो दूसरा क्या नहीं कर सकता॥ १७॥

तुम्हारे उन पिता-माताने यह अनुचित कार्य किया है, तुम इसपर विचार करो, मेरे विचारसे तो यह मत ठीक नहीं है॥ १८॥

यदि माता ही विष दे दे, पिता बेच दे और राजा सर्वस्व हर ले तो फिर किससे क्या कहा जा सकता है॥ १९॥

हे तात! जिस किसीने भी इस प्रकारका अनर्थकारी कार्य किया हो, उसका मुख शान्तिकी इच्छा रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको नहीं देखना चाहिये॥ २०॥

यह नीति श्रुतियों, स्मृतियों तथा शास्त्रोंमें सर्वत्र कही गयी है। मैंने उसे तुमसे कह दिया, अब तुम जैसा चाहो, वैसा करो॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! महेश्वरके मनकी गति जाननेवाले आपने उन कुमारसे इस प्रकारका वचन कहकर मौन धारण कर लिया। तब कुमार स्कन्द भी माता-पिताको प्रणामकर क्रोधाग्निसे जलते हुए शिवा-शिवके मना करनेपर भी क्रौंच पर्वतपर चले गये॥ २२-२३॥

[माता-पिताने कहा—] हे कार्तिकेय! मना करनेपर भी इस समय तुम क्यों जा रहे हो? किंतु इस प्रकार रोके जानेपर 'नहीं'—ऐसा कहकर वे कुमार चलने लगे और बोले—॥ २४॥

हे तात! मैं अब यहाँ क्षणमात्र भी नहीं रह सकता; क्योंकि आपने मुझपर प्रीति न कर ऐसा कपट किया

है—इस प्रकार कहकर हे मुने! दर्शनमात्रसे ही सबका पाप हरनेवाले कुमार कार्तिकेय वहाँ चले गये और तभीसे वे आज भी वहींपर हैं॥ २५-२६॥

हे देवर्षे! उसी दिनसे लेकर वे शिवपुत्र कार्तिकेय कुमार ही रह गये। उनका यह नाम तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, यह शुभदायक, सब पापोंको नष्ट करनेवाला, पुण्यस्वरूप तथा ब्रह्मचर्य प्रदान करनेवाला है॥ २७-२८॥

कार्तिक पूर्णिमाके दिन सभी देवता, ऋषि, मुनि तथा सभी तीर्थ कुमारके दर्शनके निमित्त जाते हैं॥ २९॥

कृत्तिकानक्षत्रयुक्त कार्तिक पूर्णिमा तिथिमें जो कुमारका दर्शन करता है, उसके पाप भस्म हो जाते हैं और उसे मनोवांछित फलकी प्राप्ति होती है॥ ३०॥

स्कन्दका वियोग होनेपर पार्वतीजी भी दुःखित हुईं और उन्होंने दीन होकर शिवजीसे कहा—हे प्रभो! आप मेरे साथ वहाँ चलिये॥ ३१॥

तब उनको सुखी करनेके लिये शंकरजी स्वयं अपने अंशसे [क्रौंच] पर्वतपर गये, वहाँ मल्लिकार्जुन नामक सुखदायक ज्योतिर्लिंग प्रतिष्ठित है॥ ३२॥

अपने भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले तथा सज्जनोंको शरण देनेवाले शिवजी पार्वतीके साथ आज

भी वहाँ दिखायी पड़ते हैं॥ ३३॥

तब पार्वतीसहित उन शिवको आया हुआ जानकर वे कुमार विरक्त होकर वहाँसे अन्यत्र जानेको उद्यत हो गये॥ ३४॥

तब देवताओं तथा मुनियोंके बहुत प्रार्थना करनेपर भी वे कार्तिकेय उस स्थानसे तीन योजन दूर हटकर निवास करने लगे॥ ३५॥

हे नारद! पुत्रके स्नेहसे आतुर वे दोनों शिवा-शिव कुमारके दर्शनके लिये पर्व-पर्वपर वहाँ जाते रहते हैं॥ ३६॥

अमावास्याके दिन वहाँ शिवजी स्वयं जाते हैं एवं पूर्णमासीके दिन पार्वती निश्चित रूपसे उनके स्थानपर जाती हैं॥ ३७॥

हे मुनीश्वर! आपने कार्तिकेय तथा गणेश्वरका जो-जो वृत्तान्त पूछा, मैंने वह श्रेष्ठ वृत्तान्त आपसे वर्णित किया॥ ३८॥

इस कथाको सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है और अपनी सम्पूर्ण अभिलषित शुभ कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

जो इस कथाको पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, सुनता है अथवा सुनाता है, वह सभी मनोरथ प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४०॥

ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी तथा क्षत्रिय विजयी हो जाता है। वैश्य धनसे सम्पन्न हो जाता है और शूद्र श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है॥ ४१॥

रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और भयभीत व्यक्ति भयसे मुक्त हो जाता है। वह मनुष्य भूत-प्रेत आदि बाधाओंसे पीड़ित नहीं होता है॥ ४२॥

यह आख्यान पापरहित, यश तथा सुखको बढ़ानेवाला, आयुमें वृद्धि करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला, अतुलनीय तथा पुत्र-पौत्रादि प्रदान करनेवाला, मोक्षदायक-शिवविषयक ज्ञानको देनेवाला, शिवाशिवका प्रीतिकारक तथा शिवकी भक्तिको बढ़ानेवाला है॥ ४३-४४॥

भक्तोंको तथा निष्काम मुमुक्षुओंको शिवजीके अद्वैतज्ञान देनेवाले, कल्याणकारक तथा सदा शिवमय इस आख्यानका सर्वदा श्रवण करना चाहिये॥ ४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके चतुर्थ कुमारखण्डमें गणेशविवाहवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

॥ द्वितीय रुद्रसंहिताका चतुर्थ कुमारखण्ड पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ॥

श्रीशिवमहापुराण

द्वितीय रुद्रसंहिता [पंचम—युद्धखण्ड]

पहला अध्याय

तारकासुरके पुत्र तारकाक्ष, विद्युन्माली एवं कमलाक्षकी तपस्यासे प्रसन्न ब्रह्माद्वारा उन्हें वरकी प्राप्ति, तीनों पुरोंकी शोभाका वर्णन

नारदजी बोले—[हे ब्रह्मन्!] हमने गणेश तथा स्कन्दकी सत्कथासे समन्वित गृहस्थ शिवजीके आनन्दप्रद उत्तम चरित्रका श्रवण किया। विहार करते हुए शिवजीने जिस प्रकार दुष्टोंका वध किया, अब आप उस श्रेष्ठ एवं उत्तम चरित्रका अत्यन्त प्रेमपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १-२॥

पराक्रमशाली भगवान् शंकरने एक ही बाणसे एक साथ दैत्योंके तीनों पुरोंको किस प्रकार जलाया?॥ ३॥

आप मायासे निरन्तर विहार करनेवाले भगवान् शंकरके इस सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन कीजिये, जो देवताओं तथा ऋषियोंको सुख देनेवाला है॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ! पूर्वकालमें व्यासजीने महर्षि सनत्कुमारसे यही बात पूछी थी, तब सनत्कुमारजीने उनसे जैसा कहा था, वही बात मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ५॥

सनत्कुमार बोले—हे महाविद्वान् व्यासजी! आप शंकरके उस चरित्रको सुनिये, जिस प्रकार विश्वका संहार करनेवाले उन शिवने एक ही बाणसे त्रिपुरको भस्म किया था। हे मुनीश्वर! शिवजीके पुत्र कार्तिकेयके द्वारा तारकासुरका वध कर दिये जानेपर उसके तीनों पुत्र दैत्य घोर तप करने लगे॥ ६-७॥

उनमें तारकाक्ष ज्येष्ठ, विद्युन्माली मध्यम तथा कमलाक्ष कनिष्ठ था। वे सभी समान पराक्रमवाले, जितेन्द्रिय, महाबलवान्, कार्यमें तत्पर, संयमी, सत्यवादी, दृढ़चित्त, महावीर एवं देवताओंके द्रोही थे॥ ८-९॥

तीनों दैत्य सम्पूर्ण मनोहर भोगोंको त्यागकर मेरुकी गुफामें जाकर अत्यन्त अद्भुत तप करने लगे॥ १०॥

तारकासुरके वे तीनों पुत्र वसन्त-ऋतुमें उत्सवसहित गीत-वाद्यकी ध्वनि तथा समस्त कामनाएँ त्यागकर तप करने लगे॥ ११॥

ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यके तेजको जीतकर अपने चारों ओर अग्नि जलाकर तथा उसके मध्यमें स्थित होकर वे सिद्धिके लिये आदरपूर्वक हव्यकी आहुति देने लगे॥ १२॥

उस समय वे महान् गर्मीसे सन्तप्त होकर मूर्च्छित हो जाते थे और वर्षाकालमें निर्भीक होकर सिरपर वृष्टिको सह लेते थे। शरत्कालमें उत्पन्न हुए मनोहर, स्निग्ध, स्थिर, उत्तम फल-मूलादि पदार्थोंका तथा उत्तम प्रकारके पेय-पदार्थोंका भूखोंके लिये दानकर स्वयं भूखे रह जाते थे, वे संयमपूर्वक भूख-प्यासको जीतकर पत्थरके समान हो गये थे॥ १३—१५॥

वे महात्मा हेमन्त-ऋतुमें पहाड़ोंका आश्रय लेकर बड़ी धीरताके साथ स्थित हो, निराधार हो चारों दिशाओंमें निवास करने लगे। तुषारसे आच्छादित शरीरवाले वे सब निरन्तर जलसे भीगे हुए रेशमी वस्त्र धारणकर शिशिर-ऋतुमें जलके बीचमें खड़े होकर विषादरहित होकर क्रमशः अपने तपको बढ़ाने लगे। इस प्रकार ब्रह्माजीको उद्देश्य करके उस [तारकासुर]-के वे तीनों श्रेष्ठ पुत्र तप कर रहे थे॥ १६—१८॥

वे श्रेष्ठ दानव परम नियममें स्थित रहकर कठोर तप करके तपस्याके द्वारा अपने शरीरको सुखाने लगे॥ १९॥

सौ वर्षतक एक पैरके सहारे पृथ्वीपर खड़े होकर उन अति बलवान् दैत्योंने तप किया। वे दारुण तथा दुरात्मा दैत्य हजार वर्षपर्यन्त वायुका भक्षणकर महान् कष्टसे युक्त हो तप करते रहे॥ २०-२१॥

वे एक हजार वर्षतक पृथ्वीपर सिरके बल खड़े रहे और सौ वर्षतक दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर खड़े रहे। इस प्रकार दुराग्रहमें तत्पर होकर उन्होंने बहुत क्लेश प्राप्त किया, वे दैत्य आलस्यको छोड़कर दिन-रात तप करने लगे॥ २२-२३॥

हे महामुने! इस प्रकार धर्मपूर्वक तप करते हुए तथा ब्रह्माजीमें मन लगाये हुए उन तारकपुत्रोंका बहुत समय बीत गया, ऐसा मेरा विचार है। उसके बाद सुरासुरके महान् गुरु तथा महायशस्वी ब्रह्माजी उनके तपसे सन्तुष्ट हो गये और उन्हें वर देनेके लिये प्रकट हुए॥ २४-२५॥

उस समय सभी प्राणियोंके पितामह ब्रह्माजी मुनियों, देवगणों तथा असुरोंके साथ वहाँ जाकर सान्त्वना देते हुए उन सभीसे यह वचन कहने लगे— ॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—हे महादैत्यो! मैं तुमलोगोंके

तपसे प्रसन्न हो गया हूँ। मैं तुमलोगोंको सब कुछ दूँगा, जो तुमलोगोंका अभीष्ट वर हो, उसे कहो॥ २७॥

हे देवशत्रुओ! मैं सबकी तपस्याका फलदाता और सर्वदा सबका रचयिता हूँ, अतः बताओ कि तुमलोगोंने अत्यन्त कठिन तप किस उद्देश्यसे किया है?॥ २८॥

सनत्कुमार बोले—उनकी यह बात सुनकर उन सबने हाथ जोड़कर पितामहको प्रणाम करके फिर धीरे-धीरे अपने मनकी बात कही॥ २९॥

दैत्य बोले—हे देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और हमें वर देना चाहते हैं, तो हमें सब प्राणियोंमें सभीसे अवध्यत्व प्रदान कीजिये॥ ३०॥

हे जगन्नाथ! आप हमें स्थिर कर दें और हमें जरा, रोग एवं मृत्यु आदि कभी भी प्राप्त न हों। हम सभी अजर-अमर हो जायँ—ऐसा हमारा विचार है। हमलोग तीनों लोकोंमें अन्य सभी प्राणियोंको मार सकें। पर्याप्त लक्ष्मीसे, उत्तम पुरोंसे, अन्य विपुल भोगोंसे, स्थानोंसे अथवा ऐश्वर्यसे हमें क्या प्रयोजन! हे ब्रह्मन्! यदि पाँच ही दिनोंमें प्राणी मृत्युके द्वारा ग्रसित हो जाता है—यह निश्चित ही है, तब तो उसका सब कुछ व्यर्थ हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ३१—३४॥

सनत्कुमार बोले—उन तपस्वी दैत्योंकी यह बात सुनकर ब्रह्माने गिरिपर शयन करनेवाले अपने स्वामी भगवान् शंकरका स्मरण करके कहा— ॥ ३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे असुरो! पूर्ण अमरत्व किसीको नहीं मिल सकता, इसलिये इस वरका आग्रह मत करो और अन्य वर माँग लो, जो तुमलोगोंको अच्छा लगे॥ ३६॥

हे असुरो! इस भूतलपर जहाँ भी जो कोई भी प्राणी जनमा है, वह अवश्य मरेगा, कालके भी काल भगवान् शंकर तथा श्रीहरिके अतिरिक्त इस जगत्में कोई भी प्राणी अजर-अमर नहीं हो सकता; क्योंकि वे दोनों धर्म, अधर्मसे परे हैं तथा व्यक्त और अव्यक्त हैं॥ ३७-३८॥

यदि जगत्को पीड़ा पहुँचानेके लिये तप किया जाय, तो उसका फल नष्ट समझना चाहिये। अतः उत्तम उद्देश्यके लिये किया गया तप सफल होता है॥ ३९॥

हे अनघ! तुमलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचार करके जिस मृत्युका अतिक्रमण दुर्लभ एवं दुःसाध्य है और देवता तथा असुर भी ऐसा नहीं कर सके, ऐसी मृत्युके अतिरिक्त अन्य वर माँगो। तुमलोग सत्त्वगुणका आश्रय लेकर अपने मरणका हेतुभूत कोई वर माँगो तथा उस हेतुसे अपनी-अपनी रक्षाका उपाय अलग-अलग रूपसे करो, जिससे तुम्हारी मृत्यु न हो॥ ४०-४१॥

सनत्कुमार बोले— ब्रह्माका वचन सुनकर वे एक मुहूर्ततक ध्यानमें स्थित रहे, इसके बाद विचारकर लोकपितामह ब्रह्मासे कहने लगे— ॥ ४२ ॥

दैत्य बोले— हे भगवन्! हमलोग यद्यपि पराक्रमशील हैं, किंतु हमारे पास कोई ऐसा स्थान नहीं है, जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सके और वहाँ हम सुखसे निवास कर सकें। अतः आप ऐसे तीन नगरोंका निर्माण कराकर हमें प्रदान कीजिये, जो परम अद्भुत, सभी सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण और देवताओंके लिये सर्वथा अनतिक्रमणीय हों ॥ ४३-४४ ॥

हे लोकेश! हे जगद्गुरो! इस प्रकार हमलोग आपकी कृपासे इन तीनों पुरोंमें स्थित होकर इस पृथ्वीपर विचरण करेंगे। तत्पश्चात् तारकाक्ष बोला—जो देवगणोंसे भी अभेद्य हो, इस प्रकारका मेरा सुवर्णमय पुर विश्वकर्मा बनायें। कमलाक्षने चाँदीके अति विशाल पुरकी तथा विद्युन्मालीने प्रसन्न होकर वज्रके समान लोहेके पुरकी याचना की ॥ ४५—४७ ॥

हे ब्रह्मन्! जब मध्याह्नकालमें अभिजित् मुहूर्त हो, चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रपर हो और आकाशमें नीले बादलोंपर स्थित होकर ये तीनों पुर क्रमशः एकके ऊपर एक रहते हुए लोगोंकी दृष्टिसे ओझल रहें। फिर जब पुष्कर और आवर्त नामक कालमेघ वर्षा कर रहे हों, उस समय एक हजार वर्षके उपरान्त हमलोग परस्पर मिलेंगे और ये तीनों पुर भी उसी समय एक स्थानपर स्थित हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है। हमलोगोंद्वारा धर्मका अतिक्रमण हो जानेपर कोई देवता, जिसमें सभी देवोंका निवास हो, वह सम्पूर्ण युद्धसामग्रीसे युक्त होकर असम्भव रथपर बैठकर एक ही असम्भाव्य बाणसे हमारे नगरोंका भेदन करे। शिवजी तो किसीसे द्वेष नहीं करते। वे सदा हमलोगोंके वन्द्य, पूज्य तथा अभिवादनके योग्य हैं, तो फिर वे हमलोगोंके पुरोंको कैसे जला सकते हैं, वैसा कोई दूसरा पृथ्वीपर दुर्लभ है—उन दैत्योंने अपने मनमें यही विचारकर ऐसा वर माँगा ॥ ४८—५३ ॥

सनत्कुमार बोले— [हे व्यासजी!] उनका यह वचन सुनकर सृष्टि करनेवाले लोकपितामह ब्रह्माने शिवजीका स्मरण करते हुए उनसे कहा—ऐसा ही होगा ॥ ५४ ॥

उसके बाद उन्होंने मयको आज्ञा दी कि हे मय! तुम सोने, चाँदी और लोहेके तीन नगरोंका निर्माण कर दो। उनके समक्ष मयको यह आज्ञा प्रदानकर ब्रह्माजी उन तारकपुत्रोंके देखते-देखते अपने धाम स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५५-५६ ॥

तदनन्तर धैर्यशाली मयने बड़े प्रयत्नके साथ तारकाक्षके लिये सोनेका, कमलाक्षके लिये चाँदीका तथा विद्युन्मालीके लिये लोहेका पुर बनाया और तीन प्रकारका दुर्ग भी बनाया, उन्हें क्रमसे स्वर्गमें, आकाशमें तथा भूलोकमें जानना चाहिये। उन असुरोंको तीनों पुर देकर मयने स्वयं भी उनके हितकी इच्छासे उस पुरीमें प्रवेश किया ॥ ५७—५९ ॥

इस प्रकार तीनों पुरोंको प्राप्तकर महाबली तथा पराक्रमशाली वे तारकासुरके पुत्र उनमें प्रविष्ट हुए और सभी प्रकारके सुखोंका भोग करने लगे ॥ ६० ॥

कल्पवृक्षोंसे व्याप्त, हाथी-घोड़ोंसे युक्त, नाना प्रकारकी अट्टालिकाओं तथा मणियोंसे परिपूर्ण वे नगर सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान, चारों ओर मुखवाले, चन्द्रमाके समान तथा पद्मराग मणियोंसे जटित विमानोंसे शोभित थे ॥ ६१-६२ ॥

उन पुरोंमें कैलास पर्वतके शिखरके समान ऊँचे-ऊँचे मनोहर महल तथा गोपुर बने हुए थे। दिव्य देवांगनाओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणोंसे वह पुर पूर्ण रूपसे भरा हुआ था। उनमें प्रत्येक घरमें शिवालय तथा अग्निहोत्रकुण्ड बने हुए थे। शास्त्रवेत्ता एवं शिवभक्त ब्राह्मण उन पुरोंमें सदा निवास करते थे ॥ ६३-६४ ॥

बावली, कुएँ, तालाब, छोटे सरोवर और स्वर्गीय गुणोंवाले उद्यान एवं वन्य वृक्षों, कमलयुक्त नदियों और बड़ी-बड़ी सरिताओंसे वे पुर शोभित हो रहे थे। सभी ऋतुओंमें फल-फूल देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्षोंसे वे पुर मनोहर प्रतीत हो रहे थे ॥ ६५-६६ ॥

वे झुण्ड-के-झुण्ड मदमत्त हाथियों, सुन्दर-सुन्दर घोड़ों, विविध आकारवाले रथों एवं शिविकाओंसे अलंकृत थे। उनमें समयानुसार अलग-अलग क्रीडास्थल बने हुए थे और वेदाध्ययनकी विविध पाठशालाएँ भी पृथक्-पृथक् बनी हुई थीं ॥ ६७-६८ ॥

पापीजन तो मन एवं वाणीके द्वारा उन नगरोंकी

ओर देख भी नहीं सकते थे; शुभ आचरण करनेवाले पुण्यशाली महात्मा ही उन्हें देख सकते थे॥ ६९॥

वहाँका उत्तम स्थल सर्वत्र अधर्मसे रहित तथा पतिसेवापरायण पतिव्रताओंके द्वारा पवित्र कर दिया गया था। उनमें महाभाग्यवान् बलवान् दैत्य अपनी स्त्रियों, पुत्रों और श्रुति-स्मृतिके रहस्यको जाननेवाले तथा अपने धर्ममें निरत ब्राह्मणोंके साथ निवास करते थे॥ ७०-७१॥

वे पुर चौड़ी छातीवाले, ऊँचे कंधोंवाले, साम एवं विग्रहके ज्ञाता, समय-समयपर शान्ति तथा कोप करनेवाले, कुबड़े तथा बौने, नीले कमलके समान काले-काले घुँघराले बालवाले, मयके द्वारा रक्षित तथा शिक्षित किये गये और युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले योद्धाओंसे परिपूर्ण थे। बड़े-बड़े युद्धोंमें निरत रहनेवाले, ब्रह्मा तथा सदाशिवके पूजनके प्रभावसे विशुद्ध पराक्रमवाले, सूर्य-वायु-इन्द्रके सदृश देवगणोंका मर्दन करनेवाले तथा अत्यन्त शक्तिशाली वीर उन पुरोंमें निवास करते थे॥ ७२—७४॥

वेदों, शास्त्रों और पुराणोंमें जिन-जिन धर्मोंका वर्णन किया गया है, वे सभी धर्म तथा शिवजीके प्रिय देवता वहाँ चारों ओर व्याप्त थे। इस प्रकार वर प्राप्त किये हुए वे तारकपुत्र दैत्य शिवभक्त मयदानवका आश्रय लेकर वहाँ निवास करने लगे। उन नगरोंमें प्रवेश करके वे सदा शिवभक्तिनिरत होकर सम्पूर्ण त्रिलोकीको बाधित करके विशाल राज्यका उपभोग करने लगे॥ ७५—७७॥

हे मुने! इस प्रकार अपने इच्छानुसार सुखपूर्वक उत्तम राज्य करते हुए उन पुण्यकर्मा राक्षसोंका वहाँ निवास करते हुए बहुत लम्बा काल व्यतीत हो गया॥ ७८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें त्रिपुरवधोपाख्यानमें त्रिपुरवर्णन नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

तारकपुत्रोंसे पीड़ित देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाना और उनके परामर्शके अनुसार असुर-वधके लिये भगवान् शंकरकी स्तुति करना

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! हे महाप्राज्ञ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! अब मुझे बताइये कि उसके बाद क्या हुआ और देवगण किस प्रकार सुखी हुए?॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—महाबुद्धिमान् व्यासजीका यह वचन सुनकर शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके सनत्कुमारजीने कहा—॥ २॥

सनत्कुमार बोले—तब उनके तेजसे दग्ध हुए इन्द्रादि देवता दुखी हो परस्पर मन्त्रणाकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ ३॥

वे सभी निस्तेज देवता प्रीतिपूर्वक पितामहको प्रणाम करके अवसर देखकर उनसे अपना दुःख कहने लगे॥ ४॥

देवता बोले—हे विधाता! तारकपुत्रोंसहित त्रिपुरनाथ मयके द्वारा सभी देवता अत्यधिक पीड़ित किये जा रहे हैं। इसलिये हे ब्रह्मन्! हमलोग दुखी होकर आपकी शरणमें आये हैं; आप उनके वधका कोई उपाय कीजिये, जिससे हमलोग सुखी हो जायँ॥ ५-६॥

सनत्कुमार बोले—देवगणोंके इस प्रकार कहनेपर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी मयसे डरे हुए उन समस्त देवताओंसे हँसकर कहने लगे—॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! आपलोग उन दैत्योंसे बिलकुल मत डरिये, मैं उनके वधका उपाय बता रहा हूँ; शिवजी कल्याण करेंगे। मैंने ही इस दैत्यको बढ़ाया है, अतः मेरे हाथों इसका वध होना उचित नहीं है और इस समय त्रिपुरके नगरमें निरन्तर पुण्य बढ़ ही रहा है॥ ८-९॥

अतः इन्द्रसहित सभी देवता शिवजीसे प्रार्थना करें। यदि वे सर्वाधीश प्रसन्न हो जायँ, तो आपलोगोंके कार्यको पूर्ण करेंगे॥ १०॥

सनत्कुमार बोले—तब ब्रह्माजीकी बात सुनकर इन्द्रसहित सभी देवता दुखी होकर वहाँ गये, जहाँ शिवजी थे। हाथ जोड़कर बड़ी भक्तिसे देवेशको प्रणाम करके सिर झुकाकर वे सब लोककल्याणकारी शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ११-१२॥

देवगण बोले—सम्पूर्ण सृष्टिका विधान करनेवाले हिरण्यगर्भ ब्रह्मास्वरूप आप शिवको नमस्कार है। पालन करनेवाले विष्णुस्वरूप आपको नमस्कार है॥ १३॥

सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करनेवाले हरस्वरूप आपको नमस्कार है। निर्गुण तथा अमिततेजस्वी आप शिवको नमस्कार है। अवस्थाओंसे रहित, निर्विकार, तेजस्वरूप, महाभूतोंमें आत्मस्वरूपसे वर्तमान, निर्लिप्त एवं महान् आत्मावाले आप महात्माको नमस्कार है॥ १४-१५॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके अधिपति, शेषरूपसे पृथ्वीका भार उठानेवाले, तृष्णाको नष्ट करनेवाले, शान्त प्रकृतिवाले तथा अमिततेजस्वी आप शिवको नमस्कार है॥ १६॥

महादैत्यरूपी महावनको विनष्ट करनेके लिये दावाग्निके स्वरूप एवं दैत्यरूपी वृक्षोंके लिये कुठारस्वरूप आप शूलपाणिको नमस्कार है॥ १७॥

महादैत्योंका नाश करनेवाले हे परमेश्वर! आपको नमस्कार है। हे सभी अस्त्रोंके धारणकर्ता! आप अम्बिकापतिको नमस्कार है। हे पार्वतीनाथ! हे परमात्मन्! हे महेश्वर! आपको नमस्कार है। आप नीलकण्ठ, रुद्र तथा रुद्रस्वरूपको नमस्कार है॥ १८-१९॥

वेदान्तसे जाननेयोग्य आपको नमस्कार है। सभी मार्गोंसे अगम्य आपको नमस्कार है। गुणस्वरूप, गुणोंको धारण करनेवाले एवं गुणोंसे सर्वथा रहित आपको नमस्कार है। त्रिलोकीको आनन्द देनेवाले हे महादेव! आपको नमस्कार है। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध एवं वासुदेवस्वरूप आपको नमस्कार है। संकर्षणदेव एवं कंसनाशक आपको नमस्कार है। चाणूरका मर्दन करनेवाले एवं विरक्त रहनेवाले हे दामोदर! आपको नमस्कार है॥ २०—२२॥

हे हृषीकेश! हे अच्युत! हे विभो! हे मृड! हे शंकर! हे अधोक्षज! हे गजासुरके शत्रु! हे कामशत्रु! हे विषभक्षक! आपको नमस्कार है॥ २३॥

नारायणदेव, नारायणपरायण, नारायणस्वरूप तथा सर्वरूप हे नारायणतनूद्भव! आपको नमस्कार है। महानरकसे बचानेवाले तथा पापोंको दूर करनेवाले हे वृषभवाहन! आपको नमस्कार है॥ २४-२५॥

क्षण आदि कालरूपवाले, अपने भक्तोंको बल प्रदान करनेवाले, अनेक रूपोंवाले तथा दैत्योंके समूहका नाश करनेवाले, ब्रह्मण्यदेवस्वरूप, गौ तथा ब्राह्मणोंका हित करनेवाले, सहस्रमूर्ति तथा सहस्र अवयवोंवाले आपको नमस्कार है॥ २६-२७॥

धर्मरूप, सत्त्वस्वरूप तथा सत्त्वात्मरूप हे हर! आपको नमस्कार है। वेदोंके द्वारा जाननेयोग्य स्वरूपवाले तथा वेदप्रिय आपको नमस्कार है। वेदस्वरूप एवं वेदके वक्ता आपको नमस्कार है। सदाचारके मार्गसे जाननेयोग्य एवं सदाचारके मार्गपर चलनेवाले आपको बार-बार नमस्कार है॥ २८-२९॥

विष्टरश्रवा (विष्णु) तथा सत्यमय आपको नमस्कार है। सत्यप्रिय, सत्यस्वरूप तथा सत्यसे प्राप्त होनेवाले आपको नमस्कार है। मायाको अपने अधीन रखनेवाले आपको नमस्कार है। मायाके अधिपति आपको नमस्कार है। सामवेदस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप तथा ब्रह्मासे उत्पन्न होनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३०-३१॥

हे ईश! आप तपःस्वरूप, तपस्याका फल देनेवाले, स्तुतिके योग्य, स्तुतिरूप, स्तुतिसे प्रसन्नचित्त, श्रुतिके आचारसे प्रसन्न रहनेवाले, स्तुतिप्रिय, जरायुज-अण्डज आदि चार स्वरूपोंवाले एवं जल-थलमें प्रकट स्वरूपवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ ३२-३३॥

हे नाथ! सभी देवता आदि श्रेष्ठ होनेसे आपकी विभूति हैं। आप सभी देवताओंमें इन्द्रस्वरूप हैं और ग्रहोंमें आप सूर्य माने गये हैं॥ ३४॥

आप लोकोंमें सत्यलोक, सरिताओंमें गंगा, वर्णोंमें श्वेत वर्ण और सरोवरोंमें मानसरोवर हैं॥ ३५॥

आप पर्वतोंमें हिमालय, गायोंमें कामधेनु, समुद्रोंमें क्षीरसागर एवं धातुओंमें सुवर्ण हैं॥ ३६॥

हे शंकर! आप वर्णोंमें ब्राह्मण, मनुष्योंमें राजा, मुक्तिक्षेत्रोंमें काशी तथा तीर्थोंमें प्रयाग हैं। हे महेश्वर! आप समस्त पाषाणोंमें स्फटिक मणि, पुष्पोंमें कमल तथा पर्वतोंमें हिमालय हैं॥ ३७-३८॥

आप व्यवहारोंमें वाणी हैं, कवियोंमें भार्गव, पक्षियोंमें शरभ और हिंसक प्राणियोंमें सिंह कहे गये हैं॥ ३९॥

हे वृषभध्वज! आप शिलाओंमें शालग्रामशिला और सभी पूज्योंमें नर्मदा-लिंग हैं। हे परमेश्वर! आप पशुओंमें नन्दीश्वर नामक वृषभ (बैल), वेदोंमें उपनिषद्रूप

और यज्ञ करनेवालोंमें चन्द्रमा हैं ॥ ४०-४१ ॥

आप तेजस्वियोंमें अग्नि, शैवोंमें विष्णु, पुराणोंमें महाभारत तथा अक्षरोंमें मकार हैं। बीजमन्त्रोंमें प्रणव (ओंकार), दारुण पदार्थोंमें विष, व्यापक वस्तुओंमें आकाश तथा आत्माओंमें परमात्मा हैं ॥ ४२-४३ ॥

आप सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें मन, सभी प्रकारके दानोंमें अभयदान, पवित्र करनेवालोंमें जल तथा जीवित करनेवाले पदार्थोंमें अमृत हैं ॥ ४४ ॥

आप लाभोंमें पुत्रलाभ तथा वेगवानोंमें वायु हैं। आप सभी प्रकारके नित्यकर्मोंमें सन्ध्योपासन कहे गये हैं ॥ ४५ ॥

आप सम्पूर्ण यज्ञोंमें अश्वमेधयज्ञ, युगोंमें सत्ययुग, नक्षत्रोंमें पुष्य तथा तिथियोंमें अमावास्या हैं ॥ ४६ ॥

आप सभी ऋतुओंमें वसन्त, पर्वोंमें संक्रान्ति, तृणोंमें कुश और स्थूल वृक्षोंमें वटवृक्ष हैं ॥ ४७ ॥

आप योगोंमें व्यतीपात, लताओंमें सोमलता, बुद्धियोंमें धर्मबुद्धि तथा सुहृदोंमें कलत्र हैं। हे महेश्वर! आप सम्पूर्ण पवित्र साधनोंमें प्राणायाम हैं तथा सभी ज्योतिर्लिंगोंमें विश्वेश्वर कहे गये हैं ॥ ४८-४९ ॥

आप सभी बन्धुओंमें धर्म, आश्रमोंमें संन्यासाश्रम, सभी वर्गोंमें मोक्ष तथा रुद्रोंमें नीललोहित हैं ॥ ५० ॥

आप आदित्योंमें वासुदेव, वानरोंमें हनुमान्, यज्ञोंमें जपयज्ञ तथा शस्त्रधारियोंमें राम हैं ॥ ५१ ॥

आप गन्धर्वोंमें चित्ररथ, वसुओंमें पावक, मासोंमें अधिमास और व्रतोंमें चतुर्दशीव्रत हैं ॥ ५२ ॥

आप गजेन्द्रोंमें ऐरावत, सिद्धोंमें कपिल, नागोंमें अनन्त और पितरोंमें अर्यमा माने गये हैं। आप कलना करनेवालोंमें काल तथा दैत्योंमें बलि हैं। हे देवेश! अधिक कहनेसे क्या लाभ, आप सारे जगत्को आक्रान्तकर बाहर तथा भीतर सर्वत्र एकांशरूपसे स्थित हैं ॥ ५३—५५ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! इस प्रकार सिर झुकाकर हाथ जोड़कर अनेक प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंसे त्रिशूलधारी परमेश्वर, वृषभध्वज महादेवकी स्तुतिकर स्वार्थसाधनमें कुशल इन्द्र आदि सभी देवता अत्यन्त दीन हो प्रस्तुत स्वार्थकी बात कहने लगे— ॥ ५६-५७ ॥

देवता बोले—हे महादेव! हे भगवन्! इन्द्रसहित सभी देवताओंको तारकासुरके तीनों पुत्रोंने पराजित कर दिया। उन्होंने समस्त त्रैलोक्यको अपने वशमें कर लिया है। उन लोगोंने सभी मुनिवरों तथा सिद्धोंका विध्वंस कर दिया है और सारे जगत्को तहस-नहस कर दिया है। वह भयंकर दैत्य समस्त यज्ञभागोंको स्वयं ग्रहण करता है। उन तारकपुत्रोंने वेदविरुद्ध अधर्मको बढ़ावा दे रखा है ॥ ५८—६० ॥

हे शंकर! वे तारकपुत्र सभी प्राणियोंसे निश्चित रूपसे अवध्य हैं, सभी लोग उन्हींकी इच्छासे कार्य करते हैं ॥ ६१ ॥

जबतक त्रिपुरवासी दैत्योंके द्वारा जगत्का विध्वंस नहीं हो जाता है, तबतक आप ऐसी नीतिका निर्धारण करें, जिससे जगत्की रक्षा हो सके ॥ ६२ ॥

सनत्कुमार बोले—वार्तालाप करते हुए उन इन्द्रादि देवताओंका यह वचन सुनकर शिवजीने कहा— ॥ ६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें देवस्तुतिवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय

त्रिपुरके विनाशके लिये देवताओंका विष्णुसे निवेदन करना, विष्णुद्वारा त्रिपुरविनाशके लिये यज्ञकुण्डसे भूतसमुदायको प्रकट करना, त्रिपुरके भयसे भूतोंका पलायित होना, पुनः विष्णुद्वारा देवकार्यकी सिद्धिके लिये उपाय सोचना

शिवजी बोले—हे देवताओ! इस समय यह त्रिपुराध्यक्ष पुण्यवान् है, जिसमें पुण्य हो, उसे विद्वानोंको कभी नहीं मारना चाहिये। हे देवताओ! मैं देवताओंके समस्त बड़े कष्टोंको जानता हूँ। वे दैत्य प्रबल हैं, देवता तथा असुर कोई भी उन्हें मारनेमें समर्थ नहीं है ॥ १-२ ॥

दानव मयसहित वे सभी तारकपुत्र पुण्यवान् हैं, त्रिपुरमें रहनेवाले उन सभीका वध दुःसाध्य है ॥ ३ ॥

युद्धमें अजेय होते हुए भी मैं जान-बूझकर किस

प्रकार मित्रद्रोहका आचरण करूँ; क्योंकि स्वयम्भूने पहले कहा है कि मित्रद्रोह करनेमें महान् पाप होता है॥ ४॥

ब्रह्महत्यारा, सुरापान करनेवाला, स्वर्णकी चोरी करनेवाला तथा व्रतभंग करनेवाला—इन सभीके लिये शास्त्रकारोंने प्रायश्चित्त बताया है, किंतु कृतघ्नके लिये कोई प्रायश्चित्त-विधान नहीं है। हे देवताओ! धर्मके ज्ञाता आपलोग ही धर्मपूर्वक विचार करें कि वे दैत्य मेरे भक्त हैं, तब मैं उनका वध किस प्रकार कर सकता हूँ? हे देवताओ! जबतक वे मुझमें भक्ति रखते हैं, तबतक मैं उन्हें नहीं मार सकता तथापि आपलोग विष्णुसे इस कारणको बताइये॥ ५—७॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! उनका यह वचन सुनकर इन्द्र आदि सभी देवताओंने सर्वप्रथम इस बातको ब्रह्माजीसे कहा। तदनन्तर ब्रह्माजीको आगेकर इन्द्रसहित सभी देवता शोभासम्पन्न वैकुण्ठधामको शीघ्र गये॥ ८-९॥

वहाँ जाकर आश्चर्यचकित उन देवताओंने विष्णुको देखकर उन्हें प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर परम भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की, उसके अनन्तर सर्वसमर्थ उन विष्णुसे पूर्वकी भाँति अपने दुःखका समस्त कारण शीघ्र निवेदित किया। तब त्रिपुरवासियोंके द्वारा दिये गये देवगणोंके दुःखको सुनकर तथा उनके व्रतको जानकर विष्णुने यह वचन कहा—॥ १०—१२॥

विष्णु बोले—यह बात सत्य है कि जहाँ सनातनधर्म विद्यमान होता है, वहाँ दुःख उसी प्रकार नहीं होता, जिस प्रकार सूर्यके दिखायी देनेपर अन्धकार नहीं रहता है॥ १३॥

सनत्कुमार बोले—इस बातको सुनकर दुःखित तथा मुरझाये हुए मुखकमलवाले देवता विष्णुसे पुनः कहने लगे—॥ १४॥

देवगण बोले—अब क्या करना चाहिये, यह दुःख किस प्रकारसे दूर हो, हमलोग कैसे सुखी रहें तथा किस प्रकारसे निवास करें। इस त्रिपुरके जीवित रहते धर्माचरण किस प्रकार हो सकेंगे, ये त्रिपुरवासी तो निश्चय ही देवताओंको दुःख देनेवाले हैं॥ १५-१६॥

[हे विष्णो!] आप या तो त्रिपुरका वध कीजिये, अन्यथा देवताओंको ही अकालमें मार डालिये॥ १७॥

सनत्कुमार बोले—तब इस प्रकार कहकर वे देवता बारंबार बड़े दुखी हुए और न तो विष्णुके पाससे उन्हें जाते बना और न तो रुकते ही बना। तब विष्णुने उन देवताओंको इस प्रकारसे हीन तथा विनययुक्त देखकर अपने मनमें विचार किया कि देवताओंकी सहायता करनेवाला मैं इन देवताओंके कार्यके लिये कौन-सा उपाय करूँ, तारकासुरके वे पुत्र भी तो शिवजीके भक्त ही हैं॥ १८—२०॥

ऐसा सोचकर उसी समय सर्वसमर्थ उन विष्णुने देवताओंके कार्यके लिये अक्षय यज्ञोंका स्मरण किया॥ २१॥

उन विष्णुके स्मरणमात्रसे वे यज्ञ उसी क्षण शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ गये, जहाँ लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम विद्यमान थे। उसके बाद उन्होंने हाथ जोड़कर प्रणाम करके यज्ञपति पुराणपुरुष श्रीहरिकी स्तुति की। तब सनातन भगवान् विष्णुने भी उन सनातन यज्ञोंको देखकर पुनः इन्द्रसहित देवताओंकी ओर देखकर उनसे कहा—॥ २२—२४॥

विष्णु बोले—हे देवगण! आपलोग त्रिपुरोंके विनाश एवं तीनों लोकोंके कल्याणके निमित्त इन यज्ञोंद्वारा सदा परमेश्वरका यजन कीजिये॥ २५॥

सनत्कुमार बोले—देवाधिदेव बुद्धिमान् विष्णुका वचन सुनकर वे देवता प्रेमपूर्वक यज्ञेशको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। हे मुने! इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् सम्पूर्ण विधियोंके ज्ञाता वे देवता यज्ञोक्त विधानसे यज्ञपुरुषका यजन करने लगे॥ २६-२७॥

तब उस यज्ञकुण्डसे शूल, शक्ति और गदा हाथमें धारण किये महाकाय हजारों भूतसमुदाय उत्पन्न हुए॥ २८॥

उन देवताओंने हाथमें शूल-शक्ति-गदा-दण्ड-धनुष तथा शिलाका आयुध धारण किये हुए, इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके अस्त्र धारण किये हुए, नाना प्रकारके वेष धारण किये हुए, कालाग्नि रुद्रके समान तथा कालसूर्यके समान प्रतीत होनेवाले उन हजारों भूत-समुदायोंको देखा। अपने आगे खड़े उन भूतोंको देखकर और उन्हें प्रणामकर रुद्रकी आज्ञाका पालन करनेवाले यज्ञपति श्रीमान् विष्णु उनसे कहने लगे—॥ २९—३१॥

विष्णुजी बोले—हे भूतगणो! तुम मेरी बात सुनो। तुमलोग महाबलवान् हो, अतः देवकार्यके लिये तत्पर हो शीघ्र त्रिपुरको जाओ। हे भूतगणो! वहाँ जाकर दैत्योंके तीनों पुरोंको तोड़-फोड़कर तथा जलाकर पुनः लौट आना, इसके बाद अपने कल्याणके लिये जहाँ

इच्छा हो, वहाँ चले जाना॥ ३२-३३॥

सनत्कुमार बोले—तब भगवान् विष्णुकी वह बात सुनकर वे भूतगण उन देवाधिदेवको प्रणामकर दैत्योंके त्रिपुरकी ओर चल दिये। वहाँ जाकर त्रिपुरमें प्रवेश करते ही वे त्रिपुरके अधिपतिके तेजमें उसी प्रकार शीघ्र भस्म हो गये, जैसे अग्निमें पतिंगे भस्म हो जाते हैं। उनमें जो कोई शेष बचे, वे भाग गये और वहाँसे निकलकर व्याकुल हो शीघ्र विष्णुके समीप चले आये॥ ३४—३६॥

तब पुरुषोत्तम भगवान् हरि उनको देखकर तथा वह सारा वृत्तान्त सुनकर और इन्द्रसहित सभी देवताओंको दुखी जानकर सन्तप्तचित्त हो गये और सोचने लगे कि इस समय कौन-सा कार्य करना चाहिये। उन दैत्योंके तीनों पुरोंको बलपूर्वक नष्ट करके मैं देवताओंका कार्य किस प्रकार करूँ—वे इसी चिन्तासे व्याकुल हो उठे॥ ३७—३९॥

धर्मात्माओंका अभिचारसे भी नाश नहीं होता, इसमें संशय नहीं है—ऐसा श्रुतिके आचारको प्रमाणित करनेवाले शंकरजीने स्वयं कहा है। हे श्रेष्ठ देवताओ! त्रिपुरमें रहनेवाले वे सभी दैत्य बड़े धर्मनिष्ठ हैं, इसलिये सर्वथा अवध्य हैं, यह बात असत्य नहीं है। वे महान् पाप करके भी रुद्रकी अर्चना करते हैं, इसलिये सभी प्रकारके पापोंसे वैसे ही मुक्त हो जाते हैं, जैसे पद्मपत्र जलसे पृथक् रहता है। हे देवताओ! रुद्रकी अर्चनासे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और पृथ्वीके अनेक प्रकारके भोग एवं सम्पत्तियाँ वशीभूत हो जाती हैं। अतः लिंगार्चनपरायण ये दैत्य इस लोकमें अनेक प्रकारकी सम्पत्तिका भोग कर रहे हैं और परलोकमें भी उन्हें मोक्ष प्राप्त होगा। फिर भी मैं अपनी मायासे उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न डालकर देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त क्षणभरमें त्रिपुरका संहार करूँगा—इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् वे भगवान् पुरुषोत्तम उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न करनेके लिये तत्पर हो गये॥ ४०—४६॥

जबतक उनमें वेदके धर्म हैं, जबतक वे शंकरकी अर्चना करते हैं और जबतक वे पवित्र कृत्य करते हैं, तबतक उनका नाश नहीं हो सकता। इसलिये अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि वहाँसे वेदधर्म चला जाय, तब वे दैत्य लिंगार्चन त्याग देंगे, इसमें सन्देह नहीं—ऐसा निश्चय करके विष्णुजीने उन दैत्योंके धर्ममें विघ्न करनेके लिये श्रुतिखण्डनरूप उपाय किया। इसके बाद त्रैलोक्यरक्षणके लिये शिवके द्वारा आदिष्ट देवसहायक उन विष्णुने शिवकी आज्ञासे देवताओंसे कहा— ॥ ४७—५०॥

विष्णुजी बोले—हे देवो! [इस समय] आप सभी लोग निश्चित रूपसे अपने घरको चले जायँ, मैं अपनी बुद्धिके अनुसार देवताओंका कार्य अवश्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। मैं बड़े यत्नसे उन्हें रुद्रसे अवश्य विमुख करूँगा और तब शिवजी अपनी शक्तिसे रहित जानकर उन्हें भस्म कर देंगे॥ ५१-५२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! तब वे देवगण विष्णुकी आज्ञाको सिरपर धारणकर कुछ निश्चिन्त हुए और फिर ब्रह्माके द्वारा आश्वासित होनेपर प्रसन्न हो अपने-अपने स्थानोंको चले गये। इसके बाद विष्णुने देवताओंके लिये जो उत्तम उपाय किया, उसे आप भलीभाँति सुनिये, वह सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ ५३-५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें त्रिपुरवधोपाख्यानान्तर्गत भूतत्रिपुरधर्मवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

त्रिपुरवासी दैत्योंको मोहित करनेके लिये भगवान् विष्णुद्वारा एक मुनिरूप पुरुषकी उत्पत्ति, उसकी सहायताके लिये नारदजीका त्रिपुरमें गमन, त्रिपुराधिपका दीक्षा ग्रहण करना

सनत्कुमार बोले—उन महातेजस्वी विष्णुने उनके धर्ममें विघ्न उत्पन्न करनेके लिये अपने ही शरीरद्वारा एक मायामय मुनिरूप पुरुषको उत्पन्न किया॥ १॥

वह अपना सिर मुड़ाये हुए, मलिन वस्त्र धारण किये हुए, हाथमें एक गुम्फि (काष्ठ)-का पात्र लिये हुए, दूसरे हाथमें झाड़ू लिये तथा उससे पग-पगपर बुहारी करता

हुआ, हस्तपरिमाणका वस्त्र अपने मुखपर लपेटे हुए विकल वाणीसे धर्म-धर्म इस प्रकार कह रहा था॥ २-३॥

वह उन विष्णुको प्रणामकर उनके आगे स्थित हो गया, इसके बाद उसने हाथ जोड़कर पूज्य, अच्युत विष्णुसे यह वचन कहा—हे अरिहन्! [शत्रुनाशक] मैं क्या करूँ? इसके लिये आज्ञा दीजिये। हे देव! मेरे क्या-क्या नाम होंगे? हे प्रभो! मेरे स्थानका भी निर्देश कीजिये। इस प्रकार उसका यह शुभ वचन सुनकर भगवान् विष्णु प्रसन्नचित्त होकर यह वचन कहने लगे—॥ ४—६॥

विष्णुजी बोले—मेरे शरीरसे उत्पन्न हे महाप्राज्ञ! मैंने जिसके लिये तुम्हारा निर्माण किया है, उसे सुनो, मैं कह रहा हूँ। तुम मेरे ही रूप हो, इसमें सन्देह नहीं है॥ ७॥

मेरे शरीरसे उत्पन्न हुए तुम मेरा कार्य करनेमें समर्थ हो। तुम मुझसे अभिन्न हो, इसलिये [लोकमें] सदा पूज्य होओगे, इसमें संशय नहीं है॥ ८॥

तुम्हारा नाम अरिहन् होगा, तुम्हारे अन्य भी शुभ नाम होंगे। मैं तुम्हारे स्थानको बादमें बताऊँगा, इस समय मेरा प्रस्तुत कार्य आदरसे सुनो॥ ९॥

हे मायावी! तुम सोलह हजार श्लोकोंवाला एक शास्त्र प्रयत्नपूर्वक बनाओ, जो मायामय, श्रुति-स्मृतिसे विरुद्ध, वर्णाश्रमधर्मसे रहित, अपभ्रंश शब्दोंसे युक्त और कर्मवादपर आधारित हो, आगे चलकर उसका विस्तार होगा। मैं तुम्हें उस शास्त्रके निर्माणका सामर्थ्य देता हूँ। अनेक प्रकारकी माया भी तुम्हारे अधीन हो जायगी॥ १०—१२॥

उन परमात्मा श्रीविष्णुका वचन सुनकर वह मायावी प्रणामकर जनार्दनसे कहने लगा—॥ १३॥

मुण्डी बोला—हे देव! मुझे जो करना हो, उसे शीघ्र बताइये। हे प्रभो! आपकी आज्ञासे सारा कार्य सिद्ध होगा॥ १४॥

सनत्कुमार बोले—मुण्डीके द्वारा ऐसा कहे जानेपर भगवान्ने उसे मायामय शास्त्र पढ़ाया और बताया कि स्वर्ग-नरककी प्रतीति यहींपर है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १५॥

उसके बाद विष्णुने शिवजीके चरणकमलका स्मरण करके उससे पुनः कहा कि तुम त्रिपुरमें रहनेवाले इन समस्त दैत्योंको मोहित करो। तुम उन्हें दीक्षित करो और प्रयत्नपूर्वक इस शास्त्रको पढ़ाओ। हे महामते! मेरी आज्ञाके कारण तुम्हें [ऐसा करनेसे] दोष नहीं लगेगा। हे यते! इसमें सन्देह नहीं कि वहाँ श्रौत-स्मार्त धर्म प्रकाश कर रहे हैं, किंतु तुम इस विद्याके द्वारा उन सभीको धर्मसे च्युत करो॥ १६—१८॥

हे मुण्डिन्! अब तुम उन त्रिपुरवासियोंके विनाशके लिये जाओ और तमोगुणी धर्मको प्रकाशितकर तीनों पुरोंका नाश करो। हे विभो! उसके बाद वहाँसे मरुस्थलमें जाकर कलियुगके आनेतक वहीं अपने धर्मके साथ निवास करना और उस युगके आ जानेपर तुम शिष्य-प्रशिष्योंके साथ अपने धर्मका प्रचार करना और उसीका व्यवहार करना॥ १९—२१॥

मेरी आज्ञासे तुम्हारे इस धर्मका निश्चित रूपसे विस्तार होगा तथा मेरी आज्ञामें तत्पर होकर तुम मेरी गति प्राप्त करोगे। इस प्रकार देवाधिदेव शंकरकी आज्ञासे सर्वसमर्थ विष्णुने उसे हृदयसे आदेश दिया, इसके बाद विष्णुजी अन्तर्धान हो गये॥ २२-२३॥

उसके बाद उस मुण्डीने विष्णुकी आज्ञाका पालन करते हुए उस समय अपने रूपके अनुसार चार शिष्योंका निर्माण किया और उन्हें स्वयं मायामय शास्त्र पढ़ाया॥ २४॥

जैसा वह स्वयं था, उसी प्रकारके वे चारों शुभ मुण्डी भी थे, वे परमात्मा श्रीविष्णुको नमस्कारकर वहींपर स्थित हो गये। हे मुने! तब शिवकी आज्ञाका पालन करनेवाले श्रीविष्णुने भी परम प्रसन्न होकर उन चारों शिष्योंसे स्वयं कहा—जैसे तुमलोगोंके गुरु हैं, वैसे ही मेरी आज्ञासे तुमलोग भी बनो। तुमलोग धन्य हो और इस लोकमें सद्गति प्राप्त करोगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ २५—२७॥

इसके बाद वे चारों मुण्डी हाथमें पात्र लिये, नासिकापर वस्त्र बाँधे, मलिन वस्त्र धारण किये हुए, अत्यधिक न बोलते हुए 'धर्म ही लाभ तथा परम तत्त्व है'—ऐसा अति हर्षपूर्वक कहते हुए, वस्त्रके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे बनी हुई मार्जनी धारण किये हुए और जीवहिंसाके भयसे धीरे-धीरे चलते हुए विचरण करने लगे। हे मुने! तब वे सभी प्रसन्न होकर देवाधिदेव श्रीविष्णुको नमस्कारकर उनके आगे स्थित हो गये॥ २८—३१॥

उसके अनन्तर भगवान् विष्णुने उनका हाथ पकड़कर उन्हें गुरुको अर्पित कर दिया और अत्यन्त प्रेमके साथ

विशेषरूपसे उनके नामोंको बताया और कहा—जैसे तुम मेरे हो, उसी प्रकार ये भी मेरे हैं, इसमें संशय नहीं है। तुम्हारा आदिरूप है, इसलिये आदिरूप यह नाम होगा और पूज्य होनेसे तुम पूज्य भी कहे जाओगे॥ ३२-३३ ॥

ऋषि, यति, कीर्य एवं उपाध्याय—ये नाम भी तुमलोगोंके प्रसिद्ध होंगे। तुमलोगोंको मेरे भी शुभ नामको ग्रहण करना चाहिये। अरिहन्—यह मेरा नाम ध्यानयोग्य तथा पापनाशक है। अब आपलोगोंको लोककल्याणकारी कार्य करते रहना चाहिये। लोकके अनुकूल आचरण करते हुए तुमलोगोंकी उत्तम गति होगी॥ ३४—३६ ॥

सनत्कुमार बोले—इसके बाद विष्णुको प्रणाम करके वह मायावी अपने शिष्योंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र ही शिवकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेवाले त्रिपुरके पास गया। महामायावी विष्णुद्वारा प्रेरित वह जितेन्द्रिय ऋषि त्रिपुरमें शीघ्र प्रविष्ट होकर मायाचार करने लगा। उसने शिष्योंके सहित नगरके उपवनमें निवासकर बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहित करनेवाली माया फैलायी॥ ३७—३९ ॥

हे मुने! जब शिवजीके अर्चनके प्रभावके कारण उसकी माया त्रिपुरमें सहसा न चल सकी, तो यति व्याकुल हो उठा। इसके बाद उत्साहहीन तथा चेतनारहित उसने दुखी मनसे विष्णुका स्मरण किया और हृदयसे उनकी स्तुति की। उसके द्वारा स्मरण किये गये विष्णुजीने हृदयमें शंकरजीका ध्यान किया और उनकी आज्ञा प्राप्तकर शीघ्र ही मनसे नारदजीका स्मरण किया॥ ४०—४२ ॥

विष्णुजीके स्मरण करते ही नारदजी उपस्थित हुए और उन्हें प्रणामकर तथा उनकी स्तुतिकर हाथ जोड़े हुए वे उनके आगे खड़े हो गये। तब बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ विष्णुजीने नारदजीसे कहा—आप तो सर्वदा लोकोपकारमें निरत तथा देवताओंका कार्य करनेवाले हैं। हे तात! मैं शिवजीकी आज्ञासे कहता हूँ कि आप शीघ्र ही त्रिपुरमें जायँ, उस पुरके निवासियोंको मोहित करनेके लिये एक ऋषि अपने शिष्योंके साथ वहाँ गये हैं॥ ४३—४५ ॥

सनत्कुमार बोले—उनका यह वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी बड़ी शीघ्रतासे वहाँ गये, जहाँ मायावियोंमें श्रेष्ठ वह ऋषि था। नारदजी भी बड़े मायावी थे, उन्होंने मायावी प्रभु [विष्णु]-की आज्ञासे उस पुरमें प्रवेशकर उस मायावीसे दीक्षा ग्रहण कर ली। उसके बाद नारदजीने त्रिपुराधिपतिके पास जाकर उसका कुशल-मंगल आदि पूछकर राजासे सारा वृत्तान्त कहा॥ ४६—४८ ॥

नारदजी बोले—[हे राजन्!] धर्मपरायण सभी विद्याओंमें पारंगत और वेदविद्यामें प्रवीण कोई यति आपके नगरमें आया है। हमने बहुत धर्म देखे हैं, परंतु इसके समान नहीं। इसके सनातनधर्मको देखकर हमने इससे दीक्षा ले ली है। अतः हे दैत्यसत्तम! हे महाराज! यदि आपकी भी इच्छा उस धर्ममें हो, तो आप भी उस धर्मकी दीक्षा ग्रहण कर लें॥ ४९—५१ ॥

सनत्कुमार बोले—नारदजीका विशद अर्थगर्भित वचन सुनकर वह दैत्याधिपति बड़ा विस्मित हो उठा और मोहित होकर मनमें कहने लगा कि जब नारदजीने स्वयं दीक्षा ली है, तो हम भी उससे दीक्षा ग्रहण कर लें—ऐसा सोचकर वह स्वयं वहाँ गया॥ ५२-५३ ॥

उसके स्वरूपको देखकर उसकी मायासे मोहित दैत्यने उस महात्माको नमस्कार करके यह वचन कहा— ॥ ५४ ॥

त्रिपुराधिप बोला—पवित्र अन्तःकरणवाले हे ऋषे! आप मुझे भी दीक्षा दीजिये, मैं आपका शिष्य बनूँगा, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ५५ ॥

दैत्यराजके इस निर्मल वचनको सुनकर उस सनातन ऋषिने प्रयत्नके साथ कहा—हे दैत्यसत्तम! यदि तुम मेरी आज्ञाका सर्वथा पालन करोगे, तभी मैं दीक्षा दे सकता हूँ, अन्यथा करोड़ों यत्न करनेपर भी दीक्षा नहीं दूँगा। इस प्रकार यह वचन सुनकर राजा मायाके अधीन हो गया और हाथ जोड़कर बड़ी शीघ्रतासे यतिसे यह वचन कहने लगा— ॥ ५६—५८ ॥

दैत्यराज बोला—आप जैसी आज्ञा देंगे, मैं वैसा ही करूँगा। उसके विपरीत नहीं करूँगा, मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करूँगा, यह सत्य है—सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ५९ ॥

सनत्कुमार बोले—त्रिपुराधिपतिका यह वचन सुनकर उस ऋषिश्रेष्ठने अपने मुखसे वस्त्र हटाकर उससे कहा—हे दैत्येन्द्र! आप सभी धर्मोंमें परम उत्तम इस दीक्षाको ग्रहण कीजिये, जिस दीक्षाके विधानसे तुम

कृतार्थ हो जाओगे ॥ ६०-६१ ॥

[सनत्कुमार बोले—] ऐसा कहकर उस मायावीने विधि-विधानके साथ अपने धर्ममें बतायी गयी दीक्षा उस दैत्यराजको शीघ्र ही प्रदान की। हे मुने! अपने सहोदरोंके सहित उस दैत्यराजके दीक्षित हो जानेपर सभी त्रिपुरवासी भी उस धर्ममें दीक्षित हो गये ॥ ६२-६३ ॥

हे मुने! उस समय महामायावी उस ऋषिके शिष्यों तथा प्रशिष्योंसे वह सम्पूर्ण त्रिपुर शीघ्र ही व्याप्त हो गया ॥ ६४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें सनत्कुमारपाराशर्यसंवादमें त्रिपुरदीक्षाविधानवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

मायावी यतिद्वारा अपने धर्मका उपदेश, त्रिपुरवासियोंका उसे स्वीकार करना, वेदधर्मके नष्ट हो जानेसे त्रिपुरमें अधर्माचरणकी प्रवृत्ति

व्यासजी बोले—उस मायावीके द्वारा मोहित दैत्यराजके दीक्षित हो जानेपर उस मायावीने क्या कहा और दैत्यराजने क्या किया? ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—उसे दीक्षा देकर नारदादि शिष्योंके द्वारा सेवित चरणकमलोंवाले अरिहन् यतिने दैत्यराजसे कहा— ॥ २ ॥

अरिहन् बोले—हे दैत्यराज! मेरे वचनको सुनो, जो वेदान्तका सार-सर्वस्व, परमोत्तम तथा रहस्यमय है। यह संसार कर्ता तथा कर्मसे रहित और अनादिकालसे स्वयंसिद्ध है। यह स्वयं उत्पन्न होता है तथा स्वयं विनष्ट भी हो जाता है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी शरीरधारी हैं, उनका एक आत्मा ही ईश्वर है, कोई दूसरा उनका शासक नहीं है। जिस प्रकार हम शरीरधारियोंके नाम हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि—ये नाम उन नामधारियोंके हैं, अनादि तो एक अरिहन् ही है ॥ ३—६ ॥

जिस प्रकार हमलोगोंका शरीर समय आनेपर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर मच्छरतकका शरीर अपने समयसे नष्ट हो जाया करता है ॥ ७ ॥

विचार करनेपर ज्ञात होता है कि शरीरमें कहीं भी कोई विशेषता नहीं है; क्योंकि सभी जीवधारियोंमें आहार, मैथुन, निद्रा तथा भय समान हैं ॥ ८ ॥

सभी शरीरधारी निराहार रहनेके उपरान्त भोजन प्राप्त करनेपर समान रूपसे तृप्त होते हैं, कम या अधिक नहीं। जैसे जब हम प्यासे होते हैं, तब प्रसन्नतापूर्वक जल पीकर तृप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्य प्राणी भी तृप्त होते हैं, किसीमें न्यूनाधिक्य नहीं होता। रूप-लावण्यसे युक्त चाहे सहस्रों स्त्रियाँ क्यों न हों, किंतु सहवासकालमें एक ही स्त्रीका उपभोग सम्भव है ॥ ९—११ ॥

अनेक प्रकारके घोड़े चाहे सौ हों, चाहे हजार हों, किंतु अपने अधिरोहणके समय एकका ही उपयोग सम्भव है, दूसरेका नहीं। निद्राकालमें पलंगपर सोनेवालेको जो सुख प्राप्त होता है, वही सुख निद्रासे व्याकुल हो पृथ्वीपर सोनेवालेको भी प्राप्त होता है। जैसे हम शरीरधारियोंको मरनेका भय है, उसी प्रकार ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सभीको मृत्युसे भय होता है ॥ १२—१४ ॥

यदि बुद्धिसे विचार किया जाय, तो सभी शरीरधारी समान हैं—ऐसा निश्चय करके किसीको भी कभी किसी जीवकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। पृथ्वीतलपर जीवोंपर दया करनेके समान कोई दूसरा धर्म नहीं है, अत: ऐसा जानकर सभी प्रकारके प्रयत्नोंद्वारा मनुष्योंको जीवोंपर दया करनी चाहिये। एक जीवकी भी रक्षा करनेसे जैसे तीनों लोकोंकी रक्षा हो जाती है, उसी प्रकार एक जीवके मारनेसे त्रैलोक्यवधका पाप लगता है, इसलिये जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये, हिंसा नहीं। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म है तथा आत्माको पीड़ा पहुँचाना पाप है, दूसरोंके अधीन न रहना ही मुक्ति है और अभिलषित भोजनकी प्राप्ति ही स्वर्ग है। प्राचीन विद्वानोंने उत्तम प्रमाणके साथ ऐसा कहा है, इसलिये नरकसे डरनेवाले मनुष्योंको हिंसा नहीं करनी चाहिये। इस चराचर जगत्में हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। हिंसक नरकमें जाता है तथा अहिंसक

स्वर्गको जाता है ॥ १५—२० ॥

संसारमें अनेक प्रकारके दान हैं, परंतु तुच्छ फल देनेवाले उन दानोंसे क्या लाभ? अभयदानके सदृश कोई दूसरा दान नहीं है। मनीषियोंने अनेक शास्त्रोंका विचारकर इस लोक तथा परलोकमें कल्याणके लिये चार दानोंका वर्णन किया है ॥ २१-२२ ॥

भयभीत लोगोंको अभय प्रदान करना चाहिये, रोगियोंको औषधि देनी चाहिये, विद्यार्थियोंको विद्या देनी चाहिये तथा भूखोंको अन्न प्रदान करना चाहिये। अनेक मुनियोंने जो-जो दान कहे हैं, वे अभयदानकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते ॥ २३-२४ ॥

मणि, मन्त्र एवं औषधिके प्रभाव तथा बलको अविचिन्त्य समझकर केवल यश तथा अर्थके उपार्जनके लिये ही उसका प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करना चाहिये ॥ २५ ॥

बहुत धन उपार्जितकर द्वादशायतनोंका ही चारों ओरसे पूजन करना चाहिये, दूसरोंके पूजनसे क्या लाभ? पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन एवं बुद्धि—यही शुभ द्वादशायतन कहा गया है ॥ २६-२७ ॥

प्राणियोंके लिये यहींपर स्वर्ग तथा नरक है, अन्यत्र कहीं नहीं। सुखका ही नाम स्वर्ग है तथा दुःखको नरक कहा गया है। सुखोंका भोग कर लेनेपर जो इस देहका परित्याग होता है, तत्त्वचिन्तकोंको इसे ही परम मोक्ष जानना चाहिये। वासनासहित समस्त क्लेशोंके नष्ट हो जानेपर अज्ञानके नाशको तत्त्वचिन्तकोंको मोक्ष जानना चाहिये ॥ २८—३० ॥

वेदवेत्ता इस श्रुतिको प्रामाणिक कहते हैं कि किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे। हिंसामें प्रवर्तन करनेवाली अन्य कोई श्रुति उपलब्ध नहीं है। अग्निष्टोमादि यज्ञोंसे सम्बद्ध जो पश्वालम्भन-श्रुति है, वह तो भ्रम उत्पन्न करनेवाली है और असज्जनोंके लिये है। पशुवधसे सम्बन्धित श्रुति तो ज्ञानियोंके लिये प्रमाण नहीं है। यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि वृक्षोंको काटकर, पशुओंका वधकर, उनके रुधिरका कीच बनाकर तथा आगमें तिल-घी आदिको जलाकर लोग स्वर्गकी अभिलाषा करते हैं ॥ ३१—३३ ॥

इस प्रकार उस त्रिपुराधिपतिसे अपना विचार कहकर समस्त त्रिपुरवासियोंको सुनाकर वह यति आदरसे वेदोंके विपरीत, देहमात्रको सुख देनेवाले और प्रत्यक्षपर ही विश्वास करनेवाले धर्मोंका पुनः वर्णन करने लगा— ॥ ३४-३५ ॥

श्रुति जो ऐसा कहती है कि आनन्द ही ब्रह्मका रूप है, उसे सही मानना चाहिये, अनेक धर्मोंकी कल्पना मिथ्या है। जबतक यह शरीर स्वस्थ है, जबतक इन्द्रियाँ निर्बल नहीं होतीं और जबतक वृद्धावस्था दूर है, तबतक सुखका उपभोग करते रहना चाहिये ॥ ३६-३७ ॥

अस्वस्थ हो जानेपर, इन्द्रियोंके विकल हो जानेपर एवं वृद्धावस्था आ जानेपर सुखकी प्राप्ति किस प्रकारसे हो सकती है? इसलिये सुख चाहनेवालोंको अपना शरीर भी याचना करनेवालोंको प्रदान कर देना चाहिये ॥ ३८ ॥

जिसका जन्म माँगनेवालोंकी मनोवृत्तिको प्रसन्न करनेके लिये नहीं हुआ, उसीसे यह पृथ्वी भारयुक्त है, समुद्रों, पर्वतों तथा वृक्षोंसे नहीं ॥ ३९ ॥

यह शरीर शीघ्र ही नष्ट होनेवाला है तथा संचित धन विनष्ट हो जानेवाले हैं—ऐसा जानकर ज्ञानवान्‌को देहसुखका उपाय करते रहना चाहिये ॥ ४० ॥

यह शरीर कुत्तों, कौवों तथा कीटोंका प्रातःकालीन भोजन है और शरीर अन्तमें भस्म होनेवाला है—ऐसा वेदमें ठीक ही कहा गया है। लोकोंमें जाति-कल्पना व्यर्थ ही की गयी है, सभी मनुष्य समान हैं तो कौन उच्च है और कौन नीच है! ॥ ४१-४२ ॥

प्राचीन पुरुष कहते हैं कि इस सृष्टिके आदिमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए, उनके विख्यात दक्ष तथा मरीचि दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ४३ ॥

जब मरीचिपुत्र कश्यपने दक्षकी सुन्दर नेत्रवाली तेरह कन्याओंसे धर्मपूर्वक विवाह किया तो फिर इस समयके अल्पबुद्धि तथा अल्प पराक्रमवाले लोगोंके द्वारा यह गम्य है, यह अगम्य है—ऐसा विचार व्यर्थ ही किया जाता है। मुख, बाहु, जंघा एवं चरणसे चारों वर्ण उत्पन्न हुए हैं—पूर्व पुरुषोंने यह कल्पना की है, जो कि विचार करनेपर ठीक नहीं लगती है ॥ ४४—४६ ॥

एक ही पुरुषसे एक ही शरीरसे यदि चार पुत्र उत्पन्न हुए तो वे भिन्न-भिन्न वर्णोंके किस प्रकार हो सकते हैं। अतः वर्ण एवं अवर्णका यह विभाग उचित नहीं प्रतीत होता है और इसलिये किसीको भी मनुष्यमें

कोई भेद नहीं मानना चाहिये ॥ ४७-४८ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! दैत्यपति तथा पुरवासियोंसे आदरपूर्वक ऐसा कहकर शिष्योंसहित उस यतिने वेदधर्मोंका नाश कर दिया। पातिव्रत्यरूपी महान् स्त्रीधर्मको तथा समस्त पुरुषोंके जितेन्द्रियत्वधर्मको खण्डित कर दिया। देवधर्म, श्राद्धधर्म, यज्ञधर्म, व्रत-तीर्थ विशेषरूपसे श्राद्ध, शिवपूजा, लिंगार्चन, विष्णु-सूर्य-गणेश आदिका विधिपूर्वक पूजन और विशेष रूपसे पर्वकालमें किये जानेवाले स्नान-दान आदि इन सबका खण्डन किया। हे विप्रेन्द्र! बहुत कहनेसे क्या लाभ! मायावियोंमें श्रेष्ठ उस मायावी यतिने त्रिपुरमें जो कुछ भी धर्म थे, उन सबको दूर कर दिया ॥ ४९—५४ ॥

त्रिपुरकी सभी स्त्रियाँ उस यतिके धर्मका आश्रय लेकर मोहमें पड़ गयीं और उन्होंने पतिकी सेवाके उत्तम विचारका त्याग कर दिया। आकर्षण एवं वशीकरण विद्याका अभ्यासकर मोहित हुए पुरुष दूसरोंकी स्त्रियोंमें अपने मनोरथ सफल करने लगे ॥ ५५-५६ ॥

अन्त:पुरकी स्त्रियाँ, राजकुमार, पुरवासी, पुरकी स्त्रियाँ आदि सभी मोहित हो गये ॥ ५७ ॥

इस प्रकार सभी पुरवासियोंके अपने धर्मोंसे सर्वथा विमुख हो जानेपर अधर्मकी वृद्धि होने लगी ॥ ५८ ॥

हे प्रभो! उन देवाधिदेव विष्णुजीकी मायासे और उनकी आज्ञासे स्वयं दरिद्रताने त्रिपुरमें प्रवेश किया ॥ ५९ ॥

उन लोगोंने जिस महालक्ष्मीको तपस्याके द्वारा श्रेष्ठ देवेश्वरसे प्राप्त किया था, प्रभु ब्रह्मदेवकी आज्ञासे उन्हें छोड़कर वह बाहर चली गयी ॥ ६० ॥

इस प्रकार विष्णुकी मायासे निर्मित उस प्रकारके बुद्धिमोहको उन्हें क्षणभरमें देकर वे नारदजी कृतार्थ हो गये। उन नारदने भी उस मायावी-जैसा रूप धारण कर लिया था, फिर भी परमेश्वरके अनुग्रहसे वे विकारयुक्त नहीं हुए। हे मुने! दोनों भाइयों तथा मयसहित वह दैत्यराज भी शिवजीकी इच्छासे पराक्रमहीन हो गया ॥ ६१—६३ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें त्रिपुरमोहनवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

त्रिपुरध्वंसके लिये देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे विभो! भाइयों तथा पुरवासियोंसहित उस दैत्यराजके मोहित हो जानेपर क्या हुआ, वह सारा वृत्तान्त कहिये ॥ १ ॥

सनत्कुमार बोले—त्रिपुरके वैसा हो जानेपर, उस दैत्यके शिवार्चनका त्याग कर देनेपर और वहाँका सम्पूर्ण स्त्रीधर्म नष्ट हो जानेपर तथा दुराचारके फैल जानेपर लक्ष्मीपति विष्णु कृतार्थ होकर देवताओंके साथ उसके चरित्रको शिवजीसे कहनेके लिये कैलास पहुँचे ॥ २-३ ॥

देवताओंके साथ ब्रह्मासहित उनके पास स्थित होकर उन पुरुषोत्तम रमापति विष्णुने समाधिसे तथा मनसे प्राप्त होनेवाले उन सर्वज्ञ परमेश्वर सदाशिवकी इष्ट वाणीसे स्तुति की ॥ ४-५ ॥

विष्णुजी बोले—आप महेश्वर, देव, परमात्मा, नारायण, रुद्र, ब्रह्मा तथा परब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है। ऐसा कहकर महादेवको दण्डवत् प्रणाम करके शिवमें अपना मन लगाये हुए प्रभु विष्णुने अपने स्वामी उन परमेश्वर शिवका मनसे स्मरण करते हुए जलमें स्थित हो दक्षिणामूर्तिसे उत्पन्न हुए रुद्रमन्त्रका डेढ़ करोड़ जप किया। उस समय सभी देवता भी उन महेश्वरमें अपना मन लगाकर उनकी स्तुति करने लगे— ॥ ६—९ ॥

देवता बोले—सबमें आत्मरूपसे विराजमान, सबके दु:खोंको दूर करनेवाले, रुद्र, नीलकण्ठ, चैतन्यरूप एवं प्रचेता आप शंकरको नमस्कार है ॥ १० ॥

आप हम सबकी आपत्तियोंको दूर करनेवाले हैं तथा हम सबकी गति हैं। हे दैत्यसूदन! आप सर्वदा हमलोगोंसे वन्दनीय हैं। आप आदि, अनादि, स्वात्मानन्द, अक्षयरूप तथा प्रभु हैं। आप ही जगत्प्रभु तथा साक्षात् प्रकृति एवं पुरुषके भी स्रष्टा हैं ॥ ११-१२ ॥

आप ही रज, सत्त्व तथा तमोगुणसे युक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रस्वरूप होकर जगत्‌का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं। आप इस जगत्‌में सबको तारनेवाले, सबके स्वामी, अविनाशी, वर देनेवाले, वाणीमय, वाच्य और वाच्य-वाचकभावसे रहित भी हैं॥ १३-१४॥

योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ योगिजन मुक्तिके लिये आप ईशानसे ही याचना करते हैं। आप ही योगियोंके हृदयरूप कमलमें विराजमान हैं॥ १५॥

सभी वेद एवं सन्तगण आपको ही तेजोराशि, परात्परस्वरूप और तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यसे जाननेयोग्य परब्रह्मस्वरूप कहते हैं॥ १६॥

हे विभो! हे शर्व! हे सर्वात्मन्! हे त्रिलोकाधिपते! हे भव! इस संसारमें जिसे परमात्मा कहा जाता है, वह आप ही हैं॥ १७॥

हे जगद्गुरो! आपको ही दृष्ट, श्रुत, जाननेयोग्य, छोटेसे भी छोटा एवं महान्‌से भी महान् कहा गया है॥ १८॥

आपके हाथ, चरण, नेत्र, सिर, मुख, कान तथा नासिका सभी दिशाओंमें व्याप्त हैं, अतः मैं आपको सभी ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ १९॥

हे सर्वव्यापिन्! आप सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, अनावृत, विश्वरूप, विरूपाक्षको मैं सब ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ २०॥

सर्वेश्वर, संसारके अधिष्ठाता, सत्य, कल्याणकारी, सर्वोत्तम, करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान आपको मैं सब ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ २१॥

विश्वदेव, आदि-अन्तसे रहित, छत्तीस तत्त्वोंवाले, सबसे महान् और सबको प्रवृत्त करनेवाले—आपको मैं सब ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ २२॥

प्रकृतिको प्रवृत्त करनेवाले, सबके प्रपितामह, सर्वविग्रह तथा ईश्वर आपको मैं सब ओरसे नमस्कार करता हूँ॥ २३॥

जो श्रुतियाँ तथा श्रुतिसिद्धान्तवेत्ता हैं, वे आपको ही वरद, सबका निवासस्थान, स्वयम्भू तथा श्रुतिसारज्ञाता कहते हैं॥ २४॥

आपने इस लोकमें जो अनेक प्रकारकी सृष्टि की है, वह हमलोगोंके दृष्टिपथमें नहीं आ सकती। देवता, असुर, ब्राह्मण, स्थावर, जंगम तथा अन्य जो भी हैं, उनका कर्ता आपको ही कहते हैं॥ २५॥

हे शम्भो! हे देववल्लभ! क्षणभरमें असुरोंका वध करके त्रिपुराधिपके द्वारा विनष्ट किये जा रहे हम अनन्यगतिवाले देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ २६॥

हे परमेश्वर! हे प्रभो! इस समय वे असुर विष्णुजीके द्वारा बताये गये उपायसे आपकी मायाद्वारा मोहित हो रहे हैं और धर्मसे बहिर्मुख हो रहे हैं॥ २७॥

हे भक्तवत्सल! उन दैत्योंने हमलोगोंके भाग्यसे समस्त धर्मोंका त्याग कर दिया है और वेदविरुद्ध धर्मोंका आश्रय ले लिया है॥ २८॥

हे शरणप्रद! आप तो सदासे ही देवताओंका कार्य करनेवाले हैं और इस समय हम आपकी शरणमें आये हुए हैं, आप जैसा चाहें, वैसा करें॥ २९॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार महेश्वरकी स्तुतिकर वे देवता दीन हो हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर उनके आगे खड़े हो गये॥ ३०॥

इस प्रकार इन्द्रादि देवताओंके द्वारा स्तुति किये जानेपर तथा विष्णुके जपसे प्रसन्न हुए भगवान् सर्वेश्वर बैलपर सवार हो वहाँ गये॥ ३१॥

वहाँपर नन्दीश्वरसे उतरकर विष्णुका आलिंगन

करके प्रसन्नचित्तवाले प्रभु नन्दीश्वरपर हाथ रखकर सभीकी ओर मनोहर दृष्टिसे देखने लगे॥ ३२॥

तत्पश्चात् पार्वतीपति शंकर प्रसन्न होकर कृपादृष्टिसे देवताओं एवं विष्णुजीकी ओर देखकर गम्भीर वाणीमें कहने लगे— ॥ ३३ ॥

शिवजी बोले—हे सुरेश्वर! इस समय मैंने देवताओंका कार्य भलीभाँति जान लिया है तथा महाबुद्धिमान् विष्णु एवं नारदके मायाबलको भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ॥ ३४ ॥

हे देवसत्तम! मैं उन अधर्मी दैत्यों तथा त्रिपुरका विनाश करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ३५ ॥

किंतु दृढ़ मनवाले वे महादैत्य मेरे भक्त हैं, यद्यपि मायासे मोहित होकर उन्होंने धर्मका त्याग कर दिया है, इसलिये मैं किस प्रकार उनका वध कर सकता हूँ॥ ३६ ॥

जब त्रिपुरमें रहनेवाले सभी दैत्य मेरी भक्तिसे रहित हो गये हैं, तो उनका वध भगवान् विष्णु करेंगे, जिन्होंने बहानेसे दैत्योंको धर्मच्युत किया है ॥ ३७ ॥

हे मुने! इस प्रकार शिवजीके वचनको सुनकर सभी देवता तथा विष्णु अनमने हो गये ॥ ३८ ॥

अनन्तर देवताओं एवं विष्णुको उदास देखकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माने हाथ जोड़कर शिवजीसे कहा— ॥ ३९ ॥

ब्रह्माजी बोले—[हे प्रभो!] आपको कोई पाप नहीं लगेगा; क्योंकि आप परम योगवेत्ता हैं, आप परमेश्वर, परब्रह्म तथा सर्वदा देवताओं एवं ऋषियोंके रक्षक हैं ॥ ४० ॥

आप ही प्रेरणा देनेवाले हैं। आपके ही शासनसे मोहित होकर उन्होंने अपने धर्म तथा आपकी पूजाका त्याग कर दिया है, फिर भी वे दूसरोंके द्वारा अवध्य हैं ॥ ४१ ॥

अत: हे महादेव! हे देवर्षिप्राणरक्षक! आप सज्जनोंकी रक्षाके लिये इन म्लेच्छजातियोंका वध कीजिये ॥ ४२ ॥

राजाका कर्तव्य होता है कि धर्मकी रक्षा करे तथा पापियोंका वध करे। आप राजा हैं, इसलिये ब्राह्मण तथा साधुओंकी रक्षाके निमित्त स्वयं आपको इस कण्टकका शोधन करना चाहिये। ऐसा करनेसे आपको पाप नहीं लगेगा ॥ ४३ ॥

यदि राजा इस प्रकार अपने राज्यकी रक्षा करे, तो उसे इस लोकमें सर्वलोकाधिपत्य तथा परम कल्याण प्राप्त होता है। इस कारण आप स्वयं त्रिपुरका वधकर इन देवताओंकी रक्षा कीजिये, [प्रभो!] विलम्ब न करें ॥ ४४ ॥

हे देवदेवेश! मुनि, इन्द्र, ईश्वर, यज्ञ, वेद, समस्त शास्त्र तथा मैं और विष्णु—ये सभी आपकी प्रजाएँ हैं। हे प्रभो! आप देवगणोंके सार्वभौम सम्राट्, सर्वेश्वर हैं और विष्णुसे लेकर सारा संसार आपका परिवार है ॥ ४५-४६ ॥

हे अज! विष्णु आपके युवराज हैं, मैं आपका पुरोहित हूँ एवं ये इन्द्र आपके राज्यकी देखभाल करनेवाले तथा आपकी आज्ञाके परिपालक हैं ॥ ४७ ॥

हे सर्वेश! इसी प्रकार अन्य देवता भी आपके शासनमें रहकर सदा अपने-अपने कार्य करते हैं, यह सत्य है, सत्य है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उन ब्रह्माका वचन सुनकर देवरक्षक भगवान् शंकर प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्मासे कहने लगे— ॥ ४९ ॥

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! यदि मैं वस्तुत: देवराज तथा सबका सम्राट् कहा गया हूँ, फिर भी मेरे पास ऐसा कोई साधन नहीं है, जिससे मैं इस पदको ग्रहण कर सकूँ ॥ ५० ॥

मेरे पास योग्य सारथीसहित महादिव्य रथ नहीं है और संग्राममें विजय दिलानेवाला धनुष-बाण आदि भी नहीं है, जिस रथपर बैठकर, धनुष-बाण लेकर तथा अपना मन लगाकर उन प्रबल दैत्योंका संग्राममें वध कर सकूँ ॥ ५१-५२ ॥

सनत्कुमार बोले—तब ब्रह्मा, इन्द्र एवं विष्णुके सहित सभी देवता प्रभुके वचनको सुनकर परम प्रसन्न हो उठे और महेश्वरको प्रणामकर उनसे कहने लगे— ॥ ५३ ॥

देवता बोले—हे देवेश! हे महेश्वर! हे स्वामिन्! हमलोग आपके रथादि उपकरण बनकर युद्धके लिये तैयार हैं ॥ ५४ ॥

इस प्रकार कहकर प्रसन्न हुए वे सभी देवता एकत्रित हो शिवजीकी इच्छा जानकर हाथ जोड़कर अलग-अलग कहने लगे ॥ ५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शिवस्तुतिवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये देवताओंद्वारा मन्त्रजप, शिवका प्राकट्य तथा त्रिपुर-विनाशके लिये दिव्य रथ आदिके निर्माणके लिये विष्णुजीसे कहना

सनत्कुमार बोले—समस्त देवता आदिके इस वचनको सुनकर शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले भक्तवत्सल सदाशिवने उनकी बात स्वीकार कर ली। हे मुने! इसी बीच देवी पार्वती अपने दोनों पुत्रोंको लेकर वहाँ आ गयीं, जहाँ सदाशिव देवताओंके साथ स्थित थे॥ १-२॥

तब देवीको वहाँ उपस्थित देखकर विष्णु आदि सभी देवता आश्चर्ययुक्त हो गये और सम्भ्रमयुक्त होकर नम्रतासे उन्हें शीघ्रतापूर्वक प्रणाम करने लगे॥ ३॥

हे मुने! उन सभीने शुभ लक्षण प्रकट करनेवाला जय-जयकार किया और उनके आनेका कारण न जानते हुए वे लोग मौन हो गये। इसके बाद सभी देवताओंसे स्तुत एवं अद्भुत कुतूहल करनेवाली वे देवी नानालीला-विशारद अपने स्वामीसे प्रेमपूर्वक कहने लगीं—॥ ४-५॥

देवी बोलीं—हे विभो! हे पुत्रवानोंमें श्रेष्ठ! उत्तम आभूषणोंसे भूषित तथा सूर्यके समान देदीप्यमान खेलते हुए अपने षण्मुख पुत्रको देखिये॥ ६॥

सनत्कुमार बोले—जब लोकमाताने अपनी वाणीसे इस प्रकार शिवजीको सम्बोधित करते हुए कहा, तब स्कन्दके मुखामृतका पान करते हुए शिवजीको तृप्ति नहीं हुई॥ ७॥

उस समय महेश्वरको दैत्योंके तेजसे पीड़ित होकर आये हुए देवताओंका स्मरण नहीं रहा और वे स्कन्दका आलिंगन करके तथा उनका सिर सूँघकर बड़े प्रसन्न हुए॥ ८॥

अनेक लीलाओंमें विशारद श्रीजगदम्बा भी महेश्वरसे मन्त्रणाकर कुछ कालतक वहीं स्थित रहकर पुनः उठ खड़ी हुईं। इसके बाद सभी देवताओंसे वन्दित होते हुए उत्तम लीलावाले भगवान् सदाशिवने कार्तिकेय, नन्दी तथा उन गिरिराजपुत्रीके साथ अपने भवनमें प्रवेश किया॥ ९-१०॥

हे मुने! [शंकरको घरमें गया देख] सम्पूर्ण देवता महाव्याकुल एवं क्षुब्धमन होकर बुद्धिमान् देवाधिदेवके द्वारके समीप खड़े रहे। अब हम क्या करें, कहाँ जायँ, कौन हमलोगोंको सुख देनेवाला है और यह क्या हो गया? हाय हमलोग मारे गये—ऐसा वे सब कहने लगे। एक-दूसरेको देखकर इन्द्र आदि अत्यन्त व्याकुल हो गये और अपने भाग्यको धिक्कारते हुए विकल वचन कहने लगे। कुछ देवताओंने कहा—हाय! हमलोग बड़े पापी हैं। दूसरोंने कहा—हाय, हम अभागे हैं, अन्योंने कहा—वे असुर तो बड़े भाग्यवान् हैं॥ ११—१४॥

उसी समय उनके अनेक प्रकारके शब्दोंको सुनकर महातेजस्वी कुम्भोदर [नामका गण] देवताओंको दण्डसे मारने लगा। तब वे देवता भयभीत होकर हाय-हाय करते हुए वहाँसे भाग गये। कितने ही मुनि तथा अन्य लोग गिर पड़े, उस समय चारों ओर हाहाकार होने लगा। इन्द्र अत्यन्त व्याकुल होकर घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़े, इसी प्रकार अन्य देवता तथा ऋषि भी व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े॥ १५—१७॥

तब सभी देवता एवं मुनि परस्पर मिलकर व्याकुल हो शिवके मित्रभूत ब्रह्मा एवं विष्णुके समीप गये॥ १८॥

उस समय कश्यपादि सभी मुनि संसारका भय दूर करनेवाले विष्णुजीसे कहने लगे—अहो! यह प्रारब्धका बल है। दूसरे द्विज कहने लगे कि अभाग्यसे हमारा काम पूरा नहीं हुआ और दूसरे लोग अति विस्मित होकर विचार करने लगे कि यह विघ्न कैसे उपस्थित हो गया! हे मुने! तब कश्यपादिके द्वारा कहे गये इस वचनको सुनकर विष्णुजी मुनियों तथा देवताओंको सान्त्वना देते हुए यह वचन कहने लगे—॥ १९—२१॥

विष्णु बोले—हे देवताओ! हे मुनियो! आप सभीलोग हमारा वचन आदरसे सुनिये, आपलोग इस प्रकार क्यों दुखी हो रहे हैं, आपलोग अपने समस्त दुःखोंका त्याग कर दीजिये। हे देवताओ! महान् लोगोंका आराधन सरल नहीं है, आपलोग स्वयं विचार कीजिये, बड़े लोगोंकी आराधनामें पहले दुःख ही होता है—ऐसा हमने सुना है। हे देवताओ! शिवजी दृढ़ताको जानकर निश्चय ही प्रसन्न हो जाते हैं॥ २२-२३॥

सदाशिव सभी गणोंके अध्यक्ष एवं परमेश्वर हैं।

आप सभीलोग अपने मनमें विचार कीजिये कि वे सहसा कैसे वशमें हो सकते हैं। सबसे पहले ॐ का उच्चारण करके उसके बाद 'नमः' उच्चारण करे। पुनः 'शिवाय', फिर दो बार शुभं-शुभं, इसके बाद दो बार 'कुरु' बताया गया है। तदनन्तर 'शिवाय नमः' तदनन्तर प्रणव लगाना चाहिये। (ॐ नमः शिवाय शुभं शुभं कुरु कुरु शिवाय नमः ॐ) हे देवताओ! यदि आपलोग शिवजीके लिये इस मन्त्रका एक करोड़ सदा जप करें, तो शिवजी प्रसन्न होकर तुम्हारा कार्य अवश्य करेंगे॥ २४—२७॥

हे मुने! उन सर्वसमर्थ विष्णुके द्वारा ऐसा कहे जानेपर देवतालोग उसी तरह शिवकी आराधना करने लगे। उस समय विष्णुजी भी ब्रह्माजीके साथ शिवमें अपना मन एकाग्रकर देवताओं एवं मुनियोंका विशेष रूपसे कार्य सिद्ध करनेके निमित्त जप करने लगे। हे मुनिसत्तम! धैर्य धारणकर वे देवगण बारंबार 'शिव' इस प्रकार उच्चारण करते हुए एक करोड़ मन्त्रका जपकर वहीं स्थित हो गये॥ २८—३०॥

इसी बीच स्वयं सदाशिव उनके सामने साक्षात् यथोक्त स्वरूपसे प्रकट हो गये और यह वचन कहने लगे—॥ ३१॥

श्रीशिव बोले—हे हरे! हे विधे! हे देवगण! शुभव्रतवाले हे मुनियो! मैं इस जपसे प्रसन्न हूँ, आपलोग अभीष्ट वर माँगिये॥ ३२॥

देवगण बोले—हे देवेश! हे जगदीश! हे शंकर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो देवताओंको व्याकुल जानकर त्रिपुरोंका वध कीजिये। हे परमेशान! हे दीनबन्धो! हे कृपाकर! आप हम सबकी रक्षा करें; क्योंकि आपने ही विपत्तियोंसे देवताओंकी सदा बारंबार रक्षा की है॥ ३३-३४॥

सनत्कुमार बोले—हे ब्रह्मन्! तब ब्रह्मा, विष्णु एवं देवताओंका कहा गया यह वचन सुनकर शिवजीने मन-ही-मन हँसकर कहा—॥ ३५॥

महेश बोले—हे विष्णो! हे विधे! हे देवगणो! हे मुनियो! आप सब त्रिपुरको नष्ट हुआ समझकर आदर करके मेरे वचनको सुनें। आपलोगोंने पूर्व समयमें जो रथ, सारथी, दिव्य धनुष तथा उत्तम बाण देना स्वीकार किया था, वह सब शीघ्र उपस्थित कीजिये। हे विष्णो! हे विधे! आप त्रिलोकाधिपति हैं, इसलिये शीघ्र हमारे सम्राट् पदके योग्य सामग्री यत्नपूर्वक उपस्थित कीजिये। त्रिपुरको नष्ट समझकर सृष्टि तथा पालनके लिये नियुक्त किये गये आप दोनों इन देवताओंकी सहायता करें॥ ३६—३९॥

यह मन्त्र महापुण्यप्रद, मुझे प्रसन्न करनेवाला, शुभ, भोग-मोक्ष प्रदान करनेवाला, सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, शिवभक्तोंको सुख देनेवाला, धन्य, यश देनेवाला, आयुको बढ़ानेवाला, स्वर्गकी इच्छा करनेवालोंको स्वर्ग तथा कामनारहित पुरुषोंको मुक्ति देनेवाला है, यह मुमुक्षुओंको भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करता है। जो मनुष्य पवित्र होकर नित्य इस मन्त्रका जप करता है अथवा इस मन्त्रको सुनता अथवा सुनाता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ ४०—४२॥

सनत्कुमार बोले—उन परमात्मा शिवजीके इस वचनको सुनकर सभी देवता प्रसन्न हो गये और विष्णु एवं ब्रह्माको अधिक प्रसन्नता हुई। तदनन्तर उनकी आज्ञासे विश्वकर्माने संसारके कल्याणके लिये सर्वदेवमय, दिव्य तथा अत्यन्त सुन्दर रथका निर्माण किया॥ ४३-४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें देवस्तुतिवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

विश्वकर्माद्वारा निर्मित सर्वदेवमय दिव्य रथका वर्णन

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे शैवप्रवर! हे सन्मते! हे तात! आपने परमेश्वरकी यह अद्भुत कथा सुनायी। अब आप सर्वदेवमय परम दिव्य रथके निर्माणका वर्णन कीजिये, जिसे बुद्धिमान् विश्वकर्माने शिवजीके लिये निर्मित किया॥ १-२॥

सूतजी बोले—उन व्यासजीके इस वचनको सुनकर मुनीश्वर सनत्कुमार शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! हे महाप्राज्ञ! हे मुने! मैं शिवजीके चरणकमलोंका ध्यानकर अपनी बुद्धिके अनुसार रथ आदिके निर्माणका वर्णन करूँगा, आप उसका श्रवण करें। विश्वकर्माने रुद्रदेवके सर्वलोकमय तथा दिव्य रथको यत्नसे आदरपूर्वक बनाया॥ ४-५ ॥

यह सर्वसम्मत तथा भूतमय रथ सुवर्णका बना हुआ था। उसके दाहिने चक्रमें सूर्य एवं बाँये चक्रमें चन्द्रमा विराजमान थे। हे विप्रेन्द्र! दाहिने चक्रमें बारह अरे लगे हुए थे, उन अरोंमें बारहों आदित्य प्रतिष्ठित थे और बायाँ पहिया सोलह अरोंसे युक्त था। हे सुव्रत! बायें पहियेके सोलह अरे चन्द्रमाकी सोलह कलाएँ थीं। सभी नक्षत्र उस वामभागके पहियेकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ ६—८ ॥

हे विप्रश्रेष्ठ! छहों ऋतुएँ उन दोनों पहियोंकी नेमि थीं। अन्तरिक्ष उस रथका अग्रभाग हुआ और मन्दराचल रथनीड हुआ। अस्ताचल तथा उदयाचल उसके दोनों कूबर कहे गये हैं। महामेरु उस रथका अधिष्ठान तथा अन्य पर्वत उसके केसर थे। संवत्सर उस रथका वेग था तथा दोनों अयन (उत्तरायण एवं दक्षिणायन) चक्रोंके संगम थे। मुहूर्त उसके बन्धुर (बन्धन) तथा कलाएँ उसकी कीलियाँ कही गयी हैं। काष्ठा (कलाका तीसवाँ भाग) उसका घोण (जूएका अग्रभाग) और क्षण उसके अक्षदण्ड कहे गये हैं। निमेष उस रथका अनुकर्ष (नीचेका काष्ठ) और लव उसका ईषा कहा गया है॥ ९—१२ ॥

द्युलोक इस रथका वरूथ (लोहेका पर्दा) तथा स्वर्ग और मोक्ष उसकी दोनों ध्वजाएँ थीं। भ्रम और कामदुग्ध उसके जूएके दोनों सिर कहे गये हैं॥ १३ ॥

व्यक्त उसका ईषादण्ड, वृद्धि नड्वल, अहंकार उसके कोने तथा पंचमहाभूत उस रथके बल कहे गये हैं॥ १४ ॥

समस्त इन्द्रियाँ ही उस रथके चारों ओरके आभूषण थे। हे मुनिसत्तम! श्रद्धा ही उस रथकी गति थी॥ १५ ॥

हे सुव्रतो! उस समय षडंग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द तथा ज्योतिष) उसके आभूषण बने। पुराण, न्याय, मीमांसा तथा धर्मशास्त्र उसके उपभूषण बने॥ १६ ॥

सब लक्षणोंसे युक्त वर उसके बलके स्थान कहे गये हैं। वर्णाश्रमधर्म उसके चारों चरण तथा मन्त्र घण्टा कहे गये हैं। हजारों फणोंसे विभूषित अनन्त नामक सर्प उस रथके बन्धन हुए, दिशाएँ एवं उपदिशाएँ पाद बनीं। पुष्करादि तीर्थ उस रथकी रत्नजटित सुवर्णमय पताकाएँ और चारों समुद्र उस रथको ढँकनेवाले वस्त्र कहे गये हैं॥ १७—१९ ॥

सभी प्रकारके आभूषणोंसे भूषित गंगा आदि सभी श्रेष्ठ नदियाँ हाथोंमें चँवर लिये हुए स्त्रीरूपमें सुशोभित होकर जगह-जगह स्थान बनाकर रथकी शोभा बढ़ाने लगीं। आवह आदि सातों वायु स्वर्णमय उत्तम सोपान बने एवं लोकालोक पर्वत उस रथके चारों ओर उपसोपान बने। मानस आदि सरोवर उस रथके बाहरी उत्तम विषम स्थान हुए॥ २०—२२ ॥

सभी वर्षाचल उस रथके चारों ओरके पाश और तललोकमें निवास करनेवाले सभी प्राणी उस रथके तलके भाग कहे गये हैं। भगवान् ब्रह्मा उसके सारथि और देवतागण घोड़ेकी रस्सी पकड़नेवाले कहे गये हैं। ब्रह्मदैवत ॐकार उन ब्रह्माका चाबुक था। अकार उसका महान् छत्र, मन्दराचल उस छत्रको धारण करनेवाला पार्श्ववर्ती दण्ड, पर्वतराज सुमेरु धनुष तथा स्वयं भुजंगराज शेषनाग उस धनुषकी डोरी बने॥ २३—२५ ॥

श्रुतिस्वरूपा भगवती सरस्वती उस धनुषका घण्टा बनीं। महान् तेजस्वी विष्णुको बाण तथा अग्निको उस बाणका शल्य कहा गया है। हे मुने! चारों वेद उस रथके घोड़े कहे गये हैं। सभी प्रकारकी ज्योतियाँ उन अश्वोंकी परम आभूषण बनीं। समस्त विषसम्भूत पदार्थ सेना बने। सभी वायु बाजा बजानेवाले कहे गये हैं। व्यास आदि ऋषिगण उसे ढोनेवाले हुए॥ २६—२८ ॥

[सनत्कुमार बोले—] हे मुनीश्वर! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं संक्षेपमें ही बताता हूँ कि ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी वस्तु है, वह सब उस रथमें विद्यमान कही गयी है॥ २९ ॥

परम बुद्धिमान् विश्वकर्माने ब्रह्मा तथा विष्णुकी आज्ञासे इस प्रकारके रथ आदिसे युक्त शुभ साधनका भलीभाँति निर्माण किया था॥ ३० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें रथादियुद्धप्रकारवर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

नौवाँ अध्याय

ब्रह्माजीको सारथी बनाकर भगवान् शंकरका दिव्य रथमें आरूढ़ होकर अपने गणों तथा देवसेनाके साथ त्रिपुर-वधके लिये प्रस्थान, शिवका पशुपति नाम पड़नेका कारण

सनत्कुमार बोले—इस प्रकारके महादिव्य तथा अनेक आश्चर्योंसे युक्त रथमें वेदरूपी घोड़े जोतकर ब्रह्माजीने उसे शिवजीको समर्पित किया। इसे शिवजीको अर्पण करके उन्होंने विष्णु आदि देवगणोंके सम्माननीय देवेश शिवजीसे बहुत प्रार्थना करके उन्हें रथपर बैठाया। तब समस्त रथ-सामग्रियोंसे सम्पन्न उस दिव्य रथपर सर्वदेवमय महाप्रभु शम्भु आरूढ़ हुए॥ १—३॥

उस समय ऋषि, देवता, गन्धर्व, नाग, ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त लोकपाल उनकी स्तुति करने लगे॥ ४॥

गानमें प्रवीण अप्सराओंसे घिरे हुए वरदायक शिवजी उस सारथी (ब्रह्मा)-की ओर देखते हुए शोभित होने लगे। सर्वलोकमय उस निर्मित रथपर सदाशिवके चढ़ते ही वेदरूपी घोड़े सिरके बल पृथ्वीपर गिर पड़े, जिससे पृथ्वी तथा सभी पर्वत चलायमान हो गये और शेषनाग भी उस भारको सहनेमें असमर्थ होनेके कारण कम्पित हो उठे। तब पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवान् शेष वृषेन्द्रका रूप धारणकर क्षणमात्रके लिये उस रथको उठाकर स्थापित करने लगे, किंतु रथपर आरूढ़ शिवजीके परम तेजको सहन करनेमें असमर्थ वृषेन्द्र भी घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५—९॥

तब हाथमें लगाम पकड़े हुए ब्रह्माजीने शंकरजीकी आज्ञासे घोड़ोंको उठाकर रथको व्यवस्थित किया॥ १०॥

उसके बाद ब्रह्माजी स्वयं उस श्रेष्ठ रथपर सवार हो शिवकी आज्ञासे मन तथा पवनके समान वेगवाले रथमें जुते हुए उन वेदरूपी घोड़ोंको तेजीसे हाँकने लगे। शिवजीके बैठ जानेपर वह रथ उन बलवान् दानवोंके आकाशस्थित तीनों पुरोंको उद्देश्य करके चलने लगा॥ ११-१२॥

उस समय देवगणोंकी ओर देखकर कल्याण करनेवाले भगवान् रुद्रने कहा—हे श्रेष्ठ देवताओ! यदि आपलोग मुझे पशुओंका अधिपति बना दें, तो मैं असुरोंका वध करूँ। देवताओं तथा अन्य लोगोंके पृथक्-पृथक् पशुत्वकी कल्पना करनेपर ही वे दैत्यश्रेष्ठ वधके योग्य हो सकते हैं, अन्यथा नहीं॥ १३-१४॥

सनत्कुमार बोले—उन बुद्धिमान् देवाधिदेवके इस वचनको सुनकर सभी देवता पशुत्वके प्रति शंकित होकर दु:खित हो गये। तब देवाधिदेव अम्बिकापति शंकर देवताओंका भाव जानकर हँसते हुए उन देवताओंसे कहने लगे—॥ १५-१६॥

शम्भु बोले—हे देवगणो! पशुभावको प्राप्त होनेपर भी आपलोगोंका पात नहीं होगा, मेरी बात सुनिये और उस पशुभावसे अपनेको मुक्त कीजिये। जो इस दिव्य पाशुपत व्रतका आचरण करेगा, वह पशुत्वसे मुक्त हो जायगा, मैंने आपलोगोंसे सत्य प्रतिज्ञा की है॥ १७-१८॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! जो अन्य लोग भी मेरे पाशुपतव्रतका आचरण करेंगे, वे पशुत्वसे मुक्त हो जायँगे, इसमें संशय नहीं है। जो निष्ठापूर्वक बारह वर्ष, छ: वर्ष अथवा तीन वर्षतक मेरी उपासना करेगा, वह पशुभावसे छूट जायगा। इसलिये हे श्रेष्ठ देवताओ! यदि आप लोग इस श्रेष्ठ एवं दिव्य व्रतका आचरण करेंगे, तो पशुत्वसे मुक्त हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है॥ १९—२१॥

सनत्कुमार बोले—उन परमात्मा महेश्वरका यह वचन सुनकर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवगणोंने कहा—ऐसा ही होगा। इसलिये [हे वेदव्यास!] देवता एवं असुर सभी उन प्रभुके पशु हैं और पशुओंको पाशसे मुक्त करनेवाले रुद्र भगवान् शंकर पशुपति हैं॥ २२-२३॥

तभीसे उन महेश्वरका यह कल्याणप्रद पशुपति नाम भी सभी लोकोंमें प्रसिद्ध हुआ॥ २४॥

उसके बाद सभी देवता तथा ऋषि प्रसन्नतापूर्वक जय-जयकार करने लगे। स्वयं देवेश, ब्रह्मा, विष्णु एवं अन्य लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। उस समय उन परमात्माका जैसा अद्भुत रूप था, उसका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता॥ २५-२६॥

इस प्रकारके स्वरूपवाले, सबके लिये सुखदायक अखिलेश्वर महेश तथा महेशानी त्रिपुरको मारनेके लिये

चल पड़े। जिस समय देवाधिदेव उस त्रिपुरका वध करनेके लिये चले, उस समय सूर्यके समान तेजस्वी इन्द्र आदि सभी देवता उत्तम हाथी, घोड़े, सिंह, रथ तथा बैलपर सवार हो उनके पीछे-पीछे चले। हाथोंमें हल, शाल, मूसल, विशाल पर्वतके समान भुशुण्ड तथा विविध आयुध धारण किये हुए पर्वतसदृश वे इन्द्रादि देवता प्रसन्न होकर [त्रिपुरका वध करनेके लिये] चले॥ २७—२९॥

उस समय अनेक प्रकारके आयुधोंसे युक्त तथा परम प्रकाशमान इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता महोत्सव मनाते हुए तथा शिवजीकी जय-जयकार करते हुए उन महेश्वरके आगे-आगे चल रहे थे॥ ३०॥

उस समय हाथमें दण्ड लिये हुए तथा जटा धारण किये हुए सभी मुनि हर्षित हुए और आकाशमें विचरण करनेवाले सिद्ध तथा चारण पुष्पवृष्टि करने लगे॥ ३१॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! जो सभी गणेश्वर तीनों पुरोंको जा रहे थे, उनकी संख्या बतानेमें कौन समर्थ है, तथापि मैं कुछको कह रहा हूँ॥ ३२॥

गणेश्वरों और देवगणोंके साथ सभी गणोंसे श्रेष्ठ भृंगी विमानमें चढ़कर महेन्द्रके समान त्रिपुरका वध करनेके लिये चला। केश, विगतवास, महाकेश, महाज्वर, सोमवल्ली, सवर्ण, सोमप, सनक, सोमधृक्, सूर्यवर्चा, सूर्यप्रेषण, सूर्याक्ष, सूरि, सुर, सुन्दर, प्रस्कन्द, कुन्दर, चण्ड, कम्पन, अतिकम्पन, इन्द्र, इन्द्रजव, हिमकर, यन्ता, शताक्ष, पंचाक्ष, सहस्राक्ष, महोदर, सतीजुह, शतास्य, रंक, कर्पूरपूतन, द्विशिख, त्रिशिख, अहंकारकारक, अजवक्त्र, अष्टवक्त्र, हयवक्त्र तथा अर्धवक्त्र इत्यादि बहुत-से असंख्य वीरगण, जो लक्ष्य-लक्षणसे रहित थे, वे शिवजीको घेरकर चले॥ ३३—३९॥

जो गण महादेव शिवको घेरकर उनके साथ चल रहे थे, वे मनसे ही चराचर जगत्‌को भस्म करनेमें समर्थ थे। किंतु यहाँ तो पिनाकधारी भगवान् शंकर स्वयं ही त्रिपुरको जलानेमें समर्थ थे। उन शम्भुको रथ, बाण, गणों तथा देवताओंकी क्या आवश्यकता थी, किंतु हे व्यास! हाथमें पिनाक धारण किये वे अपने गणों तथा देवताओंके साथ दैत्योंके उन तीनों पुरोंको जलानेके लिये जा रहे थे। यह उनकी अद्भुत लीला है॥ ४०—४२॥

हे ऋषिश्रेष्ठ! उसमें जो कारण है, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ। दूसरोंके पापोंका नाश करनेवाले उन्होंने अपने यशका त्रिलोकीमें विस्तार करनेके निमित्त ऐसा किया और दूसरा यह भी कारण है कि दुष्टोंके मनमें यह विश्वास हो जाय कि सभी देवगणोंमें शिवजीसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है॥ ४३-४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शिवयात्रावर्णन नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

भगवान् शिवका त्रिपुरपर सन्धान करना, गणेशजीका विघ्न उपस्थित करना, आकाशवाणीद्वारा बोधित होनेपर शिवद्वारा विघ्ननाशक गणेशका पूजन, अभिजित् मुहूर्तमें तीनों पुरोंका एकत्र होना और शिवद्वारा बाणाग्निसे सम्पूर्ण त्रिपुरको भस्म करना, मयदानवका बचा रहना

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] इसके बाद महादेव शम्भु सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त हो उस रथपर बैठकर दैत्योंके सम्पूर्ण त्रिपुरको दग्ध करनेके लिये उद्यत हुए। उस रथके शीर्ष स्थानपर स्थित हो वे धनुषको चढ़ाकर उसपर उत्तम बाण सन्धानकर अत्यन्त अद्भुत प्रत्यालीढ आसनमें स्थित होकर दृढमुष्टिमें धनुषको पकड़कर अपनी दृष्टिमें दृष्टि डालकर निश्चल हो सौ हजार वर्षपर्यन्त वहाँ स्थित रहे। उस समय वे गणेशजी उन शिवजीके अँगूठेपर स्थिर हो निरन्तर उन्हें पीड़ित करने लगे, जिससे उनके लक्ष्यमें त्रिपुर दिखायी न पड़े॥ १—४॥

तब मुंजकेश, विरूपाक्ष तथा धनुष-बाणधारी शंकरने यह अत्यन्त मनोहर आकाशवाणी सुनी। हे जगदीश! हे ईश! हे भगवन्! जबतक आप इन गणेशजीका पूजन नहीं करेंगे, तबतक आप त्रिपुरका नाश नहीं कर सकेंगे॥ ५-६॥

तदनन्तर यह वचन सुनकर अन्धकका वध करनेवाले सदाशिवने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीकी पूजा की॥ ७॥

पूजासे उन गणेशके प्रसन्न हो जानेपर भगवान् शिवने आकाशमें स्वयं अपने आगे उन महात्मा दैत्य तारकपुत्रोंके तीनों पुरोंको देखा, जो यथायोग्य एक-दूसरेसे युक्त थे। इस विषयमें कोई ऐसा कहते हैं कि—परब्रह्म देवेश परमेश्वर तो सबके पूजनीय हैं, फिर उनके कार्यकी सिद्धि दूसरोंकी प्रसन्नतासे हो, यह तो उनके लिये उचित नहीं प्रतीत होता॥ ८—१०॥

वे परब्रह्म, स्वतन्त्र, सगुण, निर्गुण, परमात्मा तथा मायासे रहित एवं सभीसे अलक्ष्य हैं। वे परम प्रभु पंचदेवात्मक तथा पंचदेवोंके उपास्य हैं। उनका कोई भी उपास्य नहीं है, वे ही सबके उपास्य हैं। अथवा हे मुने! सबको वर देनेवाले उन देवाधिदेव महेश्वरकी लीलासे सभी चरित सम्भव हैं॥ ११—१३॥

जब महादेवजी गणेशका पूजनकर स्थित हो गये, उसी समय वे तीनों पुर शीघ्र ही एकमें मिल गये॥ १४॥

हे मुने! इस प्रकार त्रिपुरके एक साथ मिल जानेपर देवताओं तथा महात्माओंको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ १५॥

तत्पश्चात् समस्त देवगण, महर्षि एवं सिद्धगण महादेवजीकी स्तुति करते हुए उनकी जय-जयकार करने लगे॥ १६॥

इसके बाद जगत्पति ब्रह्मा तथा विष्णुने कहा—हे महेश्वर! अब इन दैत्य तारकपुत्रोंके वधकार्यका समय उपस्थित हो गया है। हे विभो! आप देवकार्य सम्पन्न कीजिये; क्योंकि इनके तीनों पुर एक स्थानमें आ गये हैं। हे देवेश! जबतक ये पुर एक-दूसरेसे अलग नहीं होते, तबतक आप बाण छोड़िये और त्रिपुरको भस्म कर दीजिये॥ १७—१९॥

तब शंकरजीने धनुषकी डोरी चढ़ाकर उसपर बाण रखकर त्रिपुरसंहारके लिये अपने पूज्य पाशुपतास्त्रका ध्यान किया॥ २०॥

उसके बाद श्रेष्ठ लीलाविशारद शिवजी किसी कारणसे उन पुरोंको निरादरकी दृष्टिसे देखने लगे॥ २१॥

आप विरूपाक्ष हैं और इन तीनों पुरोंको क्षणमात्रमें दग्ध करनेमें समर्थ हैं तथा सज्जनोंकी एकमात्र गति हैं। यद्यपि आप देवेश्वर अपनी दृष्टिमात्रसे तीनों लोकोंको भस्म करनेमें समर्थ हैं, किंतु हमलोगोंके यशको बढ़ानेके लिये आप इनपर अपना बाण छोड़िये॥ २२-२३॥

इस प्रकार जब विष्णु, ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंने महेश्वरकी स्तुति की, तब उन्होंने उसी बाणसे तीनों पुरोंको भस्म करनेकी इच्छा की। उन शिवजीने अभिजित् मुहूर्तमें उस अद्भुत धनुषको खींचकर उसकी प्रत्यंचाकी टंकारसे अत्यन्त दुःसह शब्द करके और उन असुरोंको अपना नाम सुनाकर तथा उन्हें ललकारते हुए करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान बाण छोड़ा॥ २४—२६॥

पापनाशक, जाज्वल्यमान, अग्निफलकसे युक्त तथा तीव्रगामी उस विष्णुमय बाणने त्रिपुरमें रहनेवाले उन तीनों दैत्योंको दग्ध कर दिया॥ २७॥

इस प्रकार भस्म हुए वे तीनों पुर चार समुद्रोंकी मेखलावाली पृथ्वीपर एक साथ ही गिर पड़े और जले हुए वे पुर राखके रूपमें हो गये। शिवकी पूजामें व्यतिक्रमके कारण सैकड़ों दैत्य हाहाकार करते हुए उस बाणकी अग्निसे भस्म हो गये॥ २८-२९॥

जब भाइयोंके सहित तारकाक्ष भस्म होने लगा, तब उसने अपने प्रभु भक्तवत्सल भगवान् सदाशिवका स्मरण किया। महादेवकी ओर देखकर परम भक्तिसे युक्त होकर वह नाना प्रकारके विलाप करता हुआ मन-ही-मन उनसे कहने लगा—॥ ३०-३१॥

तारकाक्ष बोला—हे भव! मैंने जान लिया है कि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, अपने इस सत्यके प्रभावसे आप पुनः भाइयोंसहित हमें कब जलायेंगे? हे भगवन्! हमलोगोंने वह दुर्लभ वस्तु प्राप्त की है, जो देवताओं और असुरोंके लिये भी अप्राप्य है, हमारी बुद्धि जन्म-जन्मान्तरमें आपकी भक्तिसे भावित रहे॥ ३२-३३॥

हे मुने! ऐसा कहते हुए उन दैत्योंको शिवजीकी आज्ञासे अग्निने अद्भुत रीतिसे जलाकर राख कर दिया। हे व्यासजी! उस अग्निने अन्य बालक तथा वृद्ध दानवोंको भी शिवजीकी आज्ञासे शीघ्र ही जलाकर राख कर दिया। जिस प्रकार कल्पान्तमें जगत् भस्म हो जाता है, उसी प्रकार उस अग्निने वहाँ जो भी स्त्री, पुरुष, वाहनादि थे, उन सभीको जला दिया॥ ३४—३६॥

बहुत-सी श्रेष्ठ स्त्रियाँ गलेमें भुजाएँ डालनेवाले अपने पतियोंको छोड़कर भस्म हो गयीं, सोयी हुई, प्रमत्त और रतिश्रान्त स्त्रियाँ भी भस्म हो गयीं॥ ३७॥

कोई आधी जलकर चेतनामें आ-आकर बारंबार मोहसे मूर्च्छित हो जाती थी। कोई अति सूक्ष्म भी ऐसी वस्तु शेष न बची, जो त्रिपुरकी अग्निसे भस्म न हुई हो॥ ३८॥

केवल एक अविनाशी विश्वकर्मा मयदानवको छोड़कर स्थावर तथा जंगम कोई भी बिना जले न बचा, वह देवताओंका विरोधी नहीं था, विपत्तिकालमें भी महेशका शरणागत भक्त था और शिवजीके तेजसे रक्षित था॥ ३९-४०॥

चाहे दैत्य हों, चाहे अन्य प्राणी हों, भावाभावकी अवस्थामें तथा कृत-अकृत कालमें महेश्वरके शरणागत होनेपर उनका नाशकारक पतन नहीं होता है। इसलिये सत्पुरुषोंको ध्यानपूर्वक इस प्रकारका यत्न करना चाहिये, जिससे भक्ति बढ़े। निन्दासे लोकका क्षय होता है, अतः उस कर्मको कभी नही करना चाहिये॥ ४१-४२॥

पुरुषको कभी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये, जिससे उन त्रिपुरों-जैसा संयोग उपस्थित हो। क्या ही उत्तम बात होती कि प्रारब्धसे सभीका मन शिवजीमें लगता॥ ४३॥

उस समय भी जो दैत्य बान्धवोंसहित शिवपूजनमें तत्पर थे, वे सब शिवपूजाके प्रभावसे गणोंके अधिपति हो गये॥ ४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें त्रिपुरदाहवर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

त्रिपुरदाहके अनन्तर भगवान् शिवके रौद्ररूपसे भयभीत देवताओंद्वारा उनकी स्तुति और उनसे भक्तिका वरदान प्राप्त करना

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! हे महाप्राज्ञ! आप धन्य हैं। हे शैवश्रेष्ठ! त्रिपुरके जल जानेपर सभी देवताओंने क्या किया, दाहसे रहित मय कहाँ गया, वे यतिगण कहाँ गये, यदि शिवजीकी कथासे सम्बन्धित अन्य कुछ हो, तो वह सब मुझे बताइये॥ १-२॥

सूतजी बोले—व्यासजीके इस वचनको सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् सनत्कुमार शिवके चरणयुगलका स्मरण करते हुए कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार बोले—हे महाबुद्धे! हे पराशरपुत्र व्यास! अब आप लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले महेश्वरके सर्वपापनाशक चरित्रको सुनिये। महेश्वरके द्वारा दैत्योंसे परिपूर्ण समस्त त्रिपुरके दग्ध कर दिये जानेपर वे देवता विशेष रूपसे आश्चर्यचकित हुए। उस समय इन्द्र, विष्णुसहित सभी देवता महातेजस्वी रुद्रको देखकर आश्चर्यमें पड़ गये और कुछ भी नहीं बोले॥ ४—६॥

अत्यन्त भयंकर, रौद्र रूपवाले, दसों दिशाओंको प्रज्वलित करते हुए, करोड़ों सूर्योंके समान तथा प्रलयाग्नि-सदृश महादेवको तथा देवी पार्वतीको देखकर सभी देवगण भयभीत हो गये और सिर झुकाकर खड़े हो गये॥ ७-८॥

तब श्रेष्ठ ऋषिगण देवसेनाको इस प्रकार भयभीत देखकर कुछ भी नहीं बोले और वे [शिवको] प्रणामकर चारों ओर खड़े रहे॥ ९॥

तब शंकरजीके रूपको देखकर डरे हुए ब्रह्मा भी प्रसन्नचित्त होकर सावधान हो देवताओं तथा भयभीत विष्णुके साथ पार्वतीसहित भक्ताधीन देवदेव, भव, हर, त्रिपुरारि महेश्वरकी स्तुति करने लगे॥ १०-११॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! हे महादेव! हे भक्तानुग्रहकारक! हे सर्वदेवहितकारी परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये। हे जगत्पते! प्रसन्न होइये, हे आनन्ददायक! प्रसन्न होइये। हे शंकर! हे स्वामिन्! प्रसन्न होइये। हे परमेश्वर! प्रसन्न होइये॥ १२-१३॥

जीवोंके उद्धारकर्ता आप ओंकारको नमस्कार है। हे सर्वदेवेश! त्रिपुरका विनाश करनेवाले हे महेश्वर! आप प्रसन्न होइये। हे प्रणतप्रिय! हे शंकर! अनेक नामोंसे वाच्य आप देवको नमस्कार है, हे प्रकृति एवं पुरुषसे पर! आप निर्गुणको नमस्कार है॥ १४-१५॥

निर्विकार, नित्य, नित्यतृप्त, प्रकाशमान, निरंजन, दिव्य तथा त्रिगुणरूप आपको प्रणाम है॥ १६॥

सगुणरूपधारी आपको नमस्कार है। स्वर्गेश, सदाशिव, शान्त, पिनाकधारी तथा महेश्वर आपको नमस्कार है॥ १७॥

सर्वज्ञ, शरण देनेवाले, सद्योजात, वामदेव, रुद्र एवं आप्यपुरुष आपको नमस्कार है॥ १८॥

अघोर, सुसेव्य, भक्ताधीन, ईशान, वरेण्य (श्रेष्ठ) एवं भक्तोंको आनन्द देनेवाले आपको नमस्कार है॥ १९॥

हे महादेव! आपने त्रिपुरको जलाकर सभी देवताओंको कृतार्थ कर दिया, अब आप भयभीत समस्त देवताओंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। इस प्रकार ब्रह्मादि सभी देवता अति प्रसन्न होकर भगवान् सदाशिवकी स्तुतिकर उन्हें पृथक्-पृथक् प्रणाम करने लगे॥ २०-२१॥

इसके बाद स्वयं ब्रह्माजी सिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर त्रिपुरारि महेश्वरदेवकी स्तुति करने लगे॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे त्रिपुरान्तक! हे शंकर! हे महादेव! मेरी अनपायिनी श्रेष्ठ भक्ति आपमें सदैव बनी रहे। हे देवेश! हे शंकर! मैं सदा आपका सारथी बना रहूँ। हे विभो! हे परमेश्वर! आप सदा मेरे अनुकूल रहें॥ २३-२४॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उदार बुद्धिवाले ब्रह्मा कन्धा झुकाये हुए हाथ जोड़कर विनम्र हो भक्तवत्सल भगवान् शिवजीकी स्तुतिकर चुप हो गये॥ २५॥

इसके बाद भगवान् विष्णुने भी हाथ जोड़कर महेश्वरको प्रणाम करके उनकी स्तुति की॥ २६॥

विष्णुजी बोले—हे देवाधीश! हे महेश्वर! हे दीनबन्धो! हे कृपाकर! हे परमेश्वर! हे प्रणतप्रिय! आप प्रसन्न होइये और कृपा कीजिये॥ २७॥

निर्गुण होते हुए भी सगुण और प्रकृतिरूप होते हुए भी पुरुषरूप आपको नमस्कार है॥ २८॥

उसके बाद गुणरूप धारण करनेवाले विश्वात्मा आपको नमस्कार है। विश्वात्मा, भक्तप्रिय, शान्तस्वरूप तथा परमात्मा शिवको नमस्कार है॥ २९॥

सदाशिव, रुद्र एवं जगत्पतिको नमस्कार है। आपमें आजसे मेरी भक्ति दृढ़ होकर निरन्तर बढ़ती रहे॥ ३०॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर महाशिवभक्त विष्णु मौन हो गये। इसके बाद सभी देवता प्रणाम करके उन परमेश्वरसे कहने लगे—॥ ३१॥

देवता बोले—हे देवनाथ! हे महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे जगत्पते! हे परमेश्वर! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये॥ ३२॥

आप सर्वकर्ता हैं। आप प्रसन्न होइये। हमलोग प्रसन्नताके साथ आपको नमस्कार करते हैं। आपमें हमारी अविनाशी दृढ़ भक्ति सदा बनी रहे॥ ३३॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंके द्वारा स्तुति किये जानेपर लोककल्याणकर्ता शंकरजीने प्रसन्नचित्त होकर कहा—॥ ३४॥

शंकर बोले—हे विधे! हे विष्णो! हे देवताओ! मैं विशेषरूपसे प्रसन्न हूँ। आपलोग अच्छी तरह विचारकर अपने मनोवांछित वरको बतलायें॥ ३५॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! शिवजीके द्वारा कहे गये वचनको सुनकर सभी देवता प्रसन्नमनसे कहने लगे—॥ ३६॥

सभी देवता बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि आपको हमें वर देना ही है, तो हम देवताओंको अपना दास समझकर यह वर दीजिये कि हे देवश्रेष्ठ! जब-जब देवताओंपर विपत्ति पड़े, तब-तब आप प्रकट होकर सदा दुःखका निवारण

करें ॥ ३७-३८ ॥

सनत्कुमार बोले—जब ब्रह्मा, विष्णु तथा देवताओंने भगवान् शंकरसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर एक ही बार सभी देवताओंसे कहा—ऐसा ही होगा। हे देवगणो! मैं इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न हूँ। इनका पाठ करनेवालों तथा सुननेवालोंको मैं निश्चित रूपसे सर्वदा लोकमें परम अभीष्ट वर देता रहूँगा॥ ३९-४० ॥

इस प्रकार कहकर देवताओंके दुःखका सदा निवारण करनेवाले शंकरजीने प्रसन्न होकर जो भी समस्त देवताओंको प्रिय था, वह सब उन्हें प्रदान किया॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें देवस्तुतिवर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

त्रिपुरदाहके अनन्तर शिवभक्त मयदानवका भगवान् शिवकी शरणमें आना, शिवद्वारा उसे अपनी भक्ति प्रदानकर वितललोकमें निवास करनेकी आज्ञा देना, देवकार्य सम्पन्नकर शिवजीका अपने लोकमें जाना

सनत्कुमार बोले—शिवजीको प्रसन्न देखकर उनकी कृपाके प्रभावसे भस्म होनेसे बचा हुआ मयदानव अति प्रसन्न होकर वहाँ आया। उसने सदाशिव एवं अन्य देवताओंको भी प्रेमपूर्वक हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रणाम किया और उसके बाद शिवजीको पुनः प्रणाम किया। तदनन्तर उठकर शिवजीकी ओर देखकर भक्तिसे पूर्ण मनवाला वह श्रेष्ठ दानव मय प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगा—॥ १—३ ॥

मय बोला—हे देवदेव! हे महादेव! हे भक्तवत्सल! हे शंकर! आप कल्पवृक्षस्वरूप हैं तथा सभी पक्षोंसे रहित हैं॥ ४ ॥

हे प्रकाशरूप! आपको नमस्कार है। हे विश्वरूप! आपको नमस्कार है, आप पवित्रात्माको बार-बार नमस्कार है। आप पवित्र करनेवालेको बार-बार नमस्कार है॥ ५ ॥

विचित्र रूपवाले, नित्य तथा रूपसे अतीत आपको नमस्कार है। दिव्यरूप, दिव्य एवं अत्यन्त दिव्य आकृतिवाले आपको नमस्कार है। प्रणतजनोंकी सभी प्रकारकी विपत्तियोंको दूर करनेवाले तथा सबका कल्याण चाहनेवाले आपको नमस्कार है। त्रिलोकीके कर्ता, भर्ता तथा हर्ता आपको बार-बार नमस्कार है। हे शिवाकान्त! हे शिवेश्वर! भक्तोंको भक्तिसे प्राप्त होनेवाले, कृपा करनेवाले तथा तपस्याका उत्तम फल देनेवाले आपको प्रणाम है॥ ६—८ ॥

हे स्तुतिप्रिय! हे परमेश्वर! मैं स्तुति करना नहीं जानता हूँ। हे सर्वेश! आप प्रसन्न हो जाइये और मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये॥ ९ ॥

सनत्कुमार बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! मयद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर शंकरजी प्रसन्न हुए और आदरपूर्वक मयसे कहने लगे—॥ १० ॥

शिवजी बोले—हे दानवश्रेष्ठ मय! मैं [तुमपर] प्रसन्न हूँ, वर माँगो, मैं तुम्हारा जो भी मनोवांछित वर होगा, उसे प्रदान करूँगा, इसमें संशय नहीं है॥ ११ ॥

सनत्कुमार बोले—शिवका कल्याणकारी वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ मय हाथ जोड़कर सिर झुकाकर शिवको नमस्कारकर कहने लगा—॥ १२ ॥

मय बोला—हे देवदेव! हे महादेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मैं वर पानेके योग्य हूँ, तो मुझे अपनी शाश्वती भक्ति प्रदान कीजिये॥ १३ ॥

हे परमेश्वर! आप अपने भक्तोंके प्रति सर्वदा सख्यभाव तथा दीनोंके प्रति सदा दयाभाव रखिये और अन्य खल जीवोंकी उपेक्षा कीजिये। हे महेश्वर! मुझमें कभी भी असुरभाव न रहे। हे नाथ! मैं सदा निर्भय एवं आपके शुभ भजनमें मग्न रहूँ॥ १४-१५ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार मयदानवके प्रार्थना करनेपर भक्तवत्सल परमेश्वर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर मयसे कहने लगे—॥ १६ ॥

महेश्वर बोले—हे दानवश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तुम

मेरे विकाररहित भक्त हो, इस समय जो भी तुम्हारे अभीष्ट वर हैं, उन सबको मैंने तुम्हें दे दिया। तुम मेरी आज्ञासे अपने परिवारसहित स्वर्गलोकसे भी मनोहर वितललोकको जाओ और भक्तियुक्त तथा निर्भय होकर वहाँ रहो। मेरी आज्ञासे तुम्हारे चित्तमें कभी भी असुरभाव उत्पन्न नहीं होगा॥ १७—१९॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] उसके बाद शिवजीकी आज्ञा शिरोधार्यकर उनको तथा देवताओंको भी प्रणामकर वह वितललोकको चला गया। इसी बीच वे मुण्डी भी वहाँ आ गये और ब्रह्मा, विष्णु आदि उन सभी देवताओंको प्रणामकर कहने लगे—हे देवताओ! हमलोग कहाँ जायँ तथा क्या करें, आपकी आज्ञा माननेवाले हम सभीको शीघ्रतासे आज्ञा दीजिये॥ २०—२२॥

हे हरे! हे विधे! हे देवो! हमलोगोंने दुष्कर्म किया है, जो कि शिवजीमें भक्ति रखनेवाले दानवोंकी शिवभक्तिको विनष्ट किया। [इस पापके फलस्वरूप] करोड़ों कल्पोंतक नरकमें हमलोगोंका वास होगा। शिवभक्तोंका विरोध करनेवाले हमलोगोंका उद्धार निश्चितरूपसे नहीं होगा, किंतु हमलोगोंने आपलोगोंकी इच्छासे ही यह दुष्कर्म किया है। अतः कृपापूर्वक आपलोग उसकी शान्तिका मार्ग बतायें, हम आपलोगोंके शरणागत हैं॥ २३—२५॥

सनत्कुमार बोले—उनका वह वचन सुनकर विष्णु, ब्रह्मादि देवता अपने आगे हाथ जोड़कर खड़े उन मुण्डियोंसे कहने लगे—॥ २६॥

विष्णु आदि [देवता] बोले—हे मुण्डियो! तुमलोग किसी प्रकारका भय मत करो, यह सारा उत्तम चरित्र शिवजीकी आज्ञासे हुआ है। तुमलोगोंको दुःख देनेवाली दुर्गति कदापि न होगी; क्योंकि तुमलोग शिवजीके दास हो और देवताओं एवं ऋषियोंके हितकारी हो॥ २७-२८॥

शंकरजी देवगणों एवं ऋषियोंके हितकर्ता हैं और देवताओं तथा ऋषियोंका हित करनेवाले लोग उन्हें प्रिय हैं, अतः देवताओं तथा ऋषियोंका हित करनेवाले मनुष्योंकी कदापि दुर्गति नहीं होती। इसके विपरीत मतको स्वीकार करनेवाले मनुष्योंकी कलियुगमें दुर्गति होगी, हम यह सत्य कहते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ २९-३०॥

हे मुण्डियो! तुमलोग मेरी आज्ञासे धैर्य धारणकर गुप्तरूपसे कलियुगके आनेतक मरुस्थलमें निवास करो। कलियुगके आनेपर तुमलोग अपना मत स्थापित करना; क्योंकि कलियुगमें लोग मोहमें पड़कर तुमलोगोंका मत स्वीकार कर लेंगे॥ ३१-३२॥

हे मुनीश्वर! उन सुरेश्वरोंके द्वारा इस प्रकारकी आज्ञा प्राप्तकर वे मुण्डी उन्हें प्रणामकर यथानिर्दिष्ट अपने आश्रमको चले गये। इसके अनन्तर [हे व्यास!] त्रिपुरवासियोंको भस्म करनेके बाद कृतकृत्य हुए वे महायोगी भगवान् रुद्र ब्रह्मा आदिके द्वारा पूजित हुए॥ ३३-३४॥

इस प्रकार देवताओंका महान् कार्य सम्पन्नकर वे प्रभु अपने गणों, देवी पार्वती तथा पुत्रोंसहित अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर परिवारसहित महादेव शंकरके अन्तर्धान हो जानेपर धनुष-बाण, रथ आदिसहित समस्त सामग्री विलुप्त हो गयी॥ ३५-३६॥

इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु, सभी देवता, मुनि, गन्धर्व, किन्नर, नाग, सर्प, अप्सराएँ तथा मनुष्य प्रसन्न हो गये और प्रसन्नतापूर्वक शिवजीका यशोगान करते हुए अपने-अपने स्थानोंको चले गये एवं अपने-अपने स्थानोंपर पहुँचकर परम शान्तिको प्राप्त हुए॥ ३७-३८॥

[हे वेदव्यास!] इस प्रकार मैंने आपसे त्रिपुरके वधको सूचित करनेवाले, महालीलासे परिपूर्ण तथा उत्कृष्ट सम्पूर्ण शिव-चरित्रका वर्णन कर दिया, जो धन्य, यशको फैलानेवाला, आयुकी वृद्धि करनेवाला, धन-धान्यको बढ़ानेवाला, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ३९-४०॥

जो इस उत्तम वृत्तान्तको सदा पढ़ता है तथा सुनता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण सुखोंको भोगकर अन्तमें मुक्ति प्राप्त करता है॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें सनत्कुमारव्याससंवादके अन्तर्गत त्रिपुरवधके पश्चात् देवस्तुति-मयस्तुति-मुण्डिनिवेशन तथा देवताओंका स्वस्थानगमनवर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

बृहस्पति तथा इन्द्रका शिवदर्शनके लिये कैलासकी ओर प्रस्थान, सर्वज्ञ शिवका उनकी परीक्षा लेनेके लिये दिगम्बर जटाधारी रूप धारणकर मार्ग रोकना, क्रुद्ध इन्द्रद्वारा उनपर वज्रप्रहारकी चेष्टा, शंकरद्वारा उनकी भुजाको स्तम्भित कर देना, बृहस्पतिद्वारा उनकी स्तुति, शिवका प्रसन्न होना और अपनी नेत्राग्निको क्षार-समुद्रमें फेंकना

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे भगवन्! हे ब्रह्मपुत्र! मैंने सुना है कि पूर्वकालमें प्रभु शंकरजीने महादैत्य जलन्धरका वध किया था। हे महाप्राज्ञ! आप शंकरजीके उस चरित्रको विस्तारपूर्वक कहिये, उनके पावन चरित्रको सुनता हुआ कौन तृप्त हो सकता है॥ १-२॥

सूतजी बोले—महामुनि व्यासजीके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर बोलनेमें प्रवीण महामुनि सनत्कुमारजी शान्तिपूर्वक अर्थमय वचन कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! एक बार बृहस्पति एवं इन्द्र परम भक्तिसे युक्त हो शंकरजीका दर्शन करनेके लिये कैलासको गये थे॥ ४॥

तब बृहस्पति तथा इन्द्रके आगमनको जानकर अपने दर्शनके लिये तत्पर मनवाले उन दोनोंके ज्ञानकी परीक्षा लेनेके लिये सिरपर जटाजूट बाँधकर प्रसन्नमुख तथा दिगम्बर होकर सज्जनोंको सद्गति देनेवाले प्रभु शंकर उनका मार्ग रोककर खड़े हो गये॥ ५-६॥

उसके बाद आनन्दपूर्वक जाते हुए इन्द्र एवं बृहस्पतिने मार्गमें स्थित, भयंकर, अद्भुत आकारवाले, महातेजस्वी, सिरपर जटाजूट बाँधे हुए, शान्त, विशाल भुजाओंवाले, चौड़े वक्षःस्थलवाले, गौरवर्णवाले तथा भयावह नेत्रवाले पुरुषको देखा॥ ७-८॥

तब अपने अधिकारसे मदमत्त इन्द्रने मार्गमें स्थित उस शंकररूप पुरुषको न पहचानकर पूछा—॥ ९॥

इन्द्र बोले—तुम कौन हो, कहाँसे आये हो और तुम्हारा नाम क्या है ? प्रभु शिवजी अपने स्थानपर स्थित हैं अथवा कहीं अन्यत्र गये हुए हैं, ठीक-ठीक बताओ॥ १०॥

सनत्कुमार बोले—इन्द्रके द्वारा इस प्रकार पूछे गये उस तपस्वीने कुछ नहीं कहा। तब इन्द्रने पुनः पूछा, किंतु वह दिगम्बर कुछ नहीं बोला॥ ११॥

तब लोकाधीश्वर इन्द्रने पुनः पूछा, किंतु लीलारूपधारी महायोगी प्रभु शंकरजी मौन ही रहे। इस प्रकार इन्द्रके द्वारा बार-बार पूछे गये वे दिगम्बर भगवान् शिव इन्द्रके ज्ञानकी परीक्षा लेनेके लिये कुछ नहीं बोले॥ १२-१३॥

तत्पश्चात् तीनों लोकोंके ऐश्वर्यसे गर्वित इन्द्रको महान् क्रोध उत्पन्न हुआ और उन जटाधारी दिगम्बरकी भर्त्सना करते हुए उन्होंने यह वचन कहा—॥ १४॥

इन्द्र बोले—हे दुर्मते! मेरे द्वारा पूछे जानेपर भी तुमने उत्तर नहीं दिया। अतः मैं इस वज्रसे तुम्हारा वध करता हूँ, देखता हूँ कि कौन तुम्हारी रक्षा करता है॥ १५॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर उन इन्द्रने क्रोधसे उस दिगम्बरकी ओर देखकर उसे मारनेके लिये [हाथमें] वज्र उठा लिया॥ १६॥

तब सदाशिव प्रभु शंकरने इन्द्रको हाथमें वज्र लिये हुए देखकर उस वज्रपातको स्तम्भित कर दिया॥ १७॥

तत्पश्चात् अत्यन्त भयंकर तथा विकराल नेत्रवाले रुद्र क्रुद्ध हो अपने तेजसे शीघ्र ही प्रज्वलित हो उठे, मानो जला डालेंगे॥ १८॥

भुजाके स्तम्भित हो जानेसे इन्द्र मन-ही-मन इस प्रकार प्रज्वलित हो गये, जैसे मन्त्र एवं औषधिसे अपने पराक्रमको रुद्ध देखकर सर्प प्रज्वलित होता है॥ १९॥

तब अपने तेजसे प्रज्वलित होते हुए उस पुरुषको देखकर और बुद्धिसे उन्हें प्रभु शंकर जानकर बृहस्पतिने प्रणाम किया। उसके बाद उदारबुद्धिवाले बृहस्पति हाथ जोड़कर पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करके प्रभुकी स्तुति करने लगे—॥ २०-२१॥

गुरु बोले—देवाधिदेव, महादेव, परमात्मस्वरूप, सर्वसमर्थ, तीन नेत्रवाले तथा जटाजूटधारी महेश्वर आपको प्रणाम है। दीनोंके नाथ, सर्वव्यापक, अन्धकासुरका वध

करनेवाले, त्रिपुरका वध करनेवाले, शर्व, परमेष्ठी तथा ब्रह्मस्वरूप आप [शिव]-को नमस्कार है॥ २२-२३॥

विरूपाक्ष, रुद्र, बहुरूप, विरूप, अतिरूप तथा रूपसे अतीत आप शम्भुको नमस्कार है॥ २४॥

दक्षयज्ञका विध्वंस करनेवाले, यज्ञोंका फल देनेवाले, यज्ञस्वरूप तथा श्रेष्ठ कर्ममें प्रवृत्त करनेवाले आप [शिव]-को नमस्कार है। कालान्तक, कालस्वरूप, कालरूप सर्पको धारण करनेवाले, परमेश्वर तथा सर्वत्र व्यापक आप [शिव]-को नमस्कार है॥ २५-२६॥

ब्रह्माके सिरको काटनेवाले, ब्रह्मा तथा चन्द्रमासे स्तुत आपको नमस्कार है। ब्राह्मणोंका हित करनेवाले आपको नमस्कार है, आप परमात्माको नमस्कार है॥ २७॥

आप ही अग्नि, वायु तथा आकाश हैं। आप ही जल तथा पृथ्वी हैं। आप ही सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र हैं। आप ही समस्त तारागण हैं। आप ही विष्णु हैं तथा आप ही उनसे स्तुत परमेश्वर हैं। आप ही सनकादि मुनि हैं, आप ही ब्रह्मा हैं तथा आप ही तपोधन नारद हैं। आप ही सारे जगत्के ईश्वर हैं तथा आप ही जगत्स्वरूप हैं। आप ही सबसे अन्वित, सबसे भिन्न एवं प्रकृतिसे परे हैं॥ २८—३०॥

आप ही ब्रह्मा नाम धारणकर रजोगुणसे युक्त होकर सभी लोकोंकी सृष्टि करते हैं। आप ही विष्णुरूप होकर सत्त्वगुणयुक्त हो सम्पूर्ण जगत्का पालन करते हैं॥ ३१॥

हे महादेव! आप ही हरका रूप धारण करके तमोगुणसे युक्त होकर सम्पूर्ण पांचभौतिक जगत्का लीलापूर्वक संहार करते हैं॥ ३२॥

हे विश्वभावन! आपके ही ध्यानबलसे सूर्य तपता है, चन्द्रमा लोकमें अमृत बरसाता है और पवन बहता है॥ ३३॥

हे शंकर! आपके ही ध्यानबलसे मेघ जलकी वृष्टि करते हैं और आपके ही बलसे इन्द्र पुत्रके समान त्रिलोकीकी रक्षा करते हैं। मेघ, सभी देवता एवं मुनीश्वर आपके ध्यानबलसे तथा आपके भयसे चकित होकर अपने-अपने कर्तव्यका पालन करते हैं॥ ३४-३५॥

हे रुद्र! आपके चरणकमलके सेवनके प्रभावसे ही मनुष्य इस पृथ्वीपर अन्य देवताओंकी उपासना नहीं करते हैं और इस त्रिलोकके ऐश्वर्यका भोग करते हैं। इतना ही नहीं, वे आपके चरणकमलोंकी सेवासे ही योगियोंके लिये भी अगम्य तथा दुर्लभ गति प्राप्त करते हैं॥ ३६-३७॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] इस प्रकार बृहस्पतिने लोककल्याणकारी शिवजीकी स्तुति करके उन ईश्वरके चरणोंपर इन्द्रको गिराया॥ ३८॥

सिर नीचा किये हुए इन्द्रको शिवजीके चरणोंमें गिराकर विनयावनत बृहस्पतिने शिवजीसे यह कहा— ॥ ३९॥

बृहस्पति बोले—हे दीनानाथ! हे महादेव! आपके चरणोंपर गिरे हुए इन्द्रका उद्धार कीजिये और अपने नेत्रज क्रोधको शान्त कीजिये॥ ४०॥

हे महादेव! आप प्रसन्न हो जाइये और शरणमें आये हुए इन्द्रकी रक्षा कीजिये, आपके ललाटस्थित नेत्रसे उत्पन्न हुई यह अग्नि शान्त हो॥ ४१॥

सनत्कुमार बोले—गुरु बृहस्पतिकी यह बात सुनकर करुणासिन्धु देवदेव महेश्वरने मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा— ॥ ४२॥

महेश्वर बोले—हे बृहस्पते! मैं अपने नेत्रसे उत्पन्न हुए क्रोधको किस प्रकार धारण करूँ, सर्प अपनी छोड़ी गयी केंचुलको पुनः धारण नहीं करता है॥ ४३॥

सनत्कुमार बोले—शिवका यह वचन सुनकर क्लेशयुक्त तथा भयसे व्याकुल चित्तवाले बृहस्पतिने कहा— ॥ ४४॥

बृहस्पति बोले—हे देव! हे भगवन्! आपको भक्तोंपर सर्वदा दया करनी चाहिये। हे शंकर! आप अपने भक्तवत्सल नामको सत्य कीजिये। हे देवेश! आप अपने इस अत्यन्त उग्र तेजको अन्यत्र छोड़ दीजिये। हे समस्त भक्तोंका उद्धार करनेवाले! आप इन्द्रका उद्धार कीजिये॥ ४५-४६॥

सनत्कुमार बोले—बृहस्पतिके ऐसा कहनेपर भक्त-वत्सल नामवाले तथा भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले रुद्र प्रसन्नचित्त होकर देवपूज्य बृहस्पतिसे कहने लगे— ॥ ४७॥

शिवजी बोले—हे तात! मैं [तुम्हारी] इस स्तुतिसे प्रसन्न होकर उत्तम वर देता हूँ। इन्द्रको जीवनदान देनेके कारण तुम 'जीव'—इस नामसे विख्यात होओ। मेरे भालस्थित नेत्रसे इन्द्रको मारनेवाली जो यह अग्नि उत्पन्न हुई है, इसे मैं दूर फेंक देता हूँ, जिससे यह इन्द्रको पीड़ा न पहुँचाये॥ ४८-४९॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर शंकरजीने अपने तृतीय नेत्रसे उत्पन्न अपने तेजरूप अद्भुत अग्निको हाथमें लेकर क्षारसमुद्रमें फेंक दिया। तत्पश्चात् महालीला करनेवाले भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। इन्द्र एवं बृहस्पति भयसे मुक्त हो परम सुखी हुए॥ ५०-५१॥

इस प्रकार जिनके दर्शनके लिये इन्द्र एवं बृहस्पति जा रहे थे, उनका दर्शन पाकर वे कृतार्थ हो गये और प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थानको लौट गये॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत शक्रजीवनवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

क्षारसमुद्रमें प्रक्षिप्त भगवान् शंकरकी नेत्राग्निसे समुद्रके पुत्रके रूपमें जलन्धरका प्राकट्य, कालनेमिकी पुत्री वृन्दाके साथ उसका विवाह

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! आपको नमस्कार है, मैंने आज महात्मा शंकरकी यह अद्भुत कथा सुनी। हे ब्रह्मन्! शिवजीके द्वारा भालनेत्रसे उत्पन्न हुए अपने तेजको क्षारसमुद्रमें फेंक दिये जानेपर क्या हुआ? हे तात! उसे शीघ्र कहिये॥ १-२॥

सनत्कुमार बोले—हे तात! हे महाप्राज्ञ! अब आप शिवकी परम अद्भुत लीलाको सुनिये, जिसे श्रद्धासे सुनकर भक्त योगियोंकी गति प्राप्त करते हैं। शिवजीके तीसरे नेत्रसे उत्पन्न वह तेज, जो खारे समुद्रमें फेंक दिया गया था, शीघ्र ही बालकरूप हो गया॥ ३-४॥

सभी लोकोंको भय देनेवाला वह बालक वहाँ गंगा-सागरके संगमपर स्थित हो बड़े ऊँचे स्वरमें रोने लगा॥ ५॥

उस रोते हुए बालकके शब्दसे पृथ्वी बारंबार कम्पित हो उठी और स्वर्ग तथा सत्यलोक उसके स्वरसे बहरे हो गये। उस बालकके रुदनसे सभी लोक भयभीत हो उठे और समस्त लोकपाल व्याकुलचित्त हो गये॥ ६-७॥

हे विप्रेन्द्र! हे तात! हे विभो! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, उस शिशुके रुदनसे चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् चलायमान हो उठा॥ ८॥

उसके बाद मुनियोंके सहित व्याकुल समस्त देवता लोकगुरु पितामह ब्रह्माकी शरणमें गये। वहाँ जाकर इन्द्रसहित सभी देवताओं तथा मुनियोंने ब्रह्माको प्रणामकर तथा उनकी स्तुतिकर उनसे कहा—॥ ९-१०॥

देवता बोले—हे लोकाधीश! हे सुराधीश! हमलोगोंके समक्ष भय उपस्थित हो गया है। हे महायोगिन्! उसका विनाश कीजिये, यह अद्भुत ध्वनि उत्पन्न हुई है॥ ११॥

सनत्कुमार बोले—तब उनका यह वचन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माजी आश्चर्यचकित हो उठे कि 'यह क्या है' और वहाँ जानेकी इच्छा करने लगे॥ १२॥

हे तात! तब ब्रह्माजी देवताओंके साथ सत्यलोकसे पृथ्वीपर उतरे और उसका पता लगाते हुए समुद्रके किनारे गये। सभी लोकोंके पितामह ब्रह्मा ज्यों ही वहाँ आये, त्यों ही उन्होंने समुद्रकी गोदमें उस बालकको देखा। ब्रह्माको आया हुआ देखकर देवरूप धारणकर सागरने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करके उस बालकको उनकी गोदमें डाल दिया। तदनन्तर विस्मयमें पड़े हुए ब्रह्माजीने समुद्रसे यह वचन कहा—हे जलराशे! शीघ्र बताओ कि यह अद्भुत बालक किसका पुत्र है?॥ १३—१६॥

सनत्कुमार बोले—तब ब्रह्माजीका वचन सुनकर समुद्र बड़ा प्रसन्न हुआ और वह हाथ जोड़कर नमस्कारकर स्तुति करनेके उपरान्त ब्रह्माजीसे कहने लगा—॥ १७॥

समुद्र बोला—हे ब्रह्मन्! हे सर्वलोकस्वामिन्! मुझे गंगासागरके संगमपर यह बालक अकस्मात् प्राप्त हुआ है और मैं नहीं जानता कि यह किसका बालक है॥ १८॥

हे जगद्गुरो! आप इसका जातकर्मादि संस्कार कीजिये और हे विधाता! इसके जातकसम्बन्धी समस्त फलोंको बताइये॥ १९॥

सनत्कुमार बोले—जब समुद्र ब्रह्माजीसे इस बातको कह रहा था, तभी उस बालकने ब्रह्माका कण्ठ पकड़ लिया, यद्यपि वे अपना गला बारंबार उससे छुड़ा रहे थे।

हे व्यासजी! ब्रह्माजी गला छुड़ानेका बहुत प्रयत्न कर रहे थे, किंतु उस बालकने इतने जोरसे उनका कण्ठ दबाया कि पीड़ित ब्रह्माके नेत्रोंसे जल टपकने लगा॥ २०-२१॥

तब ब्रह्माजीने किसी प्रकार उस महातेजस्वी समुद्रपुत्रके दोनों हाथोंसे अपना गला छुड़ाया और वे आदरपूर्वक समुद्रसे कहने लगे—॥ २२॥

ब्रह्माजी बोले—हे सागर! सुनो, मैं तुम्हारे इस पुत्रका समस्त जातकोक्त फल विचारकर कहता हूँ॥ २३॥

इसने मेरे नेत्रोंसे निकले हुए जलको धारण किया है, इसलिये यह जलन्धर—इस नामसे प्रसिद्ध होगा॥ २४॥

यह इसी समय तरुण, सर्वशास्त्रार्थवेत्ता, महापराक्रमी, धैर्यवान् तथा रणदुर्मद योद्धा है। तुम्हारे तथा कार्तिकेयके समान यह युद्धमें गम्भीर होगा, यह संग्राममें सबको जीत लेगा तथा समस्त ऐश्वर्यसे परिपूर्ण होगा॥ २५-२६॥

यह बालक समस्त दैत्योंका अधिपति होगा तथा विष्णुको भी जीतनेवाला होगा, इसका पराभव कभी नहीं होगा। रुद्रको छोड़कर यह सभी प्राणियोंसे अवध्य होगा। जहाँसे इसकी उत्पत्ति हुई है, अन्तमें यह वहीं जायगा। इसकी पत्नी महापतिव्रता, सौभाग्यको बढ़ानेवाली, सर्वांगसुन्दरी, मनोहर, प्रिय वचन बोलनेवाली तथा शीलका सागर होगी॥ २७—२९॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर [दैत्यगुरु] शुक्रको बुलाकर ब्रह्माजीने उस बालकको राज्यपर अभिषिक्त करवाया और समुद्रसे आज्ञा लेकर वे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर उसके दर्शनसे प्रफुल्लित नेत्रवाला समुद्र उस पुत्रको लेकर प्रसन्नतासे अपने घर चला गया और प्रसन्नचित्त होकर अनेक उपायोंद्वारा सर्वांगसुन्दर, मनोहर, अत्यन्त अद्भुत एवं परम तेजस्वी अपने पुत्रका पालन-पोषण करने लगा॥ ३०—३२॥

उसके बाद सागरने महान् असुर कालनेमिको बुलाकर उसकी वृन्दा नामक पुत्रीको उसकी भार्याके निमित्त माँगा। हे मुने! वीर असुरोंमें श्रेष्ठ, बुद्धिमान् तथा अपने कार्य-साधनमें कुशल असुर कालनेमिने समुद्रकी याचना स्वीकार कर ली और ब्राह्मविवाहकी विधिसे समुद्रपुत्र वीर जलन्धरको अपनी प्राणप्रिय पुत्री प्रदान कर दी॥ ३३—३५॥

उस समय उन दोनोंके विवाहमें महान् उत्सव हुआ। हे मुने! समस्त नदों, नदियों एवं असुरोंको सुख प्राप्त हुआ। स्त्रीसहित पुत्रको देखकर समुद्रको भी अत्यधिक सुखकी प्राप्ति हुई और उसने ब्राह्मणों तथा अन्य लोगोंको यथाविधि दान दिया। तब पातालमें रहनेवाले दैत्य, जो देवताओंके द्वारा पहले जीत लिये गये थे, वे पृथ्वीपर चले गये और निडर होकर उसके आश्रयमें रहने लगे॥ ३६—३८॥

[उस समय] कालनेमि आदि वे असुर उस समुद्रपुत्रको कन्या देकर परम प्रसन्न हुए और देवताओंको जीतनेके लिये उसके आश्रित हो गये॥ ३९॥

असुरवीरोंमें मुख्य वीर वह समुद्रपुत्र जितेन्द्रिय जलन्धर अति सुन्दरी भार्याको प्राप्तकर शुक्राचार्यके प्रभावसे राज्य करने लगा॥ ४०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत जलन्धरोत्पत्तिविवाहवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

राहुके शिरश्छेद तथा समुद्रमन्थनके समयके देवताओंके छलको जानकर जलन्धरद्वारा क्रुद्ध होकर स्वर्गपर आक्रमण, इन्द्रादि देवोंकी पराजय, अमरावतीपर जलन्धरका आधिपत्य, भयभीत देवताओंका सुमेरुकी गुफामें छिपना

सनत्कुमार बोले—एक बार वृन्दाका पति वह वीर तथा उदार बुद्धिवाला समुद्रपुत्र जलन्धर अपनी पत्नी वृन्दा एवं समस्त असुरोंके साथ बैठा था॥ १॥

उसी समय अत्यन्त प्रसन्न, महातेजस्वी, मूर्तस्वरूप तेजपुंजके समान भासित होते हुए शुक्राचार्य दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए वहाँ आये। उन गुरुको आते हुए देखकर प्रसन्न मनवाले उन सभी असुरों तथा जलन्धरने भी शीघ्र आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ २-३॥

तब तेजोनिधि भार्गव उन्हें आशीर्वाद देकर रम्य आसनपर बैठ गये और वे [असुरगण] भी पूर्ववत् बैठ गये। उसके बाद स्थिर तथा उत्तम शासनवाला वह वीर सिन्धुपुत्र जलन्धर प्रेमसे अपनी सभाको देखकर प्रसन्न हुआ। वहाँ बैठे हुए सिरकटे राहुको देखकर उस दैत्यराज समुद्रपुत्रने शीघ्रतापूर्वक शुक्राचार्यसे यह पूछा— ॥ ४—६ ॥

जलन्धर बोला—हे प्रभो! हे गुरो! राहुके सिरको किसने काटा है? हे गुरो! उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको मुझे ठीक-ठीक बताइये ॥ ७ ॥

सनत्कुमार बोले—समुद्रपुत्र जलन्धरका यह वचन सुनकर भृगुपुत्र शुक्राचार्य शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके यथार्थरूपमें कहने लगे— ॥ ८ ॥

शुक्र बोले—हे जलन्धर! हे महावीर! हे असुरोंके सहायक! तुम सुनो, मैं सारा वृत्तान्त तुमसे यथार्थ रूपसे कह रहा हूँ। पूर्व समयमें विरोचनका पुत्र तथा हिरण्यकशिपुका प्रपौत्र वीर, बलवान् और धर्मात्मा बलि [नामक दैत्य] हुआ था ॥ ९-१० ॥

उससे पराजित हुए इन्द्रसहित सभी देवता, जो स्वार्थसाधनमें अत्यन्त निपुण थे, विष्णुकी शरणमें गये और उन्होंने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कहा ॥ ११ ॥

हे तात! तब छलकर्ममें निपुण उन देवताओंने उन विष्णुकी आज्ञासे अपने कार्यकी सिद्धिहेतु असुरोंके साथ सन्धि कर ली। इसके बाद विष्णुके सहायक उन सभी देवताओंने अमृतके लिये असुरोंके साथ आदरपूर्वक समुद्रमन्थन किया। तत्पश्चात् दैत्यशत्रु देवताओंने [समुद्रमन्थनसे उत्पन्न हुए] रत्न स्वयं हरण कर लिये और यत्नपूर्वक छलसे अमृत ग्रहण कर लिया तथा उसका पान भी कर लिया। तदनन्तर अमृतपानसे बलशाली हुए इन्द्रसहित उन देवताओंने विष्णुकी सहायतासे असुरोंको पराजित कर दिया ॥ १२—१५ ॥

इन्द्रके सर्वदा पक्षपाती उन विष्णुने देवताओंकी सभामें अमृत पीते हुए राहुका शिरश्छेदन कर दिया ॥ १६ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शुक्राचार्यने अमृतके लिये देवताओंद्वारा कराये गये समुद्रमन्थन, राहुके शिरश्छेदन, रत्नोंके अपहरण, दैत्योंके पराभव और देवोंद्वारा किये गये अमृतपान—इन सबका विस्तारपूर्वक वर्णन किया ॥ १७-१८ ॥

तब अपने पिता [समुद्र]-का मन्थन सुनकर क्रोधके कारण रक्त नेत्रोंवाला वह महावीर तथा महाप्रतापी समुद्रपुत्र जलन्धर कुपित हो उठा। इसके बाद उसने शीघ्र ही घस्मर नामक [अपने] उत्तम दूतको बुलाकर उससे सारा वृत्तान्त कहा, जिसे आत्मवान् गुरु शुक्राचार्यने बताया था। तत्पश्चात् बहुत प्रकारसे सम्मानित करके तथा अभय देकर अपने उस कुशल दूतको उसने प्रेमपूर्वक इन्द्रके समीप भेजा ॥ १९—२१ ॥

उस समुद्रपुत्र जलन्धरका वह बुद्धिमान् दूत घस्मर बड़ी शीघ्रतासे सभी देवगणोंसे युक्त स्वर्गलोकको गया ॥ २२ ॥

वहाँ जाकर वह दूत शीघ्र ही सुधर्मा सभामें पहुँचकर बड़े अहंकारके साथ देवराज इन्द्रसे यह वचन कहने लगा— ॥ २३ ॥

घस्मर बोला—समुद्रपुत्र जलन्धर सभी दैत्योंका अधिपति, महाप्रतापी एवं महावीर है तथा शुक्राचार्य उसके सहायक हैं। मैं उसी वीरका घस्मर नामक दूत हूँ और वस्तुतः घस्मर (भक्षक) नहीं हूँ, उसी वीरके द्वारा भेजे जानेपर मैं आपके पास आया हूँ। सर्वत्र अप्रतिहत आज्ञावाले महान् बुद्धिमान् तथा सम्पूर्ण देवताओंको जीतनेवाले उस जलन्धरने जो कहा है, उसे आप सुनिये ॥ २४—२६ ॥

जलन्धर बोला—हे देवाधम! तुमने किस कारणसे पर्वतके द्वारा मेरे पिता समुद्रका मन्थन किया? और मेरे पिताके सारे रत्नोंका अपहरण किया? तुमने यह उचित नहीं किया, उन रत्नोंको अभी शीघ्र लौटा दो और विचार करके देवताओंसहित मेरी शरणमें आ जाओ। अन्यथा हे सुराधम! तुम्हारे समक्ष बहुत बड़ा भय उपस्थित होगा तथा तुम्हारा राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। मैं यह सत्य कह रहा हूँ ॥ २७—२९ ॥

सनत्कुमार बोले—दूतकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र विस्मित हो गये और वे भय तथा रोषसे युक्त हो उसे (पूर्ववृत्तान्तको) याद करते हुए कहने लगे— ॥ ३० ॥

[हे दूत!] मेरे भयसे भागे हुए पर्वतोंको तथा अन्य मेरे दानवशत्रुओंको पूर्वकालमें उस समुद्रने शरण दी थी, इसीलिये मैंने उसके सारे रत्नोंका अपहरण कर लिया है।

मेरा द्रोही सुखसे नहीं रह सकता है, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ३१-३२॥

पहले भी इसी सागरके शंख नामक मूर्ख पुत्रने मुझसे विरोध किया था, इसलिये साधुओंने उसे अपने साथ नहीं रखा। वह साधुओंका हिंसक और बड़ा पापी था, वह समुद्रमें छिपा रहता था, अत: मेरे छोटे भाई विष्णुने उसका संहार कर दिया॥ ३३-३४॥

अत: हे दूत! तुम शीघ्र जाओ और उस समुद्रपुत्रसे सागरमन्थनका समस्त कारण ठीक-ठीक कह दो॥ ३५॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार इन्द्रके द्वारा विसर्जित किया गया वह महाबुद्धिमान् दूत शीघ्र ही वहाँ पहुँचा, जहाँ वीर जलन्धर था। उस बुद्धिमान् दूतने इन्द्रद्वारा कही गयी सभी बातोंको दैत्यराज जलन्धरसे कह दिया॥ ३६-३७॥

इन्द्रके वचनको सुनकर दैत्यके ओष्ठ क्रोधसे फड़कने लगे और वह शीघ्र ही सभी देवताओंको जीतनेकी इच्छासे उद्योग करने लगा। उस दैत्येन्द्रके उद्योग करते ही सभी दिशाओंसे तथा पातालसे करोड़ों-करोड़ दैत्य आकर उपस्थित हो गये॥ ३८-३९॥

तत्पश्चात् वह महावीर तथा प्रतापशाली समुद्रपुत्र जलन्धर शुम्भ-निशुम्भ आदि करोड़ों सेनापतियोंके साथ [देवताओंपर विजय करनेके लिये] निकल पड़ा॥ ४०॥

इस प्रकार अपनी सम्पूर्ण सेनाओंको साथ लेकर वह जलन्धर शीघ्र ही स्वर्गमें पहुँच गया। उसने शंख बजाया तथा सभी वीर चारों ओरसे गरजने लगे॥ ४१॥

इन्द्रलोक पहुँचकर उस दैत्यने सम्पूर्ण सेनाके साथ सिंहनाद करते हुए नन्दनवनमें डेरा डाल दिया॥ ४२॥

नगरको चारों ओरसे घेरकर स्थित उसकी बड़ी सेनाको देखकर देवता कवच धारणकर युद्धके लिये अमरावतीपुरीसे निकल पड़े॥ ४३॥

इसके बाद देवों और दैत्योंकी सेनाओंके बीच मूसल, परिघ, बाण, गदा, परशु एवं शक्तियोंसे युद्ध होने लगा॥ ४४॥

वे एक-दूसरेकी ओर दौड़ने लगे और एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे, थोड़ी ही देरमें दोनों सेनाएँ रुधिरसे लथपथ हो गयीं। हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेनाओंके गिरने तथा गिरानेसे सारी रणभूमि सन्ध्याकालीन बादलोंके समान प्रतीत होने लगी॥ ४५-४६॥

शुक्राचार्य अमृतसंजीवनी विद्याके द्वारा अभिमन्त्रित जलबिन्दुओंसे युद्धमें मरे हुए दैत्योंको जिलाने लगे॥ ४७॥

अंगिरा (बृहस्पति) भी द्रोणपर्वतसे बारंबार दिव्य औषधियोंको लाकर उनके द्वारा युद्धमें देवताओंको जिलाने लगे॥ ४८॥

तब जलन्धरने देवताओंको पुनर्जीवित होते देखकर क्रोधमें भरकर शुक्राचार्यसे यह वचन कहा—॥ ४९॥

जलन्धर बोला—[हे गुरो!] मेरे द्वारा युद्धमें मारे गये देवता कैसे जीवित होते जा रहे हैं? मैंने तो सुन रखा है कि संजीवनीविद्या आपके अतिरिक्त और किसीके पास है ही नहीं॥ ५०॥

सनत्कुमार बोले—सिन्धुपुत्रकी यह बात सुनकर गुरु शुक्राचार्यने प्रसन्नचित्त होकर जलन्धरसे कहा—॥ ५१॥

शुक्र बोले—हे तात! ये अंगिरा (बृहस्पति) द्रोणपर्वतसे औषधियोंको लाकर देवताओंको जीवित कर रहे हैं, मेरी बात सत्य मानो। हे तात! यदि तुम विजय चाहते हो, तो मेरी हितकारी बात सुनो, तुम शीघ्र ही उस द्रोणपर्वतको अपनी भुजाओंसे उखाड़कर समुद्रमें डाल दो॥ ५२-५३॥

सनत्कुमार बोले—गुरु शुक्राचार्यके द्वारा इस प्रकार कहा गया वह दैत्येन्द्र शीघ्र ही वहाँ पहुँचा, जहाँ वह पर्वतराज [द्रोण] था॥ ५४॥

उसने वेगपूर्वक अपनी भुजाओंसे उस द्रोण पर्वतको लेकर शीघ्र ही समुद्रमें डाल दिया। शिवजीके तेजके सम्बन्धमें यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी॥ ५५॥

इसके बाद वह महावीर जलन्धर विशाल सेना लेकर पुन: युद्धस्थलमें लौट आया और अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे देवगणोंका संहार करने लगा॥ ५६॥

तब देवताओंको मरा हुआ देखकर देवपूजित देवगुरु द्रोणपर्वतपर गये, परंतु उन्होंने उस पर्वतराजको वहाँ नहीं देखा। दैत्यके द्वारा पर्वतको अपहृत जानकर देवगुरु भयसे विह्वल हो उठे और आकरके व्याकुलचित्त होकर देवताओंसे वे कहने लगे—॥ ५७-५८॥

गुरु बोले—हे देवताओ! तुमलोग भाग जाओ, महापर्वत द्रोण अब नहीं है, निश्चय ही समुद्रपुत्र जलन्धरने उसे ध्वस्त कर दिया है॥ ५९॥

सभी देवताओंका मर्दन करनेवाला यह महादैत्य जलन्धर जीता नहीं जा सकता है; क्योंकि यह रुद्रके अंशसे उत्पन्न है। हे देवताओ! यह जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है तथा जैसा इसका प्रभाव है, उसे मैं जानता हूँ। शिवजीका अपमान करनेवाले इन्द्रकी सम्पूर्ण चेष्टाको आपलोग स्मरण कीजिये॥ ६०-६१॥

सनत्कुमार बोले—देवताओंके आचार्य बृहस्पतिके द्वारा कहे गये उस वचनको सुनकर भयसे व्याकुल हुए उन देवगणोंने विजयकी आशा त्याग दी और उस दैत्यराजके द्वारा चारों ओरसे मारे जाते हुए इन्द्रसहित सभी देवता धैर्य त्यागकर दसों दिशाओंमें भाग गये॥ ६२-६३॥

तब देवगणोंको पलायित देखकर सागरपुत्र दैत्य जलन्धरने शंख, भेरी तथा जयध्वनिके साथ अमरावतीपुरीमें प्रवेश किया। तब उस दैत्यके नगरीमें प्रविष्ट होनेपर इन्द्र आदि देवता उस दैत्यसे पीड़ित होकर सुमेरु पर्वतकी गुफामें छिप गये॥ ६४-६५॥

हे मुने! तब वह असुर इन्द्रादिकोंके सभी अधिकारोंपर श्रेष्ठ शुम्भादि दैत्योंको भलीभाँति पृथक्-पृथक् नियुक्तकर स्वयं [देवताओंको खोजते हुए] मेरु पर्वतकी गुफामें जा पहुँचा॥ ६६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें देव-जलन्धरयुद्धवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

जलन्धरसे भयभीत देवताओंका विष्णुके समीप जाकर स्तुति करना, विष्णुसहित देवताओंका जलन्धरकी सेनाके साथ भयंकर युद्ध

सनत्कुमार बोले—इन्द्रसहित सभी देवता उस दैत्यको पुनः आता हुआ देखकर भयसे काँप उठे और शीघ्र ही एक साथ भाग गये। प्रजापतिको आगेकर वे सब वैकुण्ठमें गये और फिर प्रजापतिसहित सभी देवता प्रणामकर विष्णुकी स्तुति करने लगे—॥ १-२॥

देवता बोले—हे हृषीकेश! हे महाबाहो! हे भगवन्! हे मधुसूदन! हे देवदेवेश! हे सर्वदैत्यविनाशक! आपको नमस्कार है। मत्स्यरूप धारणकर सत्यव्रत राजाके साथ प्रलयाब्धिमें विहार करनेवाले तथा वेदोंको लानेवाले मत्स्यरूप हे विष्णो! आपको नमस्कार है॥ ३-४॥

समुद्रमन्थनके लिये देवताओंके महान् उद्योग करते समय मन्दराचलपर्वतको धारण करनेवाले कच्छपरूप आपको नमस्कार है। मनुष्योंको आश्रय देनेवाली इस वसुन्धराको दाढ़पर धारण करनेवाले यज्ञवाराहस्वरूप हे भगवन्! आपको नमस्कार है॥ ५-६॥

विप्ररूपसे दैत्येन्द्र बलिको छलनेवाले उपेन्द्र नामक वामनरूपधारी हे विष्णु! हे विभो! आपको नमस्कार है॥ ७॥

क्षत्रियोंके क्षत्रका अन्त करनेवाले, माताका हित करनेवाले, कुपित होनेवाले तथा दुष्टजनोंका विनाश करनेवाले और परशुरामके रूपसे अवतार धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। लोकको प्रसन्न करनेवाले, मर्यादापुरुष तथा शीघ्र रावणका वध करनेवाले और सीतापति रामके रूपमें अवतार ग्रहण करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ८-९॥

गूढ़ ज्ञानवाले, राधाके साथ विहार करनेवाले तथा विविध लीला करनेवाले कृष्णरूपधारी आप परमात्माको नमस्कार है। गुप्त शरीर धारण करनेवाले, योगके आचार्य तथा वेदविरुद्ध जैनरूप एवं बौद्धरूपको धारण करनेवाले आप लक्ष्मीपतिको नमस्कार है॥ १०-११॥

सद्धर्मकी स्थापनाके लिये म्लेच्छोंका विनाश करनेवाले, अनन्त शक्तिसे सम्पन्न तथा कल्किरूप धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। हे प्रभो! देवहूतिके लिये कपिलरूप धारणकर सांख्ययोगका उपदेश करनेवाले आप महात्मा सांख्याचार्यको नमस्कार है॥ १२-१३॥

परमहंसरूपसे आत्ममुक्तिपरक परम ज्ञानका उपदेश करनेवाले, ज्ञानरूप विधाता आपको नमस्कार है॥ १४॥

समस्त लोकोंके हितके लिये पुराणोंकी रचना करनेवाले तथा वेदोंका विभाग करनेवाले वेदव्यासरूपधारी आपको नमस्कार है। इस प्रकार मत्स्यादिरूपोंसे भक्तोंके कार्यके

लिये तत्पर रहनेवाले तथा सृष्टि, पालन एवं प्रलय करनेवाले ब्रह्मरूप हे प्रभो! आपको नमस्कार है॥ १५-१६॥

अपने दासोंके दुःखोंको दूर करनेवाले, सुखद, शुभस्वरूप, गरुड़पर सवारी करनेवाले, पीताम्बरधारी आप विष्णुको नमस्कार है। सभी क्रियाओंके एकमात्र कर्ता तथा शरणागतरक्षक आपको बार-बार नमस्कार है॥ १७॥

दैत्योंके द्वारा सन्तप्त देवताओंके दुःखका नाश करनेवाले हे वज्रस्वरूप! शेषरूपी शय्यापर शयन करनेवाले तथा सूर्यचन्द्रनेत्रवाले आपको नमस्कार है॥ १८॥

हे कृपासागर! हे रमानाथ! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये, जलन्धरने सभी देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया है। उसने सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निको उनके स्थानसे हटा दिया है तथा पातालसे नागराजको और धर्मराजको भी निकाल दिया है॥ १९-२०॥

वे देवता मनुष्योंके समान भटक रहे हैं, इससे वे शोभित नहीं हो रहे हैं। इसलिये हम आपकी शरणमें आये हुए हैं, आप उसके वधका उपाय सोचिये॥ २१॥

सनत्कुमार बोले—तब करुणासिन्धु मधुसूदन देवताओंका यह दीन वचन सुनकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ २२॥

विष्णुजी बोले—हे देवताओ! आपलोग भयका त्याग कीजिये, मैं स्वयं युद्धमें जाऊँगा और दैत्य जलन्धरसे युद्ध करूँगा। इस प्रकार कहकर दुखी मनवाले भक्तवत्सल दैत्यारि विष्णु अनुग्रहपूर्वक सहसा उठकर गरुड़पर वेगसे सवार हो गये॥ २३-२४॥

उस समय देवताओंके साथ जाते हुए अपने पति [श्रीविष्णु]-को देखकर नेत्रोंमें जल भरकर हाथ जोड़कर समुद्रपुत्री लक्ष्मीजीने यह वचन कहा—॥ २५॥

लक्ष्मीजी बोलीं—हे नाथ! यदि मैं आपकी प्रिया और सदा आपकी भक्त हूँ, तो हे कृपानाथ! आप मेरे भाईका वध युद्धमें कैसे कर सकते हैं?॥ २६॥

विष्णुजी बोले—मैं उस जलन्धरके साथ अपना पराक्रम करूँगा, देवोंने मेरी स्तुति की है, अतः मैं शीघ्र ही युद्धके लिये जाऊँगा, किंतु रुद्रांशसे उसके उत्पन्न होने, ब्रह्माको वचन देने तथा तुम्हारी प्रीतिके कारण इस जलन्धरका वध नहीं करूँगा॥ २७-२८॥

सनत्कुमार बोले—यह कहकर विष्णु शंख, चक्र, गदा तथा तलवार धारणकर गरुड़पर सवार हो गये और इन्द्रादि देवताओंको साथ लेकर युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक चल पड़े। विष्णुके तेजसे प्रकाशित होते देवताओंके साथ सिंहनाद करते हुए वे [विष्णु] शीघ्र वहाँ पहुँचे, जहाँ वह जलन्धर था। उस समय अरुणके लघु भ्राता गरुड़के पंखोंके वायुवेगसे पीड़ित हुए दैत्य इस प्रकार चक्कर काटने लगे, जैसे वायुके द्वारा उड़ाये गये बादल आकाशमण्डलमें घूमने लगते हैं॥ २९—३१॥

तब वायुके वेगसे पीड़ित हुए दैत्योंको देखकर अमर्षयुक्त वचन कहता हुआ जलन्धर बड़ी तेजीसे विष्णुपर झपटा। इसी बीच विष्णुके तेजसे देदीप्यमान महाबलशाली देवता भी प्रसन्न होकर युद्ध करने लगे॥ ३२-३३॥

तब वहाँपर उपस्थित देवसेनाको युद्धके लिये उद्यत देखकर जलन्धरने युद्धमें दुर्मद दैत्योंको आज्ञा दी॥ ३४॥

जलन्धर बोला—हे श्रेष्ठ दैत्यो! तुमलोग सदासे कायर, किंतु प्रबल इन इन्द्रादि देवताओंके साथ आज अत्यन्त कठिन युद्ध करो॥ ३५॥

एक लाख संख्यावाले मौर्य, सौ संख्यावाले धौम्र, करोड़ोंकी संख्यावाले कालकेय, एक लाखकी संख्यावाले कालक-दौर्हद तथा कंक नामक असुर तथा अन्य असुर भी मेरी आज्ञासे अपनी-अपनी सेनाओंके साथ निकलें। सभी लोग सज्जित होकर विशाल सेनाओंसे युक्त हो अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए निर्भय एवं संशयरहित होकर निकल पड़ें। हे शुम्भ एवं निशुम्भ! महाबलवान् तुम दोनों क्षणमात्रमें युद्ध करनेमें कायर तथा तुच्छ देवताओंका विनाश कर दो॥ ३६—३९॥

सनत्कुमार बोले—जब जलन्धरने इस प्रकार दैत्योंको आज्ञा दी, तब युद्धविशारद वे समस्त असुर अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर युद्ध करने लगे॥ ४०॥

वे गदा, तीक्ष्ण बाण, शूल, पट्टिश, तोमर, परशु और शूलादि अस्त्रोंसे एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे॥ ४१॥

विष्णुके बलसे युक्त वे महाबलवान् देवगण सेनाओंको साथ लेकर अनेक प्रकारके श्रेष्ठ आयुधोंसे प्रहार करने लगे। वे सिंहके समान गर्जन करते हुए तथा बाणोंको छोड़ते हुए युद्ध कर रहे थे। कोई तीक्ष्ण बाणोंसे, कोई मूसलों

और तोमरोंसे तथा कोई परशुसे एवं त्रिशूलसे एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। इस प्रकार देव-दानवोंमें महाभयंकर संग्राम छिड़ गया, जो मुनियों तथा सिद्धोंमें भय उत्पन्न करनेवाला था॥ ४२—४४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत देवयुद्धवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

विष्णु और जलन्धरके युद्धमें जलन्धरके पराक्रमसे सन्तुष्ट विष्णुका देवों एवं लक्ष्मीसहित उसके नगरमें निवास करना

सनत्कुमार बोले—इसके बाद महापराक्रमी दैत्य शूल, परशु और पट्टिशोंसे भयसे व्याकुल चित्तवाले देवताओंपर प्रहार करने लगे। तब दैत्योंके आयुधोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले इन्द्रसहित सभी देवता भयसे व्याकुलचित्त हो उठे और रणसे भागने लगे। तत्पश्चात् देवताओंको भागते हुए देखकर हृषीकेश विष्णु गरुड़पर सवार होकर शीघ्र ही युद्ध करनेके लिये आ गये॥ १—३॥

भक्तोंको अभय देनेवाले वे विष्णु चारों ओर प्रकाश फैलाते हुए सुदर्शन चक्रको हाथमें धारण करनेके कारण अत्यन्त शोभायमान हो रहे थे। हे मुने! समस्त युद्धोंमें विशारद, शंख-खड्ग-गदा एवं शार्ङ्ग धनुष धारण किये हुए, कठोर अस्त्रोंसे युक्त तथा अत्यन्त कुपित उन महावीर विष्णुने शार्ङ्ग नामक धनुष चढ़ाकर उसकी टंकार की, उसके महान् नादसे त्रिलोकी व्याप्त हो गयी॥ ४—६॥

क्रोधमें भरे हुए भगवान् विष्णुने धनुषसे छोड़े गये बाणोंके द्वारा करोड़ों दैत्योंके सिर काट डाले॥ ७॥

उस समय अरुणके छोटे भाई गरुड़के पंखोंकी वायुके वेगसे पीड़ित हुए दैत्य आकाशमें पवनप्रेरित बादलोंके समान चक्कर काटने लगे। तब दैत्योंको गरुड़के पंखोंकी आँधीसे पीड़ित देखकर देवताओंमें भय उत्पन्न करनेवाले महादैत्य जलन्धरने अत्यधिक क्रोध किया॥ ८-९॥

उन्हें दैत्योंको मर्दित करता हुआ देखकर फड़कते हुए ओठोंवाला वह जलन्धर विष्णुसे युद्ध करनेके लिये वेगपूर्वक आ गया। उस दैत्यपतिने देवताओं तथा असुरोंको भय उत्पन्न करनेवाला महानाद किया, उससे [सुननेवालोंके] कान विदीर्ण हो गये॥ १०-११॥

दैत्य जलन्धरके महाभयंकर नादसे सारा जगत् व्याप्त हो गया और काँप उठा॥ १२॥

इसके बाद बाणोंसे आकाशको पूर्ण करते हुए विष्णु तथा उस दैत्येन्द्रमें घमासान युद्ध होने लगा॥ १३॥

हे मुने! परस्पर उन दोनोंके उस भयंकर युद्धसे देवों, असुरों, ऋषियों तथा सिद्धोंको बड़ा आश्चर्य उत्पन्न हुआ। विष्णुने दैत्यकी छातीमें एक बाणसे प्रहार करते हुए बाणसमूहोंसे उसके ध्वज, छत्र, धनुष तथा बाणोंको काट दिया। इसी बीच उस दैत्यने भी बड़ी शीघ्रतासे हाथमें गदा लेकर उछलकर [उस गदासे] गरुड़के सिरपर प्रहार करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया॥ १४—१६॥

फड़कते हुए ओठोंवाले उस दैत्यने कुपित होकर अपने चमचमाते हुए तीक्ष्ण शूलसे भगवान् विष्णुकी छातीपर भी प्रहार किया॥ १७॥

उसके बाद दैत्यनाशक विष्णुने हँसते हुए अपने खड्गसे उसकी गदा काट दी और शार्ङ्ग धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाकर तीक्ष्ण बाणोंसे उसे बेध दिया॥ १८॥

इस प्रकार देवताओंके शत्रुओंका वध करनेवाले विष्णु क्रोधमें भरकर अत्यन्त तीक्ष्ण एवं भयदायक बाणसे जलन्धर दैत्यपर शीघ्रतासे प्रहार करने लगे॥ १९॥

तब महाबली दैत्यने उनके बाणको आया हुआ देखकर अपने बाणसे उसे काटकर बड़ी शीघ्रतासे विष्णुकी छातीपर प्रहार किया॥ २०॥

महाबाहु वीर विष्णु भी असुरके द्वारा छोड़े गये, उस बाणको तिलके समान काटकर गर्जन करने लगे॥ २१॥

फिर क्रोधसे काँपते हुए विष्णुने जब दूसरा बाण धनुषपर रखा, तभी महाबली उस दैत्यने अपने बाणसे उस बाणको काट डाला। तब वासुदेव विष्णुने क्रोधपूर्वक उस

राक्षसके विनाशके लिये पुनः धनुषपर बाण चढ़ाया और सिंहकी भाँति गर्जना की। बलशाली दैत्येन्द्र जलन्धरने भी क्रोधसे अपने ओठोंको काटते हुए अपने बाणसे विष्णुके उस शार्ङ्ग नामक धनुषको काट डाला॥ २२—२४॥

इसके बाद देवताओंको भय देनेवाला, उग्र पराक्रमवाला तथा महावीर वह दैत्य तीक्ष्ण बाणोंसे मधुसूदनपर प्रहार करने लगा। तब कटे हुए धनुषवाले लोकरक्षक भगवान् विष्णुने जलन्धरके विनाशके लिये अपनी विशाल गदा चलायी। जलती हुई अग्निके समान विष्णुके द्वारा चलायी गयी वह अमोघ गदा बड़ी शीघ्रतासे उस राक्षसके शरीरमें लगी॥ २५—२७॥

वह महादैत्य उसके प्रहारसे पुष्पमालासे आहत हुए मदोन्मत्त हाथीके समान कुछ भी विचलित नहीं हुआ॥ २८॥

तदनन्तर देवताओंमें भय उत्पन्न करनेवाले रणदुर्मद उस जलन्धरने क्रोधमें भरकर अग्निके सदृश त्रिशूल विष्णुपर चलाया। तब विष्णुने शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके अपने नन्दक नामक खड्गसे शीघ्र ही बड़ी तेजीसे उस त्रिशूलको काट दिया। त्रिशूलके कट जानेपर उस दैत्यने सहसा उछलकर शीघ्रतापूर्वक आकर अपनी दृढ़ मुष्टिसे विष्णुकी छातीपर प्रहार किया॥ २९—३१॥

तब उन महावीर विष्णुने भी उस व्यथाकी चिन्ता न करके अपनी दृढ़ मुष्टिसे जलन्धरके हृदयपर प्रहार किया। तदनन्तर जानुओं, बाहुओं एवं मुष्टियोंसे पृथ्वीको शब्दायमान करते हुए उन दोनों महावीरोंका बाहुयुद्ध होने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार उस दैत्यसे बहुत देरतक युद्ध करके विष्णु विस्मित हो गये और मनमें दुःखका अनुभव करने लगे। इसके बाद मायाविदोंमें श्रेष्ठ तथा माया करनेवाले विष्णुने प्रसन्न होकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें दैत्यराजसे कहा— ॥ ३२—३५॥

विष्णुजी बोले—हे दैत्यश्रेष्ठ! तुम महाप्रभु, रणदुर्मद तथा धन्य हो, जो इन उत्तम आयुधोंसे तनिक भी भयभीत नहीं हुए। मैंने इन्हीं उग्र आयुधोंसे महायुद्धमें बहुत-से दुर्मद तथा वीर दैत्योंको मारा है, वे छिन्नदेह होकर मृत्युको प्राप्त हो गये। हे महादैत्य! मैं तुम्हारे युद्धसे प्रसन्न हो गया हूँ, तुम महान् हो, तुम्हारे समान वीर चराचरसहित त्रिलोकीमें आजतक दिखायी नहीं पड़ा॥ ३६—३८॥

हे दैत्यराज! तुम्हारे पराक्रमसे मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारे मनमें जो भी हो, उस वरको माँगो, वह अदेय हो, तो भी तुम्हें दूँगा॥ ३९॥

सनत्कुमार बोले—उन महामायावी विष्णुका यह वचन सुनकर महाबुद्धिमान् दैत्यराज जलन्धरने कहा— ॥ ४०॥

जलन्धर बोला—हे भावुक! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे यह वरदान दीजिये कि आप मेरी बहन (महालक्ष्मी) तथा अपने गणोंके साथ मेरे घरमें निवास करेंगे॥ ४१॥

सनत्कुमार बोले—उस महादैत्यके इस वचनको सुनकर खिन्न मनवाले देवेश भगवान् विष्णुने—'ऐसा ही हो' यह कहा॥ ४२॥

उसके बाद विष्णुजी सभी देवताओं एवं महालक्ष्मीके साथ जलन्धरके नगरमें आकर निवास करने लगे॥ ४३॥

तब हर्षसे पूर्ण मनवाला वह जलन्धर भी अपने घर आकर अपनी बहन लक्ष्मी और विष्णुके साथ निवास करने लगा॥ ४४॥

वह जलन्धर देवताओंके अधिकारपर दानवोंको नियुक्तकर हर्षित होकर पुनः पृथ्वीपर लौट आया॥ ४५॥

वह सागरपुत्र जलन्धर देव, गन्धर्व एवं सिद्धोंके पास जो रत्न संचित था, उसे अपने अधीन करके रहने लगा। वह महाबली पाताललोकमें महाबलवान् निशुम्भ नामक दैत्यको स्थापितकर शेषादिको पृथ्वीपर ले आया और देव, गन्धर्व, सिद्ध, सर्प, राक्षस तथा मनुष्योंको अपने पुरमें नागरिक बनाकर तीनों लोकोंपर शासन करने लगा॥ ४६—४८॥

इस प्रकार देवगणोंको अपने वशमें करके जलन्धर धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन वैसे ही करने लगा, जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका पालन करता है। उसके धर्मपूर्वक राज्यका शासन करते रहनेपर कोई भी रोगी, दुखी, दुर्बल और दीन नहीं दिखायी पड़ता था॥ ४९-५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरोपाख्यानमें विष्णु-जलन्धरयुद्धवर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

जलन्धरके आधिपत्यमें रहनेवाले दुखी देवताओंद्वारा शंकरकी स्तुति, शंकरजीका देवर्षि नारदको जलन्धरके पास भेजना, वहाँ देवोंको आश्वस्त करके नारदजीका जलन्धरकी सभामें जाना, उसके ऐश्वर्यको देखना तथा पार्वतीके सौन्दर्यका वर्णनकर उसे प्राप्त करनेके लिये जलन्धरको परामर्श देना

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर! इस प्रकार उस महान् असुरके धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करते रहनेपर उसके स्वामित्वमें रहनेके कारण देवता दुखी हुए॥ १॥

वे सभी दुखित देवता मन-ही-मन देवाधिदेव सर्वप्रभु भगवान् सदाशिवकी शरणमें आये और अपने दुःखको दूर करनेके लिये सब कुछ देनेवाले भक्तवत्सल भगवान् महेश्वरकी मनोहर वाणीसे स्तुति करने लगे॥ २-३॥

तब भक्तजनोंके सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले महादेवने देवकार्य करनेकी इच्छासे नारदको बुलाकर [वहाँ जानेहेतु] प्रेरित किया। इसके बाद ज्ञानी, शिवजीके भक्त तथा सज्जनोंका उद्धार करनेवाले देवर्षि नारद शिवजीकी आज्ञासे देवताओंके पास दैत्यपुरीमें गये॥ ४-५॥

उस समय व्याकुल इन्द्रादि सभी देवता मुनि नारदको आते देखकर शीघ्रतासे उठ गये। उत्कण्ठापूर्ण मुखवाले इन्द्र आदि देवताओंने नारदमुनिको नमस्कार करके प्रीतिपूर्वक उन्हें आसन प्रदान किया। तदनन्तर सुखपूर्वक आसनपर बैठे हुए उन मुनिको पुनः प्रणाम करके इन्द्रादि दुखित देवताओंने मुनीश्वरसे कहा—॥ ६—८॥

देवता बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे कृपाकर! [हमलोगोंके] दुःखको सुनिये और सुनकर उसे शीघ्र दूर कीजिये, आप प्रभु हैं तथा शंकरप्रिय हैं। दैत्य जलन्धरने देवताओंको [पराजितकर] उन्हें अपने स्थानसे हटा दिया है। इस समय उसके स्वामित्वमें रहनेके कारण हमलोग दुखी तथा व्याकुल हैं। उसके द्वारा सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, धर्मराज, लोकपाल तथा अन्य देवता भी अपने स्थानोंसे हटा दिये गये हैं। उस महाबलवान् दैत्यने हम सभी देवताओंको बहुत पीड़ित किया है, अतः हम सभी अत्यन्त दुखी होकर आपकी शरणमें आये हैं। सभी देवताओंका मर्दन करनेवाले उस बलवान् महादैत्य जलन्धरने संग्राममें विष्णुको भी अपने वशमें कर लिया है॥ ९—१३॥

हमलोगोंके समस्त कार्यको सिद्ध करनेवाले विष्णु वर देनेके कारण उसके वशमें होकर लक्ष्मीसहित उसके घरमें निवास कर रहे हैं। हे महामते! आप सदा सर्वार्थसाधक हैं, हमलोगोंके भाग्यसे ही आप यहाँ आये हैं, अतः जलन्धरके विनाशके लिये कोई उपाय कीजिये॥ १४-१५॥

सनत्कुमार बोले—उन देवताओंकी यह बात सुनकर कृपा करनेवाले वे मुनिश्रेष्ठ नारदजी उन्हें आश्वस्त करके कहने लगे—॥ १६॥

नारदजी बोले—हे देवताओ! मैं जानता हूँ कि आपलोग दैत्यराज जलन्धरसे पराजित हो गये हैं और अपने-अपने स्थानोंसे हटा दिये गये हैं, अतः आपलोग दुखित तथा पीड़ित हैं। मैं अपनी शक्तिके अनुसार आपलोगोंका कार्य सिद्ध करूँगा, इसमें कोई संशय नहीं है। आपलोगोंने बड़ा दुःख उठाया है, मैं आपलोगोंके अनुकूल हूँ॥ १७-१८॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी सभी देवताओंको आश्वस्त करके उस दानवप्रिय जलन्धरको देखनेके लिये उसकी सभामें गये॥ १९॥

तदनन्तर दैत्य जलन्धरने मुनिश्रेष्ठ नारदको आया हुआ देखकर बड़ी भक्तिके साथ उठकर उन्हें श्रेष्ठ तथा उत्तम आसन प्रदान किया। तत्पश्चात् विधिपूर्वक उनकी पूजाकर वह दानवेन्द्र बहुत आश्चर्यमें पड़ गया और हँस करके मुनिवरसे यह वचन कहने लगा—॥ २०-२१॥

जलन्धर बोला—हे ब्रह्मन्! आपका आगमन कहाँसे हो रहा है, आपने कहींपर कुछ देखा है क्या! हे मुने! आप यहाँ जिसलिये आये हैं, उसे मुझको बताइये॥ २२॥

सनत्कुमार बोले—उस दैत्येन्द्रका यह वचन सुनकर महामुनि नारदजी प्रसन्नचित्त होकर जलन्धरसे कहने लगे—॥ २३॥

नारदजी बोले—सम्पूर्ण दैत्यों तथा दानवोंके अधिपति

हे जलन्धर! तुम धन्य हो, हे सर्वलोकेश! तुम्हीं सारे रत्नोंका उपभोग करनेयोग्य हो॥ २४॥

हे दैत्येन्द्रसत्तम! मेरे आनेका कारण सुनो, मैं जिस निमित्तसे यहाँ आया हूँ, मैं वह सब कह रहा हूँ॥ २५॥

हे दैत्येन्द्र! मैं अपनी इच्छासे कैलासपर्वतपर गया था, जो दस हजार योजन विस्तारवाला, कल्पवृक्षके महान् वनसे युक्त, सैकड़ों कामधेनुओंसे समन्वित, चिन्तामणिसे प्रकाशित, सम्पूर्णरूपसे सुवर्णमय, दिव्य तथा सभी प्रकारकी अद्भुत वस्तुओंसे सुशोभित हो रहा है॥ २६-२७॥

वहाँपर मैंने पार्वतीके साथ बैठे हुए गौरवर्ण, सर्वांगसुन्दर, त्रिनेत्र एवं चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए भगवान् शंकरको देखा॥ २८॥

महान् आश्चर्यसे परिपूर्ण उस कैलासको देखकर मैंने अपने मनमें विचार किया कि त्रिलोकीमें कहीं कोई ऐसी समृद्धि है अथवा नहीं। हे दैत्येन्द्र! उसी समय मुझे तुम्हारी समृद्धिका स्मरण हुआ और उसीको देखनेकी इच्छासे मैं तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ॥ २९-३०॥

सनत्कुमार बोले—नारदजीसे ऐसा सुनकर उस दैत्यपति जलन्धरने बड़े आदरके साथ उन्हें अपनी सारी समृद्धि दिखायी। तब देवगणोंका कार्य सिद्ध करनेवाले वे ज्ञानी नारदजी उसे देखकर शंकरजीकी प्रेरणासे उस दैत्येन्द्र जलन्धरसे कहने लगे—॥ ३१-३२॥

नारदजी बोले—हे श्रेष्ठ वीर! तुम्हारे पास इस समय निःसन्देह सारी सम्पत्ति है, तुम त्रिलोकीके पति भी हो। अतः इसमें आश्चर्य क्या हो सकता है। मणि, रत्नोंकी राशियाँ, घोड़े, हाथी आदि समृद्धियाँ तथा जो अन्य रत्न हैं, वे सब तुम्हारे घरमें सुशोभित हो रहे हैं॥ ३३-३४॥

हे महावीर! तुमने इन्द्रके हाथियोंमें रत्नभूत ऐरावतको ले लिया है तथा सूर्यका अश्वरत्न उच्चैःश्रवा घोड़ा भी ले लिया है। तुम कल्पवृक्ष भी ले आये हो तथा कुबेरकी सारी निधियाँ भी तुम्हारे पास हैं। तुम ब्रह्माजीका हंसयुक्त विमान भी ले आये हो। इस प्रकार हे दैत्येन्द्र! पृथ्वी, पाताल तथा स्वर्गलोकमें जो भी उत्तम रत्न हैं, वे सब तुम्हारे घरमें सुशोभित हो रहे हैं॥ ३५—३७॥

हे महावीर! गज, अश्वादिसे सुशोभित तुम्हारी इस सम्पूर्ण समृद्धिको देखता हुआ मैं प्रसन्न हूँ॥ ३८॥

किंतु हे जलन्धर! तुम्हारे घरमें सर्वश्रेष्ठ स्त्रीरत्न नहीं है, इसलिये तुम विशेषरूपसे स्त्रीरत्नको लानेका प्रयत्न करो। हे जलन्धर! जिसके घरमें सभी सुन्दर रत्न हों, किंतु यदि स्त्रीरत्न न हो, तो वे सब शोभित नहीं होते हैं और निश्चय ही वे सभी रत्न व्यर्थ हो जाते हैं॥ ३९-४०॥

सनत्कुमार बोले—महात्मा नारदकी इस बातको सुनकर दैत्यराज कामसे व्याकुलचित्त होकर कहने लगा—॥ ४१॥

जलन्धर बोला—हे देवर्षे! हे नारद! आपको नमस्कार है। हे महाप्रभो! इस समय वह श्रेष्ठ स्त्रीरत्न कहाँ है? मुझे बताइये। हे ब्रह्मन्! इस ब्रह्माण्डमें जहाँ कहीं भी वह स्त्रीरत्न है, तो मैं उसे वहाँसे लाऊँगा, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं है॥ ४२-४३॥

नारदजी बोले—अत्यन्त मनोहर सर्वसमृद्धिसम्पन्न कैलास पर्वतपर योगीका रूप धारण किये हुए दिगम्बर शम्भु रहते हैं। सुरम्य, सभी लक्षणोंसे सम्पन्न, सर्वांगसुन्दरी तथा मनोहर पार्वती नामक उनकी भार्या है॥ ४४-४५॥

हाव-भावसे पूर्ण ऐसा मनोहर रूप अन्यत्र कहीं भी देखनेको नहीं मिलता। वह अत्यन्त अद्भुत रूप परम योगियोंको भी मोहित करनेवाला, दर्शनके योग्य और सम्पूर्ण समृद्धियोंको प्रदान करनेवाला है॥ ४६॥

हे वीर! हे जलन्धर! मैं अपने मनमें अनुमान करता हूँ कि स्त्रीरत्नसे युक्त शिवजीसे बढ़कर अन्य कोई भी इस समय तीनों लोकोंमें समृद्धिशाली नहीं है॥ ४७॥

पूर्वकालमें जिसके लावण्यसमुद्रमें डूबकर ब्रह्माजीने अपना धैर्य खो दिया था, उससे किसी दूसरी स्त्रीकी उपमा कैसे की जा सकती है। जिसने अपनी लीलासे कामके शत्रु, रागरहित तथा स्वतन्त्र शंकरको भी अपने वशमें कर लिया है। हे दैत्येन्द्र! उस स्त्रीरत्नका सेवन करनेवाले शिवकी जैसी समृद्धि है, वैसी समृद्धि सम्पूर्ण रत्नोंके अधिपति होनेपर भी तुम्हारे पास नहीं है॥ ४८—५०॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर देवताओंका उपकार करनेके लिये उद्यत लोकविख्यात वे देवर्षि नारद आकाशमार्गसे चले गये॥ ५१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें देवर्षि-जलन्धरसंवादवर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

पार्वतीको प्राप्त करनेके लिये जलन्धरका शंकरके पास दूतप्रेषण, उसके वचनसे उत्पन्न क्रोधसे शम्भुके भ्रूमध्यसे एक भयंकर पुरुषकी उत्पत्ति, उससे भयभीत जलन्धरके दूतका पलायन, उस पुरुषका कीर्तिमुख नामसे शिवगणोंमें प्रतिष्ठित होना तथा शिवद्वारपर स्थित रहना

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ सनत्कुमार! देवर्षि नारदके स्वर्गलोक चले जानेपर उस दैत्यराजने क्या किया? उसे विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—उस दैत्यसे कहकर नारदजीके स्वर्गलोक चले जानेपर पार्वतीके रूपके श्रवणसे वह दैत्यराज जलन्धर कामज्वरसे पीड़ित हो गया॥ २॥

उसके बाद कालके अधीन होनेसे उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी और मोहको प्राप्त हो उसने सैंहिकेय नामक दूतको बुलाया॥ ३॥

उसे आया हुआ देखकर कामसे आक्रान्त मनवाला वह सागरपुत्र जलन्धर उसे समझाकर कहने लगा— ॥ ४॥

जलन्धर बोला—हे दूतोंमें श्रेष्ठ! हे सभी कार्य सिद्ध करनेवाले! हे महाप्राज्ञ सिंहिकापुत्र! तुम कैलास-पर्वतपर जाओ, वहाँपर जटाधारण किये हुए, सर्वांगमें भस्म लपेटे हुए, परम विरक्त, तपस्वी एवं जितेन्द्रिय शिव नामक योगी रहता है॥ ५-६॥

हे दूत! उस जटाधारी परम विरक्त योगी शंकरके पास जाकर भयरहित मनसे तुम [मेरा सन्देश] इस प्रकार कहना—हे योगिन्! हे दयासिन्धो! वनमें निवास करनेवाले और भूत-प्रेत-पिशाचादिसे सेवित आपको स्त्रीरत्नसे क्या प्रयोजन है? हे योगिन्! जब समस्त भुवनाधिपति मुझ-जैसा स्वामी विद्यमान है, तब तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है, अतः तुम अपना स्त्रीरत्न सभी रत्नोंका सेवन करनेवाले मुझे दे दो॥ ७—९॥

तुम इस बातको जान लो कि सारा चराचर जगत् मेरे अधीन है और त्रिलोकीमें जो-जो उत्तम रत्न हैं, वे सब मेरे अधीन हैं॥ १०॥

मैंने इन्द्रका ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा एवं पारिजात वृक्ष बलपूर्वक सहसा छीन लिया है॥ ११॥

ब्रह्माका हंसयुक्त विमान मेरे आँगनमें विद्यमान है, जो रत्नस्वरूप महादिव्य एवं अद्भुत है॥ १२॥

कुबेरके महापद्म आदि दिव्य निधिरत्न तथा सुवर्णकी वर्षा करनेवाला वरुणका छत्र मेरे घरमें है। सर्वदा विकसित कमलोंवाली किंजल्किनी नामक मेरे पिताकी माला तो मेरी ही है और जलाधिपति वरुणका पाश भी मेरे यहाँ ही है। मृत्युकी सर्वश्रेष्ठ शक्ति, जिसका नाम उत्क्रान्तिदा है, उसे भी मैंने मृत्युसे बलपूर्वक छीन लिया है। अग्निदेवने मुझे दिव्य परम पवित्र तथा कभी भी मलिन न होनेवाले दो वस्त्र दिये हैं। इस प्रकार हे योगीन्द्र! सभी रत्न मेरे पास शोभित हो रहे हैं। अतः हे जटाधर! तुम भी मुझे अपना स्त्रीरत्न प्रदान करो॥ १३—१६॥

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर नन्दीने उसे भीतर प्रवेश कराया, तब अद्भुत नेत्रोंवाला वह (सिंहिकापुत्र) राहु विस्मित होकर शिवजीकी सभाकी ओर चला। उसने उस सभामें जाकर अपने तेजसे समस्त अन्धकारको दूर करनेवाले, भस्मका लेप लगाये हुए, महाराजोपचारसे सुशोभित होते हुए, अत्यन्त अद्भुत, दिव्य भूषणोंसे भूषित तथा सर्वांगसुन्दर साक्षात् देवदेव महाप्रभु शिवजीको देखा, उनके तेजसे पराभूत शरीरवाले राहु नामक उस दूतने गर्वसे शिवजीको प्रणाम किया और उनके समीप गया॥ १७—२०॥

इसके बाद वह सिंहिकापुत्र शिवके आगे बैठकर उनसे कुछ कहनेकी इच्छा करने लगा, तब उनका संकेत पाकर उसने यह वचन कहा— ॥ २१॥

राहु बोला—दैत्य एवं सर्पोंसे सदा सेवित तथा तीनों लोकोंके अधिपति जलन्धरका मैं दूत हूँ और उनके द्वारा भेजे जानेपर आपके पास आया हूँ। वे जलन्धर समुद्रके पुत्र हैं, सभी दैत्योंके स्वामी हैं और अब वे त्रिलोकीके अधिपति हैं, सभीके अधिनायक हैं॥ २२-२३॥

वे बलवान् दैत्यराज देवगणोंके लिये महाकालके

समान हैं। आप योगीको उद्देश्य करके उन्होंने जो कहा है, उसे श्रवण कीजिये॥ २४॥

हे वृषध्वज! महादिव्य प्रभाववाले तथा सभी रत्नोंके स्वामी उन प्रभु दैत्यपतिकी आज्ञाको आप सुनिये॥ २५॥

श्मशानमें निवास करनेवाले, सदा अस्थियोंकी माला धारण करनेवाले तथा दिगम्बर रहनेवाले तुम्हारी भार्या वह शुभ हिमालयपुत्री [पार्वती] कैसे हो सकती है?॥ २६॥

वह स्त्रीरत्न है और मैं समस्त रत्नोंका अधिपति हूँ, अत: वह मेरे ही योग्य है, भिक्षा माँगकर खानेवाले तुम्हारे योग्य वह नहीं है। तीनों लोक मेरे वशमें हैं, मैं ही यज्ञभागोंको ग्रहण करता हूँ। इस त्रिलोकीमें जो भी रत्न हैं, वे सभी मेरे घरमें हैं। रत्नोंका उपभोग करनेवाले हम हैं, तुम तो दिगम्बर योगी हो, तुम अपना स्त्रीरत्न मुझे प्रदान करो; क्योंकि प्रजाएँ राजाको सुख देनेवाली होती हैं॥ २७—२९॥

सनत्कुमार बोले—अभी राहु अपनी बात कह ही रहा था कि शंकरके भ्रू-मध्यसे वज्रके समान शब्द करता हुआ एक महाभयंकर पुरुष प्रकट हो गया। सिंहके समान उसका मुख था, उसकी जीभ लपलपा रही थी, नेत्रोंसे अग्नि निकल रही थी; ऊर्ध्वकेश तथा सूखे शरीरवाला वह पुरुष दूसरे सिंहके समान जान पड़ता था॥ ३०-३१॥

विशाल शरीर तथा भुजाओंवाला, ताड़ वृक्षके समान जाँघवाला तथा भयंकर वह पुरुष [प्रकट होते ही] बड़े वेगसे शीघ्रताके साथ राहुपर झपट पड़ा॥ ३२॥

तब खानेके लिये उसे आता हुआ देखकर भयभीत वह राहु बड़े वेगसे भागने लगा, किंतु सभाके बाहर ही उस पुरुषने उसे पकड़ लिया॥ ३३॥

राहु बोला—हे देवदेव! हे महेशान! मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। आप देवताओं तथा असुरोंसे सदा वन्दनीय, महान् ऐश्वर्य तथा प्रभुतासे सम्पन्न हैं॥ ३४॥

हे महादेव! हे ईशान! आपका यह महाभयंकर सेवक पुरुष मुझ ब्राह्मणको खानेके लिये आया हुआ है॥ ३५॥

हे देवेश! हे शरणागतवत्सल! इस पुरुषसे मेरी रक्षा कीजिये, जिससे यह मुझे खा न सके, आपको बार-बार नमस्कार है॥ ३६॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! तब ब्राह्मणकी बात सुनकर दीनों तथा अनाथोंसे प्रेम करनेवाले प्रभु महादेवने अपने उस गणसे कहा—॥ ३७॥

महादेवजी बोले—हे गणसत्तम! शरणमें आये हुए राहु नामक ब्राह्मण दूतको छोड़ दो; क्योंकि ऐसे लोग शरणके योग्य, रक्षाके पात्र होते हैं, दण्डके योग्य नहीं होते हैं॥ ३८॥

सनत्कुमार बोले—करुणामय हृदयवाले गिरिजा-पतिके ऐसा कहनेपर उस गणने 'ब्राह्मण' यह शब्द सुनते ही राहुको सहसा छोड़ दिया॥ ३९॥

तब राहुको आकाशमें छोड़कर वह पुरुष महादेवजीके पास आकर दीनवाणीमें कहने लगा—॥ ४०॥

पुरुष बोला—हे देवदेव! महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! हे शरणागतवत्सल! आपने मेरे भक्ष्यको छुड़ा दिया। हे स्वामिन्! इस समय मुझको भूख कष्ट दे रही है, मैं भूखसे अत्यन्त दुर्बल हो गया हूँ। हे देवेश! हे प्रभो! मेरा क्या भक्ष्य है, उसे मुझे बताइये॥ ४१-४२॥

सनत्कुमार बोले—उस पुरुषका यह वचन सुनकर अद्भुत लीला करनेवाले तथा भक्तोंका कल्याण करनेवाले कौतुकी महाप्रभुने कहा—॥ ४३॥

महेश्वर बोले—यदि तुम्हें बहुत भूख लगी है और तुम भूखसे व्याकुल हो रहे हो, तो तुम शीघ्र अपने हाथों एवं पैरोंके मांसका भक्षण करो॥ ४४॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शिवजीके द्वारा आदिष्ट वह पुरुष अपने हाथों तथा पैरोंका मांस भक्षण करने लगा। जब केवल सिरमात्र शेष रह गया, तब सिरमात्र शेष देखकर वे सदाशिव उसपर बहुत प्रसन्न होकर आश्चर्यचकित हो उस भयंकर कर्मवाले पुरुषसे कहने लगे—॥ ४५-४६॥

शिवजी बोले—हे महागण! मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले तुम धन्य हो, हे सत्तम! मैं तुम्हारे इस कर्मसे अत्यन्त ही प्रसन्न हूँ। आजसे तुम्हारा नाम कीर्तिमुख होगा, तुम महावीर एवं सभी दुष्टोंके लिये भयंकर महागण होकर मेरे द्वारपाल बनो॥ ४७-४८॥

तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो और मेरे भक्तजन मेरी अर्चनाके समय सदा तुम्हारी भी पूजा करेंगे, जो लोग तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, वे मुझे प्रिय नहीं होंगे॥ ४९॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीसे इस प्रकारका वरदान प्राप्तकर वह पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसी

समयसे वह कीर्तिमुख शिवजीके द्वारपर रहने लगा ॥ ५० ॥

अतः शिवपूजामें उस गणकी विशेषरूपसे पूजा करनी चाहिये, जो पहले उसकी पूजा नहीं करते हैं, उनकी पूजा व्यर्थ हो जाती है ॥ ५१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें दूतसंवादवर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १९ ॥

बीसवाँ अध्याय

दूतके द्वारा कैलासका वृत्तान्त जानकर जलन्धरका अपनी सेनाको युद्धका आदेश देना, भयभीत देवोंका शिवकी शरणमें जाना, शिवगणों तथा जलन्धरकी सेनाका युद्ध, शिवद्वारा कृत्याको उत्पन्न करना, कृत्याद्वारा शुक्राचार्यको छिपा लेना

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! आपने अद्भुत कथा सुनायी, जिसमें महाप्रभु शंकरकी पवित्र लीला है। हे महामुने! अब मेरे ऊपर कृपा करके प्रेमपूर्वक यह बताइये कि [श्रीशंकरजीके भ्रूमध्यसे प्रकट] उस पुरुषके द्वारा मुक्त किया गया राहु कहाँ गया? ॥ १-२ ॥

सूतजी बोले—अमित बुद्धिवाले व्यासजीका वचन सुनकर ब्रह्माके पुत्र महामुनि सनत्कुमार प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे— ॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—वह राहु उस पुरुषके द्वारा वर्वर स्थानपर मुक्त कर दिया गया, इसलिये वह वर्वर नामसे पृथ्वीपर विख्यात हुआ ॥ ४ ॥

तब [उस पुरुषके द्वारा इस प्रकार छुटकारा प्राप्त करनेपर] वह अपना नया जन्म मानता हुआ फिर गर्वरहित हो शनैः-शनैः जलन्धरके नगरमें पहुँचा ॥ ५ ॥

हे व्यास! उसने वहाँ जाकर दैत्येन्द्र जलन्धरसे शंकरकी सारी चेष्टाका वर्णन विस्तारपूर्वक किया ॥ ६ ॥

उसे सुनकर दैत्यराजोंमें श्रेष्ठ बलवान् सिन्धुपुत्र जलन्धर क्रोधसे व्याकुल हो उठा ॥ ७ ॥

तब क्रोधके वशीभूत चित्तवाले उस दैत्येन्द्रने समस्त दैत्योंको युद्धके लिये उद्यत होनेका आदेश दिया ॥ ८ ॥

जलन्धर बोला—कालनेमि आदि एवं शुम्भ-निशुम्भ आदि सभी वीर दैत्य अपनी-अपनी सेनाओंसे युक्त होकर [युद्धके लिये] निकलें ॥ ९ ॥

वीरकुलमें उत्पन्न एक करोड़ कम्बुवंशीय, दौर्हद, कालक, कालकेय, मौर्य तथा धौम्रगण भी शीघ्र चलें ॥ १० ॥

महाप्रतापी सिन्धुपुत्र वह दैत्यपति इस प्रकार आज्ञा देकर करोड़ों दैत्योंको साथ लेकर शीघ्र ही चल पड़ा ॥ ११ ॥

शुक्र एवं कटे हुए सिरवाला राहु उसके आगे-आगे चलने लगे। उसी समय जलन्धरका मुकुट वेगसे खिसककर पृथ्वीपर गिर पड़ा और समस्त आकाशमण्डल वर्षाकालके समान मेघोंसे आच्छन्न हो गया तथा मृत्युसूचक बहुत-से भयानक अपशकुन होने लगे ॥ १२-१३ ॥

तब उसकी इस प्रकारकी युद्धकी तैयारी देखकर इन्द्रसहित वे देवता छिपकर शिवजीके निवासस्थान कैलास पर्वतपर गये। वहाँ जाकर इन्द्रसहित सभी देवता शिवजीको देखकर उन्हें प्रणामकर कंधा झुकाये हुए हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे— ॥ १४-१५ ॥

देवता बोले—हे देवदेव! महादेव! हे करुणाकर! हे शंकर! आपको प्रणाम है। हे महेशान! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये। हे प्रभो! इन्द्रसहित हमलोग जलन्धरद्वारा किये गये उपद्रवसे अत्यन्त व्याकुल हो गये हैं और अपना-अपना स्थान छोड़कर पृथ्वीपर स्थित हैं ॥ १६-१७ ॥

हे प्रभो! हे स्वामिन्! आप देवताओंकी इस विपत्तिको कैसे नहीं जानते? अतः आप हमलोगोंकी रक्षाके लिये जलन्धरका वध कीजिये ॥ १८ ॥

हे नाथ! आपने जो पूर्वसमयमें हमलोगोंकी रक्षाके लिये विष्णुजीको नियुक्त किया था, इस समय वे भी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं। अब वे भी उसके अधीन होकर लक्ष्मीके साथ उसके घरमें रहते हैं और हम देवगण भी उसके वशवर्ती होकर वहीं रहते हैं ॥ १९-२० ॥

हे शम्भो! हमलोग छिपकर आपकी शरणमें आये हैं, इस समय वह बलवान् जलन्धर आपसे युद्ध करनेके

लिये आ रहा है। अत: हे स्वामिन्! हे सर्वज्ञ! आप शीघ्र ही युद्धमें उस जलन्धरका वध कीजिये और हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ २१-२२॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] ऐसा कहकर वे सभी देवता प्रभुको प्रणामकर उन महेश्वरके चरण देखते हुए विनम्र हो वहीं स्थित हो गये॥ २३॥

तब देवगणोंका यह वचन सुनकर शिवजी हँसकर विष्णुको शीघ्रतासे बुलाकर यह वचन कहने लगे—॥ २४॥

ईश्वर बोले—हे हृषीकेश! हे महाविष्णो! जलन्धरसे सन्त्रस्त हुए ये देवगण अत्यन्त व्याकुल होकर यहाँ मेरी शरणमें आये हुए हैं। हे विष्णो! आपने युद्धमें जलन्धरका वध क्यों नहीं किया और आप स्वयं भी अपना वैकुण्ठ छोड़कर उसके घर चले गये हैं। स्वयं स्वतन्त्र होकर विहार करनेवाले मैंने दुष्टोंके निग्रहके लिये तथा सज्जनोंकी रक्षाके लिये आपको नियुक्त किया था॥ २५—२७॥

सनत्कुमार बोले—शंकरका यह वचन सुनकर गरुडध्वज विष्णु विनम्र हो सिर झुकाये हुए हाथ जोड़कर कहने लगे—॥ २८॥

विष्णुजी बोले—हे प्रभो! आपके अंशसे प्रकट होने तथा लक्ष्मीजीका भाई होनेके कारण मैंने युद्धमें उसका वध नहीं किया, अब आप ही इस दानवका वध कीजिये॥ २९॥

हे देवेश! वह महाबली तथा महावीर दानव सभी देवताओं तथा अन्य लोगोंके लिये भी अजेय है, मैं यह सत्य कह रहा हूँ। देवताओंसहित मैंने बहुत समयतक उसके साथ युद्ध किया, परंतु मेरा कोई भी उपाय उस दानवश्रेष्ठपर नहीं चला। उसके पराक्रमसे सन्तुष्ट होकर मैंने उससे कहा—वर माँगो; तब उसने मेरा वचन सुनकर यह उत्तम वरदान माँगा—हे महाविष्णो! आप देवताओं एवं मेरी भगिनी लक्ष्मीके साथ मेरे घरमें निवास करें और मेरे अधीन रहें, अत: मैं उसके घर चला गया॥ ३०—३३॥

सनत्कुमार बोले—विष्णुजीका यह वचन सुनकर दयालु तथा भक्तवत्सल वे महेश्वर शंकर अतिप्रसन्न होकर हँसकर कहने लगे—॥ ३४॥

महेश्वर बोले—हे विष्णो! हे सुरश्रेष्ठ! आप मेरी बातको आदरपूर्वक सुनिये। मैं महादैत्य जलन्धरका वध करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है। उस असुरपतिको मारा गया समझकर आप भयरहित हो अपने स्थानको जाइये और सभी देवता भी भयमुक्त तथा सन्देहरहित होकर अपने स्थानको जायँ॥ ३५-३६॥

सनत्कुमार बोले—महेश्वरका यह वचन सुनकर रमापति विष्णु सन्देहरहित हो देवगणोंके साथ अपने स्थानको चले गये। हे व्यास! इसी बीच वह अति पराक्रमी तथा बलवान् दैत्यपति युद्धके लिये तत्पर असुरोंके साथ कैलासके समीप पहुँचा और कैलासको घेरकर तीव्र सिंहनाद करता हुआ कालके समान वह महती सेनाके साथ वहीं रुक गया॥ ३७—३९॥

उसके बाद दैत्योंके सिंहनादसे उत्पन्न महाकोलाहल सुनकर दुष्टोंका संहार करनेवाले तथा महालीला करनेवाले महेश्वर अत्यन्त क्रोधित हो उठे॥ ४०॥

तब महालीला करनेवाले कौतुकी महादेवने महाबलवान् नन्दी आदि अपने गणोंको युद्धके लिये आज्ञा दी॥ ४१॥

तब शिवजीकी आज्ञासे नन्दी, गजमुख आदि प्रमुख सेनापति तथा सभी गण बड़ी शीघ्रतासे युद्धके लिये तत्पर हो गये। वे सभी महावीर गण युद्धके लिये क्रोधसे दुर्मद हो नाना प्रकारके युद्धसम्बन्धी शब्द करते हुए कैलास पर्वतसे उतरे॥ ४२-४३॥

उसके बाद कैलासकी उपत्यकाओंमें प्रमथगणों और दैत्योंमें अस्त्र-शस्त्रोंसे घोर युद्ध होने लगा॥ ४४॥

उस समय वीरोंमें हर्ष उत्पन्न करनेवाली भेरी, मृदंग तथा शंखोंकी ध्वनियों और हाथी, घोड़े तथा रथोंके शब्दोंसे नादित हुई पृथ्वी कम्पित हो उठी॥ ४५॥

शक्ति, तोमर, बाण, मूसल, प्राश एवं पट्टिशोंसे आकाशमण्डल मोतियोंसे भरा हुआ जैसा लगने लगा॥ ४६॥

मरे हुए हाथी, घोड़े एवं पैदल सेनाओंके द्वारा पृथ्वी इस प्रकार पट गयी, जैसे पूर्व समयमें [इन्द्रके] वज्रसे आहत हुए पर्वतराजोंसे पटी हुई थी॥ ४७॥

उस समय प्रमथोंके द्वारा मारे गये दैत्यों एवं दैत्योंके द्वारा मारे गये प्रमथोंके मज्जा, रक्त एवं मांसके कीचड़से पृथ्वी व्याप्त हो गयी, जिससे उसपर चलना असम्भव हो गया। तब शुक्राचार्य प्रमथगणोंके द्वारा युद्धमें मारे गये दैत्योंको मृतसंजीवनी विद्याके प्रभावसे बारंबार जिलाने लगे। उन्हें इस प्रकार जीवित होते देखकर

व्याकुल तथा भयभीत सभी गणोंने देवदेव शिवजीसे शुक्राचार्यकी सारी घटना निवेदित की॥ ४८—५०॥

यह सुनकर भगवान् रुद्रने अत्यधिक क्रोध किया और दिशाओंको प्रज्वलित करते हुए वे भयंकर तथा अत्यधिक रौद्ररूपवाले हो गये। उस समय रुद्रके मुखसे महाभयंकर कृत्या प्रकट हो गयी। ताड़ वृक्षके समान उसकी जाँघें थीं। गुफाके समान उसका मुख था और उसके स्तनसे बड़े-बड़े वृक्ष टूट जाते थे॥ ५१-५२॥

हे मुनिसत्तम! महाभयंकर वह कृत्या बड़े वेगसे युद्धभूमिमें आ गयी और महान् असुरोंका भक्षण करती हुई विचरण करने लगी। इसके बाद वह निर्भय होकर शीघ्र ही वहाँ जा पहुँची, जहाँ महान् दैत्योंसे घिरे हुए शुक्राचार्य थे। हे मुने! वह अपने तेजसे आकाश एवं पृथ्वीको व्याप्तकर शुक्रको अपने गुह्यदेशमें छिपाकर आकाशमें अन्तर्धान हो गयी॥ ५३—५५॥

तब युद्धदुर्मद दैत्यसेनाके वीर शुक्राचार्यको तिरोहित देखकर मलिनमुख होकर रणभूमिसे भागने लगे॥ ५६॥

शिवगणोंसे भयभीत हुई असुरोंकी सेना वायुके वेगसे बिखरे हुए तृणसमूहकी भाँति भागने लगी॥ ५७॥

इस प्रकार गणोंके भयसे दैत्योंकी सेनाको छिन्न-भिन्न होते देखकर सेनापति निशुम्भ, शुम्भ एवं कालनेमिको महान् क्रोध हुआ। उन महाबली तीनों सेनापतियोंने वर्षाकालीन मेघके समान बाणोंकी वृष्टि करते हुए गणोंकी सेनाको भगाना प्रारम्भ किया। उन असुरोंके बाण शलभसमूहोंकी भाँति आकाश तथा सभी दिशाओंको व्याप्तकर गणोंकी सेनाको कँपाने लगे॥ ५८—६०॥

सैकड़ों बाणोंसे बिंधे हुए तथा रुधिरकी धारा बहाते हुए शिवगण वसन्त ऋतुमें किंशुकके पुष्पकी भाँति सुशोभित हो रहे थे और उन्हें कुछ भी ज्ञात न हो पा रहा था। इस प्रकार अपनी सेनाको छिन्न-भिन्न होते देखकर कुपित हुए गणेश, कार्तिकेय एवं नन्दी आदि महाक्रोधकर बड़ी शीघ्रतासे उन महादैत्योंको रोकने लगे॥ ६१-६२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें सामान्यगण-असुरयुद्धवर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

नन्दी, गणेश, कार्तिकेय आदि शिवगणोंका कालनेमि, शुम्भ तथा निशुम्भके साथ घोर संग्राम, वीरभद्र तथा जलन्धरका युद्ध, भयाकुल शिवगणोंका शिवजीको सारा वृत्तान्त बताना

सनत्कुमार बोले—तब नन्दी, गणेश, कार्तिकेय आदि गणाधिपतियोंको देखकर वे दानव द्वन्द्वयुद्ध करनेके लिये क्रोधपूर्वक दौड़े॥ १॥

कालनेमि नन्दीकी ओर, शुम्भ गणेशकी ओर और निशुम्भ कार्तिकेयकी ओर शंकित होकर दौड़ा॥ २॥

निशुम्भने कार्तिकेयके मयूरके हृदयमें पाँच बाणोंसे वेगपूर्वक प्रहार किया, जिससे वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब कुमारने क्रोधित हो पाँच बाणोंसे उसके रथ, घोड़ों और सारथीपर प्रहार किया॥ ३-४॥

इसके बाद रणदुर्मद उन वीर कार्तिकेयने अपने दूसरे तीक्ष्ण बाणसे देवशत्रु निशुम्भपर बड़े वेगसे प्रहार किया और घोर गर्जना की॥ ५॥

महाबली निशुम्भ नामक असुरने भी युद्धमें गर्जना करते हुए उन कार्तिकेयपर अपने बाणसे प्रहार किया॥ ६॥

तब कार्तिकेयने जबतक क्रोधसे अपना शक्ति नामक आयुध लिया, इतनेमें निशुम्भने वेगपूर्वक अपनी शक्तिसे उन्हें गिरा दिया॥ ७॥

हे व्यास! इस प्रकार वीरध्वनि करके गरजते हुए कार्तिकेय एवं निशुम्भका वहींपर घोर युद्ध होने लगा॥ ८॥

नन्दीश्वरने भी अपने बाणोंसे कालनेमिको बेध दिया। उन्होंने अपने सात बाणोंसे कालनेमिके घोड़े, सारथी, रथ तथा ध्वजाका छेदन कर दिया॥ ९॥

तब कालनेमिने क्रुद्ध होकर अपने धनुषसे छूटे हुए अत्यन्त तीखे बाणोंसे नन्दीका धनुष काट दिया॥ १०॥

उसके बाद नन्दीश्वरने उस धनुषको त्यागकर शूलसे महादैत्य कालनेमिके वक्षःस्थलपर जोरसे प्रहार

किया। इस प्रकार घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर एवं त्रिशूलसे वक्ष:स्थलके फट जानेपर उसने पर्वतका शिखर उखाड़कर नन्दीश्वरपर प्रहार किया॥ ११-१२॥

उस समय रथपर सवार शुम्भ एवं मूषकपर सवार श्रीगणेशजी युद्ध करते हुए एक-दूसरेको बाणसमूहोंसे बेधने लगे। उसके बाद गणेशजीने शुम्भके हृदयमें बाणसे प्रहार किया और तीन बाणोंसे सारथिपर प्रहार करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। तब अत्यन्त कुपित शुम्भ भी बाणवृष्टिसे गणेशजीको तथा तीन बाणोंसे मूषकको बेधकर मेघके समान गर्जन करने लगा॥ १३—१५॥

बाणोंसे छिन्न अंगवाला मूषक अत्यन्त पीड़ित होकर भाग चला, जिसके कारण गणेशजी गिर पड़े और वे पैदल ही युद्ध करने लगे। फिर तो उन लम्बोदरने परशुसे शुम्भके वक्ष:स्थलपर प्रहार करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया तदनन्तर वे पुन: मूषकपर सवार हो गये॥ १६-१७॥

गणेशजी समरके लिये पुन: उद्यत हो गये और उन्होंने हँसकर क्रोधसे शुम्भपर इस प्रकार प्रहार किया, जैसे अंकुशसे हाथीपर प्रहार होता हो॥ १८॥

तब कालनेमि एवं निशुम्भ दोनों ही क्रोधपूर्वक एक साथ सर्पके समान [तीक्ष्ण] बाणोंसे शीघ्रतासे गणेशपर प्रहार करने लगे। तब महाबली वीरभद्र उन्हें इस प्रकार पीड़ित किया जाता हुआ देखकर बड़े वेगसे करोड़ों भूतोंको साथ लेकर दौड़े॥ १९-२०॥

उनके साथ कूष्माण्ड, भैरव, वेताल, योगिनियाँ, पिशाच, डाकिनियाँ एवं गण भी चले॥ २१॥

उस समय उन लोगोंके किलकिला शब्द, सिंहनाद, घर्घर एवं डमरूके शब्दसे पृथ्वी निनादित होकर काँप उठी। उस समय समरभूमिमें भूतगण दौड़-दौड़कर दानवोंका भक्षण करने लगे और उनके ऊपर चढ़कर उन्हें गिराने लगे और नाचने लगे॥ २२-२३॥

हे व्यास! इसी बीच नन्दी और कार्तिकेयको चेतना आ गयी और वे उठ गये तथा रणभूमिमें गरजने लगे॥ २४॥

वे नन्दीश्वर एवं कार्तिकेय शीघ्र रणभूमिमें आ गये और अपने बाणोंद्वारा दैत्योंपर निरन्तर प्रहार करने लगे॥ २५॥

तब छिन्न-भिन्न हुए दैत्यगण पृथ्वीपर गिरने लगे और उन गिरे हुए दैत्योंको भूतगण खाने लगे, इससे दैत्योंकी सेना विषादग्रस्त तथा व्याकुल हो गयी॥ २६॥

इस प्रकार प्रतापी नन्दी, कार्तिकेय, गणेशजी, वीरभद्र तथा अन्य गण युद्धभूमिमें जोर-जोरसे गरजने लगे॥ २७॥

जलन्धरके वे दोनों सेनापति शुम्भ-निशुम्भ, महादैत्य कालनेमि एवं अन्य असुर पराजित हो गये॥ २८॥

तब अपनी सेनाको विध्वस्त हुआ देखकर बलवान् जलन्धर ऊँची पताकावाले रथपर सवार हो गणोंके समक्ष आ गया॥ २९॥

हे व्यासजी! तब पराजित हुए दैत्य भी महान् उत्साहसे भर गये और युद्धके लिये तैयार होकर गरजने लगे॥ ३०॥

हे मुने! विजयशील शिवके गण नन्दी, कार्तिकेय, गजानन, वीरभद्र आदि भी गर्जना करने लगे॥ ३१॥

उस समय दोनों सेनाओंमें हाथियों, घोड़ों तथा रथोंके शब्द, शंख एवं भेरियोंकी ध्वनि एवं सिंहनाद होने लगे॥ ३२॥

जलन्धरके बाणसमूहोंसे द्युलोक तथा भूलोकके बीचका स्थान उसी प्रकार आच्छादित हुआ, जैसे कुहरेसे आकाश आच्छन्न हो जाता है। वह नन्दीपर पाँच, गणेशपर पाँच और वीरभद्रपर बीस बाणोंसे प्रहार करके मेघके समान गर्जन करने लगा। तब रुद्रपुत्र महावीर कार्तिकेयने बड़ी शीघ्रतासे अपनी शक्तिद्वारा उस दैत्य जलन्धरपर प्रहार किया और वे गर्जन करने लगे॥ ३३—३५॥

शक्तिसे विदीर्ण देहवाला वह महाबली दैत्य आँखोंको घुमाता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा, किंतु बड़ी शीघ्रतासे उठ गया। इसके बाद उस दैत्यश्रेष्ठ जलन्धरने बड़े क्रोधसे कार्तिकेयके हृदयमें गदासे प्रहार किया॥ ३६-३७॥

हे व्यासजी! तब वे शंकरपुत्र कार्तिकेय ब्रह्माके द्वारा दिये गये वरदानके कारण उस गदाके प्रहारको सफल प्रदर्शित करते हुए शीघ्र पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ३८॥

इसी प्रकार शत्रुहन्ता एवं महावीर नन्दी भी गदाके प्रहारसे घायल होकर कुछ व्याकुलमन हो पृथ्वीपर गिर पड़े। उसके बाद महाबली गणेशजीने अत्यन्त क्रुद्ध हो शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके बड़े वेगसे दौड़कर अपने परशुसे दैत्यकी गदाको काट दिया॥ ३९-४०॥

वीरभद्रने तीन बाणोंसे उस दानवके वक्ष:स्थलपर प्रहार किया तथा सात बाणोंसे उसके घोड़ों, ध्वजा, धनुष एवं छत्रको काट डाला॥ ४१॥

तब दैत्येन्द्रने अत्यधिक कुपित होकर अपनी दारुण शक्तिको उठाकर उसके प्रहारसे गणेशको [पृथ्वीपर] गिरा दिया और स्वयं दूसरे रथपर सवार हो गया॥ ४२॥

इसके बाद वह दैत्येन्द्र क्रोधित होकर अपने मनमें उन वीरभद्रको कुछ न समझकर वेगपूर्वक उनकी ओर दौड़ा। दैत्यराज महावीर जलन्धरने तीखे बाणसे शीघ्रतापूर्वक उन वीरभद्रपर प्रहार किया और गर्जना की॥ ४३-४४॥

तब वीरभद्रने भी अति क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण धारवाले बाणसे उसके बाणको काट दिया और अपने महान् बाणसे उसपर प्रहार किया। इस प्रकार सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी तथा वीरवरोंमें श्रेष्ठ वे दोनों अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे बहुत समयतक परस्पर युद्ध करते रहे। वीरभद्रने अपने बाणोंसे उस रथी दैत्यके घोड़ोंको अनेक बाणोंसे मार गिराया और उसके धनुष तथा ध्वजको भी वेगपूर्वक काट दिया॥ ४५—४७॥

इसके बाद वह महाबली दैत्यराज परिघ-अस्त्र लेकर दौड़ा और वीरभद्रके पास शीघ्र जा पहुँचा॥ ४८॥

उस महाबली वीर समुद्रपुत्र जलन्धरने उस विशाल परिघसे वीरभद्रके सिरपर प्रहार किया और गर्जना की॥ ४९॥

उस महान् परिघसे गणेश्वर वीरभद्रका सिर फट गया और वे पृथ्वीपर गिर पड़े, [उनके सिरसे] बहुत रक्त बहने लगा॥ ५०॥

वीरभद्रको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर रुद्रगण भयसे शंकरजीको पुकारते हुए रणभूमि छोड़कर भागने लगे॥ ५१॥

तब शिवजीने गणोंका कोलाहल सुनकर अपने समीपमें स्थित महाबली गणोंसे पूछा॥ ५२॥

शिवजी बोले—हे महावीरो! मेरे गणोंका यह महान् कोलाहल क्यों हो रहा है, तुमलोग पता लगाओ। मैं इसे शीघ्र ही शान्त करूँगा॥ ५३॥

वे देवेश अभी गणोंसे आदरपूर्वक पूछ ही रहे थे, तभी वे श्रेष्ठ गण प्रभु शिवके पास पहुँच गये॥ ५४॥

उन्हें विकल देखकर प्रभु शंकरजी उनका कुशल पूछने लगे, तब उन गणोंने विस्तारपूर्वक सारा वृत्तान्त यथावत् कह दिया। तब महान् लीला करनेवाले प्रभु भगवान् रुद्रने उसे सुनकर महान् उत्साह बढ़ाते हुए उन्हें अभय प्रदान किया॥ ५५-५६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानमें विशेष युद्धवर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

श्रीशिव और जलन्धरका युद्ध, जलन्धरद्वारा गान्धर्वी मायासे शिवको मोहितकर शीघ्र ही पार्वतीके पास पहुँचना, उसकी मायाको जानकर पार्वतीका अदृश्य हो जाना और भगवान् विष्णुको जलन्धरपत्नी वृन्दाके पास जानेके लिये कहना

सनत्कुमार बोले—इसके बाद रौद्ररूपवाले महाप्रभु शंकर बैलपर सवार हो वीरगणोंके साथ हँसते हुए संग्रामभूमिमें गये। जो रुद्रगण पहले पराजित होकर भाग गये थे, वे शिवजीको आते हुए देखकर सिंहनाद करते हुए युद्धभूमिमें पुनः लौट आये। वे और शंकरके अन्य गण भी शब्द करते हुए आयुधोंसे युक्त हो बड़े उत्साहके साथ बाणोंकी वर्षासे दैत्योंको मारने लगे॥ १—३॥

उस समय सभी दैत्य भयंकर रुद्रको देखकर इस प्रकार भागने लगे, जिस प्रकार शिवभक्तको देखकर उसके भयसे पाप भाग जाते हैं। तदनन्तर युद्धमें असुरोंको पराङ्मुख देखकर वह जलन्धर हजारों बाणोंको छोड़ता हुआ शंकरजीकी ओर दौड़ा। शुम्भ-निशुम्भ आदि हजारों दैत्यराज भी क्रोधसे ओठोंको चबाते हुए बड़े वेगसे शंकरजीकी ओर जाने लगे॥ ४—६॥

वीर कालनेमि, खड्गरोमा, बलाहक, घस्मर, प्रचण्ड तथा अन्य दैत्य भी शिवजीकी ओर दौड़ पड़े॥ ७॥

हे मुने! शुम्भ आदि सभी वीरों [दैत्यगणों]-ने शीघ्र ही बाणोंके द्वारा रुद्रगणोंको ढँक दिया और उनके अंगोंको छिन्न-भिन्न कर दिया॥ ८॥

तब शंकरने अपने गणोंको बाणोंके अन्धकारसे

आवृत देखकर शीघ्रतापूर्वक दैत्योंके बाणसमूहोंको काटकर अपने बाणोंसे आकाशको भर दिया॥ ९॥

उन्होंने बाणोंकी आँधीसे दैत्योंको पीड़ित कर दिया और बाणसमूहोंसे दैत्योंको पृथ्वीतलपर गिरा दिया। उन्होंने अपने परशुसे खड्गरोमाका सिर धड़से अलग कर दिया और खट्वांगसे बलाहकके सिरके दो टुकड़े कर दिये। घस्मर नामक दैत्यको पाशमें बाँधकर उसे भूमिपर पटक दिया और अपने त्रिशूलसे महावीर प्रचण्डको काट डाला॥ १०—१२॥

शिवजीके वृषभने कुछको मार डाला, कुछ बाणोंके द्वारा मार दिये गये और कुछ दैत्य सिंहसे पीड़ित हाथियोंकी भाँति स्थित रहनेमें असमर्थ हो गये॥ १३॥

तब क्रोधाविष्ट मनवाला वह महादैत्य जलन्धर शुम्भादि दैत्योंको धिक्कारने लगा और धैर्ययुक्त होकर हँसता हुआ कहने लगा—॥ १४॥

जलन्धर बोला—[पहले शंकरजीसे बोला—] भागकर पीठ दिखाते हुए माताके मलके समान इन दैत्योंको मारनेसे क्या लाभ; क्योंकि भयभीत लोगोंको मारना श्लाघ्य तथा वीरोंके लिये स्वर्गप्रद नहीं होता। यदि युद्ध करनेमें तुम्हारी श्रद्धा है, हृदयमें थोड़ा भी साहस है तथा यदि ग्राम्यसुखमें थोड़ी भी स्पृहा नहीं है, तो मेरे सामने खड़े रहो॥ १५-१६॥

[पुन: अपने वीरोंसे बोला—] युद्धभूमिमें मर जाना अच्छा है, यह सभी कामनाओंका फल देनेवाला, यशकी प्राप्ति करानेवाला तथा विशेषकर मोक्ष देनेवाला भी कहा गया है। जो रणभूमिमें युद्ध करते हुए मारा जाता है, वह संन्यासी एवं परमज्ञानी होता है और सूर्यमण्डलको भेदकर परमपदको प्राप्त करता है। बुद्धिमानोंको कभी भी कहीं भी मृत्युसे भयभीत नहीं होना चाहिये; क्योंकि समस्त उपायोंसे भी इसे रोका नहीं जा सकता है॥ १७—१९॥

हे वीरो! यह मृत्यु तो जन्म लेनेवालोंके शरीरके साथ ही पैदा होती है, वह आज हो अथवा सौ वर्ष बाद हो, प्राणियोंकी मृत्यु तो निश्चित है॥ २०॥

इसलिये मृत्युका भय त्यागकर संग्राममें प्रसन्नतापूर्वक युद्ध करो, ऐसा करनेसे इस लोकमें तथा परलोकमें भी नि:सन्देह परम आनन्दकी प्राप्ति होती है॥ २१॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] ऐसा कहकर उसने अपने वीरोंको अनेक प्रकारसे समझाया, किंतु वे भयके कारण धैर्य धारण न कर सके और रणसे भागने लगे॥ २२॥

तब अपनी सेनाको भागती हुई देखकर महाबली सिन्धुपुत्र जलन्धरको बड़ा क्रोध उत्पन्न हो गया॥ २३॥

इसके बाद क्रोधसे आविष्ट मनवाला वह जलन्धर क्रोधसे वज्रकी ध्वनिके समान कठोर शब्द करके युद्धभूमिमें रुद्रको ललकारने लगा॥ २४॥

जलन्धर बोला—हे जटाधर! तुम आज मेरे साथ युद्ध करो, इन्हें मारनेसे क्या लाभ! यदि तुम्हारे पास कुछ बल है, तो उसे दिखाओ॥ २५॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर उस महादैत्य जलन्धरने सत्तर बाणोंसे अक्लिष्टकर्मा वृषभध्वज शिवजीपर प्रहार किया। महादेवजीने अपनेतक न पहुँचे हुए जलन्धरके उन बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शीघ्र ही हँसते-हँसते काट दिया और सात बाणोंसे उस जलन्धर दैत्यके घोड़े, पताका, छत्र और धनुषको काट गिराया। हे मुने! शंकरके लिये यह अद्भुत बात नहीं थी॥ २६—२८॥

तब कटे हुए धनुषवाला तथा रथविहीन वह सिन्धुपुत्र दैत्य जलन्धर गदा लेकर क्रोधके साथ वेगशील होकर शिवजीकी ओर दौड़ा॥ २९॥

हे पराशरपुत्र! तब महान् लीला करनेवाले प्रभु महेश्वरने उसके द्वारा चलायी गयी गदाको शीघ्र ही सहसा दो टुकड़ोंमें कर दिया। फिर भी वह महादैत्य क्रोधमें भरकर अपनी मुष्टिका तानकर उन महादेवको मारनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उनपर झपटा॥ ३०-३१॥

इतनेमें अक्लिष्ट कर्म करनेवाले ईश्वरने अपने बाणसमूहोंसे शीघ्र ही उस जलन्धरको एक कोस पीछे ढकेल दिया। तत्पश्चात् दैत्य जलन्धरने रुद्रको अपनेसे अधिक बलवान् जानकर उनको मोहित करनेवाली अद्भुत गान्धर्वी मायाका निर्माण किया। उस समय उसकी मायाके प्रभावसे शंकरजीको मोहित करनेके लिये अप्सराओं एवं गन्धर्वोंके अनेक गण प्रकट हो गये॥ ३२—३४॥

उसके बाद गन्धर्व तथा अप्सराओंके वे गण नाचने-गाने लगे तथा दूसरे ताल, वेणु और मृदंग बजाने लगे॥ ३५॥

उस महान् आश्चर्यको देखकर रुद्र अपने गणोंके

साथ [उस रणभूमिमें] मोहित हो गये। उन्हें अपने हाथसे अस्त्रोंके गिरनेका भी ध्यान न रहा॥ ३६॥

इस प्रकार रुद्रको एकाग्रचित्त देखकर कामके वशीभूत वह दैत्य जलन्धर बड़ी शीघ्रतासे वहाँ पहुँचा, जहाँ गौरी विराजमान थीं। हे व्यास! युद्धभूमिमें महाबली शुम्भ तथा निशुम्भको नियुक्तकर तथा स्वयं दस भुजा, पाँच मुख, तीन नेत्र तथा जटा धारणकर, महावृषभपर आरूढ़ हो वह जलन्धर अपनी आसुरी मायाके प्रभावसे सर्वथा शंकरके समान सुशोभित होने लगा॥ ३७—३९॥

शिवप्रिया पार्वती रुद्रको आते हुए देखकर सखियोंके मध्यसे उसके सामने आकर उपस्थित हो गयीं॥ ४०॥

उस दैत्यराजने ज्यों ही पार्वतीको देखा, उसी समय संयमरहित हो गया और उसके अंग जड़ हो गये॥ ४१॥

तदनन्तर वे गौरी उस दानवको पहचानकर भयसे व्याकुल हो वेगपूर्वक अन्तर्धान होकर उत्तरमानसकी ओर चली गयीं॥ ४२॥

तत्पश्चात् क्षणमात्रमें ही बिजलीकी लताके समान पार्वतीको न देखकर वह दैत्य पुनः युद्ध करनेके लिये बड़े वेगसे वहाँ पहुँच गया, जहाँ शिवजी थे॥ ४३॥

तब पार्वतीने भी मनसे महाविष्णुका स्मरण किया और उन्होंने तत्क्षण अपने समीप उन विष्णुको बैठा हुआ देखा। तदनन्तर जगज्जननी शिवप्रिया पार्वती हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उन विष्णुको देखकर प्रसन्नचित्त हो उनसे कहने लगीं—॥ ४४-४५॥

पार्वतीजी बोलीं—हे विष्णो! जलन्धर दैत्यने परम आश्चर्यजनक कार्य किया है, क्या आपको उस दुर्बुद्धिकी चेष्टा विदित नहीं है?। तब [भगवान्] गरुड़ध्वजने जगदम्बाका वह वचन सुनकर हाथ जोड़कर सिर झुकाकर शिवाको प्रणामकर कहा—॥ ४६-४७॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवि! आपकी कृपासे मुझे वह वृत्तान्त ज्ञात है। हे माता! आप मुझे जो आज्ञा दें, उसे मैं आपके आदेशसे करनेके लिये तत्पर हूँ॥ ४८॥

सनत्कुमार बोले—विष्णुके इस वचनको सुनकर जगन्माता पार्वती धर्मनीतिकी शिक्षा देती हुई हृषीकेशसे कहने लगीं—॥ ४९॥

पार्वतीजी बोलीं—उस दैत्यने ही ऐसा मार्ग प्रदर्शित किया है, अब उसीका अनुसरण आप भी कीजिये। मेरी आज्ञासे आप उसकी स्त्रीका पातिव्रत्य भंग कीजिये। हे लक्ष्मीपते! उसके बिना वह महादैत्य नहीं मारा जा सकता है; क्योंकि पातिव्रतधर्मके समान अन्य कोई भी धर्म पृथ्वीतलपर नहीं है॥ ५०-५१॥

सनत्कुमार बोले—पार्वतीकी यह आज्ञा सुनकर विष्णुजी उसे शिरोधार्य करके छल करनेके लिये शीघ्र ही पुनः जलन्धरकी नगरीकी ओर चले॥ ५२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत जलन्धरयुद्धवर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

विष्णुद्वारा माया उत्पन्नकर वृन्दाको स्वप्नके माध्यमसे मोहित करना और स्वयं जलन्धरका रूप धारणकर वृन्दाके पातिव्रतका हरण करना, वृन्दाद्वारा विष्णुको शाप देना तथा वृन्दाके तेजका पार्वतीमें विलीन होना

व्यासजी बोले—हे सनत्कुमार! हे सर्वज्ञ! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! अब आप बताइये कि विष्णुने वहाँ जाकर क्या किया और उस [स्त्री]-ने अपने धर्मको कैसे छोड़ा?॥ १॥

सनत्कुमार बोले—दैत्य जलन्धरके नगरमें जाकर विष्णु वृन्दाके पातिव्रतधर्मको नष्ट करनेका विचार करने लगे। मायावियोंमें श्रेष्ठ उन्होंने वृन्दाको स्वप्न दिखाया और स्वयं अद्भुत रूप धारण करके उसके नगरके उद्यानमें स्थित हो गये। तब उसकी पतिव्रता पत्नी देवी वृन्दाने विष्णुकी मायाके प्रभावसे रात्रिमें दुःस्वप्न देखा॥ २—४॥

उसने विष्णुकी मायासे स्वप्नमें देखा कि उसका पति भैंसेपर आरूढ़ होकर शरीरमें तेल लगाये हुए नग्न होकर काले पुष्पोंसे विभूषित हो राक्षसोंके साथ

दक्षिण दिशाकी ओर जा रहा है, उसका सिर मुँड़ा हुआ है और वह अन्धकारसे ढका हुआ है॥ ५-६॥

इसी तरह उसने अपनेको और अपने नगरको समुद्रमें डूबते हुए देखा। इस प्रकार उसने रात्रिके शेष भागमें बहुत प्रकारके दु:स्वप्नोंको देखा॥ ७॥

इसके बाद वह बाला जगकर देखे गये अपने स्वप्नोंपर विचार कर ही रही थी कि उसने उदित होते हुए सूर्यको छिद्रयुक्त और निष्प्रभ देखा॥ ८॥

इन घटनाओंको अनिष्टकारी जानकर वह भयसे विह्वल हो गयी और रोने लगी, उसे द्वार, अट्टालिका आदि कहीं भी शान्ति नहीं मिली॥ ९॥

तदनन्तर वह अपनी दो सखियोंके साथ नगरके बगीचेमें आयी, परंतु उस बालाको वहाँ भी कुछ शान्ति नहीं मिली॥ १०॥

इसके बाद वह जलन्धरकी स्त्री दु:खित होकर घबराती हुई एक वनसे दूसरे वनमें गयी, किंतु वह अपने विषयमें कुछ नहीं समझ पायी॥ ११॥

घूमती हुई उस बालाने सिंहके समान मुखवाले, चमकते हुए दाढ़ और दाँतवाले भयंकर दो राक्षसोंको देखा॥ १२॥

उन दोनोंको देखकर भयसे विह्वल वह ज्यों ही भागने लगी, त्यों ही उसने शिष्यके साथ मौन बैठे हुए शान्त एक तपस्वीको देखा॥ १३॥

तदनन्तर भयभीत उसने उन तपस्वीके गलेमें भुजारूपी लताको डालकर कहा—हे मुने! मेरी रक्षा कीजिये, मैं आपकी शरणमें आयी हूँ॥ १४॥

दो राक्षसोंद्वारा पीछा की जाती हुई तथा भयसे विह्वल उसको देखकर मुनिने 'हूँ' शब्दसे ही उन दोनों राक्षसोंको शीघ्र भगा दिया॥ १५॥

हे मुने! उनके हुंकारमात्रसे भयभीत होकर भागते हुए उन दोनों राक्षसोंको देखकर वह दैत्येन्द्रपत्नी वृन्दा अपने मनमें बहुत अधिक विस्मित हो गयी॥ १६॥

तदनन्तर भयमुक्त वृन्दाने उन मुनिनाथको हाथ जोड़कर दण्डवत् भूमिपर प्रणामकर यह वचन कहा— ॥ १७॥

वृन्दा बोली—हे दयाके सागर! हे मुनिनाथ! हे दूसरोंकी पीड़ाको दूर करनेवाले! इन दुष्टोंके घोर भयसे आपने मेरी रक्षा की है॥ १८॥

हे कृपाके सागर! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं, सर्वथा समर्थ हैं, तथापि मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहती हूँ, कृपया आप उसे सुनें॥ १९॥

हे प्रभो! मेरे स्वामी जलन्धर रुद्रसे युद्ध करनेके लिये गये हैं। वे वहाँ युद्धमें कैसे हैं? हे सुव्रत! आप उसे मुझसे कहिये॥ २०॥

सनत्कुमार बोले—उसके वाक्यको सुनकर कपट करके मौन बैठा हुआ तथा स्वार्थको सिद्ध करनेमें कुशल वह मुनि कृपा करके ऊपरकी ओर देखने लगा॥ २१॥

उसी समय दो बन्दर आये और उसको प्रणामकर सामने खड़े हो गये। इसके बाद उनकी भौंहोंके इशारेसे नियुक्त होकर वे आकाशकी ओर चले गये॥ २२॥

हे मुनीश्वर! आधे क्षणमें ही लौटकर जलन्धरके मस्तक, धड़ और दोनों हाथोंको लेकर वे उसके सामने खड़े हो गये॥ २३॥

वह वृन्दा सिन्धुनन्दन जलन्धरके सिर, धड़ और दोनों हाथोंको देखकर पतिके दु:खसे दुखित तथा मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ी [और विलाप करने लगी]॥ २४॥

वृन्दा बोली—हे प्रभो! जो आप पहले सुखकी बात सुनाकर मुझे प्रसन्न किया करते थे, वही आज आप अपनी निरपराध पत्नीसे बोलते क्यों नहीं हैं?॥ २५॥

अहो! जिन्होंने पहले गन्धर्वोंके साथ विष्णु और देवताओंको भी पराजित कर दिया था, वे ही त्रैलोक्यविजयी आज एक तपस्वीसे कैसे मारे गये हैं?॥ २६॥

हे दैत्यश्रेष्ठ! मैंने आपसे पूर्वमें कहा था कि शिव परब्रह्म हैं, परंतु आपने रुद्रके तत्त्वको न जानकर मेरे उस वाक्यको स्वीकार नहीं किया॥ २७॥

आपकी सेवाके प्रभावसे मैंने जान लिया था कि आप कुसंगके वशीभूत होकर गर्वके कारण मेरी बात नहीं मान रहे हैं॥ २८॥

अपने धर्ममें परायण जलन्धरकी पत्नी इस प्रकार कह-कहकर दुखित हृदयसे अनेक प्रकारसे विलाप करने लगी॥ २९॥

तदनन्तर दुःखसे उच्छ्वास छोड़ती हुई तथा धैर्य धारणकर वह वृन्दा उन मुनिश्रेष्ठको प्रणामकर हाथ जोड़कर बोली— ॥ ३० ॥

हे कृपानिधे! हे मुनिश्रेष्ठ! दूसरेका उपकार करनेमें ही आपका आदर है। इसलिये मुझपर कृपा करके हे साधो! मेरे इस स्वामीको आप जीवित कर दें॥ ३१ ॥

हे मुनीश्वर! मैं समझती हूँ कि आप पुनः इनको जीवित करनेमें समर्थ हैं, इसलिये मेरे प्राणनाथको आप जीवित कर दें॥ ३२ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहकर पातिव्रतधर्ममें तत्पर वह दैत्यपत्नी दुःखसे श्वास छोड़ती हुई उनके पैरोंपर गिर पड़ी॥ ३३ ॥

मुनि बोले—यह युद्धमें रुद्रके द्वारा मारा गया है, इसलिये इसको जिलानेमें मैं समर्थ नहीं हूँ; क्योंकि रुद्रके द्वारा युद्धमें मारा गया व्यक्ति कभी जीवित नहीं होता॥ ३४ ॥

तथापि शरणागतकी रक्षा करनी चाहिये, इस शाश्वत धर्मको जानता हुआ मैं कृपासे युक्त होकर इसे जीवित कर देता हूँ॥ ३५ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! सभी मायावियोंमें श्रेष्ठ वे मुनिरूपी विष्णु ऐसा कहकर उसके पतिको जीवित करके वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ३६ ॥

उनके द्वारा जीवित समुद्रपुत्र जलन्धर भी शीघ्र उठकर प्रसन्नमनसे वृन्दाका आलिंगनकर उसके मुखका स्पर्श करने लगा॥ ३७ ॥

पतिको देखकर वृन्दाने हर्षित मनसे सभी प्रकारके शोकका परित्याग कर दिया और इस घटनाको स्वप्नके समान समझा॥ ३८ ॥

वह प्रसन्नचित्तसे कामका उदय होनेपर उस वनके मध्यमें ही उसके साथ बहुत दिनोंतक विहार करती रही॥ ३९ ॥

एक बार सहवासके अन्तमें उसको विष्णुके रूपमें जानकर क्रोधसे युक्त होकर फटकारती हुई वृन्दा यह वचन बोली— ॥ ४० ॥

वृन्दा बोली—अरे परस्त्रीगामी हरि! तुम्हारे इस प्रकारके चरित्रको धिक्कार है। मैंने तुमको अच्छी प्रकारसे जान लिया है। तुमने ही मायाका आश्रय लेकर तपस्वीका वेष धारण किया था॥ ४१ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! पातिव्रतपरायण उस वृन्दाने ऐसा कहकर क्रोधयुक्त होकर अपने तेजको दिखाते हुए विष्णुको शाप दे दिया॥ ४२ ॥

रे महाधम! दैत्यशत्रु! तुम दूसरेके धर्मको दूषित करनेवाले हो, इसलिये अरे शठ! सभी प्रकारके विषोंसे तीव्र मेरे द्वारा दिये गये शापको ग्रहण करो॥ ४३ ॥

तुमने अपनी मायासे जिन दो पुरुषोंको दिखाया था, वे ही दोनों राक्षस बनकर तुम्हारी पत्नीका हरण करेंगे॥ ४४ ॥

तुम भी पत्नीके दुःखसे दुखित होकर वानरोंकी सहायता लेकर वनमें भटकते हुए घूमो और यह जो सर्पोंका स्वामी (शेषनाग) तुम्हारा शिष्य बना था, यह भी तुम्हारे साथ भ्रमण करे॥ ४५ ॥

ऐसा कहकर वह वृन्दा उस समय विष्णुके द्वारा रोके जानेपर भी अपने पति जलन्धरका मनमें ध्यान करते हुए अग्निमें प्रवेश कर गयी॥ ४६ ॥

हे मुने! उस समय उसकी उत्तम गतिको देखनेकी इच्छावाले ब्रह्मा आदि सभी देवता अपनी भार्याओंके साथ आकाशमण्डलमें स्थित हो गये॥ ४७ ॥

उस समय दैत्येन्द्रपत्नीकी वह परम ज्योति देवताओंके देखते-देखते ही शीघ्र अदृष्ट हो गयी और शिवा पार्वतीके शरीरमें उस वृन्दाका तेज विलीन हो गया। उस समय आकाशमें स्थित देवताओंने जय-जयकी ध्वनि की॥ ४८-४९ ॥

हे मुने! इस प्रकार कालनेमिकी श्रेष्ठ पुत्री महारानी वृन्दाने पातिव्रतके प्रभावसे परा मुक्तिको प्राप्त किया॥ ५० ॥

उस समय हरिने उसका स्मरणकर उसकी चिताकी भस्मधूलिको धारण कर लिया, देवता और सिद्धोंके ज्ञान देनेपर भी उनको कुछ शान्ति नहीं मिली और वे वहींपर स्थित हो गये॥ ५१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत वृन्दापातिव्रतभंग और देहत्यागवर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

दैत्यराज जलन्धर तथा भगवान् शिवका घोर संग्राम, भगवान् शिवद्वारा चक्रसे जलन्धरका शिरश्छेदन, जलन्धरका तेज शिवमें प्रविष्ट होना, जलन्धर-वधसे जगत्‌में सर्वत्र शान्तिका विस्तार

व्यासजी बोले—ब्रह्माजीके श्रेष्ठ पुत्र परम बुद्धिमान् हे सनत्कुमारजी! आपने इस परम अद्भुत कथाका श्रवण कराया। इसके बाद क्या हुआ, उस युद्धमें वह दैत्य जलन्धर किस प्रकार मारा गया, इसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—जब वह दैत्यपति जलन्धर पार्वतीको न देखकर युद्धभूमिमें लौट आया और गान्धर्वी माया विलीन हो गयी, तब वृषभध्वज भगवान् शंकर चैतन्य हुए। मायाके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् शंकरको ज्ञान हुआ, तदनन्तर संहार करनेवाले शंकर लौकिक गतिका आश्रय लेकर अत्यधिक क्रुद्ध हुए॥ २-३॥

इसके बाद शिवजी विस्मितमन तथा क्रुद्ध होकर जलन्धरसे युद्ध करनेके लिये चल दिये। उस दैत्यने भी शिवजीको पुनः आता हुआ देखकर उनपर बाणोंकी वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया॥ ४॥

प्रभु शिवजीने बलशाली उस जलन्धरके द्वारा छोड़े गये उग्र बाणोंको अपने श्रेष्ठ बाणोंसे बड़ी शीघ्रतासे काटकर गिरा दिया। त्रिभुवन-संहारकर्ता शिवके लिये यह कोई अद्भुत बात नहीं हुई। तदनन्तर अद्भुत पराक्रमवाले शंकरजीको देखकर जलन्धरने उन्हें मोहित करनेके लिये मायाकी पार्वती बनायी॥ ५-६॥

शिवजीने रथपर स्थित, बँधी हुई, विलाप करती हुई एवं शुम्भ तथा निशुम्भके द्वारा मारी जाती हुई पार्वतीको देखा। तब उस स्थितिवाली पार्वतीको देखकर लौकिक गति प्रदर्शित करते हुए शिवजी सामान्यजनोंकी तरह अत्यन्त व्याकुल हो उठे॥ ७-८॥

उस समय अनेक प्रकारकी लीलाओंमें प्रवीण शंकरजीके अंग शिथिल हो गये और अपना पराक्रम भूलकर वे दुखी होकर मुख नीचे करके मौन हो गये॥ ९॥

उसके बाद जलन्धरने पुंखतक धँसनेवाले तीन बाणोंसे वेगपूर्वक शिवजीके सिर, हृदय तथा उदरप्रदेशपर प्रहार किया। तब महालीला करनेवाले तथा ज्ञानतत्त्ववाले भगवान् रुद्रने क्षणभरमें अग्निज्वालाके समूहसे युक्त अत्यन्त भयंकर रौद्ररूप धारण कर लिया। उनके इस अतिमहारौद्ररूपको देखकर महादैत्यगण सम्मुख खड़े रहनेमें असमर्थ हो गये और दसों दिशाओंमें भागने लगे॥ १०—१२॥

हे मुनीश्वर! उस समय वीरोंमें विख्यात महावीर जो शुम्भ एवं निशुम्भ थे, वे भी रणमें स्थित न रह सके। जलन्धरके द्वारा रची गयी माया क्षणभरमें विलुप्त हो गयी। उस संग्राममें चारों ओर महान् हाहाकार होने लगा। तब उन दोनोंको भागते हुए देखकर क्रुद्ध हुए रुद्रने धिक्कारकर उन शुम्भ-निशुम्भको इस प्रकार शाप दिया— ॥ १३—१५॥

रुद्र बोले—तुम दोनों दैत्य महान् दुष्ट हो, तुम दोनों पार्वतीको दण्ड देनेवाले हो, मेरा महान् अपराध करनेवाले हो और इस संग्रामसे भाग रहे हो॥ १६॥

युद्धसे भागनेवालेको नहीं मारना चाहिये, अतः मैं तुम दोनोंका वध नहीं करूँगा, किंतु गौरी मेरे युद्धसे भागे हुए तुम दोनोंका वध अवश्य करेंगी। अभी शंकरजी यह बात कह ही रहे थे कि जलती हुई अग्निके समान समुद्रपुत्र जलन्धर अत्यधिक क्रुद्ध हो उठा॥ १७-१८॥

उसने बड़े वेगके साथ शिवजीपर तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया, जिससे पृथ्वीतल बाणोंके अन्धकारसे ढँक गया॥ १९॥

अभी रुद्र उसके बाणोंको काटनेमें लगे ही थे कि इतनेमें उस बलशालीने परिघसे वृषभपर प्रहार किया॥ २०॥

उस प्रहारसे आहत हुआ वृषभ रणभूमिसे पीछेकी ओर हटने लगा। शंकरजीके द्वारा खींचे जानेपर भी वह युद्धभूमिमें स्थित न रह सका। हे मुनीश्वर! उस समय महारुद्रने सभीके लिये अति दुःसह अपना तेज लोकमें दिखाया—यह सत्य है। उन प्रभु रुद्रने अत्यधिक क्रुद्ध होकर रौद्ररूप धारण कर लिया और वे सहसा प्रलयकालकी अग्निके समान अत्यन्त भयंकर हो गये॥ २१—२३॥

मेरुशृंगके समान अचल उस दैत्यको अपने आगे स्थित देखकर तथा उसे दूसरेसे अवध्य जानकर वे स्वयं उस दैत्यको मारनेके लिये उद्यत हो गये॥ २४॥

जगत्की रक्षा करनेवाले उन महाप्रभुने ब्रह्माके वचनकी रक्षा करते हुए और हृदयमें दयाका भाव रखते हुए उस दैत्यके वधके लिये मनमें निश्चय किया॥ २५॥

उस समय क्रोध करके अपनी लीलासे त्रिशूलधारी भगवान् शंकरने महासमुद्रमें अपने पैरके अँगूठेसे शीघ्र ही भयानक तथा अद्भुत रथ-चक्रका निर्माण किया॥ २६॥

उन्होंने उस महासमुद्रमें अत्यन्त जाज्वल्यमान रथचक्रका निर्माण करके तथा यह स्मरणकर कि निश्चय ही इससे तीनों लोकोंका वध किया जा सकता है, वे दक्ष, अन्धक, त्रिपुर तथा यज्ञका विनाश करनेवाले भगवान् शंकर हँसते हुए बोले—॥ २७॥

महारुद्र बोले—हे जलन्धर! मैंने महासमुद्रमें अपने पैरके अँगूठेसे इस चक्रका निर्माण किया है, यदि तुम बलवान् हो तो इस चक्रको पानीके बाहर करके मुझसे युद्ध करनेके लिये ठहरो, अन्यथा भाग जाओ॥ २८॥

सनत्कुमार बोले—उनके उस वचनको सुनकर जलन्धरकी आँखें क्रोधसे जलने लगीं और वह अपने क्रोधभरे नेत्रोंसे शंकरजीको जलाता हुआ-सा उनकी ओर देखकर कहने लगा—॥ २९॥

जलन्धर बोला—हे शंकर! मैं रेखाके समान इस चक्र सुदर्शनको उठाकर गणोंसहित तुम्हारा एवं देवताओंके साथ समस्त लोकोंका वधकर गरुड़के समान अपना भाग ग्रहण करूँगा। हे महेश्वर! मैं इन्द्रसहित चर-अचर सभीका नाश करनेमें समर्थ हूँ। इस त्रिलोकीमें ऐसा कौन है, जो मेरे बाणोंके द्वारा अभेद्य हो?॥ ३०-३१॥

मैंने अपनी बाल्यावस्थामें ही तपस्याके प्रभावसे भगवान् ब्रह्माको भी जीत लिया था और वे बलवान् ब्रह्मा मुनियों एवं देवताओंके साथ मेरे घरमें हैं॥ ३२॥

हे रुद्र! मैंने चराचरसहित सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षणमात्रमें जला दिया और अपनी तपस्यासे भगवान् विष्णुको भी जीत लिया है, फिर मैं तुम्हें क्या समझता हूँ?॥ ३३॥

इन्द्र, अग्नि, यम, कुबेर, वायु, वरुण आदि भी मेरे पराक्रमको उसी प्रकार नहीं सह सकते, जिस प्रकार सर्प गरुड़की गन्धको भी सहन नहीं कर सकते॥ ३४॥

हे शंकर! स्वर्ग तथा भूलोकमें मेरे लिये कोई वाहन नहीं मिला, मैंने समस्त पर्वतोंपर जाकर सभी गणेश्वरोंको परास्त किया है। मैंने अपनी खुजली मिटानेके लिये पर्वतराज हिमालय, मन्दर, शोभामय नीलपर्वत तथा सुन्दर मेरु पर्वतको अपने बाहुदण्डसे घिस डाला है॥ ३५-३६॥

मैंने हिमालय पर्वतपर लीला करनेहेतु अपनी भुजाओंसे गंगाजीको रोक दिया था। मेरे भृत्योंने शत्रु देवताओंपर विजय प्राप्त की है। मैंने बड़वानलका मुख अपने हाथोंसे पकड़कर जब बन्द कर दिया, उसी क्षण सम्पूर्ण जगत् जलमय हो गया था। मैंने ऐरावत आदि हाथियोंको समुद्रके जलपर फेंक दिया तथा रथसहित भगवान् इन्द्रको सैकड़ों योजन दूर फेंक दिया॥ ३७—३९॥

मैंने विष्णुजीके सहित गरुड़को भी नागपाशमें बाँध लिया तथा उर्वशी आदि अप्सराओंको अपने कारागारमें बन्दी बना लिया। हे रुद्र! त्रिलोकीपर विजय प्राप्त करनेवाले मुझ सिन्धुपुत्र महाबलवान् महादैत्य जलन्धरको तुम नहीं जानते॥ ४०-४१॥

सनत्कुमार बोले—उस समय महादेवसे ऐसा कहकर उस समुद्रपुत्र [जलन्धर]-ने युद्धमें मारे गये दानवोंका स्मरण नहीं किया और न तो वह [इधर-उधर] हिला-डुला ही। उस दुर्विनीत एवं मदान्ध दैत्यने दोनों बाहुओंको ठोककर अपने बाहुबलसे तथा कटु वचनोंसे रुद्रका अपमान किया॥ ४२-४३॥

उस दुष्टके द्वारा कहे गये अमंगल वचनको सुनकर महादेव हँसे तथा बहुत क्रोधित हो गये॥ ४४॥

उन्होंने अपने पैरके अँगूठेसे जिस सुदर्शन नामक चक्रका निर्माण किया था, उसको अपने हाथमें ले लिया और उससे उसको मारनेके लिये रुद्र उद्यत हो गये॥ ४५॥

भगवान् शिवने प्रलयकालकी अग्निके सदृश एवं करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान उस सुदर्शनचक्रको उसपर फेंका। आकाश तथा भूमिको प्रज्वलित करते हुए उस चक्रने वेगसे जलन्धरके पास आकर बड़े-बड़े नेत्रोंवाले उसके सिरको वेगपूर्वक काट दिया॥ ४६-४७॥

उस सिन्धुपुत्र दैत्यका शरीर एवं सिर भूतलको नादित करता हुआ रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा और चारों

ओर महान् हाहाकार होने लगा ॥ ४८ ॥

काले पहाड़के समान उसका शरीर दो टुकड़े होकर उसी प्रकार गिर पड़ा, जैसे वज्रके प्रहारसे अति विशाल पर्वत दो टुकड़े होकर समुद्रमें गिर पड़ता है ॥ ४९ ॥

हे मुनीश्वर! उसके भयंकर रक्तसे सारा जगत् व्याप्त हो गया और उससे पृथ्वी [लाल हो जानेसे] विकृत हो गयी। शिवजीकी आज्ञासे उसका सम्पूर्ण रक्त एवं मांस महारौरव [नरक]-में जाकर रक्तका कुण्ड बन गया ॥ ५१ ॥

उसके शरीरसे निकला हुआ तेज शंकरमें उसी प्रकार समा गया, जिस प्रकार वृन्दाके शरीरसे उत्पन्न तेज गौरीमें प्रविष्ट हो गया था। जलन्धरको मरा हुआ देखकर उस समय देव, गन्धर्व तथा नागगण अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और शंकरजीको साधुवाद देने लगे ॥ ५२-५३ ॥

सभी देव, सिद्ध एवं मुनीश्वर भी प्रसन्न हो गये और पुष्पवृष्टि करते हुए उच्च स्वरमें उनका यशोगान करने लगे। देवांगनाएँ प्रेमसे विह्वल होकर अति आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगीं और मनोहर रागयुक्त शब्दोंसे किन्नरोंके साथ सुन्दर पदोंको गाने लगीं ॥ ५४-५५ ॥

हे मुने! उस समय वृन्दापति जलन्धरके मर जानेपर सभी ओर पवित्र तथा सुखद स्पर्शवाली दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं, [शीतल, मन्द, सुगन्ध] तीनों प्रकारकी वायु चलने लगी। चन्द्रमा शीतलतासे युक्त हो गया, सूर्य परम तेजसे तपने लगा, शान्त अग्नि जलने लगी और आकाश निर्मल हो गया। इस प्रकार हे मुने! अनन्तमूर्ति सदाशिवके द्वारा उस समुद्रपुत्र जलन्धरके मारे जानेपर सम्पूर्ण त्रैलोक्य अत्यधिक शान्तिमय हो गया ॥ ५६—५८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत जलन्धरवधवर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २४ ॥

पच्चीसवाँ अध्याय

जलन्धरवधसे प्रसन्न देवताओंद्वारा भगवान् शिवकी स्तुति

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] इसके बाद ब्रह्मा आदि सभी देवता एवं मुनिगण सिर झुकाकर प्रिय वाणीसे देवदेवेशकी स्तुति करने लगे— ॥ १ ॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप सदा सज्जनोंको सुख देनेवाले तथा भक्तोंका दु:ख दूर करनेवाले हैं ॥ २ ॥

आप अद्भुत उत्तम लीला करनेवाले, [एकमात्र] भक्तिसे प्राप्त होनेवाले, दुर्लभ तथा दुष्टजनोंके द्वारा दुराराध्य हैं। हे नाथ! आप सर्वदा प्रसन्न रहें ॥ ३ ॥

हे प्रभो! वेद भी यथार्थ रूपसे आपकी महिमाको नहीं जानते, महात्मालोग अपनी बुद्धिके अनुसार आपके उत्तम यशका गान करते हैं। हजार मुखोंवाले शेषनाग आदि प्रेमपूर्वक सदा आपकी अत्यन्त गूढ़ महिमाका गान करते हैं एवं वे अपनी वाणीको पवित्र करते हैं ॥ ४-५ ॥

हे देवेश! आपकी कृपासे जड़ भी ब्रह्मज्ञानी हो जाता है और आप सदा भक्तिसे ही प्राप्य हैं—ऐसा वेद कहते हैं ॥ ६ ॥

हे प्रभो! आप दीनदयाल तथा सदा सर्वत्र व्यापक, निर्विकार तथा सज्जनोंके रक्षक हैं, आप सद्भक्तिसे आविर्भूत होते हैं। हे महेशान! आपकी भक्तिसे बहुत लोग इस लोकमें सभी प्रकारके सुखका उपभोग करके सिद्धिको प्राप्त हुए हैं और निराकार उपासनासे दुखित हुए हैं ॥ ७-८ ॥

हे प्रभो! पूर्व समयमें यदुवंशी भक्त दाशार्ह तथा उनकी पत्नी कलावतीने आपकी भक्तिसे ही परम सिद्धि प्राप्त कर ली थी। हे देवेश! इसी प्रकार राजा मित्रसह तथा उनकी पत्नी मदयन्तीने भी आपकी भक्तिसे ही परम कैवल्यपदको प्राप्त किया था। केकयनरेशकी सौमिनी नामक कन्याने आपकी भक्तिसे महायोगियोंके लिये भी दुर्लभ परम सुख प्राप्त किया था ॥ ९—११ ॥

हे प्रभो! राजाओंमें श्रेष्ठ विमर्षणने आपकी भक्तिसे सात जन्मपर्यन्त अनेक प्रकारके सुखोंका उपभोग करके सद्गति प्राप्त की थी। नृपश्रेष्ठ चन्द्रसेनने आपकी भक्तिद्वारा दु:खसे छुटकारा पाया तथा इस लोकमें एवं परलोकमें नाना प्रकारके भोग प्राप्त करते हुए वे आनन्द करते रहे ॥ १२-१३ ॥

महावीरके शिष्य गोपीपुत्र श्रीकरने भी आपकी भक्तिसे इस लोकमें परम सुख भोगकर परलोकमें सद्गति प्राप्त की॥ १४॥

आपने [प्रसन्न होकर] सत्यरथ नामक भूपतिका दुःख हरण किया तथा उन्हें सद्गति प्रदान की। आपने राजपुत्र धर्मगुप्तको सुखी बनाया तथा उन्हें तार दिया॥ १५॥

हे महाप्रभो! आपने माताके उपदेशसे आपकी भक्ति करनेवाले शुचिव्रत नामक ब्राह्मणको कृपापूर्वक धनवान् तथा ज्ञानी बना दिया॥ १६॥

नृपश्रेष्ठ चित्रवर्माने आपकी भक्तिसे इस लोकमें देवदुर्लभ सुखोंको भोगकर अन्तमें सद्गति प्राप्त की॥ १७॥

चन्द्रांगद नामक राजपुत्रने अपनी स्त्री सीमन्तिनीसहित आपकी भक्तिसे सारे दुःखोंको त्यागकर सुखसम्पन्न हो महागतिको प्राप्त किया। हे शिव! मन्दर नामवाला ब्राह्मण, जो वेश्यागामी, अधम तथा महाखल था, वह भी आपकी भक्तिसे युक्त होकर आपका पूजनकर उस वेश्याके साथ सद्गतिको प्राप्त हुआ॥ १८-१९॥

हे प्रभो! भद्रायु नामक राजपुत्रने भी आपकी भक्तिद्वारा कृपा प्राप्तकर दुःखोंसे मुक्त हो सुख प्राप्त किया और माताके साथ परम गति प्राप्त की॥ २०॥

हे महेश्वर! सदा अभक्ष्यभक्षण करनेवाला तथा सभी स्त्रियोंमें सम्भोगरत दुर्जन भी आपकी सेवासे मुक्त हो गया। हे शम्भो! चिताकी भस्म धारण करनेवाला शम्बर, जो शिवका महाभक्त था, वह नियमपूर्वक सदा चिताका भस्म धारण करनेसे शंकररूप होकर अपनी स्त्रीके साथ आपके लोकको गया॥ २१-२२॥

हे प्रभो! [इसी प्रकार] भद्रसेनका पुत्र तथा उसके मन्त्रीका पुत्र, जो उत्तम धर्म तथा शुभ कर्म करते थे और सदा रुद्राक्ष धारण करते थे, वे दोनों ही आपकी कृपासे इस लोकमें उत्तम सुख भोगकर मुक्त हो गये। ये दोनों ही पूर्वजन्ममें कपि तथा कुक्कुट थे और रुद्राक्ष धारण करते थे॥ २३-२४॥

भक्तोंका उद्धार करनेमें तत्पर रहनेवाले हे नाथ! पिंगला तथा महानन्दा नामक दो वेश्याएँ भी आपकी भक्तिसे सद्गतिको प्राप्त हुईं। किसी ब्राह्मणकी शारदा नामक कन्या बालविधवा हो गयी थी, वह आपकी भक्तिके प्रभावसे पुत्रवती तथा सौभाग्यवती हो गयी॥ २५-२६॥

नाममात्रका ब्राह्मण, वेश्यागामी बिन्दुग एवं उसकी पत्नी चंचुला दोनों ही आपका यश श्रवणकर परम गतिको प्राप्त हुए। हे प्रभो! हे महेशान! हे दीनबन्धो! हे कृपालय! इस प्रकार आपकी भक्तिसे अनेक जीवोंको सिद्धि प्राप्त हुई है। हे परमेश्वर! आप प्रकृति तथा पुरुषसे परे ब्रह्म हैं, आप निर्गुण तथा त्रिगुणके आधार हैं और ब्रह्मा-विष्णु-हरात्मक भी आप ही हैं॥ २७—२९॥

आप निर्विकार तथा अखिलेश्वर होकर भी नाना प्रकारके कर्म करते हैं। हे महेश्वर शंकर! हम ब्रह्मा आदि सभी देवता आपके दास हैं॥ ३०॥

हे नाथ! हे देवेश! हे शिव! हम सभी आपकी प्रजा हैं और सदा आपके शरणागत हैं, अतः आप प्रसन्न होइये और सदा हमलोगोंकी रक्षा कीजिये॥ ३१॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार ब्रह्मादि देवता तथा सभी मुनीश्वर स्तुति करके शिवजीके चरणयुगलका ध्यान करते हुए मौन हो गये। इसके बाद महेश्वर प्रभु शंकरजी देवगणोंकी शुभ स्तुति सुनकर उन्हें श्रेष्ठ वर देकर शीघ्र अन्तर्धान हो गये॥ ३२-३३॥

शत्रुओंके मारे जानेसे ब्रह्मादि सभी देवता प्रसन्न हो गये और शिवजीके उत्तम यशका गान करते हुए अपने-अपने धामको चले गये। जलन्धरवधसे सम्बन्धित भगवान् शिवका यह श्रेष्ठ आख्यान पुण्यको देनेवाला एवं पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ ३४-३५॥

देवताओंके द्वारा की गयी यह स्तुति पुण्य देनेवाली, समस्त पापोंको नष्ट करनेवाली, सब प्रकारके सुखोंको देनेवाली तथा सर्वदा महेशको आनन्द प्रदान करनेवाली है। जो इन दोनों आख्यानोंको पढ़ता है अथवा पढ़ाता है, वह इस लोकमें महान् सुख भोगकर [अन्तमें] गणपतित्वको प्राप्त करता है॥ ३६-३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरवधोपाख्यानके अन्तर्गत देवस्तुतिवर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

विष्णुजीके मोहभंगके लिये शंकरजीकी प्रेरणासे देवोंद्वारा मूलप्रकृतिकी स्तुति, मूलप्रकृतिद्वारा आकाशवाणीके रूपमें देवोंको आश्वासन, देवताओंद्वारा त्रिगुणात्मिका देवियोंका स्तवन, विष्णुका मोहनाश, धात्री (आँवला), मालती तथा तुलसीकी उत्पत्तिका आख्यान

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मपुत्र! आपको नमस्कार है। हे श्रेष्ठ शिवभक्त! आप धन्य हैं, जो आपने शंकरजीकी यह महादिव्य शुभ कथा सुनायी। हे मुने! अब आप प्रेमपूर्वक श्रीविष्णुजीके चरित्रको सुनाइये, उन्होंने वृन्दाको मोहितकर क्या किया और वे कहाँ गये?॥ १-२॥

सनत्कुमार बोले—हे महाप्राज्ञ! हे शिवभक्तोंमें श्रेष्ठ व्यासजी! अब आप शिवचरित्रसे परिपूर्ण तथा निर्मल विष्णुचरित्रको सुनिये। जब ब्रह्मादिक देवता [स्तुतिकर] मौन हो गये, तब शरणागतवत्सल शंकर अति प्रसन्न होकर कहने लगे—॥ ३-४॥

शम्भु बोले—हे ब्रह्मन्! हे सभी श्रेष्ठ देवगण! मैं यह सत्य-सत्य कह रहा हूँ कि यद्यपि जलन्धर मेरा ही अंश था, फिर भी मैंने आपलोगोंके लिये उसका वध किया। हे तात! हे देवतागण! आपलोग सच-सच बताइये कि आपलोगोंको सुख प्राप्त हुआ अथवा नहीं। सर्वदा मुझ निर्विकारकी लीला आपलोगोंके निमित्त ही हुआ करती है॥ ५-६॥

सनत्कुमार बोले—तदनन्तर देवताओंके नेत्र हर्षसे खिल उठे और वे शंकरजीको प्रणामकर विष्णुका वृत्तान्त निवेदन करने लगे॥ ७॥

देवता बोले—हे महादेव! हे देव! आपने शत्रुओंके भयसे हमारी रक्षा की, किंतु एक बात और हुई है, उसमें हम क्या करें?॥ ८॥

हे नाथ! विष्णुने बड़े प्रयत्नके साथ वृन्दाको मोहित किया और वह शीघ्र ही अग्निमें भस्म होकर परम गतिको प्राप्त हुई है, किंतु इस समय वृन्दाके लावण्यपर आसक्त हुए विष्णु मोहित होकर उसकी चिताका भस्म धारण करते हैं, वे आपकी मायासे विमोहित हो गये हैं॥ ९-१०॥

सिद्धों, मुनियों तथा हमलोगोंने उन्हें बड़े आदरके साथ समझाया, किंतु वे हरि आपकी मायासे मोहित होनेके कारण कुछ भी नहीं समझ रहे हैं॥ ११॥

अतः हे महेशान! आप कृपा कीजिये और विष्णुको समझाइये; यह प्राकृत सम्पूर्ण चराचर जगत् आपके ही अधीन है॥ १२॥

सनत्कुमार बोले—देवगणोंके इस वचनको सुनकर महालीला करनेवाले तथा स्वतन्त्र [भगवान्] शंकर हाथ जोड़े हुए उन देवगणोंसे कहने लगे—॥ १३॥

महेश बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवो! आपलोग श्रद्धापूर्वक मेरे वचनको सुनें। सम्पूर्ण लोकोंको मोहित करनेवाली मेरी माया दुस्तर है। देवता, असुर एवं मनुष्योंके सहित सारा जगत् उसीके अधीन है। उसी मायासे मोहित होनेके कारण विष्णु कामके अधीन हो गये हैं॥ १४-१५॥

वह माया ही उमा नामसे विख्यात है, जो इन तीनों देवताओंकी जननी है। वही मूलप्रकृति तथा परम मनोहर गिरिजाके नामसे विख्यात है। हे देवताओ! आपलोग विष्णुका मोह दूर करनेके लिये शीघ्र ही शरणदायिनी, मोहिनी तथा सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली शिवा नामक मायाकी शरणमें जाइये और उस मेरी शक्तिको सन्तुष्ट करनेवाली स्तुति कीजिये, यदि वे प्रसन्न हो जायँगी तो [आपलोगोंका] सारा कार्य पूर्ण करेंगी॥ १६—१८॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! पंचमुख भगवान् शंकर हर उन देवताओंसे ऐसा कहकर अपने सभी गणोंके साथ अन्तर्धान हो गये और शंकरकी आज्ञाके अनुसार इन्द्रसहित ब्रह्मादिक देवता मनसे भक्तवत्सला मूलप्रकृतिकी स्तुति करने लगे॥ १९-२०॥

देवता बोले—जिस मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुए सत्त्व, रज और तम—ये गुण इस सृष्टिका सृजन, पालन तथा संहार करते हैं और जिसकी इच्छासे इस विश्वका आविर्भाव तथा तिरोभाव होता है, उस मूलप्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं। जो परा शक्ति शब्द आदि तेईस गुणोंसे समन्वित हो इस जगत्में व्याप्त है, जिसके रूप और कर्मको वे तीनों लोक नहीं जानते, उस मूलप्रकृतिको

हम नमस्कार करते हैं॥ २१-२२॥

जिनकी भक्तिसे युक्त पुरुष दारिद्र्य, मोह, उत्पत्ति तथा विनाश आदिको नहीं प्राप्त करते हैं, उन भक्तवत्सला मूलप्रकृतिको हम नमस्कार करते हैं॥ २३॥

हे महादेवि! हे परमेश्वरि! हम देवताओंका कार्य कीजिये। हे शिवे! विष्णुके मोहको दूर कीजिये। हे दुर्गे! आपको नमस्कार है॥ २४॥

हे देवि! कैलासवासी शंकर एवं जलन्धरके युद्धमें उसका वध करनेके लिये शिवके प्रवृत्त होनेपर गौरीके आदेशसे ही विष्णुने बड़े प्रयत्नके साथ वृन्दाको मोहित किया और उसका सतीत्व नष्ट किया। तब वह अग्निमें भस्म हो गयी और उत्तम गतिको प्राप्त हुई॥ २५-२६॥

तब भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले शंकरने हमलोगोंपर कृपा करके जलन्धरका वध कर दिया और हम सभीको उसके भयसे मुक्त भी कर दिया है॥ २७॥

हे देवि! हम सभी उन शंकरकी आज्ञासे आपकी शरणमें आये हैं; क्योंकि आप और शंकर दोनों ही अपने भक्तोंका उद्धार करनेमें निरत रहते हैं॥ २८॥

[हे भगवति!] वृन्दाके लावण्यसे भ्रमित हुए विष्णु इस समय ज्ञानसे भ्रष्ट तथा विमोहित होकर उसकी चिताका भस्म धारणकर वहीं स्थित हैं॥ २९॥

हे महेश्वरि! आपकी मायासे मोहित होनेके कारण सिद्धों तथा देवताओंके द्वारा समझाये जानेपर भी वे विष्णु नहीं समझ रहे हैं। हे महादेवि! कृपा कीजिये और विष्णुको समझाइये, जिससे देवताओंका कार्य करनेवाले वे विष्णु स्वस्थचित्त होकर अपने लोककी रक्षा करें॥ ३०-३१॥

इस प्रकारकी स्तुति करते हुए देवताओंने अपनी कान्तिसे समस्त दिशाओंको व्याप्त किये हुए एक तेजोमण्डलको आकाशमें स्थित देखा। हे व्यास! इन्द्रसहित ब्रह्मा आदि सभी देवताओंने मनोरथोंको देनेवाली आकाशवाणी उस [तेजोमण्डल]-के मध्यसे सुनी॥ ३२-३३॥

आकाशवाणी बोली—हे देवताओ! मैं ही तीन प्रकारके गुणोंके द्वारा अलग-अलग तीन रूपोंमें स्थित हूँ; रजोगुणरूपसे गौरी, सत्त्वगुणसे लक्ष्मी तथा तमोगुणसे सुराज्योतिके रूपमें स्थित हूँ। अतः आपलोग मेरी आज्ञासे उन देवियोंके समीप आदरपूर्वक जाइये, वे प्रसन्न होकर उस मनोरथको पूर्ण करेंगी॥ ३४-३५॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! विस्मयसे उत्फुल्ल नेत्रोंवाले देवताओंद्वारा उस वाणीको सुनते ही वह तेज अन्तर्धान हो गया। तत्पश्चात् सभी देवगण उस आकाश-वाणीको सुनकर तथा उस वाक्यसे प्रेरित होकर गौरी, लक्ष्मी तथा सुरादेवीको प्रणाम करने लगे॥ ३६-३७॥

ब्रह्मादि सभी देवताओंने नतमस्तक होकर विविध स्तुतियोंसे परम भक्तिपूर्वक उन देवियोंकी स्तुति की॥ ३८॥

हे व्यासजी! तब वे देवियाँ अपने अद्भुत तेजसे सभी दिशाओंको प्रकाशित करती हुईं शीघ्र ही उनके समक्ष प्रकट हो गयीं। तब देवताओंने उन देवियोंको देखकर अत्यन्त प्रसन्नमनसे उन्हें प्रणाम करके भक्तिसे उनकी स्तुति की और अपना कार्य निवेदित किया॥ ३९-४०॥

इसके बाद भक्तवत्सला उन देवियोंने प्रणाम करते हुए देवताओंको देखकर उन्हें अपना-अपना बीज दिया और आदरपूर्वक उनसे यह वचन कहा—॥ ४१॥

देवियाँ बोलीं—[हे देवगणो!] जहाँ विष्णु स्थित हैं, वहाँ इन बीजोंको बो देना, इससे आपलोगोंका कार्य सिद्ध हो जायगा॥ ४२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! इस प्रकार कहकर वे देवियाँ अन्तर्धान हो गयीं। वे ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रकी त्रिगुणात्मक शक्तियाँ थीं। तब इन्द्रसहित ब्रह्मा आदि सभी देवता प्रसन्न हो गये और उन बीजोंको लेकर वहाँ गये, जहाँ भगवान् विष्णु स्थित थे॥ ४३-४४॥

हे मुने! उन देवताओंने वृन्दाकी चिताके नीचे भूतलपर उन बीजोंको डाल दिया और उन शिव-शक्तियोंका स्मरण करके वे वहींपर स्थित हो गये॥ ४५॥

हे मुनीश्वर! उन डाले गये बीजोंसे धात्री, मालती तथा तुलसी नामक तीन वनस्पतियाँ उत्पन्न हो गयीं। धात्रीके अंशसे धात्री, महालक्ष्मीके अंशसे मालती तथा गौरीके अंशसे तुलसी हुई, जो तम, सत्त्व तथा रजोगुणसे युक्त थीं॥ ४६-४७॥

हे मुने! तब स्त्रीरूपिणी उन वनस्पतियोंको देखकर उनके प्रति विशेष रागविलासके विभ्रमसे युक्त होकर विष्णुजी उठ बैठे। उन्हें देखकर मोहके कारण कामासक्त चित्तसे वे उनके प्रेमकी याचना करने लगे। तुलसी एवं

धात्रीने भी रागपूर्वक उनका अवलोकन किया॥ ४८-४९॥

सर्वप्रथम लक्ष्मीने जिस बीजको मायासे देवताओंको दिया था, उससे उत्पन्न हुई स्त्री मालती उनसे ईर्ष्या करने लगी। इसलिये वह बर्बरी—इस गर्हित नामसे पृथ्वीपर विख्यात हुई और धात्री तथा तुलसी रागके कारण उन विष्णुके लिये सदा प्रीतिप्रद हुईं॥ ५०-५१॥

तब विष्णुका दु:ख दूर हो गया और वे सभी देवताओंसे नमस्कृत होते हुए प्रसन्न होकर उन दोनोंके साथ वैकुण्ठ-लोकको चले गये। हे विप्रेन्द्र! कार्तिकके महीनेमें धात्री और तुलसीको सभी देवताओंके लिये प्रिय जानना चाहिये और विशेष करके ये विष्णुको अत्यन्त प्रिय हैं। हे महामुने! उन दोनोंमें भी तुलसी अत्यन्त श्रेष्ठ तथा धन्य है। यह गणेशको छोड़कर सभी देवताओंको प्रिय है तथा सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है॥ ५२—५४॥

इस प्रकार ब्रह्मा, इन्द्र आदि वे देवता विष्णुको वैकुण्ठमें स्थित देखकर उनको नमस्कारकर तथा उनकी स्तुतिकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ५५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मोह भंग हो जानेसे विष्णुजी ज्ञान प्राप्तकर शिवजीका स्मरण करते हुए अपने वैकुण्ठलोकमें सुखपूर्वक निवास करने लगे। यह आख्यान मनुष्योंके सभी पापोंको दूर करनेवाला, मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, समस्त कामविकारोंको नष्ट करनेवाला तथा सभी प्रकारके विज्ञानको बढ़ानेवाला है॥ ५६-५७॥

जो भक्तिसे युक्त होकर इस आख्यानको नित्य पढ़ता, पढ़ाता है, सुनता अथवा सुनाता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। जो बुद्धिमान् वीर इस अत्युत्तम आख्यानको पढ़कर संग्राममें जाता है, वह विजयी होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८-५९॥

यह [आख्यान] ब्राह्मणोंको ब्रह्मविद्या देनेवाला, क्षत्रियोंको जय प्रदान करनेवाला, वैश्योंको अनेक प्रकारका धन देनेवाला तथा शूद्रोंको सुख देनेवाला है॥ ६०॥

हे व्यासजी! यह शिवजीमें भक्ति प्रदान करनेवाला, सभीके पापोंका नाश करनेवाला और इस लोक तथा परलोकमें उत्तम गति देनेवाला है॥ ६१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें जलन्धरके वधके पश्चात् देवीस्तुति-विष्णुमोहविध्वंसवर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

शंखचूडकी उत्पत्तिकी कथा

सनत्कुमार बोले—हे मुने! अब आप शंकरजीका एक और चरित प्रेमपूर्वक सुनिये, जिसके सुननेमात्रसे शंकरजीके प्रति दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ १॥

एक शंखचूड नामक दानव था, जो महावीर और देवताओंके लिये कण्टक था। शिवजीने त्रिशूलसे जिस प्रकार युद्धभूमिमें उसका वध किया, हे व्यासजी! उस पवित्र, पापनाशक तथा दिव्य चरित्रको आप अत्यन्त प्रेमपूर्वक सुनिये, मैं आपके स्नेहसे उसको कह रहा हूँ॥ २-३॥

पूर्व समयमें ब्रह्माजीके मरीचि नामक पुत्र हुए। उन मरीचिके पुत्र जो कश्यप मुनि हुए, वे बड़े धर्मशील, सृष्टिकर्ता, विद्यावान् तथा प्रजापति थे॥ ४॥

दक्षने उन्हें प्रेमपूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ प्रदान कीं, उनकी बहुत-सी सन्तानें हुईं, जिन्हें विस्तारसे यहाँ कहना सम्भव नहीं है। उनसे ही सम्पूर्ण देवता तथा चराचर जगत् उत्पन्न हुआ। तीनों लोकोंमें उनको विस्तारसे कहनेमें कौन समर्थ है? अब प्रस्तुत वृत्तान्तको सुनिये, जो शिवलीलासे युक्त तथा भक्तिको बढ़ानेवाला है, मैं उसको कह रहा हूँ, सुनिये। कश्यपकी उन स्त्रियोंमें एक दनु नामवाली थी, जो सुन्दरी, महारूपवती, साध्वी एवं पतिके सौभाग्यसे सम्पन्न थी॥ ५—८॥

उस दनुके अनेक बलवान् पुत्र थे। हे मुने! विस्तारके भयसे मैं उनके नामोंको यहाँ नहीं बता रहा हूँ॥ ९॥

उनमें एक विप्रचित्ति नामवाला दानव था, जो महाबली और पराक्रमी था। उसका दम्भ नामक पुत्र धार्मिक, विष्णुभक्त तथा जितेन्द्रिय हुआ। उसे कोई पुत्र नहीं था, इसलिये वह चिन्ताग्रस्त रहता था। उसने

शुक्राचार्यको गुरु बनाकर उनसे कृष्णमन्त्र प्राप्त करके पुष्कर क्षेत्रमें एक लाख वर्षपर्यन्त घोर तपस्या की। उसने दृढ़तापूर्वक आसन लगाकर दीर्घकालतक कृष्णमन्त्रका जप किया॥ १०—१२॥

तपस्या करते हुए उस दैत्यके सिरसे एक जलता हुआ दुःसह तेज निकलकर चारों ओर फैलने लगा॥ १३॥

उस तेजसे सभी देवता, मुनि एवं मनुगण सन्तप्त हो उठे और इन्द्रको आगेकर वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उन लोगोंने सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता ब्रह्माजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति की और व्याकुल होकर अपना वृत्तान्त विशेषरूपसे निवेदन किया॥ १४-१५॥

उसे सुनकर ब्रह्मा भी उन देवताओंको साथ लेकर उसे पूर्णरूपसे विष्णुसे कहनेके लिये वैकुण्ठलोक गये॥ १६॥

वहाँ जाकर सबकी रक्षा करनेवाले त्रिलोकेश विष्णुको हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनम्र होकर वे सब उनकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

देवता बोले—हे देवदेव! हम नहीं जानते कि किस तेजसे हम सभी अत्यधिक सन्तप्त हो रहे हैं, इसमें कौन-सा कारण है, उसे आप बताइये? हे दीनबन्धो! आप सन्तप्तचित्त अपने सेवकोंकी रक्षा करनेवाले हैं। हे रमानाथ! आप [सबको] शरण देनेवाले हैं। हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ १८-१९॥

सनत्कुमार बोले—ब्रह्मादि देवताओंकी यह बात सुनकर शरणागतवत्सल भगवान् विष्णुजी हँसते हुए प्रेमपूर्वक कहने लगे—॥ २०॥

विष्णुजी बोले—हे देवताओ! आपलोग निश्चिन्त तथा शान्त रहिये और भयभीत न होइये, प्रलयकाल अभी उपस्थित नहीं हुआ है और न तो कोई उपद्रव ही होनेवाला है। मेरा भक्त दम्भ नामक दानव तप कर रहा है, वह पुत्र चाहता है, इसलिये मैं उसे वरदान देकर शान्त कर दूँगा॥ २१-२२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! विष्णुजीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मा आदि वे सभी देवता धैर्य धारणकर पूर्णरूपसे स्वस्थ होकर अपने-अपने निवासस्थानको चले गये॥ २३॥

भगवान् विष्णु भी वर देनेके लिये पुष्कर क्षेत्रमें गये, जहाँ वह दम्भ नामक दानव तप कर रहा था॥ २४॥

वहाँ जाकर विष्णुने अपने मन्त्रका जप करते हुए उस भक्तको सान्त्वना देते हुए मधुर वाणीमें कहा—वर माँगो। तब विष्णुका यह वचन सुनकर तथा उनको अपने सामने खड़ा देखकर उसने महाभक्तिसे उन्हें प्रणाम किया तथा बार-बार उनकी स्तुति की—॥ २५-२६॥

दम्भ बोला—हे देवदेव! हे कमललोचन! हे रमानाथ! हे त्रिलोकेश! आपको प्रणाम है, मेरे ऊपर कृपा कीजिये। आप मुझे महाबली, पराक्रमी, तीनों लोकोंको जीतनेवाला, वीर, देवताओंके लिये अजेय तथा आपकी भक्तिसे युक्त पुत्र प्रदान कीजिये॥ २७-२८॥

सनत्कुमार बोले—दानवेन्द्रके इस प्रकार कहनेपर नारायणने उसे वैसा ही वरदान दिया और हे मुने! उसे तपस्यासे विरतकर वे अन्तर्धान हो गये॥ २९॥

भगवान्के अन्तर्धान हो जानेपर सिद्ध हुए तपवाला तथा पूर्ण मनोरथवाला वह दानव उस दिशाको नमस्कार करके अपने घर चला गया॥ ३०॥

इसके बाद थोड़े ही समयमें उसकी भाग्यवती पत्नीने गर्भ धारण किया और अपने तेजसे घरको प्रकाशित करती हुई वह शोभा प्राप्त करने लगी॥ ३१॥

हे मुने! सुदामा नामक गोप, जो कृष्णका प्रधान पार्षद था, जिसे राधाने शाप दिया था, वही उसके गर्भमें आया। समय आनेपर उस साध्वीने तेजस्वी पुत्रको जन्म दिया। इसके अनन्तर पिताने बहुत-से मुनियोंको बुलाकर उसका जातकर्म-संस्कार कराया॥ ३२-३३॥

हे द्विजश्रेष्ठ! उसके उत्पन्न होनेपर महान् उत्सव हुआ और पिताने शुभ दिनमें उसका शंखचूड—यह नाम रखा। वह [शंखचूड] पिताके घरमें शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढ़ने लगा और बाल्यावस्थामें ही विद्याका अभ्यासकर अत्यन्त तेजस्वी हो गया॥ ३४-३५॥

वह अपनी बालक्रीडासे माता-पिताके हर्षको नित्य बढ़ाने लगा। वह सभीको प्रिय हुआ और अपने कुटुम्बियोंको विशेष प्रिय हुआ॥ ३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडोत्पत्तिवर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शंखचूडकी पुष्कर-क्षेत्रमें तपस्या, ब्रह्माद्वारा उसे वरकी प्राप्ति, ब्रह्माकी प्रेरणासे शंखचूडका तुलसीसे विवाह

सनत्कुमार बोले—इसके बाद उस शंखचूडने जैगीषव्य महर्षिके उपदेशसे ब्रह्माजीके पुष्कर-क्षेत्रमें प्रीतिपूर्वक बहुत कालपर्यन्त तप किया। उसने एकाग्रमन होकर इन्द्रियों तथा उनके विषयोंको जीतकर गुरुके द्वारा दी गयी ब्रह्मविद्याका जप करना प्रारम्भ किया॥ १-२॥

इस प्रकार पुष्करमें तप करते हुए उस शंखचूड दानवको वर देनेके लिये लोकगुरु विभु ब्रह्मा शीघ्र वहाँ गये॥ ३॥

ब्रह्माने जब उस दानवेन्द्रसे कहा—'वर माँगो' तब वह उन्हें देखकर अत्यधिक विनम्र होकर श्रेष्ठ वाणीसे उनकी स्तुति करने लगा। उसके बाद उसने ब्रह्मासे वर माँगा कि देवगण मुझे जीत न सकें। तब ब्रह्माजीने प्रसन्न मनसे उससे कहा कि ऐसा ही होगा॥ ४-५॥

उन्होंने उस शंखचूडको जगत्के मंगलको भी मंगल बनानेवाला ('जगन्मंगलमंगल' नामक) और सर्वत्र विजय प्रदान करनेवाला दिव्य श्रीकृष्णकवच प्रदान किया॥ ६॥

'तुम बदरिकाश्रम चले जाओ और वहाँ तुलसीके साथ विवाह करो। वह पतिकी कामनासे वहींपर तप कर रही है। वह धर्मध्वजकी कन्या है'—इस प्रकार ब्रह्माजीने उससे कहा और उसके देखते-देखते शीघ्र ही उसी क्षण अन्तर्धान हो गये॥ ७-८॥

तदनन्तर तपस्यासे सिद्धि प्राप्तकर उस शंखचूडने वहीं पुष्करमें ही जगत्के परम कल्याणकारी उस कवचको गलेमें बाँध लिया। इसके बाद तपस्यासे सिद्ध मनोरथवाला प्रसन्नमुख वह शंखचूड ब्रह्माकी आज्ञासे शीघ्र ही बदरिकाश्रममें आया॥ ९-१०॥

वह दानव शंखचूड अपनी इच्छासे घूमते हुए वहाँ आ गया, जहाँ धर्मध्वजकी कन्या तुलसी तप कर रही थी। सुन्दर रूपवाली, मन्द-मन्द मुसकानवाली, सूक्ष्म कटिप्रदेशवाली तथा शुभ भूषणोंसे भूषित उसने उस श्रेष्ठ पुरुषको कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देखा॥ ११-१२॥

तब शंखचूड भी उस मनोहर, रम्य, सुशील, सुन्दरी एवं सतीको देखकर उसके समीप स्थित हो गया और मधुर वाणीमें उससे कहने लगा—॥ १३॥

शंखचूड बोला—[हे देवि!] तुम कौन हो, किसकी कन्या हो, तुम यहाँ क्या कर रही हो और मौन होकर यहाँ क्यों बैठी हो? तुम मुझे अपना दास समझकर सम्भाषण करो॥ १४॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकारका वचन सुनकर उस तुलसीने सकामभावसे उससे कहा—॥ १५॥

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वजकी कन्या हूँ और इस तपोवनमें तपस्या करती हूँ। तुम कौन हो? सुखपूर्वक यहाँसे चले जाओ॥ १६॥

नारीजाति ब्रह्मा आदिको भी मोह लेनेवाली, विषके समान, निन्दनीय, दूषित करनेवाली, मायारूपिणी तथा ज्ञानियोंके लिये शृंखलाके समान होती है॥ १७॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उससे मधुर वचन बोलकर तुलसी चुप हो गयी। तब मन्द-मन्द मुसकानवाली उस तुलसीकी ओर देखकर वह भी कहने लगा—॥ १८॥

शंखचूड बोला—हे देवि! तुमने जो कहा है, वह

सब झूठ नहीं है, उसमें कुछ सत्य है और कुछ झूठ भी है, अब कुछ मुझसे सुनो॥ १९॥

संसारमें जितनी भी पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, उनमें तुम अग्रगण्य हो। मैं पापदृष्टिवाला और कामी नहीं हूँ, उसी प्रकार तुम भी वैसी नहीं हो, मेरी तो ऐसी ही बुद्धि है॥ २०॥

हे शोभने! मैं इस समय ब्रह्माजीकी आज्ञासे तुम्हारे पास आया हूँ और गान्धर्व विवाहके द्वारा तुम्हें ग्रहण करूँगा। हे देवि! मैं देवताओंको भगा देनेवाला शंखचूड नामक दैत्य हूँ। हे भद्रे! क्या तुम मुझे नहीं जानती और क्या तुमने मेरा नाम कभी नहीं सुना है?॥ २१-२२॥

मैं विशेष करके दनुके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ और दम्भका पुत्र शंखचूड नामक दानव हूँ। मैं पूर्व समयमें श्रीकृष्णका पार्षद सुदामा नामक गोप था॥ २३॥

राधिकाके शापसे मैं इस समय दैत्यराज हूँ। मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण है, मैं श्रीकृष्णके प्रभावसे सब कुछ जानता हूँ॥ २४॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहकर शंखचूड चुप हो गया। तब दानवेन्द्रके द्वारा आदरपूर्वक सत्य वचन कहे जानेपर वह तुलसी सन्तुष्ट हो गयी और मन्द-मन्द मुसकराती हुई कहने लगी॥ २५॥

तुलसी बोली—आपने अपने सात्त्विक विचारसे इस समय मुझे पराजित कर दिया है। संसारमें वह पुरुष धन्य है, जो स्त्रीसे पराजित नहीं होता॥ २६॥

जिस पुरुषको स्त्रीने जीत लिया, वह सत्कर्ममें निरत होनेपर भी नित्य अपवित्र है, देवता, पितर तथा मनुष्य सभी लोग उसकी निन्दा करते हैं॥ २७॥

जनन एवं मरणके सूतकमें ब्राह्मण दस दिनमें शुद्ध होता है, क्षत्रिय बारह दिनमें, वैश्य पन्द्रह दिनमें और शूद्र एक महीनेमें शुद्ध होता है—ऐसी वेदकी आज्ञा है, परंतु स्त्रीके द्वारा विजित पुरुष बिना चितादाह हुए कभी भी शुद्ध नहीं होता॥ २८-२९॥

उसके तर्पणका जल एवं पिण्ड भी पितरलोग इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते और देवता उसके द्वारा दिये गये पुष्प, फल आदिको ग्रहण नहीं करते हैं। उसके ज्ञान, श्रेष्ठ तप, जप, होम, पूजन, विद्या एवं दानसे क्या लाभ है, जिसके मनको स्त्रियोंने हर लिया हो?॥ ३०-३१॥

मैंने आपकी विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही आपकी परीक्षा ली है; क्योंकि स्वामीकी परीक्षा करके ही स्त्रीको अपने पतिका वरण करना चाहिये॥ ३२॥

सनत्कुमार बोले—अभी तुलसी इस प्रकार कह ही रही थी कि जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी वहाँ आ गये और यह वचन कहने लगे—॥ ३३॥

ब्रह्माजी बोले—हे शंखचूड! तुम इसके साथ क्या संवाद कर रहे हो? गान्धर्वविवाहके द्वारा तुम इसको ग्रहण करो॥ ३४॥

तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह सती भी स्त्रियोंमें रत्न है। चतुरोंके साथ चतुरका संगम गुणयुक्त होता है॥ ३५॥

हे राजन्! यदि विरोधके बिना ही दुर्लभ सुख प्राप्त होता हो तो ऐसा कौन है, जो उसका त्याग करेगा? जो निर्विरोध सुखका त्याग करनेवाला है, वह पशु है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६॥

हे सति! तुम देवताओं, असुरों तथा दानवोंका मर्दन करनेवाले इस प्रकारके गुणवान् पतिकी परीक्षा क्यों करती हो?॥ ३७॥

हे सुन्दरि! तुम इसके साथ सभी लोकोंमें स्थान-स्थानपर चिरकालतक सर्वदा अपनी इच्छाके अनुसार विहार करो॥ ३८॥

अन्तमें वह गोलोकमें श्रीकृष्णको पुनः प्राप्त करेगा और उसके मर जानेपर तुम भी वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीकृष्णको प्राप्त करोगी॥ ३९॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार यह आशीर्वाद देकर ब्रह्मा अपने लोकको चले गये और उस दानवने गान्धर्वविवाहके द्वारा उसे ग्रहण किया॥ ४०॥

इस प्रकार तुलसीसे विवाहकर वह अपने पिताके घर चला गया और अपने मनोहर भवनमें उस सुन्दरीके साथ रमण करने लगा॥ ४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडकी तपस्या तथा विवाहका वर्णन नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

शंखचूडका राज्यपदपर अभिषेक, उसके द्वारा देवोंपर विजय, दुखी देवोंका ब्रह्माजीके साथ वैकुण्ठगमन, विष्णुद्वारा शंखचूडके पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना और विष्णु तथा ब्रह्माका शिवलोक-गमन

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] तपस्या करके वर प्राप्त करनेके उपरान्त विवाह किये हुए उस शंखचूडके घर आनेपर दानव आदि अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ १॥

अपने लोकसे शीघ्र निकलकर सभी असुर एकत्रित हो अपने गुरु शुक्राचार्यको साथ लेकर उसके पास आये और विनयपूर्वक उसे प्रणाम करके आदरपूर्वक उसकी स्तुति करते हुए उसको समर्थ एवं तेजस्वी मानकर प्रसन्नतापूर्वक वहींपर स्थित हो गये। दम्भके पुत्र शंखचूडने भी अपने घर आये हुए उन कुलगुरुको देखकर बड़े आदरसे महाभक्तिपूर्वक उन्हें साष्टांग प्रणाम किया॥ २—४॥

तत्पश्चात् दैत्योंके कुलाचार्य शुक्रने उसे देखकर उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया और देवताओं तथा दानवोंका वृत्तान्त उससे कहा। उन्होंने देव-दानवके स्वाभाविक वैर, देवताओंकी विजय, असुरोंकी पराजय तथा बृहस्पतिके द्वारा देवताओंकी सहायताका वर्णन किया॥ ५-६॥

इसके बाद गुरु शुक्राचार्यने सभी दैत्योंकी सम्मति लेकर दानवों एवं असुरोंका अधिपति बनाकर उसे राज्यपदपर अभिषिक्त किया। उस समय प्रसन्न मनवाले असुरोंका महान् उत्सव हुआ। उन सभीने प्रेमपूर्वक उस शंखचूडको नाना प्रकारकी भेंट अर्पण की॥ ७-८॥

वह वीर तथा महाप्रतापी दम्भपुत्र शंखचूड राज्यपदपर अभिषिक्त होकर अत्यन्त शोभित होने लगा। वह दैत्यों, दानवों एवं राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना लेकर रथपर आरूढ़ होकर इन्द्रपुरीको जीतनेके लिये वेगपूर्वक चल पड़ा। उस समय [विजययात्राके लिये] जाता हुआ वह दानवेन्द्र उन दैत्योंके बीच ताराओंके मध्यमें चन्द्रमाकी भाँति तथा ग्रहोंके मध्यमें ग्रहराज सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था। शंखचूडको आता हुआ सुनकर उससे युद्ध करनेके लिये देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंके साथ उद्यत हो गये॥ ९—१२॥

उस समय देवता और असुरोंमें रोमांचकारी घोर युद्ध छिड़ गया, जो वीरोंको आनन्द देनेवाला तथा कायरोंको भय देनेवाला था। उस युद्धमें गरजते हुए वीरोंका महान् कोलाहल उत्पन्न हुआ और वीरताको बढ़ानेवाली वाद्यध्वनि होने लगी। अति बलवान् देवगण क्रुद्ध होकर असुरोंके साथ युद्ध करने लगे। असुर पराजित हुए और भयके कारण भागने लगे। उन्हें भागते देखकर दैत्यराज शंखचूड सिंहनादके समान गर्जना करके देवताओंके साथ स्वयं युद्ध करने लगा॥ १३—१६॥

वह बड़े वेगसे सहसा देवताओंको नष्ट करने लगा, कोई भी देवता उसके तेजको न सह सके और भागने लगे। वे दीन होकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें जहाँ-तहाँ छिप गये और कुछ देवताओंने स्वतन्त्र न रहकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली तथा सगरपुत्रोंके समान प्रभाहीन हो गये॥ १७-१८॥

इस प्रकार वीर तथा प्रतापशाली दम्भपुत्र दानवेन्द्र शंखचूडने सारे लोकोंको जीतकर समस्त देवताओंका अधिकार हरण कर लिया। उसने तीनों लोकोंको तथा सम्पूर्ण यज्ञभागोंको अपने वशमें कर लिया, वह स्वयं इन्द्र बन गया और सारे जगत्पर शासन करने लगा॥ १९-२०॥

उसने अपनी शक्तिसे कुबेर, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, यम तथा वायुका अधिकार छीन लिया। वह महान् वीर तथा महाबली शंखचूड देव, असुर, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, किन्नर, मनुष्य तथा अन्य सभी लोगों तथा तीनों लोकोंका अधिपति बन गया॥ २१—२३॥

इस प्रकार राजाओंके भी राजा उस महान् शंखचूडने बहुत वर्षपर्यन्त सभी भुवनोंपर राज्य किया॥ २४॥

उसके राज्यमें दुर्भिक्ष, महामारी, अशुभ ग्रह, आधि, व्याधि—ये नहीं थे, सभी प्रजाएँ सर्वदा सुखी रहती थीं। पृथ्वी बिना जोते ही नाना प्रकारके धान्य उत्पन्न करती थी। फलों तथा रसोंसे युक्त नाना प्रकारकी औषधियाँ सर्वदा उत्पन्न होती थीं। खानोंसे मणियाँ तथा समुद्रसे रत्न निरन्तर

निकलते थे। वृक्ष सदैव फल-फूलसे हरे-भरे रहते थे और नदियाँ मधुर जल बहाती रहती थीं॥ २५—२७॥

[उस समय] देवताओंको छोड़कर सारे जीव सुखी तथा विकाररहित थे। चारों वर्ण एवं आश्रमके सभी लोग अपने-अपने धर्ममें स्थित थे॥ २८॥

इस प्रकार उसके शासनकालमें कोई भी दुखी नहीं था, भ्रातृ-वैरको लेकर केवल देवता ही दुखी थे॥ २९॥

वह महाबली शंखचूड गोलोकवासी श्रीकृष्णका परम सखा था, साधुस्वभाववाला वह श्रीकृष्णकी भक्तिमें सदा निरत रहता था। हे मुने! वह तो पूर्वजन्मके शापके प्रभावसे दानवयोनिको प्राप्त हुआ था, दानवकुलमें जन्म होनेपर भी वह दानवोंकी-सी बुद्धिवाला नहीं था॥ ३०-३१॥

हे तात! तत्पश्चात् राज्यसे वंचित तथा पराजित सभी देवता आपसमें मन्त्रणाकर और ऋषियोंको साथ लेकर ब्रह्माकी सभामें गये। उन्होंने वहाँ ब्रह्माजीको देखकर उन्हें प्रणामकर तथा विशेषरूपसे उनकी स्तुति करके व्याकुल होकर ब्रह्माजीसे सारा वृत्तान्त निवेदन किया॥ ३२-३३॥

तदनन्तर ब्रह्मा उन सभी देवताओं एवं मुनियोंको सान्त्वना देकर उनके साथ सज्जनोंको सुख देनेवाले वैकुण्ठलोक गये। ब्रह्माने देवगणोंके साथ वहाँ जाकर किरीट-कुण्डलधारी, वनमालासे विभूषित, शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए, चतुर्भुज, पीतवस्त्रधारी तथा सनन्दन आदि सिद्धोंसे सेवित लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुको देखा। मुनीश्वरोंसहित ब्रह्मा आदि सभी देवता विभु विष्णुको देखकर उन्हें प्रणाम करके भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे—॥ ३४—३७॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे वैकुण्ठाधिपति! हे प्रभो! हे त्रिजगद्गुरो! हे श्रीहरे! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये। हे त्रिलोकेश! हे अच्युत! हे प्रभो! हे लक्ष्मीनिवास! हे गोविन्द! आप ही संसारके रक्षक हैं। हे भक्तप्राण! आपको नमस्कार है॥ ३८-३९॥

इस प्रकार स्तुतिकर सभी देवता नारायणके आगे रुदन करने लगे। यह सुनकर भगवान् विष्णुने ब्रह्मासे यह कहा—॥ ४०॥

विष्णु बोले—[हे ब्रह्मन्!] योगियोंके लिये भी दुर्लभ इस वैकुण्ठमें आप किस उद्देश्यसे आये हैं, आपको कौन-सा कष्ट आ पड़ा है? उसे आप मेरे सामने कहिये॥ ४१॥

सनत्कुमार बोले—नारायणका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने बारंबार उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर बड़े विनयके साथ सिर झुकाकर शंखचूडके द्वारा देवताओंको दिये गये दुःखसे सम्बन्धित सारा वृत्तान्त परमात्मा विष्णुके सामने कह सुनाया॥ ४२-४३॥

तब सब प्रकारसे सबके भावोंको जाननेवाले भगवान् विष्णु उनका वचन सुनकर हँस करके ब्रह्माजीसे उसका रहस्य इस प्रकार कहने लगे—॥ ४४॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मदेव! मैं पूर्वजन्मके अपने परम भक्त महातेजस्वी गोप शंखचूडका सारा वृत्तान्त जानता हूँ॥ ४५॥

आप उसका प्राचीन इतिहासयुक्त वृत्तान्त सुनिये, इसमें सन्देह न कीजिये, शंकरजी मंगल करेंगे॥ ४६॥

जिनका परात्पर शिवलोक सभी लोकोंके ऊपर स्थित है, जहाँ शंकरजी स्वयं परब्रह्म परमेश्वरके रूपमें विराजमान हैं, तीनों शक्तियोंको धारण करनेवाले जो प्रकृति एवं पुरुषके भी अधिष्ठाता हैं, जो निर्गुण, सगुण तथा परम ज्योतिःस्वरूप हैं और हे ब्रह्मन्! सृष्टि आदिके करनेवाले तथा सत्त्व आदि गुणोंसे युक्त विष्णु, ब्रह्मा एवं महेश्वर नामक तीन देव जिनके अंगसे उत्पन्न हुए हैं, मायासे सर्वथा मुक्त एवं नित्यानित्यके व्यवस्थापक वे ही परमात्मा उमाके साथ जहाँ विहार करते हैं, उसीके समीप गोलोक है और वहीं शिवजीकी गोशाला है, उन्हींकी इच्छासे वहाँपर मेरे स्वरूपमें स्थित श्रीकृष्ण निवास करते हैं॥ ४७—५१॥

शंकरने अपनी गौओंकी रक्षाके लिये उन श्रीकृष्णको नियुक्त किया है। वे भी गौओंकी रक्षासे सुखी होकर विहार करते हुए वहाँ क्रीड़ा करते हैं॥ ५२॥

प्रकृतिकी पाँचवीं परम मूर्ति जगदम्बा राधा, जो उनकी स्त्री कही गयी हैं, वे भी वहाँ निवास करती हैं॥ ५३॥

वहींपर उनके अंगसे उत्पन्न हुए अनेक गोप एवं गोपियाँ हैं, जो उन राधा-कृष्णके अनुवर्ती रहकर सदा विहार करते हैं। उन्हींमेंसे यह गोप (शंखचूड) शंकरकी इस लीलासे मोहित होकर राधाके शापसे दुःखदायी

दानवी योनिको व्यर्थ ही प्राप्त हो गया है ॥ ५४-५५ ॥

श्रीकृष्णने उसकी मृत्यु रुद्रके त्रिशूलसे पहले ही निश्चित की है, उसके बाद वह अपने देहका त्यागकर श्रीकृष्णका पार्षद होगा। हे देवेश! ऐसा जानकर आप भय मत कीजिये, शंकरकी शरणमें जाइये, वे शीघ्र कल्याण करेंगे। मैं, आप एवं सभी देवता भयरहित होकर यहाँ निवास करें ॥ ५६—५८ ॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर विष्णुजी भक्तवत्सल सर्वेश शिवका मनसे स्मरण करते हुए ब्रह्माजीके साथ शिवलोक गये ॥ ५९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधोपाख्यानमें शंखचूडराज्य-करणवर्णनपूर्वक उसका पूर्वभववृत्तचरित्रवर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २९ ॥

तीसवाँ अध्याय

ब्रह्मा तथा विष्णुका शिवलोक पहुँचना, शिवलोककी तथा शिवसभाकी शोभाका वर्णन, शिवसभाके मध्य उन्हें अम्बासहित भगवान् शिवके दिव्यस्वरूपका दर्शन और शंखचूडसे प्राप्त कष्टोंसे मुक्तिके लिये प्रार्थना

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! उस समय ब्रह्मासहित भगवान् विष्णु अत्यन्त दिव्य, निराधार एवं अभौतिक शिवलोक पहुँचकर आनन्दित तथा प्रसन्नमुख होकर भीतर गये, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित, महोज्ज्वल और शोभासे युक्त था ॥ १-२ ॥

उन्होंने गणोंसे सेवित, अद्भुत, अत्यन्त ऊँचे, परम सुन्दर और अत्यधिक शोभासम्पन्न पहले द्वारपर आकर श्वेत वस्त्रोंसे सुशोभित, रत्नमय आभूषणोंसे भूषित, रत्नके सिंहासनपर स्थित, पाँच मुख तथा तीन नेत्रवाले, गौर तथा सुन्दर शरीरवाले, त्रिशूल आदि धारण किये हुए और भस्म तथा रुद्राक्षसे सुशोभित महावीर द्वारपालोंको देखा। तब ब्रह्माके सहित विष्णुने बड़ी विनम्रताके साथ उन्हें प्रणाम करके प्रभुदर्शनके निमित्त सारा वृत्तान्त बताया ॥ ३—६ ॥

तब उन्होंने आज्ञा प्रदान की और वे उनकी आज्ञासे प्रविष्ट हुए। दूसरा द्वार भी परम मनोहर, विचित्र तथा अत्यन्त प्रभायुक्त था। प्रभुके पास जानेके लिये उन्होंने वहाँके द्वारपालसे वृत्तान्त निवेदित किया और उस द्वारपालसे आज्ञा प्राप्तकर वे अन्य द्वारमें प्रविष्ट हुए ॥ ७-८ ॥

इस प्रकार पन्द्रह द्वारोंमें क्रमसे प्रवेश करके वे पद्मयोनि एक विशाल द्वारपर पहुँचे और उन्होंने वहाँ नन्दीको देखा। उन्हें भलीभाँति नमस्कारकर तथा उनकी स्तुति करके विष्णुजीने पूर्वकी भाँति उन नन्दीसे आज्ञा प्राप्तकर धीरेसे प्रसन्नतापूर्वक भीतर प्रवेश किया ॥ ९-१० ॥

वहाँ पहुँचकर उन लोगोंने शिवजीकी उच्च महासभा देखी, जो महाप्रभासे युक्त सुन्दर शरीरवाले, शिवके स्वरूपवाले, शुभ कान्तिवाले, दस भुजाओंवाले, पाँच मुखोंवाले, तीन नेत्रोंवाले, नीले कण्ठवाले, परम कान्तिसे युक्त, रत्नमय रुद्राक्षों तथा भस्मरूप आभरणोंसे भूषित पार्षदोंसे घिरी हुई थी। वह सभा उदीयमान चन्द्रमण्डलके आकारवाली, चौकोर, मनोहर, श्रेष्ठ मणियोंके हारसे युक्त एवं उत्तम हीरोंसे सुशोभित, अमूल्य रत्नोंसे रचित, पद्मपत्रोंसे शोभित, मणियोंके समूहोंकी मालाओंसे सुशोभित, अनेक प्रकारके चित्रोंसे चित्रित तथा शंकरजीके इच्छानुसार पद्मरागकी श्रेष्ठ मणियोंद्वारा विरचित थी ॥ ११—१५ ॥

उस सभामें स्वर्णके सूत्रोंसे पिरोये हुए अत्यन्त मनोहर चन्दन वृक्षके पत्तोंके बन्दनवार थे तथा उसमें स्यमन्तक मणिनिर्मित सैकड़ों सोपान बने हुए थे। उस सभामें इन्द्रनीलमणिके खम्भे लगे हुए थे और वह अत्यन्त मनोहर, सुसंस्कृत तथा सुगन्धित वायुसे सुवासित थी। उसकी चौड़ाई हजारों योजन थी और वह अनेक सेवकोंसे परिपूर्ण थी। सुरेश्वर विष्णुने उस सभामें अम्बा पार्वतीसहित भगवान् शंकरको देखा ॥ १६—१८ ॥

उस सभाके बीचमें अमूल्य रत्ननिर्मित विचित्र सिंहासनपर बैठे हुए शिवजी ताराओंके बीच चन्द्रमाकी की भाँति सुशोभित हो रहे थे। वे किरीट, कुण्डल एवं रत्नोंकी मालासे सुशोभित थे, सभी अंगोंमें भस्म लगाये

हुए थे तथा हाथोंमें लीलाकमल धारण किये हुए थे। वे अपने आगे होनेवाले गीत एवं नृत्यको बड़ी प्रसन्नताके साथ मुसकराते हुए देख रहे थे। वे उमापति शान्त, प्रसन्नमन तथा महान् उल्लाससे युक्त थे और भगवतीके द्वारा दिये गये सुगन्धित ताम्बूलका सेवन कर रहे थे। गणलोग परम भक्तिसे श्वेत चँवर डुला रहे थे और सिद्धगण भक्तिसे सिर झुकाये चारों ओरसे उनकी स्तुति कर रहे थे। उन गुणातीत, परमेश्वर, तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, निराकार, निर्विकल्प, अपनी इच्छासे सगुण रूप धारण करनेवाले, मायारहित, अजन्मा, आदिदेव, मायाधीश, परात्पर, प्रकृति एवं पुरुषसे भी परे, विशिष्ट, परिपूर्णतम, समभाववाले अपने प्रभु शिवको देखकर ब्रह्मा एवं विष्णु हाथ जोड़कर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे— ॥ १९—२६ ॥

विष्णु और ब्रह्मा बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे परब्रह्म! हे अखिलेश्वर! हे त्रिगुणातीत! हे निर्व्यग्र! हे त्रिदेवजनक! हे प्रभो! हम आपकी शरणमें आये हैं। हे विभो! हे परमेश्वर! शंखचूडके द्वारा पीड़ित तथा सन्तप्त किये गये हम दुखित तथा अनाथोंकी रक्षा कीजिये ॥ २७-२८ ॥

यह गोलोक, जिसकी स्थिति आपके ही द्वारा है, उस गोलोकके अधिष्ठाता आपने श्रीकृष्णको नियुक्त किया है। उनका श्रेष्ठ पार्षद सुदामा प्रारब्धवश राधिकाके शापसे शंखचूड नामक दानवके रूपमें उत्पन्न हुआ है। हे शम्भो! उसने हमलोगोंको नाना प्रकारकी यातनाएँ देकर [स्वर्गलोकसे] निकाल दिया है, अपने अधिकारोंसे वंचित देवतालोग पृथ्वीपर घूम रहे हैं ॥ २९—३१ ॥

हे महेशान! आपके बिना वह अन्य देवताओंसे नहीं मारा जा सकता, अतः आप उसका वध कीजिये और सभी लोकोंको सुखी बनाइये। [हे प्रभो!] आप ही निर्गुण, सत्य, अनन्त एवं अनन्त पराक्रमवाले हैं। आप सगुण, प्रकृति एवं पुरुषसे परे तथा सर्वत्र व्यापक हैं ॥ ३२-३३ ॥

हे प्रभो! आप सृष्टिकालमें रजोगुणसे ब्रह्माके रूपमें सृष्टि करते हैं एवं पालनकालमें सत्त्वगुणसे युक्त हो विष्णुके रूपमें जगत्‌का पालन करते हैं, प्रलयकालमें तमोगुणसे युक्त हो रुद्रके रूपमें इस जगत्‌का संहार करते हैं एवं त्रिगुणसे परे चौथे शिव नामक ज्योतिःस्वरूप भी आप ही हैं। आप अपनी दीक्षासे गोलोकमें गायोंका पालन करते हैं तथा आपकी गोशालामें श्रीकृष्ण दिन-रात क्रीड़ा करते रहते हैं। आप सबके कारण तथा स्वामी हैं और आप ही ब्रह्मा, विष्णु तथा ईश्वर हैं, आप निर्विकारी, सदा साक्षी, परमात्मा एवं परमेश्वर हैं ॥ ३४—३७ ॥

आप दीनों एवं अनाथोंके सहायक हैं, दीनोंके रक्षक, दीनबन्धु, त्रिलोकेश एवं शरणागतवत्सल हैं ॥ ३८ ॥

हे गौरीश! हे परमेश्वर! आप प्रसन्न हो जाइये और हमलोगोंका उद्धार कीजिये। हे नाथ! हमलोग आपके अधीन हैं, अतः जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये ॥ ३९ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! इस प्रकार कहकर वे दोनों देवता—ब्रह्मा एवं विष्णु विनम्र होकर हाथ जोड़कर शिवको नमस्कार करके मौन हो गये ॥ ४० ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत देवदेवस्तुतिवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३० ॥

इकतीसवाँ अध्याय

शिवद्वारा ब्रह्मा-विष्णुको शंखचूडका पूर्ववृत्तान्त बताना और देवोंको शंखचूडवधका आश्वासन देना

सनत्कुमार बोले—अत्यन्त दीन ब्रह्मा तथा विष्णुजीका वचन सुनकर शंकरजी हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे— ॥ १ ॥

शिवजी बोले—हे हरे! हे वत्स! हे ब्रह्मन्! आप दोनों शंखचूडसे उत्पन्न भयका पूर्णरूपसे त्याग कर दीजिये, आप लोगोंका निःसन्देह कल्याण होगा। हे प्रभो! शंखचूडका सारा वृत्तान्त मैं जानता हूँ, वह पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णका परम भक्त सुदामा नामका गोप था ॥ २-३ ॥

मेरी आज्ञासे ही विष्णु श्रीकृष्णका रूप धारण करके मेरे द्वारा अधिष्ठित रम्य गोलोककी गोशालामें निवास करते हैं ॥ ४ ॥

'मैं स्वतन्त्र हूँ' अपनेको ऐसा समझकर वे पहले मोहको प्राप्त हुए और इस प्रकार मोहित होकर स्वच्छन्दकी भाँति नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करने लगे ॥ ५ ॥

तब मैंने उन्हें अपनी मायासे मोहित कर दिया, जिससे उनकी सद्बुद्धि नष्ट हो गयी और उनसे उस सुदामाको शाप दिला दिया। इस प्रकार अपनी लीला करके मैंने [अपनी] माया हटा ली। तब मोहसे मुक्त हो जानेके कारण वे ज्ञानयुक्त तथा सद्बुद्धियुक्त हो गये ॥ ६-७ ॥

तब वे मेरे समीप आये और दीन होकर मुझे प्रणामकर हाथ जोड़कर विनम्र भावसे भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करने लगे। तब लज्जासे युक्त मनवाले उन सभीने सारा वृत्तान्त कहा और दीन होकर 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—मेरे सामने ऐसा वचन कहने लगे ॥ ८-९ ॥

तब उनसे सन्तुष्ट होकर मैंने यह वचन कहा—हे कृष्ण! आप सभी मेरी आज्ञासे भयका त्याग कर दीजिये। मैं आपलोगोंका सदा रक्षक हूँ। मेरे प्रसन्न रहनेसे आपलोगोंका कल्याण होगा। यह सब मेरी इच्छासे हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है। [हे कृष्ण!] आप इन राधा एवं पार्षदके साथ अपने स्थानको जाइये। यह [सुदामा] इस भारतवर्षमें दानवके रूपमें जन्म लेगा, इसमें सन्देह नहीं है। समय आनेपर मैं आप दोनोंके शापका उद्धार करूँगा ॥ १०—१२१/२ ॥

तब बुद्धिमान् श्रीकृष्ण मेरे वचनको शिरोधार्य करके राधाके साथ बड़ी प्रसन्नतासे अपने स्थानको चले गये और वे दोनों ही भयपूर्वक मेरी आराधना करते हुए वहाँ निवास करने लगे ॥ १३-१४ ॥

उस समय उन्हें ज्ञान हुआ कि यह सारा जगत् मेरे (शंकरके) अधीन है और मैं श्रीकृष्ण सर्वथा पराधीन हूँ। वह सुदामा राधाके शापसे शंखचूड नामक दानवेन्द्र हुआ, जो धर्ममें निपुण होकर भी देवद्रोही है और वह दुर्बुद्धि अपने बलसे सभी देवगणोंको सदा पीड़ा पहुँचा रहा है। मेरी मायासे मोहित होनेके कारण उसे दुष्ट मन्त्रियोंकी सहायता भी प्राप्त हो रही है। अतः मुझ शासकके रहते आपलोग शीघ्र ही उसके भयका त्याग कर दीजिये ॥ १५—१७ ॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! अभी जब शिवजी ब्रह्मा एवं विष्णुके सामने इस प्रकारकी कथा कह ही रहे थे कि इतनेमें जो अन्य घटना घटी, उसे आप सुनिये। उसी समय श्रीकृष्ण राधिका, अन्य पार्षद एवं गोपोंके साथ प्रभु शंकरको अनुकूल करनेके लिये वहाँ आ गये। वे सद्भक्तिपूर्वक शंकरजीको प्रणाम करके विष्णुसे आदरपूर्वक मिलकर ब्रह्माकी सलाह मानकर शिवकी आज्ञासे प्रेमपूर्वक उनके समीप बैठ गये ॥ १८—२० ॥

इसके बाद शिवजीको पुनः प्रणामकर मोहनिर्मुक्त श्रीकृष्णजी शिवतत्त्वको जानकर हाथ जोड़े हुए उनकी स्तुति करने लगे— ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे परब्रह्म! हे सत्पुरुषोंकी गति! हे परमेश्वर! मेरा अपराध क्षमा कीजिये और मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे शर्व! सब कुछ आपसे ही उत्पन्न होता है और हे महेश्वर! सब कुछ आपमें ही स्थित है। हे सर्वाधीश! सब कुछ आप ही हैं, अतः हे परमेश्वर! आप प्रसन्न होइये ॥ २२-२३ ॥

आप ही साक्षात् परम ज्योति, सर्वव्यापी एवं सनातन हैं। हे गौरीश! आपके नाथ होनेसे हम सभी सनाथ हैं ॥ २४ ॥

मोहमें पड़ा हुआ मैं अपनेको सर्वोपरि मानकर विहार करता रहा, जिसका फल मुझे यह मिला कि मैं शापग्रस्त हो गया और हे स्वामिन्! जो सुदामा नामक मेरा श्रेष्ठ पार्षद है, वह राधाके शापसे दानवी योनिको प्राप्त हो गया है। हे दुर्गेश! हे परमेश्वर! आप हमलोगोंका उद्धार कीजिये और प्रसन्न हो जाइये, शापसे उद्धार कीजिये और हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये। इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण राधाके सहित मौन हो गये। तब शरणागतवत्सल शिव उनपर प्रसन्न हो गये ॥ २५—२८ ॥

श्रीशिव बोले—हे कृष्ण! हे गोपिकानाथ! आप भयका त्याग कीजिये और सुखी हो जाइये। हे तात! मैंने ही अनुग्रह करते हुए यह सब किया है ॥ २९ ॥

आपका कल्याण होगा। अब आप अपने उत्तम स्थानको जाइये और सावधानीपूर्वक अपने अधिकारका पालन कीजिये। मुझको परात्पर जानकर इच्छानुसार

विहार कीजिये और निर्भय होकर राधा तथा पार्षदोंके साथ अपना कार्य कीजिये ॥ ३०-३१ ॥

उत्तम वाराहकल्पमें युवती राधाके साथ शापका फल भोगकर वह पुनः अपने लोकको प्राप्त करेगा ॥ ३२ ॥

हे कृष्ण! आपका अत्यन्त प्रिय पार्षद जो सुदामा था, वही इस समय दानवी योनिमें जन्म ग्रहण करके सारे जगत्‌को क्लेश दे रहा है, यह शंखचूड नामक दानव राधाके शापके प्रभावसे ही देवशत्रु, दैत्योंका पक्ष लेनेवाला और देवताओंसे द्रोह करनेवाला हो गया है ॥ ३३-३४ ॥

उसने इन्द्रसहित सभी देवताओंको पीड़ा देकर निकाल दिया है, जिससे वे देवता अधिकारविहीन एवं व्याकुल होकर दसों दिशाओंमें भटक रहे हैं ॥ ३५ ॥

उसीके वधके निमित्त ये ब्रह्मा तथा विष्णु मेरी शरणमें यहाँ आये हैं, मैं इनका दुःख दूर करूँगा, इसमें संशय नहीं है ॥ ३६ ॥

सनत्कुमार बोले— [हे व्यास!] श्रीकृष्णसे इतना कहकर भगवान् शंकर ब्रह्मा तथा विष्णुको सम्बोधित करके आदरपूर्वक क्लेशनाशक वचन पुनः कहने लगे— ॥ ३७ ॥

शिवजी बोले— हे विष्णो! हे ब्रह्मन्! आप दोनों मेरी बात सुनिये। देवताओंको भयरहित करनेके लिये शीघ्र ही आप दोनों कैलासपर्वतपर जायँ, जहाँ मेरे पूर्ण रूप रुद्रका निवास है। मैंने ही देवताओंका कार्य करनेके लिये पृथक् रूपको धारण किया है ॥ ३८-३९ ॥

हे हरे! परिपूर्णतम एवं भक्तपराधीन मुझ प्रभुका ही वह रुद्ररूप देवताओंके कार्यके लिये कैलासपर्वतपर विराजमान है। मुझमें एवं आपमें कोई भेद नहीं है। मेरा वह रुद्ररूप आप दोनोंका, चराचर जगत्‌का, सभी देवताओं एवं मुनियोंका सर्वदा सेव्य है ॥ ४०-४१ ॥

जो मनुष्य हम दोनोंमें भेद रखेगा, वह नरकगामी होगा और वह इस लोकमें पुत्र-पौत्रादिसे रहित होकर नाना प्रकारका क्लेश प्राप्त करेगा। ऐसा कहते हुए गौरीपतिको बार-बार प्रणामकर श्रीकृष्ण राधा तथा गणोंके साथ अपने स्थानको चले गये ॥ ४२-४३ ॥

हे व्यासजी! इसी प्रकार वे ब्रह्मा तथा विष्णु भी सन्देहरहित हो शिवजीको बारंबार प्रणामकर आनन्दके साथ शीघ्र वैकुण्ठ चले गये ॥ ४४ ॥

वे ब्रह्मा तथा विष्णु वहाँ आकर सारा वृत्तान्त देवताओंसे कहकर तथा उन्हें साथ लेकर कैलासपर्वतपर गये ॥ ४५ ॥

दीनोंकी रक्षा करनेके लिये सगुण रूपसे शरीर धारण किये हुए देवाधिपति पार्वतीवल्लभ महेश्वर प्रभुको वहाँ देखकर सभी देवताओंने पूर्वकी भाँति हाथ जोड़कर विनयसे युक्त होकर सिर झुकाकर गद्‌गद वाणीसे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥ ४६-४७ ॥

देवता बोले— हे देवदेव! हे महादेव! हे गिरिजानाथ! हे शंकर! हम सभी देवता आपकी शरणमें आये हैं, भयसे व्याकुल देवताओंकी रक्षा कीजिये ॥ ४८ ॥

देवताओंको कष्ट देनेवाले दैत्यराज शंखचूडका वध कीजिये, उसने देवताओंको व्याकुल कर दिया है और युद्धमें पराजित कर दिया है। उसने देवताओंके समस्त अधिकार छीन लिये हैं, जिससे वे लोग मनुष्योंकी भाँति पृथ्वीपर भटक रहे हैं और उसके भयसे उनके लिये देवलोकका देखनातक दुर्लभ हो गया है ॥ ४९-५० ॥

अतः दीनोंका उद्धार करनेवाले हे कृपासिन्धो! इस संकटसे देवताओंका उद्धार कीजिये और उस दानवेन्द्रका वधकर इन्द्रको भयसे मुक्त कीजिये। देवताओंके इस वचनको सुनकर हँसते हुए भक्तवत्सल भगवान् शंकरने मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा— ॥ ५१-५२ ॥

श्रीशंकरजी बोले— हे विष्णो! हे ब्रह्मन्! हे देवगण! आपलोग अपने स्थानको जाइये, मैं सेनासहित उस शंखचूडका वध अवश्य करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५३ ॥

सनत्कुमार बोले— शंकरकी इस अमृततुल्य वाणीको सुनकर सभी देवता दैत्योंको मरा जानकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥ ५४ ॥

इसके बाद शंकरजीको प्रणामकर विष्णु वैकुण्ठलोक एवं ब्रह्मा सत्यलोक चले गये तथा देवगण अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ५५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत शिवोपदेशवर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

भगवान् शिवके द्वारा शंखचूडको समझानेके लिये गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त)-को दूतके रूपमें भेजना, शंखचूडद्वारा सन्देशकी अवहेलना और युद्ध करनेका अपना निश्चय बताना, पुष्पदन्तका वापस आकर सारा वृत्तान्त शिवसे निवेदित करना

सनत्कुमार बोले—तब दुष्टोंके लिये कालस्वरूप तथा सज्जनोंके रक्षक महारुद्र ईश्वरने देवताओंकी इच्छासे अपने मनमें शंखचूडके वधका निश्चय किया और गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त)-को अपना अभीष्ट दूत बनाकर शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक शंखचूडके समीप भेजा। तब सर्वेश्वरकी आज्ञासे वह दूत इन्द्रकी अमरावतीपुरीसे भी अधिक ऐश्वर्यसम्पन्न तथा कुबेरके भवनसे भी उत्कृष्ट भवनोंवाले उस दैत्येन्द्रके नगरमें गया॥ १—३॥

उसने वहाँ जाकर बारह दरवाजोंसे युक्त शंखचूडका भवन देखा, जहाँ प्रत्येक द्वारपर द्वारपाल नियुक्त थे॥ ४॥

उनको देखते हुए उस पुष्पदन्तने प्रधान द्वारको देखा और निर्भय हो वहाँके द्वारपालसे सारा वृत्तान्त निवेदन किया। तब अत्यन्त सुन्दर, रम्य, विस्तृत तथा भलीभाँति अलंकृत उस द्वारको पार करके वह प्रसन्नतापूर्वक भीतर गया। वहाँ जाकर उसने वीरोंके मण्डलमें विराजमान तथा रत्नसिंहासनपर बैठे हुए उस दानवाधिपति शंखचूडको देखा। उस समय वह तीन करोड़ दैत्यराजोंसे घिरा हुआ था तथा वे उसकी सेवा कर रहे थे और अन्य सौ करोड़ दानव हाथोंमें शस्त्र लेकर उसके चारों ओर पहरा दे रहे थे। इस प्रकार उसे देखकर पुष्पदन्तको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने शंकरके द्वारा कहे गये युद्धका सन्देश इस प्रकार कहा— ॥ ५—९॥

पुष्पदन्त बोला—हे राजेन्द्र! मैं शिवजीका पुष्पदन्त नामक दूत हूँ। हे प्रभो! शंकरने जो सन्देश भेजा है, उसे श्रवण कीजिये, मैं आपसे कह रहा हूँ॥ १०॥

शिवजी बोले—तुम सज्जन देवताओंका राज्य तथा उनका अधिकार इस समय लौटा दो, अन्यथा मुझे अपना शत्रु समझकर मेरे साथ युद्ध करो॥ ११॥

मैं सज्जनोंका रक्षक हूँ और देवतालोग मेरी शरणमें आये हैं, अत: मैं महारुद्र क्रुद्ध होनेपर नि:सन्देह तुम्हारा वध करूँगा॥ १२॥

मैं हर हूँ, मैंने सभी देवताओंको अभयदान दिया है। मैं शरणागतवत्सल हूँ और दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ॥ १३॥

हे दानवेन्द्र! तुम राज्य लौटाओगे अथवा युद्ध करोगे, विचार करके इन दोनोंमें एक तात्त्विक बात बताओ॥ १४॥

पुष्पदन्त बोला—हे दैत्यराज! शंकरने मुझसे जो कुछ कहा है, उसे मैंने तत्त्वत: आपसे निवेदन किया। शंकरजीका वचन कभी झूठा होनेवाला नहीं है। अब मैं शीघ्र ही अपने स्वामी सदाशिवके पास जाना चाहता हूँ। मैं जाकर शम्भुसे क्या कहूँगा, इसे मुझको तुम बताओ॥ १५-१६॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार श्रेष्ठ स्वामीवाले शिवदूत पुष्पदन्तकी बात सुनकर वह दानवेन्द्र हँसकर उससे कहने लगा— ॥ १७॥

शंखचूड बोला—मैं देवताओंको राज्य नहीं दूँगा। यह पृथ्वी वीरभोग्या है। हे रुद्र! देवताओंके पक्षमें रहनेवाले तुमसे मैं युद्ध करूँगा। जिस राजाके ऊपर शत्रुकी चढ़ाई हो जाती है, वह भुवनमें अधम वीर होता है। अत: हे रुद्र! मैं निश्चित रूपसे पहले तुम्हारे ऊपर चढ़ाई करूँगा॥ १८-१९॥

[हे दूत!] तुम जाओ और मेरा यह वचन रुद्रसे कह दो कि मैं वीरयात्राके विचारसे प्रात:काल आऊँगा॥ २०॥

शंखचूडका यह वचन सुनकर उस शिवदूतने हँस करके गर्वयुक्त उस दानवेन्द्रसे कहा— ॥ २१॥

पुष्पदन्त बोला—हे राजेन्द्र! तुम शिवजीके अन्य गणोंके सामने भी नहीं ठहर सकते, तब शिवजीके सम्मुख कैसे खड़े हो सकते हो?॥ २२॥

अत: तुम्हें उचित यही है कि देवताओंका समस्त अधिकार उन्हें प्रदान कर दो और यदि जीवित रहना चाहते हो, तो शीघ्र ही पातालमें चले जाओ। हे दानवश्रेष्ठ! तुम शंकरजीको सामान्य देवता मत समझो; शंकरजी सभी ईश्वरोंके ईश्वर तथा परमात्मा हैं॥ २३-२४॥

[हे दैत्येन्द्र!] प्रजापतियोंके सहित इन्द्रादि समस्त देवता, सिद्ध, मुनिगण तथा नागराज सभी सर्वदा उनकी आज्ञामें रहते हैं। वे विष्णु तथा ब्रह्माके स्वामी हैं और वे सगुण होकर भी निर्गुण हैं। जिनके भ्रुकुटीको टेढ़ा करनेमात्रसे सभीका प्रलय हो जाता है। शिवका यह पूर्णरूप लोकसंहारकारक है। वे सज्जनोंके रक्षक, दुष्टोंके हन्ता, निर्विकार तथा परसे भी परे हैं॥ २५—२७॥

वे महेश्वर ब्रह्मा तथा विष्णुके भी अधिपति हैं। हे दानवश्रेष्ठ! उनकी आज्ञाकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। हे राजेन्द्र! बहुत कहनेसे क्या लाभ? तुम मनसे विचार करके रुद्रको महेशान तथा चिदात्मक परब्रह्म जानो। अतः तुम देवताओंका राज्य तथा सम्पूर्ण अधिकार लौटा दो। हे तात! ऐसा करनेसे तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा भय होगा॥ २८—३०॥

सनत्कुमार बोले—दूतकी इस प्रकारकी बात सुनकर प्रतापी दानवेन्द्र शंखचूड भवितव्यसे मोहित होकर उस शिवदूतसे कहने लगा—॥ ३१॥

शंखचूड बोला—[हे दूत!] मैं यह सत्य कहता हूँ कि शिवसे बिना युद्धके स्वयं न तो देवताओंका राज्य दूँगा और न तो अधिकार ही दूँगा। इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को कालके अधीन जानना चाहिये। कालसे ही सब कुछ उत्पन्न होता है तथा कालसे ही विनष्ट भी हो जाता है। तुम रुद्र शंकरके पास जाओ और यथार्थ रूपसे मेरे द्वारा कही गयी बात कह दो, जैसा उचित हो, वे करें, तुम बहुत बातें मत करो॥ ३२—३४॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! इस प्रकार बात करके वह पुष्पदन्त नामका शिवदूत अपने स्वामीके पास चला गया और उसने सारा वृत्तान्त यथार्थरूपसे निवेदित किया॥ ३५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत दूतगमनवर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

शंखचूडसे युद्धके लिये अपने गणोंके साथ भगवान् शिवका प्रस्थान

सनत्कुमार बोले—तब उस दूतका वचन सुनकर देवाधिदेव भगवान् शंकर कुपित होकर वीरभद्रादि गणोंसे कहने लगे—॥ १॥

रुद्र बोले—हे वीरभद्र! हे नन्दिन्! हे क्षेत्रपालो! हे अष्टभैरव! समस्त बलशालीगण! तुम लोग मेरी आज्ञासे अपने-अपने शस्त्र लेकर युद्धके लिये तैयार हो जाओ और दोनों कुमारोंके साथ [युद्धके लिये] निकल पड़ो। ये भद्रकाली भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये चलें। मैं शंखचूड़का वध करनेके लिये अभी शीघ्र ही निकल रहा हूँ॥ २-३॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकारकी आज्ञा देकर शिवजी अपनी सेनाके साथ निकल पड़े और सभी वीरगण भी अत्यन्त हर्षित होकर उनके पीछे चल पड़े॥ ४॥

इसी बीच सभी सेनाओंके स्वामी कुमार कार्तिकेय तथा गणेशजी भी प्रसन्न होकर आयुधोंसे युक्त होकर शिवजीके समीप गये। वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्रक, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिल, दीर्घदंष्ट्र, विकर, ताम्रलोचन, कालंकर, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रण-श्लाघ्य, दुर्जय एवं दुर्गम इत्यादि गणेश्वर तथा श्रेष्ठ सेनापति भी शिवजीके साथ रणभूमिमें चले। अब मैं उनकी संख्या बता रहा हूँ, सावधानीपूर्वक सुनिये॥ ५—९॥

शत्रुओंका मर्दन करनेवाला शंखकर्ण एक करोड़ सेनाके साथ, केकराक्ष दस करोड़, विकृत आठ करोड़, विशाख चौंसठ करोड़, पारियात्रिक नौ करोड़, सर्वान्तक छः करोड़, श्रीमान् विकृतानन छः करोड़, गणोंमें श्रेष्ठ जालक बारह करोड़, समद सात करोड़, श्रीमान् दुन्दुभ आठ करोड़, करालाक्ष पाँच करोड़, श्रेष्ठ सन्दारक छः करोड़, कन्दुक तथा कुण्डक एक-एक करोड़, सभीमें श्रेष्ठ विष्टम्भ नामक गणेश्वर आठ करोड़, पिप्पल एवं सन्नाद हजार करोड़, आवेशन तथा चन्द्रतापन आठ-आठ करोड़ और गणेश्वर महाकेश सहस्र करोड़ गणोंसे

घिरा हुआ था॥ १०—१५॥

कुण्डी एवं पर्वतक बारह करोड़ वीरों, काल, कालक एवं महाकाल सौ करोड़, अग्निक सौ करोड़, अग्निमुख एक करोड़, आदित्य एवं घनावह आधा-आधा करोड़, सन्नाह तथा कुमुद सौ करोड़, अमोघ, कोकिल एवं सुमन्त्रक सौ-सौ करोड़, काकपाद और सन्तानक साठ-साठ करोड़, महाबल नौ करोड़, मधुपिंगल पाँच करोड़, नील, देवेश एवं पूर्णभद्र नब्बे-नब्बे करोड़, महाबलवान् चतुर्वक्त्र सात करोड़ गणोंके साथ, इसी प्रकार अन्य महावीर गण हजारों, सैकड़ों तथा बीसों करोड़ गणोंको साथ लेकर वहाँ युद्धोत्सवमें आये॥ १६—२१॥

वीरभद्र सहस्त्र करोड़ भूतगणों, तीन करोड़ प्रमथों, चौंसठ करोड़ गणों एवं तीन करोड़ लोमजोंके सहित आये। काष्ठारूढ, सुकेश, वृषभ, विरूपाक्ष एवं भगवान् सनातन भी चौंसठ करोड़ गणोंके साथ आये॥ २२-२३॥

तालकेतु, षडास्य, पंचास्य, प्रतापी संवर्तक, चैत्र, लकुलीश, स्वयंप्रभु लोकान्तक, दीप्तात्मा, दैत्यान्तक, प्रभु, देव भृंगी, देवाधिदेव महादेवके अत्यन्त प्रिय श्रीमान् रिटि, अशनि, भानुक चौंसठ सहस्त्र करोड़ गणोंके साथ आये। इसी प्रकार कंकाल, कालक, काल, नन्दी, सर्वान्तक तथा अन्य असंख्य महाबली गणेश्वर शंखचूडके साथ युद्धके लिये निर्भय होकर प्रेमपूर्वक निकल पड़े॥ २४—२७॥

ये सभी गण हजारों हाथोंसे युक्त तथा जटा-मुकुट धारण किये हुए थे। वे मस्तकपर चन्द्रकलासे युक्त, नीलकण्ठ एवं त्रिलोचन थे। सभी रुद्राक्ष एवं भस्म धारण किये हुए थे और हार, कुण्डल, केयूर एवं मुकुट आदिसे अलंकृत थे। वे ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णुके सदृश, अणिमादि सिद्धियोंसे युक्त, करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान एवं युद्धक्रियामें अत्यन्त प्रवीण थे॥ २८—३०॥

हे मुने! उनमें कोई पृथ्वीमें, कोई पातालमें, कोई आकाशमें तथा कोई सातों स्वर्गोंमें विचरण करनेवाले थे। हे देवर्षे! बहुत कहनेसे क्या लाभ, उस समय सम्पूर्ण लोकोंमें रहनेवाले सभी शिवगण दानवोंसे युद्ध करनेके लिये आ पहुँचे॥ ३१-३२॥

जो आठों भैरव, महाभयानक एकादश रुद्र, आठों वसु, इन्द्र, द्वादशादित्य थे, वे शीघ्र आ पहुँचे॥ ३३॥

हुताशन, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यम, निर्ऋति, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध एवं मंगल तथा अन्य ग्रह और वीर्यवान् कामदेव शिवजीके साथ आये॥ ३४-३५॥

उग्रदंष्ट्र, उग्रदण्ड, कोरट, कोटभ आदि महागण आये। स्वयं सौ भुजा धारण की हुई भगवती भद्रकाली महादेवी स्वयं उस युद्धमें उपस्थित हुईं। वे उत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर बैठी हुई थीं, रक्त वस्त्र, रक्त अनुलेपन एवं रक्तमाल्य धारण किये हुए थीं, प्रसन्नतासे हँसती हुई, सुस्वरसे गाती हुई, नृत्य करती हुई वे अपने भक्तोंको अभय प्रदान कर रही थीं तथा शत्रुओंको भय उत्पन्न कर रही थीं॥ ३६—३८॥

वे एक योजनपर्यन्त लम्बी विकट जिह्वा धारण किये हुए उसे लपलपा रही थीं और शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्‌ग, चर्म, धनुष तथा बाण धारण की हुई थीं॥ ३९॥

वे एक योजनका गोल तथा अत्यन्त गहरा खर्पर, आकाशको स्पर्श करता हुआ त्रिशूल, एक योजन लम्बी शक्ति, मुद्‌गर, मुसल, वज्र, खड्‌ग, विशाल फलक (ढाल), वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, महावीरास्त्र, सौरास्त्र, कालकालास्त्र, महानलास्त्र, महेश्वरास्त्र, यमदण्ड, सम्मोहनास्त्र, दिव्य समर्थास्त्र एवं सैकड़ों-सैकड़ों दिव्यास्त्र एवं अन्य भी अस्त्र अपने हाथोंमें धारण किये हुए तीन करोड़ योगिनियों एवं तीन करोड़ विकट डाकिनियोंके साथ वहाँ आकर स्थित हो गयीं॥ ४०—४५॥

इसी प्रकार भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष, गन्धर्व तथा किन्नरोंसे घिरे हुए स्कन्द शिवजीको प्रणाम करके और उनकी आज्ञासे वे उनके समीप स्थित हो गये॥ ४६-४७॥

इसके बाद रुद्र शिवजी अपनी सारी सेना लेकर शंखचूडके साथ युद्ध करनेके लिये निर्भय होकर चल पड़े। महादेव चन्द्रभागा नदीके तटपर एक मनोहर वटवृक्षके नीचे देवताओंका कष्ट दूर करनेहेतु स्थित हो गये॥ ४८-४९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत महादेवयुद्धयात्रावर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

तुलसीसे विदा लेकर शंखचूडका युद्धके लिये ससैन्य पुष्पभद्रा नदीके तटपर पहुँचना

व्यासजी बोले—हे महाबुद्धिमान् ब्रह्मपुत्र! हे मुने! आप चिरकालतक जीवित रहें, आपने शिवजीका बड़ा विचित्र चरित्र वर्णन किया। अब आप विस्तारपूर्वक बताइये कि शिवजीके दूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूडने क्या किया?॥ १-२॥

सनत्कुमार बोले—शिवदूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूडने भीतर जाकर तुलसीसे उस बातको कहा—॥ ३॥

शंखचूड बोला—हे देवि! शिवदूतके मुखसे युद्धका सन्देश प्राप्त होनेके कारण मैं युद्धके लिये तैयार होकर जा रहा हूँ, अब तुम मेरे शासनका कार्य सँभालना॥ ४॥

इस प्रकार यह कहकर उस ज्ञानी शंखचूडने नाना प्रकारके वाक्योंसे अपनी प्रियतमाको समझाया और शंकरका अनादरकर हर्षपूर्वक उसके साथ क्रीड़ा की॥ ५॥

अनेक प्रकारकी कामकलाओं तथा मधुर वचनोंसे परस्पर संलाप करते हुए वे पति-पत्नी सुखसागरमें निमग्न हो रातमें क्रीडा करते रहे॥ ६॥

ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःकालीन कृत्य करके नित्य-कर्म सम्पन्नकर उसने बहुत दान दिया॥ ७॥

इसके बाद अपने पुत्रको सभी दानवोंका राजा बनाकर सारी सम्पत्ति एवं राज्य, पुत्र तथा भार्याको समर्पितकर उस राजाने बारंबार रोती हुई तथा अनेक बातें कहकर युद्धमें जानेसे मना करनेवाली अपनी भार्याको आश्वस्त किया। उसके बाद उसने अपने वीर सेनापतिको आदरपूर्वक बुलाकर उसे आज्ञा दी और स्वयं सन्नद्ध होकर संग्राम करनेके लिये उद्यत हुआ॥ ८—१०॥

शंखचूड बोला—हे सेनापते! युद्ध करनेमें कुशल सभी वीर सभी प्रकारसे सुसज्जित होकर युद्धके लिये चलें॥ ११॥

बलशाली कंकोंकी सेना, जिसमें छियासी महाबलवान् दैत्य एवं दानव हैं, आयुधोंसे युक्त हो शीघ्र निर्भय होकर निकलें॥ १२॥

असुरोंके पचास कुल, जिसमें करोड़ों महावीर हैं, वे भी देवपक्षपाती शंकरसे युद्ध करनेके लिये निकलें॥ १३॥

धूम्रनामक दैत्योंके सौ कुल शिवसे युद्ध करनेके लिये मेरी आज्ञासे शीघ्र निकलें। इसी प्रकार कालकेय, मौर्य, दौर्हृद तथा कालक तैयार होकर मेरी आज्ञासे रुद्रके साथ संग्रामके लिये निकलें॥ १४-१५॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] महाबली असुरराज दानवेन्द्र शंखचूड इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों सेनाओंको लेकर चल पड़ा॥ १६॥

युद्धशास्त्रमें प्रवीण, महारथी, महावीर, रथियोंमें श्रेष्ठ तथा वीरोंमें भयंकर उसके सेनापतिने भी तीन लाख अक्षौहिणी सेनासे युक्त होकर मण्डल बनाया और वह युद्ध करनेके लिये शिविरसे बाहर निकला॥ १७-१८॥

शंखचूड भी उत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर चढ़कर गुरुजनोंको आगेकर संग्रामके लिये चला। पुष्पभद्रा नदीके किनारे सिद्धक्षेत्रमें सिद्धोंका आश्रम एवं श्रेष्ठ अक्षयवट है। वह सिद्धिप्रद सिद्धक्षेत्र है। पुण्यक्षेत्र भारतमें कपिलकी तपोभूमि है। यह स्थान पश्चिम सागरके पूर्व तथा मलय पर्वतके पश्चिममें, श्रीपर्वतके उत्तर भागमें तथा गन्धमादनके दक्षिणमें पाँच योजन चौड़ा एवं पाँच सौ योजन लम्बा है॥ १९—२२॥

भारतमें शुद्ध स्फटिकके समान जलवाली, उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाली, जलपूर्ण तथा रम्य पुष्पभद्रा तथा सरस्वती नदी है, जो क्षारसमुद्रकी प्रिय भार्या है, वह पुष्पभद्रा निरन्तर सौभाग्ययुक्त होकर हिमालयसे निकलकर सरस्वती नदीमें मिलती है और गोमन्तक पर्वतको बायेंकर पश्चिम सागरमें गिरती है। वहाँ जाकर शंखचूडने शिवकी सेनाको देखा॥ २३—२५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडयात्रावर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

शंखचूडका अपने एक बुद्धिमान् दूतको शंकरके पास भेजना, दूत तथा शिवकी वार्ता, शंकरका सन्देश लेकर दूतका वापस शंखचूडके पास आना

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] वहाँ स्थित होकर उस दानवेन्द्रने अत्यन्त बुद्धिमान् एक महान् दैत्येश्वरको दूत बनाकर शिवजीके समीप भेजा॥ १॥

उस दूतने वहाँ जाकर वटवृक्षके नीचे बैठे हुए, करोड़ों सूर्यके समान महातेजस्वी, योगासन लगाये हुए, ध्यानमुद्रायुक्त, मन्द-मन्द मुसकराते हुए, शुद्ध स्फटिकके समान परमोज्ज्वल, ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान, त्रिशूल-पट्टिश धारण किये हुए, व्याघ्रचर्म ओढ़े हुए, भक्तोंकी मृत्यु दूर करनेवाले, शान्त, तपस्याका फल देनेवाले, सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, प्रसन्नमुख, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वको उत्पन्न करनेवाले, विश्वेश्वर, विश्वकर्ता, विश्वसंहारके कारण, कारणोंके भी कारण, नरकसमुद्रसे पार उतारनेवाले, ज्ञानदाता, ज्ञानबीज तथा ज्ञानमें ही आनन्दित रहनेवाले, तीन नेत्रवाले, सनातन उमापति विश्वनाथको देखा॥ २—७॥

उस दानवेश्वरके दूतने रथसे उतरकर कुमारसहित शंकरजीको देखकर सिर झुकाकर प्रणाम किया। उनके बायीं ओर विराजमान भद्रकाली तथा उनके आगे स्थित स्कन्दको भी प्रणाम किया। उसके बाद काली, शंकर एवं स्कन्दने लोकरीतिसे उसे आशीर्वाद दिया॥ ८-९॥

इसके बाद सकल शास्त्रोंका ज्ञाता शंखचूडका वह दूत हाथ जोड़कर शिवको प्रणाम करके उत्तम वचन कहने लगा—॥ १०॥

दूत बोला—हे महेश्वर! मैं शंखचूडका दूत यहाँ आपके पास आया हूँ, आपकी क्या इच्छा है? उसे आप कहिये॥ ११॥

सनत्कुमार बोले—शंखचूडके दूतकी बात सुनकर प्रसन्नचित्त भगवान् महादेवने उससे कहा—॥ १२॥

महादेवजी बोले—हे महाबुद्धिमान् दूत! तुम मेरे सुखदायक वचनको सुनो और विचार करके मेरे वचनको निर्विवाद रूपसे उनसे कह देना॥ १३॥

समस्त धर्मोंके ज्ञाता तथा जगत्के निर्माता ब्रह्मा धर्मके भी पिता हैं, उनके पुत्र मरीचि तथा उनके पुत्र कश्यप कहे गये हैं॥ १४॥

दक्षने उन कश्यपको अपनी तेरह कन्याएँ प्रसन्नताके साथ प्रदान कीं। उनमें एक दनु नामवाली थी। साधु स्वभाववाली वह उनके सौभाग्यको बढ़ानेवाली थी॥ १५॥

उस दनुके परम तेजस्वी चार दानव पुत्र हुए। उनमें एक विप्रचित्ति था, जो महाबलवान् एवं पराक्रमी था॥ १६॥

उस विप्रचित्तिका धार्मिक तथा महाबुद्धिमान् दानवराज दम्भ नामक पुत्र हुआ। तुम उसीके श्रेष्ठ, धर्मात्मा पुत्र तथा दानवोंके राजा हो॥ १७॥

तुम पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णके पार्षद, परम धार्मिक एवं सभी गोपोंमें मुख्य थे, किंतु इस समय तुम राधिकाके शापसे दानवेन्द्र हो गये हो। यद्यपि तुम दानवयोनिमें आ गये हो, किंतु वास्तवमें दानव नहीं हो। इस प्रकार अपने पुराने जन्मका वृत्तान्त जानकर देवताओंके साथ वैर त्याग दो॥ १८-१९॥

तुम अपने पदपर स्थित रहकर राज्यका आदरपूर्वक सुखोपभोग करो, देवगणोंसे अधिक द्वेष मत करो एवं विचारपूर्वक राज्य करो॥ २०॥

हे दानव! देवगणोंका राज्य लौटा दो और मेरी प्रीतिकी रक्षा करो। तुम अपने राज्यपर स्थित रहो और देवता भी अपने पदपर स्थित रहें॥ २१॥

सामान्य प्राणियोंके साथ भी विद्वेष करना बुरा होता है, फिर देवताओंसे विरोधका तो कहना ही क्या? वे सब कुलीन, शुद्ध कर्म करनेवाले तथा कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुए हैं॥ २२॥

ब्रह्महत्यादि जो कोई भी पाप हैं, वे जाति-द्रोहजनित पापकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते॥ २३॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] इस प्रकार शंकरने उत्तम ज्ञानका बोध कराते हुए श्रुति एवं स्मृतिसे

सम्बन्धित शुभ बातें उससे कहीं॥ २४॥

तब शंखचूडके द्वारा शिक्षित तथा तर्कविद् वह दूत होनहारसे मोहित होकर विनम्रतापूर्वक इस प्रकार यह वचन कहने लगा—॥ २५॥

दूत बोला—हे देव! आपने जो वचन कहा है, वह अन्यथा नहीं है, किंतु मेरा कुछ तथ्यपूर्ण एवं यथार्थ निवेदन सुनिये॥ २६॥

आपने अभी जो कहा है कि जातिद्रोह महापाप है। हे ईश! क्या यह असुरोंके लिये ही है, देवोंके लिये नहीं? हे प्रभो! इसे बताइये॥ २७॥

यदि यह सबके लिये है, तो मैं विचारकर आपसे कुछ कह रहा हूँ, आप ही उसका निर्णय कीजिये और मेरा सन्देह दूर कीजिये। हे महेश्वर! चक्रधारी विष्णुने प्रलयके समय समुद्रमें दैत्यश्रेष्ठ मधु एवं कैटभका शिरश्छेद क्यों किया? हे गिरिश! यह तो प्रसिद्ध है कि देवताओंके पक्षधर आपने युद्धमें त्रिपुरको भस्म किया, तो ऐसा आपने क्यों किया?॥ २८—३०॥

विष्णुने बलिका सर्वस्व लेकर उसे पाताल लोकमें क्यों भेज दिया? सुतल आदि लोकका उद्धार करनेके लिये उसके द्वारपर गदा धारणकर क्यों स्थित हैं?॥ ३१॥

इन देवताओंने भाईसहित हिरण्याक्षको क्यों मारा और इन्हीं देवताओंने शुम्भादि असुरोंको क्यों मारा?॥ ३२॥

पूर्वकालमें समुद्रमन्थन किये जानेपर देवगणोंने ही अमृतका पान किया। हम सभीको क्लेश प्राप्त हुआ, किंतु इसका [अमृतपानरूप] फल देवताओंने भोगा॥ ३३॥

यह जगत् भगवान् कालका क्रीडापात्र है, वे जिस समय जिसे ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उस समय वह ऐश्वर्यवान् हो जाता है। देवताओं एवं दैत्योंका वैर सदा किसी-न-किसी निमित्त होता आया है। क्रमशः जीत और हार कालके अधीन है॥ ३४-३५॥

इन दोनोंके विरोधमें आपका आ जाना निष्फल प्रतीत हो रहा है। यह विरोध तो समान सम्बन्धियोंका ही अच्छा लगता है, आप सदृश ईश्वरका नहीं॥ ३६॥

आप तो देवता तथा असुर सभीके स्वामी हैं, अतः इस समय आप महात्माकी केवल हमलोगोंसे यह स्पर्धा निर्लज्जताकी बात है। विजय होनेपर अधिक कीर्ति तथा पराजय होनेपर हानि—ये दोनों ही आपके लिये सर्वथा विपरीत हैं, इसे मनसे विचार कीजिये॥ ३७-३८॥

सनत्कुमार बोले—यह वचन सुनकर शिवजी हँसकर दानवराजसे यथोचित मधुर वचन कहने लगे—॥ ३९॥

महेश बोले—हम अपने भक्तोंके अधीन हैं, स्वतन्त्र कभी नहीं हैं, हम उनकी इच्छासे ही कर्म करते हैं और किसीके भी पक्षपाती नहीं हैं॥ ४०॥

पूर्वकालमें ब्रह्माकी प्रार्थनासे ही प्रलयार्णवमें विष्णु तथा दैत्यश्रेष्ठ मधु-कैटभका युद्ध हुआ था॥ ४१॥

भक्तोंका कल्याण करनेवाले उन्हीं विष्णुने पूर्वकालमें देवताओंकी प्रार्थनासे प्रह्लादकी रक्षाके निमित्त हिरण्यकशिपुका वध किया था॥ ४२॥

देवगणोंकी प्रार्थनासे मैंने भी त्रिपुरोंके साथ युद्ध किया तथा उन्हें भस्म किया—यह बात सब लोग जानते हैं। पूर्वकालमें देवताओंकी प्रार्थनासे सबकी स्वामिनी तथा सबकी माताने शुम्भादिके साथ युद्ध किया और उन्होंने उनका वध भी किया॥ ४३-४४॥

आज भी सभी देवता ब्रह्माकी शरणमें गये और देवताओंसहित विष्णु-ब्रह्मा मेरी शरणमें आये। हे दूत! देवताओंका स्वामी मैं भी ब्रह्मा तथा विष्णुकी प्रार्थनाके कारण युद्धके लिये आया हूँ॥ ४५-४६॥

[हे दूत! शंखचूडसे कहना कि] तुम महात्मा श्रीकृष्णके श्रेष्ठ पार्षद हो। पहले जो-जो दैत्य मारे गये, उनमें कोई भी तुम्हारे समान नहीं था॥ ४७॥

हे राजन्! देवताओंका कार्य करनेके लिये तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा है। देवताओंके कार्यके लिये मैं ईश्वर विनयपूर्वक भेजा गया हूँ॥ ४८॥

[अतः हे दूत!] तुम जाओ और शंखचूडसे मेरा वचन कह देना कि मैं तो देवकार्य अवश्य करूँगा, उसे जो उचित हो, वैसा करे॥ ४९॥

ऐसा कहकर महेश्वर चुप हो गये और शंखचूडका दूत उठा और उसके पास चला गया॥ ५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत शिवदूतसंवादवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

शंखचूडको उद्देश्यकर देवताओंका दानवोंके साथ महासंग्राम

सनत्कुमार बोले—उस दूतने वहाँ जाकर शिवजीकी सारी बात तथा उनका निश्चय विस्तारपूर्वक यथार्थ रूपसे कह दिया॥ १॥

उसे सुनकर उस प्रतापी दानवेन्द्र शंखचूडने बड़े प्रेमके साथ युद्ध करनेकी चुनौती स्वीकार कर ली॥ २॥

इसके बाद वह बड़ी शीघ्रताके साथ अमात्योंके सहित विमानपर आरूढ़ हुआ और शंकरजीके साथ युद्ध करनेके लिये उसने अपनी सेनाको आज्ञा दे दी॥ ३॥

शिवजीने भी शीघ्रतासे अपनी सेना एवं देवताओंको [युद्धके लिये] प्रेरित किया और वे स्वयं सर्वेश्वर होकर लीलापूर्वक युद्धके लिये तैयार हो गये॥ ४॥

इसके बाद शीघ्र ही युद्ध प्रारम्भ हो गया। उस समय अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे, कोलाहल और वीरोंकी गर्जनाएँ होने लगीं॥ ५॥

हे मुने! देव और दानवोंका परस्पर युद्ध होने लगा। देवता तथा दानव धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे॥ ६॥

स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ तथा भास्कर विप्रचित्तिके साथ धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे॥ ७॥

दम्भके साथ विष्णुका महान् युद्ध होने लगा। काल कालासुरके साथ, अग्नि गोकर्णके साथ, कुबेर कालकेयके साथ, विश्वकर्मा मयके साथ, मृत्यु भयंकरके साथ, यमराज संहारके साथ, वरुण कालम्बिकके साथ, समीरण चंचलके साथ, बुध घटपृष्ठके साथ, शनैश्चर रक्ताक्षके साथ, जयन्त रत्नसारके साथ, अष्ट वसु वर्चस्‌गणोंके साथ, अश्विनीकुमार दोनों दीप्तिमानोंके साथ, नलकूबर धूम्रके साथ, धर्म धुरन्धरके साथ, मंगल गणकाक्षके साथ, वैश्वान शोभाकरके साथ, कामदेव पिपिटके साथ, बारहों आदित्य गोकामुख, चूर्ण, खड्ग नामक असुर, धूम्र, संहल, विश्व, प्रतापी एवं पलाशके साथ धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे। शिवकी सहायता प्राप्तकर देवगण असुरोंके साथ युद्ध करने लगे॥ ८—१४॥

एकादश महारुद्र भयंकर, महाबली, महापराक्रमी तथा वीर ग्यारह असुरोंसे युद्ध करने लगे। महामणि उग्रचण्ड आदिके साथ, चन्द्रमा राहुके साथ तथा बृहस्पति शुक्राचार्यके साथ धर्मपूर्वक युद्ध करने लगे। नन्दीश्वर आदि शिवगण भी दानवोंके साथ युद्ध करने लगे, उसका पृथक्-पृथक् वर्णन विस्तारके भयसे नहीं किया गया॥ १५—१७॥

हे मुने! उस समय शिवजी काली एवं पुत्रके साथ वटके मूलमें स्थित रहे और समस्त सैन्यसमूह निरन्तर युद्ध कर रहे थे। रत्नजटित आभूषणोंसे भूषित शंखचूड भी करोड़ों दानवोंसे युक्त रत्नजटित मनोहर सिंहासनपर बैठा हुआ था। इसके बाद देवताओं एवं असुरोंका विनाश करनेवाला महायुद्ध छिड़ गया। उस महायुद्धमें नाना प्रकारके दिव्य आयुध चल रहे थे॥ १८—२०॥

गदा, ऋष्टि, पट्टिश, चक्र, भुशुण्डी, प्रास, मुद्गर, निस्त्रिंश, भाला, परिघ, शक्ति, उन्मुख, परशु, बाण, तोमर, खड्ग, सहस्रों तोपें, भिन्दिपाल एवं अन्य शस्त्र वीरोंके हाथोंमें शोभित हो रहे थे॥ २१-२२॥

महान् उत्साहसे युक्त वीर लोग युद्धमें गरजती हुई दोनों सेनाओंके वीरोंके सिरोंको इन आयुधोंसे काटने लगे। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल तथा अनेक प्रकारके सवारसहित वाहन युद्धमें कट रहे थे॥ २३-२४॥

भुजा, जङ्घा, हाथ, कटि, दोनों कान, पैर, ध्वज, बाण, तलवार, कवच एवं उत्तम आभूषण कटकर पृथ्वीपर गिरने लगे। उस समय योद्धाओंके कटे हुए किरीट-कुण्डलयुक्त सिरोंसे तथा हाथियोंकी कटी हुई सूँड़ोंसे, कटी हुई आभूषणयुक्त भुजाओं तथा कटे हुए आयुधों एवं कटे हुए अन्य अंगोंसे समस्त पृथ्वी मधुमक्खीके छत्तोंके समान पट गयी॥ २५—२७॥

युद्धमें कटे हुए सिरोंकी आँखोंसे कबन्धकी ओर देखते हुए योद्धा शस्त्र धारण की हुई भुजाओंको ऊपरकी ओर उठाकर जहाँ-तहाँ दौड़ रहे थे॥ २८॥

महाबलवान् एवं महापराक्रमी वीर तीव्र नाद करते हुए अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे परस्पर युद्ध कर रहे थे। कुछ योद्धा युद्धमें सुवर्णमुखवाले बाणोंसे योद्धाओंको

मारकर जलवृष्टि करनेवाले मेघोंके समान वीरगर्जना कर रहे थे। कोई वीर चारों ओरसे अपने बाणोंसे रथसहित सारथीको इस प्रकार ढँक दे रहा था, जिस प्रकार बादल सूर्यको ढँक लेता है॥ २९—३१॥

द्वन्द्वयुद्ध करनेवाले वीर एक-दूसरेसे भिड़कर ललकारते हुए तथा एक-दूसरेके आगे जाते हुए मर्मस्थलपर प्रहार करते हुए आपसमें युद्ध कर रहे थे॥ ३२॥

उस महायुद्धमें वीरसमूह चारों ओरसे अपने हाथोंमें नाना प्रकारके ध्वज तथा आयुध लेकर सिंहनाद करते हुए दिखायी पड़ रहे थे। उस युद्धमें महावीर महान् शब्द करनेवाले अपने शंखोंको पृथक्-पृथक् बजा रहे थे और प्रसन्न होकर घोर नाद कर रहे थे। इस प्रकार दीर्घकालतक देवताओं तथा दानवोंका विकट, भयंकर तथा वीरोंको हर्षित करनेवाला महायुद्ध हुआ। परमात्मा महाप्रभु शंकरकी यह लीला है, जिसने देवता, मनुष्य एवं असुरोंसहित सभीको मोहित कर रखा है॥ ३३—३६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत परस्परयुद्धवर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

शंखचूडके साथ कार्तिकेय आदि महावीरोंका युद्ध

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] उस समय दानवोंने सभी देवताओंको पराजित कर दिया, जिससे शस्त्रास्त्रोंसे क्षत-विक्षत अंगोंवाले देवता भयभीत होकर भागने लगे॥ १॥

वे लौटकर शिवजीकी शरणमें गये और 'हे सर्वेश! रक्षा करो, रक्षा करो', ऐसा विह्वल वाणीमें कहने लगे॥ २॥

तब उन देवताओंकी इस प्रकारकी पराजय देखकर तथा उनका भययुक्त वचन सुनकर शिवजीने महान् क्रोध किया। कृपादृष्टिसे देखकर उन्होंने देवताओंको अभयदान दिया तथा अपने तेजसे गणोंके बलको बढ़ाया॥ ३-४॥

तब शिवपुत्र महावीर कार्तिकेय शिवजीकी आज्ञा लेकर रणक्षेत्रमें दानवोंके साथ निर्भय होकर युद्ध करने लगे। तारकासुरका वध करनेवाले कार्तिकेयने क्रोध करके वीरध्वनि करते हुए उनकी सौ अक्षौहिणी सेनाको युद्धमें मार डाला। कमलके समान नेत्रवाली काली सहसा दैत्योंका सिर काटकर रक्त बहाने लगीं और उनका भक्षण करने लगीं॥ ५—७॥

वे दानवोंके रुधिरका चारों ओरसे पान करने लगीं और देवताओं तथा दानवोंके लिये भयंकर विविध प्रकारके युद्ध करने लगीं। उन्होंने रणमें लीलापूर्वक सौ लाख हाथी एवं सौ लाख दानवोंको एक हाथसे उठाकर मुखमें डाल लिया॥ ८-९॥

हजारों कबन्ध युद्धभूमिमें नृत्य करने लगे। उस समय महान् कोलाहल होने लगा, जो कायरोंके लिये भयप्रद था। इसके बाद स्कन्द कुपित हो पुनः बाणोंकी वर्षा करने लगे और उन्होंने क्षणभरमें करोड़ों असुरसेनापतियोंको मारकर गिरा दिया॥ १०-११॥

जो शेष दानव मरनेसे बच गये, वे सब स्कन्दके बाणोंसे क्षत-विक्षत तथा भयभीत होकर भागने लगे॥ १२॥

तब वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दण्ड, विकम्पन—ये सब बारी-बारीसे स्कन्दके साथ युद्ध करने लगे॥ १३॥

महामारी भी युद्ध करने लगी और युद्धसे नहीं हटी। उधर स्कन्दकी शक्तिसे पीड़ित हुए असुरगण क्षत-विक्षत होने लगे। हे मुने! उस समय स्कन्द एवं महामारीकी विजय हुई, स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और फूलोंकी वृष्टि होने लगी॥ १४-१५॥

तब कार्तिकेयके महाभयानक, अद्भुत, दानवोंका क्षय करनेवाले एवं कल्पान्तसदृश और महामारीके द्वारा किये गये क्षयकारी उपद्रवको देखकर वह शंखचूड अत्यन्त कुपित हुआ और स्वयं सहसा युद्धके लिये तैयार हुआ॥ १६-१७॥

वह शंखचूड अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त, विविध रत्नोंसे जटित तथा सभी वीरोंको अभय देनेवाले विमानपर चढ़कर महावीरोंके साथ रणभूमिमें उपस्थित हो गया और कर्णपर्यन्त धनुषकी प्रत्यंचा खींचकर

बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ १८-१९॥

उसकी वह शरवृष्टि भयानक थी तथा प्रतीकारके योग्य नहीं थी, उससे युद्धस्थलमें घनघोर अन्धकार छा गया॥ २०॥

सभी देवता तथा नन्दीश्वर आदि जो अन्य थे, वे महागण भागने लगे, उस युद्धमें एकमात्र कार्तिकेय ही डटे रहे॥ २१॥

उस समय दानवराजने पर्वतों, सर्पों, नागों एवं वृक्षोंकी भयंकर एवं दुर्निवार्य वर्षा की, उस वृष्टिसे शिवपुत्र स्कन्द उसी प्रकार आहत (आच्छन्न) हो गये, जैसे घने कोहरेसे आच्छादित सूर्य॥ २२-२३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उसने मय दानवके द्वारा सिखायी गयी अपनी अनेक प्रकारकी माया फैलायी, किंतु कोई भी देवता तथा गण उसे नहीं जान सके॥ २४॥

उसी समय महामायावी एवं महाबली शंखचूडने अपने एक ही दिव्य बाणसे उनके धनुषको काट दिया॥ २५॥

उसने उनके दिव्य रथ एवं रथके रक्षकोंको नष्ट कर दिया तथा अपने दिव्यास्त्रसे उनके मयूरको जर्जर कर दिया॥ २६॥

उसने उनके वक्ष:स्थलपर सूर्यके समान देदीप्यमान एवं आघात करनेवाली अपनी शक्ति चलायी, तब उसके प्रहारसे वे कार्तिकेय सहसा मूर्च्छित हो गये॥ २७॥

पुनः [क्षणमात्रमें] चेतना प्राप्तकर शत्रुवीरोंको नष्ट करनेवाले कार्तिकेय अपने महारत्नजटित वाहनपर सवार हो गये। वे कार्तिकेय पार्वतीसहित शिवके चरणोंका स्मरणकर अस्त्र-शस्त्र लेकर घनघोर संग्राम करने लगे॥ २८-२९॥

उन शिवपुत्रने क्रोधपूर्वक अपने दिव्यास्त्रसे उसके समस्त सर्पों, पर्वतों, वृक्षों एवं पाषाणोंको काट दिया॥ ३०॥

उन्होंने पार्जन्य बाणके द्वारा लीलासे ही शंखचूडके आग्नेयास्त्रको शान्त कर दिया और उसका रथ तथा धनुष भी काट डाला। वे उसके कवच, समस्त वाहन, उज्ज्वल किरीट एवं मुकुटको नष्टकर वीरध्वनि करने लगे तथा बारंबार गरजने लगे॥ ३१-३२॥

उसके बाद उन्होंने दानवेन्द्रकी छातीपर सूर्यके समान देदीप्यमान शक्तिसे प्रहार किया। उस अत्यन्त तीव्र प्रहारसे वह मूर्च्छित हो गया। वह महाबली थोड़ी ही देरमें शक्तिकी पीड़ा दूरकर चेतना प्राप्त करके उठ गया तथा सिंहके समान गर्जना करने लगा॥ ३३-३४॥

उस महाबलीने कार्तिकेयपर अपनी शक्तिसे प्रहार किया, तब कार्तिकेय विधाताके द्वारा दी गयी शक्तिको अमोघ सिद्ध करनेके लिये पृथ्वीतलपर गिर पड़े॥ ३५॥

तब काली उन्हें अपनी गोदमें उठाकर शिवजीके पास ले आयीं। शिवजीने अपनी लीलासे ज्ञानके द्वारा उन्हें जीवित कर दिया और उन्हें अनन्त बल प्रदान किया। तब वे महाप्रतापी शिवपुत्र उठ बैठे तथा पुनः युद्धमें जानेका विचार करने लगे॥ ३६-३७॥

इसी बीच महाबली तथा पराक्रमी वीरभद्र बलशाली शंखचूडके साथ रणक्षेत्रमें युद्ध करने लगे॥ ३८॥

उस दानवने समरमें जिन-जिन अस्त्रोंको चलाया, उन-उन अस्त्रोंको उन वीरभद्रने लीलापूर्वक अपने बाणोंसे नष्ट कर दिया॥ ३९॥

तब उस दानवेश्वरने सैकड़ों दिव्य अस्त्र छोड़े, किंतु प्रतापी वीरभद्रने अपने बाणोंसे उनका छेदन कर दिया॥ ४०॥

तब प्रतापी शंखचूड अत्यन्त कुपित हुआ। उसने अपनी शक्तिके द्वारा उनकी छातीपर प्रहार किया, जिससे वे काँप उठे और पृथ्वीपर गिर गये॥ ४१॥

इसके बाद गणोंमें प्रमुख गणेश्वर वीरभद्र क्षणमात्रमें चेतना प्राप्तकर उठ बैठे और उन्होंने पुनः अपना धनुष ले लिया॥ ४२॥

इसी बीच काली कार्तिकेयकी इच्छासे दानवोंका भक्षण करने तथा अपने गणोंकी रक्षा करनेहेतु युद्धभूमिमें गयीं और वे नन्दीश्वर आदि वीरगण, सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा नाग उनके पीछे-पीछे चलने लगे। बाजे बजने लगे, सैकड़ों वीर मधुभाण्ड लिये हुए थे। दोनों पक्षके वीर युद्धके लिये उद्यत थे॥ ४३—४५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत ससैन्यशंखचूडयुद्धवर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

श्रीकालीका शंखचूडके साथ महान् युद्ध, आकाशवाणी सुनकर कालीका शिवके पास आकर युद्धका वृत्तान्त बताना

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] महादेवीने युद्धस्थलमें पहुँचते ही सिंहनाद किया, देवीके उस नादसे दानव मूर्च्छित हो गये॥ १॥

भगवतीने बार-बार अशुभ अट्टहास किया, वे मद्यपान करने लगीं तथा युद्धभूमिमें नृत्य करने लगीं॥ २॥

इसी प्रकार उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा, कोटवी आदि भी मधुपान करने लगीं। अन्य देवियाँ भी युद्धक्षेत्रमें मधुपान और नृत्य करने लगीं॥ ३॥

उस समय गणों एवं देवताओंके दलमें महान् कोलाहल उत्पन्न हो गया और सभी देवता तथा गण आदि तीव्र गर्जन करते हुए हर्षित हो रहे थे॥ ४॥

तब शंखचूड कालीको देखकर शीघ्र संग्रामभूमिमें आया। जो दानव भयभीत हो रहे थे, उन्हें राजाने अभयदान दिया। कालीने प्रलयाग्निकी शिखाके समान आग्नेयास्त्र चलाया, तब शंखचूडने उसे अपने वैष्णवास्त्रसे शान्त कर दिया॥ ५-६॥

उन देवीने शीघ्र ही उसके ऊपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। वह अस्त्र दानवको प्रतिकूल देखकर जब बढ़ने लगा, तब तो प्रलयाग्निकी शिखाके समान उस अस्त्रको [अपनी ओर आता] देखकर वह पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिर पड़ा और गिरकर बारंबार उसे प्रणाम करने लगा॥ ७-८॥

दानवको इस प्रकार विनम्र देखकर वह अस्त्र शान्त हो गया। तब उन देवीने मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया॥ ९॥

जलते हुए उस ब्रह्मास्त्रको देखकर उसे प्रणामकर वह पृथ्वीपर खड़ा हो गया। दानवेन्द्रने इस प्रकार ब्रह्मास्त्रसे भी अपनी रक्षा की॥ १०॥

इसके बाद दानवेन्द्र क्रोधित हो बड़े वेगसे धनुष चढ़ाकर देवीपर मन्त्रपूर्वक दिव्यास्त्र छोड़ने लगा॥ ११॥

देवी भी विशाल मुख फैलाकर संग्राममें समस्त अस्त्र-शस्त्र खा गयीं और अट्टहासपूर्वक गरजने लगीं, जिससे दानव भयभीत हो उठे॥ १२॥

तब उस दानवने सौ योजन विस्तारवाली अपनी शक्तिसे कालीपर प्रहार किया, किंतु उन देवीने दिव्यास्त्रोंसे उस शक्तिके सौ-सौ टुकड़े कर दिये॥ १३॥

तब उसने चण्डिकापर वैष्णवास्त्र चलाया, किंतु कालीने माहेश्वर अस्त्रसे उसे निष्फल कर दिया॥ १४॥

इस प्रकार बहुत कालपर्यन्त उन दोनोंका परस्पर युद्ध होता रहा, देवता एवं दानव दर्शक बनकर उस युद्धको देखते रहे। उसके बाद युद्धमें कालके समान क्रुद्ध हुई महादेवीने रोषपूर्वक मन्त्रसे पवित्र किया हुआ पाशुपतास्त्र ग्रहण किया॥ १५-१६॥

उसके चलानेके पूर्व ही उसे रोकनेके लिये यह आकाशवाणी हुई—हे देवि! आप क्रोधपूर्वक इस अस्त्रको शंखचूड़पर मत चलाइये। हे चण्डिके! इस अमोघ पाशुपतास्त्रसे भी वीर शंखचूडकी मृत्यु नहीं होगी। अतः कोई अन्य उपाय सोचिये॥ १७-१८॥

यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं चलाया और वे भूखसे युक्त होकर लीलापूर्वक सौ लाख दानवोंका भक्षण कर गयीं। वे भयंकर देवी शंखचूडको भी खानेके लिये वेगपूर्वक दौड़ीं, तब उस दानवने दिव्य रौद्रास्त्रके द्वारा उन्हें रोक दिया। इसके बाद दानवेन्द्रने कुपित होकर शीघ्र ही ग्रीष्मकालीन सूर्यके सदृश, तीक्ष्ण धारवाला तथा अत्यन्त भयंकर खड्ग चलाया॥ १९—२१॥

तब काली उस प्रज्वलित खड्गको अपनी ओर आता देखकर रोषपूर्वक अपना मुख फैलाकर उसके देखते-देखते उसका भक्षण कर गयीं॥ २२॥

इसी प्रकार उसने और भी बहुत-से दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया, किंतु भगवतीने उसके सभी अस्त्रोंके पूर्ववत् सौ खण्ड कर दिये॥ २३॥

पुनः महादेवी उसे खानेके लिये बड़े वेगसे दौड़ीं, तब सर्वसिद्धेश्वर वह [दानवराज] अन्तर्धान हो गया॥ २४॥

कालीने उस दानवको न देखकर बड़े वेगसे अपनी मुष्टिकाके द्वारा उसके रथको नष्ट कर दिया तथा सारथीको मार डाला॥ २५॥

इसके बाद उस मायावी शंखचूडने बड़ी शीघ्रतासे युद्धस्थलमें प्रकट होकर प्रलयाग्निकी शिखाके समान जलते हुए चक्रसे भद्रकालीपर प्रहार किया॥ २६॥

देवीने उस चक्रको अपने बायें हाथसे लीलापूर्वक पकड़ लिया और बड़े क्रोधके साथ शीघ्र ही अपने मुखसे उसका भक्षण कर लिया। देवीने अत्यन्त क्रोधपूर्वक बड़े वेगसे मुष्टिकाद्वारा उसपर प्रहार किया, जिससे वह दानवराज चक्कर काटने लगा और मूर्च्छित हो गया॥ २७-२८॥

वह प्रतापी क्षणभरमें चेतना प्राप्त करके पुनः उठ गया और उनके प्रति माताका भाव रखनेके कारण उसने उनके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया॥ २९॥

देवीने उस दानवको पकड़कर बारंबार घुमाकर बड़े क्रोधके साथ वेगपूर्वक ऊपरको फेंक दिया॥ ३०॥

वह प्रतापी शंखचूड बड़े वेगसे ऊपर गया, पुनः नीचे गिरकर भद्रकालीको प्रणामकर स्थित हो गया। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त वह दानवश्रेष्ठ रत्ननिर्मित विमानपर सवार हुआ और सावधान होकर युद्धके लिये उद्यत हो गया। काली भी क्षुधातुर हो दानवोंका रक्तपान करने लगीं, इसी बीच वहाँ आकाशवाणी हुई कि हे ईश्वरि! अभीतक इस रणमें महान् उद्धत एवं गर्जना करते हुए एक लाख दानव शेष हैं। अतः आप इनका भक्षण करें॥ ३१—३४॥

हे देवि! आप संग्राममें इस दानवराजके वधका विचार न कीजिये, यह शंखचूड आपसे अवध्य है—यह निश्चित है। आकाशमण्डलसे निकली हुई इस वाणीको सुनकर देवी भद्रकाली बहुतसे दानवोंका मांस एवं रुधिर खा-पीकर शिवजीके पास आ गयीं और आद्योपान्त युद्धका सारा वृत्तान्त पूर्वापर क्रमसे उन्होंने उनसे निवेदन किया॥ ३५—३७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधके अन्तर्गत कालीका युद्धवर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

शिव और शंखचूडके महाभयंकर युद्धमें शंखचूडके सैनिकोंके संहारका वर्णन

व्यासजी बोले—हे महाप्राज्ञ! भद्रकालीके वचनको सुनकर शिवजीने क्या कहा और क्या किया? उसे आप तत्त्वतः कहिये, मुझे सुननेकी बड़ी ही उत्सुकता है॥ १॥

सनत्कुमार बोले—कालीके द्वारा कहे गये वचनको सुनकर महान् लीला करनेवाले कल्याणकारी परमेश्वर शम्भु उन कालीको आश्वस्त करते हुए हँसने लगे॥ २॥

तत्त्वज्ञानविशारद शिवजी आकाशवाणीको सुनकर अपने गणोंको साथ लेकर स्वयं युद्धस्थलमें गये॥ ३॥

वीरभद्रादि गणों एवं अपने समान भैरवों तथा क्षेत्रपालोंको साथ लिये हुए महावृषभपर आरूढ़ होकर महेश्वर वीररूप धारणकर युद्धभूमिमें पहुँचे। उस समय वे रुद्र मूर्तिमान् काल ही प्रतीत हो रहे थे॥ ४-५॥

शंखचूडने शिवजीको देखकर विमानसे उतरकर परमभक्तिपूर्वक भूमिमें गिरकर सिरसे उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। उन्हें प्रणाम करके वह योगमार्गसे पुनः विमानपर जा चढ़ा और शीघ्र ही उसने कवच धारणकर धनुष-बाण उठा लिया॥ ६-७॥

उसके बाद शिव तथा उन दानवोंका सौ वर्षपर्यन्त घनघोर युद्ध होता रहा, जिसमें निरन्तर वर्षा करते हुए मेघोंके समान बाणोंकी वर्षा हो रही थी। महावीर शंखचूड शिवजीपर दारुण बाण छोड़ रहा था, किंतु शंकरजी अपने बाणोंसे उन्हें छिन्न-भिन्न कर देते थे॥ ८-९॥

दुष्टोंको दण्ड देनेवाले तथा सज्जनोंके रक्षक विरूपाक्ष महारुद्रने अत्यन्त क्रोधपूर्वक अपने शस्त्रसमूहोंसे उसके अंगोंपर प्रहार किया। उस दानवने भी वेगयुक्त होकर अपनी तीक्ष्ण तलवार एवं ढाल लेकर शिवजीके श्रेष्ठ वाहन वृषभके सिरपर प्रहार किया॥ १०-११॥

वृषभपर प्रहार किये जानेपर शंकरजीने तीक्ष्ण धारवाले छूरेसे लीलापूर्वक शीघ्र ही उसके खड्ग एवं अति उज्ज्वल ढालको काट दिया॥ १२॥

तब ढालके कट जानेपर उस दानवने शक्ति चलायी, किंतु शिवजीने अपने बाणसे सामने आयी हुई

उस शक्तिके दो टुकड़े कर दिये॥ १३॥

तब क्रोधसे व्याकुल दानव शंखचूडने चक्रसे प्रहार किया, किंतु शिवजीने सहसा अपनी मुष्टिके प्रहारसे उसे भी चूर्ण कर दिया। इसके बाद उसने शिवजीपर बड़े वेगसे गदासे प्रहार किया, किंतु शिवजीने उसे भी छिन्न-भिन्न करके भस्म कर दिया॥ १४-१५॥

तब क्रोधसे व्याकुल दानवेश्वर शंखचूड हाथमें परशु लेकर वेगसे शिवजीकी ओर दौड़ा। शंकरने बड़ी शीघ्रतासे लीलापूर्वक अपने बाणसमूहोंसे हाथमें परशु लिये हुए उस असुरको आहतकर पृथ्वीपर गिरा दिया॥ १६-१७॥

तत्पश्चात् थोड़ी ही देरमें वह सचेत हो रथपर आरूढ़ होकर दिव्य आयुध एवं बाण धारणकर समस्त आकाशमण्डलको व्याप्तकर शोभित होने लगा॥ १८॥

उसे अपनी ओर आता हुआ देखकर शिवजीने आदरपूर्वक डमरू बजाया और धनुषकी प्रत्यंचाकी दुःसह ध्वनि भी की। प्रभु गिरीशने शृंगनादके द्वारा सारी दिशाएँ पूरित कर दीं और स्वयं असुरोंको भयभीत करते हुए गर्जना करने लगे॥ १९-२०॥

नन्दीश्वरने हाथीके महागर्वको छुड़ा देनेवाले महानादोंसे सहसा पृथ्वी, आकाश तथा आठों दिशाओंको पूर्ण कर दिया। महाकालने बड़ी तेजीसे दौड़कर अपने दोनों हाथोंको पृथ्वी एवं आकाशपर पटक दिया, जिससे पहलेके शब्द तिरोहित हो गये॥ २१-२२॥

इसी प्रकार उस महायुद्धमें क्षेत्रपालने अशुभसूचक अट्टहास किया तथा भैरवने भी नाद किया॥ २३॥

युद्धस्थलमें महान् कोलाहल होने लगा और गणोंके मध्यमें चारों ओर सिंहगर्जना होने लगी॥ २४॥

उन भयदायक एवं कर्कश शब्दोंसे सभी दानव व्याकुल हो उठे। महाबलवान् दानवेन्द्र उसे सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। जब शिवजीने कहा—रे दुष्ट! खड़ा रह, खड़ा रह, उसी समय देवताओं एवं गणोंने भी शीघ्र जय-जयकार की। इसके बाद महाप्रतापी दम्भपुत्रने आकर ज्वाला-मालाके समान अत्यन्त भीषण शक्ति शिवजीपर चलायी॥ २५—२७॥

क्षेत्रपालने अग्निज्वालाके समान आती हुई उस शक्तिको बड़ी शीघ्रतासे युद्धमें आगे बढ़कर अपने मुखसे उत्पन्न उल्कासे नष्ट कर दिया। उसके अनन्तर पुनः शिवजी एवं उस दानवका महाभयंकर युद्ध होने लगा, जिससे पर्वत, समुद्र एवं जलाशयोंके सहित पृथ्वी एवं द्युलोक कम्पित हो उठे। दम्भपुत्र शंखचूडके द्वारा छोड़े गये सैकड़ों-हजारों बाणोंको शिवजी अपने उग्र बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर रहे थे तथा शिवजीके द्वारा छोड़े गये सैकड़ों-हजारों बाणोंको वह भी अपने उग्र बाणोंसे छिन्न-भिन्न कर देता था॥ २८—३०॥

तब शिवजीने अत्यधिक क्रोधित हो अपने त्रिशूलसे दानवपर प्रहार किया, उसके प्रहारको सहनेमें असमर्थ वह मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३१॥

इसके बाद क्षणमात्रमें ही चेतना प्राप्तकर वह असुर धनुष लेकर बाणोंसे शिवजीपर प्रहार करने लगा॥ ३२॥

उस प्रतापी दानवराज शंखचूडने दस हजार भुजाओंका निर्माणकर दस हजार चक्रोंसे शंकरजीको ढक दिया। तदनन्तर कठिन दुर्गतिके नाशकर्ता दुर्गापति शंकरजीने कुपित होकर अपने श्रेष्ठ बाणोंसे शीघ्र ही उन चक्रोंको काट दिया। तब बहुत-सारी सेनासे घिरा हुआ वह दानव बड़े वेगसे सहसा गदा उठाकर शंकरजीको मारनेके लिये दौड़ा॥ ३३—३५॥

दुष्टोंके गर्वको नष्ट करनेवाले शिवजीने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे शीघ्र ही उसकी गदा भी काट दी। तब अपनी गदाके छिन्न-भिन्न हो जानेपर उस दानवको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और उस तेजस्वीने शत्रुओंके लिये असह्य अपना प्रज्वलित त्रिशूल धारण किया। शिवजीने हाथमें त्रिशूल लेकर आते हुए उस सुदर्शन दनुजेश्वरके हृदयमें बड़े वेगसे अपने त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ३६—३८॥

तब त्रिशूलसे विदीर्ण शंखचूडके हृदयसे एक पराक्रमी श्रेष्ठ पुरुष निकला और 'खड़े रहो, खड़े रहो'—इस प्रकार कहने लगा॥ ३९॥

उसके निकलते ही शिवजीने हँसकर शीघ्र अपने खड्गसे उसके शब्द करनेवाले भयंकर सिरको काट दिया, जिससे वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। इधर कालीने अपना उग्र मुख फैलाकर बड़े क्रोधसे अपने दाँतोंसे उन असुरोंके सिरोंको पीस-पीसकर चबाना प्रारम्भ कर दिया॥ ४०-४१॥

इसी प्रकार क्षेत्रपाल भी क्रोधमें भरकर अनेक असुरोंको खाने लगे और जो अन्य शेष बचे, वे भैरवके अस्त्रसे छिन्न-भिन्न होकर नष्ट हो गये ॥ ४२ ॥

वीरभद्रने क्रोधपूर्वक दूसरे बहुत-से वीरोंको नष्ट कर दिया एवं नन्दीश्वरने अन्य बहुत-से देवशत्रु असुरोंको मार डाला। इसी प्रकार उस समय शिवजीके बहुत-से गणोंने देवताओंको कष्ट देनेवाले अनेक दैत्यों तथा असुरोंको नष्ट कर दिया ॥ ४३-४४ ॥

इस प्रकार उसकी बहुत-सी सेना नष्ट हो गयी और भयसे व्याकुल हुए अनेक दूसरे वीर भाग गये ॥ ४५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडसैन्यवधवर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ अध्याय

शिव और शंखचूडका युद्ध, आकाशवाणीद्वारा शंकरको युद्धसे विरत करना, विष्णुका ब्राह्मणरूप धारणकर शंखचूडका कवच माँगना, कवचहीन शंखचूडका भगवान् शिवद्वारा वध, सर्वत्र हर्षोल्लास

सनत्कुमार बोले— [हे व्यास!] इसके बाद अपनी मुख्य-मुख्य बहुत-सी सेनाओंको तथा प्राणके समान वीरोंको नष्ट होते देखकर दानव अत्यधिक क्रुद्ध हुआ ॥ १ ॥

उसने शंकरजीसे कहा—मैं युद्धभूमिमें खड़ा हूँ और आप भी स्थिर हो जाइये। इनको मारनेसे क्या लाभ, मेरे सामने [खड़े होकर] युद्ध कीजिये। हे मुने! इस प्रकार कहकर वह दानव [युद्ध करनेका] निश्चयकर सन्नद्ध होकर युद्धभूमिमें शंकरजीके सम्मुख गया ॥ २-३ ॥

वह दानव शिवजीपर दिव्य अस्त्र छोड़ने लगा। जैसे मेघ जलवृष्टि करता है, उसी प्रकार वह बाणोंकी वर्षा करने लगा। उसने भय उत्पन्न करनेवाली अनेक प्रकारकी माया भी प्रकट की। उस अप्रतर्क्य मायाको समस्त देवता भी न देख सके। उस मायाको देखकर शिवजीने सभी प्रकारकी मायाको नष्ट करनेवाले महादिव्य माहेश्वर अस्त्रको लीलापूर्वक छोड़ा ॥ ४—६ ॥

उसके तेजसे शीघ्र ही उस असुरकी सारी माया तत्काल नष्ट हो गयी और वे दिव्यास्त्र भी निस्तेज हो गये। उसके बाद महाबली महेश्वरने युद्धमें उसका वध करनेके लिये तेजस्वियोंके लिये भी दुर्निवार्य त्रिशूल सहसा धारण किया ॥ ७-८ ॥

उसी समय उन्हें रोकनेके लिये आकाशवाणी हुई, हे शंकर! इस समय आप त्रिशूल मत चलाइये, [मेरी] प्रार्थना सुनिये। हे ईश! आप क्षणमात्रमें सारे ब्रह्माण्डको नष्ट करनेमें समर्थ हैं, तब इस समय एक शंखचूड दानवके वधकी क्या बात! फिर भी आप स्वामीको वेद-मर्यादा नष्ट नहीं करनी चाहिये। हे महादेव! उसे सुनिये और सत्यरूपसे सफल कीजिये। जबतक इसके हाथमें विष्णुका परम उग्र कवच है और जबतक इसकी पतिव्रता स्त्रीका सतीत्व है, तबतक हे शंकर! इस शंखचूडकी जरा एवं मृत्यु नहीं हो सकती। हे नाथ! ब्रह्माके इस वचनको आप सत्य कीजिये ॥ ९—१३ ॥

इस आकाशवाणीको सुनकर 'वैसा ही होगा'—इस प्रकार शंकरजीके कहनेपर उसी समय शिवजीकी इच्छासे सज्जनोंके रक्षक विष्णु वहाँ आये और शंकरजीने उन्हें आज्ञा दी। तब मायावियोंमें श्रेष्ठ विष्णु वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारणकर शंखचूडके पास जाकर उससे कहने लगे— ॥ १४-१५ ॥

वृद्ध ब्राह्मण बोले— हे दानवेन्द्र! इस समय आपके पास आये हुए मुझ ब्राह्मणको भिक्षा प्रदान कीजिये। मैं इस समय आप दीनवत्सलसे स्पष्ट नहीं कहूँगा, [प्रतिज्ञाके] बादमें आपसे कहूँगा, तब आप [उसे देकर] अपनी प्रतिज्ञा सत्य करेंगे ॥ १६-१७ ॥

तब राजाने प्रसन्नमुख होकर 'हाँ'—ऐसा कह दिया। इसके बाद उन्होंने छलसे कहा कि मैं आपका कवच चाहता हूँ ॥ १८ ॥

इसे सुनकर ब्राह्मणभक्त तथा सत्यभाषी दानवराजने

अपने प्राणोंके समान दिव्य कवच ब्राह्मणको दे दिया ॥ १९ ॥

इस प्रकार विष्णुने मायासे उससे कवच ले लिया और शंखचूडका रूप धारणकर वे तुलसीके पास गये ॥ २० ॥

वहाँ जाकर मायाविशारद विष्णुने देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त उसके साथ रमण किया ॥ २१ ॥

इसी बीच प्रभु विष्णुने शिवजीको अपने वचनके पालनके निमित्त प्रेरित किया, तब शंखचूडका वध करनेके लिये शंकरने अपना प्रज्वलित शूल धारण किया ॥ २२ ॥

परात्मा शिवजीका वह विजय नामक त्रिशूल सभी दिशाओं तथा भूमिको प्रकाशित करता हुआ करोड़ों मध्याह्नकालीन सूर्यों तथा प्रलयाग्निकी अग्निशिखाके समान, दुर्धर्ष, दुर्निवार्य, व्यर्थ न जानेवाला, शत्रुओंको नष्ट करनेवाला, तेजोंका समूह, अत्यन्त उग्र, सभी शस्त्रास्त्रोंका नायक, सभी देवताओं तथा राक्षसोंके लिये दुःसह तथा महाभयंकर था ॥ २३—२५ ॥

लीलापूर्वक सारे ब्रह्माण्डको नष्ट करनेके लिये तत्पर होकर जलता हुआ वह त्रिशूल एकत्र होकर वहाँ स्थित था। शिवजीका वह त्रिशूल एक हजार धनुष लम्बा, सौ हाथ चौड़ा था। जीव एवं ब्रह्मके स्वरूप, नित्यरूप तथा किसीके द्वारा भी निर्मित न किये हुए उस त्रिशूलने आकाशमण्डलमें चक्कर काटते हुए शीघ्र ही शिवजीकी आज्ञासे शंखचूडके सिरपर गिरकर उसे क्षणमात्रमें भस्म कर दिया ॥ २६—२८ ॥

हे विप्र! इसके बाद वह त्रिशूल पुनः अपना कार्य समाप्तकर मनके वेगके समान वेगसे आकाशमार्गसे शिवजीके पास चला आया ॥ २९ ॥

उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व तथा किन्नर गाने लगे, मुनि तथा देवता प्रसन्न हो उठे और अप्सराएँ नाचने लगीं। शिवजीके ऊपर निरन्तर फूलोंकी वर्षा होने लगी तथा विष्णु, ब्रह्मा एवं इन्द्रादि देवगण शिवजीकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३०-३१ ॥

इस प्रकार दानवेन्द्र शंखचूड शिवजीकी कृपासे शापमुक्त हो गया और अपने पूर्वरूपको प्राप्त हो गया ॥ ३२ ॥

शंखचूडकी अस्थियोंसे एक प्रकारकी शंखजाति प्रकट हुई। शंखका जल शंकरजीके अतिरिक्त अन्य सभी देवताओंके लिये प्रशस्त माना गया है। विशेषकर विष्णु एवं लक्ष्मीके लिये तथा उनके सम्बन्धियोंके लिये तो शंखका जल महाप्रिय है, किंतु हे महामुने! वह शंकरजीको प्रिय नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

इस प्रकार शिवजी शंखचूडका वधकर अति प्रसन्न होकर वृषभपर आरूढ़ हो उमा, स्कन्द एवं अपने गणोंके साथ शिवलोकको चले गये ॥ ३५ ॥

विष्णु वैकुण्ठको चले गये, श्रीकृष्ण भी स्वस्थ हो गये और देवता अपना-अपना अधिकार पा गये तथा परम आनन्दसे युक्त हो गये। सारा संसार अत्यन्त शान्त हो गया। सम्पूर्ण जल विघ्नरहित हो गया, आकाश स्वच्छ हो गया तथा सम्पूर्ण पृथ्वी मंगलमयी हो गयी ॥ ३६-३७ ॥

[हे व्यास!] इस प्रकार मैंने शिवजीका चरित कह दिया, जो आनन्द प्रदान करनेवाला, सारे दुःखोंको दूर करनेवाला, लक्ष्मीकी वृद्धि करनेवाला, सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, धन्य, यश तथा आयुको बढ़ानेवाला, समस्त विघ्नोंको नष्ट करनेवाला, भुक्ति एवं मुक्तिको प्रदान करनेवाला एवं समस्त कामनाओंका फल देनेवाला है ॥ ३८-३९ ॥

जो बुद्धिमान् मनुष्य शंकरके इस चरित्रको नित्य सुनता, सुनाता, पढ़ता अथवा पढ़ाता है, वह इस लोकमें धन-धान्य, सुत तथा सुख प्राप्त करता है और सभी कामनाओंको विशेषकर शिवभक्तिको प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४०-४१ ॥

इस अतुलनीय, सभी उपद्रवोंका नाश करनेवाले,

परम ज्ञान उत्पन्न करनेवाले तथा शिवके प्रति भक्तिकी वृद्धि करनेवाले आख्यानको सुननेवाला ब्राह्मण तेजसे युक्त, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनसे सम्पन्न एवं शूद्र श्रेष्ठताको प्राप्त करता है॥ ४२-४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधवर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

शंखचूडका रूप धारणकर भगवान् विष्णुद्वारा तुलसीके शीलका हरण, तुलसीद्वारा विष्णुको पाषाण होनेका शाप देना, शंकरजीद्वारा तुलसीको सान्त्वना, शंख, तुलसी, गण्डकी एवं शालग्रामकी उत्पत्ति तथा माहात्म्यकी कथा

व्यासजी बोले—[हे मुने!] भगवान् नारायणने किस उपायसे तुलसीके साथ रमण किया, उसे आप मुझसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले तथा देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेवाले भगवान् विष्णुने शंखचूडका रूप धारणकर उसकी स्त्रीके साथ रमण किया। जगन्माता पार्वती एवं शिवकी आज्ञाका पालन करनेवाले श्रीहरि विष्णुके आनन्ददायी उस चरित्रको सुनिये॥ २-३॥

युद्धके मध्यमें आकाशवाणीको सुनकर भगवान् शिवजीसे प्रेरित हुए विष्णु शीघ्र अपनी मायासे ब्राह्मणका रूप धारणकर शंखचूडका कवच ग्रहण करके पुनः उस शंखचूडका रूप धारणकर तुलसीके घर गये। उन्होंने तुलसीके द्वारके पास दुन्दुभि बजायी और जयशब्दका उच्चारणकर उस सुन्दरीको जगाया॥ ४—६॥

यह सुनकर वह साध्वी बहुत प्रसन्न हुई और अत्यन्त आदरपूर्वक खिड़कीसे राजमार्गकी ओर देखने लगी॥ ७॥

उसने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन देकर मंगल कराया, तदनन्तर अपने पतिको आया जानकर शीघ्र श्रृंगार भी किया॥ ८॥

शंखचूडके स्वरूपवाले तथा देवकार्य करनेवाले वे मायावी विष्णु रथसे उतरकर उस देवीके भवनमें गये॥ ९॥

तब अपने स्वामीको सामने आया देखकर प्रसन्नतासे युक्त होकर उसने उनका चरणप्रक्षालन किया, प्रणाम किया और वह रोने लगी॥ १०॥

उसने उन्हें रत्नके सिंहासनपर बैठाया और कपूरसुवासित ताम्बूल प्रदान किया॥ ११॥

'आज मेरा जन्म एवं जीवन सफल हो गया, जो कि युद्धमें गये हुए अपने स्वामीको पुनः घरमें देख रही हूँ'—ऐसा कहकर वह मुसकराती हुई प्रसन्नतापूर्वक तिरछी नजरोंसे स्वामीकी ओर देखकर मधुर वाणीमें युद्धका समाचार पूछने लगी॥ १२-१३॥

तुलसी बोली—हे प्रभो! असंख्य विश्वका संहार करनेवाले वे देवाधिदेव शंकर ही हैं, जिनकी आज्ञाका पालन ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवता सर्वदा करते हैं॥ १४॥

वे तीनों देवताओंको उत्पन्न करनेवाले, त्रिगुणात्मक होते हुए निर्गुण तथा भक्तोंकी इच्छासे सगुण रूप धारण करनेवाले ब्रह्मा एवं विष्णुके भी प्रेरक हैं॥ १५॥

कैलासवासी, गणोंके स्वामी, परब्रह्म तथा सज्जनोंके रक्षक शिवजीने कुबेरकी प्रार्थनासे सगुण रूप धारण किया था॥ १६॥

जिनके एक पलमात्रमें करोड़ों ब्रह्माण्डोंका क्षय हो जाता है तथा जिनके एक क्षणभरमें विष्णु एवं ब्रह्मा व्यतीत हो जाते हैं। हे प्रभो! उन्हींके साथ आप युद्ध करने गये थे। आपने उन देवसहायक सदाशिवके साथ किस प्रकार संग्राम किया?॥ १७-१८॥

आप उन परमेश्वरको जीतकर यहाँ सकुशल लौट आये। हे प्रभो! आपकी विजय किस प्रकार हुई, उसे मुझे बताइये। तुलसीके इस प्रकारके वचनको सुनकर शंखचूडका रूप धारण किये हुए वे रमापति हँसकर अमृतमय वचन कहने लगे—॥ १९-२०॥

श्रीभगवान् बोले—जब युद्धप्रिय मैं समरभूमिमें

गया, उस समय महान् कोलाहल होने लगा और महाभयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। विजयकी कामनावाले देवता तथा दानव दोनोंका युद्ध होने लगा, उसमें बलसे दर्पित देवताओंने दैत्योंको पराजित कर दिया॥ २१-२२॥

उसके बाद मैंने बलवान् देवताओंके साथ युद्ध किया और वे देवता पराजित होकर शंकरकी शरणमें पहुँचे॥ २३॥

रुद्र भी उनकी सहायताके लिये युद्धभूमिमें आये, तब मैंने भी अपने बलके घमण्डसे उनके साथ बहुत कालतक युद्ध किया। हे प्रिये! इस प्रकार हम दोनोंका युद्ध वर्षपर्यन्त होता रहा, जिसमें हे कामिनि! सभी असुरोंका विनाश हो गया। तब स्वयं ब्रह्माजीने हम दोनोंमें प्रीति करा दी और मैंने उनके कहनेसे देवताओंका सारा अधिकार उन्हें सौंप दिया॥ २४—२६॥

इसके बाद मैं अपने घर लौट आया और शिवजी शिवलोकको चले गये। इस प्रकार सारा उपद्रव शान्त हो गया और सब लोग सुखी हो गये॥ २७॥

सनत्कुमार बोले—ऐसा कहकर जगत्पति रमानाथने शयन किया और रमासे रमापतिके समान प्रसन्नतासे उस स्त्रीके साथ रमण किया। उस साध्वीने रतिकालमें सुख, भाव और आकर्षणमें भेद देखकर सारी बातें जान लीं और उसने कहा—तुम कौन हो?॥ २८-२९॥

तुलसी बोली—तुम मुझे शीघ्र बताओ कि तुम हो कौन? तुमने मेरे साथ कपट किया और मेरे सतीत्वको नष्ट किया है, अतः मैं तुमको शाप देती हूँ॥ ३०॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] तुलसीका वचन सुनकर विष्णुने शापके भयसे लीलापूर्वक अपनी अत्यन्त मनोहर मूर्ति धारण कर ली॥ ३१॥

उस रूपको देखकर और चिह्नसे उन्हें विष्णु जानकर तथा उनसे पातिव्रतभंग होनेके कारण कुपित होकर वह तुलसी उनसे कहने लगी—॥ ३२॥

तुलसी बोली—हे विष्णो! आपमें थोड़ी-सी भी दया नहीं है, आपका मन पाषाणके समान है, मेरे पातिव्रतको भंगकर आपने मेरे स्वामीका वध कर दिया॥ ३३॥

आप पाषाणके समान अत्यन्त निर्दय एवं खल हैं, अतः मेरे शापसे आप इस समय पाषाण हो जाइये॥ ३४॥

जो लोग आपको दयासागर कहते हैं, वे भ्रममें पड़े हैं, इसमें सन्देह नहीं है। आपने बिना अपराधके दूसरेके निमित्त अपने ही भक्तका वध क्यों करवाया?॥ ३५॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यासजी!] ऐसा कहकर शंखचूडकी प्रिय पत्नी तुलसी शोकसे विकल हो रोने लगी और बार-बार बहुत विलाप करने लगी॥ ३६॥

तब उसे रोती हुई देखकर परमेश्वर विष्णुने शिवका स्मरण किया, जिनसे संसार मोहित है॥ ३७॥

तब भक्तवत्सल शंकर वहाँ प्रकट हो गये। श्रीविष्णुने उन्हें प्रणाम किया और बड़े विनयके साथ उनकी स्तुति की। विष्णुको शोकाकुल तथा शंखचूडकी पत्नीको विलाप करती हुई देखकर शंकरने नीतिसे विष्णुको तथा उस दुखियाको समझाया॥ ३८-३९॥

शिवजी बोले—हे तुलसी! मत रोओ, व्यक्तिको अपने कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। इस कर्मसागर संसारमें कोई किसीको सुख अथवा दुःख देनेवाला नहीं है। अब तुम उपस्थित इस दुःखको दूर करनेका उपाय सुनो एवं विष्णु भी इसे सुनें। जो तुमदोनोंके लिये सुखकर है, उसे मैं तुमलोगोंके सुखके लिये बतलाता हूँ॥ ४०-४१॥

हे भद्रे! तुमने [पूर्व समयमें] तपस्या की थी, उसी तपस्याका यह फल प्राप्त हुआ है, तुम्हें विष्णु प्राप्त हुए हैं, वह अन्यथा कैसे हो सकता है?॥ ४२॥

अब तुम इस शरीरको त्यागकर दिव्य शरीर धारणकर महालक्ष्मीके समान हो जाओ और विष्णुके साथ नित्य रमण करो। तुम्हारी यह छोड़ी हुई काया एक नदीके रूपमें परिवर्तित होगी और वह भारतमें पुण्यस्वरूपिणी गण्डकी नामसे विख्यात होगी। हे महादेवि! तुम मेरे वरदानसे बहुत समयतक देवपूजनके साधनके लिये प्रधानभूत तुलसी वृक्षरूपमें उत्पन्न होगी॥ ४३—४५॥

तुम स्वर्ग, मर्त्य एवं पाताल—तीनों लोकोंमें विष्णुके साथ निवास करो। हे सुन्दरि! तुम पुष्पवृक्षोंमें उत्तम तुलसी वृक्ष बन जाओ। तुम सभी वृक्षोंकी अधिष्ठात्री दिव्यरूपधारिणी देवीके रूपमें वैकुण्ठमें विष्णुके साथ एकान्तमें नित्यक्रीड़ा करोगी और भारतमें तुम गण्डकीके रूपमें रहोगी, वहाँपर भी नदियोंकी अधिष्ठात्री देवी होकर सभीको अत्यन्त पुण्य प्रदान करोगी तथा विष्णुके अंशभूत लवणसमुद्रकी पत्नी बनोगी॥ ४६—४८॥

भारतमें उसी गण्डकीके किनारे ये विष्णु भी तुम्हारे शापसे पाषाणरूपमें स्थित रहेंगे। वहाँपर तीखे दाँतवाले तथा भयंकर करोड़ों कीड़े उन शिलाओंको काटकर उसके छिद्रमें विष्णुके चक्रका निर्माण करेंगे॥ ४९-५०॥

उन कीटोंके द्वारा छिद्र की गयी शालग्रामशिला अत्यन्त पुण्य प्रदान करनेवाली होगी। चक्रोंके भेदसे उन शिलाओंके लक्ष्मीनारायण आदि नाम होंगे॥ ५१॥

उस शालग्रामशिलासे जो लोग तुझ तुलसीका संयोग करायेंगे, उन्हें अत्यन्त पुण्य प्राप्त होगा॥ ५२॥

हे भद्रे! जो शालग्रामशिलासे तुलसीपत्रको अलग करेगा, दूसरे जन्ममें उसका स्त्रीसे वियोग होगा॥ ५३॥

जो शंखसे तुलसीपत्रका विच्छेद करेगा, वह सात जन्मपर्यन्त भार्याहीन रहेगा तथा रोगी होगा॥ ५४॥

इस प्रकार जो महाज्ञानी शालग्रामशिला, तुलसी तथा शंखको एक स्थानपर रखेगा, वह श्रीहरिका प्रिय होगा। तुम एक मन्वन्तरपर्यन्त शंखचूडकी पत्नी रही, शंखचूडके साथ यह तुम्हारा वियोग केवल इसी समय तुम्हें दुःख देनेके लिये हुआ है॥ ५५-५६॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] ऐसा कहकर शंकरजीने शालग्रामशिला तथा तुलसीके महान् पुण्य देनेवाले माहात्म्यका वर्णन किया॥ ५७॥

इस प्रकार उस तुलसी तथा श्रीविष्णुको प्रसन्न करके सज्जनोंका सदा कल्याण करनेवाले शंकरजी अन्तर्धान होकर अपने लोक चले गये। शिवजीकी यह बात सुनकर तुलसी प्रसन्न हो गयी और [उसी समय] उस शरीरको छोड़कर दिव्य देहको प्राप्त हो गयी॥ ५८-५९॥

कमलापति विष्णु भी उसीके साथ वैकुण्ठ चले गये और उसी क्षण तुलसीके द्वारा परित्यक्त उस शरीरसे गण्डकी नदीकी उत्पत्ति हुई॥ ६०॥

भगवान् विष्णु भी उसके तटपर मनुष्योंका कल्याण करनेवाले शालग्रामशिलारूप हो गये। हे मुने! उसमें कीट अनेक प्रकारके छिद्र करते हैं॥ ६१॥

जो शिलाएँ जलमें पड़ी रहती हैं, वे अत्यन्त पुण्यदायक होती हैं एवं जो स्थलमें रहती हैं, उन्हें पिंगला नामवाली जानना चाहिये, वे मनुष्योंको सन्ताप ही प्रदान करती हैं॥ ६२॥

[हे मुने!] मैंने आपके प्रश्नोंके अनुसार मनुष्योंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तथा पुण्य प्रदान करनेवाले सम्पूर्ण शिवचरित्रको कह दिया। विष्णुके माहात्म्यसे मिश्रित आख्यान, जिसे मैंने कहा है, वह भुक्ति-मुक्ति तथा पुण्य देनेवाला है, आगे [हे व्यास!] अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ६३-६४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शंखचूडवधोपाख्यानके अन्तर्गत तुलसीशापवर्णन नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

अन्धकासुरकी उत्पत्तिकी कथा, शिवके वरदानसे हिरण्याक्षद्वारा अन्धकको पुत्ररूपमें प्राप्त करना, हिरण्याक्षद्वारा पृथ्वीको पाताललोकमें ले जाना, भगवान् विष्णुद्वारा वाराहरूप धारणकर हिरण्याक्षका वधकर पृथ्वीको यथास्थान स्थापित करना

नारदजी बोले—शंखचूडके वधसे सम्बद्ध महादेवजीके चरित्रको सुनकर मैं उसी प्रकार तृप्त नहीं हो रहा हूँ, जिस प्रकार कोई व्यक्ति अमृतका पानकर तृप्त नहीं होता। इसलिये हे ब्रह्मन्! मायाका आश्रय लेकर भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाली उत्तम लीला करनेवाले उन महात्मा महेशका जो चरित है, उसे आप मुझसे कहिये॥ १-२॥

ब्रह्माजी बोले—शंखचूडका वध सुननेके पश्चात् सत्यवतीसुत व्यासजीने ब्रह्मपुत्र मुनीश्वर सनत्कुमारसे भी यही बात पूछी थी। व्यासकी प्रशंसा करके सनत्कुमारने मंगलदायक महेश्वरचरित्रको कहा था॥ ३-४॥

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] आप शंकरजीके मंगलदायक उस चरित्रको सुनिये, जिसमें अन्धकने परमात्मा शंकरके गाणपत्यपदको प्राप्त किया॥ ५॥

हे मुनीश्वर! पहले तो उसने शंकरजीसे घोर युद्ध किया। उसके बाद अपने सात्त्विक भावसे बारंबार उन्हें प्रसन्न किया। शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले, परम भक्तवत्सल तथा नाना प्रकारकी लीला करनेवाले शंकरका माहात्म्य अद्भुत है। शंकरके इस प्रकारके माहात्म्यको सुनकर सत्यवतीसुत व्यासजीने मुनीश्वर सनत्कुमारजीको प्रणाम किया, फिर भक्तिभावसे विनम्र हो ब्रह्मपुत्र मुनीश्वरसे महान् अर्थपूर्ण वाणीमें कहा— ॥ ६—८ ॥

व्यासजी बोले—हे भगवन्! हे मुनीश्वर! यह अन्धक कौन था? इस पृथ्वीपर उसने किसके वंशमें जन्म लिया? वह किस कारणसे इतना बलवान् तथा महात्मा हुआ तथा वह किस नामवाला तथा किसका पुत्र था?॥ ९ ॥

हे भगवन्! ब्रह्मपुत्र! अब आप इन सारे रहस्योंका वर्णन कीजिये। वैसे तो अनन्तज्ञानसम्पन्न महेशपुत्र स्कन्दके द्वारा मैं इन बातोंको जानता हूँ॥ १० ॥

महातेजस्वी शंकरकी कृपासे उसने गाणपत्य पदको किस प्रकार प्राप्त किया। वस्तुतः वह अन्धक महाधन्य है, जो उसे गाणपत्यकी प्राप्ति हुई॥ ११ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! व्यासजीके इस प्रकारके वचनको सुनकर ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारने महामंगलदायक शिवजीके चरित्रको सुननेकी इच्छावाले शुकदेवजीके पिता [व्यास]-से कहा॥ १२ ॥

सनत्कुमार बोले—किसी समय देवसम्राट् भक्तवत्सल भगवान् शंकर अपने गणों तथा पार्वतीको साथ लेकर कैलाससे विहार करनेके लिये काशी आये॥ १३ ॥

उन्होंने काशीको अपनी राजधानी बनाया, भैरवको उसका रक्षक नियुक्त किया तथा पार्वतीके साथ मनुष्योंको आनन्द देनेवाली नाना प्रकारकी लीलाएँ करने लगे॥ १४ ॥

किसी समय वरदानके कारण वे अपने गणोंके साथ मन्दराचलपर गये और वहाँपर पार्वतीके साथ विहार करनेमें प्रवृत्त हो गये। उसके बाद पार्वतीने नर्मक्रीडा [प्रेम-परिहास] करते हुए मन्दराचलपर पूर्व दिशाकी ओर मुखकर बैठे हुए चण्ड पराक्रमवाले सदाशिवके नेत्र लीलापूर्वक बन्द कर दिये॥ १५-१६ ॥

मूँगे तथा स्वर्णकमलकी कान्तिसे युक्त अपनी दोनों भुजाओंसे जब पार्वतीने उनके नेत्र बन्द कर दिये, तब शिवजीके नेत्रोंके बन्द हो जानेपर क्षणभरमें घोर अन्धकार छा गया। तब सदाशिवके ललाटका स्पर्श करते ही उनके ललाटपर स्थित अग्निकी उष्णतासे पार्वतीके दोनों हाथोंसे स्वेदबिन्दु टपकने लगे॥ १७-१८ ॥

तब उससे एक बालक उत्पन्न हुआ, जो भयंकर, विकराल मुखवाला, महाक्रोधी, कृतघ्न, अन्धा, जटाधारी, कृष्णवर्णवाला, कुरूप, मनुष्यसे भिन्न स्वरूपवाला, विकृत तथा बहुत रोमोंसे युक्त था॥ १९ ॥

उत्पन्न होते ही उसने गाना, हँसना, नाचना, रोना तथा जीभ चाटना प्रारम्भ किया और वह महाघोर शब्द करने लगा। विचित्र दर्शनवाले उस बालकके उत्पन्न होते ही शंकरजीने गौरीसे हँसते हुए कहा— ॥ २० ॥

श्रीमहेश बोले—हे प्रिये! तुमने मेरे नेत्रोंको बन्दकर जो कर्म किया है, अब उससे भयभीत क्यों हो रही हो? महादेवजीके इस वचनको सुनकर हँसती हुई गौरीने उनके नेत्रोंको छोड़ दिया। तब प्रकाश हो जानेपर वह अन्धा पुरुष अन्धकारसे भी अधिक घोर रूपवाला हो गया। तब इस प्रकारके रूपवाले उस पुरुषको देखकर गौरीने महेश्वरसे पूछा— ॥ २१-२२ ॥

गौरी बोलीं—हे भगवन्! हम दोनोंके सामने यह घोर, भयंकर तथा विकृताकार कौन उत्पन्न हो गया है? आप मुझसे सत्य कहिये, किस कारणसे तथा किसने इसकी सृष्टि की है, यह किसका पुत्र है?॥ २३ ॥

सनत्कुमार बोले—लीला करनेवाले एवं अन्धकको उत्पन्न करनेवाले भगवान् शंकरने लीला करनेवाली त्रिजगज्जननी प्रिया पार्वतीकी बात सुनकर हँसते हुए कहा— ॥ २४ ॥

महेश बोले—अद्भुत चरित्र करनेवाली हे अम्बिके! तुम्हारे द्वारा मेरे नेत्रोंके बन्द कर दिये जानेपर तुम्हारे हाथोंके स्वेदकणसे उत्पन्न यह अद्भुत महापराक्रमशाली अन्धक नामवाला असुर प्रकट हुआ है॥ २५ ॥

तुम्हीं इसकी जन्मदात्री हो, अतः हे आर्ये! तुम्हीं दयापूर्वक अपनी सखियोंके साथ गणोंसे इसकी रक्षा करो और बुद्धिसे विचारकर इसके विषयमें जो करना चाहती हो, उसे करो॥ २६ ॥

सनत्कुमार बोले—तदनन्तर अपने पतिके इस वचनको

सुनकर गौरी [अपनी] सखियोंके साथ दयाभावसे अनेक प्रकारके उपायोंसे अपने पुत्रकी रक्षा करने लगीं॥ २७॥

एक बार शिशिरकाल उपस्थित होनेपर अपने बड़े भाईकी सन्ततिवृद्धिको देखकर अपनी स्त्रीसे प्रेरित होकर पुत्रकी कामनावाला हिरण्याक्ष [तपस्या करनेके लिये] वहाँ पहुँचा॥ २८॥

वह कश्यपपुत्र असुर वनका आश्रय लेकर क्रोधादि दोषोंको जीतकर पुत्रप्राप्तिके निमित्त काष्ठके समान स्थिर होकर शंकरजीके दर्शनहेतु तप करने लगा॥ २९॥

हे द्विजेन्द्र! तब उसकी तपस्यासे पूर्ण रूपसे प्रसन्न होकर शंकरजी वर देनेके लिये गये। उस स्थानपर आकर वे वृषध्वज महेश उस दैत्यश्रेष्ठसे बोले—॥ ३०॥

महेश बोले—हे दैत्यराज! तुम अपनी इन्द्रियोंको कष्ट मत दो, तुम किस निमित्त यह व्रत कर रहे हो। तुम अपना मनोरथ कहो, मैं शंकर तुम्हें वर दूँगा। तुम जो चाहते हो, वह सब मैं दूँगा॥ ३१॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीका यह सरस वचन सुनकर वह दैत्य हिरण्याक्ष अत्यन्त प्रसन्न हो गया और हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर एवं नमस्कार करके विविध स्तुतिपूर्वक शंकरजीसे कहने लगा—॥ ३२॥

हिरण्याक्ष बोला—हे चन्द्रमौले! मुझे दैत्यवंशके योग्य एवं अति पराक्रमी कोई पुत्र नहीं है, उसीके लिये मैं इस तपस्यामें प्रवृत्त हुआ हूँ। अत: हे देवेश! आप मुझे महाबलवान् पुत्र प्रदान कीजिये; क्योंकि मेरे भाईको प्रह्लाद आदि पाँच महाबलवान् पुत्र हैं, मुझे पुत्र नहीं है, मैं वंशहीन हो गया हूँ, अत: मेरे इस राज्यका भोग कौन करेगा? जो अपने बाहुबलसे दूसरेके राज्यको अपने अधिकारमें करके उसका भोग करता है अथवा पिताके राज्यका उपभोग करता है, वही इस लोकमें तथा परलोकमें पुत्र कहा जाता है और उसी पुत्रसे पिता भी पुत्रवान् होता है॥ ३३—३५॥

वरिष्ठ धर्मज्ञ ऋषियोंने पुत्रवानोंकी ही ऊर्ध्वगति कही है, इसीलिये सभी प्राणी उसीके लिये कामना करते हैं, अन्यथा मरनेके पश्चात् वह तेज पशुओंमें चला जाता है अर्थात् व्यर्थ हो जाता है। पुत्रहीनको उत्तम लोक नहीं प्राप्त होता है, इसलिये लोग उसके लिये इच्छा रखते हैं और देवताओंके चरण-कमलकी आराधनाकर उनसे एक पुत्रकी भी याचना करते हैं॥ ३६-३७॥

सनत्कुमार बोले—तब कृपालु शंकर दैत्यराजके उस वचनको सुनकर प्रसन्न हो गये और उससे बोले—हे दैत्यराज! यद्यपि तुम्हारे वीर्यसे पुत्र उत्पन्न नहीं होगा, फिर भी मैं तुम्हें पुत्र प्रदान करता हूँ॥ ३८॥

तुम अन्धक नामक मेरे पुत्रका वरण कर लो, जो तुम्हारे ही समान बलवान् और अजेय है। तुम सब दु:खोंको त्यागकर उसीको अपना पुत्र मान लो॥ ३९॥

इस प्रकार कहकर प्रसन्न होकर पार्वतीसहित त्रिपुरारि उग्ररूप महात्मा शंकरने उस हिरण्याक्षको पुत्र प्रदान कर दिया॥ ४०॥

इसके बाद वह महात्मा दैत्य शंकरसे पुत्र प्राप्तकर यथाक्रम उनकी प्रदक्षिणाकर तथा अनेक स्तोत्रोंसे रुद्रकी स्तुतिकर प्रसन्न होकर अपने राज्यको चला गया॥ ४१॥

तदनन्तर प्रचण्ड पराक्रमी वह दैत्य सदाशिवसे पुत्र प्राप्तकर सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर इस पृथ्वीको अपने देश पातालमें लेकर चला गया॥ ४२॥

उसके अनन्तर देवताओं, मुनियों एवं सिद्धोंने सर्वात्मक, यज्ञमय तथा महाविकराल प्रधान वाराहरूपका आश्रय लेकर अनन्त पराक्रमवाले विष्णुका आराधन किया॥ ४३॥

तब अपनी नासिकाके विविध प्रहारोंसे पृथ्वीको विदीर्णकर पातालमें प्रविष्ट हो तुण्डके द्वारा तथा अखण्डित दाढ़ोंके अग्रभागसे सैकड़ों दैत्योंको चूर्ण करके वज्रके

समान कठोर पादप्रहारोंसे निशाचरोंकी सेनाओंको मथकर करोड़ों सूर्योंके समान जाज्वल्यमान अपने सुदर्शनसे अद्भुत तथा प्रचण्ड तेजवाले विष्णुने हिरण्याक्षके तेजस्वी सिरको काट दिया और दैत्योंको जला भी दिया। हिरण्याक्षके मर जानेपर उन्होंने प्रसन्न होकर अन्धकको राज्यपदपर अभिषिक्त कर दिया॥ ४४—४६ ॥

इस प्रकार महात्मा विष्णु पातालतलसे पृथ्वीका उद्धारकर अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे पृथ्वीको पुनः अपने स्थानपर प्रतिष्ठितकर परम प्रसन्न हो गये और पूर्वकी भाँति उसकी रक्षा करने लगे। प्रसन्न हुए समस्त देवता, मुनि तथा ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की। उसके बाद उग्र शरीरवाले तथा उत्तम कार्य करनेवाले वराहरूपधारी विष्णु अपने लोकको चले गये॥ ४७-४८ ॥

इस प्रकार वराहरूप विष्णुदेवके द्वारा दैत्यराज हिरण्याक्षके मारे जानेसे सभी देवता, मुनि तथा अन्य सभी जीव सुखी हो गये॥ ४९ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें हिरण्याक्षवधवर्णन नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुकी तपस्या, ब्रह्मासे वरदान पाकर उसका अत्याचार, भगवान् नृसिंहद्वारा उसका वध और प्रह्लादको राज्यप्राप्ति

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमार! देवताओंसे द्रोह करनेवाले उस हिरण्याक्षके मार दिये जानेपर उसके ज्येष्ठ भ्राता महान् असुर [हिरण्यकशिपु]-ने क्या किया? हे मुनीश्वर! मुझे इस वृत्तान्तको सुननेके लिये महान् कौतूहल हो रहा है। हे ब्रह्मपुत्र! कृपा करके मुझे उसे सुनाइये, आपको नमस्कार है॥ १-२ ॥

ब्रह्माजी बोले—व्यासजीके वचनको सुनकर सनत्कुमार शिवके चरणकमलोंका स्मरण करके कहने लगे—॥ ३ ॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! वराहरूप धारण करनेवाले [भगवान्] विष्णुके द्वारा भाई हिरण्याक्षका वध कर दिये जानेपर हिरण्यकशिपु क्रोध एवं शोकसे सन्तप्त हो उठा। इसके बाद विष्णुसे वैरमें रुचि रखनेवाले उस हिरण्यकशिपुने प्रजाओंको कष्ट देनेके लिये निर्दयी वीर असुरोंको आज्ञा दी॥ ४-५ ॥

तब वे निर्दयी असुर अपने स्वामीकी आज्ञा प्राप्तकर देवताओं तथा प्रजाओंको कष्ट देने लगे॥ ६ ॥

इस प्रकार जब दुष्ट बुद्धिवाले उन असुरोंने लोकका उत्पीड़न प्रारम्भ किया, तब देवतालोग स्वर्ग छोड़कर अलक्षित होकर पृथ्वीपर घूमने लगे॥ ७॥

हिरण्यकशिपुने भी भाईके मर जानेसे दुःखित होकर उसे तिलांजलि आदि प्रदानकर उसकी स्त्री आदिको सान्त्वना प्रदान की॥ ८ ॥

इसके बाद वह दैत्यराज अपनेको अजर, अमर, अजेय और प्रतिद्वन्द्वीरहित जानकर एकच्छत्र राज्य करने लगा॥ ९ ॥

वह मन्दराचलकी गुफामें पैरके अँगूठेमात्रको पृथ्वीपर टेककर दोनों भुजाओंको ऊपर उठाकर आकाशकी ओर देखते हुए अत्यन्त कठोर तप करने लगा॥ १० ॥

इस प्रकार जब वह असुर तप कर रहा था, तब सभी बलवान् देवताओंने समस्त दैत्योंको जीतकर अपना-अपना पद पुनः प्राप्त कर लिया॥ ११ ॥

[तपस्या करते हुए] उस हिरण्यकशिपुके सिरसे धूमसहित तपोमय अग्नि प्रकट हुई। वह तिरछे, ऊपर, नीचे तथा चारों ओरसे फैलकर सभी लोकोंको तपाने लगी। उससे तप्त होकर देवगण स्वर्गलोक छोड़कर ब्रह्मलोक चले गये। उसकी तपस्यासे विकृत मुखवाले उन देवताओंने ब्रह्माजीसे सारा वृत्तान्त कहा॥ १२-१३ ॥

हे व्यास! उन देवताओंके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर स्वयम्भू ब्रह्माजी भृगु, दक्ष आदिको अपने साथ लेकर उस दैत्येन्द्रके आश्रमपर गये। उसके बाद अपनी तपस्यासे सारे लोकोंको सन्तप्तकर उस दैत्यराजने वर देनेके लिये आये हुए ब्रह्माजीको देखा। पितामह ब्रह्माने भी उससे कहा—

वर माँग लो। तब विधाताका मधुर वचन सुनकर वह बुद्धिमान् यह वचन कहने लगा— ॥ १४-१५ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—हे भगवन्! हे प्रजेश! हे पितामह! हे देव! शस्त्र, अस्त्र, पाश, वज्र, सूखे वृक्ष, पहाड़, जल, अग्नि तथा शत्रुओंके प्रहारसे और देव, दैत्य, मुनि, सिद्ध तथा आपके द्वारा रचित सृष्टिके किसी भी जीवसे मुझे मृत्युका भय न हो, हे प्रजेश! अधिक क्या कहूँ, स्वर्गमें, पृथ्वीपर, रात एवं दिनमें, ऊपर-नीचे कहीं भी मेरी मृत्यु न हो॥ १६-१७॥

सनत्कुमार बोले—उस दैत्यके इस प्रकारके वचनको सुनकर मनमें विष्णुको प्रणाम करके दयासे युक्त होकर ब्रह्माजी उससे बोले—हे दैत्येन्द्र! मैं [तुमपर] प्रसन्न हूँ, तुम सब कुछ प्राप्त करो॥ १८॥

[हे दैत्येन्द्र!] अब तुम तपस्या करना छोड़ो; क्योंकि तुम्हारा मनोरथ परिपूर्ण हो गया। उठो, छियानबे हजार वर्षतक दानवोंका राज्य करो। यह वाणी सुनकर वह हर्षित हो गया। उसके अनन्तर ब्रह्माजीके द्वारा अभिषिक्त वह दैत्य प्रमत्त होकर सभी धर्मोंको नष्ट करके और देवताओंको भी युद्धमें जीतकर तीनों लोकोंको नष्ट करनेका विचार करने लगा॥ १९-२०॥

तब उस दैत्यराजसे पीड़ित हुए इन्द्रादि सभी देवता भयसे व्याकुल हो पितामहकी आज्ञा प्राप्त करके क्षीरसागरमें गये, जहाँ विष्णु शयन करते हैं॥ २१॥

उन्होंने विष्णुको अपने लिये सुखदायक जानकर अनेक प्रकारके वचनोंसे उनकी स्तुति करके प्रसन्न हुए विष्णुसे अपना सारा दु:ख निवेदित किया॥ २२॥

तब प्रसन्न विष्णुने उनका समस्त दु:ख सुनकर उन्हें अनेक वरदान दिये और शय्यासे उठकर अग्निके समान तेजस्वी उन्होंने अपने अनुरूप नाना प्रकारकी वाणियोंसे आश्वासन देते हुए कहा कि हे देवताओ! आपलोग प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको जायँ; मैं उस दैत्यका वध अवश्य करूँगा॥ २३-२४॥

हे मुनीश! विष्णुका वचन सुनकर इन्द्र आदि सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये और हिरण्याक्षके भाईको मरा हुआ मानकर अपने-अपने लोकको चले गये॥ २५॥

तदनन्तर महाजटायुक्त, विकराल, तीखे दाँतस्वरूप आयुधवाले, तीक्ष्ण नखोंवाले, सुन्दर नासिकावाले, पूर्णत: खुले हुए मुखवाले, करोड़ों सूर्यके समान जाज्वल्यमान, अत्यन्त भयंकर, अधिक क्या कहें प्रलयकालीन अग्निके समान प्रभाववाले वे महात्मा विष्णु जगन्मय नृसिंहका रूप धारण करके सूर्यके अस्त होते समय असुरोंकी नगरीमें गये॥ २६-२७॥

अद्भुत पराक्रमवाले नृसिंह प्रबल दैत्योंके साथ युद्ध करते हुए उन्हें मारकर शेष दैत्योंको पकड़कर घुमाने लगे और उन्होंने उन असुरोंको पटककर मार डाला॥ २८॥

दैत्योंने उन अतुल प्रभाववाले नृसिंहको देखा और उन्होंने पुन: युद्ध करना प्रारम्भ किया। हिरण्यकशिपुके प्रह्लाद नामक पुत्रने नृसिंहको देखकर राजासे कहा—यह मृगेन्द्र जगन्मय विष्णु तो नहीं हैं?॥ २९॥

प्रह्लाद बोले—ये भगवान् अनन्त नृसिंहका रूप धारणकर आपके नगरमें प्रविष्ट हुए हैं, अत: आप युद्ध छोड़कर उनकी शरणमें जाइये, मैं इस सिंहकी विकराल मूर्तिको देख रहा हूँ॥ ३०॥

[हे दैत्येन्द्र!] इनसे बढ़कर इस जगत्‌में और कोई योद्धा नहीं है, अत: इनकी प्रार्थनाकर आप राज्य करें। तब अपने पुत्रकी बात सुनकर दुरात्मा उससे बोला—हे पुत्र! क्या तुम डर गये हो?॥ ३१॥

पुत्रसे इस प्रकार कहकर दैत्योंके स्वामी उस राजाने महावीर श्रेष्ठ दैत्योंको आज्ञा दी कि हे वीरो! इस विकृत भृकुटी तथा नेत्रवाले नृसिंहको पकड़ लो॥ ३२॥

तब उसकी आज्ञासे पकड़नेकी इच्छावाले दैत्यश्रेष्ठ उस सिंहकी ओर जाने लगे, किंतु वे क्षणभरमें इस प्रकार दग्ध हो गये, जैसे रूपकी अभिलाषावाले पतिंगे अग्निके समीप जाते ही जल जाते हैं। उन दैत्योंके दग्ध हो जानेपर वह दैत्यराज स्वयं सभी अस्त्र, शस्त्र, शक्ति, पाश, अंकुश, अग्नि आदिके द्वारा नृसिंहसे संग्राम करने लगा॥ ३३-३४॥

हे व्यास! इस प्रकार शस्त्र धारणकर गर्जनाकर क्रोधपूर्वक परस्पर युद्ध करते हुए उन दोनों महावीरोंका ब्रह्माके एक दिनके बराबर समय व्यतीत हो गया॥ ३५॥

उसके बाद अनेक भुजाओंको धारणकर चारों ओरसे युद्ध करते हुए उन नृसिंहको देखकर वह दैत्य पुन: उनसे सहसा भिड़ गया॥ ३६॥

तब वह महादैत्य नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे अत्यन्त दु:सह संग्राम करके उन शस्त्रास्त्रोंके क्षीण हो जानेपर शूल लेकर नृसिंहपर झपट पड़ा॥ ३७॥

इसके बाद नृसिंहने पर्वतके समान अपनी अनेक कठोर भुजाओंसे उसे पकड़ लिया और भुजाओंके मध्य दोनों जानुओंपर उस दानवको रखकर मर्मभेदी नखांकुरोंसे उसके हृत्कमलको फाड़कर उसे लहूलुहान करके उसके सभी अंगोंको चूर्ण कर डाला। प्राणोंसे रहित हो जानेपर वह उस समय काष्ठके समान हो गया॥ ३८-३९॥

उस देवशत्रुके मारे जानेपर अद्भुत पराक्रमवाले विष्णु प्रसन्न होकर प्रणाम किये हुए प्रह्लादको बुलाकर उसे राज्यपर अभिषिक्त करनेके अनन्तर अन्तर्धान हो गये। हे विप्र! तब अत्यन्त हर्षित पितामहादि समस्त देवता अपना कार्य पूर्ण कर चुके स्तुत्य भगवान् विष्णुको एवं उस दिशाकी ओर प्रणामकर अपने-अपने धामको चले गये। [हे व्यास!] मैंने प्रसंगवश रुद्रसे अन्धकका जन्म, वराहसे हिरण्याक्षकी मृत्यु, नृसिंहसे उसके भाई हिरण्यकशिपुका वध एवं प्रह्लादकी राज्यप्राप्ति—इन सबका वर्णन किया॥ ४०—४२॥

हे द्विजवर्य! अब आप शिवजीसे प्राप्त अन्धकके पराक्रम, शिवसे उसके युद्ध तथा बादमें उसकी शिवजीसे गणाधिपत्यकी प्राप्तिको मुझसे सुनिये॥ ४३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें गणाधिपत्यप्राप्ति-अन्धकजन्म-हिरण्यनेत्र-हिरण्यकशिपुवधवर्णन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

अन्धकासुरकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा उसे अनेक वरोंकी प्राप्ति, त्रिलोकीको जीतकर उसका स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त होना, मन्त्रियोंद्वारा पार्वतीके सौन्दर्यको सुनकर मुग्ध हो शिवके पास सन्देश भेजना और शिवका उत्तर सुनकर क्रुद्ध हो युद्धके लिये उद्योग करना

सनत्कुमार बोले—किसी समय जब हिरण्याक्षपुत्र अन्धक भाइयोंके साथ खेल रहा था, तब क्रीड़ामें आसक्त तथा मदान्ध उसके भाइयोंने [उपहास करते हुए] उससे कहा—हे अन्धक! तुम्हें राज्यसे क्या प्रयोजन?॥ १॥

[तुम्हारा पिता] हिरण्याक्ष निश्चय ही बड़ा मूर्ख था, जिसने घोर तपस्याके द्वारा शिवजीको प्रसन्नकर तुम्हारे-जैसा कलहप्रिय, अन्धा, विकृत एवं कुरूप पुत्र प्राप्त किया। तुम निश्चय ही राज्यके भागी नहीं हो। क्या दूसरेसे उत्पन्न हुआ व्यक्ति राज्यका अधिकारी बन सकता है? तुम्हीं विचार करो, उसके अधिकारी तो सचमुच हमलोग ही हैं॥ २-३॥

सनत्कुमार बोले—उनके उन वचनोंको वह बुद्धिसे स्वयं विचार करके दीन हो गया और उन्हें नाना प्रकारके वचनोंसे सान्त्वना देकर रातमें ही अकेले निर्जन वनको चला गया। वहाँ निराहार रहकर वह एक पैरपर खड़ा हो दोनों भुजाओंको उठाकर दस हजार वर्षपर्यन्त घोर तप एवं मन्त्रका जप करने लगा, जो देवता एवं राक्षसोंसे भी सम्भव नहीं था। वह अग्नि जलाकर तीक्ष्ण शस्त्रसे अपने शरीरसे मांस काटकर वर्षपर्यन्त प्रतिदिन मन्त्रपूर्वक रक्तयुक्त मांसका होम करने लगा॥ ४—६॥

जब उसके शरीरमें मांस नहीं रह गया, केवल स्नायु एवं अस्थिमात्र शेष रह गया, समस्त रक्त नष्ट हो गया, तब उसने अपने शरीरको ही अग्निमें डाल देनेका विचार किया। उसके अनन्तर सभी देवता अत्यन्त विस्मित एवं भयभीत होकर उसकी ओर देखने लगे, तब उन देवताओंने ब्रह्माजीको नमस्कारकर अनेक स्तुतियोंसे शीघ्र ही उन्हें प्रसन्न किया। ब्रह्माने उसे तपस्यासे विरत करके कहा—हे दानव! आज तुम वर माँगो, समस्त लोकमें जो दुर्लभ है एवं जिसकी प्राप्तिके लिये तुम इच्छुक हो, उस वरको मुझसे प्राप्त कर लो॥ ७—९॥

ब्रह्माके इस वचनको सुनकर दीन एवं विनम्र होकर उस दैत्यने कहा—हे ब्रह्मन्! प्रह्लाद आदि मेरे जिन निष्ठुर

भाइयोंने मेरा राज्य छीन लिया है, वे मेरे सेवक हों॥ १०॥

मुझ अन्धेको दिव्य नेत्रकी प्राप्ति हो जाय एवं इन्द्रादि देवता मुझे कर प्रदान करें। मेरी मृत्यु देव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, सर्प, राक्षस, मनुष्य, दैत्योंके शत्रु श्रीनारायण, आदि किसी प्राणी तथा सर्वमय शंकरसे भी न हो। उसके उस कठिन वचनको सुनकर ब्रह्माजी शंकित हो उससे कहने लगे— ॥ ११-१२॥

ब्रह्माजी बोले—हे दैत्येन्द्र! यह सब पूर्ण होगा, किंतु अपनी मृत्युका कोई कारण अवश्य वरण करो; क्योंकि न तो ऐसा हुआ है और न होगा, जो कालके मुखमें प्रविष्ट न हुआ हो॥ १३॥

अत: आप-जैसे सत्पुरुष अत्यन्त दीर्घ जीवनकी इच्छाका त्याग कर दें। ब्रह्माके इस अनुनयपूर्ण वचनको सुनकर वह दैत्य पुन: कहने लगा— ॥ १४॥

अन्धक बोला—[हे ब्रह्मदेव!] तीनों कालोंमें जितनी भी श्रेष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ स्त्रियाँ हैं, उन सभीमें जो रत्नस्वरूप सर्वश्रेष्ठ हो, वही मेरी माताके समान हो। हे भगवन्! हे स्वयम्भू! जो मनुष्यलोकके लिये दुर्लभ तथा मन, वाणी और शरीरसे सर्वथा अगम्य हो, जब मैं दैत्येन्द्रभावसे उसकी कामना करूँ, तब मेरा नाश हो जाय॥ १५-१६॥

उसका वचन सुनकर ब्रह्माजीने आश्चर्यचकित हो शिवके चरणकमलोंका स्मरण किया और शम्भुकी आज्ञा प्राप्त करके उस अन्धकसे शीघ्र कहा— ॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—हे दैत्य! तुम जो भी अभिलाषा करते हो, तुम्हारी वे सभी कामनाएँ पूर्ण होंगी। हे दैत्येन्द्र! अपना अभीष्ट प्राप्त करो और वीरोंके साथ सदा युद्ध करो॥ १८॥

हे मुनीश्वर! ब्रह्माजीके ऐसे वचन सुनकर स्नायु तथा अस्थिमात्रशेष वह हिरण्याक्षपुत्र अन्धक ब्रह्माजीको भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन प्रभुसे कहने लगा— ॥ १९॥

अन्धक बोला—हे विभो! मैं इस विकृत शरीरसे शत्रुओंकी सेनामें प्रविष्ट होकर किस प्रकार युद्ध कर सकता हूँ? अत: अपने पवित्र हाथसे मुझे स्पर्श कीजिये और स्नायु तथा अस्थिशेष इस शरीरको शीघ्र ही मांससे पुष्ट कर दीजिये॥ २०॥

सनत्कुमार बोले—उसका वचन सुनकर वे ब्रह्मा उसके शरीरका स्पर्श करके मुनियों तथा सिद्धोंसे पूजित होते हुए देवेश्वरोंके साथ अपने धामको चले गये॥ २१॥

ब्रह्माके स्पर्शमात्रसे ही वह दैत्यराज सम्पूर्ण शरीरवाला तथा बलसम्पन्न हो गया। वह नेत्रयुक्त तथा सुन्दर हो गया और प्रसन्न होकर अपने नगरमें प्रविष्ट हुआ॥ २२॥

तदनन्तर प्रह्लाद आदि सभी दैत्येन्द्र उसे वर प्राप्तकर आया हुआ समझकर सम्पूर्ण राज्य उसके लिये छोड़कर उसके अधीन होकर उसके सेवक हो गये॥ २३॥

तदनन्तर अन्धकने अपने भृत्यों एवं सेनाओंके साथ विजयकी इच्छासे स्वर्गकी ओर प्रस्थान किया और वहाँ युद्धमें समस्त देवताओंको जीतकर वज्रको धारण करनेवाले इन्द्रको भी करदाता बना दिया। उसने नागों, पक्षियों, बड़े-बड़े राक्षसों, गन्धर्वों, यक्षों, मनुष्यों, पर्वतों, वृक्षों एवं सिंहादि समस्त पशुओंको भी युद्धमें जीत लिया॥ २४-२५॥

उसने इस चराचर त्रैलोक्यपर अधिकार करके उसे अपने वशमें कर लिया। इसके बाद अपने अनुकूल सुन्दर हजारों स्त्रियोंके साथ विहार करता हुआ पाताल, पृथ्वीलोक तथा स्वर्गमें जितनी रूपवती स्त्रियाँ थीं, उनके साथ पर्वतों तथा मनोहर नदीतटोंपर वह रमण करने लगा॥ २६-२७॥

उनके मध्यमें क्रीड़ा करता हुआ वह दैत्येन्द्र काम-प्रवृत्तिके लिये स्त्रियोंके पीनेसे बचे हुए दिव्य एवं मानुष पेयोंको प्रसन्नताके साथ पीता था॥ २८॥

वह नाना प्रकारके दिव्य रस, फल, सुगन्धित पुष्प प्राप्त करके मय [दानव]-द्वारा निर्मित उत्तम गृहों तथा यानों एवं सुन्दर वाहनोंका सेवन करता था॥ २९॥

अद्भुत दर्शनवाले पुष्प, अर्घ्य, धूप, मिष्टान्न, अंगराग आदिसे युक्त हो क्रीड़ा करते हुए उस अन्धक दैत्यके उत्तम दस हजार वर्ष बीत गये॥ ३०॥

इस प्रकार भोग करते हुए उसे परलोकमें अपने कल्याण करनेवाले पुण्यका ज्ञान न रहा और वह मूर्ख दैत्यराज मदान्धबुद्धि होकर दुष्टोंके साथ निवास करने लगा॥ ३१॥

इसके बाद वह महात्मा प्रमत्त होकर कुतर्कयुक्त बातचीतसे अपने प्रधान पुत्रोंको तिरस्कृतकर सभी वैदिक धर्मोंका विनाश करता हुआ दैत्योंके साथ विचरण करने लगा॥ ३२॥

धनके अहंकारसे मदान्ध वह वेदों, ब्राह्मणों, देवताओं तथा गुरुओंका अपमान करने लगा और दैववश हतायु हो अपनी आयुको स्वेच्छाचारपूर्वक क्षीण करता हुआ रमण करने लगा॥ ३३॥

इस प्रकार इस पृथ्वीतलपर करोड़ों वर्ष निवास करते हुए वह [अन्धक] किसी समय हर्षित होकर अपनी सेनाके साथ मन्दराचलपर गया और वहाँकी स्वर्णिम शोभा देखकर मानमत्त हो सैनिकोंके साथ घूमने लगा। वह क्रीडाके लिये उस पर्वतपर आकर मोहवश वहाँ निवास करनेका विचार करने लगा॥ ३४-३५॥

उसने अपने पराक्रमसे प्रसन्नतापूर्वक मनोहर एवं दृढ़ नगरका निर्माणकर स्वयं उसके शिखरपर अपने निवासहेतु महासुन्दर भवन बनवाया॥ ३६॥

उस दैत्येन्द्रके दुर्योधन, वैधस तथा हस्ती नामक मन्त्री थे। किसी समय उन तीनों मन्त्रियोंने उस पर्वतशिखरपर एक रूपवती सुन्दर स्त्रीको देखा॥ ३७॥

शीघ्रगामी उन सभी दैत्योंने हर्षित होकर उस वीरवर दैत्येन्द्र अन्धकके समीप आकर जैसा देखा था, वैसा प्रेमपूर्वक कहा— ॥ ३८॥

मन्त्री बोले—हे दैत्येन्द्र! मन्दराचलकी गुफामें ध्यानमें नेत्र बन्द किये हुए, रूपवान्, चन्द्रकी आधी कलाको मस्तकपर धारण किये तथा कटिप्रदेशमें व्याघ्रचर्म लपेटे हुए कोई मुनि दिखायी पड़े हैं॥ ३९॥

उनके सारे शरीरमें भुजंग लिपटे हुए हैं, वे सिरपर जटा तथा गलेमें कपालकी माला धारण किये हुए हैं, हाथमें त्रिशूल लिये हुए, बाण तथा तरकस धारण किये हुए हैं, महान् धनुष धारण किये हुए और अक्षसूत्र पहने हुए हैं, वे लकुट, त्रिशूल एवं खड्ग धारण किये हुए हैं, वे जटाजूटसे युक्त, चार भुजाओंवाले, गौर वर्णवाले तथा भस्मसे लिप्त हैं, वे महातेजस्वी प्रतीत हो रहे हैं, उनका सम्पूर्ण वेष अद्भुत है॥ ४०-४१॥

उनसे थोड़ी ही दूरपर एक पुरुष दिखायी पड़ा, वह वानरके समान महाभयंकर मुखवाला, विकराल, हाथोंमें सम्पूर्ण अस्त्र लिये उनकी रक्षा करता हुआ स्थित है। वहींपर शुक्लवर्णका एक श्वेत वृद्ध बैल भी है॥ ४२॥

हमलोगोंने बैठे हुए उस तपस्वीके निकट पृथ्वीपर रत्नभूता एक सुन्दर रूपवाली मनोहर युवती भी देखी है। वह स्त्री प्रवाल, मुक्तामणि तथा रत्नोंसे निर्मित आभूषणों तथा वस्त्रोंको धारण की हुई है। वह मनोहर मालासे सुशोभित है। जिसने उस महासुन्दरीको देख लिया है, वास्तवमें वही दृष्टिवाला है, उसे देख लेनेपर अन्यको देखनेका कोई प्रयोजन नहीं है। वह दिव्य नारी उन महापुण्यवान् महर्षि महेश्वरकी प्रिया भार्या है। हे दैत्येन्द्र! आप सुन्दर रत्नोंके भोक्ता हैं, अतः उसे अपने घर लाकर भलीभाँति देखनेमें समर्थ हैं॥ ४३—४५॥

सनत्कुमार बोले—उन मन्त्रियोंकी इस बातको सुनकर वह दैत्य कामातुर हो उठा और उसका सारा शरीर घूमने लगा। उसने दुर्योधनादि मन्त्रियोंको उन मुनिके समीप शीघ्र ही भेजा॥ ४६॥

हे मुनीश! उत्तम राजनीतिमें परम प्रवीण उन श्रेष्ठ मन्त्रियोंने महाव्रती एवं अप्रमेय उन मुनिके पास जाकर प्रणाम करके उस दैत्यकी आज्ञा इस प्रकार कही— ॥ ४७॥

मन्त्री बोले—हिरण्याक्षके पुत्र दैत्याधिराज त्रैलोक्य-स्वामी महामना, जिनका नाम अन्धक है; वे ब्रह्माजीकी आज्ञासे विहार करते हुए इस मन्दराचलपर विराजमान हैं॥ ४८॥

हे तपस्विन्! हम उनके अंगरक्षक तथा मन्त्री हैं, उनके द्वारा भेजे गये हमलोग आपके समीप आये हैं और उन्होंने जो सन्देश दिया है, उसे ध्यान देकर आप सुनें॥ ४९॥

हे बुद्धिमान् मुनिवर! आप किसके पुत्र हैं और किस कारण यहाँ सुखपूर्वक बैठे हुए हैं, ऐसी महासुन्दरी यह तरुणी किसकी भार्या है? हे मुनीन्द्र! आप इसे शीघ्र ही दैत्यराजको समर्पित कर दें॥ ५०॥

कहाँ तो भस्मसे लिप्त, कपालमालायुक्त, महाकुरूप तुम्हारा यह शरीर और कहाँ तरकस-धनुष-बाण, खड्ग, भुशुण्डी, त्रिशूल, बाण एवं तोमर आदि दिव्यास्त्र। कहाँ जटाके अग्रभागमें परम पवित्र गंगा तथा सिरपर मनोहर चन्द्रमा और कहाँ दुर्गन्धयुक्त अस्थिखण्ड। कहाँ विषवमन करनेवाले दीर्घमुख सर्प और कहाँ सुपुष्ट स्तनवाली स्त्रीका संगम?॥ ५१-५२॥

बूढ़े बैलकी सवारी करना प्रशस्त नहीं है, क्षमावान्

तपस्वीका ऐसा व्यवहार नहीं देखा जाता और सन्ध्या-वन्दन आदि ही तपस्वियोंका धर्म है, लोकविरुद्ध भोजन उनके लिये निषिद्ध है ॥ ५३ ॥

अरे मूर्ख! तुम इस स्त्रीको शान्तिपूर्वक मुझे समर्पित करो, स्त्रीके साथ तपस्या क्यों कर रहे हो? यह तुम्हारे लिये अनुचित है और तुम्हारे अनुकूल नहीं है; क्योंकि मैं तीनों लोकोंका रत्नपति हूँ। अतः तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि पहले शस्त्रोंका त्याग करो, इसके बाद शुद्ध तप करो। मेरी अलंघनीय आज्ञाका उल्लंघन करनेपर तुम्हें अपने शरीरको छोड़ना पड़ेगा ॥ ५४-५५ ॥

तब लौकिक भावका आश्रयकर जगत्प्रधान शिवजीने उस दूतके सम्पूर्ण वचनको सुनकर अन्धकको दुष्टबुद्धि जानकर हँसते हुए उससे कहा— ॥ ५६ ॥

शिवजी बोले—हे दैत्यनाथ! यदि मैं रुद्र हूँ, तो तुम्हारा मुझसे क्या तात्पर्य है, तुम इस प्रकार मिथ्या क्यों बोलते हो? तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं, तुम मेरे प्रभावको सुनो ॥ ५७ ॥

मुझे अपने माता-पिताका स्मरण नहीं, इस गुफामें महामूर्ख तथा विकृत रूपवाला मैं अन्योंके लिये दुर्लभ इस घोर पाशुपतव्रतका आचरण करता हूँ ॥ ५८ ॥

मेरे विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि मूलरहित तथा दुस्त्यज यह सारा जगत् मुझसे ही उत्पन्न हुआ है और सुन्दर रूपवाली, सब कुछ सहनेवाली तथा मुझ सर्वव्यापककी सिद्धिरूपा यह तरुणी मेरी भार्या है ॥ ५९ ॥

हे राक्षस! इस समय तुम्हें जो-जो अच्छा लगे, उसे तुम ग्रहण करो। उनके सामने ऐसा कहकर तपस्वीवेशधारी सदाशिवने मौन धारण कर लिया ॥ ६० ॥

सनत्कुमार बोले—यह गम्भीर वचन सुनकर उन दानवोंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया, तदनन्तर त्रैलोक्य-विनाशके लिये प्रतिज्ञा करनेवाले हिरण्याक्षपुत्र अन्धक दैत्यके पास गये। उन सभी पराक्रमी दैत्योंने उस मदोन्मत्त दैत्यपतिको प्रणामकर जयशब्दका उच्चारण करते हुए हँसकर शिवजीने जो बात कही थी, उसे सुनाया ॥ ६१-६२ ॥

मन्त्री [अन्धकासुरसे] बोले—[हे राजन्! तपस्वी शिवने आपके विषयमें कहा है कि] निशाचर, अस्थिर वीरता-धीरतावाला, सामर्थ्यरहित, क्रूरकर्मा, कृतघ्न, कृपण तथा सर्वदा पाप करनेवाला वह दानव क्या सूर्यपुत्र यमराजसे नहीं डरता [जो मुझसे युद्धकी इच्छा कर रहा है?] सभी दैत्योंके स्वामी हे राजन्! अपनी बुद्धिसे त्रैलोक्यको तृणवत् समझनेवाले महान् तेजस्वी, तपोनिष्ठ तथा परमवीर उस मुनिने हँसते हुए आपके विषयमें पुनः कहा है—कहाँ तो वृद्धावस्थाके कारण जर्जर अंगोंवाला मैं और कहाँ ये [तुम्हारे] दारुण शस्त्र और मृत्युको भी आतंकित करनेवाला युद्ध! कहाँ वह वानरके जैसा मुखवाला मेरा गण वीरक और कहाँ [परम समर्थ] वह राक्षस! कहाँ तो [राक्षसका दुर्धर्ष] वह स्वरूप और कहाँ मन्दभाग्य मैं! कहाँ तुम्हारा [अतुलनीय] सैन्यबल और कहाँ [मेरे आश्रयभूत] ये वृक्ष-लता आदि! इसपर भी यदि तुम अपनेको सामर्थ्य-सम्पन्न मानते हो तो प्रयत्न करो, युद्ध करनेके लिये यहाँ आओ और कुछ [सामर्थ्य प्रदर्शन] करो। [कहाँ तो] मेरे पास तुम-जैसे लोगोंको नष्ट कर देनेवाला महाभयंकर अस्त्र और कहाँ कोमल कमलके समान तुम्हारा शरीर, अतः विचार करके तुम वैसा ही करो, जैसा तुम्हें अच्छा लगता हो ॥ ६३—६७ ॥

हे दैत्यपते! इस प्रकारके अनेक वचन उस तपस्वीने हँसते हुए आपसे कहे हैं। हे राजन्! आपके लिये उसके साथ युद्ध करना उचित नहीं है ॥ ६८ ॥

यदि आप हमलोगोंके द्वारा कहे गये अनुचित तथ्यहीन अनेक कथनोंसे तथा तपमें निरत उस तपस्वीके द्वारा कहे वचनोंसे समझ जाते हैं, तब तो ठीक है, अन्यथा मुनिके इस वचनको आप बादमें याद करेंगे ॥ ६९ ॥

सनत्कुमार बोले—इसके बाद उनका सत्य, हितकर, कुटिल तथा तीक्ष्ण वचन सुनकर वह मन्दबुद्धि क्रोधसे उसी प्रकार आगबबूला हो गया, जिस प्रकार घी डालनेसे आग प्रज्वलित हो जाती है ॥ ७० ॥

तदनन्तर प्रतिकूल भाग्यवाला, वरदानसे प्रमत्त तथा कामबाणसे बिँधा हुआ वह दैत्य खड्ग लेकर पवनके समान वेगसे वहाँ जानेको उद्यत हो गया ॥ ७१ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें अन्धकगाणपत्यपदलाभोपाख्यानमें दूतसंवादवर्णन नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

अन्धकासुरका शिवकी सेनाके साथ युद्ध

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] तदनन्तर मदिरा पानकर नेत्रोंको घुमाता हुआ मदमत्त गजके समान गतिवाला तथा श्रेष्ठ वीरोंके साथ चलनेवाला वह प्रचण्ड वीर बहुत-सी सेनासे युक्त हो वहाँ गया॥ १॥

कामके बाणसे बिँधे हुए उस दैत्यने वीरकके द्वारा अवरुद्ध मार्गवाली उस गुफाको उसी प्रकार देखा, जैसे तैलपूर्ण जलते हुए दीपकको प्रेमपूर्वक देखकर उसे प्राप्तकर पतंग विनष्ट हो जाता है॥ २॥

उसी प्रकार बार-बार देखकर वीरकके द्वारा पीड़ित किये जानेपर भी वह मूर्ख महादैत्यपति अन्धक कामाग्निसे दग्ध शरीरवाला हो गया। वीरकने पाषाण, वृक्ष, वज्र, जल, अग्नि, सर्प एवं अस्त्र-शस्त्रोंसे उसे पीड़ा पहुँचायी और पुनः पीड़ित करके पूछा कि तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? उसका वचन सुनकर अन्धकने अपना अभिप्राय प्रकट किया और उस वीरकके साथ युद्ध करने लगा। आश्चर्य है कि उस अप्रमेय महावीर वीरकने अन्धकको एक मुहूर्तमें युद्धमें जीत लिया। महान् खड्गके चूर-चूर हो जानेपर दुखी तथा विस्मयरहित वह अन्धक युद्धभूमि छोड़कर भूख-प्याससे व्याकुल हो भाग खड़ा हुआ॥ ३—६॥

तत्पश्चात् प्रह्लाद आदि प्रधान दैत्य उसके साथ युद्ध करने लगे, किंतु अत्यन्त भयंकर वे दैत्य अनेक शस्त्रास्त्रोंसे लड़ते हुए पराजित होनेके कारण लज्जित हो गये॥ ७॥

तब विरोचन, बलि, हजारों भुजाओंवाला बाण, भजि, कुजम्भ, शम्बर एवं वृत्र आदि पराक्रमी दैत्य युद्ध करने लगे। चारों ओरसे घेरकर युद्ध करते हुए उन दैत्योंको शिवके गण वीरकने पराजित कर दिया। उनके दो टुकड़े कर दिये। बहुतसे दानवोंके मर जानेपर और कुछके शेष रहनेपर सिद्धसंघोंने जय-जयकार किया॥ ८-९॥

मेदा, मांस, पीवसे महाभयंकर उस युद्धके बीच गीदड़ आनन्दसे नाचने लगे एवं रुधिरके भयंकर कीचड़में [विचरण करते हुए] मांसाहारी जन्तुओंसे सारी रणभूमि भयंकर दिखायी पड़ने लगी। उस समय वीरकद्वारा दैत्योंके विनष्ट हो जानेपर भगवान् सदाशिवने दाक्षायणीको सान्त्वना देकर कहा—हे प्रिये! मैंने पूर्वमें जिस कठिन महापाशुपत व्रतको किया था, उसे करने जा रहा हूँ॥ १०-११॥

शिवजी बोले—हे देवि! रात-दिन तुम्हारे साथ प्रसंगके कारण मेरी सेनाका क्षय हो गया, मरणधर्मा दैत्योंके द्वारा मेरी अमर्त्य सेनाका विनाश हुआ, यह किसी पुण्यनाशक ग्रहका ही प्रभाव है॥ १२॥

हे सुन्दरि! अब मैं वनमें जाकर परम दिव्य एवं अद्भुत वर प्राप्तकर अत्यन्त कठिन व्रत करूँगा, तुम पूर्णरूपसे भयरहित तथा शोकविहीन रहना॥ १३॥

सनत्कुमार बोले—इतना वचन कहकर अत्यन्त तेजस्वी महात्मा शंकर [अपने शृंगीका] धीरेसे शब्द करके अत्यन्त घोर पुण्यतम वनमें जाकर पाशुपतव्रतका अनुष्ठान करने लगे॥ १४॥

जिस व्रतको देवता एवं दानव भी करनेमें समर्थ नहीं हैं, उसे उन्होंने हजार वर्षपर्यन्त किया। उस समय पतिव्रता तथा शीलगुणसे सम्पन्न पार्वती मन्दर पर्वतपर स्थित हो सदाशिवके आगमनकी प्रतीक्षा करती हुई अकेले गुफाके अन्दर सदा भयभीत तथा दुखी रहा करती थीं, उस समय पुत्र वीरक ही उनकी रक्षा करता था॥ १५-१६॥

इसके बाद वरदानसे उन्मत्त तथा कामदेवके बाणोंसे धैर्यरहित वह दैत्य बड़ी शीघ्रतासे प्रह्लाद आदि दैत्योंके साथ उस गुफाके पास आ गया॥ १७॥

उसने भोजन, पान एवं निद्राका परित्यागकर कुपित हो अपने सैनिकोंको साथ लेकर पाँच-सौ-पाँच रात-दिन वीरकके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध किया। खड्ग, बरछी, भिन्दिपाल, गदा, भुशुण्डी, अर्ध चन्द्रमाके समान, वितस्तिमात्र तथा कछुएके समान मुखवाले प्रकाशमान बाणों, तीक्ष्ण त्रिशूलों, परशु, तोमर, मुद्गर, खड्ग, गोले, पर्वत, वृक्ष तथा दिव्यास्त्रोंसे उस वीरकने दैत्योंके साथ युद्ध किया॥ १८—२०॥

दैत्योंद्वारा चलाये गये उन शस्त्रोंसे गुफाके द्वार बन्द हो गये, कहीं लेशमात्र भी प्रकाश नहीं रहा, वीरक भी शस्त्रोंकी चोटसे आहत होकर गुफाके द्वारपर मूर्च्छित

होकर गिर पड़ा॥ २१॥

सभी दैत्योंसे तथा उनके अस्त्रोंसे मुहूर्तमात्रके लिये वीरकको आच्छादित देखकर तथा यह देखकर कि यह भयंकर दैत्योंको हटा नहीं पा रहा है, गुफामें स्थित देवीने भयपूर्वक सखियोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा समस्त गणोंकी सेनाका स्मरण किया॥ २२-२३॥

उनके स्मरणमात्रसे ही ब्रह्मा, भगवान् विष्णु तथा इन्द्र सभी सैनिकोंके साथ स्त्रीरूप धारणकर वहाँ आ गये। स्त्री बनकर वे देवता, मुनि, महात्मा, सिद्ध, नाग तथा गुह्यक पर्वतराजकी पुत्रीकी गुफाके भीतर प्रविष्ट हुए॥ २४-२५॥

उनके स्त्रीरूप धारण करनेका कारण यह था कि उत्तम राजाके आसनस्थ होनेपर उसके अन्त:पुरमें पुरुषवेशमें जाना निषिद्ध है, इसलिये वे स्त्रीसमूहके रूपमें एकत्रित हो गये। वीरकार्य करनेवाली ये अद्भुत रूपवाली स्त्रियाँ जब पार्वतीकी गुफामें प्रविष्ट हुईं, तो उन स्त्रियोंको देखकर पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं॥ २६-२७॥

उस समय सैकड़ों हजारों नितम्बिनी स्त्रियोंके द्वारा प्रलयकालीन प्रचण्ड मेघके समान घोषवाली तथा विजय देनेवाली हजारों भेरियाँ और शंख बजाये गये॥ २८॥

अद्भुत तथा प्रचण्ड पराक्रमवाला वीरक भी मूर्च्छा त्यागकर शस्त्रको लेकर महारथियोंके आगे खड़ा हो गया और उन्हीं शस्त्रोंसे दैत्योंका वध करने लगा॥ २९॥

उस समय हाथमें दण्ड लिये हुए ब्राह्मी, क्रोधसे युक्त चित्तवाली गौरी, अपने हाथोंमें शंख, गदा, चक्र तथा धनुष धारण की हुई नारायणी, हाथमें लांगल, दण्ड लिये कांचनके समान वर्णवाली व्योमालका तथा हाथमें हजारों धारवाले, प्रचण्ड वेगसे युक्त, उग्र वेगवाले वज्रको लिये हुए ऐन्द्री युद्धहेतु निकल पड़ीं॥ ३०-३१॥

हजार नेत्रोंवाली, युद्धमें निश्चल रहनेवाली, अत्यन्त दुर्जय, सैकड़ों दैत्योंसे कभी पराजित न होनेवाली तथा भयंकर मुखवाली वैश्वानरी तथा हाथमें दण्ड लिये हुए उग्र याम्या शक्ति भी युद्धमें प्रवृत्त हो गयीं॥ ३२॥

हाथमें अत्यन्त तीक्ष्ण तलवार तथा घोर धनुष लेकर निर्ऋति शक्ति आयीं। वरुणका पाश हाथमें धारणकर युद्धकी अभिलाषा करती हुई तोयालिका निकल पड़ीं। प्रचण्ड पवनकी महाशक्ति भूखसे व्याकुल हो हाथमें अंकुश लेकर एवं कुबेरकी शक्ति हाथमें प्रलयकालकी अग्निके समान गदा लेकर युद्धभूमिमें आ पहुँचीं। तीक्ष्ण मुखवाली, कुरूपा, नखरूप आयुधवाली, नागके समान भयंकर यक्षेश्वरी आदि देवियाँ तथा इसी प्रकारकी अन्य सैकड़ों देवियाँ संग्रामभूमिमें निकल पड़ीं॥ ३३—३५॥

उसकी अपार सेना देखकर वे देवियाँ विस्मित, भयसे व्याकुल, फीके वर्णवाली तथा अत्यन्त कातर हो गयीं। उसके बाद ब्रह्माणी आदि सभी देवशक्तियोंने पार्वतीकी सम्मतिसे अपने मनको समाहितकर वीरकको अपना सेनापति बनाया। इसके बाद वरदानसे शक्तिसम्पन्न प्रधान दैत्य मनमें यह विचारकर अभूतपूर्व युद्ध करने लगे कि आज इन नारियोंसे हम मृत्युको प्राप्त होंगे अथवा इनपर विजय प्राप्त करेंगे। उस समय संग्रामभूमिमें अद्भुत बुद्धिसम्पन्न वीरकको अपना सेनापति बनाकर पार्वतीने सखियोंके साथ युद्धमें अद्भुत युद्धकौशल दिखलाया॥ ३६—३९॥

महापराक्रमी हिरण्याक्षपुत्र राजा अन्धकने भी महाव्यूहकी रचना की और विष्णुकी सम्भावना करके यमकी शक्तिको अवस्थित देखकर [उनसे लड़नेके लिये] महाभयंकर गिल नामक राक्षसको नियुक्त किया॥ ४०॥

ब्रह्माजीकी सेवा करनेसे उसका मुख अत्यन्त विकराल हो गया था, इसीलिये उसे मारनेके लिये भगवान् विष्णु आये। उसी समय हजार वर्ष बीत जानेपर प्रलयकालीन हजारों सूर्यके समान कान्तिवाले व्याघ्रचर्मधारी भगवान् शिवजी भी कुपित होकर युद्धभूमिमें आये। तब उन महेश्वरको युद्धभूमिमें आया देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई उन स्त्रियोंने वीरकको साथ लेकर महायुद्ध किया॥ ४१-४२॥

उस समय सिर झुकाकर सदाशिवको प्रणाम करके पतिका पराक्रम प्रदर्शित करती हुई गौरीने प्रसन्नतापूर्वक घोर युद्ध किया। उसके बाद शंकरजी पार्वतीको हृदयसे लगाकर गुफाके भीतर प्रविष्ट हो गये। पार्वतीने उन हजारों स्त्रियोंको अनेक प्रकारसे सम्मानितकर विदा किया और वीरकको गुफाके द्वारपर रहने दिया॥ ४३-४४॥

उसके बाद नीतिमें विचक्षण उस असुरने गौरी एवं गिरीशको संग्रामभूमिमें न देखकर शिवजीके पास विघस नामक अपना दूत भेजा॥ ४५॥

उस संग्राममें देवताओंके प्रहारसे क्षत-विक्षत

शरीरवाले उस दैत्यने शिवजीके पास जाकर उन्हें सिरसे प्रणामकर गर्वयुक्त कठोर वचन कहा— ॥ ४६ ॥

दूत बोला—हे शम्भो! अन्धकद्वारा भेजा गया मैं इस गुफामें प्रविष्ट हुआ हूँ। उस अन्धकने आपको सन्देश भेजा है कि तुम्हें स्त्रीसे कोई प्रयोजन नहीं है, अतः इस रूपवती युवती नारीको शीघ्र त्याग दो ॥ ४७ ॥

प्रायः आप तपस्वीको अन्तःकरणको भूषित करनेवाले क्षमा आदि गुणोंका सेवन करना चाहिये। मुनियोंसे विरोध नहीं करना चाहिये—ऐसा विचारकर मैं तुमसे विरोध नहीं करना चाहता, वस्तुतः तुम तपस्वी मुनि नहीं हो, किंतु शत्रु हो। हे धूर्त तापस! तुम हम दैत्योंके महाविरोधी शत्रु हो, अतः शीघ्रतासे मेरे साथ युद्ध करो, मैं आज ही तुम्हारा वध करके तुम्हें रसातल पहुँचाता हूँ ॥ ४८-४९ ॥

सनत्कुमार बोले—दूतके मुखसे ये वचन सुनकर सज्जनोंके रक्षक, दुष्टोंके मदको नष्ट करनेवाले, कपालमाली, महान्, त्रिनेत्र शम्भु शोकाग्निसे जलते हुए बड़े क्रोधसे उस दूतसे कहने लगे— ॥ ५० ॥

शिवजी बोले—[हे दूत!] तुमने जो बात कही है, वह बड़ी कठोर है। अब तुम शीघ्र चले जाओ और उससे कहो—यदि तुम बलवान् हो तो शीघ्र आकर मेरे साथ बलपूर्वक युद्ध करो ॥ ५१ ॥

इस पृथ्वीपर जो अशक्त है, उसे मनोहर स्त्री तथा धनसे क्या प्रयोजन? बलसे मत्त दैत्य आ जायँ; मैंने यह निश्चय किया है। अशक्त पुरुष तो शरीरयात्रामें भी असमर्थ हैं, अतः उनके लिये जो विहित हो, उसे करें और मुझे भी जो करना है, उसे मैं करूँगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५२-५३ ॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीसे यह वचन सुनकर वह विघस भी प्रसन्न होकर वहाँसे निकल पड़ा और उसके बाद गर्जनापूर्वक हुंकार भरता हुआ दैत्यपतिके पास गया ॥ ५४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें युद्धप्रारम्भ-दूतसंवादवर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

भगवान् शिव एवं अन्धकासुरका युद्ध, अन्धककी मायासे उसके रक्तसे अनेक अन्धकगणोंकी उत्पत्ति, शिवकी प्रेरणासे विष्णुका कालीरूप धारणकर दानवोंके रक्तका पान करना, शिवद्वारा अन्धकको अपने त्रिशूलमें लटका लेना, अन्धककी स्तुतिसे प्रसन्न हो शिवद्वारा उसे गाणपत्य पद प्रदान करना

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! शिवजीका अभिप्राय जानकर उस दैत्यराजने गदा लेकर देवगणोंसे सर्वथा अभेद्य गिल नामक दैत्यको आगेकर सेनाके सहित शीघ्र शिवजीकी गुफाके दरवाजेपर पहुँचकर वज्रके समान तीखे शस्त्रोंसे प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया, कुछ दैत्योंने वीरकपर और कुछ दैत्योंने पार्वतीपर शस्त्रोंसे प्रहार किया। कुछ दैत्योंने गुफाके मनोहर द्वारको तोड़ दिया, कुछने द्वारपर लगे पत्र, पुष्प, फल, मूल तथा मनोहर जल एवं उद्यानमार्गोंको नष्ट कर दिया। कुछने प्रसन्न होकर पर्वतके दीप्तिमान् शिखरोंको तोड़ दिया ॥ १—३$^1/_2$ ॥

तदनन्तर त्रिशूलधारी शिवजीने कुपित होकर अपनी सेनाका, दारुण भूतगणोंका तथा सैन्यसहित विष्णु आदि देवगणोंका स्मरण किया। शिवजीके स्मरण करते ही रथ, गज, घोड़े, बैल, गाय, ऊँट, गधे, पक्षिगण, सिंह, व्याघ्र, मृग, सूकर, सारस, मीन, मत्स्य, शिशुमार, सर्प, सैकड़ों प्रेत-पिशाच, दिव्य विमान, तालाब, नदी, नद, पर्वत, वाहन एवं अन्य जीवोंके साथ समस्त देवता उपस्थित हो गये और हाथ जोड़कर शिवजीको प्रणामकर निर्भय होकर स्थित हो गये। उसके अनन्तर शिवजीने वीरकको सेनापति बनाकर थके वाहनवाले उन देवताओं एवं युद्धमें निश्चित विजय पानेवाले प्रधान वीरोंको भेजा। महेश्वरके द्वारा भेजे गये उन सभी देवगणोंने उस गिलसहित दैत्यराजकी सेनाके साथ निरन्तर प्रलयकालके समान मर्यादाहीन घनघोर युद्ध किया। तब विघसने युद्ध

करते हुए उन ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य एवं चन्द्रमा आदि समस्त देवोंको क्रोधपूर्वक निगल लिया। इस प्रकार विघसके द्वारा अपनी समस्त सेनाके निगल लिये जानेपर केवल वीरक रह गया॥ ४—११॥

तब संग्रामभूमिको छोड़कर उस गुफामें प्रवेश करके सिर झुकाकर कामशत्रु शिवजीको प्रणाम करके वक्ताओंमें श्रेष्ठ वह वीरक दुखी होकर उनसे सारा वृत्तान्त कहने लगा। हे भगवन्! विघस दैत्यने आपकी सारी सेना निगल ली। वह त्रिलोकगुरु दैत्यविनाशक भगवान् विष्णुको निगल गया। उसने सूर्य तथा चन्द्रमाको, वरदायक ब्रह्मा तथा इन्द्रको निगल लिया। वह यम, वरुण, पवन एवं कुबेर आदिको भी निगल गया॥ १२-१३॥

केवल मैं ही अकेला रह गया हूँ, मुझे अब क्या करना है। वह अजेय दैत्यपति सेनासहित प्रसन्नचित्त है। मैं भयभीत होकर वायुके समान वेगवान् होकर आप अजेयके पास आया हूँ। भगवान् विष्णुने अपना मुख फैलाकर कश्यपपुत्र हिरण्यकशिपुको अपने तीव्र नखोंसे विदीर्ण किया था, वे भक्तोंके वशीभूत हो त्रिलोकीके कण्टकोंका नाश करनेमें प्रवृत्त रहते हैं॥ १४-१५॥

पूर्वकालमें उन्हें वसिष्ठादि लोकरक्षक सप्तर्षियोंने शाप दिया था कि तुम दैत्योंके साथ चिरकालपर्यन्त युद्ध करते हुए उनके द्वारा निगल लिये जाओगे॥ १६॥

इसके बाद जब विष्णुने विनम्र होकर मुनियोंसे प्रार्थना की कि हे मुनिगणो! इस घोर शापसे मेरा छुटकारा कैसे होगा? तब क्रुद्ध हुए उन मुनिगणोंने कहा—युद्धकालमें जब घोर बाणोंकी वर्षाकर विघस नामक दैत्य तुम्हें निगल लेगा, तब तुम अपने घूसोंसे उसके मुखपर प्रहारकर निकलोगे॥ १७॥

तत्पश्चात् पुण्याश्रम बदरीवन नामक हरिगृहमें जब तुम अवतार लोगे, तब शापरहित हो अपने परमात्मा-रूपमें अवस्थित हो जाओगे। तभीसे वह गिल नामक दैत्य प्रतिदिन भूखा रहकर बड़ी प्रसन्नताके साथ युद्धस्थलमें घूमता रहता था। जिस प्रकार जगत्को प्रकाशित करनेवाले सूर्य एवं चन्द्रमासे राहु शत्रुता करता है, उसी प्रकार देवताओंके परम शत्रु शुक्राचार्य देवोंके द्वारा मारे गये सभी दैत्योंको संजीवनी विद्याके स्तुतिपदोंसे व्रणरहितकर जीवित कर देते हैं। आपको तथा मुझे युद्धस्थलमें भले ही प्राण त्याग करना पड़े, किंतु अब आप ही इस युद्धमें प्रमाण हैं और आप ही इस कार्यको सँभालें॥ १८—२०॥

सनत्कुमार बोले— त्रिभुवनपति प्रमथपति सदाशिव पुत्र वीरककी बात सुनकर बहुत कुपित हुए और देरतक विचार करते रहे, तदनन्तर उन्होंने सूर्यके समान देदीप्यमान अपने शरीरसे उत्तम सामवेदका गान किया और बड़ा अट्टहास किया, जिससे समस्त अन्धकार दूर हो गया॥ २१॥

तब इस लोकमें प्रकाश हो जानेपर वीरक मुनिने रणमें विकृत मुखवाले दैत्योंके साथ पुनः महायुद्ध किया। शिलाद मुनिने पत्थरका चूर्ण खाकर जिन नन्दीश्वरको उत्पन्न किया था तथा जिन्होंने त्रिपुरको भी पूर्वकालमें जीत लिया था, उन नन्दीने घनघोर युद्ध प्रारम्भ कर दिया॥ २२॥

नन्दीको भी उस राक्षसने निगल लिया। ऐसा देखकर योद्धाओं एवं मुनियोंमें अग्रगण्य तथा सभी विद्याओंके निवास, शम-दम-धैर्यादि गुणोंसे युक्त स्वयं कपर्दी महारुद्र वृषभपर सवार हो निगले हुए देवगणोंको उगलवा देनेवाले दिव्य मन्त्रका जप करते हुए तीक्ष्ण बाण, शूल तथा खड्ग लेकर युद्धके लिये उस राक्षसके सम्मुख उपस्थित हुए। इतनेमें महावीर वीरक सभीको लेकर उस विघस राक्षसके मुखसे निकले। इसी प्रकार विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य आदि सभी निकल आये। तब उनकी सेना प्रसन्न होकर पुनः युद्ध करने लगी॥ २३—२५॥

उस सेनाके जीत लेनेपर देवगणोंके द्वारा मारे गये समस्त दैत्योंको शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्याके बलसे पुनः जीवित करने लगे। तब गणोंने शुक्राचार्यको पशुके समान बाँधकर शिवजीके समीप उपस्थित किया और त्रिपुरारि शिवजीने उन दानवगुरुको निगल लिया॥ २६॥

इस प्रकार शुक्राचार्यके विनष्ट हो जानेपर देवताओंने सारी दैत्यसेनाको जीत लिया, विध्वस्त कर दिया और पूर्णरूपसे कुचल डाला। उस समय दैत्योंके शरीरको उत्साहपूर्वक खानेवाले भूतगणोंसे एवं तीक्ष्ण बाण तथा शक्ति हाथमें लिये नाचते हुए सिरकटे दैत्योंके धड़ोंसे सारी रणभूमि व्याप्त हो गयी। प्रमत्त वेतालों, अत्यन्त दृढ़ चोंच एवं पंजेवाले पक्षियों एवं नाना प्रकारके भेड़ियोंने मरे हुए राक्षसोंके मांसको अपने मुखमें रखकर आनन्दसे

भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार हिरण्यकशिपुके वंशमें उत्पन्न हुआ वह दैत्यराज चिरकालपर्यन्त युद्ध करके विष्णु, महेन्द्र एवं शिवसे जीत लिया गया॥ २७-२८॥

पराजित होनेपर उस दैत्यकी सारी सेना पातालमें, पर्वतोंकी गुफाओंमें एवं समुद्रमें छिप गयी। अपनी सारी सेनाके क्षीण हो जानेपर दैत्यश्रेष्ठ अन्धक, जो क्रुद्ध होनेपर न केवल देवताओं, अपितु विश्वका नाश करनेमें समर्थ था, उसका विष्णुने गदाके भयंकर प्रहारोंसे मद चूर-चूर कर दिया॥ २९॥

उसने युद्धभूमिका परित्याग नहीं किया; क्योंकि उसे ब्रह्माजीका वरदान प्राप्त था। उसके बाद इन्द्रके घोर अस्त्रोंसे पीड़ित हुआ वह दैत्य अपने शस्त्रास्त्रसमूहों, वृक्षों, पर्वतों एवं जलके प्रहारोंसे देवताओंको शीघ्र जीतकर जोरसे गर्जना करते हुए प्रमथपति शिवको संकेतोंके द्वारा बुलाकर युद्धभूमिमें गिरे हुए अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे युद्ध करता हुआ स्थित रहा। उन सबके समाप्त हो जानेपर वह वृक्षों, सर्पों, वज्रके समान शस्त्रोंद्वारा तथा शम्बरकी सैकड़ों माया एवं कपट रचनाद्वारा गिरिजा एवं महादेवको पीड़ा पहुँचाने लगा॥ ३०-३१॥

शंकरके समान महावीर, देवताओंसे अवध्य, महासत्त्वसम्पन्न, मतिमान्, सैकड़ों वरदान पानेसे उन्मत्त हुए दैत्य अन्धकने शंकरको जीतनेके लिये एक और माया की, यद्यपि उसका शरीर देवताओंके शस्त्रास्त्रोंके द्वारा जर्जर हो उठा था। उसकी मायाके प्रभावसे, उसके गिरे हुए रक्त-बिन्दुओंसे अनेक विकृतवदन अन्धकगण रणभूमिमें व्याप्त हो गये। तब प्रलयकालीन अग्निके समान शरीर धारण करनेवाले त्रिपुरारि सदाशिवने अपने त्रिशूलसे उन दैत्योंका भेदन प्रारम्भ किया॥ ३२-३३॥

इस प्रकार शिवजीके त्रिशूलके प्रहारके आघातसे मांस विदीर्ण हो जानेके कारण प्रवाहित रक्तबिन्दुओंसे अनेक अन्धक उत्पन्न होने लगे। तब महाबुद्धिमान् विष्णुने शंकरजीको बुलाकर योगद्वारा अत्यन्त विकृत मुखवाला, उग्र, अजेय, कराल तथा अत्यन्त शुष्क स्त्रीका रूप धारण कर लिया। अनेक भुजाओंसे युक्त तथा कुपित भगवान् विष्णु उस युद्धस्थलमें शंकरजीके कानसे प्रकट हुए॥ ३४-३५॥

युद्धभूमिमें उत्पन्न हुई वे देवी अपने युगलचरणोंसे पृथ्वीको सुशोभित करने लगीं। सभी देवगण उनकी स्तुति करने लगे। उसके बाद शंकरजीकी प्रेरणासे क्षुधासे व्याकुल वे देवी मांसकी कीचसे युक्त उस रणभूमिमें दैत्यपतिके शरीरसे निकले हुए उष्ण रुधिरका पान करने लगीं॥ ३६॥

इस प्रकार रक्तके सूख जानेपर वह दैत्य अकेला होनेपर भी अपने कुलक्रमागत सनातन क्षात्रधर्मका स्मरण करता हुआ अपने वज्रके समान घूँसों, जानु, चरणों, नखों, भुजाओं तथा सिरके द्वारा शंकरसे युद्ध करता रहा॥ ३७॥

[इस प्रकार युद्धकर] तब वह रणमें शान्त हो गया, बादमें क्रुद्ध हुए शिवजीने अपने त्रिशूलसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया और स्थाणुके समान उसके ठूँठ शरीरको त्रिशूलपर टाँगकर आकाशमें उठा लिया। उसका शरीर सूर्यके तापसे सूखने लगा, पवनप्रेरित जलपूर्ण बादलोंने उसके शरीरको गीला कर दिया और उसका सारा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो गया॥ ३८॥

सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त, हिमखण्डोंसे खण्डित होनेपर भी उस दैत्यराजने प्राण-त्याग नहीं किया और वह भगवान् शंकरकी निरन्तर स्तुति करता रहा। यह देखकर करुणासागर परम दयालु भगवान् शंकरने उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उसे गाणपत्यपद प्रदान किया॥ ३९॥

उस समय युद्धके अन्तमें भुवनपति श्रीहरि, ब्रह्मा तथा समस्त देवताओंने शंकरजीकी विधिपूर्वक पूजाकर कंधा झुकाकर मनोहर एवं सारगर्भित स्तुतियोंसे उनकी स्तुति की तथा प्रसन्न होकर उनकी जय-जयकार करके वे सुखी हो गये। तत्पश्चात् भगवान् भूतपति नाना प्रकारकी सामग्रीसे पूजित देवगणोंको सत्कारसहित विदाकर पार्वतीके साथ प्रसन्न हो गुहामें क्रीड़ा करने लगे। उस समय वे घोर विघसके मुखसे पापरहित पुत्र वीरकके निकल जानेसे बड़े ही प्रसन्न हो रहे थे॥ ४०-४१॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें अन्धकवधोपाख्यानमें अन्धकयुद्धवर्णन नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

शुक्राचार्यद्वारा युद्धमें मरे हुए दैत्योंको संजीवनी-विद्यासे जीवित करना, दैत्योंका युद्धके लिये पुनः उद्योग, नन्दीश्वरद्वारा शिवको यह वृत्तान्त बतलाना, शिवकी आज्ञासे नन्दीद्वारा युद्ध-स्थलसे शुक्राचार्यको शिवके पास लाना, शिवद्वारा शुक्राचार्यको निगलना

व्यासजी बोले—उस भयानक तथा रोमांच उत्पन्न कर देनेवाले महायुद्धमें भगवान् सदाशिवने विद्वान् दैत्याचार्य शुक्रको निगल लिया—यह बात मैंने संक्षेपमें सुनी, अब आप उसे विस्तारके साथ कहिये कि शिवजीके उदरमें स्थित महायोगी शुक्राचार्यने क्या किया, शिवजीकी प्रलयकालीन अग्निके समान जठराग्निने उन शुक्रको जलाया क्यों नहीं? कालरूप बुद्धिमान् तथा तेजस्वी शुक्राचार्य किस प्रकार शिवजीके जठरपंजरसे बाहर निकले, उन शुक्रने किसलिये तथा कितने समयतक आराधना की, उन्होंने मृत्युका शमन करनेवाली उस परा विद्याको कैसे प्राप्त किया और हे तात! वह कौनसी विद्या है, जिससे मृत्युका निवारण हो जाता है, देवाधिदेव, लीलाविहारी भगवान् शंकरके त्रिशूलसे छुटकारा पाये हुए अन्धकने किस प्रकार गाणपत्यपद प्राप्त किया? हे परम बुद्धिमान् तात! कृपा कीजिये और शिवलीलामृतका पान करनेवाले मुझको यह सब विशेष रूपसे बताइये॥ १—७॥

ब्रह्माजी बोले—हे तात! अमिततेजस्वी व्यासजीके इस वचनको सुनकर शिवजीके चरणकमलका स्मरण करके सनत्कुमारजी कहने लगे—॥ ८॥

सनत्कुमार बोले—हे महाबुद्धिमान् व्यास! आप मुझसे शिवलीलामृतका श्रवण कीजिये, आप धन्य हैं, शिवजीके परम भक्त हैं और विशेषकर मुझे तो बहुत आनन्द देनेवाले हैं। जिस समय अत्यन्त दुर्भेद्य वज्रव्यूहके अधिपति भगवान् शंकर एवं गिरिव्यूहके अधिपति अन्धकमें घनघोर युद्ध छिड़ा हुआ था, उस समय सर्वप्रथम बलशाली दैत्योंकी विजय हुई और हे मुने! उसके बाद शिवजीके प्रभावसे प्रमथगणोंकी विजय हुई॥ ९—११॥

यह सुनकर महान् दैत्य अन्धकासुर अत्यन्त दुःखित हुआ और वह विचार करने लगा कि मेरी विजय किस प्रकार होगी। इसके बाद परम बुद्धिमान्, महावीर वह अन्धक संग्राम छोड़कर शीघ्र ही अकेले शुक्राचार्यके पास गया। परम नीतिज्ञ वह अन्धक रथसे उतरकर अपने गुरु शुक्राचार्यको प्रणाम करके हाथ जोड़कर विचार करके यह कहने लगा—॥ १२—१४॥

अन्धक बोला—हे भगवन्! हमलोग आपका आश्रय लेकर आपको गुरु मानते हैं, सर्वदा विजय पानेवाले हमलोग आज पराजित हो रहे हैं॥ १५॥

[हे देव!] आपके प्रभावसे हमलोग सदैव शंकर, विष्णु आदि देवताओंको तथा उनके अनुचरोंको क्षुद्र तृणके समान समझते हैं और आपके अनुग्रहसे सभी देवता हमसे उसी प्रकार डरते रहते हैं, जैसे सिंहोंसे हाथी और गरुडोंसे सर्प डरते रहते हैं॥ १६-१७॥

आपके अनुग्रहसे प्रमथोंकी सम्पूर्ण सेनाको ध्वस्तकर दैत्यों तथा दानवोंने दुर्भेद्य वज्रव्यूहमें प्रवेश किया॥ १८॥

हे भार्गव! हमलोग आपकी शरणमें रहकर पृथ्वीके समान सदा अविचल होकर युद्धस्थलमें निःशंक विचरण करते हैं। हे विप्र! वीर शत्रुओंसे पीड़ित होकर भागकर शरणमें आये हुए असुरोंकी तथा मृत दैत्योंकी भी आप रक्षा करें। मृत्युको पराजित करनेवाले महापराक्रमी प्रमथगणोंसे मार खाकर युद्धमें गिरे हुए उन हुण्ड आदि मेरे गणोंको देखिये॥ १९—२१॥

आपने पूर्वकालमें सहस्रों वर्षपर्यन्त तुषाग्निजन्य धूमका पानकर जिस संजीवनी-विद्याको प्राप्त किया है, अब उसके उपयोगका समय आ गया है। हे भार्गव! इस समय आप कृपाकर सभी असुरोंको जीवित कर दें, जिससे सभी प्रमथ आपकी इस विद्याके प्रभावको देखें॥ २२-२३॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार अन्धकके वचनको सुनकर परम धीर वे शुक्राचार्य दुखी मनसे विचार करने लगे। मुझे इस समय क्या करना चाहिये, मेरा कल्याण कैसे हो, इन मरे हुओंको जिलानेके लिये संजीवनीविद्याका प्रयोग मेरे लिये सर्वथा अनुचित है। वह विद्या मुझे शंकरजीद्वारा प्राप्त हुई है, अतः इसका उपयोग शिवजीके अनुचर वीर

प्रमथोंके द्वारा रणमें मारे गये दैत्योंको जीवित करनेके लिये कैसे करूँ। किंतु शरणमें आये हुएकी रक्षा करना सर्वोपरि धर्म है, तब हृदय तथा बुद्धिसे विचारकर शुक्राचार्यने उसकी बात अंगीकार कर ली॥ २४—२७॥

इसके बाद शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके कुछ-कुछ हँसकर स्वस्थचित्त हो शुक्राचार्यने दैत्यराजसे कहा—॥ २८॥

शुक्र बोले—हे तात! आपने जो कहा, सब सत्य ही है, मैंने सचमुच इस विद्याकी प्राप्ति दानवोंके लिये ही की है। मैंने सहस्रवर्षपर्यन्त तुषाग्निजन्य धूमको पीकर शिवजीसे इस विद्याको प्राप्त किया था, जो बन्धुगणोंको सर्वदा सुख देनेवाली है। मैं इस विद्याके प्रभावसे संग्राममें देवताओंद्वारा मारे गये इन दैत्योंको उसी प्रकार उठा दूँगा, जिस प्रकार मुरझायी हुई फसलोंको मेघ जीवित कर देता है। आप अभी इसी क्षण देखेंगे कि ये दैत्य व्रणरहित एवं स्वस्थ होकर सोकर उठे हुएके समान पुनः जीवित हो गये हैं॥ २९—३२॥

सनत्कुमार बोले—अन्धकसे इस प्रकार कहकर शुक्राचार्यने बड़े आदरके साथ शिवजीका स्मरणकर एक-एक दैत्यको उद्‌देश्य करके संजीवनीविद्याका प्रयोग किया। उस विद्याके प्रयोगमात्रसे वे समस्त दैत्य एवं दानव सोकर जगे हुएके समान शस्त्र धारण किये हुए एक साथ उसी प्रकार उठ गये, जिस प्रकार निरन्तर अभ्यस्त वेद, जैसे समयपर मेघ एवं आपत्तिकालमें श्रद्धासे ब्राह्मणोंको दिया गया दान फलदायी हो जाता है॥ ३३—३५॥

तब हुण्ड आदि असुरोंको पुनः जीवित देखकर सभी दैत्य जलपूर्ण बादलके समान गर्जन करने लगे॥ ३६॥

तत्पश्चात् विकट ध्वनि करके गरजते हुए महान् बल तथा पराक्रमवाले वे दैत्य निर्भीक होकर प्रमथगणोंके साथ पुनः युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। युद्धमें अभिमानी नन्दी आदि सभी प्रमथगण शुक्राचार्यके द्वारा जीवित किये गये उन दैत्यों तथा दानवोंको देखकर अत्यन्त विस्मित हो उठे। इस सम्पूर्ण कर्मको देखकर 'शंकरजीसे निवेदन करना चाहिये'—इस प्रकार विचारकर वे बुद्धिमान् गण परस्पर कहने लगे॥ ३७—३९॥

प्रमथेश्वरोंके उस आश्चर्यकर युद्धयज्ञमें शुक्राचार्यके इस प्रकारके कार्यको देखकर शिलादपुत्र नन्दीश्वर अमर्षयुक्त हो शिवके समीप गये और 'जय हो, जय हो'—इस प्रकार कहकर जय देनेवाले एवं कनकके समान निष्कलंक शिवजीसे बोले—हे देव! युद्धस्थलमें इन्द्रसहित देवों एवं गणेश्वरोंने जो अत्यन्त कठिन कार्य किया है, हे ईश! हमारे उन सभी कार्योंको शुक्राचार्यने व्यर्थ कर दिया, एक-एक राक्षसको उद्देश्य करके मृतसंजीवनी-विद्याका प्रयोगकर युद्धमें मरे हुए उन सारे विपक्षियोंको उन्होंने बिना श्रमके जीवित कर दिया॥ ४०—४२॥

इस समय यमपुरीसे लौटे हुए तुहुण्ड, हुण्ड, कुम्भ, जम्भ, विपाक, पाक आदि महादैत्य [युद्धस्थलमें] प्रमथगणोंका विनाश करते हुए विचरण कर रहे हैं॥ ४३॥

हे महेश! यदि मारे गये श्रेष्ठ दैत्योंको शुक्राचार्य इसी प्रकार जीवित करते रहे, तो हम गणेश्वरोंकी विजय किस प्रकार सम्भव है और हमें शान्ति कहाँ?॥ ४४॥

सनत्कुमार बोले—प्रमथेश्वर नन्दीके इस प्रकार कहनेपर प्रमथेश्वरोंके ईश्वर महादेव हँसते हुए सभी गणेश्वरोंमें श्रेष्ठ नन्दीसे कहने लगे—॥ ४५॥

शिवजी बोले—हे नन्दी! तुम इसी क्षण शीघ्रतासे जाओ और दैत्योंके मध्यसे शुक्राचार्यको इस प्रकार पकड़कर शीघ्र ले आओ, जिस प्रकार बाज लवा पक्षीके बच्चेको पकड़ लेता है॥ ४६॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर नन्दी सिंहके समान गर्जना करते हुए दैत्योंकी सेनाको चीरते हुए उस स्थानपर पहुँच गये, जहाँ भार्गववंशके दीपक शुक्राचार्य थे। बड़े-बड़े दैत्य पाश, खड्ग, वृक्ष, पाषाण, पर्वत आदि शस्त्र हाथमें लेकर उनकी रक्षा कर रहे थे। बलवान् नन्दीश्वरने दैत्योंको विक्षुब्ध करके शुक्राचार्यको इस प्रकार पकड़ लिया, जिस प्रकार शरभ हाथीको पकड़ लेता है॥ ४७-४८॥

तब ढीले वस्त्रवाले, बिखरे केशवाले एवं गिरते हुए आभूषणोंवाले शुक्राचार्यको छुड़ानेके लिये अनेक राक्षस सिंहनाद करते हुए उनके पीछे दौड़े॥ ४९॥

दैत्येन्द्र नन्दीश्वरपर मेघके समान वज्र, शूल, तलवार, परशु, तीक्ष्ण चक्र, पाषाण एवं कम्पन आदि नाना प्रकारके शस्त्रोंकी घोर वर्षा करने लगे॥ ५०॥

गणाधिराज नन्दीश्वर उन सभी शस्त्रोंको अपने मुखकी अग्निसे भस्म करके उस महाभयानक युद्धस्थलमें शत्रुपक्षको पीड़ित करके शुक्राचार्यको लेकर शिवजीके पास चले आये और शिवजीसे यह कहने लगे—हे भगवन्! यह वही शुक्र है। तब देवदेव शिवजीने देवगणोंके लिये अग्निके द्वारा दी गयी आहुतिके समान शुक्राचार्यको ग्रहण कर लिया। प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले उन सदाशिवने बिना कुछ बोले ही उन शुक्राचार्यको फलके समान अपने मुखमें रख लिया, जिससे वे समस्त असुर ऊँचे स्वरमें महान् हाहाकार करने लगे॥ ५१—५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें अन्धकयुद्धोपाख्यानमें शुक्रनिगीर्णनवर्णन नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

शुक्राचार्यकी अनुपस्थितिसे अन्धकादि दैत्योंका दुखी होना, शिवके उदरमें शुक्राचार्यद्वारा सभी लोकों तथा अन्धकासुरके युद्धको देखना और फिर शिवके शुक्ररूपमें बाहर निकलना, शिव-पार्वतीका उन्हें पुत्ररूपमें स्वीकारकर विदा करना

व्यासजी बोले—हे महामुने! रुद्रके द्वारा शुक्राचार्यके निगल लिये जानेपर महावीर उन अन्धकादि दैत्योंने क्या किया? आप उसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीके द्वारा शुक्राचार्यके निगल लिये जानेपर दैत्य उसी प्रकार विजयकी आशासे रहित हो गये, जैसे सूँड़से रहित हाथी, सींगसे रहित वृषभ, सिरविहीन देहसमुदाय, अध्ययनसे हीन द्विज, उद्यमरहित सामर्थ्यशाली, भाग्यसे रहित उद्यम, पतिविहीन स्त्री, पंखसे रहित पक्षी, पुण्यरहित आयु, व्रतविहीन शास्त्रज्ञान, शूरतासे रहित क्षत्रिय, सत्यसे रहित धर्म और एकमात्र वैभवशक्तिके बिना समस्त क्रियाएँ अपने फलोंसे रहित हो जाती हैं॥ २—५॥

नन्दीके द्वारा शुक्राचार्यके हरण कर लिये जाने एवं शिवजीके द्वारा उन्हें निगल लिये जानेपर युद्धके लिये प्रयत्नशील होते हुए भी सभी दैत्य दु:खको प्राप्त हुए॥ ६॥

उन्हें उत्साहरहित देखकर महान् धैर्य तथा पराक्रमसे युक्त अन्धकने हुण्ड, तुहुण्ड आदि दैत्योंसे इस प्रकार कहा—॥ ७॥

अन्धक बोला—अपने पराक्रमसे शुक्राचार्यको पकड़कर ले जाते हुए इस नन्दीने हमलोगोंको धोखा दिया है, उसने निश्चय ही हमलोगोंको बिना प्राणके कर दिया है। केवल एक शुक्राचार्यके हरण कर लिये जानेसे हमलोगोंका धैर्य, ओज, कीर्ति, बल, तेज और पराक्रम एक साथ ही नष्ट हो गया। हमलोगोंको धिक्कार है, जो कि हम कुलपूज्य, परम कुलीन, सर्वसमर्थ, रक्षक एवं गुरुकी इस आपत्तिमें रक्षा न कर सके॥ ८—१०॥

अत: तुम सब वीर गुरुके चरणकमलोंका स्मरण करके बिना विलम्ब किये ही उन वीर शत्रु प्रमथगणोंके साथ युद्ध करो॥ ११॥

गुरु शुक्राचार्यके सुखद चरणकमलोंका स्मरणकर मैं नन्दीसहित सभी प्रमथोंको नष्ट कर दूँगा॥ १२॥

आज मैं इन्द्रसहित देवताओंके साथ इन प्रमथगणोंको मारकर इन्हें विवशकर शुक्राचार्यको इस प्रकार छुड़ाऊँगा, जिस प्रकार योगी कर्मसे जीवको छुड़ा देता है॥ १३॥

यद्यपि ऐसा भी सम्भव है कि हमलोगोंमेंसे शेषका पालन करनेवाले महायोगी प्रभु शुक्र स्वयं योगबलसे शिवजीके शरीरसे निकल जायँ॥ १४॥

सनत्कुमार बोले—अन्धककी यह बात सुनकर मेघके समान गर्जना करनेवाले निर्दय दैत्य मरनेका निश्चयकर प्रमथगणोंसे कहने लगे—॥ १५॥

आयुके शेष रहनेपर प्रमथगण हमें बलपूर्वक जीत नहीं सकते, किंतु यदि आयु समाप्त हो गयी है, तो स्वामीको युद्धभूमिमें छोड़कर भागनेसे क्या लाभ है?॥ १६॥

अत्यन्त अहंकारी जो लोग अपने स्वामीको छोड़कर चले जाते हैं, वे निश्चय ही अन्धतामिस्र नरकमें गिरते हैं। युद्धभूमिसे भागनेवाले अपयशरूपी अन्धकारसे अपनी ख्यातिको अत्यधिक मलिन करके इस लोक एवं

परलोकमें सुखी नहीं रहते हैं ॥ १७-१८ ॥

पुनर्जन्मरूपी मलका नाश करनेवाले धरातीर्थ—युद्धतीर्थमें यदि मनुष्य स्नान कर लेता है, तो दान, तप एवं तीर्थस्नानसे क्या लाभ? इस प्रकार उन वाक्योंपर विचारकर दैत्य तथा दानव रणभेरी बजाकर प्रमथगणोंको युद्धभूमिमें पीड़ित करने लगे। युद्धमें उन्होंने बाण, खड्ग, वज्र, भयंकर शिलीमुख, भुशुण्डी, भिन्दिपाल, शक्ति, भाला, परशु, खट्वांग, पट्टिश, त्रिशूल, दण्ड एवं मुसलोंसे परस्पर प्रहार करते हुए घोर संहार किया ॥ १९—२२ ॥

उस समय खींचे जाते हुए धनुषों, छोड़े जाते हुए बाणों, चलाये जाते हुए भिन्दिपालों एवं भुशुण्डियोंका शब्द हो रहा था। रणकी तुरहियोंके निनादों, हाथियोंके चिंघाड़ों तथा घोड़ोंकी हिनहिनाहटोंसे सर्वत्र महान् कोलाहल मच गया ॥ २३-२४ ॥

भूमि तथा आकाशके मध्य गूँजे हुए शब्दोंसे साहसी तथा कायर सभीको बहुत रोमांच होने लगा। वहाँ हाथी, घोड़ोंकी घोर ध्वनिसे स्पष्ट शब्द हो रहे थे, जिनसे ध्वज एवं पताकाएँ टूट गयीं तथा शस्त्र नष्ट हो गये ॥ २५-२६ ॥

खूनकी धारासे रणस्थली अद्भुत हो गयी, हाथी, घोड़े एवं रथ नष्ट हो गये और युद्धकी पिपासा रखनेवाली दोनों ओरकी सेनाएँ मूर्च्छित हो गयीं ॥ २७ ॥

हे मुने! उसके बाद नन्दी आदि प्रमथगणोंने अपने बलसे सभी दैत्योंको मारा और विजय प्राप्त की ॥ २८ ॥

इस प्रकार प्रमथोंके द्वारा अपनी सेनाको विनष्ट होता हुआ देखकर स्वयं अन्धक रथपर आरूढ़ हो शिवगणोंपर झपट पड़ा ॥ २९ ॥

अन्धकके द्वारा प्रयुक्त किये गये बाणों तथा अस्त्रोंसे प्रमथगण इस प्रकार नष्ट हो गये, जिस प्रकार वज्रप्रहारसे पर्वत एवं पवनसे जलरहित मेघ नष्ट हो जाते हैं ॥ ३० ॥

अन्धकने आने-जानेवाले, दूरस्थ एवं निकटस्थ एक-एक गणको देखकर असंख्य बाणोंसे उन्हें विद्ध कर दिया। तब बलवान् अन्धकके द्वारा नाशको प्राप्त होती हुई अपनी सेनाको देखकर स्वामीकार्तिकेय, गणेश, नन्दीश्वर, सोमनन्दी आदि एवं दूसरे भी शिवजीके वीर प्रमथ तथा महाबली गण उठे और क्रुद्ध हो युद्ध करने लगे ॥ ३१—३३ ॥

उस समय गणेश, स्कन्द, नन्दी, सोमनन्दी, नैगमेय एवं वैशाख आदि उग्र गणोंने त्रिशूल, शक्ति तथा बाणोंकी वर्षासे अन्धकको भी अन्धा कर दिया ॥ ३४-३५ ॥

उस समय असुरों और प्रमथगणोंकी सेनाओंमें कोलाहल होने लगा। उस महान् शब्दके द्वारा शिवजीके उदरमें स्थित हुए शुक्र अपने निकलनेका रास्ता खोजते हुए शिवजीके उदरमें चारों ओर इस प्रकार घूमने लगे, जिस प्रकार आधाररहित पवन इधर-उधर भटकता है। उन्होंने शिवजीके देहमें सप्त पातालसहित सात लोकोंको एवं ब्रह्मा, नारायण, इन्द्र, आदित्य तथा अप्सराओंके विचित्र भुवन तथा प्रमथों एवं असुरोंके युद्धको देखा ॥ ३६—३८ ॥

उन शुक्रने शिवजीके उदरमें चारों ओर सौ वर्षपर्यन्त घूमते हुए भी कहीं कोई छिद्र वैसे ही नहीं प्राप्त किया, जैसे दुष्ट व्यक्ति पवित्र व्यक्तिमें कोई छिद्र नहीं देख पाता। तब शिवजीसे प्राप्त किये गये योगसे श्रेष्ठ मन्त्रका जप करके भृगुकुलोत्पन्न वे शुक्राचार्य शिवजीके उदरसे उनके लिंगमार्गसे शुक्र (वीर्य)-रूपसे निकले और उन्होंने शिवजीको प्रणाम किया। इसके बाद पार्वतीने पुत्ररूपसे उन्हें ग्रहण किया और उन्हें विघ्नरहित कर दिया ॥ ३९—४१ ॥

तब लिंगसे वीर्यरूपमें निकले हुए शुक्रको देखकर दयासागर शिवजी हँसकर उनसे कहने लगे— ॥ ४२ ॥

महेश्वर बोले—हे भृगुनन्दन! आप मेरे लिंगसे वीर्यरूपमें निकले हैं, इस कारण आपका नाम शुक्र हुआ और आप मेरे पुत्र हुए, अब जाइये ॥ ४३ ॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सूर्यके समान कान्तिमान् शुक्रने शिवको पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की ॥ ४४ ॥

शुक्र बोले—आप अनन्त चरणवाले, अनन्त मूर्तिवाले, अनन्त सिरवाले, अन्त करनेवाले, कल्याणस्वरूप, अनन्त बाहुवाले तथा अनन्त स्वरूपवाले हैं, इस प्रकार सिर झुकाकर प्रणाम करनेयोग्य आपकी स्तुति मैं कैसे करूँ। आप अष्टमूर्ति होते हुए भी अनन्तमूर्ति हैं, आप सभी देवताओं तथा असुरोंको वांछित फल देनेवाले तथा अनिष्ट दृष्टिवालेका संहार करनेवाले हैं, इस प्रकार सर्वथा प्रणाम किये जानेयोग्य आपकी स्तुति मैं किस

प्रकार करूँ॥ ४५-४६ ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार शिवकी स्तुतिकर उन्हें पुनः नमस्कार करके शुक्रने शिवकी आज्ञासे दानवोंकी सेनामें इस प्रकार प्रवेश किया, जिस प्रकार मेघमालामें चन्द्रमा प्रवेश करता है॥ ४७॥

[हे व्यासजी!] इस प्रकार मैंने युद्धमें शिवजीके द्वारा शुक्रके निगल जानेका वर्णन किया, अब उस मन्त्रको सुनिये, जिसे शिवजीके उदरमें शुक्रने जपा था॥ ४८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें शुक्रनिगीर्णन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

शुक्राचार्यद्वारा शिवके उदरमें जपे गये मन्त्रका वर्णन, अन्धकद्वारा भगवान् शिवकी नामरूपी स्तुति-प्रार्थना, भगवान् शिवद्वारा अन्धकासुरको जीवनदानपूर्वक गाणपत्य पद प्रदान करना

[शुक्राचार्यने भगवान् शिवके उदरमें जिस मन्त्रका जप किया था, उस मन्त्रका भावार्थ इस प्रकार है—]

सनत्कुमार बोले—[हे महर्षे] 'ॐ जो देवताओंके स्वामी, सुर-असुरद्वारा वन्दित, भूत और भविष्यके महान् देवता, हरे और पीले नेत्रोंसे युक्त, महाबली, बुद्धिस्वरूप, बाघम्बर धारण करनेवाले, अग्निस्वरूप, त्रिलोकीके उत्पत्तिस्थान, ईश्वर, हर, हरिनेत्र, प्रलयकारी, अग्निस्वरूप, गणेश, लोकपाल, महाभुज, महाहस्त, त्रिशूल धारण करनेवाले, बड़ी-बड़ी दाढ़ोंवाले, कालस्वरूप, महेश्वर, अविनाशी, कालरूपी, नीलकण्ठ, महोदर, गणाध्यक्ष, सर्वात्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापी, मृत्युको हटानेवाले, पारियात्र पर्वतपर उत्तम व्रत धारण करनेवाले, ब्रह्मचारी, वेदान्तप्रतिपाद्य, तपकी अन्तिम सीमातक पहुँचनेवाले, पशुपति, विशिष्ट अंगोंवाले, शूलपाणि, वृषध्वज, पापापहारी, जटाधारी, शिखण्ड धारण करनेवाले, दण्डधारी, महायशस्वी, भूतेश्वर, गुहामें निवास करनेवाले, वीणा और पणवपर ताल लगानेवाले, अमर, दर्शनीय, बालसूर्य-सरीखे रूपवाले, श्मशानवासी, ऐश्वर्यशाली, उमापति, शत्रुदमन, भगके नेत्रोंको नष्ट कर देनेवाले, पूषाके दाँतोंके विनाशक, क्रूरतापूर्वक संहार करनेवाले, पाशधारी, प्रलयकालरूप, उल्कामुख, अग्निकेतु, मननशील, प्रकाशमान, प्रजापति, ऊपर उठानेवाले, जीवोंको उत्पन्न करनेवाले, तुरीयतत्त्वरूप, लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ, वामदेव, वाणीकी चतुरतारूप, वाममार्गमें भिक्षुरूप, भिक्षुक, जटाधारी, जटिल—दुराराध्य, इन्द्रके हाथको स्तम्भित करनेवाले, वसुओंको विजडित कर देनेवाले, यज्ञस्वरूप, यज्ञकर्ता, काल, मेधावी, मधुकर, चलने-फिरनेवाले, वनस्पतिका आश्रय लेनेवाले, वाजसन नामसे सम्पूर्ण आश्रमोंद्वारा पूजित, जगद्धाता, जगत्कर्ता, सर्वान्तर्यामी, सनातन, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, भूः-भुवः-स्वः—इन तीनों लोकोंमें विचरनेवाले, भूतभावन, त्रिनेत्र, बहुरूप, दस हजार सूर्योंके समान प्रभाशाली, महादेव, सब तरहके बाजे बजानेवाले, सम्पूर्ण बाधाओंसे विमुक्त करनेवाले, बन्धनस्वरूप, सबको धारण करनेवाले, उत्तम धर्मरूप, पुष्पदन्त, विभागरहित, मुख्यरूप, सबका हरण करनेवाले, सुवर्णके समान दीप्त कीर्तिवाले, मुक्तिके द्वारस्वरूप, भीम तथा भीमपराक्रमी हैं, उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।'—इस श्रेष्ठ मन्त्रका जप करके शिवजीके जठरपंजरसे उनके लिंगमार्गसे उत्कट वीर्यकी भाँति शुक्राचार्य बाहर आये॥ १॥

पार्वतीने उन्हें पुत्ररूपमें ग्रहण किया और विश्वेश्वरने उन्हें अजर-अमर एवं ऐश्वर्यमय बनाकर दूसरे शिवके समान कर दिया॥ २॥

इस प्रकार तीन हजार वर्ष बीत जानेपर वेदनिधि मुनि शुक्र महेश्वरसे पुनः पृथ्वीपर उत्पन्न हुए॥ ३॥

तब उन्होंने शिवके त्रिशूलपर अत्यन्त शुष्क शरीरवाले, महाधैर्यवान् और तपस्वी दानवराज अन्धकको शिवजीका ध्यान करते हुए देखा॥ ४॥

[वह शिवजीके १०८ नामोंका इस प्रकार स्मरण

कर रहा था], महादेव, विरूपाक्ष, चन्द्रार्धकृतशेखर अमृत, शाश्वत, स्थाणु, नीलकण्ठ, पिनाकी, वृषभाक्ष, महाज्ञेय, पुरुष, सर्वकामद, कामारि, कामदहन, कामरूप, कपर्दी, विरूप, गिरिश, भीम, स्रग्वी, रक्तवासा, योगी, कालदहन, त्रिपुरघ्न, कपाली, गूढव्रत, गुप्तमन्त्र, गम्भीर, भावगोचर, अणिमादि गुणाधार, त्रिलोकैश्वर्यदायक, वीर, वीरहण, घोर, विरूप, मांसल, पटु, महामांसाद, उन्मत्त, भैरव, महेश्वर, त्रैलोक्यद्रावण, लुब्ध, लुब्धक, यज्ञसूदन, कृत्तिकासुतयुक्त, उन्मत्त, कृत्तिवासा, गजकृत्तिपरीधान, क्षुब्ध, भुजगभूषण, दत्तालम्ब, वेताल, घोर, शाकिनीपूजित, अघोर, घोर दैत्यघ्न, घोरघोष, वनस्पति, भस्मांग, जटिल, शुद्ध, भेरुण्डशतसेवित, भूतेश्वर, भूतनाथ, पंचभूताश्रित, खग, क्रोधित, निष्ठुर, चण्ड, चण्डीश, चण्डिकाप्रिय, चण्ड, तुंग, गरुत्मान्, नित्य आसवभोजन, लेलिहान, महारौद्र, मृत्यु, मृत्योरगोचर, मृत्योर्मृत्यु, महासेन, श्मशानारण्यवासी, राग, विराग, रागान्ध, वीतरागशतार्चित, सत्त्व, रज, तम, धर्म, अधर्म, वासवानुज, सत्य, असत्य, सद्रूप, असद्रूप, अहेतुक, अर्धनारीश्वर, भानु, भानुकोटिशतप्रभ, यज्ञ, यज्ञपति, रुद्र, ईशान, वरद और शिव—इस प्रकार परमात्मा शिवजीकी इन एक सौ आठ मूर्तियोंका ध्यान करता हुआ वह दैत्य उस महाभयसे मुक्त हो गया॥ ५—१८॥

प्रसन्न हुए शिवजीने दिव्य अमृतकी वर्षासे उसका अभिषेक किया और उस त्रिशूलके अग्रभागसे उसे उतारा और महात्मा शिवजीने वह सब कृत्य उस महादैत्य अन्धकसे शान्तिपूर्वक कहा, जिसे उन्होंने पहले किया था॥ १९-२०॥

ईश्वर बोले—हे दैत्येन्द्र! हे सुव्रत! मैं तुम्हारे यम, नियम, शौर्य एवं धैर्यसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम वर माँगो। हे श्रेष्ठ महादैत्येन्द्र! तुमने निष्पाप होकर नित्य मेरी आराधना की है, तुम वरके योग्य हो, इसलिये मैं तुम्हें वर देना चाहता हूँ। इस प्रकार तीन सहस्र वर्षपर्यन्त प्राणधारण करनेका तुम्हारा जो पुण्यफल है, उससे तुम्हारी मुक्ति हो जाय॥ २१—२३॥

सनत्कुमार बोले—यह सुनकर अन्धकने पृथ्वीपर दोनों घुटनोंको टेककर काँपते हुए हाथ जोड़कर उमापति शिवजीसे कहा—॥ २४॥

अन्धक बोला—हे भगवन्! मैंने इससे पूर्वमें आप परात्पर परमात्माको युद्धक्षेत्रमें प्रसन्न गद्गद वाणीसे दीन, हीन इत्यादि जो कहा है एवं हे शम्भो! मूर्ख होनेके कारण अज्ञानवश इस लोकमें जो-जो निन्दित कर्म किया है, उसे आप अपने मनमें न रखें॥ २५-२६॥

हे महादेव! मैंने कामविकारसे पार्वतीके प्रति अपराध किया है, उसे क्षमा करें; क्योंकि मैं अत्यन्त कृपण एवं दुखी हूँ॥ २७॥

हे प्रभो! अत्यन्त दुखित, कृपण, दीन एवं भक्तिसे युक्त जनपर आपको विशेष रूपसे दया करनी चाहिये॥ २८॥

मैं दीन आपकी शरणमें आया हूँ, अतः मेरी रक्षा कीजिये। मैंने हाथ जोड़ रखे हैं॥ २९॥

मुझपर सन्तुष्ट होनेवाली जगज्जननी ये देवी समस्त क्रोध त्यागकर मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे देखें॥ ३०॥

हे चन्द्रशेखर! हे अर्धेन्दुचूड! हे शम्भो! हे महेश्वर! कहाँ तो इन महादेवीका क्रोध और कहाँ मैं दयाका पात्र दैत्य, फिर भी आप मेरा अपराध क्षमा करते रहें॥ ३१॥

कहाँ आप जैसे परमोदार और कहाँ काम, क्रोधादि दोषों एवं मृत्यु तथा वृद्धावस्थाके वशीभूत रहनेवाला मैं। [हे प्रभो!] आपका यह युद्धकुशल तथा महाबली पुत्र वीरक मुझ दयापात्रको देखकर अब क्रोध न करे॥ ३२-३३॥

तुषार, हार, चन्द्र, शंख तथा कुन्दके समान स्वच्छ वर्णवाले हे प्रभो! मैं इन माता पार्वतीको अत्यन्त आदरसे नित्य देखा करूँ। अब मैं आप दोनोंका सदा भक्त होकर तथा देवताओंके साथ वैररहित होकर शान्तचित्त और योगपरायण हो इन गणोंके साथ निवास करूँ॥ ३४-३५॥

हे महेशान! आपकी कृपासे मैं दानवकुलमें उत्पन्न होनेके कारण किये गये विपरीत कर्मोंका स्मरण कभी न करूँ, आप मुझे यह उत्तम वर दीजिये॥ ३६॥

सनत्कुमार बोले—इतना कहकर उस दैत्येन्द्रने माता पार्वतीकी ओर देखकर भगवान् शिवका ध्यान करते हुए मौन धारण कर लिया। तदनन्तर शिवजीने प्रसन्नतापूर्ण दृष्टिसे उसे देखा, तब उसे अपने पूर्ववृत्तान्त तथा अद्भुत जन्मका स्मरण हो आया॥ ३७-३८॥

इस प्रकार उस पूर्ववृत्तान्तका स्मरण होनेपर वह पूर्णमनोरथवाला हो गया और माता-पिताको प्रणामकर

कृतकृत्य हो गया। इसके बाद बुद्धिमान् शिवजी तथा पार्वतीने उसका मस्तक सूँघा और उसने प्रसन्न हुए सदाशिवसे अभिलषित वर प्राप्त किया। [हे वेदव्यासजी!] इस प्रकार मैंने अन्धकका सारा पुरातन वृत्तान्त और शंकरजीकी कृपासे उसे सुख देनेवाले गाणपत्य पदकी प्राप्तिका वर्णन किया और सभी कामनाओंका फल देनेवाले तथा मृत्युका विनाश करनेवाले मृत्युंजय मन्त्रको भी मैंने कहा, इसको यत्नपूर्वक पढ़ना (जपना) चाहिये॥ ३९—४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें अन्धकगणजीवप्राप्तिवर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

पचासवाँ अध्याय

शुक्राचार्यद्वारा काशीमें शुक्रेश्वर लिंगकी स्थापनाकर उनकी आराधना करना, मूर्त्यष्टक स्तोत्रसे उनका स्तवन, शिवजीका प्रसन्न होकर उन्हें मृतसंजीवनी-विद्या प्रदान करना और ग्रहोंके मध्य प्रतिष्ठित करना

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] मृत्युंजय नामक शिवजीसे जिस प्रकार शुक्राचार्य मुनिने मृत्युनाशिनी विद्या प्राप्त की, उसे आप सुनें। पूर्वकालमें भृगुपुत्र शुक्राचार्य वाराणसीपुरीमें जाकर विश्वेश्वर प्रभुका ध्यान करते हुए दीर्घकालतक तप करते रहे॥ १-२॥

हे वेदव्यास! उन्होंने वहाँ परमात्मा शिवका लिंग स्थापित किया और उसके सामने एक मनोहर कूपका निर्माण करवाया। उन्होंने द्रोण-परिमाणके पंचामृतसे उन देवेशको एक लाख बार स्नान करवाया और इसी प्रकार नाना प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे भी एक लाख बार स्नान करवाया। उन्होंने देवेशका चन्दन, यक्षकर्दम* और सुगन्धित उबटनसे हजारों बार प्रीतिपूर्वक अनुलेपन किया॥ ३—५॥

उन्होंने राजचम्पक, धतूरा, कनेर, कमल, मालती, कर्णिकार, कदम्ब, बकुल, उत्पल, मल्लिका, शतपत्री, सिन्धुवार, किंशुक, बन्धूकपुष्प, पुन्नाग, केशर, नागकेशर, नवमल्ली, चिबिलिक, कुन्द, मुचुकुन्द, मन्दार, बेलपत्र, द्रोण, मरुबक, वृक, ग्रन्थिपर्ण, दमनक, सुरम्य आम्रपत्र, तुलसी, देवगन्धारी, बृहत्पत्री, कुशांकुर, नन्द्यावर्त, अगस्त्य, साल, देवदारु, कचनार, कुरबक, दूर्वांकुर, कुरुण्टक—इन प्रत्येक पुष्पोंसे तथा अनेक प्रकारके दूसरे मनोहर पल्लवों, पत्तों तथा कमलोंसे सावधानचित्त हो प्रीतिपूर्वक शिवजीका पूजन किया॥ ६—११॥

तदनन्तर उन्होंने गीत, नृत्य, उपहार, बहुत-सी स्तुतियों, शिवसहस्रनामस्तोत्र तथा अन्य स्तुतियोंसे शिवजीको प्रसन्न किया। इस प्रकार शुक्राचार्य पाँच हजार वर्षपर्यन्त नाना प्रकारकी अर्चनविधिसे महेश्वर शिवकी पूजा करते रहे॥ १२-१३॥

जब उन्होंने शिवजीको वरदानके लिये थोड़ा भी उन्मुख न देखा, तब अत्यन्त कठिन दूसरा नियम धारण किया। भावनारूपी जलसे इन्द्रियोंसहित चित्तके चांचल्यरूपी महान् दोषको धोकर उस चित्तरूप महारत्नको निर्मल करके शिवजीके लिये अर्पण करके शुक्राचार्य हजारों वर्षपर्यन्त तुषाग्निजन्य धूमराशिका पान करने लगे॥ १४—१६॥

इस प्रकार दृढ़ मनवाला होकर घोर तप करते हुए उनको देखकर शिवजी शुक्राचार्यपर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और हजारों सूर्योंसे भी अधिक तेजवाले दाक्षायणीपति विरूपाक्ष शिवजी उस लिंगसे प्रकट होकर कहने लगे—॥ १७-१८॥

महेश्वर बोले—हे तपोनिधे! हे महाभाग! हे महामुने! हे भृगुपुत्र! मैं आपके इस तपसे विशेषरूपसे प्रसन्न हूँ। हे भार्गव! आप अपना मनोभिलषित समस्त वर माँगिये, मैं प्रसन्न होकर आपकी सभी कामनाएँ पूर्ण करूँगा। आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है॥ १९-२०॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीके इस अत्यन्त सुख

* 'कर्पूरागरुकस्तूरीकङ्कोलैर्यक्षकर्दमः।' (अमरकोश) एक प्रकारका सुगन्धित अंगलेप, जो कपूर, अगरु, कस्तूरी और कंकोलको समान मात्रामें मिलाकर बनाया जाता है।

देनेवाले श्रेष्ठ वचनको सुनकर शुक्राचार्य हर्षित हो गये और आनन्दसमुद्रमें निमग्न हो गये॥ २१॥

कमलके समान नेत्रवाले तथा हर्षातिरेकसे रोमांचित विग्रहवाले शुक्राचार्यने प्रसन्नतापूर्वक शिवजीको प्रणाम किया और प्रफुल्लित नेत्रोंवाला होकर सिरपर अंजलि लगाकर जय-जयकार करते हुए बड़ी प्रसन्नतासे वे अष्टमूर्ति* शिवजीकी स्तुति करने लगे— ॥ २२-२३॥

भार्गव बोले—हे जगदीश्वर! आप अपने तेजसे समस्त अन्धकारको दूरकर रातमें विचरण करनेवाले राक्षसोंके मनोरथोंको नष्ट कर देते हैं। हे दिनमणे! आप त्रिलोकीका हित करनेके लिये आकाशमें सूर्यरूपसे प्रकाशित हो रहे हैं; ऐसे आपको नमस्कार है॥ २४॥

हे हिमांशो! आप पृथ्वी तथा आकाशमें समस्त प्राणियोंके नेत्र बनकर चन्द्ररूपसे विराजमान हैं और लोकमें व्याप्त अन्धकारका नाश करनेवाले एवं अमृतकी किरणोंसे युक्त हैं। हे अमृतमय! आपको नमस्कार है॥ २५॥

हे भुवनजीवन! आप पावनपथ—योगमार्गका आश्रय लेनेवालोंकी सदा गति तथा उपास्यदेव हैं। इस जगत्में आपके बिना कौन जीवित रह सकता है। आप वायुरूपसे समस्त प्राणियोंका वर्धन करनेवाले और सर्पकुलोंको सन्तुष्ट करनेवाले हैं। हे सर्वव्यापिन्! आपको नमस्कार है॥ २६॥

हे विश्वके एकमात्र पावनकर्ता! हे शरणागतरक्षक! यदि आपकी एकमात्र पावक (पवित्र करनेवाली एवं दाहिका) शक्ति न रहे, तो मरनेवालोंको मोक्ष प्रदान कौन करे? हे जगदन्तरात्मन्! आप ही समस्त प्राणियोंके भीतर वैश्वानर नामक पावक (अग्निरूप) हैं और उन्हें पग-पगपर शान्ति प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है॥ २७॥

हे जलरूप! हे परमेश! हे जगत्पवित्र! आप निश्चय ही विचित्र उत्तम चरित्र करनेवाले हैं। हे विश्वनाथ! आपका यह अमल पानीय रूप अवगाहनमात्रसे विश्वको पवित्र करनेवाला है, अतः आपको नमस्कार करता हूँ॥ २८॥

हे आकाशरूप! हे ईश्वर! यह संसार बाहर एवं भीतरसे अवकाश देनेके ही कारण विकसित है, हे दयामय! आपसे ही यह संसार स्वभावतः सदा श्वास लेता है और आपसे ही यह संकोचको प्राप्त होता है, अतः आपको प्रणाम करता हूँ॥ २९॥

हे विश्वम्भरात्मक [पृथ्वीरूप]! हे विभो! आप ही इस जगत्का भरण-पोषण करते हैं। हे विश्वनाथ! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन अन्धकारका विनाशक है। हे अहिभूषण! मेरे अज्ञानरूपी अन्धकारको आप दूर करें, आप स्तवनीय पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, अतः आप परात्परको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ३०॥

हे आत्मस्वरूप! हे हर! आपकी इन रूप-परम्पराओंसे यह सारा चराचर जगत् विस्तारको प्राप्त हुआ है। सबकी अन्तरात्मामें निवास करनेवाले हे प्रतिरूप! हे अष्टमूर्ते! मैं भी आपका जन हूँ, मैं आपको नित्य नमस्कार करता हूँ॥ ३१॥

हे दीनबन्धो! हे विश्वजनीनमूर्ते! हे प्रणतप्रणीत (शरणागतोंके रक्षक)! हे सर्वार्थसार्थपरमार्थ! आप इन अष्टमूर्तियोंसे युक्त हैं और यह विस्तृत जगत् आपसे व्याप्त है, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ ३२॥

सनत्कुमार बोले—भार्गवने इस प्रकार अष्टमूर्ति-स्तुतिके आठ श्लोकोंसे शिवजीकी स्तुतिकर भूमिमें सिर झुकाकर उनको बार-बार प्रणाम किया॥ ३३॥

अत्यन्त तेजस्वी भार्गवसे इस प्रकार स्तुत महादेवजी प्रणाम करते हुए उन ब्राह्मणको अपनी भुजाओंसे पकड़कर तथा पृथ्वीसे उठाकर अपने दाँतोंकी कान्तिसे दिगन्तरको प्रकाशित करते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगे— ॥ ३४-३५॥

महादेवजी बोले—हे विप्रवर्य! हे कवे! हे तात! आप मेरे पवित्र भक्त हैं, आपके द्वारा की गयी उग्र तपस्या, लिंगप्रतिष्ठाजन्य पुण्य, लिंगाराधन, अपने पवित्र एवं निश्चल चित्तके समर्पण तथा अविमुक्त-जैसे महाक्षेत्रमें किये गये पवित्राचरणसे मैं आपको दयापूर्वक देखता हूँ, आपके लिये कुछ भी अदेय नहीं है॥ ३६—३८॥

आप इसी शरीरसे मेरी उदररूपी गुफामें प्रविष्ट हो पुनः लिंगेन्द्रिय मार्गसे निकलकर पुत्रभावको प्राप्त होंगे॥ ३९॥

अब मैं अपने पार्षदोंके लिये भी दुर्लभ वर आपको

* पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान (क्षेत्रज्ञ या आत्मा), चन्द्रमा और सूर्य—इन आठोंमें अधिष्ठित शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान—ये अष्टमूर्तियोंके नाम हैं।

प्रदान करता हूँ, जिसे मैंने ब्रह्मा तथा विष्णुसे भी गुप्त रखा है॥ ४०॥

मृतसंजीवनी नामक जो मेरी निर्मल विद्या है, उसका निर्माण मैंने स्वयं अपने महान् तपोबलसे किया है॥ ४१॥

हे महाशुचे! उस मन्त्ररूपा विद्याको मैं आपको प्रदान करता हूँ। हे शुचितपोनिधे! आपमें उस विद्याकी प्राप्तिकी योग्यता है। आप जिस किसीको उद्देश्य करके विद्येश्वर भगवान् शिवकी इस श्रेष्ठ विद्याका आवर्तन करेंगे, वह अवश्य ही जीवित हो जायगा, यह सत्य है॥ ४२-४३॥

आपका देदीप्यमान तेज आकाशमण्डलमें सूर्य तथा अग्निसे बढ़कर होगा, आप प्रकाशमान होंगे और श्रेष्ठ ग्रह होंगे। जो स्त्री या पुरुष आपके सम्मुख यात्रा करेगा, आपकी दृष्टि पड़नेमात्रसे उनका सारा कार्य नष्ट हो जायगा और हे सुव्रत! मनुष्योंके समस्त विवाह आदि धर्मकार्य आपके उदयकालमें ही फलप्रद होंगे॥ ४४—४६॥

सम्पूर्ण नन्दा तिथियाँ (प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी) आपके संयोगसे शुभ होंगी। आपके भक्त अत्यन्त पराक्रमी तथा अधिक सन्तानोंसे युक्त होंगे॥ ४७॥

आपके द्वारा स्थापित किये गये इस लिंगका नाम शुक्रेश्वर होगा। जो मनुष्य इसकी अर्चना करेंगे, उनकी कार्यसिद्धि होगी॥ ४८॥

वर्षभर प्रतिदिन नक्तव्रतपरायण जो लोग प्रति शुक्रवारको शुक्रकूपमें स्नान एवं तर्पणकर इन शुक्रेश शिवकी पूजा करेंगे, उसका फल सुनिये—उनका वीर्य कभी निष्फल नहीं जायगा, वे पुत्रवान् एवं अति वीर्यवान् होंगे। वे सभी लोग पुरुषत्व एवं सौभाग्यसे सम्पन्न, विद्यायुक्त तथा सुखी होंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ४९—५१॥

इस प्रकार वर देकर शिवजी उसी लिंगमें लीन हो गये और शुक्राचार्य भी प्रसन्नचित्त होकर अपने स्थानको चले गये। हे व्यासजी! शुक्रने जिस प्रकार अपने तपोबलसे मृत्युंजय नामकी विद्या प्राप्त की, उसे मैंने कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५२-५३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें मृतसंजीवनीविद्याप्राप्तिवर्णन नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

प्रह्लादकी वंशपरम्परामें बलिपुत्र बाणासुरकी उत्पत्तिकी कथा, शिवभक्त बाणासुरद्वारा ताण्डव नृत्यके प्रदर्शनसे शंकरको प्रसन्न करना, वरदानके रूपमें शंकरका बाणासुरकी नगरीमें निवास करना, शिव-पार्वतीका विहार, पार्वतीद्वारा बाणपुत्री ऊषाको वरदान

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! हे सनत्कुमार! आपने मुझपर अनुग्रहकर परम प्रीतिसे शिवके अनुग्रहसे पूर्ण यह अत्यन्त अद्भुत कथा सुनायी। अब शिवजीके उस चरित्रको सुनना चाहता हूँ, जिस प्रकार उन्होंने प्रीतिपूर्वक बाणासुरको गाणपत्यपद प्रदान किया॥ १-२॥

सनत्कुमार बोले—हे व्यास! जिस प्रकार शिवजीने प्रसन्नतापूर्वक बाणासुरको गाणपत्यपद प्रदान किया, परमात्मा शिवजीके उस चरित्रको अब आप आदरपूर्वक सुनिये। इसी चरित्रके अन्तर्गत बाणासुरपर अनुग्रह करनेवाले महाप्रभु सदाशिवका श्रीकृष्णके साथ युद्ध भी हुआ॥ ३-४॥

अब शिवकी लीलासे युक्त, मन तथा कानको सुख देनेवाले तथा महापुण्यदायक इतिहासको सुनिये॥ ५॥

पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मानसपुत्र मरीचि नामक प्रजापति हुए, जो उनके सभी पुत्रोंमें ज्येष्ठ, श्रेष्ठ एवं महाबुद्धिमान् मुनि थे। उनके पुत्र मुनिश्रेष्ठ महात्मा कश्यप हुए, जो इस सृष्टिके प्रवर्तक हैं। वे अपने पिता मरीचि तथा ब्रह्माजीके अत्यन्त भक्त थे॥ ६-७॥

हे व्यासजी! दक्षकी सुशील तेरह कन्याएँ थीं, जो उन कश्यपमुनिकी पतिव्रता स्त्रियाँ थीं॥ ८॥

उनमें ज्येष्ठ कन्याका नाम दिति था, सभी दैत्य उसीके पुत्र कहे गये हैं और अन्य स्त्रियोंसे चराचरसहित सभी देवता आदि सन्तानें उत्पन्न हुईं॥ ९॥

ज्येष्ठ पत्नी दितिसे महाबलवान् दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें हिरण्यकशिपु ज्येष्ठ तथा हिरण्याक्ष कनिष्ठ

था। उस हिरण्यकशिपुके क्रमसे ह्राद, अनुह्राद, संह्राद तथा प्रह्लाद नामक चार दैत्यश्रेष्ठ पुत्र हुए॥ १०-११॥

उन सभीमें प्रह्लाद अत्यन्त जितेन्द्रिय तथा भगवान् विष्णुका परम भक्त था, जिसका नाश करनेमें कोई भी दैत्य समर्थ नहीं हुआ। उस प्रह्लादका पुत्र विरोचन हुआ, जो दानियोंमें श्रेष्ठ था और जिसने ब्राह्मणरूपी इन्द्रके माँगनेपर अपना सिर ही दे दिया॥ १२-१३॥

उस विरोचनका पुत्र महादानी एवं शिवप्रिय बलि हुआ, जिसने वामनावतार धारणकर याचना करनेवाले विष्णुको सम्पूर्ण पृथ्वी दान कर दी॥ १४॥

उसी बलिका औरस पुत्र बाण हुआ, जो शिवभक्त, मान्य, दानी, बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ एवं हजारोंका दान करनेवाला था। वह दैत्यराज बाणासुर अपने बलसे तीनों लोकोंको तथा उसके स्वामियोंको जीतकर शोणित नामक पुरमें रहकर राज्य करता था॥ १५-१६॥

सभी देवगण शंकरजीकी कृपासे शिवभक्त उस बाणासुरके दासकी भाँति हो गये॥ १७॥

उस बाणासुरके राज्यमें देवताओंको छोड़कर अन्य प्रजाएँ दुखी नहीं थीं। देवगणोंके दुःखका कारण यह था कि बाणासुर उनका शत्रु था एवं वह असुरकुलमें उत्पन्न हुआ था। एक समय उस महादैत्यने अपनी हजार भुजाओंको बजाकर ताण्डव नृत्यद्वारा उन महेश्वरको प्रसन्न कर लिया। भक्तवत्सल भगवान् शंकर उस नृत्यसे सन्तुष्ट तथा अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने कृपादृष्टिसे उसकी ओर देखा॥ १८—२०॥

सर्वलोकेश, शरणागतवत्सल एवं भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाले भगवान् शंकरने उस बलिपुत्र बाणासुरको वर प्रदान करनेकी इच्छा की॥ २१॥

सनत्कुमार बोले—[हे मुने!] अत्यन्त बुद्धिमान् एवं शिवभक्त वह बलि-पुत्र बाणासुर परमेश्वर शिवको भक्तिसे प्रणामकर स्तुति करने लगा—॥ २२॥

बाणासुर बोला—हे देवदेव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे महेशान! हे विभो! हे प्रभो! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो मेरे नगरके अधिपति बनकर अपने पुत्रों एवं गणोंके सहित इसीके समीप निवासकर मेरा हित करते हुए मेरी रक्षा कीजिये॥ २३-२४॥

सनत्कुमार बोले—शिवजीकी मायासे मोहित हुए बलिपुत्र बाणासुरने मुक्ति देनेवाले दुराराध्य शिवसे केवल इतना ही वर माँगा। भक्तवत्सल प्रभु शंकर उस बाणासुरको उन वरोंको देकर गणों तथा पुत्रोंसहित उसके पुरमें निवास करने लगे। किसी समय बाणासुरके शोणितपुर नामक मनोहर नगरमें नदीके तटपर शिवजीने देवगणों एवं दैत्योंके साथ क्रीड़ा की॥ २५—२७॥

उस समय गन्धर्व एवं अप्सराएँ नाचने-हँसने लगीं। मुनियोंने शिवको प्रणाम किया, उनका जप, पूजन तथा स्तवन किया। प्रमथगण अट्टहास करने लगे, ऋषिलोग हवन करने लगे एवं सिद्धगण यहाँ आये और शिवकी क्रीड़ा देखने लगे॥ २८-२९॥

म्लेच्छ, कुमार्गी तथा कुतर्की विनष्ट हो गये। समस्त देवमाताएँ शिवजीके सम्मुख उपस्थित हो गयीं तथा सभी प्रकारके भय नष्ट हो गये॥ ३०॥

उस क्रीड़ासे रुद्रमें सद्भावना रखनेवाले भक्तोंके सांसारिक दोष दूर हो गये। उस समय शिवजीका दर्शन करते ही सभी प्रजाएँ अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं॥ ३१॥

मुनि तथा सिद्धगण स्त्रियोंकी अद्भुत चेष्टाको देखकर अट्टहास करने लगे। समस्त ऋतुएँ वहाँ अपना-अपना प्रभाव प्रकट करने लगीं॥ ३२॥

पुष्पोंके परागसे मिश्रित सुगन्धित वायु बहने लगी, पक्षिसमूह कूजन करने लगे एवं पुष्पोंके भारसे अवनत वृक्षशाखाओंपर मधुलम्पट कोयलें वनों तथा उपवनोंमें कामोत्पादक मधुर शब्द करने लगीं॥ ३३-३४॥

उस समय क्रीडाविहारमें उन्मत्त तथा कामपर विजय न प्राप्तकर उससे देखे जानेमात्रसे ही कामके वशीभूत सदाशिवने नन्दीसे कहा—॥ ३५॥

चन्द्रशेखर बोले—हे नन्दिन्! तुम शीघ्र ही इस वनसे कैलास जाकर मेरा सन्देश कहकर शृंगारसे युक्त गौरीको यहाँ ले आओ॥ ३६॥

सनत्कुमार बोले—'ऐसा ही करूँगा', इस प्रकारकी प्रतिज्ञाकर वहाँ जाकर शंकरके दूत नन्दीने हाथ जोड़कर एकान्तमें पार्वतीसे कहा—॥ ३७॥

नन्दीश्वर बोले—हे देवि! देवदेव महादेव महेश्वर शृंगारसे युक्त अपनी भार्याको देखना चाहते हैं, मैंने उनके

आदेशसे ऐसा कहा है॥ ३८॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उनके इस वचनको सुनकर पतिव्रतधर्मपरायणा भगवती पार्वती बड़ी प्रसन्नतासे अपना श्रृंगार करने लगीं और नन्दीसे बोलीं—तुम मेरी आज्ञासे शीघ्र शिवजीके पास जाओ और उनसे कहो कि मैं अभी आ रही हूँ। यह सुनकर मनकी गतिके समान चलनेवाले नन्दीश्वर महादेवके पास चले आये॥ ३९-४०॥

नन्दीको अकेले आया देख शिवजीने नन्दीसे पुन: कहा—हे तात! तुम पुन: जाओ और पार्वतीको शीघ्र लिवा लाओ। तब नन्दीने 'बहुत अच्छा' कहकर वहाँ जाकर मनोहर नेत्रवाली गौरीसे कहा—आपके पति श्रृंगार की हुई आप मनोरमाको देखना चाहते हैं। हे देवि! विहार करनेकी उत्कण्ठासे वे उत्सुकतापूर्वक आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, अत: हे गिरिनन्दिनि! आप अपने पतिके पास शीघ्र चलिये॥ ४१—४३॥

पार्वतीके आनेमें देर देखकर समग्र अप्सराओंने परस्पर मिलकर विचार किया कि शिवजी पार्वतीको शीघ्र देखना चाहते हैं। इस अवस्थामें वे जिस स्त्रीका वरण करेंगे, वह स्त्री निश्चय ही समस्त दिव्य स्त्रियोंकी रानी होगी॥ ४४-४५॥

इस समय कामशत्रु शिवको यह काम दु:ख दे रहा है, इसलिये हम पार्वतीका रूप धारण करें, कदाचित् हमें पार्वतीके रूपमें देखकर वे मन्मथगणोंसहित हमारे साथ क्रीडा करें। वे आदरपूर्वक आपसमें ऐसा विचार करने लगीं॥ ४६॥

अत: जो स्त्री दाक्षायणीसे रहित इन शंकरका स्पर्श कर सके, वही नि:शंक भावसे पार्वतीपति शिवजीके पास जाय और उन्हें मोहित करे॥ ४७॥

तब कूष्माण्ड (कुम्भाण्ड)-की कन्या चित्रलेखाने यह वचन कहा—'मैं गौरीका सुन्दर रूप धारणकर शिवजीका स्पर्श कर सकती हूँ॥ ४८॥

चित्रलेखा बोली—केशवने शिवजीको मोहित करनेकी इच्छासे परमार्थके लिये वैष्णवयोगका आश्रय लेकर जिस मोहिनीरूपको धारण किया, उसीको मैं धारण करती हूँ। तदनन्तर उसने उर्वशीके परिवर्तित रूपको देखा, इसी प्रकार—उसने देखा कि घृताचीने कालीरूप, विश्वाचीने चण्डिकारूप, रम्भाने सावित्रीरूप, मेनकाने गायत्रीरूप, सहजन्याने जयारूप, पुंजिकस्थलीने विजयाका रूप तथा समस्त अप्सराओंने मातृगणोंका रूप यत्नपूर्वक बना लिया है। उनके रूपोंको देखकर कुम्भाण्डपुत्री चित्रलेखाने भी वैष्णवयोगसे सारे रहस्योंको जानकर अपने रूपको छिपा लिया॥ ४९—५३॥

दिव्य योगविशारद बाणासुरकी कन्या ऊषाने वैष्णवयोगके प्रभावसे अत्यन्त मनोहर, सुन्दर और अद्भुत पार्वतीका रूप धारण किया॥ ५४॥

ऊषाके चरण लाल कमलके समान दिव्य कान्तिवाले, उत्तम प्रभासे सम्पन्न, दिव्य लक्षणोंसे संयुक्त एवं मनके अभिलषित पदार्थोंको देनेवाले थे॥ ५५॥

उसके बाद सर्वान्तर्यामिनी तथा सब कुछ जाननेवाली शिवा गिरिजा शिवजीके साथ उसकी रमणकी इच्छा जानकर कहने लगीं— ॥ ५६॥

गिरिजा बोलीं—हे सखि ऊषे! हे मानिनि! तुमने समय प्राप्त होनेपर सकामभावसे मेरा रूप धारण किया, अत: तुम इसी कार्तिक मासमें ऋतुधर्मिणी होओगी। वैशाख मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको घोर अर्धरात्रिमें उपवासपूर्वक अन्त:पुरमें सोयी हुई अवस्थामें तुमसे जो कोई पुरुष आकर रमण करेगा, देवगणोंने उसीको तुम्हारा पति नियुक्त किया है। उसीके साथ तुम रमण करोगी; क्योंकि तुम बाल्यावस्थासे ही आलस्यरहित होकर सर्वदा विष्णुमें भक्ति रखनेवाली हो। तब 'ऐसा ही हो'—इस प्रकार ऊषाने मनमें कहा और वह लज्जित हो गयी॥ ५७—६०॥

इसके बाद श्रृंगारसे युक्त होकर रुद्रके समीप आकर वे देवी पार्वती उन शम्भुके साथ क्रीड़ा करने लगीं॥ ६१॥

हे मुने! तदनन्तर रमणके अन्तमें भगवान् सदाशिव स्त्रियों, गणों एवं देवताओंके साथ अन्तर्धान हो गये॥ ६२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें ऊषाचरित्रवर्णनके क्रममें शिवाशिवविहारवर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५१॥

बावनवाँ अध्याय

अभिमानी बाणासुरद्वारा भगवान् शिवसे युद्धकी याचना, बाणपुत्री ऊषाका रात्रिके समय स्वप्नमें अनिरुद्धके साथ मिलन, चित्रलेखाद्वारा योगबलसे अनिरुद्धका द्वारकासे अपहरण, अन्तःपुरमें अनिरुद्ध और ऊषाका मिलन तथा द्वारपालोंद्वारा यह समाचार बाणासुरको बताना

सनत्कुमार बोले—[हे व्यास!] अब आप परमात्मा शिवका दूसरा चरित्र सुनिये, जो भक्तवत्सलतासे पूर्ण तथा परमानन्ददायक है॥ १॥

पूर्वकालमें भाग्यदोषसे गर्वित होकर बाणासुरने ताण्डव नृत्यकर शिवजीको सन्तुष्ट किया था॥ २॥

उसके बाद पार्वतीपति शिवजीको सन्तुष्ट मनवाला जानकर बाणासुर सिर झुकाकर विनम्र हो हाथ जोड़कर कहने लगा—॥ ३॥

बाणासुर बोला—हे देवाधिदेव! हे महादेव! हे सर्वदेवशिरोमणे! यद्यपि मैं आपकी कृपासे अत्यन्त बलवान् हूँ, तथापि मेरी प्रार्थना सुनिये॥ ४॥

आपने मुझे हजार भुजाएँ प्रदान की हैं, किंतु ये मेरे लिये भारस्वरूप हो गयी हैं, इस त्रिलोकीमें आपके अतिरिक्त और कोई दूसरा योद्धा मेरे समान नहीं है॥ ५॥

हे देव! अब मैं इन हजार भुजाओंको लेकर क्या करूँ? हे वृषभध्वज! बिना युद्धके पर्वतके सदृश इन भुजाओंका क्या प्रयोजन?॥ ६॥

मैं अपनी इन मजबूत भुजाओंकी खुजली मिटानेके लिये युद्धकी इच्छासे दिग्गजोंके पास गया, वहाँ जाकर मैंने उनके पुरोंको तहस-नहस कर दिया, पर्वतोंको उखाड़ दिया, किंतु वे भी भयभीत होकर भाग गये॥ ७॥

मैंने अपने यहाँ यमराजको योद्धाके रूपमें, अग्निको महान् कर्मकारके रूपमें, वरुणको गायोंके पालन करनेवाले गोपालके रूपमें, कुबेरको गजाध्यक्षके रूपमें, निर्ऋतिको अन्तःपुरकी परिचारिकाके रूपमें नियुक्त किया है। मैंने इन्द्रको जीत लिया और उसे लोकमें सदा करदाता बना दिया है। अब आप मुझे युद्धका कोई ऐसा उपाय बताइये, जहाँपर मेरी ये भुजाएँ शत्रुओंके हाथसे प्रयुक्त शस्त्रास्त्रके द्वारा जर्जर कर दी जायँ॥ ८—१०॥

हे महेश्वर! ये [मेरी भुजाएँ] शत्रुओंके हाथोंसे गिर जायँ अथवा वे स्वयं उसके हाथोंको हजार टुकड़ोंमें विभक्त कर दें, आप मेरे इस मनोरथको पूर्ण कीजिये॥ ११॥

सनत्कुमार बोले—भक्तजनोंके संकटको दूर करनेवाले महामन्यु रुद्रने यह सुनकर क्रुद्ध हो अत्यन्त अद्भुत अट्टहास करके कहा—॥ १२॥

रुद्र बोले—हे समस्त दैत्यकुलमें अधम! हे अहंकारी! तुझे सब प्रकारसे धिक्कार है, तुझ बलिपुत्र तथा मेरे भक्तके लिये इस प्रकारका वचन कहना उचित नहीं है। तुम अपने इस अहंकारकी शान्ति शीघ्र प्राप्त करोगे। मेरे-जैसे बलवान्से तुम्हें अकस्मात् प्रचण्ड युद्धका सामना करना पड़ेगा॥ १३-१४॥

पर्वतके समान तुम्हारी ये भुजाएँ उस युद्धमें शस्त्रास्त्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर इस प्रकार भूमिपर गिरेंगी, जैसे अग्निसे जलाया गया काष्ठ पृथ्वीपर गिर जाता है॥ १५॥

हे दुष्टात्मन्! मोरसे युक्त मनुष्यके सिरवाली यह तुम्हारी ध्वजा जो शस्त्रागारपर स्थापित है, वह जब बिना वायुके गिर जाय, तब चित्तमें समझना कि तुम्हारे सामने महाघोर भय उपस्थित हो गया है। उस समय तुम अपनी सेनासहित घोर संग्राममें जाना। अब तुम अपने घर जाओ, अभी वहाँ तुम्हारा सब प्रकारसे कल्याण है। हे दुर्मते! तुम बड़े घोर उत्पातोंको देखोगे। इस प्रकार कहकर अहंकारका नाश करनेवाले भक्तवत्सल शिव मौन हो गये॥ १६—१९॥

सनत्कुमार बोले—यह सुनकर बाणासुर अपने अंजलिस्थ दिव्य पुष्पोंसे महादेव रुद्रका पूजन करके उन्हें प्रणामकर अपने घर चला गया। उसने कुम्भाण्डके पूछनेपर हर्षित हो सारा वृत्तान्त कह सुनाया और उत्सुक होकर उस योगकी प्रतीक्षा करने लगा। इसके अनन्तर अकस्मात् अपना ध्वज भग्न हुआ देखकर वह बाणासुर हर्षित होकर युद्धके लिये चल पड़ा॥ २०—२२॥

अपनी सेनाको बुलाकर उस महावीर, महारथी एवं महोत्साही बलिपुत्र बाणासुर ने अपने आठ गणोंको साथ लेकर संग्रामसम्बन्धी यज्ञकर विजयप्रद मधुका एवं सभी

दिशाओंमें मांगलिक द्रव्योंका दर्शनकर युद्धके लिये प्रस्थान किया॥ २३-२४॥

उसने अपने मनमें विचार किया कि आज रणप्रिय, नाना शस्त्रास्त्रोंका पारगामी वह कौन-सा योद्धा है, जो मुझसे युद्ध करनेके लिये कहाँसे आयेगा? क्या वह सचमुच मेरी सहस्रों भुजाओंको अग्निदग्ध काष्ठके समान नष्ट कर देगा? मैं भी युद्धमें महातीव्र अपने शस्त्रोंसे सैकड़ों योद्धाओं को काट डालूँगा॥ २५-२६॥

इसी बीच शिवजीकी प्रेरणासे वह काल आ पहुँचा, जब बाणासुरकी सुन्दर कन्या ऊषा शृंगारकर विराजमान थी॥ २७॥

वह वैशाख मासकी अर्धरात्रिमें विष्णुकी पूजाकर स्त्रीभावसे उपलम्भित होकर गुप्त अन्तःपुरमें सो रही थी। तभी भगवती पार्वतीकी दिव्य मायासे आकृष्ट होनेके कारण कृष्णपुत्र प्रद्युम्नसे उत्पन्न हुए अनिरुद्धने उस रात्रिमें उससे बलपूर्वक विहार किया, जिससे वह अनाथके समान रोने लगी। अनिरुद्ध भी उस कन्यासे बलपूर्वक रमणकर पार्वतीकी सखियोंके साथ दिव्य योगसे क्षणमात्रमें द्वारकापुरी चले आये॥ २८—३०॥

तब उपभोग की हुई वह कन्या उठकर रोते-रोते अपनी सखियोंसे नाना प्रकारके वाक्य कहते हुए शरीरका त्याग करनेके लिये तैयार हो गयी॥ ३१॥

हे व्यासजी! जब सखियोंने उसके द्वारा किये गये पूर्व दोषका स्मरण कराया, तो वह अपने पूर्व कृत्योंका स्मरण करने लगी। हे मुने! उस समय बाणासुरकी पुत्री ऊषाने कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखासे मधुर वाणीमें कहा— ॥ ३२-३३॥

ऊषा बोली—हे सखि! यदि पार्वतीने पहले ही इसे मेरा पति निश्चित किया है, तो वह गुप्त पति किस उपायसे मुझे प्राप्त हो सकता है? जिसने मेरा मन हरण किया, वह किस कुलमें उत्पन्न हुआ है? ऊषाकी यह बात सुनकर सखीने उससे कहा— ॥ ३४-३५॥

चित्रलेखा बोली—हे देवि! तुमने स्वप्नमें जिस पुरुषको देखा है, उसे मैं किस प्रकारसे लाऊँ, जो मेरे ज्ञानसे परे है, उसको ले आना किस प्रकार सम्भव है!॥ ३६॥

उसके ऐसा कहनेपर अनुरागवती दैत्यकन्या ऊषाने उसके वियोगके कारण मरनेका निश्चय कर लिया, किंतु उस सखीने [समझा-बुझाकर] प्रथम दिन उसकी रक्षा की। इसके बाद हे मुनिश्रेष्ठ! कुम्भाण्डकी पुत्री महाबुद्धिमती उस चित्रलेखाने बाणासुरकी पुत्री ऊषासे पुनः इस प्रकार कहा—हे सखि! तुम अपने मनको हरण करनेवाले उस पुरुषको बताओ, यदि वह इस त्रिलोकीमें कहीं भी है, तो मैं उसे लाऊँगी और तुम्हारी विपत्ति दूर करूँगी॥ ३७—३९॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहकर चित्रलेखाने वस्त्रके ऊपर देव, दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, नाग तथा यक्ष आदिके चित्र खींचे। उसने मनुष्योंमें वृष्णिवंशी यादवों, शूर, वसुदेव, बलराम, कृष्ण तथा नरश्रेष्ठ प्रद्युम्नका चित्र खींचा॥ ४०-४१॥

जब उसने प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धका चित्र खींचा, तो उस चित्रको देखते ही लज्जित हो ऊषाने अपना मुख नीचे कर लिया और मनसे वह अत्यन्त प्रसन्न हुई॥ ४२॥

ऊषा बोली—हे सखि! रात्रिमें आकर जिसने शीघ्र ही मेरे चित्तरत्नको चुराया था, वह यही पुरुष है, मैंने उसे पा लिया। हे भामिनि! जिसके स्पर्शमात्रसे मैं मोहित हो गयी थी, उसे मैं जानना चाहती हूँ, तुम सब कुछ बताओ। यह किसके कुलमें उत्पन्न हुआ है और इसका क्या नाम है? ऊषाके ऐसा कहनेपर उस योगिनीने उसके वंश तथा नामका वर्णन किया॥ ४३—४५॥

हे मुनिसत्तम! उसका कुल आदि सब कुछ जानकर बाणासुरकी पुत्री उस कामिनी ऊषाने उत्कण्ठित हो इस प्रकार कहा— ॥ ४६॥

ऊषा बोली—हे सखि! अब तुम उसकी प्राप्तिके लिये प्रेमपूर्वक कोई उपाय करो, जिससे मैं अपने उस प्राणवल्लभ पतिको शीघ्र प्राप्त कर सकूँ॥ ४७॥

हे सखि! मैं जिसके बिना एक क्षण भी जीवन धारण करनेमें समर्थ नहीं हूँ, उसे प्रयत्नपूर्वक शीघ्र यहाँ लाओ और मुझे सुखी करो॥ ४८॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनिवर! तब बाणकी कन्याके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मन्त्री कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखा विस्मित हो गयी और विचार करने लगी॥ ४९॥

इसके बाद सखीसे आज्ञा लेकर मनके समान

वेगवाली वह चित्रलेखा उस पुरुषको कृष्णका पौत्र अनिरुद्ध जानकर द्वारका जानेको उद्यत हो गयी॥ ५०॥

वह ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको प्रातःकालसे तीन प्रहर बीत जानेपर द्वारकापुरी पहुँची। उस दिव्य योगिनीने क्षणमात्रमें आकाशमार्गसे अन्तःपुरके उद्यानमें प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धको देखा। उस समय सर्वांगसुन्दर श्यामवर्ण तथा नवीन यौवनयुक्त वे अनिरुद्ध स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। वे माधवी लतासे निर्मित मधुका पान कर रहे थे और मन्द-मन्द हँस रहे थे॥ ५१—५३॥

उसके बाद शय्यापर बैठे हुए उन अनिरुद्धको उसने तामस योगके द्वारा अन्धकार-पटसे आच्छादित कर दिया, पुनः उस शय्याको अपने सिरपर रखकर वह क्षणमात्रमें शोणितपुरमें आ गयी, जहाँ कामपीड़ित वह बाणकन्या ऊषा उन्मत्तचित्त होकर नाना प्रकारके भाव व्यक्त कर रही थी। उस समय लाये गये अपने पति अनिरुद्धको देखकर ऊषा भयभीत हो गयी॥ ५४—५६॥

अत्यन्त सुरक्षित उस अन्तःपुरमें नवीन समागममें ज्यों ही उन दोनोंने क्रीड़ा प्रारम्भ की, उसी समय हाथमें बेंत लिये द्वारपालोंने कामचेष्टाओं तथा अनुमानोंसे कन्याके दुराचरणको जान लिया। उन लोगोंने दिव्य शरीरधारी, नवयुवक, साहसी एवं युद्धकलामें कुशल उस पुरुष (अनिरुद्ध)-को भी देख लिया॥ ५७—५९॥

इसके बाद अन्तःपुरके रक्षक उन महावीर पुरुषोंने उसे देखकर सारा वृत्तान्त बलिपुत्र बाणसे कह दिया॥ ६०॥

द्वारपाल बोले—हे देव! अत्यन्त सुरक्षित अन्तःपुरमें प्रवेशकर किसी पुरुषने आपकी कन्याके साथ बलात् शयन किया है, वह कौन है, हमलोग उसे नहीं जानते। हे दानवेन्द्र! हे महाबाहो! इसे देखिये, देखिये और जो उचित हो, उसे कीजिये, हमलोग दोषी नहीं हैं॥ ६१-६२॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! उनका वचन सुनकर और कन्याका दोष सुनकर महाबली दैत्येन्द्र [बाणासुर] आश्चर्यचकित हो गया॥ ६३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें ऊषाचरित्रवर्णन नामक बावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

क्रुद्ध बाणासुरका अपनी सेनाके साथ अनिरुद्धपर आक्रमण और उसे नागपाशमें बाँधना, दुर्गाके स्तवनद्वारा अनिरुद्धका बन्धनमुक्त होना

सनत्कुमार बोले—इसके बाद बाणासुरने अत्यन्त क्रुद्ध हो वहाँ जाकर दिव्य लीलासे युक्त शरीरवाले तथा नवीन युवावस्थासे सम्पन्न उन अनिरुद्धको देखा॥ १॥

उन्हें देखकर आश्चर्यचकित हो युद्धमें प्रचण्ड वह बाणासुर क्रोधसे आगबबूला हो हँसते हुए उनके आनेके कारणोंपर विचार करता हुआ राक्षसोंसे बोला—अहो! इतना रूपवान्, साहसी, धैर्यशील, अभागा एवं मूर्ख यह कौन पुरुष है, जिसकी मृत्यु आसन्न है और जिसने मेरी पुत्रीको दूषितकर मेरा कुल दूषित किया है। तुमलोग क्रुद्ध होकर अपने अति कठोर शस्त्रोंसे शीघ्र ही उसका वध करो। अथवा इस दुराचारीको बाँधकर बहुत कालके लिये घोर तथा विकट कारागारमें रखो। 'मालूम नहीं कि निर्भीक एवं महापराक्रमी यह कौन है'—यह सोचकर वह महाबुद्धि बाणासुर सन्देहमें पड़ गया॥ २—६॥

इसके बाद उस पापबुद्धि दैत्यने उस वीरको मारनेके लिये दस हजार सैनिकोंको आज्ञा दी॥ ७॥

उसके द्वारा आदिष्ट समस्त वीरोंने 'मारो-काटो' कहते हुए शीघ्र ही चारों ओरसे अन्तःपुरको घेर लिया॥ ८॥

तब शत्रुसेनाको अन्तःपुरके द्वारपर आया हुआ देखकर गर्जना करते हुए वे अनिरुद्ध अतुलनीय परिघ हाथमें लेकर, हाथमें वज्र लिये हुए कालके समान भवनसे निकले और उससे समस्त सैनिकोंका वधकर पुनः अन्तःपुरमें चले गये। हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार शिवके तेजसे पराक्रमशील अनिरुद्धने क्रोधसे रक्तनेत्र हो दस हजार सेनाओंका वध कर दिया॥ ९—११॥

इसके बाद [पुनः युद्धके लिये आयी हुई] एक लाख

सेनाका वध कर दिये जानेपर क्रोधमें भरे हुए बाणासुरने युद्धकुशल कुम्भाण्डको लेकर शिवतेजसे रक्षित तथा कान्तिमान् शरीरवाले महाबुद्धिमान् प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धको उस महायुद्धमें द्वन्द्वयुद्धके लिये ललकारा॥ १२-१३॥

तब उन्होंने दैत्येन्द्रकी दस हजार सेना, उतने घोड़े और उतने ही रथोंको उसीके खड्गसे नष्ट कर दिया, जो द्वन्द्वयुद्धमें उन्हें बाणासुरसे प्राप्त हुआ था॥ १४॥

इसके बाद अनिरुद्धने कालाग्निके समान शक्ति उसके वधके लिये ग्रहणकर उसके ऊपर प्रहार किया॥ १५॥

इसके बाद रथके पिछले भागमें स्थित वह वीर बाणासुर उस शक्तिसे दृढ़तापूर्वक आहत होते ही रथ एवं घोड़ोंके सहित उसी क्षण वहींपर अन्तर्धान हो गया॥ १६॥

तब बिना पराजित हुए उस दैत्यके अन्तर्धान हो जानेपर अनिरुद्ध सभी दिशाओंकी ओर देखकर पहाड़के समान अचल हो गये। उस समय अन्तर्हित होकर वह दैत्य कपटपूर्वक युद्ध करता हुआ नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अनिरुद्धपर बार-बार प्रहार करने लगा॥ १७-१८॥

उसके बाद महाबली महावीर तथा शिवभक्त बलिपुत्र बाणासुरने छलसे अनिरुद्धको नागपाशमें बाँध लिया॥ १९॥

इस प्रकार उन्हें बाँधकर पिंजड़ेमें बन्द करके बाणासुर युद्धसे विश्राम करने लगा। इसके बाद उसने क्रोधमें भरकर महाबली सूतपुत्र (सारथी)-से कहा—॥ २०॥

बाणासुर बोला—हे सूतपुत्र! बड़ी शीघ्रतासे इस पुरुषका सिर काट लो, जिसने बलपूर्वक मेरे पवित्र उत्तम कुलको दूषित किया है अथवा इसके सम्पूर्ण शरीरको काटकर राक्षसोंको दे दो और इसके रुधिर तथा मांसको मांसभक्षी [चील, कौवे आदि] भी खायें अथवा इस पापीको तृणोंसे व्याप्त गहरे कुएँमें डालकर मार डालो। हे सूतपुत्र! बहुत क्या कहूँ, यह सभी प्रकारसे वधके योग्य है॥ २१—२३॥

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर वह धर्मबुद्धिवाला राक्षस कुम्भाण्ड बाणासुरसे नीतियुक्त यह वाक्य कहने लगा—॥ २४॥

कुम्भाण्ड बोला—हे देव! विचार कीजिये, यह कर्म करना उचित नहीं है; क्योंकि इसके मार डालनेपर आत्माका हनन होगा, ऐसा मेरा विचार है॥ २५॥

हे देव! यह तो पराक्रममें विष्णुके समान तथा आपके इष्ट शिवजीके तेजसे बढ़ा हुआ दिखायी पड़ रहा है, पुरुषार्थमें शिवजीके साहससे भरा हुआ यह इस अवस्थाको प्राप्त हुआ है। श्रीकृष्णका यह महाबली पौत्र बलपूर्वक दैत्यरूपी सर्पोंसे डँसा हुआ भी शिवजीके प्रसादसे हमलोगोंको तृणके समान समझ रहा है॥ २६—२८॥

सनत्कुमार बोले—बाणासुरसे ऐसा वचन कहकर राजनीतिविशारद उस दैत्यने अनिरुद्धसे कहा—॥ २९॥

कुम्भाण्ड बोला—हे वीर! हे दुराचारी! हे नराधम! तुम कौन हो, किसके पुत्र हो और तुमको यहाँ कौन लाया है—यह सब मेरे समक्ष सत्य-सत्य कहो और 'मैं हार गया'—इस प्रकारका दीन वचन बार-बार कहकर हाथ जोड़कर दैत्येन्द्रकी स्तुति करो तथा उन्हें नमस्कार करो। ऐसा करनेपर तुम बन्धनसे मुक्त हो जाओगे, अन्यथा बँधे ही रहोगे। उसका यह वचन सुनकर वे उत्तर देने लगे—॥ ३०—३२॥

अनिरुद्ध बोले—हे अधम दैत्यके मित्र! प्रजाद्वारा प्राप्त धनसे आजीविका चलानेवाले हे निशाचर! हे दुराचारी! तुम शत्रुधर्मको नहीं जानते॥ ३३॥

दीनता तथा युद्धसे भागना शूरके लिये मरनेसे भी बढ़कर है, यह प्रतिकूल और शल्यके समान दुःखदायी है, ऐसा मेरा विचार है॥ ३४॥

वीर तथा मानी क्षत्रियके लिये संग्राममें सम्मुख होकर मृत्युको प्राप्त हो जाना श्रेयस्कर है, किंतु दीनकी भाँति हाथ जोड़कर भूमिपर रहना श्रेष्ठ नहीं है॥ ३५॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकारके वीरतापूर्ण अनेक वाक्य अनिरुद्धने उस दैत्यसे कहे। यह सुनकर बाणासुरसहित वह कुम्भाण्ड आश्चर्यचकित हुआ और क्रोधित हो उठा। उसी समय सभी वीरों, अनिरुद्ध तथा मन्त्रीको सुनाते हुए उस बाणासुरको समझानेके लिये आकाशवाणी हुई॥ ३६-३७॥

आकाशवाणी बोली—हे महावीर! हे बाणासुर! हे सुमते! हे शिवभक्त! तुम बलिके पुत्र हो, तुम्हारे लिये क्रोध करना उचित नहीं है, इसपर जरा विचार करो॥ ३८॥

शिवजी सबके ईश्वर, कर्मोंके साक्षी तथा परमेश्वर हैं, यह चराचर जगत् उन्हींके अधीन है॥ ३९॥

वे ही सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी होकर

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूपसे इस जगत्के कर्ता, पालक तथा संहारक हैं। वे सबके अन्तर्यामी, स्वामी, सबके प्रेरक, सबसे परे, निर्विकार, अविनाशी, नित्य मायाके अधिपति तथा निर्गुण हैं। हे बलिके श्रेष्ठ पुत्र! उनकी इच्छासे निर्बलको भी बलवान् जानना चाहिये। हे महामते! ऐसा मनमें जानकर सावधान हो जाओ॥ ४०—४२॥

अभिमानका नाश करनेवाले, भक्तोंका पालन करनेवाले तथा नाना प्रकारकी लीला करनेमें निपुण भगवान् सदाशिव अभी तुम्हारा अभिमान नष्ट करेंगे॥ ४३॥

सनत्कुमार बोले—हे महामुने! ऐसा कहकर आकाशवाणी शान्त हो गयी और बाणासुरने उसके वचनके अनुसार अनिरुद्धको नहीं मारा, किंतु अपने अन्तःपुरमें जाकर उस प्रतिकूल बुद्धिवालेने उत्तम रसका पान किया और वह उस वचनको भूल गया तथा विहार करने लगा। उसके बाद भयंकर विषवाले नागोंसे बँधे हुए तथा प्रियाके बिना अतृप्त चित्तवाले अनिरुद्धने उसी क्षण दुर्गादेवीका स्मरण किया॥ ४४—४६॥

अनिरुद्ध बोले—हे शरण्ये! हे देवि! हे यशोदे! हे चण्डरोषिणि! मैं बँधा हूँ तथा सर्पोंसे भस्म हो रहा हूँ, आप आइये और मेरी रक्षा कीजिये। हे शिवभक्ते! हे शिवे! हे महादेवि! आप सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय करनेवाली हैं, आपके अतिरिक्त कोई भी रक्षा करनेवाला नहीं है, अतः आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ४७-४८॥

सनत्कुमार बोले—उनके द्वारा इस प्रकारकी स्तुति किये जानेपर निखरे हुए काजलके समान वर्णवाली कालीजी ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको महानिशामें प्रकट हुईं। उन्होंने अपनी विशाल मुष्टिके प्रहारसे उस पिंजरेको तोड़ दिया तथा उन भयानक सर्परूपी बाणोंको भस्मकर अनिरुद्धको बन्धनमुक्त करके उन्हें अन्तःपुरमें प्रविष्ट करानेके पश्चात् दुर्गा वहींपर अन्तर्धान हो गयीं॥ ४९—५१॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार शिवशक्तिरूपा देवीकी कृपासे अनिरुद्ध दुःखसे निवृत्त हो गये और व्यथारहित होकर सुखी हो गये॥ ५२॥

तब शिवशक्तिके प्रभावसे विजय प्राप्तकर तथा बाणपुत्री अपनी प्रियाको प्राप्तकर अनिरुद्ध आनन्दित हो गये। इसके बाद मद्यपान करके लाल नेत्रोंवाले वे अनिरुद्ध अपनी प्रिया उस बाणासुरकी कन्याके साथ सुखी होकर पूर्वकी भाँति विहार करने लगे॥ ५३-५४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें ऊषाचरित्रमें अनिरुद्ध-ऊषाविहारवर्णन नामक तिरपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ अध्याय

नारदजीद्वारा अनिरुद्धके बन्धनका समाचार पाकर श्रीकृष्णकी शोणितपुरपर चढ़ाई, शिवके साथ उनका घोर युद्ध, शिवकी आज्ञासे श्रीकृष्णका उन्हें जृम्भणास्त्रसे मोहित करके बाणासुरकी सेनाका संहार करना

व्यासजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! कुम्भाण्डकी पुत्री चित्रलेखाद्वारा अपने पौत्र अनिरुद्धका हरण कर लिये जानेपर श्रीकृष्णने क्या किया, उसे कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनिसत्तम! अनिरुद्धके चले जानेपर उन स्त्रियोंके रोनेके शब्दको सुनकर श्रीकृष्णको बहुत दुःख हुआ॥ २॥

अनिरुद्धको बिना देखे उनके बन्धुओं तथा श्रीकृष्णको शोक करते हुए वर्षाकालके चार मास बीत गये॥ ३॥

तब नारदजीसे उनकी वार्ता तथा उनके बंधनका समाचार सुनकर सब यादवगण तथा श्रीकृष्णजी अति दुखी हुए। उस सम्पूर्ण वृत्तान्तको सुनकर श्रीकृष्ण उसी समय आदर-पूर्वक गरुडको बुलाकर युद्धके लिये शोणितपुरको गये। उस समय प्रद्युम्न, युयुधान, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द, भद्र, बलराम तथा कृष्णके अनुवर्ती सब लोग चले॥ ४—६॥

बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ श्रेष्ठ यादवोंने चारों ओरसे बाणासुरके नगरको घेर लिया॥ ७॥

नगर, उद्यान, प्राकार, अटारी, गोपुर आदिको विध्वस्त होता हुआ देखकर क्रोधसे व्याप्त वह बाणासुर

भी उतनी ही सेनाके साथ निकल पड़ा॥ ८॥

बाणासुरकी रक्षा करनेके लिये भगवान् सदाशिव नन्दी वृषभपर सवार होकर अपने पुत्र तथा प्रमथगणोंके साथ युद्ध करनेके लिये गये। वहाँ बाणासुरके रक्षक रुद्र आदिसे श्रीकृष्ण आदिका अद्भुत, रोमांचकारी तथा भयंकर युद्ध हुआ। कृष्णके साथ शिवजीका, प्रद्युम्नके साथ कार्तिकेयका एवं कूष्माण्ड और कूपकर्णके साथ बलरामका परस्पर द्वन्द्वयुद्ध होने लगा॥ ९—११॥

साम्बका बाणासुरके पुत्रके साथ, सात्यकिका बाणासुरके साथ, गरुडका नन्दीके साथ और अन्य लोगोंका अन्य लोगोंके साथ युद्ध होने लगा॥ १२॥

उस समय ब्रह्मा आदि देवता, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व तथा अप्सराएँ अपने वाहनों तथा विमानोंसे युद्ध देखनेके लिये आये॥ १३॥

हे विप्रेन्द्र! विविध आकारवाले रेवती आदि प्रमथोंके साथ उन यदुवंशियोंका बड़ा भयानक युद्ध हुआ॥ १४॥

भाई बलराम तथा बुद्धिमान् प्रद्युम्नके सहित श्रीकृष्णजीने प्रमथगणोंके साथ घोर भयानक युद्ध किया। वहाँ अग्नि, यम, वरुण आदि देवताओंके साथ विमुख, त्रिपाद, ज्वर और गुहका युद्ध हुआ। विविध आकारवाले प्रमथोंके साथ उन यादवोंका विकट, भयंकर तथा रोमहर्षण युद्ध होने लगा॥ १५—१७॥

बहुत-सी विभीषिकाओंसे, कोटरियोंसे तथा निर्लज्ज प्रबल स्त्रियोंसे पास-पाससे युद्ध होने लगा॥ १८॥

तब श्रीकृष्णजीने शिवजीके भूत, प्रमथ तथा गुह्यक आदि अनुचरोंको अपने शार्ङ्ग धनुषसे छोड़े हुए तीक्ष्ण अग्रभागवाले बाणोंसे पीड़ित किया। इस प्रकार युद्धके उत्साही प्रद्युम्न आदि वीर भी शत्रुकी सेनाका नाश करते हुए महाभयंकर युद्ध करने लगे। तब अपनी सेनाको नष्ट होते हुए देखकर शिवजीने उसे सहन न करते हुए महान् क्रोध किया और भयंकर गर्जन किया॥ १९—२१॥

यह सुनकर शिवजीके गण गरजने लगे तथा शिवजीके तेजसे तेजस्वी हुए वे शत्रुयोद्धाओंको नष्ट करते हुए युद्ध करने लगे। श्रीकृष्णने शार्ङ्गधनुषपर नाना प्रकारके अस्त्रोंको रखकर शिवजीके ऊपर प्रहार किया, तब विस्मित न होते हुए महादेवजीने प्रत्यक्ष रूपसे अस्त्रोंको शान्त कर दिया। शिवजीने ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यास्त्रको पर्वतास्त्रसे तथा नारायणके आग्नेय अस्त्रको अपने पर्जन्यास्त्रसे शान्त कर दिया॥ २२—२४॥

प्रत्येक योद्धासे जीती हुई श्रीकृष्णजीकी सेना भागने लगी, हे व्यासजी! वह सेना शिवके सम्पूर्ण तेजके कारण युद्धमें न रुक सकी। हे मुने! अपनी सेनाके पलायन करनेपर परम तपस्वी श्रीकृष्णने वरुणदेवता-सम्बन्धी अपने शीतल नामक ज्वरको छोड़ा॥ २५-२६॥

हे मुने! श्रीकृष्णकी सेनाके भाग जानेपर श्रीकृष्णका शीतलज्वर दसों दिशाओंको भस्म करता हुआ उन शिवजीके समीप गया। उसको आता हुआ देखकर महादेवने अपना ज्वर छोड़ा। उस समय शिवज्वर तथा विष्णुज्वर आपसमें युद्ध करने लगे। तब विष्णुका ज्वर शिवजीके ज्वरसे पीड़ित होकर क्रन्दन करने लगा और कहीं अपनी रक्षा न देखकर शिवजीकी स्तुति करने लगा॥ २७—२९॥

तब विष्णुके ज्वरद्वारा वन्दित शरणागतवत्सल सदाशिवने प्रसन्न होकर विष्णुके शीतज्वरसे कहा— ॥ ३०॥

महेश्वर बोले—हे शीतज्वर! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, तुमको मेरे ज्वरसे भय नहीं होगा, जो कोई हम दोनोंके संवादका स्मरण करेगा, उसको ज्वरसे भय नहीं होगा॥ ३१॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहे जानेपर वह वैष्णवज्वर शिवजीको नमस्कार करके चला गया। उस चरित्रको देखकर श्रीकृष्ण भयभीत तथा विस्मित हो गये। प्रद्युम्नके बाणसमूहसे पीड़ित होकर कुपित हुए दैत्य-संघाती स्कन्दने अपनी शक्तिसे प्रद्युम्नको आहत कर दिया। तब स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिसे आहत बलवान् प्रद्युम्न अपने शरीरसे रुधिर बहाते हुए संग्रामभूमिसे हट गये। कुम्भाण्ड और कूपकर्णके द्वारा अनेक अस्त्रोंसे आहत किये गये बली बलभद्र भी युद्धमें स्थिर न रह सके और भाग गये॥ ३२—३५॥

गरुड़ने हजारों रूप धारणकर महासागरसे जलका पानकर और मेघोंके समान जल छोड़कर बहुत-से लोगोंका नाश किया। तब शिवजीके वाहन बलवान् वृषभने कुपित होकर उन गरुडजीको बड़े वेगसे शीघ्रतापूर्वक सींगोंद्वारा विदीर्ण कर दिया। तब सींगोंके आघातसे विदीर्ण शरीरवाले गरुड़जी अत्यन्त विस्मित हो शीघ्र ही

भगवान्‌को छोड़कर युद्धस्थलसे भाग गये॥ ३६—३८॥

ऐसा चरित्र होनेपर देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण शिवजीके तेजसे विस्मित हो शीघ्र ही अपने सारथीसे कहने लगे— ॥ ३९॥

श्रीकृष्ण बोले—हे सूत! तुम मेरे वचनको सुनो, मेरे रथको शीघ्र ले चलो, जिससे मैं शिवके समीप स्थित होकर उनसे कुछ कह सकूँ॥ ४०॥

सनत्कुमार बोले—भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर अपने गुणोंके कारण मुख्य दारुक नामक सारथि शीघ्र ही उस रथको शिवजीके समीप ले गया॥ ४१॥

तब शरणागत हुए श्रीकृष्णने झुककर हाथ जोड़कर भक्तवत्सल शिवजीसे भक्तिपूर्वक प्रार्थना की॥ ४२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे देवोंके देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! आप अनन्त शक्तिवाले, सबके आत्मरूप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। आप संसारकी उत्पत्ति-स्थिति एवं नाशके कारण, सज्ज्ञप्तिमात्र, ब्रह्मलिंग, परमशान्त, केवल, परमेश्वर, काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, द्रव्य, क्षेत्र, प्राण, आत्मा, विकार तथा अनेक समुदायवाले हैं, हे संसारके स्वामिन्! बीजरोह तथा प्रवाहरूपी यह आपकी माया है, इस कारण मैं आप बन्धनहीन परमेश्वरकी शरणमें आया हूँ॥ ४३—४६॥

आप लोकेश्वर अपने द्वारा किये गये विविध भावोंसे लीलापूर्वक देवता आदिका पोषण करते हैं तथा बुरे मार्गमें जानेवालोंको स्वभावसे विनष्ट करते हैं॥ ४७॥

आप ही ब्रह्म, परम ज्योतिःस्वरूप तथा शब्दब्रह्म-रूप हैं, आप निर्मल आत्माको योगी केवल आकाशके समान देखते हैं। आप ही आदिपुरुष, अद्वितीय, तुर्य, आत्मद्रष्टा, ईश, हेतु, अहेतु तथा विकारी प्रतीयमान होते हैं। हे प्रभो! हे भगवन्! हे महेश्वर! आप अपनी मायासे सम्पूर्ण गुणोंकी प्रसिद्धिके निमित्त सभीसे युक्त तथा सभीसे भिन्न भी हैं॥ ४८—५०॥

हे प्रभो! जिस प्रकार सूर्य छायारूपोंका तिरस्कार करके अपनी कान्तिसे प्रकाश करता है, उसी प्रकार दिव्य नेत्रवाले आप सर्वत्र प्रकाश कर रहे हैं॥ ५१॥

हे विभो! हे भूमन्! हे गिरिश! आप गुणोंसे बिना ढके हुए भी अपने गुणोंसे समस्त गुणोंको दीपकके समान प्रकाशित करते हैं। हे शंकर! आपकी मायासे मोहित बुद्धिवाले पुत्र, स्त्री, गृह आदिमें आसक्त होकर पापसमुद्रमें डूबते-उतराते रहते हैं॥ ५२-५३॥

जो अजितेन्द्रिय पुरुष प्रारब्धवश इस मनुष्य जन्मको प्राप्तकर आपके चरणोंमें प्रेम नहीं करता, वह शोक करनेयोग्य तथा आत्मवंचक है॥ ५४॥

हे भगवन्! मैं आपकी आज्ञासे बाणासुरकी भुजाओंको काटनेके लिये आया हूँ, अभिमानके नाश करनेवाले आपने ही इस गर्वित बाणासुरको शाप दिया है॥ ५५॥

हे देव! आप संग्रामभूमिसे लौट जाइये, जिससे आपका शाप व्यर्थ न हो। हे प्रभो! आप मुझे बाणासुरके हाथ काटनेकी आज्ञा दीजिये॥ ५६॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर! श्रीकृष्णके इस वचनको सुनकर महेश्वर शिवजीने श्रीकृष्णकी स्तुतिसे प्रसन्नचित्त होकर कहा— ॥ ५७॥

महेश्वर बोले—हे तात! आपने सत्य कहा, मैंने दैत्यराजको शाप दिया है। आप मेरी आज्ञासे बाणासुरकी भुजाओंको काटनेके लिये आये हैं। हे रमानाथ! हे हरे! मैं क्या करूँ, मैं सदा भक्तोंके अधीन हूँ। हे वीर! मेरे देखते हुए बाणासुरकी भुजाओंका छेदन किस प्रकार हो सकता है। अतः आप मेरी आज्ञासे जृम्भणास्त्रसे मेरा जृम्भण (जम्भाई आना) कीजिये, इसके बाद अपना यथेष्ट कार्य कीजिये और सुखी हो जाइये॥ ५८—६०॥

सनत्कुमार बोले—हे मुनीश्वर! शिवजीके इस प्रकार कहनेपर वे श्रीकृष्णजी अति विस्मित हुए और अपने युद्धस्थलमें आकर प्रसन्न हुए॥ ६१॥

हे व्यासजी! इसके बाद अनेक अस्त्रोंके संचालनमें कुशल भगवान् श्रीकृष्णजीने शीघ्र ही जृम्भणास्त्रका धनुषपर सन्धानकर उसे शिवजीके ऊपर छोड़ा॥ ६२॥

उस जृम्भणास्त्रसे जृम्भित हुए शिवको मोहित करके श्रीकृष्णने खड्ग, गदा तथा ऋष्टिसे बाणासुरकी सेनाओंको मार डाला॥ ६३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें बाणासुररुद्रकृष्णादियुद्धवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ अध्याय

भगवान् कृष्ण तथा बाणासुरका संग्राम, श्रीकृष्णद्वारा बाणकी भुजाओंका काटा जाना, सिर काटनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको शिवका रोकना और उन्हें समझाना, बाणका गर्वापहरण, श्रीकृष्ण और बाणासुरकी मित्रता, ऊषा-अनिरुद्धको लेकर श्रीकृष्णका द्वारका आना

व्यासजी बोले—हे सर्वज्ञ! हे ब्रह्मपुत्र! हे सनत्कुमार! आपको नमस्कार है। हे मुने! हे तात! आपने मुझे यह अद्भुत कथा सुनायी॥ १॥

श्रीकृष्णके द्वारा युद्धमें जृम्भणास्त्रसे शिवजीके मोहित किये जानेपर तथा बाणकी सेनाके मार दिये जानेपर बाणासुरने क्या किया, उसको कहिये॥ २॥

सूतजी बोले—अमिततेजस्वी उन व्यासजीका वचन सुनकर ब्रह्माके पुत्र मुनीश्वर [सनत्कुमार] प्रसन्नचित्त होकर कहने लगे—॥ ३॥

सनत्कुमार बोले—हे महाप्राज्ञ! हे व्यासजी! हे तात! लोकलीलाका अनुसरण करनेवाले श्रीकृष्ण तथा शिवजीकी अद्भुत तथा सुन्दर कथाका श्रवण कीजिये॥ ४॥

पुत्रों तथा गणोंसहित लीलासे शिवजीके सो जानेपर वह दैत्यराज बाणासुर कृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा॥ ५॥

कुम्भाण्डसे घोड़ा लेकर वह महाबली दैत्य अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंको धारणकर अतुलनीय युद्ध करने लगा॥ ६॥

उस महाबली दैत्येन्द्र बाणासुरने अपनी सेनाको नष्ट हुआ देखकर क्रोधित हो घोर युद्ध किया॥ ७॥

उस संग्राममें शिवजीसे महान् बल पाकर महावीर श्रीकृष्णने बाणासुरको तिनकेके समान मानकर बड़े जोरसे गर्जन किया॥ ८॥

हे मुनीश्वर! बाणासुरकी शेष बची हुई सेनाको भयभीत करते हुए वे अपने अद्भुत शार्ङ्ग नामक धनुषकी टंकार करने लगे॥ ९॥

धनुषकी टंकारसे उत्पन्न हुए उस तीव्र नादसे भूमि और आकाशका मध्यभाग व्याप्त हो गया॥ १०॥

उसी समय श्रीकृष्णने क्रोधित हो उस धनुषको कानतक खींचकर बाणासुरके ऊपर सर्पोंके समान विषैले अनेक तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ा॥ ११॥

बलिपुत्र बाणासुरने उन बाणोंको आता हुआ देखकर अपने धनुषसे निकले हुए बाणोंसे उन्हें अपनेतक पहुँचनेके पहले बीचमें ही काट दिया॥ १२॥

शत्रुओंको विनष्ट करनेवाला वह दैत्यराज बाण पुनः गर्जना करने लगा, तब वहाँ सम्पूर्ण यादव भयभीत हो गये और श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए मूर्च्छित हो गये॥ १३॥

इसके बाद बलिके पुत्र महान् अहंकारी बाणने शिवजीके चरणकमलोंका स्मरण करके अतिशूर श्रीकृष्णके ऊपर अपने बाण छोड़े॥ १४॥

तब महादैत्योंके शत्रु श्रीकृष्णजीने भी शिवजीके चरणकमलोंका स्मरणकर अपने बाणोंसे उन बाणोंको दूरसे शीघ्र ही काट दिया॥ १५॥

तब संग्राममें आकुल बलराम आदि सभी बली यादवोंने क्रोध करके अपने-अपने प्रतियोद्धाको मारा॥ १६॥

इस प्रकार वहाँ उन दोनों बली पुरुषोंका बहुत समय-तक भयानक युद्ध हुआ, जो सुननेवालोंको भी आश्चर्यचकित कर देनेवाला था॥ १७॥

संग्राममें उस समय गरुड़जीने अति क्रोध करके अपने पंखोंके प्रहारोंसे बाणासुरकी सब सेनाको चूर्ण-चूर्ण कर दिया॥ १८॥

तब अपनी सेनाका मर्दन करनेवाले गरुड़को तथा अपनी सेनाको मर्दित देखकर शैवोंमें श्रेष्ठ बलवान् उस दैत्यने उनके ऊपर अति क्रोध किया और हजार भुजावाले उस दैत्यने शीघ्र ही महादेवके चरणारविन्दोंका स्मरण करके शत्रुओंके लिये असह्य महान् पराक्रम प्रदर्शित किया॥ १९-२०॥

वहाँ वीरोंको नष्ट करनेवाले उस दैत्यने एक साथ श्रीकृष्णादि समस्त यादवोंपर तथा गरुड़के ऊपर अलग-अलग अनेक बाणोंसे प्रहार किया॥ २१ ॥

हे मुने! बलवान् उस दैत्यने एक बाणसे गरुड़को, एक बाणसे श्रीकृष्णको, एकसे बलरामको और एकसे अन्य लोगोंको मारा॥ २२ ॥

उस समय बड़े पराक्रमी विष्णुके अवताररूप तथा दैत्योंका नाश करनेवाले परमेश्वर श्रीकृष्ण उस युद्धमें अत्यधिक कुपित हुए और गरजने लगे तथा शिवजीका स्मरणकर अपने धनुषसे छोड़े हुए बाणोंसे अति उग्र पराक्रमवाले उसके सैनिकों तथा उस दैत्य बाणासुरपर उन्होंने एक साथ प्रहार किया॥ २३-२४ ॥

निश्चिन्त होकर श्रीकृष्णने अपने बाणोंसे उसके धनुष, छत्र आदिको काट दिया और उसके घोड़ोंको मारकर गिरा दिया॥ २५ ॥

महावीर बाणासुरने अतिक्रोधित हो गर्जन किया और अपनी गदासे श्रीकृष्णपर प्रहार किया, जिससे वे पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २६ ॥

हे देवर्षे! तब श्रीकृष्ण लोकमें लीला करनेके कारण शीघ्र ही भूमिसे उठकर शिवभक्त उस शत्रुके साथ युद्ध करने लगे॥ २७ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमें बहुत समयतक घोर संग्राम होता रहा, भगवान् श्रीकृष्ण शिवरूप थे तथा वह बली बाणासुर शिवजीके भक्तोंमें श्रेष्ठ था॥ २८ ॥

हे मुनीश्वर! पराक्रमशाली श्रीकृष्ण बहुत देरतक बाणासुरके साथ युद्धकर पुनः शिवजीकी आज्ञासे बल प्राप्तकर अत्यधिक क्रोधित हो उठे॥ २९ ॥

तदनन्तर शत्रुवीरोंका नाश करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने शिवजीकी आज्ञासे शीघ्र ही सुदर्शनचक्रसे बाणासुरकी बहुत-सी भुजाओंको काट दिया॥ ३० ॥

उस समय उसकी श्रेष्ठ चार भुजाएँ शेष रह गयीं और शिवजीके अनुग्रहसे वह शीघ्र ही व्यथारहित हो गया॥ ३१ ॥

जिस समय बाणासुर शिवजीके स्मरणसे हीन हुआ, उसी समय वीरताको प्राप्त हुए श्रीकृष्ण उसका सिर काटनेको उद्यत हुए, तब भगवान् सदाशिव उनके सामने खड़े हो गये॥ ३२ ॥

रुद्र बोले—हे भगवन्! हे देवकीपुत्र! हे विष्णो! मैंने जो पहले आपको आज्ञा दी थी, मेरी आज्ञाका पालन करनेवाले आपने वैसा ही किया॥ ३३ ॥

अब आप बाणासुरके सिरको मत काटिये, मेरी आज्ञासे अपने सुदर्शनचक्रको लौटा लीजिये; क्योंकि मेरे भक्तके ऊपर सदा यह चक्र निष्फल होगा॥ ३४ ॥

हे गोविन्द! संग्राममें मैंने आपको यह अनिवार्य सुदर्शन चक्र दिया है, इसलिये इस विजयचक्रको युद्धभूमिसे लौटा लीजिये॥ ३५ ॥

हे लक्ष्मीश! पहले भी आपने यह सुदर्शनचक्र दधीचि, वीर रावण तथा तारक आदिके ऊपर मेरी आज्ञाके बिना नहीं चलाया। आप तो योगीश्वर साक्षात् परमात्मा, जनार्दन तथा सब प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं, इसका अपने मनमें विचार कीजिये। मैंने इसे यह वर दे दिया है कि तुम्हें मृत्युका भय नहीं रहेगा। अतः मेरा यह वचन सदा सत्य होगा, मैं आपसे सन्तुष्ट हूँ॥ ३६—३८ ॥

हे हरे! पहले यह अपनी भुजाओंको खुजलाकर अपनी गतिको भूल गया और गर्वित तथा उन्मत्त होकर इसने मुझसे युद्धका वर माँगा। तब मैंने उसे शाप दिया कि थोड़े ही समयमें तुम्हारी भुजाओंको काटनेवाला आयेगा और तुम्हारा अभिमान नष्ट हो जायगा॥ ३९-४० ॥

वे बाणसे बोले—मेरी आज्ञासे तुम्हारी भुजाओंको

काटनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण आ गये हैं, इसलिये तुम अब संग्रामसे लौट जाओ और [श्रीकृष्णसे कहा—] वधू और वरके साथ अपने स्थानको चले जाओ॥ ४१॥

ऐसा कहकर शिवजी उन दोनोंमें मित्रता कराकर उनको आज्ञा देकर गणों तथा पुत्रोंसहित अपने स्थानको चले गये॥ ४२॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार भगवान् शिवजीका वचन सुनकर अपने सुदर्शनचक्रको लौटाकर अक्षत शरीरवाले विजयी श्रीकृष्णने अन्त:पुरमें प्रवेश किया। भार्यासहित अनिरुद्धको आश्वासन देकर उन्होंने बाणासुरके द्वारा प्रदान किये गये अनेक रत्नसमुदायको स्वीकार किया। ऊषाकी सखी परमयोगिनी चित्रलेखाको लेकर शिवजीकी आज्ञासे कृतकृत्य श्रीकृष्ण अति प्रसन्न हुए॥ ४३—४५॥

इसके बाद श्रीकृष्ण हृदयसे शिवजीको प्रणामकर बलिपुत्र बाणासुरसे विदा लेकर कुटुम्बसहित अपने नगरको चले गये। मार्गमें प्रतिकूल हुए वरुणको अनेक प्रकारसे जीतकर वे आनन्दित होकर द्वारकापुरीमें आये। इसके बाद गरुड़जीको विसर्जितकर अपने मित्रोंको देखकर तथा उनसे हास-परिहास करते हुए द्वारकामें पहुँचकर इच्छानुसार विचरण करने लगे॥ ४६—४८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें बाणभुजकृन्तन-गर्वापहारवर्णन नामक पचपनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

बाणासुरका ताण्डवनृत्यद्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न करना, शिवद्वारा उसे अनेक मनोऽभिलषित वरदानोंकी प्राप्ति, बाणासुरकृत शिवस्तुति

नारदजी बोले—हे महामुने! भार्यासहित अनिरुद्ध तथा श्रीकृष्णजीके द्वारकापुरीमें चले जानेपर बाणासुरने क्या किया, इसको आप कहिये॥ १॥

सनत्कुमार बोले—भार्यासहित अनिरुद्ध तथा श्रीकृष्णके द्वारका चले जानेपर बाणासुर मन-ही-मन अपने अज्ञानका स्मरण करता हुआ अत्यन्त दुखी हुआ॥ २॥

तब शिवजीके गण नन्दीने रक्तसे संलिप्त शरीरवाले, पश्चात्तापयुक्त तथा दुखी दैत्य बाणासुरसे कहा—॥ ३॥

नन्दीश्वर बोले—हे शिवके भक्त बाणासुर! तुम दुखी न होओ, भगवान् शिवजी भक्तोंपर कृपा करनेवाले भक्तवत्सल नामधारी हैं। हे भक्तोंमें श्रेष्ठ! जो कुछ हुआ, उनकी इच्छासे हुआ है, इस प्रकार चित्तमें मानकर बारंबार शिवजीका स्मरण करो॥ ४-५॥

उन आदिदेव शिवजीमें मन लगाकर नित्य भक्तोंपर दया करनेवाले महादेवका बारंबार उत्सव करो॥ ६॥

उसके बाद नन्दीके कहनेसे द्वेषरहित होकर वह दैत्य बाणासुर हर्षित हो धैर्य धारणकर शीघ्र शिवजीके स्थानको चला गया॥ ७॥

वहाँ जाकर प्रभुको नमस्कारकर गर्वरहित होकर प्रेमसे पूर्ण मनवाला बाणासुर विह्वल होकर रोने लगा और अनेक स्तोत्रों तथा स्तुतियोंसे नमस्कार करता हुआ, यथोचित चरणन्यासकर हाथोंको चलाता हुआ, अनेक प्रकारके आलीढ आदि स्थानकों तथा प्रत्यालीढ आदि मुद्राओंसे शोभित ताण्डव नृत्य करने लगा॥ ८—१०॥

वह सहस्रों मुखके बाजोंको बजाने, भौंह चलाने, सिरको कँपाने तथा सहस्रों प्रकारसे अंग चलाने लगा। धीरे-धीरे अनेक प्रकारके नृत्योंको दिखाकर तथा रुधिरकी धाराओंसे भूमिको सींचकर अपनी गति तथा अहंकारको विस्मृत किये हुए उस महाभक्त बाणासुरने चन्द्रशेखर शिवको प्रसन्न किया॥ ११—१३॥

तब नृत्यगीतप्रिय भक्तवत्सल भगवान् शिवजीने प्रसन्न होकर सुन्दर नृत्य करनेवाले बाणासुरसे कहा—॥ १४॥

रुद्र बोले—हे बाणासुर! हे बलिपुत्र! हे तात! मैं तुम्हारे इस नृत्यसे प्रसन्न हूँ। हे दैत्येन्द्र! तुम्हारे मनमें जो हो, वह वरदान माँगो॥ १५॥

सनत्कुमार बोले—हे मुने! तब शिवजीका यह वचन सुनकर उस दैत्येन्द्र बाणासुरने अपना घाव भरनेके लिये वर माँगा, इसके साथ ही बाहुयुद्धके लिये क्षमा,

अक्षय गाणपत्यका भाव तथा उस शोणितपुर नामक नगरमें ऊषापुत्रका राज्य हो, देवताओंसे तथा विशेषकर विष्णुसे निर्वैरता और रजोगुण तथा तमोगुणसे युक्त दुष्ट दैत्यभावका विनाश हो, विशेषकर शिवजीकी निर्विकार भक्ति, शिवके भक्तोंके प्रति स्नेह तथा सब प्राणियोंके प्रति दयाभाव हो। हे मुने! उस बाण दैत्यने शिवजीसे इन वरोंको माँगकर नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक शिवजीकी स्तुति की— ॥ १६—२० ॥

बाणासुर बोला—हे देव! हे महादेव! हे शरणागतवत्सल! हे महेश्वर! हे दीनबन्धो! हे दयानिधे! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे कृपासागर! हे शंकर! हे प्रभो! आपने मुझपर बड़ी कृपा की, आपने प्रसन्न होकर मेरा गर्व दूर कर दिया। आप ब्रह्म, परमात्मा, सर्वव्यापी, अखिलेश्वर, ब्रह्माण्डरूपी शरीरवाले, उग्र, ईश, विराट्, सबमें व्याप्त तथा सबसे परे हैं॥ २१—२३ ॥

हे प्रभो! आकाश आपकी नाभि, मुख अग्नि, जल वीर्य है, दिशाएँ कान, द्युलोक मस्तक, पृथ्वी चरण तथा चन्द्रमा मन है, सूर्य नेत्र, ऋद्धि उदर, इन्द्र भुजाएँ, ब्रह्मा बुद्धि, प्रजापति विसर्ग तथा धर्म आपका हृदय है। हे नाथ! औषधियाँ आपके रोम हैं, मेघ आपके केश हैं, तीनों गुण आपके तीनों नेत्र हैं, आप सर्वात्मा पुरुष हैं। आपका मुख ब्राह्मण है, भुजाएँ क्षत्रिय, जंघा वैश्य और चरण शूद्र कहे गये हैं॥ २४—२७ ॥

हे महेश्वर! आप ही नित्य सब जीवोंके उपासना करनेयोग्य हैं, आपका भजन करनेवाला मनुष्य निश्चय ही परम मुक्ति प्राप्त कर लेता है॥ २८ ॥

जो मनुष्य आत्माके प्रिय ईश्वर आपको त्याग देता है, वह मानो अमृतका त्याग करता हुआ इन्द्रियोंके लिये अकल्याणकारी विषका ही भक्षण करता है॥ २९ ॥

विष्णु, ब्रह्मा, सभी देवता, निर्मलभाववाले मुनि आप प्रिय ईश्वरके सब प्रकारसे शरणागत हैं॥ ३० ॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार कहकर उस दैत्य बाणासुरने प्रेमसे विह्वल अंगवाला हो शिवजीको प्रणामकर मौन धारण कर लिया। अपने भक्त बाणासुरका यह वचन सुनकर भगवान् सदाशिव 'तुम सब कुछ प्राप्त करोगे'— इस प्रकार कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३१-३२ ॥

तब शिवजीके अनुग्रहसे महाकालत्वको प्राप्त हुआ वह शिवजीका अनुचर बाणासुर बड़ा प्रसन्न हुआ॥ ३३ ॥

[हे व्यासजी!] सभी गुरुजनोंके परम गुरु तथा समस्त पृथ्वीके मध्यमें क्रीड़ा करनेवाले शूलपाणि शंकर तथा बाणासुरके सुन्दर वृत्तान्तका कानोंको प्रिय लगनेवाले वचनोंमें आपसे यह वर्णन किया॥ ३४ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें बाणासुरगाणपत्यपदप्राप्तिवर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५६ ॥

सत्तावनवाँ अध्याय

महिषासुरके पुत्र गजासुरकी तपस्या तथा ब्रह्माद्वारा वरप्राप्ति, उन्मत्त गजासुरद्वारा अत्याचार, उसका काशीमें आना, देवताओंद्वारा भगवान् शिवसे उसके वधकी प्रार्थना, शिवद्वारा उसका वध और उसकी प्रार्थनासे उसका चर्म धारणकर 'कृत्तिवासा' नामसे विख्यात होना एवं कृत्तिवासेश्वर लिंगकी स्थापना करना

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! शिवजीके [उस] चरित्रको अत्यन्त प्रेमसे सुनिये, जिस प्रकार महादेवने दानवेन्द्र गजासुरको त्रिशूलसे मारा। पूर्वकालमें देवगणोंके हितके लिये युद्धमें देवीके द्वारा दानव महिषासुरका वध कर दिये जानेपर देवता सुखी हो गये॥ १-२ ॥

हे मुनीश्वर! देवताओंकी प्रार्थनासे देवीद्वारा किये गये अपने पिताके वधका स्मरण करके महावीर गजासुर, उस वैरका स्मरणकर तप करनेहेतु वनमें गया और ब्रह्माजीको उद्देश्य करके प्रीतिपूर्वक कठोर तप करने लगा॥ ३-४ ॥

'मैं कामके वशीभूत स्त्री तथा पुरुषोंसे अवध्य होऊँ'—इस प्रकार मनमें विचारकर वह तपमें दत्तचित्त हो गया। वह हिमालय पर्वतकी गुफामें भुजाओंको

उठाकर आकाशमें दृष्टि लगाये हुए पैरके अँगूठेसे पृथ्वीको टेककर परम दारुण तप करने लगा॥ ५-६॥

वह उदार बुद्धिवाला महिषासुरपुत्र गजासुर जटाओंके भारकी कान्तिसे प्रलयके सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा था। उसके मस्तकसे उत्पन्न हुई तपोमय धूमाग्नि तिरछे, ऊपर तथा नीचेके लोकोंको तप्त करती हुई चारों ओर फैल गयी। उसके मस्तकसे प्रकट हुई अग्निसे नदी तथा समुद्र सूख गये, ग्रहोंसहित तारे गिरने लगे तथा दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो गयीं॥ ७—९॥

उस अग्निसे तप्त हुए इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता स्वर्गलोकको त्यागकर ब्रह्मलोकको गये और ब्रह्माजीसे बोले कि पृथ्वी चलायमान हो रही है॥ १०॥

देवगण बोले—हे विधे! गजासुरके तपसे हमलोग सन्तप्त तथा व्याकुल हैं और स्वर्गमें स्थित रहनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये आपकी शरणमें आये हैं। हे ब्रह्मन्! आप कृपाकर अन्य लोगोंको जीवित रखनेके लिये उस दैत्यको शान्त कीजिये, अन्यथा सभी लोग नष्ट हो जायँगे। हमलोग सत्य-सत्य कह रहे हैं। इस प्रकार इन्द्र आदि देवों तथा भृगु, दक्ष आदिसे प्रार्थित हुए ब्रह्माजी उस दैत्येन्द्रके आश्रमपर गये। आकाशमें मेघोंसे ढँके हुए सूर्यके समान लोकोंको तपाते हुए उसको देखकर विस्मित हो ब्रह्माजीने हँसते हुए कहा—॥ ११—१४॥

ब्रह्माजी बोले—हे दैत्येन्द्र! हे महिषपुत्र! हे तात! उठो, उठो, तुम्हारा तप सिद्ध हुआ, मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ, अपनी इच्छाके अनुकूल वर माँगो॥ १५॥

सनत्कुमार बोले—उस दैत्येन्द्र गजासुरने उठकर अपने नेत्रोंसे विभु ब्रह्माजीको देखते हुए प्रसन्न होकर वर माँगनेके लिये गद्गद वाणीसे कहा—॥ १६॥

गजासुर बोला—हे देवदेवेश! आपको नमस्कार है, यदि आप मुझे वर दे रहे हैं, तो मैं कामके वशीभूत स्त्री-पुरुषोंसे अवध्य हो जाऊँ। हे विभो! मैं महाबलवान्, वीर्यवान् तथा देवता आदिसे सदा अजेय और सम्पूर्ण लोकपालोंकी समस्त सम्पत्तिको भोगनेवाला होऊँ॥ १७-१८॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार उस दैत्यके वर माँगनेपर उसके तपसे प्रसन्न हुए ब्रह्माजीने उसे अति दुर्लभ वरदान दिया॥ १९॥

इस प्रकार वह महिषासुरपुत्र गजासुर वर पाकर अति प्रसन्नचित्त होकर अपने स्थानको चला गया॥ २०॥

तदुपरान्त सम्पूर्ण दिशाओं तथा तीनों लोकोंको जीतकर एवं देवता, असुर, मनुष्य, इन्द्र, गन्धर्व, गरुड और सर्प आदिको भी जीतकर उन्हें अपने वशमें करके संसारको जीतनेवाले उस दैत्यने तेजसहित लोकपालोंके स्थानोंका हरण कर लिया। देवोद्यानकी शोभासे युक्त साक्षात् विश्वकर्माद्वारा निर्मित किये गये स्वर्गस्थित महेन्द्रगृहमें वह निवास करने लगा॥ २१—२३॥

महाबली, महामना तथा लोकोंको जीतनेवाला और कठोर शासनवाला वह दैत्य पीड़ित हुए देवताओंसे अपने दोनों चरणोंमें प्रणाम कराते हुए महेन्द्रके उस घरमें विहार करने लगा। इस प्रकार जीती हुई दिशाओंका एकमात्र स्वामी अजितेन्द्रिय वह दैत्य प्रिय विषयोंको लोलुपतासे भोगता हुआ तृप्त न हुआ॥ २४-२५॥

इस प्रकार ऐश्वर्यसे उन्मत्त, अहंकारी तथा शास्त्रोंका उल्लंघन करनेवाले उस दैत्यको बहुत समय बीत जानेपर पापबुद्धि उदित हुई। देवगणोंको पीड़ा देनेवाला महिषासुरका वह पुत्र पृथ्वीपर श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा तपस्वियोंको अत्यधिक क्लेश देने लगा॥ २६-२७॥

वह दुष्टबुद्धि दैत्य पहलेके वैरभावका स्मरण करता हुआ देवताओं तथा सभी प्रमथोंको और विशेषकर धर्मात्माओंको अति कष्ट देने लगा। हे तात! एक समय वह महाबली दैत्य गजासुर शिवजीकी राजधानी काशीको गया। हे मुने! उस समय दैत्येन्द्रके आनेपर आनन्दवनमें निवास करनेवालोंका 'रक्षा करो, रक्षा करो' इस प्रकारका महाशब्द होने लगा॥ २८—३०॥

जिस समय अपने वीर्य और मदसे उन्मत्त हुआ महिषासुरका पुत्र सभी प्रमथोंको पीड़ित करता हुआ नगरीमें आया, उसी समय गजासुरसे पराजित हुए इन्द्रादि सब देवता शिवजीकी शरणमें गये और आदरसे प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने काशीमें उस दैत्यके आगमन तथा विशेषकर वहाँ रहनेवाले शिवभक्तोंका अति दुःख भी निवेदन किया॥ ३१—३३॥

देवगण बोले—हे देवदेव! हे महादेव! आपकी नगरीमें आया हुआ दैत्य गजासुर आपके भक्तजनोंको कष्ट दे रहा है, अतः हे कृपानिधे! आप उसका वध करें॥ ३४॥

वह भूमिपर जहाँ-जहाँ चरण रखता है, वहाँ

उसके भारसे अचल पृथ्वी भी चलायमान हो जाती है। उसकी जंघाके वेगसे डालियोंसहित वृक्ष गिरने लगते हैं। उसके भुजदण्डके आघातसे शिखरोंसहित पर्वत चूर्ण हो जाते हैं, उसके मुकुटके संघर्षसे मेघ आकाशका त्याग करते हैं और उसके बालोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुए नीलेपनको वे अबतक भी नहीं छोड़ते। जिसके निःश्वासके भारोंसे ऊँची तरंगोंवाले महासागर तथा नदियाँ भी जलजन्तुओंके सहित बड़ा कल्लोल करती हैं, जिसके शरीरकी ऊँचाई उसकी मायासे नौ सहस्र योजन हो जाती है तथा मायावी उस दैत्यका विस्तार (चौड़ाईका घेरा) भी उतना ही हो जाता है, जिसके नेत्रोंके पीलेपन और चांचल्यको बिजली आज भी नहीं धारण कर सकती है, वही बड़े वेगसे यहाँ आ गया है॥ ३५—४०॥

वह असह्य दैत्य जिस-जिस दिशामें जाता है, 'कामसे जीते हुए स्त्री-पुरुषोंसे मैं अवध्य हूँ', इस प्रकार वहाँ कहता है। काशीकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले हे देवेश! इस प्रकार हम लोगोंने उस दैत्यकी चेष्टाका आपसे निवेदन किया, आप भक्तोंकी रक्षा कीजिये॥ ४१-४२॥

सनत्कुमार बोले—देवताओंद्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर भक्तोंकी रक्षामें तत्पर वे शिवजी उसके वधकी कामनासे बड़ी शीघ्रतासे वहाँ आये॥ ४३॥

त्रिशूल हाथमें धारण किये हुए उन भक्तवत्सल शिवजीको गरजते हुए आया देखकर गजासुर गरजने लगा। तब वीरगर्जन करते हुए उन दोनोंका अनेक अस्त्रों तथा शस्त्रोंके प्रहारसे दारुण तथा अद्भुत युद्ध हुआ॥ ४४-४५॥

अति तेजस्वी तथा महाबली गजासुरने दैत्योंका विनाश करनेवाले शिवजीपर तीव्र बाणोंसे प्रहार किया॥ ४६॥

हे मुने! उस समय भयंकर शरीरवाले शिवजीने अपने अति दारुण बाणोंसे अपने समीप न पहुँचे हुए उसके बाणोंको शीघ्र ही खण्ड-खण्ड कर दिया॥ ४७॥

तब हाथमें खड्ग लेकर 'अब तुम मेरे द्वारा मारे गये'—इस प्रकार ऊँचे स्वरसे गर्जनकर क्रोधित होकर गजासुर शिवजीकी ओर दौड़ा। तब त्रिशूलधारी भगवान् शिवने उस दैत्यश्रेष्ठको आता हुआ देखकर तथा अन्यके द्वारा अवध्य जानकर उसे त्रिशूलसे मारा। उस त्रिशूलसे विद्ध हुआ वह गजासुर दैत्य अपनेको शिवका छत्ररूप मानता हुआ शिवजीकी स्तुति करने लगा॥ ४८—५०॥

गजासुर बोला—हे देवदेव! हे महादेव! मैं सब प्रकारसे आपका भक्त हूँ। हे त्रिशूलिन्! मैं कामदेवका नाश करनेवाले आप देवेशको जानता हूँ॥ ५१॥

हे अन्धकारे! हे महेशान! हे त्रिपुरान्तक! हे सर्वग! आपके हाथसे मेरा वध परम कल्याणकारी हुआ॥ ५२॥

हे कृपालो! हे मृत्युंजय! मैं कुछ निवेदन करना चाहता हूँ, उसे सुनिये, सत्य ही कहूँगा, असत्य नहीं, आप विचार कीजिये। एकमात्र आप संसारके वन्दनीय हैं तथा संसारके ऊपर स्थित हैं। समयसे सभीको मरना है, परंतु ऐसी मृत्यु कल्याणके निमित्त होती है॥ ५३-५४॥

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर दयानिधि शिवजीने हँसकर महिषासुरके पुत्र गजासुरसे कहा—॥ ५५॥

ईश्वर बोले—हे महापराक्रमनिधे! हे दानवोत्तम! हे श्रेष्ठ मतिवाले! हे गजासुर! मैं प्रसन्न हूँ, अपने अनुकूल वर माँगो॥ ५६॥

सनत्कुमार बोले—वर देनेवाले शिवजीका यह वचन सुनकर दानवेन्द्र गजासुरने प्रसन्नचित्त होकर कहा—॥ ५७॥

गजासुर बोला—हे महेशान! हे दिगम्बर! यदि आप प्रसन्न हैं, तो अपने त्रिशूलकी अग्निसे पवित्र किये हुए मेरे इस देहचर्मको नित्य धारण कीजिये। अपने प्रमाणवाले, कोमल स्पर्शवाले, युद्धक्षेत्रमें समर्पित किये गये, देखनेयोग्य, महादिव्य, निरन्तर सुखदायक मेरे चर्मको धारण कीजिये। यह चर्म सदा सुगन्धयुक्त, अतिकोमल, निर्मल तथा अति शोभायमान हो॥ ५८—६०॥

हे विभो! तेज धूप तथा अग्निकी लपटको बहुत देरतक प्राप्त करके भी पवित्र सुगन्धनिधिके कारण मेरा यह देहचर्म भस्म न हो॥ ६१॥

हे दिगम्बर! यदि मेरा यह चर्म पुण्यमय नहीं होता, तो युद्धस्थलमें आपके अंगके साथ इसका संग कैसे होता। हे शिवजी! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मुझे दूसरा वर दीजिये कि आजसे प्रारम्भकर आपका नाम कृत्तिवासा हो॥ ६२-६३॥

सनत्कुमार बोले—उसका यह वचन सुनकर भक्तप्रिय भक्तवत्सल महेशान शिवजी प्रसन्न होकर भक्तिसे निर्मल मनवाले उस गजासुर नामक दानवसे पुनः कहने लगे—॥ ६४-६५॥

ईश्वर बोले—मुक्तिके साधन इस क्षेत्रमें तुम्हारा

यह पवित्र शरीर सभीके लिये मुक्तिदायक मेरा लिंग होगा। यह महापापोंका नाश करनेवाला, समस्त श्रेष्ठ लिंगोंमें प्रधान एवं मुक्तिको देनेवाला कृत्तिवासेश्वर नामक लिंग होगा॥ ६६-६७॥

इस प्रकार कहकर उन दिगम्बर देवेशने गजासुरके उस विस्तृत चर्मको लेकर उसे धारण कर लिया॥ ६८॥

हे मुनीश्वर! उस दिन बहुत बड़ा महोत्सव हुआ, काशीनिवासी सभी लोग तथा प्रमथगण प्रसन्न हो गये। उस समय हर्षपूर्ण मनवाले विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओंने हाथ जोड़कर शिवजीको नमस्कार करके उनकी स्तुति की। दानवोंके स्वामी महिषासुरपुत्र गजासुरके मार दिये जानेपर देवगणोंने अपने स्थानको प्राप्त कर लिया और संसार सुखी हो गया॥ ६९—७१॥

इस प्रकार भक्तोंके प्रति दयासूचक, स्वर्ग-कीर्ति एवं आयुको देनेवाले और धनधान्यको बढ़ानेवाले शिवचरित्रका वर्णन कर दिया गया। उत्तम व्रतवाला जो मनुष्य इसे प्रीतिसे सुनता है अथवा सुनाता है, वह महान् सुख पाकर अन्तमें मोक्षको प्राप्त करता है॥ ७२-७३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें गजासुरवधवर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

काशीके व्याघ्रेश्वर लिंग-माहात्म्यके सन्दर्भमें दैत्य दुन्दुभिनिर्ह्लादके वधकी कथा

सनत्कुमार बोले—हे व्यासजी! सुनिये, मैं शिवजीके चरित्रको कहता हूँ, जिस प्रकार महादेवने दुन्दुभिनिर्ह्लाद नामक दैत्यको मारा। समय पाकर विष्णुदेवके द्वारा दितिके पुत्र महाबली दैत्य हिरण्याक्षके मारे जानेपर दिति बड़े दुःखको प्राप्त हुई। तब प्रह्लादके मामा दुन्दुभिनिर्ह्लाद नामक देवदुःखदायी दुष्ट दैत्यने उस दुखित दितिको आश्वासनयोग्य वाक्योंसे धीरज बँधाया। इसके बाद वह मायावी दैत्यराज दितिको आश्वासन देकर 'देवताओंको किस प्रकार जीता जाय' ऐसा उपाय सोचने लगा॥ १—४॥

दैत्योंके शत्रु देवताओंने विष्णुके द्वारा कपटपूर्वक भाईसहित महान् असुर वीर हिरण्याक्षको मरवा दिया॥ ५॥

देवताओंका बल क्या है, उनका आहार क्या है, उनका आधार क्या है और वे मेरे द्वारा किस प्रकार जीते जा सकते हैं—ऐसा उपाय वह सोचने लगा। इस प्रकार अनेक बार विचारकर निश्चित तत्त्वको जानकर उस दैत्यने निष्कर्ष निकाला कि इस विषयमें मेरे विचारसे ब्राह्मण ही कारण हैं। तब देवताओंका शत्रु महादुष्ट दैत्य दुन्दुभिनिर्ह्लाद बारंबार ब्राह्मणोंको मारनेके लिये दौड़ा॥ ६—८॥

देवता यज्ञके भोगी हैं, यज्ञ वेदोंसे उत्पन्न हैं, वे वेद ब्राह्मणोंके आधारपर हैं, अतः ब्राह्मण ही देवताओंके बल हैं। सम्पूर्ण वेद तथा इन्द्रादि देवता ब्राह्मणोंपर आधारित और ब्राह्मणोंके बलवाले हैं, यह निश्चय है, इसमें कुछ विचार नहीं करना चाहिये। यदि ब्राह्मण नष्ट हो जायँ, तो वेद स्वयं नष्ट हो जायँगे, अतः उन वेदोंके नष्ट हो जानेपर देवता स्वयं भी नष्ट हो जायँगे॥ ९—११॥

यज्ञोंका नाश हो जानेपर देवता भोजनसे रहित होकर निर्बल हो जानेसे सुगमतासे जीते जायँगे और इसके बाद देवताओंके पराजित हो जानेपर मैं ही तीनों लोकोंमें माननीय हो जाऊँगा, देवताओंकी अक्षय सम्पत्तियोंका हरण कर लूँगा और निष्कण्टक राज्यमें सुख भोगूँगा—इस प्रकार निश्चयकर वह दुर्बुद्धि खल फिर विचार करने लगा कि ब्रह्मतेजसे युक्त, वेदोंका अध्ययन करनेवाले और तप तथा बलसे पूर्ण अधिक ब्राह्मण कहाँ हैं, बहुतसे ब्राह्मणोंका स्थान निश्चय ही काशीपुरी है, सर्वप्रथम उस नगरीको ही जीतकर फिर दूसरे तीर्थोंमें जाऊँगा। जिन-जिन तीर्थोंमें तथा जिन-जिन आश्रमोंमें जो ब्राह्मण हैं, उन सबका भक्षण कर जाऊँगा॥ १२—१७॥

ऐसा अपने कुलके योग्य विचारकर वह दुराचारी तथा मायावी दुन्दुभिनिर्ह्लाद काशीमें आकर ब्राह्मणोंको मारने लगा। समिधा तथा कुशाओंको लानेके लिये ब्राह्मण जिस वनमें जाते थे, वहींपर वह दुष्टात्मा उन सभीका भक्षण कर लेता था। जिस प्रकार उसे कोई न जाने, इस प्रकार वह वनमें वनेचर होकर तथा जलाशयमें जल-जन्तुरूप होकर छिपा रहता था। इसी प्रकार अदृश्य रूपवाला वह मायावी देवगणोंसे भी अगोचर

होकर दिनमें मुनियोंके मध्य मुनि होकर ध्यानमें तत्पर रहता था। पर्णशालाओंके प्रवेश तथा निर्गमको देखता हुआ वह दैत्य रात्रिमें व्याघ्ररूपसे बहुतसे ब्राह्मणोंका भक्षण करता था। वह नि:शंक होकर ऐसा भक्षण करता कि अस्थितकको नहीं छोड़ता था। इस प्रकार उस दुष्टने बहुत-से ब्राह्मणोंको मार डाला॥ १८—२३॥

एक समय शिवरात्रिमें एक शिवभक्त अपने उटजमें देवोंके देव शिवकी पूजा करके ध्यानमें लीन हुआ॥ २४॥

तब उस दैत्येन्द्र दुन्दुभिनिर्ह्रादने बलसे दर्पित होकर व्याघ्रका रूप धारणकर उसे भक्षण करनेकी इच्छा की। तब ध्यान करते हुए शिवजीके अवलोकनमें दृढ़चित्त होकर अस्त्रमन्त्रोंका विन्यास करनेवाले उस भक्तको भक्षण करनेमें वह समर्थ न हुआ॥ २५-२६॥

सर्वव्यापी शिवने उसके आशयको जानकर उस दुष्टरूप दैत्यका वध करनेकी इच्छा की। जब उसने व्याघ्र-रूपसे भक्त ब्राह्मणको ग्रहण करना चाहा, तभी संसारकी रक्षारूपमणि, तीन नेत्रोंवाले तथा भक्तोंकी रक्षा करनेमें प्रवीण बुद्धिवाले शिवजी प्रकट हुए। भक्तसे पूजित उस लिंगसे प्रकट हुए शिवजीको देखकर वह दैत्य फिर उसी रूपसे पर्वतके समान हो गया॥ २७—२९॥

जब उसने सर्वज्ञ शिवजीको अवज्ञासहित आया हुआ देखा, तब वह [व्याघ्ररूपी] दुष्ट दैत्य उनकी ओर

झपटा। इतनेमेंही उसे पकड़कर भगवान्ने अपनी काँखमें दबा लिया तथा भक्तवत्सल शिवजीने वज्रसे भी अतिकठोर मुष्टिसे उस व्याघ्रके सिरपर प्रहार किया॥ ३०-३१॥

उस मुष्टिके आघातसे तथा काँखमें पीसे जानेसे दुखी हुआ वह व्याघ्र अतिनादसे आकाश और पृथिवीको भरता हुआ मर गया। उसके रोदनके महान् नादसे व्याकुलचित्त हुए तपस्वी लोग उसके शब्दका अनुसरण करते हुए रात्रिमें वहाँ आये। वहाँ मृगेश्वर सिंहको काँखमें करनेवाले शिवजीको देखकर वे सब नम्र हो जय-जयकार करके उनकी स्तुति करने लगे—॥ ३२—३४॥

ब्राह्मण बोले—हे जगद्गुरो! हे ईश्वर! कठिन उपद्रवसे रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये और दया करके इस स्थानमें स्थित रहिये। हे महादेव! आप इसी स्वरूपसे व्याघ्रेश नामसे इस ज्येष्ठ नामक स्थानकी रक्षा कीजिये। हे गौरीश! दुष्टोंका नाश करके हम तीर्थवासियोंकी अनेक प्रकारके उपद्रवोंसे रक्षा कीजिये और भक्तोंको अभयदान दीजिये॥ ३५—३७॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार अपने उन भक्तोंका वचन सुनकर भक्तवत्सल शिवजीने 'तथास्तु' कहकर भक्तोंसे पुन: कहा—॥ ३८॥

महेश्वर बोले—जो मनुष्य श्रद्धासे मुझे इस रूपमें यहाँ देखेगा, उसके दु:खको मैं अवश्य दूर करूँगा॥ ३९॥

मेरे इस चरित्रको सुनकर तथा मेरे इस लिंगका अपने हृदयमें स्मरण करके युद्धमें प्रवेश करनेवाला मनुष्य नि:सन्देह विजयको प्राप्त करेगा। इसी अवसरपर इन्द्रादि समस्त देवता उत्सवपूर्वक जय-जयकार करते हुए वहाँ आये॥ ४०-४१॥

देवताओंने अंजलि बाँधकर कन्धा झुकाकर प्रेमसे शिवजीको प्रणामकर मधुर वाणीसे भक्तवत्सल महादेवकी स्तुति की॥ ४२॥

देवगण बोले—हे देवोंके स्वामी! हे प्रभो! हे प्रणतोंका दु:ख हरनेवाले! आपने इस दुन्दुभिनिर्ह्रादके वधसे हम सब देवगणोंकी रक्षा की। हे भक्तवत्सल! हे देवेश! हे सर्वेश्वर! हे प्रभो! आपको सदा भक्तोंकी रक्षा करनी चाहिये तथा दुष्टोंका वध करना चाहिये॥ ४३-४४॥

उन देवताओंका यह वचन सुनकर परमेश्वरने 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर प्रसन्न हो उस लिंगमें प्रवेश किया। तब विस्मित हुए देवता अपने-अपने धामको चले गये तथा ब्राह्मण भी बड़े हर्षके साथ यथेष्ट

स्थानको चले गये॥ ४५-४६॥

जो मनुष्य व्याघ्रेश्वर-सम्बन्धी इस चरित्रको सुनता है अथवा सुनाता है, पढ़ता है अथवा पढ़ाता है; वह सम्पूर्ण मनोवांछित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा सभी दुःखोंसे रहित होता हुआ मोक्षको प्राप्त करता है॥ ४७-४८॥

यह अनुपम शिवलीलाके अमृताक्षरवाला इतिहास स्वर्गदायक, कीर्तिको बढ़ानेवाला, पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाला, अतिशय भक्तिको देनेवाला, धन्य, शिवजीकी प्रीतिको देनेवाला, कल्याणकारी, मनोहर, परम ज्ञानको देनेवाला और अनेक प्रकारके विकारोंको दूर करनेवाला है॥ ४९-५०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें दुन्दुभिनिर्ह्लाददैत्यवधवर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

काशीके कन्दुकेश्वर शिवलिंगके प्रादुर्भावमें पार्वतीद्वारा विदल एवं उत्पल दैत्योंके वधकी कथा, रुद्रसंहिताका उपसंहार तथा इसका माहात्म्य

सनत्कुमार बोले— हे व्यासजी! अब आप प्रेमपूर्वक शिवजीके उस चरित्रको सुनिये, जिस प्रकार उन्होंने संकेतद्वारा दैत्यको बताकर अपनी प्रियासे उस दैत्यका वध कराया था। पूर्व समयमें विदल तथा उत्पल नामक दो महाबली दैत्य थे। वे दोनों ही ब्रह्माजीके वरसे मनुष्योंसे वध न होनेका वर पाकर बड़े पराक्रमी तथा अभिमानी हो गये थे। हे ब्रह्मन्! उन दैत्योंने अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोकोंको तृणवत् कर दिया तथा संग्राममें सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया॥ १—३॥

उन दैत्योंसे पराजित हुए सब देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये और आदरसे उनको विधिपूर्वक प्रणामकर उन्होंने [दैत्योंके उपद्रवको] कहा॥ ४॥

तब ब्रह्माजीने उनसे यह कहा कि ये दोनों दैत्य निश्चय ही पार्वतीजीद्वारा मारे जायँगे। आप सब पार्वतीसहित शिवजीका भलीभाँति स्मरण करके धैर्य धारण कीजिये॥ ५॥

देवीसहित भक्तवत्सल तथा कल्याण करनेवाले वे परमेश्वर बहुत शीघ्र ही आपलोगोंका कल्याण करेंगे॥ ६॥

सनत्कुमार बोले— तब देवताओंसे ऐसा कहकर वे ब्रह्माजी शिवका स्मरण करके मौन हो गये और वे देवता भी प्रसन्न होकर अपने-अपने लोकको चले गये॥ ७॥

तत्पश्चात् शिवजीकी प्रेरणासे देवर्षि नारदजीने उनके घर जाकर पार्वतीकी सुन्दरताका वर्णन किया॥ ८॥

तब नारदजीका वचन सुनकर मायासे मोहित, विषयोंसे पीड़ित तथा पार्वतीका हरण करनेकी इच्छावाले उन दोनों दैत्योंने मनमें विचार किया कि प्रारब्धके उदय होनेके कारण हम दोनोंको वह पार्वती कब और कहाँ मिलेगी॥ ९-१०॥

किसी समय शिवजी अपनी लीलासे विहार कर रहे थे, उसी समय पार्वती भी कौतुकसे अपनी सखियोंके साथ प्रीतिपूर्वक शिवजीके समीप कन्दुकक्रीडा करने लगीं॥ ११-१२॥

ऊपरको गेंद फेंकती हुई, अपने अंगोंकी लघुताका विस्तार करती हुई, श्वासकी सुगन्धसे प्रसन्न हुए भौंरोंसे घिरनेके कारण चंचल नेत्रवाली, केशपाशसे माला टूट जानेके कारण अपने रूपको प्रकट करनेवाली, पसीना आनेसे उसके कणोंसे कपोलोंकी पत्ररचनासे शोभित, प्रकाशमान चोलांशुक (कुर्ती)-के मार्गसे निकलती हुई अंगकी कान्तिसे व्याप्त, शोभायमान गेंदको ताड़न करनेसे लाल हुए करकमलोंवाली और गेंदके पीछे दृष्टि देनेसे कम्पायमान भौंहरूपी लताके अंचलवाली जगत्की माता पार्वती खेलती हुई दिखायी दीं॥ १३—१६॥

आकाशमें विचरते हुए उन दोनों दैत्योंने कटाक्षोंसे देखा, मानो उपस्थित मृत्युने ही दोनोंको गोदमें ले लिया हो। ब्रह्माजीके वरदानसे गर्वित विदल और उत्पल नामक दोनों दैत्य अपनी भुजाओंके बलसे तीनों लोकोंको तृणके समान समझते थे॥ १७-१८॥

कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हुए दोनों दैत्य उन देवी पार्वतीके हरणकी इच्छासे शीघ्र ही शाम्बरी माया करके

आकाशसे उतरे। अति दुराचारी तथा अति चंचल मनवाले वे दोनों दैत्य मायासे गणोंका रूप धारणकर पार्वतीके समीप आये॥ १९-२०॥

तभी दुष्टोंका नाश करनेवाले शिवजीने क्षणमात्रमें चंचल नेत्रोंसे उन दोनोंको जान लिया। सर्वस्वरूपी महादेवने संकटको दूर करनेवाली पार्वतीकी ओर देखा, उन्होंने समझ लिया कि ये दोनों दैत्य हैं, गण नहीं हैं॥ २१-२२॥

उस समय पार्वतीजी महाकौतुकी तथा कल्याणकारी परमेश्वर अपने पति शिवके नेत्रसंकेतको समझ गयीं॥ २३॥

उस नेत्रसंकेतको जानकर शिवजीकी अर्धांगिनी पार्वतीने सहसा उसी गेंदसे उन दोनोंपर एक साथ प्रहार कर दिया। तब महादेवी पार्वतीके गेंदसे प्रताड़ित हुए महाबलवान् वे दोनों दुष्ट घूम-घूमकर उसी प्रकार गिर पड़े, जिस प्रकार वायुके वेगसे ताड़के वृक्षके गुच्छेसे पके हुए फल तथा वज्रके प्रहारसे सुमेरु पर्वतके शिखर गिर जाते हैं॥ २४—२६॥

कुत्सित कर्ममें प्रवृत्त हुए उन दैत्योंको मारकर वह गेंद लिंगस्वरूपको प्राप्त हुआ॥ २७॥

उसी समयसे वह लिंग कन्दुकेश्वर नामसे प्रसिद्ध हो गया। सभी दोषोंका निवारण करनेवाला वह लिंग ज्येष्ठेश्वरके समीप है॥ २८॥

इसी समय शिवको प्रकट हुआ जानकर विष्णु, ब्रह्मा आदि सब देवता तथा ऋषिगण वहाँ आये॥ २९॥

इसके बाद सम्पूर्ण देवता तथा काशीनिवासी शिवजीसे वरोंको पाकर उनकी आज्ञासे अपने स्थानको चले गये। पार्वतीसहित महादेवको देखकर उन्होंने अंजलि बाँधकर प्रणामकर भक्ति और आदरपूर्वक मनोहर वाणीसे उनकी स्तुति की॥ ३०-३१॥

हे व्यासजी! उत्तम विहारको जाननेवाले भक्तवत्सल शिवजी पार्वतीके साथ क्रीड़ा करके प्रसन्न होकर गणोंसहित अपने लोकको चले गये॥ ३२॥

काशीपुरीमें कन्दुकेश्वर नामक लिंग दुष्टोंको नष्ट करनेवाला, भोग और मोक्षको देनेवाला तथा निरन्तर सत्पुरुषोंकी कामनाको पूर्ण करनेवाला है॥ ३३॥

जो मनुष्य इस अद्भुत चरित्रको प्रसन्न होकर सुनता या सुनाता है, पढ़ता या पढ़ाता है, उसको दुःख और भय नहीं होता है। वह इस लोकमें सब प्रकारके उत्तम सुखोंको भोगकर परलोकमें देवगणोंके लिये भी दुर्लभ दिव्य गतिको प्राप्त करता है॥ ३४-३५॥

हे तात! भक्तोंपर कृपालुताका सूचक, सज्जनोंका कल्याण करनेवाला तथा परम अद्भुत शिव-पार्वतीका यह चरित्र मैंने आपसे कहा॥ ३६॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार शिवजीके चरित्रका वर्णनकर, उन व्यासजीसे अनुज्ञा लेकर और उनसे वन्दित होकर मेरे श्रेष्ठ पुत्र सनत्कुमार आकाशमार्गसे शीघ्र ही काशीको चले गये॥ ३७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! रुद्रसंहिताके अन्तर्गत सब कामनाओं और सिद्धियोंको पूर्ण करनेवाले इस युद्धखण्डका वर्णन मैंने आपसे किया। शिवको अत्यन्त सन्तुष्ट करनेवाली तथा भुक्ति-मुक्तिको देनेवाली इस सम्पूर्ण रुद्रसंहिताका वर्णन मैंने आपसे किया॥ ३८-३९॥

जो मनुष्य शत्रुबाधाका निवारण करनेवाली इस रुद्रसंहिताको नित्य पढ़ता है, वह सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त करता है और उसके बाद मुक्तिको प्राप्त कर लेता है॥ ४०॥

सूतजी बोले—इस प्रकार ब्रह्माके पुत्र नारदजी अपने पितासे शिवजीके परम यश तथा शिवके शतनामोंको सुनकर कृतार्थ एवं शिवानुगामी हो गये॥ ४१॥

मैंने यह ब्रह्मा और नारदजीका सम्पूर्ण संवाद आपसे कहा। शिवजी सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान हैं, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ४२॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत द्वितीय रुद्रसंहिताके पंचम युद्धखण्डमें विदल और उत्पलदैत्यवधवर्णन नामक उनसठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५९॥

॥ द्वितीय रुद्रसंहिताका पंचम युद्धखण्ड पूर्ण हुआ॥

॥ श्रीशिवमहापुराण पूर्वार्ध सम्पूर्ण॥

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

भूतभावन भगवान् विश्वनाथकी कृपासे इस वर्ष कल्याणका विशेषांक '**श्रीशिवमहापुराणाङ्क**' [पूर्वार्ध] पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। कल्याणकी परम्परामें पिछले वर्षोंमें यदा-कदा कई महापुराणों तथा उपपुराणोंका संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद अथवा किसीका मूलसहित सानुवाद प्रकाशन विशेषांकके रूपमें होता रहा है। आजसे लगभग तिरपन वर्ष पूर्व कल्याणके विशेषांकके रूपमें संक्षिप्त शिवपुराणाङ्कका प्रकाशन हुआ था, जिसमें शिवपुराणकी कथाएँ साररूपमें हिन्दीमें प्रकाशित हुई थीं। भगवान् सदाशिवके प्रेमी पाठकोंका पिछले बहुत वर्षोंसे यह आग्रह था कि मूल शिवमहापुराणका सानुवाद प्रकाशन विशेषांकके रूपमें किया जाय। इस दृष्टिसे मूल शिवमहापुराणके प्रकाशनकी योजना बनायी गयी, परंतु विशेषांककी पृष्ठसंख्या सीमित होनेके कारण चौबीस हजार श्लोकोंके इस बृहत् पुराणका मूलसहित प्रकाशन एक वर्षमें सम्भव नहीं था, अत: यह निर्णय लिया गया कि शिवमहापुराणके मूल श्लोक पुस्तक-रूपमें प्रकाशित कर दिये जायँ तथा प्रत्येक श्लोकका अनुवाद श्लोकसंख्यासहित दो वर्षोंमें सर्वसाधारणके लिये विशेषांकके रूपमें प्रकाशित किया जाय। तदनुसार सम्पूर्ण मूल शिवमहापुराण पुस्तकरूपमें प्रकाशित कर दिया गया तथा इस वर्ष श्रीशिवमहापुराण [पूर्वार्ध—सृष्टिखण्डसे युद्धखण्डतक]-का हिन्दी अनुवाद श्लोकाङ्कके साथ विशेषांकके रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। अगले वर्ष इस पुराणके उत्तरार्ध (शतरुद्रसंहितासे वायवीयसंहितातक)-का हिन्दी अनुवाद विशेषांकके रूपमें प्रकाशित करनेका विचार है।

प्रतिपाद्य-विषयकी दृष्टिसे शिवमहापुराण अत्यन्त उपयोगी महापुराण है। इसमें भक्ति, ज्ञान, सदाचार, शौचाचार, उपासना, लोकव्यवहार तथा मानवजीवनके परम कल्याणकी अनेक उपयोगी बातें निरूपित हैं। शिवज्ञान, शैवीदीक्षा तथा शैवागमका यह अत्यन्त प्रौढ़ ग्रन्थ है। साधना एवं उपासना-सम्बन्धी अनेकानेक सरल विधियाँ इसमें निरूपित हैं। कथाओंका तो यह आकर ग्रन्थ है। इसकी कथाएँ अत्यन्त मनोरम, रोचक तथा बड़े ही कामकी हैं। मुख्य रूपसे इस पुराणमें देवोंके भी देव महादेव भगवान् साम्बसदाशिवके सकल, निष्कल स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, उनके लीलावतारोंकी कथाएँ, द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके आख्यान, शिवरात्रि आदि व्रतोंकी कथाएँ, शिवभक्तोंकी कथाएँ, लिंगरहस्य, लिंगोपासना, पार्थिवलिंग, प्रणव, बिल्व, रुद्राक्ष और भस्म आदिके विषयमें विस्तारसे वर्णन है। यह पुराण उच्चकोटिके सिद्धों, आत्मकल्याणकामी साधकों तथा साधारण आस्तिक जनों—सभीके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्यमें तो इस पुराणके अध्ययन एवं मनन तथा इसके उपदेशोंके अनुसार चलनेकी विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है। शिवपुराणका पठन-पाठन सच्ची सुख-शान्तिके विस्तारमें परम सहायक सिद्ध हो सकता है। इसी दृष्टिसे इसका प्रकाशन किया जा रहा है।

यह मान्यता है कि भगवान् सदाशिवकी साधनासे सद्य: फलकी प्राप्ति होती है। अकारणकरुणावरुणालय भगवान् विश्वेश्वर अपने भक्तोंको भोग और मोक्ष एक साथ प्रदान करते हैं, जबकि सामान्यत: दोनोंका साहचर्य नहीं देखा जाता। जहाँ भोग है, वहाँ मोक्ष नहीं; जहाँ मोक्ष है, वहाँ भोग नहीं रहता है। फिर भी शिव-उपासकके लिये दोनों एक साथ सुलभ हैं अर्थात् संसारके विभिन्न भोगोंको भोगता हुआ वह परमपद—मोक्षका अधिकारी हो जाता है।

भारतीय धर्म एवं संस्कृतिमें भोगोंका सर्वथा निषेध नहीं है, वरन् उनकी मानव-जीवनके क्षेत्रमें आवश्यकता बतायी गयी है, परंतु वे होने चाहिये धर्मके द्वारा नियन्त्रित तथा मोक्ष एवं भगवत्प्राप्तिके साधनरूप। केवल भोग तो आसुरी-सम्पदाकी वस्तु है और वह मनुष्यका अध:पतन करनेवाला है। कामोपभोगपरायणता मनुष्यको असुर-राक्षस बनाकर उसके अपने तथा जगत्‌के

अन्यान्य प्राणियोंके लिये घोर सन्ताप, अशान्ति, चिन्ता, ताप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है। अपने देशमें इस अनर्थका उत्पादन करनेवाली भोगपरायणताका विस्तार बड़े जोरोंसे हो रहा है। अतः इस समय इसकी बड़ी आवश्यकता है कि मानव पतनके प्रवाहसे निकलकर, पापपथसे लौटकर फिर वास्तविक उत्थान, प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरूढ़—अग्रसर हों। इस दिशामें यदि उचित रूपसे श्रीशिवमहापुराणका अध्ययन तथा तदनुसार आचरण एवं उपासना की जाय तो यह विशेषांक मानवके भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नतिमें बहुत कुछ सहायक सिद्ध हो सकेगा।

इस पुराणके आदि-मध्य और अन्त—सर्वत्र भगवान् सदाशिवकी महिमा तथा उनकी कथाओंका प्रतिपादन हुआ है। यहाँ परब्रह्म परमात्माके शिवस्वरूप और उसकी उपासनाका वर्णन है। परमात्मप्रभुकी लीलाएँ अनन्त हैं और उन लीला-कथाओंका प्रतिपादन ही इस ग्रन्थका प्रतिपाद्य-विषय है। पाठकोंकी सुविधाके लिये श्रीशिवमहापुराण [पूर्वार्ध]-के भावोंका सार-संक्षेप इस विशेषांकके प्रारम्भमें सिंहावलोकनके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे शिवमहापुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य-विषय पाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगे। आशा है, पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

विशेषांकके प्रकाशनमें कठिनाइयोंका आना तो स्वाभाविक ही है, परंतु परमकरुणामय भगवान् सदाशिवकी अनुकम्पासे सब कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। इस पुराणके अनुवाद करनेमें मूल श्लोकोंके भावोंको स्पष्ट करनेका विशेष ध्यान रखा गया है। विशेषांककी पृष्ठ-संख्या प्रतिवर्षकी सीमासे अधिक होनेके कारण लगभग ११२ पृष्ठ इस वर्ष इसमें बढ़ाये गये हैं। पाठकोंकी सुविधाको ध्यानमें रखकर मूल्यकी वृद्धि भी नहीं की गयी।

इस विशेषांकके अनुवाद तथा उसकी आवृत्ति, प्रूफ-संशोधन तथा सम्पादनके कार्योंमें सम्पादकीय विभागके मेरे सहयोगी विद्वानोंने तथा अन्य सभी लोगोंने मनोयोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है, फिर भी अनुवाद, संशोधन एवं छपाई आदिमें कोई भूल हो, इसके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है; अतः इसके लिये हम अपने पाठकोंके प्रति क्षमा-प्रार्थी हैं।

आस्तिकजन इस महापुराणको पढ़कर लाभ उठायें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम लक्ष्यको प्राप्त करें, भगवान् सदाशिवसे यही प्रार्थना है।

मानव-जीवनका लक्ष्य है—'आत्मोद्धार'। इस लक्ष्यकी सिद्धि इस पुराणमें वर्णित आचारके श्रद्धापूर्वक सेवनसे प्राप्त हो सकती है। इस शिवमहापुराणके समस्त उपदेशों और कथानकोंका सार यही है कि हमें सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये साम्बसदाशिवकी शरण ग्रहण करते हुए उनकी उपासनामें संलग्न होना चाहिये। इस लक्ष्यकी प्राप्ति भगवान् सदाशिवकी भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है, इसकी विशद व्याख्या भी इस पुराणमें वर्णित है। यदि इस विशेषांकके अध्ययनसे जनता-जनार्दनको आत्मकल्याणकी प्रेरणा किसी भी रूपमें प्राप्त हुई तो यह भगवान्की बड़ी कृपा होगी, श्रम सार्थक होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल, अकारणकरुणावरुणालय प्रभुके श्रीचरणोंमें यह निवेदन करते हैं—'हाथ, पैर, वाणी, शरीर और कान, आँख आदि शारीरिक अवयवोंसे, कर्मसे तथा मानसिक रूपसे भी विहित या अविहित कुछ भी कोई अपराध मेरे द्वारा बन गया हो तो हे करुणाके सागर प्रभो! उन सबको आप कृपापूर्वक क्षमा कर दें। महादेव! सदाशिव! आपकी सदा जय हो।'

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥

—राधेश्याम खेमका
(सम्पादक)

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर—प्रकाशन

कोड — मूल्य ₹

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—
(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

- ■ 1 बृहदाकार — २५०
- ■ 2 ,, ग्रन्थाकार, विशिष्ट संस्करण [बँगला, तमिल, ओड़िआ, कन्नड, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठीमें भी] — १४०
- ■ 3 ,, साधारण संस्करण — ११०

गीता-साधक-संजीवनी—
(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी)

- ■5 बृहदाकार, परिशिष्टसहित — ४५०
- ■ 6 ,, ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित [मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड (दो खण्डोंमें), बँगला, ओड़िआमें भी] — २३०
- ■ 8 **गीता-दर्पण**—(स्वामी श्रीरामसुखदासजीद्वारा) [मराठी, बँगला, गुजराती, ओड़िआमें भी] — ७०
- ■1562 **गीता-प्रबोधनी**—पुस्तकाकार (असमिया, बँगला, ओड़िआमें भी) — ५०
- ■1590 **गीता-प्रबोधनी**-वि० सं० — ४०
- ■1958 **गीता-संग्रह** — ८०
- ■ 10 **गीता-शांकर-भाष्य** — १२५
- ■ 581 **गीता-रामानुज-भाष्य** — ८०
- ■ 784 **ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका** (मराठी) — १७५
- ■ 859 ,, मूल, मझला (मराठी) — ६०
- ■ 748 ,, **मूल, गुटका** (,,) — ४५
- ■ 11 **गीता-चिन्तन** — ६०
- ■ 17 **गीता**—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिलमें भी] — ५०
- ■1973 **गीता-पदच्छेद अन्वय**-पॉकिट, विशिष्ट सं० — ४०
- ■ 16 **गीता**—माहात्म्यसहित, मोटे अक्षरोंमें (गुजराती, मराठीमें भी) — ४५
- ■1555 **गीता-माहात्म्य** (वि० सं०) — ६०
- ■ 19 **गीता**-केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) — १५
- ■ 18 **गीता**-भाषा-टीका, मोटा टाइप [ओड़िआ, गुजराती, मराठीमें भी] — २५
- ■ 502 **गीता**- ,, ,, (सजि०) [तेलुगु, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तमिलमें भी] — ४०
- ■ 23 **गीता**—मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित [कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओड़िआमें भी] — ६
- ■ 2025 **गीता-हिन्दी संस्कृत**-अजि. पॉकिट — १५
- ■ 20 **गीता**-भाषा-टीका, पॉकिट [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओड़िआ, गुजराती, तमिल, मलयालम, कन्नड, तेलुगुमें भी] — १२
- ■1566 **गीता**—भाषा-टीका, पॉकिट साइज, सजिल्द [गुजराती, बँगला, अंग्रेजी भी] — २५
- ■ 21 **श्रीपञ्चरत्नगीता**—(मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी] — ३०
- ■1628 ,, **(नित्यस्तुति एवं गजल-गीतासहित)** पॉकिट — १५
- ■ 22 **गीता**—मूल, मोटे अक्षरोंवाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी] — १२
- ■1602 **गीता**—सजिल्द (वि.सं.) लघु — १५
- ■ 700 **गीता**—मूल, लघु आकार (ओड़िआ, बँगला, तेलुगुमें भी) — ३
- ■1392 **गीता ताबीजी**—(सजिल्द) (गुजराती, बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) — ८
- ■ 566 **गीता**—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) — .५०
- ■1242 **पाण्डव-गीता एवं हंसगीता** — ४
- ▲388 **गीता-माधुर्य**-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) [तमिल, मराठी, गुजराती, तेलुगु, बँगला, असमिया, कन्नड़, ओड़िआ, अंग्रेजी, संस्कृतमें भी] — १५
- ▲464 **गीता-ज्ञान-प्रवेशिका** — २५
- ■1796 **श्रीज्ञानेश्वरी**-हिन्दी-भावानुवाद — १००
- ■1431 **गीता-दैनन्दिनी** पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) — ७०
- ■ 503 **गीता-दैनन्दिनी** पुस्तकाकार, प्लास्टिक जिल्द — ५५
- ■ 506 **गीता-दैनन्दिनी**—पॉकिट साइज, प्लास्टिक जिल्द — ३०

रामायण

- ■ 1389 **श्रीरामचरितमानस**—बृहदाकार (वि० सं०) — ६००
- ■ 80 ,, बृहदाकार — ५००
- ■1095 **श्रीरामचरितमानस**—ग्रन्थाकार (वि०सं०) (गुजरातीमें भी) — ३००
- ■ 81 ,, ग्रन्थाकार, सचित्र, सटीक, मोटा टाइप, [ओड़िआ, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी, नेपालीमें भी] — २४०
- ■1402 ,, सटीक, ग्रन्थाकार (सामान्य) — १९०
- ■1563 ,, मझला, सटीक, वि० सं० — १४०
- ■ 82 ,, मझला, सटीक [बँगला, गुजराती, भी] — १२०
- ■1318 ,, रोमन एवं अंग्रेजी-अनुवादसहित — ३००
- ■1617 ,, ,, मझला — १३०
- ■ 456 ,, अंग्रेजी-अनुवादसहित — १८०
- ■1436 ,, मूलपाठ, बृहदाकार — २५०
- ■ 83 ,, मूलपाठ, ग्रन्थाकार [गुजराती, ओड़िआ भी] — १२०
- ■84 ,, मूल, मझला [गुजराती भी] — ७०
- ■85 ,, मूल, गुटका [गुजराती भी] — ४५
- ■1544 ,, मूल गुटका (वि० सं०) — ५०

[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- ■ 94 **श्रीरामचरितमानस**-बालकाण्ड — ४०
- ■ 95 ,, अयोध्याकाण्ड — ३५
- ■ 98 ,, सुन्दरकाण्ड [कन्नड, तेलुगु, बँगला भी] — १०
- ■1349 ,, सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) [गुजरातीमें भी] — २५
- ■101 ,, लंकाकाण्ड — १८
- ■102 ,, उत्तरकाण्ड — २०
- ■141 ,, अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड — २५
- ■1919 ,, **सुन्दरकाण्ड**-मूल, रंगीन, वि० सं० — १५
- ■1583 ,, **सुन्दरकाण्ड**, (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन — १०
- ■ 99 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, गुटका [गुजराती भी] — ५
- ■ 100 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, मोटा [गुजराती, ओड़िआ भी] — १०
- ■ 858 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, लघु आकार [गुजराती भी] — ४
- ■1710 ,, किष्किन्धाकाण्ड — ३
- ■1197 **मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका** (खण्ड -६) — १२०
- ■86 **मानस-पीयूष**-(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) — २१००

(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

- ■1935 **मानस-पीयूष**-परिशिष्ट — ७५
- ■ 75} 76} **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण**—सटीक, दो खण्डोंमें सेट (कन्नड़, गुजराती, तेलुगु भी) — ४५०
- ■1907 **श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण** बृहदाकार—भाषा — ४५०
- ■ 77 ,, केवल भाषा, तेलुगु भी — २८०
- ■ 583 ,, (मूलमात्रम्) — २००
- ■1549 ,, सुन्दरकाण्ड-सटीक — ८०
- ■1953 ,, सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम्, पुस्तकाकार [तमिल भी] — ४०
- ■ 78 ,, **मूल गुटका** -पॉकिट — २५
- ■ 452} 453} **श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण** (अंग्रेजी-अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) — ५००
- ■1291 **श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण** कथा सुधासागर
- ■ 74 **अध्यात्मरामायण**—सटीक [तमिल, तेलुगु, कन्नड, मराठी भी] — १००
- ■ 223 **मूल-रामायण** [गुजराती, मराठी भी] — ३
- ▲1654 **लवकुश-चरित्र** — २५
- ▲ 401 **मानसमें नाम-वन्दना** — १२
- ■ 103 **मानस-रहस्य** — ६०
- ■ 104 **मानस-शंका-समाधान** — २०

अन्य तुलसीकृत साहित्य

- ■ 105 **विनय-पत्रिका**—सरल भावार्थसहित — ४०
- ■1701 **विनय-पत्रिका**, सजिल्द — ६०
- ■106 **गीतावली**-भावार्थसहित — ४५
- ■107 **दोहावली**— ,, — २०
- ■108 **कवितावली**— ,, — २०
- ■109 **रामाज्ञाप्रश्न**— ,, — १२
- ■110 **श्रीकृष्ण-गीतावली** ,, — १०
- ■111 **जानकी-मंगल**— ,, — ७
- ■112 **हनुमान-बाहुक**— ,, — ५
- ■113 **पार्वती-मंगल**— ,, — ५
- ■114 **वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण** — ४

सूर-साहित्य

- ■ 555 **श्रीकृष्ण-माधुरी** — ३५
- ■ 61 **सूर-विनय-पत्रिका** — ३५
- ■ 62 **श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी** — ३५
- ■ 735 **सूर-रामचरितावली** — ३०
- ■ 547 **विरह-पदावली** — ३०
- ■ 864 **अनुराग-पदावली** — ३५

☞ भारतमें डाक खर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशिः—२ रुपये-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर। —रजिस्ट्री/वी०पी०पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त। [पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० ५००)]

☞ रंगीन चित्रोंपर ३० रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।

☞ रु० ५००/-से अधिककी पुस्तकोंपर ५% पैकिंग, हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।

☞ पुस्तकोंके मूल्य एवं डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य/डाकदर देय होगा।

☞ पुस्तक-विक्रेताओंके नियमोंकी पुस्तिका अलग है।

☞ Online पुस्तक मँगानेके तथा विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

☞ विदेशोंमें तथा डाकद्वारा पुस्तकें मँगवानेके लिये आर्डर गीताप्रेस, गोरखपुर भेजें।

☞ जिन पुस्तकोंका मूल्य नहीं दर्शाया गया है, वह पुनर्मुद्रणकी प्रक्रियामें हैं।

नोट—अन्य भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंका मूल्य एवं कोड पृष्ठ-६१५ से ६१८ पर देखें।

सम्पर्क करें—व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

कोड		मूल्य ₹
	— पुराण, उपनिषद् आदि —	
■1951, 1952	श्रीमद्भागवतमहापुराण-सटीक, बेड़िआ-दो खण्डोंमें सेट	८००
■1930	श्रीमद्भागवत-सुधासागर मोटा टाइप (तेलुगु, मराठी, गुजराती भी)	३००
■1945	,, (विशिष्ट संस्करण)	३५०
■ 25	श्रीशुकसुधासागर— बृहदाकार, बड़े टाइपमें	५००
■ 26, 27	श्रीमद्भागवतमहापुराण— सटीक, दो खण्डोंमें सेट (गुजराती, मराठी, बँगला, ओड़िआ, अंग्रेजी, तेलुगु, तमिल भी)	५००
■ 29	,, मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी)	१६०
■ 124	,, मूल मझला	१००
■1855	,, मूल गुटका, विशिष्ट सं०	१००
■2009	भागवत नवनीत (श्रीडोंगरेजी महाराज) (गुजराती भी)	१६०
■ 571	श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन	१५०
■ 30	श्रीप्रेम-सुधासागर	१००
■ 31	श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध	४५
■1927	जीवन-संजीवनी	४०
■ 728	महाभारत—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छ: खण्डोंमें] सेट	१९५०
	(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)	
■ 38	महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक	३५०
■1589	,, केवल हिन्दी	३००
■ 39, 511	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) [बँगला तेलुगु भी]	४४०
■ 44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०
■2020	शिवमहापुराण-मूल मात्रम्	२५०
■ 789	सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती, बँगला, तेलुगु, कन्नड़ भी]	२००
■1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत (गुजराती, कन्नड़, तेलुगु)	२४०
■1468	सं० शिवपुराण (वि० सं०)	२५०
■1770	श्रीमद्देवीभागवत-मूल	१६५
■1183	सं० नारदपुराण	२००
■1897	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण— सटीक-I	२००
■1898	,, सटीक-II	२००
■1610	महाभागवत (देवीपुराण) (सटीक)	१२०
■ 48	श्रीविष्णुपुराण-सटीक (गुजराती, बँगला भी)	१४०
■1364	श्रीविष्णुपुराण-हिन्दी	१००
■ 279	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	३२५
■ 539	सं० मार्कण्डेयपुराण	९०
■1111	सं० ब्रह्मपुराण	१२०
■1113	नरसिंहपुराणम्-सटीक	१००
■1189	सं० गरुडपुराण (गुजराती भी)	१६०
■1362	अग्निपुराण (हिन्दी-अनुवाद)	२००
■1361	सं० श्रीवराहपुराण	१००
■ 584	सं० भविष्यपुराण	१५०
■1131	कूर्मपुराण—सटीक	१४०
■ 631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२००
■1432	वामनपुराण—सटीक	१२५

कोड		मूल्य ₹
■1985	लिङ्गमहापुराण— सटीक	२००
■ 557	मत्स्यमहापुराण— ,,	२७०
■ 517	गर्गसंहिता	१५०
■ 47	पातञ्जलयोग-प्रदीप	१७०
■ 135	पातञ्जलयोग-दर्शन [बँगला भी]	२०
■ 582	छान्दोग्योपनिषद्	१३०
■ 577	बृहदारण्यकोपनिषद्	१८०
■1421	ईशादि नौ उपनिषद्	१८०
■ 66	ईशादि नौ उपनिषद् अन्वय-हिन्दी व्याख्या [बँगला भी]	७५
■ 67	ईशावास्योपनिषद्- सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी]	७
■ 68	केनोपनिषद्— सानुवाद, शांकरभाष्य	२०
■ 578	कठोपनिषद्— ,, (तेलुगु भी)	२०
■ 69	माण्डूक्योपनिषद्—,,	३५
■ 513	मुण्डकोपनिषद्— ,,	१५
■ 70	प्रश्नोपनिषद्— ,,	१५
■ 71	तैत्तिरीयोपनिषद्— ,,	३०
■ 72	ऐतरेयोपनिषद् ,,	१२
■ 73	श्वेताश्वतरोपनिषद् ,,	३०
■ 65	वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित	७०
	— भक्त-चरित्र —	
■1947	भक्तमाल अङ्क	१३०
■ 40	भक्त-चरिताङ्क-सचित्र, सजिल्द	२३०
■1771	जैमिनीकृत महाभारतमें भक्तोंकी गाथा- सजिल्द	९०
■ 51	श्रीतुकाराम-चरित	६०
■121	एकनाथ-चरित्र	२५
■ 53	भागवतरत्न प्रह्लाद	३०
■123	चैतन्य-चरितावली	१७०
■751	देवर्षि नारद	२०
■168	भक्त नरसिंह मेहता [मराठी, गुजराती भी]	२०
■169	भक्त बालक [तेलुगु, कन्नड, मराठी भी]	८
■170	भक्त नारी	१०
■171	भक्त पञ्चरत्न (तेलुगु भी)	१२
■172	आदर्श भक्त [तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	१२
■175	भक्त-कुसुम	१०
■173	भक्त-सप्तरत्न [गुजराती, कन्नड भी]	८
■174	भक्त-चन्द्रिका [गुजराती, कन्नड, तेलुगु, मराठी, ओड़िआ भी]	८
■176	प्रेमी भक्त [गुजराती भी]	१०
■177	प्राचीन भक्त	२०
■179	भक्त-सुमन [गुजराती भी]	१२
■178	भक्त-सरोज (,,)	१२
■181	भक्त-सुधाकर (,,)	१२
■180	भक्त-सौरभ	१२
■182	भक्त-महिलारत्न [गुजराती भी]	१२
■183	भक्त-दिवाकर	१०
■185	भक्तराज हनुमान् [मराठी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	१०

कोड		मूल्य ₹
■ 184	भक्त-रत्नाकर	१२
■ 186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओड़िआ भी]	७
■ 187	प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ भी]	६
■ 188	महात्मा विदुर [गुजराती, तमिल, ओड़िआ भी]	६
■ 136	विदुरनीति [अंग्रेजी, कन्नड़, तमिल, तेलुगु]	२०
■ 138	भीष्मपितामह [तेलुगु भी]	२०
■ 189	भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी]	६
	परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन	
■ 683	तत्त्वचिन्तामणि [गुजराती भी]	१६०
■ 814	साधन-कल्पतरु	१३०
▲1944	परम सेवा	१५
▲1876	एक महापुरुषके अनुभवकी..	१०
▲2027	भगवत्प्राप्तिकी अमूल्य बातें	१२
▲1974	व्यवहार सुधार और..	१२
▲1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें?	१५
▲1631	भगवान् कैसे मिलें?	१२
▲1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	१२
▲1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	१०
▲1747	भगवत्प्राप्ति कैसे हो?	१२
▲1923	भगवत्प्राप्तिके सुगम साधन	१०
▲1666	कल्याण कैसे हो?	१५
▲ 527	प्रेमयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी]	३०
▲ 242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी]	३०
▲ 528	ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी]	३०
▲ 266	कर्मयोगका तत्त्व— (भाग-१) (गुजराती भी)	१५
▲ 267	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-२)	१८
▲ 303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल, गुजराती भी]	२०
▲ 298	भगवान्के स्वभावका रहस्य [तमिल, गुजराती, मराठी भी]	१८
▲ 243	परम साधन—(भाग-१)	१५
▲ 244	,, ,, —(भाग-२)	१२
▲ 245	आत्मोद्धारके साधन (भाग-१)	१८
▲ 335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति	२०
▲1296	कर्णवासका सत्संग	१०
▲ 611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी]	१२
▲ 579	अमूल्य समयका सदुपयोग [तेलुगु, गुजराती, मराठी, कन्नड़, ओड़िआ भी]	१२
▲ 246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)	१५
▲ 247	,, ,, (भाग-२)	१५
▲ 588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति [गुजराती भी]	१५
▲1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [गुजराती भी]	१२
▲ 248	कल्याणप्राप्तिके उपाय [बँगला भी]	२०
▲ 249	शीघ्र कल्याणके सोपान [गुजराती भी]	१७
▲ 250	ईश्वर और संसार	२५
▲1900	निष्कामभावसे भगवत्प्राप्ति	८
▲ 519	अमूल्य शिक्षा	१५

कोड		मूल्य ₹
▲253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि	१५
▲251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि	१७
▲252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा	१८
▲254	व्यवहारमें परमार्थकी कला- [गुजराती भी]	१५
▲255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम [,,]	१५
▲258	तत्त्वचिन्तामणि	१५
▲257	परमानन्दकी खेती	१५
▲260	समता अमृत और विषमता विष	२०
▲259	भक्ति-भक्त-भगवान्	१७
▲256	आत्मोद्धारके सरल उपाय	१८
▲261	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान [मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	६
▲262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तमिल, मराठी भी]	१५
▲543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह [ओड़िआ भी]	१५
▲264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—१	१५
▲265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—२	१२
▲263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, तमिल, मराठी भी]	१०
▲268	परमशान्तिका मार्ग— भाग-१ (गुजराती भी)	१५
▲269	परमशान्तिका मार्ग— (भाग-२)	१५
▲1792	शान्तिका उपाय	१५
▲1530	आनन्द कैसे मिले?	१२
▲1837	अनन्य भक्ति कैसे प्राप्त हो?	१०
▲ 769	साधन-नवनीत [गुजराती, ओड़िआ, कन्नड भी]	१५
▲ 599	हमारा आश्चर्य	१५
▲ 681	रहस्यमय-प्रवचन	१५
▲1021	आध्यात्मिक-प्रवचन [गुजराती भी]	१५
▲1324	अमृत-वचन [बँगला भी]	१५
▲1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय	१२
▲1433	साधना-पथ	१०
▲1483	भगवत्पथ-दर्शन	१२
▲1493	नेत्रोंमें भगवान्को बसा..	१२
▲1435	आत्मकल्याणके विविध..	१२
▲1529	सम्पूर्ण दु:खोंका अभाव कैसे हो?	१२
▲1561	दु:खोंका नाश कैसे हो?	१५
▲1587	जीवन-सुधारकी बातें	१५
▲1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम [ओड़िआ भी]	१५
▲ 292	नवधा भक्ति [तेलुगु, मराठी, कन्नड भी]	१०
▲ 274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी	१०
▲ 273	नल-दमयन्ती [मराठी, तमिल, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]	५
▲ 277	उद्धार कैसे हो? [गुजराती, ओड़िआ, मराठी भी]	१०

कोड — मूल्य ₹

▲1871 आवागमनसे मुक्ति १२
▲1856 महात्माओंकी अहैतुकी दया १०
▲1860 भगवत्प्राप्तिकी युक्तियाँ १०
▲1874 महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी बातें १०
▲1790 जन्म-मरणसे छुटकारा १२
▲ 278 सच्ची सलाह-८० पत्रोंका संग्रह १२
▲ 280 साधनोपयोगी पत्र १०
▲ 281 शिक्षाप्रद पत्र १५
▲ 282 परमार्थिक पत्र १५
▲ 284 अध्यात्मविषयक पत्र १२
▲1120 सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें १५
▲1150 साधनकी आवश्यकता [मराठी भी] १२
▲1908 प्रतिकूलतामें प्रसन्नता १२
▲ 283 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ [अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, मराठी, तेलुगु, ओड़िआ भी] १०
▲ 680 उपदेशप्रद कहानियाँ [अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु भी] १५
▲ 891 प्रेममें विलक्षण एकता [मराठी, गुजराती भी] १५
▲ 958 मेरा अनुभव [गुजराती, मराठी भी] १५
▲1283 सत्संगकी मार्मिक बातें [गुजराती भी] १५
▲ 320 वास्तविक त्याग १०
▲1791 त्यागकी महिमा १०
▲ 285 आदर्श भ्रातृप्रेम [ओड़िआ भी] ८
▲ 286 बालशिक्षा [तेलुगु, कन्नड, ओडिआ, गुजराती भी] ६
▲ 287 बालकोंके कर्तव्य [ओड़िआ भी] ७
▲ 272 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा [कन्नड, गुजराती भी] १५
▲ 290 आदर्श नारी सुशीला [बँगला, तेलुगु, तमिल, ओड़िआ, गुजराती, असमिया, मराठी भी] ५
▲ 291 आदर्श देवियाँ [ओड़िआ भी] ६
▲ 300 नारीधर्म ५
▲ 293 सच्चा सुख और....[गुजराती भी] ३
▲ 294 संत-महिमा [गुजराती, ओड़िआ भी] ३
▲ 297 गीतोक्त संन्यास तथा..... ४
▲ 271 भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो? ३
▲ 295 सत्संगकी कुछ सार बातें [बँगला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी] ४
▲ 301 भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म ४
▲ 310 सावित्री और सत्यवान् [गुजराती, तमिल, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, मराठी भी] ४
▲ 299 श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश—ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप [तेलुगु व अंग्रेजी भी] ५
▲ 309 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ) [ओड़िआ भी] ५
▲ 304 गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित [गुजराती, असमिया, तमिल, मराठी भी] ४
▲ 623 धर्मके नामपर पाप (गुजराती भी) ४
▲ 311 परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य [ओड़िआ भी] ४
▲ 306 धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं? [गुजराती, ओड़िआ व अंग्रेजी भी] ३
▲ 307 भगवान्‌की दया [ओड़िआ, कन्नड, गुजराती भी] ४

कोड — मूल्य ₹

▲ 316 ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति ३
▲ 314 व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य [गुजराती, मराठी भी] ३
▲ 315 चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी] ३
▲ 318 ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती, तेलुगु भी] ३
▲ 270 भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं? (तेलुगु भी) ३
▲ 302 ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी] ४
▲ 326 प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी] ३

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

■ 820 भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) १३०
■ 050 पद-रत्नाकर ९०
■ 049 श्रीराधा-माधव-चिन्तन ९०
▲ 058 अमृत-कण ३०
▲ 332 ईश्वरकी सत्ता और महत्ता ४०
▲ 333 सुख-शान्तिका मार्ग २५
▲ 343 मधुर २५
▲ 056 मानव-जीवनका लक्ष्य २५
▲ 331 सुखी बननेके उपाय २०
▲ 334 व्यवहार और परमार्थ २५
▲ 514 दुःखमें भगवत्कृपा २०
▲ 386 सत्संग-सुधा २०
▲ 342 संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी, तीन भागमें] २५
▲ 347 तुलसीदल २०
▲ 339 सत्संगके बिखरे मोती २०
▲ 349 भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति ३५
▲ 350 साधकोंका सहारा ३५
▲ 351 भगवच्चर्चा—(भाग-५) १६
▲ 352 पूर्ण समर्पण ३०
▲ 353 लोक-परलोक-सुधार (भाग-१) २०
▲ 354 आनन्दका स्वरूप २०
▲ 355 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर ३०
▲ 356 शान्ति कैसे मिले? २५
▲ 357 दुःख क्यों होते हैं? २५
▲ 348 नैवेद्य २०
▲ 337 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श [गुजराती, तेलुगु भी] १२
▲ 336 नारीशिक्षा [गुजराती, कन्नड भी] १५
▲ 340 श्रीराम-चिन्तन १५
▲ 338 श्रीभगवन्नाम-चिन्तन २०
▲ 345 भवरोगकी रामबाण दवा [ओड़िआ भी] १५
▲ 346 सुखी बनो १२
▲ 341 प्रेम-दर्शन [तेलुगु, मराठी भी] १५
▲ 358 कल्याण-कुंज १०
▲ 359 भगवान्‌की पूजाके पुष्प १०
▲ 360 भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं १२
▲ 361 मानव-कल्याणके साधन २५
▲ 362 दिव्य सुखकी सरिता [गुजराती भी] १०
▲ 363 सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ १०
▲ 364 परमार्थकी मन्दाकिनी १०
▲ 366 मानव-धर्म १०
▲ 526 महाभाव-कल्लोलिनी ८
▲ 367 दैनिक कल्याण-सूत्र ८

कोड — मूल्य ₹

▲369 गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी] ५
▲368 प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष [ओड़िआ भी] ७
▲370 श्रीभगवन्नाम [ओड़िआ भी] ५
▲373 कल्याणकारी आचरण २
▲374 साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी] ६
▲375 वर्तमान शिक्षा ५
▲376 स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी ५
▲377 मनको वशमें करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी] २
▲378 आनन्दकी लहरें [बँगला, ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी] ४
▲379 गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य ५
▲381 दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य २
▲382 सिनेमा—मनोरंजन या विनाशका साधन ४
▲344 उपनिषदोंके चौदह रत्न ७
▲371 राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक ६
▲384 विवाहमें दहेज २
▲809 दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय-जीवन कैसे बनें? २

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

■ 465 साधन-सुधा-सिन्धु [ओड़िआ, गुजराती भी] १७०
▲1485 ज्ञानके दीप जले २२
▲1447 मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी, असमिया भी) २०
▲1675 सागरके मोती १५
▲1598 सत्संगके फूल १८
▲1733 संत-समागम १०
▲1633 एक संतकी वसीयत [बँगला भी] ३
▲ 400 कल्याण-पथ १५
▲ 401 मानसमें नाम-वन्दना १५
▲ 605 जित देखूँ तित-तू [गुजराती, मराठी भी] १५
▲ 406 भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी] १५
▲ 535 सुन्दर समाजका निर्माण १५
▲1175 प्रश्नोत्तर-मणिमाला [बँगला, ओड़िआ, गुजराती भी] १५
▲1247 मेरे तो गिरधर गोपाल १२
▲ 403 जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी] १५
▲ 436 कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ भी] १२
▲ 405 नित्ययोगकी प्राप्ति [ओड़िआ भी] १२
▲1093 आदर्श कहानियाँ [ओड़िआ, बँगला भी] १५
▲ 407 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड, मराठी भी] १०
▲ 408 भगवान्‌से अपनापन [गुजराती, ओड़िआ भी] १०
▲ 861 सत्संग-मुक्ताहार [गुजराती, ओड़िआ भी] ८
▲ 409 वास्तविक सुख [तमिल, ओड़िआ भी] १०
▲1308 प्रेरक कहानियाँ [बँगला, ओड़िआ भी] १०
▲1408 सब साधनोंका सार [बँगला भी] ८
▲ 411 साधन और साध्य [मराठी, बँगला, गुजराती भी] १०

कोड — मूल्य ₹

▲ 412 तात्त्विक प्रवचन [मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती भी] १०
▲ 414 तत्त्वज्ञान कैसे हो? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला, गुजराती भी] १०
▲ 410 जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी] १२
▲ 822 अमृत-बिन्दु [बँगला, तमिल, ओड़िआ, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड भी] १२
▲ 821 किसान और गाय [तेलुगु भी] ४
▲ 417 भगवन्नाम [मराठी, अंग्रेजी भी] ६
▲ 416 जीवनका सत्य [गुजराती, अंग्रेजी भी] १०
▲ 418 साधकोंके प्रति [बँगला, मराठी भी] ८
▲ 419 सत्संगकी विलक्षणता [गुजराती भी] ६
▲ 545 जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग [गुजराती भी] ६
▲ 420 मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल, बँगला, मराठी, गुजराती, ओड़िआ भी] ५
▲ 421 जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी] ८
▲ 422 कर्म-रहस्य [बँगला, तमिल, कन्नड, ओड़िआ भी] ८
▲ 424 वासुदेवः सर्वम् [मराठी, अंग्रेजी भी] ६
▲ 425 अच्छे बनो [अंग्रेजी भी] ८
▲ 426 सत्संगका प्रसाद [गुजराती भी] ८
▲1019 सत्यकी खोज [गुजराती, अंग्रेजी भी] १०
▲1479 साधनके दो प्रधान सूत्र [ओड़िआ, बँगला भी] ५
▲1035 सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण १
▲1360 तू-ही-तू ४
▲1434 एक नयी बात ३
▲1440 परम पितासे प्रार्थना २
▲1441 संसारका असर कैसे छूटे? ४
▲1176 शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और..[बँगला भी] ४
▲ 431 स्वाधीन कैसे बनें? [अंग्रेजी भी] ४
▲ 702 यह विकास है या..(बँगला भी) ४
▲ 589 भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती, ओड़िआ भी] १०
▲ 617 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल, बँगला, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, गुजराती, मराठी भी] ८
▲ 434 शरणागति [तमिल, ओड़िआ, नेपाली, तेलुगु, कन्नड भी] ६
▲ 770 अमरताकी ओर [गुजराती भी] १०
▲ 432 एकै साधे सब सधै [गुजराती, तमिल, तेलुगु भी] ७
▲ 427 गृहस्थमें कैसे रहें? [बँगला, मराठी, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, असमिया, पंजाबी भी] १२
▲ 433 सहज साधना [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी] ६
▲ 435 आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि) [गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी, मराठी भी] १०

कोड		मूल्य ₹
■1012	पञ्चामृत—(१०० पन्नोंका पैकेटमें) [गुजराती भी]	२
■1037	हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं (१०० पन्नोंका पैकेटमें)	२
■1611	मैं भगवान्का अंश हूँ (१०० पन्नोंका पैकेटमें)	२
■1612	सच्ची और पक्की बात (")	२
▲1072	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? [गुजराती, ओड़िआ भी]	६
▲515	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन [गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु भी]	२
▲438	दुर्गतिसे बचो [गुजराती, बँगला, मराठी भी]	४
▲439	महापापसे बचो [बँगला, तेलुगु, कन्नड, गुजराती, तमिल भी]	४
▲440	सच्चा गुरु कौन? [ओड़िआ भी]	४
▲444	नित्य-स्तुति और प्रार्थना [कन्नड़, तेलुगु भी]	४
▲729	सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण [गुजराती भी]	४
▲447	मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]	४
▲745	भगवत्तत्त्व [गुजराती भी]	४
▲445	हम ईश्वरको क्यों मानें? [बँगला भी]	३
▲632	सब जग ईश्वररूप है [ओड़िआ, गुजराती भी]	१०

नित्य पाठ-साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

कोड		मूल्य ₹
■592	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [गुजराती, तेलुगु भी]	६०
■1593	अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश	१३०
■1092	भागवत-स्तुति-संग्रह	८०
■639	श्रीमन्नारायणीयम्-[तमिल, तेलुगु भी]	५०
■1594	सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	११०
■1895	जीवच्छ्राद्ध-पद्धति	६०
■1809	गया श्राद्ध-पद्धति	३५
■1928	त्रिपिण्डी श्राद्ध-पद्धति	१५
■1627	रुद्राष्टाध्यायी— सानुवाद	३०
■1416	गरुडपुराण-सारोद्धार "	३५
■2024	गणेशस्तोत्ररत्नाकर	३५
■1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	३०
■1954	शिव-स्मरण	१०
■1774	देवीस्तोत्ररत्नाकर	३५
■1623	ललितासहस्रनामस्तोत्रम् [तेलुगु, कन्नड़ भी]	१०
■610	व्रत-परिचय	५०
■1162	एकादशी-व्रतका माहात्म्य—मोटा टाइप [गुजराती भी]	२०
■1136	वैशाख-कार्तिक....	३५
■1588	माघमासका माहात्म्य	१०
■1899	श्रावणमासका माहात्म्य	३२
■1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	१२
■052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]	३५
■1629	" " सजिल्द	४५
■1567	दुर्गासप्तशती—मूल, मोटा (बेड़िया)	४५
■876	" मूल गुटका	१५
■1346	" सानुवाद मोटा टाइप	३५
■118	" सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]	३०
■489	" सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]	४५
■1281	" " (विशिष्ट सं०)	५०
■866	" केवल हिन्दी	२०
■1161	दुर्गासप्तशती—केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द	५०
■2003	शक्तिपीठ दर्शन	२०

कोड		मूल्य ₹
■819	श्रीविष्णुसहस्रनाम-शांकरभाष्य	३०
■206	श्रीविष्णुसहस्रनाम—सटीक	६
■226	श्रीविष्णुसहस्रनाम—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]	३
■1872	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्-लघु	२
■509	सूक्ति-सुधाकर	
■1801	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (हिन्दी-अनुवादसहित)	१०
■207	रामस्तवराज—(सटीक)	५
■211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्—हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]	३
■224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र [तेलुगु, ओड़िआ भी]	५
■231	रामरक्षास्तोत्रम्—[तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	३
■1850	शतनामस्तोत्रसंग्रह	२५

नामावलिसहितम्

कोड		मूल्य ₹
■1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् (गुजराती भी)	८
■1600	श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1601	श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1663	श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1664	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1665	श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1706	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1704	श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1705	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1707	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम् (तेलुगु भी)	८
■1708	श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1709	श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम्	८
■1862	श्रीगोपाल स०-सटीक	१५
■2021	पुरुषोत्तमसहस्रनाम	१०
■1748	संतान-गोपालस्तोत्र	७
■563	शिवमहिम्नःस्तोत्र [तेलुगु भी]	५
■230	अमोघ शिवकवच	३
■495	दत्तात्रेय-वज्रकवच सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]	५
■229	श्रीनारायणकवच [ओड़िआ, तेलुगु भी]	३
■1885	वैदिक-सूक्त-संग्रह	३०
■1783	भजन सुधा—सजिल्द	६०
■054	भजन-संग्रह	५०
■1849	भजन-सुधा	१५
■140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	३०
■144	भजनामृत	१२
■142	चेतावनी-पद-संग्रह	३०
■1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	१०
■1800	पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह	१०
■1214	मानस-स्तुति-संग्रह	१५
■1344	सचित्र-आरती-संग्रह	१५
■1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप	१५
■153	आरती-संग्रह	१०
■1845	प्रमुख आरतियाँ-पॉकिट	५
■208	सीतारामभजन	५
■221	हरेरामभजन-दो माला, गुटका	५
■222	हरेरामभजन—१४ माला	१५
▲385	नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी]	४
■225	गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, [तेलुगु, कन्नड ओड़िआ भी]	३
■1505	भीष्मस्तवराज	५
■699	गङ्गालहरी	३
■1094	हनुमानचालीसा—हिन्दी भावार्थसहित	६
■1917	" मूल (रंगीन) वि०सं०	५

कोड		मूल्य ₹
■1979	हनुमानचालीसा-सचित्र	१०
■227	" (पॉकेट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]	३
■1997	हनुमानचालीसा-सचित्र खड़िया, वि० सं०	५
■695	हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]	२
■1525	हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी]	२
■228	शिवचालीसा—असमिया भी	३
■1185	शिवचालीसा-लघु आकार	२
■851	दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा	३
■1991	" " लाल रंग, वि.सं.	५
■1033	"—लघु आकार	२
■1993	"—सचित्र, वि. सं.	१०
■232	श्रीरामगीता	५
■383	भगवान् कृष्णकी कृपा तथा...	३
■203	अपरोक्षानुभूति	५
■139	नित्यकर्म-प्रयोग	१५
■236	साधक-दैनन्दिनी	५
■1990	भगवनाम माहात्म्य	१०
■1471	संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य	८
■210	सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि—मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]	६
■614	सन्ध्या	३

बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें

कोड		मूल्य ₹
■1992	हिन्दी अंग्रेजी वर्णमाला	३०
■125	बालपोथी भाग-१ (रंगीन)	६
■212	" " भाग-२	५
■684	" " भाग-३	५
■764	" " भाग-४	१२
■765	" " भाग-५	१२
■1692	बालककी दिनचर्या-ग्रन्थाकार, रंगीन	२५
■1693	बालकोंकी सीख "	२५
■1694	बालकके आचरण "	२५
■1690	बालकके गुण "	३५
■1689	आओ बच्चो तुम्हें बतायें ग्रन्थाकार, रंगीन	२५
■218	बाल-अमृत-वचन	५
■696	बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी]	५
■213	बालकोंकी बोल-चाल	५
■1691	बालकोंकी बातें, रंगीन	१५
■146	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओड़िआ भी]	१२
■150	पिताकी सीख	१५
■1986	आदर्श ऋषिमुनि-ग्रं.रंगीन	२५
■2019	आदर्श देशभक्त-ग्रं.रंगीन	२५
■2022	आदर्श सम्राट्-ग्रं.रंगीन	२५
■2026	आदर्श संत-ग्रं.रंगीन	२५
■2028	आदर्श सुधारक-ग्रं.रंगीन	२५
■2004	आदर्श चरितावली-ग्रं.रंगीन	२५
■116	लघुसिद्धान्त-कौमुदी	४०
■1437	वीर बालक (रंगीन)	२०
■1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन)(तेलुगु भी)	१५
■1450	सच्चे-ईमानदार बालक (रंगीन) (तेलुगु भी)	१५
■1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन) (तेलुगु भी)	१५
■1448	वीर बालिकाएँ (रंगीन)	१५
■727	स्वास्थ्य, सम्मान और सुख (गुजराती भी)	५

सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड		मूल्य ₹
■2033	संस्कार प्रकाश	७५
■64	प्रेमयोग	३०
■1955	जीवनचर्या विज्ञान (गुजराती भी)	३५
■1982	भक्तिसुधा	२००
■698	मार्क्सवाद और रामराज्य	१५०
■1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ	२५
■1657	भलेका फल भला	५
■1300	महाकुम्भ पर्व	५
■542	ईश्वर	५
■57	मानसिक दक्षता	३०
■59	जीवनमें नया प्रकाश	३०
■60	आशाकी नयी किरणें	३०
■119	अमृतके घूँट	२५
■132	स्वर्णपथ	२२
■55	महकते जीवनफूल	४०
■1461	हम कैसे रहें?	१०
■1595	साधकमें साधुता	३०
■747	सप्तमहाव्रत	५
■774	कल्याणकारी दोहा...	१२
■387	प्रेम-सत्संग-सुधामाला	२०
■668	प्रश्नोत्तरी	३
■501	उद्धव-सन्देश	२५
■195	भगवान्पर विश्वास	१०
■120	आनन्दमय जीवन	२५
■1922	गोरक्षा एवं गोसंवर्धन	१०
■133	विवेक-चूडामणि [तेलुगु, बँगला भी]	२०
■862	मुझे बचाओ, मेरा क्या..	२५
■131	सुखी जीवन	२५
■122	एक लोटा पानी	२०
▲701	गर्भपात उचित या......	५
■888	परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला, तेलुगु भी]	२०
■134	सती द्रौपदी	१५
■1938	गीता माहात्म्यकी....	१०
■1624	पौराणिक कथाएँ	१५
■1782	प्रेरणाप्रद-कथाएँ	२०
■1669	पौराणिक कहानियाँ	१५
■137	उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, बँगला भी]	१५
■159	आदर्श उपकार—(पढ़ो, समझो और करो)	२०
■160	कलेजेके अक्षर "	२०
■161	हृदयकी आदर्श विशालता "	२०
■162	उपकारका बदला "	२०
■163	आदर्श मानव-हृदय "	२०
■164	भगवान्के सामने सच्चा..	२०
■165	मानवताका पुजारी "	२०
■166	परोपकार और सच्चाईका फल "	२०
■510	असीम नीचता और असीम साधुता	२०
■157	सती सुकला	६
■2002	आध्यात्मिक कहानियाँ	२०
■147	चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी भी]	१०
■129	एक महात्माका प्रसाद	३०
■1688	तीस रोचक कथाएँ	१५
■151	सत्संगमाला एवं ज्ञान..	१५

चित्रकथा

कोड		मूल्य ₹
■1647	देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ	२५
■1646	महाभारतके प्रमुख पात्र	२५
■868	भगवान् सूर्य (ग्रंथाकार)	२५

कोड		मूल्य ₹
■ 190	बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला	२०
■1156	एकादश रुद्र (शिव)	५०
■1032	बालचित्र-रामायण	६
■ 869	कन्हैया [बँगला, कन्नड, मराठी, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]	१५
■ 870	गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी, कन्नड भी]	१५
■ 871	मोहन [बँगला, तेलुगु, मराठी, तमिल, गुजराती, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	१५
■ 872	श्रीकृष्ण [बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, कन्नड भी]	१५
■1018	नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी]	१५
■1016	रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी]	२५
■1116	राजा राम [तेलुगु, बँगला भी]	२५
■1017	श्रीराम	२५

कोड		मूल्य ₹
■1394	भगवान् श्रीराम	१५
■1418	संक्षिप्त श्रीकृष्णलीला	१५
■1278	दशमहाविद्या [बँगला भी]	१५
■1343	हर-हर महादेव (बँगला भी)	२५
■ 829	अष्टविनायक [ओड़िआ, मराठी, गुजराती भी]	१५
■ 204	ॐ नमः शिवाय [बँगला, ओड़िआ, कन्नड भी]	२५
■ 787	जय हनुमान् [तेलुगु, ओड़िआ भी]	२५
■1794	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	२५
■ 779	दशावतार [बँगला भी]	१५
■1215	प्रमुख देवता	१५
■1216	प्रमुख देवियाँ	१५
■1442	प्रमुख ऋषि-मुनि (बँगला भी)	२५
■1443	रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी]	२५

कोड		मूल्य ₹
■1420	पौराणिक देवियाँ	१५
■1488	श्रीमद्भागवतके प्रमुख..[तेलुगु भी]	२५
■1537	श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ	२५
■1538	महाभारतकी प्रमुख कथाएँ	२५
■1307	नवदुर्गा—पॉकेट	५
■ 194	बाल-चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ, बँगला भी]	१५
■ 205	नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती, असमिया, कन्नड, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]	१५
■ 537	बाल-चित्रमय बुद्धलीला	१२
■ 651	गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी]	१५

रंगीन चित्र-प्रकाशन

(रंगीन चित्रोंपर ₹३० स्पेशल पैकिंग खर्च प्रति पैकेट अतिरिक्त)

कोड		मूल्य ₹
▲1695	चित्र—भगवती सरस्वती	१०
▲ 237	जय श्रीराम	२०
▲ 546	जय श्रीकृष्ण	२०
▲1582	चित्र भगवान् श्रीकृष्ण	१०
▲1001	जगज्जननी श्रीराधा	१०
▲1020	श्रीराधा-कृष्ण-युगल छवि	१०
▲ 491	हनुमान्जी	१०
▲1957	श्रीलक्ष्मी नारायण	१०
▲1970	,, एवं श्रीगणेशजी	१०
▲ 492	भगवान् विष्णु	१०
▲1568	भगवान् श्रीराम...	१०
▲ 560	लड्डू गोपाल	१०
▲1351	सुमधुर गोपाल	८
▲ 776	सीताराम—युगल छवि	८
▲ 548	मुरली-मनोहर	१०
▲ 782	श्रीरामदरबारकी झाँकी	१०
▲1290	नटराज शिव	१०
▲ 630	सर्वदेवमयी गौ	१०
▲ 531	श्रीबाँकेबिहारी	१०
▲ 812	नवदुर्गा	१०

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

कोड		मूल्य ₹
■ 41	शक्ति-अङ्क	१५०
■ 616	योगाङ्क-परिशिष्टसहित	२००
■ 604	साधनाङ्क	२५०
■1773	गो-अङ्क	१७०
■ 44	संक्षिप्त पद्मपुराण	२५०
■ 539	संक्षिप्त मार्कण्डेयपुराण	९०
■1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण	१२०
■ 43	नारी-अङ्क	२४०
■ 659	उपनिषद्-अङ्क	२००
■ 279	सं० स्कन्दपुराण	३२५
■ 40	भक्त-चरिताङ्क	२३०
■1183	सं० नारदपुराण	२००
■ 667	संतवाणी-अङ्क	१५०
■ 587	सत्कथा-अङ्क	२००
■ 636	तीर्थाङ्क	२००
■ 574	संक्षिप्त योगवासिष्ठ	१६०
■1133	सं० श्रीमद्देवीभागवत	२४०
■ 789	सं० शिवपुराण	२००
■ 631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	२००
■1184	श्रीकृष्णाङ्क	
■ 572	परलोक-पुनर्जन्माङ्क	२००
■ 517	गर्ग-संहिता	१५०
■1135	भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क	१२०
■1113	नरसिंहपुराणम्-सानुवाद	१००
■1362	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	२००
■1432	वामनपुराण-सानुवाद	१२५
■ 557	मत्स्यमहापुराण (सानुवाद)	२७०
■ 657	श्रीगणेश-अङ्क	१७०
■ 42	हनुमान-अङ्क (परिशिष्टसहित)	१५०
■1361	सं० श्रीवाराहपुराण	१००
■ 791	सूर्याङ्क	१३०
■ 584	सं० भविष्यपुराण	१५०
■ 586	शिवोपासनाङ्क	
■ 653	गोसेवा-अङ्क	१३०
■1131	कूर्मपुराण—सानुवाद	१४०
■1044	वेद-कथाङ्क (परिशिष्टसहित)	१७५
■1980	ज्योतिषतत्त्वाङ्क	१३०
■1132	धर्मशास्त्राङ्क	१५०
■1947	भक्तमाल अङ्क	१३०
■1189	सं० गरुडपुराण	१६०
■1985	लिङ्गमहापुराण-सटीक	२००
▲1467	भगवत्प्रेम-अङ्क-सजि०	८५
▲1542	भगवत्प्रेम-अङ्क-अजि०	६५
■1592	आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित संस्करण)	२००
■1610	(महाभागवत) देवीपुराण सानुवाद	१२०
■1793	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)	१००
■1842	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (उत्तरार्ध)	१००
▲1875	सेवा-अङ्क	१३०
■2035	गङ्गा-अङ्क (कूपनवाला)	२२०
▲2100	कल्याण मासिक पत्रिका	५

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru

▲1841	Jaiminiya Mahābhārata (Āśwamedhika Parva) (Part I)	40
▲1847	Jaiminiya Mahābhārata (Āśwamedhika Parva) (Part II)	40
▲2109	Morality Number	40
▲1971	Sādhanā Number	50
▲1972	Shiksha Number	50

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

बँगला

कोड		मूल्य ₹
■2040	श्रीविष्णुपुराण-सटीक	१५०
■1937	संक्षिप्त शिवपुराण	१६०
■1996	स्तुति	१२५
■1577	भागवतमहापुराण-I	२४०
■1744	भागवतमहापुराण-II	२४०
■1662	श्रीचैतन्य-चरितामृत	१७०
■1603	ईशादि नौ उपनिषद्	७५
■1839	कृतिवासी रामायण	१६०
■1883	श्रीरामचरितमानस-सटीक	१६०
■1901	साधन समर	१३०
■1574	संक्षिप्त महाभारत-I	२२०
■1660	,, ,, II	२२०
■2034	श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण, सटीक-I	२५०
■ 763	गीता-साधक-संजीवनी	२५०
■1118	गीता-तत्त्व-विवेचनी	११०
■1489	गीता-दैनन्दिनी	७०
■1851	गीता-रसामृत	८५
■ 556	गीता-दर्पण	७०
■1736	गीता-प्रबोधनी	५०
■ 013	गीता-पदच्छेद	५०
■1785	भागवतेरमणिमुक्तेर	२५
■1444	गीता-ताबीजी	८
■1455	गीता-लघु आकार	३
■1322	दुर्गासप्तशती—सटीक	३०
■1604	पातञ्जलयोगदर्शन	२०
■1460	विवेक-चूडामणि	२०
■1786	मूल वाल्मीकीयरामायण	१०
■1075	ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा)	२५
■1787	महावीर हनुमान् (चित्रकथा)	२५
■1043	नवदुर्गा (,,)	१५
■1439	दश महाविद्या (,,)	१५
■1292	दशावतार (,,)	१५
■1096	कन्हैया (,,)	१५
■1097	गोपाल (,,)	१५
■1098	मोहन (,,)	१५
■1123	श्रीकृष्ण (,,)	१५
■1892	सीतापतिराम (,,)	२५
■1893	राजाराम (,,)	२५
■1891	रामलला (,,)	२५
■1888	जय शिवशंकर (,,)	२५
■1977	भगवान् सूर्य (,,)	२५
■1889	प्रमुख ऋषि-मुनि (,,)	२५
■1495	बालचित्रमय चैतन्यलीला	१२
■1454	स्तोत्ररत्नावली	३०
■1393	गीता-सटीक,पॉकेट, सजि.	२५
■1854	भागवत-रत्नावली	२०
■ 496	गीता-भाषा-टीका (पॉकेट)	१५
■1834	,, ,, ,, (मूल) एवं श्रीविष्णुसहस्रनाम	१०
■1659	श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम	२
■1852	रामरक्षास्तोत्र—लघु आकार	२
■1853	आमेदेर लक्ष्य और कर्तव्य	१५
▲1581	गीतार-सारात्सार	१०
■1496	परलोक और पुनर्जन्मकी..	२०
▲1795	मनको वशमें करनेके..	६
▲ 275	कल्याण-प्राप्तिके उपाय	२५
▲1305	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	१५
▲ 395	गीतामाधुर्य	१२
▲1102	अमृत-बिन्दु	१२
■1356	सुन्दरकाण्ड—सटीक	१२
▲ 816	कल्याणकारी प्रवचन	१०
▲1838	जीवनोपयोगी प्रवचन	१२
▲ 276	परमार्थ-पत्रावली (भाग १)	१०
▲1306	कर्तव्य-साधनासे भगवत्प्राप्ति	८
▲1119	ईश्वर और धर्म क्यों ?	१८
▲1925	ईश्वरकी सत्ता एवं महत्ता	१०
▲1456	भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय	१५
▲1946	रामायण-महाभारतके..	१५
▲1936	ईश्वरेर प्रति विश्वास	६
▲1948	यह विकास या विनाश..	४
▲1580	अध्यात्मसाधनाय कर्महीनतानय	१०
▲1452	आदर्श कहानियाँ	१०
▲1453	प्रेरक कहानियाँ	६
■1513	मूल्यवान् कहानियाँ	१५
▲1469	सब साधनोंका सार	८
▲1478	मानवमात्रके कल्याणके लिये	२०
▲1359	जिन खोजा तिन पाइयाँ	१०
▲1115	तत्त्वज्ञान कैसे हो ?	१०
▲1303	साधकोंके प्रति	८
▲1358	कर्म-रहस्य	८
▲1122	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	६
▲1742	शरणागति	६
▲1784	प्रेमभक्ति प्रकाश....	५
▲ 625	देशकी वर्तमान दशा....	६
▲1978	भगवान्के रहनेके...	५
▲ 428	गृहस्थमें कैसे रहें ?	१५
▲1884	ईश्वर लाभके विविध उपाय	३
■1920	शाकाहार या मांसाहार...	१०
▲ 903	सहज साधना	६
▲1415	अमृतवाणी	१५
▲ 312	आदर्श नारी सुशीला	५
▲1541	साधनके दो प्रधान सूत्र	५
▲ 955	तात्त्विक प्रवचन	७
■1652	नवग्रह (चित्रकथा)	१५
▲ 449	दुर्गतिसे बचो सच्चा गुरु कौन ?	५
▲ 956	साधन और साध्य	१०
▲1579	साधनार मनोभूमि	१०
▲ 330	नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र	५
▲ 762	गर्भपात उचित या अनुचित···	४
■1881	हनुमानचालीसा-सटीक	३
■1880	हनुमानचालीसा-लघु	२
■1743	शिवचालीसा, लघु	२
■1797	स्तवमाला	३
▲1319	कल्याणके तीन सुगम मार्ग	४
▲1651	हे महाजीवन! हे महामरण!	३
▲1293	शिखा धारणकी········	३
▲ 450	हम ईश्वरको क्यों मानें ?	५
▲ 849	मातृशक्तिका घोर अपमान	५
▲ 451	महापापसे बचो	३
▲ 469	मूर्तिपूजा	२
▲ 296	सत्संगकी सार बातें	२
▲ 443	संतानका कर्तव्य	२
■1835	सत्यनिष्ठ साहसी बालक..	२०

मराठी

कोड		मूल्य ₹
■2010	ज्ञानेश्वरी परायण प्रत-ग्रन्था.	१५०
■1314	श्रीरामचरितमानस- सटीक	२४०

कोड		मूल्य ₹
■1687	सुन्दरकाण्ड-सटीक	१०
■1508	अध्यात्मरामायण	१२०
■784	ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका	२२०
■859	ज्ञानेश्वरी-मूल, मझला	७०
■748	ज्ञानेश्वरी-मूल, गुटका	४५
■1808	श्रीतुकाराममहाराजांची गाथा	१२०
■1931	ब्राह्मचित्कलादर्शन...	७०
■1915	संतनाम देवांची अभंग गाथा	१२०
■1950	हरिविजय	८०
■1983	श्रीरामविजय	१००
■2000	श्रीभक्त विजय	१२०
■1817	पाण्डव-प्रताप	११०
■1836	श्रीगुरुचरित्र	१४०
■1780	श्रीदासबोध-मझला	१००
■1781	दासबोध (गद्यरूपान्तरासह)	१७०
■853	एकनाथी भागवत—मूल	२००
■1678 ■1735	श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीक दो खण्डोंमें सेट	४२०
■1776	,, (केवल अनुवाद)	२५०
■7	गीता-साधक-संजीवनी-टीका	२२०
■1304	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१६०
■1768	श्रीशिवलीलामृतांतील	५
■15	गीता-माहात्म्यसहित	४५
■504	गीता-दर्पण	६०
■1896	ज्ञानेश्वरी माउली	२०
■1934	संत श्रेष्ठ एकनाथ	२२
■1942	जगतगुरु तुकाराम	२०
■1818	उपयोगी कहानियाँ	१५
■14	गीता—पदच्छेद	५५
■1388	गीता-श्लोकार्थसहित-मोटा	२०
■1257	गीता-श्लोकार्थसहित	१५
■1168	भक्त नरसिंह मेहता	१५
■1913	संतश्रेष्ठ नामदेव	२०
■1671	महाराष्ट्रातील निवडक...	१२
▲429	गृहस्थमें कैसे रहें?	१५
▲1703	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	६
▲1387	प्रेममें विलक्षण एकता	१२
■857	अष्टविनायक (चित्रकथा)	१५
▲391	गीता-माधुर्य	१५
▲1099	अमूल्य समयका सदुपयोग	१२
▲1335	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१५
▲1155	उद्धार कैसे हो?	७
▲1716	भगवान् कैसे मिले?	१२
▲1719	चिन्ता,शोक कैसे मिटे?	१२
▲1717	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	१२
▲1074	आध्यात्मिक पत्रावली	१०
▲1275	नवधा भक्ति	१०
▲1386	महाभारतके कुछ आदर्श..	१०
▲1340	अमृत-बिन्दु	१०
▲1382	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	१२
▲1210	जित देखूँ तित-तू	१२
▲1330	मेरा अनुभव	१२
■1277	भक्त बालक	८
■1073	भक्त-चन्द्रिका	८
■1383	भक्तराज हनुमान्	८
■1778	जीवनादर्शश्रीराम	२०
▲886	साधकोंके प्रति	८
▲885	तात्त्विक प्रवचन	१०
■1607	रुक्मिणी-स्वयंवर	२०
■1640	सार्थ मनाचे श्लोक	७
■1333	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
■1331	कृष्ण भक्त उद्धव	६
■1682	सार्थ सं० देवीपाठ	१०
■1332	दत्तात्रेय-वज्रकवच	५
■1732	शिवलीलामृत	५०
■1730	श्रीशिवमहिम्न:स्तोत्रम्	५
■1731	श्रीविष्णुसहस्त्रनामावलि:	५
■1729	श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०
■1670	मूल रामायण, पॉकिट साइज	४
■1679	मनाचे श्लोक, पॉकिट साइज	५
■1680	सार्थश्रीगणपत्यथर्वशीर्ष	३

कोड		मूल्य ₹
■1683	सार्थ ज्ञानदेवी गीता	१५
■1810	कन्हैया (चित्रकथा)	१५
■1811	गोपाल ,,	१५
■1812	मोहन ,,	१५
■1813	श्रीकृष्ण ,,	१५
■1828	रामलला ,,	२५
■1829	श्रीराम ,,	२५
■1830	राजाराम ,,	२५
■1645	हरीपाठ (सार्थ सविवरण)	१२
■855	हरीपाठ	५
■1169	चोखी कहानियाँ	७
▲1385	नल-दमयंती	५
▲1384	सती सावित्री-कथा	४
■1814	सामाजिक संस्कार कथा	२०
■1815	घराघरातील संस्कार कथा	२०
▲880	साधन और साध्य	१०
▲1006	वासुदेव: सर्वम्	६
▲1276	आदर्श नारी सुशीला	५
▲1334	भगवान्के रहनेके....	६
▲1749	श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश वे...	४
▲899	देशकी वर्तमान दशा····	७
▲1428	आवश्यक शिक्षा	८
▲1339	कल्याणके तीन सुगम....	६
▲1341	सहज साधना	६
▲1711	शिखा (चोटी) धारण...	३
▲802	गर्भपात उचित या अनुचित..	२
▲882	मातृशक्तिका घोर अपमान	५
▲883	मूर्तिपूजा	४
■1746	मनोबोधभक्तिसूत्र	१२
▲884	सन्तानका कर्तव्य	४
▲1279	सत्संगकी कुछ सार....	४
▲1613	भगवान्के स्वभावका रहस्य	१२
▲1642	प्रेम-दर्शन	१५
▲1641	साधनकी आवश्यकता	१२
▲901	नाम-जपकी महिमा	२
▲900	दुर्गतिसे बचो	२
▲1171	गीता पढ़नेके लाभ	३
▲902	आहार-शुद्धि	
▲1170	हमारा कर्तव्य	३
▲881	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	१२
▲898	भगवन्नाम	७
▲1578	मानवमात्रके कल्याणके लिये	२५
■1779	भलेका फल भला	५

गुजराती

कोड		मूल्य ₹
■799	श्रीरामचरितमानस-ग्रं.	२४०
■1533	,, विशिष्ट संस्करण	३००
■1939	श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सटीक-I	२००
■1940	,, सटीक-II	२००
■1552	श्रीमद्भागवत—सटीक-I	२२०
■1553	,, सटीक-II	२२०
■1608	श्रीमद्भागवत-सुधासागर	३००
■1326	सं० देवीभागवत	२३०
■1798	सं० महाभारत-I	२५०
■1799	सं० महाभारत-II	२५०
■1286	संक्षिप्त शिवपुराण	२००
■1650	तत्त्वचिन्तामणि	१३०
■1630	साधन-सुधा-सिन्धु	१२५
■1960	सं० योगवाशिष्ठ	१५०
■1981	संक्षिप्त गरुड़पुराण	१६०
■467	गीता-साधक-संजीवनी	२४०
■2006	श्रीविष्णुपुराण	१५०
■2031	भागवत नवनीत (श्रीडोंगरेजी महाराज)	१६०
■2036	संक्षिप्त स्कन्दपुराण	३५०
■1313	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१६०
■1430	रामायण—मूल मोटा	१२०
■785	श्रीरामचरितमानस-मझला, सटीक	१२०
■878	श्रीरामचरितमानस-मूल, मझला	७०
■879	,, मूल, गुटका	४५
■1637	सुन्दरकाण्ड-सटीक, मोटा टाइप	२५

कोड		मूल्य ₹
■1365	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश	६०
■1668	एकादशीव्रतका माहात्म्य	२०
■1227	सचित्र आरतियाँ	१२
■12	गीता-पदच्छेद	५०
■1943	गीता-माहात्म्य	४५
■1315	गीता-सटीक, मोटा टाइप	२५
■1565	,, ,, सजिल्द	४५
■1366	दुर्गासप्तशती—सटीक	३०
■1634	,, ,, सजिल्द	४५
■936	गीता छोटी—सटीक	१५
■1034	गीता छोटी—सजिल्द	२५
■1636	,, ,, मूल,मोटा टाइप	१२
■1225	मोहन— (चित्रकथा)	१२
■1224	कन्हैया—(,,)	१५
■1228	नवदुर्गा—(,,)	१२
■1656	गीता-ताबीजी—मूल	८
■948	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	१०
■1085	भगवान् राम	८
■950	सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका	५
■1199	सुन्दरकाण्ड-मूल, लघु	४
■1823	विनय-पत्रिका	४५
■1226	अष्टविनायक (चित्रकथा)	१५
■613	भक्त नरसिंह मेहता	१५
▲1518	भगवान्के स्वभावका..	१५
▲1486	मानवमात्रके कल्याणके लिये	२०
▲1164	शीघ्र कल्याणके सोपान	२०
▲1146	श्रद्धा, विश्वास और प्रेम	१५
▲1144	व्यवहारमें परमार्थकी कला	१२
▲1062	नारीशिक्षा	१५
▲1129	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	१२
■1400	पिताकी सीख	१५
■1425	वीर बालिकाएँ	८
■1422	वीर बालक	१०
■1423	गुरु, माता-पिताके भक्त बालक	१०
■1424	दयालु और परोपकारी बालक..	१०
■1258	आदर्श सम्राट्	६
▲1128	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श	१२
▲1061	साधन नवनीत	९
▲1520	कर्मयोगका तत्त्व-I	२०
▲1264	मेरा अनुभव	१२
▲1046	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१५
▲1211	जीवनका कर्तव्य	१५
▲877	अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति	१५
▲818	उपदेशप्रद कहानियाँ	१२
▲1265	आध्यात्मिक प्रवचन	८
▲1516	परमशान्तिका मार्ग (भाग-१)	१५
▲1504	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	२०
■1212	एक महात्माका प्रसाद	३०
▲1539	सत्संगकी मार्मिक बातें	१०
▲1457	प्रेममें विलक्षण एकता	१०
▲1655	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	१२
▲1503	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता	१५
▲1325	सब जग ईश्वररूप है	६
▲1052	इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति	१५
▲1878	जन्ममरणसे छुटकारा	१२
■934	उपयोगी कहानियाँ	१५
▲933	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१५
▲1295	जित देखूँ तित-तू	१०
▲943	गृहस्थमें कैसे रहें?	१२
▲1260	तत्वज्ञान कैसे हो?	७
▲1263	साधन और साध्य	८
▲1294	भगवान् और उनकी भक्ति	१०
■2023	जीवनचर्या विज्ञान	४०
▲392	गीता-माधुर्य	१५
▲932	अमूल्य समयका सदुपयोग	१०
▲1067	दिव्य सुखकी सरिता	६
▲1077	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
▲940	अमृत-बिन्दु	१०
▲931	उद्धार कैसे हो?	१०
▲894	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१०
▲413	तात्त्विक प्रवचन	७

कोड		मूल्य ₹
■895	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
▲1126	साधन-पथ	६
▲1987	अच्छे बनो	८
▲946	सत्संगका प्रसाद	७
▲1988	कल्याण कैसे हो?	१५
▲942	जीवनका सत्य	१०
▲1145	अमरताकी ओर	७
▲1066	भगवान्से अपनापन	१०
■806	रामभक्त हनुमान्	१०
▲1086	कल्याणकारी प्रवचन	८
▲1287	सत्यकी खोज	१०
▲1088	एकै साधे सब सधै	८
■1399	चोखी कहानियाँ	१०
▲889	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	५
▲1141	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?	६
▲1047	आदर्श नारी सुशीला	५
▲1059	नल-दमयन्ती	५
▲1045	बालशिक्षा	६
▲1063	सत्संगकी विलक्षणता	६
▲1165	सहज साधना	५
■1401	बालप्रश्नोत्तरी	५
▲893	सती सावित्री	४
▲1177	आवश्यक शिक्षा	६
■1867	स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	५
▲1049	आनन्दकी लहरें	४
■937	विष्णुसहस्रनाम (नामावलीसहित)	८
■1910	गजेन्द्रमोक्ष	३
■1909	आदित्यहृदयस्तोत्र	३
■1911	गोपालसहस्त्रनामस्तोत्र	५
■1941	श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्र-नामावलि...	८
▲1058	मनको वशमें करनेके उपाय..	४
▲1050	सच्चा सुख	३
▲1840	एक संतकी वसीयत	२
■828	हनुमानचालीसा	३
▲844	सत्संगकी कुछ सार बातें	४
▲1048	संत-महिमा	३
▲1179	दुर्गतिसे बचो	३
▲1178	सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण	४
▲1206	धर्म क्या है? भगवान्..	३
▲1500	सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व	४
▲1051	भगवान्की दया	४
■1198	हनुमानचालीसा—लघु	२
■1649	,, अति लघु	२
▲1054	प्रेमका सच्चा स्वरूप और..	३
▲1056	चेतावनी एवं सामयिक...	३
▲1053	अवतारका सिद्धान्त और....	३
▲1127	ध्यान और मानसिक पूजा	४
▲1148	महापापसे बचो	३

तमिल

कोड		मूल्य ₹
■800	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१६५
■1426	साधक-संजीवनी (भाग-१)	२००
■1427	साधक-संजीवनी (भाग-२)	१६०
■1961	वा० रा० वचनमु-I	११०
■1962	वा० रा० वचनमु-II	११०
■1966	श्रीद्धा० महा० सटीक-I	२२५
■1967	श्रीद्धा० महा० सटीक-II	२२५
■1968	श्रीद्धा० महा० सटीक-III	२५०
■1256	अध्यात्मरामायण	८५
■1902	वा० रा० सटीक-1	२५०
■1903	वा० रा० सटीक-2	१५०
■1904	वा० रा० सटीक-3	१२०
■1905	वा० रा० सटीक-4	१६०
■1906	वा० रा० सटीक-5	१२०
■1618	,, सुन्दरकाण्ड वचनमु	५०
■1619	वा० रा० सुन्दरकाण्ड मूलम्	३५
■823	गीता—पदच्छेद	८०
■1606	श्रीमन्नारायणीयम्-सटीक	१००
■2013	दैवस्तुति मंजरी	२५
■2015	देवस्तुति मालै	२०
■2016	तिरुप्पावै (पॉकिट)	५
■2029	शिवसहस्त्रनामस्तोत्रम्	७

कोड		मूल्य ₹
■ 743	गीता—मूलम्	३०
■ 793	गीता-मूल विष्णु	१२
■ 795	गीता—भाषा	१२
■1918	वाल्मीकीयरामायण	१५
■1890	कंबरामायण सुन्दर...	३०
■1912	व्रत-कल्पत्रयम्	१५
▲ 389	गीता-माधुर्य	२०
■1788	श्रीमुरुगनतुदिमालै	१५
■1789	तिरुप्पावैविलक्कम्	२०
■ 365	गोसेवाके चमत्कार	१५
■1134	गीता-माहात्म्यकी....	१५
▲1007	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲ 553	गृहस्थमें कैसे रहें ?	१५
▲ 850	संतवाणी—(भाग १)	१२
▲ 952	,, (,, २)	१२
▲ 953	,, (,, ३)	१२
▲1353	रामायणके कुछ आदर्श...	१५
▲1354	महाभारतके कुछ......	१५
■ 646	चोखी कहानियाँ	१२
■ 608	भक्तराज हनुमान्	१०
■1246	भक्तचरित्रम्	१२
▲ 643	भगवान्के रहनेके..	८
▲ 550	नाम-जपकी महिमा	३
▲1289	साधन-पथ	८
▲1480	भगवान्के स्वभावका रहस्य	१५
▲1481	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	१५
▲1482	भक्तियोगका तत्त्व	१५
▲1117	देशकी वर्तमान दशा...	१०
▲1110	अमृत-बिन्दु	१२
▲ 655	एकै साधे सब सधै	१०
▲1243	वास्तविक सुख	१२
■ 741	महात्मा विदुर	१०
▲ 536	गीता पढ़नेके लाभ..	६
▲ 591	महापापसे बचो...	७
▲ 609	सावित्री और सत्यवान्	४
▲ 644	आदर्श नारी सुशीला	६
▲ 568	शरणागति	६
▲ 805	मातृशक्तिका घोर अपमान	५
▲ 607	सबका कल्याण कैसे..	४
■1998	ललितासहस्रनाम	१२
■ 794	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■ 127	उपयोगी कहानियाँ	१५
■1999	विदुरनीति	१२
■ 600	हनुमानचालीसा	५
▲ 466	सत्संगकी सार बातें	४
▲ 499	नारद-भक्ति-सूत्र	३
■ 601	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
■ 642	प्रेमी भक्त उद्धव	१२
▲ 423	कर्मरहस्य	१०
▲ 569	मूर्तिपूजा	३
▲ 551	आहारशुद्धि	४
▲ 645	नल-दमयन्ती	८
▲ 606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके..	४
▲ 792	आवश्यक चेतावनी	५

कन्नड़

कोड		मूल्य ₹
■1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१५०
■1369, 1370	गीता-साधक-संजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	३००
■1728	सार्थ ज्ञानेश्वरी	२००
■1739, ■1740	श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीक, दो खण्डोंमें सेट	४५०
■1949	भागवत सुधासागर	२५०
■1964	वा० रा०-सटीक-1	२००
■1965	वा० रा०-सटीक-2	२००
■1969	वा० रा०-सटीक-3	२५०
■2011	वा०रा०-I केवल भाषा	१७०
■2012	वा० रा०-II केवल भाषा	१७०
■1926	संक्षिप्त शिवपुराण	१७५
■1558	अध्यात्मरामायण	१२५
■1989	श्रीमद्देवीभागवतपुराण	२००
■1560	श्रीरामचरितमानस-सटीक	१६०
■1559	वा० रा०-सुन्दरकाण्ड	१००
■ 726	गीता-पदच्छेद	५५

कोड		मूल्य ₹
■ 718	गीता-तात्पर्यके साथ	२५
■1372	गीता-माहात्म्य	१५
■1723	श्रीभीष्मपितामह	१५
■1724	भक्त नरसिंह मेहता	१५
■1737	विदुरनीति	२०
■1726	प्रेमी भक्त	१०
■1720	कृष्ण-भक्त उद्धव	६
▲1721	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	६
■1725	महात्मा विदुर	५
▲1722	बालकोंके कर्तव्य	६
■1816	गुरु और माता-पिताके..	१०
■1375	ॐ नमः शिवाय	२५
■1357	नवदुर्गा	१५
▲1109	उपदेशप्रद कहानियाँ	२०
▲ 945	साधन-नवनीत	१५
■ 724	उपयोगी कहानियाँ	१२
▲1499	नवधा भक्ति	१०
▲1498	भगवत्कृपा	६
▲ 833	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१५
■1827	भागवतके प्रमुख पात्र	२५
▲ 834	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	१५
■1107	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
■1288	गीता—श्लोकार्थ	१५
▲ 716	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	१२
■ 832	सुन्दरकाण्ड (सटीक)	१२
■1819	कन्हैया चित्रकथा	१५
■1820	गोपाल ,,	१५
■1821	मोहन ,,	१५
■1822	श्रीकृष्ण ,,	१५
■1825	श्रीराम ,,	२०
■1824	रामलला ,,	२५
■1826	राजाराम ,,	२५
■1863	दशावतार ,,	१५
■1864	प्रमुख ऋषि मुनि ,,	२०
■1865	प्रमुख देवता ,,	१५
■ 840	आदर्श भक्त	१२
■ 841	भक्त-सप्तरत्न	१२
■ 843	दुर्गासप्तशती—मूल	१५
▲ 390	गीता-माधुर्य	१२
▲1625	नारीशिक्षा	१४
▲1626	अमृत-बिन्दु	१२
▲ 720	महाभारतके कुछ	१५
▲1374	अमूल्य समयका...	१०
▲ 128	गृहस्थमें कैसे रहें ?	१०
■ 661	गीता-मूल (विष्णु...)	१०
■ 721	भक्त बालक	१०
■ 951	भक्त-चन्द्रिका	१२
■ 835	श्रीरामभक्त हनुमान्	१०
■ 837	विष्णुसहस्रनाम-सटीक	१०
■ 842	ललितासहस्रनामस्तोत्र	१०
■1373	गजेन्द्रमोक्ष	३
■1994	शिवमहिम्नस्तोत्र	५
■1106	ईशावास्योपनिषद्	५
▲ 717	सावित्री-सत्यवान् और.	८
▲ 723	नाम-जपकी महिमा..	५
▲ 725	भगवान्की दया एवं···	५
▲ 722	सत्यकी शरणसे मुक्ति..	५
▲ 325	कर्मरहस्य	६
▲ 597	महापापसे बचो	३
▲ 719	बालशिक्षा	६
▲ 839	भगवान्के रहनेके पाँच..	६
▲1882	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	१२
▲1877	भगवत्प्राप्ति कैसे हो ?	८
▲1371	शरणागति	६
▲ 836	नल-दमयन्ती	५
■ 737	विष्णुसहस्रनाम एवं ..	५
■ 736	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	३
■1105	सं० श्रीवाल्मीकि रामायणम्	३
■ 738	हनुमत्-स्तोत्रावली	३
▲ 593	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	१०
▲ 598	वास्तविक सुख	१०
▲ 831	देशकी वर्तमान दशा तथा···	५

असमिया

कोड		मूल्य ₹
▲2008	मानवमात्र कल्याणके...	२०
■ 714	गीता—भाषा-टीका-पॉकेट	१५
■1963	सुन्दरकाण्ड-सटीक	१०
■1984	भजगोविन्दम्	३
■1564	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	१०
■1222	श्रीमद्भागवतमाहात्म्य	१२
▲ 624	गीता-माधुर्य	१२
▲1487	गृहस्थमें कैसे रहें ?	१५
▲1715	आदर्श नारी सुशीला	४
■1323	श्रीहनुमानचालीसा	३
■1515	शिवचालीसा	३
▲ 703	गीता पढ़नेके लाभ	२
▲1924	सत्संगकी कुछ सार बातें	२

ओड़िआ

कोड		मूल्य ₹
■1551	संत जगन्नाथदासकृत भागवत	२८०
■1750	,, एकादश स्कन्ध	३०
■1777	,, दशम स्कन्ध	८०
■1121	गीता-साधक-संजीवनी	२५०
■1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१६०
■1463	श्रीरामचरितमानस-सटीक	२५०
■1218	,, मूल, मोटा टाइप	१२०
■1473	साधन-सुधा-सिन्धु	१८०
■1831, ■1832	श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीक-दो खण्डोंमें सेट	५००
■1644	गीता-दैनन्दिनी-वि०सं०	७०
■1298	गीता-दर्पण	८०
■1672	गीता-प्रबोधनी	५०
■ 815	गीता-श्लोकार्थसहित (सजिल्द)	४०
■1219	गीता-पञ्चरत्न	३०
■1702	गीता-ताबीजी	८
■1009	जय हनुमान् (चित्रकथा)	२५
■1250	ॐ नमः शिवाय (,,)	२५
■1010	अष्टविनायक (,,)	१५
■1248	मोहन (,,)	१५
■1249	कन्हैया (,,)	१५
■ 863	नवदुर्गा (,,)	१५
■1494	बालचित्रमय चैतन्यलीला	१०
■1157	गीता-सटीक, मोटे अक्षर	२५
■1956	गीता-पदच्छेद-अन्वय	५०
■1465	गीता-अन्वयअर्थसहित-पॉकेट	३०
▲1511	मानवमात्रके कल्याणके लिये	२०
■1476	दुर्गासप्तशती-सटीक	३०
▲1251	भवरोगकी रामबाण दवा	१५
▲1270	नित्ययोगकी प्राप्ति	१२
▲1268	वास्तविक सुख	१०
▲1209	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	१५
▲1464	अमृत-बिन्दु	१२
▲1274	परमार्थ सूत्र-संग्रह	१५
▲1254	साधन नवनीत	१८
■1008	गीता—पॉकेट साइज	१५
▲ 754	गीता-माधुर्य	१२
▲1208	आदर्श कहानियाँ	१२
▲1139	कल्याणकारी प्रवचन	१२
■1342	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	१२
▲1205	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१५
▲1506	अमूल्य समयका सदुपयोग	१५
▲1272	निष्काम श्रद्धा और प्रेम	१५
■1204	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	१०
▲1299	भगवान् और उनकी भक्ति	१०
■ 854	भक्तराज हनुमान्	८
▲1004	तात्त्विक प्रवचन	१०
▲1138	भगवान्से अपनापन	१०
▲1187	आदर्श भ्रातृप्रेम	१०
▲ 430	गृहस्थमें कैसे रहें ?	८
▲1321	सब जग ईश्वररूप है	१०
▲1269	आवश्यक शिक्षा	१०
▲ 865	प्रार्थना	५
▲ 796	देशकी वर्तमान दशा तथा..	६
▲1130	क्या गुरु बिना मुक्ति....	७
■1154	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	५
■1200	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	६

कोड		मूल्य ₹
▲1174	आदर्श नारी सुशीला	५
▲1507	उद्धार कैसे हो	१०
■ 541	गीता-मूल, विष्णुस०...	६
▲1614	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	१०
▲1635	प्रेरक कहानियाँ	८
▲1003	सत्संग-मुक्ताहार	८
▲1512	साधनके दो प्रधान सूत्र	५
▲ 817	कर्मरहस्य	८
▲1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	६
▲1079	बालशिक्षा	६
▲1163	बालकोंके कर्तव्य	७
▲1252	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	५
▲ 757	शरणागति	६
▲1186	श्रीभगवन्नाम	५
▲1267	सहज साधना	६
▲1005	मातृशक्तिका घोर....	५
▲1203	नल-दमयन्ती	५
▲1253	परलोक और पुनर्जन्म	
▲1220	सावित्री और सत्यवान्	४
▲ 798	गुरुतत्त्व	४
■ 856	हनुमानचालीसा	३
■1661	हनुमानचालीसा (लघु)	२
▲ 797	सन्तानका कर्तव्य-	४
■1036	गीता—मूल, लघु आकार	३
■1509	रामरक्षास्तोत्र	३
■1070	आदित्यहृदयस्तोत्र	३
■1068	गजेन्द्रमोक्ष	३
■1069	नारायणकवच	३
■1775	अमोघ शिवकवच	३
▲1089	धर्म क्या है ? भगवान्...	४
▲1039	भगवान्की दया एवं...	४
▲1090	प्रेमका सच्चा स्वरूप	४
▲1091	हमारा कर्तव्य	४
▲1040	सत्संगकी कुछ सार बातें	३
▲1011	आनन्दकी लहरें	४
▲ 852	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	४
▲1038	संत-महिमा	४
▲1041	ब्रह्मचर्य एवं मनको ...	४
▲1221	आदर्श देवियाँ	६
■1201	महात्मा विदुर	६
■1202	प्रेमी भक्त उद्धव	५
■1173	भक्त चन्द्रिका	१०

उर्दू

कोड		मूल्य ₹
■1446	गीता-उर्दू	१२

तेलुगु

कोड		मूल्य ₹
■1738	श्रीमद्भागवत संग्रहमु	१२०
■1573	,, मूल, मोटा टाइप	१८०
■1858	श्रीमद् आध्रमहाभागवतमु दशम स्कन्धमु-सटीक	१४०
■1698	श्रीमन्नारायणीयम्—श्लो०..	६०
■ 975	सं० शिवपुराण	२००
■ 981	श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण...	२८०
■ 979	सं० महाभारत-I	२००
■ 980	सं० महाभारत-II	२००
■1975	श्रीमद्भागवत-सटीक-I	२८०
■1976	,, सटीक-II	२८०
■2007	भागवतपुराण वचनमु	२८०
■ 982	श्रीमद्देवीभागवत वचनमु	२००
■ 992	,, मूल मात्रम्	२००
■1352	श्रीरामचरितमानस-सटीक	२४०
■1419	,, केवल भाषा	१२०
■1714	गीता-दैनन्दिनी-वि०सं०	७०
■1557	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-I	१७५
■1622	,, ,, II	२००
■1745	,, ,, III	२२५
■1429	वा. रा. सुन्दरकाण्ड (तात्पर्यसहित)	७५
■1767	श्रीपोतनभागवत मधुरिमलु	७०
■1632	महाभारत विराटपर्व	७०
■1477	वा० रा० सुन्दरकाण्ड	१००
■1172	गीता-तत्त्व-विवेचनी	१६५
■ 845	अध्यात्मरामायण	१३०
■1921	नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश	१२०

कोड		मूल्य ₹
■ 772	गीता-पदच्छेद-अन्वयसहित	५०
■ 914	स्तोत्ररत्नावली	३०
■1699	श्रीमहाभागवत मकरंदालु	२५
■ 988	तिरुप्पावै-सटीक, और विष्णुसहस्रनाम	१०
■1684	श्रीगणेशस्तोत्रावली	५
■1685	श्रीदेवीस्तोत्रावली	५
■1804	श्रीरामस्तोत्रावलि	५
■1806	श्रीवेंकटेश्वरस्तोत्रावलि	५
■1639	बालरामायण—लघु	२
■1466	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सुन्दरकाण्ड, मूल, पुस्तकाकार	५०
■ 924	,, ,, मूल गुटका	३५
■1532	,, ,, वचनमु	६०
■1026	पंच सूक्तमुलु-रुद्रमु	१०
■1758	शिवपंचायतनपूजा	१०
■1763	श्रीललितासहस्रनाम, त्रिशती..	१५
■ 771	गीता—तात्पर्यसहित	३०
■ 969	गोसेवाके चमत्कार	२०
■1755	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	१२
▲ 983	बालुर वर्तव्यम्	१०
■1959	हरे राम हरे कृष्ण-स्टीकर	२
■ 910	विवेकचूडामणि	२५
▲ 904	नारद-भक्तिसूत्र मुलु-प्रेमदर्शन	१५
■ 959	कन्हैया (चित्रकथा)	१५
■ 960	गोपाल (,,)	१५
■ 961	मोहन (,,)	१५
■ 962	श्रीकृष्ण (,,)	१५
■ 963	रामलला (,,)	२५
■ 964	राजा राम (,,)	२५
■ 966	भगवान् सूर्य (,,)	२५
■ 965	दशावतार (,,)	१५
■1686	अष्टविनायक (,,)	१५
■ 967	रामायणके प्रमुख पात्र (,,)	२५
■ 968	श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र (,,)	२५
■ 887	जय हनुमान् (,,)	२५
■1301	नवदुर्गा (,,)	१५
■1859	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र (,,)	२५
■ 970	प्रमुख देवियाँ (,,)	१५
■ 971	बालचित्रमय श्रीचैतन्यलीला (चित्रकथा)	१२

कोड		मूल्य ₹
■1753	भागवतकी प्रमुख कथाएँ (चित्रकथा)	२५
■ 987	दुर्गासप्तशती—सटीक	४०
■ 909	दुर्गासप्तशती—मूलम्	२०
■1995	अष्टादशशक्ति पीठाल महिमा	१८
■1029	भजन-संकीर्तनावली	२५
■1309	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	२०
■1390	गीता-तात्पर्य-मोटा टाइप	२०
■ 691	श्रीभीष्मपितामह	१८
▲1028	गीता-माधुर्य	१६
▲ 915	उपदेशप्रद कहानियाँ	१५
▲1572	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	१०
▲ 905	आदर्श दाम्पत्य-जीवनमु	१५
▲1757	आदर्श भातृप्रेम	८
■1526	गीता-मूल मोटे अक्षर, पॉकेट	१२
■1570	गीता-ताबीजी	८
■1031	गीता—छोटी, पॉकेट	१५
■1571	गीता-लघु आकार	३
■ 929	महाभक्तुलु	१२
■ 919	उपयोगी कहानियाँ	१५
■ 984	हनुमत्चरितम्-तेलुगु	१५
■ 985	एक लोटा पानी	२०
■1502	श्रीनामरामायणम् एवं हनुमानचालीसा (लघु आकार)	२
■1569	हनुमतस्तोत्रावलि	४
▲ 766	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	१२
▲ 768	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	१५
▲ 733	गृहस्थमें कैसे रहें?	१२
■1879	परलोक और पुनर्जन्म..	२५
■ 908	श्रीनारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682	भक्त पञ्चरत्न	१०
■ 687	आदर्श भक्त	१०
■ 767	भक्तराज हनुमान्	१०
■ 917	भक्त-चन्द्रिका	१२
■ 918	भक्त-सप्तरत्न	१२
■ 641	भगवान् श्रीकृष्ण	१०
■ 663	गीता-भाषा	१२
■ 662	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	८
■ 986	विदुरनीति	१५
■ 753	सुन्दरकाण्ड—सटीक	१०
■ 685	भक्त बालक	८
■ 692	चोखी कहानियाँ	१०

कोड		मूल्य ₹
▲1802	प्रेरक कहानियाँ	१०
▲1752	आदर्श कहानियाँ	१०
■ 976	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक—रंगीन	१५
■ 977	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (,,)	१५
■ 978	सच्चे और ईमानदार बालक (रंगीन)	१५
■1803	श्रीमद्भागवत पंचरत्नमुलु	३०
■1751	महात्मा विदुर	६
▲ 920	परमार्थ-पत्रावली	८
■ 930	दत्तात्रेय-वज्रकवच	५
■ 846	ईशावास्योपनिषद्	८
■ 990	कठोपनिषद्	३०
■ 686	प्रेमी भक्त उद्धव	६
■1023	श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्-सटीक	५
■1760	द्वादश ज्योतिर्लिंग महिमा	१२
■1761	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	१२
■1754	लक्ष्मीसहस्रनाम	६
■ 973	शिवस्तोत्रावली	५
■ 972	शतकत्रयम्	१०
■1025	स्तोत्रकदम्बम्	६
■ 674	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675	सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	५
▲ 906	भगन्तुडे आत्मेयुणु	५
■ 676	हनुमानचालीसा	५
■ 801	ललितासहस्रनाम	६
■ 974	,, ,, (लघु आकार)	४
■1024	श्रीनारायणकवचमु तात्पर्यसहितमु	३
■1030	सन्ध्योपासनविधि	२०
▲ 927	भक्तियोग तत्त्वमु	१५
■ 688	भक्तराज ध्रुव	५
■ 670	विष्णुसहस्रनाम—मूल	३
■ 911	,, -मूल (लघु आकार)	२
■1527	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	७
■ 912	रामरक्षास्तोत्र, सटीक	३
■ 677	गजेन्द्रमोक्षम्	५
■1531	गीता-विष्णुसहस्रनाम	१२
■ 732	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	३
▲ 923	भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	४
■1762	भजगोविंदम्-मोहमुद्गर	६

कोड		मूल्य ₹
■1857	प्रश्नोत्तरी-मणिरत्नमाला	६
■1764	गोविन्द नामावलि और...लघु	२
▲ 913	भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट..	
▲1756	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	१२
▲ 760	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	८
▲ 761	एकै साधे सब सधै	१०
▲ 922	सर्वोत्तम साधन	१०
▲ 759	शरणागति एवं मुकुन्दमाला	६
▲ 752	गर्भपात उचित या...	२
▲ 734	आहारशुद्धि, मूर्तिपूजा	५
▲ 664	सावित्री-सत्यवान्	४
▲ 665	आदर्श नारी सुशीला	६
▲ 921	नवधा भक्ति	६
▲1759	वासुदेवः सर्वम्	६
▲ 666	अमूल्य समयका सदुपयोग	१५
▲ 672	सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 671	नाम-जपकी महिमा	१
▲ 678	सत्संगकी कुछ सार बातें	४
▲ 731	महापापसे बचो	२
▲ 925	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲1547	किसान और गाय	४
▲ 758	देशकी वर्तमान दशा..	४
▲ 916	नल-दमयन्ती	६
▲ 689	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	६
▲ 928	भगवान्के स्वभावका रहस्य	२०
▲ 690	बालशिक्षा	६
▲ 907	प्रेमभक्ति-प्रकाशिका	३
▲ 673	भगवान्का हेतुरहित..	
▲ 926	सन्तानका कर्तव्य	३
■1765	भलेका फल भला	५

मलयालम

■1916	गीता-पॉकिट, अजिल्द	१५
■ 739	गीता-विष्णुसहस्रनाम, मूल	१०
■ 740	विष्णुसहस्रनाम—मूल	३

पंजाबी

■1697	गीता-प्रबोधनी	
▲1616	गृहस्थमें कैसे रहें?	
▲1894	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७

नेपाली

■1609	श्रीरामचरितमानस-सटीक	२५०
▲1621	मानवमात्र कल्याणके लिये	२०

Our English Publications

■1318	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation)	300
■1617	Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation	130
■ 456	Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation)	180
■1550	Sunder Kand (Roman)	20
■ 452, 453	Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes	500
■ 564, 565	Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set	440
■ 1080, 1081	Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes	200
■ 457	Śrīmad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary	150
■ 455	Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	10
■ 534	Bhagavadgītā (Bound)	20
■ 1658	Śrīmad Bhagavadgītā (Sanskrit text with hindi and English Translation)	25
■ 824	Songs from Bhartṛhari	5
▲ 783	Abortion Right or Wrong You Decide	2
■ 1491	Mohana (Picture Story)	15
■ 1643	Ramaraksastotram (With Sanskrit Text, English Translation)	3
■ 494	The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya)	5
■ 1528	Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket)	5
■ 1638	,, Small size	3
■ 1492	Rāma Lalā (Picture Story)	25
■ 1445	Virtuous Children	30
■ 1545	Brave and Honest Children	30
■ 2001	Vidur Niti	20

By Jayadayal Goyandka

▲ 477	Gems of Truth [Vol. I]	15
▲ 478	,, ,, [Vol. II]	15
▲ 479	Sure Steps to God-Realization	30
▲ 481	Way to Divine Bliss	10
▲ 482	What is Dharma? What is God?	4
▲ 480	Instructive Eleven Stories	10
▲ 1285	Moral Stories	20
▲ 1284	Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa	15
▲ 1245	Some Exemplary Characters of the Mahābhārata	15
▲ 694	Dialogue with the Lord During Meditation	3
▲ 1125	Five Divine Abodes	5
▲ 520	Secret of Jñānayoga	30
▲ 521	,, ,, Premayoga	20
▲ 522	,, ,, Karmayoga	25
▲ 523	,, ,, Bhaktiyoga	30
▲ 658	,, ,, Gītā	15
▲ 1013	Gems of Satsaṅga	2
▲ 1501	Real Love	10

By Hanuman Prasad Poddar

▲ 484	Look Beyond the Veil	12
▲ 622	How to Attain Eternal Happiness?	20
▲ 483	Turn to God	12
▲ 485	Path to Divinity	15
▲ 847	Gopis'Love for Śrī Kṛṣṇa	6
▲ 620	The Divine Name and Its Practice	3
▲ 486	Wavelets of Bliss & the Divine Message	

By Swami Ramsukhdas

▲ 1470	For Salvation of Mankind	25
▲ 619	Ease in God-Realization	10
▲ 471	Benedictory Discourses	12
▲ 473	Art of Living	10
▲ 487	Gītā Mādhurya	15
▲ 1101	The Drops of Nectar (Amṛta Bindu)	10
▲ 1523	Is Salvation Not Possible without a Guru?	7
▲ 472	How to Lead A Household Life	10
▲ 570	Let Us Know the Truth	6
▲ 638	Sahaja Sādhanā	10
▲ 621	Invaluable Advice	3
▲ 474	Be Good	15
▲ 497	Truthfulness of Life	2
▲ 669	The Divine Name	5
▲ 476	How to be Self-Reliant	
▲ 552	Way to Attain the Supreme Bliss	

Special Editions

■1411	Gītā Roman (Sanskrit text, Transliteration & English Translation) Book Size	30
■1584	,, (Pocket Size)	20
■1407	The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas)	15
■1406	Gītā Mādhurya (,,)	20
■1438	Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas)	30
■1413	All is God (,,)	15
■1414	The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari)	20

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-पर अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

१-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक** रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं। **वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीका विशेषाङ्क एवं अन्य उपलब्ध मासिक अङ्क दिये जाते हैं।**

२-**वार्षिक सदस्यता-शुल्क**—भारतमें सजिल्द ₹२२०, विदेशमें हवाई डाकसे भेजनेके लिये US$ 50 (₹३०००) (चेक कलेक्शनके लिये US$ 6 अतिरिक्त)।

पंचवर्षीय शुल्क—भारतमें सजिल्द ₹११००, विदेशमें हवाई डाकसे भेजनेके लिये US$ 250 (₹१५०००) (चेक कलेक्शनके लिये US$ 6 अतिरिक्त)।

डाकखर्च आदिमें अप्रत्याशित वृद्धि होनेपर पंचवर्षीय ग्राहकोंद्वारा अतिरिक्त राशि भी देय हो सकती है।

३-समयसे सदस्यता-शुल्क प्राप्त न होनेपर आगामी वर्षका विशेषाङ्क वी०पी०पी०से भेजा जाता है। इसपर डाकशुल्कका ₹१० अतिरिक्त देय होता है।

४-जनवरीका विशेषाङ्क (वर्षका प्रथम अङ्क) रजिस्ट्री / वी०पी०पी०से तथा फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमासके प्रथम सप्ताहतक साधारण डाकसे भेजे जाते हैं।

५-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' अवश्य लिखी जानी चाहिये और पता बदलनेकी सूचनामें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया पता लिखना चाहिये।**

६-**'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)**

गीताप्रेसके दो महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

शिवनामका माहात्म्य

ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम्। उद्धृतं च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते॥
शिवनाम मुखे यस्य सदा शिवशिवेति च। पापानि न स्पृशन्त्येव खदिराङ्गारकं यथा॥
श्रीशिवाय नमस्तुभ्यं मुखं व्याहरते यदा। तन्मुखं पावनं तीर्थं सर्वपापविनाशनम्॥
तन्मुखं च तथा यो वै पश्यति प्रीतिमान्नरः। तीर्थजन्यं फलं तस्य भवतीति सुनिश्चितम्॥
शिवनाम विभूतिश्च तथा रुद्राक्ष एव च। एतत्त्रयं महापुण्यं त्रिवेणीसदृशं स्मृतम्॥
शैवं नाम यथा गङ्गा विभूतिर्यमुना मता। रुद्राक्षं विधिजा प्रोक्ता सर्वपापविनाशिनी॥
शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः। भस्मीभवन्त्यनायासात्सत्यं सत्यं न संशयः॥
स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्यः स बुधो मतः। शिवनामजपासक्तो यो नित्यं भुवि मानवः॥
भवन्ति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः। येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने॥
शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धिं तरन्ति ये। संसारमूलपापानि तानि नश्यन्त्यसंशयम्॥
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने। शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम्॥
अनेकजन्मभिर्येन तपस्तप्तं मुनीश्वर। शिवनाम्नि भवेद्भक्तिः सर्वपापापहारिणी॥
विलोक्य वेदानखिलान् शिवनामजपः परः। संसारतरणोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितम्॥
किं बहूक्त्या मुनिश्रेष्ठाः श्लोकेनैकेन वच्म्यहम्। शिवाभिधानमाहात्म्यं सर्वपापापहारणम्॥
पापानां हरणे शम्भोर्नाम्नः शक्तिर्हि यावती। शक्नोति पातकं तावत्कर्तुं नापि नरः क्वचित्॥

[श्रीसूतजी ऋषियोंसे कहते हैं—] वे ही धन्य और कृतार्थ हैं, उन्हींका शरीर धारण करना भी सफल है और उन्होंने ही अपने कुलका उद्धार कर लिया है, जो शिवकी उपासना करते हैं। जिनके मुखमें भगवान् शिवका नाम है, जो अपने मुखसे सदा शिव-शिव इस नामका उच्चारण करते रहते हैं, पाप उनका उसी तरह स्पर्श नहीं करते, जैसे खदिर वृक्षके अंगारको छूनेका साहस कोई भी प्राणी नहीं कर सकते। हे शिव! आपको नमस्कार है (**श्रीशिवाय नमस्तुभ्यम्**)-जिस मुखसे ऐसा उच्चारण होता है, वह मुख समस्त पापोंका विनाश करनेवाला पावन तीर्थ बन जाता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक उस मुखका दर्शन करता है, उसे निश्चय ही तीर्थसेवनजनित फल प्राप्त होता है। शिवका नाम, विभूति (भस्म) तथा रुद्राक्ष—ये तीनों त्रिवेणीके समान परम पुण्यवान् माने गये हैं। भगवान् शिवका नाम गंगा है, विभूति यमुना मानी गयी है तथा रुद्राक्षको सरस्वती कहा गया है। इन तीनोंकी संयुक्त त्रिवेणी समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। 'शिव'—इस नामरूपी दावानलसे महान् पातकरूपी पर्वत अनायास ही भस्म हो जाते हैं—यह सत्य है, सत्य है; इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य इस भूतलपर सदा भगवान् शिवके नामोंके जपमें ही लगा हुआ है, वह वेदोंका ज्ञाता है, वह पुण्यात्मा है, वह धन्यवादका पात्र है तथा वह विद्वान् माना गया है। हे मुने! जिनका शिवनामजपमें विश्वास है, उनके द्वारा आचरित नाना प्रकारके धर्म तत्काल फल देनेके लिये उत्सुक हो जाते हैं। जो शिवनामरूपी नौकापर आरूढ़ होकर संसार-समुद्रको पार करते हैं, उनके जन्म-मरणरूप संसारके मूलभूत वे सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। हे महामुने! संसारके मूलभूत पातकरूपी पादपोंका शिवनामरूपी कुठारसे निश्चय ही नाश हो जाता है। हे मुनीश्वर! जिसने अनेक जन्मोंतक तपस्या की है, उसीकी शिवनामके प्रति भक्ति होती है, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। सम्पूर्ण वेदोंका अवलोकन करके पूर्ववर्ती महर्षियोंने यही निश्चित किया है कि भगवान् शिवके नामका जप संसारसागरको पार करनेके लिये सर्वोत्तम उपाय है। हे मुनिवरो! अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं शिव-नामके सर्वपापहारी माहात्म्यका वर्णन एक ही श्लोकमें करता हूँ—भगवान् शंकरके एक नाममें भी पापहरणकी जितनी शक्ति है, उतना पातक मनुष्य कभी कर ही नहीं सकता। [शिवपुराण, विद्येश्वरसंहिता]

शिवपुराणोक्त नवधाभक्ति

श्रवणं कीर्तनं चैव स्मरणं सेवनं तथा। दास्यं तथार्चनं देवि वन्दनं मम सर्वदा॥
सख्यमात्मार्पणं चेति नवाङ्गानि विदुर्बुधाः। उपाङ्गानि शिवे तस्या बहूनि कथितानि वै॥
शृणु देवि नवाङ्गानां लक्षणानि पृथक् पृथक्। मम भक्तेर्मनो दत्त्वा भुक्तिमुक्तिप्रदानि हि॥
कथादेर्नित्यसम्मानं कुर्वन्देहादिभिर्मुदा। स्थिरासनेन तत्पानं यत्तच्छ्रवणमुच्यते॥
हृदाकाशेन संपश्यन् जन्मकर्माणि वै मम। प्रीत्योच्चोच्चारणं तेषामेतत्कीर्तनमुच्यते॥
व्यापकं देवि मां दृष्ट्वा नित्यं सर्वत्र सर्वदा। निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं तदुदाहृतम्॥
अरुणोदयमारभ्य सेवाकालेऽञ्चिता हृदा। निर्भयत्वं सदा लोके स्मरणं तदुदाहृतम्॥
सदा सेव्यानुकूल्येन सेवनं तद्धि गोगणैः। हृदयामृतभोगेन प्रियं दास्यमुदाहृतम्॥
सदा भृत्यानुकूल्येन विधिना मे परात्मने। अ[illegible]ं षोडशानां वै पाद्यादीनां तदर्चनम्॥
मंत्रोच्चारणध्यानाभ्यां मनसा वचसा क्रमात्। यदष्टाङ्गेन भूस्पर्शं तद्वै वन्दनमुच्यते॥
मङ्गलामङ्गलं यद्यत्करोतीतीश्वरो हि मे। [illegible]ङ्गलायेति विश्वासः सख्यलक्षणम्॥
कृत्वा देहादिकं तस्य प्रीत्यै सर्वं तदर्पणम्। नि[illegible] च शून्यत्वं यत्तदात्मसमर्पणम्॥
नवाङ्गानीति मद्भक्तेर्भुक्तिमुक्तिप्रदानि च। मम प्रियाणि चातीव ज्ञानोत्पत्तिकराणि च॥
इत्थं साङ्गोपाङ्गभक्तिर्मम सर्वोत्तमा प्रिये। ज्ञानवैराग्यजननी मुक्तिदासी विराजते॥
कलौ प्रत्यक्षफलदा भक्तिः सर्वयुगेष्वपि। तत्प्रभावादहं नित्यं तद्वशो नात्र संशयः॥

[भगवान् शिव श्रीसतीजीसे बोले—] हे देवि! श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवन, दास्य, अर्चन, सदा मेरा वन्दन, सख्य और आत्मसमर्पण—विद्वानोंने भक्तिके ये नौ अंग माने हैं। हे शिवे! इसके अतिरिक्त उस भक्तिके बहुत-से उपांग भी कहे गये हैं। हे देवि! अब तुम मन लगाकर मेरी भक्तिके नौ अंगोंके पृथक्-पृथक् लक्षण सुनो, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो स्थिर आसनपर बैठकर तन-मन आदिसे मेरे कथा-कीर्तन आदिका नित्य सम्मान करते हुए प्रसन्नतापूर्वक [अपने श्रवणपुटोंसे] उसका पान किया जाता है, उसे **श्रवण** कहते हैं। जो हृदयाकाशके द्वारा मेरे दिव्य जन्म एवं कर्मोंका चिन्तन करता हुआ प्रेमसे वाणीद्वारा उनका उच्च स्वरसे उच्चारण करता है, उसके इस भजनसाधनको **कीर्तन** कहा जाता है। हे देवि! मुझ नित्य महेश्वरको सदा और सर्वत्र व्यापक जानकर संसारमें निरन्तर निर्भय रहना है, उसीको **स्मरण** कहा गया है [यह **निर्गुण स्मरण भक्ति** है] और अरुणोदयकालसे प्रारम्भकर शयनपर्यन्त तत्परचित्तसे निर्भय होकर भगवद्विग्रहकी सेवा करनेको **स्मरण** कहा गया है [यह **सगुण स्मरण भक्ति** है]। हर समय सेव्यकी अनुकूलताका ध्यान रखते हुए हृदय और इन्द्रियोंसे जो निरन्तर सेवा की जाती है, वही **सेवन** नामक भक्ति है। अपनेको प्रभुका किंकर समझकर हृदयामृतके भोगसे स्वामीका सदा प्रिय-सम्पादन करना **दास्य** कहा गया है। अपने को सदा सेवक समझकर शास्त्रीय विधिसे मुझ परमात्माको सदा पाद्य आदि सोलह उपचारोंका जो समर्पण करना है, उसे **अर्चन** कहा जाता है। वाणीसे मन्त्रका उच्चारण करते हुए एवं मनसे ध्यान करते हुए चरणों, हाथों, जानुओं आदि आठ अंगोंसे भूमिका स्पर्श करते हुए लेटकर जो अष्टांग-प्रणाम किया जाता है, उसे **वन्दन** कहा जाता है। ईश्वर मंगल-अमंगल जो कुछ भी करता है, वह सब मेरे मंगलके लिये है—ऐसा दृढ़ विश्वास रखना **सख्य** भक्तिका लक्षण है। देह आदि जो कुछ भी अपनी कही जानेवाली वस्तु है, वह सब भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये उन्हींको समर्पित करके अपने निर्वाहके लिये कुछ भी बचाकर न रखना अथवा निर्वाहकी चिन्तासे भी रहित हो जाना, **आत्मसमर्पण** कहा जाता है। हे प्रिये! मेरी भक्तिके ये नौ अंग हैं, जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। इनसे ज्ञान प्रकट हो जाता है तथा ये साधन मुझे अत्यन्त प्रिय हैं। इस प्रकार मेरी सांगोपांग भक्ति सबसे उत्तम है। यह ज्ञान-वैराग्यकी जननी है और मुक्ति इसकी दासी है। भक्ति कलियुगमें तथा अन्य सभी युगोंमें भी प्रत्यक्ष फल देनेवाली है। भक्तिके प्रभावसे मैं सदा भक्तके वशमें रहता हूँ, इसमें सन्देह नहीं है। [शिवपुराण, रुद्रसंहिता, सतीखण्ड]